CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राधाकृष्ण भक्त-कोश

सं. भगवतीप्रसाद सिंह

राधाकृष्ण भक्तकोश

द्वितीय खण्ड

संपादक
भगवती प्रसाद सिंह
निवर्तमान आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सह-संपादक
डॉ० वासुदेव सिंह
प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सत्-शास्त्र प्रकाशन
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा-१
१९८८

प्रकाशक :
सत्-शास्त्र प्रकाशन
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा–१

© प्रकाशक
प्रथम संस्करण १९८८

मूल्य : चार सौ रुपये

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी. २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी,
मलदहिया, वाराणसी–२

RADHAKRISHNA BHAKTAKOSH

VOLUME TWO

Editor
BHAGWATI PRASAD SINGH
Professor & Head, Deptt. of Hindi (Retd.)
Gorakhpur University, Gorakhpur

Co-Editor
Dr. BASUDEO SINGH
Professor, Deptt. of Hindi
Kashi Vidyapith, Varanasi

SAT-SHASTRA PRAKASHAN
SHRIKRISHNA-JANMASTHAN SEVA-SANSTHAN
MATHURA-1
1988

Publisher
Sat-Shastra Prakashan
Shri Krishna-Janmasthan Seva-Sansthan
Mathura-1

© Publisher
First Edition : 1988

Price : Rupees Four Hundred

Printed by
Shivam Printers
C. 27/273, Indian Press Colony,
Maldahiya, Varanasi-2

प्राक्कथन

राधाकृष्ण-भक्तकोश का द्वितीय-खण्ड सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। पाँच-खण्डों में प्रकाश्य इस ग्रन्थ के प्रथम तीन-खण्डों में हिन्दीतर प्रदेशों के और शेष दो-खण्डों में हिन्दी भाषी क्षेत्रों के राधाकृष्ण-भक्तों के चरित समाविष्ट करने की योजना है। प्रथम-खण्ड में वर्णानुक्रम से असमिया (९८), उड़िया (२३३), उर्दू (५२), कश्मीरी (८), कन्नड़ (३८), तथा गुजराती (२९८) कुल ७२७ भक्तों के वृत्त, कृतियों की यथोपलब्ध नामावली तथा कृष्ण-भक्ति-व्यंजक मूल पदों के उद्धरण, हिन्दी अनुवाद सहित दिये गये हैं। इस द्वितीय-खण्ड में उसी क्रम से तमिल (७१), तेलुगु (१५२), नेपाली (१०), पंजाबी (८३), तथा बंगला (२१०) के कुल ५२६ भक्तों के वृत्त संगृहीत हैं। इस प्रकार इन दो-खण्डों में राष्ट्र की ग्यारह भाषाओं के विभिन्न प्रदेशों और कालों में आविर्भूत १२५३ प्रतिनिधि राधा-कृष्ण भक्तों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के शेष भक्तों के चरित तीसरे खण्ड में दिये जायेंगे।

श्रीकृष्ण की अवतारलीला तथा भक्ति के विकासक्रम के विचार से भारत के हिन्दीतर प्रदेशों का विशेष महत्त्व है। यदि उत्तर भारत के प्रसिद्ध कृष्ण-तीर्थं मथुरा-वृन्दावन को वासुदेव कृष्ण की आविर्भाव, बाल तथा कैशोर लीला की स्थली होने का गौरव प्राप्त है, तो पश्चिम दिशा में स्थित गुर्जरप्रदेश की द्वारकापुरी, उनके उत्तरकालीन जीवन का मुख्य केन्द्र रही है। दक्षिण में तिरुपति, श्रीरंगम्, मदुरै, मन्नारगुडी, गुरुवायूर, उडुपि तथा पूर्व में उत्कल प्रदेशस्थ जगन्नाथपुरी अनादिकाल से दिव्यधाम के रूप में समादृत है। श्रीकृष्ण-भक्ति के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से इन पश्चिमी, दक्षिणी तथा पूर्वी पुण्य-क्षेत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार तमिल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात वैष्णव-भक्ति की लोकयात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव रहे हैं।

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वैष्णव-भक्ति का मूल स्रोत द्रविड़ देश के आलवारों तथा वैष्णवाचार्यों के तपःपूत व्यक्तित्व एवं भक्तिभावाप्लुत रचनाओं में शताब्दियों पहले से प्रवाहित चला आ रहा था। भक्ति-सम्प्रदायों के प्रवर्त्तक चारों आचार्य—रामानुज, विष्णुस्वामी, निम्बार्क तथा मध्व, द्रविड़देशीय थे। उत्तरी भारत में भक्ति-मन्दाकिनी का प्रसार इनके प्रखर व्यक्तित्व के प्रभाव तथा शिष्य-प्रशिष्यों के अथक प्रयास से ही सम्भव हुआ था।

वैष्णव-भक्ति आन्दोलन के अभिन्न अंग के रूप में देश के विभिन्न अंचलों में श्रीकृष्णभक्ति के प्रचारक चैतन्य महाप्रभु, जगन्नाथ दास, महाप्रभु शंकरदेव, चक्रधर स्वामी, नामदेव, नरसी मेहता, वल्लभाचार्य, सहजानन्द स्वामी जैसी हिन्दीतर क्षेत्रों की आध्यात्मिक विभूतियों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपेण जनजागरण का अभियान चलाकर सांस्कृतिक संघर्ष के उस संकटकाल में राष्ट्र की परम्परागत सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा की थी। मथुरा-वृन्दावन के नंदनन्दन की भाँति ही उनके अभिन्न स्वरूप श्री वेंकटेश्वर, श्री रंगनाथ, श्री पंढरीनाथ विट्ठल, श्री द्वारकानाथ, श्री मदनगोपाल आदि दिव्य विग्रहों से प्रेरणा प्राप्तकर उन्होंने निराश तथा किंकर्तव्यविमूढ़ जनमानस को परिस्थितियों से जूझने के लिए अलौकिक साहस तथा शक्ति प्रदान की थी।

मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भगवान् कृष्ण के चरित के विविध पक्षों को आधार बनाकर विभिन्न प्रदेशों के भक्तों ने अनेक शैलियों में अपने भाव-सुमन अर्पित किये हैं। उनकी प्राकृत नर-लीला उत्तरोत्तर अप्राकृत नारायण-लीला के साँचे में ढलती गई और अन्ततोगत्वा वे परमाराध्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। मथुरा-वृन्दावन में सम्पन्न उनकी बाल-लीला वात्सल्य तथा सख्यासक्ति की प्रेरणास्रोत बनी तो कैशोर-लीला, माधुर्य एवं दास्य की। कंस और जरासंध जैसे अत्याचारियों के संहारक होने से वे धर्मसंस्थापक, अप्रतिम वीर तथा लोक-रक्षक के रूप में पूज्य बने तो महाभारत के सूत्रधार रूप में उनका अप्रतिम राजनीतिज्ञ-रूप उजागर हुआ और गीतोपदेष्टा के रूप में वे महान् दार्शनिक, योगेश्वर और तत्वदर्शी महापुरुष के विरुद से मण्डित हो लोकपूज्य बने। इनके साथ ही भागवत, ब्रह्म-

वैवर्तादि पुराणों में वर्णित इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन-पूजा, दानलीलादि प्रसंग उनके प्रगतिशील विचार तथा सुदामा का दारिद्र्यमोचन, द्रौपदी की लज्जारक्षा, विदुरपत्नी का आतिथ्यग्रहण आदि कथाएँ उनकी भक्तवत्सलता के परिचायक हैं। हिन्दीतर कृष्णभक्ति-साहित्य में आराध्य की गोकुल, मथुरा, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र तथा द्वारकालीला के ये विविध प्रसंग न्यूनाधिक मात्रा में समय-समय पर अभिव्यक्ति पाते रहे। लक्ष्य की समानता होते हुए भी भक्तों ने क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उन्हें धरती की गन्ध से सुवासित कर अपनी नई पहचान बनाई। कहीं उनकी ऐश्वर्य-लीला को प्रमुखता दी गई तो कहीं माधुर्यलीला को। महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान के भक्तों ने कृष्ण के सुपरिचित उत्तर चरित को वरीयता देते हुए रुक्मिणी को अधिक महत्व दिया है तो भावुक बंगाली भक्तों ने राधा को। किंतु असम के एकशरणिया धर्म में राधा सर्वथा अनुपस्थित रहीं और कन्नड़ में अपेक्षाकृत गौण स्थान पर रखी गयीं हैं। द्रविड़-भक्तों ने भागवत की अपेक्षा महाभारत में निरूपित कृष्णचरित को अधिक महत्व दिया है परन्तु बंगाली, उड़िया, तथा असमिया, कृष्णोपासकों ने भागवत को ही अपना प्रधान उपजीव्य ग्रंथ माना है।

आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ ही कृष्ण भक्तिधारा ने भारतीय लोक जीवन के सांस्कृतिक स्तर को भी साहित्य एवं कला की नई विधाओं से समृद्ध बनाने में अपूर्व सहयोग दिया है। असमिया के अंकिया नाटक, मलयालम का कृष्णनाट्ट, कर्नाटक-संगीत, गौड़ीय संकीर्तन पद्धति, ओडिसी नृत्य, मणिपुरी रास, तथा गुजरात का गरबानृत्य आज भी अपने अद्भुत आकर्षण तथा संस्कारमार्जक प्रभाव के लिए देश-विदेश में प्रसिद्ध हैं।

अध्यात्म की भाँति सामाजिक क्रांति के क्षेत्र में भी कृष्ण-भक्तों की अविस्मरणीय सेवाएँ हैं। महापुरुष शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णववाद ने आर्येतर नागा, आहोम प्रभृति आदिम जातियों को वैष्णव-धर्म में दीक्षित कर अज्ञानान्धकार में भटकती मानवता को प्रकाश पथ पर अग्रसर किया। उनके अनुयायियों ने सत्रसंस्थान के माध्यम से अनुगतों के जीवन के सर्वाङ्गीण विकास की व्यवस्था की। चैतन्य महाप्रभु ने सहजयानी बौद्ध साधकों के वासना-पंकिल आचार-विचार से बंगीय समाज का उद्धार किया। उड़िया-भक्तों ने भगवान् जगन्नाथ तथा महाराष्ट्रीय सन्तों ने पंढरीनाथ विट्ठल से प्रेरणा ग्रहण कर ऊँच-नीच तथा निर्गुण-सगुण का भेद मिटाकर परिष्कृत धर्मचेतना के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन में भावनात्मक एकता की प्रतिष्ठा का अभिनंदनीय प्रयास किया। गुजरात के स्वामिनारायण-सम्प्रदाय के उदारचेता भक्तों ने लोकोन्मुखी व्यष्टिसाधना का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत कर समाज सेवा, आत्मनिर्भरता तथा उच्च नैतिकता का जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसे देखकर महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रसेवक ही नहीं तत्कालीन विदेशी शासक वर्ग भी आश्चर्य चकित हो गया था।

कृष्ण-भक्ति की वेगवतीधारा ने जाति, धर्म तथा वर्ग की पुरानी दीवारों को भी झकझोरा। इसके फलस्वरूप अनगिनत आदिवासी, मुसलमान तथा जैन अपनी परम्परागत मान्यताओं को तिलांजलि देकर वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी बनें। गुजरात के सतपथी मुसलमान राजेभगत, उड़ीसा के सालवेग, बंगाल के हरिदास यवन इसी श्रेणी में आते हैं। पंजाब के गुरु गोविन्दसिंह तथा कर्नाटक के जैन कृष्ण-काव्य प्रणेताओं की रचनाएँ चरितनायक में प्रगाढ़ आसक्ति व्यक्त करती हैं। अवतारवाद विरोधी इस्लाम धर्म के अनुयायी उर्दू के कृष्ण-प्रेमी शायरों ने संकुचित धर्मभावना से ऊपर उठकर कृष्णलीला का मुक्त-कण्ठ से गान ही नहीं किया उन्हें "नूरस्याह" (श्याम-ज्योति) के गरिमामय विशेषण से मंडित कर उनकी बाँसुरी के स्वर में राष्ट्र को नई चेतना प्रदान करने की दिव्यशक्ति का भी दर्शन किया।

आलवारों, आचार्यों तथा तद्भावभावित कृष्ण-भक्तों के लोक-पावन चरित एवं अमृतमयी वाणी से अलंकृत यह ग्रंथ श्रद्धालु पाठकों को उच्चतर जीवन-मूल्यों की ओर उन्मुख करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

श्री राधाष्टमी, सं० २०४५
साकेत, बेतियाहाता, गोरखपुर

भगवती प्रसाद सिंह

विषय-सूची

तमिल-साहित्य में कृष्ण-भक्ति : १–१३
डॉ० हरिहर दुरै स्वामी

तमिलनाडु की कृष्ण-भक्ति-परम्परा : १४–१९
डॉ० कुमारी के० ए० जमुना

तमिलनाडु के कृष्ण-भक्त : २१–१३०

अधिवीरराम पांडियन् २१, अरुलाल दासर २२, अषगिय मणवाल जीयर २३, आंडाल २४, आलवन्दार २८, इलम् पेरु वषुदियार् ३०, उय्यक्कोण्डार ३०, एम्बार ३१, कंबन ३१, कडुवन् इल वेयिननार् ३४, कण्णदासन् ३५, कुलशेखर आलवार ३८, कूरत्ताषवान् ४०, गुरुकै कावलप्पन् ४०, गोपाल कृष्ण भागवतर् ४१, गोपाल भागवतर् (भागवतपुरम्) ४१, गोपाल भागवतर् (मणंचेरी) ४२, गोपाल भागवतर् (वरहूर) ४२, चेव्वै चूडुवार ४३, तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् ४३, तिरुक्कोष्ठियूर नंबी ४४, तिरुप्पाणालवार ४४, तिरुमंगै आलवार ४६, तिरुमलै हरिदास ४८, तिरुमषिसै आलवार ४९, तिरुवरंगत्तमुदनार् ५१, तिरुवऴऴुवर ५२, तिरु वि० कल्याणसुन्दरम् ५४, तोण्डरडिप् पोडियालवार ५७, तोलकाप्पियर ५९ नंजीयर६१, नटनगोपाल नायकी स्वामी ६२, नम्पिपिल्लै ६६, नम्मालवार ६८, नाथमुनिगल ७०, नामक्कल कवि रामलिंगम् पिल्लै ७२, नारायण तीर्थं स्वामी ७४, पराशर भट्टर ७७, पल-पट्टडै चोक्कनाथर ८१, पिल्लै लोकाचार्य ८२, पुगषेन्दिप्पुल्वर् ८३, पेयालवार ८५, पेरिय कुषन्दै स्वामी ८६, पेरिय वाच्चान् पिल्लै ८७, पेरियालवार (विष्णुचित्त) ८८, पेरुमाल जीयर् ९१, पोयगै आलवार ९३, भूतत्तालवार ९३, मणवालदासर् ९४, मधुर कवि आलवार ९६, मांगुडिमरुदनार् ९८, मामूलनार् ९९, मुत्तु कुट्टिप् पुलवर ९९, मु० राघव आयंगार १००, रा० राघव आयंगार १०२, राजगोपालप् पुलवर् १०४, रामानुज स्वामी १०५, विल्लिपुत्तूरार ११३, वेंकटरमण ११५, वेदान्त देशिकर ११५, शुद्धानन्द भारतियार ११७, शूलमंगलम् गोपाल भागवतर् ११९, श्रीधर अय्या ११९, श्रीनिवासय्यंगार स्वामी (उभयवेदान्त) १२०, श्रीनिवास राघवन १२१, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र १२३, सुब्रह्मण्य भारती १२५, हा० कि० वालम् १२९ ।

तेलुगु (आन्ध्र) प्रदेश में कृष्ण-भक्ति का विकास : १३१–१५२
प्रो० साइं प्रसाद

तेलुगु के कृष्ण भक्त : १५३–३२८

अथर्वणाचार्य १५३, अनन्तामात्युडु १५४, अय्यल राजु तिप्पय्य १५५, अय्यल राजु नारायणामात्युडु १५६, अल्लमराजु रामकृष्ण कवि १५६, अल्लसानि पेद्दन्न १५६, ईश्वरफणिभट्टु १५८, उन्नव योगानन्दुडु १५९, (डॉ०) एक्किराल कृष्णमाचार्युलु १५९, एर्चूरि सिन्गन्न १६०, एर्रा (एर्रन्न) प्रगड १६१, औड्डेपूडि पेद्दय १६४, ओरुगंटि सोमशेखर कवि १६५, कंकंटि नरसिंह राजू १६५, कंकंटि

पापराजु १६६, कंचलि वेन्कट हनुमन्तय्या १६७, कन्दुकूरि रुद्रकवि १६७, कंभम् पाटि नारपामात्युडु १६९, कट्टा वरदराजु १७०, कावुरि येल्लय कवि १७१, कासुल पुरुषोत्तम १७१, कूचिपूडि सिद्धेन्द्र योगी १७२, कूचिमंचि जग्ग कवि १७४, कूचिमंचि तिम्मकवि १७४, कृष्णदास कवि १७६, कृष्णदेवरायलु १७६, कृष्णध्वरि १८०, कृष्णमाचार्युलु १८१, कोलाचलमु श्रीनिवास राव १८२, क्षेत्रय्या १८२, गंगनार्युडु १८६, गणपवरपु वेन्कट कवि १८६, गुर्रम् जाषुवा १८८, गोपीनाथमु वेंकट कवि १९०, गौरन मन्त्रि १९०, चक्रपुरि राघवाचार्य १९१, चदलवाड मल्लन्न १९२, चरिगोण्ड धर्मन्न १९३, चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री १९४, चिन्तलपूडि एल्लनार्युडु १९५, चिर्रावूरु कामेश्वर राव १९९, चिलकपाटि रामानुज शर्मा १९९, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु २००, चेम्गलव कालय्या २०१, चेमकूर वेन्कट कवि २०२, चौडप्प २०४, जन्नमन्त्रि, कवि राक्षस २०५, जन्नमन्त्रि शेषाद्रि शर्मा २०६, टेकुमल्ल रंगशायी २०६, तंजनगरमु तेवप्पेरुमाल्लय्या २०७, तरिगोण्ड बेंकमाम्बा २०७, ताडेपल्लि पानकाल राय कवि २०७, तामरपल्लि तिम्मय्य २०८, ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु २०९, ताल्लपाक चिन तिरुमलय्या २१३, ताल्लपाक चिन तिरुवेन्गल नायुडु २१४, ताल्लपाक चिन्नन्न २१४, ताल्लपाक तिम्मक्क २१५, ताल्लपाक पेद तिरुमलय्या २१६, ताल्लपाक श्रीनिवासुडु २१६, तिक्कन २१७, तिरुपति कवुलु २१९, तुपाकुल अनन्त भूपालुडु २२१, तेनालि अन्नय्य कवि २२२, तेनालि रामकृष्ण कवि २२३, त्यागराज २२८, दिट्ट कवि रामचन्द्र २२९, (कवि कोकिल) दुव्वूरि रामिरेड्डी २३०, देवुल पल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री २३१, दोनूरि कोनेरुकवि २३३, धरणि देवुलु रामय्या २३४, नन्दि तिम्मन्न २३६, नन्नय २३७, नरसिंगन्न ताल्लपाक २३९, नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि २३९, नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि २४१, नायन सुब्बाराव २४१, नयन सोमन्न २४२, नारन सूरन २४४, नृसिंह कवि २४५, नेल्लूरि वीर राघवय्या २४५, नोरि नरसिंह शास्त्री २४६, पानुगन्टि लक्ष्मी नरसिंह राव २४७, पिंगलि सूरन २४७, पिल्लमर्रि पिनवीर भद्रुडु २५१, पिल्लमर्रि हनुमन्तराव २५३, पुरुलूरि सोमराजु २५४, पुरुषोत्तम कवि २५५, पेदपाटि जग्गन्न २५५, पेनुमत्स गोपराजु २५६, पेनुमत्स वेन्कटाद्रि २५६, पैदिपाटि वेन्कट नृसिह २५६, पोडूरु भोगराजु २५७, पोतु कुच्चि सुब्बय्या २५८; प्रोलुगन्टि चेन्नय मन्त्रि २५८, बम्मेर पोतन २५९, पोतन और श्रीनाथ २६३, बलिजेपल्लि लक्ष्मीकान्तम् २६७, बालकवि सुब्बन्न २६७, भैरव कवि २६८, मंडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री २६९, मंत्रिप्रेगड सूर्यप्रकाश कवि २७०, मच्चा वेन्कट कवि २७०, मडिकि अनन्तय्य २७०, मडिकि सिंगन २७१, मरिंगंटि सिंगराचार्युलु २७३, मल्लन्ना २७३, माचिराजु वेन्कट कृष्ण मूर्ति २७४, मादय्य गारि मल्लन्न २७४, मुडुम्ब नृसिंहाचार्य २७५, मुद्दु पलनि २७६, मोचर्ल नन्नय्या २७९, रंगाजम्मा २८०, रघुनाथ नायकुडु २८१, रापाक लक्ष्मीपति २८३, रामय्य आन्ध्रकवि २८४, रामराजु रंगप्पराजु २८४, रायप्रोलु सुब्बाराव २८५, रायसमु वेन्कटपति २८७, रावूरि दोरस्वामि शर्मा (पद्मश्री) २८७, रावूरि संजीवराय कवि २८८, लिंगनमखि तिरुकामय्या २८९, वसवराजु अप्पाराव २९१, वाविलि कोलनु सुब्बराय २९२, विजयराघव नायक २९२, विश्वनाथ सत्यनारायण २९५, वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु ३००, वेंकटामात्य दिट्ट कवि ३०२, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ३०२, वेणुतुलं ओड्डेय्य कवि ३०२, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री ३०३, वेन्नेलकंटि सूरना ३०५, वेमना ३०५, वेमुलवाड भीमकवि ३०६, वेलगपूडि वेंगन्न ३०७, वेलिगन्दल नारय ३०८, वेलिदंड्ल वेंकटपति ३०८, शंकर कवि ३१०, शाहा महाराज (शाह भूपाल) ३११, शेषय्या ३१२, श्रीगिरि कवि ३१४, श्रीनाथुडु ३१४, श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री ३१८, संकुसाल नृसिंह कवि ३१८, सत्यवोलु भगवत् कवि ३१९,

सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायकुडु ३२१, सारंगु तम्मय्या ३२३, सिंहाद्रि अंकन्ना ३२४, सिंहाद्रि वेन्कटय्या ३२४, सिद्धराजु तिम्मराजु ३२५, सेट्टि लक्ष्मी नरसिंहम् ३२७, हरिभट्टु ३२७ ।

नेपाल में कृष्ण भक्ति का विकास : ३२९–३३२
डॉ० डिल्लीराम तिमसिना, भगवती प्रसाद सिंह

नेपाल के कृष्ण-भक्त : ३३३–३४२
इन्दिरस ३३३, गुणराज उपाध्याय ३३३, पतञ्जलि गजुर्याल ३३४, यदुनाथ पोख्र्याल ३३५, लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा ३३५, वसन्त शर्मा ३३६, विद्यारण्य केसरी अर्याल ३३७, शिखरनाथ सुवेदी ३३८, हीनव्याकरणी विद्यापति ३४०, होमनाथ उपाध्याय खतिवड़ा ३४० ।

पंजाब में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परा : ३४३–३५२
डॉ० शमीर सिंह

पंजाबी का कृष्ण-काव्य : स्वरूप और विशेषतायें : ३५३–३५४
डॉ० मनमोहन सहगल

पंजाब के कृष्ण भक्त : ३५५–४७०
अमीन ख्याल ३५५, अमीरदास ३५५, अवतारसिंह 'अरपन' ३५७, आनन्दराम ३५८, आलम ३५९, ईसरदास उदासी ३६२, उत्तमसिंह तेज ३६२, उमादास (भवानीदास) ३६५, कमालदास ३६६, कान्हसिंह बंगा ३६७, कालीदास गुजरांवालिया ३७०, किशोरीदास ३७३, कृष्णदास ३७३, कृष्णलाल ३७४, केसोदास (केशो-गुणी) ३७५, (राजा) खुशालचन्द (खुशालराय) ३७८, खुशीराम 'आरफ़' (लाला) ३७९, गंगाराम ३७९, गणेशसिंह बेदी ३८०, गुरु अर्जुनदेव ३८१, गुरु गोविन्दसिंह ३८१, गुरु तेगबहादुर ३८६, गुलाब ३८६, गुलाबसिंह ३८६, गुलाम हुसैन ३८८, गोविंददास ३८९, (पण्डित) घनैयालाल मौजी ३९०, (पण्डित) चक्रधर 'बेज़र' ३९१, चतरदास ३९३, छज्जू भगत ३९४, जनकदुलारी ३९५, जातिदास (जातिराम) ३९६, जी० मोहन फुर्ता ३९९, ज्ञानचन्द धवन ३९९, ज्ञानचंद सचदेवा ३९९, तेजभान ४००, तेजासिंह 'साबर' ४०२, दाना कवि ४०३, दिआलचन्द मिगलानी ४०४, दिआलसिंह ४०४, देवा ४०६, धनीराम चात्रिक ४०६, धन्नासिंह 'रंगीला' ४०८, नाराइिण सिंह ४११, नारायण स्वामी ४१२, निहाल ४१३, निहालसिंह ४१४, निहालसिंह 'कवीन्द्र' ४१५, पिआरासिंह 'निरछल' ४१६, फतेहचन्द ४१८, फतेहसिंह ४१८, फ़ीरोज़दीन 'शरफ़' ४१९, बग्गासिंह ४२१, बलदेव चन्द्र बेकल' ४२२, बावा बुधसिंह ४२३, बाबा रामदास ४२४, बिहारी ४२८, बुधसिंह ४२९, बुल्हेशाह ४३०, भगवान ४३१, भावनदास ४३१, भैयाराम ४३२, मखनलाल खत्री ४३४, मनहरिदास ४३४, मस्तराम ४३५, मिलखीराम 'मिलखी' ४३६, मूलसिंह ४३९, रघुवर प्रसाद ४४०, रणजीत सिंह ४४१, रत्नहरि ४४२, रसक रामगोपाल ४४३, राजा खुशहालराय ४४५, रामदास मिश्र ४४६, रामसिंह पंजाबी ४४७, लाला खुशीराम 'आरफ़' ४४९, शामदास 'आजिज़' ४५०, साधुजन/साधुराम ४५१, साहिबदास ४५३, साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' ४५५, सुदामा ४५८, सूरदास ४५८, सोढ़ी मिहिरबान ४५९, सोमनाथ ४६०, सौंधा ४६१, हकूमतजन (हकूमतदास, हकूमतराय) ४६३, हरिनाम ४६३, हरिराम ४६५, हरियाजी ४६५, हाफज़ बरखुरदार ४६६, हिम्मतसिंह सागर ४६८, हृदैराम भल्ला ४६९ ।

बंगाल में भागवत-धर्म : विकास के सोपान : ४७१–४८०
डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव

बंग-भूमि की कृष्ण-भक्ति परम्परा : ४९१-५०२
प्रो० सुकुमार सेन

गौड़ीय-भक्ति-दर्शन : ५०३-५२४
डा० दयानन्द श्रीवास्तव

बंगाल के कृष्ण-भक्त : ५२५-७२०

अद्वैताचार्य ५२५, अनन्ताचार्य ५२५, अनन्त पण्डित ५२८, अनन्तपुरी ५२८, अनन्त राय ५२९, अनन्त वर्मन (चोड़ गंगदेव) ५२९, अनिरुद्ध ५२९, अनुकूलचन्द्र चक्रवर्ती ५२९, अनुकूल चन्द्र ठाकुर ५२९, अनुपम वल्लभ ५३३, अपूर्व चरण (अद्वैतदास बाबाजी) ५३४, अभिराम गोपाल ५३५, अमोघपंडित ५३६, आनन्ददास (आनन्द चन्द्र) ५३७, ईशान (प्रथम) ५३८, ईशान (द्वितीय) ५३९, ईशान नागर ५३९, ईश्वरपुरी ५३९, उदयादित्य ५४१, उद्धवदास (प्रथम) ५४१, उद्धवदास (द्वितीय) ५४३, उद्धारन दत्त ५४३, कंसारिसेन ५४३, कनाई खुटिया ५४४, कवि वल्लभ ५४४, कवि शेखर राय ५४४, कानुदास (कानुरामदास) ५४५, कानु फकीर ५४६, कानु पंडित ५४७, काशीश्वर ब्रह्मचारी ५४७, किशोरदास (प्रथम ; ५४७, किशोरदास (द्वितीय) ५४७, किशोरीदास ५४८, कुबेर पंडित ५४८, कुमुदानन्द चक्रवर्ती ५४८, कुमुदानन्द ठाकुर ५४८, कृष्णकान्त ५४९, कृष्णदास कविराज ५४९. कृष्णदास दु:खी (श्यामानन्दपुरी) ५५१, कृष्णदास (सुवर्ण चित्रधारी) ५५२, केदारनाथ भक्तिविनोद ठाकुर ५५२, गंगादास पंडित ५५३, गंगानारायण चक्रवर्ती ५५३, गरुड़ पंडित ५५४, गिरधरदास (प्रथम) ५५४, गिरधरदास (द्वितीय) ५५४, गिरिधारीदास बाबा ५५५, गिरिधारीदास ५५५, गीतगोविन्द (गोविंदगीत) ५५७, गुनराज खाँ (मालाधर वसु) ५५८, गुरुदास ५५९, गोकुलदास ५६०, गोकुलानन्द ५६१, गोकुलचन्द्र (गोकुलानन्द) ५६२, गोपालदास (प्रथम) ५६३, गोपालदास (द्वितीय) ५६४, गोपालदास (तृतीय) ५६४, गोपालदास (चतुर्थ) ५६५, गोपालभट्ट ५६५, गोपीकान्त ५६३, गोपीकान्त वसु ५६७, गोपीनाथ सिंह ५६८, गोवर्धनदास ५६८, गोविंद आचार्य ५७०, गोविंददास कविराज ५७०, गोविंददास चक्रवर्ती ५७५, गोस्वामीदास ५७६, गौरकिशोर शिरोमणि ५७६, गौरगोविन्ददास ५७८, गौरचरणदास ५७९, गौरदास ५८०, गौर मुन्दर ५८१, गौरांग (चैतन्यमहाप्रभु) ५८२, गौरांगदास (प्रथम) ५८३, गौरांगदास (द्वितीय) ५८४, गौरांगदास (तृतीय) ५८४, गौरांगदास (चतुर्थ) ५८४, गौरांगदास (पंचम) ५८४, (नर्तक गोपाल, रामचन्द्र) गौरांगदास ५८५, (नव) गौरांगदास ५८५, गौरीदास पंडित ५८५, ज्ञानदास ५८६. घनश्यामदास कविराज ५८७, घनश्यामदास चक्रवर्ती ५८९, चण्डी दास ५९०, चण्डीदास कविराज ५९४, चण्डीदास (विच्छिन्न पदकर्त्ता वैष्णव कवि) ५९५, चन्द्रशेखर आचार्य ५९५, चन्द्रशेखरदास ५९६, चम्पति राय ५९७, जगदानन्द ठाकुर ५९८, जगदानन्द पण्डित ६००, जगदीश पण्डित ६००, जगन्नाथदास (प्रथम) ६०१, जगन्नाथदास (द्वितीय) ६०२, जयकृष्णदास ६०२. जानकीदास (जानकीरमनदास) ६०४, जानकीवल्लभ चौधरी ६०४, जाह्नवी देवी ६०५, जीवगोस्वामी ६०५, तुलसीदास ६०६, दीनदास (दीनहीनदास) ६०६, देवकीनन्दनदास ६०७, धरणी ६०८, नटवर ६०९, नयनानन्द ६१०, नयनानन्द कविराज ६११, नयनानन्द ठाकुर ६११, नयनानन्द देव ६११, नरहरि ठाकुर ६१२, नरहरि सरकार ६१४, नरोत्तमदास (ठाकुर) ६१५, नासिर मामूद (महमूद) ६१८, नित्यानन्ददास ६१९, नित्यानन्द प्रभु ६१९, नीलाम्बर ६२१,

नीलाम्बर चक्रवर्ती ६२२, परमानन्ददास (कवि कर्णपूर) ६२२, परमेश्वरदास ६२४, परशुराम ६२५, पागल हरनाथ ६२५, पुण्डरीक विद्यानिधि ६२६, पुरुषोत्तमदास कविराज ६२६, प्रसाददास ६२७, प्रेमानन्ददास (प्रेमदास) ६२८, बलदेवदास ६३०, बलरामदास ६३०, बलरामदास कविराज ६३०, बलरामदास ठाकुर ६३२, बलरामदास दीन ६३४, बलराम वसु ६३४, बल्लभदास (भक्तिमूर्ति) ६३४, बल्लभदास मजुमदार ६३५, बिन्दुदास ६३५, बिहारीदास ६३६, वीरहाम्बीर (चैतन्यदास) ६३६, भक्ति वेदान्त स्वामी ६३७, भवानन्द ६३९, भागवताचार्य ६४०, भुवनदास ६४०, भूपति ६४१, भूपेन्द्रनाथ सान्याल ६४२, मथुरादास ६४३, मदनदास (प्रथम) ६४४, मदनदास (द्वितीय, तृतीय) ६४४. मधुसूदन ६४५, मनोहरदास (प्रथम) ६४६, मनोहरदास (द्वितीय) ६४६, मनोहरदास (तृतीय) ६४७, मनोहरदास (चतुर्थ) ६४७, माधव घोष ६४८, माधवदास द्विज ६४९, माधवदास (माधवाचार्य) ६४९, माधवीदास ६५०, माधवेन्द्रपुरी ६५१, मुरारी गुप्त ६५२, मोहनदास ६५३, यदुनन्दनदास ६५४, यदुनन्दनदास (चक्रवर्ती) ६५५. यशोराज खान ६५६, रघुनाथ दास (प्रथम) ६५६, रघुनाथदास (द्वितीय) ६५८, रघुनाथदास भट्ट ६५८, रसिकदास (रसिकानन्ददास) ६५९, राघवेन्द्रराय ६५९, राधादास ६६०, राधामोहन ठाकुर ६६१, राधारमण घोष ६६१, राधा बल्लभ चक्रवर्ती ६६३, राधाबल्लभदास (मंडल) ६६४, राधाबल्लभदास ठाकुर ६६४, राधाबल्लभदास मथुरादास ६६५, रामकृष्णदास ६६५, रामचन्द्र कविराज ६६५, रामचन्द्र गोस्वामी (रामाइ) ६६६, रामानन्द बसु ६६७, राय रामानन्द ६६९, राय वसंत ६७०, रायशेखर ६७१, रूप गोस्वामी ६७२, लक्ष्मीकान्तदास ६७३, लाउड़िया कृष्णदास ६७४, लोकनाथ गोस्वामी ६७५, लोकनाथ दास ६७७, लोचनदास ६७७, लोचनदास ६८१, वंशीदास ६८२, वंशीवदनदास ६८२, वल्लभदास ६८३, वासुदेव घोष ६८४, विजयानन्द दास ६८४, विनोदसिंह ६८५, विष्णुविचित्र ६८५, वीरचन्द्र ६८६, वृन्दावनदास ६८७, व्रजकिशोर ६८९, व्रजानन्द ६९०, शंकरदास पण्डित ६९०, शंकरदास वसु ६९१, शंकरदास विश्वास ६९१, शंकरदास घोष ६९१, शचीनन्ददास ६९१, शाह अकबर ६९२, शिवानन्द आचार्य ६९२, शिवरामदास ६९३, शिवानन्द सेन ६९४, शिशिरकुमार घोष ६९४, श्यामदास ६९६, श्यामदास आचार्य ६९६, श्यामदास (चक्रवर्ती) ६९७, श्यामदास (दुःखी) ६९८, श्याम मल्लिक ६९८, श्यामानन्ददास ६९९, श्रीकृष्णदास बाबा (रनवारी वाले) ७०१, श्रीनिवास आचार्य ७०२, श्रीपाद नवलकिशोर गोस्वामी/लोचनानन्द गोस्वामी ७०६, संतदास ७०६, सनातन गोस्वामी ७०७, सालवेग ७०८, सुन्दरदास ७०९, सुबलचन्द्र ठाकुर ७०९, सैयद मुर्तजा ७१०, स्वरूप दामोदर ७१०, स्वरूपदास ७११, स्वर्णलली ७११, हरिचरणदास ७१३, हरिदास (बड़े छोटे) ७१३, हरिदास ठाकुर ७१४, हरिदास द्विज ७१४, हरिदास गोस्वामी (हरिबाबा) ७१५, हरिदास ७१६, हरिमोहन शिरोमणि ७१७, हरिरामदास ७१८, हरिवल्लभ ७१९, हरिसुन्दर भौमिक ७१९।

परिशिष्ट :

बंगाल के कृष्ण-तीर्थ ७२१–७३६
बंगाल के प्रमुख वैष्णव केन्द्र एवं मन्दिर ७३७–७३८
बंगाल का वैष्णव साहित्य ७३९–७४४
नामानुक्रमणिका ७४५–७८४
ग्रन्थानुक्रमणिका ७८५–८०४

संकेतिका

ह० दु०	डा० हरिहर दुरै स्वामी
सा० प्र०	प्रो० साईं प्रसाद
रा० रा०	डा० कर्ण राजशेषगिरि राव
बा० रे०	श्री बालशौरि रेड्डी
डि० ति०	डिल्लीराम तिमसिना
भ० प्र० सिं०	भगवती प्रसाद सिंह
श० सिं०	डा० शमीर सिंह
म० मो० स०	डा० मनमोहन सहगल
रा० प्र०	डा० रामप्रकाश गुप्त
द० श्री०	डा० दयानंद श्रीवास्तव
न० चं० बं०	डा० नरेशचन्द्र बंसल
श्र० कु० गो०	डा० श्रवण कुमार गोस्वामी
प्रे० ना० श्री०	डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव
हौ० प्र० सिं०	डा० हौसिला प्रसाद सिंह
त० ना०	डा० तपेश्वर नाथ
स० गु०	डा० सदानंद गुप्त
मु० अ०	डा० मुश्ताक़ अली

●

सहयोगी लेखक

तमिल

१. डा० हरिहरदुरै स्वामी—पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वीं० ओ० सी० कालेज, तूतीकोरन (तमिलनाडु)
२. डा० (कुमारी) के० ए० जमुना, ३८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली

तेलुगु

१. प्रो० साईं प्रसाद—अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पचयप्पा कालेज, मद्रास—७०००७०
२. डा० कर्ण राजशेषगिरि राव—आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेयर—५३०००३ (आन्ध्र प्रदेश)
३. श्री बालशौरि रेड्डी—वी० ओ० सी० कालोनी, मद्रास—२६

नेपाली

१. डा० डिल्लीराम तिमसिना—नेपाली विभाग, काशी हि० वि० वि०, वाराणसी-५ (उत्तर प्रदेश)
२. डा० भगवती प्रसाद सिंह—संपादक

पंजाबी

१. डा० शमीर सिंह—प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, खालसा कालेज, अमृतसर (पंजाब)
२. डा० मनमोहन सहगल—आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)
३. डा० राम प्रकाश गुप्त—के० डी० ५६/बी, अशोकविहार, दिल्ली ११००५२

बंगला

१. प्रो० सुकुमारसेन—नेशनल प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता (पश्चिमी बंगाल)
२. डा० दयानन्द श्रीवास्तव—आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता (पश्चिमी बंगाल)
३. डा० नरेशचन्द्र बंसल—पूर्व निदेशक, वृन्दावन शोधसंस्थान, वृन्दावन (उत्तर प्रदेश)
४. डा० तपेश्वरनाथ—प्रोफेसर हिन्दी विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)
५. डा० हौसिला प्रसाद सिंह—रीडर हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (मध्यप्रदेश)
६. डा० श्रवणकुमार गोस्वामी—अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डोरण्डा कालेज, राँची ८३४००२ (बिहार)
७. डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव—प्राध्यापक, प्राच्यदर्शन महाविद्यालय, वृन्दावन (उत्तर प्रदेश)
८. डा० सदानन्द गुप्त—प्राध्यापक हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)
९. डा० मुश्ताक़अली—संपादकीय विभाग, 'माया' कार्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

●

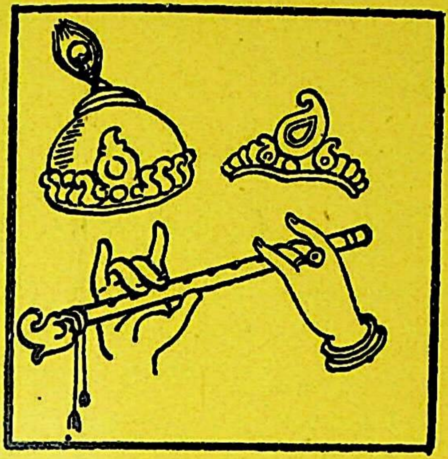

तमिल साहित्य में कृष्णभक्ति

—डा० हरिहरदुरै स्वामी

तमिलनाडु की कृष्णभक्ति परम्परा

—डा० (कु०) के० ए० जमुना

तमिलनाडु के कृष्णभक्त

—डा० हरिहरदुरै स्वामी

तमिलनाड के प्रसिद्ध तीर्थ
तथा
कृष्ण भक्त-स्थल

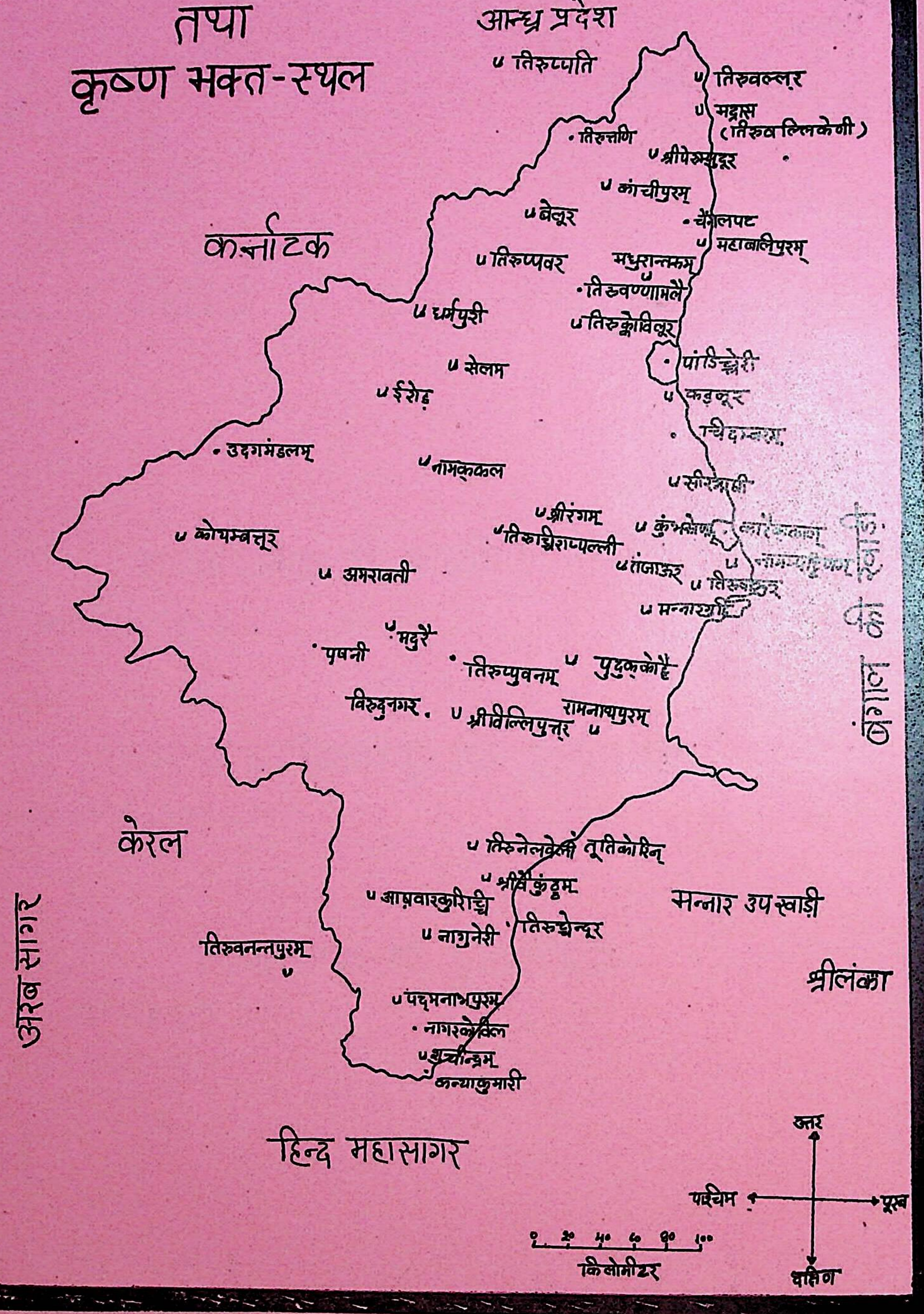
आन्ध्र प्रदेश
तिरुप्पति
तिरुवल्लूर
मद्रास (तिरुवल्लिकेणी)
तिरुत्तणि
श्रीपेरुम्बुदूर
कांचीपुरम्
वेलूर
चैंगलपट
महाबालिपुरम्
कर्नाटक
तिरुप्पवर
मधुरान्तकम्
तिरुवण्णामलै
धर्मपुरी
तिरुक्कोविलूर
पांडिच्चेरी
सेलम
ईरोड
कडलूर
चिदम्बरम्
उदगमंडलम्
नामक्कल
सीरकाली
श्रीरंगम्
कुंभकोणम्
कारैक्काल
कोयम्बत्तूर
तिरुच्चिराप्पल्ली
तंजाऊर
नागपट्टिणम्
तिरुवारूर
अमरावती
मन्नारगुडि
मदुरै
पषनी
तिरुप्पुवनम्
पुदुक्कोट्टै
विरुदुनगर
श्रीविल्लिपुत्तूर
रामनाथपुरम्
बंगाल की खाड़ी
केरल
तिरुनेलवेली
तूतिकोरिन्
श्रीवैकुंठम्
आषवारकुरिच्चि
तिरुच्चेन्दूर
मन्नार उपखाड़ी
नागुनेरी
अरब सागर
तिरुवनन्तपुरम्
श्रीलंका
पद्मनाभपुरम्
नागरकोविल
शुचीन्द्रम्
कन्याकुमारी
हिन्द महासागर
उत्तर
पश्चिम
पूरब
दक्षिण
0 20 40 60 80 100
किलोमीटर

तमिल-साहित्य में कृष्ण-भक्ति

तमिल का कृष्ण-भक्ति-साहित्य तमिल भाषा की भाँति ही अत्यन्त प्राचीन है। दो हज़ार वर्षों के पूर्व से लेकर आज तक के तमिल-साहित्य में कृष्ण-भक्ति अखण्डरूपेण व्याप्त है। सुविधा की दृष्टि से हम इस दीर्घ काल को तीन खण्डों में विभाजित कर सकते हैं—प्राचीन काल, भक्ति-काल और आधुनिक काल। अगस्त्य महर्षि विरचित 'अगत्तियम' ही तमिल का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है, किन्तु वह अप्राप्य है। पौराणिक कथाओं के अनुसार शिव-पार्वती के परिणय के समय अगस्त्य ऋषि हिमाचल से प्रस्थान करके विन्ध्यपर्वत को पार कर दक्षिण में आये थे। उनके आगमन को रोकने के लिए विन्ध्यपर्वत ऊँचा उठने लगा तो महर्षि ने उसे दबाकर पार किया और आदेश दिया कि जब तक मैं लौट न आऊँ, तब तक तुम ऐसे ही दबे रहो। ऋषिवर दक्षिण से नहीं लौटे और तमिल प्रदेश के पोदियपर्वत, जो कुट्रालम् जल-प्रपातों के निकट है, पर ठहर गये। उन्हींके द्वारा तमिल-भाषा का उद्भव हुआ और उसका विकास कावेरी नदी के तट पर होता रहा। कावेरी नदी गणेशजी की कृपा से महर्षि के ही कमण्डल से प्रवाहित हुई। ऐसी अति प्राचीन, किन्तु नित्य नवीन तमिल-भाषा का प्राचीनतम प्राप्य ग्रन्थ 'तोलिकाप्पियम' है। उसके सर्जक हैं—अगस्त्य ऋषि के शिष्य तोलकाप्पियर्। उक्त 'तोलिकाप्पियम' में ही सर्वप्रथम कृष्ण-भक्ति का उल्लेख मिलता है। यह पांडिय राजाओं द्वारा प्रवर्तित द्वितीय-संघकाल की एकमात्र उपलब्ध कृति है। तमिल में तोलि का अर्थ है पुराना अथवा 'प्राचीन'। काप्पियम का अर्थ है 'काव्य'। काप्पियर् का अर्थ है 'काव्यकार'। इसलिए यह भी विदित होता है कि तोलकाप्पियर् ग्रन्थकर्त्ता का वास्तविक नाम नहीं है, ग्रन्थ की प्राचीनता के कारण रचनाकार को यह नाम दे दिया गया है।

प्राचीनकाल के काव्यों में कृष्ण-भक्ति

वन-प्रदेश के देवता विष्णु : साहित्यिक रचनाओं के अनुसार तमिल भूमि प्राकृतिक स्थिति के आधार पर पाँच भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग के अलग-अलग अधिष्ठाता देवता माने गये हैं। वे पाँच भाग इस प्रकार हैं—(१) कुरिंजि—पर्वतीय प्रदेश (२) मुल्लै—वन-प्रदेश (३) मलदम—कृषि-योग्य समतल (४) नेय्दल्—समुद्र-तटीय प्रदेश तथा (५) पालै—रेगिस्तान। पहले के ग्रन्थों में केवल प्रथम चार विभाग हैं; परवर्ती ग्रन्थों में ही पालै अथवा रेगिस्तान जोड़ा गया है। इन प्रदेशों के देवता क्रमश (१) स्कन्ददेव (२) महाविष्णु (३) इन्द्र, (४) वरुण और (५) दुर्गा हैं। तमिल प्रदेश के प्रधान देवता स्कन्ददेव हैं जो शिवकुमार, पार्वती-नन्दन, मायोन-मुरुगन अथवा महाविष्णु के भानजे, मुरुगन अथवा सुन्दर, सुब्रह्मण्य, कार्त्तिकेय आदि विविध नामों से पूजे जाते हैं। वन-प्रदेश के वर्णन में महाविष्णु के लिए जिस 'मायोन' शब्द का प्रयोग किया गया है, वह कृष्ण का ही पर्यायवाची है, क्योंकि कृष्ण के साथ ही उनके अग्रज बलराम का भी उल्लेख है। तमिल प्रदेश में विष्णु और कृष्ण अभिन्न हैं। कृष्ण-भक्ति का प्रधान केन्द्र है—श्रीरंगम् का श्रीरंगनाथ मन्दिर। श्रीरंगम् के रंगनाथ, मदुरै के अषगर, मद्रास तथा तिरुनल्लिक्केणी के पार्थसारथी आदि सुप्रसिद्ध विष्णु-स्थलों के देवता श्रीकृष्ण ही हैं।

तोलिकाप्पियम में कृष्ण

तोलिकाप्पियम के एक सूत्र में भगवान् के शिशुरूप तथा लीलाधर होने का उल्लेख होने से तोलकाप्पियर् को कृष्ण-भक्त ही माना जाता है।

मायोन् मेय मन्पेरुम् शिरप्पिन्
तावा विषुप्पुगष् पूवै निरेयुम् ।

"मायावी भगवान् से लगे हुए चिरस्थायी यशप्राप्त पुष्पसदृश आनन्दानुभूति" जैसे वर्णन में उनकी कृष्ण-भक्ति स्पष्ट दीखती है। इसके अतिरिक्त तोलिकाप्पियम में पावै पाट्टु (कन्या-गीत) शीर्षक से कृष्ण के ध्यान में व्रत रखनेवाली कन्याओं का भी उल्लेख है। यह व्रत आगे चलकर भक्त आण्डाळ द्वारा प्रचारित हुआ। आधुनिक काल में भी इस व्रत की व्यापक मान्यता है।

संघ-काल के अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में कृष्ण

तोलिकाप्पियम के बाद परिपाड़ल्, कलित्तोगै, मदुरैक्कांचि, अहम् गीत, पुरम् गीत, मुल्लैप्पाट्टु, मुरुगाट्रुप्पडै, नट्रिणै आदि संघकालीन ग्रन्थों में कृष्ण का नाम कई बार आया है। देवों को अमृतदान, सर्प से मुक्ति, राक्षस-वध, बछड़ों की सृष्टि, केशी का वध, पर्वत-धारण, बलराम का अनुज बनना, कंस के दरबार में मुष्टि-द्वन्द्व में विजय आदि भागवत की कई घटनाएँ प्राचीन संघ-साहित्य में प्राप्त होती हैं। परिपाड़ल् में मदुरै के पास स्थित तिरमालिरुंचीलै का वर्णन है। उसकी कुछ कविताओं में बलराम और कृष्ण की स्तुति मिलती है। पावै नोन्बु (कन्या-व्रत) का परिचय भी 'अंबावाडल' में प्राप्त होता है।

भागवत-धर्म का दक्षिण में प्रचार ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में सात्वतों द्वारा हुआ। श्रीमद्-भागवत की रचना इनकी प्रेरणा का ही परिणाम था, किन्तु कालान्तर में बौद्ध तथा जैन-धर्मों के प्रसार से इनका प्रभाव क्षीण हो गया। फिर भी उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में भागवत का स्पष्ट प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। जैन मुनि इलंगो वडिगल कृत 'शिलप्पदिकारम' तथा बौद्ध विद्वान् चात्तनार विरचित 'मणिमेखलै' में वर्णित कृष्ण-लीला के प्रसंग उपर्युक्त धारणा की पुष्टि करते हैं।

तिरुक्कुरल में कृष्ण

तृतीय संघ-काल की विशिष्ट कृति 'तिरुक्कुरल' तमिल का विशुद्ध नीति-ग्रन्थ है। उसमें किसी देवी-देवता का नाम नहीं आता। फिर भी प्रथम अध्याय—ईश्वर-वन्दना— में 'मलरमिसै एगिनान् माणडि सेन्दार्' (हृदय-पद्मगत ईश के पाद-पद्म प्राप्त) तथा 'अरवाषि अन्दणन् ताळ् सेन्दार्क्कु' (धर्मसिन्धु करुणेश के शरणागत) आदि विशिष्ट प्रयोग तमिलभाषी क्षेत्र में महाविष्णु के लिए ही होते हैं। इसके अतिरिक्त कुरल का काम-काण्ड राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक संसर्ग का ही रूपक है। तिरुक्कुरल के इस काण्ड में विशुद्ध काव्य-सौन्दर्य की जो छटा है, वह समस्त विश्व-साहित्य में दुर्लभ है। विद्वानों और शास्त्रज्ञों का मत है कि इस काण्ड में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को अन्योक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है, जिसका अन्तिम ध्येय मोक्ष-प्राप्ति है। राधा और कृष्ण के संसर्ग में जैसे शरीरजन्य वासना नहीं है, वैसे ही कुरल में वर्णित प्रेम में कहीं भी शारीरिक उद्वेग नहीं है। उसमें प्रतिपादित भाव उदात्त एवं विशुद्ध हैं तथा भक्ति-मार्ग के माधुर्य भाव से मिलते-जुलते हैं। यही भाव कबीर, मीरा आदि अन्य सन्त कवियों की कृतियों में मिलते हैं।

कुरिंजि-गीतों में कृष्ण

कुरिंजि-गीतों के रचयिता कपिलर् हैं। आर्यराज बृहदत्तन् को तमिल सिखाने के सन्दर्भ में ये गीत रचे गये। इन गीतों का मुख्य विषय नायक-नायिका का पूर्वराग और गुप्त प्रेम है। नायक-नायिका का मिलन, उनमें प्रेमोदय, प्रेम का क्रमिक विकास, नायिका के पक्ष में बड़ों का विरोध, विरह-ताप और अन्त में

विवाह—इन सबके वर्णन में राधा-कृष्ण का प्रेमाख्यान ही वर्णित है। यद्यपि राधा और कृष्ण का विवाह पौराणिक कथाओं में नहीं है तो भी तमिलनाडु में उन्हें शास्त्रीय विधि से विवाहित दम्पति के रूप में ही देखा जाता है तथा राधा-कल्याणम् का उत्सव भी कृष्ण-मन्दिरों में भव्यता के साथ मनाया जाता है। तमिल में कल्याणम् का अर्थ है 'विवाह'। 'कुरिंजि-गीतों' में नायक-नायिका का विवाह कवि की हार्दिक इच्छा और मनोभाव का परिचायक है। इन गीतों के प्रधान पात्र गोचारक हैं। ग्वाल-बालकों के साथ नायक का मुरलीवादन और वाद्यारम्भ के साथ ही कुमुद का पुष्पित होना आदि कृष्ण-चरित्र से मिलते-जुलते प्रसंग हैं।

जीवक चिन्तामणि में कृष्ण

तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में राधा का उल्लेख बहुधा नप्पिन्ना देवी के नाम से हुआ है। भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण की देवियाँ अनेक हैं। उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रवन्दा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा मुख्य मानी जाती हैं। इन आठों में नप्पिन्ना या राधा का नाम नहीं है। किन्तु तमिल-भाषी प्रदेश में संघ-काल से ही देवी नप्पिन्ना का नाम श्रीकृष्ण के साथ जुड़ा हुआ है। वह 'उपकेशी' नाम से भी वर्णित है। टीकाकार नेमिनाथ उपकेशी का अर्थ नप्पिन्ना ही लेते हैं। काव्य-वर्णन के अनुसार यह नप्पिन्ना सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। यमुना नदी के तट पर इसने श्रीकृष्ण को अपने अपूर्व सौन्दर्य से मोहित किया और उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। विद्वानों की राय है कि नप्पिन्ना राधा का ही पर्यायवाची है। 'जीवक चिन्तामणि' में कृष्ण और नप्पिन्ना को भिन्न-भिन्न कुल का माना गया है। परवर्ती आलवारों के गीतों में नप्पिन्ना का अधिकाधिक परिचय मिलता है।

अरुळाळदासर के भागवत में कृष्ण और राधा

नेल्लीनगर अरुळाळदासर नाम से प्रसिद्ध वरदराज अय्यंगार ने अपने तमिल भागवत में 'नप्पिन्ना पटल' नाम से एक विशेष अध्याय लिखा है। उनका विचार है कि वह यशोदा के भाई कुम्भक की पुत्री है। उन्होंने अपने काव्य में श्रीकृष्ण और नप्पिन्ना के विवाह का वर्णन किया है। कुम्भक मिथिला नगर का एक ग्वाल राजा था। 'नीलादेवी' के अंश के रूप में उसके यहाँ नप्पिन्ना का जन्म हुआ। कुम्भक की पशुशाला में सात प्रबल साँड थे। उनको शान्त करना या वश में करना किसीसे सम्भव नहीं था। वे गोशाला की गायों और अन्य साँडों को मारा करते थे और जनता में भी आतंक मचा रखा था। लोगों का विचार था कि वे 'कालनेमि' नामक राक्षस के पुत्र थे और शापवश साँडों के रूप में अवतरित हुए थे। कुम्भक ने उनको मार डालने के लिए वीरों को भेजा। किन्तु वे साँडों से पराजित और घायल होकर लौट आये। तब कुम्भक ने घोषित किया कि जो वीर उन साँडों को मार गिरायेगा वे उससे अपनी पुत्री 'नप्पिन्ना' का विवाह कर देंगे। यह घोषणा सुनकर श्रीकृष्ण अपने अग्रज बलराम के साथ गये और कुम्भक की इच्छा के अनुसार उन साँडों से लड़कर उन्हें मार डाला। राजा ने अपने वचनानुसार 'नप्पिन्ना' का विवाह श्रीकृष्ण से कर दिया। नप्पिन्ना तमिल कविताओं में 'पिन्नै' भी कही जाती है। 'न' विशेषतासूचक अक्षर है। पिन्नै को पिन्ना भी कहते हैं। तमिल के प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ शिलप्पधिकारम् में कृष्ण, पिन्ना और बलराम के साथ गोपियों के नृत्य का वर्णन है।

चेव्वै चूडुवार के भागवत में कृष्ण

चेव्वै चूडुवार के भागवत में गोपी-वस्त्रापहरण की घटना का मधुर वर्णन है और 'शिलप्पधिकारम्' में भी इस लीला का उल्लेख है। चेव्वै चूडुवार का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गोपिकाएँ अपने वस्त्रों को उतारकर स्नानानन्द में मग्न हो रही थीं। श्रीकृष्ण चुपके से आकर वस्त्रों को उठा ले गये और कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये। तभी उनके अग्रज बलराम उस ओर आ गये तो श्रीकृष्ण दुविधा में पड़ गये। वे नहीं चाहते

थे कि उनके इस नटखटपन का पता भाई को लग जाय। लेकिन उन वस्त्रों को गोपियों के पास सौंपकर पहनवाने के लिए समय नहीं था। अतः कृष्ण ने वृक्ष की शाखाओं को ऐसा झुकाकर पकड़ लिया कि स्नानलीन गोपिकाओं पर बलराम की दृष्टि न पड़े। जब बलराम दृष्टि-पथ से ओझल हो गये तभी कृष्ण ने वृक्ष की शाखाओं को फिर से ऊपर किया।

शिलप्पधिकारम् में कृष्ण

शिलप्पधिकारम् में कोवलन् अपनी पत्नी कण्णकी को मदुरै के पास एक ग्वालिन के घर में छोड़कर नूपुर बेचने के लिए मदुरै नगर में जाता है। तब उस घर में ग्वालिनें बालकृष्ण के जीवन को नृत्यरूपक के रूप में खेलती हैं, जो तमिल-साहित्य में 'आय्च्चियर कुरवै' नाम से प्रसिद्ध है। इस कुरवै-नृत्य में विष्णु के रामावतार और वामनावतार के क्रियाकलापों की स्तुति है। परन्तु ग्वालिनों का नृत्य होने के कारण श्रीकृष्ण-लीलाओं का वर्णन और प्रशंसा अपेक्षाकृत अधिक है। 'शिलप्पधिकारम्' के रचयिता इलंगोवड़िगळ—स्वामी इळंगो—जैन मुनि थे। अतः कृष्ण-भक्तों की सूची में उनका नाम नहीं है। किन्तु कृष्ण-चरित से उनका प्रभावित होना प्रमाणित है। उक्त 'शिलप्पधिकारम्' के कुरवै-नृत्य का एक पद यहाँ दे रहे हैं, जिससे स्वामी इळंगो के कृष्ण-प्रेम का परिचय मिलता है :

अरु पोरुळ इवन् एन्ड्रे अमरर् गणम् तोषुदेत्त
उरु पशि ओन्ड्रु इन्ड्रिये उलगड़ैय उण्डनैये :
उण्डवाय्, कळविनाल् उरि वेण्णेय उण्डवाय् !
वण्तुषाय् मालैयाय् ! मायमो मरुट्कैत्ने !

"हे तुलसीमालाधारी कृष्ण, तुम्हें परमतत्त्व मानकर अमरगण प्रशंसा और पूजा करते हैं। तुमने भूख के बिना ही सारे संसार को निगल लिया। उससे तृप्त न होकर चोरी-चोरी से मक्खन भी उठाकर खा लेते हो? ऐसे मक्खनपुते मुँह में विश्व को दर्शाकर तुम कैसी-कैसी माया करते हो?"

उसमें पाण्डवों के पक्ष में दूत बनकर कौरव-सभा में जाने का भी हृदयस्पर्शी वर्णन करते हुए कहा गया है कि अपने मित्रों और भक्तों के लिए पैदल चलनेवाले सौलभ्ययुक्त भगवान् की स्तुति न करनेवाली जिह्वा क्या जिह्वा है? पूरे काव्य 'शिलप्पधिकारम्' के प्रसंग से अलग करके कुरवै-नृत्य-मात्र को देखनेवाले इंळगोस्वामी को कृष्ण-भक्त ही माना जायगा।

भक्ति-काल (आलवारों का युग)

पाँचवीं तथा छठी शताब्दी ई० में अनीश्वरवादी बौद्ध तथा जैन धर्मों का, उनके धर्माचार्यों के चारित्रिक आदर्शों के पतन के कारण आकर्षण समाप्त हो गया। फलतः द्रविड़ जनमानस उनके घेरे से निकलकर पुनः वेद-प्रतिपादित प्राचीन धर्म की ओर उन्मुख हुआ। युग की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संयोगवश इसी समय शैव नायनार भक्तों तथा वैष्णव-भाव-सिद्ध आलवारों का प्रादुर्भाव हुआ।

आलवारों के आविर्भाव के अनन्तर वैष्णव-धर्म के व्यापक और गम्भीर प्रभाव से प्राचीनकाल से प्रवाहित कृष्ण-भक्ति-धारा वेग से प्रवाहित हुई। श्रीरंगम् का वैष्णवाचार्यपीठ आळवन्दार के बाद श्री रामानुज स्वामी से शोभित होने लगा तो वैष्णव-धर्म का तेज और प्रखर हो उठा। आळवन्दार स्वयं उदार थे किन्तु वे जाति-सीमा को लाँघ नहीं सके थे। तिरुकोट्टियूर नंबी

से दीक्षा ग्रहण करके रामानुज ने ऊँचे गोपुर पर चढ़कर महामन्त्र को उच्चस्वर में घोषित किया तो गुरु ने उनसे नियम-भंग का कारण पूछा। रामानुज ने कहा—"धर्म-तत्त्व को स्वयं गुप्त रख लूँ तो मुझ एक को ही मोक्ष मिलेगा। अब सबको सुना देने से केवल मुझ एक को नरक मिलेगा और सैकड़ों को मोक्ष मिलेगा। सबके कल्याण के लिए मुझ एक का नरक जाना श्रेयस्कर है।" आचार्य नंबी इस उत्तर से प्रभावित हुए। यही वैष्णव-धर्म के लोकप्रियता की ओर अग्रसर होने का प्रथम चरण है। रामानुज की यह नीति परमात्म-दर्शन के नाम से गृहीत हो गयी।

इसी काल में शैव आचार्यों और भक्तों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। शिव-भक्त नायनारों ने भी ऊँच-नीच की भावना छोड़कर जातिभेद के बिना भक्त मात्र को बन्धु माना। यद्यपि शैव और वैष्णव-धर्मों की होड़ की घटनाएँ यत्र-तत्र दीखती हैं तो भी परस्पर श्रद्धाभाव जमने लगा था। तमिल प्रदेश में शिव-मन्दिर और विष्णु-मन्दिर पास-पास निर्मित होने लगे तथा शिव-मन्दिर के अन्दर ही विष्णु-मूर्ति की भी स्थापना हुई। दोनों सम्प्रदायों में अस्पृश्य कहलानेवाले भी पूजनीय भक्तों के रूप में स्वीकृत हुए। भक्ति के प्रभाव से साहित्य सम्पन्न हुआ।

तमिल के वैष्णव-भक्त कवि 'आलवार' नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका काल सामान्यतया पाँचवीं शताब्दी और नवीं शताब्दी के बीच का माना जाता है। आलवार शब्द का अर्थ है 'मग्न रहनेवाले'। इस अर्थ में यह शब्द किसी भी ऐसे सन्त महात्मा के लिए प्रयुक्त हो सकता है, जिसने आध्यात्मिक ज्ञानरूपी सागर में गोता लगाया हो। आलवार शब्द का दूसरा अर्थ है 'शासन करनेवाला'। इसलिए आलवार शब्द से आशय उस व्यक्ति से है जो भगवद्-भक्ति और भगवद्-गुणों में मग्न रहने के कारण भगवान् पर प्रेमपूर्ण अधिकार रखता हो। आज आलवार के नाम से वे ही बारह वैष्णव-भक्त प्रसिद्ध हैं जिनके पदों का संकलन श्री नाथमुनि ने नवीं शती के अन्त में 'दिव्यप्रबन्धम्' के नाम से किया था। 'दिव्यप्रबन्धम्' में विष्णु के सभी अवतारों का गुणगान होने पर भी उसका अधिकांश भाग कृष्ण-लीला के प्रकरणों से भरपूर है।

बारहों आलवारों के कुल गीतों की संख्या चार हजार से कुछ अधिक है। उन गीतों को 'पाशुरम्' कहते हैं। दैविक भक्ति से ओतप्रोत होने के कारण उनको नालायिर अर्थात् 'चार सहस्र दिव्यप्रबन्धम्' कहा जाता है। प्रथम तीन आलवार के नाम पेयाषवार्, पोय्गैयाषवार् और भूत्ताषवार हैं। तीनों की भेट एक ही रात में तिरुक्कोविलूर नामक पुण्य स्थल में हुई थी। वहाँ के मन्दिर में भगवान् तिरु विक्रमावतार् के रूप में दर्शित हैं। बरसाती रात में जब तीनों भक्त एक छोटे-से घर के बरामदे में परस्पर सटे हुए खड़े रहे तब उनके बीच में किसी चौथे व्यक्ति के घुस आने का अनुभव हुआ। थोड़ी ही देर में तीनों ने देखा कि स्वयं भगवान् शंख-चक्र-गदायुक्त होकर अपनी देवियों के साथ गरुड़ारूढ़ होकर दर्शन दे रहे हैं। भगवान् के इस अद्भुत सौलभ्यपूर्ण दर्शन से गद्गद होकर तीनों ने एक-एक सौ गीत गाये। ये तीन सौ गीत 'अन्दादि' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें यों तो भगवद्गुण, भक्ति की महिमा, शरणागति-तत्त्व आदि के वर्णन के साथ ही सभी अवतारों की कथा कही गयी है, किन्तु कृष्ण-स्तुति को प्रधानता दी गयी है।

पेरियाषवार के गीतों की संख्या ४८३ है। कृष्ण को शिशु और बालक के रूप में उन्होंने अद्भुत अनुभूति के साथ चित्रित किया है। उन गीतों को पढ़ने पर पाठक सुध-बुध खोकर ऐसा अनुभव

करता है मानो बालकृष्ण स्वयं आकर उसकी पीठ से लगकर गले लग रहे हों। उनके गीतों को पेरियाषवार 'तिरुमोषि' कहते हैं।

पेरियाषवार की पोषिता पुत्री भक्त आण्डाळ के गीतों की संख्या कुल १७३ है जिनमें ३० गीत 'तिरुप्पावै' नाम से तथा शेष १४३ 'नाच्चियार तिरुमोषि' नाम से जाने जाते हैं। तिरुप्पावै के गीत प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष महीने में कुमारी कन्याओं द्वारा कृष्ण-मन्दिर में गाये जाते हैं और लब्धप्रतिष्ठ तमिल विद्वान् प्रतिदिन एक-एक गीत की व्याख्या करके सुनाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो कन्या तीसों दिन तिरुप्पावै का गान करके मार्गशीर्ष महीने में श्रीकृष्ण की पूजा करती है, उसका विवाह पौष महीने में तय हो जाता है। इसलिए यह कहावत भी प्रचलित है कि 'तै पिरन्दाल् वषि पिरक्कम्'—पौष आये तो मार्ग खुलेगा। शैव, वैष्णव, स्मार्त आदि मतों के अनुयायियों में सम्प्रदाय भेद के बिना यह विश्वास प्रचलित है। यह व्रत 'पावै नोन्बु' कहा जाता है। जैसा पहले कहा गया है, इस व्रत का उद्गम संघ-काल में ही हो गया था।

कुलशेखरालवार के १०५ गीत 'पेरुमाळ तिरुमोषि' नाम से अभिहित हैं। यह आलवार राजवंश के हैं और इन्हें कुलशेखर पेरुमाळ भी कहा जाता है। पेरुमाळ का अर्थ है महानुभाव और तिरुमोषि का अर्थ है-श्रीवचन। अतः इस पद्य-संग्रह का अर्थ 'महानुभाव के श्रीवचन' होता है। तमिलनाडु में भगवान् महाविष्णु को सामान्य जनता 'पेरुमाळ' ही कहती है। कुलशेखरालवार नेसंस्कृत में भी पद-रचना की है। उसका नाम है—'मुकुन्दमाला'।

तिरुमषिशैआलवार-रचित गीतों की संख्या २१४ है। वे दो भागों में विभक्त हैं। १२० गीतों को 'तिरुच्छन्द विरुत्तम्' और ९४ गीतों को 'नान्मुखन् तिरुवन्दादि' कहा जाता है।

तोण्डरड्प्पिोडिआलवार के ५५ गीतों में ४५ तिरुमालै और १० तिरुप्पळ्ळियेषुच्चि कहे जाते हैं। तिरुमालै का अर्थ है-श्रीमाला और तिरुप्पळ्ळियेषुच्चि का भाव है—सुप्रभातम्।

तिरुप्पाणालवार की एकमात्र रचना 'अमलन् आदि पिरान्' में दस गीत हैं। उनमें भगवान् पवित्र आदिमूल परब्रह्म के रूप में चित्रित हैं।

मधुरकविआलवार ने अपने गुरु नम्मालवार को ही कृष्ण-तुल्य मानकर उनकी प्रशंसा में ग्यारह पदों की रचना की है। ये पद्य 'कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु' नाम से संगृहीत हैं।

नम्मालवार के ११०२ गीत 'तिरुवाय्मोषि' (श्रीमुख-वचन) नाम से प्रकाशित हैं। उनको वेदों का सार और तमिल-उपनिषद् माना जाता है। उनके अतिरिक्त १०० गीत 'तिरु विरुत्तम्' नाम से ८७ गीत पेरियतिरुवंदादि' नाम से और ७ गीत 'तिरु आसिरियम्' नाम से, कुल १२९६ गीत इस भक्तवर के नाम पर प्राप्त हैं। शैवों में जैसे गणेशजी की प्रथम पूजा की जाती है, वैसे ही वैष्णवों में नम्मालवार प्रथम पूजे जाते हैं।

सबसे अधिक भक्ति-गीतों के रचयिता तिरुमंगैआलवार हैं। इनके गीत 'पेरिय तिरुमोषि', 'तिरुकुरुन्ताण्डकम्', 'तिरु नेडुन्ताण्डकम्', 'तिरु वेषुकूट्रिरुक्कै', शिरिय तिरु मडल कण्णि', 'पेरिय तिमड़ल कण्णि' आदि छः रचनाओं में संगृहीत हैं।

उपर्युक्त गणनानुसार नालायिर दिव्यप्रबन्धम् में चार हजार आठ पद संगृहीत हैं, जो वैष्णव-सम्प्रदाय में वेदान्त-सार के रूप में आदृत हैं।

प्रबन्धम् में कृष्ण-भक्ति : प्रथम तीन आलवारों में पोयगैआलवार का मन भगवान् के कृष्णावतार में विशेष रूप से रमा है। उनके पदों में वात्सल्य की अपेक्षा अद्भुत रस का समावेश अधिक है। उनमें विशुद्ध सात्त्विक भक्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। वाल-लीलाओं के वर्णन में भी भगवान् के विश्वरूप-दर्शन को ही मुख्य स्थान दिया गया है। वैसे ही पेयालवार ने भी कृष्ण-लीलाओं का वर्णन कुछ विस्तार से करते हुए वात्सल्य, अद्भुत और भक्ति, तीनों का अद्भुत स्वरूप अंकित किया है—

मण्णुण्डुम् पेय्च्चि मुलैयुण्डुम् आट्रादाय्
वेण्णेय् विषुग वेगुंडु आय्च्चिक्कण्णि
कयिट्रिनाल् कट्टत्तान् कट्टुण्डिरुन्दान्
वयिट्रिनोडाट्रामगन्।

"कृष्ण ने मिट्टी खायी और पूतना का स्तन्य-पान किया। तब भी उसकी भूख और प्यास नहीं मिटी। इसलिए मक्खन चुराकर खाने लगा। इससे कुपित होकर ग्वालिन यशोदा ने उसे रस्सी से बाँध दिया। वह कृष्ण वैसा ही बँध गया। मिट्टी खाकर उसने चंचल शिशु का स्वभाव दिखाया तो अपने उसी मुख में मिट्टी दिखाने के बहाने ब्रह्माण्ड को ही दर्शा दिया। पूतना का स्तन्य-पान करने के बहाने उसके प्राणों को ही चूस लिया। इतना शक्ति-सम्पन्न होकर भी वह माता के समक्ष उत्पाती बालक के रूप में आकर रस्सी से बँध गया।"

इस प्रकार कवि ने वात्सल्य भाव की भक्ति के द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति की है तथा उनकी बाल-लीला का संक्षिप्त परिचय दिया है।

भूतत्तालवार की रचनाओं में भगवान् के सभी अवतारों की स्तुति है किन्तु कृष्ण-लीला पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। एक अन्दादि में वे कहते हैं—"देवों से भी श्रेष्ठ हे विष्णु, बछड़े द्वारा कपित्थ फल को गिरानेवाले हे कृष्ण, तुम्हारा प्रेम असीम है। एक राक्षस कंस की आज्ञा से बालकृष्ण को मारने के लिए बछड़े का रूप धारण करके आया। बालकृष्ण ने उसे पूँछ से उठाकर कपित्थ वृक्ष पर फेंक दिया। उनकी इस क्रिया से कपित्थ फल भी गिरा और राक्षस भी मर गया।" इस घटना का वर्णन करके कवि ने कृष्ण की शक्ति, भक्त-वत्सलता और असीम प्रेम की ओर संकेत किया है।

तिरुमषिशैयालवार के तिरुच्छंद विरुत्तम् में वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों और कृष्ण-लीलाओं का वर्णन बड़ी आस्था के साथ किया गया है। इसमें नप्पिन्ना (राधा) से विवाह का प्रसंग, कृष्ण द्वारा दंतवक्र का उद्धार, पौण्ड्रक वासुदेव एवं काशिराज का उद्धार, नरकासुर के मंत्री मुरासुर एवं दुष्ट नरकासुर का वध तथा कुब्जा-प्रसंग का वर्णन पूरी तन्मयता से किया गया है। कृष्ण कुब्जा से उसका परिचय न पूछकर सीधे ही सुगन्धित अनुलेपन पदार्थ माँगते हैं। कुब्जा उन्हें चन्दनादि का लेप देती नहीं, अपितु उनके शरीर पर मल देती है। इस पर कृष्ण प्रसन्न होकर धनुष के गोलों से सहज ही कूबर को दूर करके उसे सुन्दर स्त्री का रूप प्रदान करते हैं।

भक्त कवयित्री आण्डाळ, अपनी कल्पना के बल पर काल एवं स्थान की परिधि को पार करके कृष्ण-लोक पहुँच जाती हैं और गोपी-कृष्ण की लीलाओं का आस्वादन करती हैं। उनका विल्लिपुत्तूर ग्राम गोकुल तथा ग्राम का मन्दिर नन्दगोप का भवन बन जाता है और वे स्वयं गोपी बनकर व्रत के फल की प्राप्ति के

लिए सखियों के साथ कृष्ण के पास जाती हैं। उनके द्वारा विरचित 'नाच्चियार तिरुमोषि' के विभिन्न पदों में कृष्ण के अपूर्व सौन्दर्य का चित्रण प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के प्रथम तिरुमोषि के पदों में आण्डाळ कृष्ण के साक्षात्काररूपी अभीप्सित फल-प्राप्ति के लिए कामदेव से प्रार्थना करती हैं। द्वितीय तिरुमोषि में गोपिकाएँ अपने अभीष्ट की प्राप्ति न होने पर क्रुद्ध होकर कृष्ण से मान करती हैं। तृतीय तिरुमोषि में चीरहरण-लीला का, चतुर्थ में कृष्ण-प्राप्ति की संभावना पर शकुन देखने का, पाँचवीं में कोयल द्वारा कृष्ण को बुलवाने का, छठी में कृष्ण से विवाह के स्वप्न का, सातवीं में कृष्ण-अधर-रस का पान करनेवाले शंख से ईर्ष्या का, आठवीं में मेघ-सन्देश का और नवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं तिरुमोषियों में तीव्र विरह-वेदना का मर्मस्पर्शी वर्णन है। बारहवीं तिरुमोषि में आण्डाळ सखियों से कृष्ण से सम्बन्ध रखनेवाली किसी वस्तु को लेकर उसका लेप अपने शरीर पर लगाने की प्रार्थना करती हैं। चौदहवीं तिरुमोषि में कृष्ण से संयोग का आनन्द वर्णित है। तिरुप्पावै के तीसों गीत पावैनोन्बु के विविध रूपों से युक्त हैं। व्रत की समाप्ति पर कृष्ण से भेंट की प्रार्थना की गयी है।

आण्डाळ की इस उत्कट कृष्ण-भक्ति के बीज उनके पिता पेरियालवार के गीतों में प्राप्त हो जाते हैं। कृष्ण के धूलिधूसरित शरीर की शोभा पर प्रसन्नता, किन्तु नप्पिन्ना के परिहास से बचने के लिए धूलि-रहित हो जाने के लिए आह्वान, कृष्ण की प्रशंसा करते हुए केश सँवारने के लिए कौए को बुलाना, अहीर की छोकरियों को छेड़ने से कृष्ण को मना करना, उनको विविध आभूषणों से अलंकृत करना, पूतना-स्तन-पान, शकटासुर का वध आदि लीलाओं की याद दिलाकर यशोदा द्वारा कृष्ण की प्रशंसा, अनजान की तरह उन लीलाओं को सुनकर कृष्ण के द्वारा भयभीत होने का अभिनय, कृष्ण के कुछ बड़े होने पर उनके द्वारा माखन-चोरी तथा गोपिकाओं का यशोदा से तत्सम्बन्धी उलाहना, गोकुल में कृष्ण का ऊधम मचाना, गायें चराने के लिए कृष्ण के वन चले जाने पर यशोदा का चिन्तित होना, गोधूलि-बेला में उनके लौटते समय गोपिकाओं का मुग्ध होकर अपने घर, पति आदि का परित्याग करके दर्शन के लिए दौड़ पड़ना, कृष्ण के मुरली-वादन पर सारे गोकुल का स्तब्ध हो जाना, इन्द्र-पूजा के स्थान पर गोवर्द्धन-पूजा का प्रवर्तन, कृष्ण का गोवर्द्धन-धारण, गोपिकाओं की विरहावस्था, कालिय-दमन आदि कृष्ण-चरित्र की अनेक घटनाओं का वर्णन है। इनमें पेरियालवार स्वयमेव कुछ नहीं कहते। सब कुछ गोपिकाओं के परस्पर वार्तालाप तथा विरह-संकेत के द्वारा ही व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं फलश्रुति के माध्यम से पेरियालवार कृष्ण के परमात्मस्वरूप और अपनी भक्ति का परिचय देते हैं।

पेरियालवार के चार ग्रन्थों में 'तिरु विरुत्तम्' ऋग्वेद का सार माना जाता है। उसमें भगवान् के प्रति प्रेम और तन्मयता का विशद निरूपण है। भक्त कवि ने स्वयं नायिका बनकर अपनी विरह-वेदना व्यक्त की है। विरहावस्था के इन पदों में रहस्यात्मकता की गहरी छाप है। एक पद में विरह-विदग्धा नायिका भ्रमरों से प्रार्थना करती है—"हे भ्रमरगण, तुम लोग पंखों पर उड़ते हो। अतः तुम्हारे लिए आकाश में पहुँचना आसान है। वहीं वैकुण्ठधाम में मेरे स्वामी हैं, उनके विशुद्ध कमलवत् चरणों में मुझे पहुंचा दो।" इसलिए यह स्पष्ट है कि आण्डाळ की कृष्ण-भक्ति की भूमिका उनके पूर्ववर्ती आऴवारों द्वारा प्रस्तुत की जा चुकी थी।

तिरुप्पाणालवार की रचना 'अमलन आदि पिरान' में कृष्ण के नख-शिख-सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण है। वैसे ही तिरुमंगैयालवार की पेरिय तिरुमोषि में बाल, किशोर एवं युवा कृष्ण की अनेकानेक लीलाओं का सरस एवं सजीव वर्णन प्राप्त होता है। कुलशेखरालवार की 'पेरुमाळ तिरुमोषि' में यशोदा का

कृष्ण को स्तन-पान कराने, कृष्ण की माखन-चोरी पर उनके क्रुद्ध होने आदि का वर्णन है तथा यशोदा के समान कृष्ण की बाल-लीलाओं का रसास्वादन न कर सकने के कारण दुःखी माता देवकी का करुण विलाप भी वर्णित है। संक्षेप में आलवारों ने अपने आराध्यदेव विष्णु के अनेक अवतारों में से कृष्ण की लीलाओं का सरस एवं सजीव वर्णन करके तमिल के कृष्ण-भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया है।

प्रबन्धम् में राधा : यह पहले कहा गया है कि तमिल के प्राचीन ग्रन्थों तथा प्रबन्धम् में राधा का स्मरण नप्पिन्ना देवी नाम से ही किया गया है। अरुळाळदासर ने अपने भागवत में साँड़ों को वश करने की जिस घटना का वर्णन किया है उसीके आधार पर प्रबन्धम् में राधा के प्रति भक्तिभाव प्रकट किया गया है। कृष्ण को स्नान करने के लिए पुकारती हुई पेरियालवार की यशोदा कहती है—"हे पुत्र, तुझे धूलि-धूसरित देखकर नप्पिन्नै हँसेगी, अतः तू शीघ्र ही स्नान करने के लिए आ जा।" इससे स्पष्ट है कि नप्पिन्ना कृष्ण की बाल-सहचरी थी तथा नप्पिन्ना और राधा पर्यायवाची हैं। एक अन्य पद में पेरियालवार की यशोदा कृष्ण को 'पिन्नै मणाळन्' (पिन्ना का पति) कहती हैं। तमिल-साहित्य के अनुसार नप्पिन्नै नाम की राधा, कृष्ण की बाल-सहचरी थी, जो बाद में उनकी विवाहिता पत्नी हो गयी। तमिलनाडु में प्रतिवर्ष 'राधा-विवाह' का उत्सव मनाया जाता है। उस दिन कन्याएँ और किशोरियाँ 'कोलाट्टम्' (एक तरह की रास-क्रीड़ा) करती हुई भक्तों के घर जाती हैं और उनका आदर-सम्मान किया जाता है। आण्डाळ के तिरुप्पावै में तीन पदों में नप्पिन्ना का उल्लेख है। जो गोपिकाएँ कृष्ण को जगाने के लिए जाती हैं वे पहले नन्द, यशोदा और बलराम को जगाती हैं, उसके बाद नप्पिन्नै को। आण्डाळ कृष्ण और नप्पिन्ना दोनों से सम्मिलित रूप से प्रार्थना करती है कि वे दोनों उसकी प्रार्थना सुनें। तब नप्पिन्ना जागकर आ जाती है और आण्डाळ तथा अन्य गोपियों के साथ मिलकर वह भी कृष्ण की स्तुति करती है।

पिळ्ळैप्पाट्टु में कृष्ण : यह तमिल भाषा में विशिष्ट शैली की रचना है। इसमें बच्चे के जन्म के तीसरे मास से लेकर इक्कीसवें मास तक की दस विभिन्न लीलाओं—कंकण पहनाना, घुटनों के बल खड़े होते देखकर आनन्दित होना, पालने पर लिटाकर झुलाना, बच्चे को बैठाकर दोनों हाथों से ताली बजवाना, चुम्बन देने के लिए बुलाना, लड़खड़ाकर चलना सिखाना, चन्द्र को बुलवाना, घरौंदे तुड़वाना, छोटा डमरू बजवाना, रथ खिंचवाना का वर्णन है। शैव और वैष्णव दोनों मतों के भक्तों ने अपने इष्टदेव के प्रति ऐसे गीत गाये हैं। कृष्ण के सम्बन्ध में पेरियालवार का 'पिळ्ळैत् तमिल' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें कवि जहाँ एक ओर भगवान् के विराट् विश्वरूप के दर्शन का वर्णन करता है, वहीं दूसरी ओर वात्सल्य-भक्ति की अद्‌भुत छटा का भी चित्रांकन करता है।

वैष्णव-सम्प्रदाय के अन्य साहित्यकार

इस प्रकार आलवार भक्तों ने भावपूर्ण गीतों द्वारा तमिलभाषी जनता में सामान्य रूप से विष्णु-भक्ति और विशेष रूप से कृष्ण-भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इनके परवर्ती आचार्यों एवं भक्तों ने कृष्ण और विष्णु के तात्त्विक स्वरूप की व्याख्या करके प्रवचनों, टीकाओं तथा भाष्यों द्वारा भक्ति को दार्शनिक पीठिका प्रदान की। ऐसे मार्गदर्शी महात्माओं में श्री रामानुज स्वामी तथा श्री वेदान्तदेशिक प्रातः स्मरणीय हैं। इन दो महापुरुषों के अतिरिक्त श्री नाथमुनि, श्री भट्टर, श्री तिरुवरंगततमुदनार, पिळ्ळै लोकाचार्य, पिळ्ळै लोकाचार्य जीयर, पिळ्ळैप्पेरुमाळ अय्यंगार आदि का भी विशिष्ट स्थान है।

तमिल के महाकाव्य : रामायण और महाभारत

तमिल प्रदेश में भारत के ऐतिहासिक महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत को प्रारम्भ से ही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। वाल्मीकि रामायण के आधार पर तमिल में महाकवि **कंबन** ने अपने प्रसिद्ध

२

'रामायण' की रचना की। इसी भाँति तमिल में 'विल्लिभारतम्' की रचना श्री विल्लिपुत्तूरार् ने की। कवि ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है कि महाभारत की कथा से श्रीकृष्ण की कथा के सम्बद्ध होने के कारण ही उसने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसके प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में श्रीकृष्ण की स्तुति की गयी है। पाण्डवों के सखा-रूप में कृष्ण का अखण्ड वर्णन होने से इसे कृष्ण-भक्ति-काव्य मानना उचित है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह उच्च कोटि का ग्रन्थ है। इसकी भाषा सरल तथा सुबोध है। अतः साधारण तमिल ज्ञाता भी सरलता से इसका रसास्वादन कर सकते हैं। इस वर्ग की दूसरी प्रसिद्ध कृति है—नल्लापिल्लै-रचित 'भारतम्'। इनके अतिरिक्त महाभारत के अश्वमेध पर्व पर भी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत हुईं। शरवण पेरुमाल कृत 'अश्वमेधपुराणम्', 'अश्वमेधयाग अम्मानै' आदि इनमें प्रमुख हैं।

भागवत के तमिल रूपान्तर

आलवारों तथा आचार्यों के परवर्ती युग में १२वीं से १६वीं शती ई० के बीच श्रीमद्भागवत के अनेक तमिल अनुवाद प्रस्तुत हुए। इनमें माधव पण्डित, शेव्वैचूडवार, अरियप्प पुलवार तथा वरदराज अय्यंगार के अनुवाद विशेष महत्त्व के हैं। इनसे तमिलभाषी जनता में कृष्ण-कथा के प्रचार में अपूर्व योगदान प्राप्त हुआ।

दिव्य प्रबन्धम् के भाष्यकार : कृष्ण-भक्ति का पूर्ण परिचय प्रबन्धम् के भाष्यकारों की रचनाओं से ही प्राप्त होता है। इनमें आळवंदार पेरुमाल पिळ्ळान्, नंजीयर, नम्पिळ्ळै, अषगियमणवाळजीयर, मणवाळ मा मुनिगल, पेरियवाच्यान् पिळ्ळै, तिरुवोचिप्पिळ्ळै आदि भाष्यकारों के नाम स्मरणीय हैं। यद्यपि इनकी मौलिक रचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं तो भी भाष्यों द्वारा इनकी कृष्ण-भक्ति व्यक्त हुई है। इन ग्रन्थों का साहित्यिक एवं धार्मिक महत्त्व है।

दूत-काव्य : कालिदास-रचित मेघदूत के आदर्श पर तमिल के कृष्ण-भक्त कवि पलपट्टड़ै चोक्कनाळर् ने पवन और तोते को दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजते हुए लघु काव्य लिखे हैं। उनका 'अषगर-किळ्ळै-विडु-तूदु' तोते के द्वारा संदेश पहुँचाता है तो 'पद्मगिरिनायर्, तेन्ड्रल् विडु तूदु' पवन के द्वारा भक्ति-संदेश भेजता है।

कूर्मपुराण : सोलहवीं शताब्दी में राजा अधिवीरराम पांडियन की भक्तिपरक रचनाएँ कृष्ण-भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी ख्याति का मूल कारण इनके द्वारा रचित कूर्मपुराण है। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध के ५१ अध्यायों में राम और कृष्ण के अवतारों एवं लीलाओं का विशद वर्णन है। इन्होंने कोक्कै नामक समुद्रतटीय प्रदेश को अपनी राजधानी बनाकर शासन किया था।

कुचेलोपाख्यान : उन्नीसवीं शताब्दी के भक्त कवियों में महाविद्वान् मीनाक्षिसुन्दरम पिळ्ळै और वल्लूर देवराज पिळ्ळै दोनों ने कृष्ण-भक्तिपरक रचनाएँ की थीं। दोनों शैव थे और शैव-वाङ्मय के सर्जक थे। किन्तु मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळै ने स्थल पुराणों की रचना में शैव-वैष्णव-भेद नहीं माना। उन्होंने २० स्थल-पुराण लिखे जिनसे इनकी कृष्ण-भक्ति का परिचय मिलता है। वैसे ही वल्लूर देवराज पिळ्ळै का कुचेलोपाख्यान गहरी कृष्ण-भक्ति का द्योतक है। मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळै को आधुनिक कंबन की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

भागवत-व्याख्यान : तमिल प्रदेश में भागवत-कथा-प्रवचन जगह-जगह पर हुआ करते हैं। उन प्रवचनों के प्रति लोगों में बड़ी रुचि है। श्री भगवन्नाम बोधेन्द्र स्वामी के अनेक भक्त-शिष्य इस प्रकार के कथा-प्रवचन में दीक्षित होकर कृष्ण-भक्ति के प्रचार तथा प्रसार में लगे। उन शिष्यों में श्री कृष्णप्रेमी का विशेष आदरणीय स्थान है। यद्यपि ये प्रवचन तमिल में करते हैं तो भी इनकी मौलिक रचनाएँ संस्कृत में ही हैं। 'प्रेमी भागवत' इनकी बहुत प्रसिद्ध रचना है। भक्तप्रवर श्री अनन्तराम दीक्षित ने भागवत-प्रचार में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। श्री श्रीधर अय्या, श्री विट्टोबा स्वामी आदि की सेवाएँ भी सदा स्मरणीय हैं। सर्वश्री कृपानन्दवारी, गिरिधारी प्रसाद और बालकृष्ण शास्त्री इस क्षेत्र के जीवन्त एवं लोकप्रिय प्रवचनकर्त्ता हैं। लोगों पर उनका पर्याप्त प्रभाव है।

आधुनिक काल

बीसवीं शताब्दी को कृष्ण-भक्ति का आधुनिक काल माना जाता है। इस शताब्दी में कृष्ण-भक्ति के प्रेरक थे सुब्रह्मण्य भारतियार। इस राष्ट्रीय महाकवि का अनुकरण करके योगी शुद्धानन्द भारती, कवियित्री हा० कि० वालम् अम्मैयार, देशिक विनायकम् पिळ्ळै, नामक्कल कवि रामलिंगम् पिळ्ळै तथा कण्णदासन ने कृष्ण-भक्ति की भावपूर्ण रचनाएँ की हैं। इन कवियों के पूर्व डॉ० राघव अय्यंगार और मु० राघव अय्यंगार नामक कवि द्वय रामनाथपुरम् के राजा के आश्रय में रहकर तमिल और वैष्णव-साहित्य की श्रीवृद्धि में लगे हुए थे। दोनों ने अनुसन्धान-क्षेत्र में भी अपूर्व योग दिया। डॉ० राघव अय्यंगार की तिरुवडिमालै (श्रीचरण माला) तथा मु० राघव अय्यंगार की 'नूट्रॅट्टु तिरुप्पति अगवल्' (एक सौ आठ पुण्यक्षेत्र-सम्बन्धी कविताएँ) भक्ति-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। वीर वैष्णव-परम्परा के कवि वेंकटराजलु रेड्डियार की रचना श्री पुराण विष्णु-भक्तिपरक काव्य है। श्री रेड्डियार को आधुनिक काल का तोलकाप्पियर कहकर सम्मान दिया जाता है। किन्तु राष्ट्रीय एवं राजनैतिक क्षेत्रों में सक्रिय रहने के कारण जेल की यातनाएँ भोगते हुए भी भक्ति-साहित्य, विशेषकर कृष्ण-भक्ति-साहित्य, को प्रशस्त करनेवाले आधुनिक कवियों में श्री सुब्रह्मण्यम् भारती, श्री शुद्धानन्द भारती और कण्णदासन का अमर स्थान है।

तमिल-साहित्य का नवीन युग भारती-युग नाम से अभिहित किया जाता है। भक्ति, राजनीति, समाज-सुधार तीनों का सन्तुलित समन्वय सुब्रह्मण्यम् भारती की रचनाओं की विशेषता है। इनकी भक्ति-परक कविताओं में भी वही समन्वय-भावना प्राप्त होती है। हिन्दू देवी-देवताओं की ही नहीं, वरन् सभी धर्मों के देवताओं की महिमा का गान करके अखण्ड राष्ट्रीयता का परिचय देनेवाले इस कवि को राधा-कृष्ण तथा शक्ति पर विशेष अनुराग है। इनके कृष्ण-भक्ति-गीतों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सुप्रसिद्ध देश-भक्त व० वे० सु० अय्यर लिखते हैं—"भारत देश के कुल-देवता बने हुए कृष्ण को गीतोपहार न पहनानेवाले कवि विरले ही हैं। भारत बहुत समय तक प्रसुप्त अवस्था में रहा। एकाएक वह जाग पड़ा तो उसे सर्वप्रथम गीताशास्त्र द्वारा अर्जुन को उद्बोधित करनेवाले पार्थसारथी के दिव्य तेज का दर्शन हुआ। कृष्ण के इस तेजोमय रूप ने भारती के हृदय में नवीन उत्साह का संचार कर उनकी कविता को शोभा प्रदान की। उनके प्रारम्भिक प्रकाशन 'जन्मभूमि' में ही श्रीकृष्ण-स्तोत्र नाम से दो छन्द दिखायी देते हैं। आगे चलकर श्रीकृष्ण के क्रिया-कलापों और लीलाओं ने उनके मन को पूर्ण रूप से आकर्षित किया। इस आकर्षण का प्रधान आधार 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' के अन्तर्गत पेरियालवार के पद्यों का अनुसन्धान ही है। अतएव भारती के कृष्ण-गीतों का भाव पेरियालवार के गीतों से मिलता-जुलता है। वैष्णवाचार्यों का मत है कि भक्त अपने इष्ट देवता का स्मरण विविध भावों से कर सकता है। उसीके अनुसार हमारे कवि ने कृष्ण को

माता, पिता, स्वामी, गुरु, सखा, नायक, नायिका आदि विविध रूपों में स्मरण करते हुए उनका सर्वत्र दर्शन किया है।" श्री व० वे० सु० अय्यर का उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य है। कौए के पंख में भी कृष्ण-दर्शन करनेवाले भारती की कृष्ण-भक्ति अपूर्व है। भारती-युग में आकर तमिल नप्पिन्ना देवी राधा बन गयी। भारती ने राधा को कृष्ण की अभिन्न सखी के रूप में चित्रित किया है।

'पांचाली शपदम्' शीर्षक लघु काव्य में द्रौपदी द्वारा की गयी प्रार्थना में भगवान् कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र ही संक्षिप्त रूप में आ गया है। भारती द्वारा उस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"जब दुःशासन उठ कर साड़ी अनावृत्त करने लगा तो विदुर 'हाय ! देवगण' कहते हुए मूर्च्छित होकर धराशायी हुए। तब माता द्रौपदी अन्तर्ज्योति में लीन हो गयी। विश्व को भूलकर एकनिष्ठ हो बोल उठी—हरि, हरि, हरि, हे कृष्ण, मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मेरी रक्षा करो। उस दिन हाथी पर कृपा करके मकर को मार डाला। हे श्याम रंग ! उस दिन कालिय नाग पर नर्तन किया, तुम परम तत्त्व हो, हे कृष्ण ! तुम कथनातीत वेद-तत्त्व हो, चक्र धारण करके खड़े हो, शारंग धनुष को करों में उठाये हुए हो, तुम अक्षर-तत्त्व हो, तुम सेवकों के आँसू पोंछनेवाले महान् हो, साधुओं के रक्षक हो, तुम ही ब्रह्मा के भी सर्जक हो, गगन से भी अधिक व्यापक हो, आग, मिट्टी, पानी, वायु, आकाश सभी तत्त्व तुम ही हो, मौन-व्रतधारी ऋषियों के अन्तर में ज्योति जगानेवाले हो, कमलासनी श्रीदेवी तुम्हारे कर-कमलों की निवासिनी हैं, तुम आदिमूल हो, अन्तहीन हो, अबोध और अगम तत्त्व हो, ज्योति की ज्योति हो। ज्योतिस्वरूप हे कृष्ण ! उस दिन स्तम्भ से निकलकर तुमने अपने भक्त का वचन प्रमाणित किया। तुम्हारी शरण में आयी हूँ, मेरी लाज रखो। हे विश्वरक्षक कृष्ण ! नीलमणि रंग के श्याम ! मेरे मन की ज्योति, हरि ! मेरे देव, तुम्हारे चरण-कमलों की शरण में आयी हूँ।" कहना न होगा कि इस रूपक-काव्य में पांचाली को भारत-माता, कौरवों को विदेशी शासक अंग्रेज और पाण्डवों को मातृभूमि की लज्जा की रक्षा में असमर्थ देशी राजाओं के रूप में चित्रित कर कवि ने अपनी प्रगाढ़ राष्ट्र-भक्ति व्यंजित की है।

अन्य देवी-देवताओं की अपेक्षा कृष्ण-वर्णन में कवि भारती की भक्ति अधिकाधिक निखर उठी है। भारती-युग में भारती के बाद के श्रेष्ठ और सर्वमान्य कवियों में देशिक विनायकम् पिळ्ळै का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने 'अञ्जलि' शीर्षक कविता में अपने मुख और मुरली का रूपक बाँधकर भगवान् को कृष्ण के रूप में चित्रित किया तथा 'भारती और गँवार' शीर्षक लंबी कविता में सुब्रह्मण्यम् भारती की कृष्ण-भक्ति के चित्रण के व्याज से अपनी कृष्णभक्ति का परिचय दिया है। इन्होंने अपनी 'अन्बिन वेट्रि' (प्रेम की विजय) शीर्षक कविता में कृष्ण-प्रेम-विह्वलता का भावपूर्ण चित्रण किया है। उस कविता के प्रत्येक चरण में कवि की कृष्ण-भक्ति व्यंजित हुई है। देशिक विनायकम् पिळ्ळै 'कविमणि' नाम से जाने जाते हैं। कविमणि की तरह ही राष्ट्रीय और गांधीवादी कवि नामक्कल रामलिंगम् पिळ्ळै ने भगवद्गीता की महिमा का वर्णन करते हुए कृष्ण का यशोगान किया है। इन कवियों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि कृष्ण किसी सम्प्रदाय-विशेष के आराध्य देवता मात्र नहीं हैं, वरन् वे सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य महापुरुष हैं।

आधुनिक युग में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त शुद्धानन्द भारती ने भी अपनी कृष्ण-भक्ति को मुखरित किया है। कवियोगी नाम से आदृत इस कवि ने 'विष्णुगीतम्' शीर्षक काव्य-संग्रह में कृष्ण की भावपूर्ण स्तुति की है। इनके लिए कृष्ण राष्ट्रीय देवता हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दिनों में कवियोगी ने कृष्ण-भक्ति-गान द्वारा ही ग्रामीण जनता में आजादी का भाव जगाया था। राष्ट्रीय परम्परा के कवियों में देशभक्त हालास्यम् की पुत्री हा० कि० वालम् अम्मैयार के गीत कृष्ण-भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। यह कवियित्री स्वयं वैष्णवसम्प्रदाय की हैं। अतएव रोगग्रस्त अवस्था में अनायास ही कृष्ण-भक्ति के गान इनके मुँह से निकल

पड़े। ये स्वयं लिखती हैं कि "मैं स्वयं नहीं जानती कि इतनी कवित्व-शक्ति मुझमें एकाएक कैसे आ गयी ? वह केवल राधा-कृष्ण की ही कृपा है, उन्हीं की अनुकम्पा ने मुझे निराश नहीं होने दिया और साहित्य-सेवा करके जीवन को सफल बना लेने का अवसर दिया।"

इस धारा के नवीनतम पुरस्कर्ताओं में कवियरसु कण्णदासन की कृष्ण-भक्ति आश्चर्यजनक है। इन्होंने नास्तिकतावादी दल द्रविड़ कषगम में रहकर जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया। पैंतालीस वर्ष की आयु में उसके पंजे से छूटकर आस्तिकता की ओर आये और अपनी अपूर्व कवित्व-शक्ति का उपयोग कृष्ण-भक्ति के गीत लिखने में करने लगे। 'श्री कृष्ण कान्तन् पामालै' शीर्षक कविता में कण्णदासन लिखते हैं—"यदि एक साल की उम्र में तुम्हें समझता तो तुम-सा ही हो जाता। यदि नवें साल में समझता तो तुम्हारे चरणों से लगा रहता, यदि बारहवें साल में तुम्हारा स्मरण आता तो तुम्हारे मधुर रूप के दर्शन ही करता, यदि बीसवें वर्ष में तुम्हारा महत्त्व मालूम होता तो तुममें समा जाता। श्रेष्ठ देव ! चालीस वर्षों के बीत जाने के बाद तुम मेरे चिन्तन में आये, बीते हुए व्यर्थ के दिनों को सोच-सोचकर पछतावे के आँसू बहाता हूँ। हे प्राणनाथ ! पचास साल की उम्र में ही मैं तुम्हें पहचान सका ! हे कृष्णकान्त ! मुझे सत्तर साल की आयु देकर यश गाते रहने का अवसर दो।"

अपने एक अन्य गीत 'कण्णन् मेरे देवता' में वे कहते हैं-"जब से मैंने कृष्ण को पहचान लिया तब से मैं इस भूमि पर सम्राट् बना हूँ, सभी उत्सवों के नायक कृष्ण ही हैं, मैं कृष्ण का ध्यान करता हूँ और सभी चिन्ताएँ विस्मृत हो जाती हैं।"

कण्णदासन की कृष्ण-भक्तिपरक कविताएँ तमिल-साहित्य के लिए अनुपम निधि हैं। वे अनुभूतिजन्य हैं और कवि के प्रारम्भिक काल की नास्तिकता की काली पृष्ठभूमि में स्वर्णाक्षर की भाँति अत्यन्त चित्ताकर्षक बनी हुई हैं।

तमिलभाषी प्रदेश भारत के अन्य प्रदेशों की भाँति ही अनादिकाल से आध्यात्मिकता की भावभूमि रहा है। आस्तिकता की आधारभूमि भक्ति तथा उपासना की प्रेरणा से ही इस भाषा का जन्म हुआ है। अगस्त्य ऋषि इसके जनक हैं और कावेरी इसकी माता है। अगस्त्य के प्रथम शिष्य तोलकाप्पियर के साथ खेल खेलती हुई वह बड़ी हुई है और हजारों वर्षों के बाद भी वह चिरयौवना है। इसलिए तमिल-प्रेमी इस भाषा को 'कन्नित् तमिल' (कन्या की भाँति विशुद्ध एवं पवित्र तमिल) कहकर गर्व का अनुभव करते हैं। शिव और विष्णु इसके दो नेत्र रहे हैं। यह शैव और वैष्णव-साहित्य की अपूर्व छटा से मण्डित है। वैष्णव-साहित्य का अधिकांश भाग कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण रहा है। यदि कृष्ण तमिल में 'कण्णन्' बन गये तो राधा 'नप्पिन्नै' के रूप में आदृत हुईं। पेरियालवार को सूरदास और आण्डाळ को मीरा कहकर तमिल और हिन्दी के कृष्ण-भक्तों की एकता समझाने की रीति भी यहाँ प्रचलित है। लेकिन पेरियालवार को तमिल का सूरदास कहने में तुलना की दृष्टि कम, भावैक्य की झाँकी दिखाने की चाह ही अधिक प्रतीत होती है। रामानुज स्वामी के कारण यह भावभूमि तत्त्वभूमि बनी और सर्व जीवों में परमात्म-दर्शन का विश्वव्यापक सन्देश देने में समर्थ हुई। आधुनिक काल में आकर कृष्ण-भक्ति राष्ट्र-प्रेम की प्रधान प्रेरणा-शक्ति, गीता राष्ट्रीय जागरण की सन्देशवाहिका तथा कृष्ण राष्ट्र देवता बन गये।

—डॉ० हरिहर दुरै स्वामी

तमिलनाडु की कृष्ण-भक्ति-परम्परा

उत्तर भारत में जब वेद, उपनिषद् आदि से प्रभावित भक्ति की एक धारा प्रवाहित हो रही थी उसी समय, दक्षिण में, द्रविड़-संस्कृति के क्रोड़ में एक पृथक् भक्तिधारा विकास पा रही थी। ईसा से अनेक वर्ष पूर्व ही तमिल-समाज में भक्ति-भावना का उदय हो चुका था। पुरातन तमिल-साहित्य के अधिकांश भाग के लुप्त हो जाने से उस काल की भक्ति-भावना के विषय में हमें अधिक ज्ञात नहीं है। विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन काल में तमिलभाषी आर्यों के समान प्राकृतिक शक्तियों, प्राकृतिक पदार्थों, भूत-प्रेतों आदि की उपासना किया करते थे। देवताओं को तृप्त करने के लिए उन्हें पशुबलि चढ़ाते थे। कालान्तर में उनकी धार्मिक भावना का विकास हुआ और वे सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सत्ता में विश्वास करने लगे। धीरे-धीरे इसी परम सत्ता के साथ उन्होंने प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। तमिल जनता में प्रेम एवं भक्ति की यह भावना उत्तरोत्तर विकसित होती गयी।

तमिल का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य 'संघ-साहित्य' कहलाता है। तमिल विद्वानों के मतानुसार प्राचीन पाण्डच राजाओं ने तमिल-साहित्य की अभिवृद्धि के लिए एक के बाद एक क्रमशः तीन संघों अथवा विद्वानों की मण्डलियों की स्थापना की थी। प्रथम संघकालीन अधिकांश साहित्य लुप्त हो चुका है। द्वितीय संघकालीन साहित्य की एकमात्र उपलब्ध रचना है 'तोलिकाप्पियम'। यह एक व्याकरण-ग्रन्थ है। इसमें तमिल प्रदेश के पाँच प्रमुख भू-भागों (तिणै) और उनके अधिष्ठापक देवताओं का उल्लेख है। इस कृति के अनुसार कुर्रिजि (पहाड़ी प्रदेश) के देवता शेयोन, मुल्लै (वन-भूमि) के देवता मायोन, मरुदम (समतल उपजाऊ भूमि) के देवता इन्द्र, नेयदल (समुद्र-तटवर्ती भूमि) के देवता वरुण और पालै (मरुभूमि) की देवी कोट्रवै थीं। इन देवी-देवताओं में मायोन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। मायोन का शाब्दिक अर्थ है— श्याम वर्णवाला। वन-प्रदेश के निवासियों को आयर (आभीर) कहा जाता था। आयर लोग मायोन की उपासना बाल-देवता के रूप में करते थे। मायोन के लिए 'तिरुमाल' शब्द का भी प्रयोग होता है, जो विष्णु का वाचक है। धीरे-धीरे मायोन के बाल-जीवन से सम्बद्ध अनेक कथाएँ तमिल प्रदेश में उद्भूत हुईं। लोग उन कथाओं में विशेष रुचि लेने लगे। परिणामतः तिरुमाल-धर्म अथवा वैष्णव-धर्म मुल्लै प्रदेश से अन्य भूभागों में भी फैल गया।

'तोलिकाप्पियम' के उपरान्त तिरुमाल (विष्णु) और उनके अवतारों से सम्बद्ध विवरण पत्तुप्पाट्टु (दश काव्य-संग्रह), एट्टुत्तोगै (अष्ट कविता-संग्रह) और पदिनेणकीळ्क्णक्कु (अठारह लघु रचनाएँ) शीर्षक ग्रन्थ तृतीय संघकालीन कृतियों में मिलते हैं। 'तोलिकाप्पियम' में वर्णित देवी-देवताओं के स्वरूप एवं आराधनाविधि और इन रचनाओं में वर्णित देवी-देवताओं के स्वरूप एवं आराधना-विधि में पर्याप्त अन्तर है। यह अनुमान लगाया जाता है कि तृतीय संघ-काल के कुछ पूर्व द्रविड़-आर्य-संस्कृतियों का मिलन हुआ होगा, जिसके फलस्वरूप तमिल और वैदिक देवताओं तथा द्रविड़ और वैदिक उपासना-पद्धतियों का एकीकरण हुआ।

तृतीय संघ-काल की रचनाओं में सर्वप्राचीन है 'पत्तुप्पाट्टु'। इसकी विभिन्न कविताओं में विष्णु-सम्बन्धी विवरण तो मिलते हैं, किन्तु उनके कृष्णावतार और गोकुल-लीलाओं का कोई उल्लेख नहीं है। 'एट्टुत्तोगै' में विष्णु एवं उनके अवतारों से सम्बद्ध अनेक घटनाओं का वर्णन है। पदिनेणकीळ्क्णक्कु में

सर्वप्रमुख है तिरुक्कुरल। इस प्रसिद्ध नीति-ग्रन्थ में विष्णु के लिए 'तामरै कण्णन' (कमलदललोचन) और 'अडियळन्दान' (द्विपग में लोकों को नापनेवाला) आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृति के प्रभाव के कारण ही तृतीय संघकालीन रचनाओं में विष्णु एवं उनके नाना अवतारों की लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। लगभग इसी समय अर्थात् ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी के आसपास सात्त्वतों द्वारा भागवत-धर्म दक्षिण की ओर ले जाया गया। भागवत-धर्म के अनुयायियों द्वारा भागवत पुराण की रचना दक्षिण में की गयी। दक्षिण के प्रत्येक प्रान्त के भागवत-जन इसे महत्त्व देते हैं।

भागवत पुराण की रचना के समय तक दक्षिण की जनता में भागवत-धर्म का प्रभाव क्षीण पड़ने लगा और जैन-बौद्ध धर्मों का प्रचार-प्रसार होने लगा। इन धर्मों के अनुयायियों ने संस्कृत के साथ तमिल में भी काव्य-रचना की। इनके द्वारा रचित पाँच महाकाव्यों और पाँच लघुकाव्यों का तमिल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। जैन मुनि इळंगोवडिगळ द्वारा रचित 'शिलप्पधिकारम्' नामक महाकाव्य में श्रीरंगम् एवं तिरुवेंगडम स्थित विष्णु के रूप-सौन्दर्य का और कृष्ण का धेनुकासुर-वध, कुवलयापीड़-वध, बाणासुर-उद्धार आदि लीलाओं का वर्णन है। इस महाकाव्य के 'आयच्चियर कुरवै' नामक प्रसंग में गोपी-कृष्ण की रास-लीला का विस्तृत वर्णन है। इस प्रसंग में विष्णु के लिए तिरुमाल, नारायणन, मायोन आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। तिरुत्तक्कदेवर नामक जैनमुनि कृत 'जीवक चिन्तामणि' में कृष्ण की चीरहरण-लीला का उल्लेख है। बौद्ध-मतानुयायी चात्तनारकृत मणिमेखलै में कण्णन (कान्ह) से सम्बद्ध अनेक कथाओं का वर्णन है। कृष्ण का नप्पिन्नै (तमिल प्रान्त की राधा) और बलराम के साथ कुरवै-नृत्य (रास-नृत्य) करने का उल्लेख भी कवि ने किया है। शूळामणि नामक जैन-काव्य के कथा-नायक से सम्बद्ध कथाएँ कृष्ण की कथाओं से मेल खाती हैं। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि संघ-काल में प्रवाहित वैष्णव-धर्म की धारा जैन-बौद्ध-काल में पूर्णतया लुप्त नहीं होती, उसका प्रवाह कुछ क्षीण अवश्य हो जाता है।

ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में तमिल प्रदेश में यद्यपि शैव और वैष्णव-धर्म की स्थिति थी, किन्तु जैन और बौद्ध धर्मों का ही प्राबल्य था। इन धर्मों में प्राप्त उदात्त विचारों ने तमिल जनता को आकृष्ट किया। धीरे-धीरे जैनों-बौद्धों का आचरण गिरने लगा और इन निरीश्वरवादी मतों पर से जनता का विश्वास उठ गया। ऐसे समय में, ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी के आसपास, तमिलप्रदेश में शैव भक्त नायन्मार और वैष्णव-भक्त आलवारों का उदय हुआ। इन भक्तों ने अपने मधुर पदों के माध्यम से भक्ति की जो धारा प्रवाहित की उससे सम्पूर्ण तमिलप्रदेश आप्लावित हो उठा। भागवत पुराण में भविष्यवाणी के रूप में कहा गया है :—

"कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।
क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः॥
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी॥"

भागवत पुराण की इन पंक्तियों में स्पष्टतः आलवार भक्तों की ओर संकेत है। पोयगै आलवार, भूतत्तालवार, पेय आलवार और तिरुमलिशै आलवार पालारु (पयस्विनी नदी) के किनारे, नम्मालवार और मधुरकवि आलवार ताम्रपर्णी के किनारे, पेरियालवार और आण्डाळ वैगै (कृतमाला) के किनारे और

कुलशेखर आलवार पेरियार (प्रतीची नदी) के किनारे स्थित प्रदेशों में उत्पन्न हुए थे। दक्षिण के इन भक्तों ने ही भक्ति के माध्यम से यज्ञादि कठोर नियमों से युक्त वैदिक धर्म को सर्वग्राह्य हिन्दू-धर्म में परिवर्तित किया। इन भक्तों ने जैन-बौद्ध जैसे निरीश्वरवादी धर्मों के स्थान पर आस्तिक हिन्दू-धर्म का प्रचार किया। शीघ्र ही उन्हें जनता का समर्थन और राजाश्रय प्राप्त हुआ। आलवारों ने भागवत की प्रेमाभक्ति का प्रचार जनता में किया। आलवार, भक्त होने के साथ-साथ भावुक कवि भी थे। उन्होंने विभिन्न विष्णु-मन्दिरों में रहकर अपने इष्टदेव की स्तुति में अनेक मधुर पदों की रचना की। इन पदों की संख्या चार सहस्र है, जिसका संग्रह 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' कहलाता है। बारह आलवार और 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' शीर्षक से संगृहीत उनकी चौबीस रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—पोयगै आलवार (मुदर तिरुवन्तादि), भूतत्तार आलवार (इरण्डाम तिरुवन्तादि), पेय आलवार (मून्राम तिरुवन्तादि), तिरुमलिशै आलवार (तिरुच्चन्दविरुत्तम, नानमुखन तिरुवन्तादि), पेरिय आलवार (पेरियालवार तिरुमोलि, तिरुप्पल्लाण्डु), आण्डाळ (तिरुप्पावै, नाच्चियार तिरुमोलि), तोण्डरडिपोडि आलवार (तिरुमालै, तिरुपळ्ळि एळुच्चि), तिरुपाण आलवार (अमलनादिपिरान), तिरुमंगै आलवार (पेरिय तिरुमोलि, शिरिय तिरुमडल, पेरिय तिरुमडल, तिरुवेळुकूट्रिरुक्कै, तिरुक्कुरुन्दाण्डकम, तिरुनेडुन्दाण्डकम), कुलशेखर (पेरुमाल तिरुमोलि), नम्मालवार (तिरुवायमोलि, तिरुविरुत्तम तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवन्तादि) और मधुरकवि (कण्णिनुण शिरुत्ताम्बु)।

आलवार तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे, अतः उन्होंने दोनों भाषाओं के साहित्य से विचार ग्रहण किये। 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' के विभिन्न पदों में वेद, उपनिषद् तथा गीता के अनेक विचारों का प्रतिपादन है। विष्णु और उनके नाना अवतारों की लीलाओं, ऐतिहासिक, पौराणिक और महाभारत-सम्बन्धी प्रसंगों, विभिन्न देवी-देवताओं तथा वैष्णव-तीर्थों का वर्णन है। विष्णु के अवतारों में राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिक है। इन अवतारों में भी आलवारों का मन कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में सबसे अधिक रमा है। आलवारों को सामान्यतः विष्णु-भक्त और विशेषतः कृष्ण-भक्त कहा जा सकता है।

आलवारों के साहित्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अपूर्व समन्वय है। भक्ति को ज्ञान एवं कर्म से उच्चतर बताते हुए आलवारों ने उसे भगवद्-प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। आलवारों ने तमिल की अनेक साहित्यिक परम्पराओं का पालन किया। संघकालीन साहित्य में प्रतिपादित युद्ध-प्रेम को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया। बाह्य संघर्ष को आन्तरिक संघर्ष में और लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में परिणत किया। आलवारों ने अपने भक्तिमय पदों के माध्यम से तमिल प्रदेश में धार्मिक वातावरण की सृष्टि की। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊँच-नीच के भेदभाव की गर्हणा की। उनके पदों में भक्ति-तत्त्वों के साथ-साथ ब्रह्म, जीव, जगत् आदि दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन भी है।

आलवारों ने अपने पदों में पुराणों में प्राप्त कृष्ण-कथा के साथ-साथ तमिल प्रदेश में प्रचलित कृष्ण-सम्बन्धी प्रसंगों का भी समावेश किया है, जैसे दधि पाण्डन-उद्धार, सीमालिकन-उद्धार, कुरुन्द मरम (नीप वृक्ष) रूप में खड़े असुर का उद्धार आदि। उनके पदों में कृष्ण-चरित का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। पहला, आलवार पहुँचे हुए भक्त थे, उनका उद्देश्य कृष्ण-कथा कहना नहीं, अपितु भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति था। दूसरा, आलवारों के काल में जैन-बौद्ध धर्मों का प्राबल्य था। क्षीण होते हुए भागवत-धर्म का पुनरुत्थान आलवारों का प्रमुख लक्ष्य रहा, अतः कृष्ण-कथा को अधिक महत्त्व न देकर उन्होंने

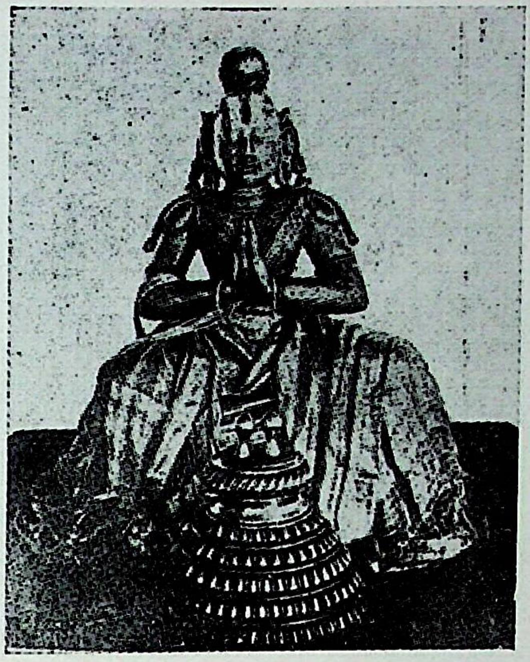

श्री पेयालवार, पृ० ५

श्री तिरुमंगै आलवार, पृ० ४६

श्री कुलशेखरालवार, पृ० ३०

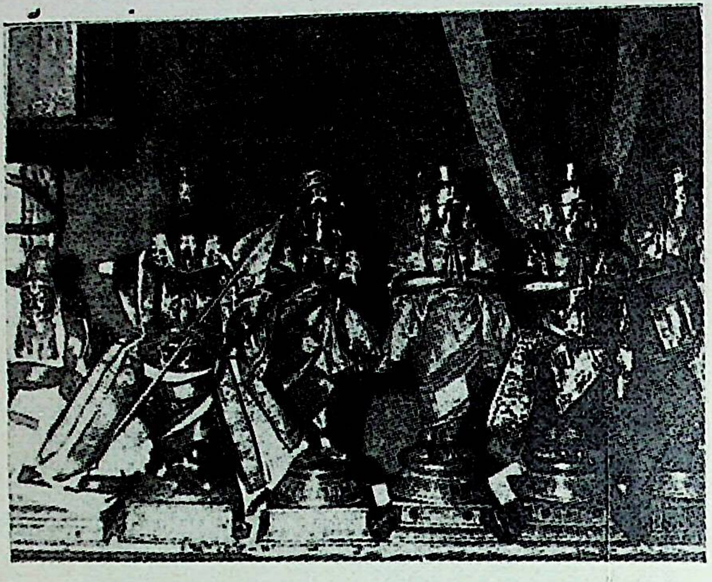

आलवारों के उत्सव विग्रह

आलवारों के उत्सव विग्रह

श्री नम्मालवार

श्री पोयगै आलवार, पृ० ३

श्री आण्डाल (रंगनायिकी) : विल्लिपुत्तर,पृ० २४

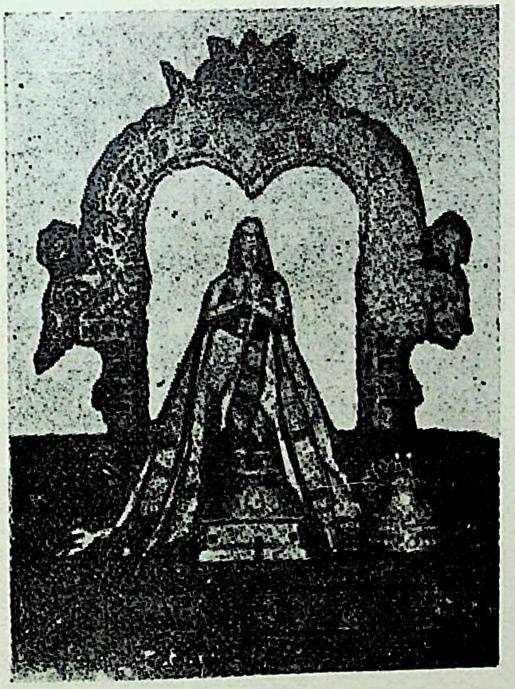

श्री भूतत्तालवार, पृ० ५,९२

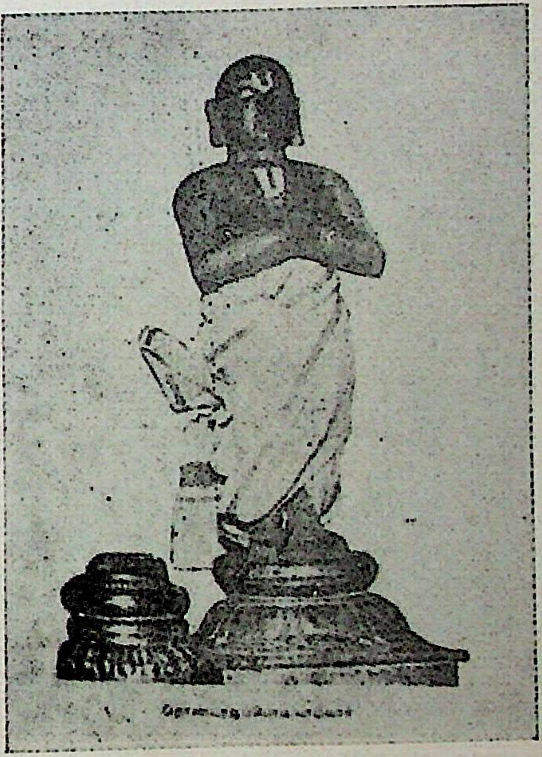

श्री तोण्डरडिप्पोडि आलवार, पृ० २७

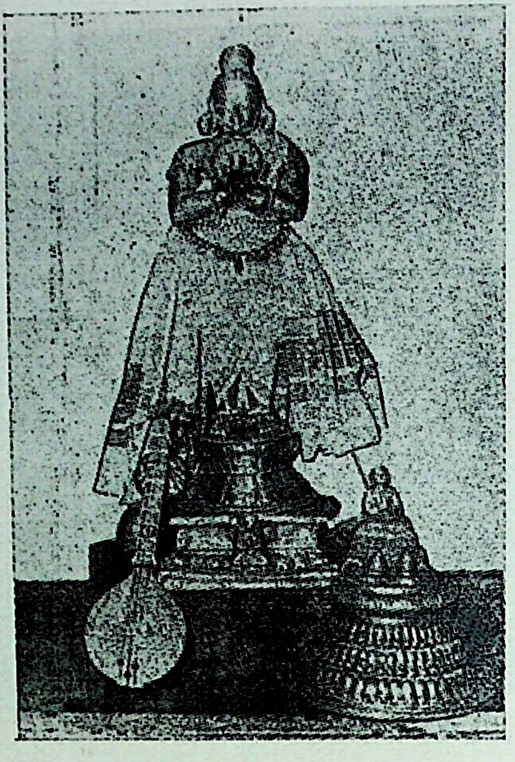

तिरुप्पाणाल्वार, पृ० ४४

श्री कंवर (सपत्नीक) की शिलामूर्ति : तेरेपुन्दूर, पृ० ३१

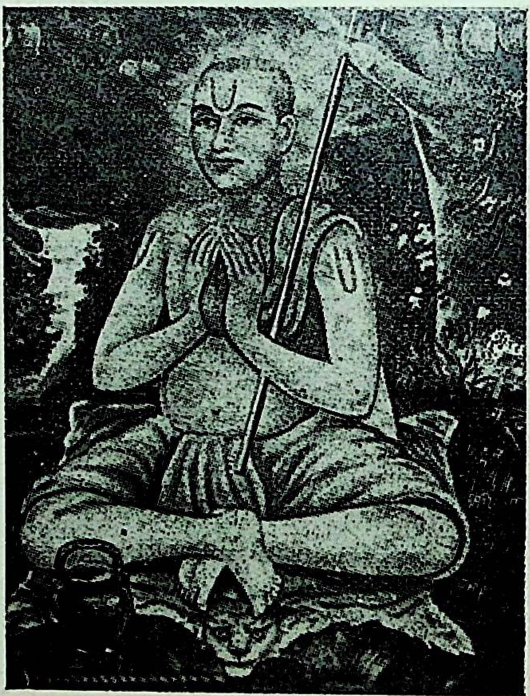

श्री नारायण स्वामी पृ० ५५

उसके मार्मिक प्रसंगों को ही सरस पदों में प्रस्तुत किया। फिर भी उनके पदों में कृष्ण के जन्म से लेकर परधामगमन तक की नाना लीलाओं का वर्णन मिल जाता है।

आलवारों के पदों में युगीन सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का सुन्दर सजीव चित्रण है। विभिन्न वैष्णव-तीर्थों का वर्णन करते हुए उन्होंने वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव अंकन किया है। आलवार-साहित्य में भक्ति-रस की प्रधानता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उनके पदों में वात्सल्य, शृंगार और शान्त रस की त्रिवेणी प्रवाहित है।

आलवारों का युग धार्मिक संघर्ष का युग था, अतः वे प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य की रचना न कर सके। 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' मुक्तक पदों का संग्रह है। यह भक्ति-ग्रन्थ होने के साथ-साथ उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ भी है। आलवारों ने नाना पदों की रचना करके तमिल में उच्चकोटि के कृष्ण-काव्य का निर्माण करने के साथ-साथ तमिल के काव्य को समृद्ध भी किया है। उन्होंने अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति परिनिष्ठित तमिल भाषा में की, जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। प्रबन्धम् के पदों में विविध छन्दों और अलंकारों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। उनके साहित्य ने तमिल प्रान्त के सामाजिक-धार्मिक जीवन को, विविध कलाओं को और परवर्ती तमिल-साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है।

तमिल भक्ति-परम्परा में आलवारों के उपरान्त आचार्यों का युग प्रारम्भ होता है। आचार्यों में प्रथम थे नाथमुनि, जिन्होंने ईसा की दसवीं शताब्दी के आसपास आलवारों के पदों का संग्रह 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' नाम से किया। इन आचार्यों ने आलवारों द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग का अनुसरण करते हुए वैष्णव-धर्म से सम्बद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या की। ये वैष्णव आचार्य तमिल और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने तमिल वेद (प्रबन्धम्) और संस्कृत वेदों का गम्भीर अध्ययन कर उनमें सामंजस्य स्थापित करने का यत्न किया। समस्त भारतवर्ष में घूम-घूमकर वैष्णव-भक्ति का प्रचार किया और बड़ी सतर्कता से शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया।

इन वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रवर्तित विभिन्न भक्ति-सम्प्रदाय हैं—श्री वैष्णव-सम्प्रदाय, ब्रह्म-सम्प्रदाय, निम्बार्क-सम्प्रदाय और रुद्र-सम्प्रदाय। कालान्तर में वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन होने पर रुद्र-सम्प्रदाय उसमें अन्तर्भुक्त हो गया। इन चारों सम्प्रदायों के आचार्यों ने आलवार-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की है।

तमिल प्रान्त में ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी से दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक शैव और वैष्णव-मतों का प्रचार-प्रसार होता रहा, किन्तु कालान्तर में शैव-धर्म की प्रधानता हो गयी। बारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक तमिल में जो भक्ति-साहित्य रचा गया है उसमें से अधिकांश का सम्बन्ध शैव-धर्म और दर्शन से है। इसके कुछ कारण हैं। पहला, तमिल प्रान्त के वैष्णव आचार्यों ने वैष्णव-धर्म के प्रचार के निमित्त तमिल प्रान्त को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। उन्होंने प्रबन्धम् के पदों की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ-साथ उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भी भाष्य लिखे। साथ ही इन आचार्यों ने 'प्रबन्धम्' पर जो टीकाएँ लिखी हैं उनमें विष्णु के कृष्णावतार के स्थान पर रामावतार को अधिक महत्त्व दिया गया है। फिर भी लीलानायक कृष्ण की कथा के प्रति जनसामान्य का विशेष झुकाव बना रहा। बारहवीं शती से इस प्रदेश में शैव-मत का प्राधान्य होने लगा। इसका कारण यह था कि इन शताब्दियों में तमिल प्रान्त में जिन राजाओं का शासन रहा उनमें से अधिकांश शिव-भक्त थे, अतः कवियों को शैव-धर्म और शिव-भक्ति सम्बन्धी कृतियों की रचना के लिए विशेष प्रोत्साहन मिला। यह

होते हुए भी हमें इन शताब्दियों में वैष्णव-भक्ति (कृष्ण-भक्ति) सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

आलवार-आचार्य-परवर्ती युग में रचित वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है महाकवि कम्बन रचित कम्ब रामायणम । कम्बन मूलतः राम-भक्त थे, अतः उन्होंने अपनी कृति में कृष्ण-चरित एवं कृष्ण-लीलाओं का वर्णन नहीं किया ।

इसी युग में माधव पण्डित ने संस्कृत भागवत का तमिल में अनुवाद किया । इनके उपरान्त चेव्वै चूडुवार और अरियप्प पुलवार नामक विद्वानों ने भागवत पुराण का अपने ढंग से तमिल अनुवाद प्रस्तुत किया । सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में वरदराज अय्यंगार (अरुळाळदासर) ने नारद द्वारा रुक्मिणी से कही भागवत की कथा को तमिल में प्रस्तुत किया । सत्रहवीं शती में पिळ्ळै पेरुमाल अय्यंगार ने अष्ट प्रबन्धम् की रचना की जिसमें कलम्बकम, मालै, अन्दादि आदि काव्यशैलियों में विष्णु एवं उनके कृष्णावतार की लीलाओं का गान है ।

बारहवीं से उन्नीसवीं शती के मध्य कुलैक्कादर, सौम्य नारायणन, वरदराजन, अलगर, वेंकटाचलपति, श्री रंगनाथन आदि नाना नामों से प्रसिद्ध विष्णु भगवान् के सम्बन्ध में अनेक कृतियों की रचना हुई। कलम्बकम, अन्दादि, शतकम, पदिकम, पत्तु, उला, पिळ्ळैत्तमिल, शरणम, तुदि आदि विविध काव्यशैलियों में रचित इन कृतियों में स्थान-स्थान पर कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है ।

इस कालखण्ड में महाभारत की कथा को लेकर जिन कृतियों की रचना की गयी उनमें भी कृष्ण-चरित्र को प्रधानता मिली है । इन कृतियों में कृष्ण विभिन्न पात्रों के और स्वयं रचयिता के इष्टदेव के रूप में चित्रित हैं । इस वर्ग की प्रमुख कृतियाँ हैं—विल्लिपुत्तूरार आलवार कृत विल्लिभारतम्, नल्लापिळ्ळै कृत भारतम्, देवराज पिळ्ळै कृत कुचेलोपाख्यानम्, शरवण पेरुमाल कृत अश्वमेधपुराणम्, अरुणाचल भट्टर कृत अश्वमेधयाग अम्मानै आदि ।

इस कालखण्ड में गद्य-पद्य में रचित लोकनाटकों में भी कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख स्थान मिला है । इनमें मुख्य हैं—कृष्णविलासम, पाण्डवर शूदाट्टम, अर्जुन नाड्हम, अल्लि अरशाणि नाड्हम, कृष्णन दूदु नाड्हम, पारिजात परिणयम, सुभद्रै मालैयीडु नाड्हम, कृष्णचन्दिर पारिजात लीलै, कृष्णनतिरुक्कोइलकविदै, भागवद अम्मानै, गजेन्द्रमोक्षम, दशावतारप्पदिकम आदि ।

अनन्द भारती, परांकुशदासर, लक्कुमण पेरुमाल पिळ्ळै, गोपाल अय्यर आदि कवियों ने अपने भजनों और लोकगीतों में विष्णु और उनके कृष्णावतार की लीलाओं का गान किया है ।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण से तमिल-साहित्य के आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है । इस युग की सर्वप्रमुख घटना है गद्य और उसकी नाना विधाओं का आविर्भाव एवं विकास । किन्तु साहित्यकारों के एक वर्ग ने प्राचीन काव्य-परम्परा को नवीन रूप में विकसित किया । आधुनिक तमिल कवियों में सर्वप्रमुख हैं सुब्रह्मण्य भारती । भारती देश-भक्त होने के साथ-साथ कृष्ण के अनन्य भक्त थे । उनकी कृष्ण-भक्ति कण्णन पाट्टु में व्यक्त हुई है । इन कविताओं में कवि ने कृष्ण को मित्र, प्रेमी, प्रेमिका, माता, पिता, राजा, देवता, कुलदेवता, गुरु, शिष्य, सेवक, शिशु आदि नाना रूपों में प्रस्तुत किया है । कण्णन पिरप्पु, कण्णनै वेण्डुदल, राधै पाट्टु, कण्णनतिरुवडि आदि कविताओं में भी भारती ने अपनी कृष्ण-भक्ति की अभिव्यंजना की है । पांचाली शपदम् (पांचाली की प्रतिज्ञा) भारती का प्रसिद्ध खण्डकाव्य है । व्यासकृत महाभारत के द्रौपदी-

प्रतिज्ञा प्रसंग पर आधृत इस कृति में कवि ने एक ओर अपनी कृष्ण-भक्ति को व्यक्त किया है और दूसरी ओर युगीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का सजीव अंकन किया है। इस रूपक-काव्य में पांचाली भारत माता की, कौरव विदेशी शासकों के और पाण्डव अपने देश की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ उस युग के देशी राजाओं के प्रतीक हैं। पांचाली शपदम् नोण्डि शिन्दु नामक लोकगीतों की शैली में रचित है। वस्तुतः भारती को इस कृति की रचना की प्रेरणा तत्कालीन तमिल-समाज में प्रचलित कृष्ण-सम्बन्धी लोकगीतों और लोकनाटकों से मिली थी।

भारती के बाद स्वामी शुद्धानन्द भारती और कण्णदासन ने कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी नाना कविताओं की रचना की। अपने को कण्णन (कान्ह) का दास कहनेवाले इस कवि ने विभिन्न कविताओं में कृष्ण को अपने इष्टदेवता और मार्गदर्शक गुरु के रूप में चित्रित किया है।

स्वर्गीय हा० कि० वालम् नामक कृष्ण-भक्त कवयित्री ने कृष्ण की महिमा का गान करते हुए मोहन अमुदम नामक कृति और अनेक स्फुट गीतों की रचना की ! अत्तुक्काडु वेंकटकृष्ण अय्यर ने राधा-कृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध अनेक भजनों की रचना की है। ये भजन तमिलनाडु में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

प्रसिद्ध राजनीतिक नेता एवं विद्वान् स्वर्गीय राजाजी ने क्रमशः चक्रवर्ती तिरुमहन और व्यासर विरुन्दु शीर्षक से रामायण और महाभारत की कथा को सरल तमिल भाषा में प्रस्तुत किया है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अत्यन्त प्राचीनकाल से तमिल प्रान्त में विष्णु के कृष्ण-रूप की उपासना का प्रचार था। प्रायः सभी कालों के कवियों ने अपनी कृतियों में विष्णु एवं उनके कृष्णावतार की नाना लीलाओं का वर्णन किया है। तमिल कृष्ण-काव्य की सुदीर्घ परम्परा में आलवार भक्तों का विशिष्ट स्थान है। उनके साहित्य में कृष्ण-भक्ति का चरम विकसित रूप दृष्टिगत होता है। आलवारों का 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' तमिल कृष्ण-काव्य-परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसीमें सर्वप्रथम कृष्ण के जन्म से लेकर परमधाम-गमन तक की नाना लीलाओं का विस्तृत सरस वर्णन प्राप्त होता है। आलवारों के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काल में रचित कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ प्रबन्धम् की समता नहीं कर पाती हैं। अतः तमिल कृष्ण-काव्य कहते ही अनायास हमारा ध्यान बारह आलवार भक्तों और उनके दिव्य मधुर पदों के संग्रह 'नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्' की ओर चला जाता है।

—डॉ० (कुमारी) के० ए० जमुना

'तिरुप्पल्लाण्डु'[1]

(श्रीमंगलाशासन)

परमात्मा के रूप और गुणों से आकृष्ट होकर सन्त उनके प्रति भक्ति करते हैं और उसीसे आनन्दित होते हैं। भगवदनुभव में सन्तों की दो दशाएँ होतो हैं—ज्ञान-दशा और प्रेम-दशा। ज्ञान-दशा में उन्हें इस बात का ज्ञान बना रहता है कि श्रीमन्नारायण ही सर्वेश्वर और सर्वरक्षक हैं और बाकी सब उनके अधीन रक्ष्यवर्ग हैं जो परमात्मा से अपने निस्तार की प्रार्थना करते हैं। प्रेम-दशा में सन्तों को परमात्मा से अत्यधिक प्रेम होता है, जिसके कारण वे समझने लगते हैं कि परमात्मा रक्ष्य-वस्तु हैं और उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है। अतः वे भगवान् के मंगल की कामना अर्थात् मंगलाशासन करने लगते हैं।

इस तरह परमात्मा के मंगलाशासन करनेवालों में पेरियाळ्वार (श्रीविष्णुचित्त) को प्रमुख स्थान दिया जाता है। वे अपने पदों को इस मंगलाशासन (पल्लाण्डु) से आरम्भ करते हैं।

(१)

पल्लाण्डु पल्लाण्डु, पल्लायिरत्ताण्डु पल्कोडि नूरायिरम्,
मल्लाण्ड तिण्डोल् मणिवण्णा ! उन् शेवडि शेव्वि तिरुक्काप्पु ॥

—वहु वर्ष (विजयी रहो), वहु वर्ष (विजयी रहो), वहु सहस्र वर्ष (विजयी रहो)। वहु कोटि शत सहस्र (वर्ष विजयी रहो) मल्ल को परास्त करने में (समर्थ) प्रबल भुजावाले मणि-वर्ण ! तुम्हारे अरुण चरणों का सौन्दर्य सुरक्षित रहे।

(२)

अडियोमोडुम् निन्नोडुम् पिरिविन्रि आयिरम् पल्लाण्डु,
वडिवाय् निन् वल-मार्बिनिल् वाळ् किन्र मंगैयुं पल्लाण्डु,
वडिवार् शोदि वलत्तु उरैयुम् शुडराळियुम् पल्लाण्डु,
पडै पोर् पुक्कुमुळङ्गुम् अप्-पांच-शन्नियमुम् पल्लाण्डे ॥

—हम, जो तुम्हारे दास हैं, तथा तुम, (दोनों) विना वियोग के वहु सहस्र वर्ष (विजयी रहें)। सुन्दर रूप के साथ तुम्हारे दक्षिण वक्षःस्थल में निवास करनेवाली देवी (लक्ष्मी) भी वहु वर्ष (विजयी रहें)। सशरीर ज्योति के समान तुम्हारे दक्षिण में स्थित दीप्तिमान् (सुदर्शन) चक्र भी वहु वर्ष (विजयी रहे)। सेनासहित युद्ध में उतरकर गरजनेवाला वह पांचजन्य भी वहु वर्ष (विजयी रहे)।

—पेरियाल्वार

---

[1] दिव्य प्रबन्ध (आलवारों की वाणियाँ), भाग १, हिन्दी भवन, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन, से साभार।

तमिलनाडु के कृष्ण-भक्त

अधिवीरराम पांडियन्

अधिवीरराम पांडिय वंश के राजा थे। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इन्होंने सन् १५६४ ई० में पांडिय राज्य का शासन-सूत्र सँभाला था। राजा बनने के पहले इनका नाम था—अषगन् पेरुमाळ्। इनके पिता का नाम तिरुनेलवेलिप्पेरुमाळ् था। यद्यपि इन्होंने विष्णुसूचक 'पेरुमाळ' नाम धारण किया तो भी जन्म से ये शैव ही थे। इन्होंने शिव-भक्ति की कविताएँ भी की हैं, परन्तु इनका 'कूर्मपुराण' ही सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें कृष्ण-लीलाओं का विशद वर्णन है। इस काल के अन्य राजाओं ने कई विवाह किये थे। पर अधिवीरराम पांडियन् एकपत्नीव्रत थे। पत्नी का नाम सम्भवतः कुवलवाय मोष था। इनके अभिराम पांडियन् नाम का एक ही पुत्र था।

अधिवीरराम पांडियन् ने पहले 'नैड़दम्' की रचना की और उसे अपनी विदुषी भाभी, वरतुंगराम पांडियन् की पत्नी को दिखाया। भाभी ने उक्त ग्रन्थ की सराहना की, परन्तु यह भी कहा कि ऐसी कवित्व-शक्ति का उपयोग मानव-गाथा में नहीं, दैवी गाथा में होना चाहिए। भाभी के सुझाव से अषगन् गद्गद हुए और 'कूर्मपुराण' की रचना आरम्भ की। इसके 'पूर्वकाण्ड' में राम और कृष्णावतार की लीलाएँ वर्णित हैं। इस ग्रन्थ में कुल ११५ अध्याय और ३७१७ गीत हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने लिंग पुराणम्, वेट्रिवेर्कै आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

पांडियन् की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। इनके सान्निध्य के इच्छुक भक्त, विद्वान् और कवि सुदूरवर्ती स्थानों से आने लगे। ये उन कवियों को आश्रय और भेंट देकर प्रोत्साहित करते थे।

इनके द्वारा विरचित 'कूर्मपुराण' से कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी कुछ पद्य यहाँ उद्धृत हैं :

(१)

ओवियर् एषुद ओण्णाप् पेरेषिलुरुवम् वायन्द
गोवियरोड्डु मिन् पुनड्रिनंगूड्डु मेल् वैच्
सेविनद्दु उरुवायेय्दुम् अवुण्णनैच् चेंगण् मायन्
मेवु कोड़िरुत्तु वीष्त्ति वेट्रुडलाक्किनानो।

'ऐसी सुन्दर गोपियों से आवृत्त, जिनकी सुन्दरता का तद्रूप चित्र खींचना श्रेष्ठ चित्रकारों से भी सम्भव नहीं होता, श्रीकृष्ण ने कई प्रकार के मायारूप लेनेवाले राक्षस को गिराकर मार डाला। ऐसे कृष्ण की शरण में मैं जाऊँ।'

(२)

तिरुमार्बवनेन्ने तिरुक्कुषैयिर्
कुरुमामणि सेर्त्तिय कुण्डलमुम्
विरि मा मणि माड़मुम् वेण्कुडैयु
नरकासुरन् वौवि नड़न्दननाल

'जो कृष्ण श्रीवत्स से विभूषित वक्षःस्थल, मणि-जटित कुण्डलों से विभूषित कानों एवं मणिमुकुट से शोभित तेजोमुख से युक्त होकर सबके लिए छत्र-छाया के समान विराज रहे हैं, उस कृष्ण के प्रति नरकासुर ने क्रोध-भाव से आचरण किया। क्या ऐसी मूर्खता भी सम्भव है ?'

(३)

कोन्ड्रैयंकुषनि ओदै केट्टरुङ्कोम्बरन्नार
मंड्रलंकून्दल् सोर वालवळै वाय् विट्टाप्पं
पोन्ड्रिगष मुलैयिनोर् काष मणिवड़म् प्रदैप्प वोडिच्
चेन्ड्रिळ मयिर् कुषाम् पोल सेल्वनै वळैन्दु कोण्डार्

'बाँसुरी की मधुर ध्वनि श्रवण करते ही मेघराशि से सुशोभित केशराशि को उठाकर या वेणी लगाकर बाँधे बिना ही, करों के कंगनों को ध्वनित करते हुए, स्वर्णपात्र जैसे लगनेवाले स्तनों से युक्त गोपिकाएँ रेतीली भूमि में नूपुरों से युक्त पैरों को धँसाती हुई दौड़ पड़ती थीं और सुन्दर मयूरवृन्द के समान अपनी साड़ियों से वर्ण-वर्ण की आभा छिटकाती हुई उस बालक को घेर लेती थीं। ऐसी सुन्दर गोपिकाओं से आवृत बालकृष्ण की शरण में मैं जाऊँ।'

ह० दु० स्वा०

अरुळाळ दासर

अरुळाळ दासर का जन्म १६वीं शताब्दी ई० में तमिल प्रदेश के दक्षिणी भूभाग में, जो उस समय पांडिय नाडु नाम से जाना जाता था, हुआ था। पांडिय वंश के राजा शैवों तथा वैष्णवों और उनके उपास्य देवों में समान रूप से श्रद्धा रखते थे। अतएव उनके आश्रय में दोनों सम्प्रदायों के कवियों ने भक्तिपूर्ण कविताओं से साहित्य का शृंगार किया। उनमें वैष्णव-धारा के राधा-कृष्ण-भक्त-कवियों में अरुळाळ दासर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके नाम का अर्थ है—कृपालु भगवान् के दास। बाल्यावस्था में इनका नाम 'वरदन' था, किन्तु वयस्क होने पर ये वरदराज अय्यंगार नाम से जाने जाते थे। इन्होंने वैष्णव-कुलोचित संस्कारों को प्राप्त किया और तमिल तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के पण्डित बने। अतः ये उभय वेदान्तकार उपाधि से विभूषित हुए।

इन्होंने भागवत के अठारह हजार श्लोकों का तमिल में रूपान्तर किया। उसका उद्घाटनोत्सव शुभकृत वर्ष, चैत्र मास, गुरुवार, उत्तराषाढ़ नक्षत्र सन् १५४३ ई० में हुआ था। मूल भागवत का अनुसरण करते हुए भी मौलिक प्रसंगों की उद्भावना द्वारा परिवर्द्धन करके इन्होंने श्रीमहाभागवत की रचना की। 'नप्पिन्ना' अथवा 'राधा-विवाह-पटल' इनकी मौलिकता का प्रमाण है। इस रचना में राधा के जन्म का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में है—

(१)

आयवन् सेय्यरिय तवत्तिनाल्
मायवन् तिरुमार्बिनिन् वैगिय
नायकिक्कु निगरेनु नन्नुद
तूय नम्पिन्नै येन्बवटोन्ड्रिनाळ।

'ग्वाल राजा की अपूर्व तपस्या से, भगवान् श्री विष्णु के श्रीवक्षःस्थल पर स्थित नायिका लक्ष्मी के अनुरूप, उनकी समकक्षा मानने योग्य, सुन्दर ललाटों से शोभित पवित्र नप्पिन्ना देवी का जन्म हुआ।'

राधा के विवाह का उल्लेख भी इस रचना में प्राप्त है—

(२)

तूय नप्पिन्नैयोडु तुलंगिय
मायवन् तनक्कुप् पिन्नुमानक
रायर् नल्गिय वायिरमादरै
नेयमोडळित्तु अन्बु निरैन्दनर्

'नप्पिन्ना के पिता ग्वालराज ने अपनी पुत्री को श्रीकृष्ण के साथ अकेले नहीं भेजा। उसके साथ एक सहस्र युवतियों को भी भेंट के रूप में देकर श्रीकृष्ण को वशीभूत किया। श्रीकृष्ण ने सबको समान प्रेम से अपनाया और सबके साथ प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहार किया।'

इस रचना में श्रीकृष्ण का सौन्दर्य-वर्णन प्रभावशाली रूप में हुआ है। इसे एक छन्द में देखिये :

(३)

वण्णन् मार्कलन् मार्बिन् वयंगिड
कण्णनन् मदनाणुंगवियुर
वेण्णिन् मंगैयरोडिन्ब मेय्दिये
मण्णिन् मीदु मगिऴ्दिरु नाडनिन्!

'श्रीकृष्ण के श्रीवक्षःस्थल के सामने मन्मथ भी लज्जित हो जाता था। श्याम के उस शोभामय वक्षःस्थल पर गौरवर्णांग युवतियाँ मोहित होकर सप्रेम लग जाती थीं। ऐसे भगवान्-स्वरूप कृष्ण इस मिट्टी की पृथ्वी पर आनन्द से शासन कर रहे थे।'

इस प्रकार 'भागवत' सम्मत होते हुए भी इनका 'महाभागवत' एक स्वतन्त्र कृति बन गयी है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में रचनाकार ने आराध्य के साथ ही अपना भी संक्षिप्त परिचय इन शब्दों में दिया है—

(४)

एदुकुलत्तु वरुमिरैयोन् चरितैये नर्सुखनिसैवा
ळदुवुचोलैत् तमिषिना लुरैत्तानवण् टिरुवरंगम्
पदिय मरवेत् तिरुक्करत्तोन् पषमरैयोन् वरदनेल्लिळ्
कधिपतिया युर्यन्दिरुपेररुळाळ नाथनरो !

'नेल्लै राज्य के अधिपति के रूप में विराजते हुए श्री अरुळाळनाथजी की कृपा से उन अरुळाळनाथजी का दास तथा श्रीरंगम् स्थित भगवान् श्रीरंगनाथजी के परम भक्त प्राचीन ब्राह्मण-कुल का वरदन, यादव-कुल में जन्मे देवों के देव का चरित्र शुद्ध तमिल भाषा में गाकर अमित सुख प्राप्त करता है।'

ह० दु० स्वा०

अषगिय मणवाळ जीयर

वैष्णवों की दक्षिण-कला सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा के अन्तिम आचार्य हैं—श्री मणवाळ मामुनिगळ कहलानेवाले अषगिय मणवाळ जीयर। आलवार तिरुनगरी में भागवत-प्रवक्ता श्री दाशरथि अण्णल के सुपुत्र के रूप में इनका जन्म सन् १३७० ई० में हुआ था। ये आदिशेष के अवतार माने जाते हैं और विद्वानों का मत है कि श्री रामानुज स्वामी के द्वारा जो सेवाएँ हो रही थीं उनको अग्रसर करते रहने के लिए ही इनका आगमन हुआ था।

अषगिय मणवाळर् ने छोटी उम्र से ही शास्त्रों का अध्ययन करना आरम्भ किया। तिरुवाय् मोषिप्पिळ्ळै नामक गुरु के सान्निध्य में इन्होंने शास्त्रों का निर्मल ज्ञान प्राप्त किया। फिर दूसरों को दीक्षित करने में लगे। इन्होंने ब्राह्मणों की चिन्तन-शक्ति को उद्बोधित तथा लोकायतन में मग्न साधारण मानवों को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित किया, भूलोकवासियों को स्वर्ग-द्वार दर्शित कराया और श्री रामानुज द्वारा प्रवर्तित सेवा-पद्धति को प्रशस्त किया।

यद्यपि इन्होंने उचित आयु में विवाह कर लिया था तो भी इनका गृहस्थ-जीवन दीर्घकाल का न रहा। शीघ्र ही इन्होंने संन्यास ग्रहण करके पुण्य क्षेत्रों की यात्रा करते हुए आलवारों के 'दिव्य प्रबन्ध' काव्य का प्रचार आरम्भ कर दिया। उसकी व्याख्या लिखी और रामानुज-दर्शन को लोकविश्रुत किया। सरल शैली, प्रिय वचनावली और दैविक ध्यान इनकी कृतियों की विशेषता है। 'अरुलिच्चेयल रहस्यम्' इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह गद्य-ग्रन्थों में विशेष आदरणीय बना है। इसमें भगवान् कृष्ण के विषय में ये लिखते हैं—

(१)

दूरवासियान तन्नै निनैन्त मैत्तनन्मार कादलियै मयिर् मुडिक्कुम्पडि भारतप्पोर मुडित्तु, द्रौपदियिनुडैय अलक्कण नूट्रुवरतम् पेंडिरुमेय्दि नूलिषप्प वेन्ड्र परंचुडराय् तन् स्वरुपम् पेखुमिरुक्किर कृष्णन् अर्जुननैप् पार्त्तु, एन्नैये उपायमागप् पट्रु; नान् उन्नै विरोधिकुळिनिन्ड्रुम् विडुविक्किरेन्, ने शोकियादे कोळ् एन्ड्रु, स्वरूपानुरूपमान उपायत्तै वेकियिडुगिरान्। अवन् एन्नैयुम् अव्विदमे विडुविप्पान् एन्पदिल् ऐयमिल्लै।

'पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी ने दूर देश स्थित कृष्ण का ध्यान किया तो श्रीकृष्ण ने महाभारत-युद्ध को इस प्रकार समाप्त किया, जिससे अन्यायी सैकड़ों कौरवों की पत्नियाँ विधवा हुईं, पर द्रौपदी ने अपनी शपथ में विजयिनी होकर केशों को रक्त से सिंचित कर पुनः बाँधा। युद्ध के प्रारम्भ में अपना तेजोमय

रूप दर्शाकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उत्साहित करके बताया कि तुम चिन्ता मत करो, एकमात्र मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सर्व दुःखों से छुड़ाऊँगा। और अन्त में अर्जुन को अपने में एकाकार कर लिया। ऐसे कृष्ण मुझे भी दुःखों से छुड़ायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

मणवाळ जीयर का दूसरा ग्रन्थ है 'आचार्य हृदयम्'। इस ग्रन्थ के एक सौ तेईसवें सूत्र में जीयर अपने को तमिल में 'नप्पिनै' कहलानेवाली राधा के समकक्ष तथा तीनों देवियों का सम्मिलित रूप भी मानते हैं। उक्त ग्रन्थ से यहाँ एक अंश उद्धृत है—

(२)

उण्णादु किडन्दु ओर मायैयिनाल एन्नुम वीरुडैय मुडिक्कुरियारोडु इत्तिरुमण् नेरेन्न ओण्णुदल ओप्पु। तेन्पालू नेडु माडम् कडुंचिलै अंबु मारि ऊट्टि नीरेष एरित्त पेरुन्तोट्रत्तु आरुयिर्क्काकुत्तन् आदियम् कालम् मणपुरै पोन्मादिन् तुगळाड़ि, एरुतेष् तषिइच्चरैयिनार् एन्नुम् अवट्रिले तोन्ड्रुम् !

'महालक्ष्मी रामावतार में सीता के रूप में अवतरित हुईं। वे खान-पान-नींद तजकर, रावण की राजधानी में रहते समय, अपने प्रियतम के ध्यान में ही मग्न रहीं। वैसे ही मैं भी (जीयरस्वामी) निराहार एवं निद्राहीन रहकर अपने प्रियतम का ध्यान करती हूँ।' (जीयरस्वामी सांसारिक दृष्टि से पुरुष होने पर भी आध्यात्मिक दृष्टि से अपने को प्रेमिका ही मानते हैं।)

भूमादेवी को समुद्र में डुबो दिया गया था। भगवान् ने कूर्मावतार लेकर उनका उद्धार किया और उन्हें अपनाया। भूमादेवी ने भगवान् के चरणों का स्वाद एवं भुजदण्डों की शक्ति का परिचय प्राप्त किया। वैसे ही मैं भी उनके चरणामृत मात्र का पान करती हुई उनकी वीरगाथाओं का श्रवण करती रहती हूँ।

यादव-कुल में कृष्णावतार के रूप में जन्म लेकर कन्या-शुल्क के रूप में अदम्य साँडों को शान्त करके नप्पिन्ना का हाथ प्राप्त किया (वरण किया)। निम्न जाति में जन्म लेने और निम्न जाति की कन्या को ग्रहण करने में उन्होंने हद कर दी। मैं तो निम्नातिनिम्न हूँ तथा राधा में जो-जो सद्गुण और प्रेमाधिक्य था वे सब मुझमें भी हैं।

लक्ष्मी, भूमा और राधा को अपनानेवाले भगवान् को मुझे भी अपना लेने में देर क्यों ?'

हृ० दु० स्वा०

आंडाळ

भक्तवर श्री विष्णुचित्त पेरियालवार अपनी पुष्पवाटिका में नित्यप्रति विविध पुष्पों का चयन करके तुलसी-दल के साथ माला गूँथकर अपने इष्टदेव परमात्मा कृष्ण को पहनाकर आनन्दानुभव किया करते थे। एक दिन बहुत देर तक पुष्प-चयन करते रहे। यद्यपि सूर्योदय नहीं हुआ था तो भी वाटिका में प्रकाश भरा हुआ था तथा तुलसी के पौधों से सुगन्ध व्याप्त हो रही थी। इस अपूर्व प्रकाश और सुगन्ध से वशीभूत होकर ये तुलसी-पौधों की ओर गये तो वहाँ अनुपम सुन्दरी बच्ची को देखा। वे इसे स्वप्न समझकर बार-बार आँखें मलते हुए देखने लगे तो ज्ञात हुआ कि वह स्वप्न नहीं, सत्य था। जैसे त्रेतायुग में महाराज जनक को खेत जोतते समय सीतादेवी प्राप्त हुई थीं, वैसे ही कलिकाल में भूमादेवी के अंश के रूप में इस शिशु का उदय हुआ था। नळ वर्ष, आषाढ़ मास, शुक्ल चतुर्दशी, मंगलवार, पूर नक्षत्र (आठवीं सदी उत्तरार्द्ध) में यह कन्या पेरियालवार को प्राप्त हुई। उस समय कोमल शिशु पर वाटिका के वृक्ष मृदुल पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। कोकिल मधुर गान कर रहे थे। तोते उस शिशु के पास आकर तुतलाकर आनन्द जता रहे थे। मन्दिर में शंख और मृदंग बज रहे थे। इस पवित्र वातावरण में पेरियालवार ने शिशु को अपने हाथों में उठा लिया और पुलकित होते हुए

भक्त एम्बार, पृ० ३१

श्री रामानुज स्वामी : पेरुवुदूर , पृ० १०५

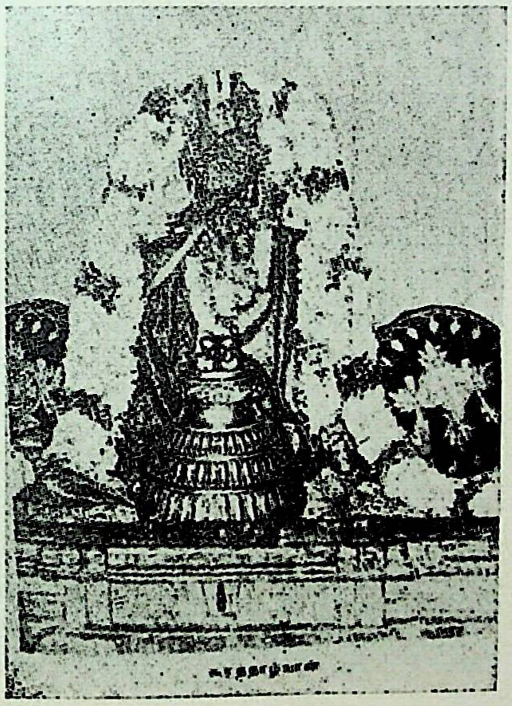

श्री कूरत्तालवार, पृ० ५२, १०७

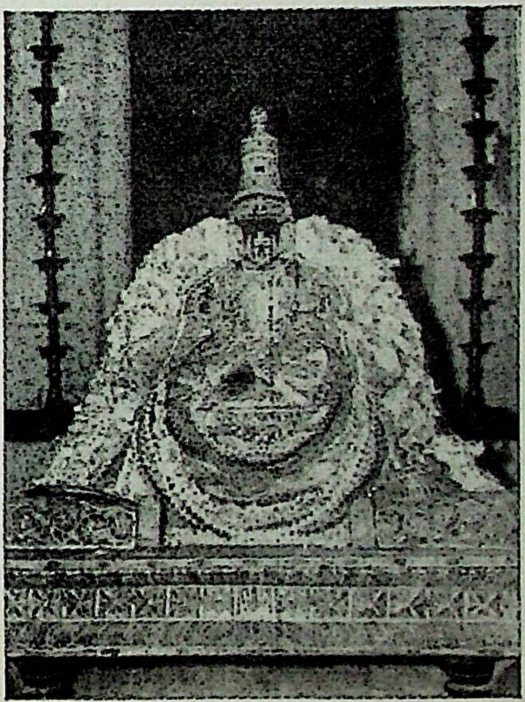

श्री वेदान्तदेशिकन्, पृ० ११५

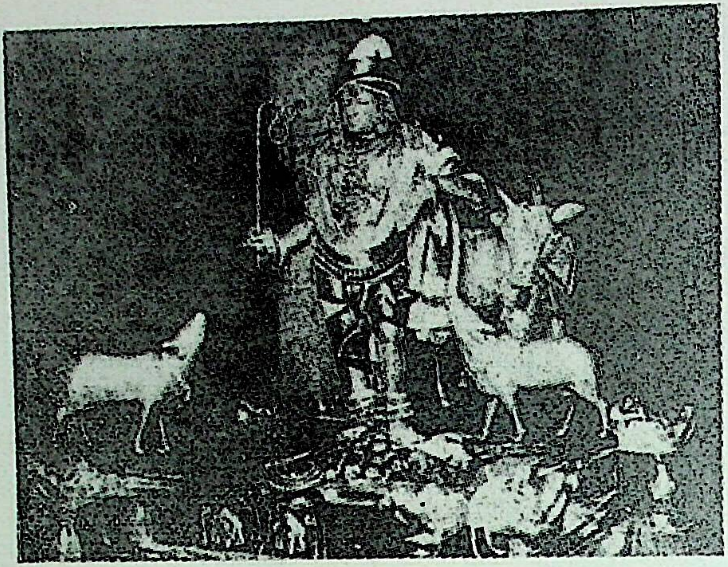

श्री राजगोपाल : मन्नारगुडी

श्री अष्टभुजम् आदिकेशव पेरुमाल : कांचीपुरम्, पृ० १०५

श्री निगमान्त (वेदान्त देशिकर्), पृ० ११५

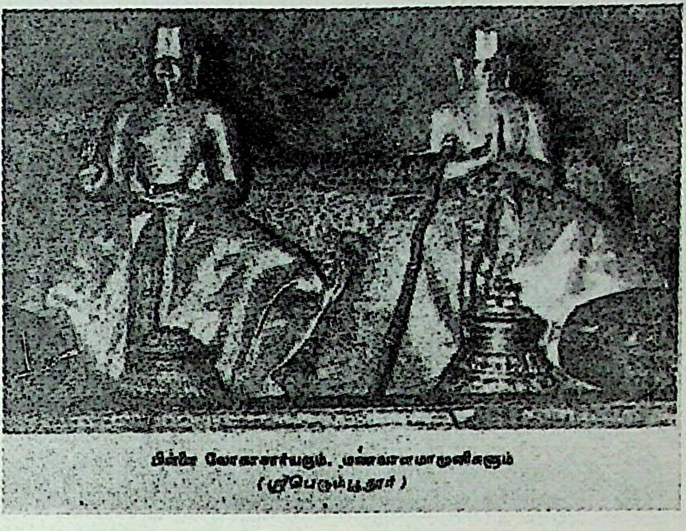
பிள்ளை லோகாசார்யரும், மணவாளமாமுனிகளும்
(ஸ்ரீபெரும்பூதூர்)

श्री पिल्लै लोकाचार्य और मणवाल मा मुनिगल, पृ० २,१०

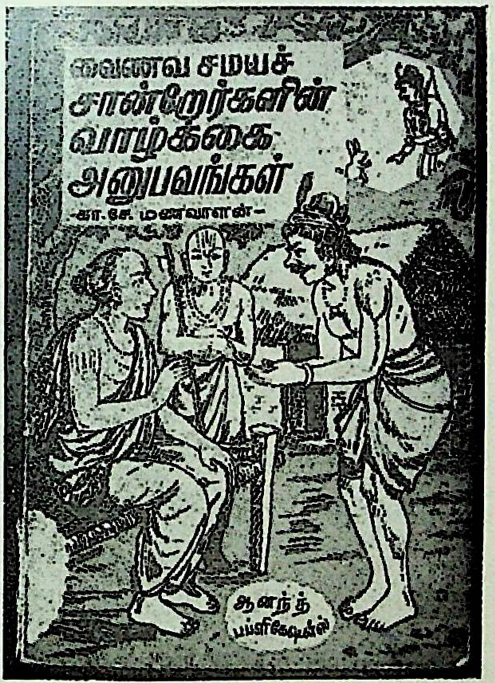
வைணவ சமயச் சான்றோர்களின் வாழ்க்கை அனுபவங்கள்
ஆனந்த் பப்ளிகேஷன்ஸ்

श्री पराशरभट्टर अपने शिष्य श्री नंजीयर के साथ एक शिकारी की झोपड़ी में, पृ० ७७

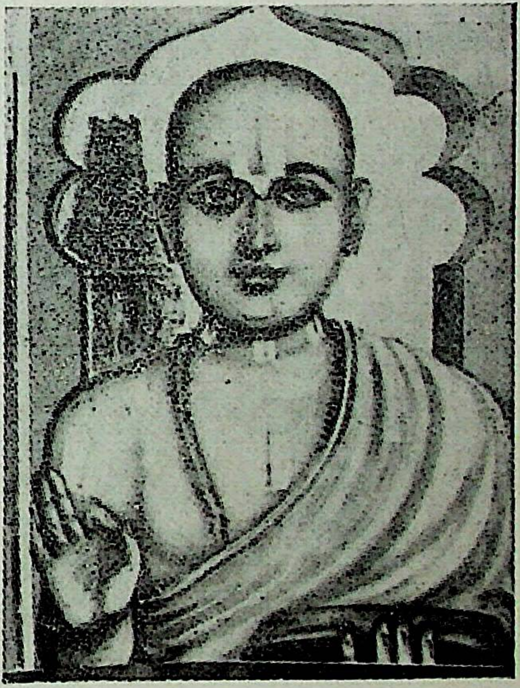

श्री पिल्लै लोकाचार्य, पृ० ८२

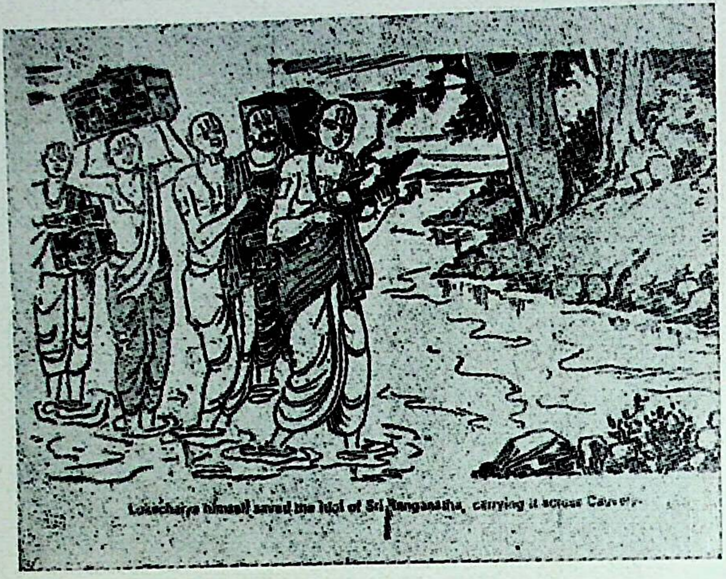
Lokacharya himself saved the idol of Sri Ranganatha, carrying it across Cauvery.

श्री पिल्लै लाकाचार्य श्री रंगनाथ जी की मूर्ति की रक्षा करने
हेतु हाथ में लिए कावेरी नदी पार करते हुए, पृ० ८२

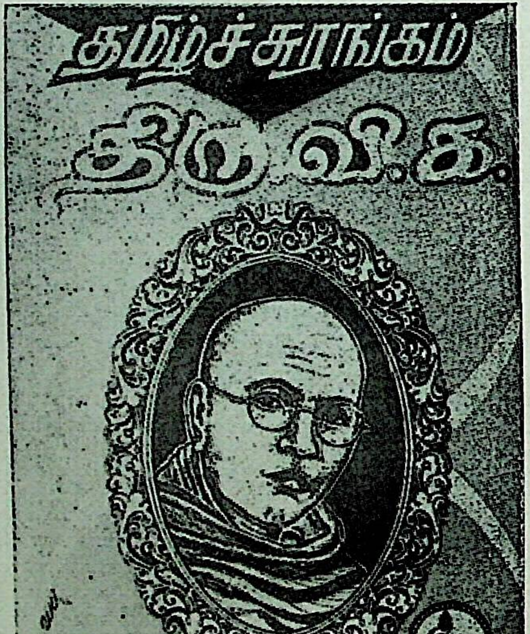
தமிழ்ச்சுரங்கம்
திரு.வி.க.

श्री तिरु० वि० कल्याण सुन्दर मुदलियार, पृ० ५६

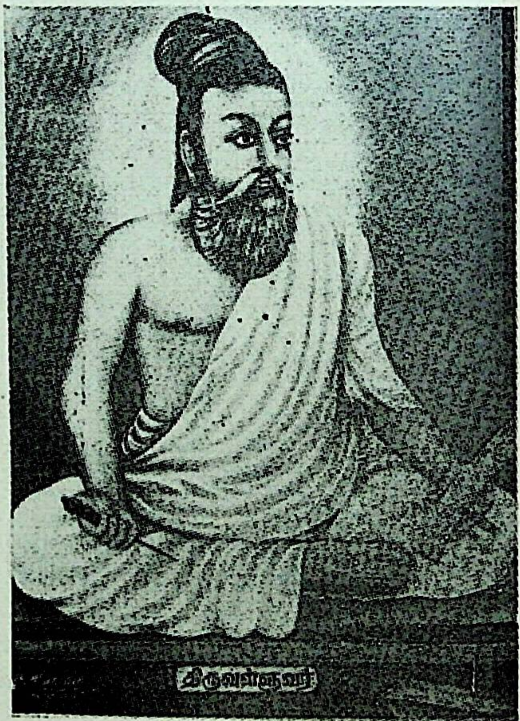

श्री तिरुवल्लुवर, ५२

घर ले आये। उनकी धर्मपत्नी व्रजा आनन्द, आह्लाद, भक्ति, प्रेम, वात्सल्य, कृतज्ञता आदि भावों में मग्न होकर आत्मविह्वल हो उठी। उसने पुत्री-प्राप्ति की कथा सुनते-सुनते उस तेजोमय शिशु को अपनी गोद में लेकर उसका नाम 'कोदै' रखा।

शिशु कोदै बढ़ती-बढ़ती बालिका बनी तो वह भी अपने पिता के साथ पुष्पवाटिका में जाती, फूल चुनती, माला गूँथती, मन्दिर जाती और वटपत्रशायी भगवान् को माला पहनाकर आनन्दविभोर हो जाती। यही उसकी क्रीड़ा तथा जीवनचर्या बन गयी। भक्तों का गान मुग्ध होकर सुनते-सुनते वह स्वयं कविता रचने लगी। प्रकृति-सौन्दर्य में वह कृष्ण-दर्शन करती, कोयल की कूक में कृष्ण की स्तुति सुनती। कृष्ण का सौन्दर्य और यश उसके मन और मस्तिष्क में व्याप्त हो गया। एक दिन पुष्पवाटिका में वृक्षालिंगित लता को देखकर उसको कृष्ण के आलिंगन की चाह हुई। तब तक वह किशोरावस्था को पहुँच गयी थी। उसका मन प्रेम-पाश के लिए तड़प उठा। कृष्ण का ध्यान उसे दिन-रात तड़पाने लगा। उसका शरीर सूखता गया, पगली-सी बनती गयी। वह दर्पण में अपना रूप देखकर सोचने लगती कि क्या मेरा सौन्दर्य कृष्ण के योग्य है? पेरियालवार ने अपनी पुत्री की स्थिति देखी और उसके विवाह की चिन्ता में पड़े। पर सुयोग्य वर कहाँ प्राप्त होगा? कौन उसके लिए पैदा हुआ है? इसी चिन्ता में वे मग्न रहने लगे।

एक दिन उन्होंने वटपत्रशायी भगवान् के लिए पुष्पमाला गूँथी और उसे एक टोकरी में रखकर बाहर गये। आण्डाळ ने सोचा कि ये मालाएँ धारण करके कृष्ण कितने सुन्दर लगेंगे तथा स्वयं पहनकर देने पर वे कितने प्रसन्न होंगे? ऐसा सोचकर उसने माला अपने गले में पहन ली तथा वेणी में भी धारण कर ली। उसने दर्पण में अपनी छवि देखी और मुग्ध होकर सोचा कि यदि मैं इसी प्रकार वधू-वेश में कृष्ण के पार्श्व में रहूँ तो हम दोनों की जोड़ी कितनी सुन्दर लगेगी? फिर उसे भय हुआ कि पिता देख लेंगे तो क्रुद्ध और दुःखी होंगे। इसलिए उसने मालाएँ उतारकर पूर्ववत् रख दीं। उस दिन विष्णुचित्त ने भगवान् को वे मालाएँ पहनायीं तो भगवान् का सौन्दर्य कुछ अधिक ही दीखा और सुगन्ध भी अधिकाधिक व्याप्त हुई। इससे अर्चक लोगों को विस्मय हुआ। वे इसे विष्णुचित्त की भक्ति की महिमा समझकर उनके प्रति अधिक आदर दिखाने लगे।

कोदै इसी प्रकार नित्यप्रति माला पहनकर रख दिया करती थी। उसने इसमें किसी भी प्रकार की त्रुटि या दोष का अनुभव नहीं किया। एक दिन जब वह माला पहनकर आत्मविस्मृत हो रही थी, तब विष्णुचित्त ने देख लिया। अपनी पुत्री का ऐसा अपचार देखकर वे काँप गये। वे आण्डाळ को इसका दोष समझाने लगे। उनकी बातें आण्डाळ के कानों में नहीं पड़ीं, किन्तु पिता को दुःखी देखकर उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। आलवार ने उसे समझाते हुए कहा, "बेटी! आगे अपचार न करो।" आण्डाळ ने सिर झुकाते हुए उत्तर दिया, "मैं तो उनकी प्रिया हूँ।" ऐसा उत्तर सुनकर आलवार स्तब्ध रह गये। वे पहनी हुई मालाओं को वैसे ही पड़े रहने देकर नये पुष्प चुन लाये और नयी मालाएँ गूँथने लगे। आण्डाळ ने भी उसमें योग दिया। आलवार अपनी पुत्री के अपचार पर चिन्तित और दुःखी थे। भगवान् को माला पहनाने में विलम्ब हो रहा था। वे मन्दिर की ओर तेजी से अग्रसर हुए। उस दिन माला पहनाने पर भगवान् के मुख पर न मुस्कराहट आयी, न पहले जैसी शोभा दिखी और न वैसी सुगन्ध ही फैली। गर्भ-गृह की कान्ति भी क्षीण रही। इससे आलवार और भी चिन्तित हुए।

वे अपनी पुत्री के अपचार और भगवान् की शोभा की न्यूनता से व्यथित होकर सो गये तो भगवान् ने स्वप्न में आकर कहा, "भक्तवर! आप अपनी पुत्री की महिमा नहीं जानते। वह पहनकर हमें देनेवाली ज्योति-लता है। उसकी पहनी मालाओं का

तिरस्कार करके आपने मुझे दूसरी मालाएँ पहनायीं। वे हमें प्रिय नहीं हैं। कोदै की पहनी हुई मालाएँ ही हमें प्रिय हैं और वे ही अधिक सुगन्धित हैं।" भगवान् के ये वचन सुनकर आलवार नवजीवन पा गये। उन्होंने सोचा कि हमारी पुत्री श्रीदेवी अथवा भूदेवी का ही अवतार है। वे आराध्य की आज्ञा शिरोधार्य करके प्रतिदिन कोदै की पहनी मालाएँ ही भगवान् को पहनाने लगे। भगवान् की शोभा और कान्ति तथा पुष्पों की सुगन्ध पहले से अधिक हुई। अर्चक लोग आलवार की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। वे वटपत्रशायी कृष्ण और आण्डाळ को दम्पति के रूप में पूज्य मानने लगे। इस वृत्तान्त का पता लोगों को लगा तो वे कोदै को 'चूडिक्कोडुत्ताळ', 'चूडिक् कोडुत्त नाच्चियार', 'आण्डाळ' (धारण करके देनेवाली, पहनकर देनेवाली श्रेयसी, शासिका) आदि नामों से विभूषित करके प्रसन्न होने लगे। तब से वह आण्डाळ अर्थात् भगवान् पर शासन करनेवाली नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

आण्डाळ की कृष्ण-भक्ति उत्तरोत्तर तीव्रतर होती गयी। विरहाग्नि से व्याकुल होकर वह भगवान् से ऐक्य पाने के दिन की प्रतीक्षा करने लगी। द्वापर में गोकुल की गोपियों ने मार्गशीर्ष महीने में कात्यायनी-व्रत रखकर कृष्ण की कृपा प्राप्त की थी। उस समय से कन्याएँ सुयोग्य पुरुष की प्राप्ति की प्रार्थना करते हुए मार्गशीर्ष मास में व्रत रखा करती हैं। आण्डाळ ने सोचा कि मैं भी कृष्ण को ही प्रियतम के रूप में प्राप्त करने के लिए व्रत धारण करूँ तो वे शीघ्र ही पतिरूप में प्राप्त हो जायेंगे। ऐसा सोचकर वह व्रत रखने लगी। उसने श्रीविल्लिपुत्तूर को ही गोकुल बनाकर, वहाँ की स्त्रियों को ही गोपिकाएँ मानकर वटपत्रशायी भगवान् में कृष्ण की भावना कर व्रत किया और उन्हीं दिनों 'तिरुप्पावै' के गीत गाये। (आजकल भी तमिलनाडु में वैष्णव-शैव के भेद के बिना सभी कन्याएँ मार्गशीर्ष महीने में ऐसा व्रत किया करती हैं और उस महीने के तीसों दिन विष्णु-मन्दिर तिरुप्पावै के गीतों से गूँज उठा करते हैं। इससे मन्दिर की शोभा द्विगुणित और वातावरण अधिक पवित्र हो जाता है। रात में विद्वानों द्वारा तिरुप्पावै के गीतों की व्याख्या और प्रवचन का कार्यक्रम चलता है। अतः तमिलनाडु में मार्गशीर्ष कृष्ण और आण्डाळ का महीना माना जाता है।)

आण्डाळ प्रिय-वियोग में निरन्तर पीली होती गयी। इससे विष्णुचित्त अत्यधिक चिन्तित हुए। अन्त में बहुत सोच-विचार करने के बाद वे आण्डाळ को साथ लेकर पुण्य स्थलों की यात्रा पर निकले। पहले वे दक्षिण मदुरै के पास के अषगरमलै गये। वहाँ भी आण्डाळ का मन स्वस्थ नहीं हुआ। फिर उत्तर की ओर तिरुप्पति जाकर तिरुमलै पर ले गये। वहाँ भी आण्डाळ पगली-सी बनी रही। इसके अनन्तर उन्होंने श्रीरंगम् जाने का निश्चय किया और उसे मार्ग के १०८ विष्णु-स्थलों की महिमा सुनाते गये। उन स्थलों की पुण्य कथाएँ सुन-सुनकर आण्डाळ भक्ति-धारा में प्रवाहित होती गयी। अन्त में उन्होंने श्रीरंगम् की कथा सुनायी तो उसका मन कुछ स्वस्थ हुआ और उसने उसे तन्मय होकर सुना। अब उसने श्रीरंगनाथ को ही श्रीकृष्ण का पूर्ण स्वरूप मान लिया। एक दिन उसने स्वप्न देखा—"नारणन नंबी अर्थात् भगवान् कृष्ण ने उससे विवाह कर लिया। कृष्ण का आकर उसका पाणिग्रहण करना, विवाह के वैदिक संस्कारों का सम्पन्न होना, मृदंग और शंख का बजना, वेद-मन्त्रों के बीच में कृष्ण और आण्डाळ का हाथ पकड़कर अग्नि-परिक्रमण करना, पैरों से अम्मि (शिला) स्पर्श करना, (तमिल में अम्मि वह पत्थर है, जिस पर खाद्य वस्तुएँ पीसी जाती हैं) मंगल आरती उतारना, झूला झूलना आदि सभी वैवाहिक क्रियाएँ उसे सम्पन्न होती प्रतीत हुईं।" इस स्वप्न ने उसको अकल्पनीय आनन्द प्रदान किया। नींद खुलते ही उसने अपनी सखी को सारा स्वप्न कविता

में सुनाया। (आजकल दक्षिण में वैष्णवों के तेनकलै ब्राह्मणों के घरों में विवाह के पर्व पर यही गीत गाया जाता है।)

इस स्वप्न के बारे में पेरियालवार को भी सूचना मिली। उन्होंने आण्डाळ से कहा, "तुम्हारा विवाह करने का समय आ गया है। तुमने किसीको अपने मन में रखा हो तो बताओ।" आण्डाळ बोली,—"मैं मृत्यु-लोक के किसी मानव की पत्नी नहीं बनूँगी। मैंने उसी मणिवण्णन (श्याम) को अपना पति चुन लिया है।" आलवार ने प्रश्न किया—"तुम्हारा वह श्याम किस नगर का है?" आण्डाळ ने सभी कृष्ण-स्थलों तथा वहाँ प्रतिष्ठित विग्रहों के नामों को सुनाने की विनती की तो आलवार स्थल और नाम गिनाते गये। श्रीरंगम् के श्रीरंगनाथजी का नाम सुनते ही आण्डाळ ने मुस्कराहट के साथ स्त्रियोचित लज्जा व्यक्त की। तब आलवार समझ गये कि वह श्रीरंगनाथजी से ही विवाह करना चाहती है। परन्तु भूलोकवासिनी का भगवान् से विवाह कैसे सम्भव है?

उसी दिन रात स्वप्न में श्रीरंगनाथजी ने उन्हें सुनाया—"तुम अपनी पुत्री कोदै को विवाह के योग्य अलंकारों से सज्जित करके मेरे मन्दिर में लिवा लाओ। हम उसका पाणिग्रहण करेंगे।"

भगवान् श्रीरंगम् ने मन्दिर के सेवकों को भी स्वप्न में आदेश दिया कि "तुम सब वाद्य, चमर आदि के साथ श्रीविल्लिपुत्तूर जाकर विवाह-सज्जा से युक्त आण्डाळ को हमारे मन्दिर में लाओ।"

दूसरे ही दिन मन्दिर के परिजन श्रीविल्लिपुत्तूर गये और श्री विष्णुचित्त को अपना स्वप्न सुनाया। श्री विष्णुचित्त तो तैयार ही थे। सब आण्डाळ को पालकी पर बैठाकर, वटपत्रशायी भगवान् की अनुमति लेकर श्रीरंगम् तक ले गये। वहाँ पालकी से उतरते ही आण्डाळ श्रीरंगनाथजी के गर्भगृह में प्रवेश करके भगवान् की मूर्ति के चरणों में जा बैठी। उसी समय एक महाज्योति प्रज्वलित हुई और आण्डाळ अदृश्य हो गयी। वह सशरीर भगवान् में समा गयी। इस दैवी लीला से सब विस्मय-विमुग्ध हो गये। विष्णुचित्त सबसे बिदा लेकर श्रीविल्लिपुत्तूर लौटकर पूर्ववत् भगवद्-सेवा में लग गये।

ऐसी भी कथा प्रचलित है कि पेरियालवार ने आण्डाळ का विवाह तिरुकुरुगूर में बड़े स्वयंवर के रूप में सम्पन्न किया तथा उसमें सभी वैष्णव-स्थलों के भगवान् तथा भक्तगण उपस्थित हुए। समागत देवी-देवताओं की उपस्थिति में ब्रह्मदेव ने आण्डाळ और श्रीरंगनाथ के विवाह में पुरोहिताई की। उस दिन रात में नव दम्पति शयन-कक्ष में पहुँचे। सुबह श्री तोण्डरडिप्पोडियालवार ने सुप्रभात का गायन किया। श्रीरंगनाथ आण्डाळ के साथ गरुड़ारूढ़ होकर श्रीरंगम् पहुँचे और दोनों वहाँ के श्रीविग्रह में समा गये।

आण्डाळ के कुल १७३ गीत हैं। उनमें से ३० 'तिरुप्पावै' तथा १४३ 'नाच्चियार तिरुमोलि' नाम से संगृहीत होकर तमिल कृष्ण-भक्ति-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

नाच्चियार तिरुमोलि का एक सुप्रसिद्ध गीत जिसे विवाह का स्वप्न देखते ही आण्डाळ ने अपनी सखी को सुनाया था, इस प्रकार है:

(१)

वारणम् आयिरम् सूष वलम् सेय्दु
नारण नंबि नड़क्किन्ड्रान् एन्नेदिर्
पूरणप् पोर् कुड़म् वैन्नुप् पुरम् एंगुम्
तोरणम् नाट्टक् कनाक्कण्डेन् तोषी नान्!

'मैंने स्वप्न में देखा, एक सहस्र गजों से आवृत्त होकर नारण नंबी कृष्ण मेरे समक्ष पैदल आ रहे हैं। सारा नगर तोरणों से सजा हुआ है और वेदविद् ब्राह्मण पूर्ण कलश लेकर उनका स्वागत कर रहे हैं।'

पावै नोन्बुके (मार्गशीर्ष महीने के व्रत) दिनों में प्रतिदिन जो एक-एक गीत गाया जाता है, वह

तिरुप्पावै कहलाता है। उसका एक गीत यहाँ उद्धृत है :

(२)

वेळ्ळि विळि शंखु इडम् कैयिल् कोण्ड
 विमलन् एनक्कु उरुक् काट्यन्;
उळ्ळम् पुगुन्दु एनै नैवित्तु,
 नाळुम् उयिरपेय्दु कूत्ताट्टुक् काणुम्;
कळ अविष चेण्पकप् पुदुमलर् कोदिक्
 कळित्तु इसै पाडुम् कुयिले !
मेळ्ळ इरुन्दु मिषट्रि मिषट्रादु, एन्
 वेंकटवन् वरक् कूवाय् !

'मेरा प्रेमी ध्वनिपूर्ण श्वेत शंख को बायें हाथ में धारण किये हुए है, वह निर्दोष है, उसने अपना रूप मुझे नहीं दिखाया, छिपा लिया, किसी तरह वह मेरे मन में प्रवेश कर गया है, मैं नहीं जान पाती कि वह कैसे घुस आया है? मेरे मन में पैठ जानेवाला वह चुप भी नहीं रहता। मुझे सताता है। सताकर अकरुण होकर छोड़ भी तो नहीं देता, प्रतिदिन मुझे नया जीवन देकर सुख-दुःख के बीच नचाता रहता है। हे सुन्दर कोयल, मधु बरसानेवाले चम्पक पुष्प से मधु चूसकर मुग्ध होनेवाले हे कोयल, उस मुग्धावस्था में आत्मविस्मृत होकर गा-गाकर आनन्द पानेवाले हे कोयल, तुम धीरे-धीरे तुतली बातें बोलकर अथवा बोले बिना भी मेरे लिए एक कार्य करो। अनजान में ही मेरे मन में घुसे हुए उस तिरुवेंकट स्वामी कृष्ण को मेरी आँखों के सामने आकर दर्शन देने के लिए कूक लगाओ, यही तुमसे मेरी एकमात्र विनती है।'

आण्डाळ की कृष्ण-भक्ति तमिल-साहित्य की अक्षय निधि है। इसी प्रकार सामाजिक रीति-नीति को सुसंस्कृत रूप देनेवाली साहित्यिक कृतियों में उनके द्वारा विरचित तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि का स्थान सर्वोपरि है।

ह० दु० स्वा०

आळवन्दार

आळवन्दार नाम से प्रसिद्ध श्री यामुनाचार्य नाथमुनि के पोते और ईश्वरमुनि के पुत्र थे। मणक्काल् नंबी के बाद इन्होंने आचार्य-स्थान ग्रहण किया था। नंबी ने अपने गुरु नाथमुनि के आदेशानुसार इनका जन्म-संस्कार करवाया और इनका नाम यमुनैत्तुरैवन् (यमुना-तीर-विहारी) रखा। इनके बालपन के गुरु महाभाष्यकार भट्टर थे। भट्टर को राजा से आज्ञापत्र मिला कि वे राज-विद्वान् आक्कियाष्वान् की अधीनता स्वीकार करें। यमुनैत्तुरैवन् ने अपने गुरु को ऐसा करने से रोक दिया और राजाज्ञा को फाड़ डाला। राजा ने समाचार जानकर उन्हें बुला भेजा तो इन्होंने जाने से इनकार कर दिया। फिर राजा ने इनके लिए पालकी भेजी, तब उस पर चढ़कर ये राजमहल गये।

रानी ने बालक का तेज देखा तो स्नेह-सिक्त होकर राजा से कहा—"यह बालक दैवी शक्तिसम्पन्न विद्वान् दीखता है, यह पराजित नहीं होगा।" राजा ने कहा—"यह आक्कियाषवान् से वाद-विवाद करे। यदि यह विजयी हो और हमारे विद्वान् हार जायँ तो मैं इस बालक को अपने राज्य का आधा हिस्सा दे दूँगा।" इस शपथ पर वाद-विवाद आरम्भ हुआ।

आक्कियाष्वान् ने कहा—"हे बालक! तुम जो कोई बात बोलोगे उसे मैं अस्वीकार करूँगा, तुम ऐसा कोई विषय बोलो, जिसे मैं इनकार न कर सकूँ।"

यह सुनकर बालक यमुनैत्तुरैवन् ने तुरंत तीन बातें कहीं—१. आपकी माता पुत्रवती हैं, २. यह राजा धर्मात्मा हैं और ३. यह राजपत्नी पतिव्रता हैं।

ये तीनों बातें सुनकर आक्कियाष्वान् हतप्रभ हो गये। वे किसीको भी इनकार न कर सके। राज-विद्वान् को हार माननी पड़ी। रानी ने बालक से पूछा—"क्या तुम इन बातों को अस्वीकार कर सकते हो?"

बालक बोला—"हाँ। यह आक्कियाष्वान् केवल वाद-विवाद में समय का व्यय करता है, इसलिए यह

सत्पुत्र नहीं है। जो माता सत्पुत्र को न जन्मे वह पुत्रवती नहीं है। अधर्मी को राज-विद्वान् का पद देकर रखनेवाले राजा धर्मात्मा नहीं हो सकते। अपने पति के विरुद्ध बोलकर आपने अपराध किया है। इसलिए आप भी पतिव्रता नहीं हैं।"

बालक की ये बातें सुनकर सब विस्मित रह गये। रानी ने दौड़कर बालक को गले लगा लिया। राजा ने वचनानुसार अपना आधा राज्य बालक को दे दिया। इस तरह यमुनैत्तुरैवन् राजभवन में बड़ी शान से रहने लगे।

मणक्काल् नंबी को नाथमुनि का यह आदेश भी मिला था कि वे यमुनैत्तुरैवन् को 'गीता-रहस्य' सिखाकर उन्हें एक सुयोग्य गुरु बना दें। लेकिन तुरैवन् तो राज-भोग में लग गये। नंबी उनके द्वार तक जाकर लौट आया करते थे। दरवान उन्हें अंदर जाने ही नहीं देते थे। अन्ततोगत्वा राजमहल के रसोइये से मिलकर नंबी रसोईघर के एक सेवक बन गये और नित्य अपने हाथ से मिष्टान्न बनाकर तुरैवन् के पास भेजने लगे। तुरैवन् को वह अन्न बहुत प्रिय लगने लगा। तब एकाएक नंबी ने मिष्टान्न बनाना छोड़ दिया और तीन-चार दिन तुरैवन् को मिष्टान्न न मिला। तुरैवन् ने कारण पूछा तो नंबी उनके सामने लाये गये। नंबी को परिचारक के रूप में देखकर तुरैवन् दुःखी हो गये और दरवानों को सख्त आदेश दिया कि वे किसी भी समय पर नंबी को बेरोक-टोक राजमहल में आने दें। तब से नंबी तुरैवन् को गीता-रहस्य सिखाने तथा वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित करने लगे। इस प्रकार दीक्षित होकर तुरैवन् श्रीरंगम् मठ के प्रधान बने और आळवन्दार कहलाये।

आळवन्दार के चार पुत्र तथा अनेक शिष्य थे। उनके द्वारा इन्होंने श्री रामानुज को वैष्णव-धर्म में दीक्षित किया तथा अपने अनन्तर उन्हींको मठ का प्रधान नियुक्त करने की घोषणा कर दी। संयोगवश श्री रामानुज के आने के पहले ही आळवन्दार ने प्राण त्याग दिये। उनकी तीन इच्छाएँ थीं। इन इच्छाओं के विषय में श्री रामानुज की जीवनी में प्रकाश डाला गया है। आळवन्दार ने संस्कृत में आठ ग्रन्थ लिखे। उनमें 'सिद्धित्रय' नामक तीन ग्रन्थ तथा गीतार्थ-संग्रह प्रसिद्ध है। ये ही आगे चलकर श्री रामानुज द्वारा विरचित गीता-भाष्य के आधार हुए। इनके 'चतुःश्लोकी' से कुछ छन्द उद्धृत हैं—

(१)

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्याऽऽसनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका माया जगन्मोहिनी।
ब्रह्मेशादिसुरव्रजः सदयितस्त्वद्दासदासीगणः
श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम्॥

'पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण तुम्हारा प्रेमी है। फणिराज आदिशेष तुम्हारी शय्या है। पक्षिराज गरुड़ तुम्हारा वाहन है। तुम्हीं गुह्यतम वेदात्मा हो। समस्त संसार को मायारूपी यवनिका से मोहित रखती हो। ब्रह्मादि देवगण तुम्हारी सेवा में तत्पर हैं। हे भगवति! तुम्हें ही 'श्री' कहते हैं। तुम्हारा वर्णन करने की शक्ति ही मुझमें कहाँ है?'

(२)

शान्तानन्तमहाविभूतिपरमं यदब्रह्मरूपं हरे-
र्मूर्तंब्रह्म ततोऽपि तत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम्।
यान्यन्यानि यथासुखं विहरतो रूपाणि सर्वाणिता-
न्याहुः स्वैरनुरूपविभवैर्गाढोपूढानि ते॥

आकारत्रयसम्पन्नां अरविन्दनिवासिनीम्।
अशेषजगदोशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम्॥

'तुम अनन्त शान्त हरि की महाविभूति हो, परब्रह्मस्वरूपिणी हो, तुम्हारी शारीरिक कान्ति अति अद्भुत तथा अत्यन्त प्रिय है। तुम विविध रूप लेकर सुखपूर्वक विहार करती हो। तुम्हारा वह स्वर्णिम रूप तुम्हारी भव्यता के अनुकूल है। तीनों लोकों की समस्त सम्पत्ति तुम्हारी है। विद्वानों का कथन है कि

तुमने अपने अद्‌भुत सौन्दर्यमय रूप से भगवान् से गाढ़ालिंगन कर लिया है।'

'तुम (महेश्वरी, लक्ष्मी, सरस्वती) त्रिविध रूप में अरविन्द में निवास करती हो। तुम जगदीश्वरी हो। तुम्हारी समता कर सकनेवाली कोई नहीं है। वरदवल्लभा, तुम्हें मेरा प्रणाम।'

ह० दु० स्वा०

इळम् पेरु वषुदियार्

मदुरै के पास तिरुमाल् इरुञ्चोलै मलै नामक एक पर्वतीय प्रदेश है। पर्वत का नाम ही महाविष्णु निवास उपवन है। (तिरुमाल् = महाविष्णु, इरुञ् = निवास, चोलै = उपवन, मलै = पर्वत) इस पर्वतीय प्रदेश में अनेक भगवद्भक्त कवि हुए हैं जिनके फुटकर गीत मिलते हैं। उनमें इळम् पेरु वषुदियार् विशेष उल्लेखनीय हैं। इस नाम का संस्कृत रूप 'कुमार महा पांडिय' हो सकता है। 'इळम्' का अर्थ है–कुमार अथवा बाल, पेरु = महा, 'वषुदि' = पांडिय राजवंश के लोगों को ही कहा जाता है। अतएव ये कवि मदुरै के पांडिय वंश के हो सकते हैं। इस कवि का उल्लेख करते हुए परवर्ती कवियों ने 'कड़लुळ् माय्न्द इळम् पेरु वषुदि' कहा है। इससे जाना जाता है कि इनका देहान्त समुद्र में हुआ। टीकाकारों ने इन्हें नम्माषवार के समान महान् भक्त बताया है। यहाँ इनकी रचनाओं से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१)

पुव्वत् तामरै पुरैयुङ् कण्णन्
वौवर् कारिरुळ् मयंगु मेनियन्
एव्वयिन् उलगत्तुम् तोन्ड्रि अव्वयिन्
मन्वदु मरुक्कत् तुन्बङ् कळैवोन्
अन्बदु मेए…… …………इरुन्दान्

'इस पर्वत पर श्रीकृष्ण का निवास है, जिनके वक्षःस्थल पर पद्मासिनी का वास है। घनश्याम की इस मोहन मूर्ति पर, इनके चमकते हुए शरीर पर भक्त जन सुध-बुध खो देते हैं। जीवों का भवदुःख निवारण करने के लिए वे इस पर्वत पर विराज रहे हैं। आर्तिनाश के लिए इस मोहन मूर्ति की ओर हम आशा लगाये निहार रहे हैं।'

(२)

कल्लरै कड़लुम् कानलुम् पोलवुम्
पुल्लिय चोल्लुम् पोरुळुम् पोलवुम्
एल्लाम् बेरु वेरु उरुविन् ओरु तोषिल् इरुवर्।

'इस पर्वत पर श्रीकृष्ण के साथ उनके अग्रज बलराम भी विराज रहे हैं। कृष्ण समुद्र जैसे रंग के हैं तो (बलराम) श्वेत पुष्पों से युक्त उपवन जैसे हैं। दोनों शब्द और अर्थ की तरह मिल-जुल गये हैं। अलग-अलग रूप में होकर एक ही कार्य अर्थात् भक्त-रक्षण करनेवाले दो स्वरूप हैं।' (यहाँ कवि कृष्ण और बलराम को अलग-अलग नहीं मानते। दोनों को भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शित होनेवाले एक ही मानते हैं।)

ह० दु० स्वा०

उय्यक्कोण्डार

इनका जन्म दसवीं शताब्दी में तिरुवेळ्ळरै नामक गाँव में हुआ था। ये श्री नाथमुनि के शिष्य थे। एक बार नाथमुनि ने इनसे बताया कि आप योग-रहस्यों को सीखिये। इन्होंने कहा—"मुझे अब वह सब नहीं चाहिये। मुझे मात्र कृष्ण-भक्ति के गीत सिखाइये। योग-रहस्यों को बात मैं अपने अन्तिम दिनों में सीख लूँगा।" इनकी कृष्ण-भक्ति से मुग्ध होकर नाथमुनि ने इन्हें 'तिरुवाय्मोषि' और 'दिव्य-प्रबन्धम्' के अन्य गीत सिखाये। गुरु ने अपने देहान्त के समय इन्हें बुलाकर कहा—"मेरे पुत्र ईश्वर मुनि का एक पुत्र होनेवाला है, मैं उसे देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा। आप उसे इन दैविक ग्रन्थों की शिक्षा दीजिये।" परन्तु दुर्भाग्य से उय्यक्कोण्डार भी बहुत दिन नहीं जिये। अपने गुरु की इच्छा के अनुसार इन्होंने गुरु-पोते का नाम 'यमुनैत्तुरैवन्'

(यमुना-तीर-विहारी) रखा और उसकी शिक्षा देने का भार अपने शिष्य मणक्काल् नंबी को सौंपकर स्वर्गवासी हो गये। इनके दो गीत यहाँ उदाहरण-स्वरूप दिये जा रहे हैं—

(१)

अन्नवयल् पुदुवै आण्डाळ् अरंगर्कुप्
पन्नु तिरुप्पावै पल पदियम्-रन्निसैयाल्
पाडिक् कोडुत्ताळ् नर् पामालै पूमालै
सूडिक् कोडुत्ताळैच् चोल्लु।

'हंस पक्षी की जैसी चालवाली बालिका आण्डाळ ने श्रीरंगम् स्थित कृष्ण पर मधुर तिरुप्पावै तथा कई पद्य रचे। पुष्पमाला स्वयं पहले पहनकर फिर कृष्ण को पहनानेवाली इस बालिका ने पुष्पमाला के साथ गीत-माला भी गाकर पहनायी। उसका माधुर्य वर्णनातीत है।'

(२)

सूडिक् कोडुत्त सुडर् कोडियै, तोलपावै
पाडि यरुळवल्ल पल वळैयाय्-नाडिनी
वेंकटवर्क्केन्नै विधियेन्ड्र इस्माट्रम्
नांकटवा वण्णमे नल्गु।

'स्वयं पुष्पमाला पहनकर फिर उसे भगवान् को देनेवाली हे ज्योतिलता! तुम और भी गीतों की रचना कर सकती हो। मेरी ओर से तुम एक गीत गाकर मुझे ऐसी स्थिति दिला दो कि मैं सदा वेंकट-पर्वत पर स्थित कृष्ण भगवान् को अर्पित रहूँ और मेरे इस भाग्य में कोई परिवर्तन न आये।'

ह० दु० स्वा०

एम्बार

इनका जन्म कलियुग ४१२६, क्रोधन वर्ष, पौष मास, पुनर्वसु नक्षत्र में मषलैमंगलम् में हुआ था। पिता ने इनका नाम गोविन्दप् पेरुमाळ रखा। एक बार ये काशी जाकर गंगा में स्नान कर रहे थे। तब इनके हाथ एक शिवलिंग लग गया। इन्होंने उसे कालहस्ती में लाकर स्थापित किया और अंगै कोण्ड नायनार नाम से पूजा-पाठ करते रहे। रामानुज स्वामी के एक शिष्य तिरुमलै नंबी से एक दिन इनकी भेंट हुई। उनसे भागवत की कथा सुनी तो कृष्णोपासना में लीन हुए। तब से अपने को गोपी एवं राधा मानकर गृहस्थी के प्रति विरक्त हो गये। गृह-त्याग करके ये स्वामी रामानुज के दर्शन करने गये और वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। उस समय से ये सदा छाया की तरह स्वामी रामानुज के साथ लगे रहे। अतएव ये भक्तों द्वारा रामानुज-पद-छाया कहलाने लगे। श्री रामानुज ने संन्यास-आश्रम में दीक्षित करते समय इन्हें 'एम्बार्' नाम दिया।

ह० दु० स्वा०

कंबन

तमिल रामायण के सुप्रसिद्ध रचयिता कंबन का जन्म सन् १११० ई० में तंजाऊर जिले के तिरुवषुन्दूर नामक गाँव में हुआ था। तंजाऊर के कुट्रालम रेलवे स्टेशन के समीप दस फुट ऊँचा एक टीला है। अनुमान किया जाता है कि उसी स्थान पर कंबन का घर रहा होगा, क्योंकि परम्परा से वह टीला कंबन-टीला नाम से ही जाना जाता है। उस टीले के दक्षिणी कोने में खोदने पर एक कुआँ पाया गया। कंबन के पिता का नाम आदित्तन् था। इसलिए वे आदित्तन् कंबन नाम से भी जाने जाते हैं। यह भी माना जाता है कि कंबन के पूर्वजों की मूलभूमि आन्ध्र-प्रदेश में कर्नूल के पास कंबम् नामक स्थान था। इस स्थान के ही नाम पर आदित्तन् ने अपने पुत्र का नाम कंबन रखा होगा। कुछ कवियों के द्वारा वे कंब नाड़न् (कंबप्रदेश के निवासी) भी कहे गये हैं। वैष्णव-भक्तों का विश्वास है कि खंभ से उद्भूत नरसिंह स्वामी के उपासक होने से ये 'खंभन्' कहे जाते हैं और तमिल उच्चारण-रीति से 'खंभन्' ही 'कंबन' हो गया है। इनके पूर्वजों की भाषा तेलुगु रही होगी और ये वडुक जाति के रहे होंगे, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। इनकी रचनाओं में मूँगैयन् (गूँगा), मसरदम् (मच्छर), दम्मि (कमल),

वेदिर् (बाँस), कालि (हवा), किच्चु (आग), कुप्प (ढेर), नेन्नल् (कल), अन्दु (वैसा), आदि तेलुगु शब्दों का प्रयोग अनायास ही मिलता है, जिनका प्रयोग तमिलभाषियों द्वारा होता ही नहीं।

कंबन में बचपन में ही काव्य-रचना की शक्ति आ गयी थी। इसलिए इनको अपने पास रखकर पालन-पोषण करने की इच्छा चोलराज कुलोत्तुंगन् को हुई। पर कंबन ने राजा के आश्रय में न जाकर तिरुवेण्णैनल्लूर के निवासी, प्रसिद्ध दानी सडैयप्पर के पास रहना स्वीकार किया। सडैयप्पर का छोटा भाई और कंबन समवयस्क थे। उसने दोनों को समान रूप से पाल-पोसकर बड़ा किया। अतः कंबन ने अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर अपने पोषक-पिता का उल्लेख बड़े अभिमान के साथ किया है।

उस समय आषाढ़ महीने के अठारहवें दिन प्रतिवर्ष कावेरी नदी की पूजा के रूप में उत्सव मनाया जाता था। यह अब तक चल रहा है। देवीस्वरूपा कावेरी की स्तुति में पद-गायन के लिए चोल राजा कुलोत्तुंगन ने कंबन को निमन्त्रित किया। कंबन निमन्त्रण स्वीकार करके शिविका पर आरूढ़ होकर बड़ी शान के साथ गये। राजा ने अन्य कवियों के साथ आकर उनका स्वागत किया और ऊँचे आसन पर बैठाकर सम्मानित किया। फिर भी कंबन ने नदी और प्रवाह की स्तुति में ही गाया; राजा की स्तुति नहीं की।

पांडिय राजा मारवर्मन् श्रीवल्लभ ने भी उन्हें निमन्त्रित किया। उनकी रानी पांडिमा देवी विदुषी थीं। दोनों ने कंबन का अत्यन्त सम्मान किया और कई दिन राजमहल में ठहराकर उनकी कविताओं का रसास्वादन किया।

यद्यपि कंबन का राजपरिवारों के साथ निकटतम सम्बन्ध रहा, फिर भी जनसामान्य के प्रति उनका स्नेह कम नहीं हुआ। कंबन ने अपने सम्पर्क में आनेवाले सभी प्रकार के लोगों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में अपनी कविताओं में आदर का भाव व्यक्त किया है। राजाओं और सडैयप्पन के अतिरिक्त श्रीरामन नामक धोबी, तंबूकान नामक नाई, सिंगन नामक लुहार, शिविका उठानेवाले श्रद्धालु जन, किसान दादन् आदि के प्रति उन्होंने आदर का भाव प्रकट किया है। धोबी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन में उन्होंने लिखा है—"धोबी श्रीरामन के धोये सफेद वस्त्रों को देखते ही भगवान् शिव ने अपने सिर पर स्थित गंगा नदी, ब्रह्मदेव ने अपनी वामा सरस्वती और महाविष्णु ने अपने शंख को तुलनात्मक दृष्टि से देखा कि क्या वे उन वस्त्रों से भी बढ़कर निर्मल अथवा उज्ज्वल हैं ? इसी प्रकार अपनी अन्य कविताओं में भी उन्होंने सहयोगियों तथा सेवकों का बड़े प्रेम से स्मरण किया है।

उस काल में, जब विवाह छोटी आयु में ही हो जाया करता था, कंबन ३० साल की आयु तक ब्रह्मचारी रहे। उनकी लोकप्रियता और ब्रह्मचारी जीवन दोनों को मिलाकर उनके विषय में अफवाहें फैलायी गयीं कि वे वेश्यागामी हैं और किसीसे वैवाहिक सम्बन्ध की चाह नहीं रखते। किन्तु वास्तव में वैयापुरिप्पिळ्ळै जैसे महाविद्वानों की भी राय है कि कंबन का चरित्र अकलंक रहा है और वे अपनी ही जाति में भक्तिप्रवण एवं विदुषी कन्या की खोज में रहे। इसी कारण बहुत दिनों तक अविवाहित रहे। तिरवाट्रियूर के विष्णु मन्दिर में कंबन नित्यप्रति शाम के समय उपासना के लिए जाया करते थे। वहीं पर वल्लियम्माल से उनकी भेंट हुई। उन्होंने उससे वार्तालाप करके जान लिया कि वह एक तमिल पण्डित की पुत्री है और अक्सर देव-दर्शन के लिए मन्दिर जाया करती है। कंबन ने उससे प्रेम-निवेदन करके नियमपूर्वक विवाह कर लिया। उनका दाम्पत्य-जीवन मधुर रहा और उन्हें अम्बिकापति नामक एक पुत्र तथा कावेरियम्माल नामक एक पुत्री हुई।

वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करते-करते कंबन के मन में यह इच्छा हुई कि अपनी भाषा में भी क्यों न रामायण लिखूँ ? उन्होंने स्वयं लिखा है :

वांगरुम् पाद नान्गुम् वगुत्त वान्मीकि एन्बान्
तींगविच् चेविगळारत् देवरुम् परुगच् चेय्दान्
आंगवन् पुगष्न्द नाट्टै अन्बेनुम् नरवम् मांदि
मैंगैयान् पेशलुट्रान् एन्नयान् मोषियलुट्रेन् ।

'वाल्मीकि ने ऐसा मधुर काव्य अद्वितीय ढंग से लिखा जिसका श्रवण करके 'देवगण भी रसास्वादन करते हैं। जिस देश का वर्णन उसमें है उसका वर्णन प्रेमरूपी मधु का पान करके गूँगे की भाँति करने लगा हूँ।'

इसका विमोचन श्रीरंगम् मन्दिर में किया गया। उद्घाटन के पूर्व ग्रन्थ को भगवान् श्रीरंगनाथ के समक्ष रखकर अनुमति माँगी गयी तो तुरन्त अर्चक के मुँह से निकल पड़ा, "क्या तुमने हमारे शठगोपन के बारे में गाया है ?" कंबन ने अर्चक के प्रश्न को भगवान् की आज्ञा मानकर तुरन्त 'शठगोपर अंदादि' नाम से एक सौ छन्दों की रचना की। उसके बाद ही रामायण का उद्घाटन नाथमुनि स्वामी की मूर्ति के सामने हुआ। समस्त विद्वानों ने एकत्र होकर कंबन को कवि-सम्राट् की उपाधि से विभूषित किया और भागवत-भक्तों ने उन्हें आलवार की उपाधि प्रदान की।

कंबन ने अपने राम-काव्य में चोल राजाओं का उल्लेख नहीं किया, इस पर चोल राजा कुपित हुआ और उन्हें बुलाकर पूछा कि मेरे देश में ही रहकर मेरा उल्लेख एक बार भी नहीं किया है, पर सडैयप्पन का स्मरण बीसों बार किया। कंबन ने कह दिया कि काव्य में उल्लेख करके स्मरण करने योग्य कोई सद्गुण राजा में नहीं है। इस उत्तर से अप्रसन्न होकर राजराज चोल ने इन्हें निष्कासित कर दिया और इनको प्रदत्त सभी सुविधाओं को वापस ले लिया। इसलिए कंबन पैदल ही चलते हुए ओरंगल पहुँचे, जहाँ प्रतापरुद्र का शासन था। प्रतापरुद्र ने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत करके अपने दरबार में स्थान दिया तथा वे सभी सुविधाएँ प्रदान कीं जो इन्हें चोल राज्य में प्राप्त थीं।

राजराज चोल ने कुछ समय बाद प्रतापरुद्र को लिखकर कंबन को पुनः अपने दरबार में बुलवाने का प्रबन्ध किया। किन्तु कंबन ने वहाँ जाना पसंद न करके अपने जन्म-स्थान कंबनाडु जाने की इच्छा व्यक्त की। कंबनाडु चोल-राज्य की सीमा के अन्तर्गत स्थित था। अतः चोल राजा राजराजन ने कंबन के भव्य स्वागत का नाटक किया। स्वागत के आयोजन के साथ ही वह पिंजड़े में बंद एक भूखा बाघ भी लाया था। कंबन के सामने आते ही उसने पिंजड़ा खोलकर बाघ को छोड़ दिया। समक्ष आते हुए भूखे बाघ को कंबन ने निर्भयता से घूरकर देखा तो बाघ भीगी बिल्ली की भाँति चुप रह गया। कंबन को चोल राजा की नीयत पर शक हो गया और वे चोल राज्य की सीमा के बाहर जाने लगे। कहा जाता है कि बाघ पर बाण चलाने के बहाने राजा ने कंबन पर ही बाण चला दिया। कंबन ने राजा को देखते हुए कहा— "धनुष-बाण, शब्द-बाण की अपेक्षा बड़ा होने पर भी शब्द-बाण में तीक्ष्णता अधिक होती है। तेरा चलाया बाण केवल मुझ पर लगा, परन्तु मेरा शब्द-बाण तेरे समस्त कुल को ही जला देगा।" इसके बाद किसीको ज्ञात नहीं कि कंबन कहाँ गये और कैसे उनका देहान्त हुआ ? पर तमिल-भूमि के इतिहासज्ञ जानते हैं कि चोल-राजवंश का सर्वनाश हो गया और फिर वह कभी सिर न उठा सका।

यद्यपि कंबन ने राम-कथा ही लिखी है, कृष्ण-कथा नहीं लिखी, तो भी उनके उस विश्व-विख्यात काव्य में कृष्ण-साहित्य का भी प्रभाव है। स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन में भक्ति-भावना के साथ-साथ शृङ्गार-रस का प्राधान्य भी दर्शनीय है। उनकी दृष्टि में महाविष्णु, श्री कृष्ण और श्री राम अभिन्न हैं। वैसे ही श्री महालक्ष्मी, श्री राधा और श्री सीता एक हैं। यहाँ उनकी उदात्त दार्शनिक दृष्टि तथा भक्तिव्यंजक कुछ छन्द दिये जाते हैं—

(१)

उलगु तन्दानुम् पल्वेरु उयिर्गळ् तन्दानुम् उळ्ळुट्रु
उलैविला उयिरगळ् तोरुम् अंगंगे उरैगिन्ड्रानाम्

मलरिनिल् मणमुम् एळ्ळिल् एण्णैयुम् पोल एंगुम्
अलगिल् पल् पोरुळुम् पट्रिमुट्रिय अरिकाण् अन्दा !

'विश्व की सृष्टि करनेवाले, कई प्रकार के जीवों को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा अपने द्वारा सर्जित सभी जीवों के अंदर ही बसते हैं। पुष्प में सुगन्ध की भाँति, तिल में तेल की तरह वह सर्वव्यापी हैं। उस हरि का दर्शन करें।'

उन्होंने वन-प्रदेश का वर्णन करते हुए जो लिखा है उसमें कृष्ण के मुरली-वादन का मोहक प्रभाव चित्रित है—

(२)

कोन्ड्रै वेय्ङ्कुषल कोवलर् मुन्ड्रिलिल्
कन्ड्रु रक्कुम् कुरवै कडेसियर
पुन्ड्रलैप्पुनङ्ग काप्पुडैप् पोदरच्
चेन्ड्रिसेक्कु नुळेच्चियर चेक्वषि ।

'उस वन-प्रदेश में कृषक-बालिकाओं का गीत गोपाल की मुरली से समावृत होकर बछड़ों को सुलाता है और अपने खेत की रक्षा में लगी बालिका भी अपना कर्तव्य विस्मृत करके मोह-निद्रा में लीन हो जाती है।'

कंबन-रचित रामायण 'रामावतार' के बाल-काण्ड में 'नदी पटल' शीर्षक एक अध्याय है। उसमें नदी में प्रवाहित अखण्ड धारा का वर्णन करते हुए ये उसकी तुलना श्रीकृष्ण से करते हैं :

(३)

चेरि नरुन्तयिरुम्, पालुम्, वेण्णंयुम् चेन्द नेय्युम् ।
उरियोडु वारि उण्डु, कुरुन्तोडु मरूदम् उन्दि ।
मरिविषि आयर् मादर् वनै तुकिल वारुम् नीराल् ।
पोरिवरि अरविन् आडुम् पुनिदनुम् पोलुम् अन्ड्रे ॥

'जमे सुगन्धित दही-दूध-मक्खन तथा तपकर पिघलते हुए शुद्ध घी, इन सबको छींके के साथ उठा-उठाकर खानेवाले, वृक्षों के बीच घुसकर उनको ढकेल देनेवाले और हरिण-शावक जैसे चंचल नेत्रों से युक्त गोपियों के पहने वस्त्रों को चुपके से ले जाकर छिपा देनेवाले तथा दाग एवं रेखाओं से युक्त कालिय सर्प पर नृत्य करनेवाले पवित्र मूर्ति श्रीकृष्ण के समान नदी की विशाल धारा क्रीड़ा करती हुई बहती है।'

(४)

तिरण्ड ताळ् नेडुञ्चेरि पणै मरुदु इड़ै ओडियप्
पुरण्डु पिन् वरुम् उरलोडु पोनवन् पोल
उरुण्डु काल् तोडरु पिरगिडु तरियोडुम्, ओरुगे
इरण्डु मा मरम् इडैगिर नड़न्ददु ओर् यानै ॥

इस पद्य में वन-प्रदेश में मस्त चाल से चलने-वाले एक हाथी की तुलना श्रीकृष्ण से की गयी है। "एक मस्त हाथी एक करवे को खींचकर ले चलता है और रास्ते में लगे दो आम के पेड़ों को टकराकर गिरा देता है। यह दृश्य ऐसा लगता है मानो श्रीकृष्ण ऊखल को खींचकर ले चलते हुए, शाप-सन्तप्त होकर वृक्षों के रूप में रहनेवाले देवकुमारों का शाप-विमोचन कर रहे हों।'

(५)

चेरि नरुन्तयिरुम्, पालुम्, वेण्णेयुम्, चेन्द नेय्युम,
उरि योडु वारि उण्ड्, कुरुन्दोडु मरुदम् उन्दि,
मरि विषि आयर् मादर् वनै तुगिल् वारुम् नीराल्
पोरि वरि अरविन् आडुम् पुनिदनुम पोलुम् अन्ड्रे ॥

'सरयू नदी का वह नव-प्रवाह जो तीर पर पड़ी चीजों को उड़ाकर ले चलता रहा, देखकर मुझे श्रीकृष्ण परमात्मा जैसा लगा, क्योंदि वह भी तो गाढ़े सुगन्धित दही-दूध-मक्खन तथा शुद्ध घी सबको छींके के साथ ही उँड़ेलकर खाता हुआ, दो वृक्षों के बीच घुसकर उनको गिराता हुआ और हिरण-शावकों जैसी चंचल नेत्रोंवाली गोपियों की साड़ियों को उठा ले गया। नदी-प्रवाह और पुनीत कृष्ण दोनों का स्वभाव एक-सा ही है।'

ह० दु० स्वा०

कडुवन् इळ वेयिननार्

इस नाम का संस्कृत रूप सुतीक्ष्ण बाल सूर्य-प्रकाश होता है। इस कवि का कृष्ण-भक्तिपरक एक लंबा

गीत प्राप्त होता है। उससे यहाँ छः पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

आयिरम् विरित्त अणङ्ङुडै अरुन्तलै
तीयुमिष तिरनोडु मुडिमिसै अणवर
मायुडै मलर् मार्बिन् मैयिल् वाल् वळैमेनिच्
चेयुयर् पणैमिसै एषिल वेषम् एन्दिय
वाय् वांगुम् वळै नांजिल् ओरु कुषै योरुवनै

× × ×

वाय् मोषिप् पुलव निन् ताळ निषल् तोषुदे

'सहस्रों फणों को फैलाकर आदिशेष छाया देता रहा, विश्वभर के छत्रधर भगवान् को। वही आदिशेष बलराम के रूप में आकर भगवान् का अग्रज बना है। पद्मासिनी महालक्ष्मी राधा के रूप में आकर भगवान् के हृदय पर आसीन हैं। कलंकरहित श्वेत शंख जैसे वपुधारिणी एक ओर और तीक्ष्ण हल-धारक एक ओर, सूँड़ उठाकर इन्हें नमस्कार करते रहने में आनन्द प्राप्त करनेवाले हाथी सामने, इस तरह विराजनेवाले भगवान् पर हम कविगण कविता करते हुए जन्म सफल कर रहे हैं। भगवन्, आपके चरणों की छाया हमें सदा प्राप्त होती रहे।'

दृ० दु० स्वा०

कण्णदासन्

कण्णदासन् का बाल्यनाम अष० सा० मुत्तैया था। इनका जन्म रामनाथपुरम् जिले में सिरुकूडरपट्टि नामक गाँव में २४ जून १९२७ ई० को एक मध्यम-वर्ग के वैश्य-परिवार में हुआ था। मध्यम-वर्ग के होते हुए भी पिता ने जातिगत रीति-रिवाजों में अपनी हैसियत से अधिक व्यय कर दिया और कर्जदार बन गये। फलतः उनकी सारी आमदनी ऋण अदा करने में ही समाप्त हो जाती थी। सन्तानों की संख्या सात थी—तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ। मुत्तैया का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। वह नारियल के बागानों में घूमता-फिरता था और विविध प्रकार के चिन्तन-मनन में लीन रहता था। इससे कारैक्कुडि में आठवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद अध्ययन का क्रम अवरुद्ध हो गया। प्रायः अनुत्तीर्ण होकर एक ही दर्जे में कई वर्ष पड़े रहने से ये मंदबुद्धि माने जाने लगे और लोग इनका उपहास करने लगे। लेकिन इनकी इच्छा मेधावी लेखक, कथाकार और कवि बनने की थी। घर की दरिद्रता, पड़ोसियों का परिहास तथा अपने सामाजिक वातावरण से ऊबकर इन्होंने सोलह वर्ष की आयु में ही घर त्याग दिया और किसीसे कहे बिना एक छोटी-सी पेटी लेकर निकल गये। पेटी में सिर्फ दो कमीजें, दो धोतियाँ, कुछ पुरानी किताबें, अपनी लिखी कुछ कहानियाँ और एक टूटी कलम थी। गाँव से एक मील की दूरी पर एक बस स्टैण्ड पर पहुँचे। कहाँ जाना है, इसका कोई निश्चय नहीं था। वहाँ से एक तरफ मदुरै को और दूसरी तरफ तिरुच्चि को जानेवाली बसें आती-जाती थीं। इन्होंने सोचा, पहले जो बस आये उसमें चढ़ जायें। पहले तिरुच्चि जानेवाली बस आयी तो उसमें चढ़ गये। तिरुच्चि में वह एक ही व्यक्ति से परिचित थे। वे ब्राह्मण थे। उनके यहाँ पहुँचे। उन्होंने प्रेम से स्वागत किया और खाने के लिए कहा। उस समय इनके पास सिर्फ आठ आने (पचास पैसे) थे। इसलिए इनकार किये बिना इन्होंने वहाँ भोजन कर लिया। भोजन के बाद उनसे अपने गृह-त्याग की बात बतायी। उन्होंने एक मित्र के नाम सिफारिशी पत्र देते हुए कहा कि उनके यहाँ नौकरी लग जाय तो ठीक, नहीं तो अपने गाँव चले जाना ही उत्तम है। उक्त व्यक्ति इनको नौकरी नहीं दिला सका, फिर भी ये गाँव नहीं लौटे। टिकट के बिना ही रेलगाड़ी से मद्रास जा पहुँचे। वहाँ एक रिश्तेदार के घर पहुँचे। उन्होंने इनको घर के बाहर ढकेल दिया। अपमानित होकर ये समुद्र की ओर गये और रातभर भूखे-प्यासे समुद्र-तट पर पड़े रहे।

मद्रास में दो-तीन दिन भटकने पर इनको सैनिकों के लिए पहनावे तैयार करनेवाले ठेकेदार दर्जियों के यहाँ नौकरी मिली। वहाँ बाजार जाने, तरकारी लाने, कपड़े सीने में मदद करने का काम मिला।

कुछ दिन आराम से बीते। तब एक दिन एमिली नामक एक छात्रा से इनका सम्पर्क हुआ। एमिली की सहेलियों की मदद से इनको अजाक्स कंपनी में मासिक बीस रुपये तथा मुफ्त भोजन पर लिपिक का काम मिल गया। लेकिन एक बार हड़ताल के कारण इनको निकाल दिया गया। पास में जो रुपये थे उसे लेकर वह एक रिश्तेदार के यहाँ गये। उस रिश्तेदार को अपनी लिखी कहानी और कविता दिखायी। उन्होंने इनको 'तिरुमगळ' पत्रिका के सम्पादक के पास भेजा। वह पत्रिका तिरुच्चि से निकलती थी। ये तिरुच्चि वापस आये। वहाँ इन्हें पत्रिका में सम्पादन-विभाग में काम मिल गया। वहीं पर इन्होंने अपना नाम 'कण्णदासन्' रख लिया। इस नाम से पत्र-पत्रिकाओं को कहानियाँ भेजते रहे। फलस्वरूप मद्रास में 'मुल्लैप्पदिप्पगम्' नामक एक प्रकाशन-संस्था में इन्हें सह-सम्पादक का काम मिल गया। इसके बाद ये सदा के लिए मद्रास में आकर बस गये।

मुल्लैप्पदिप्पगम् में ऐसे ही लोग आया करते थे जो बहुधा ब्राह्मण-विरोधी होते थे। उनके विचार कण्णदासन् के विचार से भिन्न थे। वे ब्राह्मण-विरोधी होने के साथ-साथ नास्तिक भी थे। कण्णदासन् का जन्म और पालन-पोषण ऐसे परिवार में हुआ था, जो ब्राह्मणों को भूसुर मानकर आदर देता था और परम आस्तिक था। विचारों की टक्कर के कारण कण्णदासन् बड़े असमंजस में पड़ गये। प्रकाशन-संस्था के लोग इन्हें नास्तिकवाद की पत्रिकाएँ 'द्रविड़नाडु', 'कुड्डियरसु' आदि पढ़ने के लिए बाध्य करते थे। एक दिन अण्णादुरै का भाषण सुनने गये। अण्णादुरै ने ब्राह्मणों का, वेद, शास्त्रों और पुराणों का खण्डन करते हुए ऐसा जोरदार और मजेदार भाषण दिया कि उसके प्रभाव में कण्णदासन् बह गये। इस तरह ये नास्तिक बनकर द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम् के सदस्य तथा अण्णादुरै के परम भक्त बन गये। उस दिन से इनकी लेखनी बदल गयी। द्रविड़नाडु के समर्थन में इनके लिखे गीत कषगम् के मंच पर गूँज उठे। कण्णदासन् से कषगम् ने खूब लाभ लिया। युवकों के बीच में इनकी सरल कविताओं ने आदर पाकर द्रविड़-आन्दोलन को बहुत बल पहुँचाया।

द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम् के प्रधान अण्णादुरै ने आरम्भ में नाटकों द्वारा ही लोगों को प्रभावित किया था। उन नाटकों में कण्णदासन् के गीत मुख्य स्थान पाते थे। फिर इन्होंने सिनेमा-क्षेत्र में प्रवेश किया। उन दिनों शिवाजी गणेशन 'द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम्' के समर्थक थे। उनकी अभिनीत 'पराशक्ति' फिल्म के वचन करुणानिधि के लिखे हैं और गीत कण्णदासन् के। 'पराशक्ति' ने द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम् को बहुत बल पहुँचाया। लेकिन शिवाजी गणेशन उस दल से अलग होकर राष्ट्रवादी बन गये। उनके अलग होते ही एम० जी० रामचन्द्रन उस दल में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे। उस दल और फिल्म के सम्पर्क से कण्णदासन् का नाम जहाँ एक ओर व्यापक हुआ, वहाँ उनका चरित्र गिरता गया। ये मद्यप और कामुक बनते गये। सिनेमा-क्षेत्र के बाहर भी इनकी कामुकता व्यापक हुई। इन्होंने चार विवाह किये। इनके चरित्र-पतन की बात तमिलनाडु में विख्यात है।

तिरुच्चि के पास डालमियापुरम् नामक एक स्टेशन है। सेठ रामकृष्ण डालमिया के परिवार-वालों ने वहाँ सीमेण्ट-कारखाना स्थापित करके उस प्रदेश को महत्त्व दिया है। उस प्रदेश का नाम कळ्ळक्कुड़ि था। हिन्दी-विरोध के दौरान द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम् ने 'डालमियापुरम्' नाम को बदलकर 'कळ्ळक्कुडि' रखने के लिए 'सत्याग्रह' नाम से दुराग्रह किया। इसके लिए केन्द्र-सरकार राजी न हुई। फलस्वरूप कई द्र० मु० क० नेता गिरफ्तार और दण्डित हुए। इनमें कण्णदासन् भी एक थे। इन्हें अठारह महीने कारावास की सजा मिली। जेल में और वहाँ से छूटने के बाद उन्हें कई कटु अनुभव हुए।

अपने जेल-जीवन में इन्होंने विविध प्रकार के कैदियों से सम्पर्क रखा और उनकी कहानियाँ सहानुभूति से सुनीं। धीरे-धीरे इनकी आँखें खुलती गयीं। इनका हृदय अंदर ही अंदर रोने लगा। उच्च सुसंस्कृत परिवार में जन्म लेकर भी ये कीचड़ में जाकर फँस गये थे। इन्हें अपने पतन का अनुभव होने लगा। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनुभव किया कि द्र० मु० क० नेताओं की कथनी और करनी एक नहीं है। इन्होंने देखा कि ये लोग गरीबी का विरोध करते हुए गरीबों को चूसते हैं। भ्रष्टाचार के बीज बोकर समाज को गिरा रहे हैं। ब्राह्मण-विरोध के रूप में संस्कृति को नष्ट करके युवकों को मार्ग-भ्रष्ट कर रहे हैं। उनका मातृभाषा-प्रेम भी राजनैतिक अधिकार पाने का साधनमात्र है, क्योंकि हिन्दी का प्रबल विरोध करनेवाले उन नेताओं की सन्तान स्वयं हिन्दी सीख रही है। उनका नास्तिकवाद भी खोखला है, क्योंकि उन्हींके घर की महिलाएँ पूजा-पाठ करवाती हैं और संकट के समय भगवान् का आश्रय लेती हैं। इस प्रकार के प्रत्यक्ष अनुभव से कवि कण्णदासन् ने अपनी भूल का अनुभव किया और आत्म-सुधार में प्रवृत्त हुए।

द्रविड़ दल और प्रान्तीयता के मोह से छूटकर राष्ट्रीय भावधारा में पुनरागमन के साथ ही इनके बाल्यकाल के संस्कार पुनः जाग्रत हुए। गम्भीर दार्शनिकता इन पर हावी हो गयी। ये देवी-देवताओं के प्रति भक्तिभाव से कविताएँ रचने लगे। यद्यपि इन्होंने सभी देवी-देवताओं का गुणगान किया है, किन्तु अपने नाम के अनुरूप कृष्ण को ही अपना इष्टदेव माना है। भगवान् कृष्ण ने इनके जीवन को मोड़ दिया, गलत रास्ते से निकालकर सही रास्ते पर ला दिया। 'भगवद्गीता' इनके लिए जीवनाधार हो गयी।

'अर्थमुळ्ळ इन्दु मतम्' (सार्थक हिन्दू-धर्म) नाम से हिन्दुओं के जीवन-तत्त्वों की व्याख्या करते हुए इन्होंने बृहद् पुस्तक तैयार की है, जिसके दस भाग हैं। 'कण्णदासन् की कविताएँ' शीर्षक से इनकी कविताओं के सात भाग निकले हैं जिनमें इनकी बदलती विचारधारा की झाँकी मिलती है। इनका 'श्रीकृष्ण कवचम्' नामक काव्य-ग्रन्थ भी मनोज्ञ है। इनकी कविताएँ इतनी सरल हैं कि साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति ही नहीं, अशिक्षित भी उनका स्वाद ले सकते हैं। वे भाव-सम्पत्ति में इतनी गहरी हैं कि जाने-माने विद्वान् भी उन्हें पढ़कर चकित रह जाते हैं।

विपक्षी दल के होने पर भी तमिलनाडु-सरकार ने सन् १९७८ ई० में इन्हें 'राजकवि' पद पर नियुक्त करके सम्मानित किया है। १-७-'८१ को ये तमिलनाडु-सरकार के प्रतिनिधि के रूप में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका गये। वहीं एकाएक अस्वस्थ हुए और २६ जुलाई '८१ को शरीर त्याग दिया।

इनका जिज्ञासु मन सदा इन्हें उद्वेलित करता रहा है। अन्ततः कृष्ण-भक्ति में ही इन्होंने शान्ति प्राप्त की। इस प्रकार इनका पितृप्रदत्त कण्णदासन् 'कृष्ण का दास' नाम सार्थक हो गया।

कण्णदासन् की कविताओं से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

कण्णन् एन् देय्वम् (कृष्ण मेरे देवता हैं)

आडुवान् गोकुलत्तिल्
    आयर् मनैगळिले
कूडुवान् गोपियरैक्
    कोंजुमिळम् वंजियरै
पाडुवान् ओडुवान्
    पार्पदकु विळैयाट्टु
तेडुवोर् कण्गळुक्कोर्
    दिशैयरिन्द देय्वमन्

× × ×

कण्णनै नान् कण्डु
    कनिन्दुविट्ट नाळ्मुदलाय्

मन्ननैप्पोल् इंद
मण्डलत्तिल् वाषुगिरेन् ।

× × ×

एल्लामुम् कण्णन्दान्
एंगेयुम् कण्णन्दान्
नल्लार्क्के एन्ड्रुम्
नायकने कण्णन्दान्
कण्णनै नान् निनैक्किन्ड्रेन्
कवलैयेल्लाम् मरक्किन्ड्रेन् !

'गोकुल में ग्वालों के घरों में खेलेगा, पुचकारनेवाली महिलाओं से, गोपियों से, मिल-जुल जायगा। गायेगा, दौड़ेगा, देखनेभर के लिए वह खेल है, खोजनेवालों की आँखों के लिए वह दिशादर्शक देवता है।'

× × ×

'जिस दिन से कृष्ण को देखकर मैं पूर्णासक्त हो गया, उस दिन से मैं इस भूमण्डल पर राजा की भाँति जी रहा हूँ।'

× × ×

'सब कृष्णमय है, सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण है, अच्छे लोगों के लिए कृष्ण ही सदा-सर्वदा नायक है, मैं कृष्ण का स्मरण करता हूँ और सारी चिन्ताएँ भूल जाता हूँ।'

ह० दु० स्वा०

कुलशेखर आलवार

ये राम और कृष्ण दोनों अवतारों में समान आस्था रखते थे। इनका आविर्भाव आठवीं शती ई० में तमिलनाडु के प्राचीन चेर राज्य के अधीश्वर दृढ़व्रत के पुत्ररूप में पराभव संवत्सर की माघ शुक्ला एकादशी, शुक्रवार को पुनर्वसु नक्षत्र में कन्याकुमारी जनपद के नंजिक्कुलम् नगर में हुआ था। वैष्णव-परम्परा में ये भगवान् की कौस्तुभ मणि के अवतार माने जाते हैं।

प्रसिद्ध है कि पाँच वर्ष की आयु में ही कुलशेखर ने संस्कृत और तमिल में पूरी विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। यौवन-प्राप्ति के पहले ही अश्व और गजारूढ़ होना, कुश्ती लड़ना, रथ हाँकना, भाला फेंकना आदि विविध अस्त्र-शस्त्र-विद्याओं में भी इन्होंने कुशलता प्राप्त कर ली थी। ऐसे परम विद्वान् एवं वीर राजकुमार को पाकर प्रजा अपने को धन्य मानने लगी।

पिता दृढ़व्रत के दिवंगत होने पर ये सिंहासन पर बैठे। इन्होंने अपने पिता से भी बढ़कर कुशलता से शासन किया, विद्वानों का आदर किया और प्रजा का कल्याण किया। इनकी लोकप्रियता से जलकर चोल और पांडिय राजाओं ने इनको युद्ध में हराकर इन्हें प्रजा की दृष्टि में अपमानित करना चाहा। लेकिन कुलशेखर ने उक्त दोनों राजाओं की सम्मिलित सेनाओं को पराजित कर दिया। इनकी वीरता से अभिभूत होकर पांडिय राज ने उनसे अपनी पुत्री का विवाह करके मैत्री कर ली।

धीरे-धीरे कुलशेखर के मन में अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध के प्रति अरुचि बढ़ने लगी। भगवान् विष्णु की कृपा से उन्हें आत्म-ज्ञान हुआ और वे सांसारिक जीवन की निस्सारता पर विचार करने लगे। वे कहने लगे कि विषयग्रस्त मानव और राजा बनकर रहने की अपेक्षा भगवान् के मन्दिर के पास के सरोवर में मछली बनकर सदा वहीं पर रह जाना श्रेयस्कर है। इन्हीं दिनों उनमें असीम कृष्ण-भक्ति जगी। प्रगाढ़ भावासक्ति की स्थिति में ये कभी-कभी अपने को देवकी मानकर दुःखी होते थे कि श्रीकृष्ण का पालन-पोषण करने का भाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। कभी स्वयं को राधा मानकर श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का गान करने लगते थे। उन लीलाओं की कल्पना में मग्न होकर आनन्द-सागर में तैरते रहते थे। कभी कहा करते थे—"चाहे पति कितना ही कठोर क्यों न हो, दूसरों द्वारा निन्दित ही क्यों न हो, पतिव्रता पत्नी उसको अपना देव मानकर उसीके संग आनन्द का

अनुभव करेगी। वैसे ही गगनचुम्बी दुर्ग के अंदर रहनेवाले मेरे प्रभु, तुम मुझे अपनाकर मेरी रक्षा न करो तो भी मैं वीर वलयों से शोभित तुम्हारे चरणों को दृढ़ता से पकड़ चुकी हूँ। मैं उन चरणों को पकड़े हुए जीवन बिता दूँगी।"

एक बार इनके दरबार में किसी भावुक विद्वान् का रामायण-कथा पर प्रवचन हो रहा था। कुलशेखर तन्मय होकर सुन रहे थे। रामायण में शूर्पणखा का प्रसंग आया। कथाकार ने कहा कि शूर्पणखा का रुदन सुनकर राक्षसों ने पंचवटी को घेर लिया और राम-लक्ष्मण पर बाण, बेल, तलवार और शूलों की बौछार करने लगे। इतना सुनते ही राजा कुलशेखर अकुलाकर उठे और बोले—"क्या रामचन्द्र अकेले ही उन राक्षसों से लड़ेंगे? उनकी सहायता के लिए जाये बिना हम कैसे यहाँ बैठे रहें?" उन्होंने तुरन्त अपने सेनापतियों को सन्नद्ध होने की आज्ञा दी। राजा की स्थिति पहचानकर मन्त्रियों ने कथाकार को संकेत किया तो उन्होंने सुनाया कि खर-दूषणादि राक्षस राम के सामने टिक न सके। वे राम के बाणों से मारे गये तथा सारी राक्षस-सेना छिन्न-भिन्न होकर भाग गयी। इस प्रकार कथा को संक्षिप्त करके कथाकार ने राम के अयोध्या लौटने और सिंहासनासीन होने का प्रसंग कहकर कथा को समाप्त कर दिया। तब कुलशेखर शान्त और सन्तुष्ट हुए।

राजा की तीव्र विष्णु-भक्ति को कम करने के उद्देश्य से मन्त्रियों ने वैष्णवों के प्रति राजा के मन में अरुचि उत्पन्न करने का प्रयास किया। एक दिन उन्होंने राजा की आभरण-मंजूषा से नवमणि माला को लेकर छिपा दिया। दूसरे दिन राजा ने पेटी में माला को न पाकर मन्त्रियों से पूछा तो वे बोले—"आपकी इस पेटी के पास वैष्णवों के सिवा और कोई नहीं आता। किसी वैष्णव ने ही चुरा ली होगी।" राजा अत्यन्त व्यथित होकर बोले—"नहीं, कोई भी वैष्णव ऐसा दुष्कर्म नहीं कर सकता।" ऐसा कहकर उन्होंने एक मणिधर सर्प लाने की आज्ञा दी। मणिधर लाया गया। मन्त्री, सेनापति आदि भयभीत थे कि क्या होने जा रहा है? राजा ने अपना हाथ सर्प के पास रखते हुए घोषणा की कि अगर मेरे किसी वैष्णव मित्र ने माला की चोरी की हो तो यह साँप मेरे हाथ में काट ले। सर्प थोड़ी देर उनके हाथों को घूरता रहा। फिर एकाएक हटकर फन फैलाकर नाचने लगा। अन्त में उनको नमस्कार करके पिटारी में पहुँच गया। राजा ने उस साँप को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। तब मन्त्रियों ने काँपते हुए स्वर में अपनी करतूत बतायी और मणिमाला देकर क्षमा-याचना की।

भक्त-हृदय कुलशेखर ने उन्हें क्षमा कर दिया। लेकिन बोले—"आप लोग सांसारिक बन्धनों को इतना महत्त्व देकर असत्य का व्यवहार न करें। भगवान् के प्रति भक्ति के सिवा मानव-जीवन का और कोई लक्ष्य नहीं है।" कुछ दिनों बाद इन्होंने राज्य-भार अपने पुत्र को सौंप दिया और तीर्थ-यात्रा करते हुए परमपद को प्राप्त हुए। इनके गीतों से दो उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

तण् अम् तामरैक् कण्णने! कण्णा
तवषन्दु एषुन्दु तळ्न्दु ओर नडैयाल
मण्णिल चेम्पोड़ि आडिवन्द् एन्दन्
मार्बिल मन्निड़म पेट्रिलेन! अन्दो!
वण्णच् चेमचिरु कैविरल अनैत्तुम्
वारि वाय् कोण्ड अड़िसिलिन् मिच्चिल
उण्णप् पेट्रिलेन ओ केडुविनैयेन
एन्नै एनसेयप् पेट्रदु एम मोये!

'सुशीतल कमल-नेत्रोंवाले हे कृष्ण! घुटनों के बल चलकर मनमोहक चाल से आनेवाले तुम्हारे धूलि-धूसरित कोमल चरणों को अपने वक्षःस्थल पर चढ़ा लेने का भाग्य मुझे नहीं मिला। हाय! सुन्दर मृदु उँगलियों से उठा-उठाकर तुम्हारे खाने के बाद थाली में बची हुई तुम्हारी जूठन को खाने का भाग्य भी मुझे नहीं मिला। मेरा यह कैसा दुर्भाग्य है? इस अभागे का जीवन कितना निःसार है?'

(२)

मुषुदुम वेण्णेय अळैन्दुतोट्टु उण्णुम
    मुगिष इळमशिरुत् तामरैक् कैयुम
एषिल कोळ ताम्बु कोण्डु अडिप्पदर्क्कु एळगुम
    निलैयुम् वेण् तयिर् तोय्न्द सेव्वायुम
अषुगैयुम अंजिनोक्कुम अन्नोक्कुम
    अणिकोळ सेंच्चिरु वाय् नेळिप्पदुउम
तोषुगैयुम इवैकण्डअशोदै
    तोल्लै इन्बत्रु इरुदिं कण्डाळे ॥

'मक्खन को बिलकुल घोल-घोलकर उठा-उठाकर खानेवाला मृदुल कमल-कली जैसा बंद हाथ, सुन्दर रस्सी लेकर जब माँ मारने आती है तब डरने का भाव, सफेद दही की रेखा से युक्त मुँह, रुदन, भयभीत-सा होकर देखने की वह भंगिमा, सुन्दर छोटा मुँह फड़काने का ढंग, प्रार्थना करने का अभिनय, इन सब हाव-भावों को देखकर यशोदा कृष्ण को पुत्र के रूप में पाने के सुख की सीमा पर पहुँच गयी।'

ह० दु० स्वा०

कूरत्ताषवान्

इनका जन्म सौम्य वर्ष, पौष मास, हस्त नक्षत्र, पंचमी, गुरुवार को हुआ था। कांचीपुरम् के पास कूरम् नामक स्थान में जन्म लेने से ये कूरत्ताषवार् कहलाये। किन्तु इनका पूर्वनाम था–श्रीवत्सचिह्नर्। स्वामी रामानुज के प्रति इनकी भक्ति देखकर नंबी ने इन्हें आषवार् कहा। तमिल में 'र्' बड़प्पन-सूचक और 'न्' लघुता-सूचक होता है। अपनी विनम्रता के कारण इन्होंने आषवार् के बदले आषवान् पसंद किया। अतः कूरत्ताषवान् नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

एक बार जब वैष्णव-विरोधी चोलराज ने स्वामी रामानुज पर क्रुद्ध होकर उन्हें बुला भेजा था, तब ये स्वामीजी के वेष में त्रिदण्ड लेकर, काषाय पहनकर उसके दरबार में गये थे। इस प्रवञ्चनापूर्ण आचरण से कुपित चोलराज ने इनकी आँखें निकाल लेने का आदेश अपने अनुगतों को दिया तो इन्होंने स्वयं अपनी आँखें निकाल लीं और पूर्णतया अन्धे हो गये। फिर भी इन्हें सन्तोष था कि मैंने स्वामीजी को ऐसे कठोर दण्ड से बचा लिया। स्वामी रामानुज अत्यन्त दुःखी हुए और इनसे मिलने गये। कुछ वर्ष बाद भगवान् की कृपा से इन्हें पुनः नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गयी।

ह० दु० स्वा०

गुरुकै कावलप्पन्

इनका आविर्भाव अनुमानतः १०वीं शती ई० में हुआ था। ये भी श्री नाथमुनि के शिष्य थे। नाथमुनि ने अपने अन्तिम दिनों में इन्हें अष्टांगयोग-क्रम की शिक्षा दी थी। उन्होंने इनसे कहा था—"मेरे देहान्त के बाद मेरे पुत्र ईश्वरमुनि के एक पुत्र होगा, उसको यह विधान सिखा देना। भविष्यवाणी के अनुसार ईश्वरमुनि को एक पुत्र हुआ जिसका नाम नाथमुनि की इच्छा के अनुसार यमुनैत्तुरैवन् (यमुना-तीर-विहारी) रखा गया। वही आगे चलकर आळवन्दार् अथवा यामुनाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। आळवन्दार् को मणक्काल् नंबी ने रहस्य-ग्रन्थों की दीक्षा दी और कहा—"आप योग-रहस्यों की शिक्षा गुरु कावलप्पन् से प्राप्त कीजिये।" कुछ दिनों बाद मणक्काल् नंबी का वैकुण्ठ-वास हो गया। तब यमुनैत्तुरैवन् अपने शिष्यों के साथ वीरनारायणपुरम् गये, जहाँ गुरु कावलप्पन् ठहरे हुए थे। उस समय अप्पन् योग-साधना में लीन थे। साधना से निवृत्त होते ही उन्होंने पूछा–"क्या यमुनैत्तुरैवन् आये हैं?" तब तुरैवन् सामने आये, साष्टांग नमस्कार किया और पूछा–"मेरा आना आपको कैसे मालूम हुआ?"

अप्पन् बोले–"महालक्ष्मी अपना स्तन-भार लगाकर भगवान् से आलिंगन कर रही थीं, तब भी भगवान् ने मेरे कन्धों से झाँककर बाहर देखा, इसलिए मैंने समझा कि लक्ष्मी से भी प्रिय भक्त आये होंगे।" गद्गद होकर आळवन्दार ने उनसे योग-रहस्य में दीक्षित करने की प्रार्थना की। अप्पन् ने श्रीमुख लिखकर देते हुए कहा–"आगामी पौष मास में हम निर्दिष्ट तिथि में परमपद प्राप्त करेंगे। उसके पूर्व आ

जाना।" श्रीमुख लेकर तुरैवन् तिरुक्कच्चि तथा श्रीरंगम् की यात्रा करके लौटे। उसी दिन अप्पन् परमपद प्राप्त करनेवाले थे। इसलिए तुरैवन् को योग-रहस्य सीखने का भाग्य नहीं मिला। निम्नलिखित पद्य अप्पन् का लिखा माना जाता है। यह तंजाऊर सरस्वती भवन की एक पाण्डुलिपि में है :

सीरारुम् माडत् तिरुक्कोवलूर् अदनुळ्
कारार् करुमुकिलैक् काणप्पुक्कु—ओरात्
तिरुक्कण्डेन् एन्ड्रृत्तरै सीरान् कषले
उरैक्कण्डाय् नेंजे युगन्दु ॥

'सुन्दर सुसज्जित नगर तिरुक्कोवलूर में विराजनेवाले घनश्याम को देखने जाकर समक्ष ही भगवान् के दर्शन पा लेनेवाले भक्त (पेयाष्वार्) की बात पढ़कर हे मन! मैं गद्गद हुआ और उस भक्तवर के स्मरणमात्र से मैं बन्धन-मुक्त हो रहा हूँ।'

ह० दु० स्वा०

गोपाल कृष्ण भागवतर्

आसेतु हिमाचल यात्रा करके नाम-संकीर्तन में ही अपना जीवन जिन भक्तों ने व्यतीत किया, उनमें श्री गोपाल कृष्ण भागवतर् का नाम उल्लेखनीय है। आपने स्वर्णक्काडु नामक एक गाँव में तेलुगु ब्राह्मण-परिवार में जन्म लिया था। ये जीवन-यापन के निमित्त तिरुच्चिराप्पळ्ळी के पास के पुदुक्कोटै में आकर ठहरे। जब ये पचीस साल के थे तभी दो पुत्रों को जन्म देकर इनकी धर्मपत्नी स्वर्ग सिधार गयीं। युवक गोपाल कृष्ण ने दूसरा विवाह नहीं किया। दोनों पुत्रों के लालन-पालन में लगे रहे। साथ ही साधु-सन्तों का सान्निध्य भी प्राप्त करते रहे। पुत्रों का विवाह करने के बाद इन्होंने पूर्णतया भागवत-जीवन को अपना लिया।

प्रातः सुप्रभातम्, फिर उञ्छ-वृत्ति (भिक्षाटन), पूजा, रात में नाम-संकीर्तन और दोलोत्सव, इस तरह अपनी दिनचर्या को नियमित करके ये भक्त-जीवन व्यतीत करने लगे। सत्तर वर्ष की आयु में भी गम्भीर स्वर से, अर्थ-भावपूर्ण गायन इनकी विशेषता थी। ये बीच गली में खड़े रहकर दिल पिघला देनेवाले स्वर में गाया करते थे। इनके द्वारा संचालित दोलोत्सव का दृश्य अपूर्व हुआ करता था। भिक्षाटन में जो प्राप्त होता था, उससे ये हजारों को अन्न-दान किया करते थे।

किसी दोष देखने का स्वभाव इनमें नहीं था। सदा गुण ही ग्रहण करते थे। तिलभर भी घमंड नहीं था। बड़ों के प्रति इनका अत्यधिक प्रेम था। बंबई, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास आदि विशिष्ट नगरों में जाकर इन्होंने भक्तिभाव का आदर्श प्रस्तुत किया। इनके कारण ही भजन का महत्त्व तमिलनाडु में बढ़ता गया। इन्होंने एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए राधा-कृष्ण नाम का करोड़ों की संख्या में जप किया। अन्तिम समय में अपने एक पुत्र की गोद में सिर रखकर लेटे हुए कृष्ण-नाम-संकीर्तन करते रहे और उपस्थित बन्धुओं तथा प्रेमियों से बिदा लेकर कृष्ण-धाम के लिए प्रस्थान किया। यह घटना लगभग बीस वर्ष पूर्व घटी थी। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

ह० दु० स्वा०

गोपाल भागवतर् (भागवतपुरम्)

तिरुविसलूर और तिरुविड़मरुदूर के बीच में भागवतपुरम् नामक एक गाँव है। यहाँ गोपाल भागवतर् नाम से एक महान् भक्त हुए हैं। ये भी मरुदानल्लूर सद्गुरु स्वामी के शिष्य थे और उनकी सेवा किया करते थे। इनके शरीर में मेप्परोग था। लेकिन सद्गुरु स्वामी इनको गले लगाकर दिव्य नाम-भजन करते हुए नर्तन करते थे। 'यस्यांगम् कनकाभकामसदृशम्' के अनुसार सद्गुरु स्वामी स्वर्णिम शरीर के थे। गोपाल भागवतर् ने सोचा कि मेरे शरीर को उनका छूना ठीक नहीं। इसलिए ये दूर से ही उन्हें नमस्कार करके लौट जाने लगे। नित्यप्रति कावेरी नदी में स्नान करके एक लाख आठ हजार

राम-नाम का जप करने के बाद ये उञ्छ-वृत्ति से भिक्षा प्राप्त किया करते थे।

ये अपने महाप्रयाण-काल को जानते थे। अन्तिम समय उपस्थित जानकर इन्होंने अपने शिष्यों से प्रार्थना की कि वे इन्हें कावेरी नदी के किनारे ले चलें। शिष्यों ने इन्हें ले जाकर कावेरी के किनारे पर बैठाया। तब भागवतजी ने भीष्म-स्तुति का पठन करके आनन्दाश्रु बहाते हुए प्रार्थना की—"हे कृष्ण! तुमने अन्तिम काल में भीष्म को दर्शन दिये, वैसे ही मुझे भी क्यों नहीं देते?" ऐसी प्रार्थना करते हुए रो पड़े। थोड़ी ही देर में उनका मुखमण्डल आनन्द से भर गया और बोले—"लो, पार्थसारथी आ गये। इधर दिखायी दे रहे हैं।" ऐसा कहते हुए 'सादरमीक्षितममरैः' कीर्तन गाया। उसे 'भद्राचल गोपालम्' की मुद्रा रखकर पूर्ण किया। कंधे से तानपूरा लगाये हुए, हाथों से ताल देते हुए परमपद को प्राप्त हो गये। यह घटना माघ मास के मृग नक्षत्र में हुई। यह समारोह आज भी विष्णु मन्दिर में इस दिन मनाया जाता है। गीतगोविन्द के बाद जो पार्थसारथी-गीत गाया जाता है, वह इन्हीं गोपाल भागवतर् का रचा हुआ है। इन्होंने अपने गीतों में 'भद्राचल गोपालम्' की छाप रखी है।

ह० दु० स्वा०

गोपाल भागवतर् (मणंचेरी)

तमिल प्रदेश में गोपाल भागवतर् नाम से पाँच कृष्ण-भक्त हुए हैं। यहाँ उनमें एक मणंचेरी के गोपाल भागवतर् का परिचय दिया जाता है। ये नित्यप्रति बोधेन्द्र स्वामीजी की आराधना किया करते थे। उन दिनों गोविन्दपुरम् मठ नहीं था। बाद में ही वासुदेव-स्वामी के समय में वह निर्मित हुआ। वीरचोल नदी के प्रवाह में गोपाल भागवतर् का अधिष्ठान भी डूब गया। इसलिए ये नित्य मणंचेरी से ही सकल पूजा-सामग्री ले जाकर फूस का पंडाल बनाकर पूजा करके लौट आते थे। इन्होंने श्री बोधेन्द्रस्वामी के नाम सिद्धान्त-कीर्तनों को अपने गृह में सुरक्षित करके रख दिया था।

मरुदानल्लूर सद्गुरु स्वामी के पिता वेंकटसुब्रह्मण्यार्यर इनके कुल-पुरोहित थे। सद्गुरु स्वामी पाँच वर्ष की आयु तक गूँगे थे। एक दिन पुरोहित ने अपने पुत्र को इनके पास लाकर कहा—"यह मेरा बेटा है, गूँगा है, कुछ भी बोल नहीं पाता।" तब भागवतर् बोले—"मुझमें वाग्-शक्ति दिलाने की क्षमता नहीं है। फिर भी मुझे लगता है कि यह जगत् का उद्धार कर सकनेवाला महापुरुष होगा। श्री बोधेन्द्रस्वामी की कृपा से यह अपने-आप बोलने लग जायगा। इसे राम-नाम की दीक्षा देता हूँ।" ऐसा कहकर लड़के से बोले—"बेटे वेंकटरामा, राम, राम, राम कहो।" वह तुरन्त सद्गुरु स्वामी तारकमन्त्र का उच्चारण करने लगा और तब से बोलने भी लग गया। आगे चलकर यही बालक श्री वेंकटराम सद्गुरु स्वामी के नाम से विख्यात हुआ।

कालान्तर में लोक-प्रसिद्ध होने पर भी ये मणंचेरी गोपाल भागवतर्जी को नहीं भूले। उन्हींको अपना गुरु माना। जब कभी मरुदानल्लूर से गोविन्दपुरम् जाते तब मणंचेरी में सवारी से उतर जाते और गाँव पार होने तक पैदल ही चलते। इसका मुख्य कारण यह था कि वह गोपाल भागवतर्जी का गाँव था। फिर भी गोपाल भागवतर्जी तो इन्हींको अपना गुरु मानते थे अर्थात् यह विचित्र बात हुई कि परस्पर गुरु-शिष्य एक-दूसरे को अपना गुरु ही मानते थे। शिष्य को शिष्य नहीं माना। गोपाल भागवतर् विनयस्वरूप थे। इनके सत्संग से अनेक विद्वान् उच्चकोटि के भक्त बन गये।

ह० दु० स्वा०

गोपाल भागवतर् (वरहूर)

ये वरहूर गोपाल भागवतर् नारायण तीर्थ के शिष्य थे। अपने गुरु का अनुकरण करके ये वरहूर में श्री राधा-कृष्ण-महोत्सव समारोहपूर्वक मनाया करते थे। इस अवसर पर गुरुदेव-रचित 'कृष्ण-लीला-तरंगिणी' की बारह दिन, में बारहों तरंगें गाकर उत्सव

मनाते थे। श्री नारायण शास्त्री इन्हींके शिष्य थे। इन्होंने 'चिग्योत्सव प्रबन्ध' नामक चम्पू-काव्य की रचना की। उसमें श्री नारायण तीर्थ वैभव, श्री गोपाल भागवतर् वैभव तथा वरहूर के चिग्योत्सव वैभव का सुन्दर वर्णन मिलता है।

ये परम विरक्त थे। किसीसे किसी भी प्रकार का प्रतिग्रह नहीं लेते थे। एक बार इनका महत्त्व सुनकर तंजाऊर के मराठा राजा ने सभा में हरि-कथा का आयोजन किया। भागवतर् ने रात आठ बजे से कथा-वाचन आरम्भ किया और उसे प्रातः चार बजे समाप्त किया। राजा इनका कनकाभिषेक करने के विचार में थे। उसका प्रबन्ध करने के लिए वे बीच में उठकर अंदर गये। तभी समय जानकर भागवतजी ने कथा समाप्त कर दी और गाड़ी पर चढ़कर वरहूर चले गये।

कुछ समय बाद एक थाली में स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर राजा वापस आये तो देखा कि भागवतर्जी कथा समाप्त करके चले गये हैं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। तब उनके गुरु गोस्वामीजी ने उन्हें यह समझाकर आश्वस्त किया कि श्री भागवतर् परम विरक्त तथा अपरिग्रही हैं। किसीसे सम्मान प्राप्त करना पसन्द नहीं करते। वे आपके महल में आये, इसीको अपना परम सौभाग्य मानिये।

ह॰ दु॰ स्वा॰

चेव्वै चूडुवार

भगवान् विष्णु के चरण-कमलों से पवित्रीकृत पांडिय नाडु में 'मानवीर मदुरै' नामक एक स्थान है। अब वह मानामदुरै कहा जाता है। यह मदुरै से रामेश्वर जानेवाले मार्ग पर स्थित स्टेशन है। उस स्टेशन से थोड़ी दूर पर वेम्बत्तूर नामक एक हरा-भरा गाँव है। वहीं पर माधव पंडित नामक तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के एक प्रकाण्ड पण्डित रहते थे। श्री चेव्वै चूडुवार इन्हींके वंशज थे। ये भी माधव पण्डित नाम से संबोधित किये जाते थे। विद्वान् होने के साथ ही ये भगवान् कृष्ण के भक्त भी थे। इन्होंने संस्कृत भागवत का रूपान्तर तमिल में किया है। इनके द्वारा विरचित तमिल भागवत की फलश्रुति का एक पद्य उद्धृत है :

कनैत्तुवण् डिमिरतुषाय्क् कण्णन माक्कचै
मनत्तुर् वषगुनर् मगिष्न्दु केटकुनर्
विनैत्तुर् कट्रु मेय्म्मै यादिया
निनैत्तन् पेट्रिवण् नीडु वाषियवे।

'जिनके वक्षःस्थल पर सुगन्धित पुष्पमाला शोभित है, जिस पर मधुप गुंजार करते हैं, उस कृष्ण की महान् कथा सुनकर लोग मन ही मन आनन्दमग्न होते हैं और उनका यशगान करने लगते हैं। उस कथा को सुनते ही विधि की विडम्बनाएँ छूट जाती हैं, असत्य ओझल हो जाता है और सत्य के साक्षात्कार होते हैं। स्मरण करने मात्र से ऐसी कृपा करनेवाले कृष्ण भगवान् चिरंजीवी रहें, उनकी जय हो, जय हो।'

चेव्वै चूडुवार के छन्दों में भक्ति-भावना के साथ शब्द-माधुर्य का भी आनन्द प्राप्त होता है। इसके उदाहरण के रूप में निम्नांकित पद उद्धृत है :

पूमड़न्दै पुणन्देवन् माक्कथै
नामड़न्दै नविन्ड्रन् वागलान्
कामड़न्दै येन्ड्रोरकवि यान् चोलिन्
पामड़न्दै यन पाड़िय दागुमे।

'जिन्होंने पुष्पासन स्थित महालक्ष्मी से परिणय कर लिया, जिनका गुणगान करने में जिह्वासन पर स्थित सरस्वती अपना अहोभाग्य मानती हैं और जिनका गुणगान करते रहने की शक्ति सिंहवाहिनी महेश्वरी प्रदान करती हैं, उस भगवान् की महत् कथा ही मेरी लेखनी पर स्थित कवितेश्वरी है। समस्त शक्तियों का मूलाधार कृष्ण की भागवत-कथा ही है।'

ह॰ दु॰ स्वा॰

तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान्

इन्हें संक्षेप में 'आण्डान्' नाम से जाना जाता है। ये १०वीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये भी नाथमुनि के भानजे तथा शिष्य थे। इनका जन्म और पालन-पोषण

तिरुक्कण्णमंगै नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता बड़े धनाढ्य थे। उनके दिवंगत होने पर ये मामा श्री नाथमुनि के शिष्य बने और अपने गाँव में ही रहकर भक्तवत्सल भगवान् के लिए तुलसी-माला गूँथकर अर्पित करते थे। इन्होंने यह सेवा जीवन के अन्तिम क्षण तक की।

एक दिन मन्दिर के सामने दो शिकारी आये। उसके कुत्ते आपस में लड़ पड़े तो एक कुत्ता मर गया। उसके कारण दोनों शिकारी आपस में लड़कर मर गये। इस घटना को देखते ही आण्डान्, जो पालकी पर जा रहे थे, उतर गये और सोचा—"इन दोनों ने कुत्ते के लिए ही प्राण दे दिया। क्या मैं भगवान् के लिए प्राण नहीं दे सकता हूँ?" उस दिन से इन्होंने पालकी पर जाना छोड़ दिया। पैदल ही चलने लगे। कभी-कभी पशुओं की भाँति दोनों पैरों और हाथों के बल भी चला करते थे। ये प्रायः बकुल-वृक्ष के नीचे मौन रहते हुए तुलसी-माला गूँथते रहते थे।

एक दिन मन्दिर में आवाज सुनायी पड़ी कि कल अमुक समय आण्डान् मोक्ष प्राप्त करेंगे। जिन लोगों ने सुना वे चकित रह गये। दूसरे दिन मन्दिर में बड़ी भीड़ जम गयी। निर्दिष्ट समय पर एक ज्योति दिखायी पड़ी और उसमें आण्डान् समा गये।

आण्डान् का यह वृत्तान्त श्री भट्टर द्वारा श्री नंजीयर को सुनाया गया। इनकी कोई कृति प्राप्त नहीं है।

ह० दु० स्वा०

तिरुक्कोष्ठियूर नंबी

वैष्णव-परम्परा में इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये स्वामी रामानुज के समकालीन थे और अवस्था में उनसे बड़े थे। स्वामीजी ने इन्हींसे श्रीमंत्र विश्वास एवं चरम श्लोक के अर्थ का श्रवण किया था। तिरुक्कोष्ठियूर में जन्म लेने से नंबी के साथ नगर का नाम भी लग गया। ये आळवन्दार के विद्यार्थी थे। इनकी दो सन्तानें थीं—एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम था तेक्कोंष्वान और पुत्री का देवकी पिटाट्टियार।

ये अत्यन्त विनम्र सन्त थे। रामानुज स्वामी के अध्ययन की चर्चा करते हुए ये कहते थे कि उनका मेरे पास अध्ययन करना सन्दीपनि के पास श्रीकृष्ण के अध्ययन करने के समान है। इस तरह इन्होंने श्री रामानुज की महिमा का आख्यान किया।

इनकी विनम्रता का और एक उदाहरण मिलता है। ये कहा करते थे कि गुरु आळवन्दार की कृपा से ही मुझे श्लोकों और मन्त्रों के अर्थ विदित होते हैं। मैं तो स्वयं ज्ञान-विहीन हूँ। किसीका अज्ञान दूर करने का गर्व मैं नहीं कर सकता।

इस साधु पुरुष की कोई रचना नहीं मिलती। ऐसा लगता है कि इन्होंने गुरु एवं भगवान् की चरण-सेवा में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया। कुछ लिखकर रखने का यत्न नहीं किया। अतएव तिरुक्कोष्ठियूर नंबी सबके प्रिय आचार्य तथा श्रद्धा के पात्र रहे।

ह० दु० स्वा०

तिरुप्पाणालवार

तिरुप्पाणालवार का जन्म अछूत जाति में हुआ था। यह वैष्णव-धर्म की उदारता का प्रमाण है कि उसके अनुयायियों ने उस जाति के एक व्यक्ति को आलवारों में स्थान देकर सम्मानित किया और उसकी उपासना-मूर्ति सभी वैष्णव मन्दिरों में स्थापित की।

पाण अस्पृश्य माने जाने से शहर से दूर चेरियों में रहते हैं। (तमिल में चेरी उन गाँवों का सामान्य नाम होता है जहाँ अछूतों की झोपड़ियाँ होती हैं) उस चेरी के पाण गान-विद्या अर्थात् संगीत-कला में कुशल थे। उसी जाति में भगवान् महाविष्णु की कृपा से उनके श्रीवत्स के अंश के रूप में दुन्मति वर्ष, कार्तिक मास, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र में धान के खेत में तिरुप्पाणालवार का जन्म हुआ।

वे प्रतिदिन ब्रह्म-वेला में उठते, स्नान करते, वैष्णव-चिह्नों को धारण करते, तुलसी तथा कमल मणि-मालाएँ गले में पहन लेते और हाथ में वीणा लेकर कावेरी नदी के दक्षिणी किनारे खड़े हो जाते थे। अस्पृश्य-जाति में जन्म लेने के कारण वे न तो बीच नदी में खड़े हो सकते थे, न नदी पार कर श्रीरंगम् के मन्दिर के निकट जा सकते थे। इसलिए वे मन्दिर की ओर मुँह करके भगवान् की सौम्य मूर्ति को अन्तर-चक्षु से देखते हुए उनके गुणगान किया करते थे। जब वे मधुर स्वर के साथ वीणा बजाते थे तो उनका शरीर पुलकित हो जाता था और प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते थे। एक दिन जब वे आत्मविस्मृत होकर विह्वल भाव से खड़े थे, तब मन्दिर में श्री रंगनाथजी की अभिषेक-सेवा करनेवाले अर्चक श्री लोकसारंग मुनि कावेरी में स्नानादि क्रियाओं से निवृत्त हो हाथ में स्वर्ण-कलश लेकर श्रीमंजन के लिए कावेरी का जल लेने आये। उनके आने के मार्ग में ही पंचम जाति के तिरुप्पाणर् गान में मग्न होकर खड़े थे। अर्चक उनके निकट होकर तो जा नहीं सकते थे। इसलिए मार्ग से उन्हें दूर करने के लिए उद्विग्न थे। श्रीमंजन के लिए जल लेते समय मुँह खोलकर बोलना नियम-विरुद्ध था। इसलिए उन्होंने करतल-ध्वनि करके उन्हें दूर होने का संकेत किया।

तिरुप्पाणर् ने उस ध्वनि पर ध्यान ही नहीं दिया। वे ज्यों के त्यों खड़े रहे। ब्राह्मण ने सोचा—"यह नीच जाति का आदमी कितना घमण्डी है। ताली बजाने से भी नहीं हटता।" ऐसा सोचते-सोचते उनका पारा चढ़ गया। उन्होंने एक पत्थर उठाकर उन पर फेंक दिया। पत्थर पाणर् के ललाट पर लगा और रक्त को धारा बह निकली। चोट की पीड़ा से पाणर् सचेत हुए और उन्हें सारंग मुनि के पवित्र जल लेने के मार्ग में बाधा बनकर खड़े होने का भान हुआ। वे काँपते हुए उस जगह से दूर हो गये। उनके हटते ही सारंगमुनि स्वर्ण-कलश में जल भरकर मन्दिर में पहुँचे और अभिषेक करने के लिए कलश उठाकर देखा तो भगवान् के ललाट से रक्त बह रहा था। अपनी आराधना-मूर्ति के ललाट में चोट और खून देखकर वे तड़प उठे। उनकी वेदना की कोई सीमा नहीं रही। उस दिन उन्होंने न कुछ खाया, न पिया। बहुत देर तक करवट बदलते रहे। तब मायावी कृष्ण की कृपा से उन्हें नींद आयी।

स्वप्नावस्था में भगवान् ने उनसे कहा—"हे मेरे परम प्रेमी पुत्र! तुमने आज बड़ी भारी भूल कर दी। कावेरी के दक्षिणी किनारे पर स्नान करके श्रीचूर्ण लगाकर, तुलसी मणि-माला पहनकर हाथ में वीणा लेकर परम भक्ति के साथ गाते हुए मेरे प्रिय भक्त को तुमने अछूत माना और पत्थर फेंककर उसे घायल कर दिया। हम भक्तों के भक्त हैं। इसलिए उसका घाव हमने ले लिया। इसलिए तुम कल प्रातः नदी के किनारे पर जाओ। वहाँ पर नित्य की भाँति पाणर् वैष्णव-चिह्नों से युक्त होकर मेरा गान करता मिलेगा। तुम उसे कंधे पर उठाकर मेरे पास लाकर छोड़ दो।"

जब सारंगमुनि का स्वप्न टूटा तो सूर्योदय हो रहा था। उन्होंने दूसरे अर्चकों और ब्राह्मणों से स्वप्न का विवरण बताया। शीघ्र ही स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर नदी के दक्षिणी किनारे पर पहुँचे और पाणर् को मधुर वीणा-वादन में मग्न देखा। तुरंत मुनि ने पाणर् के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया। पाणर् हड़बड़ाकर हटते हुए बोले—"आप ब्राह्मण-श्रेष्ठ हैं, आपका मेरे चरणों में झुकना अनुचित है।" तब मुनि ने कहा—"आप तपस्वियों में श्रेष्ठ हैं। आपने अपने अविचल प्रेम से भगवान् को वश में कर लिया। भगवान् का मन आपके प्रति प्रेमभाव से भरा है। उन्होंने स्वप्न में आकर मुझे आपको कंधे पर उठाकर मन्दिर के अन्दर लाने का आदेश दिया है। इसलिए आप इनकार किये बिना मेरे कंधे पर चढ़ जाइये।" ईश्वर

की इच्छा का आदर करते हुए पाणर् चुप हो गये। सारंगमुनि तिरुप्पाणर् को कंधे पर चढ़ाकर दूसरे ब्राह्मणों के साथ मन्दिर में पहुँचे और उनको भगवान् के सान्निध्य में छोड़ दिया।

इतने वर्षों से भगवान् के रूप को कल्पना में ही देखकर मग्न रहनेवाले तिरुप्पाणर् ने कल्पना को साकार पाया। उनका शरीर रोमांचित हो उठा। आनन्दाश्रु से शरीर भीग गया। भगवान् के अंग-प्रत्यंग को सिर से पैर तक देख-देखकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उस तन्मयता की स्थिति में ही इन्होंने दस पद्य गाये। ओंकार के प्रथम अक्षर 'अ' को प्रथम पद्य के आरम्भ में, दूसरे अक्षर 'उ' को दूसरे पद्यारम्भ में तथा 'म' को तीसरे पद्यारम्भ में रखकर उन्होंने गीत-रचना की। 'पासुरम्' कहलानेवाले ये गीत पंचामृत से भी अधिक मधुर हैं। भक्ति-भावना से भावित दसों पासुरों का गान समाप्त होते ही उन पर भगवान् ने कृपा-वर्षा कर दी। दसवें पद के अन्त में पाणर् ने गाया—श्रीरंगम् के अमृतस्वरूप को मेरी जिन आँखों ने देखा वे और किसीको नहीं देखेंगी। इस चरण के समाप्त होते ही सबने देखा कि तिरुप्पाणालवार भगवान् के चरणों के अन्दर प्रवेश करते हुए अदृश्य हो गये। इस अद्भुत दृश्य को जिन लोगों ने देखा, वे सब श्री रंगनाथजी के सौलभ्य की प्रशंसा में जयजयकार करते हुए विह्वल होकर नाचने-गाने लगे।

तिरुप्पाणालवार सारंगमुनि के कंधे पर चढ़कर मन्दिर में जाने के कारण मुनिवाहन कहलाये। उन्नत कविमाला के गीत गाने के कारण ये कवीश्वर नाम से भी जाने जाते हैं। यहाँ इनकी रचनाओं से दो पद उद्धृत हैं—

(१)

अमलन् आदिप् पिरान् अडियाक्कु एन्नै आटपडुत्त
विमलन् विण्णवर् कोन् विरै यार् पोषिल् वेंकटवन्
निमलन् निन्मलन् नीतिवानवन्,
नीळमदिल अंरगत्तम्मान तिरुक्
कमल पादम् वन्दु एन कण्णिलुळ्ळने ओक्किन्ड्रदे !

'मेरे प्रभु श्री रंगनाथजी पवित्र हैं। आदि भगवान् हैं, मुझे भक्तों के वश में कर देनेवाले विमल देव हैं। स्वर्गलोक के देवेन्द्र से लेकर मुझ तक सब पर कृपा-वर्षा करनेवाले वेंकटेश्वर हैं, निर्मल, नीतियुक्त परमधाम हैं। उनके चरण-कमल ही मेरे नेत्रों में प्रथम अमृत-वर्षा करते हैं।'

(२)

कोण्डल वण्णनैक् कोवलनाय् वेण्णेय्
उण्ड वायन् एन उळ्ळंग् कवर्न्दानै
अण्डर् कोन् अणि अरंगन् एन अमुदिनैक्
कण्ड कण्गळ मट्रोन्ड्रिनैक् काणावे॥

'मेरे प्रभु नीलमेघ श्याम हैं। गो-बालक के रूप में मक्खन खाया है। माखन-युक्त मुँह से मेरे मन को वशीभूत कर लिया। भूलोक और स्वर्गलोक तथा सभी ब्रह्माण्ड के शासक हैं। वे श्रीरंगनाथ के रूप में स्थित होकर अमरत्व प्रदान करनेवाले हैं। मेरी जिन आँखों ने ऐसे प्रेममय प्रभु को देखा वे और किसीको नहीं देखेंगी।'

यही तिरुप्पाणालवार का अन्तिम गीत है। सचमुच उनकी आँखों ने श्रीरंगनाथ के दर्शन करने के बाद और किसीको नहीं देखा। वे रंगनाथ कृष्ण में ही समा गये। भक्तवत्सल भगवान् ने जिस प्रकार आण्डाळ को अपने में समा लिया वैसे ही अछूत माने जानेवाले तिरुप्पाणालवार को भी समा लिया।

ह० दु० स्वा०

तिरुमंगै आलवार

तमिलनाडु में तिरुवालिनाडु नामक एक भूभाग है जिसके अन्तर्गत तिरुक्कुरैयलूर अपने वीरवंशी सेनापतियों के लिए प्रख्यात है। चोलराज के सेनापति श्री आलि नाडर वहीं के निवासी थे। श्रीमती वळ्ळित्तिरु उनकी धर्मपत्नी थीं। तिरुमंगै आलवार उन्हींके पुत्र के रूप में नळ वर्ष, कार्तिक मास, पूर्णिमा के दिन, गुरुवार को अवतरित हुए थे। वे भगवान् के धनुष के अंश माने जाते हैं। माता-पिता ने उनका

नाम 'नीलन' रखा और वीरवंश के अनुरूप शिक्षा दी। अपने पिता के बाद नीलन ही चोलराज के सेनापति हुए।

सेनापति नीलन वीरता के साथ कवित्व-शक्ति से भी सम्पन्न थे। नारकविप्पेरुमाळ उपाधिधारी एक उद्धत कवि उन दिनों अपने को अजेय मानकर सबको चुनौती देते हुए दिग्विजय-यात्रा पर थे। उन्होंने नीलन को भी चुनौती दी, किन्तु पराजित हो गये। इसके बाद अपनी उपाधि त्यागकर उन्होंने नीलन को उस उपाधि से विभूषित किया और वहाँ से चले गये। इस घटना का पता लगते ही चोल राज ने भी नीलन को निमन्त्रित करके सम्मानित किया। नीलन ने कई युद्धों में राजा को विजय-माला पहनवायी तो राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें तिरुमंगै नामक स्थान का शासक नियुक्त कर दिया और परकालन की एक अन्य उपाधि से भी भूषित किया। इस प्रकार सेनापति और कवि नीलन तिरुमंगै राजा भी हो गये। उनका सारा ध्यान युद्धों में विजय प्राप्त करने तथा सुन्दरी कामिनियों के सम्पर्क से सुख-भोग करने में ही लगा हुआ था।

लीला-पुरुषोत्तम भगवान् ने वीर और प्रेमी राजा को भक्त बनाकर संसार का उद्धार करने का निश्चय किया। जनश्रुति है कि सुमंगला नाम की देवकन्या एक बार कपिलमुनि के एक शिष्य की कुरूपता पर हँस पड़ी तो मुनि ने उसे मानव-पत्नी बनने का शाप दे दिया। बाद में उसकी प्रार्थना पर मुनि को दया आयी तो उन्होंने शाप में गुणात्मक शिथिलता लाते हुए कहा कि तुम मानवों में श्रेष्ठ वीर राजा तिरुमंगै की पत्नी बनो। कालान्तर में तिरुनांगूर नामक स्थान पर वह एक कुमुद-पुष्प से मानवी बनकर जन्मी। एक भक्त दंपति ने अपनी कन्या मानकर उसका पालन-पोषण किया। उन्होंने उसका नाम 'कुमुदवल्ली' रखा। इस कन्या में अलौकिक सौन्दर्य और भक्ति-भावना का विकास हुआ। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा राजा तिरुमंगै ने भी सुनी। उपयुक्त समय आने पर उसने स्वयं कुमुदवल्ली से विवाह का प्रस्ताव किया। कुमुदवल्ली ने विवाह की दो शर्तें बतायीं। पहली शर्त यह थी कि वह भगवान् रंगनाथ की सेवा करनेवाले भक्त से ही विवाह करेगी। दूसरी यह थी कि वह प्रतिदिन एक हजार विष्णु-भक्तों को भोजन कराकर और उनका चरणामृत लेकर ही भोजन करेगी। राजा तिरुमंगै ने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं और कुमुदवल्ली से उनका विवाह हो गया।

विवाह के पश्चात् राजा तिरुमंगै में भक्ति-भावना का उत्तरोत्तर विकास हुआ, किन्तु व्ययाधिक्य के कारण धनहीन होते गये। कहते हैं कि जब ये अर्थाभाव के कारण चोल राजा का कर नहीं दे पाये और अपमानित होने लगे तो भगवान् ने अपना कांचीपुरम् का पूरा खजाना इन्हें इसके लिए दे दिया। ऐसी जनश्रुति है कि सच्चे विष्णु-भक्तों की सेवा और भरण-पोषण के लिए राजा तिरुमंगै अन्यायी धनिकों के प्रति लुटेरे बन गये और किसी समय भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें उस मार्ग से विरत किया। इसके पश्चात् भगवान् नारायण के आदेश से राजा तिरुमंगै भक्ति के प्रचार में जुट गये। कालान्तर में साधनोत्कर्ष के कारण ये आलवार कहे जाने लगे। शैव-भक्त तिरुज्ञान सम्बन्धरजी से वे एक बार मिले थे और दोनों के मिलाप से शैव-वैष्णव-एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ था। दोनों ने एक-दूसरे को अपने-अपने भक्ति-पद सुनाये थे।

नागपट्टिनम् का स्वर्णकोश लाकर इन्होंने श्री रंगनाथ मन्दिर का विमान-मण्डप और गोपुर बनवाया था। तिरुमंगै आलवार के कई नामों में से एक अरुळमारि भी है। तिरुमंगै आलबार ने अनेक बार तीर्थयात्राएँ कीं। उन्होंने श्री रंगनाथ की स्तुति में ३३९१ भक्तिपूर्ण पदों का गायन किया। अन्त में तिरुक्करुंगुडि में ये गोलोकवासी हुए।

इनके गीतों से दो नमूने यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१)

कुलम् तरुम् सेल्वम् तन्दिडुम् अड़ियार्
पडु तुयर् आयिन एल्लाम् निलन्तरच्चेय्युम्
नीळ विशिम्बरुळुम् अरुळोडु पेरुनिलमळिक्कुम्
वलम् तरुम् मट्र म् तन्दिडुम् पेट्र
तायिनुम् आयिन सेय्युम्
नलम तरुम् चोल्लै नान् कंडु कोण्डेन्
नारायणा एन्नुम् नामम् !

'मैंने ऐसे नाम को जान लिया जिसके जप से उच्च कुल में जन्म प्राप्त होगा, सम्पत्ति मिलेगी, भक्तों के सभी दुःखों के निवारण हो जायेंगे, कृष्ण के साथ स्वर्ग-प्राप्ति होगी, भगवान् का विशुद्ध व्यापक कटाक्ष प्राप्त होगा, सभी शुभ कार्य होंगे, माता के स्नेह से भी अधिक स्नेह मिलेगा। ऐसा शुभ नाम है—नारायण।'

(२)

वाड़िनेन्, वाड़ि वरुन्दिनेन्, मनत्तार्
पेरुन्तुयर् इडुम्बैयिर् पिरन्दु
कूडिनेन् : कूड़ि इळैयवर तम्मोडु
अवर् तरुम् कलवियै करुदि
ओड़िनेन् : उय्वदोर् पोरुळाल
उणर्वेनुम् पेरुम् पदम् तेरिन्दु
नाड़िनेन् नाड़ि नान् कण्डुकोण्ड़ेन्
नारायणा एन्नुम् नामम्

'सांसारिक विषय-सुखों में पड़कर सूखता गया, सूख-सूखकर दु खी होता रहा, मन से सदा व्याकुल रहा, छोटों से सम्पर्क किया, युवतियों से प्राप्त काम-सुख को बड़ा मानकर उनके पीछे दौड़ता रहा। अन्त में इन दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग खोजने लगा। खोज-खोजकर मैंने सुखदायक 'नारायण' नाम को जान लिया।'

उपर्युक्त पद तब गाया गया जब नवविवाहित दंपति के रूप में आकर भगवान् ने लुटेरे तिरुमंगै राजा को सुधारा और उनके कान में अष्टाक्षर मन्त्र सुनाया।

तिरुमंगै आलवार के गीतों में नारायण नाम को ही प्रधानता है। परन्तु तिरुज्ञान सम्बन्धर से वार्तालाप के समय उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति को ही समक्ष रखकर गाया था। श्री रंगनाथ मन्दिर, जिसके लिए उन्होंने मण्डप, गोपुर, विमान आदि निर्मित किये, एक दृष्टि से कृष्ण-क्षेत्र ही है। इससे उनके श्रीकृष्ण के प्रति विशेष अनुराग की सूचना मिलती है।

ह० दु० स्वा०

तिरुमलै हरिदास

तमिलनाडु के वर्तमान मद्रास, चेंगलपट, दक्षिण आर्काट, तंजाऊर और तिरुच्चिराप्पल्ली जिलों का प्रदेश प्राचीन काल में तोंडिरनाडु नाम से प्रसिद्ध था। फिर दण्डक नामक राजा के नाम पर वह दण्डकनाडु बना और उसके वाद तोंडैमान नामक एक चोल राजा के नाम पर बहुत समय तक तोंडैमण्डलम् नाम से सुप्रसिद्ध रहा। इस प्रदेश में 'कुण्ड्रवर्द्धन कोट्टम्' नामक एक भूभाग है, जिसके अन्तर्गत हरिदासपुरम् अथवा हरिकंडपुरम् नामक एक नगरी है। उस प्रदेश पर चोल राजाओं का आधिपत्य समाप्त हो जाने पर विजयनगर के राजाओं का अधिकार हो गया था। वेदवती नदी के किनारे प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण हरिदासपुरम् में तिरुवेंकडमुडैयार नामक एक विष्णु-भक्त थे। उनके तीन पुत्र हुए—१. वड़मलै, २. देवपेरुमाल और ३. तिरुमलैयप्पर। वड़मलै राजनीति में निपुण थे। इसलिए कृष्णदेवराय ने उनको अपना एक सामन्त और मंत्री नियुक्त करके तंजाऊर और आस-पास की भूमि की समस्याओं को सुलझाने का कार्य सौंपा। वड़मलै सदाचार और समर्थ निरीक्षण के कारण महाराज के स्नेह-पात्र बन गये। राजनीति में जितना व्यापक प्रभाव वड़मलै का पड़ा उतना ही उनके कनिष्ठ भ्राता तिरुमलै का भक्ति-क्षेत्र में समादर हुआ।

विष्णु-भक्त पिता तिरुवेंकडमुडैयार ने अपने तृतीय पुत्र तिरुमलै की कृष्ण-भक्ति से प्रभावित होकर उसे कृष्णन नाम से ही सम्बोधित करना आरम्भ

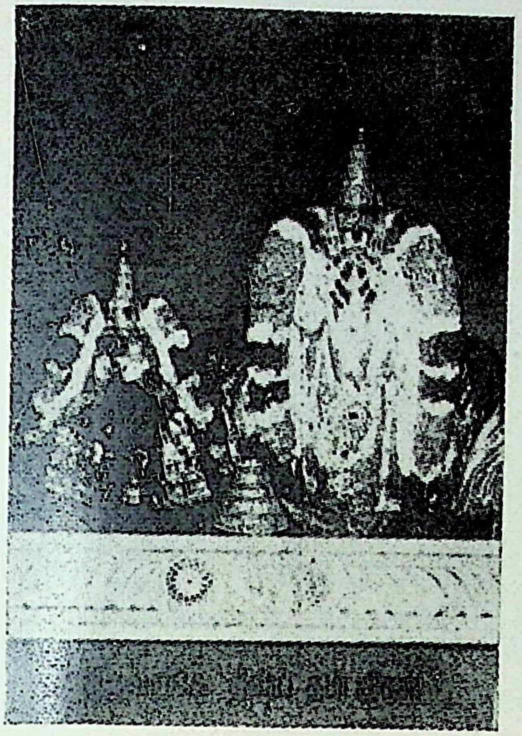

दिव्यदम्पति : श्रीरंगम्, पृ० १,६५

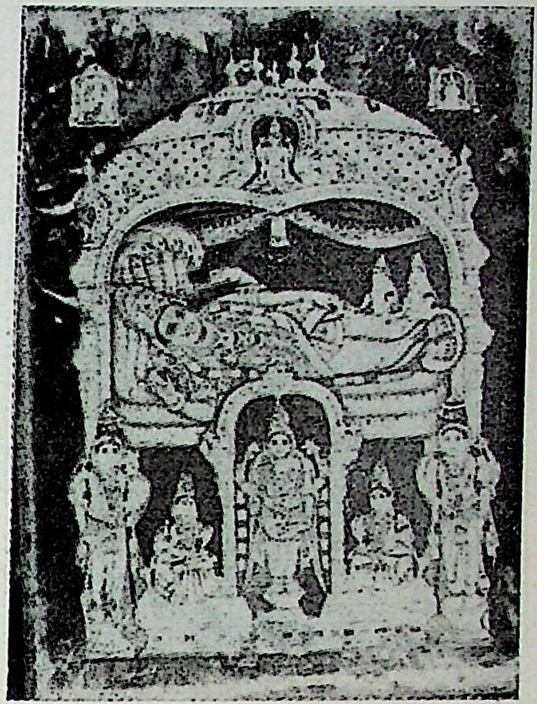

श्री रंगनाथ जी : श्रीरंगम्, पृ० ७०,२१४

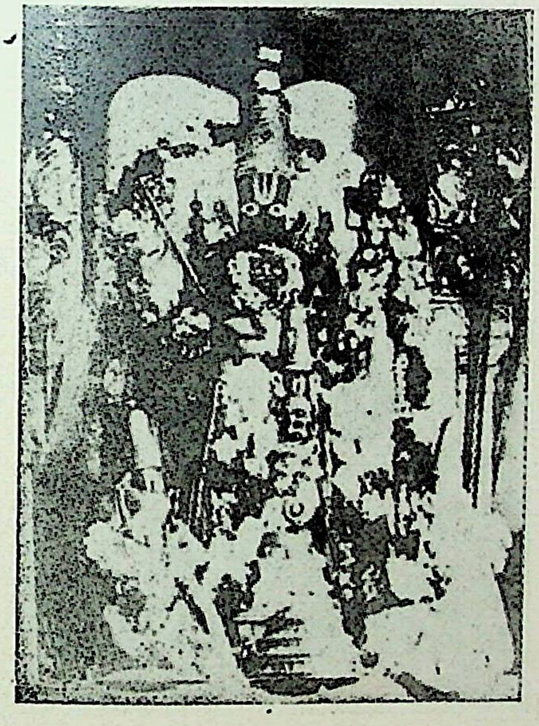

श्री कूड़ल अषगर : मदुरै, पृ० ४,३०,९५,२३१

श्रीरंग नाच्चियार : श्रीरंगम्, पृ० २१४

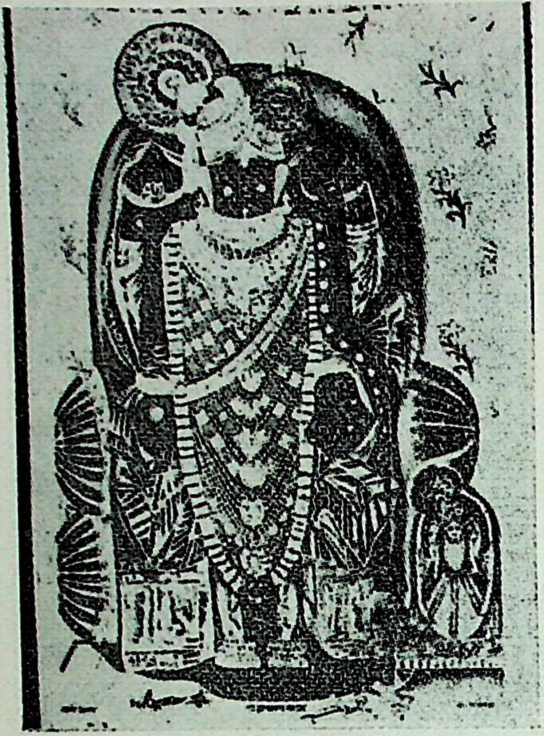

श्रीकृष्ण द्वारकानाथ : वड़मदुरै

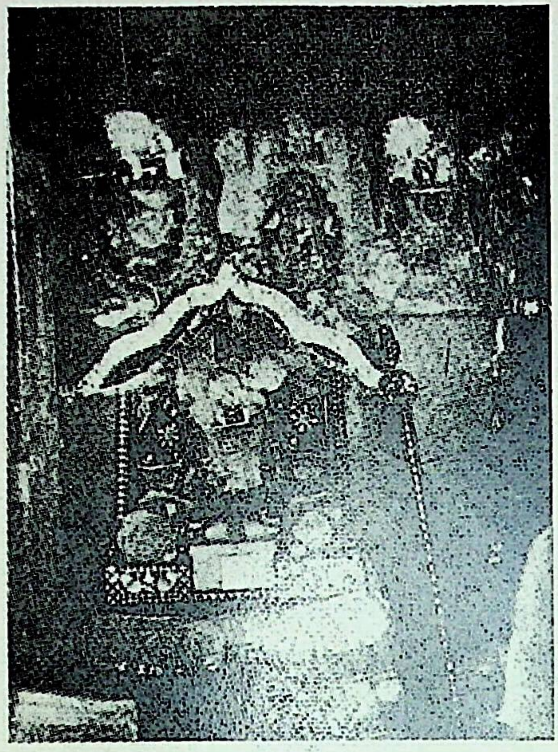

श्रीकृष्ण : वड़मदुरै

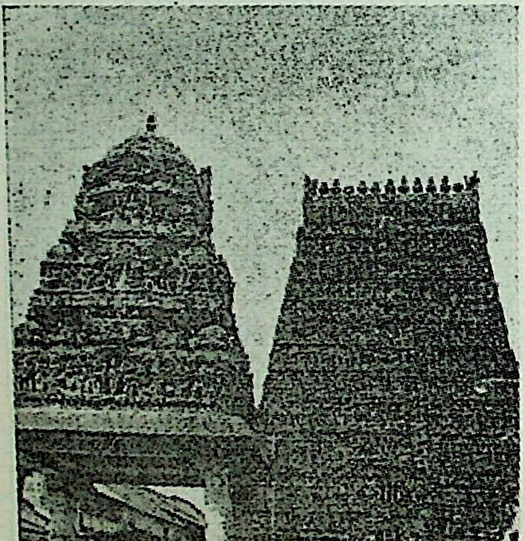

श्री आरावमुदन मन्दिर : कुंभकोणम्, पृ० ५१

श्री सौन्दरराज स्वामी : नागपट्टिणम्, पृ० ४७

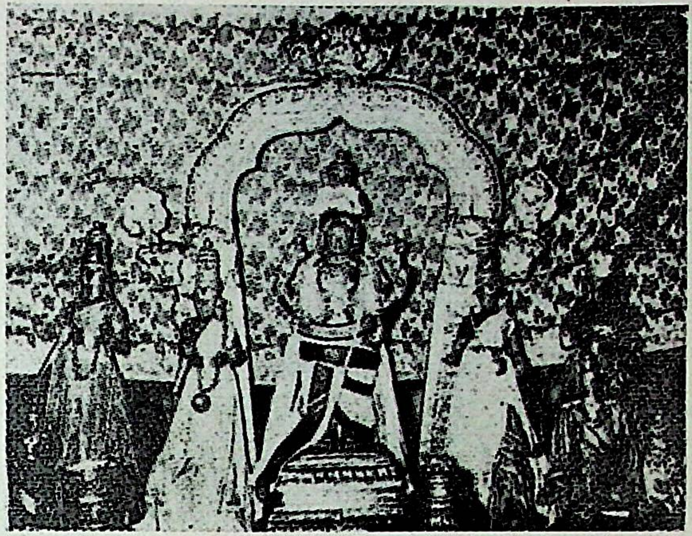

श्री शौरिराजन : तिरुक्वायपुरम्

श्रीकृष्ण : मन्नारगुडी

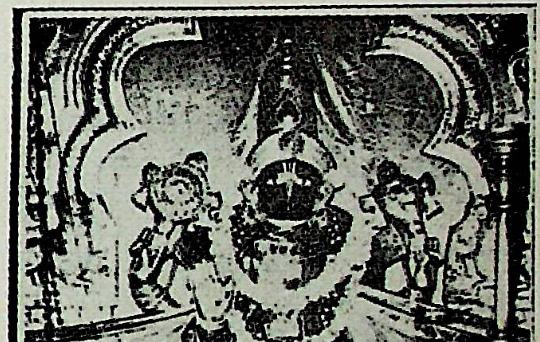

श्री नारायण : तिरुनारायणपुरम्

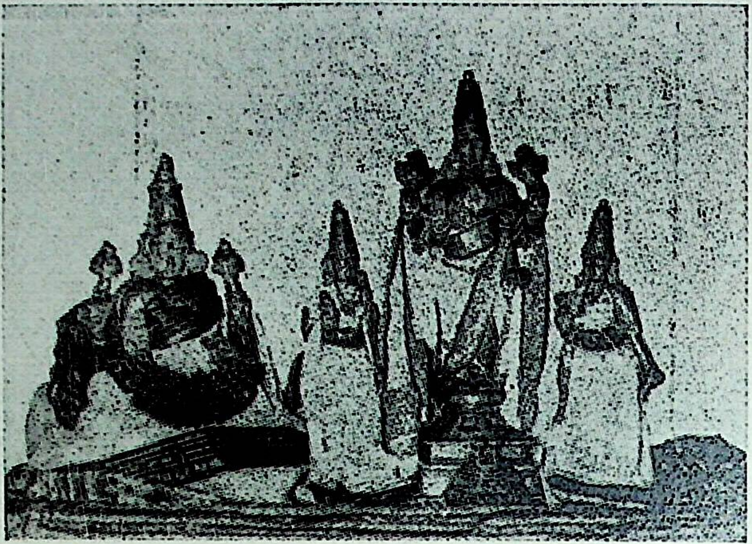

श्री वरदराज स्वामी : कांचीपुरम्, पृ० १८५

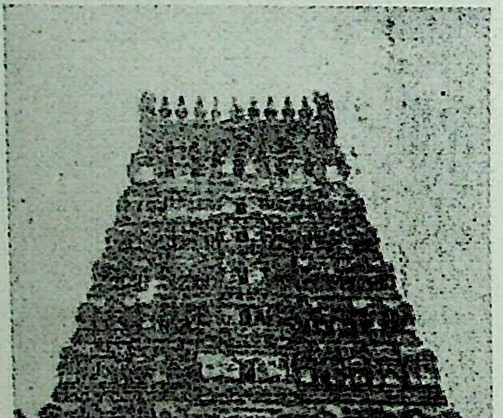

श्री कांचीपुरम् मन्दिर, पृ० ३१

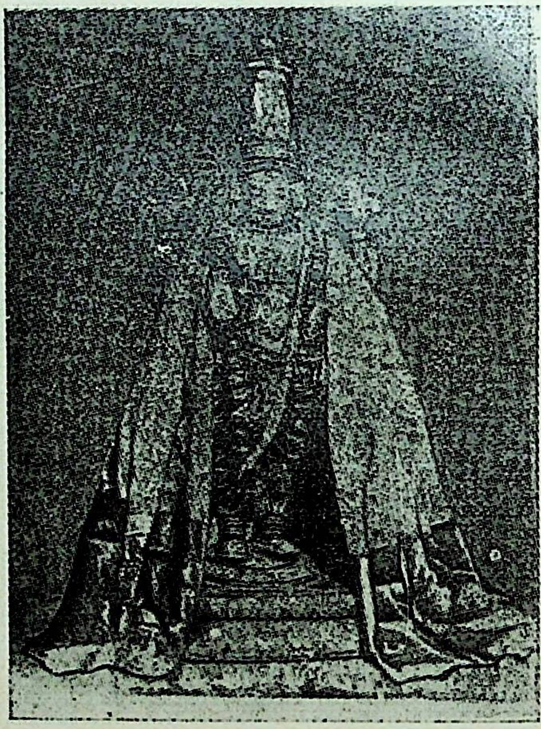

श्री भक्तवत्सलपेरुमाल : तिरुक्कणमंगै, पृ० ४४

किया। तिरुमलै अर्थात् कृष्णन ने एक दिन स्वप्न में देखा कि भगवान् उन्हें मन्दिर स्थापित करने का आदेश दे रहे हैं। इस अप्रत्याशित आदेश से तिरुमलै गद्गद हो गये। उन्हें जीवन का लक्ष्य सूझ गया। उन्होंने अपनी नगरी में कृष्ण-मन्दिर का निर्माण करने के बाद ही विश्राम लिया। उस मन्दिर की मूर्ति का नाम उन्होंने करुमाणिक्कवण्णन अर्थात् श्याम-माणिक्य रंगस्वामी तथा देवी राधा का नाम वेदवल्लि नाच्चियार रखा। उस मन्दिर में नित्य-नैमित्तिक निवेदन, पूजा आदि का भी विशेष प्रबन्ध किया गया। मन्दिर के निर्माण से प्रभावित जनता ने उन्हें हरिदास उपाधि से विभूषित किया। अतः भक्त तिरुमलै हरिदास नाम से ही विख्यात हो गये।

बड़े भाई वड़मलै की शासन-कुशलता से सन्तुष्ट महाराज कृष्णदेवराय ने छोटे भाई तिरुमलै अर्थात् हरिदास की भक्ति-प्रवणता से भी सन्तुष्ट होकर उन्हें अपने सलाहकारों में स्थान दिया। हरिदास ने महाराज को सुझाया कि वे करुमाणिक्कवण्णन और वेदवल्लि नाच्चियार के दर्शन करके अभियान आरम्भ करें। महाराज ने वैसा ही किया और उदयगिरि दुर्ग पर विजयी हुए। इस विजय की स्मृति में महाराज ने मन्दिर में आवरण-मण्डप बनवाया। उस नगरी के पास के एक गाँव का नाम उन्होंने अपनी माता नागलादेवी की स्मृति में नागलापुरम् रखा। इसके साथ ही कृष्ण-भक्त हरिदास को भी शीर्षस्थ पद पर नियुक्त करके सम्मानित किया।

हरिदास की कृतियों में 'इरु समय विळक्कम्' (द्विसम्प्रदाय-व्याख्या) सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें नदी में स्नान करने जानेवाली दो विदुषी महिलाओं के बीच में शैव और वैष्णव-सम्प्रदायों पर वाद-विवाद कराकर वैष्णव-धर्म को श्रेष्ठ घोषित किया गया है। इस ग्रन्थ में ३० परिच्छेद तथा २११६ वृत्त हैं। इससे दो प्रार्थना गीत यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

गिरिपोल विळंगिक् किळरुम् भुयक्किटनरायन्
तरैमीदु सिंगाद्दिरियिल जयस्तम्भम् नाट्ट
वरमादरवाल अळित्ते वड़कूवम् मेवुम्
करुमामणि वण्णनै नीड़ु करुत्तिल वैप्पाम्॥

'विशाल पर्वत जैसे शोभायुक्त शरीर और वीर भुजाओंवाले कृष्णरायन ने भूमि पर सिंगाद्रि पर जयस्तम्भ का निर्माण किया। उस कृतज्ञ महाराज को अपनी कृपा से अपना लेनेवाले, उत्तर कूवम् नदी के किनारे पर स्थित, श्याममामणि रंगन का सदा ध्यान करें।'

पड़मागणमुम् मुदिराविलम पच्चैयालुम्
दिडमामरैयन्तमुमागि नर् सेल्वनान्।
वड़मामलैयण्णल् उळ्ळमुम् वैगनालुम।
इडमामोरुवर् ककडियोंगलियांगलता ये।

'सर्वव्यापक सुकोमल श्याम रंग के मेरे कृष्ण सर्ववेदों के सार हैं। उनका निरन्तर ध्यान मेरे लिए अतुल सम्पत्ति है। वामभाग में देवीसहित पर्वताकार में विराजनेवाले इस स्वामी के हम सदा ही सेवक हैं।'

ह० दु० स्वा०

तिरुमषिसै आलवार

काञ्चीपुरम् के पास तिरुमषिसै नामक एक पुण्य-स्थल है। उस पुण्यभूमि में भार्गव ऋषि ने दीर्घछत्र यज्ञ किया था। यज्ञ के प्रभाव से उनकी पत्नी ने पौषमास, मघ नक्षत्र में एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र के हाथ-पैर नहीं थे। इससे चिन्तित होकर ऋषि-दम्पति उस विकलांग पुत्र को बाँसों की झाड़ी में लिटाकर चले गये। शिशु वहीं पड़ा हुआ रोता रहा। अकस्मात् भगवान् श्री देवीसहित वहाँ पधारे और उसको पूर्णांग बनाकर अन्तर्धान हो गये।

थोड़ी देर बाद बाँस काटने के लिए उस स्थान पर तिरुवाळन नामक एक किरात आया। उस निर्जन स्थान में पड़े सुन्दर अबोध शिशु को देखकर वह गद्गद हो गया। उसके कोई सन्तान न थी। उसने इसे भगवान् का वरदान समझा और सप्रेम बच्चे को ले जाकर अपनी पत्नी पंकजसेल्वी के हाथों में रख

दिया। शिशु को छाती से लगाते ही किरात-पत्नी के स्तनों से अमृत-धारा बह निकली। किन्तु बच्चे ने उस दुग्ध का पान नहीं किया। वह कई दिनों तक कुछ भी पिये बिना गुड़िया जैसा पड़ा रहा। फिर भी उसकी मुख-कान्ति कम नहीं हुई। लोग आ-आकर उसे देखते थे और आश्चर्यचकित होकर उसे दैविक शिशु मानकर स्तुति और प्रणाम करके लौट जाते थे। ऐसे दैवी शिशु को प्राप्त करनेवाले किरात-दम्पति को भी लोग दैवी शक्तियुक्त मानने लगे। तिरुमषिसै भगवान् की कृपा से मिलने के कारण उस शिशु का नाम तिरुमषिसै पिरान रखा गया।

उसी नगर में एक वृद्ध साधु पुरुष थे जो लीलाधारी कृष्ण के परम भक्त थे, किन्तु चतुर्थ वर्ण के थे। उनके भी कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने उस शिशु का वृत्तान्त सुना तो एक दिन अपनी गाय का दूध दुहकर गरम करके और मीठा डालकर तिरुवाळन के घर ले गये और शिशु के पास जाकर प्रार्थना की—"शिशुरूप में आये हुए हे परब्रह्म! इस अमृत का पान करके मेरे दुःख का मोचन कीजिये।" बस, बच्चे ने मुस्कुराते हुए उस दूध को पी लिया। पंकजसेल्वी और तिरुवाळन की प्रार्थना पर वे साधु नित्य उस बच्चे को दूध पिलाने लगे।

एक दिन बच्चे के पीने के बाद बचे हुए दूध को बच्चे के इशारे पर वृद्ध साधु ने स्वयं पिया और अपनी वृद्धा पत्नी को भी पिलाया। उससे वे दोनों नवजीवन का अनुभव करने लगे और दोनों को अपूर्व यौवन प्राप्त हो गया। यौवन-प्राप्त दम्पति ने पुनः दाम्पत्य-सुख का अनुभव किया तो उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम कणिकण्णन रखा गया। वह आगे चलकर तिरुमषिसैपिरान का शिष्य बना। थोड़ा बड़ा होने पर तिरुमषिसै आलवार को तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा हुई। अल्पकाल में ही उन्होंने जैन, बौद्ध एवं शैव-ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया। उनका मन प्रारम्भ में शैव-धर्म में लग गया था, किन्तु शीघ्र ही पेयालवार के सम्पर्क में आने पर वे वैष्णव-धर्म में दीक्षित हो गये। इनके अलौकिक चरित्र के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

इन्होंने सुन्दर वस्त्र को स्वर्णवस्त्र में और तुलसी-माला को मणि-माला में बदलकर मायावी शुद्धिकार को पराजित किया था। एक रसायनी द्वारा दी जा रही लोहे को सोना बनानेवाली गुटिका के जवाब में पत्थर को सोना बना सकनेवाली अपने शरीर की धूल और मैल को प्रस्तुत करके इन्होंने उसका अभिमान नष्ट किया। अपने पूजा-गृह की नित्य सफाई करनेवाली वृद्धा को इन्होंने यौवन का वरदान दिया, जिसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर काञ्चीपुरम् के पल्लवराजा ने उससे विवाह किया। कुछ काल बीतने पर राजा धीरे-धीरे वृद्ध होने लगा। किन्तु रानी युवती ही बनी रही। राजा के द्वारा जिज्ञासा करने पर रानी ने वरदान का रहस्य बताया। राजा ने एक भिक्षुक कणिकण्णन को, जो तिरुमषिसै आलवार का शिष्य था, आज्ञा दी कि वह अपने गुरु को राजमहल में बुला लाये। कणिकण्णन ने कहा कि मेरे गुरु केवल भगवान् कृष्ण के बुलाने पर ही जाते हैं या किसी प्रेमी भक्त पर ही कृपा करते हैं। अभिमानी मानवों की आज्ञा वे नहीं मानते। इस बात पर क्रुद्ध होकर राजा ने कणिकण्णन के निर्वासन की आज्ञा दे दी। इस घटना से तिरुमषिसै बहुत खिन्न हुए और उन्होंने मन्दिर के अन्दर जाकर भगवान् से कहा कि ऐसे अनाचारी राजा के राज्य में हम-आप क्यों रहें? हम भी कणिकण्णन के साथ निर्वासन पर जा रहे हैं, आप भी चलिये। ऐसा कहा जाता है कि तिरुमषिसै जब यह कहकर जाने लगे तो काञ्चीपुरम् के सभी देवालयों के देवविग्रह उनके पीछे-पीछे हो लिये। राजधानी निर्जीव-सी होकर अन्धकार में डूब गयी। राजा परेशान होकर दोनों (गुरु-शिष्य) को ढूँढ़ता रहा और जब वे दूर जंगल में मिले तो बहुत क्षमा माँगी और वापस लौटने के लिए बार-बार प्रार्थना की। अपने कृपालु स्वभाव के कारण दोनों मान गये तब आदिशेष भगवान् और अन्य देवता भी उनके साथ अपने मन्दिरों में वापस लौट आये। भक्त तिरुमषिसै की

बात मानने के कारण भगवान् यथोक्तकारी संज्ञा से जाने गये। राजा भी अनाचार और अहंकार का मार्ग छोड़कर भक्ति-मार्ग का अनुयायी बन गया।

उन दिनों कुम्भकोणम में एक महायज्ञ हो रहा था। उसके प्रधान संचालक थे पेरुमपुलियूर स्वामी। जिस दिन तिरुमषिसै आलवार कुम्भकोणम गये उस दिन मन्दिर में एक विचित्र घटना घटी। आलवार जिस ओर जाते थे मूर्ति उसी ओर घूम जाती थी। प्रधान संचालक को अनुभव हुआ कि कोई महाभक्त नगर में आये हैं। इसलिए वे यज्ञ-मण्डप से उठकर नगर में गये। आलवार को पहचानकर मन्दिर में ले आये और अग्रपूजा की। कुछ ब्राह्मणों ने यह कहकर विरोध किया कि चतुर्थ वर्ण के व्यक्ति को यह आदर देना ब्राह्मणों का अपमान है। तब आलवार ने एक गीत गाया। सबने देखा कि भगवान् अपने विभिन्न अवतारों का रूप आलवार के वक्षःस्थल पर दिखा रहे हैं। यह अद्भुत दृश्य देखकर सब अवाक् रह गये। आलवार के और एक गीत पर भगवान् स्वयं उठकर उनके निकट आ गये। आलवार की महिमा जानकर लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि वे आगे सदा के लिए कुम्भकोणम में ही रहें। आलवार उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कुम्भकोणम में ही ठहर गये। शेषशायी भगवान् राधाकृष्ण के रूप में आज भी अपने भक्त के निकट खड़े हुए रूप में दीखते हैं। यहाँ उनके दो गीत उद्धृत हैं—

(१)

अक्करंगळ अक्करंगळ एन्डू मावदु तनकोलो ?
इक्कुरुंबै नीक्कि एन्नै ईसनाक्कु वल्लयेल
चक्करम् कोळ कैयने चड़गर वाय् अडंगिड
उटकिड़ंद वण्णमे पुरम पोशिन्दु काट्टिड़े !

'हे चक्रधारी भगवान्! तुम मुझे भी भगवान् बनाकर दिखाओ तो यज्ञ करनेवाले इन संचालकों का विरोध रुक जायगा। तुम वहाँ अपने स्थान पर रहते हुए मेरे शरीर के बाहर भी अपनी तेजोमय कान्ति दर्शा दो।'

(२)

नड़न्द कालगळ नोन्दनओ, नडुंग ज्ञालम् एनमाय्
इड़न्द येय कुलुंगवो विलंगुमाल वरैच्चुरम
कडन्द काल पुरन्द करैक्कुन्दैयुळ
किड़न्दवारु एषुन्दिरुन्दु पेशु वाषि केशने !

'कावेरी नदी के किनारे पर कुम्भकोणम में लेटे रहनेवाले! गायों को चराते-चराते चलने के कारण क्या तुम्हारे पैर दुखने लगे हैं? कूर्म बनकर भूमि को उठाने के कारण क्या तुम्हारा शरीर थक गया है? हे केशव! तुम चरवाहे के रूप में उठकर मेरे पास आओ और मुझसे बातें करो।'

भगवान् का यह सौलभ्य और राधा-रुक्मिणी-सहित कृष्ण का उठकर आना कुम्भकोणम आरावमुद मन्दिर की विशेषता है।

ह० दु० स्वा०

तिरुवरंगत्तमुदनार्

तिरुवरंगत्तमुदनार् का जन्म तमिलनाडु के चोल प्रदेश के अन्तर्गत श्रीरंगम् में हुआ था। इनके पिता का नाम अणिवरंगत्तु अमुदनार् था। इनके जन्म का वर्ष ज्ञात नहीं है। किन्तु ये श्री रामानुज के समकालीन एवं उनके जीवन से सम्बद्ध भक्त माने जाते हैं।

तिरुवरंगत्तमुदनार् बाल्यावस्था से ही एक मेधावी छात्र थे। वैष्णव-धर्म के मुख्य ग्रन्थों का अध्ययन करके ये श्रीरंगम् के मन्दिर में आचार्य-पद पर आसीन हुए। किन्तु श्री रामानुज की उपेक्षा करके अपनी इच्छानुसार कार्य चलाते रहे। ये 'पेरिय नंबी' नाम से भी जाने जाते हैं।

श्री रामानुज स्वामी की उपेक्षा करते रहने से ये अन्य भक्तों एवं स्वयं स्वामीजी को भी अप्रिय लगने लगे थे। इसलिए वे सब इन्हें श्री रंगनाथजी की सेवा से हटाने का उपाय सोच रहे थे। ऐसी स्थिति में स्वयं भगवान् श्री रंगनाथ ने स्वामीजी से स्वप्न में आकर कहा—"नंबी, बहुत दिनों से एकमात्र मुझ पर विश्वास करके मेरे भरोसे ही रहता

आया है। उसे निकालने का प्रयत्न करना ठीक नहीं है।" ऐसा स्वप्न देखते ही श्री रामानुज जाग पड़े और अपने प्रथम शिष्य कूरत्ताषवार् को बुलाकर कहा—"भगवान् को हमारे शत्रु पेरिय नंबी का यहाँ रहना ही प्रियकर लगता है। इसलिए हमें यहाँ कोई काम नहीं है। हमारे लिए उचित है कि हम कांचीपुरम चले जायें।" इस पर कूरत्ताषवार् ने उत्तर दिया—"यदि भगवान् की ऐसी इच्छा होगी तो वे पेरिय नंबी को हमारा दास बना देंगे। इसलिए उन्हें सही मार्ग पर चलाने का प्रयास करें।" कूरत्ताषवार् ने धीरे-धीरे पेरिय नंबी को उपदेश दे-देकर श्री रामानुज का दास बना ही दिया। श्री रामानुज और अमुदनार् दोनों परस्पर वैरभाव तजकर एक-दूसरे के अधिक निकट आ गये। इतना ही नहीं, अमुदनार् ने अपना सारा कार्य कूरत्ताषवार् को सौंप दिया और एक प्रकार से विरक्तभाव से रहने लगे।

अपने नवस्वीकृत शिष्य तिरुवरंगत्तु अमुदनार् की विरक्ति दूर करने के लिए श्री रामानुज ने उन्हें भगवान् की सन्निधि में मधुर गीत गाने का आदेश दिया और उसके पहले गानेवाले अरैयर को बुलाकर कहा कि आगे से आप भगवान् के सान्निध्य में न गायें, अमुदनार् को ही गाने का अवसर दें। इस प्रकार आचार्य से जो सम्मान अरैयर को मिला करता था, वह अमुदनार् को भी प्राप्त हो गया। यह सम्मान उन्हें जीवनभर मिलता रहा तथा उनके वंशजों को भी आज तक मिल रहा है। स्वामीजी की इस कृपा से अमुदनार् धन्य हुए और उनकी स्तुति में अन्दादि छन्द में एक सौ गीत गाये। उनका प्रथम गीत श्रीकृष्ण की स्तुति से ही आरम्भ होता है। यहाँ उनके दो गीत उद्धृत किये जा रहे हैं :

(१)

पू मन्नु माधु पोरुन्दिय मार्बन् पुगष् मलिद
पा मन्नु मारनडिपणिन्दुय्न्दवन् पलकलैयोर
तामन्न वन्द इरामानुजन् चरणारविन्दम्
नामन्नि वाषनेंजे चोल्लु वोवमवन्. नामंगळे।

'पुष्प-सी कोमल देवियों से अलंकृत वक्षःस्थलवाले, यशोमण्डित कामदेव से सुन्दर भगवान् के श्रीचरणों में नत होकर, विविध कलात्मक रूप से भक्ति-प्रचार करनेवाले उस रामानुज के चरणों में नत होकर हम उसके नामों का स्मरण करके उसकी स्तुति करेंगे।'

(२)

ओंगुम् तिरुवरंगर् तामुगन्द ओण्पत्तिगळ्
मूँगिर मुडियमुदन मुत्तमिषाल् नींगाय
अन्बर्तमर् वाष अरुळ सेय्द अन्तणर् कोन्
तन्पदुमत् ताळे शरण्

'श्रेष्ठ श्रीरंग-क्षेत्र में भगवान् के दर्शन से प्रसन्न होकर कई पुण्यस्थलों की यात्रा करते हुए, भक्त प्रेमियों को मुग्ध एवं उत्साहित करके आनेवाले ब्राह्मणराज (श्री रामानुज) के कमल-चरणों की शरण में मूँगिर मुडियमुदन (कवि) पहुँच जाता है।'

ह० दु० स्वा०

तिरुवळ्ळुवर

तिरुवळ्ळुवर की जाति और धर्म के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। इनके सम्बन्ध में केवल एक बात निर्भ्रान्त है। वह यह कि ये मुसलमान या ईसाई नहीं थे, क्योंकि इनके जन्म और जीवनकाल में इन दोनों धर्मों का आविर्भाव नहीं हुआ था। अतएव उन्हें हिन्दू, बौद्ध और जैन, अपने-अपने धर्म का अनुयायी मानते हैं और ऐसा मानने में उनमें स्पर्धा भी है। हिन्दू-धर्म के अन्दर उन्हें शैव माननेवाले भी हैं और वैष्णव माननेवाले भी। ऐसी दशा में उन्हें राधा-कृष्ण-भक्त कैसे माना जा सकता है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

इनकी रचना तिरुक्कुरल के प्रथम अध्याय में प्राप्त ईश्वर-वन्दना में इस प्रकार की स्तुति की गयी है कि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी उसे अपने ही ईश्वर की स्तुति मानते हैं। उनको वैष्णव मानने के सम्बन्ध में तिरुपति देवस्थान की मुखपत्रिका 'सप्तगिरि' के जुलाई १९८३ अंक में एक विशेष लेख है। उसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं :

"श्री वैकुण्ठ में विराजनेवाले श्रीमन्नारायण परमात्मा माने जाते हैं। उनके दिव्य मंगल रूप एवं कल्याणमय गुण हैं। ॐ के तीन अक्षरों—अ-उ-म् में प्रथम अक्षर 'अ' परमात्मा का द्योतक है। असम और अगम परमात्मा के लिए कोई राग-द्वेष नहीं है। स्थिर श्री वैकुण्ठवासी परमात्मा लीलानिरत होकर राम, कृष्ण जैसे अवतार लेते हैं तथा अन्तर्यामी होते हैं। परमात्मा के सिवा सभी जीव जीवात्मा माने जाते हैं। वे परमात्मा की तरह सत्य हैं और उसीकी सम्पत्ति हैं। उन जीवात्माओं के शरीरों के अन्दर और बाहर तथा सर्वव्यापक रूप से स्थित परमात्मा की शरण में जाना ही इस संसार में आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के अलावा मोक्ष-प्राप्ति का भी सुगम मार्ग है।"

तिरुक्कुरल के प्रथम अध्याय ईश्वर-स्तुति के पद्यों से उपर्युक्त सिद्धान्त की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वळ्ळुवर परम वैष्णव थे। उनका पहला श्लोक इस प्रकार है :

अकर मुदल एषुतेल्लाम् आदि
भगवन मुदट्रे उलगु।
(अक्षर सबका आदि तो, है ही यथा अकार।
सर्व लोक का आदि है, भगवान उसी प्रकार॥)

सभी अक्षरों में 'अ' प्रथम अक्षर है। वैसे ही भगवान् सबके प्रथम हैं। इसकी व्याख्या करें तो ऐसा अर्थ निकलता है कि अक्षरादि सभी शास्त्रों के लिए 'प्रणव' का प्रथम अक्षर 'अ' परमात्मस्वरूप है। आदि, मुदट्रु ये दोनों शब्द भी उन श्रीमन्नारायण के द्योतक हैं जिनको मगर के मुँह में पड़े गजेन्द्र ने 'हे आदिमूल !' संबोधित करके पुकारा था। इसके अतिरिक्त भगवान् शब्द का अर्थ होता है—छः गुणों-वाला। ये छः गुण हैं—ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज। इन षड्गुणों से सम्पन्न विष्णु ही भगवान् कहे जाते हैं।

दूसरा कुरल है—

कट्रदनाल आय पयन एन कोल वालरिवन
नट्राळ तोषा अर एनिन्

'पवित्र सत्यज्ञ के श्रीचरणों पर नत करनेवाली विद्या ही सच्ची विद्या है।' इस कुरल के द्वारा ज्ञान तथा भगवान् के श्रीचरणों की महिमा बतायी गयी है। तीसरा कुरल है—

मलरमिसै एगिनान माणडि सेन्दार,
निलमिसै नीडु वाषवार।

'सबके हृदय-कमल में विराजनेवाले के श्रीचरणों की शरण में जो पहुँच जाते हैं वे इस विश्व में दीर्घजीवी तथा यशस्वी होते हैं।'

इस कुरल में जीवात्मा की वास्तविक स्थिति तथा उसमें अन्तर्यामी के रूप में स्थित परमात्मा की स्थिति भी स्पष्ट होती है।

इसी अध्याय में और दो कुरल हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वळ्ळुवर का संकेत महाविष्णु की ओर ही है।

अरवाषि अन्तणन् ताळ सेर्दाक्कल्लाल।
पिरवाषि नीत्तल अरिद्।

अरम् का अर्थ है—धर्म। आषि के दो अर्थ हैं चक्र और सागर। गजेन्द्र के पैरों को जब मगर ने ग्रस लिया तब उसकी रक्षा के लिए चक्रायुधधारी विष्णु अमृत-सागर से उठकर आये और गजेन्द्र को छुड़ाया। इस कुरल का भाव है—धर्मचक्रधारी भगवान् के चरणों में जो नहीं पहुँचते उनके लिए भवसागर पार करना दुर्लभ है। 'आषि' का अर्थ सागर लेने पर भी कवि का संकेत क्षीरसागर में शयन करनेवाले महाविष्णु ही संगत प्रतीत होता है।

पिरविप्पेरुंकड़ल नींदुवर नीन्दार
इरैवनडि सेरादार।

इरैवन अर्थात् भगवान् के चरणों में जो नहीं पहुँचते वे भवसागर को तैरकर पार नहीं हो सकते।

उनके चरणों में पहुँचनेवाले तर जायेंगे। इरैवन शब्द भगवान् और शासक दोनों को सूचित करता है। भगवान् विष्णु ही ईश्वर और रक्षक दोनों रूपों में माने जाते हैं। इन प्रकरणों के प्रकाश में तिरुवळ्ळुवर को वैष्णव और विष्णु-भक्त मानना उचित होगा।

इसके अतिरिक्त प्रेम-सम्बन्धी कुरल उनके जैन या बौद्ध होने की संभावना समाप्त कर देते हैं। इसमें प्राप्त प्रेम-वर्णन तथा नायक-नायिका-भाव भी उनको प्रेम-रसास्वादक विष्णु-भक्त सिद्ध करते हैं। तिरुक्कुरल के काम-काण्ड में प्रतिपादित भाव उदात्त और विशुद्ध हैं और भक्ति-मार्ग के माधुर्यभाव से मिलते-जुलते हैं, जो चैतन्य, मीरा, हरिदास प्रभृति भक्तों की साधना एवं कृतियों में मिलता है। उदाहरण के लिए कुछ कुरल देखिये—

(१)

ताम् वीषवार मेनतोळ तुयिलिन इनिदुकोल
तामरैक् कण्णान् उलगु।…… …… कुरल ११०३
'निज दयिता मृदु स्कंध पर, सोते जो आराम।
उससे क्या रमणीय है, कमल नयन का धाम॥'

(२)

कण्डदु मन्नुम् ओरु नाळ अलरमन्नुम्
तिंगळेप्पाम्बु कोण्डट्रु॥…………… कुरल ११४६
'प्रिय से केवल एक दिन, हुई मिलन को बात।
लेकिन चन्द्रग्रहण सम, व्यापक हुआ प्रमाद॥'

(३)

यामुम उळ्ळेंगोल अवर् नेंजत्तु एम् नेंजत्तु
ओ ओ उळरे अवर!………… .. ……कुरल १२०४
'मेरे तो दिल में सदा, उनका रहा निवास।
उनके दिल में क्या रहा, मेरा भी आवास॥'

(४)

वाळ अट्रुप् पुर्केन्ड्र कण्णुम अवर् चेन्ड्र
नाळ् ओट्रित् तेय्न्द विरल्।…………… कुरल १२६१
'छूकर गिनते विरह-दिन, घिसीं अँगुलियाँ क्षीण।
तथा नेत्र भी हो गये, राह देख छवि हीन॥'

(५)

वरुगमन् कोण्कन् ओरुनाळ परुगुवन्
पैदलनोय एल्लाम् केड।………… ……कुरल १२६६
'प्रिय आवें तो एक दिन, यों कर लूँ रसपान।
जिससे पूरा ही मिटे, दुःखद रोग निदान॥'[1]

तिरुक्कुरल के काम-काण्ड में विशुद्ध कविता का जो सौन्दर्य है वह तमिल-साहित्य में दुर्लभ है। विद्वानों और शास्त्रज्ञों की धारणा है कि इस काण्ड में अन्तर्निहित तत्त्व अध्यात्म है। इसमें जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध ही अन्योक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है, जिसका अन्तिम ध्येय मोक्ष है।[2]

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि तिरुवळ्ळुवर राधा-कृष्ण-भक्त हैं और उनके काम-काण्ड में वर्णित नायक कृष्ण तथा नायिका राधा हैं।

ह० दु० स्वा०

तिरु वि० कल्याणसुन्दरम्

इनका जन्म तंजाऊर जिले के तिरुवारूर नामक गाँव में २६ अगस्त सन् १८८३ ई० में हुआ था। इनकी माता का नाम चिन्नम्माल और पिता का विरुद्धाचलम् था। ये अपने माँ-बाप की छठी सन्तान थे। इनके एक बड़े भाई और चार बड़ी बहनें थीं। भाई का नाम लोकनाथ था। तमिल में एक कहावत है कि छठा बेटा हाथी बाँधकर जीयेगा। इसका मतलब है कि जो लड़का अपने माँ-बाप की छठी सन्तान होता है वह इतना अमीर अथवा प्रसिद्ध हो

---

[1] हिन्दी रूपान्तरकार—श्री एम० जी० वेंकटकृष्णन।

[2] श्री गो० वल्मीकिनाथन, उत्तरवेद, पृ० १८।

जाता है कि उसके दरवाजे पर हाथी बँधा रहता है या वह इतनी ख्याति प्राप्त कर लेता है कि जुलूस में बैठाया जाता है। कल्याणसुन्दरम् के विषय में यह लोकोक्ति दूसरे रूप में सिद्ध हुई। बचपन में ये अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। छः वर्ष की उम्र में बायाँ हाथ अंगघातग्रस्त हो गया। इससे दो वर्ष शय्याग्रस्त रहे। सौभाग्य से वह बीमारी स्थायी नहीं हुई। दो वर्ष तक निरन्तर ग्रामीण वैद्य की चिकित्सा से पूर्णतः स्वस्थ हो गये। इसके फलस्वरूप आठ वर्ष के बाद ही पढ़ने के लिए स्कूल जा सके। पन्द्रह वर्ष की छोटी आयु में ही ये माँ-बाप के साथ गाँव से मद्रास आ गये और वेस्ली हाईस्कूल में भर्ती हुए। इन्होंने अपने तमिल भाषा-ज्ञान से कॉलेज के तमिल पण्डितों को चकित कर दिया। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उक्ति इनके विषय में सार्थक सिद्ध हुई। ये केवल तमिल-ज्ञान से तृप्त न हुए। पांबन कुमर गुरुदास स्वामी के यहाँ जाकर इन्होंने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया। उन दिनों स्कूलों में तमिल और संस्कृत वैकल्पिक भाषाएँ थीं। एक भाषा लेकर अध्ययन करनेवाला छात्र दूसरी भाषा नहीं ले सकता था। इसलिए कल्याणसुन्दरम् को बाहर जाकर संस्कृत सीखनी पड़ी। इसके अलावा इन्होंने मरुवूर गणेश शास्त्री और नारायण स्वामी अय्यर के यहाँ जाकर तत्त्वशास्त्र (दर्शन) का अध्ययन किया। डाकघर में काम करनेवाले अब्दुल करीम नामक मुस्लिम विद्वान् से उन्होंने अरबी सीखी तथा कुर्आन का अध्ययन किया। इन्हीं दिनों रायप्पेट्टै में स्थित शाक्य-बौद्ध संघ में जाकर अयोध्यादास पण्डित का शिष्य बनकर इन्होंने त्रिपिटक तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन किया। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से ये अंग्रेजी में सरलता से बोलने-लिखने लग गये थे। इस प्रकार स्वाध्याय एवं श्रम द्वारा आठ साल की उम्र के बाद शिक्षा आरम्भ होने पर भी ये सुयोग्य छात्र तथा बाद में मेधावी विद्वान् बने।

इनकी पहली नियुक्ति मद्रास स्पेन्सर कम्पनी में लिपिक के रूप में हुई। लेकिन लाल-पाल-बाल की प्रखर राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित होकर इन्होंने जब राजनीतिक आन्दोलनों में दिलचस्पी ली तो कम्पनी ने इन्हें नौकरी से निकाल दिया। इनकी विद्वत्ता को देखते हुए वह नौकरी इनके योग्य थी भी नहीं। सन् १९०८ में इन्होंने स्वयं एक छापाखाना खोला और 'वन्दे मातरम्' नामक पत्रिका चलायी। १३ अगस्त १९१२ ई० को इन्होंने विवाह कर लिया। इनके दो सन्तानें हुईं। विवाह के बाद ये वेस्ली कॉलेज में तमिल पण्डित नियुक्त हुए। उसी कॉलेज के पूर्व छात्र होने से वहाँ इनका मन पूरी तरह लगा। छः वर्ष अध्यापन-कार्य किया। उस समय एक बार स्कूल के वार्षिकोत्सव में एक महिला ने अंग्रेजी में सुन्दर भाषण दिया, परन्तु उसने तमिल पण्डितों का खूब परिहास किया और तमिल माध्यम की निन्दा भी की। तब तक कल्याणसुन्दरम् तिरु वि० क० नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। इन्होंने उस महिला की स्पष्टवादिता की प्रशंसा करते हुए अपना अध्यक्षीय भाषण शुरू किया और तिरुवळ्ळुवर, कंबर, आलवार भक्तों की रचनाओं से उद्धरण दे-देकर सबको चकित करते हुए प्रश्न किया कि क्या इतना ज्ञान-भण्डार अंग्रेजी में है ? क्या तमिल का अध्ययन करनेवाला किसी विषय में कम रहेगा ? उस महिला ने अपनी उद्दण्डता के लिए क्षमा माँगी और इनकी शिष्या बन गयी। यद्यपि तमिल पढ़ाना इन्हें प्रिय था, फिर भी बन्धन में रहकर सामाजिक सेवा करने में इन्हें दिक्कतें हुईं। इसलिए नौकरी छोड़ दी और श्री सुब्बुराय कामत के सहयोग से 'देशभक्तन्' नामक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया और उसे बरसों तक चलाया। इन्होंने १९१८ ई० में श्रमिक-संघ की स्थापना की। सन् १९१९ ई० में महात्मा गांधी के सम्पर्क में आये। सन् १९२१ ई० में 'महात्मा गांधी और मानव-जीवन' शीर्षक पुस्तक लिखी। सन् १९२० ई० में 'नवशक्ति' नामक एक और पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया। केवल दो वर्ष (१९२४ से '२६ ई० तक)

कांग्रेस में रहे। फिर उससे भी अलग हो गये और बिलकुल स्वतन्त्र विचार रखकर देश, समाज और धर्म की सेवा करते हुए सन् १९५३ ई० में स्वर्गवासी हुए।

विवाह के छः वर्ष के भीतर ही सन् १९१८ ई० में इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। दुर्भाग्यवश दोनों बच्चे भी चल बसे। भाई-बन्धुओं ने इन्हें दूसरा विवाह कर लेने के लिए विविध प्रकार से समझाया, परन्तु इन्होंने साफ इनकार कर दिया। एकाकी जीवन व्यतीत करते रहे। प्रेस और साहित्य-सेवा से जो धन प्राप्त होता था उसे भाई को दे देते थे और भाई के बच्चों के प्यार में ही सन्तुष्ट रहते थे। अपनी पत्नी कमलाम्बिका के साथ इन्होंने छः वर्षों तक जो मधुर दाम्पत्य-जीवन का अनुभव किया उससे इनके मन में स्त्रियों के प्रति अपार श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न हो गयी थी। इन्होंने स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार किया और स्वयं एक बालिका विद्यालय स्थापित करके अन्त तक उसके व्यवस्थापक बने रहे।

प्रातःकाल उठते ही स्नानादि से निवृत्त होकर पूजा करना इनका दैनिक कार्यक्रम था। पूजा किये बिना जलपान भी नहीं करते थे। पाँच-छः वर्ष तक नास्तिक ई० वे० रामस्वामी नायक्कर के साथ काम करने पर भी ये उनकी नास्तिकता से दूर रहे। एक बार नायक्कर ने इन्हें स्त्री-स्वभाववाला कहकर परिहास किया तो इन्होंने उत्तर दिया कि पुरुष की भाँति क्रूर रहने की अपेक्षा मैं स्त्री की भाँति कोमल ही रहना चाहता हूँ। इनकी पूजा और भक्ति-पद्धति से प्रभावित लोग स्वयं फूल चुनकर इनके पास पहुँचाया करते थे।

दिनभर ये प्रेस के कार्यों एवं सार्वजनिक सेवा में लगे रहते थे। प्रेस में ही रहते हुए पुस्तकें, लेख आदि लिखा करते थे।

सन्ध्या को पार्थसारथी मन्दिर जाकर कृष्ण-दर्शन करते थे। जिन दिनों कोई सभा-समिति होती थी उन दिनों भी ये समय निकालकर मन्दिर में आ जाते थे। परन्तु सार्वजनिक सभाओं में इन्हें भक्ति या धर्म की व्याख्या करते हुए किसीने नहीं सुना। भक्ति को ये गूँगे का गुड़ कहते थे। इसीलिए इनकी दैनिक जीवन-पद्धति को न जाननेवाले इन्हें श्रमिक नेता मात्र मानते हैं।

भक्ति, राजनीतिक जागृति और समाज-सेवा के क्षेत्र में समान रूप से समादृत श्री तिरु वि० कल्याणसुन्दर मुदलियार् के प्रति तमिलभाषी जनता कृतज्ञ है। तमिलनाडु में इनके नाम पर कई शिक्षा-संस्थाएँ, सार्वजनिक उद्यान और बस्तियाँ निर्मित हुई हैं। इन्होंने श्रमिक-वर्ग के उद्धार के लिए इतना काम किया कि उन्हें बहुधा श्रमिक-नेता ही मान लिया जाता है। इन्होंने महिला-सुधार-आन्दोलन के संचालन और 'पेण्णिन पेरुमै' (स्त्री की महिमा) शीर्षक ग्रन्थ की रचना द्वारा नारी-जागृति में अपूर्व योगदान किया। इसके साथ ही तमिल प्रदेश में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में भी इनका विशेष हाथ रहा। तमिल भाषा की अस्मिता रक्षा और तमिल-साहित्य को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने की दिशा में इनके द्वारा की गयी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। 'मुरुगन् अल्लदु अषगु' (भगवान् कार्तिकेय अथवा सौन्दर्य) शीर्षक इनकी पुस्तक को पढ़नेवाले इन्हें सुब्रह्मण्य-भक्त मानते हैं। किन्तु ये मूलतः कृष्ण-भक्त थे और इनके आराध्य थे—तिरुवल्लिक्केणी पार्थसारथी। बाल्यावस्था से ही ये उनकी ओर आकृष्ट हो गये थे। ये प्रायः घर से भागकर मन्दिर में चले जाते थे और वहाँ विग्रह का दर्शन करते-करते ध्यान-मग्न हो जाते थे। बड़े होकर प्रचुर ख्याति प्राप्त करने के बाद भी इनमें बाल्यावस्था का वह स्वभाव बना रहा। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में सेवा के लिए अपेक्षित शक्ति का संचय ये इसी माध्यम से करते थे।

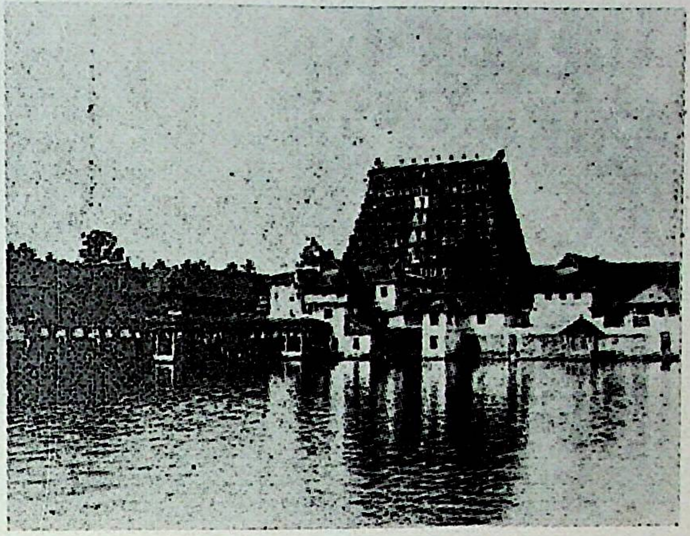

भगवान हयग्रीव का मन्दिर,
गोपुर तथा अनन्ततीर्थ सरोवर : तिरुवनन्तपुरम्, पृ० ११५

श्री चक्रलापवार

कण्णन (श्रीकृष्ण) : तिरुक्कावनबाडी

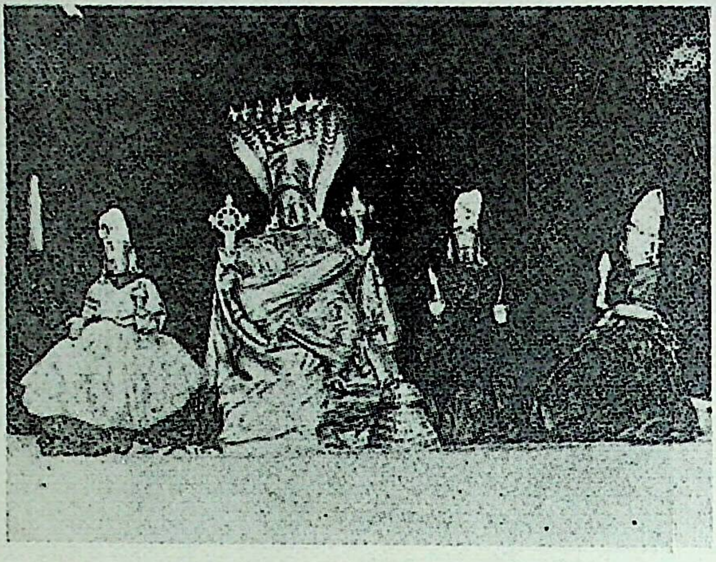

श्री वैकुण्ठनाथम्

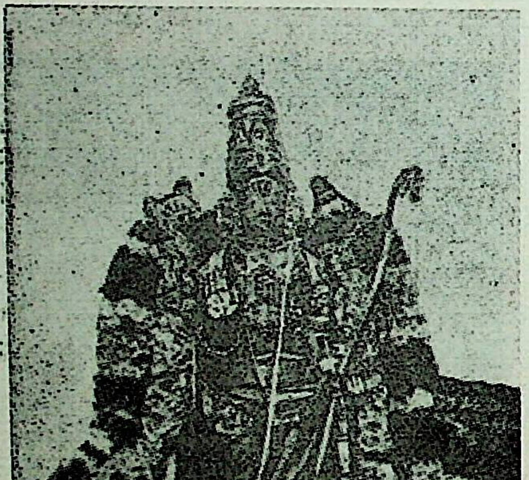

श्री अलावमदन : कुम्भकोणम्, पृ० ६५

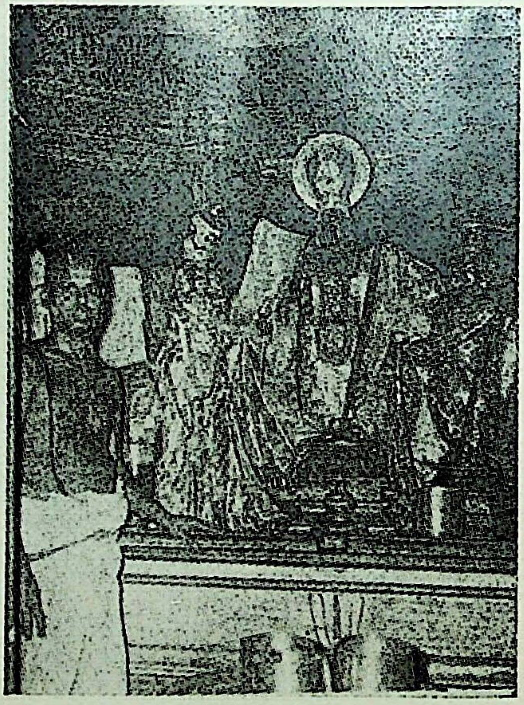

श्री मधुरान्तकम्

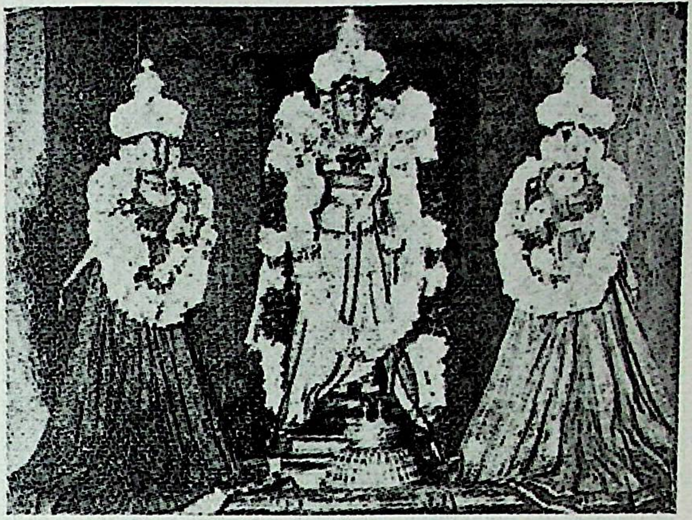

श्री पुरुषोत्तम : तिरुकरम्बनूर

त्रिविक्रम भगवान : त्रिविक्कोविलूर, पृ० ८५

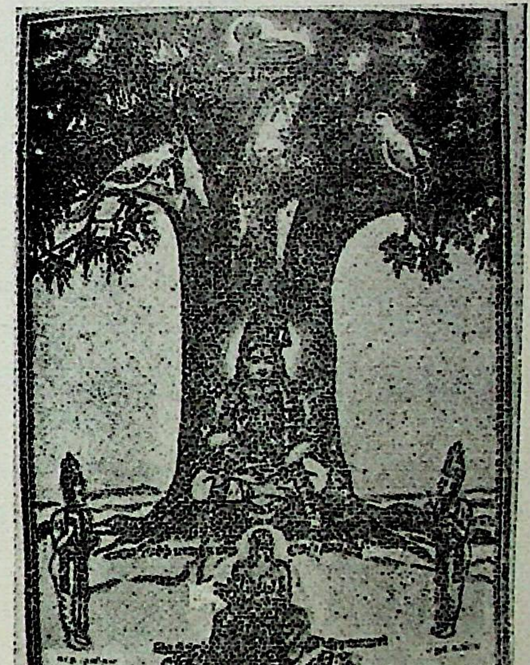

श्री नम्मालवार, वृक्ष के बीच में
उनके नीचे श्री रामानुज स्वामी
बायें श्री नाथमुनिगल, दायें श्री मधुरकवि आलवार
इसी वृक्ष के नीचे श्री नाथमुनिगल को "नालायिर-दिव्य-प्रवन्धम्" का पूर्ण ज्ञान हुआ था।
पृ० ६८, १००,७०,९६

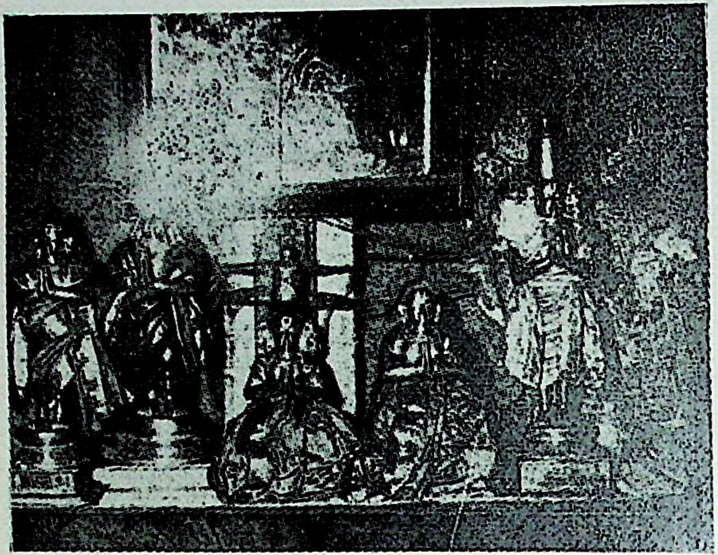

अपिन्दै में प्राप्त आलवारों की शिला मूर्तियों का सम्मिलित चित्र

नम्मालवार, पृ० ६८, तिरुमंगैआलवार. पृ० ४६, पोयगैआलवार, पृ० ५, भूतत्तालवार, पृ० ५,८५,९१, पेयालवार, पृ० ५, तिरुमलिषैआलवार, पृ० १५, तिरुप्पाणवार, पृ० ८४४, मधुर कवि आलवार, पृ० ९६, नाथमुनिगल, पृ० ७०, आलवन्दार, पृ० २८, तिरुक्काचिनंबी, पृ० १०५, कुलशेखरालवार, पृ० ६,१६, पेरियालवार. पृ० ८८, तोण्डरडिप्पोडि आलवार, पृ०५७

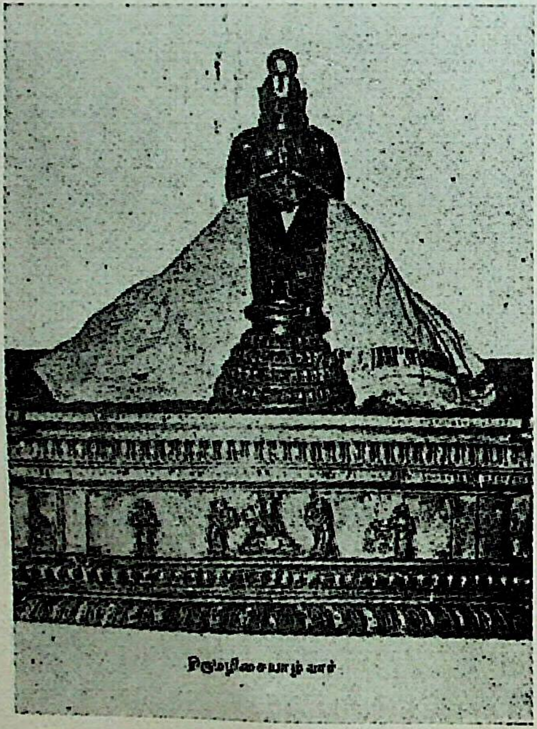

तिरुमलिषै आलवार, पृ० १५

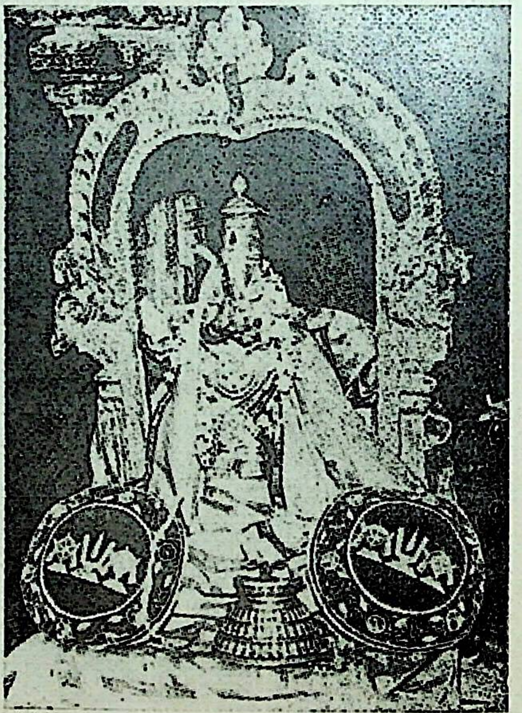

पेरियालवार, पृ० ८८,८९

इनकी भक्तिपरक कविताओं से दो उद्धरण यहाँ दिये जाते है। ये गीत इनकी रचना 'तिरुमाल पोरुळ् वेट्टल' (महाविष्णु के प्रति प्रार्थना) से उद्धृत हैं—

(१)

शीतमलर् पुन्नै निन्ड्रु जगम् विरिक्कुम् देय्वम्,
शेव्वायिर् कुषलूदिच् जगनिरुत्तुम् देय्वम्।
माधवरे मंगैयराय् मगिष्न्दुण्णुम् देय्वम्
मट्रवरुम् पेण्णाग मनम् कोळ्ळुम् देय्वम्॥
गोतैयिनै तेरिरुन्दु विळन्दुरैक्कुम् देय्वम्,
केट्टवर्क्कुम् कट्रवर्क्कुम् केडषिक्कुम् देय्वम्,
तीदरुक्कप् भारतप् पोर् सेय्वित्त देय्वम्
तिरुवरंगत् देय्वमेन्ड्रु सेन्ड्रु तोषु मनमे!

'शीतल पुष्प-वर्षा करनेवाले वृक्षों के नीचे खड़े रहकर संसार पर दृष्टि डालनेवाले देवता, लाल मुख पर मुरली रखकर वादन करते हुए संसार की रक्षा करनेवाले देवता, माधव के रूप में आकर गोपियों के हाथों से भोजन लेकर खानेवाले देवता, मर्दों में भी स्त्री का जन्म लेने की इच्छा पैदा करनेवाले देवता, रथ पर रहकर गीता का सदुपदेश देनेवाले देवता, (गीता) सुननेवालों और अध्ययन करनेवालों का दुःख दूर करनेवाले देवता, दुष्टता दूर करने के लिए महाभारत का युद्ध करवानेवाले देवता, वे देव श्रीरंगम् में स्थित हैं। हे मन, वहाँ जाकर उपासना करो।'

(२)

एंगेंगुम् पार्कडले एंगेंगुम् पाम्पणैये,
एंगेंगुम् अरितुयिले एंगेंगुम् कोयिलगळे
एंगेंगुम् अड़ियवरे एंगेगुम् तिरुप्पणिये
एंगेगुम् तिरुवरंगम् एंगेंगुम् तोषनिनैये !

'सर्वत्र क्षीरसागर है, सर्वत्र आदिशेष की शय्या है, सर्वत्र अनन्त शयन है, सर्वत्र मन्दिर है, सर्वत्र भक्तजन-समूह हैं, सर्वत्र पुनीत श्रीसेवा है, सर्वत्र श्रीरंगधाम है, सदैव उनका भजन करना चाहिए।'

ह० दु० स्वा०

तोण्डरडिप् पोडियालवार

तमिलनाडु में कावेरी नदी से सिंचित हरा-भरा प्रदेश चोषनाडु नाम से प्रसिद्ध है। उपवनों, सर-सरिताओं से आवृत इस भूमि में अनेक पुण्यस्थल हैं जिनमें तिरुमंडंगुडि एक है। अग्र शिखा चोषिय विप्रों का यह गाँव सदा वेदमन्त्रों एवं तमिल भक्ति-गीतों से गूँजता रहता था। वहाँ वेदविशारद नामक एक ब्राह्मण विष्णु-भक्तों में प्रमुख थे। भगवान् विप्रनारायण की कृपा से प्रभव वर्ष, मार्गशीर्ष मास, कृष्ण चतुर्थी, मंगलवार, ज्येष्ठा नक्षत्र में भगवान् की श्रीवैजयन्तीमाला के अंश के रूप में उन्होंने एक पुत्ररत्न को प्राप्त किया।

बारहवें दिन वेदविशारद ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाकर उसका नाम विप्रनारायण ही रखा। उनका वह पुत्र यथासमय सभी विद्याएँ सीखकर सकल कलाओं में निपुण हो गया। व्यापक एवं गम्भीर ज्ञान के होते हुए भी वह अत्यन्त विनम्र था। उसका ज्ञान-गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व यौवन की ऊर्जा के कारण अत्यन्त आकर्षक था। यद्यपि लोग उसकी ओर आकर्षित होकर उसके दर्शन के लिए आतुर रहते थे तो भी वह स्वयं भगवान् की सेवा के सिवा और किसी पर ध्यान नहीं देता था। महाविष्णु के सेनापति 'सेनै मुदलियार' ही उसके दीक्षा-गुरु थे, ऐसा माना जाता है। सांसारिक सुख-दुःखों से विरत रहकर वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए भगवद्-भक्तों के बीच में ही विचरता रहता था।

एक दिन विप्रनारायण ने समस्त विष्णु-स्थलों की यात्रा करने का निश्चय किया और सर्वप्रथम श्रीरंगम् में ही पहुँचे। कावेरी नदी और उसकी एक शाखा कोळ्ळिडम् के बीच में स्थित श्रीरंगम् नगर एक टापू-सा लगता है। यहाँ भगवान् श्रीरंगनाथ दक्षिणस्थ लंका की ओर मुँह किये शयन कर रहे हैं। उनके तेजोमय अद्भुत रूप की कान्ति से आकर्षित होकर विप्रनारायण भक्ति-गीत गाने लगे।

उनके मन में श्रीरंगनाथ के सान्निध्य में ही रहने की तीव्र इच्छा जगी। जैसे पेरियालवार ने श्रीविल्लिपुत्तूर में पुष्पवाटिका निर्मित करके भगवान् को पुष्पमालाएँ अर्पित करने का व्रत लिया था, वैसे ही भक्त विप्रनारायण ने भी व्रत लिया और श्रीरंगम् में एक पुष्पवाटिका निर्मित की। उसमें सरोवरों का प्रबन्ध करके कमल एवं कुमुद पुष्पों को उत्पन्न किया। वह पुष्पवाटिका घने पुष्प-वृक्षों से आवृत्त होकर अत्यन्त मनोरम लग रही थी। उसीके बीच में एक कुटीर बनाकर विप्रनारायण रहने लगे।

वे श्रीरंगनाथ के दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति में इतने मग्न रहते थे कि उन्हें स्त्री-जाति के सौन्दर्य का भान ही नहीं होता था। उनमें स्त्री-पुरुष के भेद का भी ज्ञान न था। वे एक अबोध शिशु की भाँति दीखते थे। एक दिन महालक्ष्मी ने महाविष्णु से प्रश्न किया कि क्या विप्रनारायण को आपके प्रति प्रेम और स्त्री के प्रति प्रेम का अन्तर विदित है ? महाविष्णु ने कहा कि अभी तो उसे विदित नहीं है, किन्तु विदित होने का समय आ गया है। महालक्ष्मी ने मधुर मुस्कान के साथ पूछा कि वह स्त्री-पुरुष का भेद न जानकर दोनों को समान दृष्टि से देखनेवाला है ? उसे कौन स्त्री मोह सकती है ? आपकी माया भी उसके सामने पराजित हो जायगी। महाविष्णु भी मुस्कराते हुए बोले कि मेरी माया का बल तुम्हें शीघ्र ही मालूम होगा। यह संयोग भी शीघ्र ही उपस्थित हो गया।

तिरुक्करेबनूर की दो वेश्या बहनें एक बार चोल राजा के दरबार में कला-प्रदर्शन के द्वारा पर्याप्त धन, पुरस्कार रूप में अर्जित करके लौट रही थीं। मार्ग में श्री रंगनाथजी के दर्शन की इच्छा से वे रुकीं तो विप्रनारायण की पुष्पवाटिका में चली गयीं। वे उस समय माली का काम कर रहे थे। छोटी बहन देवदेवी विप्रनारायण के आकर्षक व्यक्तित्व पर मुग्ध होकर आत्मसमर्पण हेतु तैयार हो गयी। देवी नामक बड़ी बहन ने कहा कि भगवान् के इस सच्चे भक्त को तुम अपनी ओर आकृष्ट न कर सकोगी। देवदेवी ने अपनी मोहनकला की पूरी शक्ति लगाकर उन्हें रिझाने की चेष्टा की, किन्तु विप्रनारायण ने उधर ताका तक नहीं। तब उसने बड़ी बहन से कहा कि मेरा प्रण है कि या तो मैं एक मास में इन्हें अपना बना लूँगी अथवा छः मास तक तुम्हारी क्रीतदासी बनकर रहूँगी। देवी अपनी बहन को वहीं छोड़कर चली गयी। देवदेवी ने अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतार दिये और अत्यन्त साधारण परिधान में जाकर विप्रनारायण के चरणों में गिरी तथा उनसे उस नारकीय और घृणित जीवन से अपना उद्धार करने की प्रार्थना की। विप्रनारायण ने कहा कि मेरे साथ तुम भी भगवान् की सेवा में लगो। इसीसे कल्याण होगा। देवदेवी ने ऐसा करते हुए विप्रनारायण का सान्निध्य और उनकी सेवा का अवसर प्राप्त किया। धीरे-धीरे विप्रनारायण को देवदेवी के प्रति मोह उत्पन्न हो गया। देवदेवी तब उन्हें अपनी माँ और बहन के पास ले गयी। दोनों ने उसे उसकी सफलता पर बधाई दी। विप्रनारायण कुछ दिन वहीं रहते हुए जब अपने पूर्वजों की सारी सम्पत्ति खर्च कर चुके तो देवदेवी की माँ ने उन्हें अपमानित करते हुए वहाँ से चले जाने को कहा। देवदेवी खिन्न हुई, किन्तु कुछ कर न सकी। विप्रनारायण मर्माहत होकर चल पड़े। चलते-चलते वे एक स्थान पर थककर सो गये। उसी समय भगवान् ने एक खेल किया। वे देवदेवी की माँ के समक्ष पहुँचकर बोले—"मैं विप्रनारायण का दूत हूँ। उन्होंने यह स्वर्णपात्र आपको देने के लिए मुझे भेजा है।" स्वर्णपात्र पाकर उसकी माँ बोली—"हे दूत ! तुम तुरंत विप्रनारायण को यहाँ बुला लाओ। उनके विरह से देवदेवी बहुत व्यथित है।" भगवान् उसी छद्मवेष में विप्रनारायण के पास पहुँचे और बोले—"देवदेवी की माँ ने आपको तुरंत वहाँ पहुँचने के लिए कहा है।" विप्रनारायण सारा मानापमान भूलकर वहाँ पहुँचे। देवदेवी की माँ ने अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी और देवदेवी ने प्रेमाभिभूत होकर विप्रनारायण को गले से लगा लिया। सबेरे मन्दिर के अर्चकों

ने राजा से निवेदन किया कि पूजा-गृह से एक स्वर्ण-पात्र गायब हो गया है। राजा ने आज्ञा दी कि वे मन्दिर से सम्बद्ध सभी लोगों के घर जाकर उसकी खोज करें। देवदेवी के घर की भी तलाशी हुई। वहाँ स्वर्णपात्र मिला तो विप्रनारायण और देवदेवी की माँ दोनों को कैद करके दरबार में लाया गया। विप्रनारायण ने कहा कि मैं कुछ भी नहीं जानता। मन्दिर के स्वर्णपात्रों को मैंने कभी देखा भी नहीं है। देवदेवी की माँ ने अषुगिय मगवाळन नामक दूत के द्वारा स्वर्णपात्र लाये जाने की बात बतायी। उस नाम का कोई भी आदमी राजदरबार से सम्बद्ध नहीं था। देवदेवी की माँ को छोड़ दिया गया। विप्रनारायण का फैसला अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। रात में राजा को स्वप्न हुआ जिसमें भगवान् ने सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन किया। प्रातः राजा ने विप्रनारायण को मुक्त कर दिया और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। विप्रनारायण ने जब स्वप्न की बात सुनी तो उन्हें भगवान् की लीला का बोध हुआ। उन्होंने मन्दिर में जाकर स्तुति की और भगवान् के भक्तों की चरण-धूलि अपने सिर पर रखकर नाचने लगे। देवदेवी को जब भगवान् की लीला का पता चला तो वह सांसारिकता से विमुख होकर भक्ति-भावना में मग्न रहने लगी। उसने अपनी सारी सम्पत्ति श्रीरंगनाथजी और उनके भक्तों की सेवा में अर्पित कर दी। विप्रनारायण भक्तों की चरण-धूलि सिर पर धारण करने के कारण 'तोण्डरडिप्पोडियालवार' कहलाये। उनके दो गीत-संग्रह हैं—(१) तिरुमालै (श्रीमाला) और (२) तिरुप्पळ्ळियेषुच्चि (श्रीसुप्रभातम्)। दोनों में कुल मिलाकर ५५ पद्य हैं। उनके गीतों में से दो गीत यहाँ उद्धृत हैं। यह गीत श्रीरंगनाथ के प्रथम दर्शन के अवसर पर गाया गया था—

(१)

पचचै मा मलै पोल् मेनि, पवष वाय्कमलच्चेंकण
अच्युता अमरर् एरे, आयर् तम् कोषुन्दे-एन्नुम्
इच्चुवै तविंर यान् पोय्, इंदिर लोकम् आळुम्
अच्चुवै पेरिनुम् वेण्डेन्, अरंग मा नगरुळाने !

'हरे हीरे के पर्वत जैसा शरीर, प्रवाल-सा मुँह, कमल-से नेत्र, हे अच्युत ! हे देवों के सिंह, हे गोपों के कोमल पुत्र आदि विविध प्रकार से तुम्हारा सम्बोधन करके आनन्द पाने के सुख के सामने मेरे लिए सभी सुख तुच्छ हैं। यदि इन्द्रलोक जाकर वहाँ शासन करने का सुख मिले तो भी, हे श्रीरंगम् स्थित रंगनाथजी, मैं उसे नहीं चाहूँगा।'

इन्होंने निम्नलिखित पश्चात्तापपूर्ण गीत कारागार से मुक्त होने पर गाया था—

(२)

मनत्तिल ओर तूय्मैयिल्लै; वायिल् ओर्
इन्चोल् इल्लै :
शिनत्तिनाल् शेट्रम् नोक्कित् तीविळि
विळिवन् वाळा,
पुनत् तुषाय् मालैयाने !
पोन्निशूष तिरुवरंगा !
एनक्कु इनिक्गति एन सोल्वाय् !
एन्नै आळुडैय कोवे ॥

'मन में पवित्रता नहीं है, मुँह से कोई मधुर वचन नहीं निकलता, मन और वचन मैले बने हुए हैं, क्रोध के कारण हर एक को शत्रुता के भाव से हो देखा करता हूँ; इसलिए दोषों के बन्धन से ही कसकर मरता जा रहा हूँ। इस तरह मैं व्यर्थ हो रहा हूँ। हे वनतुलसी-माला-शोभित मेरे देव ! कावेरी नदी से आवृत्त श्रीरंगम् में स्थित रंगनाथजी ! आगे मेरी क्या गति है ? हे मेरे शासक देव ! तुम्हींको यह मालूम है; कृपया बताओ।'

ह० दु० स्वा०

तोलकाप्पियर

महाविष्णु तथा उनके पूर्णावतार श्रीकृष्ण की उपासना तमिल प्रदेश में प्राचीन काल से होती रही है। तमिल के प्रथम ग्रन्थकार अगस्त्य ऋषि माने जाते

हैं। किन्तु उनका लिखा ग्रन्थ 'अगत्तियम' अप्राप्य है। भक्त तोलकाप्पियर उन्हींके शिष्य थे। इनका वास्तविक नाम काप्पियन था। 'तोल' का अर्थ है—प्राचीन। 'काप्पियन' का अर्थ है—ग्रन्थकार। प्राचीनतम ग्रन्थकार होने से इन्हें तोलकाप्पियर कहा जाता है।

विद्वानों की धारणा है कि ये बौद्ध धर्म के द्रविड़ प्रदेश में पदार्पण के पूर्व ईसा-पूर्व तीसरी शती में विद्यमान रहे होंगे।

इनकी कृतियों के आधार पर इन्हें कुछ लोग जैन, कुछ शैव, किन्तु अधिकांश विद्वान् वैष्णव मानते हैं। अपनी कृति में यद्यपि इन्होंने कई देवताओं का उल्लेख किया है, परन्तु उनमें महाविष्णु और कृष्ण का उल्लेख अधिकाधिक स्थलों में हुआ है। अतः इन्हें वैष्णव और कृष्ण-भक्त मानना ही उचित है।

उत्तर भारत में जैसे गोकुल कृष्ण की लीला-स्थली के रूप में आदृत हैं, वैसे ही तमिल-साहित्य में मुल्लै भूमि के अधिदेवता कृष्ण माने जाते हैं। 'मुल्लै' का अर्थ है 'वन' और 'वनान्तर-प्रदेश'। यही क्षेत्र तमिल गोकुल कहा जाता है। तमिल गोकुल की तरह ही तमिल राधा भी उपर्युक्त रचना में चर्चित हैं।

तोलकाप्पियम में श्रीकृष्ण और उनके भाई बलराम की प्रशस्ति के अतिरिक्त नप्पिन्नै की प्रशंसा तथा कृष्ण और नप्पिन्नै की प्रेम-लीला का भी उल्लेख है। नप्पिन्ना देवी को आयर अथवा यादव-कुल की महिला माना जाता है। प्राचीन तोलकाप्पियर ने ही नहीं, मध्य-युग के आलवारों ने भी नप्पिन्ना देवी की स्तुति कृष्ण-प्रेमिका के रूप में की है। नप्पिन्ना का उल्लेख संस्कृत-ग्रन्थों में नहीं है। वैसे ही प्राचीन तमिल-ग्रन्थों में 'राधा' का नाम नहीं है। किन्तु यादवराज की पुत्री का नाम नप्पिन्ना कहा गया है। अतः तमिल विद्वानों का अभिमत है कि राधा और नप्पिन्ना पर्यायवाची नाम हो सकते हैं। नप्पिन्ना को कहीं-कहीं उपकेशी भी कहा गया है। संस्कृत-ग्रन्थों के अनुसार राधा और कृष्ण का विवाह नहीं हुआ था। लेकिन तमिल-ग्रन्थों में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने सात साँड़ों से एक साथ लड़कर, उन्हें गिराकर ही नप्पिन्ना का पाणिग्रहण किया था।

तोलकाप्पियम व्याकरण-ग्रन्थ है। अतः कृष्ण-भक्ति के गीतों के माधुर्य की सम्भावना इस ग्रन्थ में नहीं की जा सकती है। जहाँ कृष्ण का उल्लेख आया है उन स्थलों से कुछ उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं :

(१)

मायोन मेय काडुरै उलगम् ……[१]

(तोलकाप्पियम, अर्थ-विभाग, पद्य ७०)

'वन और वनान्तर-प्रदेश के अधिदेवता मायोन यानी कृष्ण हैं।'

(२)

कामप् पगुदि कडवुळुम वैरैयार
सनोर मुरुंगिनुम् एन्मनार पुलवर
कुषवि मरुंगिनुंग् किषवदागुम्।[२]

(अर्थ-विभाग, पद्य ८३)

'उस वन-प्रदेश की स्त्रियों ने पुरुष-शिशुओं को कृष्ण मानकर ही प्रेम किया है। वे अपने पुरुषों और पुरुष-शिशुओं से ही नहीं, देवताओं के शिशुओं को भी प्रेम-व्यवहार के योग्य समझती थीं।'

आचार्य राघवय्यंगार की मान्यता के अनुसार तोलकाप्पियर के पूर्व से ही महाविष्णु की उपासना तमिलनाडु में व्याप्त थी। यद्यपि तोलकाप्पियर को इस उपासना के बारे में स्पष्ट रूप से कहने का अवसर

---

[१] आचार्य मु० राघवय्यंगार ने मायोन का अर्थ कृष्ण ही लिया है। आराच्चित् तोगुदि, पृ० ५२-५३।

[२] वही, पृ० ५३।

नहीं मिला तो भी उनके ग्रन्थ में मायावी कृष्ण तथा उनके अग्रज बलराम की उपासना का उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपने व्याकरण के वर्ण-विभाग में संधि-नियम बनाते समय लिखा है—

(३)

कोडि मुन वरिने यैयव णिर्पक्
कडि निलै यिन्ड्रे वल्लेंषुत्तु मिगुदि ।[1]

(तोलकाप्पियम, वर्ण-विभाग, २८५)

'कोडि शब्द के पहले अनुनासिक वर्ण आये तो उसका विकार कंड्य हो जाता है।' उदाहरण में उन्होंने 'पनंगोडि' का 'पनैक्कोडि' में बदलना दिया है। उन दिनों 'पनैक्कोडि' अर्थात् ताड़ की पताका प्रसिद्ध थी। यह पताका संकर्षण मूर्ति बलराम का ही चिह्न है। वह भक्तों द्वारा समाहृत और उपासित थी। ऐसा उदाहरण देकर श्री अय्यंगार सिद्ध करते हैं कि तोलकाप्पियर के पहले से ही तमिलनाडु में कृष्ण-भक्ति प्रचलित थी और स्वयं तोलकाप्पियर कृष्ण-भक्त थे।

ह० दु० स्वा०

नंजीयर

नंजीयर पराशर भट्टर के समकालीन विद्वान्, बड़े वेदान्ती और धनवान् थे। पराशर भट्टर इनको पराजित करने के उद्देश्य से वैष्णव-चिह्न सहित जा रहे थे। तब रास्ते में कुछ ब्राह्मणों ने कहा—"आप इस वेश में उनके महल में प्रवेश नहीं कर सकते। वेदान्ती नित्यप्रति अन्नदान किया करते हैं। यदि आप भोजन करनेवालों की पंक्ति में मिलकर जायँ तो उनसे भेंट हो सकती है।" भट्टर ने उनकी बात मान ली। वे महल में भोजनार्थी के रूप में घुस गये और वेदान्ती नंजीयर से जा मिले। वेदान्ती ने सगर्व कहा—"भिक्षा यहाँ नहीं है, वहाँ जाओ।" तब भट्टर बोले—"मैं अन्न-भिक्षा के लिए नहीं आया। तर्क-भिक्षा के लिए आया हूँ।" वेदान्ती ने मान लिया और दोनों एक-दूसरे को तर्क से पराभूत करने का प्रयत्न करते रहे। दसवें दिन वेदान्ती ने हार मान ली और वैष्णव-धर्म में दीक्षित हो गये। ये ही वेदान्ती आगे चलकर नंजीयर कहलाये।

एक दिन वेदान्ती वैष्णव-भक्तों की सेवा में लगे हुए थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। उस दिन दो श्रीवैष्णवों ने उनके घर जाकर उनकी पत्नियों से भिक्षा माँगी। तब दोनों ने एक स्वर में कहा—"आपके वेदान्ती स्नान करने गये हैं। यहाँ अब अन्न बाकी नहीं है।" दोनों वैष्णव भूखे लौट गये। रास्ते में वेदान्ती से उनकी भेंट हो गयी। दोनों ने आपबीती बतायी तो वेदान्ती अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने घर जाकर अपनी सम्पत्ति के तीन भाग किये। दो भागों को पत्नियों को सौंप दिया और तीसरा भाग स्वयं लेकर श्रीरंग की ओर गये। श्री भट्टर से मिलकर अपना धन उनके चरणों में अर्पित करके उन्होंने प्रार्थना की कि मुझे सदा के लिए अपना बना लीजिये। उनके समर्पण-भाव से प्रसन्न होकर भट्टर ने उन्हें गले लगाते हुए 'नम्जीयर' (यानी हमारे संन्यासी) के नाम से संबोधित किया। उस दिन से वेदान्ती का नाम 'नंजीयर' पड़ गया।

एक दिन नंजीयर अपने गुरुदेव श्री पराशर भट्टर की पालकी स्वयं उठाने गये। श्री भट्टर ने उन्हें रोकते हुए कहा—"संन्यासी को ऐसा काम नहीं करना है।" तब नंजीयर बोले—"यदि आचार्य-सेवा में संन्यास बाधा डाले तो मैं संन्यास-आश्रम त्याग दूँगा।" इस तरह उन्होंने आचार्य-सेवा को सर्वोपरि माना। उन्होंने स्वयं एक पुष्पवाटिका का निर्माण कराया। वे प्रतिदिन उससे पुष्प चयन करके, भगवान् की पूजा के लिए आचार्य की सेवा में समर्पित करते थे।

नंजीयर ने आचार्य भट्टर के आदेश पर तिरुवाय्मोलि की व्याख्या तैयार की। उन्होंने अपने एक

---

[1] आराच्चित् तोगुदि,वर्ण-विभाग, पद्य ८५ पृ० ८५ ।

शिष्य वरदराजर से उसकी सुन्दर अक्षरों में प्रतिलिपि करायी। इस वृत्तान्त का विवरण वरदराजर के जीवन-प्रसंग में दिया जायगा। नंजीयर ने नम्मालवार कृत तिरुवाय्मोलि की व्याख्या, आण्डाळ् की कृतियों की व्याख्या तथा तिरुवन्दादी की टीकाएँ लिखी हैं। 'रहस्य-त्रय-विवरण' भी इन्हींकी एक कृति है। नंजीयर के कुछ वचनामृत इस प्रकार हैं—

१. श्रीवैष्णवों को अपने को साधारण मानव मानना भागवत-अपचार है।

२ श्रीकृष्ण-दर्शन भक्तों के लिए सुलभ है। वे स्वयमेव आकर अपने भक्तों का कष्ट-निवारण करते हैं।

३. आत्मोन्नति का साधन सदा भगवद्ध्यान है।

४. भगवान् की शरण में जाना और सब कुछ कृष्णार्पण करना ही असीम शान्ति का मार्ग है।

५. अनन्त सौन्दर्य एवं असीम मंगल के आधार श्रीकृष्ण की अर्चा-मूर्ति के दर्शन करते समय मोक्ष-प्राप्ति की माँग करना मूर्खता है। अर्चा-मूर्ति के दर्शनानन्द के समक्ष मोक्ष-प्राप्ति तुच्छ है।

ऐसा कहा जाता है कि परम भक्त नंजीयर के पार्थिव अस्तित्व का अन्त उनके परमशिष्य नम्पिळ्ळै की गोद में ही हुआ।

यहाँ नंजीयर द्वारा की गयी व्याख्याओं के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

असैयुम् मेल्लिय अलैगळाले मेल्ल अलैक्कप्पडुगिन्ड़ तन् करैयिलुळ्ळ सोलैगळिनुडैय पूंकोत्तुगळिले उरंगुगिन्ड़ वण्डुगळैयुडैयदुम्, तेन्नै पाक्कुमरंगळिलिरुन्दु उंडान मकरन्तम् निरंभिय नीरैयुडैयुदुमान पोन्नियेनुम् पेयरै उडैय कावेरिनदिक्करैपिल् अमन्दुळ्ळ रंगनाथ कण्णन् एन्नुडैप पापंगळै अषिक्कट्टुम्।

'धीरे-धीरे तरंगित लहरों से हिलकर मधु-वर्षा करनेवाले, पुष्प के पौधों से युक्त, किनारे से शोभित, सुप्त भ्रमरों से प्रशान्त, नारियल, सुपारी आदि वृक्षों से उड़नेवाले मकरन्द से सुगन्धित जल से युक्त पोन्नी नामक कावेरी नदी के तट पर श्रीरंगनाथ के रूप में विराजनेवाले कृष्ण मेरे पापों का नाश करें।'

सर्वेश्वरनान देवरीरुडैय कोयिल तिरुवासल, गन्धर्वर्गळ् नेरुक्क, अवरगळुडने विद्याधरर्गळुम् नूक्क, यक्षरुम् ओन्ड़ाग, रुक्मिणी भामा सहितम् विरुप्पलि्ल युणर्न्दरुळुम् पोदैयषगु कण्डु तिरुर्वडित् तोषुदु तिरुप्पलल्लांडु पाडुगैक्कुण्डान आसैयाले मुर्कोलि मेल्मेलेन नेरुक्कुण्डु मोहिया निन्ड़ार्गळ्। अरंगत्तम्मा पळ्ळि एषुन्दरुळाय्।

'हे सर्वेश्वर देव, आपके मन्दिर के द्वार पर गन्धर्व लोग समूह बाँधकर आये हैं। उनके बीच विद्याधर भी घुस गये हैं। यक्ष भी एक साथ आयेहैं। जब आप रुक्मिणी, सत्यभामासहित जागकर आयेंगे तब उस मादक शोभा को देखकर मोहित होने तथा आपके चरण-कमलों में नमस्कार करके आपकी स्तुति करने की आन्तरिक अभिलाषा से सब एक-दूसरे से होड़ लगाकर आगे आ-आकर परस्पर सटे हुए खड़े हैं। श्रीरंग प्यारे, जागकर आओ न ?'

ह० दु० स्वा०

नटनगोपाल नायकी स्वामी

मदुरै महानगर के पन्दड़ी मुहल्ले की कुरुक्कु गली में रंगारियर नामक एक भक्तवर रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम लक्ष्मी अम्माल था। इस दम्पति के चौथे पुत्र के रूप में शोभकृतु वर्ष, मार्गशीर्ष मास की बाईसवीं तिथि (९ जनवरी १८४३ ई०) को कृष्ण-भक्त नटनगोपाल नायकी का जन्म हुआ था। जन्म के दिन ही इनकी महिमा एवं विशेषता का परिचय मिला। जन्म होते ही 'क्वा-क्वा' कहकर रोना ही शिशुओं की प्रकृति है। विद्वानों का कथन है–'क्वा क्वा' का अर्थ है 'मैं कहाँ हूँ। मैं कहाँ हूँ', माँ के संकीर्ण गर्भ से विशाल विश्व में आकर शिशु ऐसा प्रश्न करते हुए रोता-सा दीखता है। किन्तु जो स्वयं महामानव बनने के लिए जन्म लेते हैं, वे इस प्रकार रोते

नहीं, क्योंकि वे पूर्वजन्म से ही जीवन-मुक्त होते हैं और उन्हें सृष्टि-रहस्य का व्यापक तत्त्व ज्ञात रहता है। नटनगोपाल नायकी स्वामी भी रोये नहीं थे। तमिल के महान् भक्त कवि ओवैयार भी रोये नहीं थे। माता-पिता ने इस विशिष्ट ने शिशु का नाम रामभद्रन् रखा।

पिता ने परम्परानुसार बालक रामभद्रन् की शिक्षा का प्रबन्ध किया। किन्तु उसने स्कूली शिक्षा की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। फिर उन्होंने कई प्रकार से प्रयत्न किये, प्रलोभन दिया, धमकाया, पुचकारा, पर सब व्यर्थ हुए। शिक्षा के प्रति बालक की अरुचि देखकर श्री रंगारियर ने उसे एक सेठ की दूकान पर बैठाया कि वह दूकान में छोटे-मोटे काम करते हुए व्यापार की रीति-नीति सीखे। लेकिन बालक सदा खुले आकाश की ओर देखता रहता था। उसे निरन्तर चिन्ताग्रस्त देखकर सेठ ने काम से निकाल दिया। अब माँ-बाप को बालक के भविष्य की चिन्ता हुई। आखिर पारिवारिक व्यवसाय जुलाहे का काम सीखने के लिए करघा खरीदकर सौंपा। दस-बारह वर्ष के बालक ने उस धंधे में भी कबीरदास-जी की भाँति ईश्वर-तत्त्व को ही देखा। बुनते-बुनते ध्यान-मग्न होने लगा।

एक दिन रात में जब घर में माँ-बाप, भाई-बहन सभी सोये हुए थे, बालक रामभद्रन् घर से बाहर आ गया। कई गलियों को पार करते-करते उसे नींद आयी तो विलक्कुत्तूण (दीप-स्तम्भ) नामक इलाके में एक घर के बरामदे में जाकर लेटा और सो गया। सोते-सोते देखा कि कोई संन्यासी एक पुस्तक हाथ में लिये उसे जगा रहे हैं। उसे स्वप्न समझकर उठा तो संन्यासी तो वहाँ नहीं थे, किन्तु वह पुस्तक बालक के पास पड़ी हुई थी। वह 'वेदान्तसार' नामक पुस्तक थी।

बालक इतना शिक्षित नहीं था कि उसके मर्म को समझे। अतः वह उसके पृष्ठों को उलट-पलटकर देखता रहा। सहसा उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसमें लिखी प्रत्येक बात वह पहले से ही जानता था और कई तत्त्वों को हृदयंगम कर चुका है। बालक ने घर न लौटने तथा सत्य की खोज में जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। मदुरै के पास ही तिरुप्परंकुन्ड्रम् नामक एक पर्वतीय पुण्य-क्षेत्र है। पौराणिक कथाओं के अनुसार वहीं पर देवेन्द्र की पुत्री देवसेना और कार्तिकेय का विवाह हुआ था। इसलिए देवसेनापति सुब्रह्मण्य-भक्तों के लिए वह पुण्य-स्थल है। वह मन्दिर पहाड़ी पर स्थित है। उस पहाड़ी की एक गुफा में जाकर रामभद्रन् ठहर गये और घोर तपस्या में लग गये। उन्हें अपने शरीर या खान-पान की सुधि नहीं थी। जो भक्त उस मन्दिर में आते उनमें से कुछ लोग उस तपस्वी बालक को आग्रह करके खिलाते थे। उधर मदुरै में उनके माँ-बाप चिन्ता और दुःख में डूबे हुए थे। एक दिन उन्हें पता चला कि कोई बालक सुब्रह्मण्य मन्दिर की गुफा में तपस्या कर रहा है। माँ लक्ष्मी अम्माल आशाएं बाँधे दौड़ी आयीं, पुत्र को तुरन्त पहचाना, उसे गले लगाकर खूब रोयी, घर चलने के लिए आग्रह किया, पर रामभद्रन् टस से मस न हुआ। माँ ने विवाह करने की बात कही तो बाल तपस्वी ने दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया और विरक्त जीवन के प्रति निष्ठा व्यक्त की। इतना ही नहीं, उसने माँ को विवश करके उनके हाथों से ही भिक्षा-पात्र ग्रहण किया।

तिरुप्परंकुन्ड्रम् में रामभद्रन् बारह वर्ष रहे। एक रात स्वप्न में भगवान् सुब्रह्मण्य ने उनसे आकर कहा—"परमक्कुडी में नागलिंग स्वामी के पास जाओ।" उसे भगवान् का आदेश मानकर रामभद्रन् पैदल ही परमक्कुडी जा पहुँचे। थके-माँदे परुत्तियूर अम्मन मन्दिर के द्वार पर जाकर बैठे तो नागलिंग सिद्ध स्वयमेव प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने पूछा—"तुम ही रामभद्रन् हो न ?" रामभद्रन् ने स्वप्न की बात सुनायी तो सिद्धवर मुस्कराते हुए उन्हें अपने आश्रम में ले गये। नागलिंग सिद्ध ने रामभद्रन् को अपना शिष्य बना लिया। योग-साधन में शिक्षा-दीक्षा दी और उनका नाम सदानन्द सिद्ध रखा। नागलिंग सिद्ध ने

बरसों के परिश्रम के बाद जिन सिद्धियों को प्राप्त किया था, उन्हें सदानन्द सिद्ध ने अठारह दिनों के अन्दर ही प्राप्त कर लिया।

गुरुवर्य की अनुमति से सदानन्द सिद्ध रामनाथपुरम् गये। रामनाथपुरम् के राजा ने उनका स्वागत करके सम्मानित किया। वहाँ से ये शिवगंगा गये। शिवगंगा के राजा ने इनकी योग-सिद्धि की परीक्षा लेनी चाही। पहले एक सुन्दरी नर्तकी को इनके पास भेजा। उस समय सिद्धवर राजमहल के शानदार वातावरण में थे। नर्तकी ने उनको विचलित करने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु हारकर उन्हें नमस्कार करके चली गयी। फिर राजा ने उन्हें एक कमरे में बंद करके चारों ओर पहरा बैठा दिया। सभी किवाड़ बंद एवं ताले लगे थें। बाहर आने का कोई भी मार्ग नहीं था। किन्तु सबने आश्चर्य से देखा कि सिद्धवर राजमहल के उद्यान में टहल रहे थे। लोगों को उनकी सिद्धियों पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया। फिर भी राजा ने एक और परीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने भूमि के नीचे एक समाधि-कक्ष तैयार किया। स्वामीजी उसमें प्रवेश करके आसन लगाकर बैठ गये। उस कक्ष के ऊपर दीवार उठायी गयी। रात-दिन सिपाही वहाँ पहरा देते रहे। इनसे कहा गया कि अपने योग-बल से कभी भी बाहर आ जायें। यदि न आयें तो पैंतालीसवें दिन दीवार तोड़ी जायगी और पाताल-कक्ष खोल दिया जायगा। चालीसवें दिन समाधि से बाहर आकर स्वामीजी ने सबको चकित कर दिया। दीवारें वैसी ही थीं। समाधि-कक्ष बंद ही रहा। राजा-प्रजा सब एक मन से स्वामीजी के भक्त हो गये। उनसे बिदा लेकर स्वामीजी फिर मदुरै लौट आये।

शिवगंगा से मदुरै लौटते समय स्वामीजी 'विड़िन तोप्पु' नामक एक उद्यान में एक वृक्ष के नीचे ठहरे। अब तक उनके कई शिष्य हो गये थे। वे शिष्य भी स्वामीजी के साथ हो लिये थे। उन लोगों ने एकाएक देखा कि लेटे हुए स्वामीजी के मुख पर सूर्य की तेज किरणें पड़ रही हैं। उनको छाया देने के लिए शिष्यों ने छत्री माँग लाने का निश्चय किया तो देखा कि स्वामीजी के सिर पर एक नाग फन फैलाकर छाया दे रहा है।

मदुरै में कुछ दिन ठहरने के बाद स्वामीजी अपने कुछ शिष्यों के साथ दक्षिण के पुण्य-स्थलों की यात्रा पर निकले। जगह-जगह पर उनका स्वागत-सम्मान हुआ। लोगों ने दूर-दूर से आकर उनके दर्शन किये और कृतार्थ हुए। कुछ दुष्ट लुटेरों ने सोचा कि स्वामीजी के पास बहुत सी सम्पत्ति होगी। इसलिए रात के समय स्वामीजी जब शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे, उनको घेर लिया और लाठियाँ बरसाने लगे। स्वामीजी ने शिष्यों को कष्ट में देखा तो तुरन्त विभूति लेकर उन लुटेरों की ओर फेंक दी। सब लुटेरे तत्काल अंधे हो गये। वे स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़े, क्षमा माँगी और वादा किया कि आगे लूट-मार न करेंगे। स्वामीजी ने उन्हें पुनः दृष्टि-दान किया। सदाचार-पालन का व्रत लेकर वे अपने घर चले गये।

शठगोपर वैष्णवों के आचार्य थे। नम्मालवार कहकर उनकी उपासना की जाती है। उनका एक मन्दिर आलवार-तिरुनगरी में है। स्वामी सदानन्द सिद्ध यात्रा के दौरान आषवार तिरुनगरी गये और नम्मालवार की सन्निधि में जा बैठे। उसी नगर में वटपत्रारियर नामक एक विष्णु-भक्त थे। वे सर्वत्र कृष्ण-दर्शन करनेवाले महासाधु पुरुष थे। उन्होंने सदानन्द स्वामी को देखा। दोनों परस्पर आकृष्ट हुए। वटपत्रारियर सदानन्दजी को अपने साथ ले गये। दोनों में क्या वार्ता हुई, कोई नहीं जानता। वटपत्रारियर ने इनको परम कृष्ण-भक्त के रूप में बदल दिया। तब से पूर्वाश्रम में रामभद्रन् नामधारी सदानन्द सिद्ध ने नटनगोपाल स्वामी नाम धारण कर लिया और विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये।

नटनगोपाल स्वामी आलवार-तिरुनगरी से श्रीविल्लिपुत्तूर गये। वहाँ इनमें कान्त-कान्ता-भाव

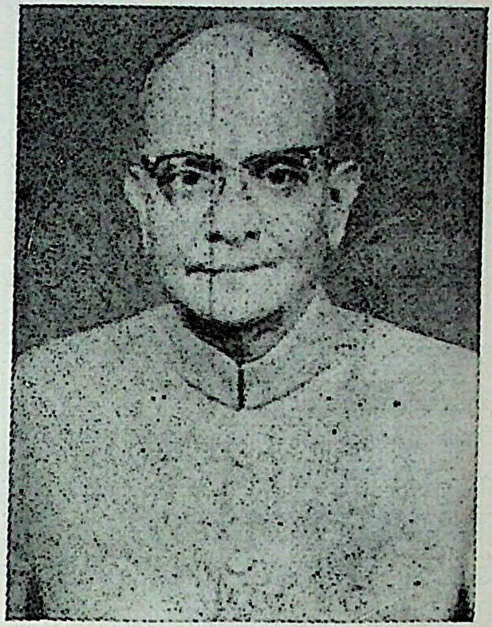

श्री श्रीनिवास राघवन, पृ० १२१

ஸ்ரீமந் நடனகோபால
நாயகி ஸ்வாமிகள்

श्री नटन गोपाल नायकी स्वामी, पृ० ६४

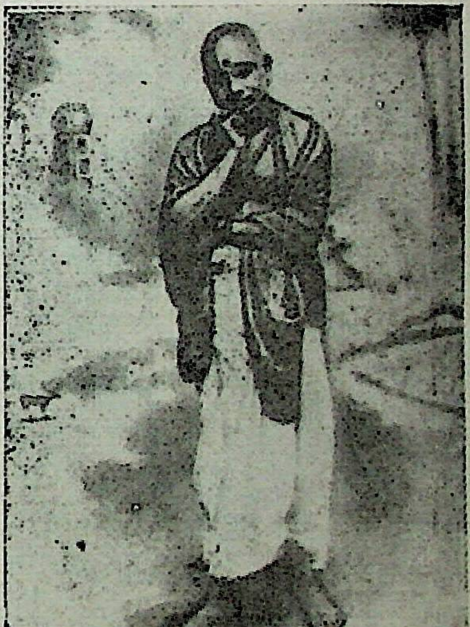

श्री वेंकटरमण, पृ० ११५

श्री सुब्रह्मण्य भारती, पृ० १२५

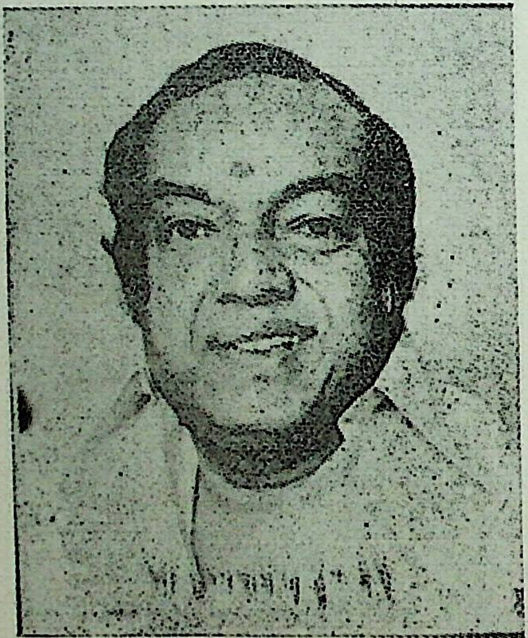

श्री कृष्णदासन, पृ० ३५

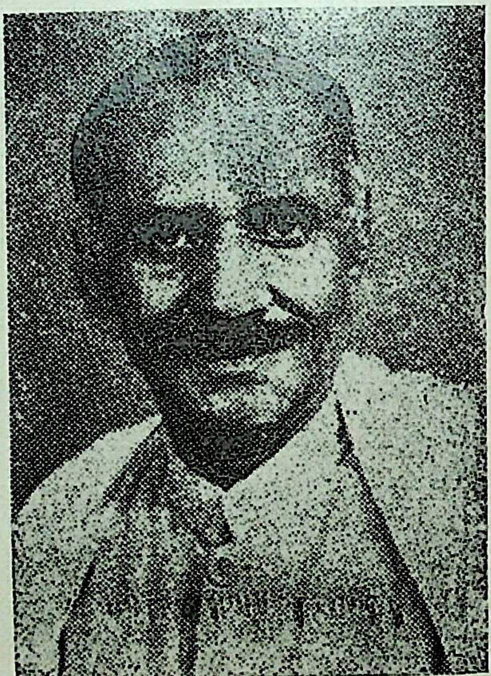

श्री नामक्कल रामलिंगम् पिल्लै, पृ० ७१

आ गया। ये अपने को श्रीकृष्ण की नायिका मानने लगे। आलवारों के दिव्यप्रबन्ध का अध्ययन किया। मनोभाव से ये स्त्री हो गये। कृष्ण के प्रति विरह-वेदना से तड़प उठे। मौन धारण कर लिया। श्रीरंगम्, तंजाऊर, कुंभकोणम् होते हुए मद्रास आये। वहाँ से श्रीरंगम् गये। जीयर स्वामी के दर्शन इनको यहीं हुए। जीयर स्वामी ने देखा कि नटनगोपालस्वामी कान्ता-भाव के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। उन्होंने कहा—"ये भक्तवर नायिका-भाव के मूर्त रूप हैं, अतएव इन्हें 'नटनगोपाल नायकी स्वामिगळ्' कहना ही ठीक है।" तब से श्रद्धालु जन इन्हें 'नायकी स्वामिगळ्' कहने लगे।

स्वामीजी ने बारह वर्ष मौन-व्रत का पालन किया। मद्रास से प्रस्थान करके तिरुप्पति गये। वहीं पर गोविन्दराज स्वामी की सन्निधि में 'गोविन्दा' कहकर अपना मौन-व्रत तोड़ा। तिरुमलै के रास्ते में एक दिन स्वामीजी बैठे हुए थे। तब एक सन्तानहीना महिला ने इनके दर्शन किये। महिला इनका जीवन-चरित्र नहीं जानती थी। फिर भी उसके मन में यह विश्वास हुआ कि ये वरप्रसादी हैं। इसलिए उसने मनौती कर ली कि मेरे सन्तान हो तो मैं इन्हें अपना सारा आभूषण समर्पित कर दूँगी। अगले वर्ष उसकी गोद में एक सुन्दर बालक था। वह स्वामीजी की खोज में तिरुमलै आयी और तिरुभुवनम् नामक स्थान में इनके दर्शन किये। उसने अपने सारे आभूषण तथा नयी साड़ी इनके चरणों में समर्पित की और चली गयी। स्वामीजी ने आँखें खोलकर देखा तो स्त्रियोचित वस्त्र व आभूषण थे। उन्हें उठाकर स्वयं पहन लिया। आन्तरिक भाव मात्र से ही नहीं, बाह्य वेष में भी वे कान्ता बन गये।

स्वामीजी मदुरै में वैगै नदी के उत्तरी किनारे पर एक मण्डप में कई वर्ष ठहरे। इनके कृपा-कटाक्ष एवं आशीर्वाद से असंख्य रोगी रोग-मुक्त हुए, निःसन्तान सन्तानवान् हुए, निर्धन धनवान् हुए। स्वामीजी प्रतिवर्ष वैकुण्ठ एकादशी के दिन श्रीरंगम् जाकर श्रीरंगनाथजी के दर्शन करते थे। उन्होंने अपनी मातृभाषा सौराष्ट्री तथा प्रादेशिक भाषा तमिल में कृष्ण-भक्ति के अनेक गीत रचे। सन् १८८७ ई० में इनके गीतों का संग्रह 'श्रीनटनगोपाल संकीर्तनम्' नाम से प्रकाशित हुआ। नाम-संकीर्तन, भक्ति तथा संयमित एवं नियमित जीवन पर जोर देकर आदर्श जीवन-पद्धति का मार्ग प्रशस्त करनेवाले इस महान् भक्त ने अपने जीवन के अन्तिम दिन का संकेत, देह-वियोग के एक वर्ष पूर्व ही दे दिया था और यह भी तय कर दिया था कि उनकी समाधि का निर्माण कहाँ होना चाहिए? इनकी ६९वीं जयन्ती को भक्तों ने धूमधाम से मनाया। उस समय इन्हें एक गाड़ी पर बैठाकर जुलूस निकाला गया। ७०वीं वर्षगाँठ के समय इन्हें पालकी पर ले जाया गया। तब स्वामीजी ने बताया—पिछले साल वण्डी (गाड़ी) में हुआ, इस साल दण्डी (पालकी) पर हो रहा है, अगले वर्ष कण्डी (गड्ढे यानी समाधि) में होगा। अपनी घोषणा के अनुसार अगले वर्ष वैकुण्ठ एकादशी के दिन ये समाधिस्थ हो गये। कोई बीमारी न थी, मुख पर मलिनता जरा भी न आयी थी। स्वामीजी ने जिस स्थान को तय किया था, वहीं पर इनकी समाधि निर्मित हुई। एक अधिष्ठान बना। लोगों का विश्वास है कि स्वामीजी अब भी जीवित हैं और चिरंजीवी हैं। माना जाता है कि उनकी समाधि पर जो भी मनौती की जाती है, वह पूर्ण होती है। मदुरै में अषगर मन्दिर की उत्सव-मूर्ति का जुलूस जब कभी भी निकलता है, स्वामीजी के अधिष्ठान में उत्सव-मूर्ति को ठहराया जाता है। वह दिन उत्सव का दिन होता है। आसपास के कई गाँवों से भक्तजन वहाँ एकत्र होकर प्रार्थना करते हैं और मनौती मानते हैं। उनका अधिष्ठान मदुरै से अषगर् कोविल् जाने के मार्ग में है।

यहाँ सौराष्ट्री भाषा में स्वामीजी द्वारा गाये गीतों से कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं—

येला तेला गोपाला
जालमु कर्लको गोपाला

जिलपि देवुस गोपाला
पालि मोको गोपाला ।

'यहाँ, वहाँ, सर्वत्र दीखकर जाल न करो गोपाल। मैं तुम्हें जलेबी दूँगा, तुम मेरा पालन करो गोपाल ।'

गवेति श्रीरेंगाक् गौनो, बोवति श्रीरेंगाक् बोव्नो
सियेति श्रीरेंगाक् सनो अमि, जिवेति श्रीरेंगुमूस
जिव्नो ।

'गाते हो तो श्रीरंगनाथ को गाओ, बुलाओ तो श्रीरंगन को बुलाओ, देखो तो श्रीरंगन को देखो, जिओ तो श्रीरंगम् में जिओ ।'

गोविन्द नममूस गुळ्ळे पोळ्ळो
खळ्ळि खवका जीव् हेळ्ना मुल्लो
अवि मूग मिळना मुल्लो ।

'गोविन्द का नाम ही मीठा फल है। हे दासजन ! प्राण जाने के पहले भाई, बन्धु, पड़ोसियों से घिर जाने के पहले उस फल को लेकर खाओ ।'

ह० दु० स्वा०

नम्पिळ्ळै

नम्पिळ्ळै का जन्म श्रीरंगम् के दक्षिण में नंबूर नामक गाँव में हुआ था। इनका वास्तविक नाम वरदराजर था। नंजीयर ने 'तिरुवाय्मोलि' की व्याख्या पूरी की और अपने शिष्यों से पूछा कि क्या सुन्दर अक्षरों में इसकी प्रतिलिपि कर सकनेवाला कोई है ? शिष्यों ने वरदराजर का पता देकर बुलवाया। उनकी लिखावट मोती जैसी साफ-सुथरी थी। उनकी लिपि की सुन्दरता पर मुग्ध होकर नंजीयर ने सोचा कि ये संस्कारमात्र से श्रीवैष्णव हैं। इन्हें साम्प्रदायिक ज्ञान नहीं है। इनसे व्याख्या लिखवाना क्या उचित होगा ? वरदराजर ने प्रार्थना की कि उसकी प्रतिलिपि करने का भाग्य उन्हींको प्राप्त हो। तब नंजीयर ने सारी व्याख्या पढ़कर सुनायी तथा जगह-जगह पर गूढ़ार्थ समझाकर आदेश दिया कि वे उसे शुद्ध रूप में लिखकर लायें। वरदराजर उसे लेकर अपने निवास-स्थान के लिए चले। मार्ग में कावेरी नदी पार करते हुए भोजपत्र नदी के प्रवाह में बह गये। इससे ये अत्यन्त दुःखी हुए। किन्तु इनकी स्मरण-शक्ति तीक्ष्ण थी। अतएव सारी व्याख्या स्मृति से स्वयमेव लिख डाली। तमिल के अच्छे विद्वान् होने के कारण स्थान-स्थान पर अपनी ओर से भी बहुत कुछ जोड़ दिया। पूरा लिख चुकने के बाद नंजीयर ने कुछ स्थानों पर अपने द्वारा प्रयुक्त शब्दों से भिन्न, किन्तु समानार्थक शब्दों को देखकर कहा— "मैंने तो इस शब्द का प्रयोग नहीं किया था।" वरदराजर ने नदी पार करते समय की घटना कह सुनायी। नंजीयर उनकी स्मरण-शक्ति और विद्वत्ता देखकर प्रसन्न हो गये और गले लगाते हुए कहा— "नम्पिळ्ळै यल्लवा" अर्थात् नम्पिळ्ळै हमारे पुत्र हैं न ? उस समय से वरदराजर का नाम 'नम्पिळ्ळै' ही पड़ गया और इसी नाम से भक्तों एवं साहित्यज्ञों में प्रसिद्ध हुए।

नम्पिळ्ळै का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। नंजीयर ने इससे प्रसन्न होकर उन्हींको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। एक बार पेरुमाळ् जीयर नामक एक भक्त रोग-ग्रस्त हुए। जीयर ने श्रीवैष्णवों से निवेदन किया कि आप लोग मेरा शरीर-त्याग रोकने के लिए पारायण कीजिये। श्रीवैष्णवों ने ऐसा ही किया और जीयर स्वस्थ हो गये। किन्तु कुछ बन्धुओं ने नम्पिळ्ळै से कहा कि स्वार्थ के लिए भगवान् से निवेदन करना नियम-विरुद्ध है। तब नम्पिळ्ळै ने उन्हें समझाया कि भगवान् की सेवा के लिए आयु-वृद्धि की कामना करने में दोष नहीं है। यह सुनकर भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए तो वहाँ तिरुविळक्कुप्पिच्चन नामक एक पागल-सा व्यक्ति आया और बोला कि पेरुमाल जीयर भगवान् को चामर डुलाने में आनन्दमग्न होते थे, इसीलिए उन्होंने आयु-वृद्धि की याचना की।

एक दिन नम्पिळ्ळै तिरुवाय्मोलि की व्याख्या सुना रहे थे। तब भक्तगणों के साथ एक अपरिचित व्यक्ति भी दीवार से सटकर खड़ा होकर सुन रहा था। लोगों की उत्सुकता देखकर तिरुविळक्कुप्पिच्चन

उस अपरिचित से बोले—"हे कृष्ण, तुम्हें अपना सौलभ्य क्या इस प्रकार दिखाना है ? यह कलियुग है, तुम द्वापर की तरह स्वेच्छाचार नहीं कर सकते । अपने सिंहासन पर जा बैठो ।" उस पागल की बात सुनकर सब लोग चकित हुए तो अपरिचित बोला—"तेरा कहना ठीक ही है । नम्पिळ्ळै का भाषण सुनने के लिए उतरकर आया ।" यह कहते हुए वह अपरिचित श्रीकृष्ण का रूप दर्शाते हुए आसन की ओर गया और मूर्ति में समा गया । भगवान् की अद्‌भुत माया जानकर सब आश्चर्यचकित हो गये । एक दिन जब बड़ी सभा में व्याख्या हो रही थी उसी समय भगवान् का जुलूस निकला तो भाषण सुननेवाले तितर-बितर होने लगे । तब एकाएक भगवान् की मूर्ति इतनी भारी हो गयी कि उसे कन्धे पर उठाने वाले थककर बैठ गये । जब तक भाषण पूरा नहीं हुआ तब तक मूर्ति उठायी नहीं जा सकी । उस दिन से नित्यप्रति की यह प्रदक्षिणा बंद कर दी गयी ।

नम्पिळ्ळै के भाषणों से मुग्ध होकर उनके शिष्य बन जानेवालों में एक महिला भी थी । उस महिला की गिनती शिष्यों में करना अन्य शिष्यों को अरुचिकर लग रहा था । एक दिन एक विचित्र घटना घट गयी । नम्पिळ्ळै एक नाव पर बैठकर सभी शिष्यों के साथ कावेरी नदी पार कर रहे थे । एकाएक नाव डगमगाने लगी । मल्लाह ने कहा कि किसी एक के उतर जाने पर आपत्ति टल सकती है । किन्तु उस समय कोई भी नदी में कूद पड़ने के लिए तैयार न हुआ । एकाएक वह महिला उठी और ज़ोर से चिल्लायी—"हे कृष्ण ! मेरे गुरु महाराज की रक्षा करो ।" इतना कहकर सबके देखते-देखते वह नदी में कूद पड़ी । गुरु उदास हुए और सभी शिष्य लज्जित । लेकिन नदी के किनारे पहुँचकर सबने आश्चर्य से देखा कि वह महिला मुस्कराती हुई खड़ी थी । गुरु के नाव से उतरते ही वह उनके चरणों में नत हुई और बोली—"आपका और कृष्ण का स्मरण करते-करते नदी में कूद पड़ना ही मुझे याद है, फिर क्या हुआ, मैं कुछ नहीं जानती । मैं जीवित हूँ तो यह आपके प्रताप के बल पर ही है ।" इस घटना के बाद शिष्य-मण्डली उस महिला का अधिकाधिक आदर करने लगी ।

एक बार नम्पिळ्ळै धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में भ्रमण करते हुए किसी गाँव में पहुँचे । वहाँ एक छोटा-सा मन्दिर था, जिसमें सब शिष्यों को ठहरने के लिए स्थान पर्याप्त नहीं था । कुछ शिष्य गाँव के किसी गृहस्थ के घर में जाकर ठहरने के लिए सहमत हो गये । पास के घर की एक वृद्धा महिला ने गुरु महाराज से कहा—"यदि वैकुण्ठ में मुझे स्थान दिला सकें तो मैं आपके शिष्य को अपने घर में ठहरा लूँगी ।" गुरु महाराज ने कहा—"हाँ, अवश्य दिलाऊँगा ।" महिला ने कहा कि लिखकर देना होगा कि अमुक दिन मेरे लिए स्वर्ग में एक स्थान सुरक्षित रहेगा । गुरु महाराज ने कागज और कलम मँगवाकर लिख दिया कि "हे कृष्ण ! यह महिला अमुक दिन तुम्हारे यहाँ पहुँचेगी, तुम इसे जगह दे दो ।" महिला सन्तुष्ट होकर वह कागज लेकर चली गयी और अपने घर में उनके शिष्यों को स्थान दे दिया । आश्चर्य की बात यह थी कि गुरु महाराज ने जिस दिन का उल्लेख उस कागज पर किया था, उसी दिन उस महिला का परलोकवास हुआ ।

एक दिन नम्पिळ्ळै ने अपने शिष्य तिरुवीथिप्पिळ्ळै की गोद में सिर रखकर लेटे-लेटे कहा—"मैं वैकुण्ठधाम पहुँच रहा हूँ ।" इन शब्दों के साथ उनका पार्थिव शरीर छूट गया ।

नम्पिळ्ळै के कुछ वचनामृत

१. कटु वचनों को सुनकर बदले में कटु वचन न बोलकर जो उनका सार ग्रहण करके अपनाता है, वह वैष्णव-पद प्राप्त करता है ।

२. वैष्णव सारस के जैसा होगा । जहाँ पानी हो वहीं पर वह रहेगा । वैसे ही वैष्णव-भक्त भी सत्संग में ही रहेगा ।

३. सारस सफेद रंग का है। वैसे ही वैष्णव का हृदय उज्ज्वल अथवा निर्मल होना चाहिए।

४. वह मुर्गी की तरह होगा। जैसे मुर्गी सार ग्रहण करके अपने बच्चे को देती है, वैसे ही वैष्णव वेद-शास्त्रों का सार अपने शिष्य एवं मित्रों को सुनायेगा।

५. वह नमक की तरह होगा। नमक स्वयं अपना रूप तजकर वस्तुओं को सुस्वादु बनाता है। वैसे ही उत्तम वैष्णव अहं का त्यागकर सबका दास बनकर सुख देगा।

६. वह पन्द्रह वैष्णव-चिह्नों से सजकर, तुलसी-माला से विभूषित रहेगा।

७. राम और कृष्ण को सजातीय न मानकर उन्हें भगवद्स्वरूप यानी भगवान् ही मानेगा। वह अवतार-रहस्य से सदा परिचित रहेगा।

८. कृष्ण की लीलाओं को मानव-लीला समझ भ्रम एवं तर्क-वितर्क में नहीं पड़ेगा। परमात्मा को कृष्ण और जीवात्मा को राधा मानकर कृष्ण-प्राप्ति के लिए तत्पर रहेगा।

९. मणिवण्णन कृष्ण ही एकमात्र दानी है, उसकी स्तुति करना। भूलकर भी मानव की स्तुति करना अपनी विद्वत्ता को अपमानित करना है।

१०. गुरु-भक्ति ही सर्वोपरि है। भगवान् को प्राप्त करने का मार्ग सुझानेवाले गुरु के दर्शन करना भगवान् के दर्शन के समान है।

ह० दु० स्वा०

नम्मालवार

नम्मालवार का जन्म नवीं शती में प्रमादि वर्ष, वैशाख पूर्णिमा, शुक्रवार को पाण्डिय देश की ताम्रपर्णी नदी के किनारे तिरुक्कुरुकूरि नामक एक पुण्यस्थली में भगवान् नंबि एम्पेरुमान की कृपा से हुआ था। इनके पिता का नाम कारियार और माता का उड़ैयनंगै था। यह परिवार धर्मशील था और महाविष्णु के अतिरिक्त और किसी देवता की उपासना नहीं करता था। इनके पूर्वजों में अच्युत, चेन्तामरै कण्णन, पोरकारियार, कारियार, मारन आदि विद्या-विनय-सम्पन्न महानुभाव थे, जिन्होंने कुल के गौरव को अक्षुण्ण रखा। उसी वंश में कारियार का जन्म हुआ जिन्होंने सुप्रसिद्ध कृष्ण-भक्त नम्मालवार को पुत्र-रत्न के रूप में प्राप्त किया। नम्मालवार की माता उड़ैयनंगै भी विष्णु-भक्ति-परम्परा से सम्पन्न परिवार की थीं और उनके पिता का नाम था—तिरुवाष मार्बर।

कहा जाता है कि जन्म लेते ही वह शिशु ध्यान-मग्न हो गया। उसने माँ का स्तन-पान नहीं किया और मौन पड़ा रहा। पिता कारियार और माता उड़ैयनंगै को पुत्र की यह स्थिति देखकर अत्यन्त चिन्ता हुई। किन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आहार त्यागने पर भी उसकी मुख-कान्ति रंचमात्र भी कम न हुई। उसे देखकर लगता था जैसे नित्यानन्द में लीन हो।

कहा जाता है कि जब बच्चे माता के गर्भ में होते हैं तभी शठ नामक एक वायु उनके शरीर में प्रवेश करके उनके पूर्वजन्म के ज्ञान को मिटा देता है। जब नम्मालवार गर्भस्थित थे तब उन्होंने उस वायु पर कोप करके उसे पास फटकने न दिया। इसलिए उनका नाम शठकोपर पड़ गया।

निराहार रहनेवाले अपने तेजोमय शिशु को कारियार और उड़ैयनंगै ने भगवान् की सन्निधि में लाकर एक पलने में लिटा दिया और विविध प्रकार से स्तुति की तथा अपने अज्ञात पापों के परिहार के लिए प्रार्थनाएँ कीं। दोनों ने पुत्र का नाम मारन रखा तथा उन्हें अपनी सन्तान न कहकर अपने वंश का राज (कुड़िक्करसु) कहकर उसकी उपासना में लगे। सोलह वर्ष इसी तरह बीत गये।

विप्रवर मधुर कवि आलवार ने सदा मौन एवं निराहार होकर भी बढ़ते हुए बालक की बात सुनकर

उनके दर्शन करने की इच्छा की। उनके मन में ऐसी इच्छा जगते ही उनके सामने एक तेजोराशि उठी। वे उस तेजोराशि का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ते गये। अन्ततः जब वे तिरुक्कुरुंगुडि में आ पहुँचे तब वह तेज विलीन हो गया। मधुर कवि लोगों से पूछते हुए कारियार के घर आये। निराहार पड़े हुए बालक को देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने प्रश्न किया कि क्या यह बालक चैतन्य है? ऐसा पूछते हुए एक पत्थर उसके सामने जोर से डाला। तब बालक की आँखें खुलीं। फिर मधुर कवि ने पूछा कि क्या इस बालक को वाग्-शक्ति है? ऐसा कहते हुए उन्होंने प्रश्न किया—"चेत्तत्तिन वयिट्रिले सिरियदु पिरंदाल एत्तैत्तिन्ड्रु एंगे किडक्कुम्?" अर्थात् "अचिन के पेट में आत्मा का प्रवेश हो तो वह क्या खायेगा और कहाँ रहेगा?" तुरंत बालक के मुँह से उत्तर मिला—"अत्तै तिन्ड्रु अंगे किडक्कुम्" अर्थात् "शरीर के सुख-दुःखादि का भक्षण करते हुए शरीर में ही पड़ा रहेगा।" यह उत्तर मिलते ही मधुर कवि ने बालक को साष्टांग नमस्कार किया और 'गुरुपादाम्बुजं ध्यायेत् गुरोर्नाम सदा जपेत्' के अनुसार उन्हींको अपना गुरु मानकर उनका नाम-स्मरण करते हुए उन्हींकी सेवा में लग गये।

इस घटना के बाद मधुर कवि आलवार के संसर्ग से शठकोपर उठ खड़े हुए और भगवान् की स्तुति करने लगे। उनके गीतों को मधुर कवि आलवार ने लिपिबद्ध किया। शठकोपर को भगवान् ने राधा, लक्ष्मीसमेत दर्शन दिये। महालक्ष्मी ने उन्हें नम्-आलवार यानी हमारा भक्त कहते हुए उन पर कृपा-कटाक्ष किया। उस दिन से ही उनका नाम नम्मालवार हुआ। महाविष्णु ने उन्हें बकुल-पुष्पों की माला पहनायी। इसलिए उनका एक अन्य नाम 'बकुलाभरणन्' हुआ। नम्मालवार ने 'श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय' की स्थापना की। उनकी सभी स्तुतियों में भगवान् के साथ महालक्ष्मी तथा नप्पिन्ना देवी, जिस नाम से श्री राधा तमिल में जानी जाती हैं, की स्तुति पायी जाती है।

नम्मालवार का यश स्थिर और व्यापक हो गया। वे कुलपति उपाधि से विभूषित हुए। जैसे शैव लोग प्रारम्भ में विघ्नेश्वर की पूजा करते हैं वैसे ही वैष्णव नम्मालवार को प्रथम पूजन देने लगे। महाकवि कंबन जब रामायण की रचना करने लगे तब उन्हें कई विघ्नों का सामना करना पड़ा। विघ्नों के शमन के लिए उन्होंने 'शठगोपरन्दादि' की रचना की तो उनकी बाधाएँ हट गयीं और रामायण की कविताएँ धाराप्रवाह रूप में उनकी लेखनी से निकल पड़ीं। नम्मालवार ने अपने को भगवान् की प्रेमिका माना है। उनके गीतों में दाम्पत्यभाव स्पष्ट दीखता है। जिस गीत को सुनकर भगवान् ने उनको दर्शन दिये, वह यहाँ उद्धृत है—

(१)

इट्ट काल इट्ट कैयळाय इरुक्कुम्
एषन्दु वाय् मयंगुम्, कै कूप्पुम्
कट्टमे कादल एन्ड्रु मूर्छिक्कुम्
कड़ल वण्णा कडियै काण् एन्नुम्
वन्दिड़ाय एन्ड्रु एन्ड्रे मयंगुम्
इट्टने! सेषुनीर तिरुवरंगत्ताय
इवळ तिरुन्दु एन् चिन्तित्ताये।

'यह कन्या अपना हाथ-पैर हिलाये बिना स्थिर रहेगी। इसके हाथ सदा नमस्कार में जुड़े रहेंगे। यह उठकर बोलने में अशक्त होकर मूर्च्छित रहेगी। प्रेम का मार्ग ही कठिन है, ऐसा जानकर मूर्च्छित होगी। सागर-से नील रंग के हे कृष्ण, तुम बड़े कठोर हो, ऐसा बकती रहेगी। तेज चक्रास्त्रधारी, तुम मेरे पास आ जाओ, ऐसा कहते-कहते मूर्च्छित हो जायगी। ऐ मेरे परम मित्र, समृद्ध कावेरी से आवृत्त श्रीरंगम् के निवासी कृष्ण, इस प्रेमिका के बारे में तुमने क्या सोच रखा है?'

ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र का भेदभाव मिटानेवाले इस महापुरुष ने वैष्णव-भक्ति के इतिहास में युगान्तरकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। इससे उसके देशव्यापी प्रचार का मार्ग उन्मुक्त हो गया। इनका निम्नांकित उद्घोष परवर्ती आचार्यों तथा भक्तों के लिए महामन्त्र बन गया—

(२)

कुलन्तांगु जातिगळ नालिलुम्
कोष इषिन्दु एत्तनै
नलन्ताळ इलाद चण्डाळ चण्
डाळरगळ आगिलुम्
वलंतांगु चक्करत्तु अण्णल
मणिवम्णर्कु आळ एन्ड्र् उळ
कलन्दार अडियार तम् अडि
पार् एम अड़िगळे !

'चारों कुलों में कोई कितना भी नीच कुल का हो, भलाई न जाननेवाले चाण्डाल से भी चाण्डाल हो, अगर वह नीलमेघश्यामल कृष्ण का, उस चक्रधारी भगवान् का दास हो तो मैं उसका दासानुदास हूँ।'

हु० दु० स्वा०

नाथमुनिगळ्

तमिलनाडु के वैष्णव-सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा के प्रथम गुरु श्री नाथमुनिगळ् ही हैं। इनका आविर्भाव ज्येष्ठ मास के अनुराधा नक्षत्र में सन् ८२४ ई० में हुआ था। यह श्रीरंगम् के पास अन्बिल नामक गाँव में प्राप्त ताम्रपत्र द्वारा प्रमाणित होता है। नाथमुनिगळ् के पिता श्री ईश्वर भट्टर थे। वे वेदों और स्मृतियों के ज्ञाता थे। उनके पूर्वज श्रीरंगनाथजी के परम भक्त थे। अतएव भक्ति नाथमुनिजी के लिए पैतृक सम्पत्ति थी।

आचार्य नाथमुनि सदा आँखें बंद करके मौन योग-समाधि में लीन रहा करते थे। भगवान् और मानवों के प्रति अपना कर्तव्य विस्मृत करके उनका इस प्रकार मौन-योग साधना उनके शिष्यों को अच्छा नहीं लगा। इसलिए सबने मिलकर उन्हें एक दिन जगाया और निवेदन किया कि आप योग-साधना का सार्वजनिक उपयोग करें। तभी से वे भागवत-धर्म के प्रचार में मग्न हुए।

पुण्यक्षेत्रों की यात्रा करके जब नाथमुनिगळ् अपने गाँव वापस आये तो इन्हें ज्ञात हुआ कि वहाँ के मन्दिर में कुछ भागवत-प्रचारक पधारे हैं। उनका स्वागत करने के लिए मन्दिर में गये तो वे भक्ति-गान में लगे हुए थे। उनमें से एक गीत इस प्रकार है—

आरावमुदे अडियेन् उड़मै निन्पाल् अन्वाये,
नीराय् अलैन्दु करैय उरुक्कुगिन्ड्र नेडु माले
शीरार् चेन्नेल् कवरि वीसुम् शेषुनोर्त् तिरुक्कुडन्दै
एरार् कोलम् तिगषन्दक किडन्दाय् कण्डेन् एम्माने
वारा वरुवाय् वरुम् एन माया ! माया मूर्त्तियाय्
आरावमुदाय् अड़ियेन् आवि अगमे तित्तिप्पाय्
तीरा विनैगळ् तीर एन्नै आण्डाय् ! तिरुक्कुडन्दै
ऊरा उनक्कु आळ् पट्टुम् अड़ियेन् इन्नम् उषलवेनो ?

'हे आरावमुद ! हे परमपुरुष ! हम दास तुमसे प्रेममग्न होकर पानी जैसे पिघल रहे हैं। हे महाविष्णु ! सुन्दर धान के खेतों से आवृत्त शस्यश्यामला भूमि कुम्भकोणम् में सुन्दर श्याम शरीर धारण कर विराजनेवाले भगवान् ! हमारे मायामय देव ! आओ, आओ। तुम्हारा दर्शनामृत हमारे अंग-अंग को माधुर्यमग्न कर रहा है। समस्त रोगों को निवारण करके सबको स्वस्थ करनेवाले देव ! तुमने हमें अपना लिया। क्या इसके बाद भी हमें इस संसार-तलैये में पड़े रहना है ?'

भागवत-धर्म-प्रचारकों द्वारा गाये गये इस गीत के स्वर एवं भाव-गाम्भीर्य पर मुग्ध होकर नाथमुनि ने पूछा—"क्या आप इस प्रकार के अन्य गीत गाकर सुना सकते हैं ?" प्रचारकों ने कहा—"हम केवल यही एक गीत जानते हैं।" फिर इन्होंने पूछा—"क्या इस प्रकार के अन्य गीत आपके यहाँ प्राप्त हो सकते हैं ?" भक्तों ने उत्तर दिया—"नहीं। मधुर कवि के जन्म-स्थान कुरुकूर में प्राप्त हो सकते हैं।"

भागवत-भक्तों का यथायोग्य आतिथ्य कर चुकने के बाद नाथमुनि कुरुकूर के लिए रवाना हुए। वहाँ

मधुर कवि के शिष्य परांकुश दास से मिले और उनसे मधुर कवियालवार् कृत 'कण्णिन् नुण् चिरुत्ताम्बु' शीर्षक प्रबन्ध को प्राप्त किया। वहीं पर इमली-वृक्ष के नीचे बैठकर एक सहस्र बार उसका पारायण किया तो इनकी दिव्यशक्ति विकसित हुई और चार सहस्र पदों का ज्ञान अपने-आप हो गया। इन्होंने उन पदों को चार भागों में विभक्त किया तथा अपने गाँव वीरनारायणपुरम् मन्दिर में उनके अनुसन्धान का प्रबन्ध किया। फिर श्रीरंगम् मन्दिर में भी उनके पारायण-क्रम का उद्‌घाटन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने आलवारों की शिला-मूर्तियाँ स्थापित करके उनकी भी नित्य पूजा करने की प्रथा आरम्भ करवायी।

उन प्रबन्धों की व्याख्या एवं प्रचार के लिए एक धर्मपीठ की आवश्यकता का अनुभव करके श्रीरंगनाथ मन्दिर में ही उसकी स्थापना भी की। उस धर्मपीठ के ये ही प्रथम गुरु हुए और सारा वैष्णव-संसार उस गुरु-परम्परा के आदेश पर चलने लगा। नाथमुनिगळ् ने शरणागति-तत्त्व का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया। नम्मालवार के बाद विस्मृत हो रहे आलवारों के भक्ति-गीतों का संकलन करके वैष्णव-सम्प्रदाय को पुनर्जीवन देने का महान् श्रेय इन्हींको प्राप्त हुआ। नम्मालवार कृत 'तिरुवाय्मोलि' पर लिखा इनका एक श्लोक इस प्रकार है :

भक्तामृतम् विश्वजनानुमोदनम्
सर्वार्थदम् श्री शठकोपवाङ्मयम्।
सहस्रशाखोपनिषद्‌समागमम्
नमाम्यहं द्राविडवेदसागरम्॥

'भक्तों के लिए अमृतस्वरूप हैं। विश्व के समस्त लोगों को आनन्द प्रदान करता है। इस प्रकार सभी पुरुषार्थों को दे सकनेवाला शठकोप-वाङ्मय हजारों शाखाओं से युक्त उपनिषद्-संग्रह के रूप में प्रस्तुत यह ग्रन्थ द्राविड़-वेद का सागर है। इसको प्रणाम करता हूँ।'

गुरु-परम्परा से प्राप्त कथा के अनुसार नाथमुनि श्याम का ध्यान करते हुए सदा गम्भीर रहा करते थे। जब एक बार कोई राजा अपनी रानियों सहित उनके दर्शनार्थ पधारे तो भक्तवर ने उन्हें कृष्ण और गोपिकाओं के रूप में देखा। उसका वर्णन उन्हींके शब्दों में यहाँ दिया जा रहा है—

तिरुवुडै मन्नरैक्काणिल् तिरुमालैक् कण्डेने एन्गिर पडिये अवर्गळै कृष्णनुम् गोपियरुमाग निनैत्तु अवरगळ् पिन्बे गंगैकोण्ड चोषपुरत्तेषुन्देन्।

'श्रीयुक्त राजा के दर्शन हों तो वह महाविष्णु के दर्शन के समान है। इसी तत्त्व के अनुसार उनको कृष्ण और गोपियाँ समझकर उनके पीछे ही हो लिये और इस नगर गंगैकोण्ड चोलपुरम् तक आ गये।'

इसी तरह एक बार राजा भक्तवर का दर्शन करके लौटते समय अपने एक सेवक के सिर पर पैर रखकर हाथी पर चढ़े तो नाथमुनि ने कहा—

"सर्वेस्वरन् ब्रह्मरुद्रादिगळ् तलैपिले अडिपिट्टुप् पेरिय तिरुवडियै मेर् कोळ्ळुम् पडि इदुवागादे।"

'सर्वेश्वर महाविष्णु गरुड-वाहन पर आरूढ़ होते समय ब्रह्म-रुद्र आदि देवताओं के सिर पर चरण रखकर आसीन होते हैं।'

इस तरह नाथमुनिजी ने सर्वत्र भगवान् को बहुधा कृष्ण के रूप में ही देखा।

इनकी स्तुति में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

व्योम्नः परस्तात् सविधम् समेत्य
लक्ष्म्या नियोगात् कुरुवादिराजः
समन्त्र रत्-नम् द्वयमाह यस्मै
नाथाय तस्मै मुनये नमोस्तु ते!

हु० द० स्वा०

नामक्कल कवि रामलिंगम् पिळ्ळै

नामक्कल रामलिंगम् का जन्म १९ अक्टूबर १८८८ ई० को दक्षिण अर्काट जिले के परमूर नामकगाँव में हुआ था। इनके पिता वेंकटराम केवल तीसरी कक्षा तक पढ़े थे। अपने छोटे-से गाँव में खेती करके वे बड़ी कठिनाई से परिवार का पालन कर रहे थे। उन दिनों सेलम में एक पुलिस दारोगा थे सुन्दर राजुलु नायुडु। उनकी श्रीमती अंगम्माळ परणूर गाँव की थीं। संयोगवश उन दिनों पूरे क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा। जब गाँव में अकाल का प्रभाव बढ़ गया और लोग भूखों मरने लगे तब वेंकटराम दारोगा से सहायता माँगने के लिए ये सेलम गये। दारोगा के आगमन की प्रतीक्षा में ये उनके दरवाजे पर बैठ गये। दारोगा का तीन साल का पुत्र बाहर सड़क पर खेल रहा था। एकाएक एक तेज घोड़ागाड़ी बच्चे के निकट आ गयी। क्षणभर की देर थी, वेंकटराम छलाँग मारकर दौड़े, बच्चे को गाड़ी के नीचे दबने से बचा दिया। कुछ ही देर बाद दारोगा आ गये। स्त्री ने सारा वृत्तान्त उनसे कहा। अपने बच्चे की रक्षा करने के पुरस्कारस्वरूप दारोगा ने उन्हें पुलिस का एक सिपाही बना दिया। बहुत कम पढ़े-लिखे होने पर भी वेंकटराम धीरे-धीरे प्रधान कान्स्टेबुल हो गये।

पुलिस सिपाही वेंकटराम और अम्मणि अम्माल के पहले तीन पुत्रियाँ हुईं। चौथा एक बालक पैदा होकर मर गया। फिर उसके बाद तीन पुत्रियाँ हुईं। वे आठवीं बार गर्भवती हुईं। तब पति-पत्नी विविध प्रकार से मनौतियाँ करते रहे कि उनके एक पुत्र हो। एक दिन पचहत्तर वर्ष के एक वृद्ध ब्राह्मण दम्पति उनसे मिले और बोले—"हम रामेश्वर की तीर्थ-यात्रा करके लौट रहे हैं, हमें अग्रहार (ब्राह्मण-वीथी) का मार्ग बता दें, तो बड़ी कृपा होगी।" वेंकटराम ने आदर से झुककर उन्हें नमस्कार किया और अग्रहार तक स्वयं उनके साथ गये। वहाँ एक ब्राह्मण-परिवार में उन्हें ठहराकर उनका उचित सत्कार करवाया। प्रधान कान्स्टेबुल की यह उदारता देखकर वृद्ध ब्राह्मण-दम्पति गद्गद हो गये। उनके परिवार की सारी बातें सुनकर उन्होंने रामेश्वर का प्रसाद देते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि उन्हें पुत्र ही होगा। वेंकटराम की विनती पर वे उनके घर भी गये और अम्मणि अम्माल को भी आशीष वचन सुनाया कि तुम्हारा आठवाँ बच्चा कृष्ण की भाँति बालक ही होगा और उसका नाम रामलिंगम् रखना। ब्राह्मण दम्पति का आशीष सफल हुआ। ब्राह्मण के वरदानस्वरूप उनको पुत्र ही हुआ। वही आगे चलकर सुप्रसिद्ध कवि रामलिंगम् पिळ्ळै नाम से विख्यात हुआ।

इनका बचपन बड़े लाड़-प्यार में बीता। इनकी माता प्रायः इन्हें मन्दिर में ले जाती थीं और इनसे तीन-तीन बार वचन लेती थीं कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा और दुर्विनीत नहीं बनूँगा। उषाकाल में जगना, प्रातः स्नान करना, ईश्वर-ध्यान करना, मन्दिर जाना, तीर्थयात्रा करना, सदा सत्य बोलना, दान-पुण्य करना, दुष्टों के संग से दूर रहना आदि आदतें इन्होंने माता से ही सीखी थीं। माता इनके छोटे-से हाथों में बहुत से पैसे देकर गरीबों को दान कराया करती थीं। अतः दीनों के प्रति उदार और दानशील होने की प्रवृत्ति इनका संस्कार बन गया था।

इनके पिता शैव किन्तु माता वैष्णव-सम्प्रदाय की थीं। ऐसा होने से इनको लड़कपन में बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। माता के प्रभाव में आकर ये वैष्णव-चिह्न धारण करते थे और वैष्णव जीवन-पद्धति के अनुसार आचरण करते थे। पिता को यह पसन्द नहीं था। एक बार पिता ने रुष्ट होकर इनके मस्तक पर लगे वैष्णव-चिह्नों को मिटा दिया। इन्होंने सत्याग्रह कर दिया और भोजन करने से इन्कार कर दिया। अन्ततः पिता को झुकना पड़ा और इनकी प्रवृत्ति वैष्णव-धर्म के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

वैष्णव-सम्प्रदाय के प्रति विशेष झुकाव होने पर भी इनमें कट्टरता लेशमात्र भी नहीं थी। इनके पिता

के अफसर सर्किल इन्स्पेक्टर मुसलमान थे। इनकी माँ इन्स्पेक्टर की स्त्री से बातें करने उनके घर जाया करती थीं। ये भी साथ जाते और उस घर में खाना भी खाते थे। इनकी बहनों ने इस आदत का परिहास किया तो भी इन्होंने इस आदत को नहीं छोड़ा। बीस वर्ष की आयु में भी वे उस मुसलमान के घर जाते और सबके साथ बैठकर भोजन करते थे, लेकिन मांस-भक्षण नहीं करते थे।

बचपन से ही उन्हें चित्र खींचने में रुचि थी और स्कूल में अन्य विषयों के अध्ययन-काल में भी ये चित्र खींचने में अनायास ही लग जाते थे। इस कारण इन्हें कई बार दण्ड भी भोगना पड़ा। एफ० ए० (इन्टर) में पढ़ते समय एक बार प्रिन्सिपल इलियट् साहब ने एक दिन इनको चोरी-चोरी चित्र खींचते हुए देखा, परन्तु वे बिगड़े नहीं, उत्सुकता से देखा और उनकी कुशलता की तारीफ की तथा कुछ पुस्तकें भेंट में देकर प्रोत्साहित भी किया। आगे चलकर इन्होंने श्रीरामकृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द घोष आदि के चित्र खींचकर यश प्राप्त किया। जब इनके अध्यापक श्री लक्ष्मण अय्यर सेवा-निवृत्त हुए तब नगरपालिका में उनके चित्र का अनावरण हुआ। वह चित्र विद्यार्थी रामलिंगम का ही बनाया हुआ था। उसे एक अंग्रेज अफसर सिप्सन साहब ने देखा और अपनी स्वर्गीया पुत्री की मृत-अवस्था पर लिया गया पुराना फोटो देते हुए इनसे कहा—"इसकी आँखें बन्द हैं। आप ऐसा चित्र खींचकर दीजिये जिसमें आँखें खुली हों और वह जीवित अवस्था में प्रतीत हो।" रामलिंगम ने दस दिन में उक्त अंग्रेज अफसर के सामने ऐसा चित्र बनाकर प्रस्तुत कर दिया। पूर्वचित्र से उसकी तद्रूपता देखकर अफसर मुग्ध हो गये और युवा चित्रकार को ६७५ रुपये भेट किये। इन्होंने १२ दिसम्बर १९११ ई० को सम्राट् जॉर्ज पंचम के राज्याभिषेक का चित्र खींचकर सम्राट् के कर-कमलों से स्वर्ण-पदक प्राप्त किया।

श्री रामलिंगम ने अपने वयोवृद्ध मित्र श्री माणिक्क नाय्क्कर के साथ उत्तर भारत की यात्रा की थी। भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में कुछ दिन ठहरे। फिर काशी, जगन्नाथपुरी तथा रामेश्वरम् की यात्रा करके लौटे तो पिता वेंकटराम पिळ्ळै ने इन्हें विवाह कर लेने के लिए विवश किया। करुर वीरप्पपिळ्ळै की पुत्री मुत्तम्माल से प्रथम विवाह हुआ। पन्द्रह वर्ष के दाम्पत्य-जीवन के बाद भी इन्हें सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। इससे दुःखी होकर पत्नी स्वर्ग सिधार गयीं। उसके बाद पिता के आग्रह से ही इन्होंने मुत्तम्माल की कनिष्ठ सहोदरी सौन्दरम से विवाह किया। इस द्वितीय विवाह से इन्हें पाँच सन्तानें हुईं—तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ।

पिता ने इन्हें भी पुलिस-विभाग में प्रवेश कराना चाहा। परन्तु इनके मन में देश-भक्ति के भाव जग गये थे। अतः सरकारी नौकर बनने से साफ इन्कार कर दिया और राजनीति की ओर झुक गये। गांधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन से प्रभावित होकर इन्होंने निम्नलिखित कविता लिखी—

कत्तियिन्ड्रि रत्तमिन्ड्रि
    युद्धमोन्ड्रु वरुगुदु
सत्तियत्तिन् नित्तियत्तै
    नंबुम् यारुम् सेरुवीर् !
'आया एक युद्ध महान्
    खड्ग नहीं नहिं रक्तबहाव
आओ सभी जिन्हें विश्वास,
    नित्य सत्य पर होवें आज !'

इस कविता से इन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई। कवि रामलिंगम स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद तमिलनाडु-सरकार के राजकवि नियुक्त हुए। राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने स्वर्ण शाल ओढ़ाकर इन्हें सम्मानित किया। कवि के अन्तिम दिन बड़े सुखमय रहे। देश-भक्ति और भगवद्-भक्ति दोनों ने मिलकर इन्हें सम्माननीय बना दिया। भगवान्, ईश्वर, अवर्णनीय शक्ति, पराशक्ति आदि सभी के प्रति भक्ति प्रकट करने पर भी कृष्ण-भक्ति इनकी नस-नस में प्रवाहित

थी। 'कण्णन् भक्ति', 'कण्णन् लीलै', 'कण्णन् उरवु', 'कण्णन् पाट्टु' आदि रचनाएँ इनके विशिष्ट कृष्ण-प्रेम की द्योतक हैं। इनकी ये कविताएँ प्रायः बालकों के लिए सरल भाषा में लिखी गयी हैं। इनमें कृष्ण की बाल-लीलाओं का मधुर वर्णन है। इनके अतिरिक्त 'भगवद् गीतैयिन् सिरप्पु' (भगवद्गीता की विशेषता) शीर्षक लंबी कविता में इन्होंने गीता का सार सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। पुलिस सिपाही के पुत्र देश के महान् राष्ट्रीय और भक्त कवि बने, यह ईश्वर की लीला ही थी।

यहाँ इनकी कृष्ण-भक्तिपरक कविताओं से दो उद्धरण दिये जाते हैं :

(१)

कण्णन् भक्ति सेंन्दिडिल्, कवलै यावुम् तोंन्दिडुम्।
मण्णैवारित् तिन्ड्रवन्, मलैयैत् तूक्कि निन्ड्रवन्।
वोट्टिल् तिरुडुम् वेण्णैयै वेळियिल् दानम् पण्णुवान्
नाट्टिल् सिरुवर् यावरुम् नन्मै कोळ्ळक् कूवुवान्।
एन्ड्रुम् एन्ड्रुम् वालनाय् इन्बक्केलि लीलनाय्
कन्ड्रुकालि मेय्प्पदिल् कळित्तु लोकम् काप्पवन्॥

'कृष्ण की भक्ति करें तो सभी चिन्ताएँ हट जायेंगी। मिट्टी खानेवाला वह बालक पहाड़ को भी उठाकर खड़ा हुआ था। घरों में माखन की चोरी करके बाहर दान करता था। देश के सभी बालकों को जुटाकर अच्छे सन्देश देता था। सदा चिरंजीवी बालक तथा मधुर खेलों का प्रिय था। गाय-बछड़ों को चराते-चराते वह आनन्द से लोक-रक्षा भी करता था।'

(२)

भक्तरुक्केल्लाम् अडैक्कलमाय्
पातकर् तंगळै ओदुक्किडुवान्
शक्तिगळ पलवुम् तन्दिडुवान्
संकटम् तीर्क्क वन्दिडुवान्
आड़लुम् पाड़लुम् मिकुन्दुविडुम्
अषगन् कण्णन् पुकुन्द इड़म्
ओडलुम् ओळित्तलुम् विळैयाट्टाम्
ओव्वोरु सेयलुम् कळियाट्टे!

'समस्त भक्तों को शरण देकर पातक और पापियों का नाश करेगा। हमें सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रदान करेगा और हमें संकट से छुड़ाने के लिए कहीं से भी आ जायगा। जहाँ भी सुन्दर कृष्ण आ जाय वहाँ उछलना, दौड़ना, छिपना आदि विविध खेल होने लग जायेंगे। नृत्य और संगीत का वातावरण उत्पन्न हो जायगा, उसकी हर एक क्रिया मनोरंजक खेल ही है।'

ह० दु० स्वा०

नारायणतीर्थ स्वामी

नारायणतीर्थ स्वामी स्मार्त तेलगु ब्राह्मण थे। इनका जन्म आन्ध्र प्रदेश के तंजाऊर नामक स्थान में १५८० ई० में हुआ था। पिता का नाम श्री गंगाधर और माता का नाम पार्वती था। बचपन में ये वासुदेव नाम से जाने जाते थे। छोटी उम्र में ही इन्होंने संस्कृत और तेलगु में गम्भीर विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी और संगीत तथा भरत-नाट्य-कला में भी निपुण हो गये थे। भागवत का निरन्तर पारायण करते रहने तथा जयदेव के अष्टपदी-कीर्तनों को गाते रहने से इनमें कृष्ण-भक्ति की भावना प्रगाढ़ हुई। इन्होंने विवाह करके कुछ समय तक गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत किया था।

एक बार जब ये वेण्णारु नामक नदी को पार कर रहे थे तब एकाएक उसमें प्रवाह आ गया। उस समय इन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि बच जायेंगे तो संन्यास ग्रहण कर लेंगे। बच गये तो प्रतिज्ञा का पालन करते हुए संन्यास ग्रहण किया। संन्यास-आश्रम का यह नियम है कि संन्यास ग्रहण करने पर प्रथम छः मास अपनी जन्मभूमि अथवा निवास-स्थान से बाहर रहना चाहिए। नियमानुसार ये काशी गये, किन्तु वहाँ बरसों रह गये। कई पुण्य-स्थलों की यात्रा करते हुए ये आन्ध्र प्रदेश में चल्लपल्लि, मुत्तियाला आदि स्थानों से होकर तमिलनाडु चले गये। उन गाँवों

के जमींदारों ने इनका बड़ा आदर-सम्मान किया। वहीं पर इन्होंने वेदाद्रि नरसिंहम स्वामी पर कुछ कीर्तनों की रचना की तथा 'कृष्ण-लीला-तरंगिणी' शीर्षक गेय नाटक का भी सृजन किया। उसका विमोचन एक पुण्य-स्थल में करने के उद्देश्य से ये तमिलनाडु के वरहूर नामक गाँव में गये और वहाँ भगवान् विष्णु की मूर्ति के सामने उसका विमोचन किया। 'उरियड़ि विषा' नामक एक उत्सव के लिए वरहूर प्रसिद्ध है। (ऊँचे छीके पर कोई बहुमूल्य वस्तु बाँध दी जाती है। उसे चीरकर लेने के लिए लोगों के बीच में, विशेषकर अहीरों के बीच स्पर्धा होती है। यही इस उत्सव की प्रमुख विशेषता है। इसके प्रवर्तक श्री नारायणतीर्थ ही थे। यह उत्सव श्रावण महीने में श्रीकृष्ण-जयन्ती के समय दस दिन तक मनाया जाता है। आज भी वहाँ दसों दिन श्री नारायणतीर्थ के स्वरलहरीपूर्ण कीर्तन-पदों का गान होता है।)

'कृष्ण-लीला-तरंगिणी' की रचना भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर हुई है। इसमें बारह अध्याय हैं, जो तरंग कहलाते हैं। सरल शैली में लिखे गये ये संस्कृत-गीत सन्दर्भ के अनुसार विभिन्न रागों में विरचित हैं, जो रस-भाव-पूरित तथा आकर्षक हैं। छन्द-शास्त्र का सुन्दर उपयोग इसमें पाया जाता है। संस्कृत-संगीत नाटकों में 'कृष्ण-लीला-तरंगिणी' ही सबसे बड़ा नाटक है। जयदेव की अष्टपदी की तरह प्रत्येक गीत के पहले कथा-प्रवाह को समझाने के लिए एक सुन्दर श्लोक दिया गया है, आवश्यकतानुसार गद्य का भी प्रयोग हुआ है। ये गीत ताल-नृत्य के भी अनुकूल हैं।

इसमें भगवान् कृष्ण के अवतार से लेकर रुक्मिणी-विवाह तक की घटनाएँ वर्णित हैं। गीतों में कवि के नाम की छाप दी गयी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'पारिजातापहरण' नामक काव्य-नाटक तेलगु में रचा है।

ये वरहूर में कुछ वर्ष रहकर फिर वहाँ से चार मील पर स्थित तिरुप्पुन्दुरुत्ति नामक क्षेत्र में जाकर ठहरे और वहाँ रहते हुए दिवंगत हो गये। इनका गोलोकवास १६८० ई० में हुआ। वह दिन आज भी समारोहपूर्वक मनाया जाता है। माधुर्य-भाव की भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करनेवाले भक्तों में श्री नारायणतीर्थ का विशेष स्थान है।

'दैविकता और आध्यात्मिकता' नामक ग्रन्थ में इनके जीवन की अनेक अलौकिक घटनाओं का विवरण दिया गया है। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

(क) नदी की बाढ़ में प्राण-रक्षा के बाद इन्होंने संन्यास-ग्रहण का संकल्प तो कर लिया, किन्तु नदी से बाहर आते ही ये इस चिन्ता में पड़ गये कि पत्नी को कैसे समझायेंगे? यह विचार करते हुए इनके घर पहुँचते ही पत्नी को धक्का-सा लगा और वे हतप्रभ रह गयीं। इन्होंने पूछा—"क्यों डरी हुई-सी लगती हो? क्या हुआ?" कुछ देर बोलने में भी अशक्त रहने के बाद पत्नी ने कहा—"यह कैसा वेष है? काषाय, कमण्डल और दण्डसहित आये हैं?" ऐसा कहते-कहते वे रो पड़ीं। आश्चर्यचकित होकर इन्होंने कहा—"मैंने तो अभी संन्यास-ग्रहण नहीं किया।" इनके मुँह से ये शब्द निकलते ही, ये पत्नी को गृहस्थ के रूप में दर्शित हुए। इस परिवर्तन को देखकर पत्नी और भी स्तम्भित होकर बोली—"अभी ...... माने क्या है?" तब तीर्थजी ने नदी में हुई घटना का उल्लेख करके कहा—"तुम्हारे मांगल्य को दृढ़ करने के लिए ही मैंने संन्यास-ग्रहण का संकल्प लिया। श्रीकृष्ण ने मुझे प्राण-भिक्षा देने के अतिरिक्त तुम्हें समझाने के लिए तुम्हारी आँखों में मुझे संन्यासी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए तुम्हें दुःखी न होकर मुझे प्रसन्नता से बिदा देनी चाहिए।" पत्नी शान्त हुई और उन्हें बिदा देकर उन्हींको कृष्ण मानकर उनके स्मरण में जीवन व्यतीत करने लगीं।

(ख) एक बार स्वामी नारायणतीर्थ तिरुप्पति गये। कुछ दिन वहीं ठहरकर मन्दिर की परिक्रमा करते और सन्निधि में दूर खड़े रहकर दर्शन करते थे। एक दिन चौदह साल का एक लड़का बहुत-से पकवान रखकर खा रहा था। वह जान-बूझकर इनके निकट आकर खाने लगा। शीघ्रता से खाते-खाते पकवानों के समाप्त होते ही तुरन्त और पकवान कहीं से निकालता और खाता था। तीर्थजी ने उस लड़के को आश्चर्य से देखा तो उसने पूछा—"क्या देखते हो ? क्या मुझे पहचान नहीं पाते ?" तीर्थजी ने कहा—"नहीं।" लड़के ने कहा—"मैं ही गोपाल हूँ। हम दोनों सहपाठी थे। क्या भूल गये ?" इस उत्तर के साथ ही उसने इन्हें बचपन की कुछ घटनाओं की भी याद दिलायी। तीर्थजी ने कहा—"तुम्हारी कही घटनाएँ तो सत्य हैं, पर वह गोपाल तो अब मेरी उम्र का होगा। तुम तो छोटे बालक-से लगते हो।" लड़का बोला—"हाँ, मैं बड़ा नहीं हुआ। सदा ऐसा ही रहता हूँ।" ऐसा कहकर वह फिर पकवान खाने लगा। यह देखकर तीर्थजी ने मन में सोचा, "ऐसा खाने से इसके पेट में दर्द न होने लगे।" इनके मन में यह सन्देह उठते ही लड़के ने पूछा—"क्या तुम्हें पेट-दर्द है ?" लड़के के ऐसा पूछते ही तीर्थजी का पेट दर्द करने लगा। वे समझ गये कि यह बालक भगवान् कृष्ण ही हैं। लड़के ने पास आकर कहा—"मैं तुम्हारे पेट पर हाथ रखता हूँ, दर्द छूट जायगा।" लेकिन तीर्थजी बोले—"पेट-दर्द वैसा ही रहे, तुम अपना हाथ मेरे पेट पर न रखो, सिर पर रखने की कृपा करो।" बालक ने उनके सिर पर हाथ रखा और उसी समय अन्तर्धान हो गया।

इनकी प्रार्थना के अनुसार पेट-दर्द तो स्थायी हो गया। किन्तु उसकी परवाह न करके ये क्षेत्राटन करते रहे। एक दिन तिरुवैयारु से तिरुक्काट्टुप्पळ्ळि जाते समय दर्द अधिक हो जाने से पास के विघ्नेश्वर महादेव मन्दिर के अहाते में जाकर ठहर गये। तुरन्त इन्हें निद्रा ने वशीभूत कर लिया। निद्रावस्था में स्वप्न में कृष्ण ने कहा—"तुम प्रातः जागते ही जिसको देखो उसके पीछे ही जाओ।" प्रातः उठने पर इन्होंने एक सुअर को देखा। स्वप्न के अनुसार उसके पीछे जाऊँ या नहीं, ऐसी चिन्ता में पड़े तो विघ्नेश्वर की मूर्ति से जाने का संकेत मिला। संकेत पाकर ये उस सुअर के पीछे-पीछे शीघ्रता से चलने लगे। कई जगहों में घूम-फिरकर वह वराह (सुअर) किसी गाँव के वेंकटेश्वर मन्दिर में घुस गया। ये भी मन्दिर के अन्दर गये। वहाँ सुअर दिखायी नहीं दिया, लेकिन एक वाणी सुनायी पड़ी—"मैं ही तुम्हे खींच लाया, तुम यहीं पर रहो।" उस दिन से ये उसी गाँव में ठहर गये। वराह के पीछे आने से उन्होंने उस गाँव का नाम वराहूर (वराह का गाँव) रखा, जो बाद में बिगड़कर वरहूर हो गया।

(ग) जनश्रुति है कि इनकी भक्ति के वशीभूत होकर बालकृष्ण स्वयं सभा-मण्डल में इनके बुलाने पर आये और नर्तन करके लोगों को इनकी महिमा का परिचय दिया। इनके एक शिष्य को काले साँप ने डस लिया। इन्होंने गरुड़ की स्तुति की। तब भगवान्-वाहन गरुड़ स्वयं वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने अपने प्रभाव से शिष्य को विष के प्रभाव से मुक्त किया। श्री नारायणतीर्थ स्वामी ने एक दरिद्र ब्राह्मण पर कृपा करके उसके दारिद्य को मिटाकर राजवैद्य बना दिया। इनके एक गरीब पड़ोसी का बकरा अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो गया तो इन्होंने उसे जिलाकर उस दीन का दुःख दूर किया।

(घ) नारायणतीर्थ नित्य कृष्ण की पूजा किया करते थे। पूजा समाप्त होते ही ये पूजा-स्थल में पर्दा डालकर पर्दे के पीछे जाकर बैठ जाते थे और

'कृष्ण-लीला-तरंगिणी' के गीत गाया करते थे। ऐसा गाते समय गीत के लय एवं भाव के अनुसार स्वयं कृष्ण नृत्य करते थे। उस नृत्य की नूपुर-ध्वनि बाहर रहनेवालों को भी सुनायी पड़ती थी। एक दिन बहुत देर से पर्दा न उठने से और नूपुर-ध्वनि के भी न आने से लोगों ने पर्दा उठाकर देखा तो तीर्थजी के प्राण-पखेरू उड़ गये थे। इस प्रकार आराध्य की कृपा से कीर्तनानन्द-अवस्था में ही उन्हें परमपद प्राप्त हो गया।

इनका देहान्त तिरुप्पून्दूर्त्ति नामक गाँव में १६८० ई० में हुआ। वहाँ आज भी इनकी समाधि का दर्शन होता है और प्रतिवर्ष, माघ शुक्ल पक्ष अष्टमी के दिन वहाँ आराधकों की अपार भीड़ होती है।

यहाँ श्री नारायणतीर्थ कृत 'श्रीकृष्ण-लीला-तरंगिणी' से दो पद उद्धृत हैं :

(१)

कृष्णम् कलये सखि-सुन्दरम्…… बालकृष्णम्
कृष्णम् गतविषयतृष्णम्-जगत्प्रभ-
विष्णुम् सुरारिगणजिष्णुम्–सदा बालकृष्णम्

(२)

राधारुणाधर सुताक्षम् सच्चिदानन्दुर-
रूपम् जगद्त्रयभूषम् सदा बालकृष्णम्
अर्थम् चितिलीकृथानर्थम् श्री नारायण-
तीर्थं परमपुरुषार्थम् सदा बालकृष्णम्॥

नारायणतीर्थ स्वामी की एक अन्य रचना 'पारिजातापहरणम्' नामक काव्य है। वह यक्षगान-पद्धति में लिखा गया है। उसको ये एक नाटक मानते थे। इसलिए इन्होंने लिखा है—'पारिजातापहरणाख्यम् नाटकमभिनीयते।' पारिजात पुष्प को नारद रुक्मिणी-मन्दिर में रहनेवाले श्रीकृष्ण के हाथों में रखते हैं। कृष्ण चुपचाप उसे रुक्मिणी के जूड़े में रख देते हैं। यह सुनकर सत्यभामा को कृष्ण पर क्रोध आ जाता है। वह अपनी सहेली से इस प्रकार कहती है :

पुडमि लोपलं नाडु पुट्टुवु कन्टे
अडविलो नोक पुष्पमे युन्न मेलु

'इस धरती पर स्त्री के रूप में जन्म लेने से जंगल में एक फूल के रूप में जन्म लेना अच्छा है।'

सत्यभामा विरह का अनुभव करती है। देखिये :

एन्त दुडुकुवाडु गोपालुडम्म
दानि वलपुलके वश माये नम्म
तलचु कोन्टेने ताललेनम्म
नारायणतीर्थं नाम घेयुडम्म
हरि हरि हरि आनन्द गोप कुमारुडु
अलिगिते नन्नादरिन्चु वारेवरु
एन्नरामि गुण रत्ना करुडनि
विन्नविन्तुरे वेदान्तमुलो
चिन्नवाडु धीर नारायणतीर्थं
चित्तवृत्ति रंग नटन विनोदि।

'हे सखि! यह गोपाल कितना नटखट है? रुक्मिणी के नखरों का वह शिकार बन गया है। उस नारायणतीर्थ नामधेय की बात याद आने मात्र से मुझसे रहा नहीं जा रहा है। हरि-हरि! अगर वह हरिनन्द गोप-कुमार मुझसे रुठ जाय तो भला मेरा कौन आदर करेगा? वेदान्त को जाननेवाले वेदान्ती कहते हैं कि कृष्ण गुणरत्नाकर हैं। यह नारायण तो अभिनय-प्रिय है।'

यक्ष-गान के अन्त में एक श्लोक है। उस श्लोक में स्वामी की स्तुति है। स्वामी का चित्रण शरणागत एवं भक्तवत्सल के रूप में है। देखिये :

शरणम् शरणम् मुनीन्द्र सन्नुत शरणम् कमलानायक
शरणमच्युत पुर निवास स्वामि वरदराज प्रभो।

ह० दु० स्वा०
सा० प्र०

पराशर भट्टर

१३वीं शताब्दी में 'सहस्रनाम भाष्यम्' तथा 'अष्टश्लोकी व्याख्यान' की रचना करके प्रचुर यश प्राप्त करनेवाले पराशर भट्टर का जन्म श्री कूरत्ताष-

वान् के सुपुत्र के रूप में वैशाख मास के अनुष नक्षत्र में हुआ था। एक दिन कूरत्तालवार उञ्छ-वृत्ति में मध्याह्न तक कुछ न पा सकने के कारण भगवान् के भोगहेतु माँगे एक फल को अर्पित करके स्वयं भूखे ही रह गये। शाम को सन्ध्यावन्दन समाप्त करके श्री रंगनाथ के दर्शन करके लौटे और भूखे ही सो गये। इनकी धर्मपत्नी आण्डाल सो न सकी। उसी समय मन्दिर में भगवान् को अन्न-निवेदन का शंख बजा। शंख-ध्वनि श्रवण कर आण्डाल ने मन में सोचा, "यहाँ तुम्हारे भक्त भूखों पड़े हैं और तुम सानन्द भोजन करने में लगे हो।" आण्डाल के ये विचार अन्तर्यामी भगवान् ने जान लिये और उत्तम नंबी नामक मन्दिर के सेवक को स्वप्न में उद्बुद्ध करते हुए कहा—"नंबी ! आलवार भूखों पड़े हैं। तुम ये प्रसाद, छत्र-चामरादि के साथ ले जाकर उन्हें खिलाकर आओ।" नंबी चौंक उठे और भगवान् की आज्ञा के अनुसार अन्न-भोग को थाल उठायी और आलवार के द्वार पर जाकर शंख-ध्वनि की। आलवार हड़बड़ाकर जाग पड़े। द्वार पर जाकर देखा तो नंबी ने भगवान् की आज्ञा सुनायी। आलवार ने भगवान् के इस विशेष अनुग्रह पर गद्गद होकर थोड़ा आहार किया और अपनी पत्नी को भी देते हुए पूछा—"क्या तुमने कुछ सोचा था ?" आण्डाल ने मन में जो सोचा था उसे व्यक्त किया। दुःखी होकर आलवार ने मृदु उलाहना देकर प्रसाद लेने के लिए कहा। आण्डाल ने भी भक्तों का सदा स्मरण रखनेवाले भगवान् के अनुग्रह पर आह्लादित होकर प्रसाद ग्रहण किया। प्रसाद के साथ भगवान् ने उसे पुत्र-प्राप्ति का भी वर दे दिया था। उचित समय पर शिशु का जन्म हुआ। बारहवें दिन स्वामी रामानुज ने शिशु का तेजोमय रूप देखकर पूछा—"शिशु पर दैव का तेज दर्शित होता है। क्या किसीने द्वयानुसन्धान किया था ?" तब उनके एक शिष्य एम्बार ने कहा—"हाँ, शिशु को दोषों से रक्षित करने के लिए मैं द्वयानुसन्धान करता रहा।" उससे प्रसन्न होकर स्वामीजी ने आदेश दिया—"इसके आत्मा-उज्जीवन का गौरव भी तुम्हें ही प्राप्त हो। तुम इसके गुरु बनो।" यह आदेश देकर एम्बार के द्वारा ही पञ्चायुध आभरण पहनवाया और शिशु का नाम पराशर भट्टर रखा।

पाँच वर्ष की आयु से ही पराशर भट्टर की मेधा लोगों को चकित करने लगी। एक दिन उसके पिता ने एक श्लोक पढ़ते-पढ़ते 'चिरु मा मनिसर' शब्द का उच्चारण किया। चिरु का अर्थ है—छोटा और मा का अर्थ है—बड़ा तथा मानिसर का अर्थ है—मनुष्य। बालक भट्टर ने पिता से प्रश्न किया—"मनुष्य या तो छोटा हो सकता है या बड़ा। दोनों एक साथ कैसे हो सकता है ?" आलवार ने प्रश्न की गम्भीरता पर विमुग्ध होकर बताया—"देखो, गुरुवर्य एम्बार, रामानुज आदि शरीर से छोटे हैं, किन्तु ज्ञान से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इसीसे एक ही में लघुत्व और गुरुत्व दोनों दर्शित होते हैं।" बालक प्रसन्न होकर खेलने चला गया।

एक दिन सर्वज्ञ भट्टर नामक एक विद्वान् सड़क पर आ रहे थे। आगे-आगे उनके कुछ शिष्य स्तुति करते हुए चल रहे थे। बालक भट्टर ने हथेलीभर की मिट्टी लेकर दिखाते हुए सर्वज्ञ से प्रश्न किया—"यह मिट्टी कितनी है ?" सर्वज्ञ बोले—"इसकी संख्या बतायी नहीं जा सकती।" भट्टर ने झट कहा—"क्या यही आपकी सर्वज्ञता है ? यह तो मुट्ठीभर मिट्टी है। क्या इतना भी आप नहीं जानते ?" सर्वज्ञ ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। बालक को अपनी पालकी में बैठा लिया और आलवार के घर पर उतारकर चले गये।

बालक भट्टर का उपनयन-संस्कार यथासमय विधिपूर्वक करवाया गया। उसने मन्त्रों को सीखने में मन नहीं लगाया। इस पर आण्डाल और आलवार ने उसको फटकारा तो वह बोला—"मैं इन्हें पहले ही सीख चुका हूँ। सीखे हुए मन्त्रों को पुनः सीखना कैसा ?" आलवार के कहने पर भट्टर ने सभी वेद-मन्त्रों को स्वयमेव सुना दिया।

आगे चलकर इनकी प्रतिभा से प्रभावित हो श्री रामानुज ने अपने दर्शन का व्यापक प्रचार करने का भार इन्हींको सौंपा। उन दिनों एक वेदान्ती अपने को सर्वश्रेष्ठ मानकर आडम्बरपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। भट्टर ने उसको पराजित करने का वर भगवान् से माँगकर श्री वैष्णव-चिह्नों से अलंकृत होकर वेदान्ती के निवास की ओर प्रस्थान किया। सामने आनेवाले कुछ ब्राह्मणों ने कहा-"वेदान्ती धनवान् है। उसके यहाँ के प्रहरी आपको अन्दर जाने नहीं देंगे। वह प्रतिदिन अन्न-दान किया करता है। इसलिए आप भोजन करनेवाले के रूप में अंदर घुस जाइये और फिर वहाँ से वेदान्ती के पास पहुँच जाइये।" भट्टर ने वैसा ही किया। उनको देखते ही वेदान्ती ने कहा—"भिक्षा यहाँ नहीं, वहाँ दी जा रही है।" भट्टर ने कहा-"हम अन्न-भिक्षा के लिए नहीं, तर्क-भिक्षा के लिए आये हैं।" वेदान्ती ने भट्टर की चुनौती स्वीकार करके शास्त्रार्थ आरम्भ किया। नौ दिनों तक दोनों एक-दूसरे को तर्क से पराभूत करने की कोशिश करते रहे। दसवें दिन वेदान्ती ने अपनी हार स्वीकार करके भट्टर को साष्टांग नमस्कार किया। भट्टर ने उसको वैष्णव-धर्म में दीक्षित किया।

भट्टर केवल अट्ठाईस वर्ष की आयु तक ही जीवित रहे। इस थोड़ी-सी आयु में ही इन्होंने श्री वैष्णव-धर्म का व्यापक प्रचार किया। एक दिन कुछ पराजित विद्वानों ने एक घड़े में साँप को रखकर बंद कर दिया और भट्टर के पास ले जाकर प्रश्न किया कि इसके अंदर क्या है? भट्टर ने कहा—"छत्र है।" विद्वानों ने उपहास करते हुए साँप को बाहर करते हुए पूछा—"क्या यह छत्र है?" भट्टर ने झट कहा-"यह तो भगवान् का छत्र ही है। आदिशेष का प्रतिरूप है न?"

कार्तिक मास, शुक्ल पक्ष, द्वादशी के दिन ये मन्दिर में धर्म-तत्त्व की व्याख्या कर रहे थे। तब भगवान् के मुँह से ध्वनि निकली कि हम तुम्हें परमपद दे रहे हैं। भट्टर आह्लादित होकर बोले —"हमने आपका महाप्रसाद स्वीकार कर लिया।" उपस्थित लोग विचलित हो गये। भट्टर ने वहाँ से घर जाकर अपनी माँ आण्डाल को साष्टांग नमस्कार किया। परमपद-प्राप्ति का सन्देश माँ को सुनाते हुए उन्होंने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और प्राण त्याग दिये।

यहाँ श्री पराशर भट्टर की संस्कृत-रचनाओं से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

(१)

अन्येऽपि यौवनमुखा युवयोस्समानाः
श्रीरगंमगळविजृम्बण वैजयन्ति।
तस्मिंस्तव त्वयि च तस्य परस्परेण
संस्तीर्यं दर्पण इव प्रचुरं स्वदन्ते॥

(२)

भोग्या वामपि नान्तरीयकतया पुष्पाङ्गरागैस्समं
निवृत्त प्रणयातिवाहनविधौ नीताः परीवाहताम्।
देवि त्वामनु नीळया सह महीदेव्य सहस्रं तथा
याभिस्त्वं स्तनबाहुदृष्टिभिरिव स्वाभिः प्रियं श्लाघसे॥

जीवन की एक मर्मस्पर्शी घटना

एक बार पराशर भट्टर अपने शिष्य नंजीयर के साथ भागवत-धर्म का प्रचार करके कहीं से घर लौट रहे थे। रास्ते में अन्धकार छा गया। इसलिए पादिरी नामक एक गाँव में एक शिकारी की झोपड़ी में ठहर गये। शिकारी ने उन्हें प्रणाम करके उनके लेटने के लिए खाट दी। उस पर बैठते ही वे अपने शिष्य से बोले-"इसने हमारा वैभव जानकर यह स्वागत-सत्कार नहीं किया है। और न हमारे किसी उपकार के बदले प्रत्युपकार के रूप में यह किया है, क्योंकि हमने तो उसका कोई उपकार किया ही नहीं। हम इसकी झोपड़ी में आये, इसीलिए हमारे प्रति सहज प्रेम के कारण ही इसने हमारा सत्कार किया। इसी तरह भगवान् भी अपने भक्तों पर कृपा करते

हैं। वे हमसे किसी भी प्रकार की सेवा की प्रतीक्षा नहीं करते।"

भट्टर ने फिर शिकारी से पूछा–"क्या इस गाँव में कोई विशेष बात हुई?" शिकारी बोला–"हाँ, मैं आज जंगल में शिकार करने गया। वहाँ एक खरगोश का बच्चा मेरे हाथ आया। जब मैं उसे उठाकर लौटने लगा तब मादा खरगोश मेरे सामने कातर नेत्रों से देखकर खड़ी हुई। मैंने उसका मातृ-हृदय देखा। मेरा दिल पिघल गया। मैंने उसके बच्चे को छोड़ दिया और खाली हाथ लौट आया।"

उस शिकारी की मुखमुद्रा पर आनन्द था। उसमें एक सुसंस्कृत व्यक्ति का गुण दिखायी दिया। भट्टर बोले–"इस शिकारी को किसीने शरणागति-तत्त्व नहीं समझाया। हम वैष्णवों का यह नियम है कि अगर शत्रु का दिल बदल जाय अथवा वह शरण में आ जाय तो उसकी रक्षा करनी चाहिए। यह तत्त्व यह शिकारी नहीं जानता, फिर भी इसने शरणागत खरगोश को प्राण-दान दे दिया। इसका कारण इसका स्नेहसिक्त हृदय ही था। जब यह अशिक्षित क्रूरकर्मा शिकारी भी इतनी दया एवं करुणा धारण कर सकता है तो हम जैसे मनुष्य सर्वशक्तिमान् भगवान् की शरण में जायँ तो क्या वह हमारी रक्षा नहीं करेगा?"

परम्परावश पापकर्मा अथवा क्रूरकर्मा होने पर भी शरणार्थी के प्रति दया करना मानवों का स्वभाव है। त्रिलोकधारी भगवान् तो शरणागतवत्सल हैं। इसीलिए उन्होंने कहा है—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

इन्होंने कृष्ण-भक्ति के सम्मुख मोक्ष-प्राप्ति के सुख को तुच्छ माना है। नीचे उद्धृत गद्यांश से इसकी पुष्टि होती है।

आसनपद्मत्तिले पोरुन्दिपिट्ट तिरुवडित्तामरैगळुम्, अंजलेन्ड्र कैयुम्, कवित्त मुडियुम्, मुरुवल पूत्त सिवन्द, तिरुमुख मंडलमुम्, तिरुनुदलिल् कस्तूरित तिरुनाममुम्, परमपदत्तिल् कण्डिलेनागिल् मूलैयडिये मुरित्तुक्कोण्डु कुदित्तु मीण्डुम् वरुवेन्॥

'कमलासन में स्थित श्री चरणकमल, अभय हस्त, घनी केशराशि, मुस्कान से युक्त रक्तवर्ण श्रीमुख-मण्डल, उस श्रीमुख के सुन्दर ललाट पर कस्तूरी से लसे श्रीवैष्णव-चिह्न से विभूषित शोभा-स्वरूप भगवान् को यदि स्वर्गलोक में न देख पाऊँ तो मैं उस स्वर्ग-भूमि को भेदकर इस मर्त्यलोक पर पुनः कूदकर आ जाऊँगा।'

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पराशर भट्टर मोक्ष-प्राप्ति की अपेक्षा कृष्ण-दर्शन को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी प्रकार के एक अन्य श्लोक में इन्होंने मुरली-ध्वनि को सर्वोपरि माना है—

मिक्क इरै निलैयुम् मेय्याम् उयिर् निलैयुम्
तक्क नेरियुम् तडैयागित् तोक्कियलुम्
ऊष्विनैयुम् वाषविनैयुम् ओदुङ्कुरुगैयर कोन्
याषिनिशै वेदत्तियल्।

'अत्यधिक भगवद्-भक्ति, परवश कर देनेवाली उच्च स्थिति तथा जीवन के आदर्श नीति-नियम ग्वालराज की मुरली-ध्वनि सुनने में बाधा न डालें। उनका मुरली-स्वर पूर्वजन्म की कर्मविधि और इस जन्म के जीवन के पापों को दूर कर देनेवाला वेद है।'

'मैवण्ण नरुंकुंरिजि व्याख्यान' (श्यामवर्ण कृष्ण के सुगन्धित वन-प्रदेश-व्याख्यान) शीर्षक इनकी रचना में भी श्री राधा और श्री कृष्ण की प्रेम-लीला की मधुर झाँकी मिलती है। वह व्याख्यान इस प्रकार है—

"नायक से समागम के बाद वियोग हो जाने पर विरह-व्यथा से व्यथित नायिका पुष्प-चयन के व्याज से उपवन में जाती है। नायक भी शिकार के बहाने वहाँ आ जाता है। वहाँ दोनों परस्पर प्रेम-व्यवहार में मग्न होते हैं। नायक के चले जाने के बाद सखी

नायिका के पास आकर पूछती है कि उसने क्या किया? तब नायिका अपने नायक के स्वाभाविक विनोद का परिचय देती है अर्थात् नायिका के उद्देश्य को जानकर भी परस्पर विशिष्ट प्रेमाचार का वर्णन न करके सामान्य रूप से उसके विनोदी स्वभाव का ही वर्णन करती है।"

दक्षिण में श्री वैष्णव, विशेष रूप से राधा-कृष्ण की मधुरा भक्ति की श्रीवृद्धि में पराशर भट्टर का विशेष योगदान रहा है। इसके साथ ही श्री सम्प्रदाय गुरुपरम्परा में श्री इनका विशिष्ट स्थान है।

ह० दु० स्वा०

पल-पट्टडै चोक्कनाथर

भक्त चोक्कनाथर दो सौ वर्ष पहले मदुरै में रहते थे। ये कई लुहारों के यहाँ काम किया करते थे। 'पल' माने 'कई', 'पट्टडै' माने 'लुहारों के औद्योगिक केन्द्र'। इसलिए इनके नाम चोक्कनाथर के साथ पल-पट्टडै विशेषण लग गया। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इसके अतिरिक्त इनके जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके लिखे 'अषगर् किळ्ळै-विड्ड-तूदु', 'पद्मगिरिनाथर तेन्ड्रल्-विडु-तूदु' आदि काव्य प्राप्त होते हैं। अषगर् मदुरै के पास स्थित विष्णुमन्दिर के देवता हैं। 'किळ्ळै' का अर्थ है 'तोता', 'तेन्ड्रल्' का अर्थ है 'दक्षिणी पवन'। 'विडु-तूदु'से आशय है भेजे हुए दूत। इन्होंने एक प्रेयसी के रूप में अपने इष्टदेव के पास 'तोते' और 'पवन' को दूत के रूप में भेजते हुए ये दोनों काव्य लिखे हैं। उनसे दो पद उद्धृत हैं:

(१)

अन्न मिन्ड्रिप् पाल कुडिक्कुम्
पच्चैक् कुषन्दै नी यानालुम्—काल् पिडिप्पार्
कोडिपेर कंडाये—माल् पिडित्तोर्
कैच्चिलै वेळाल् वरुन्दुङ् काम नोय् तीर्णदक्कों
पच्चिलै रूपम् पडैत्तिरुन्दाय्।

२/११

कवि बालकृष्ण के हरे रूप पर मोहित होकर गाता है—

'यद्यपि तुम केवल दूध पीनेवाले और ठोस भोजन न करनेवाले कोमल शिशु हो तो भी तुम्हारे चरणों को पकड़कर उनकी शरण में आनेवाले करोड़ों भक्त हैं। जो-जो तुम्हारे चरणों का ध्यान करते हुए विरहानुभूति से व्याकुल हो रहे हैं, उनके काम-रोग को मिटाने के लिए ही क्या तुमने ओषधि-जड़ी जैसा हरा रंग ले लिया है?'

'अषगर्-किळ्ळै-विडु-तूदु' में कवि ने भगवान् के दसों अवतारों तथा मदुरै में मनाये जानेवाले विविध उत्सवों का वर्णन किया है। भगवान् की उत्सव-मूर्ति मदुरै की वीथियों में जुलूस में लायी जाती है। इसे देखकर एक नायिका उनके अपूर्व सौन्दर्य पर मोहित होती है। उसीका वर्णन आगे के पद्य में है—

(२)

करदीप मुम् वाणक् काक्षियुङ् काण
वरदीप रूपमाय् वन्द तिरुमाल्
अवनि परिक्कुम् अनन्ताषवान् मीदु
भवनि वरक् कण्डु पणिन्देन्-अवनषगिर्
पिन्नषगु मुन्नषगाम् पेरषगैक् काणुमुन्ने
मुन्नषगैक् कण्ड़े नान् मोगित्तेन्!

'भक्तगण हाथों में दीप लेकर आ रहे हैं। साथ ही आतिशबाजी और पटाखे-विस्फोट के दृश्य भी हो रहे हैं। उनको आगे करके महाविष्णु सुन्दरराज कृष्ण स्वयं श्रेष्ठदीप बनकर संसार को आकर्षित करनेवाले भक्त गरुड़राज पर आरूढ़ होकर जुलूस में आ रहे हैं। इन्हें इस प्रकार आते हुए देखकर मैंने साष्टांग प्रणाम किया और उठकर उनके सौन्दर्य का पान करने लगी। उनके पृष्ठभाग के सौन्दर्य को देखने के पहले ही उनके आगे के सौन्दर्य का अवलोकन कर मैं मोहित हो गयी। उसी मोहावस्था में ऐसी खड़ी रह गयी कि महासौन्दर्यमण्डित उनके पृष्ठभाग को देख न पायी।'

ह० दु० स्वा०

पिळ्ळै लोकाचार्य

नम्पिळ्ळै के बाद सन् १२५३ ई० के लगभग पिळ्ळै लोकाचार्य गुरुपीठ के प्रधान आचार्य हुए। इन्हींके समय में मलिक काफूर ने श्रीरंगम् पर आक्रमण किया और इस पुण्यक्षेत्र को ध्वस्त किया। किन्तु श्री रंगनाथजी नाम से प्रसिद्ध श्रीकृष्ण की मूर्ति उस आक्रमण से किसी तरह बच गयी। उसे बचाने का श्रेय पिळ्ळै लोकाचार्य को है। इन्होंने अपने एक शिष्य विळंचोलैप्पिळ्ळै की मदद से उस मूर्ति को तिरुप्पति ले जाकर सुरक्षित रखा। फिर उसे सेंजी के पास सिंहवरम् नामक क्षेत्र में ले आये। उन्हीं दिनों विजयनगर-साम्राज्य मुसलमानों से लोहा लेते हुए हिन्दू-धर्म की सुरक्षा में तत्पर था। विजयनगर-सम्राट् का प्रतिनिधि कम्पन्नगोपन सेंजी में ही था। वह सुविख्यात वैष्णव था। उसने श्रीरंगम् से मुसलमानों को भगा दिया और श्रीकृष्ण की मूर्ति पुनः श्रीरंगनाथ मन्दिर में स्थापित की।

पिळ्ळै लोकाचार्य के पिता वडक्कुत् तिरुवीथिप्पिळ्ळै स्वयं बड़े विद्वान् और भगवद्-भक्त थे। उन्हींसे लोकाचार्य ने शास्त्रों का अध्ययन किया था और उन्हींकी प्रेरणा से अष्टादश रहस्यों की रचना की थी। पिळ्ळै लोकाचार्य ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रबन्ध अर्थात् 'नालायिर-दिव्यप्रबन्ध' का सिद्धान्त ही वैष्णव-धर्म का रहस्य है। प्रबन्धम् के सिद्धान्त गुरु-परम्परा द्वारा शिष्यों को सिखाये जाने के कारण रहस्य कहलाते हैं। पिळ्ळै लोकाचार्य ने पूर्वाचार्यों के उपदेशों का संग्रह करके 'श्रीवचनभूषण' नामक ग्रन्थ तैयार किया। इन वचनों का गम्भीर अध्ययन एवं अनुकरण करने से अन्तःसौन्दर्य अथवा भक्तिभाव की वृद्धि और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसीलिए इस ग्रन्थ को 'श्रीवचनभूषण' कहा जाता है। यह माना जाता है कि स्वयं भगवान् ने पिळ्ळै लोकाचार्य को स्वप्न में आकर ऐसा संकलन करने का आदेश दिया था। इस ग्रन्थ (भूषण) के अतिरिक्त 'मुमुक्षुप्पडि', 'तत्त्वत्रयम्' आदि ग्रन्थ भी इनके द्वारा विरचित हैं।

वृद्ध होने पर पिळ्ळै लोकाचार्य ने अपने बाद तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै को पीठाधिपति बनाने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै सरकारी अधिकारी थे और मदुरै उनका कार्यक्षेत्र था। अपने गुरु का आदेश लेकर विळंचोलैप्पिळ्ळै मदुरै पहुँचे। किन्तु वे तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै से भेंट नहीं कर सके। हताश होकर वे एक पेड़ के नीचे योग-निद्रा में मग्न हो गये। एकाएक उनकी आँखें खुलीं तो तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै हाथ बाँधकर सामने खड़े थे। विळंचोलै ने आश्चर्य प्रकट किया तो तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै ने कहा कि एक बालक के द्वारा आपके यहाँ होने की बात मालूम हुई। उस बालक का पता तो मैं नहीं जानता। भगवान् की अद्भुत लीला जानकर उन्होंने पिळ्ळै लोकाचार्य की इच्छा कह सुनायी।

उच्च जाति के तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै सरकारी अधिकारी थे। फिर भी उन्होंने जाति और पद का अभिमान न करके लोकाचार्य का आदेश स्वीकार किया। लोकाचार्य के देह-त्याग पर स्वयं पुत्रवत् उनका अन्तिम संस्कार किया। तिरुवाय्मोलिप्पिळ्ळै के द्वारा ही 'तत्त्वत्रयम्' तथा अन्य रहस्य-ग्रन्थों का व्यापक प्रचार हुआ।

इनके उपदेशों का सार इस प्रकार है—

"जीवात्मा स्वामी नहीं है। वह ईश्वर का दास है। ईश्वर राधा-कृष्ण-स्वरूप में सदा तथा सर्वत्र स्थित हैं। राधा उनके हृदय-कमल में वास करती है। वे ज्ञान-शक्तियों से भरे हैं और कल्याण-गुणों से परिपूर्ण हैं। वे अद्वितीय यशस्वी हैं। स्वयमेव कृपा करनेवाले परम उपकारी हैं। जीवात्मा राधा के द्वारा उनके सान्निध्य में पहुँचकर उनकी शरण में जाती है। हे ईश, मैं तुम्हारा अविभाज्य अंग हूँ। तुम मुझे स्वीकार कर लो, ऐसी प्रार्थना करते हुए उनकी सेवा करते रहना ही जीवात्मा का परम कर्तव्य है। ईश तथा उनके भक्तों की सेवा करते रहने से ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो सकती है।"

ह० द० स्वा०

पुगषेन्दिप्पुल्वर्

पुगषेन्दिप्पुल्वर् का जन्म तमिलनाडु में पोन्विळैन्द कळत्तूर नामक गाँव में एक किसान के परिवार में हुआ था। यह गाँव चेंगलपट रेलवे स्टेशन से दक्षिण में छः मील की दूरी पर स्थित है। रेलवे स्टेशन का नाम ओत्तिवाक्कम् है। इनके नाम का अर्थ है—यशधर। नाम के अनुरूप ही ये अत्यन्त यशस्वी भक्त और कवि हुए। इनके यश का आधार इनका सुप्रसिद्ध काव्य 'नळवेण्पा' है। महाराज नल और दमयन्ती पर 'वेण्पा' नामक छन्द में इसका सृजन हुआ है। इस काव्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में श्रीकृष्ण का यशगान किया गया है।

जब इनकी कवित्व-शक्ति का पता मदुरै के राजा वरगुण पाण्डियन् को लगा तो उसने इन्हे निमन्त्रित करके दरबारी कवि नियुक्त किया। कुछ दिनों बाद इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें अपनी पुत्री का गुरु भी बना दिया। राजकुमारी के गुरुस्थान पर रहकर इन्होंने विशेष ख्याति अर्जित की। उन दिनों चोल देश की राजधानी उरैयूर थी। वहाँ का शासक विक्रम चोल था। उसने अपने पुत्र कुमार कुलोत्तुंग को कवि ओट्टक्कूत्तर की छाया में रखकर तमिल का विशिष्ट विद्वान् बनाया था। इनकी इच्छा पाण्डिय राजकुमारी को अपनी पुत्रवधू बनाने की थी। किन्तु इसके पूरा होने के पहले ही वे स्वर्ग सिधार गये। तब कुमार कुलोत्तुंग ने कवि ओट्टक्कूत्तर के माध्यम से ही पाण्डिय राजा के पास अपना प्रस्ताव भेजा। ओट्टक्कूत्तर यद्यपि विद्वान् थे तो भी बड़े घमण्डी और ईर्ष्यालु थे। उनमें भगवद्-भक्ति नहीं थी। पाण्डियराज ने ओट्टक्कूत्तर की विद्वत्ता की थाह लेने के लिए पुगषेन्दिप्पुल्वर् से उनकी भेंट करायी। पुगषेन्दि ने लक्षित किया कि कवि में विनय एवं सहृदयता की अपेक्षा पाण्डित्य-गर्व ही अधिक है। राजकुमारी तो बहुत भावुक युवती थी। उसको सन्देह हुआ कि ऐसे गुरु के शिष्य होकर चोलराज भावुकता का आदर कैसे करेंगे? फिर भी पुगषेन्दि ने राजकुमारी को सलाह दी कि विवाह के लिए सम्मति दे दे। राजकुमारी ने गुरु की सलाह मान ली।

विवाह के बाद पुगषेन्दि भी नव-दम्पति के साथ चोल-राजधानी पहुँचे। वहाँ इन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं भक्ति-भावना से सबको प्रभावित किया। इससे ओट्टक्कूत्तर को बड़ी ईर्ष्या हुई। जब कुछ दिनों के लिए चोलराज राज्य का भार कवि के हाथों में सौंपकर सपत्नीक उल्लास-यात्रा पर गये, तब ओट्टक्कूत्तर ने पुगषेन्दि को कैद कर लिया और उन्हें पेटभर भोजन भी नहीं दिया। संयोग से वह कैदखाना उसी रास्ते पर था जिससे होकर महिलाएँ पीने का पानी भरने जाया करती थीं। पुगषेन्दि को जेल में देखकर महिलाओं को आश्चर्य और दुःख हुआ। वे खिड़की के द्वार से उन्हें मिष्टान्न-पकवान आदि लाकर देने लगीं। पुगषेन्दि उनसे लेखनी और ताड़-पत्र मँगवाकर सरल भाषा में कविताएँ लिखकर दिया करते थे। 'अल्लि अरसाणि मालै', 'पवषक्कोडि मालै' आदि खण्डकाव्य ऐसी ही स्थिति में लिख गये थे। ओट्टक्कूत्तर ने सोचा कि कवि पुगषेन्दि दुबले-पतले होकर अत्यन्त दुःखी अवस्था में पड़े रहते होंगे। एक दिन जेल में जाकर देखा तो उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और सानन्द पाया। उनके विस्मय का कारण जानकर पुगषेन्दि ने बताया—"क्या गोपियों के रहते कृष्ण भूखे रह सकते हैं?" विवरण जानकर ओट्टक्कूत्तर लज्जित हुए और उनकी लिखी कविताएँ देखकर चकित भी हुए। फिर भी उन्होंने राजा के कान भरकर कवि का बन्दी बनाया जाना उचित ठहरा दिया। अपने गुरु की यह अवस्था जानकर रानी अत्यन्त दुःखी हुई। राजा का मन बदलना उसके लिए सम्भव नहीं था। राजा ओट्टक्कूत्तर के वश में थे।

एक दिन रात के समय एक जुलूस के साथ राजा उसी जेल की ओर आ रहे थे। सेवक उनके सिर के ऊपर छत्र की छाया किये हुए साथ चल रहे थे।

राजा ने ओट्टक्कूत्तर से पूछा—"रात के समय यह छत्र क्यों ?" ओट्टक्कूत्तर को कोई जवाब न सूझा। वे चुप रहे। राजा का सवाल जेल के अन्दर पुगषेन्दि के कानों में पड़ा। उन्होंने वहीं से एक कविता सुनायी, जिसका भाव था कि "आकाश में स्थित सती अरुन्धती तुम्हारा सौन्दर्य देखकर मोहित न हो जायें, इस विचार से तुम्हारे सौन्दर्य पर परदा डालने के लिए छत्र-धारण की क्रिया हो रही है।" राजा ने तुरन्त घूमकर देखा तो पुगषेन्दि खिड़की से झाँकते हुए मुस्करा रहे थे। राजा ने इसी क्षण उन्हें जेल से छुड़ाया और जुलूस में अपने साथ बैठा लिया। चोल राजा ने दोनों कवियों में मित्रता लाने के बहुत प्रयास किये, किन्तु सब व्यर्थ हुए। अन्त में पुगषेन्दि राजा और अपनी भूतपूर्व शिष्या रानी से बिदा लेकर मदुरै के लिए रवाना हुए।

उरैयूर से मदुरै जाने के मार्ग में मक्कुवनाडु नामक एक स्थान है जो चन्द्रन् स्वर्गी नामक एक उपनरेश के शासन में था। उसने कवि पुगषेन्दि का स्वागत करके अपने दरबार में ठहरा लिया और एक दिन निवेदन किया कि नळ महाराज पर खण्डकाव्य की रचना करें। पुगषेन्दि ने वहीं पर कुछ ही दिनों में काव्य-रचना करके राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा कविताएँ पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके उद्घाटनोत्सव का प्रबन्ध किया। कवि पुगषेन्दि का यश चारों ओर फैलने लगा। पाण्डियराज ने मदुरै में कवि को सम्मानित किया। उनकी पत्नी चोलराजकुमारी ने अपने गुरु को पुनः निमन्त्रित करवाया। चोलराज की बात मानकर पुगषेन्दि ने दरबार में 'नळ वेण्पा' का गान करके स्वयं व्याख्या भी की। उसका श्रवण करनेवालों में कवि ओट्टक्कूत्तर भी थे। बीच-बीच में उन्होंने शंकाएँ व्यक्त कीं। पुगषेन्दि ने सबका समाधान किया।

कवि ओट्टक्कूत्तर घर पहुँचे तब उनका मन ग्लानि से पिघल रहा था। पुगषेन्दि की विद्वत्ता और विनम्रता तथा अपने क्रूर व्यवहार की तुलना करके वे पछताने लगे। उनकी पत्नी ने उन्हें फल और दूध लाकर दिया तो बोले—"पुगषेन्दि की 'नळ वेण्पा' के अमृत का पान करते ही मेरी भूख मिट गयी। उस अमृत के स्वाद के सामने इस दूध और फल का स्वाद क्या वस्तु है ?" कवि-पत्नी ने यह बात रानी के कानों तक पहुँचा दी। रानी तो इस बात पर दुःखी थी कि ओट्टक्कूत्तर क्यों पुगषेन्दि का सम्मान सह नहीं पाते ? कवि-पत्नी की बात सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और तुरंत पुगषेन्दि के पास समाचार पहुँचाया। पुगषेन्दि कूत्तर का पूर्व व्यवहार विस्मृत कर उनसे मिलने गये। दोनों कवि परस्पर स्नेहाश्रु से सिक्त हो गये। उसके वाद दोनों परम मित्र हो गये, जिससे राजा और रानी को बड़ा आनन्द हुआ।

कुछ दिन बाद पुगषेन्दि फिर पाण्डिय देश आ पहुँचे। वहाँ पर 'इरत्तिनच् चुरुक्कम्' (रत्न-संक्षेप) शीर्षक से कविताएँ रचीं। उनकी सभी रचनाओं में स्त्रियों की बहुत प्रशंसा की गयी है। किन्तु उनके शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा गुणों का ही अधिक गान किया गया है। वे मदुरै 'कूडल्-अषगर' (मदुरै के एक विष्णु-मन्दिर की देवमूर्ति का नाम) के गायक थे। वे अपने जन्मस्थान कळत्तूर को लौटे ही नहीं। मदुरै के पाण्डिय राजा के आश्रय में ही उन्होंने अन्तिम साँस ली।

यहाँ उनके 'नळ वेण्पा' से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं :

(१)

मुंदै मरै नूल् मुडि येनलाम् तण् करुकूर्च्
चेन्तमिष वेदच् सिरमेनलाम्-नन्दुम्
पुषैक्कैक्कुम् नेयप् पोदुवर् मगळिक्कुम्
अषैक्कैक्कु मुन् चेल् अडि।

'महाविष्णु के श्रीचरण चारों वेदों के मुकुट हैं। वे कुरुकूर में अवतरित नम्मालवार के गीतों के लिए भी मुकुट हैं। मगर के मुँह में फँसे गजेन्द्र ने विपन्नावस्था में 'हे आदिमूल !' कहकर पुकारा तब भगवान् के वे श्रीचरण ही उसकी रक्षा के लिए चल

पड़े। जब ग्वाल-बालिकाएँ हे कृष्णा (कण्णा) कहकर पुकारती थीं तब भी वे श्रीचरण ही आगे बढ़कर आते थे।'

(२)

मूलप् पषमरैक्कु मुन्नेयुम् काणलाम्
कालिक्कुप् पिन्नेयुम् काणलाम्-माल् यानै
मुन्दरुळुम् वेदमुदले एन वबैप्प
वन्दरुळुम् चन्तामरै।

'जब गजेन्द्र नामक हाथी ने 'हे वेदों के आदि-मूल !' कहकर पुकारा तो लाल-कमल-चरणवाले भगवान् उसके आगे दौड़ पड़े। वे ही भगवान् गायों के पीछे-पीछे भी चले। इस तरह उनको आगे भी देख सकते हैं और पीछे भी। ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ उनकी कृपा न पहुँचे। वे लाल-कमल-चरण सर्व-व्यापी हैं और सर्वत्र चलते हैं। उन श्रीचरणों में हम नमस्कार करें।'

ह० दु० स्वा०

पेयालवार

पेयालवार का जन्म सातवीं शताब्दी ई० में मद्रास महानगर की पुण्यभूमि मैलापुर के श्री आदिकेशव पेरुमाल मन्दिर में सिद्धार्थी वर्ष, आश्विन महीने की दशम तिथि तथा सदय नक्षत्रयुक्त गुरुवार को सरोवर के पुष्पों के बीच में हुआ था। यह एक विचित्र संयोग था कि पोय्गै आलवार, भूतत्तालवार तथा पेयालवार तीनों ने एक ही वर्ष के एक ही महीने की अष्टमी, नवमी और दशमी को क्रम से जन्म लिया था।

पेयालवार अनन्य विष्णु-भक्त थे। ये विष्णु के कृष्णरूप का ध्यान करते हुए कहा करते थे—"हे मेरे नेत्रो, उस मालाधारी कृष्ण के ही सदा दर्शन करते रहो जिसकी माला के पुष्पों पर मँडराते हुए भ्रमर मधुपान करते हैं, जिसकी प्रेमिका राधा है, जिसके चरण-कमलों पर श्रीदेवी, भूदेवी आदि विराजती हैं और जिसके कृष्ण, गोविन्द, नारायण आदि अनेक पवित्र नाम हैं। हे मेरे मुख, तुम सदा-सर्वदा उस महाविष्णु की ही स्तुति किया करो जिनके चरणों की शरण में पहुँचकर मानव अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं।"

श्री पेयालवार महाविष्णु के साथ राधारूपी महालक्ष्मी का भी गुणः गान करते थे और धेनुमण्डल के बीच गोप-गोपिकाओं को मोहित करनेवाले राधा-कृष्ण के ध्यान में लीन रहते थे। प्रभु-चिन्तन में मग्न रहकर ये प्रायः आत्मविस्मृत हो जाते थे। इसलिए लोग इन्हें पेयालवार कहते थे।

उपर्युक्त तीनों आलवारों से सम्बद्ध एक विचित्र घटना प्रसिद्ध है। पोय्गै आलवार, भूतत्तालवार तथा पेयालवार तीनों विष्णु-स्थलों के दर्शन हेतु तीर्थ-यात्रा पर निकले। भगवान् की इच्छा हुई कि इन तीनों के द्वारा श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना करवाकर लोगों का अज्ञान दूर करके उनके मन में विश्वास और सद्भाव जाग्रत किया जाय। अतः तीनों को एक ही दिन में तिरुक्कोविलूर जाने के लिए प्रेरित किया। तिरुक्कोविलूर दक्षिण आर्काट जिले में, तिरुवण्णामलै और विषुप्पुरम् के मध्य में स्थित एक पुण्यस्थल है। वहाँ के मन्दिर में भगवान् का त्रिविक्रम रूप दर्शित होता है। तीनों भक्त अलग-अलग जाकर त्रिविक्रम स्वामी के दर्शन करके प्रफुल्लित हुए। रात हुई तो पहले पोय्गै आलवार एक वैष्णव के घर में जाकर लेट गये। थोड़ी देर के बाद भूतत्तालवार भी वहाँ गये और पूछा—"स्वामी, मुझे भी थोड़ी जगह दे सकेंगे ?" पोय्गै आलवार बोले—"यहाँ एक ही व्यक्ति लेट सकता है, लेकिन दो बैठ सकते हैं। इसलिए आप आइये।" दोनों बैठे रहे। इतने में पेयालवार भी वहाँ पहुँच गये तो पोय्गै आलवार ने कहा—"स्वामी, यहाँ एक व्यक्ति लेट सकता है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े रह सकते हैं। आइये, हम तीनों खड़े रहें।" तीनों ने परस्पर परिचय कर लिया और भगवान् की स्तुति में लग गये। इतने में तीनों ने अनुभव किया कि उनके बीच में एक चौथा व्यक्ति घुसकर आ गया है। तुरंत ही तीनों ने देखा कि शंख-चक्र-गदायुक्त सर्वव्यापी द्वारकानाथ प्रसन्न-वदन एवं गरुड़ारूढ़ होकर अपने वक्षःस्थल में लक्ष्मी और राधासहित उन्हें दर्शन दे रहे हैं। इस अद्भुत

एवं परमानन्दमय दृश्य को देखते ही तीनों ने स्तुति आरम्भ कर दी। हर एक ने एक सौ गीत गाये। इस अवसर पर की गयी उनकी रचनाओं का संग्रह 'त्रिशती अन्दादि' नाम से प्रसिद्ध हो गया है। उसमें से यहाँ पेयालवार के दो पद उद्धृत हैं—

(१)

तिरुक्कण्डेन, पोनमेनि कण्डेन-तिगषुम
अरुक्कण अरुक्कण अणि निरमुम्
कण्डेन-चेरुक्किळरुम्
पोनअषि कण्डेन, पुरिशंखुम् कैक् कण्ड़ेन,
एन आषि वण्णन पाल इन्ड्रु ।

'श्री लक्ष्मी को देखा, स्वर्ण शरीरवाली (राधा) को देखा, शोभायुक्त क्षीरसागरशायी को देखा, आनन्ददायक शंख, चक्र, गदायुक्त भुजाएँ देखीं, आज मैंने अपने नीलमेघश्याम को देखा।'

(२)

मनत्तुळ्ळान्, माकडल नीर् उळ्ळान्-मलराळ
तनत्तुळ्ळान्, तण् तुषाय् मारबन-शिनत्तुच्
शेरुनर् उगच् चेन्ड्रु गन्द तेंगोद वण्णन्
वरु नरकम् तीक्कुम् मरुन्दु !

'मेरा कृष्ण मेरे मन में है, महासागर के जल में है, पुष्पासनस्थ लक्ष्मी को अपने हृदय-कमल में धारण किये हुए कृष्ण अपनी प्रेमिका के स्तनों में है। गर्जन करते हुए, उष्णता को मिटानेवाले नीलमेघ की भाँति वह क्रोधी शत्रुओं का दमन करनेवाला, सागर-रंग का मेरा कृष्ण मेरी नरकाग्नि को मिटानेवाली एकमात्र ओषधि है।'

ह० दु० स्वा०

पेरिय कुषन्दै स्वामी

मरुदानल्लूर गुरु-परम्परा में पच्चै कोदण्डराम-स्वामी के बाद श्री वेंकटरामस्वामी पीठासीन हुए। इन्हींका दूसरा नाम है—पेरिय कुषन्दै स्वामी, जो अधिक प्रसिद्ध है। भागवत-प्रवचन में इनकी अपूर्व प्रसिद्धि रही है। एक बार ये सारी रात भजन के आनन्द में जागते रह गये और एकदम प्रातःकाल दरवाजे के सामने के मंच पर सो गये। इनके मामा श्री कृष्णशास्त्री ने इसे दैनिक क्रियाओं में अपचार माना और क्रुद्ध होकर बड़बड़ाने लगे। एक वृद्धा, जिसके घर में ये रहते थे, एक दिन प्रातः आठ बजे प्रवचन सुनने जाने लगी तो श्री कृष्णशास्त्री बोले कि अभी तो सोकर भी न उठा होगा, प्रवचन क्या करेगा? किन्तु बाद में पता चला कि पेरिय कुषन्दै स्वामी प्रातः से ही प्रवचन करने में मग्न हैं और हजारों श्रोताओं की आँखों से आनन्दाश्रु निकल रहे हैं। 'श्रीरामुल दिव्यनाम स्मरणमु सेयसुन्न जालु' टेकवाला रामदास कीर्तन सुनकर लोग मुग्ध-से हो गये। प्रवचन दोपहर बारह बजे शुरू होकर लगातार पाँच बजे के बाद भी चल रहा था। लोगों को भूख-प्यास का ध्यान नहीं रहा।

इनका अलौकिक ज्ञान, उदात्त प्रवचन-शैली, भक्ति-रससिक्त पद-गायन, तेजोदीप्त मुख-मण्डल देखकर कृष्णशास्त्री गद्गद हो गये। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। वे इनके चरणों में साष्टांग नमस्कार करके उठे और बोले—"बेटे, तुम तीनों लोकों के सद्गुरु स्वामी हो, तुम्हारी महिमा न जानकर मैंने अपचार कर दिया, मुझे क्षमा कर दो। आज से तुम मेरे लिए भी सद्गुरु हो।" ऐसे महान् सद्गुरुजन के लोकान्तरण के अनन्तर उनके स्थान पर गुरु कल्याणरामस्वामी नियुक्त हुए। आजकल वे ही गुरु हैं। कांची कामकोटि पीठाधीश श्री जयेन्द्र-सरस्वती स्वामी ने अपने पास ही आसन लगाकर इन्हें बैठा लिया और भक्तों से बोले—"आप मरुदानल्लूर रामकोटि पीठाधीश हैं। मेरे समान ही इनका आदर-सम्मान होना चाहिए।" ऐसा कहकर स्वर्ण, वस्त्र तथा माला अर्पित कर इनका सत्कार किया। पेरिय कुषन्दै स्वामी को परम्परा का निर्वाह गुरु कल्याणरामस्वामी सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

ह० दु० स्वा०

पेरिय वाच्चान् पिळ्ळै

पेरिय वाच्चान् पिळ्ळै का जन्म पन्द्रहवीं शती ई० में श्री यामुनाचार्य के पुत्र के रूप में श्रावण महीने के रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। ये नम्पिळ्ळै के शिष्य थे। उनकी वैकुण्ठ-प्राप्ति के अनन्तर ये भागवत-धर्म के प्रचार में दत्तचित्त हो गये। एक बार दो शिष्यों में परस्पर विरोध का भाव जगा तो एक ने दूसरे पर दोष लगाते हुए पेरिय वाच्चान् के पास आकर शिकायत की। आसपास के लोगों ने पूछा कि क्या वैष्णव-धर्म-प्रचारक में दोष देखना उचित है? पेरिय वाच्चान् ने अभियोगी को समझाया कि यमराज भी अपने दूतों को आज्ञा देते हैं 'परिहर मधुसूदन प्रपन्नात्।' अतएव भागवत प्रचारक के दोष न देखें।

एक बार जब भागवत-कथा हो रही थी तब किसीने बीच में भगवान् की कथा आरम्भ कर दी। तुरन्त आच्चान् पिळ्ळै ने उन्हें रोककर कहा—"भागवत-कथा विशेष है और भगवान् की कथा सामान्य है, अतएव भागवत-कथा में बाधा डालकर भगवान् की कथा सुनाना ठीक नहीं है।"

आच्चान् पिळ्ळै के शिष्यों में एक वादिकेसरी गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे। एक बार जब कुछ विद्वान् शास्त्रार्थ में लगे थे, तब वादिकेसरी ने पूछा कि आप लोग किस ग्रन्थ पर तर्क कर रहे हैं? विद्वानों ने उनकी हँसी उड़ाने के लिए कहा—" 'मुसल किसलय' पर।" बेचारे वादिकेसरी ने आच्चान् पिळ्ळै के पास आकर पूछा कि क्या उस नाम की कोई पुस्तक है? गुरु ने समझाया कि तुम्हें निरक्षर मानकर उन लोगों ने तुम्हारा परिहास किया है। यह सुनकर वादिकेसरी अत्यन्त दुःखी हुए और गुरु के चरणों में साष्टांग नमस्कार करके प्रार्थना की कि इस दास को विद्वान् बनाने का अनुग्रह करें। उन पर कृपा करते हुए आच्चान् पिळ्ळै ने उन्हें शिक्षा देना आरम्भ किया और कुछ ही दिनों में विद्वान् बना दिया। वादिकेसरी ने 'मुसल किसलय' शीर्षक पर स्वयं एक ग्रन्थ रचकर उन्हीं दम्भी विद्वानों को समर्पित किया। तब उन विद्वानों के सिर लज्जा और ग्लानि से झुक गये।

पेरिय वाच्चान् पिळ्ळै के समकालीन विद्वान् थे—तूप्पिल् पिळ्ळै। आच्चान् पिळ्ळै के एक शिष्य पिळ्ळै लोकाचार्य ने पूर्वाचार्यों के वचनों को संगृहीत करके 'श्रीवचनभूषण' शीर्षक पुस्तक तैयार की। तूप्पिल् पिळ्ळै शास्त्र-विरुद्ध कहकर उस पर टिप्पणी किया करते थे। आच्चान् पिळ्ळै ने उन्हें समझाया कि महान् धार्मिकों के अनुष्ठान, उपदेश आदि के आधार पर देखने से भी पुस्तक शास्त्रसम्मत है। अतः उसकी निन्दा करना पूर्वजों की निन्दा के समान पापकर्म है। परन्तु तूप्पिल् पिळ्ळै ने न माना। आखिर दोनों ने निश्चय किया कि जब श्रीकृष्ण की उत्सव-मूर्ति चारों वीथियों में लायी जायगी तब एक-एक वीथी में पुस्तक से एक-एक प्रकरण सुनाया जाय और देखा जाय कि भगवान् की प्रतिक्रिया क्या होती है। प्रतिक्रिया जानने के लिए मूर्ति को मालाएँ पहनायी गयीं। यह निश्चय हुआ कि भगवान् की स्वीकृति होगी तो माला खिसककर पालकी पर गिरेगी। चारों वीथियों में चार प्रकरण सुनाये गये और एक-एक प्रकरण की समाप्ति पर माला खिसककर गिरती रही। भगवान् के इस सौलभ्य और स्वीकृति पर लोग विस्मय-विमुग्ध हो गये। तूप्पिल् पिळ्ळै को अपनी पराजय मानकर श्रीरंगम् से बाहर जाना पड़ा।

उसी रात तूप्पिल् ने स्वप्न देखा—"श्रीरंगम्-मन्दिर के बाहर से भगवान् की मूर्ति अन्दर जा रही है। कई भक्तगण पीछे-पीछे जा रहे हैं। सब अन्दर चले गये, लेकिन स्वयं तूप्पिल् पिळ्ळै नहीं जा पाये। दरवानों ने उन्हें रोक दिया। तूप्पिल् यह स्वप्न देखकर अत्यन्त विगलित हो गये और आच्चान् पिळ्ळै के समक्ष जाकर अश्रु-धारा बहाते हुए अपना स्वप्न कह सुनाया। आच्चान् ने उन्हें शान्त करके कहा—"तुम प्रबन्धों की विपरीत व्याख्या करके पूर्वजों की निन्दा कर रहे थे, अतएव भगवान् ने अपना असन्तोष स्वप्न

द्वारा व्यक्त किया है। भगवान् क्षमाशील हैं, तुम अपनी करनी पर पश्चात्ताप करते हुए मन्दिर की प्रदक्षिणा करते रहोगे तो तुम्हारा दुःख दूर होगा।" तूप्पिल् ने पश्चात्ताप प्रकट किया और नियम से मन्दिर की प्रदक्षिणा करते रहे। पराजय की शर्तं के कारण वे अन्दर नहीं जाते थे। कुछ ही दिन बाद भक्तगणों को स्वप्न हुआ कि तूप्पिल् को मन्दिर में प्रवेश दें।

पेरिय वाच्चान् पिळ्ळै ने भगवान् की क्षमाशीलता पर प्रसन्न होकर तूप्पिल् का पंचसंस्कार करवाया। तूप्पिल् ने 'क्षमाषोड़सी' की रचना करके आच्चान् को सर्मपित की। आच्चान् पिळ्ळै का पार्थिव शरीर छूट गया, परन्तु उन्हें भगवान् कृष्ण का प्रतिरूप मानने की भावना स्थायी रह गयी।

पेरिय वाच्चान् पिळ्ळै की कृतियों से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

(१)

नाट्टैग्येल्लाम् एषुप्पुगिर आदित्यन् उदित्ताल् एंगळ् आदित्यन् उदिक्क वेण्डावो ? तुडिपिडैयारित्यादि तोषियुम् नानुम् एषुन्दोम् ! कोवलनाय् वेण्णैयुण्ड वायिनिरे पळ्ळिकोळ्ळुगिरवन्, तोडैयोत्त तुळभमुम् तिरुक्कुषलुम् एन्दि दरिशनम् तर, अरंगत्तु-अम्मा पळ्ळियेषुन्दरुळायो ?

'सारे विश्व को जगानेवाला आदित्य जाग गया तो क्या हमारे आदित्य को नहीं जागना है ? कृशकटि बालिकाएँ, मैं और मेरी सखियाँ रात में मक्खन खाते-खाते सो गये गोपाल को देखने आयी हैं। श्रीरंग में विराजनेवाले प्यारे, तुम घुटने तक लटकती हुई माला पहनकर, मुरली सहित आकर हमें दर्शन देने के लिए अभी तक क्यों नहीं जागे ?'

(२)

मंगळ गीतंगळ् पाडुगैक्कु तुम्बुरु नारदर्गळुम् वन्दु निन्ड्रार्गळ्। मिक्क तेजसैयुडैय आदित्यनुम् तन् तेजसैप् परप्पिक् कोण्डु वन्दु तोन्ड्रिनान्। आकाशत्तिनिन्ड्रुम् इरुळ् पोयिट्रू। बाहचमान अन्धकारमिरे अवनाल् पोक्कलावदु, सर्वरक्षकरान देवरीर् अरंगत्तम्मा, आन्तरमान अन्धकारत्तैप् पोक्क तिरुप्पळ्ळियुणर्न्दरुळ वेणु मेन्गिरार्।

'मंगल गीतों का गान करने के लिए नारदादि देवर्षिगण आकर खड़े हैं। अत्यधिक तेजोमय सूर्यदेव अपना प्रकाश फैलाते हुए आ गये हैं। आकाश से अन्धकार दूर हो गया। इससे बाह्य अन्धकार ही छूटा है। श्रीरंगम् में शयन करनेवाले कृष्ण, हमारा आन्तरिक अन्धकार दूर करने के लिए तुम्हें जागकर आना चाहिए।'

ह० दु० स्वा०

पेरियालवार (विष्णुचित्त)

पाण्डिय देश में पुत्तूर नामक एक नगर है। उसका एक भाग पहले घना जंगल था। वहाँ जंगली जानवरों की भरमार थी। इसलिए शिकारियों के लिए वह उपयुक्त स्थान था। उन शिकारियों के नेता की मल्लि नाम की सती-साध्वी स्त्री थी। उसके दो पुत्र हुए—विल्लि और कंठन्। वयस्क होने पर एक दिन दोनों भाई शिकार करने गये। मार्ग में एक बाघ को देखकर छोटे भाई कंठन् ने उसका पीछा किया। वह एक झाड़ी में जाकर छिप गया। जब कंठन् उसके पास पहुँचा तब बाघ ने एकाएक झपटकर उसे मार डाला। छोटे भाई की खोज में इधर-उधर भटकता हुआ जब विल्लि उस झाड़ी के पास आया तब उसका मृत शरीर देखकर मूर्च्छित हो वहीं गिर पड़ा।

उस मूर्च्छावस्था में ही भगवान् ने विल्लि को स्वप्न में आश्वस्त करते हुए कहा—"चिन्ता मत करो। हम तुम्हारा दुःख निवारण करेंगे। हम यहीं एक वट-वृक्ष के नीचे शेषशयन होकर विराजते हैं। तुम वहाँ पर मन्दिर के निर्माण का प्रबन्ध करो तथा पुत्तूर के निवासियों को भी यहाँ बसाकर इसे एक पुण्यस्थल बनाओ।" स्वप्नावस्था में विल्लि ने भगवान् के चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की—"हे अच्युत,

हे अनन्त, हे गोविन्द, हे यादवकुलश्रेष्ठ, मैं अपने अनुज के वियोग से व्याकुल हूँ। इस स्थिति में मैं आपकी सेवा कैसे करूँ? मन्दिर-निर्माण के लिए तो मेरे पास धन भी नहीं है। उसके लिए आवश्यक धन दें तो आपके लिए श्रीमन्दिर का निर्माण करके आपके आदेशों का पालन करूँगा।"

भगवान् ने कहा—"तथास्तु। तुम्हारे भाई को जीवित करेंगे। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक गुफा है। वहाँ तुम दोनों जाकर देखो। वहाँ वह बाघ मरा पड़ा है। उस गुफा में तुम्हें आवश्यक धन भी मिलेगा। उसे लेकर मन्दिर-निर्माण का पुण्य कार्य करो।"

स्वप्न टूटते ही विल्लि ने देखा, सामने ही उसका भाई उठकर बैठा हुआ है। स्वप्न को साकार होते देख वह पुलकित हुआ। फिर भाई को वट-वृक्ष के पास ले गया तो वहाँ भगवान् शेषशायी के रूप में विद्यमान थे। दोनों भगवान् की असीम कृपा से अभिभूत हो गये। दोनों ने परिश्रमपूर्वक एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया तथा पुत्तूर के लोगों को वहाँ लाकर बसाया। विल्लि के द्वारा इस नये नगर का निर्माण होने से तथा पुत्तूर के निवासियों के बसाये जाने से इसका नाम श्रीविल्लिपुत्तूर पड़ा। उनकी माता के नाम से वह मल्लिनाडु भी कहा जाता है।

उसी श्रीविल्लिपुत्तूर में मुकुन्द भट्ट नामक एक ब्राह्मण थे जो शिक्षा और भक्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनकी धर्मपत्नी थीं—पद्मवल्लि। उस दम्पति की सन्तान के रूप में क्रोधन वर्ष, जेठ मास, शुक्ल एकादशी, स्वाती नक्षत्र के दिन आठवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में श्री विष्णुचित्त का जन्म हुआ। छोटी उम्र में ही ये सभी ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। किन्तु इनका मन पुस्तकों की अपेक्षा भजन-चिन्तन में अधिक लगता था। भगवान् की लीलाओं की कल्पना में ही इनका मन रमा रहता था। इसलिए क्रमबद्ध वेदाध्ययन तथा कला-ज्ञान की उपेक्षा करके, ये अहर्निश भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उनकी सेवा-विधियों का चिन्तन किया करते थे। पौराणिक कथाओं से उन्हें ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण माला गूँथकर पहनाने से बहुत प्रसन्न होते हैं। अतः उन्होंने अपने पूर्वजों के संचित धन का एक भाग खर्च करके भूमि खरीदी और उसमें एक सुन्दर फुलवारी लगायी। वहाँ सर-सरोवरों का निर्माण किया तथा विविध प्रकार के सुन्दर पुष्पों, लताओं और तुलसी-वृक्ष लगाये। अपनी इस पुष्पवाटिका से प्रतिदिन पुष्प चयन करके माला गूँथकर भगवान् को पहनाने में विष्णुचित्त आनन्द का अनुभव करते रहे।

उस समय पाण्डिय देश का राजा वल्लभदेव विद्वान् और गुणग्राही था। वह अपनी प्रजा का कष्ट जानने के लिए प्रायः छद्मवेष में घूमा करता था। एक रात उसने देखा कि किसी घर के बाहर के बरामदे में कोई सोया हुआ था। राजा ने उसे जगाकर पता लगाया तो वह बोला—"मैं उत्तर भारत जाकर विश्वनायक भगवान् त्रिविक्रम के चरणों से निकलनेवाली 'नूपुर-गंगा' में स्नान करके दक्षिण के सेतु-स्थान के लिए लौट आया हूँ। इस नगर में पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी। यहीं पर रात बिताने के उद्देश्य से इस बरामदे में ठहरा हूँ। यह नगर तो पाण्डिय राजा का है। उनके शासन में किसी-की कोई हानि नहीं होगी, ऐसा सोचकर यहाँ बाहर ही लेट गया।" उस पथिक को एक विद्वान् ब्राह्मण जानकर छद्मवेषधारी राजा ने कहा—"ब्राह्मण देवता! ऐसा कोई श्लोक सुनाइये जो सबको सामान्य रूप से उपयोगी हो।" ब्राह्मण ने एक श्लोक सुनाया जिसका अर्थ है—"वर्षाऋतु के चार मास की आवश्यकताओं को बाकी आठ महीनों में, रात की आवश्यकताओं को दिन में और बुढ़ापे की आवश्यकताओं को यौवन में ही संचित करके रख लेना चाहिए। ऐसे ही परलोक के लिए आवश्यक सत्य तत्त्वों को इहलोक में ही खोजकर संचय करके रख लेना चाहिए।" पाण्डिय राजा केवल तमिल के ही नहीं, संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्राह्मण

को अपना परिचय दिया और महल में ले जाकर सम्मानित करके बिदा दी।

ब्राह्मण को बिदा करने के बाद राजा सोचने लगा—'मेरा सारा जीवन राज्य-संचालन, युद्ध तथा स्त्रियों के सम्पर्क-सुख में ही व्यतीत होता रहा है। ये तो मृत्यु के बाद मेरे साथ जानेवाले नहीं हैं। भगवान् की प्राप्ति का सुख ही नित्य है। इसलिए आगे मुझे परम तत्त्व के ध्यान में ही लगना चाहिए। लेकिन परम तत्त्व के सम्बन्ध में कई प्रकार के विचार और सिद्धान्त हैं। उनमें से कौन सिद्धान्त उचित है, इसे पहले जान लेना चाहिए।' ऐसा सोचकर उसने राजगुरु को निमन्त्रित करके उनके सामने अपना विचार रखा। गुरु स्वयं परम विद्वान् थे तो भी उन्होंने सुझाया कि वेदविदों एवं तत्त्वज्ञानियों को निमन्त्रित करके वेदों का रहस्य जानकर परमात्मा के स्वरूप का निर्णय करना उचित होगा। उनकी बात मानकर राजा ने अपने सिंहासन के सामने एक खंभ लगाकर उसमें स्वर्ण-मुद्राओं से भरा एक पात्र बँधवा दिया और घोषणा की कि "यहाँ वेदों के तत्त्वचिन्तन पर तर्क-वितर्क तथा चर्चाएँ होंगी। जो तत्त्व का उद्घाटन करके इस स्वर्ण-पात्र को अपने-आप झुका देगा, वही इस स्वर्ण-कलश एवं मुद्राओं का अधिकारी होगा।" इस घोषणा से आकृष्ट होकर कितने ही साधु, सन्त, विद्वान् एवं धार्मिक तत्त्ववेत्ता वहाँ आये और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार तत्त्व की व्याख्या की, परन्तु स्वर्ण-कलश का खंभ नहीं झुका।

भगवान् ने विष्णुचित्त के द्वारा तत्त्व-दर्शन कराने का निश्चय किया। उन्होंने स्वप्न में आकर उनसे कहा—"भक्तवर, तुम कल पाण्डिय राजा की सभा में जाकर वेदान्त की व्याख्या करके सुनाओ और उस स्वर्ण-कलश को ले आओ।" इस आदेश से चिन्तित होकर विष्णुचित्त बोले—"हे परमधाम! मायावी कृष्ण! मैं तो अल्पज्ञ हूँ। मैंने किसी गुरु से क्रमबद्ध शिक्षा प्राप्त नहीं की है। वेदज्ञ एवं तत्त्वचिन्तक विद्वानों की परीक्षा के लिए ही वह स्वर्ण-कलश लटका हुआ है। उसे मैं कैसे झुकाकर ला सकूँगा?" भगवान् ने आश्वासन दिया—"चिन्ता मत करो। तुम साधन-मात्र हो। उसके सूत्रधार मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता?" उसी रात भगवान् ने राजगुरु सेल्व नंबी को भी स्वप्न में बता दिया कि कल राजदरबार में विष्णुचित्त के द्वारा परम तत्त्व व्यक्त होगा।

भगवद्-आदेश से भयभीत विष्णुचित्त राजदरबार में पहुँचे। गुरु सेल्व नंबी के सुझाव से राजा ने उनका भव्य स्वागत किया और उनसे तत्त्व-दर्शन की व्याख्या करने की प्रार्थना की। उपस्थित विद्वानों ने परिहास किया कि इस अर्द्ध-शिक्षित पागल के द्वारा दर्शन की व्याख्या कैसे सम्भव है? लेकिन राजा का आदेश सुनते ही विष्णुचित्त का सारा भय छूट गया। उनके चित्त में तत्त्व-दर्शन की स्पष्ट सारगर्भित व्याख्या उद्भासित हुई और वे उसे धाराप्रवाह सुनाते गये। व्याख्या के समाप्त होते-होते कलश-खंभ विष्णुचित्त की ओर झुकता गया। विष्णुचित्त ने उसका बन्धन चीरकर उठा लिया। इससे सारी सभा चकित हो गयी और समस्त विद्वान् विष्णुचित्त का आदर करने लगे। राजा ने सुसज्जित हाथी पर उन्हें बैठाकर जुलूस निकाला और सारी जनता ने उनके चरणों का स्पर्श करके अपना अहोभाग्य माना। जुलूस में चलते हुए विष्णुचित्त ने देखा कि स्वयं भगवान् महालक्ष्मी-सहित आकर उनके सम्मानोत्सव में भाग ले रहे हैं। भगवान् के इस सौलभ्य से पुलकित होकर वे वत्सलभाव से विभोर हो गाने लगे। इस घटना के बाद विष्णुचित्त पेरियालवार (बड़े आलवार), भट्टरपिरान आदि नामों से विख्यात हो गये।

उन्होंने राजसम्मान से प्राप्त स्वर्ण-कलश को भगवान् को ही अर्पित कर दिया और पूर्ववत् पुष्प-माला पहनाकर कृष्ण-भक्ति के पद-गान में तल्लीन रहे। पुत्री रूप में आण्डाल के आविर्भाव से इनकी महिमा द्विगुणित हो गयी। इन्होंने चार सौ उनहत्तर (४६९) पद गाये हैं जो पेरियालवार तिरुमोलि (श्रीवचन) शीर्षक से संगृहीत हैं। उनमें से दो पद यहाँ उद्धृत हैं—

पेरियालवार श्रीकृष्ण को अपना वत्स मानकर यशोदा के वात्सल्य भाव से गाते हैं—

(१)

वैत्त नेय्युम् कायन्द पालुम्,
वड़ि तयिरुम्, नरु वेण्णेयुम्
इत्तनैयुम् पेट्रिलेन् एम्पिरान् !
नी पिरन्द पिन्नै
एत्तनैयुम् सेय्यप् पेट्राय;
एदुम् सेय्येन् कदम् पड़ादे
मुत्तनैय मुरुवल सेय्दु,
मूक्कुरिंजि मुलै उणाये।

'हे मेरे पुत्र, हे मेरे परमधाम, तुम्हारे जन्म के बाद मैंने अपने लिए कुछ भी नहीं किया। मैं अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए ही जीती हूँ। तपाया हुआ घी, खूब गरम किया हुआ दूध, पुष्ट दही, सुमधुर मक्खन, ये सब तुम्हारे जन्म के बाद मैंने पाये ही नहीं। तुम स्तन-पान किये बिना नाक सिकोड़कर चले जाते हो और मुस्कराते हुए इन्हींका स्वाद लेते हो।'

अन्यत्र गोपियों का उपालम्भ सुनकर ये वात्सल्य भाव से अपने को यशोदा की भूमिका में रखकर कहते हैं—

(२)

पोदर कण्डाय्; इंगे पोद कण्डाय्,
पोदरेन एन्नादे पोदर कण्डाय् !
एदेनुम् चोल्लि असल अहत्तार
एदेनुम् पेश नान् केट्कमाट्टेन्;
कोतूहलम् उडैय कुट्टनेयो !
कुन्ड्रु एडुत्ताय् ! कुड़म् आडु कूत्ता !
वेदप् पोरुळे ! एन् वेंकटवे !
वित्तगने इंगे पादराये !

'बेटा, यहाँ आ जा; मैं न आऊँगा, ऐसा मत बोल। यहाँ आ जा। दूसरी घरवालियों को अपने पर दोष लगाकर शिकायत करने न दे; ऐसी शिकायतें मैं सुन नहीं सकूँगी; मुझसे सही नहीं जायगी; सदा कौतूहल से खेलते रहनेवाले हे मेरे बेटे ! पहाड़ को छत्र बना देनेवाले, कलश-नर्तन करनेवाले, वेदों के तत्त्वदर्शक, मेरे प्रिय वेंकटेश्वर, तू समझदार है; तू मेरा सर्वस्व है; यहाँ आ जा।'

इ० दु० स्वा०

पेरुमाळ जीयर्

पेरुमाळ जीयर् का जन्म सन् १०६२ ई० में तिरुप्पति-तिरुमलै में हुआ था। पिता का नाम तिरुमलै नंबी था। इनका बाल्यकाल का नाम गुरु-केशर था। श्री रामानुज स्वामी की वैकुण्ठ-प्राप्ति के बहुत समय बाद तक ये जीवित रहे। वैष्णव-भक्तों में ये पिळ्ळान्, तिरु गुरुकैप्पिरान् आदि नामों से जाने जाते हैं।

बाल्यावस्था से ही पेरुमाळ जीयर् को 'दिव्य प्रबन्धम्' के प्रति विशेष रुचि हो गयी थी। जब पिता प्रबन्धम् का अध्ययन करते तब ये उसे ध्यान से सुना करते थे। पिता के द्वारा श्री रामानुज का गुण-गान सुनकर ये उनके दर्शन की तीव्र इच्छा रखने लगे। पुत्र की लालसा जानकर तिरुमलै नंबी ने एक शिष्य के साथ इन्हें आचार्य रामानुज के दर्शनार्थ भेजा। स्वामीजी ने इन्हें कुछ दिन अपने साथ रखना चाहा। एक दिन जब स्वामीजी कमरा बंद करके मनन कर रहे थे तब इन्होंने कुंजी-द्वार से झाँककर देखा। स्वामीजी की मुख-मुद्रा एवं भाव-भंगिमा देखकर पूछा कि क्या प्रबन्धम् में तिरुमालिरुंचोलै के पद्य का मनन कर रहे हैं ? स्वामीजी चकित रह गये। बाहर आकर इन्हें गले से लगा लिया और कहा कि वही तो कर रहा था। उस दिन से स्वामीजी ने इन्हें अपने ज्ञान-पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया और अपने पास ही सदा के लिए रख लिया।

श्री रामानुज तिरुप्पावै का मनन करते हुए भिक्षा प्राप्त करते थे। एक दिन पेरिय नंबी के महल पर गये तो उनकी पुत्री अत्तुषाय् ने आकर द्वार खोला। अत्तुषाय् के करों से कंगन की मधुर ध्वनि उठी।

उस समय स्वामीजी तिरुप्पावै के उस गीत का मनन कर रहे थे जिसका भाव था कि लाल कर-कमलों से कंगनों की मधुर ध्वनि करती हुई द्वार खोलो । आंडाळ श्री कृष्ण-दर्शन के लिए श्री राधा से प्रार्थना करती हुई गाती थीं कि वह आकर द्वार खोले और उसे अंदर आकर कृष्ण-दर्शन करने दे। जब अत्तुषाय् ने मधुर कंगन-ध्वनियुक्त करों से द्वार खोला तब श्री रामानुज ने भावातिरेक से समझा कि स्वयं राधा ही आकर द्वार खोल रही हैं। इसलिए वे हर्षविह्वल हो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनको मूर्च्छित देखकर सब चिन्तित हो गये। अत्तुषाय् भी दौड़कर अपने पिता के पास गई और उनसे आचार्य के मूर्च्छित होने की बात कही। पेरिय नंबी ने आकर पेरुमाळ जीयर् से पूछा कि क्या कल स्वामीजी ने भिक्षा नहीं की ? तब जीयर् ने स्वामीजी के मूर्च्छित हो जाने का वास्तविक कारण समझाया। स्वामीजी ने होश में आते ही वही कारण बताकर सबको आश्वस्त किया। इस घटना से सबको विदित हुआ कि पेरुमाळ जीयर् श्री रामानुज की मानसिक स्थिति के कितने निकट हैं।

भक्तों एवं शिष्यों ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि 'दिव्य प्रबन्धम्' की टीका एवं व्याख्या रचने की कृपा करें। स्वामीजी ने वह भार स्वयं न लेकर पेरुमाळ जीयर् को आदेश दिया कि वे ही यह कार्य सम्पन्न करें। पिळ्ळान् कहलानेवाले पेरुमाळ जीयर् ने आदेश मानकर छः हजार श्लोकों में प्रबन्धम् की व्याख्या की। उस व्याख्या को भक्तों के लिए अमुद (अमृतान्न) जैसी मधुर एवं विष्णुपुराण जैसा स्तरीय देखकर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और आदेश दिया कि मेरे श्रीभाष्य की तरह यह व्याख्या भी देव-सान्निध्य में सुनायी जाय। आचार्य ने उस व्याख्या का नाम रखा 'भगवद्-विषय'। यह 'आरायिरप्पडि' (छः सहस्र पद) नाम से भी प्रख्यात हुई। यही 'दिव्य प्रबन्धम्' की प्रथम व्याख्या है।

स्वामी रामानुज की वैकुण्ठ-प्राप्ति का समय आसन्न देखकर जब भक्तगण विचलित एवं भावी वियोग के विचार से शोकमग्न हुए तो उन्होंने यह कहकर आश्वासन दिया कि जब तक पिळ्ळान् (पेरुमाळ जीयर्) जीवित हैं तब तक आपको कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए। भगवत्-सेवाओं को निर्विघ्न चलाते रहने का सन्देश देते हुए जीयर् की गोद में ही सिर रखकर स्वामीजी ने वैकुण्ठ-धाम के लिए प्रस्थान किया। आरायिरप्पडि के अतिरिक्त जीयर् ने 'पिळ्ळान् रहस्यम्' शीर्षक तत्त्व-ग्रन्थ की भी रचना की।

यहाँ पेरुमाळ जीयर् की रचनाओं से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

(१)

याम् मड़ लून्दुम् एम् आषियंगैप् पिरानुडै
तूमड़ल् तण्णन् तुषाय्मलर् कोण्डु सूडुवोम् ।
याम् मड़ मिन्ड्रित् तेरुवु तोरु अयल् तैयलार्
नामडङ्ग् काप्पषि तूट्रि नाडुम् इरैक्कवे !

'भगवान् से मिलन के बाद एक देवी (राधा) बिछुड़कर व्याकुल हो गयी हैं। अपने सामने सारस पक्षी को भी चिन्तित मुद्रा में देखकर वह उसे दूत के रूप में भेजने का विचार करती हैं। तब उसकी सखियाँ उसे सारस की असमर्थता समझाकर कहती हैं कि हम सब उनके सान्निध्य में जायेंगी। लोक-लाज का विचार तजकर गली-गली में अपना परिहास करनेवाली अन्य महिलाओं की परवाह न करके हम पुष्पों का चयन करके ले जायेंगी और शंख-चक्रधारी के श्रीचरणों में अर्पित करके आत्मसमर्पण करेंगी। भगवान् के चरण-दर्शन एवं पूजन के सामने हँसी एवं लाज की परवाह न करेंगी।'

(२)

विट्टिलंगु चेंजोतित् तामरैप्पादम् कैगळ् कण्गळ्
विट्टिलंगु करुंचुडर् मलैये तिरुवुडम्बु
विट्टिलंगु मदियम् सीरसंगु चक्करम् परिदि
विट्टिलंगु मुडियम्मान् मधुसूदनन् तनक्के !

'मुझे वैष्णव बनाने के लिए भगवान् ने इतना सुन्दर रूप ग्रहण कर लिया और मेरे हृदय के अन्दर प्रवेश कर गये हैं। उनके कान्तियुक्त लाल कमल जैसे चरण, हाथ, आँखें, नील पर्वताकार श्रीदेह, उनके शंख-चक्र एवं ज्योति-परिधि सबका पूर्ण सौन्दर्य मुझमें प्रवेश कर गया है। मैं सम्पूर्ण रूप से उन मधुसूदन को समर्पित हूँ।'

ह० दु० स्वा०

पोयगै आलवार

तमिल प्रदेश का काञ्चीपुरम् पवित्रतम नगरों में एक है। वह दक्षिण काशी माना जाता है। 'नगरेषु काञ्ची' कहकर उसकी महिमा व्यक्त की जाती है। वह वैष्णव एवं शैव-मन्दिरों की भूमि है। उसके तीन भाग हैं-शिव काञ्ची, विष्णु काञ्ची और जैन काञ्ची। विष्णु काञ्ची में कई विष्णु-मन्दिर हैं। उनमें से श्रीदेवराज पेरुमाल और श्री यथोक्तकारी पेरुमाल दोनों ही अत्यन्त प्रसिद्ध स्थल हैं। पेरुमाल-मन्दिर में एक तड़ाग है, जिसमें कमल-पुष्पों की सुन्दरता और सुगन्ध देखने और अनुभव करने योग्य है। उस तड़ाग के मध्य, पुष्पों के बीच में से एक सुन्दर शिशु सिद्धार्थी वर्ष, आश्विन महीने की शुक्लाष्टमी एवं श्रवण-नक्षत्रयुक्त मंगलवार को उत्पन्न हुआ। तड़ाग अथवा सरोवर को तमिल में पोयगै कहते हैं। पोयगै में जन्म लेने के कारण वह शिशु आगे चलकर 'पोयगै आलवार' नाम से विख्यात हुआ। इनको भगवान् के पाञ्चजन्य शंख का अंश माना जाता है।

कुछ बड़े होने पर भगवान् श्री रंगनाथ की कृपा से ये श्रीरंगम् चले गये और वहाँ वेद-वेदांगों का अध्ययन किया। इसके बाद इन्होंने भगवान् विष्णु की सेवा में ही अपने को पूर्ण रूप से अर्पित कर दिया। ये प्रायः गाया करते थे—"मेरा मन सदा भगवान् के प्रेम का ध्यान करते हुए प्रसन्न रहना चाहता है। मेरी जीभ सदा उसके तुलसी-माला से शोभित वक्षःस्थल को, लाल कमल-नयनो कों, चक्रधारी कर को, वीरोचित चरण-कमलों को, मक्खन लिपे अधरों को गाते रहना चाहती है। मेरे नेत्र उस विश्वमापक वामन को, माया-विनोदी को, लक्ष्मीनाथ कृष्ण को देखते रहना चाहते हैं। मेरे कान तो उसके गुणगान को सुनने के लिए आतुर हैं।"

पोयगै आलवार ने श्रीकृष्ण की स्तुति में एक सौ गीत गाये हैं, जिनका संग्रह 'अन्दादि' नाम से प्रसिद्ध है। उस ग्रन्थ से दो पद्य नीचे उद्धृत हैं—

(१)

वैयम तगळिया, वार्कडले नेय्याग,
वेय्य कदिरोन विळक्कागच् चेय्य
चुड़राषियान अड़िक्के चूट्टिनेन् चोन्मालै
इड़राषि नींगुगवे एन्ड्रू !

'विश्व को दीपपात्र बनाकर, सागर जल भर को घी बनाकर, सूर्य को दीप-ज्योति बनाकर, ज्योति नेत्रवान् भगवान् की सेवा में रखकर शब्दमाला पहनायी जिससे हमारी भव-बाधाएँ मिट जायँ।'

(२)

वाय् अवनै अल्लदु वाषत्तादु-कै उलगम्
तायवनै अल्लदु ताम् तोषा-पेय् मुलै नंजु
उळणाग उण्डान उरुवोडु पेर अल्लाल,
काणा कण्, केळा सेवि !

'मेरा मुँह उसके सिवा और किसीका गान नहीं गायेगा। मेरे हाथ उस विश्वमापक के सिवा और किसीको नमस्कार नहीं करेंगे। मेरे कान उसीके नाम सुनेंगे जिसने पूतना के विष-भरे स्तनों का पान करते हुए उसके प्राण पी लिये। मेरी आँखें उस भगवान् कृष्ण के सिवा और किसीके दर्शन नहीं करेंगी।'

ह० दु० स्वा०

भूतत्तालवार

काञ्चीपुरम् से लगभग तीस मील की दूरी पर कड़नमल्लै नामक एक सुन्दर नगर है। उसे आजकल महाबलिपुरम् अथवा मामल्लपुरम् कहते हैं। वह

आजकल नवीन सुविधाओं से युक्त होकर एक मनोरम पर्यटन-स्थल के रूप में विकसित हुआ है। उसकी शिल्प-महिमा दर्शनीय है। उस स्थल के विष्णु-मन्दिर में भगवान् भूतल शयनधारी के रूप में दर्शन देते हैं। अतः भक्तगण उस पुण्यस्थल को 'कड़नमल्लैत् थल शयनम्' कहते हैं।

जिस वर्ष पोयगै आलवार का जन्म हुआ उसी सिद्धार्थी वर्ष में आश्विन महीना, नवमी तिथि, श्रमिष्ठा नक्षत्र से युक्त शुभ दिन में माधवी लता में एक शिशु का जन्म हुआ। उसे भगवान् के गदा का अंश माना जाता है। वही शिशु आगे चलकर भूतत्तालवार नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भूतत्तालवार भगवान् विष्णु से पूर्ण भक्तियुक्त प्रेम रखकर उनके विविध अवतारों तथा गुणों का निरन्तर गान करते रहते थे। उनकी अपनी मातृभाषा तमिल के प्रति अभिमान भी प्रसिद्ध है। उन्होंने भी पोयगै आलवार की तरह भगवान् पर सौ गीत गाये हैं, जिनका संग्रह दूसरी अन्दादि नाम से जाना जाता। वे अपने इष्टदेव कृष्ण के प्रति अक्षय भक्ति से प्रेरित होकर नित्यप्रति पुष्प-माला चढ़ाते और आराधना में तन्मय होकर उनका गुणगान करते थे। माना जाता है कि वे दीर्घकाल तक जीवित रहे। यहाँ उनकी अन्दादि से दो छन्द उद्धृत हैं जिनमें से एक में भगवान् नारायण के प्रति भक्ति के साथ तमिल भाषा के प्रति अभिमान तथा दूसरे में कृष्ण-भक्ति की प्रगाढ़ता लक्षित होती है।

(१)

अन्बे तगषिया, आरवमे नेय्याग,
इन्बु उरुगु चिन्तै इडु तिरिया नन्बु उरुगि
ज्ञानच् चुड़र विळक्कु एट्रिनेन्-नारणक्कुं
ज्ञानत् तमिष पुरिन्द नान्

'ज्ञान को बढ़ानेवाली तमिल को चाहनेवाले मैंने ज्ञानरूपी दीपक को जलाया। उस ज्ञान-दीपक को कैसे जलाया, मालूम है? प्रेम को तेल, बत्ती आदि धारण करनेवाला दीप-पात्र बनाया। तत्परता को घी बनाया। भगवान् का ध्यान करके पिघलनेवाले अपने हृदय को ही बत्ती बनाया। इस तरह दीप-पात्र, घी, बत्ती आदि तैयार करके मन से द्रवित होकर ज्ञानरूपी दीपक को भगवान् नारायण के लिए जलाकर रखा है।'

(२)

मनत्तुळ्ळान् वेंगड़त्तान्-मा कड़लिन् मट्रम्
निनैप्परिय नीळ अरंगत्तु उळ्ळान् एनैप् पलरुम्
देवाधिदेवन् सनप्पडुवान-मुन ओरु नाळ
मावाय् पिळन्द मगन्।

'जिस भगवान् ने उस प्राचीन काल में बालक कृष्ण के रूप में आकर पक्षी का मुँह चीरकर राक्षस को मारा वह मेरे मन में है, श्री तिरुप्पति के पर्वत पर है, महासमुद्र में विराजता है और अविस्मरणीय रूप से श्रीरंगम् में शयन कर रहा है। उसे बहुत लोग जानते हैं। वह देवों का देव माना जाता है।'

ह० दु० स्वा०

मणवाळदासर्

तमिल में मणवाळदासर् नाम के कई भक्त हुए हैं। त्रिचिरपुरम गोविन्द पिळ्ळै नामक विद्वान् ने सभी मणवाळदासरों की रचनाओं का संग्रह करके 'अष्ट प्रबन्धम्' शीर्षक ग्रन्थ का सम्पादन किया है। गोविन्द पिळ्ळै के जीवन-काल में जो मणवाळदासर् थे, उन्हींको प्रधान माना जाता है। अतः यहाँ हम उन्हींका विस्तार से परिचय देंगे।

उनके सम्बन्ध में कई कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हें पिक्कैप्पेरुमाळ आयंगार भी कहते हैं। इन्होंने अपने को एकमात्र श्रीरंगनाथ का भक्त माना था और अन्य देवताओं के प्रति किसी प्रकार का समर्पण व्यक्त नहीं किया था। कहा जाता है कि तिरुप्पति के श्री वेंकटाचलपति ने स्वयं स्वप्न में उनसे कहा कि तुम श्रीरंगम् के श्रीरंगनाथ के प्रति ही नहीं, मेरे सम्मान में

भी गीतों की रचना करो। भक्त मणवाळदासर् ने इनकार करते हुए कहा कि जिस मुँह से आरंगन का यश गाया है उसी मुँह से कुरंगन का कीर्ति-गान नहीं करूँगा। तब भगवान् ने चाहा कि इनकी भेद-बुद्धि मिटाकर यह समझाना चाहिए कि सभी क्षेत्रों में स्थित भगवान् एक ही हैं। अतएव उन्हें कण्ठमाला नामक एक भयंकर रोग दिया। उस रोगग्रस्त अवस्था में इन्होंने अपने रोग का कारण पहचानकर भगवान् से क्षमा-याचना करते हुए 'तिरुवेंकटमाला', 'तिरुवेंकटत्तन्दादि' शीर्षक प्रबन्धों को रचना की। जब इनका रोग ठीक हो गया तो इन्होंने मदुरै स्थित अषगर पर 'अषगरन्दादि' की रचना की। इनके अतिरिक्त एक सौ आठ क्षेत्रों के देवताओं के सम्मान में भी 'एक सौ आठ पुण्यक्षेत्र अन्दादि' गाया। कहा जाता है कि तब भगवान् ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिये।

श्रीरंगम् के पास ही तिरुवानैक्का नामक शिव-क्षेत्र है। उस मन्दिर के देवता जम्बुकेश्वर के सम्मान में गीत गाने की प्रार्थना की गयी तो विष्णु-भक्त मणवाळदासर् ने यही उत्तर दिया कि जिस मुँह से रंग पर गाया उस मुँह से कुरंग पर नहीं गाऊँगा। कुरंगन के कई अर्थ हैं—हिरण को हाथ में धारण करनेवाले, वृषभवाहन तथा हनुमान् के रूप में अवतार रुद्र। कुछ भक्तों का विश्वास है कि हनुमान् परमशिव के ही अंशावतार हैं। मणवाळदासर् के अनपेक्षित उत्तर से शिव-भक्त क्षुब्ध हुए और कपिला गाय को ले जाकर छिपा दिया। प्रातःकाल विश्वरूप-दर्शन के समय श्रीरंगनाथ-मन्दिर में कपिला गाय भी भगवान् के सान्निध्य में उपस्थित की जाती थी। मन्दिर के अर्चकों ने शिव-भक्तों से गाय को छोड़ देने की याचना की तो उन लोगों ने मणवाळदासर् के उत्तर पर अपने क्षोभ की बात प्रकट की। तब अर्चक लोग दासर् के पास दौड़ गये। दासर् ने शिव-स्तुति गान की बात मान ली और दो चरण गाये। प्रथम दो चरण सुनते ही गाय छोड़ दी गयी। तब दारार् ने गीत का रूप बदलकर ऐसा गाया जिससे यह अर्थ निकला कि परमशिव परमात्मा नहीं हैं। इस पर शिव-भक्तों से उनका शास्त्रार्थ छिड़ गया, जिसमें शिव-भक्त हार गये।

मदुरै के राजा तिरुमलै नायक ने मणवाळदासर् को अपने सलाहकारों में नियुक्त कर लिया। राजा का सलाहकार बनने के बाद भी उनकी भक्ति की मात्रा कम नहीं हुई। वे पहले से अधिक भक्तिमग्न हुए। एक दिन राजा के साथ प्रशासन-सम्बन्धी चर्चा में व्यस्त भक्तवर मणवाळदासर् ने अपने उत्तरीय को उतारकर साफ किया। राजा के कारण पूछने पर वे बोले—"श्रीरंगम् के श्रीरथ के पर्दे में आग लग गयी थी, उसे अपने उत्तरीय से बुझाया।" राजा ने कहा—"आप तो यहीं पर खड़े हैं, श्रीरंगम् में आग कैसे बुझायी?" मळवाणदासर् ने उत्तर दिया—"मैं मानसिक रूप से वहाँ उपस्थित होकर यहाँ लौट आया।" इस उत्तर से राजा को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने दासर्जी को पागल अथवा अहंकारी समझा। पता लगाने पर श्रीरंगधाम के कर्मचारियों द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि रथोत्सव के समय मणवाळदासर् रथ के पास ही उपस्थित रहे। उस समय सचमुच आग लगी थी तथा दासर्जी ने कृष्ण-कृष्ण कहते हुए उसे बुझाया था। राजा यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि कितने बड़े भक्त को वे अपने अधीन बनाकर रख रहे हैं। उसी दिन उन्होंने स्वप्न देखा कि वे स्वयं श्रीरंगम् के मन्दिर के दर्शन के लिए गये हैं और वहाँ मन्दिर में अपने सलाहकार मणवाळदासर् को भी खड़े देखते हैं। स्वप्न टूटते ही उन्होंने देखा कि दासर् राजमहल में कार्यनिरत हैं।

बाहर से सांसारिक कार्यों में निरत रहते हुए भी अन्दर ही अन्दर श्रीकृष्ण का ध्यान करते रहनेवाले इस परम भक्त को राजा ने अपने अधीनस्थ रखना उचित नहीं समझा। उनके पास जाकर उन्होंने प्रार्थना करते हुए पूछा—"आप किस प्रकार की जीविका के इच्छुक हैं?" दासर् ने उत्तर दिया—"एक कपिला गाय के कारण मैंने शिव-भक्तों को धोखे

में डाला था, अतः एक गाय के द्वारा ही मेरे सांसारिक जीवन का अन्त होगा। मेरी अभिलाषा है कि गोचारी (गोपाल) कृष्ण का दर्शन करता रहूँ और उन्हींका प्रसाद खाकर शरीर-धारण करूँ।" भक्त की अभिलाषा मानकर तिरुमलै नायक ने उन्हें श्रीरंगनाथ मन्दिर में पहुँचाकर उनके निवास और आहार का स्थायी प्रबन्ध कर दिया। श्रीरंगनाथ मन्दिर में पहुंचकर ये संगमरमर के मण्डप के पास एक कक्ष में जीवन व्यतीत करते रहे। एक दिन सहसा एक गाय ने उन्हें धकेल दिया। वे उसी आघात से स्वर्गवासी हो गये।

उनके काव्य संग्रह 'अष्ट प्रबन्धम्' से दो गीत उद्धृत हैं—

(१)

कायिलै तिन्ड्रुम्, कानिलुरैन्दुम्, गतितेडित्
तीयिड़ै निन्ड्रुम्, भूवलम् वन्दुम् तिरिवीर्गाळ्।
तायिलुम् अन्बन्, भूमगळ नण्बन्, तटनागप्
पायल् मुकुंदन् कोयिलरंगम् पणिवीरे॥

'कंद मूल-पत्ते खाकर वनवास करके तथा आग में खड़े रहकर और भूमि भर में तीर्थयात्रा करते हुए मुक्ति की खोज करनेवाले हे पामर भक्तगण, तुम्हें मुक्ति के लिए इतनी यातनाएँ भोगने की आवश्यकता ही नहीं है। मुक्ति पाने के लिए एक अत्यन्त सरल मार्ग है। श्रीरंगम् मन्दिर में स्थित मुकुन्द माँ से भी बढ़कर प्यारा है और पुष्पवासिनी लक्ष्मी का मित्र है। उसके पायलों से ध्वनित चरणों में नमस्कार करो। उसके चरण तुम्हें मुक्ति दे देंगे।'

(२)

पादिया यषुगिय काल कैयरेनुम्
पषितोषिलुम् इषिकुलमुम् पडैत्तारेनुम्
आदियाय्! अरवणयाय्! एन्बारागिल्
अवरन्ड्रो याम् वणंगुम् अडिगळावार?
जातियाल् ओषुक्कत्ताल् मिक्कोरेनुम्
चतुर्मरैयाल् वेळ्वियाल् तक्कोरेनुम्
पोदिल नान्मुगन् पणियप् पळ्ळि कीळवान्
पोन्नरंगम् पोट्रादार् पुलैयर तामे।

'हाथ-पैर सड़े हुए कुष्ठ-रोगी होने पर भी, पाप-कर्म करनेवाले नीच जाति के होने पर भी जो 'हे आदिमूल शेषशायी' कहकर मुझे पुकारते हैं, वे ही मेरे लिए पूजनीय भगवद्-भक्त हैं। जाति और आचार से ऊँचे हों, चारों वेदों के ज्ञाता हों, याग-यज्ञ करनेवाले सुयोग्य हों, तथापि यदि चतुर्मुख ब्रह्मदेव को अपनी नाभि में धारण करते हुए आदिशेष पर शयन करते रहनेवाले मेरे श्रीरंगनाथजी की स्तुति न करते हों तो वे मेरे लिए अस्पृश्य ही हैं।'

कवि प्रथम पद्य में भक्ति और मुक्ति का सरल मार्ग बताते हैं तो दूसरे पद्य में जाति-कुल आदि का भेद किये बिना श्रीरंगनाथजी की भक्ति करनेवालों को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। रंगनाथजी की भक्ति न करनेवालों को नीच मानते हैं। इससे उनके विचारों की उदारता और मानव-मात्र के प्रति सहज रागात्मकता की सूचना मिलती है।

ह० दु० स्वा०

मधुर कवि आलवार

तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले में आलवार तिरुनगरी नामक एक प्रसिद्ध वैष्णव-स्थल है। उसीका एक भाग है 'तिरुक्काळूर'। वहाँ मुनकुडुमि गोषियर नाम से वैष्णव-ब्राह्मणों की एक शाखा है। कुडुमि का अर्थ है 'चोटी', मुन का अर्थ है—'आगे'। वे सिर के अग्र भाग में चोटी रखा करते थे। इसीलिए वे उक्त नाम से प्रसिद्ध हैं। आजकल भी ऐसी चोटी बढ़ानेवाले ब्राह्मण वहाँ देखने को मिलते हैं। ऐसे ही एक ब्राह्मण-परिवार में नवीं शती ई० में, ईश्वर वर्ष, चैत्र मास, शुक्ल दशमी के दिन, चित्रा नक्षत्र में मधुर कवि आलवार का जन्म हुआ था। ये कुमुदर नामक गणनाथ के अंश माने जाते हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा आलवार तिरुनगरी के वेद-विद्या-सम्पन्न ब्राह्मणों द्वारा ही हुई। सोलह वर्ष की अवस्था में ही ये चतुर्दश विद्याओं में पारंगत हो गये। फिर भी इनके मन में

अशान्ति बनी रही, और सुयोग्य गुरु की खोज में लगे रहे। तभी इन्हें एक ज्योति दिखायी पड़ी और वह ज्योति इन्हें कई दिन तक मार्ग-दर्शन करती हुई ले गयी। अन्ततोगत्वा वह ज्योति तिरुक्कुरुगूर तक आकर लुप्त हो गयी। वहीं एक इमली के पेड़ के नीचे शठकोपर् से इनकी भेंट हुई। शठकोपर् खाये-पिये बिना मौन पड़े हुए थे। मधुर कवि आलवार ने उनके सुनने और बोलने की शक्ति की परीक्षा की, जिसका विवरण नम्मालवार-चरित्र में दिया जा चुका है।

अन्य आलवारगण भगवान् महाविष्णु और उनके अवतारों की स्तुति करते थे। परन्तु मधुर कवि आलवार ने नम्मालवार को ही गुरु तथा भगवान् का स्वरूप माना और उन्हींकी सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया। नम्मालवार जो कुछ गाते उसे मधुर कवि आलवार लिख लेते थे। इनसे भेंट करने के उपरान्त ही नम्मालवार बोलने और गाने लगे थे। उनका भक्त-समुदाय व्यापक होता गया। ये उन्हें पालकी पर बैठाकर ले जाते थे और नगर-प्रवेश करते समय उद्घोष किया करते थे—"नम्मालवार पधारे, सद्गुणशाल पधारे, तमिल वेदों के गायक पधारे, तिरुक्कुरुगूर नंबी पधारे, श्रीवचन सुनानेवाले कृपालु पधारे, तिरुवषुदि वळ नाड़र पधारे, बकुलाभरणर् पधारे, कारिमारर् पधारे, शठकोपर् पधारे, परांकुश-नाथ पधारे, भुवननाथ पधारे।" ये शब्द सुनकर लोग एकत्र हो जाते थे और नम्मालवार की पूजा-अर्चना करते थे।

जब एक बार उनकी पालकी मदुरै नगर में आयी, तब वहाँ के संघ-कवियों ने आक्षेप किया कि नम्मालवार को देवत्व प्रदान करना असह्य है। तब मधुर कवि आलवार ने शैव कवियों से कहा—"हम एक कविता सुनायेंगे; उसकी व्याख्या आप कर देंगे तो हम आपका आक्षेप स्वीकार करेंगे।" मधुर कवि ने पालकी को मन्दिर में जाने देकर नम्मालवार की एक तस्वीर मात्र रख ली और संघ-कवियों के साथ बैठे। फिर अपने गुरु की बनायी एक कविता लिपिबद्ध करके तस्वीर के पास रख दी। उसकी व्याख्या करने में कवियों में होड़ लग गयी। लेकिन कोई भी व्याख्या नहीं कर सका। फिर भी संघ-कवियों ने नम्मालवार को देवत्व प्रदान करना स्वीकार नहीं किया।

उन दिनों कविताओं का महत्त्व जानने के लिए एक उपाय अपनाया जाता था। मदुरै मीनाक्षी मन्दिर में स्वर्ण-कमल-सरोवर है। उसमें संघ-पलक नामक एक पीठ है। उस पीठ पर लिपिबद्ध कविताओं को रख दिया जाता था। यदि वह कविता भगवान् को अमान्य होती तो पलक उस कविता को तालाब में गिरा देता था। सुप्रसिद्ध तमिल कवि तिरुवळ्ळुवर की रचनाओं की भी ऐसी ही परीक्षा लेने के बाद ही उनका उद्घाटन हुआ था। उसी प्रकार नम्मालवार की कविताओं और संघ-कवियों की कविताओं को पलक पर रखकर सरोवर में छोड़ दिया गया तो संघ-कवियों की कविताएँ सरोवर में डूब गयीं और नम्मालवार की कविताओं को लेकर पलक किनारे पर आ गया। तभी संघ-कवियों ने नम्मालवार की महत्ता स्वीकार की, उनकी आरती उतारी और सेवा में लग गये। उन कविताओं में से दो यहाँ उद्धृत हैं—

(१)

कण्णन कषलिनै
ऩण्णुम मनमुडैयीर
एण्णुम तिरुनामम्
तिण्णम् नाराणमे !

'परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणाभरणों का ध्यान करनेवाले, उनके श्रीनामों का जप करनेवाले श्री नारायण के परमधाम में पहुँच जाते हैं, यह निश्चित है। इसमें सन्देह नहीं है।'

(२)

चेन्तषले वन्दु अषलैच् सेय्दिड़िनुम् चेंकमलम्
अन्तरम् सेऱ् वेंकदिरोरकु अल्लाल् अलरावाल्

वेम्तुयर् वीट्टाविड़िनुम् विट्रुवक्कोट्टु अम्माने उन्
अन्तम् इल सीरक्कु अल्लाल् अह्_म् कुषैयमाट्टेने ॥

'लाल कमलासन में स्थित लक्ष्मी के पति के प्रति भक्ति से पिघलनेवाले भक्तों के सिवा और किसीके सामने मैं नहीं झुकूँगा। विट्रुक्कोट में स्थित हे राधानाथ ! अग्नि घेरकर मुझे झुलसाने लग जाय तो भी मैं तुम्हारे असीम चरण-कमलों के सिवा और किसीका ध्यान नहीं करूँगा।'

उपर्युक्त दोनों कविताएँ नम्मालवार की ही हैं। मधुर कवि आलवार ने भगवान् की महिमा का गान नहीं किया। अपने गुरु नम्मालवार की ही स्तुति की। कबीर के सिद्धान्त—

'हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ॥'

के अनुसार मधुर कवि ने भगवान् के भक्तों का ही गुणगान किया है। उनके इस भाव को प्रकट करनेवाले दो छन्द यहाँ उद्धृत हैं—

(१)

नाविनाल नविर् ट्रिइन्बम् एय्दिनेन्
मेविनेन् अवन् पोन्अड़ि मेय्म्मैये
देवुमट्र् अरियेन् कुरुकूर नंबि
पाविन् इन् इसै पाडित्तिरिवेन्।

'मैं कुरुकूर नंबि नम्मालवार के सिवा और किसी देव को नहीं जानता। मैं उन्हींके स्वर्ण कमलों की शरण में आ गया हूँ। मैं उन्हींके बनाये गीतों को गाता हुआ फिरता रहूँगा। उनके यश गा-गाकर मैं आनन्दानुभव प्राप्त कर रहा हूँ।'

(२)

नन्मैयाल मिक्क नान्मरै याळरगळ
पुन्मैयागक् करुदुवर्—आदलिन्
अन्नैयाय् अत्तनाय् एन्नै आण्डिडुम्
तन्मैयान् शठकोपन् एन् नंबिये !

'शुभेच्छु ब्राह्मण मेरी भक्ति की अवहेलना करेंगे, लेकिन मेरे गुरुदेव शठकोप ही मेरे लिए माता और पिता हैं। वे ही माता-पिता की भाँति मेरे हृदय पर शासन करके मेरी रक्षा कर रहे हैं।'

हृ० दु० स्वा०

मांगुडि मरुदनार्

मांगुडि मरुदनार् की गणना तमिल के प्राचीनतम कवियों में होती है। इनका जन्म तंजाऊर जिले में तिरुत्तुरैप्पूंडि तालुका के मांगुडि नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने 'मरुदवन' नामक एक गाँव बसाया था। इसलिए ये मांगुडि मरुदनार् नाम से जाने जाते हैं। इन्होंने 'मदुरैक् कांचि' शीर्षक से काव्य-रचना की है। अतएव ये कांचिप्पुलवनार भी कहे जाते हैं। माना जाता है कि ये नेडुंचेषियन् नामक पाण्डिय राजा के आश्रय में थे। नेडुंचेषियन् सदा युद्धोन्माद में रहते थे। इन्होंने ही उनको भक्ति और शान्ति का प्रशस्त मार्ग दिखाकर याग-यज्ञ करवाये थे। इसके अतिरिक्त इस कवि का और कोई जीवन-वृत्तान्त नहीं मिलता। यहाँ इनकी रचनाओं से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

(१)

मेल्लेन सेवड़ि मेलिय एक
वल्लुनळ् कोल्लो दाने तेम्पेय्
तळवुरु तोम्पाल् अलैप्पउम् उण्णाळ्
इडुमणर् पन्दरुळ् इयलुम्
नेडुमेन् पणैत्तोळ् माडयोळे !

('अहनानूरु' से)

'अपने कोमल लाल चरणों से दूरस्थ मधुवन को जाते हुए थक जाने पर भी नायिका नायक के साथ-साथ जाने में आनन्द का अनुभव करती है और यात्रा की दूरी की चिन्ता नहीं करती।'

(२)

उरैयाय् वाषि तोषि इरुङ्कषि

× × ×

चेम्पेर् इरणै अलवर् पार्कूकुञ्
चिरु विळैयाड़लुम् अषुंग
ञिन्क्कुप् पेरुम् तुयरम् आगिय नोये !

'हे सखि, तुम क्यों बोलती नहीं ? बालकों का खेल देखकर भी तुम्हें बड़ा दुःख होता है। यह वियोग-दुःख एक रोग है। यह रोग तुम्हारे प्रिय के आते ही छूट जायगा। तुम जुग-जुग जियो।'

ऊपर के उद्धरणों में सामान्य नायक-नायिका-सम्बन्धी भाव व्यक्त होने पर भी वस्तुतः कृष्ण और राधा का ही संकेत किया गया है। क्योंकि इस कवि ने 'परिपाडल' में महाविष्णु-विषयक रचनाएँ की हैं। उनमें मदुरै नगर की उपमा महाविष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल-पुष्प से दी गयी है और कहा गया है कि कमल-पुष्प की पँखुडियों के समान विष्णु के अनन्त हाथ विकसित होते रहते हैं। इसमें मार्गशीर्ष महीने में कन्याओं के प्रातः-स्नान-व्रत का वर्णन भी किया गया है। ये तथ्य इन्हें राधा-कृष्ण-भक्त सिद्ध करते हैं।

ह० दु० स्वा०

मामूलनार्

मामूलनार् तमिल के प्राचीनतम भक्त कवियों में हैं। तमिल के आदिकाव्य 'तोलकाप्पियम्' के भाष्य-कार नच्चिनाक्किनियर् ने इन्हें त्रिकालदर्शी योगी कहा है। इनका जन्म सम्भवतः मूल नक्षत्र में हुआ था, इसलिए ये मूलनार् कहलाये। अपनी विद्वत्ता के कारण ये महामूलनार् माने जाते थे। संघ-काल की फुटकर रचनाएँ—नट्रिणै, कुरुंतोगै, अहम् आदि में इनकी कविताएँ प्राप्त होती हैं।

इन्होंने स्वयं अपने जीवन के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है। इनकी कृतियों से मात्र इतना ज्ञात होता है कि ये वैष्णव ब्राह्मण थे और श्रीराधा-कृष्ण के भक्त थे। यहाँ इनकी कविताओं से दो उद्धरण दिये जाते हैं—

(१)

उन्नङ् कोळ्गैयोडु उळंकरन् तुरैयुम्
अन्नै चोल्लुम् उय्गम् एन्नदूउम्
ईरळ् चेरा इयल्बिन् पोय्म्मोषिच्
चेरियम् पेंडिर् कौवयुम् ओषिगुम्।

('अहं' ६५)

'सखी राधा को संकेत से कहती है-राम के द्वारा धनुष-भंजन की सूचना जैसे नीलमाला द्वारा सीता को मिली वैसे ही मेरे द्वारा तुम सुन लो। तुम्हारे इस गुप्त प्रेम को जान लेने से क्रोधित तुम्हारी माता का क्रोध-भंजन करने के लिए तुम्हारा (गुप्त) प्रेमी शीघ्र ही आयेगा।'

(२)

एम् वेंङ्कामम् इयैवदायिन्
मेय्म्मलि पेरुम्पूट् चेम्मर कोगर्

× × ×

मिन्ट्र् णैप्पड़न्दं कोळ्गैचोडु ओरांगु
मेन्ड्रोळञ्जै चेन्ड्रवारे !

राधा सखी से कहती है—'माँ और प्रिय सखियों को छोड़कर अपने प्रेमी के साथ चले जाने की मेरी इच्छा लोकानुकूल हो तो भगवान् की कृपा से पूरी होगी।'

'अहनानूरु' की सभी कविताएँ नायक-नायिका के प्रेमभाव की ही हैं। ये रीतिकालीन कविता जैसी हैं, परन्तु मांसल अथवा वासनाप्रधान नहीं हैं।

ह० दु० स्वा०

मुत्तु कुट्टिप् पुलवर

मुत्तु कुट्टिप् पुलवर् का जन्म रामनाथपुरम् जिले में परत्तैवयल् नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम ताण्डवराय स्वामी तथा माता का मुत्तुत्ताय् था। इन्होंने बाल्यावस्था में ही विधिवत् सब विद्याएँ सीखी थीं। फिर एक विद्वान् के सान्निध्य में साहित्य एवं व्याकरण का सम्यक् अध्ययन किया। वे विद्वान् भगवद्-भक्त थे। उन्होंने मुत्तुकुट्टि को समझाया कि भक्ति ही विद्वानों का लक्षण है। भगवान् के प्रति भक्ति के बिना सब कुछ व्यर्थ है। इससे मुत्तुकुट्टि के मन में भक्तिभाव दृढ़ हो गया।

एक बार ये तिरुक्कोट्टियूर गये। जब तक वहाँ पहुँचे तब तक लोग रात का भोजन समाप्त करके

सो गये थे। कहीं भोजन मिलने की आशा न थी। पुलवर् को बड़ी भूख लग रही थी। उन्होंने मन्दिर के रथ के पास खड़े होकर इस आशय का एक गीत गाया—

'हे भगवान्! सौम्य मूर्ति, रात बहुत देर हो गयी; अब मानवों द्वारा भोजन मिलने की आशा नहीं; इसलिए तुम्हारा ही भरोसा है।'

गीत समाप्त होते ही एक ब्राह्मण-बालक एकाएक आकर रथ पर मिष्टान्न शक्कर पोंगल रखकर गायब हो गया। पुलवर् भगवान् की यह अद्‌भुत कृपा देखकर पोंगल को खाकर उसी रथ से सटकर सो गये।

रामनाथपुरम् जिले में ही नाट्टरसन् कोट्टै नामक एक नगर है। वहाँ पर नल्लतंबी नामक एक धनवान् रहता था। नल्लतंबी का अर्थ है—अच्छा छोटा भाई। पर उसका नाम ही नल्लतंबी था। यह स्वभाव से बड़ा दुष्ट था। उसकी क्रूरता से लोग परेशान थे। लोगों ने मुत्तुकुट्टिप्पुलवर् से कहा—"उस नल्लतंबी की प्रशंसा में गाइये। वह आपको इनाम देगा।" किन्तु पुलवर् ने उसकी मृत्यु की कामना करते हुए गाया। दूसरे दिन ही नल्लतंबी मर गया। लोग स्तम्भित रह गये। तब से लोग पुलवर् के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखने लगे।

इनकी कुछ फुटकर रचनाएँ ही मिलती हैं। इन्होंने अपने माता-पिता के प्रति भी श्रद्धाभाव के गीत गाये हैं। यद्यपि ये भगवद्-भक्त थे तो भी इनकी भक्तिपरक कविताएँ नहीं मिलतीं। बहुत-सी कविताएँ नष्ट हो गयीं। तिरुक्कोट्टियूर में रात के समय अचानक मिष्टान्न मिलने पर इन्होंने जो गीत गाया था, वही प्राप्त है। वह इस प्रकार है—

ऊरुंडुरंगि ओरु जाम मायिट्ट् इव् वूर तनिले
नीरुम् परुक्कैयुम् आर् तरुवार् इंद नेर मेन्ड्रेन्
मूरन् मलर् मंगै मार्बा सौन्दरमूर्तियुन्ड्रन्
तेरुन्तरुङ् कट्टिच्चोरुम् कड़रक्रैच् चीनियुमे!

'इस नगर में लोगों के खाकर सोये एक प्रहर हो गये। ऐसे समय में मुझे कौन पानी और भात देगा? ऐसा मैं बोल उठा। तब हे मुरारे! कोमल कुसुम-सी स्त्री से आलिंगित वक्षःस्थलवाले हे सौन्दर्यमूर्ति, मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारा रथ भी समुद्र-तट की चीनी से युक्त मिष्टान्न की पोटली देगा।'

ह० दु० स्वा०

मु० राघव आयंगार

मु० राघव आयंगार रामनाथपुरम् राज्य के दरबारी महाविद्वान् श्री रा० राघव आयंगार के मामा एवं गुरु शतावधानम् मुत्तुस्वामी आयंगार के सुपुत्र थे। इनका जन्म सन् १८७८ ई० में हुआ था। इन्होंने अपने पिताश्री के पास ही अध्ययन किया और अपनी बुआ के बेटे श्री रा० राघव आयंगार के साथ ही रहते थे। दोनों राघव अभिन्न मित्र हो गये थे। छोटे राघव बड़े राघव को भगवत्स्वरूप मानते थे।

इनको अक्षय कीर्ति प्रदान करनेवाला ग्रन्थ 'आलवारगळ् कालनिलै' है। इस विषय के प्रसिद्ध आलोचक श्री जे० पार्थसारथी लिखते हैं—"इस प्रकार के ग्रन्थ की रचना ऐसे विद्वानों से ही सम्भव है, जो उन आलवारों के भक्ति-भावों में गहरे डूबे हों, जिन्होंने भूत और वर्तमान को मिलाकर अतीत और आज के बीच सेतु का निर्माण कर दिया।"

ये मूलतः भक्त थे। विविध विषयों के शोध-ग्रन्थों का सृजन करते हुए भी इनका ध्यान सदा भगवान् पर ही केन्द्रित रहा है। साहित्यिक कथा-पात्रों के चित्रण में श्री आयंगार श्रीकृष्ण की कथा का ही आश्रय लेते थे। नेडुमारन नामक राजा ने गंगा राजा की पुत्री भुवनसुन्दरी से विवाह किया। उस विवाह के विरुद्ध कई राजा उठ खड़े हुए। लेकिन भुवनसुन्दरी नेडुमारन को ही चाहती थी। गंगा राजा के दो पुत्रों ने भी उस विवाह का समर्थन किया। अपने भावी सालों की ओर से नेडुमारन को विपक्षी राजाओं से लड़ना पड़ा। इस घटना की व्याख्या

करते समय आयंगार ने उस युद्ध की तुलना पार्थ और सुभद्रा-परिणय के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण के समर्थन और कौरव-परिवार से किये गये युद्ध से की है। उनके भाषणों में भी भागवत और कृष्ण-कथा की घटनाओं का प्रसंग अनायास ही आ जाता था, जिससे उनकी कृष्ण-भक्ति की गहनता का पता लगता है।

सेतुपति राज-परिवार के श्री पाण्डि तुरैतेवर मु० राघव आयंगार से प्रभावित हुए। तेवर स्वयं उच्चकोटि के विद्वान् थे। सन् १९०१ ई० में उन्होंने मदुरै में 'तमिल संघम्' की स्थापना की जो 'चतुर्थ संघम्' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस संघम् के तत्त्वावधान में प्राचीन तमिल-ग्रन्थों का शोध और प्रकाशन हुआ। यह कार्य श्री मु० राघव आयंगार को ही सौंपा गया। आयंगार ने संघम्-साहित्य के प्रधान सम्पादक के रूप में जो सेवा की उसको भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। इनके सम्पादकत्व में 'तमिल कोश' निर्माण का कार्य सन् १९१३ से १९३६ तक हुआ। यह महत्तम कोश तमिल भाषा की अमूल्य निधि है।

श्री आयंगार ने तमिल में कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी लीलाओं को खोजकर प्रस्तुत किया है, जो संस्कृत-साहित्य में भी प्राप्त नहीं होतीं। उनमें एक कथा 'दधिपाण्डन' की है, जिसके अनुसार बालकृष्ण दहीभरे बर्तन में बंद हो जाते हैं और दधिपाण्डन द्वारा छुटकारा पाकर उसको मोक्ष प्रदान करते हैं।

कृष्ण-भक्ति-प्रवण आलवारों तथा आण्डाल के जीवन-चरित्र पर उनके लेख शोध-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। 'मार्गषि नोम्बोगिय तैन्नीराडळ्' अर्थात् 'मार्गशीर्ष मास का प्रातःस्नान-व्रत' शीर्षक लेख में उन्होंने कृष्ण-भक्ति की महिमा का परिचय इस प्रकार दिया है—

'कृष्ण को नायक के रूप में प्राप्त करने के लिए गोपियों ने कात्यायनी देवी की उपासना की थी। यह भागवत में प्रसिद्ध है। वैसे ही आण्डाळ ने भी देवी की प्रार्थना करके कृष्ण को प्राप्त करने का व्रत किया था। देवी-व्रत कृष्ण को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया गया। इसमें देवी साधनमात्र है, कृष्ण ही साध्य हैं।'

श्री आयंगार ने कविताएँ अधिक नहीं रची हैं। उनकी फुटकर कविताएँ ही प्राप्त होती हैं। उनकी कृष्ण-भक्तिपरक एक रचना साहित्य अकादमी द्वारा संगृहीत 'तमिल कवितैक् कळंजियम्' (तमिष कविता सुरंग) में प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है—

वळ्ळिक्कोण्डान् मयिलेरिक कोण्
  डान् मति पोलमलै
वेळ्ळि कोण्डान् विड़ै येरिक् कोण्
  डान् विण्णवर्क्कमुदम्
तुळ्ळि कोण्डान् पुळ्ळिलेरिक् कोण्
  डान् शुभ शोभणञ्चेर्
पळ्ळि कोण्डान् पुगषेरिक् कोण्
  डान् पार्पदर्क्के !

'वळ्ळि से विवाह करनेवाले कार्त्तिकेय श्रीकृष्ण की शोभा देखने के लिए मोर पर चढ़ गये। भगवान् चन्द्रशेखर ने रजत पर्वत को ऊँचाई को भी पर्याप्त नहीं माना, इसलिए वे उस पर्वत पर जाकर अपने वृषभ पर चढ़कर देखने लगे। सृष्टिकर्त्ता होने का व्यर्थ का अभिमान करनेवाले ब्रह्मदेव भी अपना अभिमान भूलकर कृष्ण की शोभा देखने के लिए पक्षी पर चढ़कर आकाश में विचरने लगे। भगवान् विष्णु यश की इतनी ऊँचाई पर चढ़ गये कि उससे अधिक उच्चता दीख नहीं पड़ती। अनन्तशयन भगवान् कृष्ण की शोभा अवर्णनीय है। उनकी शोभा देख-देखकर देवता फूले नहीं समाते।'

उक्त कविता से यह भाव निकलता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि तीनों देवों में कवि श्रीकृष्णरूपी विष्णु की ही अधिकाधिक महिमा मानते हैं तथा कार्त्तिकेय आदि अन्य देवों को दर्शक के रूप में चित्रित करते हैं।

आयंगार शोध-कर्त्ता के रूप में ही अधिक जाने जाते हैं। किन्तु उनकी गद्य-रचनाओं का सम्यक् अध्ययन करने पर उनकी गहनतम कृष्ण-भक्ति का पता लगता है। पाँच दशकों से अधिक साहित्य-साधना के अनन्तर सन् १९६० ई० में इनका परलोकवास हो गया।

ह० दु० स्वा०

रा० राघव आयंगार

रा० राघव आयंगार का जन्म २० सितम्बर १८७० ई० को रामनाथपुरम् जिले में तेन्नवरायन् पुदुक्कोट्टै नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम रामानुज आयंगार और माता का पद्मासनी था। इनके पूर्वज धनी परिवार के थे और रामेश्वरम् जानेवाले यात्रियों का सेवा-सत्कार करने तथा सुविधाएँ प्रदान करने में अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करते थे। उस पुण्य-कैंकर्य के फलस्वरूप इस परिवार में राघव आयंगार जैसी महाज्ञानी, भक्तप्रवर सन्तान का आविर्भाव हुआ। पिता की परम्परा में कांचीपुरम् के पास तिरुपुट्कुषि नामक वैष्णव-क्षेत्र तथा तिरुनेलवेली जिले के आलवार तिरुनगरी के मन्दिरों में अध्यापकत्व करने का अधिकार इस कुटुम्ब को प्राप्त था।

मातृपक्ष से इनका सम्बन्ध रामनाथपुरम् की राजसत्ता से था। इनके नाना महाराज सेतुपति के मन्त्री थे। रामेश्वर मन्दिर का लम्बा मण्डप, जो 'चोक्कट्टान् चेरिमण्डप' कहलाता है, इनके नाना कृष्णय्यंगार की देखरेख में ही निर्मित हुआ था। भक्तवर राघव आयंगार के दो मामा थे-अष्टावधानम् कृष्णय्यंगार और शतावधानम् मुत्तुस्वामि आयंगार। दोनों तमिल और संस्कृत के महापण्डित थे।

इनके मामा तथा विद्यागुरु मुत्तुस्वामि आयंगार सोलह साल की उम्र तक अशिक्षित रहे। इससे नाना कृष्णय्यंगार बहुत चिन्तित थे। पण्डित-वंश में जन्म लेकर भी अशिक्षित रहनेवाले अपने पुत्र को ज्ञानी बना देने की प्रार्थना वे सदैव भगवान् कृष्ण से किया करते थे। सोलह वर्ष पूरा होते ही एक दिन अद्भुत घटना हुई। मुत्तुस्वामि सहसा कन्नड़ भाषा में गाने लगे। मातृभाषा थी तमिल, पर गाया कन्नड़ में। फिर वे मैसूर के महाराज द्वारा सत्कृत हुए।

जब राघव पाँच वर्ष के थे तभी इनके पिता रामानुज आयंगार स्वर्गवासी हो गये। इसलिए ये नाना के यहाँ पाले-पोसे गये। इस कारण इनका रामनाथपुरम् के राज्य-परिवार से अधिक सम्पर्क हुआ। मामा की देखरेख में इन्हें तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं का सम्यक् ज्ञान मिला और कविता करने की शक्ति प्राप्त हुई। एक दिन ये मामा से कहे बिना ही तिरुनेलवेली चले गये और प्रसिद्ध वकील कृष्णय्यर से भेंट की। वकील ने बालक की विद्वत्ता से प्रभावित होकर ऊट्रुमलै जमींदार मरुदप्प देवर् से परिचय कराया। देवर् ने इन्हें अपने दरबार में निमन्त्रित करके बहुत-सी भेंट देकर सम्मानित किया।

अठारह वर्ष की आयु में ही राघव आयंगार मदुरै सेतुपति हाईस्कूल में तमिल-अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। तब इनका विवाह जानकी अम्माल से हुआ। फिर तिरुच्ची राष्ट्रीय हाईस्कूल में काम किया। उस पद पर रहते समय मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में इनका एक भाषण हुआ जिससे इनकी विद्वत्ता की बात फैल गयी। सेतुपति ने इन्हें अपने दरबार में ही रख लिया। एक बार पण्डितमणि कदिरेशन चेट्टियार ने सन्मार्ग संघ का वार्षिकोत्सव आयोजित किया। उसमें महामहोपाध्याय डॉ० उ० वे० स्वामीनाथय्यर और राघव आयंगार दोनों सम्मिलित हुए। डॉक्टर अय्यर ने इन्हें 'महाविद्वान्' की उपाधि से विभूषित किया। उस समय से ये 'सेतु समस्थान महाविद्वान' कहलाने लगे। राघव आयंगार ने विद्वानों और धार्मिकों की सभाओं में भाषण देते-देते इतनी ख्याति अर्जित की कि मद्रास की एक बृहत् सभा में स्वर्ण-कलश, स्वर्णाम्बर से विभूषित हुए तथा 'भाषा-कवि शेखर' की उपाधि से भी सम्मानित हुए।

सन् १९३५ ई० में अण्णामलै विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तो राजा सर् अण्णामलै चेट्टियार ने सेतुपति राजा से आग्रहपूर्वक विनती करके इन्हें शोध-संस्थान का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। वहाँ पर इन्होंने 'सेतुनाडुम् तमिषुम्', 'वंचिमानगर्', 'सेरन् सेंगुट्टुवन्' आदि शोध-ग्रन्थ तैयार किये और 'भुवि एषुपदु', 'तिरुवडिमालै', 'श्रीरामनाम गीत' आदि काव्य-ग्रन्थ भी लिखे। इनके अतिरिक्त भगवद्गीता का रूपान्तर भी तमिल कविता में प्रस्तुत किया। इनके फुटकर गीतों की संख्या बतायी नहीं जा सकती। वे अनगिनत हैं। ये गीत कई पत्र-पत्रिकाओं में, विशेषतः सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'कलैमगळ' में प्रकाशित होते रहे। इन्होंने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद किया। 'पारिकादै' शीर्षक से प्राचीन काल के दानी पारि पर काव्य लिखा। इस प्रकार छह वर्षों तक साहित्य-सेवा करके सन् १९४१ में ये सेवा-निवृत्त हुए।

सेवा-निवृत्त होकर ये रामनाथपुरम् को लौट आये और अपने सुपुत्र रामानुज आयंगार के साथ रहने लगे। फिर भी सेतुपति राजा इनसे प्रायः मिलते रहते थे। इनके यहाँ विद्वानों और श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता था। जीवन की अन्तिम साँस तक साहित्य-सेवा करते हुए ११ जुलाई १९४६ ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

राघव आयंगार को अधिकांश लोगों ने शोधकर्ता और महाविद्वान् के रूप में ही देखा। उस विद्वत्ता की पृष्ठभूमि में प्रेरणा-रूप में निहित इनकी कृष्ण-भक्ति का परिचय कुछ ही लोगों को प्राप्त हो सका। इनकी भक्ति सुदृढ़ और आन्तरिक उज्ज्वलता से युक्त थी। 'नालायिर प्रबन्धम्' (आलवार-भक्तों के चार हजार गीतों का संग्रह) की व्याख्या करते हुए ये गद्गद हो जाते थे। महामहोपाध्याय पण्डितमणि कदिरेशन चेट्टियार ने इनकी इस तन्मयतापूर्ण भक्ति का उल्लेख करते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उनकी भक्ति आडम्बर और दिखावे से दूर थी। तिरुवडिमालै (श्रीचरण माला), तिरुवेंकटमायोन् मालै, भगवद्-गीता के गीत आदि रचनाएँ इनकी कृष्ण-भक्ति की द्योतक हैं। यहाँ 'गीता के गीत' से एक उदाहरण दिया जा रहा है—

एंगुळ नावन्यो गेश्वरन् कण्णन्
एंगुळ नावन्विल्लेन्दिनन् पार्थन्
अंगुळ वेन्डुञ्ज सीदेवि नल्वेन्ड्रि
अंजल्व नीतिगळ् एन्बदु एन् एण्णम्।

'जहाँ-जहाँ योगेश्वर कृष्ण हों, वहाँ-वहाँ धनुष-धारी पार्थ भी साथ हैं। जहाँ वे नर-नारायण रहते हों वहाँ सदा जय ही जय है और श्रीदेवी का निवास है। वहाँ शिथिलता और भय तथा अनीति रह नहीं सकते। यही मेरा विश्वास है।'

तिरुवेंकटमायोन् मालै (तिरुवेंकट पर्वत पर स्थित कृष्ण-भक्ति माला) का एक गीत इस प्रकार है—

पिरन्दाय् विदुरन्, कुगन्, पेण् शबरिक्
कुरैन्दाय् विरुन्दाय् उलगुण् वयिरुम्
निरैन्दाय् अवरन्बुणर निन् अरुळैक्
करन्दाय् तिरुवेंकट मायवने।

'तिरुवेंकट पर्वत पर स्थित हे मायावी कृष्ण! तुमने भूमि पर अवतार लिया। विदुर, गुह, शबरी आदि भक्तों के हृदयों में निवास किया। उनके दिये साग-भाजी को उत्कृष्ट भोजन के रूप में ग्रहण करके पेट भर लिया और उनके सच्चे प्रेम को पहचाना। पहचानकर तुमने उन पर अपनी कृपा-वर्षा कर दी। गौ के स्तन्य की भाँति तुम्हारी कृपा प्रवाहित हुई।'

अपने एक अन्य गीत में ये कहते हैं कि 'जिस भगवान् की पूजा चेर, चोल, पाण्डिय, सेतुपति आदि राजाओं ने की, उनकी स्तुति करने से उनके गले लगी वेदरूपिणी लक्ष्मी सहर्ष सकल सम्पत्ति प्रदान करेगी।' उपर्युक्त गीत इनकी दृढ़ कृष्ण-भक्ति के द्योतक हैं।

ह० दु० स्वा०

राजगोपालप् पुलवर्

राजगोपालप् पुलवर् का जन्म लगभग दो सौ वर्ष पूर्व कीरनत्थस् नामक गाँव में चम्पक् कोनार् नामक एक ग्वाले के यहाँ हुआ था। पिता वैभव-सम्पन्न थे। उन्होंने पुत्र का नाम राजगोपाल रखकर बड़े प्यार से उसका पालन-पोषण किया। किन्तु बालक का मन घर-बार या खेल-कूद में न लगा। दस साल की उम्र में ही वह घर छोड़कर बाल-संन्यासी बनकर निकल पड़ा। बड़ी बहन चेम्पात्ताळ् ने भी अपने भाई का अनुकरण किया।

उस छोटी आयु में ही इनकी अपूर्व दैविक शक्ति देखकर लोग चकित रह जाते थे। एक बार मैसूर की ओर जाते समय बाल-संन्यासी ने एक जटामुनि को देखा। वह मुनि पिशाच के रूप में एक पेड़ पर सोया हुआ था। राजगोपाल ने उसकी जटा पकड़कर खींची और उसे जगाकर अपने साथ ले गये। मैसूर राजमहल में जाकर उन्होंने कई चमत्कार दिखाये। राजा ने प्रसन्न होकर इन्हें तिंगळूर नामक स्थान में अषगप्पेरुमान् (सुन्दरराज) कृष्ण-मन्दिर में उच्च पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

उस मन्दिर के अधीन कई एकड़ उपजाऊ जमीन थी। वह जमीन किसान जोतते थे और उपज में से एक हिस्सा मन्दिर को देकर पूजा-पाठ की व्यवस्था करवाते थे। उनमें से एक किसान ने अपने देय का भुगतान नहीं किया। कई वर्षों तक वह ऐसा ही धोखा देता रहा। राजगोपाल ने उसे बुलवाकर इसका कारण पूछा तो वह बोला—"खेत में उपज नहीं होती, सूखा पड़ा है, मैं कुछ दे नहीं सकता।" भक्तवर राजगोपाल ने उसे छोड़ देने का आदेश दिया। किसान सगर्व यह कहते हुए चला गया। "यह तो लड़का है, घर-गृहस्थी नहीं है, इसका इतना अधिकार ठीक नहीं।" राजगोपाल यह सुनकर केवल मुस्कराये। किसान घर पहुँचा तो सचमुच उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी। गायें और बैल मरे पड़े थे। खलिहान जल गया था। असत्यवादी किसान भयभीत होकर भागता आया, स्वामीजी के पैरों पर गिर पड़ा और भूमि-कर अदा कर क्षमा-याचना करने लगा। उसके बाद वह घर लौटा तो उसके गाय-बैल जी उठे थे, जली सम्पत्ति हरी हो गयी थी। उस दिन से उसने असत्य बोलना छोड़ दिया और धर्मात्मा बनने के प्रयत्न में लग गया।

मैसूर के महाराज ने अनुभव किया कि ऐसे शक्ति-सम्पन्न भक्त को साधारण अधिकारी बनाकर बाँध रखना उचित नहीं। इसलिए उन्होंने सेवा-निवृत्त करके उन्हें स्वतन्त्र विचरने तथा निश्चिन्त धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अनुरोध किया। तब से ये तीर्थाटन में लग गये।

इनके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ लोक-प्रचलित हैं :

रास्ते में एक आखेटक ने एक बिल्ली को मारा। भक्तवर ने उसे पुनर्जीवित किया।

कुछ लोगों ने एक कुत्ते को पत्थरों से मार डाला। भक्तवर ने उसे ज़िला दिया। कुत्ता इनके साथ ही हो लिया।

एक जगह ये बैठे हुए ध्यानमग्न थे। तब एक साँप इन पर चढ़कर रेंगने लगा। साँप तत्क्षण तीन टुकड़े होकर गिर पड़ा।

एक ब्राह्मण ने इनकी बड़ी उपेक्षा की और घमंड से देखकर मुँह फेर लिया। वह तुरन्त जलकर भस्म हो गया।

रायकुमार गौड़ा नामक एक रईस की तीन पत्नियाँ थीं। पर कोई सन्तान न थी। उसने राजगोपाल स्वामी के पास आकर अपना दुःख सुनाया। स्वामीजी ने उसको सन्तान-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। उसको पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम गौड़ा ने नारायण रखा।

रायर् मन्दिर के पुजारी करुप्पकोनार की पुत्री काळियम्माळ की आँखें सूजकर अन्धी हो गयी थीं। पुजारी ने भक्तवर से निवेदन किया तो इन्होंने कृष्ण का नाम जपकर आशीष दिया। कुछ ही दिनों में आँखों की रोशनी लौट आयी। पुजारी ने इनसे प्रार्थना की कि उनकी पुत्री से विवाह कर लें। नगर के लोगों ने भी समर्थन किया। उनकी बात मानकर इन्होंने काळियम्माळ से विवाह कर लिया।

इस दम्पति के नारायण स्वामी पुलवर्, बालकृष्ण पुलवर्, चोक्कनाथप् पुलवर् और चन्द्रशेखरप् पुलवर् नामक चार पुत्र हुए।

ये पुलवर् (विद्वान्) उपाधि से विभूषित थे। इससे मालूम पड़ता है कि इन्होंने साहित्य-सृष्टि की होगी। पर इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। ये कई वर्ष जीवित रहे।

ह० दु० स्वा०

रामानुज स्वामी

रामानुज स्वामी का आविर्भाव चैत्रमास के आर्द्रा नक्षत्र में तमिल पिंगल संवत्सर (४ अप्रैल १०१७ ई०) में मद्रास से ४० कि० मी० की दूरी पर स्थित श्री पेरुम्पुदूर में हुआ था। आपके पिता का नाम आसूरि सोमयाजी और माता का नाम कान्तिमती देवी था। बाल्यावस्था में इन्होंने अपने पिता के पास ही वेदाध्ययन किया। इसके अनन्तर ये कांचीपुरम् के निकटस्थ तिरुप्पुट्कुषि गाँव में यादवप्रकाशर् नामक पण्डित के पास चले गये। एक दिन 'तस्य यथाकप्यासम् पुण्डरीकमेवमक्षुणि' की व्याख्या करते हुए अध्यापक ने कपि+आसम् का अर्थ 'बन्दर के पृष्ठ जैसा लाल' बताया, किन्तु बालक रामानुज ने इसकी दूसरे प्रकार की व्याख्या करते हुए कम्+पिबति +इति-आसम् अर्थात् 'सूर्य-किरण से सद्य विकसित लाल कमल की तरह लाल' बताया तो अन्य छात्रों को रामानुज की व्याख्या ही ठीक प्रतीत हुई। इससे अध्यापक अप्रसन्न हो गये और भीतर ही भीतर ईर्ष्या रखने लगे।

एक बार गुरु ने छात्रों के लिए काशी-यात्रा और गंगा-स्नान का प्रबन्ध किया और उस यात्रा के बीच ही इनको मार डालने की योजना बनायी। उनके इस षड्यन्त्र का पता गोविन्द नामक दूसरे छात्र के द्वारा इन्हें लग गया। इसलिए इन्होंने चुपके से यात्रा-दल से अलग हो विन्ध्याचल से मुड़कर कांचीपुरम् की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मालूम न होने से भगवान् का ध्यान करते-करते चलने लगे तो अहीर जाति के एक दम्पति से भेंट हो गयी। उस दम्पति ने मार्ग-दर्शन करते हुए इनको प्रातःकाल कांचीपुरम् पहुँचा दिया। कई दिनों की वापसी यात्रा एक ही रात्रि में पूरी हो जाने पर इन्होंने अपने मार्ग-दर्शक दम्पति को सिर उठाकर देखा तो दोनों अन्तर्धान हो गये थे। इसे भगवान् की लीला जानकर ये गद्गद हो गये।

गुरु यादवप्रकाश यात्रा से लौटे तो उन्हें रामानुज के सकुशल कांची पहुँच जाने का पता लगा। उन्होंने अपनी ईर्ष्या छिपाकर इन्हें पढ़ाई जारी करने के लिए बुलाया। लेकिन माता कान्तिमती देवी सहमत नहीं हुईं और अपने बेटे को तिरुक्कच्चि नंबी नामक एक वैश्य जाति के गुरु के पास भेजा। नंबी को अपनी विद्वत्ता पर तनिक भी अभिमान न था। वे भगवान् के अभिषेक के लिए जल लाने का कार्य करते थे। उन्होंने किसीको अपना शिष्य नहीं बनाया। रामानुज को भी वे पक्का शिष्य न बनाकर समय-समय पर तत्त्वबोध किया करते थे।

पत्नी का स्वभाव

इसके कुछ ही वर्ष बाद रामानुज को माता-पिता का वियोग सहना पड़ा। पिता ने अपने देहान्त के पहले ही इनका विवाह एक सनातनी परिवार की लड़की तंजम्माळ से कर दिया था। उसमें जाति-कुल का बड़ा अभिमान था। एक ब्राह्मण का, वैश्य गुरु का शिष्य बनना उसे पसंद न था। किन्तु रामानुज को ब्राह्मण गुरु यादवप्रकाश की अपेक्षा वैश्य गुरु तिरुक्कच्चि नंबी श्रेष्ठ लगे। वे जाति-कुल के कारण किसीको ऊँचा मानने को तैयार

नहीं थे। पति का यह विचार पत्नी को सह्य नहीं था। इसलिए आये दिन विचार-संघर्ष हो जाता था। फिर भी रामानुज पत्नी के प्रतिकूल व्यवहारों को सहते रहे।

गुरु का आतिथ्य

श्री रामानुज की इच्छा थी कि श्री तिरुक्कच्चि नंबी के शिष्य बनें। लेकिन नंबी सहमत नहीं हुए। एक दिन इन्होंने उनसे अपने घर में भोजन करने की प्रार्थना की। नंबी ने उसे स्वीकार कर लिया। उनकी इच्छा थी कि नंबी जैसे भागवतोत्तम को भोजन कराकर उसका अवशेष स्वयं ग्रहण करें। लेकिन भगवान् की इच्छा और ही थी। श्री रामानुज ने अपनी पत्नी से कह रखा था कि नंबी भोजन के लिए आयेंगे। पत्नी भोजन तैयार कर चुकी थी। नंबी के आने में विलम्ब हुआ तो श्री रामानुज उन्हें ले आने के लिए मन्दिर की ओर गये। इतने में नंबी दूसरे मार्ग से आ गये और तंजम्माळ से बोले—"पूजा-कार्य अधूरा छोड़कर आया हूँ। इसलिए जल्दी जाना है।" नंबी तो अब्राह्मण थे। सनातनी ब्राह्मण-परिवार के नियमानुसार तंजम्माळ ने उन्हें बरामदे में ही बैठाकर खिलाया और उनके खाकर चले जाने के बाद उस स्थान को गोबर से लीप दिया। इसके बाद दुबारा स्नान करके पति के लिए भोजन बनाने लगी। लौटते समय भी रामानुज और नंबी की भेंट नहीं हुई।

गुरु से तत्त्वबोध-प्राप्ति

घर आने पर सारा विवरण जानकर ये बहुत ही खिन्न हुए। पत्नी ने तर्क किया कि उक्त व्यवहार सनातनी नियमानुसार होने से कोई अपचार नहीं हुआ। पर रामानुज ने समझा कि भगवान् के प्रति अपचार की अपेक्षा भगवान् के भक्तों के प्रति अपचार अधिक बुरा है। इसलिए वे नंबी के पास दौड़े आये और उनके बरामदे में बैठाये जाने की बात पर क्षमा याचना की। नंबी ने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि सब कुछ भगवान् की इच्छा के अनुसार ही होगा। नंबी ने उन्हें छः तत्त्व बताये—

१. महाविष्णु ही परमात्मा हैं।

२. जीवात्म-परमात्म-भेद दर्शन-भेद मात्र है अर्थात् चित् और अचित् के स्वरूप में भेद है।

३. भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है—शरणागति।

४. भगवान् की शरण में जानेवालों को अपने अन्तिम समय में उनका स्मरण करने की आवश्यकता नहीं है।

५. शरीर से प्राण के छूटते ही उनको मुक्ति मिल जायगी तथा

६. रामानुज को चाहिए कि वे आचार्य पेरिय नंबी को अपना गुरु बना लें।

श्री रामानुज ने इन छहों तत्त्वों को अपने जीवन में अपनाया।

पंच संस्कार

तिरुक्कच्चि नंबी के आदेशानुसार रामानुज ने मधुरान्तकम् जाकर आचार्य पेरिय नंबी दम्पति के दर्शन किये और द्वय की दीक्षा प्राप्त की तथा करुणा-करप्पेरुमाळ के सान्निध्य में पंच संस्कार-व्रत लिये। लक्ष्मी के द्वारा ही भगवान् की शरण में जाना तथा भगवान् और श्रीदेवी के सम्मिलित रूप की सेवा करना ही द्वय-दीक्षा है।

१. कंधों पर शंख की मुद्रा अंकित करना।

२. ललाट में श्रीचूर्ण लगाना।

३. दास्यपरक नाम ग्रहण करना।

४. श्रीमन्त्र का जप करना।

५. महालक्ष्मी के पति की आराधना करना ये ही पंच संस्कार हैं।

संन्यास-ग्रहण

वैष्णव-धर्म के सिद्धान्त के अनुसार अनुकूल पत्नी के प्राप्त होने पर भक्तों को संन्यास-ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। तंजम्माळ अनुकूल पत्नी न थी।; उसने जाति-भेद को प्रधानता देकर एक दिन

पेरिय नंबी की पत्नी को अपमानित किया और एक दिन असत्य बोलकर एक गरीब वैष्णव ब्राह्मण को भूखा ही लौटा दिया। इन कारणों से श्री रामानुज ने पत्नी को मायके भेज दिया। इसके बाद उन्होंने आळवन्दार का स्मरण करके पुष्करिणी में स्नान करके काषाय-वस्त्र धारण कर लिया तथा त्रिस्तम्भ लेकर संन्यासी हो गये और वैष्णव-धर्म का प्रचार आरम्भ किया। कुछ ही दिनों में दाशरथी नामक मुदलिपांगन, कूरेशर दम्पति, यादवप्रकाशर्, तिरुवरंगत्तु अमुदनार आदि भक्तगण इनके शिष्य हो गये। फिर श्री आळवन्दार के आदेश तथा शिष्यों की प्रार्थना मानकर ये श्रीरंगम् पहुँचे और मन्दिर का निर्वहण-कार्य स्वीकार किया। इन्होंने मन्दिर-व्यवस्था में अनेक सुधार किये। उससे कुछ लोगों ने कुपित होकर इन्हें विष देने का प्रयास किया। किन्तु श्री रंगनाथ की कृपा से ये बच गये। इन्होंने विष पिलानेवालों को क्षमा करके प्रेम तथा मधुर वचनों से उनको भी वशीभूत कर लिया।

अनेक लोगों के उद्धार हेतु स्वयं नरक का वरण

गुरु आळवन्दार ने अपने पाँच शिष्यों द्वारा श्रीरामानुज को शिक्षा-दीक्षा दिलायी। श्री रामानुज श्रीमन्त्रार्थ तथा चरमश्लोक की व्याख्या सुनने के लिए तिरुक्कोष्ठियूर नंबी के यहाँ अठारह बार गये। उनमें शिष्य-लक्षण भरपूर थे। नंबी ने उन्हें आज्ञा दी थी कि इन मन्त्रोपदेशों को गुप्त रखना और किसी को नहीं सुनाना। सुनाने पर नरक के भागी होंगे। श्री रामानुज ने सोचा—"यदि मैं इन उपदेशों को दूसरों को सुनाऊँ तो मुझ एक को ही नरक मिलेगा, पर सुननेवाले अनेक लोगों को मोक्ष प्राप्त होगा। अनेक को मोक्ष दिलाने के लिए मेरे एक का नरक जाना उचित ही है।" ऐसा सोचकर वे तिरुक्कोष्ठियूर मन्दिर के गोपुर पर चढ़ गये और ऊँचे स्वर में मन्त्रोच्चारण किया। श्री रामानुज के इस अविनय से आचार्य नंबी बहुत अप्रसन्न हुए और उन्हें बुलाकर कारण पूछा तो उन्होंने अपना उपर्युक्त विचार बताया। तब गुरु का क्रोध आनन्द में बदल गया। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि स्वयं नरक-यातना के लिए तैयार होकर दूसरों को तारने की यह नीति, परमात्म-दर्शन नाम से प्रसिद्ध होगी।

भाष्य-रचना

स्वामी रामानुज ने वेदान्तसार, वेदान्त संग्रह, वेदान्त दीप, गीता-भाष्य, गद्यत्रय (शरणागति गद्य, श्रीरंग गद्य, वैकुण्ठ गद्य), ब्रह्म-सूत्र-भाष्य आदि ग्रन्थों की रचना की। इसके अतिरिक्त श्री आळवन्दार की इच्छा-पूर्ति हेतु व्यास के ब्रह्मसूत्र की विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त के आधार पर व्याख्या भी लिखी। इसके लिए इन्होंने अपने शिष्य कूरत्तालवार के साथ काश्मीर की यात्रा करके शारदापीठ में सुरक्षित उसके प्राचीन हस्तलेखों का अध्ययन किया। इन्होंने कूरत्तालवार को आदेश दिया—"मैं भाष्य कहता जाऊँगा। तुम लिखते जाओ। लेकिन तुम्हें अर्थ समझकर लिखना है। यदि अर्थ समझने में बाधा पड़े अथवा कोई तत्त्व विवादास्पद लगे तो रुक जाना और उसका निवारण हो जाने के बाद ही लिखना।" एक स्थान पर श्री रामानुज ने व्याख्या करते हुए कहा कि जीवात्मा ज्ञानसम्पन्न है तो कूरत्तालवार लिखने से रुक गये। वे यह नहीं कह सके कि आचार्य की व्याख्या में भूल है। अतएव वे मौन रहे। रामानुज क्रोध में आकर बोले कि तुम्हें भाष्य अशुद्ध लगे तो तुम ही लिखो। इतना कहकर वे वहाँ से उठकर चले गये। तब दूसरे शिष्यों ने कूरत्तालवार से पूछा कि उनके क्रुद्ध होने पर आपने क्या समझा? आलवार ने उत्तर दिया—"सम्पत्ति स्वामी की इच्छा पर ही निर्भर है। वे मेरे स्वामी और गुरु हैं। मैं उनका दास हूँ। दास का क्या अपना भी कोई विचार होता है?" यह सुनते-सुनते गुरु लौट आये, अपनी भूल स्वीकार की और कहा—"जीवात्मा का ज्ञान स्वामी का ही है। जीवात्मा का अपना निजत्व कुछ नहीं है, अतएव जीवात्मा को ज्ञान-सम्पन्न बताना मेरी भूल थी।" कूरत्तालवार की विनम्रता से गुरु प्रसन्न हुए और भाष्य को पूरा किया।

आळवन्दार की तीन अभिलाषाओं की पूर्ति

श्री रामानुज के पूर्व श्रीरंगम् आचार्यपीठ के प्रधान आळवन्दार थे। यह पहले कहा जा चुका है कि श्री रामानुज के आने के पहले ही आळवन्दार का प्राणान्त हो गया था। रामानुज अत्यन्त दुःखी हुए। दूसरे शिष्यों ने उन्हें गुरु की अन्तिम इच्छा सुनायी और प्रधान पीठ ग्रहण करने के लिए सहमत कर लिया। इन्होंने देखा कि गुरु के मृत शरीर की तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। नंबी ने बताया कि गुरु की तीन अभिलाषाएँ थीं—

१. व्यास ऋषि के ब्रह्मसूत्र के लिए विशिष्टाद्वैत के आधार पर भाष्य सृजन करना।

२. तिरुवाय्मोलि का प्रचार करना।

३. व्यास के वंशगत नाम प्रशस्त करना।

रामानुज ने तीनों अभिलाषाओं को पूरा करने की प्रतिज्ञा की तो गुरु की उँगलियाँ अपने-आप खुलकर सीधी हो गयीं। इस अद्‌भुत लीला को देखकर उस दुःखद वातावरण में भी उपस्थित शिष्यगण और श्रद्धालु जन आश्वस्त हो गये। रामानुज ने स्वयं ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखकर गुरु की एक इच्छा पूरी की। तिरुमलै नंबी के पुत्र को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करके उसके द्वारा तिरुवाय्मोलि का व्याख्यान करवाया। फिर कूरत्तालवार के दो पुत्रों का नामकरण पराशर भट्ट और व्यास भट्ट करके गुरु की तीनों अभिलाषाएँ पूरी कर दीं।

अद्वैतवादी यज्ञमूर्ति का पराभव और दीक्षा-ग्रहण

यज्ञमूर्ति नामक एक महापण्डित अद्वैतवादी संन्यासी थे। वे बहुत घमंडी थे। इसलिए विद्वानों को चुनौती देकर कुतर्क के द्वारा उनको पराजित करके फूल उठना उनका स्वभाव बन गया था। उन्होंने रामानुज को ललकारा और कहा कि स्वयं हार जायें तो विशिष्टाद्वैत को ग्रहण करेंगे। रामानुज ने उनकी शर्त को स्वीकार करते हुए कहा कि यदि हम हार जायेंगे तो अपने मत का प्रचार करना छोड़ देंगे, पर विशिष्टाद्वैत को नहीं छोड़ेंगे। वाद-विवाद सत्रह दिन तक चला। किसीकी हार-जीत निश्चित नहीं हो सकी। सत्रहवें दिन रामानुज अत्यन्त चिन्तित अवस्था में ही सो गये। भगवान् ने स्वप्न में उनसे कहा—"चिन्ता मत करो। मायावाद का खण्डन करते हुए तर्क करो।" इतना सुनने के बाद ये जाग गये। भगवान् की कृपा पर गद्‌गद होते हुए विवाद-मण्डप में पहुँचे। उस दिन यज्ञमूर्ति ने हार मानी, वैष्णव-धर्म में दीक्षित हुए और एम्पेरुमान् नाम ग्रहण किया। आगे चलकर उन्होंने ज्ञानसार, प्रेमसार आदि ग्रन्थ रचे।

अनन्ताष्वान् की विनम्रता

गोविन्द रामानुज के मौसेरे भाई थे। वे काळहस्ती में शिव-पूजा करते थे। अनन्ताष्वान् ने उन्हें तिरुमलै-तिरुप्पति में वैष्णव-धर्म में दीक्षित कर दिया। इससे रामानुज प्रसन्न होकर तिरुमलै की यात्रा पर गये। उनका स्वागत करने स्वयं अनन्ताष्वान् आये तो रामानुज ने कहा—"आप वयोवृद्ध हैं, किसी अनुगत को भेजना पर्याप्त था।" अनन्ताष्वान् ने उत्तर दिया—"मैंने अपने से छोटे को खोजा, कोई नहीं मिला। सबके सब मुझसे बड़े हैं।" उनकी इस विनम्रता ने रामानुज को और भी वशीभूत कर दिया। अनंताषवान् के साथ कुछ दिन रहकर गोविन्द को भी अपने साथ लेकर ये श्रीरंगम् लौट आये। गोविन्द भी संन्यासी हुए और दीक्षा-नाम एम्बान् ग्रहण किया।

गुरु-पुत्र का मन-परिवर्तन

आचार्य पेरियनंबी का पुण्डरीकाक्ष नामक एक पुत्र था। वह दुर्जनों के संग में पड़ गया था। इससे आचार्य को बड़ी व्यथा होती थी। रामानुज ने अपने गुरु की व्यथा मिटाने का निश्चय करके पुण्डरीकाक्ष को बुलाकर कई प्रकार से समझाया। लेकिन उस पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह दुष्टों का संग छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। एक दिन रामानुज स्वयं उन दुष्टों के निवास पर पहुँचे और पुण्डरीकाक्ष को बुलवा भेजा। गुरु-पुत्र ने कह भेजा कि मैं तो

उनको छोड़कर आ गया हूँ। तब रामानुज ने उत्तर भेजा—"तुम मुझे छोड़ सकते हो, पर मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकूँगा?" उस समय तक रामानुज की ख्याति स्वामी रामानुजाचार्य के नाम से देशभर में व्याप्त हो गयी थी। इतने बड़े आचार्य का ऐसा प्रेममय उत्तर पाकर पुण्डरीकाक्ष का मन बदल गया। वह दुष्टों का संग छोड़कर इनका अनुयायी बन गया।

विषमय भोजन से प्राण-रक्षा

श्री रामानुज ने श्रीरंगम्-मन्दिर के कार्यों के संचालन के लिए कड़े नियम बनाये थे। उनसे कुछ कार्यकर्त्ताओं को अपने इच्छानुसार धन कमाने में बाधा पड़ी। उन लोगों ने सोचा कि जब तक रामानुज जीवित रहेंगे तब तक वे धनवान् नहीं बन सकेंगे। इसलिए उन लोगों ने उनको मार डालने का निश्चय किया और उनके भिक्षा-पात्र में विष डालने का प्रबन्ध किया। जो स्त्री भिक्षा ले आयी वह इसे जानती थी। उसने परोक्ष रूप से रामानुज को सचेत करना चाहा। इसलिए भिक्षा देने के बाद उनको घुटने टेककर नमस्कार किया। भिक्षा देने के बाद घुटने टेककर नमस्कार करना नियम-विरुद्ध है। अतः रामानुज ने उस स्त्री की दी हुई भिक्षा को फेंक दिया। तभी उन्हें मालूम हुआ कि भिक्षा में विष मिला हुआ था। लेकिन उन्होंने षड्यंत्रकारियों को दण्ड नहीं दिया, बल्कि उन्हें क्षमा करके स्वयं कुछ दिन उपवास किया। यह बात जानकर उनके गुरु पेरियनंबी तथा तिरुक्कोष्ठियूर नंबी दोनों श्रीरंगम् आये। श्री रामानुज ने कावेरी नदी के किनारे पर कड़ी धूप में गरम रेत पर दोनों को साष्टांग नमस्कार किया। इससे उनके शिष्य किडांबिआच्चान अकुला उठे और रामानुज को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। उनका प्रेम देखकर दोनों आचार्यों ने श्री रामानुज के भोजनादि के लिए उन्हींको प्रबन्धक नियुक्त किया।

उरंगाविल्लि का ज्ञानोदय

उन दिनों उरैयूर के राजा अंकलंकन नाम के एक प्रतापी व्यक्ति थे। उनका शरीर-रक्षक था—उरंगाविल्लि। उसकी पत्नी पोन्नाच्चि अत्यन्त सुन्दरी थी। विल्लि अपनी सुन्दरी पत्नी पर इतना मोहित था कि उस पर धूप पड़ने नहीं देता था। एक बार श्रीरंगम् में वसन्तोत्सव हो रहा था। उसे देखने जाते समय विल्लि आच्चि के लिए स्वयं छत्र थामकर जमीन पर दरी बिछाता हुआ जा रहा था। उसकी इस क्रिया पर लोग हँस रहे थे। पर विल्लि ने इसकी परवाह नहीं की। रामानुज ने उसे अनश्वर सौन्दर्य का साक्षात्कार कराने का निश्चय किया। उसके पास जाकर नश्वर सौन्दर्य की इतनी सेवा करने की मूर्खता की ओर संकेत करके उसे भगवान् की उत्सव-मूर्ति के पास ले गये। भगवान् भी उस दिन इतने सुन्दर दीखे मानो विल्लि को वशीभूत करना चाहते थे। विल्लि ने भगवान् का लोकोत्तर सौन्दर्य देखा तो देखता ही रह गया। फिर वह रामानुज का शिष्य बन गया तथा उरंगाविल्लि दासर् नाम से वैष्णव-धर्म स्वीकार किया। उसकी पत्नी पोन्नाच्चि ने हेमाम्बाल नाम पाया। विल्लि के साथ ही भूपति अंकलंकन और उसके कुछ बन्धु भी वैष्णव-धर्म में दीक्षित हो गये।

शिष्यों की परीक्षा

विल्लि भील जाति का था। रामानुज तो जाति-भेद के परे थे। वे नित्य स्नान करने के बाद विल्लि का हाथ थामकर आया करते थे। उच्च वंश के लोगों ने आक्षेप किया तो वे बोले—"यद्यपि उरंगाविल्लि जन्म से भील है तो भी आन्तरिक शुद्धता और भक्ति में ब्राह्मणों से बढ़कर है।" उन्होंने परीक्षा द्वारा इसे प्रमाणित करने के लिए एक विश्वस्त सेवक को बुलाकर अपने ब्राह्मण-शिष्यों के सोते समय उनके वस्त्रों से थोड़ा-थोड़ा काट लाने के लिए कहा। सेवक आचार्य के निदेशानुसार चुपके से कपड़े काट लाया। दूसरे दिन सभी शिष्य कटे हुए वस्त्र पर एक-दूसरे की निन्दा करते हुए झगड़ा करने लगे। रामानुज ने उन्हें ऐसी छोटी-सी बात के लिए झगड़ा करने पर फटकारा। फिर उन्होंने कुछ भक्त शिष्यों से कहा कि

तुम सब रात के समय विल्लि के घर जाकर हेमाम्बाल के गहनों को चुरा लाओ। शिष्य जब हेमाम्बाल के गहनों को एक तरफ से चुरा रहे थे तब वह जाग गयी। उसने जान लिया कि चोर भगवद्-भक्त हैं। इसलिए उसने करवट बदलकर दूसरे पार्श्व में धारण किये हुए गहनों को दिखाया। लेकिन भक्तगण केवल एक ओर के गहने लेकर भाग गये। उरंगाविल्लि मठ से घर आये तो अपनी पत्नी को जागी हुई तथा उसके एक पार्श्व के गहनों को गायब जानकर विस्मित हुए। हेमा ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया तो विल्लि ने आज्ञा दी कि तुम दूसरे पार्श्व के गहनों को भी ले जाकर उन भक्तों को दे आओ। हेमाम्बाल वैसा ही करने आयी तो रामानुज ने अपने शिष्यों को उन दम्पति की महान् भक्ति और हार्दिक शुद्धता की ओर संकेत किया। कपड़े के कट जाने पर झगड़ा करनेवाले ब्राह्मण-शिष्य लज्जित हो गये।

विल्लि से विवरण बताते समय हेमाम्बाल ने कहा कि मैंने अपने गहनों को ले जाने दिया। 'मैंने' शब्द का प्रयोग विल्लि को खटका। वह पत्नी से बोला—"तुममें अहंकार आ गया है, ऐसी स्त्री के साथ मैं जीवन बिताना नहीं चाहता, तुम्हारे और किसीसे विवाह कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।" इन कठोर वचनों को सुनकर हेमाम्बाल व्याकुल हो गयी और अपनी भूल के लिए पति से क्षमा माँगी। लेकिन विल्लि ने क्षमा करने से इनकार कर दिया और अलग रहने लगा।

रामानुज का न्याय

विल्लि और हेमा के अलग-अलग रहने की बात रामानुज को मालूम हुई। विल्लि का वैष्णव-सिद्धान्त उन्हें प्रिय लगने पर भी वे यह मानते थे कि हेमा में वास्तव में अहंकार नहीं है। उन्होंने दम्पति को अपने पास बुलाया और शिष्यों के बीच उनके मनमुटाव का कारण बताया। विल्लि बोला—"वह मेरी पत्नी बने रहने योग्य नहीं है। उसके पुनर्विवाह कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" स्वामीजी ने कहा—"तब तो मैं उसका पुनर्विवाह करा दूँगा।" यह सुनकर विल्लि चिन्तित हुआ और हेमा भी दुःखी हुई। स्वामीजी बोले—"मैंने हेमा के योग्य पुरुष के बारे में बार-बार सोचा और इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि केवल विल्लिदासर् ही उसके योग्य है। इसलिए हेमा को विल्लिदासर् के हाथ में दान देकर उसका पुनर्विवाह करा देता हूँ।" पोन्नाच्चि ने सिर उठाकर स्वामीजी को कृतज्ञता से देखा और विल्लि ने सिर झुका लिया। सर्वत्र हर्षोल्लास छा गया। यतिराज रामानुज बोले—"पति-पत्नी का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा जैसा है। उसे मिटाया नहीं जा सकता।" इस घटना के बाद हेमा और विल्लिदासर् नव विवाहितों की भाँति पूर्ववत् प्रेम से रहने लगे।

श्रम की महत्ता

चोल-भूपति अकलंक के महल में उरंगाविल्लि के भानजे चेंडविल्लि और वेंर्डविल्लि सेवा कर रहे थे। रामानुज के शिष्य बनने के बाद वे अपना वेतन रामानुज का मन्दिर और धर्म-कार्य में लगाने के लिए अर्पित कर देते थे। जब वे सेवा से निवृत्त हो गये तब भी भूपति उनके राज-विश्वास और धर्मकार्यों से प्रसन्न होकर उन्हें वेतन भेजा करता था और वे उसे भी श्री रामानुज को सौंप देते थे। किन्तु जब स्वामीजी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने उसे लेने से अस्वीकार कर दिया और बोले—"परिश्रम के बिना प्राप्त धन भगवद्-सेवा के लिए उपयोगी नहीं होगा।" दोनों बन्धुओं ने उस धनराशि को राजा के पास लौटा दिया। रामानुज स्वामी के शील और उत्तम धर्म-मार्ग-दर्शन से प्रभावित होकर उक्त भूपति भी राजपद त्यागकर उनका शिष्य बन गया।

श्रीरंगम् मन्दिर की व्यवस्था

स्वामीजी ने मन्दिर के चारों तरफ वीथियों और घरों का निर्माण कराया। उन घरों में मन्दिर के सेवकों को बसाया। उसके बाद कावेरी-तट के रक्षक, कुम्भकार, बढ़ई, चित्रकार, संगीतकार, नृत्यकार, वैद्य, गौ-पालक आदि धंधे करनेवालों

के लिए अलग-अलग निवास बनवा दिये। वेद-पाठशालाएँ, जीयर-मठ, दिव्य-प्रबन्ध बोधनालय, धार्मिक ग्रन्थों का पुस्तकालय आदि मन्दिर के निकट ही स्थापित किये और धर्म-चर्चा, वार्ताएँ, उत्सव आदि के संचालन के लिए उचित प्रबन्ध किये। कला तथा सामाजिक सेवा के लिए भी मन्दिर को केन्द्र बनाया। उनके द्वारा स्थापित व्यवस्था के अनुसार आज भी वे सेवाएँ निर्विघ्न हो रही हैं।

अछूत स्त्री का समादर

एक बार रामानुज स्वामी तिरुवालित्तिरु नगरी में अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे। तब एक अछूत स्त्री उस ओर आयी। शिष्यों ने उसे हट जाने के लिए कहा तो उसने उनसे प्रश्न किया—"कहाँ हटूँ ? सारा संसार ही त्रिविक्रम भगवान् की सन्निधि में है।" स्वामीजी उस स्त्री के प्रश्न पर विस्मित हुए और अपने शिष्यों की ओर से क्षमा माँगी। फिर उस स्त्री की इच्छा के अनुसार उसे वैष्णव-धर्म में दीक्षित किया। उन्होंने अपनी तीर्थ-यात्रा के दौरान देखा कि सामान्य जनों में भी कितना गहरा ज्ञान है ?

कूरत्ताषवान और पेरियनंबी का अद्भुत त्याग

श्रीरंगम् के मन्दिर के अभूतपूर्व विकास और श्री रामानुज की ख्याति से चोल राजा को बड़ी ईर्ष्या हुई। वह शैव-धर्म का तीव्र पक्षधर था। उसने 'शिव से बढ़कर कोई देव नहीं' ऐसा एक घोषणा-पत्र तैयार करके सभी धर्मों के आचार्यों से हस्ताक्षर लिये और रामानुजाचार्य को भी बुला भेजा। उस समय आचार्य स्नान करने गये थे। कूरत्ताषवान ने आगन्तुक का सन्देश जाना। उनको भय हुआ कि रामानुजाचार्य उसमें हस्ताक्षर करने के लिए सहमत नहीं होंगे और राजा के द्वारा दण्डित होंगे। इसलिए उन्होंने आचार्य की अनुपस्थिति को अच्छा अवसर जानकर उनका काषाय स्वयं पहन लिया और उनका त्रिस्तम्भ लेकर राजमहल की ओर रवाना हो गये। पेरियनंबी भी उनके साथ गये। राजा ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। पर उन्होंने इनकार कर दिया। इतने में नालूरान नामक एक वैष्णव-द्रोही के द्वारा राजा को मालूम हुआ कि आगन्तुक रामानुज नहीं हैं। वे उनके शिष्य कूरत्ताषवान और गुरु पेरियनंबी हैं। राजा ने तुरन्त रामानुज को खोजकर पकड़ लाने के लिए सैनिकों को चारों ओर भेजा और कूरत्ताषवान की आँखों को निकाल लेने की आज्ञा दी। कूरत्ताषवान ने पापी को देखने के प्रायश्चित्तस्वरूप अपनी आँखों को स्वयं फोड़ लिया। राजा ने विचलित न होकर पेरियनंबी की भी आँखों को निकलवाकर दोनों को बाहर लाकर छोड़ दिया। पेरियनंबी की पुत्री अत्तुषाय साथ आयी थी। वह एक सेविका की मदद से दोनों महान् त्यागी पुरुषों को अपने साथ ले गयी।

श्रीरंगम् का त्याग

राजा के सिपाहियों से बचकर स्वामी रामानुजाचार्य नीलगिरि पहुँचे। वहाँ के कोल-किरातों ने उनका और उनके शिष्यों का स्वागत-सत्कार किया। फिर वे तोण्डनूर गये। वहाँ का राजा होयसाल-नरेश विट्ठल देवराय था। उसकी पुत्री पिशाच के वश में थी। नरेश ने रामानुज का आगमन जानकर उन्हें महल में निमन्त्रित किया और उनके श्रीचरणामृत को अपनी पुत्री पर छिटकाया। तुरंत ही वह पिशाच की पकड़ से छूट गयी। नरेश ने अत्यधिक हर्षित होकर श्री रामानुज से वैष्णव-धर्म की दीक्षा ग्रहण की, तब उसका नाम विष्णुवर्द्धन हो गया। वहाँ से ये यादवगिरि गये तो एक झाड़ी में एक सुन्दर विष्णु-मूर्ति को देखा। विष्णुवर्द्धन ने उस मूर्ति को केन्द्रित करके एक मन्दिर बनवाया।

अस्पृश्यों का मन्दिर-प्रवेश

स्वामी रामानुज धर्माचार्य होने के साथ ही उच्च कोटि के समाज-सुधारक भी थे। अछूतों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं का तिरस्कारपूर्ण व्यवहार और पुजारियों द्वारा उनके मन्दिर-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने को उन्होंने धर्म-विरुद्ध आचरण घोषित किया। जब वे सुल्तान के यहाँ से स्वर्ण-मुद्राएँ तथा

उत्सव-मूर्ति लेकर यादवगिरि के पास आ रहे थे, तब कुछ डाकुओं ने उन्हें घेर लिया। उस समय वहाँ के कोल-किरात आदि अछूत लोग दौड़े आये और डाकुओं को मार भगाया। उन्होंने आचार्य और उनके शिष्यों को प्रेम के साथ अपनी कुटियों में ले जाकर सत्कार किया। स्वामीजी ने घोषित किया कि तिरुनारायणपुरम् का मन्दिर बिना भेद-भाव के सबके लिए खुला रहेगा और अस्पृश्य कहलानेवाले बेखटक मन्दिर में जाकर दर्शन कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त इन्होंने वहाँ एक तालाब बनबाकर उसके जल को सभी वर्णों के लिए पेय ठहराया। वहाँ पानी लेने की मनाही किसीको भी नहीं है। जब स्वामीजी वहाँ से बिदा हुए तब उन अस्पृश्यों ने बहुत दुःख प्रकट किया। इन्होंने अपनी एक मूर्ति बनवाकर उन्हें आश्वस्त किया।

श्रीरंगम् को वापसी

चोल राजा की क्रूरता के शिकार होकर पेरियनंबी अंधे हुए तो उनका शरीर शिथिल हो गया। वे कूरत्ताषवान की गोद में सिर रखे हुए वैकुण्ठधाम पहुँच गये। कूरत्ताषवान बरसों तक श्रीरंगम् से दूर रहे। जब चोल राजा मर गया तब वे श्रीरंगम् लौटे। राजा की मृत्यु का समाचार पाकर रामानुज भी श्रीरंगम् आये। आते ही दौड़कर आषवान से लिपटकर रो पड़े। आषवान के त्याग ने उन्हें बहुत ही रुला दिया। एक संन्यासी की ऐसी विह्वलता देखकर सबको दुःख और आश्चर्य हुआ। स्वामी रामानुज ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे कूरत्ताषवान को फिर से आँखें प्रदान करें। लेकिन आषवान ने उन्हें रोककर प्रार्थना को बदल दिया कि बाह्य चक्षुओं की अपेक्षा ज्ञान-चक्षु दें। इतना ही नहीं, उन्होंने नालूरान को भी क्षमा करके उसके लिए भी ज्ञान-चक्षु की याचना की।

वैकुण्ठ-प्राप्ति

श्री वैष्णव-धर्म का व्यापक प्रचार हो गया था। जाति-भेद की दीवारें आचार्यवर रामानुज स्वामी के उदार मानवतावादी सिद्धान्तों से टकराकर प्रायः ध्वस्त हो गयी थीं। श्रीरंगम् वैष्णवों का प्रधान केन्द्र बन गया। स्वामीजी एक सौ बीस वर्ष धराधाम पर विद्यमान रहे। परम शिष्य कूरत्ताषवान, उरंगाविल्लि आदि इनके सामने ही परमपद पा गये। आचार्य ने मठ और मन्दिर के संचालन की उत्कृष्ट व्यवस्था कर दी। अपने जीवन के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने के बाद एक दिन एम्बार की गोद में सिर तथा वटुक नंबी की गोद में पैर रखे हुए वे परमाराध्य के दिव्यधाम में पहुँच गये। यह घटना ११३७ ई० में घटी। मध्यकालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक अव्यवस्था से सन्तप्त जनता को भक्ति की अमृत-वर्षा से नवजीवन प्रदान करनेवाले इस युग-प्रवर्तक महापुरुष की लीला-भूमि होने का गौरव प्राप्त कर भारत-वसुन्धरा धन्य हो गयी।

श्री रामानुज की कोई तमिल-रचना प्राप्त नहीं है। उनकी सभी कृतियाँ संस्कृत में हैं। उनसे कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

श्रीरंग गद्यम् से—

नवानुभूति संभूति प्रीतिकारित दासताम्।
देहि मे कृपया नाथ न जाने गतिमन्यथा।।
सर्वावस्थोचिताशेष शेषतैक रतिस्तव।
भवेयं पुण्डरीकाक्ष! त्वमेवैवं कुरुष्व माम्।।

'भगवन्! अपनी अनुभूति से उत्पन्न प्रीतिदायक कैंकर्य करने का भाग्य मुझे करुणापूर्वक प्रदान करो। मेरे लिए और कोई गति नहीं है। हे पुण्डरीकाक्ष! मुझे ऐसा बनाओ कि मैं सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार से तुम्हारी सेवा करने में ही रुचि रखूँ।'

कदा मां भगवान् स्वकीयया अतिशीतलया दृशा अवलोक्य स्निग्धगम्भीरमधुरया गिरा परिचर्यायामाज्ञापयिष्यति?

'कब भगवान् अपने सुशीतल नेत्रों से कटाक्ष करके प्रेमगाम्भीर्य और माधुर्ययुक्त अपने वचनों से मुझे सेवा में लगने की आज्ञा देंगे?'

श्री रामानुज ने जिन तत्त्वों को अपने आचरण के द्वारा चरितार्थ कर दिखाया, उन्हींको वैष्णव जनों ने संस्कार के रूप में निर्धारित किया और फैलाया। भगवान् विष्णु की आराधना के लिए इन संस्कारों को अनिवार्य घोषित किया गया। ये संस्कार निम्नलिखित हैं :

रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टाऽनृतादिना।
हिंसादिरहितः कायः केशवाराधनत्रयम्॥

'राग-द्वेष आदि से रहित हृदय, असत्य, कपट आदि से अदूषित वाणी, हिंसा, अनाचार आदि से रहित शरीर—ये तीनों ही केशव की आराधना के प्रमुख साधन हैं।'

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः।
तृतीयं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च॥
शमस्तु पञ्चमं पुष्पं ध्यानं ज्ञानविशेषतः।
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पं एतैस्तुष्यति केशवः॥

'अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह, भूतदया, क्षमा, संयम, ध्यान, तत्त्वज्ञान, सत्यभाषिता—ये आठों भगवान् केशव के पूजार्ह और प्रिय पुष्प हैं।'

भक्ति के क्षेत्र में समत्ववादी विचारधारा की झलक उनकी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

न शूद्रा भगवद्भक्ताः विप्राः भागवताः स्मृताः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्राः ये ह्यभक्ता जनार्दने॥

'भगवान् जनार्दन कृष्ण के भक्तों में न कोई शूद्र है, न ब्राह्मण ही है। वे सब 'भागवत' माने जाते हैं। भगवान् जनार्दन में भक्ति न रखनेवाले ही शूद्र हैं, भले ही वे कुलीन क्यों न हों।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य रामानुज श्रीकृष्ण को विष्णु से अभिन्न और स्वयं ब्रह्म मानते थे। श्रीभाष्य के निम्नांकित उद्धरण से उनकी एतद्विषयक मान्यता स्पष्ट हो जाती है—

कृष्णस्य हि कृते भूतमिदं विश्वं चराचरम् (४१ अ० ३) इति वचने जीवस्यापि कृष्णार्थत्वं विवक्षितमिति सिध्यति।

सूक्ते कृष्णं नियानं (४७) विष्णोस्तिष्ठन्ति (३६) इति कृतिद्वये कृष्णविष्णुशब्दद्वयमात्रमूलम्।

ह० दु० स्वा०

विल्लिपुत्तूरार

विल्लिपुत्तूरार तमिल-महाभारत 'विल्लि-भारतम्' के रचयिता महाकवि हैं। इनका जन्म तिरुमुनैप्पाडि प्रदेश में शनियूर नामक स्थान में श्री वीरराघवाचार्य के सुपुत्र के रूप में १४वीं शती ई० में हुआ था। इनके पिता विल्लिपुत्तूर-निवासी परम भक्त पेरियालवार के प्रति अगाध भक्ति रखते थे। इसलिए उन्होंने पुत्र का नाम विल्लिपुत्तूरन् रखा। तमिल के सुप्रसिद्ध कविद्वय ने वरपतियाट्कोंडान नामक राजा की स्तुति की है। उस राजा ने सन् १३३१ से १३८३ ई० तक शासन किया था। विल्लिपुत्तूरार के उनके दरबारी कवि नियुक्त होने की घटना से यह सिद्ध होता है कि इनका जीवनकाल चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ही है।

इन्होंने छोटी उम्र में ही सुयोग्य गुरु के पास रहकर गद्य, पद्य तथा नाट्य तीनों काव्य-रूपों के माध्यम से तमिल का गहरा अध्ययन किया। साथ ही संस्कृत के भी गम्भीर विद्वान् बने। इन्होंने अपने काव्य में संस्कृत-शब्दों का जितना प्रयोग किया, उतना शायद ही किसी अन्य भक्त ने किया हो। इनमें तत्सम शब्दों को तद्भव का रूप देने की अपूर्व क्षमता थी। अतः संस्कृत-शब्दों को तमिल-व्याकरण के अनुरूप मोड़कर नया रूप प्रदान किया और गम्भीरतम भावों को भी सहजग्राह्य बनाकर व्यक्त करने में सफल हो सके। कंब-रामायण की तरह विल्लि-भारतम् भी तमिल के श्रेष्ठ काव्यों में स्थान रखता है।

आशु, मधुर, चित्रा, विस्तार आदि चारों प्रकार की कविताएँ करने में कुशल होने के कारण ये सारे तमिलनाडु में विख्यात हो गये। चेर, चोल, पाण्डिय आदि वंशों के राजाओं ने इनका आदर-सम्मान किया। तिरुमुनैप्पाड़ि के शासक श्री वरपतियाट्कोंडान ने इन्हें निमन्त्रित करके अपना दरबारी कवि नियुक्त किया और इनसे प्रार्थना की कि आप संस्कृत में वेदव्यास-रचित महाभारत को तमिल के वर्णवृत्तों में रूपान्तरित करें। महाभारत में श्रीकृष्ण का चरित्र और लीलाएँ प्रधान होने के कारण इन्होंने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और १० पर्व तथा ४३३९ वृत्तछन्दों में उसकी रचना की। इस भक्तवर ने आदिपर्व, सभापर्व, आरण्यपर्व, विराट्पर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिकपर्व ही लिखे। उसके आगे लिखने पर श्रीकृष्ण के देहान्त का वर्णन भी करना पड़ेगा, ऐसा सोचकर आपने परवर्ती घटनाओं का उल्लेख न करके कथा की मांगलिक समाप्ति कर दी। इन्होंने प्रत्येक पर्व के प्रत्येक अध्याय का प्रारम्भ श्रीकृष्ण की स्तुति करके ही किया है। अन्य देवी-देवताओं की स्तुति प्रसंगवश ही की है।

वैष्णव होते हुए भी इनकी शिव में अपार आस्था थी। इन्होंने अपने काव्य के प्रारम्भ में विघ्नेश्वर की स्तुति काव्य-परिपाटी के अनुसार की है। अर्जुन के तीर्थयात्रा सर्ग में एक सच्चे शिव-भक्त की भाँति इन्होंने शिव का गुणगान किया है। श्रीकृष्ण के द्वारा शिव की स्तुति और शिव के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति तथा प्रसंगवश सभी देवी-देवताओं की प्रशंसा इनकी मानसिक उदारता के द्योतक हैं। यद्यपि महाविष्णु के सभी अवतारों के प्रति इनकी श्रद्धा स्पष्ट है तो भी श्रीकृष्ण के प्रति अपूर्व अनुराग इनकी रचना में आद्योपान्त व्यंजित हुआ है। उसमें किसी भी देवी-देवता के प्रति पक्षपात या निरादर का भाव नहीं है। धार्मिक समन्वय के लिए इनका महाभारत आदर्श ग्रन्थ है।

इन्हें अपनी विद्वत्ता पर अधिक अभिमान था। अतएव दूसरे विद्वानों को चुनौती देना और उनके पराजित होने पर उनका कान पकड़कर खींचते हुए अपमानित करना इनका स्वभाव था। इनकी विद्वत्ता की इतनी धाक थी कि राजा लोग भी इनके अभिमान-प्रदर्शन में बाधा नहीं डालते थे। झूठे विद्वत्ता-प्रदर्शकों को ऐसा दण्ड देना अनुचित नहीं माना जाता था। इनके पुत्र वरन्तरुवार भी ख्यातिप्राप्त विद्वान् हुए। इससे अधिक कोई वृत्तान्त इनके सम्बन्ध में नहीं मिलता। यहाँ इनकी रचनाओं से दो छन्द उद्धृत हैं—

(१)

तन्त मुरियि लवरवैत्त तयिर पाल वेण्णेय एट्टामर
कुन्ति युरलिन मिसैयेरि यिळंगोवियर मुन कूत्ताडि
तन्दन मनैयि लसोदै यिरु नयनंङ् कळिक्क विळैयाड़ि
मैन्द निरुदा ळोत्तनाळु मरवादारे पिरवादार!

'अपने-अपने छीकों पर उन-उन गोपिकाओं के रखे हुए दही, दूध, मक्खन तक अपने हाथों की पहुँच न होने से. चुरानेवाले, ऊखलों पर घुटनों के बल चढ़कर, उन गोप-युवतियों के सामने विविध प्रकार के नर्तन करके उन्हें मोहित करनेवाले तथा यशोदा के दोनों नेत्रों को आनन्द पहुँचानेवाले बालकृष्ण का ध्यान जो सदा करते रहते हैं उन्हें दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता।'

(२)

आरण कर्पित माधव वच्युत वाषि यिडैत्तुयिलुङ्
कारण चिर्गुण रूप मलर्कोडि कादन मनत्तुरैयु
नारण वर्पुद वानवारुक्कोरु नायक निर्पाणियुम्
बारण मुत्तिविशाल तर्लत्तिड़ै वाषवुर वैत्तवने।

'हे वेदों में बताये हुए नियमधारी! माधव, अच्युत, सागर-बीच निद्रा करनेवाले, सर्व प्रपञ्चों के आदिमूल, चिद्गुणरूपधारी नारायण, पुष्पलता जैसी राधा के हृदय-कमल में निवास करनेवाले अद्भुत

शक्तिसम्पन्न कृष्ण, देवताओं के अपूर्व, अलौकिक नायक ! अपने पूजक गज को भी विशाल मुक्ति प्रदान करनेवाले देवता तुम हो हो।'

हृ० दु० स्वा०

वेंकटरमण

श्री वेंकटरमण का यश तमिलनाडु में विविध रूपों में फैला था। ये उच्च सरकारी अफ़सर थे। पन्द्रह भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त करके परिचितों से उनकी भाषा में ही बोलने की सामर्थ्य रखते थे। सौलभ्य इनका विशेष गुण था। इनका व्यक्तित्व आकर्षक था। सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे। इसलिए जो भी इनके सम्पर्क में आता था, वशीभूत हो जाता था। लेकिन यह सब तो सामान्य बातें थीं। इनकी महत्ता का सबसे बड़ा कारण है—इनकी प्रगाढ़ भक्ति। ये अपने को व्रज-गोपी मानकर राधा-कृष्ण के मधुर लीला-रसास्वादन में लीन रहते थे।

ये अरणा नाम से ही जाने जाते थे। इनका पूरा नाम था—वेंकटरमणन्। सन् १९०८ ई० में इन्होंने तिरुवल्लिक्केणी में भजन करना आरम्भ किया। उसके कुछ महीने बाद एक बुधवार की रात को जब ये खुली छत पर अकेले लेटे थे, तब गिरिधर दासी मीरा ने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये। उस क्षण से ही ये अपने को व्रज-गोपी मानने लगे। कहा जाता है कि स्वयं मीरा ने इन्हें 'अरणा' कहकर पुकारा था।

श्री दुरैस्वामी अय्यँगार नामक एक भक्त अरणा को ही अपना गुरु मानते थे और उनके ही सम्पर्क में रहकर 'गोपीभाव' से आराधना किया करते थे। अरणा सदा उन्मत्त प्रेमभाव में डूबे रहते थे। सरकारी सेवा से निवृत्त होते ही पूर्णतया भजन में लग गये। अन्तिम साँस लेते समय उन्होंने वेंकिट्टु नामक एक श्रद्धालु से कहा कि "मेरी जीभ पर 'राधा-कृष्ण' नाम कई बार लिखो।" वेंकिट्टु लिखते जाते थे और अरणा प्रेम-रसास्वादन में आनन्दमग्न रहते थे। इसी आनन्दावस्था में ये गोलोकवासी हो गये।

इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं है।

हृ० दु० स्वा०

वेदान्त देशिकर

रामानुज स्वामी के बाद वैष्णव-सिद्धान्त का व्यापक प्रचार करनेवालों में वेदान्त देशिकर ने विशेष ख्याति अर्जित की। ये १३वीं शताब्दी में विद्यमान थे। इनका जन्म कांचीपुरम् के पास तूप्पुल नामक गाँव में भाद्रपद के श्रवण नक्षत्र में हुआ था। पिता का नाम अनन्तसूरि और माता का तोताद्रि अम्मैयार था। इनको भगवान् की पूजा में प्रयुक्त घण्टे का अंश माना जाता है। माँ-बाप ने इनका नाम वेंकटनाथन रखा।

इन्होंने तिरुमंगै से विवाह करके सुखमय दाम्पत्य-जीवन व्यतीत किया। बीस वर्ष की आयु में ही अपने मामा किडांबि अप्पुळ्ळार के निकट रहकर विद्याध्ययन करते हुए इन्होंने संस्कृत और तमिल दोनों भाषाओं में विशेष पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। मामा से ही गरुडमन्त्रोपदेश लिया और दक्षिण आर्काट जिले में तिरुवयिन्दिपुरम् में स्थित भगवान् हयग्रीव के विशेष भक्त बने। वहीं पर गरुड़ोपासना करके गरुड़देव के दर्शन प्राप्त किये और उन्हींसे हयग्रीव मन्त्रोपदेश ग्रहण किया। इस तरह इन्हें भगवद्-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने अपनी रचनाओं में स्वयं इन अद्भुत घटनाओं का उल्लेख किया है।

ये सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। इन्होंने शास्त्रार्थ में अषगिय मणवाळ नायनार् और विद्यारण्यर् नामक दो प्रसिद्ध विद्वानों को परास्त किया था। इन्होंने विपुल साहित्य-रचना की। इनकी कुछ रचनाओं के नाम हैं—

१. नवरत्नमाला
२. तिरुच्चिन्नमाला
३. गीतार्थ संग्रह
४. प्रबन्धसार
५. अर्थपंचक
६. मुम्मणिक्कोवै
७. परमपद सोपान
८. तिरुमन्त्र सुरुक्कम्
९. पन्निरु तिरुनामम्
१०. पदिनेषु रहस्यम्
११. अमृतरंजनी
१२. श्री वैष्णव-दिनचर्या
१३. अडैक्कलप् पत्तु
१४. परमत भंग
१५ अंदिगिरि मान्मियम्
१६. पादुका सहस्रम् आदि

ये कृतियाँ प्रायः तमिल और संस्कृत-मिश्रित 'मणिप्रवाल' शैली में लिखी गयी हैं। इनका एकमात्र लक्ष्य श्री रामानुज के विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त की प्रतिस्थापना करना था। यद्यपि देशिकन सभी वैष्णव-गुरुओं का सामान्य नाम है तो भी वह इन्हींके शुभनाम का सूचक हो गया है। इन्होंने शरणागति-तत्त्व को विशेष मोक्ष-मार्ग के रूप में प्रतिपादित किया। 'लक्ष्मीसमेत महाविष्णु ही देवतास्वरूप हैं' इसे सिद्ध किया और उभय वेदान्त की एकता का उपदेश दिया।

इनके सिद्धान्तों के अनुयायी 'वड़कलै' वैष्णव कहलाते हैं। तमिलनाडु में वैष्णवों की दो शाखाएँ हैं—१. वड़कलै और २. तेन्कलै। सामान्यतया 'वड़कलै' वाले संस्कृत-मन्त्रों का उपयोग करते हैं और 'तेन्कलै' वाले तमिल-गीतों का। वड़कलै वैष्णव गुरु-स्मरण और संकल्प में वेदान्त देशिकर का नाम लेते हैं। तेन्कलै वैष्णवों में भी इनके अनेक शिष्य हैं।

वेदान्त देशिकर की तमिल और संस्कृत-रचनाओं से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

वंचनैसेय पूतनैयै मलियुंचाट्टै
मल्लरैयोर मदकळिट्रै वानोरंजुङ्
कंजनैमुन कडिन्दवनि भारन् तीर्त्त
कावलने कोवलनाय् निन्ड्र कोवे
अंजनमुंङ् कायाबु मनैय मेनि
अडियवर्क्कु मेय्यने अयिन्दै वाषुम्
मंजनवे अरुळपोषियुम् वळ्ळले निन्
वडिवषगु मरवादार् पिरवादारे ॥

'वञ्चना करनेवाली पूतना को द्वन्द्व के लिए ललकारनेवाले, आक्रमणकारी दुष्ट द्वयों को, उन्मत्त हाथी को तथा देवताओं को भयभीत करनेवाले, कंस को मारकर अवनि का भार उतारकर भक्त जनों के रक्षक बनकर खड़े रहनेवाले हे गोपाल-कृष्ण! हे मेरे राजा! तिरुवयिन्दपुरम् मन्दिर में स्थित हे देवनायक! दुरित करुणा करनेवाले हे कृपालु भगवन्! अंजनवर्ण शरीर से युक्त तुम्हारा सौन्दर्य सदा स्मरणीय है। जो उस सौन्दर्य का विस्मरण नहीं करते वे पुनर्जन्म नहीं लेते।'

× × ×

देशोत्तारिल्लै येनुन् देय्व नायकने
वाशक्कुषल मामलराळ् मणवाळने
वाशित्तेषु मन्मथनाने मणर् तोप्पिल्
माशिक् कडलाड़ि मगिष्न्दु वरुवीरे !

'विश्वभर में अपना प्रतिद्वन्द्वी न रखनेवाले हे अनुपम देव-नायक, सुगन्धित केशयुक्त पद्मासनी के पतिदेव कृष्ण! मेरे द्वारा सुप्रभात-पठन होते ही उठकर आओ। मदन को परास्त करनेवाले मेरे भगवन्! रेतीले समुद्र-तीर से होकर सागर-जल में स्नान करके माघ महीने के माघी उत्सव का आनन्द प्राप्त करो।' (माघ महीने में माघ नक्षत्र का दिन तमिलनाडु में एक विशिष्ट उत्सव का पर्व माना जाता है। उस दिन समुद्र-स्नान करने का नियम होता है। इसलिए भक्तवर वेदान्त देशिक भी भगवान् को समुद्र-स्नान करने के लिए प्रेरित करते हैं।)

• • •

लीलायष्टिम् करकिसलये दक्षिणे न्यस्तधन्याम्
अंशे देव्याः फुलकरुचिरे सन्निविष्टान्यबाहुः।

मेघश्यामो जयति ललितो मेखलादत्तवेणुः
कुञ्जापीठस्फुरितशिखरो गोपिकान्या भुजङ्गः॥

× × ×

मरै कोण्ड मंगैयिनै विषिकोण्ड नील
मदनोडु मालोन्तन् मरैक्कण्णिन् सेव्वि ।
विरै तन्त तुळवोडु मिणैगिन्ड्र कण्डु
इच्चेर्त्ति इच्चेर्त्ति इच्चेर्त्ति वाषग ॥

'पर्वत प्रादेशिक कन्या के साथ मेघश्याम वर्ण के कमलनयन जब विहार करते हुए लाल अधरोंवाली उस बाला को अपने सुन्दर नेत्रों से प्रेम से निहारते हैं तब रति-मन्मथ की जोड़ी को भी परास्त कर देते हैं। ऐसी इस जोड़ी की, इस जोड़ी की, इस जोड़ी की जय हो, जय हो।'

श्री वेदान्त (निगमान्त) देशिकन के गीतों से भी दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

वंचनै सेय् पूतनैयै माय्त्तार् वन्दार्
मल्लर् मद करिणाळ मलैन्दार् वन्दार्
कंचनैप्पोर् कडुंचिनत्तार् कडिन्दार् वन्दार्

• • •

पंचवरै पल वगैयुम् कात्तार् वन्दार्
पांचालि कुषल् मुडित्तार् वन्दार् ।

'वञ्चना करनेवाली पूतना को मार डालनेवाले आये। द्वन्द्व-युद्ध में मल्लों एवं मदान्ध हाथी को गिरानेवाले आये। कंस को कठोर समर में वध कर देनेवाले आये। पंच पाण्डवों की अनेक प्रकार से रक्षा करनेवाले आये और पाञ्चाली की प्रतिज्ञा पूरी करवाकर उसके केशों की वेणी लगवानेवाले आये।'

× × ×

अनैत्तुलगुङ् काक्कुम् अरुळाळर् वन्दार्
अनैत्तुक्कुम् अधिपतियाय् निपार वन्दार्
तिनैत्तनैयुम् तिरुमगळै विडादार वन्दार्

× × ×

एनक्किवर् नानिव्र्क् केन्न विनियार वन्दार्
एषत्नोन्ड्रिल् तिगष निन्ड्रार् वन्दार्

'सारे संसार की रक्षा करनेवाले कृपालु आये, सबके अधिपति के रूप में विराजनेवाले आये, रंचमात्र भी लक्ष्मी से विलग न होनेवाले आये। मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं–ऐसा मधुर भाव जगानेवाले आये और श्री नामक एकाक्षर के पूर्णस्वरूप भगवान् आये।'

ह० दु० स्वा०

शुद्धानन्द भारतियार

शुद्धानन्द भारतियार का जन्म दिनांक ११ मई १८८७ ई० को रामनाथपुरम् जिले के शिवगंगा नामक राज्य में हुआ था। बाल्यावस्था से ही इनका मन देश-भक्ति और भगवदाराधन में लग गया था। अतएव इनकी कविताओं में देश-भक्ति और भगवद्भक्ति, विशेषकर कृष्ण-भक्ति, दोनों का सुन्दर समावेश हुआ है। भक्तिभावित गीतों की रचना इन्होंने अशिक्षित जनता को हिन्दुत्व की महिमा समझाने के लिए की है। यद्यपि ये पूर्णतया राष्ट्रीयतावादी हैं और सर्वधर्म-समन्वय की भावना इनकी देश-भक्ति का आधार है तो भी इनका मन अपने धर्म के देवी-देवताओं के प्रति ही अधिक प्रवृत्त हुआ है। इनमें भी विष्णु और कृष्ण के प्रति इनकी भक्ति विशेषरूपेण स्फुरित हुई है। इन्होंने श्री विल्लिपुत्तूर, मदुरै के पास के अषगर कोविल, तिरुनेलवेली के नव तिरुप्पति नामक नौ विष्णु-स्थलों में से आलवार तिरुनगरी, श्री वैकुण्ठम् तथा केरल में स्थित पद्मनाभम्, शबरीमलै, आन्ध्र प्रदेश के तिरुप्पति, गुजरात के द्वारका और उत्तर प्रदेश के वृन्दावन, गोकुल, अयोध्या, ऋषिकेश, बद्रीनारायणम् आदि तीर्थों की यात्रा करके इन स्थलों की पूर्णमूर्तियों के सामने भक्तिपूर्ण पद गाकर कृपा-प्राप्ति की याचना की है। ये सब अनुभूतिप्रधान गीत हैं तथा 'विष्णुगीतम्' शीर्षक पुस्तक में संगृहीत हैं। साधु और मौन तपस्वी शुद्धानन्दजी ने अपनी सभी

भौतिक यातनाओं के, गीतों के माध्यम से भगवान् नारायण को सुनाकर, उनके परिहार की याचना की है। इन गीतों की विशेष महिमा है। ये चित्त को शान्ति प्रदान करके आत्मा को जागृत करने की शक्ति रखते हैं।

सन् १९२४ ई० में ग्राम-सेवा का भाव ग्रहण करके ये गाँव-गाँव घूमते रहे। रात-रातभर इन गीतों को गाकर उन्होंने भक्ति और राष्ट्रीयता का प्रचार किया। इनके घनिष्ठ श्रद्धालु मित्रों में महाभक्तिमान् अरंगनाथ नामक एक सज्जन थे। उन्होंने प्रतिमास कुछ धन-राशि देकर कवियोगी की पुस्तकों को प्रकाशित किया। 'विष्णुगीतम्' रचनाकार द्वारा ही प्रकाशित है।

इन्होंने अडैयारु (मद्रास) में 'योग-समाज' की स्थापना की थी। उस समाज के द्वारा भक्ति और योगाभ्यास का प्रचार निर्विघ्न चल रहा है। इनकी रचनाओं का ग्राम-अंचलों में इतना प्रभाव है कि यदि ये चाहते तो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय शासन में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकते थे। किन्तु भारत के स्वतन्त्र होने के बाद इन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया और भक्तियोग-साधना में लीन हो गये। अपनी निःस्पृहता, त्याग, लोकोपकार-भावना, योगनिष्ठा के कारण ये 'कवियोगी' के नाम से ही प्रख्यात हुए। इनके 'विष्णुगीतम्' से दो गीत उद्धृत हैं—

(१)

कुषलोसै केट्कुदम्मा
गोपाल कृष्णन् कुषलोसै केट्कुदम्मा।
मषलैयुम् किळ्ळैयुम् मंद मामरुदम् पोल्
मायवन् गोकुल माधवन् ऊदिडुम् ¨ कुषलोसै
ज्ञाल उयिर्गळेल्लाम् नादक् कनविले
नट्ट चित्तिरम् पोले अट्ट दिक्कुम् इरुक्क
काल वेगमुम् रास लीलैयैप्पार्त्तु निर्क्क
कादलर् शुद्धानन्द राधैयुड़ने चोक्कक्-कुषलोसै

'माँ! गोपालकृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनायी देती है, बच्चे की तुतली, तोते की बोल और मन्द मारुत जैसी मिठास लेकर मायालीलाधारी गोकुल के माधव द्वारा वादित मुरली-ध्वनि सुन पड़ती है। माँ! उस नादाग्नि में विरहदग्ध सभी जीवधारी लिखित चित्र जैसे आठों दिशाओं में भ्रमित खड़े हैं। प्रेमी-युगल राधा-कृष्ण की रास-क्रीड़ा को देख-देखकर कालगति भी आनन्द से विभोर होकर स्तम्भित हो गयी है। मुरली-ध्वनि सुन पड़ती है माँ!'

(२)

बृन्दावनम् इदुओ ?-कण्णन्
पिळ्ळैयाय् विळैयाडि उळ्ळत्तै अळ्ळिय
पोरुन्दुम् अन्बरुक्किन्ब
विरुन्दायक् कवलै माट्रुम्
मरुन्दाय् राधा गोविन्दन्
इरुन्दे कुषलूदिय····बृन्दावनम् इदुओ
दानवर् चेरुक्किनैत् तगर्त्तुप् प्रियमान
दास गोपियरुडन् रासक् क्रीड़ै सेय्दु
गानत्तिले गोपालन् कन्ड्रुगळै मेय्त्तुक्
कादल् शुद्धानन्दनैक् कान्तमेनक् कवर्न्द····
बृन्दावनन् इदुओ

'क्या यह वही वृन्दावन है, जहाँ कृष्ण ने किशोर के रूप में खेल खेलकर मन को मोहित किया था? क्या यह वही वृन्दावन है जहाँ अपने प्रेमियों को मधुर भोज-सी, चिन्ता मिटानेवाले औषध-सी, राधा-गोविन्द सरस मुरली बजाते थे? क्या यह वही वृन्दावन है, जहाँ गोपाल ने दानवों का घमंड चूर-चूर करके प्रिय भक्त गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा की थी और गान के द्वारा ही बछड़ों को चराया था तथा लोगों को आर्कषित करके शुद्धानन्द प्रदान किया था?'

ह० दु० स्वा०

शूलमंगलम् गोपाल भागवतर्

शूलमंगलम् तमिलनाडु में भागवत-भक्तों का प्रसिद्ध केन्द्र है। इस गाँव में कई भागवत-भक्त हुए। उनमें श्री गोपाल भागवतर् सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। ये बड़े कर्मयोगी थे। अपना गृहस्थ-कर्तव्य पूरा करते हुए ये भगवान् की भक्ति करने में भी समर्थ थे। एक बार श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र स्वामी के पास जाकर एक सज्जन ने अपने पेट-दर्द के लिए दवा माँगी। स्वामीजी ने कहा—"शूलमंगलम् जाकर श्री गोपाल भागवतर् के चरणामृत का पान करो।" यह आदेश पाकर वह व्यक्ति शूलमंगलम् आया। सभी लोग खेतों में काम कर रहे थे। पानी सींचना, जोतना, निराना आदि का काम तेजी से चल रहा था। गोपाल भागवतर् भी अन्य लोगों के साथ खेत में उतरकर काम कर रहे थे। आगन्तुक सज्जन पहचान नहीं सके कि उनमें से भागवतर् कौन हैं? सब सिर पर पगड़ी बाँधे, घुटनेभर कीचड़ में उतरकर काम कर रहे थे। सज्जन को विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई विख्यात स्वामी ऐसा भी काम करते होंगे। लेकिन विश्वास किये बिना भी न रहा गया। उन्होंने रास्तेभर में जिस किसीसे पूछा, सबने यही बताया कि स्वामीजी खेत में काम कर रहे हैं। अन्ततः उन्होंने साहस करके खेत में काम कर रहे एक आदमी को संकेत से अपने पास बुलाया। वह पास आया तो उन्होंने पूछा कि "क्या गोपाल भागवतर् गाँव में ही हैं या वाहर गये हैं?" उस आदमी ने बताया—"मैं ही गोपाल भागवतर् हूँ। आपकी क्या सेवा करूँ?" आगन्तुक ने चकित होकर कहा—"आपके दर्शन के लिए ही आया हूँ।" भागवतर्जी बोले—"जरा ठहरिये, पूजा समाप्त करके आऊँगा।"

भागवतर् 'ॐ कृष्णाय नमः', 'ॐ कमलानाथाय नमः' कहते हुए खेती के काम में मग्न थे। वे पौधे उखाड़ते, उनको बाँधते और दूसरी जगह गाड़ने के लिए किसान-औरतों के पास फेंकते जाते थे। हर बार फेंकते समय भगवान् के एक नाम का उच्चारण करते। इस तरह कृष्णाष्टोत्तर शतनाम पूरे हो गये। पूजा पूरी हो गयी। आगन्तुक इसे समझ नहीं सके। उन्होंने विनम्रता से पूछा—"क्या घर नहीं जाना है? पूजा का समय बीत रहा है।" भागवतर् ने उत्तर दिया—'आज घर जाने के लिए अवकाश नहीं है। यहीं पर पूजा समाप्त हो गयी, क्या आपने नहीं देखी?" आगन्तुक पूजा की यह नयी विधि देखकर आश्चर्यचकित हो गये। वे समझ गये—"बाह्य रूप से की जानेवाली पूजा की अपेक्षा भगवान् मानस-पूजा से अधिक प्रसन्न होते हैं। गोपाल भागवतर् ने कर्म को ही पूजा माना था। आगन्तुक और एक दिन आये। भागवतर् के उञ्छ-वृत्ति करते समय उनके चरण धोकर श्रीपादतीर्थ का पान किया और स्वस्थ हो गये।

हृ० दु० स्वा०

श्रीधर अय्या

संस्कृत-परम्परा में भगवान् का नाम-संकीर्तन करनेवाले महापुरुषों में श्रीधर वेंकटेश्वर, श्रीधर अय्या नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म तमिलनाडु के प्राचीन चोलनाडु कहलानेवाले प्रदेश में तिरुविसनल्लूर में अठारहवीं शती के आरम्भ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीधर लिंगारियार था। श्री वेंकटेश्वर दीन-दुखियों की सहायता करना ही मानव का प्रथम धर्म मानते थे। ये इस धर्म-कार्य में बाधा पहुँचानेवाले साम्प्रदायिक संस्कारों का विरोध करते थे। एक दिन इन्होंने भूख से तड़पते हुए एक व्यक्ति को देखा। संयोग से वह उनके पिता के श्राद्ध का दिन था। बन्धुओं के मना करने पर भी इन्होंने अपने घर में पकाया हुआ भोजन ले जाकर उस गरीब को खिला दिया। उनके इस व्यवहार से असन्तुष्ट होकर ब्राह्मणों ने उनका जाति-बहिष्कार कर दिया और इस पाप के दण्डस्वरूप गंगा-स्नान करके प्रायश्चित्त करने पर उन्हें पुनः जाति के भीतर स्थान देने का विधान किया। जिस दिन वह विधान लागू होनेवाला था उस दिन गंगा उनके पीछे के कुएँ से उमड़ आयीं। यह अद्भुत घटना कार्तिक अमावास्या के दिन हुई।

इसलिए आज भी प्रतिवर्ष तिरुविसनल्लूर में यह दिन पर्व के रूप में विशेष उत्साह से मनाया जाता है। भक्तगण उस कुएँ में गोता लगाकर गंगा-स्नान का पुण्यलाभ करते हैं।

श्रीधर अय्या के जीवन में कई अद्‌भुत घटनाएँ घटीं। ये प्रतिदिन तिरुविडैमरुदूर महालिंग स्वामी के दर्शन के लिए जाया करते थे। एक बार जोर की वर्षा हुई और मार्ग में पड़नेवाली नदी में बाढ़ आ गयी। तब भगवान् ने स्वयं उपस्थित होकर इन्हें प्रसाद दिया। एक बार भगवान् स्वयं नाविक के रूप में आकर इन्हें नदी के उस पार ले गये। वैसे ही और एक बार गाँव में अनावृष्टि के कारण खेत तथा पेड़-पौधे मुरझाने लगे तो इन्होंने भगवान् से प्रार्थना करके पानी बरसाया। अपने गाँव में इनके द्वारा एक मृतक बच्चे को फिर से जीवन प्रदान करने की घटना भी बतायी जाती है।

श्रीधर अय्या की मातृभाषा तेलुगु थी। ये स्मार्त ब्राह्मण थे। इसलिए शैव-वैष्णव भेद के बिना सभी देवी-देवताओं की स्तुति करते थे। इन्होंने संस्कृत, तेलुगु और तमिल तीनों भाषाओं में काव्य-रचना की है। किन्तु अब उनके संस्कृत ग्रन्थ ही मिलते हैं। तमिल और तेलुगु की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

इनके कृष्ण-भक्तिपरक काव्यों में 'कृष्ण-द्वादश मञ्जरी' का नाम लिया जाता है। प्रसिद्ध है कि ये तंजाऊर के मराठा-शासक शाहजी के द्वारा सम्मानित हुए थे।

ह० दु० स्वा०

श्रीनिवासय्यंगार स्वामी (उभयवेदान्त)

राधा-कृष्ण-भक्ति में पूर्णतः लीन इस भक्तवर की कोई उल्लेखनीय जीवन-सामग्री प्राप्त नहीं होती। इनकी मात्र एक 'श्री भगवत् गुणानुभव विलासम्' शीर्षक काव्य-रचना प्राप्त हुई है। इसमें संस्कृत और तमिल दोनों भाषाओं में लिखे कीर्तन-पद प्राप्त हैं। उनमें से दो पद्य भावार्थसहित यहाँ उद्धृत हैं—

(१)

मुरळि नी सेय्द भाग्गियमे भाग्यम् !
मुकुन्दनधरत्तिल् एप्पोदुम् वसिक्कुम्।
धरणियिल् नानुम् दामोदरनैप्पिरिन्दु
चंचलम् अडैन्दिडुम् एन्मेल् कोंजम् दयवुसेय्अम्मा
कारमेघवण्णनुम् कैयिलेडुत्तुन्नैक्
गानम् सेय्दिडुम् वेळैदनिल‌्पो
पारदनिन् यान् कण्णनैप्पिरिन्दुपडुम्कष्टम्
पावैये अवनदु सेवियिल् उरैत्तिडुवायम्मा !

'मुरली, तुमने जो सौभाग्य प्राप्त किया है वही सबसे बड़ी उपलब्धि है। मुकुन्द के अधरों पर सदा-सर्वदा विराजमान रहने से बढ़कर कौनसा भाग्य हो सकता है ? मैं दामोदर कृष्ण से बिछुड़कर इस संसार में चिन्तित और व्यथित हो रहा हूँ, ('हो रही हूँ' भी कहा जा सकता है। क्योंकि तमिल के प्रथम पुरुष की क्रियाओं में लिंग-भेद नहीं होता। वक्ता का रूप स्पष्ट होने से उसकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन यहाँ भक्त कवि होने से विरहावस्था में स्त्रीलिंग में भी अर्थ लेने की सम्भावना है।) माँ, मुझ पर थोड़ी दया करो। (तमिल प्रदेश में छोटी बालिकाओं को भी 'अम्मा' सम्बोधित करने की परिपाटी है।) जब नीलमेघ श्यामल कृष्ण तुम्हें अपने करों में लेकर गान करें तब तुम मेरे लिए एक उपकार करो। इस संसार में कृष्ण से बिछुड़कर मैं जो कष्ट भोग रही हूँ, उसे हे माँ, हे सुकुमारी, तुम उनके कानों में बता दो। (मुरली को कृष्ण के अधरों से कान तक पहुँचने में सरलता है। उसके लिए चुपके से उनके कानों में भक्त की व्यथा निवेदित कर देना आसान है।')

(२)

इन्नुम् वरक्काणेन्-मन्नन् वेणुगोपालन्
एन्नमायमो अरियेन्
एप्पोवरुवारो एन् कण्मुन निर्पारो
इहपरसाधकम् एन्ड्रु तरुवारो।

वेळ्ळि पल्लक्किल् एरि-   वेण्णैकुडमणैत्तु
विध विधमागवे   वेण्पणिगळ् पूण्डु
मल्लिगै मुल्लै रोजा   मलन्द चण्बगम् शान्ति
जातिमनु नीतिगळैक् काक्कुम् महानुभावरै नान्
(इन्नुम्)

मुन्नाल संगीतम्   मेळंगळ मुषेंगिड
पिन्नाल् वेदपारायणंगळ   तुलंगिड
इन्निसैयोडु   श्रीभागवतरेल्लोरुम्
पन्तिपन्तियागवे   भजनैगळ सेय्दुवर
(इन्नुम्)

'मेरे राजा वेणुगोपाल अभी तक नहीं आये। न जाने कैसी माया कर रहे हैं ? कब आयेंगे और कब मेरे समक्ष आकर दर्शन देंगे ? इह-पर दोनों लोकों का सुख किस दिन देंगे ? मैं नहीं जान पाती। रजत-पालकी पर चढ़कर जब वे आयेंगे तब मैं विविध प्रकार के आभूषणों से सज-धजकर मक्खन का पूर्ण कुम्भ लेकर उनका स्वागत करूँगी। उन्हें चमेली, बेला, गुलाब, सुविकसित चम्पा आदि पुष्पों की माला पहनाऊँगी। मनुस्मृति के नियमानुसार जाति-धर्म की रक्षा करनेवाले मेरे महानुभाव अभी तक नहीं आये हैं। आगे संगीत तथा वाद्यघोष और पीछे वेदपारायण के साथ मेरे कृष्ण वैभवपूर्ण शोभायात्रा में आयेंगे। सभी भगवद्-भक्त मधुर स्वरों में भजन करते हुए पंक्ति-पंक्ति में श्रीकृष्ण के साथ आयेंगे।'

ह० दु० स्वा०

श्रीनिवास राघवन

श्रीनिवास राघवन का जन्म तमिलनाडु के तंजाऊर जिले में कण्डियूर नामक गाँव में २३ दिसम्बर १९०५ ई० को हुआ था। इनके तीन और भाई थे। चारों तमिल वैष्णव ब्राह्मण-परिवार की सांस्कृतिक परम्परा में पाले-पोसे गये। उस गाँव के बारे में एक बार महात्मा गांधी ने अपनी तमिलनाडु-यात्रा के दौरान कहा था कि मैं अपने चारों ओर हरियाली का कंबल बिछा हुआ देखता हूँ। ऐसे हरे-भरे वातावरण में राघवन की भक्ति और कवित्व-शक्ति दोनों अंकुरित एवं विकसित हुईं। जब ये चार वर्ष के थे, तब घुटनेभर गहरे बरसात के पानी में बहते हुए चले गये। माँ-बाप भगवान् की मनौती करते हुए खोजते-खोजते बाढ़ की ओर दौड़े आये और बहते हुए बालक को खींचकर बाहर निकाला। बालक ने उस समय पिता से कहा—"धारा देखने में आकर्षक एवं सुहावनी थी, इसलिए उसमें घुस गया।" पाँच वर्ष की आयु में नागपट्टिणम् हाईस्कूल में इनका प्रवेश कराया गया। इन्होंने अध्ययन में पूरा ध्यान दिया और होनहार छात्र प्रमाणित हुए।

आठ साल की आयु में ही इनकी माता का देहान्त हो गया। माताजी की दाह-क्रिया जहाँ सम्पन्न हुई थी, एक बार उस स्थान को पार करके इन्हें वरानल्लूर नामक गाँव को जाना था। बालक राघवन अन्य ग्रामीण बालकों के साथ जा रहे थे। उस स्थान पर पहुँचते ही इन्हें अपनी माँ की याद हो आयी और ये फूट-फूटकर रोने लगे। साथियों ने समझाकर शान्त किया। वरानल्लूर के कृष्ण-मन्दिर में उत्सव था। उत्सव देखकर लौटते-लौटते रात के बारह बज गये। सुनसान श्मशान को पार करके जाने में साथी लड़के डरने लगे। तब राघवन ने कहा—"यह तो मेरी माता की भूमि है, डर की कोई बात नहीं, मेरी माँ रक्षा करेंगी।" साथी बालकों ने मान लिया और सब निर्भय हो अपने गाँव को लौटे। बड़े लोगों ने समझा था कि बालक रात में मन्दिर में ही ठहरकर प्रातः लौटेंगे। पूरा वृत्तान्त जानकर उन्होंने राघवन की मातृ-भक्ति की सराहना की।

स्कूल में पढ़ते समय इनके हृदय में अपनी मातृ-भाषा के साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। ये कॉलिज में अंग्रेजी और घर पर तमिल का श्रमपूर्वक अध्ययन करते रहे। बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास करके तिरुच्चिराप्पल्ली के सन्त जोजेफ कॉलेज में ट्यूटर नियुक्त हुए। वहाँ फादर डी सौसा इनकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। उसी कॉलिज से इन्होंने प्रथम

श्रेणी में एम० ए० किया। फिर तिरुनेलवेली हिन्दू कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहीं पर टि० के० चिदम्बरनाथ मुदलियार नामक महाविद्वान् के सम्पर्क में आये। उनके सान्निध्य में इनका तमिल-साहित्य का ज्ञान पूर्ण और परिपक्व हुआ। इसके बाद इन्होंने 'चिन्तनै' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक और भक्तिपरक लेख लिखने लगे। इन्होंने प्रचुर ग्रन्थों की रचना की। इनमें मुख्य हैं—'मेल काट्रु', 'इलक्किय मलरगळ्', 'काविय अरंगिल्', 'निषल', 'मगिष मरम्', 'विश्वरूपम्', 'अबन अमरन्', 'वेल्लैप् परवै', 'कवि अरसर् कण्ड कवितै', 'गुरु देवरिन् कुरल' आदि। इनमें 'विश्वरूपम्' कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'वेल्लैप् परवै' (सफेद चिड़िया) के लिए इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

'मेल काट्रु' (पश्चिमी हवा) अंग्रजी-साहित्य की विशिष्टताओं से युक्त इनका तमिल-ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त इन्होंने तोरुदत्त, कंबन तथा भारती की कविताओं का अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत किया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इन्होंने नम्मालवार की कृतियों का अनुवाद किया। वही इनकी अन्तिम रचना है। आलवार-तिरुनगरी के जीयर स्वामी पेरियनंबी ने इन्हें प्रारम्भ में ही सचेत किया था कि नम्मालवार का गम्भीर आध्यात्मिक मनन करने के उपरान्त कोई भूलोकवासी बनकर नहीं रह पाता। जीयर स्वामी का यह कथन श्रीनिवास राघवन के विषय में सत्य साबित हुआ।

तिरुनेलवेली हिन्दू कॉलेज में कुछ वर्ष रहने के बाद ये मद्रास के विवेकानन्द कॉलेज में चले आये। फिर उसे भी छोड़कर तूतिकोरिन के वी० ओ० चिदम्बरम् कॉलेज के प्रधानाचार्य बने। इस पद पर ये बाईस वर्ष रहे। इन दिनों इन्होंने सारे देश में घूम-घूमकर तमिल-साहित्य और कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। तमिलनाडु में कदाचित् ही ऐसा कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति हो जिसने राघवन् का नाम न सुना हो। कृष्ण-मन्दिरों में प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष महीने में आण्डाल तिरुप्पावै पर प्रवचन हुआ करता था। इस अवसर पर तमिल प्रदेश के सभी मन्दिरों में आचार्य राघवन निमन्त्रित होते थे। एक बार इन पंक्तियों के लेखक ने देखा कि 'ओरुत्ति मगनाय् पिरन्दु ओरुत्ति मगनाय् वळर्न्दु' (एक के पुत्र के रूप में जन्म लेकर दूसरी के पुत्र के रूप में पलकर) कहते-कहते इनकी आँखें डबडबा आयीं। इस विह्वलता का कारण इनकी स्वयं अपने बाल-जीवन की स्मृतियाँ थीं। कृष्ण का जन्म देवकी के पुत्र के रूप में हुआ था, पर यशोदा के पुत्र के रूप में पले थे। वैसे ही राघवन भी छोटी उम्र में ही मातृविहीन हुए थे और बुआ के द्वारा पालित हुए थे।

ये विशिष्ट विद्वान् ही नहीं, गुणज्ञ, अच्छे संगीतज्ञ और सौन्दर्य-प्रेमी भी थे। इनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु ये हजारों छात्रों के पिता-तुल्य थे। होनहार विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क अध्ययन की व्यवस्था करते थे। खिले पुष्पों को देखकर आनन्दित होते थे और बच्चों को देखकर आह्लाद से भरकर उन्हें गोद में उठा लेते थे। कॉलेज के अहाते में स्थित अपने बँगले में एक मयूर पाल रखा था। उसे स्वयं खिलाते-पिलाते थे। इनके बुलाने पर वह गर्व से चलकर उनके पास आता था और पंख फैलाकर नाचता था। ये सभी धर्मों पर व्याख्यान देते थे, पर वैष्णव-सम्प्रदाय पर अधिक और कृष्ण-भक्ति पर अधिकाधिक प्रवचन दिया करते थे। वे बालकृष्ण और राधाकृष्ण के उपासक थे।

इकहत्तर वर्ष की आयु में ५ जनवरी सन् '७५ ई० को ये परलोकवासी हो गये। देहान्त के पूर्व इन्होंने कहा—"मैंने नम्मालवार का अनुवाद पूरा कर दिया।" संयोग से वह दिन नम्मालवार के जन्म-नक्षत्र का ही दिन था।

इनका कृष्ण-सौन्दर्य को अंकित करनेवाला एक गीत इस प्रकार है—

एन्डु मुन् नेट्रियिले—चुट्टियाय्
एरिक् कोत्नुविरुन्दाल्
कून्दल् मषैयिरुट्टिल्—मयिलाय्क्
कूत्ताडि आडेनो ?
कादिल् तुडि तुडिक्कुम्—वयिरक्
कम्मलाय् नान् इरुन्दाल्
कादोडु कादाकक्—कादर्
कन्नल् मोषियेनो ?

'सुन्दर ललाट पर तिलक बनकर रहूँ तो काले केशों के बादल में मयूर बनकर नाचूँगा। कानों का हीरे का आभूषण बनकर रहूँ तो कानोंकान प्रेम की बातें सुनाऊँगा।'

कोलालंपूर में रहस्यवाद पर भाषण देते हुए इन्होंने एक गीत गाकर सुनाया था। वह इस प्रकार है--

पन्दिरप् पादैयिन् नडविलिने
याक्कैयै नीयळित्ताय्, नान् आडुगिरेन्
एरिगिन्ड्र काल नोय् एन्ड्रु अणैयुमो,
एन्दन् कर्मंबिनै तीरुम् नाळ् एन्नाळो ?
एन्नै विट्टु उन्नोड, इणैयुम् नाळ् एन्नाळो ?
पारेन्नुम् अडन्दं अड़वियिले
पावियेन् अषुदषुदु ओन्ड्रु मरियाप्
पालकनाय् अलैगिन्ड्रेन्
कण्णा, कैनीट्टि आट्कोळ्ळापो ?

'इस यन्त्रचालित युग में तूने मुझे यह तन दिया और मैं झूलता रहता हूँ। जलता हुआ समयरूपी रोग कब बुझेगा ? मेरा कर्मफल कब छूटेगा ? 'मैं' कहलानेवाला यह शरीर छोड़कर कब तुमसे मिल जाऊँगा ? संसाररूपी घने जंगल में, पापी मैं अबोध बालक-सा रो-रोकर भटकता फिरता हूँ। मार्ग पहचान नहीं पाता। हे कृष्ण ! तुम हाथ बढ़ाकर मुझे क्यों नहीं अपनाते ?'

ह० दु० स्वा०

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र का आविर्भाव १८वीं शती ई० में हुआ था। ये अवधूत सन्त थे, सदाशिवेन्द्र सरस्वती स्वामी के नाम से विख्यात थे और कावेरी नदी के तट पर विचरण करते थे। तमिलनाडु की संगीत-सभाओं में, विशेषकर श्रीकृष्ण-भक्तिपूर्ण भजनोत्सवों में अक्सर गाये जानेवाले गीतों में श्री सदाशिव ब्रह्म के गीत मुख्य स्थान पाते हैं।

तिरुविशैनल्लूर नामक गाँव में इन्होंने शिक्षा पायी। श्री रामभद्र दीक्षितर्, अय्यावाळ नाम से प्रसिद्ध वेंकटेश्वर् तथा महाभाष्यकार गोपालकृष्ण शास्त्री आदि इनके सहपाठी थे। ये जन्म से ही विशेष प्रतिभा-सम्पन्न थे।

शिक्षा-प्राप्ति के दिनों में ये नियत समय पर भोजन किया करते थे। थोड़ा विलम्ब होने पर भी ये भोजन किये बिना ही अध्ययन के लिए चले जाते थे। कम उम्र में ही इनका विवाह हो गया था। जिस दिन शिक्षा पूर्ण करके घर आये उसी दिन इनकी पत्नी पुष्पवती हुई। उस दिन भोजन के लिए विलम्ब हो गया। इन्होंने सोचा कि गृहस्थी के अंकुरार्पण के दिन ही भोजन पकने में विलम्ब हुआ, न जाने आगे कौन सी बाधाएँ और कष्ट आयें, 'संसारम्' (गृहस्थ-जीवन) अत्यन्त दुःखमय है। ऐसा सोचते-सोचते ये घर से निकल पड़े।

घर छोड़कर कई दिन भटकते रहे। शारीरिक सुख-दुःख की चिन्ता त्यागकर, जाति-धर्म-भेद से ऊपर उठकर सबके प्रति मैत्री और करुणा का भाव रखते हुए ये दीन-दुखियों की सेवा में लगे रहे। जो कुछ

किसीसे मिलता, खा लेते थे। कुछ लोगों ने इन्हें पागल समझा तो कुछ ने पहुँचा हुआ साधु माना। भगवान् की कृपा से इनकी भेंट श्री परमशिवेन्द्र स्वामी से हो गयी। ये उनके शिष्य बन गये और कुछ ही दिनों में शास्त्रज्ञ हो गये। शास्त्र-ज्ञान से गर्वित होकर ये गुरु के पास आनेवाले लोगों से तर्क-वितर्क करके उन्हें लज्जित करने लगे। इससे दुःखी होकर एक दिन गुरु ने कहा—"न जाने कब तुम्हारा मुख बन्द होगा?" तुरन्त इन्हें अपनी भूल समझ में आ गयी और तब से मौन-व्रत धारण कर लिया। फिर गुरु की अनुमति पाकर कोयम्बत्तूर जिले के अमरावती नदी-तट पर जाकर रहने लगे।

कावेरी नदी-तट पर ये प्रायः समाधि-योग का अभ्यास किया करते थे। एक दिन एकाएक बाढ़ आ गयी। बाढ़ में कई जानवर और गाँव के गाँव बह गये। लोग यह समझकर दुःखी हुए कि समाधिस्थ साधु भी बाढ़ में बह गये। तीन मास बाद नदी का पानी बिलकुल कम हो गया तो लोगों ने उसमें से एक नाला निकाला। नाला खोदते-खोदते लोगों ने आश्चर्य से देखा कि स्वामीजी ज्यों के त्यों समाधि लगाये हुए बैठे हैं। तभी लोगों को इनकी महिमा का पूर्ण ज्ञान हुआ।

एक म्लेच्छ ने इनका एक हाथ काट डाला। लेकिन इन्होंने रंचमात्र भी वेदना प्रकट नहीं की। बराबर मुस्कराते रहे। कुछ ही क्षणों में कटा हुआ हाथ अपने-आप आकर इनके शरीर से लग गया। यह विचित्र दृश्य देखकर म्लेच्छ बेहोश हो गया। स्वामीजी पानी छिड़ककर उसे होश में लाये और अपने हाथ से उसे तीर्थ-जल पिलाया। म्लेच्छ ने इनके चरणों को पकड़ लिया और परमशिष्य बन गया। वह आजीवन इनके चरण-चिह्नों पर चलता हुआ, इनकी सेवा-शुश्रूषा में लगा रहा। इसके बाद भी इन्होंने खण्डन-योग में अपनी सिद्धि का परिचय कई बार दिया।

एक बार उञ्छ-वृत्ति में संलग्न भजन-गोष्ठी के साथ इनके आने पर श्रद्धालु लोगों ने उठकर नमस्कार किया, लेकिन एक घमंडी नास्तिक ने इनकी ओर थूक दिया। श्रद्धालु जन हाहाकार कर उठे। नास्तिक घर के अन्दर चला गया। स्वामीजी ने उस घर की ओर क्रुद्ध नेत्रों से देखा तो घर में आग लग गयी। घर जलने लग गया। घर के अन्दर से लोग हाहाकार करते भागते हुए आये और स्वामीजी के चरणों को पकड़ लिया। नास्तिक भी नतमस्तक हो गया। इसके बाद स्वामीजी की कृपा से आग स्वतः बुझ गयी।

सन् १७३० से १७६९ ई० तक पुदुक्कोट्टै राज्य में विजय रघुनाथ तोण्डैमान का शासन था। उन्होंने सन् १७३८ ई० में स्वामीजी के दर्शन किये और उनसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए कई स्थानों में उनका पीछा करते रहे। अन्ततः आठ वर्ष बाद स्वामीजी ने पुदुक्कोट्टै में ही रेतों पर लिखकर उन्हें दीक्षित किया। कहा जाता है कि जिन रेतों पर लिखकर यह दीक्षा दी गयी वे आज भी राज तोण्डैमान के वंशजों के पास सुरक्षित एवं पूजित हैं। फिर स्वामीजी के आदेश पर तोण्डैमान ने महाभाष्यम् गोपालकृष्ण शास्त्री से कई शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया और बहुत प्रसिद्ध हुए।

स्वामीजी कई पुण्य स्थलों की यात्रा करते हुए एक दिन नेरुर नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ भजन-गोष्ठी के एकत्र होने पर बोले—"मैं मिथुनरवि ज्येष्ठ शुद्ध पञ्चमी के दिन परिपूर्णता प्राप्त करूँगा। उस दिन काशी से एक ब्राह्मण बाणलिंग ले आयेंगे। उस लिंग को मेरी समाधि पर प्रतिष्ठित कर दीजियेगा।" उनके कहे अनुसार पूर्वोक्त दिन में स्वामीजी समाधिस्थ हो गये। उसी दिन काशी से ब्राह्मण बाणलिंग भी ले आये। नेरुर के ब्राह्मणों ने स्वामीजी की अन्तिम आज्ञा का पालन किया। आज भी नेरुर में स्वामीजी की पूजा होती है।

यहाँ स्वामीजी की संस्कृत-रचनाओं से दो उद्धरण दिये जा रहे हैं—

(१)

भज रे गोपालम्-मानस
भज रे गोपालम्
भज गोपालं भजित कुचेलम्
त्रिजगन्मूलं दितिसुत कालम्
(भज)

आगमसारं योगविचारं
भोगशरीरं भुवनाधारम्।
(भज)

कदनकठोरं कलुषविदूरम्
मदनकुमारं मधुसंहारम्।
(भज)

नतमन्दारं नन्दकिशोरम्
हतचाणूरं हंसविहारम्॥
(भज)

(२)

ब्रूहि मुकुन्देति रसने,
ब्रूहि मुकुन्देति,
चरणम्

केशव माधव गोविन्देति
कृष्णानन्द सदानन्देति
(ब्रूहि)

राधारमण हरे रामेति
राजीवाक्ष घनश्यामेति
(ब्रूहि)

गरुडगमन नन्दकहस्तेति
खण्डितदशकन्धरमस्तेति
(ब्रूहि)

अक्रूरप्रिय चक्रधरेति
हंसनिरंजन कंसहरेति
(ब्रूहि)

ह० दु० स्वा०

सुब्रह्मण्य भारती

तमिल के आधुनिक कवियों में सुब्रह्मण्य भारती का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। महान् राष्ट्र-प्रेमियों एवं स्वतन्त्रता का गान करनेवालों में आप अग्रगण्य हैं। आपकी ओजस्वी राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित होकर सामान्य जनता आपको राष्ट्रीय कवि मानती है। आपका यह प्रखर राष्ट्र-प्रेम प्रगाढ़ भक्ति-भावना का ही प्रसाद है। राधा और कृष्ण के प्रति इनके हृदय में अटूट श्रद्धा थी। इसके फलस्वरूप ये समस्त जीवों में नन्दलाल का दर्शन करते थे। इनकी भक्ति-भावना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। इन्होंने केवल हिन्दू-धर्म के देवी-देवताओं के प्रति ही नहीं, वरन् सभी धर्मों के आराध्य देवों की स्तुति में गीत गाये हैं। आप द्वारा रचित कृष्ण-भक्ति के गीतों में 'कृष्णार्जुन-दर्शन' और 'पाञ्चालि शपद' अत्यन्त गम्भीर और मनोज्ञ कृतियाँ हैं। दाम्पत्य, सख्य तथा वात्सल्य, तीनों भाव इनके द्वारा विरचित कृष्ण-भक्ति के पदों में प्राप्त होते हैं।

इनका जन्म ११ दिसम्बर सन् १८८२ ई० में दक्षिण तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले की एट्टयपुरम् नामक छोटी-सी रियासत में हुआ था। इनके पिता चिन्नस्वामि अय्यर थे और माता का नाम लक्ष्मी था। घर के लोग इन्हें सुब्बैया कहा करते थे। पाँच साल की आयु में ही इनकी माता का देहान्त हो गया, पिता नें इसके दो साल बाद दूसरा विवाह कर लिया। इस विवाह के दिन ही सुब्बैया का उपनयन-संस्कार भी हुआ। ग्यारह वर्ष की आयु से ही ये भक्ति-गीत गाने लग गये थे। रियासती विद्वानों के बीच में इनकी कविताओं का इतना मान हुआ कि एट्टयपुरम् के राजा ने इन्हें 'भारती' की उपाधि से विभूषित कर दिया। उस दिन से ये 'भारती' नाम से ही अधिक जाने जाने लगे। तिरुनेलवेली के हिन्दू कॉलेज में इन्होंने अध्ययन किया। साढ़े चौदह साल की आयु में सात साल की लड़की चेल्लम्मा से १५ जून सन् १८९७ ई० को इनका विवाह हुआ। इनके विवाह के

एक वर्ष बाद ही पिता का देहान्त हो गया। तब भारती काशी में अपनी बुआ कुप्पम्माल के घर में जाकर रहने लगे। सन् १८९८ ई० से १९०२ ई० तक इन्होंने काशी के सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल में अध्ययन करके मैट्रिक पास किया। फिर इलाहाबाद चले गये। वहाँ विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में सर्वप्रथम आये। इन्होंने इस बीच संस्कृत और हिन्दी का भी अध्ययन किया।

सन् १९०२ ई० में राजा के निमन्त्रण पर ये एट्टयपुरम् आये और दरबार के कवि नियुक्त हुए। लेकिन इन्हें राज-सेवा पसंद नहीं आयी। अतः एक वर्ष बाद सन् १९०३ ई० में ही उस पद का त्यागकर पत्र-पत्रिकाओं के लिए कविताएँ लिखने लगे। 'विवेकभानु' नामक पत्रिका में इनका तनिमै इरक्कम्' (एकान्त शोक) शीर्षक प्रथम गीत प्रकाशित हुआ। सन् १९०४ ई० में मदुरै के सेतुपति कॉलेज में ये तमिल-पण्डित नियुक्त हुए। किन्तु इसी साल नवम्बर में उसे भी त्यागकर ये दैनिक 'स्वदेश मित्रन' के सह-सम्पादक हुए तथा 'चक्रवर्तिनी' शीर्षक मासिक पत्रिका के व्यवस्था-सम्पादक के पद पर कार्य करने लगे।

सन् १९०५ ई० से इन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। बंग-भंग-विरोधी आन्दोलन का इन्होंने समर्थन किया। इन्हीं दिनों ये तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध देश-भक्त व० उ० चिदम्बरम् पिळ्ळै के सम्पर्क में आये। कांग्रेस महासभा का जो अधिवेशन दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ते में हुआ उसमें ये भाग लेने गये और वहीं स्वामी विवेकानन्द की शिष्या निवेदिता से भेंट की और उनसे दीक्षा ग्रहण कर शिष्य बन गये। बहन निवेदिता के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

सन् १९०७ ई० में मद्रास में 'इंदिया' शीर्षक साप्ताहिक पत्रिका आरम्भ हुई तो उसके सम्पादक बने, साथ ही 'बाल भारत' शीर्षक अंग्रेजी साप्ताहिक के संचालन में भी योग दिया। इसी समय श्री नं० तिरुमलाचार्य, मण्डपम् श्री एस० श्रीनिवासाचार्य, श्री सा० दुरैस्वामी अय्यर आदि शीर्षस्थ विद्वानों तथा श्रमिकों के नेता श्री वी० सक्करै चेट्टियार के सम्पर्क में आकर विद्वत्तापूर्ण चर्चाओं एवं श्रमिकों के आन्दोलनों में भाग लेना शुरू किया। इससे इनकी चतुर्मुखी प्रतिभा विकसित होने लगी। उसी वर्ष दिसम्बर महीने में इन्होंने कांग्रेस के 'सूरत-अधिवेशन' में भाग लिया। इनका सहयोग उग्र दल के नेता लोकमान्य तिलक के पक्ष में था। इन्होंने यहाँ योगिराज अरविन्द और लाला लाजपतराय से भेंट की। इन सबके फलस्वरूप इनकी कविताओं में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना और राष्ट्रीय नेताओं के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त होने लगी। इससे आकृष्ट होकर श्री वी० कृष्णस्वामी अय्यर जैसे धनी-मानी लोगों ने इनकी रचनाओं को प्रकाशित करने में सहयोग दिया। पहले-पहल सन् १९०८ ई० में 'स्वदेशी गीत' शीर्षक गीत-संग्रह प्रकाशित हुआ। महाकवि ने देश-भक्ति के प्रचार में अभूतपूर्व योग दिया। मद्रास प्रान्तभर में 'स्वराज्य-दिवस' का आयोजन किया। मद्रास में लोकमान्य की अध्यक्षता में तथा तूतिकोरिन में व० उ० चिदम्बरम् पिळ्ळै की अध्यक्षता में यह राष्ट्रीय आयोजन सम्पन्न हुआ। सुब्रह्मण्य शिवा, व० उ० चिदम्बरम्, पद्मनाभ अय्यंगार आदि जब राजद्रोह के अभियोग में कैद किये गये तो भारती ने अपनी पत्रिका 'इंदिया' में कविताओं और लेखों द्वारा विदेशी सरकार की नीति का डटकर खण्डन किया तथा व्यंग्य-चित्र भी छपवाये। इससे उस पत्रिका के व्यवस्थापक पर सरकार ने अभियोग चलाया और भारती पर भी कैद का वारंट निकला। भारती ने कैदी बनकर जेल में चुपचाप पड़ा रहना पसंद न किया। अतएव सरकार की आँखों में धूल झोंककर ये पाण्डिचेरी चले गये और वहीं से 'इंदिया' का प्रकाशन करने लगे। फ्रांसीसी सीमा के अन्तर्गत रहते हुए ये ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन चलाते रहे। 'इंदिया' की लोकप्रियता बढ़ी। ब्रिटिश सरकार

ने अपने क्षेत्र में उस पत्रिका के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो पत्रिका का प्रकाशन भी बन्द हो गया।

सन् १९०९ ई० में भारती का दूसरा काव्य-संग्रह 'जन्मभूमि' प्रकाशित हुआ। इनके अंग्रेजी साप्ताहिक 'बाल भारत' पर भी सरकार ने रोक लगा दी। सन् १९१० ई० में योगी अरविन्द घोष पाण्डिचेरी में आकर वास करने लगे। महाकवि और महाज्ञानी दोनों के सम्पर्क से पाण्डिचेरी भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन का धर्मक्षेत्र एवं कुरुक्षेत्र बन गया। उसी वर्ष नवम्बर में वीरवर व० वे० सु० अय्यर भी पाण्डिचेरी में आ बसे। व० वे० सु० अय्यर वीर विनायक दामोदर सावरकर के सहयोगी और सक्रिय क्रान्तिकारी थे। सन् १९११ ई० में क्रान्तिकारी दल के युवा सदस्य श्री वांछिनाथन ने अंग्रेज कलेक्टर आष प्रभु को मणियाच्चि स्टेशन पर गोली मार दी थी और उसके बाद आत्महत्या कर ली थी। तब सरकार ने पाण्डिचेरी से देश-भक्तों को निकालने की कोशिश की और फ्रांसीसी सरकार के सहयोग से उस प्रयत्न में सफल हो गयी। व० उ० चिदम्बरम् और सुब्रह्मण्य शिवा दोनों को कारावास में डाल दिया गया। चिदम्बरम् छः वर्ष के कारावास से छूटकर साहित्य-सेवा में लीन हुए। शिवा रोगग्रस्त होकर स्वर्गवासी हो गये और व० वे० सु० अय्यर कुट्रालम जल-प्रपात में अपनी पुत्री को डूबने से बचाते हुए स्वयं भी डूब गये। इस प्रकार प्रदेश का क्रान्तिकारी राष्ट्रीय मंच विलीन हो गया। भारती पाण्डिचेरी से नहीं निकले। अपनी प्रसिद्ध रचना 'पाञ्चालि शपद' इन्होंने वहीं लिखी। इनका एक और खण्ड-काव्य 'कुयिल पाट्टु' (कोकिल-गान) प्रेम और स्वतन्त्रता का काव्य है। सन् १९१२ ई० में इन्होंने भगवद्गीता का तमिल-अनुवाद किया तथा कृष्ण का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए अनेक गीत लिखे। इनके मित्र परलि सु० नेल्लैय्यर ने उन गीतों का संग्रह 'कण्णन पाट्टु' (कृष्ण-गीत) नाम से प्रकाशित किया।

१८ नवम्बर सन् १९१८ ई० को भारती पाण्डिचेरी से निकलकर ब्रिटिश भारत में आये तो कैद कर लिये गये, किन्तु ३४ दिन बाद रिहा कर दिये गये। सन् १९१८ से १९२० ई० तक दो वर्ष का समय इन्होंने अत्यन्त निर्धनता की स्थिति में घोर कष्ट में व्यतीत किया। सन् १९१९ ई० के मार्च महीने में राजाजी के घर में महात्मा गांधी से इनकी भेंट हुई। महात्मा गांधी इनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए और बोले कि ऐसे महाकवि ही हमारे देश की सच्ची सम्पत्ति हैं। सन् १९२० ई० में इन्होंने दैनिक 'स्वदेश मित्रन' के सह-सम्पादक का पद पुनः ग्रहण किया। अगस्त सन् १९२१ ई० में तिरुवल्लिक्केणी मन्दिर के मदमत्त हाथी ने इनके ऊपर आक्रमण कर दिया। उस धक्के से ये रोग-ग्रस्त रहने लगे और इसी वर्ष १२ सितम्बर को इनका देहान्त हो गया।

इनके जीवित रहते लोगों ने इनका कोई विशेष आदर नहीं किया। इनकी मृत्यु के बाद इनके गीतों ने देश-भक्ति जगाने, ब्रिटिश-शासन को विचलित करने तथा भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक भावना को व्यापक आधार पर प्रतिष्ठित करने में शंखनाद का काम किया।

इस प्रकार भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय योगदान देते हुए भी सुब्रह्मण्यम् भारती का अन्तस् कृष्ण-भक्ति से आप्लावित रहा। वस्तुतः इनका अदम्य उत्साह, अद्भुत कर्मवीरता तथा अपार सहनशीलता इनकी इस दृढ़ आध्यात्मिकता का ही प्रसाद थी। यह लक्ष्य करने की बात है कि इनके समकालीन राष्ट्र-नायकों—अरविन्द घोष, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी—सभी को राष्ट्रोद्धार की शिक्षा योगेश्वर कृष्ण के चरित तथा उनकी अमर वाणी गीता से ही प्राप्त हुई थी। भारती ने कुछ आगे बढ़कर आदि पराशक्ति राधा से भी इस महान् संग्राम के विजय के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए स्तुत्याञ्जलि अर्पित की।

यहाँ इनके कुछ भक्तिपरक गीत उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

काक्कैच् चिरगिनिले नन्दलाला ! निन्ड्रन
करिय निरन् तोन्ड्रु दैये, नन्दलाला !
पार्क्कुम् मरंगळेल्लाम् नन्दलाला-निन्ड्रन
पच्चै निरन् तोन्ड्रु दैये नन्दलाला !
केट्कु मोलियिलेल्लाम् नन्दलाला-निन्ड्रन
गीतम् इसैवकुदड़ा नन्दलाला !
तीक्कुळ विरलै वैत्ताल नन्दलाला-निन्नैत्
तीण्डुमिन्बन् तोन्ड्रदड़ा नन्दलाला !

'हे नन्दलाल' कौए के पंखों में तुम्हारा ही श्याम रंग दीखता है। जिन-जिन वृक्षों को देखते हैं उन सबमें तुम्हारा ही हरा रंग प्रकट होता है, जिन-जिन शब्दों को सुनते हैं उन सबमें हे नन्दलाल, तुम्हारे गीत ही गाये जाते हैं। हे नन्दलाल, आग में उँगली को झोंकने पर तुम्हारे स्पर्श का ही आनन्द होता है।'

(२)

टेक (पल्लवि)
देहि मुदम् देहि श्री राधे राधे !

चरण

राग समुद्र जामृदे राधे राधे
राझ मण्डल रत्न राधे राधे !
भोग रति कोटि तुल्य राधे राधे-जय जय
भूदेबि, तपः फल राधे राधे···
(देहि)

वेद महा मन्त्र रस राधे राधे।
वेद विद्या विलासिनी श्री राधे राधे।
आदि परा शक्ति रूप राधे राधे।
अत्यद्भुत श्रृंगारमय राधे राधे···
(देहि)

उपर्युक्त पद्यांश का हिन्दी रूपान्तर अनपेक्षित होने के कारण नहीं दिया गया है।

कादलेनुन् तीविनिले, राधे राधे ! अन्ड्रु
कण्डेडुत्त पेण्मणिये ! राधे राधे !···
(देहि)

कादलेनुञ् सोलैयिले राधे राधे ! निन्ड्र
कर्णकमाम् पून्तरुवे राधे राधे···
(देहि)

मादरसे ! सेल्वम् पेण्णे, राधे-राधे !
वानवरक ळिन्ब वाषवे राधे राधे !
(देहि)

'हे राधा ! प्रेमरूपी द्वीप में उन दिनों तुम्हें खोज निकाला गया।

हे राधा ! प्रेमरूपी फुलवारी में तुम कल्पवल्ली के पुष्प हो !

हे राधा ! महिलाओं में तुम रानी हो, देवों के मधुर जीवन की प्रतीक हो।

हे राधे ! हमें आनन्दामृत प्रदान करो।'

भारती ने 'कण्णम्मा' शीर्षक जो गीत गाये हैं उनमें श्रीकृष्ण को ही स्त्री के रूप में अर्थ लगाने की परिपाटी है। किन्तु वर्णन-शैली एवं स्वर्णिम शरीर जैसे शब्द-प्रयोगों से कण्णम्मा शब्द राधा का भी सूचक प्रतीत होता है।

(१)

कोट्रु वेळियिड़ैक् कण्णम्मा-निन्ड्रन
कादलै येण्णिक् कळिक्किन्ड्रेन-अमु
इट्रिनै योत्त इदषगळुम्-निल
कूरित् तडुम्बुम् विषिगळुम्-पत्तु
माट्रुप्पोन् नोत्त निन् मेनियुम्-इन्द
वैयित्तिल यानुळ्ळ माट्टिलुम्-एनै
वेट्रु निनैविन्ड्रित् तेट्रिये-इंगोर
विण्णव नागप् मुरियुमे !-इन्दक्
(काट्रु)

(२)

नी येन दिन्नुयिर कण्णम्मा-एन्द
नेरमुम् निन्ड्रनैप् पोट्रु वेन-तुयर
पोयिन, पोयिन तुन्बंगळ-निनैप्
पोन्नेनक् कोण्ड पोषुदिले-एन्ड्रन
वायिनि लेयमु दूरुदे कण्णम्
मावेन्ड्र पेर चोलुम् पोष्दिले-उयिरत्
तीयिले वळर जोतिये.... एन्ड्रन्
चिन्तनैये, एन्ड्रन चित्तमे-इन्दक्....
(काट्रु)

'कण्णम्मा ! इस वायु-मण्डल में तुम्हारे प्रेम को सोच-सोचकर आनन्द पाता हूँ। अमृत-स्रोत से तुम्हारे अधर, भूमि पर दृष्टिपात करनेवाले तुम्हारे प्रेममय नेत्र, विशुद्ध स्वर्ण-सा तुम्हारा शरीर, ये सब मेरे स्मरण में सदा आकर, जब तक मैं इस भूमि पर रहूँगा तब तक मुझे देवलोक के निवासी जैसा आनन्द देते रहेंगे।'

'कण्णम्मा ! तुम मेरे मधुर प्राण हो। सदा-सर्वदा तुम्हारी स्तुति करता रहूँगा। तुम्हारा स्मरण करते ही मेरे दुःख दूर हो गये, मेरे कष्ट मिट गये। तुम्हारा नाम लेते ही मेरे मुँह में अमृत-स्रोत उमड़ता है। तुम मेरे प्राणरूपी आग में उठनेवाली ज्योति हो। तुम ही मेरे चिन्तन हो और मेरा मन हो।....(इस वायु-मण्डल में)'

ह० दु० स्वा०

हा० कि० वालम्

श्रीमती हा० कि० वालम् अम्मैयार का जन्म ४ अगस्त १९२२ ई० को तिरुच्चिराप्पळ्ळी में हुआ था। ये तमिल-साहित्य में निष्णात महिला थीं और सुप्रसिद्ध देश-भक्त तथा गांधी-भक्त श्री ना० हालास्यम की ज्येष्ठ पुत्री थीं। श्री हालास्यम गांधीजी के नेतृत्व में संचालित सत्याग्रहों में भाग लेकर तीन बार जेल गये थे। इसलिए स्वभावतः श्रीमती वालम् अम्मैयार भी देश के प्रति विशेष अनुराग रखती थीं। इनका विवाह यंत्रविद् श्री पी० एस० कृष्णस्वामी से हुआ। दुर्भाग्य से इनको अपने जीवन का अधिकांश अस्वस्थता के कारण बिस्तर पर ही बिताना पड़ा। रोगग्रस्त-अवस्था में इनकी लेखनी से स्वतःस्फूर्त भक्तिपूर्ण कविताएँ निकल पड़ीं। वे स्वयं लिखती हैं कि मैं नहीं जानती कि इतनी कवित्व-शक्ति मुझमें एकाएक कैसे आ गयी ? यह केवल राधा-कृष्ण की ही कृपा है। उन्हींकी अनुकम्पा ने मुझे निराश नहीं होने दिया और साहित्य-सेवा करके जीवन को सफल बनाने का अवसर प्रदान किया। इनकी २५ रचनाएँ प्रकाशित हैं। इन्होंने कई वर्षों तक 'मोहना' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। ये जन-समाज द्वारा कविता-रत्न, विज्ञान-चिन्तामणि, प्रवचन-शिरोमणि, प्रसंग-रत्नाकर आदि उपाधियों से विभूषित हुईं। तमिल, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी—इन चारों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। सन् १९७८ में इनका देहान्त हो गया। इनके 'तिरुमलैप्पाड़लगळ' शीर्षक कविता-संग्रह से दो छन्द उद्धृत हैं—

(१)

कन्ड्रु कालिगळ मेय्त्त तिरुवड़ि
चेन्ड्रु वंजरै तेय्त्त तिरुवड़ि
अरंगकरक्करै माय्त्त तिरुवड़ि
निन्ड्रु निलैवक एन् पुन् तलै मीदे ॥

'जिन श्रीचरणों ने गायों और बछड़ों को चरवाया, जिन चरणों ने वञ्चक लोगों को दबाकर साधुओं की रक्षा की और जिन चरणों ने दुष्ट राक्षसों का संहार किया, वे श्रीचरण मुझ छोरी के सिर पर सदा नृत्य करते हुए खड़े रहें।'

(२)

पदुमै मणाळा, परन्धामा !
एदुवेन इनम् पुरियामल् नितम्
पुदुमैयाय् वाट्टुम् कुषप्पम् भयम्
अदु तवित्तोळ् एन् अच्युतने !

अन्नै इलक्कुमि नायकने !
पिन्नै मणाळा परापरने !
एन्नैक् कलक्कुम् इन्नल् भयम्
मन्नि विलक्कुवाय् वेंकटने ॥

'हे श्री वेंकटेश भगवन् ! हे पद्मावती के स्वामी ! हे परमधाम ! मुझे नित्यप्रति नयी-नयी चिन्ताएँ पीड़ित करती हैं, चंचल बनाकर आपत्ति में डाल देती हैं, वे नित्य नवीन रूप धारण करके आती हैं। मैं स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाती कि वे कहाँ-कहाँ से उत्पन्न होकर मुझे घेर लेती हैं। माता लक्ष्मी नायक, नप्पिन्ना देवी (राधा) के पति, मुझे सतानेवाले इन संकटों और भयों से मुक्ति दो। इन संकटों को शीघ्रता से आकर हटाओ।'

कृष्ण के प्रति दृढ़ भक्ति होते हुए भी ये सभी धर्मों और सम्प्रदायों के प्रति आदरभाव रखती थीं। अपने 'धार्मिक निबन्धों की रचना कैसे करनी है ?'—शीर्षक लेख में श्रीमती वालम् लिखती हैं—

"एक देवता को ऊँचा दिखाने के लिए किसी दूसरे सम्प्रदाय के देवताओं को नीचा नहीं दिखाना चाहिए, एक धर्म की उच्चता निरूपण करने के प्रयत्न में अन्य धर्मों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। ऐसा एक शब्द भी न आना चाहिए जिससे दूसरे धर्मावलम्बियों के मन को दुःख लगे।" देश का भावैक्य दर्शाने के लिए उत्तर भारत के धर्माचार्यों तथा साधु-सन्तों की रचनाओं में प्राप्त समान भावों की तुलना अपनी भाषा और प्रदेश के साधु-सन्तों की रचना से करनी चाहिए।' ऐसा लिखते हुए ये स्वयं तिरुवळ्ळुवर और कबीर के दोहे का उद्धरण देती हैं—

वळ्ळुवर—

मषित्तलुम् नीट्टलुम् वेण्डा उलकम्
पषित्तदु ओषित्तु ओषित्तु विडिन्

कबीर—

केसनि कहा बिगारिया जो मूँड़े सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँडिये जामें विषयविकार !

ह० दु० स्वा०

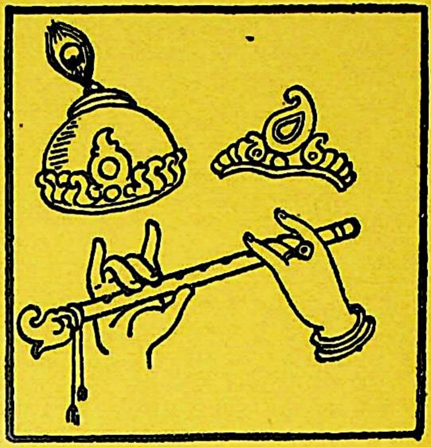

तेलुगु (आन्ध्र) प्रदेश में कृष्णभक्ति का विकास

—प्रो० साईं प्रसाद

तेलुगु के कृष्णभक्त

—प्रो० साईं प्रसाद

—डा० कर्ण राजशेषगिरि राव

—श्री बालशौरि रेड्डी

तेलुगु (आन्ध्र) प्रदेश में कृष्ण-भक्ति का विकास

आन्ध्र प्रदेश : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

आन्ध्र प्रदेश दक्षिण भारत का सुप्रसिद्ध भूभाग है। यहाँ के निवासियों को तेलुगु में 'आन्ध्रु' कहते है। इसका मूलाधार 'आन्ध्र' शब्द पहले जातिसूचक था। ऐतरेय ब्राह्मण में 'शुनश्शेप' की कथा में इसका उल्लेख पुण्ड्र, पुलिन्द, शबर आदि जातियों के साथ हुआ है। रामायण और महाभारत में भी इसका निर्देश है। इन आधारों पर कहा जा सकता है कि यह एक अति प्राचीन जाति है।

ऐतरेय ब्राह्मण की कथा के अनुसार आन्ध्र जाति के लोग विश्वामित्र के सौ पुत्रों में पचास पुत्र 'शुनश्शेप' को अपना बड़ा भाई मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनके इस आचरण से कुपित होकर विश्वामित्र ने शाप दे दिया, जिससे वे हीन स्थिति को प्राप्त हो गये। पुराणों में 'आन्ध्र राजा' नामक एक क्षत्रिय राजा का उल्लेख मिलता है। इसके द्वारा पालित जाति आन्ध्र जाति और देश आन्ध्र देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रामायण के अनुसार आन्ध्र लोग राजस्थान के पुष्कर (आधुनिक पोखरण) क्षेत्र के मूल निवासी हैं। इस जाति का उल्लेख महाभारत और भागवत में भी है। महाभारत-काल तक ये प्रवासी रूप में दक्षिण पहुँच चुके थे। कहते हैं कि कंस के अखाड़े में बालकृष्ण ने करुश देश के सुप्रसिद्ध मल्लयुद्ध-प्रवीण चाणूर को मारा था। हरिवंशकार ने चाणूर को आन्ध्र-मल्ल कहा है। द्रविड़ प्रान्त में (द्रु गतौ धातु के अनुसार भगाये गये) पहुँचने से पूर्व ये लोग प्राकृत भाषाभाषी थे। स्थानीय लोगों के सम्पर्क में आने के बाद इनकी भाषा बदल गयी। नन्नय के पूर्ववर्ती प्राकृत भाषा के कवि उद्योतन ने अपने 'कुवलयमाला' काव्य में जिन अठारह समकालीन भाषाओं का उल्लेख किया है उनमें आन्ध्र भाषा भी एक है। आन्ध्र प्रदेश और भाषा के सम्बन्ध में उद्योतन ने लिखा है :

पिय महिळासंगामे सुन्दरगत्तेय भोयणे रोद्दे।
अदु पुडु रदुम् भणन्ते आन्ध्रे कुमारो सलोयेति॥

अर्थात् आन्ध्र के लोग सुन्दरियों और रणरंग को समान रूप से पसंद करनेवाले हैं। ये सुशरीरवाले, सुभोजन-प्रिय, झूम-झूमकर चलनेवाले, मिलनसार और स्नेहशील हैं।

आदिकवि नन्नय के समय तक 'आन्ध्र' शब्द भाषासूचक बन चुका था। आन्ध्र के लिए प्रयुक्त आधुनिक शब्द 'तेलुगु' भी तेलुन्गम या तेनुन्गुन के रूप में प्रचलित था। स्वयं नन्नय ने अपने महाभारत के आरम्भ में 'नाना रुचिरार्थ सूक्ति निधि नन्नय भट्टु तेनुन्गुन' लिखकर उक्त शब्द के तत्कालीन व्यवहार की पुष्टि की है। अपनी भाषा को आन्ध्रभाषा कहनेवाले श्रीनाथ कवि की उक्ति है कि 'देश भाषलन्दु तेलुगु लेस्सा क्रीडाभि रामम्' अर्थात् भारतीय भाषाओं में तेलुगु अति मधुर भाषा है। एक अन्य सन्दर्भ में इन्होंने अपनी भाषा को 'कर्नाटक' नाम से अभिहित किया है। इन प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से आन्ध्र शब्द भारत के एक प्रान्त के अर्थ में तथा 'तेलुगु' शब्द उस प्रान्त की भाषा के लिए प्रयुक्त होता रहा है।

आन्ध्र प्रदेश के लिए त्रिलिंगदेशम् शब्द भी प्रयुक्त होता रहा है। त्रिलिंगदेशम् का अर्थ है तीन (शिव) लिंगोंवाला प्रान्त। इन तीनों के नाम हैं—श्रीशैल मल्लिकार्जुन (रायल सीमा के कर्नूल जिले में स्थित), कालेश्वर (तेलंगाणा के अदिलाबाद जिले में स्थित) तथा द्राक्षारामम् (सरकार या सागर-सीमा के गोदावरी जिले में स्थित)। इन तीन पावन शिव-क्षेत्रों के कारण ही विभिन्न कवियों के द्वारा इसे त्रिलिंगदेश की संज्ञा दी गयी है। इस सम्बन्ध में काकतीय प्रतापरुद्र चक्रवर्ति के दरबारी कवि विश्वनाथ (१४वीं शती ई०) ने अपने ग्रन्थ 'प्रतापरुद्र' में लिखा है :

यैर्देश स्त्रीभिरेष याति महतीम् ख्यातिम् त्रिलिंगाख्यया,
येषाम् काकतिराजकीर्तिविभवैः कैलासशैलाः कृताः।
ते देवाः प्रसरत्प्रसादमधुरा श्रीशैल कालेश्वरः,
द्राक्षारामनिवासिनः प्रतिदिनं त्वच्छ्रेयसे जाग्रतु॥

कुछ वैयाकरणों का मत है कि तेलुगु त्रिलिंग का ही विकृत रूप है। कुछ आलोचक मानते हैं कि तेलुगु के लिए त्रिलिंग शब्द का प्रचलन और भी पुराना है। ई० सन् १५० के आसपास के खगोलविद् टालमी ने अपनी पुस्तक में ट्रिलिंगान शब्द का प्रयोग किया है जिससे उक्त कथन की पुष्टि होती है। त्रिलिंग शब्द का मूलरूप त्रिकलिंग है। इस बात को गुणग विजयादित्य की शासन-शिला का यह वाक्य भी प्रमाणित करता है—'संदक्षिणापथ स त्रिकलिंग देशमन्वपालयतो।' इस प्रान्त की सीमाएँ—महेन्द्रगिरि से विशाखापट्टनम् जिले के भीमुनिपट्टनम् तक जिसे उत्तर कलिंग या उत्कल भी कह सकते हैं तथा भीमुनिपट्टनम् से गोदावरी नदी तक है, जिसे दक्षिण कलिंग कहा जा सकता है।

प्रारम्भ में दिये गये तीन शैव-क्षेत्र तीन पहाड़ों पर हैं। इसी आधार पर इसे त्रिनगदेश भी कहा जा सकता है। एक सम्भावना यह भी बनती है कि तेनुंगु शब्द 'त्रिनग' का ही बिगड़ा हुआ रूप है। यह भूभाग प्राचीन काल में नाग जातियों की आविर्भाव-भूमि मानी जाती थी। कुछ इतिहासकार इसीलिए इसे नागभूमि के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। 'नाग' शब्द से आरम्भ होनेवाले अनेक नाम आज भी वहाँ मिलते हैं, यथा–नागय्य, नागराज राव, नागेश्वर राव, नागम्म, नागन्न, नागुलु आदि। यह क्षेत्र एक समय बौद्ध-धर्म का मुख्य केन्द्र रहा है। इतिहास-प्रसिद्ध नागार्जुन का जन्म वर्तमान आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले के वेयलि ग्राम में हुआ था। बौद्धों का प्रसिद्ध तीर्थ अमरावती भी गुन्टूर जिले में ही स्थित है। तेलंगाणा जिले में मंजीरा नामक एक नदी है। सम्भवतः इसीलिए बौद्ध-धर्मावलम्बी इस प्रान्त को 'मंजीर देश' के नाम से अभिहित करते रहे हैं।

यह भू-भाग खनिज सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक कोहनूर हीरा यहीं गोलकुण्डा की एक खान से निकाला गया था। अनन्तपुर जिले के वज्रकरूर में आज भी वर्षा ऋतु में वज्र अर्थात् हीरे मिलते हैं। इसी आधार पर अनेक भूगर्भशास्त्री इस प्रान्त के लिए वज्रभूमि संज्ञा का व्यवहार करते हैं। इसका बौद्ध-धर्म की वज्रयान-शाखा से सम्बन्ध है या नहीं, निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान आन्ध्र चार-पाँच मण्डलों का प्रदेश है। पूर्वी घाटियों से लेकर सागर-संगम तक के भूभाग को जिसमें कृष्णा-गोदावरी नदियाँ बहती हैं, 'वेंगिदेश' के नाम से जाना जाता है। इसकी एक अन्य संज्ञा 'दग्ध राष्ट्र' भी है। आन्ध्र के पूर्व भाग को 'कर्मराष्ट्र' कहा जाता है जिसके अन्तर्गत वर्तमान गुन्टूर मण्डल

आता है। पश्चिमी भाग को 'हिरण्यराष्ट्र' कहते हैं जिसमें आधुनिक कडप्पा जिले का जम्मलमडक तालुका सम्मिलित है। इससे कुछ और पश्चिम कन्नाड तथा अन्तिम छोर पर सातवाहन राष्ट्रम् स्थित है जिसके अन्तर्गत कर्नूल जिले का आदोनि तालुका आता है जो पहले वल्लारि जिले में था। अन्वेषकों का मत है कि यह आदोनि प्रान्त ही शालिवाहनों की पावन उद्भव-भूमि है। जो भी हो, आज इस भूभाग को आन्ध्र प्रदेश के नाम से जाना जाता है।

तेलुगु लिपि और भाषा

गोल अक्षरोंवाली तेलुगु-लिपि देखने में अत्यन्त सुन्दर है। इस लिपि और भाषा के सम्बन्ध में यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि "तेलुगु ही एक ऐसी भाषा है जो लिपि के कारण आँखों को और माधुर्य के कारण कानों को सुख पहुँचाती है।" विद्वानों का अनुमान है कि तेलुगु-लिपि भी आरम्भ में नागरी-लिपि के समान चौकोनिया लिपि थी। कालान्तर में लेखन-सौकर्य के लिए उसका स्वरूप गोल होता गया। यह परिवर्तन उस समय हुआ बताया जाता है जब आन्ध्र-लेखक लेखन-सामग्री के रूप में लंबी कील (जिसे गंटम् कहा जाता था) और ताड़पत्र का प्रयोग करते थे। ताड़ के पत्रों पर लंबी कील से चौकोर अक्षरों के लिखे जाने पर पत्रों के फट जाने की सम्भावना रहती है। लेखन को सुकर बनाने के लिए ही अक्षरों की बनावट में अन्तर आया होगा। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् १००० से १०५० ई० के बीच तेलुगु-लिपि गोल बनने लगी थी। लिपि की तरह हो तेलुगु-वर्णमाला का जन्म भी ब्राह्मी से हुआ है। दक्षिण में सम्राट् अशोक के शिलाशासन एवं ताम्रपत्र बहुतायत से मिले हैं। लिपि-विशेषज्ञों ने इसे मौर्य-लिपि कहा है। स्वयं तेलुगु-लिपि का आरम्भ ३५० ई० माना गया है। इसे प्रारम्भ में वेंगि-लिपि कहा जाता था। कुछ विद्वान् उक्त लिपियों के अतिरिक्त खरोष्ठी-लिपि के चलन को भी प्रमाणित करते हैं जो आज उर्दू की तरह लिखी जाती है। इसके अवशेष कन्नड़-भाषा में दिखाई देते हैं। रेफ लिखने के लिए आज भी कन्नड़ में खरोष्ठी-पद्धति का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए कर्नाटक शब्द कन्नड़ में खरोष्ठी-पद्धति पर आज भी कनर्टक लिखा जाता है। यह प्रथा तेलुगु में भी १९वीं शताब्दी तक थी। इस समानता का कारण यह है कि कन्नड़ और तेलुगु के लिए पहले एक लिपि का व्यवहार होता था। यह लिपि पूर्वी पल्लवों के समय सम्पूर्ण दक्षिण भारत में प्रचलित थी।

तेलुगु-भाषा न केवल श्रुतिमधुर है, वरन् संगीत और वेद-मन्त्रों के उच्चारण की दृष्टि से भी सर्वाधिक उपयुक्त है। आज भी यजुर्वेद के उच्चारण के लिए गोदावरी प्रान्त के ब्राह्मण पूरे देश में प्रसिद्ध हैं।

आन्ध्र, तेनुगु और तेलुगु में केवल तेलुगु का मूल रूप तेलुंगु ही अति प्राचीन है। इस कथन की पुष्टि नीचे की तालिका से होती है :

तेलुंगु	अगत्तियम् (अति प्राचीन तमिल लक्षण-ग्रन्थ)	५वीं सदी ईसवी
आन्ध्र	उद्योतन	९वीं सदी ईसवी
तेनुगु	नन्नय	११वीं सदी ईसवी

श्री मारेपल्लि रामचन्द्र शास्त्री ने तेलुगु को तेनुगु का ही अर्वाचीन रूप कहा है। उनके अनुसार तेनुगु का अर्थ है—मार्ग पर रहनेवाले। तमिल भाषा में 'तेन' का अर्थ दक्षिण है। तेनुगु का पद-विच्छेद उन्होंने तेने (शहद) + अलुगु (बहता हुआ) किया है। इस प्रकार तेनुगु या तेलुगु का तात्पर्य उनके अनुसार

मधु का या मधु-जैसा प्रवाह है। रामचन्द्र ने इस सम्बन्ध की एक और कल्पना की है। उनका कहना है कि गिरिजनों की भाषा गोंडी में पूर्णानुस्वार और 'ग' बहुवचनसूचक प्रत्यय हैं। इस कल्पना के अनुसार तेल + उन् + पूर्णानुस्वार युक्त 'ग' में जब अद्यतन उच्चारण के अनुसार 'उ'कार का संयोग होता है तब तेलुंगु शब्द का निर्माण होता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार तेलुंगु का अर्थ गोरे लोग हैं जिनकी भाषा एकदम स्वच्छ और निर्मल है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :

(१) तेलुगु भाषाभाषी गोरे अथवा गेहूँ के रंगवाले लोग हैं।

(२) ये मधुरभाषी और अत्यन्त भावुक हैं। इसीलिए इन्हें किसी भी अप्रिय बात पर क्रोध शीघ्र आता है। किन्तु अत्यधिक भावुकता के कारण वे इसे तुरन्त भूल भी जाते हैं।

इस सम्बन्ध में बाबूराव पटेल का मत है कि "ये लोग बहुत ईमानदार हैं। स्वभाव से ये प्रवासी नहीं हैं, किन्तु जब किन्हीं कारणों से अन्यान्य प्रान्तों में जाकर बसने लगते हैं तब उस जगह के रीति-रिवाजों को शीघ्रातिशीघ्र अपनाकर मूल निवासियों के साथ हिल-मिल जाते हैं। बौद्धिक सजगता के कारण इनकी रुचि राजनीति और पत्रकारिता में विशेष होती है। ऐसा ही निष्कर्ष कुवलयमालाकार उद्योतन का भी है। उसके अनुसार—"आन्ध्र, सुन्दरियों और युद्ध-भूमि को समान रूप से चाहनेवाले सुशरीर और सुभोजन-प्रिय लोग हैं।"

आन्ध्र राज्य की स्थापना

इतिहासकारों का मत है कि ईसा-पूर्व चौथी सदी में आन्ध्र राज्य की स्थापना हुई थी। पुराणों के अनुसार 'आन्ध्र विष्णु' नामक एक राजा ने निशुम्भ नामक दानव का वध करके कृष्णा नदी के किनारे स्थित श्रीकाकुलम् नगर को अपनी राजधानी बनाकर इस राज्य की नींव डाली थी। यह नगर तो कालान्तर में कृष्णा नदी की बाढ़ में बह गया, किन्तु इस नाम का एक गाँव आज भी वहाँ है। विजयवाड़ा से इसकी दूरी बीस मील है। यहाँ सुचन्द्र के पुत्र आन्ध्र महाविष्णु की स्मृति में निर्मित एक मन्दिर भी है।

सातवाहन-राजवंश

'आन्ध्र महाविष्णु' के बाद दो सौ वर्षों के राजनीतिक इतिहास को जानकारी अब तक उपलब्ध नहीं है। उनके अनन्तर इस प्रान्त के ज्ञात शासकों में सर्वप्रथम दीपकर्णि का नाम लिया जाता है जो सन्तानहीन था। कहा जाता है कि एक बार जब वह शिकार खेलने गया था तो सिंह पर सवार एक बालक उसे मिला। दीपकर्णि ने बाण के प्रहार से सिंह को मार डाला जो 'सात' नामक यक्ष बना। इस यक्ष ने ही उक्त बालक को दीपकर्णि के सिपुर्द किया जो आगे चलकर सातवाहन-वंश का आदिपुरुष हुआ। विद्वानों की राय है कि सातवाहन और शालिवाहन में भेद नहीं है। इस वंश का सिक्का लगभग चार सौ वर्ष (ई० पू० २२५ से २२५ ई०) तक आन्ध्र में अबाध गति से चला। वंश के कारण सातवाहन कहलानेवाले ये राजा आन्ध्र जाति के ही थे। इसीलिए इतिहासकार इन्हें आन्ध्र सातवाहन भी कहते हैं। इनकी ख्याति दक्षिणापथ-चक्रवर्ती के नाम से भी है। इनका राज्य कृष्णा-गोदावरी प्रान्त से लेकर नासिक तक फैला हुआ था। एक मान्यता यह भी है कि ये पहले महाराष्ट्र के राजा थे। वहाँ से बढ़ते हुए क्रमशः कृष्णा-गोदावरी तक पहुँचे। कालान्तर में जब इनका प्रभाव मूल प्रान्त में घटने लगा तब कृष्णा-गोदावरी प्रान्त को मिलाकर 'आन्ध्रदेशम्' राज्य

की पृथक् स्थापना की। कुछ इतिहासकार इन्हें सम्राट् अशोक का सामन्त मानते हैं जिन्होंने कालान्तर में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। चीनी यात्रियों ने सातवाहनों का उल्लेख सम्पूर्ण भारत के अधीश्वर के रूप में किया है। इस वंश में कुल तीस राजाओं का होना बताया जाता है। इनमें से पहला राजा 'श्रीमुख सातवाहन' था जिसकी राजधानी अमरावती में थी। श्रीमुख के पौत्र का नाम प्रथम सातकर्णि था, जिसके नाम पर बाद के सभी राजाओं के नाम के साथ सातकर्णि उपाधि का प्रयोग किया गया है। सातवाहनों में द्वितीय सातकर्णि के बाद तेरहवाँ राजा कुन्तलसातकर्णि प्रमुख है। इसका उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र में भी हुआ है। इस वंश का सत्रहवाँ राजा हाल प्राकृत भाषा का मर्मज्ञ था। गाथा-सप्तशती का संकलन इसीके द्वारा किया गया था। सातवाहनों की क्षीणप्राय कान्ति को तेईसवें राजा गौतमी-पुत्र सातकर्णि ने फिर उद्दीप्त किया। यह बड़ा यशस्वी था। इसके बाद सातवाहन-राज्य का उत्तराधिकारी वासिष्ठी-पुत्र श्रीपुलुमानि हुआ। यज्ञश्री, विजयश्री, चन्द्रश्री आदि इसी वंश के शासक थे।

इक्ष्वाकु-वंश के राजा

आन्ध्र देश पर इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का शासन २२० ई० से २६० ई० तक था। इस वंश के चार राजाओं के नाम ज्ञात हैं। वे स्वयं को अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम का वंशज मानते थे। पहले ये सातवाहनों के सामन्त थे किन्तु कालान्तर में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। इनकी राजधानी विजयपुरी कृष्णा नदी के तट पर स्थित थी। वासिष्ठी-पुत्र श्री शान्तमूल इनके मूलपुरुष माने जाते हैं।

पल्लव राजा

इक्ष्वाकुओं के बाद लगभग छः सौ वर्षों तक आन्ध्र पर पल्लवों का शासन रहा। कृष्णा-कावेरी प्रान्त पर इनका अधिकार था। वीरकूर्च महाराज इस राजवंश के संस्थापक थे। ये लोग किसी समय उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर गुन्टूर-मण्डल के पल्नाडु-भूभाग में बस गये थे। वीरकूर्च का विवाह वनवासि के राजा विष्णुस्कन्द की पुत्री के साथ हुआ था और जैसी सम्भावना व्यक्त की गयी है, दहेज के रूप में उन्हें उक्त राज्य प्राप्त हुआ था। बाद के राजाओं में उल्लेखनीय नाम महाराज शिवस्कन्द वर्मा अथवा विजयस्कन्द वर्मा का है। इनके पिता के समय से ही पल्लव-राज्य की राजधानी काञ्चीपुरम् बनी। कुछ समय के लिए काञ्चीपुरम् पल्लव-शासकों के हाथ से निकल गयी थी, इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। कुमार विष्णु ने इस पर पुनः अधिकार किया था। छठी शताब्दी में जीवितसिंह विष्णु बाद के पल्लव-राजाओं के मूलपुरुष बने। पल्लवों में नन्दिवर्मा नामधारी त्रिलोचन वल्लभ का नाम अत्यधिक आदर के साथ लिया जाता है। चालुक्य राजाओं से इनकी घोर शत्रुता थी। कहा जाता है कि इन्होंने करिकाल चोल से भी युद्ध किया था। इन्होंने अपने सबसे प्रबल शत्रु विजयादित्य को तलवार के घाट उतारा था। विजयादित्य की मृत्यु के समय उसकी पत्नी गर्भवती थी और उसने कडप्पा जिले के मुदिवेमु अग्रहारम् नामक ब्राह्मण-बस्ती में अपना सिर छिपाया था। वहीं उसने एक पुत्र को जन्म दिया था जिसने आगे पलकर विष्णुवर्धन नाम से ख्याति ही नहीं अर्जित की, पल्लवों को युद्ध में पराजित करके चालुक्य-राज्य का पुनरुद्धार भी किया। पल्लव राजा भारद्वाज गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे।

बृहत्पालायन

कृष्णा नदी के मुख प्रान्त पर २७० ई० से २८५ ई० तक, लगभग १५ वर्षों के लिए इनका अधिकार रहा। 'महेश्वर पाद परिगृहीत' नाम से प्रसिद्ध जयवर्मा इस वंश के सुप्रसिद्ध राजा थे।

शालंकायन

वैंगेय नाम से भूषित शालंकायन ईसा की चौथी-पाँचवीं शती में थे। वेंगि इनकी मुख्य नगरी थी। कृष्णा-गोदावरी नदियों के मध्यवर्ती भू-प्रदेश पर इनका शासन था। इस वंश का पहला राजा देववर्मा था। इनके परवर्ती शासकों के नाम-हस्तिवर्मा, नन्दिवर्मा, चण्डवर्मा, विजयनन्दि वर्मा आदि हैं। इस वंश के राजा क्षात्र-धर्म को माननेवाले ब्राह्मण थे।

विष्णु-कुण्डि-वंश

शालंकायनों को गद्दी से उतारने का श्रेय विष्णु कुण्डि-वंश के राजाओं को है। इनकी राजधानी लेन्दुलूर (वेंगि के पास) थी। माधव वर्मा इस वंश का मुख्य राजा था। विक्रमेन्द्र वर्मा और गोविन्द वर्मा इस कुल के अति पराक्रमी राजा थे। माधव वर्मा (तृतीय) के पुत्र को पुलिकेशि द्वितीय ने हराया और अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को गद्दी प्रदान की। इन्हें ही पूर्व चालुक्यों का आदिपुरुष माना जाता है।

इनके बाद कदम्ब, वाकाटक, कलिंग आदि राजवंशों का लगभग दो सौ वर्षों तक आन्ध्र पर शासन रहा। किन्तु इस समय पूरा प्रान्त एक झण्डे के नीचे नहीं था। सातवाहनों के बाद ऐसी स्थिति पूर्वी चालुक्यों के समय ही उत्पन्न हो सकी।

पूर्वी चालुक्य राजा

इस वंश के आदिपुरुष चन्द्रवंशीय जयसिंह माने जाते हैं। पुलिकेशि प्रथम इन्हींके पौत्र थे। पुलिकेशि के पिता का नाम कीर्तिवर्मा था। राज्य-स्थापना और विस्तार का श्रेय विद्वानों ने पुलिकेशि को ही दिया है जिसने विष्णु-कुण्डिनियों को हराकर अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को राजा घोषित किया। पल्लवराज त्रिलोचन पल्लव के हाथ मारे गये विजयादित्य के पौत्र विजयादित्य द्वितीय ने राष्ट्रकूटों से बारह वर्ष तक एक सौ आठ बार युद्ध करके उतने ही शिवालयों का निर्माण करवाया। इस वंश का एक राजा अम्मराजु था जिसे राजमहेन्द्र की उपाधि प्राप्त थी। विद्वानों का अनुमान है कि आधुनिक राजमण्ड्री, जिसका पुराना नाम राजमहेन्द्रवरम् है, इसीके द्वारा बनाया गया था। इसके बाद चालुक्य और चोल राजाओं के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। यह समय देश में राजनीतिक अस्थिरता का था। स्वयं चोल राजा, राजराजनरेन्द्र का राजतिलक दो बार हुआ था। आन्ध्र के शासकों में पोत्तापि (कडप्पा) तेलुगु चोल और नेल्लूर तेलुगु चोल का नाम प्रसिद्ध है। आन्ध्रदेश पर १२०० ई० से १२६० ई० के आसपास तक लगभग एक सौ वर्ष के लिए काकतीय राजाओं का प्रभुत्व रहा। आगे चलकर १४वीं-१५वीं शताब्दी में यह प्रान्त पद्मनायक एवं रेड्डि राजाओं के अधीन चला गया। रेड्डियों के बाद आन्ध्र प्रदेश का शासन-सूत्र श्रीकृष्णदेवराय के हाथ में आया और उनकी मृत्यु के बाद मुसलमान शासक आये। मुसलमानों के हाथ से १७वीं शताब्दी में इस प्रदेश की सत्ता का हस्तान्तरण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में हुआ। संक्षेप में, यही तेलुगु देशम् के भाग्य-निर्माताओं, राजाओं अथवा राजवंशों की कहानी है।

प्राचीन आन्ध्र के विभिन्न धर्म और उनके प्रचारक

बौद्ध-धर्म

ईसा-पूर्व ३२३ के आसपास प्रविष्ट बौद्ध-धर्म ईसा की दूसरी शती तक प्राचीन आन्ध्र का सबसे प्रबल धर्म था। जैन-धर्म का प्रचार जितना कर्नाटक और तमिलनाडु में हुआ था उतना आन्ध्र में नहीं।

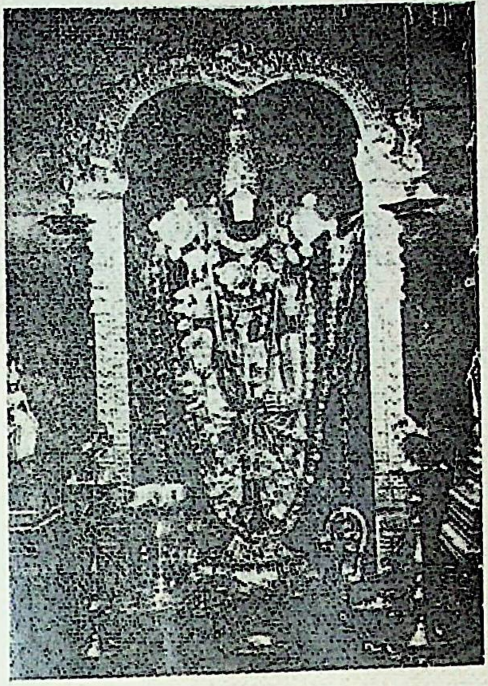

श्री वेंकटाचलपति बालाजी का मूल गर्भ-गृह : तिरुपति
पृ० ११७

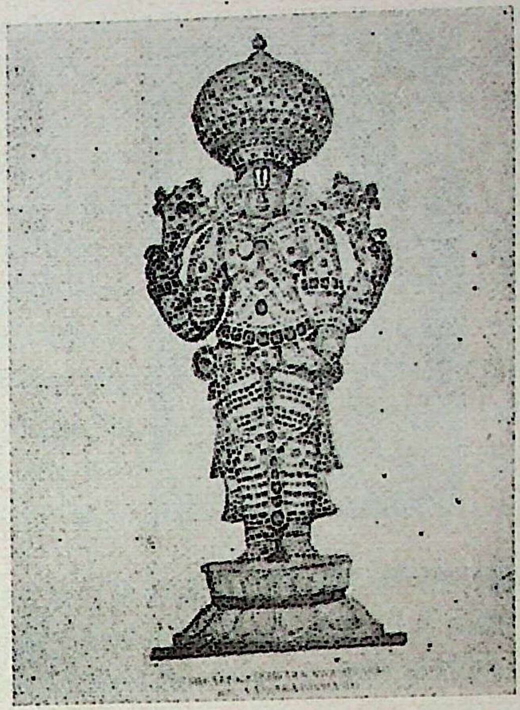

श्री वेंकटाचलपति (हीरे के किरीट-कवच सहित) : तिरुपति,
पृ० ११७

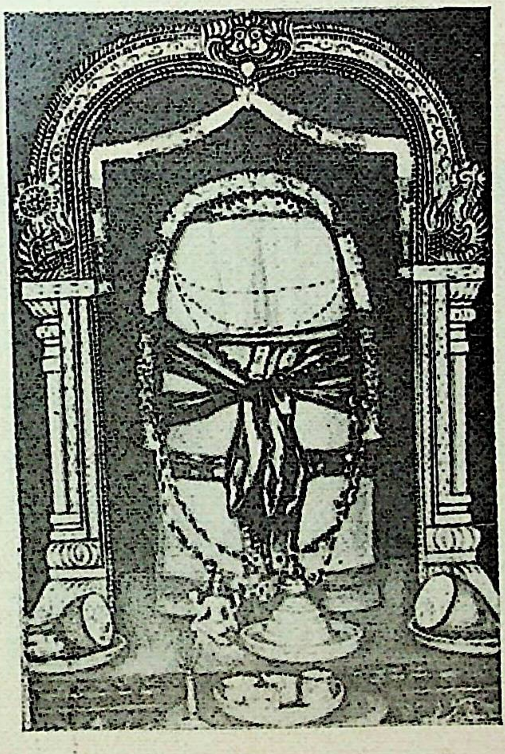

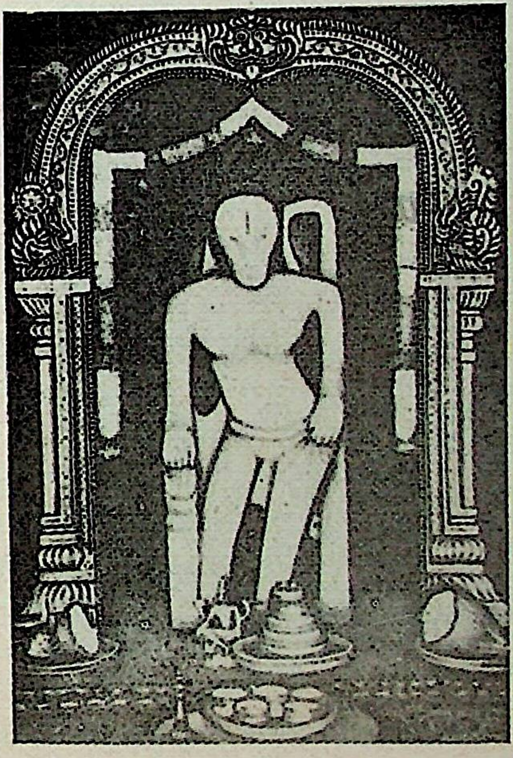

श्री नृसिंह भगवान् का चंदन लेपित विग्रह : सिहाचलम् श्री नृसिंह भगवान् : सिंहाचलम् (विशाखापट्टनम्), पृ० १३९, १८१

भगवान् वेंकटेश्वर : तिरुपति, पृ० १८

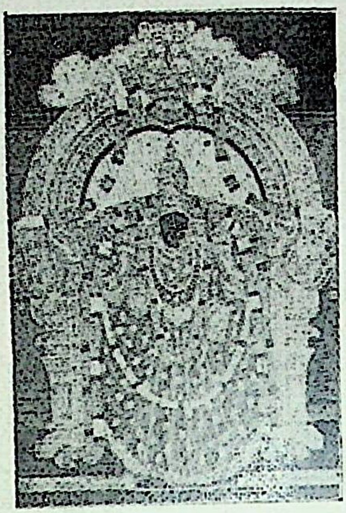

भगवती अलमेलुमंगा : तिरुपति, पृ० १९

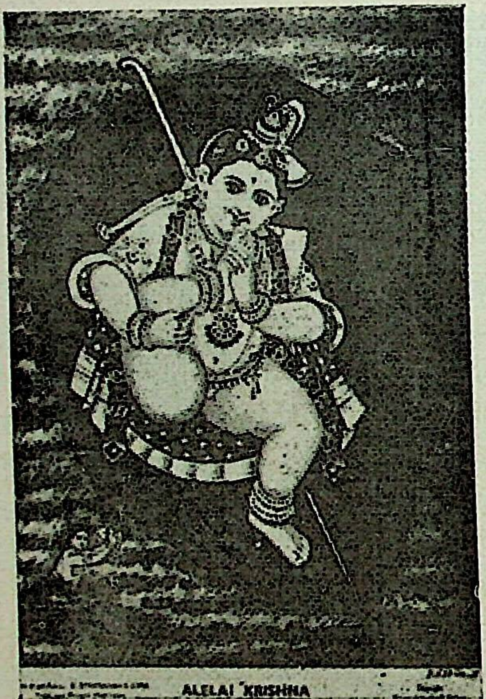
ALELAI KRISHNA

वटपत्रशायी भगवान् कृष्ण, पृ० २६

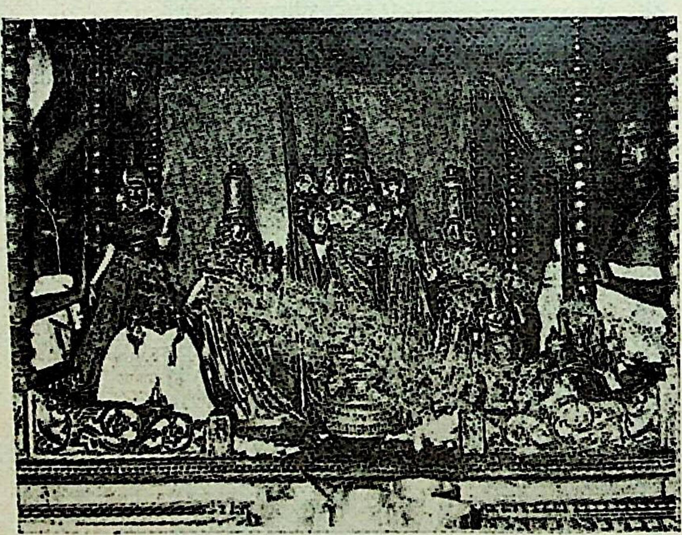

श्री रंगनाथ : तिरुत्तीरगलै, पृ० २७९

यद्यपि यहाँ भी उनकी एक बड़ी संख्या थी। गुंटूर जिलान्तर्गत पलनाडु के वेदलि ग्राम में जन्म लेनेवाले आचार्य नागार्जुन (ई० पू० १५ से ७५ ई० तक) के कारण बौद्ध-धर्म को जनता के बीच पर्याप्त लोकप्रियता मिली। बौद्धों के कई महत्त्वपूर्ण तीर्थ—अमरावती, भट्टिप्रोलू, जग्गय्यपेटा, घंटसाला, नागार्जुनकोंडा आदि इसी प्रान्त में स्थित हैं। नागार्जुन-कोंडा भारत के प्रतिष्ठित बौद्ध-क्षेत्रों में है। सातवाहनकालीन राजा यद्यपि हिन्दू थे, किन्तु बौद्ध-धर्म के प्रति उनके मन में किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं था। इन राजाओं ने अपने विचारों-विश्वासों को सामान्य जनता पर थोपने का प्रयत्न कभी नहीं किया। सातवाहनों की उदारता से बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार में बड़ी सहायता मिली। इस धर्म को राज्याश्रय इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के समय प्राप्त हुआ। इस अवधि में एक विचित्र स्थिति दिखायी देती है, वह यह कि राजा तो वैदिक धर्म के विश्वासी थे, किन्तु अन्तःपुर में, स्त्रियों के बीच बौद्ध-धर्म प्रतिष्ठित था। वासिष्ठी-पुत्र श्री शान्तमूल (२२० से २३० ई०) की पत्नी माठरी देवी के द्वारा बौद्ध-भिक्षुओं को दान दिये जाने के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। एक अन्य साक्ष्य के अनुसार श्री शान्तमूल की हम्म सिरिनिक और शान्तिश्री नामक दो बहनों के द्वारा राजधानी विजयपुरी में कई बौद्ध-चैत्यों और विहारों का निर्माण हुआ था।

श्री शान्तमूल के पुत्र श्री वीरपुरुषदत्त (२३०–२५० ई०) के राज्यकाल में बौद्ध-धर्म और अधिक विकसित हुआ। इस समय रानियाँ और राजकुमारियाँ ही नहीं, सामान्य स्त्रियाँ भी बौद्ध-धर्म के प्रचार में रुचि लेने लगी थीं। बोधिश्री इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। यह रेवत नामक एक धनवान् व्यक्ति की लड़की थी जिसने दो चैत्य और एक विहार निर्मित करवाया था। इस समय तक बौद्ध-धर्म अनेक उपशाखाओं में बँट चुका था, यथा पूर्वशैल, अपरशैल, बहुश्रुतीय, महिशासक आदि। इन विभिन्न मत-मतान्तरों के लोग इक्ष्वाकुओं के काल में निर्विघ्न रूप से आन्ध्र में निवास कर रहे थे। बौद्ध-आरामों के निर्माताओं में इस युग के सबसे प्रमुख व्यक्ति भदन्तानन्द थे।

माठरी-पुत्र श्री वीरपुरुषदत्त के बाद ग्यारह वर्षों तक उनके पुत्र वासिष्ठी-पुत्र बाहुबल शान्तमूल ने राज्य किया। राजघराने की स्त्रियों में इस समय भी बौद्ध-धर्म के प्रति आदर-भाव था। राजमाता भट्टी देवी ने इसी समय देवी-विहार का निर्माण करवाया। इस तरह आन्ध्र में बौद्ध-धर्म की जड़ें सातवीं सदी तक मजबूत रहीं जिसका विवरण ७वीं सदी के चीनी यात्री युवान् च्वांग के यात्रा-विवरणों में प्राप्त होता है।

शैव-धर्म

त्रिलिंग नाम से प्रसिद्ध आन्ध्र प्रान्त मूलतः शैव-क्षेत्र है। शैव-धर्म की तीन मुख्य उपशाखाएँ—पाशुपत, कालभैरव और कापालिक हैं। इनमें से पाशुपत-शाखा सर्वाधिक प्राचीन है। इस शाखा के प्रमुख प्रचारक कारोह (आधुनिक कार्वार) के निवासी लकुलीश शिलाचार्य थे। पाशुपत-मत का प्रवेश आन्ध्र में सर्वप्रथम कब हुआ, इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु ईसा की पहली शताब्दी तक शैव-धर्म आन्ध्र में फैल चुका था, इसकी पुष्टि करनेवाले अनेक शिलाशासन आज भी उपलब्ध हैं। सातवाहनों के बीच शैव-मत लोकप्रिय था, इसका प्रमाण इस वंश के राजाओं के नाम हैं जिनके पूर्व शिवदास, शिवक, स्कन्द, शिवल, शिवस्कन्द, शिवश्री आदि का प्रयोग हुआ मिलता है। हाल के द्वारा संकलित ‘गाथा-सप्तशती’ से यह बात भी प्रमाणित होती है कि सातवाहनों के समय शिव-पार्वती-सम्बन्धी अनेक कथाओं का प्रचार आन्ध्र में था। गाथा-सप्तशती की १७२वीं गाथा में गौरी-मन्दिर का उल्लेख हुआ है। गणेशजी को ये गणाधिपति के नाम से जानते थे। सप्तगोदावरी तीरस्थ प्रान्त में जनश्रुति के अनुसार भीमेश्वर स्वामी का

सुप्रसिद्ध मन्दिर था। भीमेश्वर के लिए उस समय एक स्वर्ण-रथ होने का प्रमाण भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त 'गाथा-सप्तशती' के प्रथम और अन्तिम पद्य शिवस्तुतिपरक हैं।

सातवाहनों के पश्चात् इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं के शासनकाल में आन्ध्र में स्कन्द-(कुमारस्वामी) पूजा अत्यन्त लोकप्रिय थी। विष्णु-कुण्डि-वंश के राजा भी श्रीशैल मल्लिकार्जुन के परम भक्त थे। विष्णु-कुण्डिनों के कारण ही इस समय बौद्ध-क्षेत्र अमरावती शैवों का प्रधान क्षेत्र बन गया और वहाँ अमरेश्वर महादेव की स्थापना हुई। ईसा की सातवीं शती तक शैव-धर्म की सभी शाखाएँ—पाशुपत, कालमुख, कापालिक आदि सम्पूर्ण आन्ध्र देश में प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। पाशुपत-सम्प्रदाय के शिव-भक्तों के नाम के अन्त में शिव, पण्डित, मुनि आदि शब्द प्रयुक्त होते थे।

पल्लव-युग में शैव-वैष्णव दोनों सम्प्रदाय और उनके अनुयायी आन्ध्र में थे। पल्लव-राजवंश में शिव और विष्णु के अनेक भक्त हुए। बृहत् पालायन-वंश के राजा जयवर्मा शिव-भक्त थे। उपलब्ध शिलाशासनों से पता चलता है कि ये 'महेश्वरपाद-परिगृहीत' थे। आनन्द गोत्रवाले कन्दवंशीय राजा भी परम शिव-भक्त थे। इस वंश के अत्तिवर्मा वंकेश्वर शम्भु के पुजारी थे।

चालुक्य विष्णुवर्धन के पुत्र विजयादित्य द्वितीय ने १०८ शिवालयों का निर्माण करवाकर न केवल शिव के प्रति अपनी अप्रतिम निष्ठा प्रदर्शित की, वरन् शैव-धर्म के प्रचार में मनसा-वाचा-कर्मणा सक्रियता भी दिखायी। पूर्वी चालुक्य राजाओं ने भी राजमहेन्द्रवरम्, द्राक्षाराम, भीमवरम्, सामर्लकोटा, बेजवाड़ा आदि नगरों में शिवालयों का निर्माण करवाया। चालुक्य राजाओं की भक्ति कालमुख शिव के प्रति थी। इस समय तक बौद्ध-क्षेत्र अमरावती में शिवाचार्य बसने लगे थे और शैव-धर्म का प्रभाव भी क्रमशः बढ़ता जा रहा था।

ईसा की १२वीं शताब्दी में हुई धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप शैव-मत दक्षिण का सर्वाधिक प्रभावशाली धार्मिक सम्प्रदाय बन गया। बसवेश्वर, जिसे शिव-भक्त नन्दीश्वर का अवतार मानते हैं, जैसे शैवाचार्यों ने जाति-पाँति का डटकर खण्डन किया। नारी-स्वातन्त्र्य के लिए भी तत्कालीन शैवाचार्यों ने भगीरथ-प्रयत्न किया। यह उनके प्रयत्नों का ही परिणाम था कि किसी ऐसी स्त्री का पति, जो स्वयं शिव-भक्त हो, यदि शिव-निष्ठ नहीं है तो वह उसका त्याग कर सकती थी और यह बात धर्मसंगत मानी जाती थी। स्त्रियों के द्वारा तपश्चर्या के भी कुछ उदाहरण इस काल में मिलते हैं। स्वयं बसवेश्वर की बहन ने घर-बार छोड़कर उसके साथ तपस्या की थी। लगभग इसी समय आन्ध्र में नयनारों का उदय हुआ और तिरसठ शिव-भक्तों की कथाएँ सम्पूर्ण आन्ध्र में गूँज उठीं। शिव-भक्ति का प्रभाव १४वीं शताब्दी तक अक्षुण्ण बना रहा। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि पूर्व-मध्यकाल में आन्ध्र शिवोपासना का मुख्य क्षेत्र रहा है।

वैष्णव-धर्म

वैष्णवों के उपास्य 'वासुदेव' हैं। ईसा के पूर्व वैष्णव-धर्म के लिए सात्वत या भागवत नाम प्रयुक्त होता था। वृष्णिकुल-सम्भव वासुदेवकृष्ण वासुदेव के नाम से भी जाने जाते हैं। इतिहासज्ञों का मत है कि ईसा-पूर्व की चौथी शताब्दी में मथुरा प्रान्त में और ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी में मथुरा के बाहर वैष्णव-धर्म का व्यापक प्रचार हुआ। आन्ध्र में इसका प्रवेश-सातवाहनों के समय में हुआ, ऐसा कुछ इतिहासकारों का अभिमत है। उनकी इस मान्यता का आधार सातवाहनों के शिलाशासनों में दिखायी देनेवाले—संकर्षण,

वासुदेव, केशव, वर्धन, कृष्ण, गोपाल आदि शब्द हैं। हाल सातवाहन के समय आन्ध्र देश में न केवल कृष्ण की पूजा होती थी, वरन् कृष्ण-गाथाएँ भी प्रचलित थीं। गाथा-सप्तशती में कृष्ण के लिए—मधुमथन, दामोदर जैसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है। यशोदा और गोपिकाओं का भी उल्लेख है। गाथा-सप्तशती की कुछ कहानियों में राधा और गोपियों के बीच सपत्नी-द्वेष की झलक मिलती है।

इतना होते हुए भी वैष्णव-सम्प्रदाय के लिए राज्याश्रय ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में ही उपलब्ध हो सका। प्रमुख पल्लवराजा शिवस्कन्द वर्मा की धर्मपत्नी चारुदेवी ने नेल्लूर-मण्डल के दालूर ग्राम में नारायण स्वामी के मन्दिर के लिए भूमि-दान किया था, इस सम्बन्ध में प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण एक शिलालेख उपलब्ध है। इसके आधार पर नारायणस्वामी के उक्त मन्दिर को दक्षिण भारत का प्रथम विष्णु-मन्दिर माना जाता है। इनके बाद शालंकायन गोत्रज यद्यपि स्वयं चित्ररथ स्वामी अथवा सूर्य के उपासक थे फिर भी उन्होंने समय-समय पर वैष्णव-धर्म के प्रोत्साहन के लिए प्रयत्न किये थे। उनके सहयोग से ही गोदावरी और कृष्णा नदियों के मध्यवर्ती भाग में विष्णु-देवालयों का निर्माण हुआ, ऐसा इतिहास-लेखकों का मत है। इस सम्बन्ध में शिलाशासन भी उपलब्ध बताये जाते हैं।

११वीं शताब्दी के आरम्भ तक शठकोप, नाथमुनि, यामुनाचार्य जैसे भावसिद्ध भक्तों के द्वारा वैष्णव-धर्म की पताका समूचे आन्ध्र में फहराने लगी थी। श्रीकाकुलम् के श्रीकूर्मम्, विशाखपट्टनम् जिले के सिंहाचलम्, गोदावरी जिले के सर्पवरम् तथा गुंटूर-क्षेत्र के बापट्ला आदि स्थानों में बने विष्णु-मन्दिर इस बात के प्रमाण हैं। सन् १०१८ ई० के आसपास पेरुम्बदूर में उत्पन्न विशिष्टाद्वैत-मत के संस्थापक स्वामी रामानुजाचार्य के प्रभाव से पौराणिक मत देव-मत में परिणत हो गया। शैवों में वीरशैवों की भाँति वैष्णवों में रामानुजाचार्य के शिष्य श्रीवैष्णव या वीरवैष्णव की संज्ञा से अभिहित किये जाने लगे। आचार्य रामानुज के प्रयत्नों से वैष्णव-धर्म तमिलनाडु की सीमाएँ पार कर सुदूर कर्नाटक में प्रविष्ट हुआ।

ईसा की १५वीं-१६वीं शताब्दी में तिरुपति वैष्णवों का प्रधान क्षेत्र बन गया। विजयनगरम् के प्रतापी राजा कृष्णदेवराय के प्रयत्न से यह कर्नाटकान्ध्र का शक्तिशाली धर्म बन गया। इस धर्मान्दोलन के प्रभाव से न केवल विशेष प्रकार की सामाजिकता में आन्ध्र-जनता दीक्षित हुई, वरन् यहाँ प्रौढ़ काव्य-रचना की भावभूमि का निर्माण भी हुआ। कालान्तर में वैष्णव-देवालयों में नृत्य-गान की परम्परा के प्रचलन से आन्ध्र-जनता की सांस्कृतिक और सांगीतिक चेतना प्रौढ़ तो हुई किन्तु इसीने देवदासी-प्रथा को जन्म दिया जिससे देव-मन्दिर भोग-विलास के केन्द्र बन गये। इससे वैष्णव-धर्म के विकास में कुछ बाधा पड़ी, किन्तु उसके समर्पित तथा तपोनिष्ठ पुरस्कर्ताओं के प्रयास से भक्ति की पावन धारा में सारे कल्मष बह गये और समाज के सभी वर्गों के असंख्य श्रद्धालु उसमें मज्जन कर सन्तृप्त हो गये।

यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि दक्षिण भारत के प्रथम विष्णु-मन्दिर का निर्माण त्रिलिंग देश के नाम से प्रसिद्ध आन्ध्र के नेल्लूर-मण्डल के अन्तर्गत दालूर में हुआ था। कृष्णा नदी के तट पर श्रीकाकुलम् में ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी में आन्ध्र राज्य की स्थापना हुई थी और आन्ध्र महाविष्णु ने एक मन्दिर निर्मित कराया था। यह मन्दिर आज भी विष्णु-मन्दिर के रूप में उपलब्ध है। वैष्णव-धर्म को सर्वाधिक संरक्षण विजयनगरम् के राजाओं से मिला। अनेक कवि-कलाकार भी अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए वैष्णव-धर्म में दीक्षित हुए। रामानुजाचार्य के प्रभाव से आन्ध्र में विष्णु और उनके विभिन्न अवतारों की पूजा-प्रतिष्ठा में आशातीत वृद्धि हुई। यहाँ कदाचित् ही कोई गाँव हो जहाँ कम-से-कम एक मन्दिर न हो।

मन्दिर-निर्माण और योजनाबद्ध प्रचार के विषय में वैष्णव-धर्म, शैवों से बहुत आगे रहा है। अपने सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा जनमानस को भक्तिप्लावित करने में उसे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

तेलुगु-साहित्य की रूपरेखा

तेलुगु-साहित्य की धारा अज्ञेय गंगोत्री से निकलकर गोदावरी-तट पर स्थित राजमहेन्द्रवरम् की समतल भूमि पर ११वीं सदी से ही अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। गंगा के जल-मार्ग में हरिद्वार का जो स्थान है ठीक वैसा ही पवित्र स्थान तेलुगु-साहित्य में राजमहेन्द्रवरम् का है। यही वह पुण्यस्थल है जहाँ तेलुगु के आदिकाव्य महाभारत का अवतरण हुआ था और जिसके लिए स्वयं राजराजनरेन्द्र ने भगीरथ-प्रयत्न किया था। आदिकवि नन्नय ने शिव की भाँति अपने कवितारूपी जटाजूट से 'महाभारत' की गंगा को लोक-कल्याणार्थ साहित्य-भूमि पर बहने के लिए मुक्त किया। चन्द्र-वंश के राजराजनरेन्द्र के साथ सगर-पुत्रों की तरह पूरा चालुक्य-वंश और तेलुगु भाषाभाषी पुनीत हो गये। तेलुगु-साहित्य के मूल उत्स को ढूँढ़ने में विद्वानों ने अनेक प्रयास किये हैं और उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। प्राचीन काल के कई कवियों का सन्धान भी वे पा सके हैं किन्तु उनकी रचनाएँ उपलब्ध न होने से यह अभियान आज भी अधूरा ही है।

तेलुगु का प्रारम्भिक साहित्यिक स्वरूप शिलाशासनों में मिलता है। इनमें से अधिकांश रायलसीमा प्रान्त में उपलब्ध हुए हैं। तेलुगु का प्रथम शब्द, डॉ० आरुद्र के अनुसार 'नागनु' (नांग) है जो अमरावती में मिले शिलाशासन में प्राप्त हुआ है। तेलुगु के प्रथम उपलब्ध प्रौढ़ साहित्य-सर्जक महाकवि नन्नय हैं। नन्नय के साहित्य की प्रौढ़ता ही इस बात का प्रमाण है कि उनसे पहले भी इस भाषा में प्रचुर साहित्य लिखा गया होगा, अन्यथा नन्नय का साहित्य इतना उत्कृष्ट तथा भाषा इतनी परिमार्जित नहीं हो सकती थी और न उनके द्वारा 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ की रचना ही सम्भव थी।

तेलुगु-साहित्य का ज्ञात इतिहास दस शताब्दियों का है जिसे विभिन्न कालखण्डों में निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :

(१) ई० सन् ११०० से १४०० तक के काल को, इस युग की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक सामग्री को देखते हुए 'स्वर्ण-काल' की संज्ञा दी जा सकती है।

(२) १४वीं से १७वीं शती तक की अवधि, जो अनेक प्रौढ़ प्रबन्धों की रचना से मण्डित है, 'प्रबन्ध काव्य-काल' के नाम से पहचानी जा सकती है।

(३) १७वीं से १९वीं शताब्दी तक अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति तेलुगु में भी शृंगारपरक तथा भोग-विलासवादी साहित्य की सर्जना प्रचुर मात्रा में हुई है जिसके आधार पर इस अवधि को 'शृंगार-काल' के नाम से अभिहित किया जाता है।

(४) १९वीं शती के आरम्भ से लेकर आज तक तेलुगु-साहित्य और समाज में नयी जागृति का स्वर मुखरित रहा है। उसे ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत कालखण्ड को 'नव निर्माण-काल' कहा जा सकता है।

उक्त काल-विभाजन तेलुगु-साहित्य के स्वीकृत इतिहास-लेखकों द्वारा किये गये काल-विभाजन से सर्वथा भिन्न है। 'कवि-तत्त्व-विचारमु' के लेखक डॉ० सी० आर० रेड्डी का मत है कि तेलुगु का 'आदि-

काल' अत्यन्त भव्य है। इस स्थापना के पीछे इस युग के उपलब्ध साहित्य की भाव-शबलता है। आन्ध्र के इतिहास में ११वीं शती का अपना अलग महत्त्व है।

राजनीतिक दृष्टि से यह युग संक्षोभ का है। सन् १११९ ई० में विमलादित्य की मृत्यु के बाद उनके सुपुत्र राजराजनरेन्द्र राजा बने जिन्हें अल्प-अवधि में ही उनके सौतेले भाई, विजयादित्य ने कर्नाटक के राजाओं की सहायता एवं कलिंग राजा गंग के मैत्री-बल पर पदच्युत करके स्वयं राज्यासन ग्रहण किया। राजराज को अपने मामा गंगैकोंड राजेन्द्र चोल की सहायता लेनी पड़ी। उनकी विशाल सेना के नेतृत्व में विजयादित्य पराजित हुआ और राजराज का २२ अगस्त, १०२२ ई० के दिन पुनः राजतिलक हुआ। इन्होंने मात्र दस वर्ष राज्य किया, क्योंकि विजयादित्य ने नये सिरे से सेना इकट्ठी कर लेने के बाद इन्हें एक बार पुनः गद्दी छोड़ने को विवश किया। वेंगि की राजधानी बेजवाड़ा में १०३१ ई० में विजयादित्य का राजतिलक हुआ। किन्तु राजराज के मामा ने उनके सहयोग के लिए पुनः एक बड़ी सेना भेजी और वे विजयादित्य को पराजित करके १०३५ ई० में एक बार फिर राजा बने। किन्तु इनकी आपसी प्रतिद्वन्द्विता समाप्त नहीं हुई। परिणाम यह हुआ कि कर्नाटक के राजाओं ने वेंगि को भी अपने अधिकार में ले लिया। १०४७ ई० में अपने साले की सहायता से राजराज को खोया हुआ राज्य किसी तरह पुनः मिल गया। इस बार उन्होंने अपनी राजधानी बेजवाड़ा से हटाकर राजमहेन्द्रवरम् (आधुनिकराजमण्ड्री) कर ली। यहीं इनके अनुरोध पर नन्नय ने प्रथम तेलुगु महाकाव्य 'महाभारत' की रचना की।

अपने शासन-काल में राजराज को दक्षिणी चालुक्यों से सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के बाद वे सन् १०६१ ई० तक मृत्यु-पर्यन्त निर्विघ्न राज्य कर सके। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र राजेन्द्र चोल आन्ध्र देश के अधिपति बने। यह युग आन्ध्र में राजनीतिक अस्थिरता का था। काकतीय राज्य की स्थापना (१२०० ई०) तक यह अस्थिरता बनी रही। सम्पूर्ण आन्ध्र काकतीयों के समय में ही पहली बार एक झण्डे के नीचे आया। यह राजनीतिक एकता प्रतापरुद्र के समय तक ज्यों की त्यों बनी रही। इस बीच मुसलमानों ने आन्ध्र पर अधिकार करने के अनेक प्रयास किये, किन्तु उन्हें हर बार असफल होकर लौटना पड़ा।

१४वीं से १७वीं शती तक राजनीतिक दृष्टि से शान्ति-सौहार्द का युग था। इस समय आन्ध्र में कोई महत्त्वपूर्ण उथल-पुथल नहीं हुई। इस युग को सर्वाधिक महत्त्व की घटना हरिहर और बुक्क रायलु के द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना है। सम्पूर्ण दक्षिण भारत इस युग में एक झण्डे के नीचे दिखाई देता है। इस अभूतपूर्व एकता के कारण ही विजयनगर-साम्राज्य की सीमा मुसलमानों के लिए लक्ष्मण-रेखा प्रमाणित हुई। आगे चलकर अलिय (दामाद) रामराय के बाद यह सुदृढ़ रक्षा-पंक्ति खण्डित हुई और आन्ध्र प्रान्त पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। तेलुगु राजा मधुरा (तमिलनाडु और तंजाऊर) में जाकर बसने को विवश हुए। मुगल-साम्राज्य के अन्तिम दिनों में आन्ध्र प्रदेश छोटी-छोटी जमींदारियों में विभक्त होकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में पहुँच गया। १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुई राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप इस प्रदेश के निवासी सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगे, जिसकी परिणति बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्राप्त पूर्ण स्वराज में हुई।

धार्मिक परिस्थितियाँ

पहले कहा जा चुका है कि पाशुपत शैवों के प्रधान-क्षेत्र आन्ध्र में बौद्धों का एक लम्बी अवधि तक प्राधान्य रहा। राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता जनता में भी फलित हुई किन्तु इसका तात्पर्य यह

नहीं है कि धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण आन्ध्र में सदैव रहा। एकाध उदाहरण धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता के भी मिलते हैं। नागार्जुन-कोंडा में एक शिल्प ऐसा मिला है जिसमें एक राजा शिव-लिंग पर पैर रखकर खड़ा दिखाई देता है। इतिहासकार उक्त राजा का नाम वीरपुरुषदत्त बताते हैं जो इक्ष्वाकु-वंश के संस्थापक वासिष्ठी-पुत्र शान्तिमूल का पुत्र था। इस समूचे प्रान्त में धर्मावलम्बन-सम्बन्धी एक विचित्र बात यह दिखाई देती है कि राजा तो वैदिक धर्मानुयायी होते थे, किन्तु सामान्य जनता बौद्ध और जैन-मतावलम्बी थी। इसका प्रधान कारण राजाओं पर वेदों को प्रमाण माननेवाले ब्राह्मण-धर्म का प्रभाव माना जाता है।

प्राचीन आन्ध्र के अधिकांश राजा क्षात्र-धर्म को प्रधानता देनेवाले ब्राह्मण थे। सातवाहन, पल्लव, शालंकायन तथा आनन्दगोत्रज राजा इस बात के प्रमाण हैं। वैदिक धर्म जनसामान्य की समझ और पहुँच से बाहर था, जब कि बौद्ध-जैन-धर्मों के उपदेशकों ने जनता की भाषा में जिस धर्म का प्रचार किया उसमें आचरण-सौकर्य भी था। इन धर्मों ने स्त्रियों को भी विशेष आकृष्ट किया। बौद्ध-आरामों और चैत्यों के निर्माण में राजघराने के साथ ही बड़े घरों की स्त्रियों के द्वारा ली गयी रुचि और किया गया सहयोग इस बात का प्रमाण है। बौद्ध और जैन-भिक्षुओं के प्रति इनके मन में अत्यधिक आदर-भाव था। जब कि राजाओं के मन में जनता की भाषा के प्रति द्वेष की भावना ही अधिकतर देखने को मिलती है। जनभाषा के प्रति द्वेष होने से जनता की भाषा में धर्म का आख्यान करनेवाले बौद्ध-जैन-भिक्षुओं के प्रति भी उनका मन साफ नहीं रहता था। प्रशासनिक कार्यों के लिए केवल संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का प्रयोग होता था। धर्म-ग्रन्थों का जनभाषा में रूपान्तरण ब्राह्मणों के द्वारा भी पसंद नहीं किया जाता था। उनकी रुचि इन ग्रन्थों को मूल भाषा में ही पढ़ने की थी। जन-भाषा के प्रति उनके द्वेष का एक कारण यह हो सकता है कि संस्कृत भाषा के चलते राज्यपालन-सम्बन्धी पदों और शिक्षा के क्षेत्र में उनका एकच्छत्र वर्चस्व था, जनभाषा-प्रयोग से उसके समाप्त हो जाने का भय था। परिणाम यह हुआ कि देव-भाषा ने एक लम्बे समय तक देश-भाषा को आगे नहीं बढ़ने दिया। इस ओर सर्वप्रथम राजराजनरेन्द्र का ध्यान गया और वह भी तब, जब कर्नाटक और तमिलनाडु के पड़ोसी राज्यों में धर्म-ग्रन्थों के प्रणयन का कार्य जोर-शोर से चल रहा था। पड़ोसी राज्यों से प्रेरणा ग्रहण करके उन्होंने नन्नय से 'महाभारत' का तेलुगु भाषा में अनुवाद करने का आग्रह किया जो इस बात का प्रमाण है कि जनभाषा के मत्त्ह्व के प्रति उनकी आँखें अब खुल चुकी थीं।

पूर्वी और दक्षिणी चालुक्यों के समय शैव-धर्म की दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति हुई। ठीक इसी समय तमिलनाडु में नयनारों का उदय हुआ। तिरसठ शिव-भक्तों की कहानियाँ इस समय सम्पूर्ण दक्षिण भारत में न केवल कही-सुनी जाती थीं, वरन् पसंद भी की जाती थीं। इसका एक कारण यह बताया जाता है कि राजराजनरेन्द्र के पुत्र राजेन्द्र चोल ने तमिलनाडु से आन्ध्र पर प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन चलाने की जिस पद्धति का अवलम्ब लिया था उसे सफल बनाने में इन शैव-भक्तों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। शैव-भक्तों ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच तथा स्त्री-पुरुष के बीच भेद-भाव पैदा करने और पोसनेवाली कुत्सित रीतियों तथा परम्पराओं का जोरदार भाषा में खण्डन करके एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की जो प्रतिनिध्यात्मक शासन के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। यद्यपि राज्याधिकारियों के द्वारा इन शैव-भक्तों का प्रायः अनादर और अपमान भी किया जाता था किन्तु इन विपरीतताओं के बीच भी वे जिस उत्साह से डटे रहे उसीका परिणाम था कि बिज्जल नामक शिव-विरोधी राजा को मारकर बसवेश्वर नामक परम शिव-भक्त

राजा आन्ध्र का अधिपति बना। यह समय धर्म के क्षेत्र में मल्लिकार्जुन के प्रभाव तथा शैवों के लिए सर्वथा अनुकूल था। मल्लिकार्जुन का जन्म यद्यपि ब्राह्मण-परिवार में हुआ था, किन्तु शिव के प्रति इसकी अपार निष्ठा थी। वह मस्तक पर त्रिपुण्ड्र और गले में रुद्राक्ष की माला ही नहीं धारण करता था, वीर माहेश्वर-सम्प्रदाय में दीक्षित भी था। इसे देखकर ब्राह्मणों में उस समय भयंकर खलबली मची हुई थी। सबको इसके हाथों पराजित होना पड़ा। बौद्ध-प्रचारकों तथा धर्माचार्यों ने यद्यपि इसकी बड़ी निन्दा की किन्तु वे इसका प्रभाव कम नहीं कर सके। इसके शिष्यों ने एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध गुरु की हत्या भी कर डाली थी। इस अपराध को राजा के पूछने पर मल्लिकार्जुन ने बड़े गर्व के साथ स्वीकार कर लिया था। राजा ने इस अपराध के चलते, जैसा कि इतिहासकारों का कहना है, उसकी आँखें निकलवा ली थीं।

ग्यारहवीं शती में स्वामी रामानुजाचार्य ने वैष्णव-धर्म को नया मोड़ दिया। इनके विशिष्टाद्वैतवाद की सुदूर कर्नाटक तक धूम रही। यह शैवों-वैष्णवों के बीच भयंकर संघर्ष का समय था। सामाजिक बन्धन बिल्कुल शिथिल हो चले थे, कोई किसीको मानने के लिए तैयार नहीं था। समाज की इस स्थिति से समकालीन कवि भी विक्षुब्ध थे। कविता के क्षेत्र में ऐसी ही विषम परिस्थितियों के बीच तिक्कन का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अपनी वाग्मिता से शिव-केशव के बीच अभेद-स्थापना करते हुए हरि-हर-तत्त्व का प्रचार किया। इस स्थापना को तिक्कन के परवर्ती कवियों ने भी स्वीकार तथा विकसित किया।

मुसलमानों के आगमन और सत्साहित्यिकों के अनेकधा प्रयासों के फलस्वरूप किसी तरह शैवों-वैष्णवों के बीच सहिष्णुता एवं सौहार्द की स्थापना हो सकी। महाराज कृष्णदेव राय के समय राजाश्रय प्राप्त हो जाने से वैष्णव-धर्म का प्रचार और भी प्रभावशाली ढंग से सम्भव हो सका। उन्होंने शिवालयों के लिए भी समय-समय पर दान दिये।

वैष्णव-धर्म में पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों का विकास १७वीं शताब्दी के बाद हुआ। उसके द्वारा प्रतिपादित माधुर्यभाव १७वीं-१८वीं शताब्दी में अश्लील शृंगार का रूप लेकर सामने आया। हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य की तरह तेलुगु में भी वासनापरक शृंगारिक साहित्य लिखा जाने लगा।

सामाजिक परिस्थितियाँ

आन्ध्र प्रदेश में यद्यपि वर्ण-व्यवस्था बद्धमूल थी, किन्तु उसमें जीवन-विरोधी जड़ता नहीं थी। ब्राह्मण भी क्षात्र-धर्म को अपनाने में झिझकते नहीं थे। समुद्र-तटवर्ती प्रान्त होने के नाते वाणिज्य प्रगति पर था। यह काम वैश्यों के हाथ में था। शूद्र निष्ठापूर्वक सवर्णों की सेवा में संलग्न रहते थे। जनसामान्य के बीच बौद्ध और जैन-धर्मों को लोकप्रियता प्राप्त थी। इसका प्रधान कारण उनके द्वारा जन-भाषा को माध्यम बनाकर चलना था। प्रजा और राजा की भाषाएँ अलग-अलग थीं। शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था। समाज धनवानों और धनहीनों के दो प्रधान वर्गों में विभक्त था। मध्यवर्ग का उद्‌भव अंग्रेजों के आगमन और औद्योगिक क्रान्ति के बाद हुआ। इससे पूर्व आन्ध्र के जनसामान्य की रुचि सुस्वादु भोजन और भोग-विलास तक सीमित रहा करती थी। आन्ध्र में अन्नपूर्णा का मन्दिर इस बात का प्रमाण है कि वहाँ की भूमि उर्वर थी और लोगों को खाने-पीने का कष्ट नहीं था।

इक्ष्वाकु और सातवाहन-वंश के राजाओं के नाम इस बात के प्रमाण हैं कि आन्ध्र में माता का स्थान अत्युच्च था। पुत्र, माँ के नाम से ही सम्बोधित किये जाते थे। बौद्ध एवं जैन-क्षेत्रों के लिए रनिवास की स्त्रियों द्वारा दान दिये जाने की बात यह सिद्ध करती है कि नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त

थे। उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता भी थी। श्री कृष्णदेव राय के समय में समाज के सभी वर्ग सन्तुष्ट थे, यह बात तत्कालीन साहित्य के आधार पर कही जा सकती है। इस समय वैष्णव-धर्म के विस्तार हेतु समाज के एक वर्ग को ब्राह्मण बनाने की चेष्टा के भी प्रमाण मिलते हैं। परवर्ती काल में मुसलमानों और ईसाइयों के द्वारा सामाजिक कुरीतियों की परिसमाप्ति के लिए धर्म-परिवर्तन की लहर और अधिक तेज की गयी जिसके परिणामस्वरूप विधर्मियों की संख्या में वृद्धि हुई।

संस्कृति और धर्म के सिद्धान्त जब दुराहे पर खड़े होकर गुमराह करने का प्रयत्न करते हैं तब जनसामान्य की भाषा में लिखा गया भव्य आदर्शोंवाला साहित्य समाज, धर्म और राजनीति को कैसे प्रभावित करता है, तेलुगु का आदिकालीन अथवा स्वर्णयुगीन साहित्य इस बात का साक्षी है। इस युग के कवियों ने समय की पुकार पर लोक-कल्याण के लिए जिस साहित्य की रचना की उसकी प्रेरणा किसी राजा-रईस को प्रसन्न करके पुरस्कृत होने की न होकर जनसामान्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर लाना था। इस उद्देश्य के अनुरूप ही उन्होंने अपनी कृतियाँ नरार्पित न करके भगवदर्पित कीं।

प्रौढ़ साहित्यिक रचनाओं के लिए राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों की सुस्थिरता का कितना महत्त्व होता है, यह बात आन्ध्र-साहित्य की 'प्रबन्धकालीन' कृतियाँ प्रमाणित करती हैं। परवर्ती युगों में जब कवि और कविता राज्याश्रित हो गयी तो उसके दैविक गुणों, भक्तिभाव तथा जनसामान्य की सद्शिक्षा के प्रयत्नों आदि का लोप होता गया और भोगवादी चेष्टाएँ काव्य के भीतर से झाँकने लगीं। आर्थिक समृद्धि और उत्तम आदर्शों के अभाव के कारण अलौकिक पात्र और चरित्र किस प्रकार लौकिकता के उदाहरण बनकर रह जाते हैं, तेलुगु-साहित्येतिहास का मध्य अथवा शृंगार-काल इस बात का प्रमाण है।

तेलुगु का कृष्ण-भक्ति-साहित्य

ईसा-पूर्व से लेकर लगभग सातवीं शती तक आन्ध्र प्रदेश शैव और बौद्ध-धर्मावलम्बियों का गढ़ था। सातवाहनों के द्वारा वैष्णव-सम्प्रदाय का विकास हुआ। सातवाहनों के शिलालेखों में संकर्षण, वासुदेव, केशव, कृष्ण, गोपाल आदि शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। हाल सातवाहन के काल में न केवल कृष्ण-पूजा बल्कि कृष्ण-गाथाएँ भी प्रचलित थीं। गाथा-सप्तशती में कृष्ण के लिए मधुमथन, दामोदर जैसे विशेषणों का प्रयोग मिलता है। इस शैव-क्षेत्र का वैष्णव-साहित्य में प्रवेश कृष्ण के द्वारा ही हुआ।

तेलुगु-साहित्य का शुभारम्भ महाभारत के स्वतन्त्र अनुवाद से हुआ। रामायण जिस प्रकार राम-चरित है उसी प्रकार महाभारत कृष्ण-कथा है। हरि-हर में अभेद माननेवाले नन्नय और तिक्कन्ना ने कृष्ण के लोकनायक रूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया था। नन्नय और तिक्कन्ना के नायक कृष्ण एर्रन्ना के कारण अपने बाल-जीवन की बीती बातों को एक-एक कर स्मरण करते हैं। फलतः वे बालकृष्ण बन गये। कवियों ने तेलुगु में हरिवंश और भागवत का अनुवाद किया। अविस्मरणीय साहित्य का सृजन एर्रन्न, नायन सोमुडु और पोतना ने किया। श्रीरामानुजाचार्य ने पौराणिक वैष्णव-धर्म को अपने विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त के द्वारा देव-मत अथवा देव-धर्म में बदल दिया। परिणामस्वरूप कट्टर वैष्णवों का आविर्भाव हुआ। ये अपने-आपको श्रीवैष्णव कहने लगे। शैव और वैष्णव-धर्मावलम्बियों के बीच की दूरी बढ़ गयी। तमिल-देशीय आलवारों ने आन्ध्र को भी प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप बालकृष्ण बढ़कर सोलह कलाओं-वाले किशोर कृष्ण बन गये। तेलुगु प्रदेश में प्रचलित दास्य और सख्य-भक्ति आण्डाल के कारण मधुर भक्ति

का रूप धारण करने लगी। इस स्थिति पर पहुँचने के बाद भक्त कवियों ने राधा की कमी का अनुभव किया। कवि सार्वभौम श्रीनाथ ने, राधा का नाम सबसे पहले लेकर इसे पूरा किया। 'राधामाधव-काव्य' के कवि चिंतल पूडि येल्लनार्य ने राधामाधव-साहित्य के अपेक्षित विकास के लिए अवसर प्रदान किया। तेनालि रामकृष्ण कवि की शक्तिस्वरूपिणी राधा शनैः शनैः देवत्व की उपेक्षा कर मानव-स्त्री का रूप धारण करने लगीं। श्रीकृष्ण देवरायलु, पिंगलि सूरन तथा विप्रनारायण-चरित्र के कवियों के कारण कृष्ण अपनी अष्टपत्नियों और राधा के साथ प्रेमक्रीड़ारत शृंगारी नायक बन गये। अब तक राधा स्वकीया थीं। विजयनगर-साम्राज्य के पतन के बाद रचित काव्य-ग्रन्थों के रचयिताओं के साथ शेष पत्नियों को छोड़कर वे केवल राधा को, परकीया राधा को, अपने साथ लेकर तंजाऊर पहुँचे। रघुनाथ नायक और उनके सुपुत्र विजयराघव नायक दोनों साहित्य-समरांगण-चक्रवर्ती थे। दोनों में भोग-लालसा अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। दोनों विलासमय जीवन बिताने के अभ्यासी थे। इनके दरबार में कई कवयित्रियाँ भी थीं। उनमें से रामभद्रम्मा, रंगाजम्मा, कृष्णम्बा और मुद्दुपलनि-राजाओं की भोग-पत्नियाँ थीं। इन कवयित्रियों की रचनाओं में चेमकूरि वेंकट कवि, चेन्गल्व काल कवि, संमुखम् वेंकट कृष्णप्प नायडु आदि के प्रभाव से राधा सामान्या के रूप में चित्रित की गयीं। लम्पट एवं कामुक राजाओं और उनकी हाँ में हाँ मिलानेवाले कवियों ने मिलकर गुणवती, शीलवती और लज्जावती राधा के अश्लील चित्र अंकित किये। राधा-चरित के अवमूल्यन के इस कलंक को मिटाने का काम आधुनिकों ने किया। तेलुगु-साहित्य में कृष्ण-कथा के वासनासिक्त चित्रण की इस नवोदित प्रवृत्ति का तंजाऊर-साहित्य के साथ ही अन्त हो गया। आज कृष्ण फिर से लोकनायक और राधा एक कुलांगना नायिका के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

नन्नय और तिक्कन्ना ने कृष्ण को लोकनायक-रूप में चित्रित किया जो तत्कालीन परिस्थितियों की माँग थी। पाण्डु-वंश के राजा राजराजनरेन्द्र अपने सौतेले भाई के कारण गद्दी पर निश्चिन्त होकर बैठ न सके थे। उन्होंने नन्नय की सहायता से पश्चिमी चालुक्यों के राजा त्रैलोक्यमल्ल से सन्धि करके सुखपूर्वक कालयापन किया था। इसलिए उन्होंने अपनी स्थिति से मिलते-जुलते कथानक को काव्यबद्ध करने का अनुरोध नन्नय से किया था। तेलुगु प्रदेश के तत्कालीन अस्तव्यस्त राजनीतिक वातावरण में अभीष्ट सुधार केवल महाभारत के आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा सम्भव हो सकती है यह उनका सुविचारित अभिमत था। इसके लिए नन्नय ने अपने सहपाठी अष्टभाषाकोविद नारायण भट्ट से सहायता ली। महाभारत के तेलुगु भाषा में अपने प्रथम अनुवाद की भूमिका में नन्नय ने लिखा है : "जिस प्रकार कृष्ण ने पार्थ की सहायता महाभारत-युद्ध में की थी ठीक उसी प्रकार नारायण भट्ट ने युगीन परिस्थितियों से संघर्ष करने में मुझे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।"

अपने महान् अनूदित ग्रन्थ के मंगलाचरण में त्रिमूर्तियों की वन्दना करते हुए वे लिखते हैं :

श्री वाणी गिरिजाश्चिराय दधतो वक्षो मुखान्गेषु ये
लोकानांस्थितिमावहन्त्यविहताम् स्त्रीपुंसयोगोद्भवाम्।
ते वेदत्रयमूर्तयास्त्री पुरुषाम्स्संपूजिता वस्सुरै-
र्भूयासुः पुरुषोत्तमाम्बुजभवश्रीकन्धराश्श्रेयसे ॥

'जो अनादिकाल से लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती को वक्षःस्थल, मुख और देह में धरते आ रहे हैं, जो किसी प्रकार के विघटन के बिना पृथ्वी सँभाल रहे हैं, जो तीन वेदों के साकार रूप हैं, जो देवताओं से प्रशंसा पा रहे हैं, वे विष्णु, ब्रह्मा और शिव तुम्हारा कल्याण करें।'

२/१९

इस प्रकार नन्नय ने विष्णु, ब्रह्मा और शिव तीनों को एक मानते हुए तेलुगु-साहित्य में पहली बार कृष्ण को लोकनायक-रूप में प्रस्तुत किया है। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर कृष्ण की अगवानी करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं—"हे कृष्ण, तुम ध्यानयोग्य हो, इस संसार को चलानेवाले (सकल लोक स्थेयुडवु) हो''' क्या इस संसार में ऐसी कोई वस्तु है जो तुम नहीं जानते हो।" (सभापर्व) अरण्यपर्व में द्रौपदी कृष्ण से कहती है—"नियमवान्, पुण्यवान्, धर्मवान्, राजर्षियों, योगियों आदि सभी के लिए तुम एकमात्र गति हो।"

नन्नय द्वारा प्रतिष्ठित कृष्ण-चरित्र के इस पक्ष को तिक्कन्न ने और आगे बढ़ाया। तिक्कन्न नन्नय के समान दरबारी कवि होने के साथ राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने नन्नय की भाँति ही अपने आश्रयदाता मनुमसिद्धि की सहायता की। तत्कालीन समाज में बढ़ती हुई धार्मिक कट्टरता को देखकर वे अत्यन्त विक्षुब्ध थे। इसलिए उन्होंने हरि-हर की एकता का डटकर प्रतिपादन किया। एक स्थान पर तो वे सीधे भगवान् से पूछते हैं—"आपको अलंकार के लिए अस्थि-माला चाहिए या कौस्तुभ? आप किसे पसंद करते हैं? आपको माँ यशोदा के स्तन्य का दूध चाहिए या कालकूट विष?" इस प्रकार के अनेक माध्यमों के द्वारा तिक्कन्ना ने भगवान् के लोकरक्षक रूप का आह्वान किया है। हरि-हर-स्तुति में वे भक्त जनों के मुँह से 'विष्णुरूपाय नमश्शिवाय' का उद्घोष कराते हैं। यादवों के विषय में लिखते हुए कृष्ण के बारे में एक भव्य शब्द का उपयोग करते हैं—'सर्वविदुन्डु कृष्णुडन्तरंगमुन समालोचन चेसि?' अर्थात् थोड़ी देर के लिए सर्वज्ञ कृष्ण का मन में ध्यान करो। यहाँ सर्वविदुन्डु (सर्वज्ञ) शब्द कृष्ण के लोकनायकत्व का व्यंजक है। आगे की घटना में सब यादव तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं। बलराम भी तपस्या के लिए निकलते हैं, पर कृष्ण शान्तचित्त एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। इस सन्दर्भ में तिक्कन्ना ने लिखा है:

विनु मोक्कडु नोक भूरुह मुन मूलम्नुन विरस्त मोहान्धत्वम्।
नुन वेलुगु बुद्धि विज्ञत यनि रूढत जेसियुन्डे वालीमुन्डै॥

'जब मोहरूपी अन्धकार का परदा हटता है तब बुद्धिरूपी प्रकाश प्रकट होता है। श्रीकृष्ण इस तथ्य के मर्मज्ञ थे।'

सहज कवि पोतन्ना ने भी कृष्ण के लोकरक्षक रूप का उतनी ही तत्परता के साथ अंकन किया है जितना बालकृष्ण की लीलाओं का। उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की रक्षा कृष्ण करते हैं। उस समय कुन्ती हरि की प्रशंसा करती हुई कहती हैं:

श्रीकृष्णा! यदुभूषणा! नरसखा! शृंगाररत्नाकरा!
लोकद्रोहि नरेन्द्रवंशदहना! लोकेश्वरा! देवता
नीक ब्राह्मणगोगजार्ति हरणा! निर्वाण संधायका
नीकुन भ्रोक्केद द्रुम्पवे भवलतल, नित्यानुकम्पानिधी!

'यदुभूषण, नरसखा आदि विशेषणों से कुन्ती कृष्ण की स्तुति कर अन्त में कहती हैं, 'मैं तुम्हें नमस्कार कर रही हूँ। मेरे भवबन्धनों को हे नित्यानुकम्पानिधि, हरो।' उक्त पद्य के 'लोकद्रोहि नरेन्द्रवंशदहना, लोकेश्वरा, देवतानीक, ब्राह्मणगोगजार्ति हरणा और निर्वाण संधायका' विशेषण श्रीकृष्ण के लोकरक्षक

रूप को उजागर करते हैं। तेलुगु-साहित्य में श्रीकृष्ण का यह लोकनायक रूप ईसा की ग्यारहवीं सदी से लेकर पंद्रहवीं सदी तक प्रतिष्ठित रहा।

तेलुगु-साहित्य में बालकृष्ण-लीलांकन

चौदहवीं शताब्दी के शान्त वातावरण ने तेलुगु-साहित्य में बालकृष्ण के स्वरूपांकन को प्रोत्साहन दिया। एर्रन्न, नायन सोमन्न (सोमुडु), पोतन, मडिकि सिंगन आदि कवियों ने बालकृष्ण के मोहक रूप और अलौकिक लीलाओं को अंकित किया। परिणामस्वरूप वात्सल्य-रस की गंगा अबाध गति से बहने लगी।

लोकरक्षक एवं लोकनायक कृष्ण को बालकृष्ण बनाने का श्रेय एर्राप्रगड अर्थात् एर्रन्न को है। इनकी वर्णन-शैली इतनी प्रभावशाली थी कि तेलुगु-साहित्य के विख्यात परवर्ती कवियों के लिए ये मार्गदर्शक बन गये। बालकृष्ण की शैशव-लीलाओं के एर्रन्ना ने अनेक शब्दचित्र प्रस्तुत किये हैं।

बालक कृष्ण को मारने के लिए पूतना नन्द के घर पहुँचती है। उस समय वे सो रहे थे। उनका लोकमोहक रूप देखकर वह अपने-आपको भूल जाती है :

आमूर्ति यट्टि तेजम बा महिम निजान्तरंग-
मद्भुत व्यामोहितम्बु;सेयन्गा मेत्तनन्,
गोन्त सेपु कनुन् गोनि यलुकन्।

'उस मोहन मूर्ति को देखकर पूतना का अन्तरंग व्यामोह से भर गया।'

नटखट कृष्ण की छेड़छाड़ से तंग आकर गोपिकाएँ यशोदा से शिकायत करती हैं :

एक्कडिकेनियुन बोयद, मिक्कष्टन्बाटु पडग ने मोर्वंमुनी।
चोक्कपुन् गोन्डुकुनु नीवुनु नोकतलयु नीक्क नूरि नंडुडु नेम्मिन्।

'हे यशोदा! अब और सहा नहीं जाता। हम चले। तुम और तुम्हारा लाड़ला दोनों चैन के साथ इस गाँव में रहो। हम लोग और कहीं चले जायेंगे।'

पोतना ने उक्त पद्य का जैसे अनुकरण किया है। आलोचकों का कहना है कि पोतना के पास एर्रन्न जैसा सूक्ति-वैचित्र्य नहीं है, किन्तु अनुभूतियुक्त शब्दों के कारण पोतना की भाषा ललित और सुमधुर बन गयी है। गोप-पत्नियों की शिकायत जिस प्रकार पोतना के 'ओ यम्म नी कुमारूडु माइन्ड्लनु पालु परुगु मन नीयडम्मा, पोयदमु एच्चटि कैननु' प्रतीकवाले पद्य में मुखरित हुई है, वैसी एर्रन्न में नहीं है। पोतना की गोप-पत्नियाँ कह रही हैं : "हे यशोदा, तुम्हारा यह कृष्ण बड़ा नटखट है। दूध, मक्खन और दही को कृष्ण से बचाना हमारे लिए एक दुष्कर कार्य बन गया है। हम इस गाँव को छोड़कर कहीं दूर जाना चाहती हैं।"

एर्रन्न और पोतना के लिए प्रेरणा एक ही घटना से मिली है। पर दोनों ने अनोखे ढंग से अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत किया है।

कृष्ण के अन्तर्यामी गुण की प्रशंसा करते हुए एर्रन्ना ने लिखा है :

गलंडु कलवानियन्दुनु गलंडु लेनिवानियंदुनु गल डेल्ल वानियन्दु।
मिकवेयुनु नेल सर्वेश्वरुडु कलंडु नीयन्दु न यन्दु गलंडु कलंडु॥

'भगवान् आस्तिकों में है, नास्तिकों में भी हैं। भगवान् सबमें हैं। हजार बातें क्यों ? भगवान् तुझमें हैं, मुझमें हैं। वह तो सर्वान्तिर्यामी हैं।'

पोतना ने उसी भाव को यों कहा है :

इन्दु गलंडु उन्दु लेंडनि संदेहमुवलंदु चक्रि सर्वोपगतुं।
डेन्देन्दु वेदकि चूचिन नदंदे गलंडु दानवाग्रणि ! विंदो।

प्रह्लाद अपने पिता से कह रहा है : 'हे दानवाग्रणी ! देखो तो सही। यह मत सोचो कि भगवान् यहाँ है और वहाँ नहीं है। वह तो सर्वत्र हैं। जहाँ-जहाँ उन्हें ढूंढ़ोगे वहाँ-वहाँ तुम उन्हें पाओगे।'

किशोर कृष्ण का वर्णन करने में पोतना ने कलम तोड़ दी है। एक चित्र देखिये :

नल्लनिवाडु पद्मनयनम्बुल वांडु कृपारसम्बु पैन्।
जल्लेडु वान्डु मौलिपरिसर्पित पिन्ळमुवाडु नव्वु रा।
जिल्लेडु मोमुवांडोकंडु चेल्वल मानधनम्बु दोचे नो।
मल्लियलार ! मी पोदल मादुन लेन्डगदम्म ! चेप्परे ॥

'कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनकर गोपिकाएँ सुध-बुध खोकर दौड़ी आती हैं। पर वे कृष्ण को वहाँ देख नहीं पाती हैं, वे फूलों से भरे लता-निकुञ्जों से पूछ रही हैं : 'हे लता-निकुञ्ज ! क्या तुमने कृष्ण को देखा है ? कहीं इन निकुञ्जों में तो वह नहीं है ? जरा बताओ।' इतना कहकर वे कृष्ण का स्वरूप-वर्णन करने लगती हैं : 'कृष्ण तो काला है। वह तो कमल-नयनवाला है, सब पर कृपा बरसानेवाला है। उसके सिर पर मोर-मुकुट है। वह तो हँसमुख है। हम लोगों के मानधन को लूटनेवाला है। उसको क्या तुमने देखा है ?'

'आन्ध्र-वाङ्मयमु कृष्णकथ' शीर्षक अपने शोध-प्रबन्ध में डॉ० धारा रामनाथ शास्त्री लिखते हैं— "कृष्ण-कथा-विकास को नायन सोमन कृत उत्तरहरिवंशमु ने नया मोड़ दिया है।" सोमन तेलुगु-साहित्य में अपनी नवीन उद्भावनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। श्रृंगार-वर्णन में नूतन सहजता लानेवाले कवि भी सोमन ही हैं। रुक्मिणी श्रीकृष्ण से एक पुत्र की प्राप्ति का वरदान माँगती है। इस सन्दर्भ में श्रीकृष्ण जो उत्तर देते हैं, उसमें श्रृंगार की चरमोन्नति है :

तन वलयु कांत ये पनि मनमुनन् दलचिनन् जेथु भगवानिकि न,
व्वनित बिगियारु कौंगिलि दिनदिनमुनुमदन काम धेनुव कादे।

'अपनी प्रेयसी (चाहे पत्नी भी क्यों न हो) की जो मनोकामना है उसे तत्काल पूरा करनेवाले को वह स्त्री जो गाढ़ आलिंगन देती है वह तो उस पुरुष के लिए मदन कामधेनु के समान नित्य तृप्ति प्रदान करती है।'

तेलुगु में बालकृष्ण-चरितकारों में मडिकि सिंगन अग्रणी हैं। ये तिक्कन्न की पौत्री के पौत्र थे। इनकी यशोदा बलराम और कृष्ण दोनों को अपने दो नेत्र मानकर उन पर समान रूप से ममता की वर्षा करती है।

तिरुमणि वेटट्टु नौदलल तेल्लनि चीरलु गप्पु जिन्न या,
भरणमु लेल्ल बेटट्टु तगु भंगुल डग्गरि चन्नु लिच्चु वे।
भरमुग नूचि जोललनुबाडु मुदंबुन नन्द गोप सुन्,
दरि इदि नित्य कृत्य मुग दा बेनि चंदग राम कृष्णुलन् ॥

'माँ यशोदा ने बलराम और कृष्ण दोनों के माथे पर तिरुमणि श्वेत मिट्टी का वैष्णव-तिलक लगाया। श्वेत वस्त्रों से उनको आवृत्त किया। सुन्दर आभूषणों को पहनाया। दोनों को बहुत पास से स्तन्य दिया। पलने में सुलाकर लोरियाँ गायीं। यह तो उस गोप-सुन्दरी का नित्यकृत्य है। इस तरह लाड़ और प्यार से वह दोनों का पालन-पोषण कर रही है।'

इस प्रकार निरन्तर दो सौ वर्षों (चौदहवीं से लेकर सोलहवीं शती ई०) तक श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं ने तेलुगु-साहित्य के कवियों को भाव-विभोर बनाये रखा।

इसके परवर्ती काल में शृंगार-पुरुष श्रीकृष्ण के मदमत्त एवं मनमोहक रूप का चित्रण करना कवियों का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस युग में राधा, सत्यभामा तथा अष्ट महिषियों के साथ कृष्ण की विहार-लीला का प्रांजल चित्रण तेलुगु के कृष्ण-साहित्य के विकास के तीसरे मोड़ की सूचना देता है। श्रीनाथ की कृतियों के द्वारा तेलुगु-साहित्य में राधा का प्रवेश इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसके अनन्तर कुछ ही समय में वे तेलुगु-साहित्य में छा गयीं। चिन्तल पूडि येल्लन्न ने उनको स्वकीया बनाया तो तेनालि रामकृष्ण कवि ने एक योगिनी के रूप में उनका चित्रण किया। इस तरह राधाकृष्ण की कथाएँ दो धाराओं में प्रवाहित हुईं। वेलगपूडि वेंगयामात्य, कंदुकूरि रुद्र कवि, यटिगोन्ड धर्मन्न आदि ने कृष्ण-तत्त्व को प्रधानता दी तो ताल्लपाक तिम्मक्क, कृष्ण देव रायलु, नन्दि तिम्मन्न, मोचर्ल नन्नय आदि ने कृष्ण के साथ-साथ उनकी अष्ट महिषियों को भी महत्त्व दिया। इतना ही नहीं, कृष्ण के पुत्र के विवाह को भी वही स्थान दिया जो स्थान राधाकृष्ण, सत्यभामा आदि के लीला-प्रसंगों को दिया गया था। कृष्ग-चरित्र का सर्वांगीण चित्रण तेलुगु-साहित्य के इस मोड़ की उल्लेखनीय विशेषता है।

तेलुगु-साहित्य में राधाकृष्ण की प्रेम-लीला के प्रथम चितेरे कवि सार्वभौम श्रीनाथ हैं। अपने 'भीम-खण्डम्' काव्य में कृतिपति को आशीर्वाद देते हुए उन्होंने लिखा है :

वालिक्क मोमु मत्तवनर्बाह्ह् किशोरक लास्य लीलबै,
वालिचि पच्चकप्पुरपु वासन तोडि मुखारविन्द तां,
बूलपु मोवि मोविपै मोपुचु राधुकु निच्चु धूर्ति गो
पालुड्डु प्रोचुगावुत नपार कृपामति मंत्रिथन्ननिन्।

'अपने मुँह को, जो वन में विचरण करनेवाले मत्त मयूर किशोर के समान है, जो सुगन्धित ताम्बूल से भरा है, राधा के अधरों से लगानेवाले धूर्त गोपाल तुम्हारी (कृतिपति की) रक्षा करें।'

इस प्रकार अपने पूर्वकालीन नटखट गोपाल को शृंगार पुरुष एवं धूर्त बनाकर श्रीनाथ ने श्रीकृष्ण-साहित्य को एक नयी दिशा दी।

मध्यकालीन तेलुगु-वाङ्मय में राधामाधव काव्य-परम्परा का श्रीगणेश करनेवाले चिंतलपूडि एल्लन्ना हैं। यह काव्य इतना प्रसिद्ध हो गया कि इसके रचयिता को लोग राधामाधव-कवि कहकर पुकारने लगे। उन्हें यह उपाधि श्रीकृष्ण देव रायलु ने दी थी।

इस काल के प्रसिद्ध कवि थेल्लन्ना तेलुगु-साहित्य में कृष्ण-चरित के क्रमिक विकास का सिंहावलोकन करते हुए कहते हैं :

बालक्रीडल गन्नतल्लिकि मनः प्रह्लादमुं जेयुचुन्,
हेला मैत्रि घटिन्चि गोप कुललो नेपार वर्तिन्पुचुन्।
गेॅलि जारुड वैचु गोपिकल कौगिल्ल न् विनोदिंचु धी,
शालित्वंबुलु नीके योप्पु नवु गृण्णा वल्लवी वल्लभा ॥

'अपनी बाल-क्रीड़ाओं के द्वारा हे कृष्ण, तुमने माँ को प्रसन्न किया था। मैत्रीभाव को जताकर तुम सबके प्रिय बने थे। आगे बढ़कर तुम्हीं जार युवक बने और अपना समय गोपिकाओं के बाहुपाशों में बद्ध होकर बिताया। ये सब काम तुम्हींको शोभा देते हैं।'

एल्लन्न की राधा स्वकीया थीं। अपनी नवीन कल्पना के साथ भागवत-सम्प्रदाय की परम्पराओं का भी निर्वाह करते हुए उन्होंने राधा का विवाह वेदोक्त विधि से करवाया। इतना ही नहीं, 'रुक्मिणी कल्याणम्' की पद्धति पर अपने काव्य को आगे बढ़ाकर उन्होंने लोगों में राधा के प्रति आदर-भावना जगायी। यह एक नया प्रयोग माना जाता है।

राधा-तत्त्व के अध्यात्मपक्ष को प्रकाश में लाने का गौरव तेनालि रामकृष्ण कवि को प्राप्त है। इनका काव्य 'पाण्डुरंग महात्म्यम्' शैव, शाक्त एवं वैष्णवागम-सिद्धान्तों का भण्डार है। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। वल्लभाचार्य की भाँति इनकी भी धारणा थी कि गोपिका-कृष्ण-प्रेम ही मोक्ष तक ले जानेवाला सुरक्षित मार्ग है। राधामाधव-संगम को रामकृष्ण कवि प्रकृति-पुरुष का संगम मानते थे। इस सन्दर्भ में रामकृष्ण कवि गद्य में यों लिखते हैं :

'राधामाधवुन् दनकु नधि नायुंगा गोरि गोवर्धनाचल समीपवर्ति यगु ऋणविमोचन तीर्थन्नुमं दपम्बु सेयं गडंगि।'

'माधव को अपने पति के रूप में पाने के लिए गोवर्धन गिरि के निकटवर्ती ऋण-विमोचन-तीर्थ में वह तपस्या करने लगी थी। गोदादेवी जिसको तमिलनाडु के लोग आण्डाल के नाम से जानते हैं इसी कोटि की उपासिका है। श्रीकृष्ण देवरायलु, नन्दि तिम्मन्न, ताल्लपाक तिम्मक्क, ताल्लपाक चिन्नन्न, चरिगोण्ड धर्मन्न आदि कवियों ने कृष्ण-साहित्य को इस तीसरे उत्थान-काल में सम्पन्न बनाया। ईसा की सोलहवीं शताब्दी तक राधाकृष्ण के इस अलौकिक रूप का चित्रण चलता रहा।

इसके बाद राजनीतिक तथा सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के कारण कृष्ण-काव्य प्रदूषित होने लगा। विषयग्रस्त सामन्तों और उनके आश्रय में रहनेवाले निष्ठाहीन कवियों ने कृष्ण को दक्षिण नायक और कुलांगना राधा को सामान्य नायिका के स्तर पर ला खड़ा किया। योगिनी और स्वकीया राधा वासना की पुतली के रूप में प्रस्तुत हुई। कवियों ने तमिलनाडु में प्रचलित मधुरा भक्ति के विकृत रूप को चित्रित कर अपने मन की साध पूरी की। इस काल में लिखे गये परमयोगिविलासमु, विप्रनारायण-चरित्रम्, वैजयन्ती विलासमु प्रभृति ग्रन्थों में विष्णु-भक्त विप्रनारायण और वेश्या देवदेवी की कथाओं में मलिन शृंगार का वर्णन देखने को मिलता है। यहाँ से साहित्य चरम अश्लीलता की ओर अग्रसर हुआ।

इतिहासकार इसे तेलुगु-साहित्य का पतनकाल मानते हैं। इस काल की प्रवृत्ति के निदर्शन हेतु एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

बारह आलवारों में विप्रनारायण एक आलवार हैं। वे विष्णु-भक्त थे। उनको अपने वश में करने की देवदेवी नामक वेश्या ने शपथ ली। श्रीरंगनाथ की सहायता से उसकी मनोकामना पूरी हो गयी। एक दिन विप्रनारायण की कुटी में पहुँचकर वह पाँव दबाने लगी। देवदेवी के हाथ लगने मात्र से विप्रनारायण मदन-ताप से दग्ध होने लगे। ताल्लपाक चिन्नन्न द्वारा इस सन्दर्भ पर लिखित एक छन्द देखिये :

तलिरुंबोडि दोडन्गि माधवुडु राधं गूडि क्रीडिंचुगा
यलु कुब्जं गइ कोन्न वार्तलनु सत्यावांछलीडेर्चु सु
द्दुलु नाभीर वधूटुलन्दु गल पोन्दुन् रुक्मिणी देवि पै।
चलिमिन् प्रोन्नन इच्चुलागु विनिपिन्चेन् माधुरी वैखरिन्।
(ताल्लपाक चिन्नन्नकृत परमयोगीविलासमु)

'श्रीकृष्ण के रमण-सम्बन्धी बातों का वर्णन करते हुए वह राधाकृष्ण-मिलन से सम्बद्ध गाथाएँ सुना रही है। कुब्जा पर कृष्ण कैसे प्रसन्न हुए थे? इसका वह वर्णन कर रही है। सत्यभामा की मनोकामना कैसे पूरी हुई थी, इसका बखान रही है। गोपिकाओं के संग कृष्ण जो सुख पाते थे उसके बारे में कहते हुए रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के मन में जो प्रेम-भावना थी उसका विशद वर्णन कर रही है।'

ताल्लपाक चिन्नन्न के अतिरिक्त सिद्धराजु तिम्मराजु, चदलवाड मल्लन्न और सारंगु तम्मय्या ने भी इस प्रसंग पर अपने-अपने ढंग से काव्य-रचना की है।

सोलहवीं सदी के पिंगलि सूरनामात्य ने 'कलापूर्णोदयम्' नामक काव्य में विष्णु के दरबार के एक दृश्य को प्रस्तुत किया है। विष्णु का दरबार सजा हुआ है। अप्सराओं का नृत्य चल रहा है। वनस्थली के मार्ग से होते हुए लक्ष्मी अपनी सखियों के साथ प्रवेश कर रही हैं। लक्ष्मी को देखने के लिए भगदड़ मच जाती है। दरबार के आरक्षी भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए दण्ड-प्रहार करते हैं। ब्रह्मा, नारद आदि लाठियों से बचने के लिए इधर-उधर भागने लगते हैं। सम्बद्ध छन्द इस प्रकार है :

नेच्चलि पिन्डु दानुनु, वनीस्थली दंड नोंकित गानंगा,
वच्चेनो रादो या कमलहासिनि, यन्तने येमि चेप्पुदुन्।
हेच्चिन संभ्रमम्बुन ननेकुलु बछलवार लेक्कडन्,
वच्चियो मोदि रा कोलुवुवारिन् गकाविकलैचनन् वडिन्॥

नारद मुनि कह रहे हैं, 'लक्ष्मी को सखियों के साथ वनस्थली के पास से आते हुए जैसे ही लोगों ने देखा तो क्या कहूँ? लोगों में उत्सुकता इतनी बढ़ी कि परिस्थिति को नियन्त्रण में लाने के लिए लाठियाँ लेकर बछलवारु अर्थात् आजकल के पुलिस जैसे लोग न जाने कहाँ से आ पहुँचे। वे लोगों को मारने लगे, तो दरबार में एकत्र लोग तितर-बितर हो गये।'

लक्ष्मी के प्रति भक्ति और श्रद्धा की भावना को न जताकर वैकुण्ठ के लोग ऐसे एक-दूसरे को पीछे ढकेलकर उनको देखने के लिए आगे बढ़े, मानो वह इन्द्रलोक की अप्सरा हो। यह पतन की चरम सीमा थी।

सन् १५५०–१६०० ई० के आसपास के कवि बट्टेपारि तिम्मय्या ने अपने 'द्विपद-भारत-काव्य' के आदिपर्व के अन्तर्गत आनेवाले 'पराशर-मत्स्यगन्धा-संवाद' में जो बातें लिखी हैं वे तत्कालीन समाज में व्याप्त घोर शृंगारिकता के परिचायक हैं :

चूचिति शर्वाणि, चूचिति रतिनि, जूचिति हरिराणि जूचित रंभ ।
विन्त पुट्टिमेरुंग, वेयेल नेडु कान्त नीयेडल नय्ये गन्नुल मरुलु ॥

नाव में बैठने के बाद मत्स्यगन्धा का रूप-सौन्दर्य देख कामेच्छा से तड़पनेवाले पराशर महर्षि कह रहे हैं—'हे कान्ते ! मैंने शर्वाणि को देखा है, रति को देखा है, हरि-रानी अर्थात् लक्ष्मी को भी देखा है और रम्भा को भी। पर उनको देखने पर रति-भाव मेरे मन में जागृत नहीं हुआ था। आज तुम्हें देखने पर काम-वासना लहरें मार रही है।'

कवि ने यहाँ रति और रम्भा को लक्ष्मी तथा पार्वती के समकक्ष मानकर तद्युगीन समाज की ह्रासोन्मुखी आध्यात्मिकता तथा अपने हीन मानसिक स्तर का परिचय दिया है।

ऐसी दयनीय परिस्थिति में नवीन युग का आरम्भ हुआ। इसका आरम्भ सन् १८७५ ई० से माना जाता है। यह सन्तोष की बात है कि पाश्चात्य संस्कृति से आक्रान्त होते हुए भी इस युग में राधाकृष्ण-तत्त्व के पुनरुद्धार का स्पृहणीय प्रयास हो रहा है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण इसके अधुनातन वैतालिक हैं। 'प्रातः-स्तवम्' और 'श्रीकृष्ण-संगीतम्' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'प्रातः-स्तवम्' में यशोदा के सुप्रभात-गीत हैं। इसमें कृष्ण को जगाते हुए यशोदा कहती हैं–'देखो, यह तुम्हारा बिस्तर कैसा सिकुड़ गया है। हे पद्मनाभ ! बलराम को देखो, वह एक पुस्तक जैसा फैला हुआ सोता है :

'प्रक्कयंतयु जिम्मिति पद्मनाभा अन्न चूडुगु मुस्तकम्मट्लु पन्डु कोनु ।'

'श्रीकृष्ण-संगीतमु' एक विलक्षण रचना है। इसमें कवि ने गोपिकाओं की गाथाओं के माध्यम से कृष्ण-तत्त्व को समझाने की चेष्टा की है। माचिराजु वेंकट कृष्णमूर्ति ने 'श्रीकृष्ण-परमात्मा' नामक एक लघु काव्य में नये ढंग से कृष्ण को लोकनायक रूप में प्रस्तुत किया है। आधुनिक कृष्ण-काव्य-धारा के एक अन्य उल्लेखनीय कवि हैं डॉ० एक्किराल रामकृष्णामाचार्युलु। उनकी 'रास-लीला' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। उसमें वे एक स्थान पर लिखते हैं :

भूमिनि गल भार मेल्लनु गमिम्पगन जेयंग वासुदेवुडै घनतरमूर्ति सुख प्रदुडै यवतार मंदेन् ।'
अर्थात् भूमि-भार को मिटाने के लिए वासुदेव फिर भूमि पर उतर आये हैं।

ये पंक्तियाँ वासुदेव के साथ ही तेलुगु कृष्ण-भक्ति-साहित्य में एक नवीन युग के अवतरण का सन्देश देती हैं।

—प्रो० साईंप्रसाद

तेलुगु के कृष्ण-भक्त

[द्रविड़ प्रदेश वैष्णव-भक्ति की उद्भव-स्थली के रूप में चिरकाल से विख्यात है। आन्ध्रप्रदेश का श्री रंगधाम उसका प्रधान केन्द्र रहा है। आलवरों तथा आचार्यों द्वारा पूजित श्री लक्ष्मीनारायण के प्रतिरूप भगवान् वेंकटेश्वर और उनकी पराशक्ति पद्मावती शरणागतों के कल्पवृक्ष माने जाते हैं। राम एवं कृष्ण-भक्ति के प्रवर्तक मध्यकालीन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के निर्धारण और प्रचार में इनसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी। उनके अनुयायी भक्तों ने इनके चरणों में हृदय की अशेष श्रद्धा अर्पित की है और अभेद भाव से इनका भावार्चन किया है। ठीक उसी प्रकार जैसे उत्कलीय भक्तों ने अपने भावानुरूप भगवान् जगन्नाथ को विष्णु, राम और कृष्ण का ही स्वरूप मानकर, उनके सगुण-निर्गुण रूप का मुक्त कण्ठ से गुण-गान किया है।

तेलुगु कृष्ण-भक्तों ने विष्णु के अन्य अवतारों—नृसिंह, कूर्म, वामन आदि को भी कृष्ण से अभिन्न मानकर विष्णु और उनके अवतरित रूपों के समन्वय एवं समाराधन द्वारा कृष्ण-भक्ति के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है।

तेलुगु के कृष्ण-भक्ति-वाङ्मय की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है और उसके उत्तरकालीन कृष्ण-चरित का विशद निरूपण एवं महत्त्वांकन। इसके परिणामस्वरूप ब्रज-लीला और मथुरा-लीला की अपेक्षा द्वारका-लीला को प्रधानता मिलने से रुक्मिणी तथा अष्ट-महिषियों के साथ कृष्ण के उत्तर-चरित का वर्णन इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रहा है। देश-भाषाओं के परम्परागत कृष्ण-भक्ति-साहित्य में सफल प्रबन्ध-काव्यों के अभाव की पूर्ति तेलुगु कृष्ण-भक्तों का उल्लेखनीय अंशदान माना जायेगा। —सं०]

अथर्वणाचार्य

अथर्वणाचार्य तेलुगु-साहित्य के द्वितीय आचार्य माने जाते हैं। कहा जाता है कि इन्होंने महर्षि व्यास-रचित सम्पूर्ण महाभारत का अनुवाद तिक्कन के पहले ही किया था। कुछ आलोचकों के अनुसार नन्नय ने अथर्वणाचार्य द्वारा रचित महाभारत के अनुवाद को जला दिया था। किन्तु यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये या तो नन्नय के समकालीन या उनके तुरन्त बाद के कवि थे।

अब तक की गवेषणाओं से अथर्वणाचार्य को तेरहवीं सदी का कवि और तिक्कन का पूर्ववर्ती माना जाता है। इनकी 'महाभारत' नामक रचना अब उपलब्ध नहीं है, किन्तु कुछ कवियों ने इनकी प्रशंसा की है और अपने ग्रन्थों में इनका नाम सम्मानपूर्वक लिया है। उनमें १५वीं शती के गौरन-मन्त्रि मुख्य हैं। जनश्रुति के अनुसार अथर्वणाचार्य जैन थे, अतः इनके महाभारत पर जैन-धर्म का गहरा प्रभाव रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण हिन्दू-धर्म के कट्टर अनुयायियों ने उसका नाम-निशान मिटा दिया होगा। तत्कालीन लोगों पर वीरशैवाचार्य मल्लिकार्जुन, 'वसव पुराणम्' के रचयिता पाल्कुरिकि, सोमनाथ आदि का बहुत प्रभाव था। इतना ही नहीं, उस समय संस्कृत भाषा के शब्दों को तेलुगु से हटाकर उसे शुद्ध बनाने के प्रयत्न भी चल रहे थे। इन परिस्थितियों में जटिल, संस्कृत-भूयिष्ठ तेलुगु को भला कौन ऊँचे आसन पर बैठाता? बहुत सम्भव

है, इस ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता के कारण ही उक्त काव्य-ग्रन्थ की क्षति हुई हो।

अठारह पर्वोंवाले महाभारत के अतिरिक्त अथर्वणाचार्य ने 'विकृत-विवेक' नामक एक छन्द-ग्रन्थ की भी रचना की थी। किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है। इनका नाम 'त्रिलिंग-शब्द-शासन' तथा 'अथर्वण-छन्द' नामक दो अन्य ग्रन्थों के साथ भी जुड़ा है।

अथर्वणाचार्य जितना अपनी जटिल संस्कृत भाषा के लिए बदनाम थे उतना ही सरल तेलुगु के लिए प्रसिद्ध भी थे।

सा० प्र०

अनन्तामात्युडु

अनन्तामात्युडु का जन्म सन् १४३५ ई० के आसपास हुआ माना जाता है। इनके परदादा बच्चन अच्छे कवि थे। वह 'भव्य-भारती' की उपाधि से विभूषित थे। उनके एक पुत्र का नाम तिक्कन था। वे ही अनन्तामात्य के पिता थे। धृतपट्टनम् उनकी निवास-भूमि मानी जाती है।

इनकी कुल तीन रचनाएँ हैं—भोजराजीयमु, छन्दोदर्पण और रसाभरणमु। प्रथम सात खण्डों का काव्य है, दूसरे में छन्दों का और तीसरे में अलंकारों का विवेचन है। 'भोजराजीयमु' उनका श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें सत्यव्रत पालन करनेवाली गाय और क्षमा के गुण से विभूषित सिंह की कथा है। वह इस प्रकार है :

"भूखा व्याघ्र एक गाय को खाना चाहता था। गाय ने कहा, 'भूखे को आहार देने से बढ़कर उत्तम व्रत इस संसार में नहीं है। किन्तु मेरा एक बछड़ा है। मैं उसको दूध पिलाकर आ जाऊँगी। तब तुम मुझे खा सकते हो।' व्याघ्र मान गया। थोड़े समय के बाद गाय आ गयी। सत्यव्रत का पालन करनेवाली गाय को व्याघ्र ने छोड़ दिया।" इस अद्भुत कथा का समावेश अनन्तामात्य के 'भोजराजीयमु' काव्य में हुआ है। इस कथा के कारण अनन्तामात्य तेलुगु-साहित्य के अमर कवि बन गये हैं। माँ गाय अपने बछड़े से कहती है :

आडकु मसत्य भाषलु, कूडकुन्
गोरगानि कानि कोन्कक योरुते
ग्गाडिन नेदुरुत्तर मीन् जूडकु
विनिविननिवानि चोप्पुनन् जनुमी ॥
—भोजराजीयमु (६.१३)

'कभी झूठ मत बोलो, बुरी संगति को छोड़ दो। अगर कोई कुछ कहे तो उसका उत्तर मत दो। सुनी-अनसुनी करके चले जाओ।'

अबोध बालकों को इससे अच्छा उपदेश कौन दे सकता है?

गोमाता अपनी सन्तान से कहती है—"मातृहीन शिशु का सब अनादर करते हैं।" देखिये :

चुलुकन जलरुह तंतुवु, चुलकन
तृणकणमु, दूदि चुल्कन सुम्मी
इल नेगयु धूलि चुल्कन, चुलुकन
तल्लि लेनि युतुन्डु कुमारा।
—भोजराजीयमु (६:३७)

'हे कुमार! डण्ठल हल्की होती है। तृण हल्का होता है। धरती पर से उड़नेवाली धूल हल्की होती है। ठीक इसी प्रकार मातृहीन शिशु भी औरों की दृष्टि में हल्का होता है। कोई उसका आदर नहीं करता।' 'भोजराजीयमु' का 'गो-व्याघ्र-संवाद' तेलुगु-साहित्य के अत्युत्तम संवादों में से एक माना जाता है।

अनन्तामात्य अहोबल नरसिंह स्वामी के अनन्य भक्त थे। अपनी प्रथम कृति को इन्होंने नरसिंह स्वामी के चरण-कमलों में ही समर्पित किया है। ये विष्णु-भक्त तिरुमल नल्लाम् गोविन्द चक्रवर्ति के शिष्य थे। एक दिन स्वप्न में गुरु ने इनसे कहा : "मेरे साथ अहोबल नरसिंह स्वामी हैं। वे तुमसे एक रचना स्वीकार करना चाहते हैं। अपनी रचना को समर्पित

कर भगवान् को प्रसन्न करो।" अनन्तामात्य का मन पुलकित हो उठा। वे कहने लगे, "अपने शिशु की बातें माता-पिता को मधुर लगती हैं। ठीक इसी प्रकार मेरी बातें भी आपको मीठी लगेंगी, क्योंकि मैं आपका पुत्र हूँ।" वास्तव में अनन्तामात्य की लेखनी से मृदु-मधुर बातें निकलीं, जो अमृत-समान मीठी हैं। मधुर वचनों के कारण अनन्तामात्य अमर क़वि बन गये हैं।

सा० प्र०

अय्यल राजु तिप्पय्य

तेलुगु भाषा के वीरशैव-मतानुयायी कवियों ने अपनी कृतियों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि प्रचलित लोक-भाषा में धर्म का प्रचार सफलता के साथ किया जा सकता है। बौद्ध-धर्म के प्रभाव को कम करने में वीरशैवाचार्यों को आशातीत सफलता मिली थी। उनकी भाँति वैष्णव-सम्प्रदाय के भक्तों ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु लोक-भाषा को माध्यम बनाया। अय्यल राजु तिप्पय्य (सन् १४४० ई० के आसपास) इस वर्ग के अग्रगण्य कवि हैं। इन्होंने अपने शतक, जिसके अन्त में 'हे रघुवीरा ! जानकी-नायका' अनिवार्य रूप से आता है, में लिखा है—"इस धरती पर रहनेवालों में केवल वे ही लोग' जो राम-भक्त हैं, चाहे वे कितने ही अधम क्यों न हों, धूर्त क्यों न हों, अन्त में मोक्ष पा सकते हैं। इस विषय में अगर कोई मुझसे वाद-विवाद करने के लिए आगे बढ़े तो मैं सदैव तैयार रहता हूँ।" इतने वीरावेश में आकर वैष्णव-धर्म का प्रचार करनेवाले ये प्रथम कवि हैं। तिप्पय्य के प्रपौत्र अय्यल राजु रामभद्र ने (श्रीकृष्णदेवरायलु के समकालीन कवि) अपने 'रामाभ्युदयम्' काव्य में प्रपितामह (श्री गन्नवरपु सुब्बरामय्य रामभद्र कवि को तिप्पय्य का पौत्र मानते हैं) की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन्होंने लिखा है—"श्री मदोन्टिमिट्ट रघुवीर शतक निर्माण कर्मठ जगदेकख्याति धुर्यय्यल राजु तिप्पय्य मनीषि पर्वताभिधाम पौत्राक्कथार्थ पुत्र परिशीलित ......।" इस उद्धरण से पता चलता है कि तिप्पय्य को 'जगदेकख्याति' उपाधि मिली थी।

उन दिनों कविगण साधारणतया भक्तिभाव के प्रचार के लिए 'शतक' लिखा करते थे। शतक द्वारा जनता के हृदय में स्थान बना लेना बहुत सरल था। इसलिए तेलुगु के बहुत सारे कवियों ने इस माध्यम को अपनाया था। अय्यल राजु तिप्पय्य इसी मार्ग के अवलम्बी थे। शतक-रचना के पहले ही इनको अपनी विद्वत्ता के कारण ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। अनेक राजाओं के यहाँ से इनको निमन्त्रण मिलते थे। पहले ये कर्नाटक-मण्डलाधिपति के दरबार में थे। वैराग्य की भावना जब बढ़ गयी तो इन्होंने दरबार छोड़ दिया। राज-निमन्त्रणों का तिरस्कार करते हुए इन्होंने लिखा था—"अभागे राजाओं ने मुझे लालच दिखाया। पर मैं आपके (राम के) मन्त्र को जाननेवाला दरिद्रमति होने के कारण सब आह्वानों को तिरस्कृत कर चुका हूँ।"

समाज-सुधारक जन-कवि वेमन ने कहा है कि "जो जीवन में कामी नहीं है, वह मोक्षगामी नहीं बन सकता।" अय्यल राजु तिप्पय्य वेमन के उक्त कथन को चरितार्थ करनेवाले हैं। अपने आवारापन के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है—"मैं बुरा हूँ, लम्पट हूँ, जड़ हूँ, मूर्ख हूँ, दुराचारी हूँ। हे राम ! मेरी रक्षा करो। तुम्हारे बिना कौन मेरी रक्षा कर सकता है ?" इस वक्तव्य का दूसरा अर्थ भी लगा सकते हैं। भक्त आत्मनिन्दा में विशेष रुचि लेते हैं। अपनी हीनता के साथ ही भगवान् की महानता का वर्णन करते हुए वे थकते नहीं। तुलसी ने भी कहा था—"नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ? तिप्पय्य भी इसी कोटि के भक्त थे। इससे इनकी भक्तिपरवशता का अनुमान किया जा सकता है।

'हे रघुवीरा ! जानकी-नायका' नामक शतक में ओंटिमिट्ट (कडप्पा जिले का एक गाँव जिसके राम-मन्दिर में सहज कवि पोतना ने अपने काव्य की रचना की थी) के श्री रामचन्द्र की प्रशंसा में लिखे गये एक

सौ आठ पद्य हैं। इस शतक की भाषा सरल है और आसानी से समझ में आनेवाली है। महाभारत और भागवत दोनों के पक्ष में लिखा गया यह पद्य तिप्पय्य की सजीव भाषा का अत्युत्तम उदाहरण है :

रविसूनुन् बरमार्चि इन्द्र सुतुनिन् रक्षिंचिना डन्दुनो।
रविसूनुन् गूपनेलि इन्द्र सुतु बोरन् द्रुन्चि नाडन्दुनो।
इवि नीथन्दुनु रेन्डुनुन् गलवु नीकेदिष्टमो चक्कगा।
रविवंशाग्रणि तेल्पवय्य ! रघुवीरा ! जानकीनायका !

'हे रघुवीर, जानकी-नायक ! तुमने महाभारत में रवि-सुत राधेय को मारकर इन्द्र-सुत अर्जुन की रक्षा की है। ठीक इसी प्रकार रामायण में रवि-सुत सुग्रीव को अभयदान देकर इन्द्र-सुत बालि को मारा है। दोनों के कर्ता तुम्हीं हो। कहो, इन दोनों में अपने किस कर्तृत्व को अधिक पसंद करते हो ? थोड़ा हमें भी बताओ तो सही।'

राम और कृष्ण में अभेद स्थापित कर अय्यल राजु तिप्पय्य ने यह प्रमाणित कर दिया कि राम और कृष्ण एक ही भगवान् के दो नाम हैं।

सा० प्र०

अय्यल राजु नारायणामात्युडु

पैंडिपाटि वेन्कट नृसिह कवि के भानजे अय्यल राजु नारायणामात्य आरुवेल नियोगी ब्राह्मण थे। इनका जन्म कौण्डिन्यस् गोत्र में हुआ था। ये सूर्यनार्य और कोण्डमाम्बा के पुत्र थे। 'हंस-विंशति' नामक पाँच सर्गोंवाले एक श्रृंगार-काव्य की रचना इन्होंने की है। इनके 'दशावतार-कथा-संग्रह' नामक एक अन्य ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं हो रहा है। कहते हैं कि इसमें भगवान् के दश अवतारों के चरित-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण-चरित का भी वर्णन था। इन्होंने राम भक्त आंजनेय के नाम पर भी एक शतक की रचना की है। श्री यागन्टि.शेषय्या, श्री वीरेश लिंगम् के मत का खण्डन करते हुए इन्हें सन् १८०० ई० के आसपास विद्यमान मानते हैं।

सा० प्र०

अल्लमराजु रामकृष्ण कवि

अल्लमराजु रामकृष्ण कवि का जन्मकाल आदि ज्ञात नहीं है। इनके सम्बन्ध में मात्र इतना पता चलता है कि ये सन् १८४१ ई० तक वर्तमान थे, श्री रंगानाथार्य के पुत्र के तथा गोदावरी जिले के निवासी थे।

'रामकृष्णीयमु', 'मदालसा-परिणय', 'शान्तनु-विलास', 'अध्यात्म-रामायण', 'अच्च तेलुगु-भागवतमु', 'कवि-चकोर-चन्द्रोदय' आदि इनकी रचनाएँ पायी जाती हैं।

इनके अतिरिक्त 'वैनतेय-विजय', 'सत्यभामा-विलास', 'गौतमी-माहात्म्य', 'द्रौपदी-परिणयमु', 'सुशोभा-विवाह', 'हनुमदाख्यान', 'सुकविजन-मनोरंजन' प्रभृति कुछ और काव्य-ग्रन्थ हैं, जो अनुपलब्ध हैं।

बा० रे०

अल्लसानि पेद्दन्न

मध्यकालीन तेलुगु-साहित्य में पेद्दन्न की प्रतिभा का अन्य कवि नहीं हुआ। बड़े भाई को तेलुगु में 'पेद्दन्न' कहते हैं। यदि 'पेद्दन्न' इस कवि की उपाधि है तो तेलुगु-जनता की प्रशंसा उचित उपाधि देने के लिए करनी चाहिए। अगर यह नाम माता-पिता के द्वारा दिया गया हो तो वे दोनों दूरदर्शिता के लिए प्रणम्य हैं। इनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों नाम के अनुरूप है।

अल्लसानि पेद्दन्न बल्लारि (अब यह कर्णाटक में है) जिले के दोराल ग्राम के निवासी थे। दोराल दोपाडु के पासवाला गाँव है। पेद्दन्न जन्म से स्मार्त थे। श्रीकृष्णदेवराय के सम्पर्क में आने तथा शठगोपयति (अहोबलम् के वैष्णव यति) के शिष्य बनने के बाद पेद्दन्न वैष्णव बने थे। वैष्णवाग्रणी बनने

के बाद इन्होंने विष्णु के मन्दिरों के लिए जमीन दान में दी थी। इस सन्दर्भ में लॉर्ड मैकेन्ज़ी को प्राप्त एक पाण्डुलिपि का उल्लेख करते हुए श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु अपने 'आन्ध्र-कवुल-चरित्रमु' (द्वितीय भाग) में लिखते हैं: "अल्लसानि पेद्दन्न अय्यंगार नंदवरीक ब्राह्मण थे। इनके पिता चोक्कराजु थे। कोकट ग्राम (कडपा जिले में गंडिकोट के निकटस्थ) को श्रीकृष्णदेवरायलु ने दान में दिया था। वैष्णव पेद्दन्न ने इस ग्राम को वैष्णवों को सौंपा। कोकट नाम बदलकर पेद्दन्न ने उस ग्राम को 'शठगोपपुरम्' नाम दिया। उस ग्राम के सकलेश्वर स्वामी की नित्यपूजा के लिए इन्होंने थोड़ी-बहुत जमीन भी दे दी। इसके बाद चेन्न केशव स्वामी के नाम पर भी इन्होंने भूदान किया। इस प्रकार कृष्णदेवराय से लेकर नन्दूयाला के राजा मट्ल अनन्त राजु के काल तक कोकटाग्रहारम् (ब्राह्मणों की बस्ती को अग्रहारम् कहते हैं) ब्राह्मणों के अधीन था। काव्य के अन्त में लिखे गये गद्य में पेद्दन्न ने निम्नलिखित बात को ग्रन्थस्थ किया है, 'श्रीमदान्ध्र कविता पितामह सर्वतो मुखांक पंकजाक्ष पादाम्बुजाधीन मानसेन्दिन्दिर नन्दवर पुर वंशोत्तंस शठगोप तापन प्रसादास्वादित चतुर्विध कवितामतल्लि (माँ) काल्लसानि चोक्कयामात्य पुत्र पेद्दन्नार्यप्रणीत स्वारोचिष मनु सम्भवकथा।' आन्नूर शासन के आधार पर कहा जा सकता है कि पेद्दन्न ऋग्वेदी और आश्वलायन सूत्रों को माननेवाले वसिष्ठ गोत्रोद्भव थे।

अल्लसानि पेद्दन्न श्रीकृष्णदेवरायलु के सखा, बन्धु, सहचर और मार्गदर्शक थे। यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता है कि कब, कहाँ और कैसे पेद्दन्न और श्रीकृष्णदेवरायलु पहले-पहल मिले थे। रायलु के 'भुवन-विजयमु' (वह महल जहाँ कविता-गोष्ठियों का आयोजन हुआ करता था) में अग्रासन हमेशा पेद्दन्न का ही था। दरबार में प्रवेश कर राजा को अपनी विद्वत्ता से प्रसन्न करने के लिए जो भी विद्वान्, पण्डित या कवि विजयनगर आते थे, वे पहले पेद्दन्न से ही मिलते थे। पेद्दन्न की सिफारिश से कवि-पण्डित रायलु से मिला करते थे। ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु के पुत्र ताल्लपाक नरसिंगन्न जो बाद में कुछ आलोचकों के अनुसार, संकुसाल नृसिंह कवि बने, पेद्दन्न के ईर्ष्या-द्वेष के कारण रायलु से मिल नहीं पाये अथवा पेद्दन्न ने नृसिंह कवि को मिलने नहीं दिया।

रायलु के मन में पेद्दन्न के प्रति आदर की भावना थी। एक दिन की बात है। रायलु दरबार में प्रविष्ट हुए। उनके पीछे एक थाली को लेकर सेवक आया। थाली पर रेशमी वस्त्र था। लगता था कि वस्त्र के नीचे वृत्ताकार कोई वस्तु है। रायलु ने रेशमी कपड़े को हटाया। उसमें पैरों में पहननेवाली सोने की, रत्नजटित पैजनी थी। रायलु ने दरबारियों से कहा कि जो कोई उभय भाषाओं में एक समान कविता कर सकता हो, उसे यह भेंट में दी जायगी। दरबार में खामोशी छा गयी। एक से बढ़कर एक विद्वान् थे—कुमार डिन्डिम, भानुदत्त, ईश्वर दीक्षित, नन्दि तिम्मन्न, नरहरि, तमिल कवि हरिदास, धूर्जटि, भादय गारि मल्लन्न आदि। पर आगे बढ़कर किसीने यह नहीं कहा कि मैं कविगण्ड पेन्डेरमु (पैजनी) पाने योग्य कवि हूँ। तब कृष्णराय ने दरबारियों से कहा—"मुद्दुग गण्ड पेन्डियरमुन् गोनु डन्चु बहूकरिंपगा नोद्दिक न कोसंगुमनि योक्करु गोरग लेरु लेरोको"—(प्रेम से मैं आप लोगों से कह रहा हूँ कि इस पेन्डेरमु को लीजिये, पर न जाने क्यों आपमें से कोई उठकर यह नहीं कह रहा है कि मुझे दे दीजिये।)

चार पादोंवाले पद्य के प्रथम दो पादों को श्रीकृष्णदेवराय पूरा करनेवाले थे, इतने में पेद्दन्न ने उठकर शेष दो पादों को पूरा करते हुए कहा :

पेद्दन बोलु पण्डितुलु पृथ्विनि लेरनि नी वेरूनुगवे
पेद्दन कीदलन्चिननु पेरिमि ना किडु कृष्णराण्नृपा।

'पेद्दन्न के समान पण्डित इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है। राजा, क्या तुम इस बात से परिचित नहीं हो? यदि तुम बड़े को ही देना चाहते हो तो हे कृष्णराय नृप! प्रेम से मुझे दे दो।' इतना कहकर धाराप्रवाह रूप में वे कविता की परिभाषा देते गये। पेद्दन्न की विद्वत्ता से प्रसन्न होकर कृष्णदेवराय ने स्वयं अपने हाथों से 'कविगण्ड पेन्डेरमु' उनके पैरों में पहनाया। यह सर्वोच्च गौरव था जो केवल पेद्दन्न को प्राप्त हुआ था।

शठगोपयति के श्रीमुख से पुराण, आगम, इतिहास आदि को सुन अध्ययनशील पेद्दन्न भाषाओं के 'अपरशेष भोगि' बने थे। एक दिन श्रीकृष्णदेवराय ने हितैषी, चतुरवचोनिधि, आन्ध्र कवितापितामह पेद्दन्न से स्वारोचिष मनु की कथा को प्रबन्ध के रूप में लिखने के लिए कहा। पेद्दन्न मान गये। मार्कण्डेय पुराण से स्वारोचिष मनु की कथा को लेकर उन्होंने काव्य-रचना की। पेद्दन्न कृत 'मनुचरित्र' तेलुगु के प्रौढ़ पंच प्रबन्ध-काव्यों में से एक है।

वरुधिनी और मायाप्रवर (एक गन्धर्व) का पुत्र स्वरोचि तीन-तीन पत्नियों के साथ गृहस्थाश्रम की विधियों को निभाकर विष्णु की तपस्या करता है। उसे विष्णु का साक्षात्कार प्राप्त होता है। पेद्दन्न इस घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं:

नील मेघमु डालु डीलु सेयग जालु,
मेरुगु जामन छाय तोड।
नरविन्दमुल कच्चु लतगिन्चु जिगि हेच्चु
नायतम्बुग कन्नु दोइ तोड॥

बुलुगु रायनि चट्टुपलवन्ने नोर पेट्टु
होम्बट्टु जिलुगु गेन्टेन्पु तोड।
नुदयार्क बिम्बम्बु नोरपु विडम्बम्बु
दोरलंग नाडु कौस्तुभमुतोड॥

जय ध्वनि मौलि नन्जलुलु सेर्चु
शर्व शतधृति शतमन्यु शमन शरधि।
पाल कैल बिलादि देवालि तोड
नेदुट ब्रत्यक्षमय्ये लक्ष्मीश्वरुण्डु॥

'श्री विष्णु सावन के बादलों के समान नील वर्णवाले हैं। उनकी आँखें कमल-दलों के सदृश सुन्दर हैं। वे पीताम्बरधारी, कौस्तुभरत्नधारी हैं। ऐसे सर्वांगसुन्दर विष्णु स्वरोचि के सामने आ खड़े हो गये। उनके साथ उनके परिजन भी आये हुए थे। परिजनों में इन्द्र भी थे।'

कहा जाता है कि पेद्दन्न ने अनेक काव्यों की रचना की थी, पर दुर्भाग्यवश वे आज मिल नहीं रहे हैं। ऐसा एक अप्राप्य ग्रन्थ है 'हरि-कथा-सारम्'। तेलुगु के लाक्षणिक कवि कस्तूरि रंग ने 'आनन्द रंग' में 'हरि-कथा-सारम्' से अपने लक्षणों की पुष्टि के लिए कतिपय उदाहरण दिये हैं। वट-पत्र-शायी कृष्ण का वर्णन देखिये:

आ देवोत्तमुडु साधाम्बोधि
वटैकाग्रिम दळमुन बालुन्डै।
चे दोयि चेत दक्षिण पादमु
गोनि नोट जेपे बक पक नगुचुन॥

'बालक का रूप धारण कर देवोत्तम विष्णु क्षीरसागर पर, वट-पत्र के अग्रिम दल को शय्या बनाकर सो रहा है। उसने अपने दोनों हाथों से दायें पाँव की उँगली को खिलखिलाकर हँसते हुए अपने मुँह में रख लिया है।'

आश्रयदाता की मृत्यु के कुछ वर्षों के बाद इनका भी देहान्त हो गया था।

सा० प्र०

ईश्वरफणिभट्टु

'परतत्त्व-रसायन' नामक दर्शन-ग्रन्थ के रचयिता श्री फणिभट्टु का वंशनाम ईश्वर है। ये गार्ग्य गोत्रोद्भव वैदिक ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम ईश्वरभट्टु और माता का रामम्मा था। वेंगळार्य और कोन्डमाम्बा इनके दादा-दादी थे। फणिभट्टु का उपनाम फणिपति था।

फणिभट्टु का आविर्भाव-काल अज्ञात है। इनकी रचनाओं में भी इनके समय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। पूर्व कवियों की स्तुति करते हुए इन्होंने केवल नन्नय और तिक्कन का नाम लिया है। इस आधार पर श्री वीरेशलिंगम् इन्हें एर्रन से प्राचीन कवि ठहराते हैं। फणिभट्टु के बारे में श्री लक्ष्मीपति शास्त्री का मत है कि ये पोतन के बाद के कवि थे। उनका कहना है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में पोतन की शैली का अनुकरण किया है। श्री यागन्टि शेषय्य ने लिखा है कि "फणिभट्टु सम्भवतः सन् १४५०–१५०० ई० के आसपास विद्यमान थे।" इनके 'गणपति वर्णन' को देखकर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि ये अल्लसानि पेद्दन्न के परवर्ती कवि थे।

इनकी एकमात्र रचना 'परतत्त्व-रसायन' है। इसकी कथा महाभारत से ली गयी है। दार्शनिक रचना होते हुए भी यह पढ़ने में रुचिकर है। इसमें यह बताने का प्रयास किया गया है कि हरिनाम-स्मरण ही मोक्ष का परम साधन है।

सा० प्र०

उन्नव योगानन्दुडु

'पद्मावती परिणयम्' के कवि उन्नव योगानन्दुडु 'राजगोपाल-शतकम्' के भी रचयिता थे। उन्नव गुन्टूर जिले का एक गाँव है। कवि ने इस गाँव का नाम उन्नवपुरम् लिखा है। योगानन्दुडु गार्ग्यगोत्र के नियोगी ब्राह्मण थे। 'शतक-कवुल-चरित्र' के लेखकों के अनुसार योगानन्दुडु सन् १७५० ई० के आसपास विद्यमान थे। इनके 'राजगोपाल-शतकम्' से एक छन्द नमूने के रूप में नीचे दिया जा रहा है:

सकल योनुलन्दु जन्मिन्चि जन्मिन्चि
दिनमुनु पोट्ट कै तिरिगि तिरिगि
युन्मत्तवृत्ति चे नुप्पोंगि नुप्पोंगि
पन्चेन्द्रिय व्याप्ति बरगि बरगि
कलुष जालम्बुलु गाविन्च गाविन्चि
भोगिनि संसाराब्धि मुनिगि मुनिगि
तनु जरा भारंम्बु दालिचि तालिचि
सरवि गोन्नाल्ल कु जच्चि यच्चि
मरल बुट्टंग लेक नीचरण युगल
सेवन गोरिति ननु दय गावलयुनु

सुरुचिराकार, उन्नवपुर-बिहारी राजगोपाल, राधा-मनोज-खेला से कवि प्रार्थना करते हैं कि इस भवसागर में डूबने से मुझे बचाकर पार ले जाइये। वे कहते हैं: 'अनेक योनियों में जन्म लेकर पेट के लिए घूमते-घूमते, पागल धन्धों में उमंग के साथ भाग लेते-लेते, पञ्चेन्द्रियों के विस्तार के लिए प्रयत्न कर अनेक जालों को फँसाते-फँसाते, परिवाररूपी सागर में पूर्ण रूप से डूबते-डूबते, वय के साथ शरीर का बल कम पड़ गया है। इस तरह मर-मरकर मैं थक गया हूँ। यहाँ पुनः जन्म लेना नहीं चाहता। मुझे बचा लीजिये और अपने चरण-कमलों की सेवा करने का अवसर दीजिये।'

सा० प्र०

(डॉ०) एक्किराल कृष्णमाचार्युलु

साहित्याचार्य डॉ० एक्किराल कृष्णमाचार्युलु की जन्म-तिथि के बारे में ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता है। सम्भवतः इनका जन्म सन् १९२०–१९२५ ई० के आसपास हुआ होगा। ये प्रतिभा के साकार विग्रह थे। ये होमियोपैथी, ज्योतिष-शास्त्र, नाड़ी-शास्त्र आदि के पारंगत विद्वान् तथा स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। समस्याओं से समझौता करना या उनके सामने झुकना ये जानते नहीं थे। अपने इस स्वभाव के कारण ही ये जीवन में एक जगह टिक नहीं सके थे। पहले ये गुंटूर कॉलेज में प्राध्यापक थे। आन्ध्र विश्वविद्यालय से पी-यच० डी० प्राप्त कर लेने के बाद ये विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग में कुछ वर्ष तक रहे थे। विभागाध्यक्ष से मनमुटाव हो जाने के कारण इन्हें पद छोड़ना पड़ा। अध्यापकों के अधिकारों के लिए नेता के रूप में इनको कई बार लड़ना पड़ा था।

प्रतिभा की पूजा सर्वत्र होती है। इनकी रुचि ज्योतिष-शास्त्र और होमियोपैथी में भी थी। दोनों क्षेत्रों (साहित्य और वैद्यक) में भाषण देने के लिए विदेशों से इनको कई निमन्त्रण मिले थे। अपने पर्यटन के दौरान इन्होंने अनेक लोगों के शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर किया। इन्होंने विदेशों के अध्यापकों की समस्याओं का भी अध्ययन यात्रा द्वारा किया था। इन्होंने वहाँ अपने और अपने देश के नाम को ऊँचा करने का अथक प्रयास किया था।

डॉ० एक्किराल दार्शनिक थे। जीवन के उतार-चढ़ावों से विचलित होनेवाले नहीं थे। ये एक प्रकार से स्थितप्रज्ञ थे। अपने इस स्वभाव के कारण ही इन्होंने पोतना-कृत भागवत-काव्य का सरल वचनानुवाद किया था। आज भी लोग उसे भाव से पढ़ते हैं। अपने जीवनकाल में इन्होंने अनेक शिष्यों को शोध-कार्य करने के लिए आवश्यक प्रेरणा प्रदान की थी। ओंगोलु के सी० यस० आर० शर्मा कॉलेज के तेलुगु-विभागाध्यक्ष डॉ० धारा रामनाथ शास्त्री इनके प्रिय शिष्य थे। 'तेलुगु-वाङ्मय-कृष्ण-कथा' नामक शोध-निबन्ध लिखने की प्रेरणा डॉ० धारा रामनाथ शास्त्री को इन्हींसे मिली थी।

सम्पूर्ण कृष्ण-कथा को लेकर काव्य लिखनेवालों में डॉ० एक्किराल कृष्णमाचार्युलु अग्रगण्य हैं। 'रास-लीला' नाम से रचित ग्रन्थ अपने-आपमें इनका एक विशिष्ट एवं सर्वांगसुन्दर काव्य है। इसमें इन्होंने कृष्ण के पुरुषोत्तम रूप का निरूपण और उनकी गोलोक-लीलाओं का वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिये :

अनिमिषु लेल्लरुन यदु-
कुलाम्बुधि वीचिक शीकरंबुलै
जननमु पोन्द सर्व ऋषि
चन्द्रलु गोगणमै चटिम्प, भू
मिनिगल भारमेल्लनु
गमिम्पगन् जेयन्ग वासुदेवुडै
घनतर मूर्ति विष्णुवु
सुख प्रदुडै भवतार मन्येडिन्

'समस्त देवतागण यदुकुलाम्बुधि के सीकर बन जन्म ले चुके थे। सारे ऋषिगण जो कि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं गोगण के रूप में जन्मे थे। घनतर मूर्ति विष्णु सारे भू-भार को कम करने के लिए वासुदेव के रूप में अवतरित हुए थे।'

इस प्रकार डॉ० एक्किराल कृष्णमाचार्युलु ने कृष्ण-तत्त्व को सरल ढंग में प्रस्तुत किया है। इनका निधन सन् १९५४ ई० में हुआ।

सा० प्र०

एर्चूरि सिन्गन्न

भागवत के षष्ठ स्कन्ध का तेलुगु-रूपान्तर अनेक कवियों ने किया है, किन्तु विद्वानों ने केवल एर्चूरि सिन्गन्न के अनुवाद को प्रामाणिक माना है। कारण कि पोतना के भागवत में इसीको स्थान दिया गया है। पोतना के मार्ग का अनुसरण करना ही इसका कारण हो सकता है। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में पोतना की छाप देखकर पाठकों के मन में सन्देह पैदा हो जाता है कि कदाचित् यह पद्य पोतना का ही है।

सिन्गन्न आपस्तम्ब-सूत्र को माननेवाले श्री वत्स-गोत्रोद्भव नियोगी ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता का नाम मुम्मडाम्बा तथा कसुवनामात्य था। भागवत के षष्ठ स्कन्ध को लिखकर इन्होंने श्रीकृष्ण को समर्पित किया था। सिन्गन्न के पिता शिव-भक्त थे। इसलिए उन्होंने लड़के का नाम गंगन्न रखा था। आरम्भ में गंगन्न भी शैव ही थे। पर विविध ग्रन्थों के अध्ययन के कारण इनकी दृष्टि व्यापक बन गयी थी। अपने बारे में इन्होंने लिखा है—'विष्णुचरितामृत निष्यंदिपटु वाग्विलासानन्दोचित मानस।'

इनके कथन के अनुसार जब ये विद्यार्थी थे तभी इन्हें स्वप्न में सरस्वती का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था। उस समय भक्ति-परवशता में एक श्लोक कह उठे।

सरस्वती ने उसकी प्रशंसा की। उसी क्षण से इनको कवित्व-शक्ति प्राप्त हो गयी।

नलगोंडा जिले के एर्चूर नामक गाँव के निवासी सिन्गन्न पोतना के अनन्य भक्त थे। गुरु-शिष्य दोनों को सरस्वती का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था। षष्ठ स्कन्ध में पोतराजु (पोतना) की तरह इन्होंने भी लिखा है कि "पण्डितों के श्रीमुख से जो सुन चुका हूँ, उसे कविता में व्यक्त करूँगा।" इस विनय को सिन्गन्न ने अपने गुरु से सीखा होगा। इन्होंने षष्ठ स्कन्ध के आदि में रखे गये अजामिलोपाख्यान और अन्त में आनेवाले मित्रकेतोपाख्यान को सुन्दर ढंग से लिखा है।

हरिभक्ति-सम्बन्धी इनका एक छन्द देखिये :

हरिभक्ति चेत कोन्दरु-बरिमार्तुरु
मोदलुमट्ट बा पम्वुल नि।
ष्ठुरतर करमुल सूर्युन्ड रु युग
वेनुमन्युपिन्य म णयिम भन्गिन्।

—भागवत (६ ५३)

'हरि-भक्ति की सहायता से कुछ लोग अपने पापों को दूर कर लेते हैं। यह बहुत सरल है। जिस प्रकार सूर्य को हिम गलाना आता है, ठीक उसी प्रकार हरि-भक्ति पाप को दूर कर सकती है।'

सिन्गन्न द्वारा रचित एक अन्य रचना है—'कुवलयाश्वचरित्र', किन्तु वह अप्राप्य है।

सा० प्र०

एर्रा (एर्रन्न) प्रगड

कवित्रयी के तीसरे कवि महाभारत-काव्य के पूरक, 'शम्भुदास' और 'प्रबन्ध-परमेश्वर' उपाधि से विभूषित एर्रा या एर्रन्न अपनी 'नृसिंह-पुराण' रचना में संसार को विष्णुमय मानते हैं। इस भक्त कवि का विश्वास है कि वेद विष्णुमय है, सारे शास्त्र विष्णुमय हैं, संसार विष्णुमय है और मात्र विष्णु ही इस संसार में जानने योग्य हैं।

आन्ध्र के वेगिनाडु-क्षेत्र के करार्पात ग्राम में एरपोत सूरि नामक ब्राह्मण रहते थे। वे ऋषितुल्य व्यक्ति थे और अहोबल के भगवान् नृसिंह के परम भक्त थे। उनके पौत्र एर्रन्न शिव-भक्त थे। पर इनमें कट्टरता छू तक नहीं गयी थी। कवित्रयी के अन्य दो कवियों के समान धर्मसहिष्णुता इनकी नस-नस में भरी थी। कवित्रय के कवि हरि-हर-तत्त्व की एकता में प्रगाढ़ विश्वास रखते थे। समन्वय की यह भावना तत्कालीन अनेक कवियों में समान रूप से मिलती है। नन्नय ने स्मार्त होते हुए भी महाभारत की रचना की और शिव-भक्त होते हुए भी तिक्कन 'हरि-हर' नाम के उपासक बने।

एर्रन्न इन दोनों से कम नहीं थे। अपने 'हरिवंश' में ये एक दृश्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'ऋषि-मुनि लोग हरि-हर को एक साथ देखकर दोनों की वन्दना करते हैं।' उनका वर्णन देखिये :

यज्ञ रक्षकुडुनु यज्ञ विध्वंसियु
नै लोकनुतुलन् बेंपारुवारु।
कन्दर्प जनकुंडु गन्दर्प दर्पैक दमनुन्डु
नै लीलन् दनरारुवारु॥

भुवन संभर्तयु भुवन सम्हर्तयु नन
नात्मगुण कृत्यु लैन वारु।
भूधरोद्धारियु भूधरावासियु
नगुट नित्यप्रीति नेगडुवारु॥

विषधि जातम्बुलगु रत्न विषमु लुरमु,
गप्पु कंठंबुन् गैसेय नोप्पुवारु।
भुजगशयनुन्डु भुजगविभूषणुन्डु,
नेपुडु गरुणतो वरदु लय्येदरु भाकु॥

'यज्ञ-रक्षक (विष्णु) और यज्ञ-विध्वंसक (शिव) के नाम से स्तुत, कन्दर्प के पिता और कन्दर्प के दर्प को दमन करनेवाले नाम से शोभित, भुवन-भर्ता और भुवन-संहर्ता के नाम से विभूषित, 'भूधरोद्धारि' और 'भूधरावासि' नाम से प्रसिद्ध, विषधि (सागर-मन्थन) से उत्पन्न रत्न को वक्ष पर धारण करनेवाले और

विषधर कण्ठधारी नाम से पहचाने जानेवाले, भुजग-शयन और भुजग-विभूषण हरि-हर सदा हमारी रक्षा करें।'

अभेद-भावना को प्रचारित करने के ही कारण महाभारत इतनी प्रसिद्ध रचना बन सकी है।

एर्रन्न के समय के बारे में विद्वानों में मतभेद है। श्री यस० रामकृष्ण शास्त्री के अनुसार एर्रन्न सन् १२८५ और १३५५ ई० के बीच के कवि हैं। डॉ० जी० नागय्या का मत है कि इनका जन्म सन् १२८० ई० में हुआ होगा और मृत्यु सन् १३६४ ई० में। श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् के विचार से इनका समय सन् १२८० से १३५० ई० तक है। वेदम् वेंकटराय शास्त्री के अनुसार एर्रन्न की उपस्थिति सन् १३६४ और १३८६ ई० के बीच रही होगी।

एर्रन्न का नामकरण उनके पिता सूरन्न ने अपने पिता एरपोत सूरि के नाम के आधार पर किया था। ये नियोगी ब्राह्मण थे। इनका गोत्र श्रीवत्स था और सूत्र आपस्तम्ब। इनके पिता का नाम सूरन और माँ का नाम पोताम्बा था। शंकर स्वामि इनके गुरु थे। वे परम शिव-भक्त थे। उनके प्रभाव के कारण ही एर्रन्न भी शिव-भक्ति को अपनाकर शैव बने थे। इनके दादा वैष्णव थे। पिता सूरन वीरशैव-धर्म के प्रचार के कारण शिव-भक्त बने थे। एर्रन्न के शैव होने का प्रबल प्रमाण इनको दी गयी उपाधियाँ—'प्रबन्ध परमेश्वरुडु' और 'शम्भुदासुडु' हैं। भागवत (षष्ठ स्कन्ध) के कवि सिंगय ने एक शिव-भक्त कवि एर्रन्न प्रगड की स्तुति की है। कोक्कोकम के कवि ने एक और एर्रन्न का नाम लिया है। इससे प्रतीत होता है कि तेलुगु-साहित्य में तीन ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका नाम एर्रन्न है। इनके पूर्वज मल्लन अपने 'विप्रनारायण-चरित्र' में एर्रन्न को चदलवाडा-वंशज कहते हैं। डॉ० आरुद्र के मत से यह धारणा गलत है। क्योंकि एर्रन्न के पिता और पितामह वेगिनाडु के करार्पति के निवासी थे। बाद में अपने माता-पिता के साथ ये गुड्लूरु आ गये थे। अन्त में ये चदलवाडा आकर बस गये होंगे। इसलिए आन्ध्र की प्रचलित पद्धति के अनुसार एर्रन्न के वंश के लोगों को 'चदलवाडा' कहा गया। आन्ध्र के कवियों के नाम के पहले गाँव का नाम प्रायः आता है, जैसे राय प्रोलु सुब्बा राव, देकुलपल्लि कृष्णशास्त्री, तेनालि रामकृष्णुड् आदि। एर्रन्न का वंश-वृक्ष इस प्रकार है :

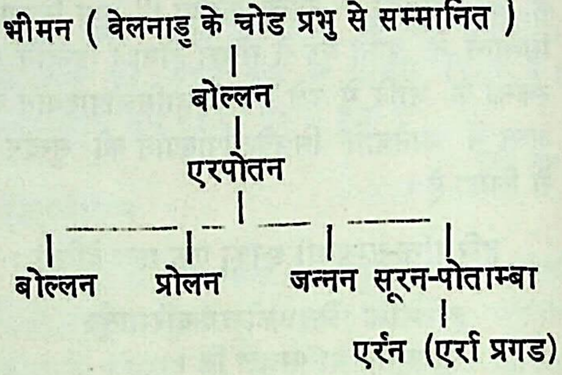

अद्दंकि को राजधानी बनाकर पाकनाडु के राजा प्रोलय वेमा रेड्डि ने रेड्डि-राज्य की स्थापना की थी। एर्रन्न इनके छोटे भाई मल्ला रेड्डि के दरबार में थे। उन्होंने अपने भाई प्रोलय वेमा रेड्डि को हीरे-जवाहरातों के साथ कवि-रत्न एर्रन्न को भी सौंपा। तब तक एर्रन्न चदलवाडा में थे। मल्ला रेड्डि ने एर्रन्न को धन-धाम-ग्राम दान में दिया था। प्रोलय वेमा रेड्डि ने चदलवाडा पहुँचकर एर्रन्न से रामायण लिखने के लिए कहा था। चदलवाडा में मल्ला रेड्डि ने एक रामालय बनवाया था। "इस रामालय के निर्माण और रामायण की रचना में अवश्य कुछ सम्बन्ध है'—श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री का यह विचार है। डॉ० आरुद्र इस विचार से सहमत हैं। हरिवंश के एक पद्य से मालूम होता है कि एर्रन्न ने रामायण की रचना की थी। पर दुर्भाग्यवश यह आज मिल नहीं रहा है। सन् १७५६ ई० तक यह ग्रन्थ उपलब्ध था। इसका प्रमाण है कूचिमन्त्रि तिम्मकवि के द्वारा अपने 'सर्वलक्षण-सार-संग्रह' नामक ग्रन्थ में इसके पदों का उल्लेख करना।

रामायण के अतिरिक्त एर्रन्न की दूसरी प्रसिद्ध कृति 'हरिवंश' है। यह ग्रन्थ उपलव्ध है। इसकी रचना के विषय में प्रसिद्ध है कि आश्रयदाता प्रोलय वेमा रेड्डि ने एर्रन्न से कहा—"आप तो सर्वभाषा-साहित्य-विशारद हैं, सौम्यमति हैं। आप महान् भी हैं। पूर्वजों का कहना है कि हरिवंश के बिना भारत अधूरा है। इसलिए उस उत्तम कथा को रमणीय ढंग से रचकर हमें सुनाइये।" एर्रन्न ने राजा की प्रार्थना स्वीकार करके 'हरिवंश' की रचना की। 'हरिवंश' एर्रन्न कृत उत्तम ग्रन्थ है। इसमें श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण वृत्त वर्णित है। हरिवंश के कृष्ण लीला-मानुष-विग्रह, लोकातीत राजनीतिज्ञ तथा लोकोद्धारक हैं।

नटखट बालक के द्वारा सताये जाने पर एक गोपिका यशोदा के घर जाकर शिकायत करती है :

नाइन्ट पदि कडवल नेथि पेरुगुन्
बालु द्रावे नेन् डिये कृष्णुन्।
डोथम्म ! कडवलन्नियु,
गेयन्नि बोरिगिल प्रोचि के रुचु वच्चुन्॥
एक्कडि केनियु बोयद, मिक्कष्टपुन्
बादुपडन्ग ने मोवंमु नी।
चोक्कपु गोड्डुकुनु नीवुनु, नोक्कतलम,
नोक्क भूरि नुन्डुडु नेम्मिन्॥

'दस घड़ों में रखे हुए घी, दही और दूध को आज कृष्ण पी गया है। पीने के बाद सभी घड़ों को ढकेलकर रेंगता हुआ आता है। हे यशोदा मैया! यह हमारे लिए बहुत कष्टकारक है। हम और कहीं चली जायेंगी। तुम और तुम्हारा यह पुत्र—दोनों आराम से यहाँ रहो। हम तो चले।'

एर्रन्न की तीसरी रचना 'नृसिह-पुराण' है। अष्टादश पुराणों में इसकी गणना नहीं है। इसकी कथा ब्रह्माण्डपुराण तथा भागवत में है और इसका कुछ अंश विष्णुपुराण में भी है। इनके साथ ही अपनी कल्पना को जोड़कर एर्रन्न ने इसकी रचना की है। इस काव्य की रचना के पीछे एक 'रसवत्तर' अर्थात् मधुर कहानी है। तुलसीदास की भाँति एर्रन्न भी कहते है : "हंस जब मृदु मधुर ध्वनि करते हैं, तो बगुले भी अनुकरण में कुछ कह बैठते हैं। मैं भी कुछ इसी प्रकार कहूँगा। समाज-कल्याण का प्रयत्न भी करूँगा।" इस प्रकार ध्यानमग्न हो एर्रन्न बैंठे थे। तभी उनके पितामह सामने आकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने पौत्र से कहा :"तुम चतुरोक्तियों से भरी संस्कृत भाषा में काव्य लिखने में समर्थ हो। प्रबन्ध परमेश्वर की उपाधि पा चुके हो। नन्नय और तिक्कन के प्रति आदरभाव के कारण अरण्यपर्व के शेष भाग को पूरा कर चुके हो। तुम शिव-भक्त हो, पर गोविन्द के प्रति भी आदर की भावना तुममें है। गुरु के प्रति अत्यन्त भक्ति एवं श्रद्धा तुम्हारे हृदय मे है। सब पुराणों को भी जानते हो। प्रबन्धों को लिखने की क्षमता तुम्हारे पास है। इसलिए अहोबल स्वामी के नाम पर, जो मेरे आराध्य हैं, एक काव्य रचो।" पितामह के इन वाक्यों को सुनकर ये पुलकित हो उठे। इन्होंने अद्भुत आह्लाद का अनुभव किया और तुरंत रचना करने बैठ गये।

यह एर्रन्न का प्रौढ़तम काव्य है। एक उदाहरण देखिये :

हरि भक्तुल तपमु तपमु-हरि भक्तुल
जपमु जपमु हरि भक्तुल भा।
सुर जन्ममु भवसारम-हरि
भक्तुल भुवन पाव नैक विहारुल्॥
कुडिचि नपुडु निद्र गूरिन यप्पुडु-
मेलु कोनिन यपुडु मेलगिनपुडु।
विष्णु कीर्तनन्बु विष्णुचिन्तयु कानि-
पलुक डोन्डु बुद्धि दलपडोन्डु॥

'हरि के भक्त जो तप करते हैं वही वास्तव में तप है। वे जो जप करते हैं वही जप है। हरिभक्तों का जन्म भवसागर को पार करने के लिए ही है। उनके मन्दिर पूजा के पावन स्थान हैं।

खाते-पीते, सोते-जागते सचेतावस्था में विष्णु-संकीर्तन तथा विष्णु-ध्यान को छोड़कर और किसीके बारे में सोचना ही नहीं चाहिए।'

महाभारत के अरण्यपर्व के शेष भाग को तिक्कन के पचास साठ वर्ष बाद एर्रन्न ने पूरा किया। अज्ञात तथा अकथनीय कारणों से पन्द्रह पर्वों को लिखनेवाले तिक्कन अरण्यपर्व को, जो कि बीच में ही रुक गया था, पूरा नहीं कर पाये। विराट्पर्व को श्रीकार से आरम्भ कर वे आगे बढ़ गये।

इनके पिता सूरन बड़े पण्डित तथा ज्ञानी कवि थे। उन्होंने भारत की प्रतियों को मँगवाकर अपने लड़के से उसकी प्रतिलिपि तैयार करवायी होगी। प्रतिलिपि करते समय इनको लगा होगा कि इसे पूरा करना है। वे तुरंत पूरा करने के काम में लग गये होंगे। एर्रन्न ने अपने नाम पर इसे पूरा न कर नन्नय के नाम से पूरा किया। क्योंकि लिखते-लिखते नन्नय दिवंगत हो गये थे। इसलिए उनके नाम पर उस पर्व को इन्होंने पूरा किया। महाभारत में एर्रन्न की प्रतिभा दर्शनीय है। इन्होंने आरम्भ में नन्नय का अनुकरण कर पर्व के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते तिक्कन की नाटकीयता को अपनाया। इस तरह दोनों के बीच वे एक सेतु बन गये। आधे पर्व के आधार पर ही तिक्कन के बाद महाभारत को पूरा करनेवाले एर्रन्न की कुशाग्र बुद्धि का स्पष्ट परिचय मिलता है।

नन्नय की कुन्ती भोली-भाली है, पर एर्रन्न की कुन्ती कुशल तथा वाग्चतुरा है। वह सूर्य से कहती है:

मन्त्र बल मेरुन्ग मदिन् गोरि तप्पु
सेसिति महात्मा ! दीनिन् जेट्ट गान्ग।
नवधटिप केट्टुलैन नबालयम्नु,
गरुण सैन्पलयुन् ममल मित्र ॥

'मन्त्र-शक्ति को मैं जानती नहीं थी। बचपना था। इसलिए हे महात्मा ! मुझसे गलती हो गयी है। मुझे क्षमा करो। मुझे मेरा कौमार्य लौटा दो, हे कमल मित्र !'

ओड्डेपूडि पेद्दय

वेन्कट मन्त्रि और पेरमाम्बा के सुपुत्र ओड्डे पूडि पेद्दय 'माघमहात्म्यम्' (वायुपुराण का एक अंश) के कवि हैं। आपस्तम्ब्र-सूत्र को माननेवाले पेद्दय काश्यप गोत्रोद्भव नियोगी ब्राह्मण थे। ये चिन ओड्डे पूडि के पटवारी थे। यह ग्राम निजाम राज्य (आधुनिक तेलंगाणा) में स्थित था। कवि अपने-आपको 'नारसिंह सद्वनरुह चञ्चरीक' मानते हैं। ओड्डे पूडि पेद्दय श्रीलक्ष्मी नरसिंह स्वामी के करुणा-कटाक्ष से विभूषित सुकवि थे।

अपने ग्रन्थ में इन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि ये लक्ष्मी नरसिंह के उपासक एवं आराधक हैं।

'(इदि) यह श्रीमद्वराहगिरि लक्ष्मी नृसिम्ह वर प्रसाद लव्ध सास्वत विचित्रापस्तम्ब सूत्र काश्यप गोत्र पवित्र ओड्डे पूडि वेन्कट मन्त्रि पुत्र सकल सुकवि जन विधेय पेद्दय नामधेय प्रणीतम् बैन (लिखा) वायुपुराणमनन्दु (में) माघ महात्म्यम् बनु (नामक) महा प्रबन्धम्बु। यहाँ जिस नरसिंह स्वामी की बात कवि पेद्दय कर रहे हैं वे स्वामी विशाखपट्टनम् के सिंहाचलम्वाले नरसिंह हो सकते हैं। नरसिंह स्वामी के कृपापात्र होने के कारण इस बात की कल्पना की गयी है कि ये विशाखपट्टनम् के आसपास के निवासी रहे होंगे। विशाखपट्टनम् से पेद्दय के दादा या परदादा ओडीसा पहुँचकर वहाँ से तेलंगाणा आये होंगे। अपनी भक्ति के बारे में इन्होंने लिखा है-"मैं श्रीमद्वराहगिरि वेन्कट लक्ष्मी नृसिंह स्वामी का भक्त हूँ। उस स्वामी का ध्यान निरन्तर करता हूँ। मैं स्वामी के कारण कृतार्थ हूँ।"

कृतिपति की रक्षा करने के लिए पेद्दय कवि श्री नरसिंह स्वामी से प्रार्थना कर रहे हैं :

श्रीलिम्पोन्दग नाल्गु हस्तमुल लक्ष्मी देव नुन् जेक्कुलन्
बालिन्ड़लन सविनोद लील मकरी पत्रावशुल् व्रायु शा
बालंकारुन्डु शोभनाचल नृसिम्ह स्वामि सद्धर्म सम्
शीलुन् दासरि चिन्न गग विभु दाक्षिण्य बुनन् ब्रोवुतन्

'अपने चारों हाथों से, लक्ष्मी देवी के कपोलों से, कुचों से विनोदसहित खेलनेवाले शोभनाचल के स्वामी नरसिंह दासरि चिन्न (छोटे) गंग विभु की रक्षा कीजिये।'

कृतिपति कवि पेद्दय से कहते हैं—"आर्य लोगों का मत है कि वायुपुराण श्रेष्ठ पुराण है। उसके तीसरे खण्ड का 'माघ महात्म्यम्' हरि-भक्ति के लिए स्रोत समान है। यह एक पुण्य-कथा है। इसका अनुवाद करो।" ये मान गये और राजा की इच्छा के अनुसार 'माघ महात्म्यम्' काव्य को लिखकर पूरा किया। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने लिखा है :

हरिपद संभवुल, बुधहितातिशयमुल् कमलाश्रयुल् शुभा
चरुलुनु बण्यजीवनुलु सत्पथवर्तकुलु लोक पावनुल्
सरसकवि प्रजास्पुदुलु चारु गभोरुलु नै वियन्नदी
स्थिरगतुलु लैनवारि नुतिचेसेद गम्मकुलाग्र गण्युलन्।

'हरिपद-सेवापरायणों की, बुध-हित को चाहनेवालों की, शरण में आनेवालों की, पुण्य जीवों, सत् पावनों और लोकपावनों की, सरस कवि और प्रजा के मनपसन्द लोगों की, गम्भीर व्यक्तित्ववालों की प्रशंसा करता हूँ। उक्त गुण तो 'कम्मजाति' के लोगों में देखा जाता है।' अपने कृतिपति की प्रशंसा इन्होंने जी खोलकर की है।

सा० प्र०

ओरुगंटि सोमशेखर कवि

ओरुगंटि सोमशेखर कवि का जन्म एवं मृत्यु-काल अज्ञात है। इनकी कृति 'राम-कृष्णार्जुन-रूप-नारायणीयमु' से ज्ञात होता है कि ये संस्कृत और तेलुगु भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् और अच्छे कवि थे। 'राम-कृष्णार्जुन-रूप-नारायणीयमु' चार आश्वासों में विभक्त त्रयर्थी काव्य है। इसमें राम, कृष्ण और अर्जुन (पाण्डव) की कथाएँ साथ-साथ वर्णित हैं। इस ग्रन्थ के कृतिपति पूसपाटि नारायण राजु हैं। भावानुकूल भाषा का सफल प्रयोग इस काव्य की प्रमुख विशेषता है। इसमें कवि का प्रगाढ़ पाण्डित्य प्रदर्शित हुआ है।

बा० रे०

कंकंटि नरसिंह राजु

नरसिंह राजु कंकंटि पापराजु के भाई थे। अपने भाई के समान ये भी वैष्णव थे। बड़े भाई कृष्ण-भक्त थे। फिर भी इन्होंने राम-काव्य की रचना की थी। इसी परम्परा में नरसिंह राजु ने कृष्ण-काव्य की रचना की। अपने काव्य को इन्होंने राम के नाम अर्पित किया है।

चिन्तलपूडि एल्लन्ना कृत 'विष्णुमाया नाटकम्' का काव्य-रूप प्रस्तुत कर पापराजु ने धन, कनक, वस्तु, वाहनादि के साथ अपार यश पाया था। नरसिंह राजु ने उसे द्विपद-काव्य के रूप में लिखने का निश्चय किया। अब कृतिपति को चुनने की समस्या इनके सामने थी। इसका समाधान ये नहीं कर सके। इसलिए चिन्ता में पड़ गये। एक दिन इनके स्वर्गीय भाई कंकंटि पापराजु ने स्वप्न में दर्शन दिया। उन्होंने अपने छोटे भाई से कहा : "मेरे प्यारे भाई नरसिंह, अपने अनुपम काव्य 'विष्णुमाया नाटकम्' (द्विपद-काव्य) के लिए तुम योग्य कृतिपति की तलाश में हो। इस काव्य का कृतिपति सीता-मनोहर को छोड़कर भला और कौन बन सकता है ? उन्हींको कृतिपति बनाओ।" भाई के कथनानुसार नरसिंह राजु ने राम को ही कृतिपति बनाया।

उन्होंने काव्य की रचना करते समय एक सहायक की आवश्यकता का अनुभव किया। तुरन्त अपने भाई के मित्र पुष्पगिरि तिम्मन्ना के पास गये। उनसे अपने मन की बात कही। वे मान गये। काव्य में

मित्र तिम्मन्ना का नाम लेनेवाले नरसिंह राजु ने चिन्तलपूडि एल्लन्ना का उल्लेख नहीं किया है। यह एक आश्चर्य की बात है।

'विष्णुमाया-नाटकम्' द्विपद-काव्य मात्र शब्दानुवाद है। इसके आधार पर कवि की प्रतिभा का आकलन करना कठिन है। इतना होते हुए भी नरसिंह राजु को जो ख्याति मिली है, वह मूल नाटक के रचयिता एल्लन्ना को नहीं मिली है। कोश लिखनेवालों ने केवल नरसिंह राजु के काव्य को ही प्रामाणिक माना है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि नरसिंह राजु के द्विपद-काव्य की छपाई सन् १८६५ ई० में हुई थी और एल्लन्ना के नाटक की छपाई बाद में। तेलुगु के सुप्रसिद्ध कोशकार बहुजन पल्लि सीतारामाचार्युलु इन्हें (नरसिंह राजु को) पाँचवीं श्रेणी का कवि मानते हैं।

नरसिंह राजु आरुवेल ब्राह्मण थे। ये अप्पय्यामात्र और नरसम्मा के पुत्र थे। अपने भाई के देहावसान के बाद नरसिंह राजु ने 'विष्णुमाया नाटकम्' नामक द्विपद-काव्य की रचना की थी। ये सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध के कवि थे।

सा० प्र०

कंकंटि पापराजु

पापराजु के कृतित्व के सम्बन्ध में कई प्रकार के विवाद आज भी चल रहे हैं। पापराजु पुष्पगिरि तिम्मन्ना के मित्र तथा विष्णु-भक्त कवि थे। 'उत्तर रामायण' के अतिरिक्त इन्होंने 'विष्णुमाया विलासमु' नामक काव्य की रचना भी की थी। पुष्पगिरि तिम्मन्ना पापराजु के सह-श्रोता थे। आलोचकों के मत से इन्होंने 'उत्तर रामायण' की रचना पुष्पगिरि तिम्मन्ना की सहायता से ही की है।

कृतित्व-सम्बन्धी विवाद के कारण आलोचक पापराजु को धनवान् और तिम्मन्ना को निर्धन मानते हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कथा साहित्य-क्षेत्र में प्रचलित है-"पापराजु प्रलय कावेरी पट्टनम् अर्थात् पुलिकाट के अधिकारी थे। एक बार तिम्मन्ना ने पापराजु से पैसे उधार लिये। इस ऋण को वे चुका नहीं पाये इसलिए एक कृति की रचना कर उन्होंने पापराजु को दे दिया। प्रस्तुत काव्य को पापराजु ने अपने नाम से प्रकाशित करवाया।" प्रस्तुत कथा का उल्लेख श्री यागन्टि शेषय्या ने आन्ध्र-कवि तरंगिणि (१२वाँ खण्ड) में किया है। किन्तु प्रमाण के अभाव में वे उक्त किंवदन्ती को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। श्री शेषय्या उत्तर रामायण को एक प्रौढ़ रचना मानते हैं। श्री इन्द्रगंटि हनुमच्छास्त्रि के शब्दों में "काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से पापराजु वाल्मीकि से भी दो पग आगे हैं।" (सीतम्म शोकम्-पापराजु नामक एक लेख से)। उत्तर रामायण एक शृङ्गार-प्रधानकाव्य है। डॉ० आरुद्र के अनुसार पापराजु ने समकालीन स्थिति के कारण ही शृंगार-रस को प्रमुखता दी थी।

कंकंटि पापराजु को, धरणि देवुल रामय्या के समान श्री वीरेशलिंगम् भी अठारहवीं सदी का कवि मानते हैं किन्तु श्री शेषय्या इन्हें सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध का कवि ठहराते हैं। डॉ० आचार्य यस० वी० जोगाराव ने पापराजु के काव्य के विषय में आन्ध्र पत्रिका–दैनिक, ता० ७-३-१९५५ ई० में लिखा है कि "उत्तर रामायण सन् १९३० ई० के पूर्व की रचना है।"

पापराजु कृष्ण-भक्त कवि थे। ये आरुवेल-शाखा के ब्राह्मण थे। श्रीवत्सगोत्रोद्भव पापराजु अप्पय्यामात्य के पुत्र थे। इनके दादा का नाम अय्यन्न मंत्रि था। ये वल्लभामात्य और लक्ष्माम्बिका के प्रपौत्र थे। माता का नाम नरसम्मा था। इन्होंने 'विष्णुमाया विलासमु' नामक एक यक्ष-गान की भी रचना की है। कहते हैं, इस काव्य को यक्ष-गान के रूप में रचने के लिए पापराजु को स्वयं श्रीकृष्ण ने आदेश दिया था। इस घटना का वर्णन कवि

के शब्दों में सुनिये : "महनीय मूर्ति कृष्ण ने स्वप्न में मुझसे कहा : 'तुम अपनी रचना (प्रबन्ध) को मुझे सौंपो। तुम्हारा जीवन सार्थक हो जायगा। तुम उस काव्य के कारण धन्य बनोगे। इतना ही नहीं, इस काव्य के कारण तुम्हें धन, कनक, वस्तु, वाहनादि के साथ रमारमणीय भोग-भाग्य भी मिलेंगे। वह कृति अमर रहेगी। इसलिए तुम 'विष्णुमाया विलासम्' (चिन्तलपूडि एल्लन्ना कृत 'विष्णुमाया विलासम्' का यक्ष-गानरूप) नामक यक्ष-गान की रचना करो। हम तुम्हारी 'सुधानुसारी' रचना को सुनने के लिए उत्सुक हैं'।" इस स्वप्न के बाद पापराजु ने कृष्ण की स्तुति इस प्रकार की है :

श्री रुक्मिणि कि मकरिकलु चे वकुल व्रासि
सत्य कोल् जडकुन् बूसरुलु चुट्टि
जाम्बवतिकिन् गोप्पु चक्कन् गानिडि मित्र
विन्दकुन् बुक्किटिविडे मोसंगि
भद्र सिच्चेम्पु गुब्बल गन्द मलन्दि सु
दन्तकुन् दिलक मन्द मुग दिद्दि
कालिन्दि मुख घर्मकणमु गोट नु मीटि
लक्षण यडुगुल लाक्षइन्चि

नीलकु मणि विभूषण पालि दोडगि
वन्य कुवलंबु राध कर्ण मुनन् ज रवि
वेलन्दि मिन्नलु पदि यारुवेल गोलुव
मिन्चु कृष्णुनि श्रृंगार मेन्चवशमे।

'श्रीकृष्ण की श्रृंगार-लीलाओं का वर्णन भला कोई कैसे कर सकता है? वह रुक्मिणी के गालों पर मकराकृति-रेखा खींच रहे हैं, वेणी में मणियों को गूँथ रहे हैं, जाम्बवती के जूड़े को सँवार रहे हैं, मित्रवृन्दा को अपने मुख का ताम्बूल दे रहे हैं, भद्रा के स्तनों पर गन्ध का आलेप कर रहे हैं, सुदन्ता के माथे पर के टीके को ठीक कर रहे हैं, कालिन्दी के मुख के पसीने को पोंछ रहे हैं, लक्षणा के पैरों में मेंहदी लगा रहे हैं, और वन के खिले फूल को तोड़कर राधा के कर्णों के पीछे रख रहे हैं, सोलह हजार सुन्दरियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। ऐसे कृष्ण की श्रृंगार-लीलाओं का वर्णन कौन कर सकता है?'

पापराजु स्वयं को धन्य मानते हुए अपने भाग्य की सराहना इस प्रकार करते हैं :

काञ्चन गर्भ शंकर मुख त्रिदशेन्द्रुलु प्रौढ रीतिन् गी
र्तिचिन मेप्पुतोविननि कृष्णुडु मत्कृत कीर्तनबु व्रह
र्षिन्चि विनुन् स्वीय कृप चे विलसेल्लेडु वाक्कुलीट दा
वेंचिन चल्क पल्कु विनन् व्रीति वहिम्पक युज्दुरे दीरल

'काञ्चन गर्भ शंकर आदि त्रिदशेन्द्र प्रौढ़ रीति से स्तुति करते रहते हैं। किन्तु उनकी स्तुति न सुनकर कृष्ण मेरी रचना को सुन रहे हैं। मेरी बातें मेरी नहीं हैं, उन्हींकी हैं। इसलिए सज्जन लोग भी मेरी प्रशंसा करेंगे।'

'विष्णुमाया नाटकम्' में 'शिव गर्वभंगम्' की घटना का वर्णन कवि ने प्रभावपूर्ण शैली में किया है।

सा० प्र०

कंचलि वेन्कट हनुमन्तय्या

कंचलि वेन्कट हनुमन्तय्या ने राधाकृष्ण लीला-सम्बन्धी 'चन्द्रमुखी-गर्वभंगमु' नामक नाटक की रचना की है। इसका कथानक विशाल है। चन्द्रमुखी नामक एक स्त्री को अपने पातिव्रत-धर्म पर गर्व था। अतः उसने राधा का अपमान किया। नारद, अक्रूर आदि के कारण उसका गर्व भंग होता है। इसकी कथा कल्पित है।

सा० प्र०

कंदुकूरि रुद्र कवि

नाम से शैव कंदुकूरि रुद्र कवि मनसा-वाचा-कर्मणा हरि-हर में अभेद माननेवाले थे। प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार ये लगातार बारह वर्ष, श्री कृष्णदेव रायलु के दरबार में रहे। इनके स्वभाव के बारे में अनुमान लगाया जाता है कि मित्रों के

लिए ये मित्र और शत्रुओं के लिए काल-रुद्र थे। इनके मुख से फूल और शूल दोनों बरसते थे। रायलु के दरबार में इनका स्थान ईशान की ओर था। ईशान (उत्तर और पूर्व के मध्यवाला कोना) प्रायः जल का स्थान माना जाता है। अग्नि बरसाकर जलानेवाले रुद्र कवि जल बरसाकर शीतलता भी पहुँचा सकते थे।

रुद्र नाम के तेलुगु में कई कवि हुए हैं। कंदुकूरि-वंश में भी कम-से-कम चार रुद्र कवि जन्म ले चुके हैं। रुद्र कवि के वंशजों से इस विषय में चर्चा करने के बाद श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री उक्त निर्णय पर पहुँचे हैं। अगर रुद्र कवि श्रीकृष्णदेव रायलु के दरबारी कवि हैं तो इनका समय सन् १५०० से लेकर १५३० ई० तक के बीच ठहराया जा सकता है। संकलनकार काकुनूरि यप्प कवि ने अपने 'अप्प कवीयमु में रुद्र कवि के गुन्दुपल्लि भास्कर का समकालीन होने की बात कही है। इस प्रमाण के आधार पर इनका समय सन् १६२० ई० के आसपास ठहराया जा सकता है। गोलकोण्डा के नवाब इब्राहीम फ़ादुवा (जो मल्किभ राम के नाम से प्रसिद्ध था) से एक रुद्र कवि ने चिन्त गुन्ट नामक ग्राम को दान में प्राप्त किया था। यह गाँव इस वंश के अधीन था। इस तर्क को सही मानने पर हमें स्वीकार करना होगा कि सन् १५५० ई० के आसपास एक और रुद्र कवि का जन्म हुआ होगा। रुद्र कवियों की संख्या को तीन से दो तक घटाते हुए श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री लिखते हैं: "इब्राहीम के शासन-काल में जीवित रुद्र श्रीकृष्णदेव रायलु के समय में बालक रहा होगा।" इस कथन का अर्थ है कि गुन्दु पल्लि भास्कर मन्त्रि के काल में एक और रुद्र कवि था। डॉ० आरुद्र इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि कंदुकूरि-वंश में तीन या चार रुद्र कवि पैदा हुए होंगे। इनमें से कदाचित् दूसरे रुद्र कवि ने 'निरंकुशोपाख्यानम्' तथा 'सुग्रीव विजयम्' नामक ग्रन्थों की रचना की होगी।

श्री यागन्टि शेषय्या के अनुसार कंदुकूरि रुद्रय्य जाति के सुनार थे। सुनारों को तेलुगु में 'विश्व-ब्राह्मण' भी कहते हैं। शिव-भक्त होते हुए भी रुद्र कवि विष्णु-द्वेषी नहीं थे। 'निरंकुशोपाख्यानम्' के अन्त में कवि ने लिखा है कि वे कालीमाता के प्रसाद हैं। वर्णवर्णनीय अर्थात् रंगीन कवित्व को लिखने में समर्थ हैं। श्री यागन्टि शेषय्या के अनुसार इनके पिता का नाम पेदलिंगनार्य और माँ का नाम चेन्नमाम्बा था।

कंदुकूरु में सोमेश्वर आलय है और जनार्दन का भी मन्दिर है। अपने 'निरंकुशोपाख्यान' को रुद्र कवि ने सोमेश्वर के आदेशानुसार उन्हींको समर्पित किया है। इस कृति-समर्पण की बात को लेकर भी कवियों ने कई बातों की कल्पना की है। किन्तु यह निश्चित है कि रुद्र कवि श्रीकृष्णदेव रायलु के दरबारी कवि विशेष रूप से अष्ट दिग्गज कवियों में नहीं होंगे।

इन्होंने जनार्दन का वर्णन सुन्दर शब्दों में किया है। देखिये :

सिरुलु मिन्चिम पसिमबंगरु जिलुगु दुप्परि जारगा
चरण पद्ममु मीद देहमु चन्द्र कांतुलु देर गा
मुरुवु भूपग पच्चि नावो मोहनाकृति मीरगा
गरुड वाहन दनुज मर्दन कंदुकूरि जनार्दना।

'हे दनुजमर्दन कंदुकूरि जनार्दन ! अपने सौन्दर्य के प्रदर्शन के लिए क्या यहाँ पधारे हो ? तुम्हारे चरण-कमलों पर सुनहरे रंगवाला अमूल्य पीताम्बर शोभा पा रहा है। चाँदनी की शीतलता तुम्हारे शरीर की कान्ति में है। हे गरुड़वाहन ! तुम्हारी आकृति मोहकारी है।'

जनार्दन की प्रशंसा करते हुए ये अन्यत्र लिखते हैं—

अनाथ नाथ, नागतल्प यज्ञ कल्प मौनिरं
जना ! जनार्तिनाशना ! दिशा परीवृढार्घ्य श

सना ! सनातना ! यनादि सत्य कंदुकूरि श्री
जनार्दना जनार्दना ससाहसारि मर्दना !

'श्री कंदुकूरि जनार्दन अनाथों के नाथ हैं, नागतल्पवाले हैं, यज्ञकल्प मौनिरंजक हैं, जनार्तिनाशक हैं, सनातन हैं, अनादि सत्य हैं।'

'वलवदरी' नामक शतक के भी रचयिता रुद्र कवि माने जाते हैं। अब इस शतक के केवल तीन पद्य मिलते हैं। उनमें से एक इस प्रकार है :

कलश पयोधिमीद दरन्गल् मटि हो
थनि म्रोथ वेयु भं
गुला तल पान्पु पामु बुस कोट्टंग ने
गति निद्र जेन्ददो
थलसत दंड्रि चीम चिदुकन्ननु निद्दुर राद्दु माकु नो
वलवदरी दरी कुहर भस्वदरी भदरी दरी हरी।

'हे हरि ! आपको भला नींद कैसे आती है ? अगर चींटी भी चलती है तो उस शब्द के कारण हमारी नींद बिगड़ सकती है। तुम कैसे सो पाओगे ? एक ओर तरंगायित सागर गरजता रहता है तो दूसरी ओर तुम्हारा आसन शेष फुफकारता रहता है। तुम्हीं बताओ।'

सा० प्र०

कंभम् पाटि नारपामात्युडु

महाकवि तिक्कन्न के भव्य धर्म-समन्वय-मार्ग पर चलकर हरि-हर के नाम अपने काव्य को समर्पित करनेवाले श्री कंभम् पाटि नारपामात्य सोलहवीं शती के उत्तरार्ध के कवि हैं। आपने महाभारत-काव्य के भीष्मपर्व के भगवद्गीता-सम्बन्धी अंश का तेलुगु में पद्यानुवाद किया है। नाम के अन्त में आनेवाले अमात्य शब्द के आधार पर आलोचकों ने अनुमान लगाया है कि ये नियोगी ब्राह्मण रहे होंगे। नारपामात्य द्वारा लिखित उक्त ग्रन्थ आज तक छपा नहीं है। मद्रास के प्राचीन ग्रन्थों की पाण्ड्लिपि-संग्रहालय में एक ताड़पत्र पर इसकी प्रति मिली है। इस ग्रन्थ का नाम 'आन्ध्र-भगवद्गीता' है। इन्होंने अपने वंश तथा माता-पिता के बारे में कुछ नहीं लिखा है। पुष्पिका में मात्र इतना लिखा है—'इदि (यह) श्रीमत्सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म वरप्रसादलब्ध कविताविलास नारपामात्यप्रणीतम्।' इनके गुरु का नाम रामब्रह्मेन्द्र है। उनकी स्तुति कवि ने इस प्रकार की है :

'नमो वेदान्तवेद्याय नित्यसत्यानुसारिणे।
श्री मोक्ष लक्ष्मीनाथाय श्री राम ब्रह्मणे नमः॥'

रामब्रह्म के परमगुरु श्रीदत्तात्रेय योगीश्वर के शिष्य थे। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि नारपामात्य नेल्लूर जिले के निवासी रहे होंगे।

भीष्मपर्व की भगवद्गीता से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है कि नारपामात्य कृष्ण-भक्त थे। उससे दो छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

(१)

चिनिगिन चेलमु लेट्टुवले, मनुजुड्डु
विडनाडि नूत्न मगु वस्तुवु ले
यनुवुन धरिन्चु नट्टु मुदि, तनु वु
विडिचि देहि क्रोत्त तनुवुलु पोन्दुन्।

'जिस प्रकार लोग जीर्णवस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्रों को पहन लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जीर्ण शरीर को छोड़कर देही (आत्मा) नया शरीर पाता है।'

(२)

अदियुनु गाक भूतमुल यन्निटियंदु समत्व बुद्धियिं
पोदवगन् गलिग संशयमु पोन्दक मोह विवर्जितुंडुनै
मदिनिन् प्रियाप्रियंबु लनि मक्कुव सेयनि ज्ञानि येमिया
पदलुनु लेक ब्रह्ममुनु बद्दुगन् बोन्दन्ग गल्गु फल्गुना

'हे अर्जुन ! वह ज्ञानी बिना विपत्तियों को झेले ब्रह्म को आसानी से पा सकता है जो प्राणिमात्र से एक समान प्रेम करता है, जो संशयहीन है, जो मोह को छोड़ चुका है और जो प्रिय और अप्रिय नामक बन्धनों से परे है। मैं ऐसे लोगों की पहुँच में हूँ।'

कंभम् पाटि नारपामात्य हरि-हर में अभेद मानने-वाले कृष्ण-भक्त हैं।'

सा० प्र०

कट्टा वरदराजु

दक्षिण भारत के इतिहास में करिकाल चोल का स्थान अति ऊँचा है। सन् ४८५ ई० में कावेरी नदी पर बाँध बँधवाने का श्रेय इन्हींको दिया जाता है। विश्व के इतिहास का यह शायद सबसे पहले बाँधा गया बाँध है। सूर्य-वंश में उत्पन्न कट्टा वरदराजु उसी जगत्-प्रसिद्ध चोल-वंश के कवि-रत्न हैं। तेलुगु में बाँध को कट्टा कहते हैं। बाँध बँधवानेवाले राजवंश में जन्म लेने के कारण वरदराजु के पूर्वजों को कट्टा-वाले कहने लग गये थे। इसलिए इनके नाम के पहले 'कट्टा' उपसर्ग लग गया है।

श्री यागन्टि शेषय्या के अनुसार कट्टा वरदराजु रामराजु के पुत्र और हरिदास राजु के पौत्र थे। पर डॉ० आरुद्र ने लिखा है—"वरदराजु के पिता का नाम हरिदास राजु है।" कवि के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी उक्त दोनों विद्वानों के मत एक नहीं हैं। श्री शेषय्या इन्हें दंत्त-मण्डलम् (रायलसीमा) या मैसूर राज्य का कवि मानते हैं तो डॉ० आरुद्र अधिकारपूर्वक लिखते हैं—"हरिदास राजु (वरदराजु के पिता) ने सन् १६३६-३७ ई० में कडपा जिले के माधवपुरम् में स्थित हनुमान्जी के मन्दिर में एक दान शासन खुदवाया था। पिता सन् १.३६ ई० में वर्तमान थे। अतः पुत्र का समय सन् १६६० ई० के आसपास रहा होगा। दोनों विद्वान् मानते हैं कि कट्टा वरदराजु सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे।

कट्टा वरदराजु भी तिक्कन्न की परम्परा के कवि हैं। इन्हें काव्य लिखने की प्रेरणा तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर ने स्वप्न में दी थी। इसके बारे में ये स्वयं लिखते हैं :

सुख निद्रितुन्ड नैन चोन् पूर्व पुण्य।
सख मैन योक सुख स्वप्नम्बु नन्दु॥

कल कल नव्वु चक्कनि ने म्मोगम्बु।
योक दिव्य मूर्ति न योद्धन् जूपट्टि॥

निनु मेच्चि वच्चिति नीतलम्पेटिन्गि।
ननुन् दिरु वेन्गल नायुन्गान् देलियु॥

पद्य काव्यमु चेसि परम भागवत।
हृद्य चरित्रम्बु निच्चिति माकु॥

मंगलप्रदमु साम्यमुशताध्यायि।
रंग महात्म्यम्बु रचियिन्चि नावु॥

मापेर निपुड्डु रामायण द्विपद।
येपु मीरग रचियिम्पु मिम्पलर॥

'मैं सुख-निद्रा में था। अपने पूर्वजन्म के पुण्यों के कारण एक दिन मेरे सुख-स्वप्न में खिलखिलाकर हँसते हुए सुन्दर वदनवाली एक दिव्य मूर्ति आ गयी और पास खड़े होकर कहने लगी—'मैं श्रीवेंकटेश्वर हूँ। यहाँ मैं तुम्हारी प्रशंसा करने आया हूँ। मैं तुम्हारे मन को पहचानता हूँ। प्रह्लादादि १४ परम भागवतों की कथा को हृदयोन्मादिनी शैली में लिखकर तुम हमें सौंप चुके हो। गरुड़संहिता की शताध्यायी को 'श्रीरंग-महात्म्यम्बु' नाम से रच चुके हो। अब हमारे नाम पर रामायण-काव्य की रचना द्विपद छन्द में आकर्षक शैली में करो।'

कवि के उक्त कथन से पता चलता है कि कट्टा वरदराजु ने 'परम भागवत-चरित्र', 'श्रीरंग-महात्म्यम्बु' और 'द्विपद रामायणम्' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। इन तीनों ग्रन्थों के आधार पर यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि ये परम वैष्णव थे।

कवि वरदराजु ने अपने काव्य 'श्रीरंग महात्म्यम्बु' में भगवान् विष्णु की स्तुति इस प्रकार की है :

पडगलु वेयु गल्गु नु नुपानुपु पैन् पव्वलिन्चि पद्म पै
नडगुलु निलिप योक्ककर मल्लन साचि करम् बोकन्डु
पेम्

पडर दह्लाडगा नुनिचि यब्ज विलास विलोकनम्बुलन्
बोडम दयारसस्पुरण बोल्चिन रंगनिवासु नीश्वरुन्।

'सहस्र फणवाले शेष की चिकनी शय्या पर श्रीरंग-वासी ईश्वर सो रहे हैं। इनके पैर कमल पर विश्राम ले रहे हैं। एक हाथ को फैलाकर दूसरे हाथ का तकिये के समान उपयोग कर रहे हैं। कमल-नयन-वाले श्रीरंग-धामेश्वर दया एवं करुणा की वर्षा कर रहे हैं।'

कट्टा वरदराजु का कथन है कि वे 'श्रीरंग महात्म्यम्' को लिखनेवाले एकाकी कवि हैं। इस बात को कवि ने श्री वेंकटेश्वर से भी कहलवाया है। पर इतिहास साक्षी है कि इनके पूर्व तीन कवि इस कथा को ग्रहण कर काव्य रच चुके थे।

इनकी उक्त रचनाओं में से केवल 'श्रीरंग महात्म्यम्' का प्रकाशन हुआ है। अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

सा० प्र०

कावूरि येल्लय कवि

कावूरि येल्लय 'मित्रवृन्दा-परिणयमु (प्रबन्ध-काव्य) और 'ब्रह्माण्ड-पुराणमु' नामक पद्य-काव्य के रचयिता के रूप में विख्यात हैं। सम्भवतः इनका समय सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल है। श्रीवत्स गोत्र के वेंकनामात्य के पुत्र कावूरि येल्लय कवि नियोगी ब्राह्मण थे। कावूरु गुंटूर जिले का एक गाँव है। येल्लय कवि इस कावूरु के निवासी थे। इनका काव्य 'मित्रवृन्दा-परिणयमु' आज उपलब्ध नहीं है। 'ब्रह्माण्ड-पुराणम्' नामक काव्य में अपने सम्बन्ध में इन्होंने इस प्रकार लिखा है—'श्रीवल्लभ पादपद्म सेवारतुडन (सेवारत हूँ)।' इस काव्य के कृतिपति स्वयं भगवान् रामचन्द्र हैं। इस सन्दर्भ में कवि ने लिखा है :

अर्ध पंचक विज्ञान ममल हृदय।
नीकु नेरुन् गंगन् जेप्पिति नेम्मितोड
दीनि र्निरिंगिन वारु विज्ञानधनुलु
वारे श्रीविष्णुपद धनुन् जेरुवारु।

'अर्धपंचक (ब्रह्माण्ड-पुराण का एक खण्ड) विज्ञान को जाननेवाले, हे अमल हृदयवाले, आपको मैं स्नेह से इसे समझा रहा हूँ। जो इसे जानते हैं वे ही बुद्धिमान् कहलायेंगे। वे ही श्री विष्णु के चरण-दास बन सकते हैं।'

कावूरि येल्लय के गुरु श्री तिरुमल तिरुवेंगलाचार्य थे। गुरु के समान शिष्य कावूरि येल्लय भी हरिपाद-कमल-सेवानिरत एवं विशुद्धान्तरंग तथा निर्मल चरित्रवाले थे।

बलराम और कृष्ण के गोपालन का वर्णन करते हुए ये लिखते हैं :

मटियुनु रामकृष्णुलु ग्रमम्बुन गोपरिपालनाद्युलै
करमनुरक्ति वल्लवनि कायमुलन् दमईडुवारि ना
दरमुनन् गूडि याडुचु मुदम्बुन वेणु खम्बु सेयुचुन्
सरसगतिन्विनोदमुलु सल्पुचु गोवुल मेपु चुन्डगान्।

'फिर रामकृष्ण (बलराम और कृष्ण) दोनों गोपरिपालन में अत्यन्त अनुरक्त हो गये। गोपालक-समूह में से अपने समवयस्कवालों से आदर के साथ मिलकर वे सन्तोष के साथ खेलने लग गये। कभी-कभी बाँसुरी बजाकर सरस गति से सबको आनन्द और विनोद बाँटते हुए वे गो-परिपालन करने लगे।'

सा० प्र०

कासुल पुरुषोत्तम

कासुल पुरुषोत्तम का जन्म सन् १७७४ ई० में हुआ था। ये पेद्दपोलु ग्राम (जिला कृष्णा) के निवासी थे। इनके पिता का नाम अप्पलराज तथा माता का रमणाम्बा था।

ये चारणवंशी थे और देवरकोटा (चल्लपल्लि) के राजा अंकिनीडु के दरबारी कवि थे।

'गोपाल-शतक', 'आन्ध्र-नायक-शतक', 'मानस-बोध-शतक', 'भक्त कल्पद्रुम-शतक' तथा 'हंसल दीवि' इनके रचित ग्रन्थ हैं।

इनका मृत्यु-काल १७९१ ई० माना जाता है।

बा० रे०

कूचिपुडि सिद्धेन्द्र योगी

'भरत-नाट्यम्' सम्पूर्ण दक्षिण भारत के नृत्य-कला-विशारदों की महान् सम्पत्ति है। ठीक इसी प्रकार कूचिपूडि नाट्य-शैली पर आन्ध्र के नाट्याचार्यों का विशेष अधिकार है। इस नृत्य को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय सिद्धेन्द्र योगी को ही है।

ये श्री नारायण तीर्थ के शिष्य थे। क्षेत्रय्या उक्त दोनों महानुभावों के समकालीन थे। नारायण तीर्थ, सिद्धेन्द्र योगी और क्षेत्रय्या कूचिपूडि-नृत्य के विकास के लिए मन, वाणी, कर्म से प्रयत्न करनेवाले वाग्गेयकार (मुक्तक गीति-काव्य-रचयिता)-त्रय माने जाते हैं। इनका समय सन् १६०० ई० और सन् १७०० ई० के बीच माना जाता है।

तेलुगु-साहित्य का एक वर्ग नारायण तीर्थ और सिद्धेन्द्र योगी दोनों को एक मानता है तो दूसरा गुरु और शिष्य। दोनों ने सत्यभामा को नायिका बनाकर यक्ष-गान की रचना की है। दोनों में कई साम्य भी हैं। इतना ही नहीं, संन्यास-ग्रहण-सम्बन्धी जो कथा नारायण तीर्थ के जीवन के साथ जुड़ी हुई है, ठीक उसी प्रकार की कथा सिद्धेन्द्र योगी के साथ भी है। सिद्धेन्द्र योगी बचपन से उच्छृङ्खल थे। आचरणहीन होने के कारण इन्हें विद्या-गन्ध छू तक नहीं गयी थी। इनका सम्बन्ध नाचनेवालियों से था। इनका विवाह भी हो चुका था। अपढ़ गँवार सिद्धेन्द्र योगी का सब अपमान करने लगे थे। इस अपमान को वे सह नहीं पाये। घर छोड़कर भाग गये। किसी योगिराज के मन्त्रोपदेश के कारण ज्ञानी बन वे घर लौटे थे। ससुरालवालों ने निषेक का मुहूर्त निकाला तो वे ससुराल पहुँचने के लिए लालायित हो उठे। गाँव तो कृष्णा नदी के उस पार था। नदी में बाढ़ थी। बिना झिझके ये नदी में कूद पड़े। थोड़ी दूर तैरने के बाद जब बाढ़ का वेग बढ़ा तो इनको लगा कि बचना कठिन है। इसलिए जनेऊ को निकालकर ये तत्काल संन्यासी बन गये। भगवान् की कृपा से बच गये। ससुराल पहुँचे। निषेक की तैयारियाँ होने लगी थीं। पर संन्यास लेने की बात उन्हें याद नहीं आयी। रात्रि के समय अचानक संन्यास की बात याद आयी। फिर पत्नी से अनुमति लेकर संन्यासी बन गये।

दूसरी कथा के अनुसार सिद्धेन्द्र योगी आजन्म ब्रह्मचारी थे। उनके माता और पिता दोनों अन्धे थे। बालक जन्मसिद्ध था। इन दोनों की सेवा तत्परता के साथ किया करता था। उञ्छ-वृत्ति को अपनाकर वह माता-पिता के लिए अन्न जुटाया करता था। एक बार शंकराचार्य स्वामी कूचिपूडि पधारे। लोगों ने सिद्धय्या की सेवा-परायणता के बारे में उनको बताया। स्वामीजी ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण-मन्त्र का उपदेश दिया। उस दिन से सिद्धय्या के साथ खेलने के लिए स्वयं बालकृष्ण आया करते थे। माता-पिता ने पूछा कि वह बालक जो तुम्हारे साथ खेलने के लिए आता है, कौन है? सिद्धय्या ने बताया कि वह श्रीकृष्ण हैं। माता-पिता ने संयुक्त स्वर में कहा—"हमें भी दर्शन करवाओ।" सिद्धय्या ने माता-पिता के प्रस्ताव को कृष्ण के सामने रखा। कृष्ण ने कहा—"आज रात को एक को मेरा और दूसरे को सत्यभामा और रुक्मिणी का वेष पहनाओ। जब गुग्गुल की ज्वाला उठेगी, उसके प्रकाश में मैं तुम्हारे माता-पिता को दर्शन दूँगा।" सिद्धेन्द्र योगी ने ठीक उसी प्रकार किया। माता-पिता कृष्ण का दर्शन कर धन्य हो गये। बस, उस दिन से कूचिपूडि के ब्राह्मण-युवकों के लिए जीवन में कम-से-कम एक बार एक स्त्री-पात्र का वेष धारण करना नियम बन गया है। कृष्ण के कृपापात्र बनने के लिए वेष-धारण करना ही पड़ता है। सत्यभामा का वेष धारण करनेवाले अक्सर पुरुष ही होते हैं। स्त्रियाँ वेष-धारण नहीं कर सकती थीं। इस कथा के अनुसार सिद्धेन्द्र योगी आजन्म ब्रह्मचारी थे। वे गाँवों में प्रचलित लोक-नृत्य को शास्त्रीय रूप देने में सफल हुए थे।

जनश्रुति के अनुसार 'भामा कलापमु' और 'गोल्ल कलापमु' सिद्धेन्द्र योगी की रचनाएँ हैं। पर गोल्ल कलापमु को बहुत से विद्वान् भागवतुल राम्यया की रचना मानते हैं। सिद्धेन्द्र योगी को अमर बनाने के लिए एक 'भामा कलापमु' (पारिजातापहरण की कथा, जिसकी नायिका सत्यभामा है) पर्याप्त है।

कूचिपूडि-नृत्य को प्रारम्भ करने के पहले सत्यभामा-पात्र बननेवाला पुरुष एक वेणी को रंगमंच पर लटकाता है। इसका अर्थ यह होता है कि मैं इस नृत्य से सम्बद्ध सभी प्रश्नों का जवाब दे सकता हूँ। अगर दे न पाऊँ तो मैं अपनी पराजय स्वीकार करूँगा। इतना ही नहीं, जीतनेवाला इस वेणी को काट भी सकता है। इस 'वेणी-प्रबन्ध' के बारे में यह बात बहुत प्रचलित है :

वेणी प्रबन्ध मिल लो मानक
पठिइम्पविनिन् मानवुलकु स
न्मानमु कल्गुनु वारिकि दीनत्वमु
लेयु कृष्ण देवुनि करुणन्।

'जो लगातार वेणी-प्रबन्ध को पढ़ता और सुनता है, उसका सम्मान कृष्णदेव के कारण हर कहीं होगा। इतना ही नहीं, दरिद्रता कभी उसे सता नहीं सकती है।'

'भामा कलापमु' में सत्यभामा का प्रवेश इस प्रकार होता है। रंगमंच के पात्र इठलाते हुए आनेवाली से पूछते हैं—"तुम कौन हो?" तब सत्यभामा इस प्रकार उत्तर देती है :

भामाने सत्यभामाने
भामरो श्रृंगार जगदभिरामने मुखविजित हेमा
धामने, द्वारका पुराद्युरामने वय्यारि सत्या
भामाने सत्यभामाने।

'मैं तो भामा हूँ। (पारिजात पुष्प को कृष्ण ने रुक्मिणी के जूड़े में सँवारा था। इसलिए वह रुष्ट थी।) मैं सत्यभामा हूँ। हे भामाओ! मैं तो शृंगार की अधिदेवता स्त्री हूँ। मैं मुखविजित हेमधाम हूँ। द्वारका के राजा की मैं हृदयेश्वरी हूँ। मैं तो भामा हूँ। मैं सत्यभामा हूँ।'

मदनोपालम्भनवाला निम्नलिखित गीत प्रायः काम्भोजि राग में गाया जाता है :

मदना मोहना यनुचु
वदल लेक नी वललो चिक्किति
अदिगो चन्द्रन्डुदयम्बाये नु
निदुर लेक नीके दुरे चूचिति·······
रंगुग ना मेड मंगलसूत्रमु
पोंगुचु गट्टिन संगति मरुवकु·······

सत्यभामा श्रीकृष्ण से उनके द्वारा की गयी प्रवंचना के लिए उपालम्भ देती हुई कह रही है : 'मैं तुम्हें मदनमोहन मानती थी। इसी विचार से तुम्हारे जाल में फँस गयी थी। रात बीत रही है। चन्द्र का उदय हुए बहुत समय बीत गया है। मेरी आँखें नहीं लग रही हैं। वे तुम्हारी राह देख रही हैं। हे कृष्ण! यह मत भूलो कि मेरे गले में तुम्हारे हाथों से डाला गया मंगलसूत्र है।'

'पारिजातापहरणम्' यक्ष-गान के अन्त में श्रीकृष्ण की स्तुति सिद्धेन्द्र योगी ने इस प्रकार की है :

नारायणाच्युतानन्त कृष्ण मुकुन्द
कन्दर्प जनक मंकलमु नीकु
माधव गोविन्द मधुसूदनोपन्द्र
करिराज वरद मंगलमु नीकु
गोपाल जनपाल गोपांगनालोल
करुणालवाल मंगलमु नीकु·······

'हे नारायण, अच्युत, अनन्त, कृष्ण, मुकुन्द, कन्दर्पजनक माधव, गोविन्द, मधुसूदन, उपेन्द्र, करिराज वरद, गोपाल, जनपाल, गोपांगनालोल! तुम्हारा कल्याण हो।'

सिद्धेन्द्रयोगी मंगल कामनाओं के कवि और भक्त थे।

सा० प्र०

कूचिमंचि जग्ग कवि

कूचिमंचि जग्ग कवि का जन्म सन् १७०० ई० में गोदावरी जिले के कंदराज नामक ग्राम में हुआ था। ये गंगना और अच्चमाम्बा के पुत्र तथा पीणपुर के शासक माधव नृपति के आस्थान कवि कूचिमंज्जि तिम्म कवि के छोटे भाई थे। इन्होंने अनेक राजदरबारों में रहकर सम्मान-सत्कार प्राप्त किया था। इस तथ्य का उल्लेख करते हुए इन्होंने स्वयं लिखा है कि "धनार्जन और पाण्डित्य-प्रदर्शन के निमित्त मैंने देशाटन किया है।"

'राधाकृष्ण-चरित्र, सुभद्रा-परिणय, जानकी-परिणय, चन्द्ररेखा-विलाप, सोमदेव-राजीय और चाटु-प्रबन्ध' इनकी कृतियाँ हैं।

'राधाकृष्ण-चरित्र' इनका कृष्ण-भक्तिपरक द्विपद-काव्य है।

इनका गोलोकवास सन् १७६० ई० में हुआ।

बा० रे०

कूचिमंचि तिम्मकवि

कूचिमंचि तिम्मन का जन्म सन् १६९० ई० में हुआ था। तिम्मय्या ने श्रीनाथ कवि के समान कवि-सार्वभौम का गौरव और सम्मान पाया था। इनका अन्त भी श्रीनाथ कवि के अन्त से मिलता-जुलता है। प्रतीत होता है कि गौरव पानेवालों को घोर दरिद्रता शाप के रूप में मिलती है। सन्तानहीन तिम्मय्या के विधुर जीवन का सन्ध्या-काल घोर दरिद्रता में बीता था। श्रीनाथ कवि के समान दाने-दाने के लिए इन्हें तड़पना पड़ा था।

कूचिमंचि तिम्मकवि का परिचय देते हुए कंदुकूरि वीरेश लिंगम् पंतुलु ने लिखा है : "इनकी कविता में निर्झरिणी के समान प्रवाह है, ये अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। सबके सब लक्षण-ग्रन्थ हैं। सभी सरस काव्य हैं। आधुनिक काल में (अर्थात् अठारहवीं सदी में) इनके समकक्ष कवि ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। ये आरुवेल नियोगी ब्राह्मण हैं। इनके गोत्र का नाम कौण्डिन्यस् है। ये बच्चनामात्य के प्रपौत्र, तिम्मचार्य के पौत्र और गंगनामात्य के पुत्र हैं। लच्चमाम्बा इनकी माँ हैं। सिंगन, जग्गन और सूरन इनके भाई हैं। गोरैं मुक्कुल रामयामात्य की पुत्री बुच्चम्म इनकी पत्नी हैं।" कवि ने अपने 'रुक्मिणी-परिणयम्' काव्य में ये तथ्य दिये हैं। श्री कंदुकूरि भी कूचिमंचि को उच्च श्रेणो का कवि मानते हैं।

कूचिमंचि तिम्मय्या का जन्म पोर्लुनाडु (पेद्दापुरम, काकिनाड, पिठापुरम तुनि प्रान्त का नाम पहले प्रोलुनाडु था। धीरे-धीरे उसने पोर्लुनाडु का रूप धारण कर लिया है) की राजधानी मिठापुरम् के निकटवर्ती कंदराड ग्राम में हुआ था। कूचिमंचिवाले इस गाँव के पटवारी थे। वे धनवान् थे। इसलिए उन्होंने अपने गाँव में अनेक पण्डितों को आश्रय दिया था। कवियों के सत्संग के कारण तिम्मय्या और इनके भाई जग्गन्न, दोनों में प्रसुप्त कविता की गंगा अचानक फूट पड़ी थी। जीवन में आगे बढ़ते-बढ़ते तिम्मकवि सार्वभौम बन गये। अपने जीवन का सन्ध्या-काल राजनीतिक कारणों से, तिम्मय्या ने चंद्रम्म-पालेम में बिताया था। यहीं सन् १७५७ ई० में इनका निधन हुआ।

तिम्म कवि के द्वारा विरचित ग्रन्थों के नाम और रचना-काल-सम्बन्धी तालिका को तैयार कर अपने 'समग्र आन्ध्र साहित्यम्' (बारहवाँ खण्ड) में डॉ० आरुद्र ने प्रकाशित किया है। वह इस प्रकार है :

क्र०सं०	समय सन्	कृति का नाम एवं विवरण
१.	१७१५ ई०	'रुक्मिणी कल्याण' ५ सर्गोंवाला काव्य सन् १७०४ ई० के पहले ही इसे लिखना आरम्भ किया होगा।

२.	—	'राजशेखर विलासमु' तिम्मय्या द्वारा पूरा किया गया प्रथम काव्य
३.	—	'कृष्णदण्डकम्' अप्रकाशित
४.	—	'चिरविभव-शतकम्' शैव-गाथाओं से ओत-प्रोत भक्ति-शतक।
५.	—	'सिंहाचल-महात्म्यम्' प्रबन्ध-काव्य है।
६.	—	'नीलासुन्दरी-परिणयम्' ठेठ तेलुगु-काव्य।
७.	—	ठेठ तेलुगु में ६ काण्डोंवाला रामायण काव्य।
८.	१७२६ ई०	'सारंगधर-चरित्र' द्विपद-काव्य, बहुत जीर्ण हो चुका है।
९.	१७२६ ई०	'भर्गशतकम्' शैव-कथाएँ तथा उपदेश।
१०.	—	'सागर संगम महात्म्यम्' प्रबन्ध-काव्य-कथा, ब्रह्मवैवर्तपुराण से गृहीत।
११.	१७४० ई०	'सकल-लक्षणसार संग्रहमुल' लक्षण-ग्रन्थ है।
१२.	१७५० ई०	'रसिकजन-मनोभिरामम्' ६ सर्गोंवाला एक श्रृंगार-काव्य
१३.	१७५४ ई०	'सर्पपुर-महात्म्यम्' ३ सर्गोंवाला काव्य।
१४.	१७५६ ई०	'शिवलीला-महात्म्यम्' ३१ दिनों में रचा गया काव्य।
१५.	—	'कुक्कुटेश्वर-शतकम्' अपूर्ण—केवल ९२ छन्द मिल रहे हैं।

श्री शेषय्या 'राजशेखर विलाससु' को ही तिम्मकवि की प्रथम रचना मानते हैं।

देन्दुलूरि लिंगनाराध्य तिम्मकवि के गुरु थे। शिव-भक्त थे। अपनी रचनाओं को इन्होंने कुक्कुटेश्वर स्वामी के नाम पर रचा है। साधारण राजाओं को काव्य-कन्या को देकर अपना दामाद बना लेना ये निरर्थक समझते थे। इसलिए इन्होंने नराधीशों को अपने का भर्ता नहीं बनाया। इस एक घटना से पता चलता है कि तिम्मकवि कितने स्वाभिमानी थे।

'रुक्मिणी-कल्याणम्' से एक उदाहरण देखिये। रुक्मि श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह के प्रस्ताव को ठुकराकर श्रीकृष्ण की निन्दा कर रहा है—

सरि सरि मी विचार मिक जालु शिरीष सुमोपमान भा
सुर सुकुमारियै सकल सूरि जनाभि नु तोल्ल सद्गुणा
करथगु रुक्मिणिन् बसुल कापरिकिय्य मर्दि दलंतुरे
गुरुतर रत्न हार मोक क्रोति मेडं दर्विलिप जूतुरे।

'अच्छा आगे और बातें मत कीजिये। अपने प्रस्ताव का विवरण मत दीजिये। शिरीष पुष्प के समान सुन्दर सद्गुणवती रुक्मिणी का विवाह आप एक ग्वाले से, जो गायों को चराने का काम करता है, करना चाहते हैं। इस विचार को अपने मन से हटा दीजिये। एक सुन्दर और श्रेष्ठ रत्नमाला को आप लोग एक बन्दर के गले का हार बनाना चाहते हैं।' कृष्ण को रुक्मि ने बन्दर और गायों को चरानेवाला कहा है।

'सर्पपुर महात्म्यम्' नामक तीन सर्गोंवाले एक काव्य की रचना कर श्री भावनारायण भगवान् (विष्णु का एक नाम, गुंटूर जिला के बापट्ला नगर में भावनारायणजी का मन्दिर है) के नाम उन्हींके आदेशानुसार तिम्मकवि ने अर्पित किया था। क्षेत्र की पावनता का वर्णन करनेवाले इस काव्य में नारद के गर्व-भंग की कहानी है। गर्व-भंग के बाद स्त्रीवेशधारी नारद अपने पूर्व रूप को ग्रहण कर कृष्ण की प्रशंसा इस प्रकार करते हैं :

नलिनाक्षाय नमोस्तुते भगवते नानाजगद्रूपिणे
खल हृद्दर्प तमस्सहस्र घृणये कैवल्यनाथाय नि
र्मल कारुण्य गुणाय धातृ गुरवे मन्दाकिनि नाम शै
वलिनो प्रोद्भवकारणाय यनुचुन् वाक्कच्चि केल्मो-
ड्यिनन् ।

नारद 'नलिनाक्षाय नमोस्तुते' से प्रारम्भ कर श्रीविष्णु को स्तुति करते हैं। अन्त में अपने दोनों हाथों को जोड़कर उनकी वन्दना करते हैं।

सा० प्र०

कृष्णदास कवि

कृष्णदास कवि श्री वेंकटदास के पुत्र थे। इनका समय अज्ञात है। यह कृष्ण-भक्त कवि थे। जयदेव के 'गीत-गोविन्द' के आधार पर इन्होंने 'राधाकृष्ण-विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ तीन आश्वासों में विभक्त है। इनकी कविता सरस, सरल तथा मधुर है।

बा० रे०

कृष्णदेवरायलु

संस्कृत-साहित्य और उत्तर भारत के इतिहास में जो स्थान कविकुलकल्पतरु विक्रमादित्य तथा भोज का है, वही स्थान तेलुगु-साहित्य और दक्षिण भारत में तुलुव-वंश संजात श्री कृष्णदेवराय का है। साहित्य-समरांगण-चक्रवर्ती और आन्ध्र-भोज नाम से प्रसिद्ध श्री कृष्णदेवराय तेलुगु भाषा-भाषियों के लिए श्रीकृष्ण के अनन्योपासक ही नहीं, उनके अंशावतार माने जाते हैं।

जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म कृष्णाष्टमी के दिन हुआ था। इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डॉ० आरुद्र श्री कृष्णदेव की जन्म-तिथि १० फरवरी १४७४ ई० मानते हैं, तो श्री यागन्टि शेषय्या इसे सन् १४८७ ई० स्वीकार करते हैं। श्री वीरेशलिंगम् सन् १४६५ ई० और सन् १४८७ ई० —इन दोनों तिथियों की चर्चा करते हुए एक पद्य के आधार पर इनका जन्म सन् १४६५ ई० में होना सिद्ध करते हैं। अतः अभी तक इनकी जन्म-तिथि के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। अनुमानतः ये १५वीं शताब्दी के सामंत कवि थे।

श्री कृष्णदेवराय के पूर्वजों के बारे में श्री यागन्टि शेषय्या इस प्रकार लिखते हैं—तिम्मय्य नायकुडु के दो पुत्र थे—ईश्वर नायकुडु और तिम्म नायकुडु। ईश्वर नायकुडु की पत्नी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम थे—नरस नायकुडु और तिम्मा नायकुडु। पिता और दादा की तरह नरस नायकुडु के दो पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम वीर नरसिंहरायलु और छोटे पुत्र का नाम (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण) कृष्णदेवराय था। कृष्णदेवरायलु के पिता, पितामह और प्रपितामह के नाम के पीछेवाले नायकुडु शब्द को लेकर कुछ आलोचकों ने कहा है कि कृष्णदेवरायलु क्षत्रिय नहीं थे। जब ये राज्य के अधिकारी बन गये तब इन्हें क्षत्रिय बनाया गया। वाराह-पुराण के कवि मल्लय सिंगन ने श्री कृष्णदेवरायलु को 'तिहिनाम्शु-वंशपाथोराशि-माणिक्य' कहा है। अल्लसानि पेद्दन्न ने भी लिखा है कि तुलुव-वंश 'तुर्वसु' वंश का अपभ्रंश रूप है और रायलु चन्द्र-वंश के राजा हैं।

श्री कृष्णदेवराय के पिता को दो पत्नियाँ थीं, जिनमें एक का नाम तिप्पाम्ब और दूसरी का नाम नागलाम्ब था। कुछ विद्वानों के अनुसार नागलाम्ब, श्री कृष्णदेवराय के पिता की पत्नी नहीं, बल्कि उनकी भोग-कान्ता थीं। इसे सिद्ध करने के लिए आलोचकों ने निम्नलिखित कथाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। श्री गुरजाड राममूर्ति ने अपने 'कविजीवितमुलु' नामक ग्रन्थ में दो जनश्रुतियों की चर्चा की है। वे इस प्रकार हैं "एक दिन रात्रि के समय नरसिंहरायुडु शौच के लिए घर से बाहर निकले। उनके जल से भरे पात्र में उल्कापात हुआ। राजा ने उसे अपने एक हाथ से ढँककर पासवाले सिपाही को आवाज देते हुए कहा—'अप्पाजी (तिम्मरसु मन्त्रि) को इस बारे में तुरन्त बताओ।' यह समाचार पाकर

तिम्मरसु ने सिपाही से कहलवा भेजा कि 'राजा उस पानी को शीघ्र पी जायँ जिसमें उल्कापात हुआ है।' तिम्मरसु की सलाह मान राजा ने ठीक वैसा ही किया। थोड़ी देर के बाद तिम्मरसु ने राजा का दर्शन किया और उनसे कहा कि 'आज आप अपनी स्वकीया के साथ शय्या-सुख प्राप्त कीजिये।' राजा ने शयन-मन्दिर में आने के लिए पटरानी को सन्देशा भेजा, पर रानी आ न पायीं। रानी की एक परिचारिका वहाँ पहुँची। राजा ने उस परिचारिका के साथ ही रात्रि व्यतीत की। दासी गर्भवती बनी और नौ महीने के बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र के कारण उनका भाग्य बदलने लगा और वे पुत्र तथा पुत्र की माँ से अधिक प्रेम करने लगे। इस प्रेम को देखकर पटरानी जलने लगीं और उन्होंने बच्चे को मरवाना चाहा। पर तिम्मरसु की सजगता और बुद्धि-कुशलता ने श्री कृष्णदेव राय को बचाया।"

दूसरी कहानी इस प्रकार है—"विजयनगर के सोलहवें राजा वहुत समय तक सन्तानहीन थे। यह दुःख उनको काँटे की तरह सालने लग गया था। एक दिन राजा के यहाँ एक ब्राह्मण पहुँचे। उन्होंने राजा के दुःख का कारण समझकर उनसे कहा–'राजन्! आप घबड़ाइये नहीं। मैं एक शुभ मुहूर्त निकालूँगा। ठीक समय पर आप अपनी पत्नी के साथ संसर्ग कीजिये। आपको पुत्र अवश्य होगा।' राजा ने अपनी पत्नी तिप्पाम्बा तक यह खबर पहुँचायी, पर रानी का काफी समय शृंगार करने में ही नष्ट हो गया और वे समय से न आ पायीं। निश्चित समय पर नागिनामक एक दासी, जो महल के दीपकों को साफ किया करती थी, वहाँ पहुँच गयी। राजा ने उसके साथ संसर्ग किया। दासी गर्भवती हुई और नौ महीने बाद उसने एक शिशु को जन्म दिया। यही शिशु आगे चलकर कृष्णदेवरायलु बना।"

श्री कृष्णदेवरायलु के दासीपुत्र होने के सन्दर्भ में एक किंवदन्ती यह भी मिलती है—"दासी-पुत्र होने के कारण कृष्णदेवरायलु को अपना दामाद बनाने के लिए तत्कालीन कुलीन वंश के राजा तैयार नहीं थे। इस बात की चर्चा कृष्णदेवराय ने मन्त्री तिम्मरसु से की। तिम्मरसु राजा को पुत्र की भाँति मानते थे। उन्होंने राजा से कहा—'आप घबड़ाइये नहीं। मैं आपका विवाह कुलीन वंश की कन्या से करवाऊँगा।' इस हेतु तिम्मरसु विनुकोण्डा पहुँचे और वहाँ के राजा गजपति को समझा-बुझाकर उनकी कन्या वरदराजम्मा या तुख्खादेवी या रुचि-देवी का विवाह कृष्णदेवराय के साथ तय करवा दिया। कृष्णदेवराय को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने कन्या को देखने की इच्छा प्रकट की। तिम्मरसु उन्हें अपने साथ सेवक बनाकर ले गये। विनुकोण्डा पहुँचकर उन्होंने राजा गजपति को भावी रानी को दिखाने के लिए कहा। इन्हें गजपति की कन्या के दर्शन हुए। गजपति की कन्या तिम्मरसु के साथ आये सेवक के पैरों में हीरे-जवाहरातों का पैंजना देखकर समझ गयी कि यह सेवक नहीं, बल्कि स्वयं श्री कृष्णदेवराय हैं। उसने यह बात अपनी माँ से कही। माँ ने कृष्णदेवराय को मरवा डालने का प्रयत्न किया, पर तिम्मरसु की सावधानी के कारण वे बच गये। इसके बाद राजा गजपति ने, कृष्णदेव-राय के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। सुहाग-रात को कृष्णदेवराय ने अपनी पत्नी की कमर से गिरनेवाले खंजर को देखा। राय ने समझा कि वह उन्हें मारना चाहती है। इसलिए उस स्त्री को उन्होंने मायके भेज दिया, किन्तु वह मायके न जाकर मार्ग के एक जंगल में ही ठहर गयी। वहाँ उसने एक तालाब का निर्माण करवाया। धीरे-धीरे वह वहाँ की शासक बन बैठी। एक बार कृष्णदेवराय उधर से गुजर रहे थे। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि यहाँ उन्हीं की पत्नी शासन कर रही है। कृष्णदेव-राय ने उन्हे अपने यहाँ बुलवाया और उनका सम्मान किया।"

कृष्णदेवराय की एक और पत्नी थी, जिसका नाम चिन्नादेवी था। लोगों का कहना है कि वह

वेश्या थी। सन् १५२० ई० में पुर्तगाल के राजदूत फ़िगेरिडो के साथ पैड्स नामक एक व्यक्ति भारत आया। विजयनगर का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि कृष्णदेवराय की कुल बारह पत्नियाँ थीं। उनमें तीन प्रधान थीं। दो तो राजपुत्रियाँ थीं और एक वेश्या। पुर्तगाल के ही न्यूनिजु नामक एक अन्ययात्री ने भी कृष्णदेवराय की एक रानी के वेश्या होने की बात लिखी है। एक और वेश्या, जिसका नाम गाण्ड्लसंग है, का भी उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि चिन्नादेवी और गाण्ड्लसंग दोनों एक ही हैं। कृष्णदेवरायलु के पुत्र का नाम तिरुमलरायलु और पुत्रियों के नाम तिरुमलाम्बिका और कृष्णाम्बा था।

पुर्तगाल के इतिहासकारों ने कृष्णदेवराय के बारे में लिखा है कि "कृष्णदेवराय हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति थे। देखने में ये बहुत सुन्दर थे। उनके मुख पर चेचक के चिह्न थे। वे हँसमुख थे। उनकी आँखें विशाल थीं। वे रोज व्यायाम करते और मुग्दर चलाते थे।"

पेद्दन्न ने लिखा है कि "घुड़सवारी करने में ये निपुण थे। अश्वशास्त्र के पारंगत थे। इनके काल में वाणिज्य का विकास हुआ था। पुर्तगाल के साथ अच्छे वाणिज्य-सम्बन्ध थे। नौ-सेना भी इनके पास थी। ये अच्छे शासक थे और अच्छे कवि भी थे।"

कृष्णदेवराय वैष्णव थे, फिर भी वे शैव कवियों का सम्मान करते थे। उनके दरबार में 'धूर्जटी' नामक शैव कवि भी थे जिनका राजा बड़ा आदर करते थे। कृष्णदेवराय के दरबार में अनेक भाषाओं के कवि थे। स्वयं कृष्णदेवराय संस्कृति और तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे उन्होंने इन भाषाओं में अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना की थी। उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—मदालसा-चरित्र, सत्यवधू प्रीणनमु, सकल कथा-सार-संग्रहमु, रसमञ्जरी, ज्ञान-चिन्तामणि, उषा-परिणयमु, जाम्बवती कल्याणमु तथा आमुक्त माल्यदा। 'उषा परिणयमु' और 'जाम्बवती कल्याणमु' नाटक हैं। कृष्णदेवराय के ग्रन्थों में आज केवल 'आमुक्त-माल्यदा' ही उपलब्ध है। 'जाम्बवती-कल्याणमु' की एक प्रति पैंतीस साल पहले तंजाऊर के सरस्वती-महल ग्रन्थालय में, श्री यागन्टि शेषय्या के अनुसार, खोजी गयी है।

'आमुक्त-माल्यदा' का अर्थ है-अपने जूड़े की माला (भगवान् को) पहनानेवाली। तेलुगु-साहित्य के पाँच प्रमुख प्रौढ़ काव्यों में 'आमुक्त-माल्यदा' एक है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के अनुसार "यह तेलुगु-साहित्य-सुन्दरी की बनारसी साड़ी है जिसमें कई सोने के फूल बुने गये हैं। इस साड़ी की झालर 'मालदासरी की कथा' है। इस मालदासरी की कथा के कारण श्री कृष्णदेवरायलु तेलुगु के महाकवि बन गये हैं।" (देखिये-विज्ञान सर्वस्वमु, चतुर्थ खण्ड, पृ० ७६२)

'आमुक्त-माल्यदा' की कथा एक स्वप्न-वृत्तान्त है, जो इस प्रकार है—"कृष्णदेवराय कलिंग देश की ओर विजय-यात्रा के लिए निकले। बीच में वे बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) में कुछ दिनों के लिए ठहरे। एकादशी के दिन उन्होंने व्रत रखा। ब्राह्म मुहूर्त में राजा को एक स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न में उन्हें श्रीकाकुलम् (विजयवाड़ा के निकट का एक गाँव) के आन्ध्र विष्णु ने आदेश दिया कि 'राजा! वैष्णव-धर्म की महानता सिद्ध करनेवाले एक ग्रन्थ की रचना करो। अपनी रचना में उस स्त्री की कथा लो जो अपने जूड़े की माला श्रीरंगशायी को पहनाती थी। इस कथा को तेलुगु में लिखो।' भगवान् ने कहा था—'नेनु देलुन्गुरायुड कन्नड राया' (मैं तेलुगुवालों का भगवान् हूँ, तुम कन्नड़ देश के राजा हो) अन्य भाषाओं को छोड़कर आन्ध्र विष्णु केवल तेलुगु को ही चुनते हैं। कारण बताते हैं—'यह तो तेलुगु देशम् है। मैं तेलुगुवालों का भगवान् हूँ। तेलुगु शर्करा के समान मीठी है। अनेक देशों के राजाओं से तुम्हारे अच्छे सम्बन्ध हैं। तुम

तो अनेक भाषाओं के ज्ञाता हो। तुम्हें मालूम है कि देश की सभी भाषाओं में तेलुगु अत्यन्त मीठी भाषा है।' आन्ध्र विष्णु ने आगे कहा—'तुम्हारे लिए तिरुपति के वेंकटपति इष्ट हैं। रचना उन्हीं-को समर्पित कर दो। हम दोनों के नाम अलग-अलग हैं। हममें मात्र संकेत-भेद है। हम दोनों वास्तव में एक ही हैं'।" इस स्वप्न के बाद राजा की आँखें खुलीं। स्वप्न को याद कर राजा पुलकित हो उठे।

जिस कथा के बारे में आन्ध्र विष्णु ने कृष्णदेव-राय से कहा था, वह एक छोटी-सी कहानी है। श्रीरंगम् के रंगमन्नारु स्वामी ने अपनी एक अनन्य उपासिका से विवाह कर लिया था। उसका नाम गोदा-देवी था। वह विष्णुचित्त नामक एक वैष्णव-भक्त की पुत्री थी। गोदादेवी फूलों को माला में पिरोकर पहले उसे अपने जूड़े में रख लेती थी, बाद में उसी माला को रंगमन्नारु को पहनाती थी। इसलिए उसे लोग 'आमुक्त-माल्यदा' कहने लगे। तमिल भाषा में इसका नाम 'चूडि कुडुत्त नाच्चियार' (अपने जूड़े की माला भगवान् को देनेवाली) है। तेलुगु के वैष्णव-घरानों में स्त्रियों के नाम 'चूडिकुडुत्तम्म' और 'आंडालु' रखे जाते हैं। इस कहानी को-यामुनाचार्य की कथा और मालदासरी की कथा जोड़कर—राय ने विस्तृत बनाया।

यामुनाचार्य की कथा इस प्रकार है—श्री विल्लिपुत्तूर में विष्णुचित्त नामक एक माली था। वह विष्णु-भक्त था। एक दिन उसने तुलसी की सुगन्धित माला मन्नारु स्वामी को अर्पित की। मन्नारु स्वामी उससे प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे कहा—"विष्णुचित्त, तुम शीघ्र मधुरा जाओ। वहाँ का पाण्ड्य राजा शिव-भक्त है। तुम उसे हराकर वैष्णव बनाओ।" विष्णुचित्त ने कहा—"स्वामी, मैं अपढ़ हूँ। मन्दिर के बगीचे का मालिक हूँ। क्यारियाँ बनाते-बनाते हाथों में छाले पड़ गये हैं। मैं पण्डितों को कैसे परास्त कर सकता हूँ?" अपने भक्त के इन वाक्यों को सुनकर अपनी पत्नी की ओर देखते हुए मन्नारु स्वामी ने कहा—"तुम देखती जाओ। मैं अपने भक्त को कैसे जिताऊँगा।" फिर भक्त से कहा :

नीइच्चये ? मिन्तक पो, वोइ;
मुनि प्रवर निन्नु नोप्पिन्तुनु भू
नाथकुनि सभ, निन्दुलकै ये
थड्डमुवल, दवल ने नुन्नाडन्

'झिझकते क्यों हो ? यह तो मेरी इच्छा है। तुम्हारी नहीं। हे मुनिप्रवर ! तुम चुपचाप यहाँ से चले जाओ। भूनायक की सभा में सब तुम्हारी बात मान जायँगे। घबराओ नहीं। मैं जो हूँ।'

भगवान् के कहने पर उनके आशीर्वाद से वामन-मूर्ति यामुनाचार्य वीर शैव राजा के दरबार में पहुँचे। राजा चेतावनी देता है कि 'तुम हार जाओगे तो तुम्हें लिंगधारी बनाकर छोड़ूँगा।' यामुनाचार्य उस सभा में केवल तीन प्रश्न पूछते हैं जिनका कोई उत्तर नहीं दे पाता। इस प्रकार यामुनाचार्य विजयी होते हैं।

'मालदासरी कथा' आमुक्त-माल्यदा का अत्युत्तम आख्यान है। मालदासरी एक अन्त्यज विष्णु-भक्त था। वह रोज मन्दिर पहुँचकर भगवान् के कीर्तनों का गायन करता था। एक दिन प्रातः वह रास्ता भूल गया और एक जंगल में जा पहुँचा। वहाँ एक पीपल का वृक्ष था जिस पर एक राक्षस रहता था। राक्षस पेड़ से नीचे उतरा और मालदासरि से लड़ने लगा। मालदासरि राक्षस से हार गया। तब राक्षस ने उसे खाना चाहा। इस पर मालदासरि ने कहा कि मैं पास के मन्दिर से नित्यकर्म कर आऊँ तब मुझे खाओ। दासरि की बातों को सुनकर राक्षस हँसने लगा। तब दासरि ने अनेक देवी-देवताओं की कसमें खाकर उसे वापस लौटने का आश्वासन दिया। यहाँ दासरि का यह कथन द्रष्टव्य है—

"एव्वनि चूड्किन जेसि जनिइन्चु,
जगम्बु, वर्सिचु नज्जगम्

बेव्वनि थन्दु, डिन्दु मरि थब्वनि
थन्दिदि, थट्टि विष्णु तो
निव्वल नोक्क वेल्पु गणिइन्चिन
पातकि नौदि नेन्ड ने
नेव्विधिनैन निन्गदिय नेनि"
थनन् विनि बन्ध मूड्चिनन् ।

'इस संसार को जिसने जन्म दिया है, जिसके कारण उस संसार के चराचर जीव जीवित हैं, जिसके शरीर के अन्दर यह सारा संसार समाया हुआ है, वह विष्णु ही एकमात्र भगवान् है। मान लो, मैं किसी कारणवश अपने वचन को निभा नहीं पाया तो मुझे तुम धूर्त कहना, पापी कहना। विष्णु को छोड़कर अन्य भगवानों की पूजा करनेवाला मैं पातकी बनूंगा।'

इस कसम को सुनकर राक्षस ने मालदासरी के बन्धनों को ढीला कर दिया।

कुछ विद्वानों का कहना है कि—'आमुक्त-माल्यदा' या 'विष्णुचित्तीयमु' कृष्णदेवराय की रचना नहीं है। इस काव्य को अल्लसानि पेद्दन्ना ने राजा के नाम से लिखा है। राजा अपने कवियों से सहायता ले सकते हैं। इतना ही नहीं, अपने प्रिय कवियों की रचनाओं से एक-दो अंशों को बदलकर अपने काव्य में उनका प्रयोग भी कर सकते हैं। अतः केवल इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह कृष्णदेवराय की रचना नहीं है।

श्री कृष्णदेव राय वास्तव में तेलुगु-साहित्य के भोजराज हैं तथा बल, पराक्रम और राजनीति में कृष्ण के अन्यतम अनुवर्ती हैं।

सा० प्र०

कृष्णध्वरि

द्वयर्थक काव्य तेलुगु-साहित्य के गौरव-ग्रन्थ माने जाते हैं। वेमुल वाड भीम कवि ने इस शैली का शुभारम्भ किया था, पर उनकी रचना अनुपलब्ध है। इसलिए पिंगलि सूरन को ही आलोचक द्वयर्थक काव्य-रचना का प्रवर्तक मानते हैं। तंजाऊर के रघुनाथ नायक राजा के दरबारी कवि कृष्णध्वरि इस परम्परा के एक श्रेष्ठ कवि हैं। 'नैषध पारिजातीयमु' कृष्णध्वरि द्वारा लिखित द्वयर्थक काव्य है। इसमें नल-दमयन्ती और पारिजातापहरण की कहानी है। इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था और मृत्यु सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में। कवि के परिवार, जन्म-स्थल आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हैं।

इन्होंने 'नैषध पारिजातीयमु' नामक 'पुण्यश्लोक श्लेष प्रबन्ध' की रचना तंजाऊर के 'रघुनाथ शौरि' को प्रसन्न करने के लिए की थी। रघुनाथ नायक के प्रमुख दरबारी कवि चेमकूर वेन्कट राजु की तरह कृष्णध्वरि केवल आश्रय दाता के मुँह से प्रशंसा सुनने के लिए लालायित थे। अन्य व्यक्तियों की उन्हें चिन्ता नहीं थी। इसलिए अपने विषय में कृष्णध्वरि ने उक्त ग्रन्थ में लिखा है: "इदि (यह) श्रीमद्रघुनाथ पालनानुभव निष्णात कृष्णध्वरि विरचितवैम्न (विरचित) नैषध पारिजातीयमु पुण्यश्लोक श्लेष प्रबन्धम्बु।"

कृष्णध्वरि के अनुसार आलंकारिक लोग उनके काव्य का अध्ययन कर अवश्य हर्ष का अनुभव कर सकेंगे और विद्वान् कवि उनकी पद-रचना की प्रशंसा कर सकेंगे, क्योंकि इस काव्य में 'रसार्द्रता, मृदु पदार्थ-चमत्कृति, वस्त्वलंकृति ध्वनि, अष्टादश वर्णन' आदि हैं। इन्होंने अपने सभी काव्यों के लिए रघुनाथ नायक को ही कृतिभर्ता बनाया है। इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं: श्री रघुनाथ भूपालीयमु, कौमुदी-कन्दर्प, श्रृंगार-संजीवनी, ताल-चिन्तामणि, नैषध पारिजातीयमु और पारिजात-कथा। कृष्णध्वरि संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसलिए आलोचकों ने यह अनुमान लगाया है कि मात्र 'नैषध पारिजातीयमु' तेलुगु-काव्य है और शेष संस्कृत के काव्य हैं।

कृष्णध्वरि चाहते थे कि राजा रघुनाथ नायक की कृपा-दृष्टि उन पर सदा बनी रहे। इसलिए इन्होंने

राजा को प्रसन्न करने के लिए उनके द्वारा लिखित दो ग्रन्थों 'पारिजातापहरणम्' और 'नल-चरित्र' को मिलाकर दोनों अर्थों को देनेवाले द्व्यर्थक काव्य 'नैषध पारिजातीयमु' की रचना की थी। अपने छः काव्य-कन्याओं को समर्पित कर कृष्णध्वरि ने राजा रघुनाथ नायक को एक बार नहीं, छः बार अपना दामाद बनाया था।

कृष्णध्वरि ने 'नल-दमयन्ति' और 'पारिजातापहरणम्' की कथा को पूर्ण रूप से मूल कथा से ग्रहण न कर अपनी रुचि के अनुरूप उसे ढालकर विद्वत्ता दर्शायी है। आचार्य केशवदास की तरह कृष्णध्वरि को भी तेलुगु-साहित्य के आलोचक कठिन काव्य के प्रेत मानते हैं। इनके श्लेष इतने कठिन हैं कि वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जैसे प्रकाण्ड पण्डित लिखते हैं कि कोई विद्वान् भी इसे आसानी से समझ नहीं सकता है। डॉ० आरुद्र के अनुसार इनको समझने का प्रयास करना लोहे के चने चबाना है। इनके काव्य के सम्पादक श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने ग्रन्थ के आमुख में लिखा है : "मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशन-कार्य को कृष्णध्वरि के प्रति सम्मान प्रकट करने या श्लेष काव्य के प्रति श्रद्धा-भाव को प्रदर्शित करने के लिए नहीं कर रहा हूँ, बल्कि संगीत-साहित्य-कलानिधि राजा रघुनाथ नायक के प्रति आदरभाव के कारण ही कर रहा हूँ।" 'नैषध पारिजातीयमु' का यह उदाहरण देखिये :

> धृति चे विदर्भ भूपति, सुतनु समाजम्बु
> नेल्लन् जोक्किन्चि शुभ
> स्थितिन् बेन्डलि याडे नधिगत, रति
> भावन लुन्डु सानुराग श्रीलन्।

श्रीकृष्ण का विवाह सोलह हजार राजकन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ था। इस सन्दर्भ के पद्य में लिखा गया है—'प्रसन्नतापूर्वक विदर्भ-भूपति (रुक्मिणी के पिता) ने सुतनु समाजम्बुन् (अच्छे शरीरवाले राजकन्या-समूह) के साथ विवाह कर दिया है। वे सब रतिभाव की तीव्र करने या उद्दीप्त करने तथा प्रेमभाव को जगाने में सिद्धहस्त हैं।'

सा० प्र०

कृष्णमाचार्युलु

कृष्णमाचार्युलु ने अपने विषय में कुछ नहीं कहा है। जनश्रुति के आधार पर इनका समय तेरहवीं शताब्दी के उत्तरभाग और चौदहवीं शती के आरम्भ में ठहराया जा सकता है। नंबूरी केशवार्य की 'सूक्ति-मुक्तावली' काव्य में कृष्णमाचार्युलु को रामानुजाचार्य का समकालीन बताया गया है। डॉ० तिम्मावज्जल कोदण्ड रामय्य इसे प्रक्षिप्त अंश मानते हैं।

'प्रताप-चरित्र' में कहा गया है कि कृष्णमाचार्युलु संतूरु के निवासी हैं। पर इनकी कृति 'सिंहगिरि वचनालु' से ज्ञात होता है कि ये विशाखपट्टनम् जिला के सिंहाचलम् के निवासी थे। अपनी कविता में इन्होंने अप्पन्न का नाम लिया है। सिंहाचलम् के नरसिंह स्वामी को स्थानीय निवासी 'अप्पन्न' कहते हैं। विशाखपट्टनम् और विजयनगर में आज भी अप्पाराव नामधारी प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं।

संकीर्तनों की रचना करनेवाले श्री कृष्णमाचार्युलु तेलुगु के प्रथम गद्य-काव्य-लेखक हैं। इन्होंने ईसा की तेरहवीं-चौदहवीं शती में गद्य की रचना सफलतापूर्वक की थी। इनकी कृति 'सिहगिरि वचनालु' से एक उदाहरण देखिये :

> देवा!
> पदि कोट्ल यज्ञादि क्रतुवुलु नडपन्गा नेमि,
> तोम्मिदि कोट्ल तुलाभारंबुलु तूगंगा नेमि,
> येनिमिदि कोट्ल सुवर्ण दानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> येडु कोट्ल गोदानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> आरु कोट्ल भूदानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> अइदु कोट्ल कन्यादानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> नालुगु कोट्ल वस्त्रदानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> मूडु कोट्ल सत्यादि व्रतंबुलु सेयन्गा नेमि,
> रेन्डु कोट्ल अन्नदानंबुलु सेयन्गा नेमि,
> कोटि स्नानंबुल सेयन्गा नेमो

देवा !
मी नामोच्चारणंबु सेसिन प्रह्लाद, नारद····
विदुरादुलगु परम भागवतोत्तमुलु नारायण
स्मरण वलन गृतार्थु लैरि····अनाथपति यैन
सिंह गिरि नरहरि नमो दयानिधी ।

'हे देव ! दस करोड़ यज्ञादि क्रतुओं का आयोजन करने से क्या लाभ है ? नौ करोड़ तुलाभार में तौले जाने से क्या लाभ है ? आठ करोड़ सुवर्ण-दानों से क्या लाभ है ? सात करोड़ गोदानों से क्या लाभ है ? छः करोड़ भूदानों से, पाँच करोड़ कन्यादानों से, चार करोड़ वस्त्रदानों से, तीन करोड़ सत्यादि व्रतों के पालन से, दो करोड़ अन्न-दानों से, एक करोड़ तीर्थ-स्नानों से भला क्या लाभ ? यदि हरि-नाम-स्मरण नहीं किया ?

हे देव ! तुम्हारे नाम का जाप कर प्रह्लाद, नारद, विदुरादि भक्त कृतार्थ हुए हैं। अनाथपति सिंहगिरि नरहरि नमो नमो, दयानिधि ।'

कृष्णमाचार्युलु वास्तव में सच्चे कृष्ण-भक्त थे ।

सा० प्र०

कोलाचलमु श्रीनिवास राव

कोलाचलमु श्रीनिवास राव का जन्म सन् १८५४ ई० में हुआ था। ये पेशे से वकील थे। वकालत के साथ-साथ ही इन्होंने अनेक नाटकों की सर्जना की। 'रामराजु-चरित्र' इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय नाट्य-कृति है जिसमें उन्होंने इतिहास-प्रसिद्ध १५६५ ई० के तालिकोट-युद्ध में निहत अलिय रामराजु का वर्णन किया है। 'रामराजु-चरित्र' के अतिरिक्त इन्होंने 'मैसूर-राज्य', 'चाँद-बीबी' तथा 'प्रतापाक्-ब्ररोय' नामक ऐतिहासिक नाटकों की भी रचना की।

श्रीनिवास राव पाश्चात्य नाट्य-परम्परा के दुःखान्त नाट्य-रचना-शैली के विरोधी तथा भारतीय शैली के सुखान्त नाटकों के प्रबल पक्षपाती थे। इन्होंने नाटक में व्यावहारिक एवं ग्राम्य भाषा का प्रयोग अवांछनीय माना है।

'द्रौपदी-वस्त्रापहरण', 'कीचक-वध', 'श्रीराम-जननमु', 'पादुका-पट्टाभिषेकमु', 'लंकादहनमु', 'हरिश्चन्द्र', 'रुग्मागदे', 'चन्द्रहास', 'शिलादित्य' 'बभ्रुवाहन', 'कुशलव', 'मदालसा-परिणय', 'सुनन्दिनी-परिणय' आदि आपकी प्रसिद्ध नाट्य-कृतियाँ हैं।

इनका निधन सन् १९१९ ई० में हुआ।

क्षेत्रय्या

अजन्त भाषा (तेलुगु के हर शब्द के अन्त में स्वर होता है। इसलिए इसे 'अजन्त भाषा' कहते हैं।) तेलुगु संगीत के लिए अति उपयुक्त मानी जाती है। 'इटालियन ऑफ दि ईस्ट' के नाम से अभिहित इस भाषा को अपने गीतों द्वारा समृद्ध बनानेवालों में नारायण तीर्थ, सिद्धेन्द्र योगी, भद्राचल रामदास (जिसका असली नाम कन्चेर्ल गोपन्ना था), क्षेत्रय्या, त्यागय्या, श्यामा शास्त्रुलु, मुत्तु स्वामी दीक्षितुल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। संयोग की बात है कि पहले गिनाये गये चार वाग्गेयकार (गाने योग्य भक्ति-रस-सम्बन्धी गीतों की रचना करनेवाले संगीतज्ञ कवि) समकालीन थे और अन्त में निर्दिष्ट तीन वाग्गेयकार, जिनको संगीत-प्रेमी संगीत की त्रिमूर्ति मानते हैं, भी न केवल समकालीन थे, बल्कि एक ही स्थान (तंजाऊर का तिरुवारुर ग्राम) के रहनेवाले भी थे। क्षेत्रय्या अपने समय के संगीतज्ञों को जानते थे, इस बात को प्रमाणित करने के लिए आधार उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु विश्वास के साथ यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वे उक्त तीनों से अपरिचित थे।

क्षेत्रय्या के नाम, धाम, साधना आदि के विषय में ठीक-ठीक पता नहीं चलता। डॉ० आरुद्र अपने गुरु स्वर्गीय मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री की बातें दुहराते हुए लिखते हैं—"इन प्रश्नों के लिए एक ही जवाब देना पड़ता है कि वास्तव में किसीको कुछ

ज्ञात नहीं है। उत्तर देने के लिए उपयुक्त जानकारी या प्रमाण किसीके पास नहीं है।" अतः क्षेत्रय्या के विषय में जानने के लिए कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। फिर भी सर्वश्री विस्सा अप्पाराव और बालांत्रपु रजनीकान्त राव नामक दो विद्वानों ने अनुसन्धान के बाद कई महत्त्वपूर्ण तथ्य खोज निकाले हैं। तेलुगु-भाषाभाषी इन दोनों के ऋणी हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी गीतों की रचना करते-करते अनेक तीर्थ-स्थानों और पुण्य-क्षेत्रों की यात्रा करने के कारण वरदय्या नामक एक भक्त को लोगों ने क्षेत्रय्या नाम दिया था। धीरे-धीरे लोग वास्तविक नाम भूल गये। बहुतों को मालूम तक नहीं है कि क्षेत्रय्या अन्य लोगों के द्वारा दिया गया नाम है या माता-पिता द्वारा। इस सचाई का पता लगानेवाले हैं, श्री विस्सा अप्पाराव। वरदय्या मुव्वा नामक ग्राम के रहनेवाले थे। इसलिए लोग इनको मुव्व वरदय्या कहने लगे थे। इनके माँ-बाप कौन थे, इसका विवरण नहीं मिल रहा है।

वरदय्या के नाम के पहले आनेवाले 'मुव्व' शब्द के बारे में विद्वानों का मत एक नहीं है। सर्वश्री विस्सा अप्पाराव और टी० एस० वासुदेवन के अनुसार कृष्णा जिले के कूचिपूडि के पासवाला मोव्वा ग्राम ही क्षेत्रय्या का निवास-स्थान है। इस सन्दर्भ में श्री बालांत्रपु रजनीकान्त राव (आन्ध्र वाग्गेयकार चरित्र) लिखते हैं: "गत पाँच सौ वर्षों से मोव्वा नामक ग्राम में वेणुगोपाल स्वामी का मन्दिर है। इस गाँव में आज भी मोव्वावाले ब्राह्मण हैं। ये ब्राह्मण अपने-आपको क्षेत्रय्या का वंशज मानते हैं। मोव्वा के पास सुप्रसिद्ध कूचिपूडि है। कूचिपूडिवाले क्षेत्रय्या के पदों का गायन और नाट्याभिनय आज भी करते हैं। इन सबके आधार पर उक्त दो विद्वान् इस मोव्वा को ही वरदय्या का जन्म-स्थान मान रहे हैं। श्री सी० आर० श्रीनिवास अय्यंगार नामक विद्वान् के अनुसार चिदम्बरम् (तमिलनाडु के उत्तर आर्काट जिले का सुप्रसिद्ध शैव-क्षेत्र) के पासवाला मोवपुरम् क्षेत्रय्या का जन्म-स्थान है। श्री पी० साम्वमूर्ति (मद्रास म्यूजिक कॉलेज के भूतपूर्व प्रिन्सिपल) क्षेत्रय्या को चित्तूर जिलावासी मानते हैं। तिरुपति के पास (चन्द्रगिरि तालुका में) एक मुव्वल वारि पल्ले नामक ग्राम है। इसी पल्ले को वे क्षेत्रय्या का जन्म-स्थान मानते हैं। डॉ० आरुद्र के अनुसार 'मोव' शब्द तंजाऊर जिले के तीन गाँवों के आगे देखा जा सकता है। मोपूरु मुव्वाम् पाल्लम् नामक गाँव आर्काड के उत्तर और दक्षिण प्रान्त में है। तिरुवल्लूर (चैंगलपट्टु) के पास मोपूरु नामक गाँव है। डॉ० आरुद्र के अनुसार इन गाँवों में से कोई क्षेत्रय्या का निवास-स्थल हो सकता है। अधिकतर विद्वान् कृष्णा जिले के मोव्वा ग्राम को ही क्षेत्रय्या का जन्म-स्थान मानते हैं।

क्षेत्रय्या के बचपन के बारे में भी आलोचकों को अनुमान लगाना पड़ता है। एक किंवदन्ती के अनुसार क्षेत्रय्या बचपन में अपने आवारापन के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। अपने मामा की बड़ी लड़की, जो विधवा थी, के साथ इनका अवैध सम्बन्ध था। मामा के यहाँ रहना जब दूभर हो गया तो ये घर छोड़कर भाग निकले। रास्ते में एक साधु से इनकी भेंट हुई। उस योगी के उपदेश के कारण यह कामकामी बालक मोक्षकामी बन गया।

क्षेत्रय्या के कामुक स्वभाव-सम्बन्धी एक और कथा भी प्रचार में है। अपनी जवानी में क्षेत्रय्या एक वेश्या से प्रेम करते थे। गाने का शौक इनको बचपन से ही था। कभी-कभी गीतों की रचना भी किया करते थे। वेश्या के प्रति अपने प्रेम को वे अक्सर गीतों के द्वारा प्रकट किया करते थे। वह वेश्या देवदासी थी। मुव्व गोपाल के नाम पर जो प्रणय-गीत रचे जाते थे, उनका वह अभिनय किया करती थी। वह शायद अपनी लेखनी के द्वारा उन गीतों को लिपिबद्ध भी किया करती थी। एक दिन उसने क्षेत्रय्या से कहा—"गोपाल स्वामी की लीलाओं के बारे में लिखने का प्रयास करो।" प्रेयसी पेरिन्देवी (उस वेश्या का नाम) का कहा मानकर क्षेत्रय्या

ने निम्नलिखित पद की रचना की थी—ऐसा आलोचकों का कहना है :

श्रीपति सुतु बा:रिक्कि ने नोपनेक नितु वेडिते
कोपाला ! मुव्व गोपाला ?
ए पोद्दु दानिन्टि लोने कापै युन्डि नी सरस स
ल्लापाला मुव्व गोपाला ।

'हे मुव्व गोपाल ! मन्मथ के आक्रमण से बचने के लिए मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। पर यह क्या ? यह क्रोध क्यों ? हमेशा उन्हींके यहाँ तुम अपना समय बिता रहे हो। प्रेम-सम्बन्धी बातें भी उन्हींसे कर रहे हो।'

इस पद-रचना के बाद क्षेत्रय्या ने एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया था। इस एक पद ने उनके जीवन को एक नया मोड़ दिया। उस पद-रचना के बाद मुव्व गोपाल उनके गेय पदों के केन्द्रबिन्दु बने। अतः क्षेत्रय्या का हर पद गेय है।

डॉ० आरुद्र का अनुमान है कि क्षेत्रय्या ने अपना यौवन-काल कांची में बिताया था। कांचीपुरम् वास्तव में शृंगाराधिदेवी का केन्द्र माना जाता था। यहाँ की स्त्रियों तथा वारांगनाओं के बारे में श्रीनाथ कवि ने अपने 'काशीखण्डम्' काव्य में विस्तार से लिखा है। क्षेत्रय्या उपनाम वरदय्या काम-कला-प्रवीण थे। इनसे मिलने के लिए वहाँ की वारांगनाएँ बेचैन रहती थीं। पेरिन्देवि नामक एक वेश्या ने इनके नाम पर एक सन्देशा भेजा था। सन्देशा पाकर क्षेत्रय्या वहाँ पहुँचे। इन्हें देखकर उस लतांगी ने कहा : "मदन शास्त्रमु नेनु चदिविन दान गानु, सदयुडनि वानि तोनु सरस माड्डु नेनु" अर्थात् "काम-शास्त्र को तो मैंने पढ़ा नहीं। फिर भी, क्योंकि वे (मुव्व गोपाल) अर्थात् केचिवरद सहृदय हैं, इसलिए उनसे मिलूँगी।" क्षेत्रय्या के अनुसार एक आदर्श नायिका में ये गुण होने चाहिए। उसमें अपने प्रिय को प्रेरणा देने की शक्ति होनी चाहिए। उनकी कविता को पढ़ने और लिखने की क्षमता होनी चाहिए। संगीत, साहित्य और नाट्य में दक्षता की आवश्यकता होनी चाहिए। ये सारे गुण पेरिन्देवि में थे। फिर भी एक भ्रमर के समान वे एक फूल पर हमेशा टिके रहना नहीं चाहते थे। क्षेत्रय्या के शृंगार-वर्णन को देखकर बहुत से आलोचक इन्हें शृंगार-रस-वर्णन करनेवाला साधारण कवि ही मानते हैं, भक्त कवि नहीं। पाकाल राजमन्नारु ने (मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश, जो स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार थे) इस प्रकार (श्री विस्सा अप्पाराव कृत 'क्षेत्रय्या पदालु' के आमुख में) लिखा है : "अलौकिक भक्ति-शृंगार को क्षेत्रय्या के पदों में कहीं भी मैंने देखा नहीं। गोपाल शब्द मात्र के प्रयोग के आधार पर लौकिक (शृंगार) कभी अलौकिक नहीं बन सकता है।" किन्तु इनके समग्र कृतित्व को देखकर यह धारणा साधार नहीं प्रतीत होती।

बालांत्रपु रजनीकान्त राव के अनुसार इनका जन्म सन् १६०० ई० में हुआ था और मृत्यु सन् १६८० ई० में। अपने जीवन-काल में क्षेत्रय्या ने अठारह क्षेत्रों की यात्रा की थी। तंजाऊर, मधुरा और चेन्जि दरबारों में इनका सम्मान हुआ था। इन्होंने तंजाऊर के विजयराघव की प्रशंसा में बारह और चेन्जि के तुपावुल कृष्णप्प की प्रशंसा में तीन पदों की रचना की है। मुव्व गोपाल की स्तुति में श्री विस्सा अप्पाराव के संकलन के अनुसार कुल ३१५ पदों को क्षेत्रय्या ने रचा था। अपने एक पद के अनुसार उन्होंने करीब-करीब ४५०० गेय पदों को लिखा था, पर अब उनमेसे केवल ३३० पद श्री विस्सा अप्पाराव के ग्रन्थ—'क्षेत्रय्या पदालु' में उपलब्ध हैं। गिड्डु सीतापति भी इनके लगभग ३८१ पदों कोसंकलित करने में सफल हुए हैं। डॉ० आरुद्र के अनुसार दोनों ग्रन्थों में पुनरुक्ति को छोड़ दें तो केवल ३७२ पदों को ही क्षेत्रय्या कृत माना जा सकता है।

जिन अठारह क्षेत्रों की यात्रा क्षेत्रय्या ने की थी वे, डॉ० आरुद्र के अनुसार तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश के रायलसीमा इसके के अंदर ही हैं। इसका तात्पर्य

यह है कि कृष्णा-मण्डल के क्षेत्रों में इन्होंने भ्रमण नहीं किया। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से भी अनेक आलोचकों के अनुसार ये रायलसीमा ही के कवि लगते हैं। क्षेत्रय्या पर प्रथम वाग्गेयकार वैष्णव-भक्त-शिखामणि ताल्लपाक अनन्तमाचार्युलु का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। दोनों के नौ उदाहरण देकर इस बात को श्री बालांत्रपु रजनीकान्त राव ने स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि कर्णाटक-संगीत के पितामह पुरन्दरदास का भी प्रभाव क्षेत्रय्या पर है। इतना होते हुए यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है कि कैसे और कब से कृष्णा जिला के कूचिपूडिवाले क्षेत्रय्या के पदों का प्रयोग कूचिपूडि नाट्य में कर रहे हैं।

'मगुव तन केलिका मन्दिरमु वेडलेन्' (एक स्त्री अपने क्रीडा-मन्दिर से निकली) यह क्षेत्रय्या का बहुत प्रचलित पद या गीत है। इस गीत-रचना के पीछे एक मधुर कहानी है। उसके बारे में श्री राल्लपल्लि अनन्तकृष्ण शर्मा लिखते हैं: "एक दिन की बात है। कंचि वरदराज स्वामी का शयनोत्सव देखने के लिए क्षेत्रय्या गये थे। शयन-समय की पूजा को समाप्त कर वरदराजु स्वामी की पत्नी की मूर्ति को वरदराजु के मन्दिर में रख दरवाजों को बंद कर पुजारी और भक्त चले गये। मन्दिर के किसी कोने में बैठे क्षेत्रय्या को अर्चकों ने नहीं देखा। क्षेत्रय्या ध्यानमग्न होकर वरदराज स्वामी और उनकी धर्मपत्नी की शृंगार-क्रीड़ा के बारे में सोच रहे थे। सुबह क्षेत्रय्या की आँखें खुलीं। उन्होंने सीढ़ियों पर उतरती हुई एक स्त्री-मूर्ति को देखा। तत्काल क्षेत्रय्या ने मोहन राग, झंप ताल में एक पद की रचना की। वह इस प्रकार है:

मगुव तन केलिका मन्दिरमु वेडलेन्
वग काड मा कंचिवरद तेल्लवारे ननुचु ''
विडजारु गोज्जंगि विरिदंड जड तोनु
कडु चिक्कु बडि पनगु कंट सरितोनु
मिडुद कन्नुल देरु निदुर मब्बुल तोनु
तोडरि पद युगमुन तडबडेडु नडतोनु ''''
सोगसि सोगयनि वलपु सोलपु जू पुलतोनु
वग वगल घन सार वासनल तोनु
सगमु कुचमल्ल विदिय चन्दुरुल तोनु
तरितीपु सेयु समसुरति वडलिक तोनु
जरत पापड चेरगु जार्पैट तोनु
इरुगडल कैदंड लिच्चु तरुणुल तोनु
परमात्म मुव्व गोपाल तेल्लवारे ननुचु।

'हे मेरे विलासी कंचिवरद! यह देखो पौ फटी है—कहते हुए एक स्त्री काम-केलि के लिए नियुक्त अपने मन्दिर से निकली। उस स्त्री के जूड़े में बिखरे फूलों की सुगन्धित माला है। उसके हार में अनेक गाँठें पड़ी हैं। उसके विशाल नयनों में अभी निद्रा बाकी है। उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। उसकी सुन्दर आँखें मदभरी हैं। चलते समय तीव्र सुगन्ध चारों ओर फैल रही है। उसके गाल लाल-लाल दिखाई दे रहे हैं। द्वितीया के चन्द्र के समान उसकी चोली से कुच का एक अंश दिखाई दे रहा है। रति से प्राप्त सुख की थकावट उसके मुँह पर देखी जा सकती है। रेशमी बेल-बूटियों से सजे धौत वस्त्रों को उसने धारण किया है। उसका आँचल खिसक गया है। उसके दोनों तरफ सहेलियाँ हैं। वह उनका सहारा ले रही है। जाते-जाते उसने कहा—हे परमात्मा मुव्व गोपाला, अब तो सुबह हो गयी है।'

रति से सम्बद्ध ऐसे अनेक पदों की रचना क्षेत्रय्या ने की है। इनके पदों में अश्लीलता की गन्ध विद्यमान है। पाकाल राजमन्नारु क्षेत्रय्या के शृंगार-सम्बन्धी पदों के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं—"आजकल के लोग क्षेत्रय्या के पदों में अश्लीलता का आरोप लगा सकते हैं। यह भूल क्षेत्रय्या की नहीं है, (अगर इसे भूल मानें तब भी) भूल समय की है। वह समय मानसिक कमजोरी का था।'''' इससे ओत-प्रोत पद कभी अश्लील नहीं हो सकते। यह मेरा उत्तर है।"

क्षेत्रय्या की नायिका मनसा-वाचा-कर्मणा मुव्व गोपाल को चाहनेवाली है। उनके बिना वह रह नहीं सकती। एक उदाहरण देखिये :

"इंत तेलिसि युन्ड ई गुण भेलरा, पंतमा मुव्व गोपाल न सामी ···अलुक चेसि इन्टिकि रावैतिवि नेवरैन चेलि कत्ते लुन्नारा, पुलुव वच्चेरा, चेलिकत्ते वैना नीवे, चेलुवुड वैना नीवे, तलचि चूड ना पालि दैवमु नीवे···· ।"

'हे मुव्व गोपाल ! तुम तो मेरे सर्वस्व हो। मेरे बारे में जानते हुए भी यह कैसा हठ कर रहे हो ? लगता है, रुठकर तुम मेरे घर नहीं आ रहे हो। मैं कैसे किसीको तुम्हारे पास भेज सकती हूँ ? मेरी तो कोई सहेली नहीं है। मेरे लिए तुम ही सखी हो और तुम ही सखा। विचार करने पर तुम्हें मालूम होगा कि तुम ही मेरे भगवान् हो।'

मृदु-मधुर पदावलीवाले क्षेत्रय्या को तेलुगुभाषी कभी नहीं भूल सकते।

सा० प्र०

गंगनार्युंडु

गंगनार्युंडु भागवत के पञ्चम स्कन्ध के रूपान्तरकार कवि हैं। अपनी रचना को इन्होंने श्रीकृष्णार्पण किया है। कवि ने अपने बारे में पञ्चम स्कन्ध में कुछ नहीं लिखा है। उसको दो खण्डों में विभाजित कर अन्त में लिखे जानेवाले गद्य में इन्होंने केवल इतना लिखा है—"इस श्री सकल सुकवि जनानन्द कर बोप्पनामात्य पुत्र गंगनार्य द्वारा प्रणीत श्रीमद्भागवत महापुराण में····।" पिता के नाम के साथ 'आमात्य' शब्द है। इसलिए श्री यागन्टि शेषय्या लिखते हैं—"गंगन नियोगी ब्राह्मण थे। ये पोतन और पोतन के शिष्य मारय से छोटे थे। कदाचित् ये सिंगन के समकालीन थे। ये निजाम राज्य अर्थात् तेलंगाणा के निवासी थे। इनके बारे में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।"

पञ्चम स्कन्ध में अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन का पर्याप्त अवसर न पाने पर भी इन्होंने इस दिशा में भरसक प्रयत्न किया है। किन्तु दूसरे भागवत-रचयिताओं की तुलना में इनको ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। भागवत के प्रकाशकों ने लिखा है—"इनकी कविता रसपूर्ण नहीं है। षष्ठ स्कन्ध के अनुवादक की कविता से भी हीन कोटि की है। फिर भी वह सिंगन की कविता से अधिक सुकुमार है।" भागवत के प्रकाशकों की उक्त बात का खण्डन श्री यागन्टि शेषय्या करते हैं। श्री कुरगन्टि सीतारामय्य पूर्वचित्ति और आग्नीध्र के संवाद के आधार पर कहते हैं कि नीचोपमा के प्रयोग द्वारा इन्होंने अश्लील वर्णन किया है। किन्तु यह साधार प्रतीत नहीं होता। इस वर्णन को देखिये :

सति ! नी वेव्वते ? वी पर्वत मुन के मैन गोरि
वच्चिन वनदे ।
वतवो ? शारदवो रतिपति पंपिन मायवो ?
तपस्सारमवो ॥

'आग्नीध्रु पूर्वचित्ति (ब्रह्मा के दरबार में गानेवाली अप्सरा थी। पुत्र को पाने की इच्छा से जब आग्नीध्रु ने तपस्या की तब ब्रह्मा ने इसे आग्नीध्रु के पास भेजा था) को देखकर प्रश्न कर रहा है—हे सती ! तुम कौन हो ? इस पर्वत-प्रदेश में किसे ढूँढ़ रही हो ? क्या तुम वनदेवी हो ? क्या तुम शारदा हो या मन्मथ के द्वारा भेजी गयी माया हो ? क्या तुम तपस्सार हो ?'

मात्र गंगन के द्वारा ही भागवत के पञ्चम स्कन्ध की रचना हुई है। इस दृष्टि से भागवत-प्रेमी इनके ऋणी हैं।

सा० प्र०

गणपवरपु वेन्कट कवि

गणपवरपु वेन्कट कवि तेलुगु-भाषाभाषियों को सर्वप्रथम पद्यकोश प्रदान करनेवाले कवि और कोशकार हैं। 'वेन्कटेशान्ध्र' तेलुगु-भाषियों के लिए अमरसिंह कृत अमरमु या अमरकोश है। इस कोश की रचना वेन्कटकवि ने लोकोपकार की दृष्टि से की

थी। इसके कृतिपति तिरुपति के श्रीवेन्कटेश्वर हैं। इस कोश की रचना के लिए आवश्यक प्रेरणा और आदेश देनेवाले भी स्वयं श्रीबालाजी ही थे। उनके द्वारा प्राप्त स्वप्नादेश की चर्चा करके कवि ने अपनी प्रतिभा का ढिंढ़ोरा स्वयं पीटा है। इस सन्दर्भ में श्री यागन्टि शेषय्या के ये वाक्य ध्यान देने योग्य हैं—"इस (उक्त) पद्य को पढ़कर लोग अवश्य सोचेंगे कि यह कवि आत्मस्तुतिपरायण है। उस पद्य में मात्र उत्प्रेक्षा दर्शित है। वास्तविकता की गन्ध उसमें नहीं है।" इसके विपरीत श्री वीरेश लिंगम् लिखते हैं : "पदलालित्य और रसवत् भावना के कारण इनकी कविता मनोहर बनती है।" चित्र कवित्व-शैली को देखकर डॉ० आरुद्र लिखते हैं—"चित्र कवित्व के शिखराग्र पर विराजमान एकैक कवि गणपवरपु वेन्कट कवि हैं।" गर्भ कवित्वयुक्त एक सीस पद्य (एक छन्द)की प्रशंसा करते हुए आगे वे लिखते हैं : "ऐसा पद्य तेलुगु-साहित्य में 'न भूतो न भविष्यति'।"

गणपवरपु वेन्कट कवि गणपवरम् के निवासी थे। इस गणपवरम् के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। शेषय्या के अनुसार कृष्णा जिले के नन्दिग्राम तालुके में एक गणपवरम् है। बेजवाड़ा तालुके में एक और गणपवरम् पाया जाता है। गुंटूर और कर्नूल जिलों में भी गणपवरम् नामक गाँव है। वीरेश लिंगम् इनको कृष्णा प्रान्त के कामेपल्ले के पासवाले गणपवरम् का निवासी मानते हैं। पलनाडु के निवासी होने के कारण ही आभीर जाति के लोगों के लोकगीतों के बारे में स्वानुभव के आधार पर इन्होंने लिखा होगा। कामेपल्लि और गणपवरम् को आसपास देखकर डॉ० आरुद्र इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि वेन्कट कवि गुंटूर जिले के नरसाराव पेट तालुके के निवासी होंगे।

प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर आलोचक वेन्कट कवि को सत्रहवीं शती का कवि मानते हैं। ये आश्वलायन सूत्रों को माननेवाले वसिष्ठगोत्री नन्दवरीक ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अप्यय्यामात्य था। सरस्वती देवी की इन पर अति कृपा थी। इससे 'तारावलि' की रचना इन्होंने बारह वर्ष की छोटी उम्र में ही कर डाली थी। युवावस्था में यमक-शतकम्, शृंगार-मञ्जरी, कृष्णमल्ल-कथा आदि काव्यों को रचा था। रामायण को द्विपद (एक छन्द) में रचने के बाद 'सर्वलक्षण-शिरोमणि' नामक एक श्रेष्ठ लक्षण-ग्रन्थ भी लिखा था। इसमें कुल दस उल्लास (सर्ग) हैं। उनमें से बहुत कुछ अब अप्राप्य हैं।

आन्ध्र-कविता-साम्राज्य-धुरन्धर गणपवरपु वेन्कट के लिए कोई स्थान दूर नहीं था। ये कर्णाटक, तुन्डीर (चेन्जी दुर्ग), चोल, पाण्ड्य आदि अनेक राजाओं के दरबार में गये थे। वहाँ इनका सम्मान भी हुआ था। सन् १६४६ ई० के बाद ये तंजाऊर के विजयराघव नायक के यहाँ पहुँचे होंगे। इस प्रकार प्रचुर धन, कनक, वस्तु, वाहनादि से सम्पन्न होकर ये मधुरा में जाकर बस गये थे।

इनके बन्ध-गर्भ कवित्व-सम्बन्धी छन्दों में कृष्ण का श्रद्धापूर्ण स्मरण किया गया है। कुछ उदाहरण देखिये :

विंशति बन्ध कन्दम (एक छन्द का नाम)

सारवर हारवारा-सार हरी
नरहरि हर शर कर सारा
गौरव धर धीर चारा-सार
हारी सुरहरी नरसरसार भरा।

'न्याय की दृष्टि से श्रेष्ठ, मालासमूहधारी, स्थिरांशवाले स्वामी (पालनहार), नरसिंहावतार, ईश्वर के बाणतुल्य देव (हर शर), भुजबलशाली, पर्वत के समान धीर, शेषतल्पशायी, अमरेन्द्र और नररूप अर्जुन के सरस वचनों के कारण यश पानेवाले हे श्रीकृष्ण।'

भाषाश्लेष कन्दमु

मेला नायक बलिरा–येला चलमान गान देरालि वल
न्नीलागी तेरगुना वेलमु दय काव गदर! वेन्कट रमणा

'लक्ष्मी और पृथ्वी के पति, बलि से दान ग्रहण करनेवाले, लवंगलता की निश्चल कान्ति को आभूषण के समान धारण करनेवाले, पर्वतों से निकलनेवाले जल-समूहों में विचरण करनेवाले, नीलदेवी के गीतों की स्फूर्ति, ज्ञानानन्दयुक्त लोगों की भलाई करनेवाले, ब्रह्म द्वारा सुरक्षित शंखवाले, हे वेन्कट रमणवाले श्रीकृष्ण।'

गर्भ चित्र बन्ध कवित्व लिखनेवाले वेन्कट रमण कवि ने तेलुगु भाषा की अपार सेवा 'वेन्कटेशान्ध्र कोश' लिखकर की है। इस दृष्टि से ये चिरस्मरणीय रहेंगे।

सा० प्र०

गुर्रम् जाषुवा

श्री गुर्रम् जाषुवा का जन्म गुण्टूर जिले के इतिहास-प्रसिद्ध स्थान विनुकोण्डा तालुका (विनु का अर्थ है-सुन। कहा जाता है कि विनुकोण्डा के पर्वत पर राम ने सीतापहरण की करुण कहानी सुनी थी। इसीलिए इस स्थान को विनुकोण्डा कहते हैं।) के चाटूगड्डवाडु में २८ सितम्बर सन् १८९५ ई० को एक ईसाई-परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री वीरय्या एक अछूत चरवाहे थे, जो बाद में ईसाई हो गये थे। ईसाई-परिवार में जन्म लेने पर भी ये मनसा, वाचा, कर्मणा हिन्दू-धर्म में आस्था रखते थे। हिन्दू-पुराणों पर आधारित काव्य-रचना के लिए इन्हें कट्टर पादरियों का कोपभाजन भी बनना पड़ा। ये जाति-बहिष्कृत कर दिये गये तथा अध्यापक-पद से हटा दिये गये। फिर भी ये अपने सिद्धान्तों से विचलित नहीं हुए। उच्च वर्ण के हिन्दू भी इन्हें अपमानित करते रहते थे। इससे वह बहुत दुःखी भी रहते थे।

एक बार जाषुवा को वेन्कटगिरि (नेल्लूर जिले की छोटी रियासत) के राजा ने निमन्त्रित किया। वहाँ जाते समय मार्ग में एक ब्राह्मण से इनका परिचय हुआ। वह जाषुवा की कविता सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। तत्पश्चात् उसने इनकी जाति की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा की। इससे ये बहुत दुःखी हुए। इन्होंने राजा को इस घटना की सूचना भी दी। प्रायः ये लोगों से अपने विषय में कहा करते थे कि मैं विश्व-मानव हूँ।

कहा जाता है कि जाषुवा बचपन में बहुत नटखट और मनमौजी प्रकृति के थे तथा अध्ययन में इनका मन नहीं लगता था। ये कुश्ती के भी शौकीन थे। उन्होंने किसी प्रकार पाँचवीं कक्षा पास की थी। इनका विवाह मामा की पुत्री मेरी से हुआ था, जिसका देहान्त सन् १९५६ ई० में ही हो गया। इनके तीन लड़के और तीन लड़कियाँ थीं। श्री जूपूडि हनुमच्छास्त्री इनके विद्यागुरु थे।

श्री जाषुवा सच्चे देशभक्त थे। वह छुआछूत और ऊँच-नीच की भेद-भावना के घोर विरोधी थे। उन्होंने सन् १९५६ से सन् १९६० ई० तक मद्रास के आकाशवाणी-केन्द्र पर अधिकारी के रूप में कार्य किया। उस केन्द्र से इनकी लगभग ३५ रचनाएँ प्रसारित हुई, जिनमें सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः यह समाज से नहीं, सामाजिक कुरीतियों से द्वेष रखते थे। अपने उदार सामाजिक विचारों और देश-भक्ति की भावना के कारण ये कवि कोकिल जाषुवा तथा कवि-विशारद जाषुवा के नाम से प्रसिद्ध हो गये तथा इन्हें अनेक पुरस्कार एवं उपाधियाँ प्राप्त हुईं। सन् १९६५ ई० में आन्ध्र प्रदेश सरकार ने इन्हें विधान परिषद् के लिए मनोनीत किया, १९६९ ई० में आन्ध्र विश्वविद्यालय से इन्हें कलाप्रपूर्ण की मानद उपाधि मिली और सन् १९७० ई० में भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

जाषुवा जन्म से ईसाई, किन्तु स्वभाव से हिन्दू थे। पुराणों के प्रति इनके हृदय में अगाध निष्ठा थी। इन्होंने महाभारत पर आधारित कृष्ण-कथा को लेकर अनेक खण्ड-काव्यों की रचना की जिनमें शल्य सारथ्यम्, भारत वीरुडु, भीष्मुडु, राजुराजु आदि बहुत

लोकप्रिय हैं। किन्तु इनकी कीर्ति का केतु 'रुक्मिणी-कल्याणम्' नामक पद्य नाटक है। कवि ने रुक्मिणी का विरह-वर्णन इन शब्दों में किया है :

हंस तूलिकल पै नत्त मिल्लेद मन्न
सदयुत कंटिकि निदुर रादु
तूगु टुय्यल लन्दु नूगुद मनु कोन्न
नुन्तयु मेनिकि सुखमु लेदु
मधुर भोजनमुलु मा यम्म दिनिपिंप
निन्तयु नोटिकि हितवु काद्
चिलुकल मुद्दु पल्कुलु विन्द मनुकोन्न
गटगटा ! चेवुलकु कटुवुलय्ये

नीवु लेकुन्न नाकिक नेल तल्लि
येल न तन्ड्रि, थन्नलु नेल, विभव
मेल, हारम्बु लेल, धरिम्प भूष
लेल, लोकम्बुन् तुदकु नाकेल कृष्ण
(—द्वितीयांक का द्वितीय दृश्य)

'हे कृष्ण तुम्हारे बिना हंसतूलिक तल्प पर शयन करने पर भी आँख नहीं लग रही है। झूला झूलने में किसी प्रकार के सुख को अनुभव नहीं कर रही हूँ। मेरी माँ स्वादिष्ट भोजन मुझे खिला रही है। फिर भी पक्वान्न मुझे रुचिकर नहीं लग रहा है। श्राव्य शुकवर्णी अब मेरे लिए कर्णकठोर लग रही है। हे कृष्ण, तुम्हारी अनुपस्थिति में माता-पिता, भाई-बन्धु, धन-दौलत, वैभव-आभूषण आदि मुझे सुख नहीं दे सकते। अगर तुम नहीं हो तो मुझे इस दुनिया की आवश्यकता भी नहीं है।'

उक्त छन्द के द्वारा जाषुवजी पुराणों में लिखित निम्नलिखित प्रार्थना का समर्थन कर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' के गीता के कथन की पुष्टि करते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वम् मम देवदेव।

अग्नद्योत नामक ब्राह्मण से रुक्मिणी एक सन्देशा भेजती है। वह कृष्ण के सर्वान्तर्यामी गुण पर प्रकाश डालते हुए 'अन्यथा शरणं नास्ति' भाव को यों प्रकट करती है :

मनःप्रिय रुक्मिणि शिशु पालुन
कुद्वाह मोनरिम्प नुंडि रनुमु
निनुन् गोरि कोन्न मानिनि मरोक्कनि चेट्ट
बट्टि, प्राणमुलतो ब्रतुक दनुमु
नीवु रक्षिचिन नीलवेणुल लोन
नीकन्य नोकतिगा नेन्चु मनुमु
प्रहलादु नेलन् गम्बमु लोनन् बुट्टिन
वेनुकटि करुणन् जूपिम्पु मनुमु

येलिन नामीद नेलकुन्डिन निप्पु
डेलिन ना मेलु सालु न नुमु

एरिंगि युन्दुवु सर्वम्बु नेरिंगि युन्डि
येरुग नट्लुन्डि येरुगनि नरुल चेत
ने रुंग बरिपिन्चु कोन्दु, ने नेरुगन् जेय
नेन्त दाननु गडकिन्त नेलु मनुमु

'हे ब्राह्मणदेवता अग्निद्योत ! आप श्रीकृष्ण से मेरी ओर से इस प्रकार बिनती कीजिये। कहिये कि तुम्हारी मनःप्रिय रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से सम्पन्न होनेवाला है। स्पष्ट रूप से कहिये कि तुम्हें चाहनेवाली यह मानिनी किसी अन्य की होकर जीवित नहीं रह सकेगी। प्रकट कीजिये कि मुझे भी उन नीलवेणियों में से एक समझकर रक्षा करें, जिनकी रक्षा प्रभु ने अब तक की है। भक्त प्रह्लाद के विश्वास को स्थिर करने के लिए जिस प्रकार आप खंभे से जन्म ले चुके हैं उसी प्रकार अब यहाँ पहुँचकर मेरी रक्षा कीजिये। आप यह भी कहिये कि हे कृष्ण ! तुमने अब तक मेरी रक्षा नहीं की है तो भी कोई चिन्ता नहीं। पर अब आकर मेरी रक्षा कीजिये। मैं सब कुछ भूल जाऊँगी।'

आगे रुक्मिणी कहती है कि 'हे कृष्ण, तुम तो सर्वज्ञ हो, पर अनजान बन रहे हो। जो तुम्हें

जानते नहीं हैं उनसे जनवाये जाने की कोशिश करते हो। तुम्हारे बारे में जानने की शक्ति अथवा तुम्हें समझाने की शक्ति मुझमें नहीं है। इस असहाय दशा को हे ब्राह्मण, आप जताइये।'

इनकी मृत्यु २४ जुलाई सन् १९७१ ई० को हुई।

सा० प्र०

गोपीनाथमु वेंकट कवि

गोपीनाथमु वेंकट कवि का जन्म सन् १८२० ई० में नेल्लूर जिले के लक्ष्मीपुर नामक ग्राम में हुआ था। ये वेंकटगिरि के राजा के दरबारी कवि थे, जहाँ रहकर उन्होंने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। वेंकटगिरि के युवराज श्री गोपालकृष्ण याचेन्द्र द्वारा इन्होंने अनेक प्रचुर सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त किया।

श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड, शिशुपाल-वध, गोपीनाथमु-रामायणमु, भगवत्गीताशास्त्र आदि इनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं।

इनमें से 'कृष्ण-जन्म-खण्ड' की कथावस्तु ब्रह्म-पुराण तथा वैवर्तपुराण से गृहीत है। यह आठ आश्वासों का प्रवन्ध-काव्य है।

तेलुगु में विरचित रामायणों में, मूल से कुछ भिन्न वृत्तान्तों के आधार पर आपने संस्कृत के वाल्मीकिकृत रामायण का तेलुगु-रूपान्तर किया, जो 'गोपीनाथ-रामायण' नाम से प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने 'भगवद्गीता' को काव्य का रूप दिया और माघकृत 'शिशुपाल-वध' का भी सरस रूपान्तर किया।

सन् १८९० ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

बा० रे०

गौरन मन्त्रि

गौरन का जन्म एक सुशिक्षित और उच्च परिवार में हुआ था। ये अपने बड़े भाई की तरह राजा-महाराजाओं के मन्त्री बनने के लिए नहीं जन्मे थे। कविता के स्वच्छन्द साम्राज्य में जीवन बिताना ही इनका लक्ष्य था। वैसे तो ये लक्षणकार हैं। 'लक्षणदीपिका' इनका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें तेलुगु-काव्य के लिए संस्कृत में लक्षण लिखे गये हैं। इस ग्रन्थ को आलोचक इनकी प्रामाणिक रचना मानते हैं। इन्होंने ग्रन्थ लिखने के पहले कुल पैंसठ ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इन्होंने 'क' और 'ग' नामक दो वर्गों में ग्रन्थों को विभाजित किया था। ग्रन्थों के आद्योपान्त अध्ययन के कारण गौरन को 'प्रति-वादि मदगज पंचानन' की उपाधि मिली थी।

'हरिश्चन्द्रोपाख्यानमु' नामक इनकी कृति से हम जान सकते हैं कि गौरन एल्लमन्त्रि और पोयाम्ब के द्वितीय पुत्र हैं। इनके बड़े भाई का नाम धरणि मन्त्रि था। गौरन गौतम गोत्र के थे। गौरन ने 'नवनाथ-चरित्र' को द्विपद-छन्द में रचा था। 'नवनाथ-चरित्र' के मूल कवि श्री गिरि कवि हैं। तेलुगु और संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए आपने संस्कृतनिष्ठ तेलुगु की अपेक्षा सामान्य जनता की समझ में आनेवाली सरल तेलुगु को अपनाया। श्रीनाथ कवि के जीवन-सन्ध्या-काल में इनका जन्म हुआ होगा। डॉ० जी० नागय्य ने गौरन के काल को ईसा के सन् १३८० ई० से लेकर सन् १४५० ई० तक बताया है।

गौरन शिव-भक्त थे, पर रामद्वेषी नहीं थे। इनके पितृव्य के आश्रयदाता पद्मनायक मायानायक ने 'रामायण' की 'राववीयम्' नाम से टीका लिखी थी। शायद इसलिए अपने लक्षण-ग्रन्थ के आरम्भ में राम का वर्णन इन्होंने किया है :

जानकीमुखपद्मार्कं जानकीकुचभूषणम् ।
जानकीरमणं वन्दे जगतां मङ्गलप्रदम् ॥

अपने नवनाथ द्विपद-काव्य में राम-गाथा को इन्होंने गाया है। चौबीस द्विपदों को लिखकर अन्त में इन्होंने लिखा है—'महापातक हर मैन रामु विनुत

चरित्रम्बु' अर्थात् राम का चरित्र महापातक को हरनेवाला है।

गौरन अपने समय की जनभाषा को जानते थे। राजा से लेकर रंक तक की भाषा के ये पण्डित थे। पात्र-चित्रण की कला में ये इतने निपुण थे कि इनका 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' नाटक जैसा लगता है। नाटक-रचना के लिए इन्होंने तेलुगु भाषा को उर्वर बनाया।

गौरन के 'नवनाथ-चरित्र' नामक द्विपद-काव्य में धर्म पर ईश्वर के नाम पर होनेवाले विवादों का भी उल्लेख है। सिद्ध नागार्जुन (डॉ० आरुद्र के अनुसार) या उनके शिष्य आत्रेयु (डॉ० जी० नागय्य के अनुसार) श्रीशैल को स्वर्णशैल बनाना चाहते थे। विष्णु को इसके बारे में पता चला। विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से उसको मारा। देखिये :

अप्पुन्डरीकाक्षु डन्दरू विनग,
नेलुगेत्ति इट्लने नित डहंकार
कल्तिुडै थनु चित कमंबु पूने
नदि थेट्लनिन ···
····कांचनंविष्णु
डेरीति श्री गिर येल्ल दानैन
वारिकि वारिकि वलसिनंतैन
गोरि कै कोनि तमकु नु दामे राजु
लै थल्पु लंधकुलु नतु वासि लेक
राईडिप्डु व्रति ग्रह दान मुख्य
धर्मम्बु लन्नियु दप्प मर्याद
निर्मूल मै भूमि नेरि दप्पु गान
दडयक लोक हितम्बुगा नितनि
पोड वणिगिन्चिति ··· ···
··················

नेने जगम्बु लन्नियुनु रक्षिप
बूनिन लक्ष्मी विभुडननि येण्पि
यंतर्निहितुन्डय्ये····

(नवनाथ, पृ० सं० २४६-२४७)

'तब पुण्डरीकाक्ष ने ऊँची आवाज में इस प्रकार कहा, यह (सिद्ध नागार्जुन या आत्रेय) अहंकारवश अनुचित काम कर रहा है। अनुचित इसलिए कि अगर यह श्री गिरि स्वर्णगिरि बन जाय तो अपने को जितना चाहिए उतना सोना लूट लेंगे और स्वयं राजा बन जायेंगे। तब तो छोटे-बड़े का भेदभाव मिट जायगा। प्रतिग्रह आदि दान नष्ट हो जायेंगे। सब मुख्य धर्म मिट जायेंगे। इसलिए देरी किये बिना लोक-हित के लिए इसको मैं मार रहा हूँ। लम्बाई को कम कर रहा हूँ अर्थात् गर्व-भंग कर रहा हूँ। मैं जगत्-रक्षक लक्ष्मीपति हूँ। इस प्रकार कहकर वे ओझल हो गये।'

प्रतीत होता है कि शैवधर्म को लोकप्रिय बनाने तथा वैष्णव राजा और महाराजाओं को बदनाम करने के लिए यह कहानी गढ़ी गयी होगी। धनिक-वर्ग आर्थिक असमानता का लाभ उठाना चाहता था और शैवाचार्य असमानता को दूर करना चाहते थे। इस वर्णन से स्पष्ट है कि वर्ग-संघर्ष को भगवान् तक ले जाकर उन पर कीचड़ उछालने के प्रयत्न उस जमाने में किये जाते थे। इससे हम धर्मावलम्बियों की कट्टरता को जान सकते हैं। गौरन ने नाटक नहीं लिखा, फिर भी वे नाटककार हैं। आज के नाटकों के लिए—खासकर पौराणिक नाटकों के लिए—चन्द्रमनि, नक्षत्रक, वीरबाहू, विश्वामित्र और वसिष्ठ जैसे पात्रों को प्रदान करनेवाले प्रथम व्यक्ति गौरन हैं।

सा० प्र०

चक्रपुरि राघवाचार्य

विष्णुपुराणम् और नल-चरित्र नामक दो द्विपद-काव्यों के रचयिता चक्रपुरि राघवाचार्य रामानुजाचार्य के श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने तिरुत्तणि-क्षेत्र के निकटवर्ती वैष्णव-क्षेत्र शोलिंगपुरम् के अधिष्ठित देवता श्रीनरसिंह के नाम पर अपनी कृतियों को अर्पित किया था। शोलिंगर या शोलिंगपुरम् को संस्कृत में घटिकाचल कहते हैं। राघवाचार्यजी सकलकवित्व वाचाविशारद और

विद्याप्रवीण तिरुवेन्गलाचार्य के पुत्र तथा वैष्णवाचार मूर्ति दोड्डयाचार्य के पौत्र थे।

अपना परिचय देते हुए इन्होंने नल-चरित्र में लिखा है—"मैं अमल मानसवला हूँ। मैं विद्याविशारद हूँ।" अपने-आपको वरकवि माननेवाले राघवाचार्य ने अपनी प्रथम कृति नल-चरित्र को नरहरि घटिकाद्रि-नाथ के नाम लिख उन्हींको अर्पित किया था। नल-चरित्र की कहानी को राघवाचार्य ने महाभारत के 'अरण्यपर्व' से ग्रहण किया था। इसमें पाँच आश्वास अर्थात् सर्ग हैं। कवि ने इन पाँच आश्वासों अर्थात् सर्गों को दो भागों में विभाजित किया है।

विष्णुपुराणम् को तेलुगु में अनुवाद करनेवालों में वेन्नेलकंटि सूरन का नाम सबसे पहले आता है। राघवाचार्यकृत विष्णुपुराण एक स्वतन्त्र काव्य है। कवि ने किसीका अनुकरण नहीं किया है। इस काव्य के पूर्वभाग में यमलोक का वर्णन है और उत्तरभाग में रामानुज-मत की महत्ता का वर्णन है।

चक्रपुरि राघवाचार्य के आविर्भाव-काल के विषय में विद्वानों का मत एक नहीं है। राघवाचार्य के दादा कंदालम दोड्डयाचार्य नामक वैष्णवाचार्य के शिष्य थे। इस नाम के आधार पर श्री यागन्टि शेषय्या राघवाचार्य के काल के बारे में अनुमान लगाते हुए लिखते हैं—राघवाचार्य ईसा की सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध के कवि हो सकते हैं। श्री सी० पी० ब्राउन साहब के अनुसार राघवाचार्य सन् १६२० ई० के आसपास के कवि हैं। डॉ० चिलुकूटि नारायण राव ने इन्हें सन् १६९० के आसपास का कवि ठहराया है।

डॉ० यस वी० जोगराव (आन्ध्र विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभागाध्यक्ष) ने बहुत अनुसन्धान के बाद यह प्रमाणित किया है कि राघवाचार्य ने 'विप्रनारायण-चरित्रम्' नामक एक यक्ष-गान की रचना भी की है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन अब तक नहीं हुआ है।

राघवाचार्य कहाँ के रहनेवाले थे, इस प्रश्न का उत्तर आसानी से नहीं दिया जा सकता है। इनके काव्यों के भर्ता श्री घटिकाद्रि नरहरि होने के कारण श्री शेषय्या इन्हें तिरुत्तणि के निकटवर्ती किसी ग्राम का निवासी माना है। काव्यों में प्रयुक्त भाषा के आधार पर श्री जनमंचि सुब्रह्मण्यम् शर्मा इन्हें रायल सीमा के कवि मानते हैं। (रायल सीमा को दत्तमण्डलम् भी कहते हैं। कवि राघवाचार्य रामानुज की महानता का गान इस प्रकार कर रहे हैं :

चूचिते रामानुजुनि महत्त्वम्बु
भूचक्रमुन महाद्भुतमुगा वेलसे
नतनि मानवु डन्चु नात्म नेचकुमु
प्रति लेनि इंदिरा पनि पान्पु पैन
भोगीश्वरुनि थेशन् बुट्टिनंडनुचु
बागुगा प्रजलेल्ल पलुकु चुन्नारु।

'श्री रामानुज की महानता को परखो तो सही। इस धरती पर उनका जन्म एक अद्भुत घटना है। इन्हें साधारण मानव नहीं समझना चाहिए। ये तो इन्दिरा-पति के अंश से जन्म लेनेवाले महान् व्यक्ति हैं। इस प्रकार की बातें लोग आजकल खुल्लम-खुल्ला कर रहे हैं। इसलिए रामानुज को तुम मानव-मात्र मत समझो।

अपनी उपर्युक्त रचनाओं से ये भगवान् तथा भागवतों के यशःगायक सिद्ध होते हैं।

सा० प्र०

चदलवाड मल्लन्न

चदलवाड मल्लन्न कवित्रय के तीसरे कवि एरन्नि के वंशज हैं। ये लिंगनामात्य और कामाक्ष्याम्बा के सुपुत्र तथा मल्लन्न आपस्तम्ब सूत्र को माननेवाले श्रीवत्सगोत्रोद्भव ब्राह्मण थे। श्रीकालहस्तीश्वर (शिवजी) के भक्त होते हुए भी इन्होंने विप्रनारायण नामक एक भक्त आलवारार से सम्बद्ध वैष्णव-काव्य की रचना की है। श्री यागन्टि शेषय्या का मत है कि कवि मल्लन्न सन् १५८० ई० के

आसपास रहे होंगे। इस काव्य के कृतिपति तिरुपति-क्षेत्र के निकटवर्ती कावेटि. नगरम् के राजा तिम्मराजु हैं। 'विप्रनारायण-चरित्र' पाँच सर्गों का शृंगार-काव्य है। यह ग्रन्थ उपलब्ध है, पर इनका दूसरा काव्य रुक्मांगद-चरित्र (एक द्विपद-काव्य) नहीं मिल रहा है। अपने प्रण पर पछतानेवाली देवदेवी इस प्रकार सोचती है :

नेरमु चेखिति नेन्तयु नीरेरुह नाम कृष्ण नी तिरुवुल्लम
बेरीति नानतीवे श्रीरंगा रंग रंग सेवक फलदा।

'हे पद्मनाभ ! हे श्रीकृष्ण ! मुझसे भूल हो गयी है। मैं तुम्हारे संकल्प को जानती नहीं हूँ। हे श्रीरंग रंगरंगा ! सेवकों को सेवा का फल देनेवाले प्रभु ! तुम्हीं मुझे समझाओ।'

इस प्रार्थना के बाद देवदेवी सोने जाती है। गद्य में चद्दलवाड मल्लन्न कवि श्रीकृष्ण की स्तुति इस प्रकार करते हैं :

'अनुचु जिन्ता पारवश्यम्बुन गोन्त निद्रिन्चु समयम्बुन नार्त जन शरण्युन्डुनु निखिल देवता वरेण्युन्डुन् भक्त जन फल प्रदायकुन्डु नगु रंग नाम कुन्डय्यन्ति भावम्बुन नाविर्भावम्बु नोन्दि !'

'चिन्ता में डूबी देवदेवी की आँखें लग गयीं। तब आर्तजनों को शरण देनेवाले सब देवी-देवताओं में श्रेष्ठ, भक्त-जन-वत्सल श्रीरंग नामक उस स्त्री के भावों में प्रकट हो गये।'

वर्षा होने लगी। देवदेवी भीगने लगी। विप्रनारायण ने उससे अपनी कुटी में आने के लिए कहा। विप्रनारायण देवदेवी से कहने लगे—"यह मत छुओ। वहाँ हाथ या पैर न रखो।" तब देवदेवी विप्रनारायण से कहने लगी कि ठंढ के कारण नींद तो नहीं आ रही है। मैं विष्णु-गाथा को गाकर सुनाऊँगी। इतना कह वह श्रीकृष्ण की शृंगार-लीलाओं का इस प्रकार वर्णन करने लगी :

तलि रुमू बोडि दोडन्गि माधवुडु राधन गूडि
क्रीडिन्चु गा
थलु कुब्जन गइ कोन्न वार्तलु सत्यावान्छा
लीडेर्चु सु
छुलु नाभीर वधू दुलन्दु गल पोन्दुन रुक्मिणी
देवि पै
चेलिमिन् ग्रोन्न न इच्चु लागु विनिपिन्चेन
माधुरी वैश्वरिन्।

'सुमधुर ढंग से देवदेवी श्रीकृष्ण की शृंगार-लीलाओं का वर्णन करने लगी। वह पहले राधा-माधव-समागम के बारे में कहती है। इसके बाद कुब्जा कृष्ण को कैसे पा सकी थी, इसका वर्णन करने लगी। सत्यभामा की मनोकामना को पूरा करने के ढंग को बताया। गोप-कन्याओं ने जो सुख कृष्ण को दिया था, उसका वर्णन किया। अन्त में रुक्मिणी की कहानी गाने लगी।'

सा॰ प्र॰

चरिगोण्ड धर्मन्न

धर्मन्न का जन्म सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध या सत्रहवीं शती के आरम्भ में तेलंगाना के चरिगोण्ड नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम तिम्मनामात्याग्रणि और माता का नाम मादम्मा था। ये आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण थे। अपनी विद्वत्ता के कारण इन्हें 'शत-लेखिनी-सुरत्राण' की उपाधि मिली थी।

धर्मन्न की एकमात्र रचना 'चित्र भारतम्' है जो सम्भवतः १५०३ और १५१२ ई० के बीच लिखी गयी थी। इस कथा को धर्मन्न ने ब्रह्माण्ड-पुराण से लिया था। इसमें कृष्णार्जुन-युद्ध का वर्णन है। इस कथा को शुक योगी ने इलावन्त को सुनाया था। नैमिषारण्य में सूतजी शौनकादि ऋषियों को यह कथा पुनः सुनाते हैं। कथा इस प्रकार है—चतुर्धन नामक राजा एक दिन शिकार के लिए निकले। जंगल में उन्होंने एक घोड़ी को देखा। यह घोड़ी इन्द्र के दरबार की अप्सरा रम्भा थी जो शाप के कारण घोड़ी बन गयी थी। राजा घोड़ी को अपने साथ ले आये। एक दिन राजा चतुर्धन घोड़ी पर सवार हुए। घोड़ी ने

उन्हें तीनों लोकों का भ्रमण कराया। राजा अपनी राजधानी लौट रहे थे। आकाशगामी घोड़ी के मुँह से निकली लार अर्घ्य देने के लिए प्रस्तुत कृष्ण के हाथों में गिरी। उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने घोड़ी पर सवार युवक को तीस दिनों के अन्दर मार डालने की प्रतिज्ञा कर ली। देवर्षि नारद उस समय कृष्ण के पास ही थे। उन्होंने यह समाचार राजा चतुर्धन तक पहुँचाया। चतुर्धन घबरा उठे। वे इन्द्र के पास दौड़े गये। इन्द्र ने कहा—"मैं कृष्ण के हाथों हार चुका हूँ।" उन्होंने 'पारिजातापहरणम्' की कथा सुनायी। अब चतुर्धन शिव के पास पहुँचे। शिव ने भी अपनी विवशता प्रकट की और 'उषा-परिणयम्' की कथा सुनायी। रास्ते में अचानक अर्जुन से भेंट हो गयी। बिना शत्रु का नाम बताये अर्जुन से राजा ने अभय माँगा। अर्जुन सुनकर चिन्तित हुए। उन्होंने भीष्म से सलाह ली। अन्त में कौरव और पाण्डव सभी भाई मिलकर कृष्ण से लड़ने के लिए उद्यत हुए। युद्ध में धर्मराज को छोड़कर कृष्ण ने सबको मार गिराया। बाद में उन्होंने धर्मराज से कहा—"मैं तुम्हें एक वर देता हूँ। किसी एक व्यक्ति का नाम लो। उसे मैं जीवित कर दूँगा।" धर्मराज ने कहा—"आप चतुर्धन को जीवित कर दीजिये। उसके बच जाने से लोग कहेंगे कि अभयदान देने के कारण पाण्डवों ने चतुर्धन को बचाया।" कृष्ण इस पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सबको जीवित कर दिया।

यह कथा बड़ी विचित्र लगती है। शायद इसीलिए कवि धर्मन्न ने इसे 'चित्र-भारतम्' नाम दिया है।

'चित्र-भारतम्' में कृष्ण कहते हैं कि यदि नर हर है तो केवल मेरे कारण। युद्ध में अर्जुन को हराकर उन्होंने इसे प्रमाणित भी कर दिया। वे कहते हैं–

ना सहायम्मु ले कुन्न नरुडु नरुडु,
ना सहायम्बु गलिगिन नरुडु हरुडु।

'मेरी सहायता के बिना नर (पार्थ) मात्र नर (साधारण मनुष्य) हैं। जब मैं उसकी सहायता करता हूँ तब वह नर (अर्जुन) हर (लयकारी शिव) बन जाता है।'

धर्मन्न ने अपने इस काव्य में कृष्णार्जुन-युद्ध का वर्णन महाभारत-युद्ध के समान विशद रूप में किया है। कविता के सम्बन्ध में इनका विचार है कि कविता घोड़े की लयकारी दौड़ के समान सुमधुर होनी चाहिए। धर्मन्न की इस रचना का परवर्ती कवियों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। 'गयोपाख्यानम्' नामक सुप्रसिद्ध पौराणिक नाटक की कथा 'चित्र भारतम्' से ही ली गयी है।

सा० प्र०

चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री

चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री बीसवीं शताब्दी के कवि हैं। इनका जन्म पण्डितों एवं कवियों के वंश में हुआ था। इन्हें 'प्रबन्ध कवि शिरोमणि' की उपाधि से विभूषित किया गया है। इनके विषय में इससे अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

इन्होंने राधाकृष्ण-सम्बन्धी एक काव्य 'विरजोपाख्यानम्' की रचना की है। इसका कथानक ब्रह्मवैवर्त-पुराण से लिया गया है। इस प्रबन्ध-काव्य में गोलोक की पवित्र गाथा वर्णित है। गोलोक के निवासी कृष्ण और राधा चपल थे। वहाँ समय-समय पर रासलीला का आयोजन होता था। उसमें सभी निवासी सक्रिय रूप से भाग लेते थे। विरजा नामक एक स्त्री के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग-भाव था। रासलीला के बाद वह श्रीकृष्ण की शरण में जाती है। श्रीकृष्ण भी उसके सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हैं। वह सभी गोपिकाओं को बिदा करके विरजा के निकट आकर खड़े हो जाते हैं। विरजा भक्तिभाव से उनकी स्तुति करती है। श्रीकृष्ण भी उसे आशीर्वाद देते हैं। इसी बीच वहाँ राधा आ जाती है। वह श्रीकृष्ण और विरजा को एक साथ देखकर कुपित होती है। कवि ने

परिस्थिति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है। एक उदाहरण देखिये :

तन किरु पक्कलन्दु वनितल सेलगन्ग लीलन् दा
ननुन् गड्डन् प्रेम नोक्कोक्क यनंगु पडतिकि रेन्डु वैपुलं
दुनुन् दग निल्चि मालगतिन् दोरपु
बाहु मृणाल जालम ल्लन गल सीमलन्दिडि चेलंगेनु
मण्डल मध्य वर्ति यै।

'मण्डल मध्यवर्ती कृष्ण अपनी दो बाहुओं को माला की तरह गोपिकाओं की गलसीमा तक ले जाकर उन्हें गले लगा रहे हैं। उनके दोनों ओर स्त्रियाँ खड़ी हैं। प्रेम के साथ कृष्ण उनको अपनी बाँहों में ले रहे हैं।'

सा० प्र०

चिन्तलपूडि एल्लनार्युडु

तेलुगु में ऐसे अनेक कवि हैं जिनको काव्य के नाम से जाना जाता है। कवि एल्लनार्य ने 'राधामाधवम्' नामक काव्य लिखा। यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हो गया कि लोग एल्लनार्य को 'राधामाधव कवि' के नाम से पहचानने लगे। इस उपनाम के द्वारा कवि की प्रतिभा और काव्य की विशेषता दोनों को हम आसानी से जान सकते हैं। अनुमानतः सोलहवीं शती के आरम्भ में इनका जन्म हुआ होगा और 'राधामाधव' काव्य की रचना इन्होंने सन् १५१९ ई० के बाद की होगी।

एल्लन्न चिन्तलपूडि के निवासी थे। आन्ध्र प्रदेश के छः जिलों में ग्यारह ऐसे गाँव हैं जिनका नाम चिन्तलपूडि है। ये गाँव विशाखपट्टनम् से लेकर नेल्लूर जिले तक बिखरे पड़े हैं। इनमें से अमुक चिन्तलपूडि को एल्लन्न का चिन्तलपूडि कहना एकदम कठिन है। पूर्वी गोदावरी जिले के एल्लवरम तालुके में एक चिन्तलपूडि है। एल्लन्न के नाम में 'एल्ला' शब्द है। इन दोनों को जोड़कर डॉ० आरुद्र ने एल्लन्नार्य को पूर्वी गोदावरी जिले का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। श्री नडकुदुटि वीरराजू गोदावरी और बल्लारी जिले के बीच की दूरी को ध्यान में रखकर नेल्लूर जिले के दर्सि तालुके में जो चिन्तलपूडि है, उसीको एल्लन्नार्य का ग्राम चिन्तलपूडि मानते हैं। उनके अनुसार गुन्टूर जिले के रेपल्लि तालुके में जो चिन्तलपूडि है वह भी कवि का निवास-स्थान हो सकता है, क्योंकि विशाखपट्टनम् की तुलना में गुन्टूर और नेल्लूर बल्लारि के अधिक निकट हैं। श्री चागन्टि शेषय्या ने अपनी कवितरंगिणि (भाग १) में इस बात की चर्चा नहीं की है।

'राधामाधव कवि' चिन्तलपूडि एल्लनार्य श्रीवत्सगोत्री थे। इनके परदादा का नाम वल्लभराय था। ये कृष्ण भट्टारक के पौत्र थे। एल्लन्न कामनार्य और लेच्चाम्ब के पुत्र थे। ये नियोगी ब्राह्मण थे। अपने काव्य को अच्युत के नाम अर्पित कर एल्लन्नार्य ने सन्तोष का अनुभव किया था। रचना के अनन्तर वे काव्य को कर्णाटीश कृष्णराय के पास ले गये थे। राजा ने कवि की विद्वत्ता से प्रसन्न होकर सब कवियों के सामने उन्हें 'राधामाधव कवि' की उपाधि से विभूषित किया था। उस दिन से एल्लन्न 'राधामाधव कवि' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तेलुगु में तिक्कन्न ने एक प्रथा का शुभारम्भ किया था। उसके अनुसार काव्य-रचना के पहले कवि जब ध्यानमग्न रहते हैं तब इष्टदेवता स्वप्न में दर्शन देकर अपने नाम पर एक काव्य की रचना करने के लिए आदेश देते हैं। उस आदेश के अनुसार कवि लिखना आरम्भ कर देते हैं। एल्लन्न पूर्व कवियों की प्रशस्ति के बाद उन्हींके मार्ग पर चलकर एक प्रबन्ध-विशेष की रचना करने के सम्बन्ध में सोच रहे थे। तब मंजीरयुक्त पादयुग्म के साथ, कौस्तुभ मणि से विभूषित वक्षःस्थल के साथ, शंख, चक्र, गदा के साथ, नवमौक्तिक से शोभित नासिका के साथ, रत्नकाञ्चन पीताम्बर के साथ, होंठों पर हँसी और नयनों में करुणा को छलकाते हुए मदनगोपाल मूर्ति कृष्ण-

राधा समेत आ उनके सामने खड़े हो गये तथा कविता-कल्पवल्लि नामक द्वादशाक्षरकलित एक दिव्य मन्त्र का उपदेश दिया। राधाकृष्ण की दिव्य मूर्ति कवि एल्लन्न को आह्लादित कर रही थी। वे आनन्द-विभोर हो उठे थे। तब श्रीकृष्ण ने इनसे कहा: 'राधामाधवमु चेप्परा' रे कवि! राधामाधव-काव्य को लिखो। कवि अपने-आपको धन्यभाग मानने लगे। वे भगवान् के कृपापात्र बन गये थे। राधामाधव-काव्य तेलुगु का राधामाधव-सम्बन्धी प्रथम शृंगार-काव्य है। इसमें अश्लीलता का यत्र-तत्र स्पर्श मिलता है। 'राधामाधव कवि' से प्रेरणा ग्रहण कर कवियों ने बाद के काव्यों को अश्लीलता का भण्डार बना दिया।

चिन्तलपूडि एल्लन्न बचपन से ही मदनगोपाल के अनन्य भक्त थे। 'कृष्ण वल्लवी वल्लभा' के चतुर्थ पाद के अन्त में अनिवार्य रूप से लिखते हुए इन्होंने एक शतक लिखा होगा। इस शतक में से कतिपय पद्यों को चुनकर अपने राधामाधव-काव्य में इन्होंने जोड़ा होगा, ऐसा डॉ॰ आरुद्र समझते हैं। राधा-माधव-काव्य के आमुख में श्री नडकुदुटि वीरराजु लिखते हैं–"एल्लनार्य के उपलब्ध ग्रन्थों–राधामाधव-काव्य, तारक-ब्रह्मराज तथा विष्णुमाल नाटक कोश के परीक्षण से मालूम होता है कि ये महाकवि प्रसन्न मदनगोपाल, राधाकृष्ण कवचादि महामन्त्रों के निष्ठा-वान् उपासक थे और महाविष्णु के भक्त थे। विष्णु-भक्त होते हुए भी इष्टदेवता-स्तुति में, लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती समेत विष्णु, शंकर और ब्रह्मा की वन्दना कवि ने की है। इन तीनों के बाद काव्य में गणपति की स्तुति की गयी है।" मदनगोपाल के विषय में राधामाधव कवि लिखते हैं:

नीवे यज्ञमुलुन् ददीय फलमुल् नीवे कुलाचारमुल्
नीवे मन्त्रंबु नीवे तज्जपमुलु न्नीवे मनोवांछ्युनु
नीवे मोक्षमु नीवे चिद्विभवमु न्नीवे वितर्किम्प ना
ना वर्णाश्रम धर्म मार्गुलकु कृष्णा! वल्लवी वल्लभा।

एल्लन्नार्य के लिए यह संसार विष्णुमय है। सबमें विष्णु हैं और सब कुछ विष्णु है। वे लिखते हैं: 'हे कृष्ण, हे वल्लवी-वल्लभा, तुम ही यज्ञ और यज्ञ-फल हो, जिन नियम या आचारों का पालन हम करते हैं वे नियम भी तुम हो, तुम ही तो मन्त्र हो, जप हो, मनोकामना भी तुम ही हो। तुम मोक्ष हो, तुम चिद्विभव हो। सोचने पर तो मालूम हो जाता है कि तुम ही सब कुछ हो। जितने आश्रम (वर्णाश्रम) हैं और जो इन धर्मों का पालन करते हैं सबके लिए तुम ही एकमात्र गति हो।'

चिन्तलपूडि एल्लन्नार्य राधामाधव के अमर प्रेम के आधार पर अमर काव्य लिखनेवाले अमर कवि हैं। नायक और नायिका के नाम पर काव्य लिखनेवाले ये प्रथम कवि हैं। इनकी देखादेखी बाद में कई काव्य लिखे गये। पिंगलि सूरनार्य कृत 'प्रभावती प्रद्युम्न' इस कोटि का दूसरा काव्य है। जिस जयदेव के ग्रन्थ से राधामाधव कवि प्रेरणा ग्रहण कर चुके थे. उसकी राधा भी परकीया थीं। राधामाधव कवि ने राधा को स्वकीया बनाया। परकीया के काले धब्बे को इन्होंने राधा के माथे पर से पोंछ डाला। राधा को लेकर तेलुगु-साहित्य में ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें उनका प्रियतमा रूप ही अधिक दिखायी देता है, माँ का रूप नहीं। राधामाधव कवि एल्लनार्य राधा को नायिका बनाकर काव्य लिखनेवाले प्रथम तेलुगु कवि हैं। एल्लनार्य से पहले राधा का नाम श्रीनाथ कवि ने लिया था। 'भीमखण्डम्' काव्य में अपने उपास्य की प्रशंसा करते हुए श्रीनाथ ने इस प्रकार लिखा है:

वालिक मोमु मत्तवन बर्हि किशोरक लास्य लील बै
वालिचि पच्च कप्पुरवु वासन तोडि मुखारविन्द ताम्
बूलफ मोवि मोविपथि मोपुच् राधकु निच्चु धूर्त गो
पालुडु प्रोच् गावुत नपार कृपामति मत्रि थुन्ननिन्।
—भीमखण्डम्

'धूर्त गोपाल, जो कि सुवदेनेवाले हैं, अपने ओंठों को राधा के होंठों से मिलाकर चुम्बन दे रहे हैं।

राधा के मुखारविन्द पर झुके वल्लवी-वल्लभ गोपाल ऐसे दिखाई देते हैं जैसे वन का मदमस्त मयूर अपनी प्रियतमा पर झुका हो। वह कर्पूर की सुगन्ध से सुरभित मुख को राधा के होंठों के पास ले जाकर उसे चूम लेते हैं। राधा को चूमनेवाले श्रीकृष्ण मेरी कृति की रक्षा करें।'

श्रीनाथ के बाद राधा का नाम लेनेवाले श्री कृष्णदेवरायलु हैं। अपने 'आमुक्त-माल्यदा' (इस काव्य का दूसरा नाम विष्णु चित्तियम है।) में श्रीरंगम् के रंगमन्नारु का वर्णन करते हुए वह 'नप्पिन्नै' शब्द का प्रयोग करते हैं। (प्रथम सर्ग, १४वाँ पद्य—तमिलनाडु में नप्पिन्नै का अर्थ राधा है।) राधाकृष्ण-तत्त्व को राधामाधव कवि ने ब्रह्मवैवर्त-पुराण से ग्रहण किया था। ब्रह्मवैवर्त ही एक ऐसा पुराण है जिसमें राधा की श्रेष्ठता का निरूपण हुआ है। इसमें श्रीकृष्ण को सभी देवी-देवताओं से श्रेष्ठ एवं मूल कारण सिद्ध कर इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि राधा उस मूलकारण श्रीकृष्णदेव की आराध्या देवी हैं। श्रीकृष्ण सृष्टि के आदिपुरुष और राधा मूल प्रकृति हैं। करुणावश दोनों—राधा और कृष्ण—गोलोक को छोड़कर भूलोक में जन्म लेते हैं और राधा माधव की पत्नी बनती हैं। इस ग्रन्थ को मान्यता दे सब कवियों ने राधा का परकीया के रूप में वर्णन भी किया है। पर राधामाधव कवि परम भक्त होने के कारण राधा के परकीया तत्त्व को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने ब्रह्मवैवर्त-पुराण की दिव्य प्रकृति को लक्ष्मी मानकर उनकी प्रशंसा की है और राधा को लक्ष्मी के रूप में स्वीकार कर अपनी कल्पना को आगे बढ़ाया है। इस परिवर्तन के कारण ही राधामाधव कवि कृत 'राधा-माधवम्' रमणीय और मधुर काव्य बना है। पूरे भारतीय साहित्य (कृष्ण सम्बन्धी) में केवल राधा के साथ ही कृष्ण शब्द जोड़ा जाता है, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि पत्नियों के साथ नहीं। 'राधामाधवम्' की कथा 'रुक्मिणी-कल्याण' के समान है। इस काव्य में श्रीकृष्ण सहस्रगोप की पुत्री राधा के साथ वेदों में बतायी गयी विधि के अनुसार विवाह-बन्धन में बँध जाते हैं। राधा का वर्णन नारद के द्वारा सुनकर श्रीकृष्ण सरस्वती को दूतिका बनाकर राधा के यहाँ भेजते हैं। वाग्देवी राधा के यहाँ पहुँचकर अपनी मधुर वाणी से कृष्ण के प्रति राधा के मन में अनुराग पैदा करती है। 'रुक्मिणी-कल्याण' की भाँति उसके पिता सहस्रगोप विवाह के लिए राजी हो जाते हैं, पर भाई विवाह के प्रस्ताव को ठुकराता है। रुक्मिणी को उसकी इच्छा के अनुसार श्रीकृष्ण भगाकर ले जाते हैं। पर यहाँ कल्याण मण्डप में जब राधा माला पहनाती है, तब कृष्ण राधा को अपने साथ ले जाते हैं। वे रुक्मी को रुक्मिणी के कहने पर कृष्ण छोड़ देते हैं। ठीक इसी प्रकार राधा के कारण राधा के भाई को भी कृष्ण छोड़ देते हैं। आगे चलकर पिंगलि सूरन्न जैसे कवियों के लिए एल्लन्न मार्गदर्शक बने।

एल्लन्ना का दूसरा सुप्रसिद्ध काव्य 'विष्णुमाया-नाटकम्' है। इसकी रचना के विषय में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। कुछ आलोचक इसे मडिकि अनन्तय्या की कृति मानते हैं। अन्य विद्वान् राधामाधव-काव्य के कवि चिन्तलपूडि एल्लन्ना को ही 'विष्णुमाया-नाटकम्' का कवि ठहराते हैं। 'तारक ब्रह्म राजीयमु' इनका तीसरा काव्य है। राधा और कृष्ण के जन्म के विषय में कवि ने अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। राधा के जन्म के सम्बन्ध में वे कहते हैं :

अमृत पयोनिधि नायकुन कादि लक्ष्मि जनिचनटटु ला
हिमगिरि सर्वभौमुनकु नोश्वरि संभव मोन्दि नट्लु पु
ण्यमतिक नोकु राध युदयम्बर कीर्ति लतालवाल मैं
थमरे भवत्पुराकृत महाकल सेपद चेप्प नोप्पदे।

'हे सहस्रगोप, तुम धन्य हो! तुम्हारे पूर्वजन्म के पुण्य फल के बारे में कहा नहीं जा सकता है। तुम श्रेष्ठ हो, इसलिए तुम्हारे घर में राधा का जन्म हुआ है। जिस प्रकार सागरराज की पुत्री महान् है और हिमवान्

की पुत्री पार्वती श्लाघनीय है, ठीक इसी प्रकार तुम्हारी पुत्री राधा भी।'

कृष्णावतार के बारे में शिवजो सहस्रगोप से इस प्रकार कहते हैं :

लोक सरक्षणार्थ लीला कुतूह
लात्मुडै भूगि नादि नारायणुन्डु
नन्दगोपुनि पुत्रु डनन्ग वरन्गे
मदन गोपाल मूर्ति संभवगु नोन्दि।

'आदिनारायण लोक-संरक्षणार्थ इस धरती पर नन्दगोप के पुत्र के रूप में जन्म ले चुके हैं।'

राधा-स्वयंवर की बात उनकी सहेली से सुनकर कृष्ण सहस्रगोप की नगरी में पहुँचते हैं। अद्भुत लावण्यसम्पन्न चक्रवर्ति मदन गोपाल को देखकर नगर की युवतियाँ आपस में इस प्रकार बातें कर रही हैं —

वीन्डटे चिटिकेन व्रेलि पै नालकुन्
 गोण्ड थेत्तिन समुद्दण्ड भुजुन्डु
वीन्डटे व्रेपल्ल वेन्न दों गिलि तिन
 मरगि वर्तिन्चेडु माथलान्डु
वीन्डटे कालिय विपुल फणामण्ड
 लमुन नाडिन केलि लास कुन्डु
वीन्डटे रेक्कलु विरिचि बकासुरु
 विगतासुन् जेसिन वीरमूर्ति

वीन्डटे कन्नतल्लि कि वेलय जगमु
 लालनम्बुनन् जूपिन यवघलुन्डु
वीन्डटे चौर्य रति लील व्रेमगुवुल
 वान्छलोडन् गूर्प नेर्चिन वन्नेलान्डु

'क्यों री सखी! क्या यह वही समुद्दण्ड भुजवाला है जिसने अपनी कानी उँगली पर गोवर्धन गिरि को उठाया था?

क्या यह वही मायावी है जो रेपल्ले (आन्ध्र के लोगों के लिए रेपल्ले यशोदा-नन्द का ग्राम है, जहाँ कृष्ण पाले-पोसे गये थे। आन्ध्र की व्रजभूमि रेपल्ले है) में माखन की चोरी कर खाने के लिए प्रसिद्ध हो चुका है? क्या यह वही नर्तक है जिसने कालिय के विपुल फणमण्डल पर नर्तन किया था? क्या यह वही वीर है जिसने बकासुर को मारा था? क्या यह वही महान् है जिसने अपनी माँ को अपने ही मुख में सारे लोकों को दिखाया था?'

श्रीकृष्ण वाणी को दूतिका बनाकर राधा के पास भेजते हैं। सरस्वती राधा से कृष्ण के बारे में यों बताती है—

जलजायताक्षु वक्षस्थलिन् जेर्पनि
 कुचमुलु कुचमुले कोमलांगि
नन्दजु सौन्दर्य कन्दलुल् चूडनि
 कन्नुलु कन्नुले कलुवकण्ठि
पद्मनाभुनि पाद पद्ममुल् सोकनि
 करमुलु करमुले कम्बुकण्ठि
देवकी सुतुनि वातेर चविचूडनि
 नालुक नालुके नागयान।

यच्युतुन के प्पुडुनु गोल्ल लाडनीनि
 जव्वनमु जव्वनमे पूर्ण चन्द्रवदन
गोपकुल सार्व भौमुनि गोष्ठिन् गननि
 पडन्ति जन्मम्बु जन्ममे पल्लवोष्ठि।

सरस्वती राधा के लिए कोमलांगी, कमलनयनी, कम्बुकण्ठी, चन्द्रवदनी और पल्लवोष्ठि जैसे विशेषणों का प्रयोग कर बताती है कि उसका जन्म तब तक निरर्थक है जब तक वह कृष्ण से नहीं मिलती। वह कहती है—'तुम्हारे ये कुच जब तक गाढालिंगन में श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल से न जा लगेंगे, तब तक कुच नहीं कहलायेंगे अथवा ऐसे कुचों को पाना भी व्यर्थ है। कृष्ण के सौन्दर्य को जो आँखें देख नहीं सकतीं, वे आँखें व्यर्थ हैं, वे आँखें कहलाने योग्य नहीं। पद्मनाभ के पाद-पद्मों को जो हाथ स्पर्श नहीं करते, वे हाथ हाथ नहीं कहलायेंगे। वह जीभ, जीभ नहीं कहलाती जो देवकी-सुत के होंठों का स्वाद नहीं

जानती। यह तुम्हारा यौवन किसलिए? अगर श्रीकृष्ण इसको सदा के लिए लूटता नहीं।'

सा० प्र०

चिर्रावूरु कामेश्वर राव

चिर्रावूरुकामेश्वर राव आधुनिक युग के कवि हैं। इनका विस्तृत परिचय अज्ञात है। इन्होंने सन् १९२४ ई० में 'प्रेममयि-राधा' की रचना की थी जो सन् १९३५ ई० में ओडिसा के बरंपुरम् से प्रकाशित हुई। इसमें प्रेममूर्ति राजा का अत्यन्त सरस चित्रण है। कथानक इस प्रकार है—श्रीकृष्ण राधा के वियोग में दुःखी हैं। बलराम को इस रहस्य का पता चलता है। वह राधा के पास दूत बनकर जाते हैं और श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाते हैं—'शतगोपु कन्य अब्जाक्षि राध नामनम्बु हरिन्चे' अर्थात् शतगोप की कन्या राधा ने मेरे मन को हर लिया है। उधर राधा भी गोवर्धनाचल के निकट ऋण-विमोचन तट पर रहकर विरह का अनुभव कर रही हैं। वह अपनी सहेली ललिता से श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन सुनकर खाना-पीना छोड़कर तप करने लगती हैं। अनेक वर्षों तक तपस्या करने के कारण उनके चारों ओर बाँबी लग जाती है। बलराम के द्वारा कृष्ण की स्थिति की सूचना पाकर भी उनका ध्यान भंग नहीं होता, तब सभी सहेलियाँ कृष्ण-सम्बन्धी गीतों का गान करती हैं, जिसे सुनकर राधा के नेत्र खुल जाते हैं। वह समस्त संसार को कृष्णमय देखती हैं। राधा की इस दशा की सूचना बलराम श्रीकृष्ण को देते हैं। इसके बाद मिलन की घड़ी आती है। कथा यहीं समाप्त हो जाती है।

प्रतीत होता है कि श्री कामेश्वर राव पर रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि और पर्वतीश्वर कवुलु की 'एकान्त-सेवा' का प्रभाव है।

सा० प्र०

चिलकपाटि रामानुज शर्मा

चिलकपाटि रामानुज शर्मा १९वीं-२०वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन्होंने 'राधिका-परिणयमु' नामक एक काव्य की रचना की थी, जिसका कथानक गर्ग-संहिता पर आधारित है। इसमें मौलिकता का अभाव है, किन्तु शैली रम्य और मनोहर है। इसमें गोपिकाओं के पूर्वजन्म का वर्णन है। इसके बाद राधा के जन्म की कथा है। गर्ग मुनि के आदेशानुसार राधा श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए घोर तप करती हैं। तपोनिष्ठा राधा को देखने के लिए श्रीकृष्ण अष्ट महिषियों के साथ आते हैं तथा सभी को राधा-तत्त्व समझाते हैं।

राधा का दर्शन करने के बाद श्रीकृष्ण व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें नींद नहीं आती। रुक्मिणी इस रहस्य को जान जाती है। वह श्रीकृष्ण से अनिद्रा का कारण पूछती है। श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से सब कुछ बता देते हैं। अन्ततः अष्टमहिषियाँ राधा को भी ले आती हैं।

कवि की दृष्टि में राधाकृष्ण की जोड़ी अनुपम है। राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वह कहता है कि राधा पूनम की रात की चाँदनी है। उसका शरीर स्वर्ण-लता के समान सुन्दर एवं आकर्षक है। कवि ने राधा की मनोदशा का वर्णन इन शब्दों में किया है—

तपमु फलिं चे न भवमु धन्यत जेन्देन, नीवु वच्चि नन् गृपन गनु गोन्न मात्रमुन नीरजलोचन! मत्सहायवै यपरिम्मितान् रागमुन नप्पुडु रासमुनन्दु नन्नु नीव पगत किंकरीत्व कलितोन्नति जेसितिवय्य पेर्मितोन।

राधा कहती हैं कि 'मैं धन्य हो गयी हूँ। मेरी तपस्या के बदले मुझे फल मिल चुका है। मेरी सहायता के लिए तुम आगे बढ़ सकते हो, यह जानकर मुझे आनन्द हो रहा है। तुमने प्रसन्नतापूर्वक मुझे रासलीलानन्द लेने का सुअवसर दिया है।'

चिलकपाटि रामानुज शर्मा ने राधा के चरित्र का समुज्ज्वल रूप अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। अपने

इस प्रयत्न में इन्हें अपेक्षित सफलता भी प्राप्त हुई है।

सा० प्र०

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु का जन्म सन् १८६७ ई० में गोदावरी जिले के खण्डवल्लि नामक गाँव में हुआ था। ये काश्यपगोत्रीय वेन्कय्या के सुपुत्र थे तथा द्रविडशाखा के आश्वलायन सूत्रों को माननेवाले ब्राह्मण थे। इनका बचपन का नाम पुन्नय्या था। सन् १८८६ ई० में राजमहेन्द्रवरमु (राममंड्री) से हाईस्कूल परीक्षा पास करके ये अध्यापक हो गये।

इन्होंने नाचन सोमना के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उत्तरहरिवंशम्' के प्रकाशन के अवसर पर उसके गेलीप्रूफ पढ़कर ही तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर ली थी। कुछ दिनों के बाद ये रतौंधी के शिकार हो गये और इनकी नेत्र-ज्योति समाप्त हो गयी। तब भी दूसरों से संस्कृत के ग्रन्थों का श्रवण करके इन्होंने ग्रन्थों को कंठस्थ कर लिया और भास के १३ नाटकों का तेलुगु में अनुवाद किया। इनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी।

भगवद्भक्त होने के साथ ही श्री चिलकमर्ति सच्चे राष्ट्रप्रेमी भी थे। एक बार विपिनचन्द्र पाल राजमहेन्द्रवरम में आयोजित एक सभा में भाषण देने आये। उस समय इन्होंने तत्क्षण एक देशभक्तिपरक छन्द की रचना की। उक्त छन्द इस प्रकार है—

भरत खण्डम्बु चक्कनि पाडियावु
हिन्दुकुलु लेग दूडलै थेड्चुचुन्ड
तेल्लवारनु गड्डुसरि गोल्लवारु
पिदुकु चुन्नारु मूतुलु बिगिय गट्टि।

'भारत-खण्ड एक दुधारू गाय है। हिन्दू इस गाय के बछड़े हैं। ये बछड़े दूध के लिए रो रहे हैं। पर गोरे ग्वाले उन बछड़ों के मुँह को बाँधकर दूध दुह रहे हैं।'

यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि पूरे आन्ध्र प्रदेश में गाया जाने लगा। इससे क्षुब्ध होकर अंग्रेज शासकों ने इनको बन्दी बनाने का प्रयास किया।

चिलकमर्ति एक श्रेष्ठ उपन्यासकार और विनोदप्रिय वक्ता भी थे। श्री वीरेशलिंगम् द्वारा प्रवर्तित 'चिन्तामणि-पुरस्कार' से ये 'रामचन्द्र विजयमु' नामक रचना के लिए पुरस्कृत हुए थे। इन्होंने तेलुगु उपन्यास को प्रौढ़ता प्रदान की।

ये अपने हास्य-व्यंग्य के लिए पूरे आन्ध्र प्रदेश में प्रसिद्ध हैं। इनके नाटकों में पद्य का भी समावेश है। 'गयोपाख्यानमु' इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। इसका कथानक श्रीकृष्ण से सम्बद्ध है। श्रीकृष्ण के क्रोध के शिकार गय (एक गन्धर्व) को अर्जुन अभयदान देते हैं। इस कारण श्रीकृष्ण और अर्जुन में युद्ध की स्थिति आ जाती है। किन्तु कृष्ण अपने सम्बन्धी अर्जुन से युद्ध नहीं चाहते थे। अतः वे अक्रूर के द्वारा सन्देश भेजते हैं। सन्देश इस प्रकार है :

प्रात चुट्टालमनि नोक्कि पलुकुमनिये
योरुल कै पग बूनुट योप्प दनिये
बडुचुन् दनवु बिंकम्नुलु दिड्डुवु मनियै
दलकु मोरिन पनि चेय दगदनि दनियै।

पाण्डवों से अक्रूर यों कह रहा है–'श्रीकृष्ण तुम्हें (पाण्डवों को) याद दिलाना चाहते हैं कि हम आपस में सम्बन्धी हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि अन्यों के लिए आपस में लड़ना अच्छी बात नहीं है। यौवन के उन्माद को भुला देने के लिए उन्होंने कहा है। अपनी शक्ति के बाहर का काम न ठानने के लिए भी कहा है।'

उक्त के उत्तर में अक्रूर से युधिष्ठिर इस प्रकार कहते हैं :

नलिनगर्भुनि गन्न नारायणुडु तानु बान्धवुन्डगुट
मा भाग्य मनुमु···गयुनिक्षमिन्चि पार्थुनि गावुम्मुमु।

'हे अक्रूर, उनसे (कृष्ण से) जाकर कहो कि यह हमारा सौभाग्य है कि कृष्ण जैसा व्यक्ति हमारा

सम्बन्धी है। ''''''गय को क्षमा कर अर्जुन की रक्षा करने के लिए कहो।'

पाण्डवों की खिल्ली उड़ानेवाले कृष्ण से अक्रूर के द्वारा अर्जुन निम्नलिखित व्यंग्ययुक्त बात कहलवा भेजना चाहते थे :

अल्लुडा रम्मनि यादरम्मुन बिल्ववंपु मामनु बट्टि चंप गलमें।

'जब कंस मामा ने तुम्हें बुलाया था, तब तुम्हें जाना था। पर तुमने किया क्या? उनको मार डाला। यह कैसी अनोखी बात है?'

चिलकर्मर्ति लक्ष्मी नरसिहमु बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। इनकी मृत्यु सन् १६४५ ई० में हुई।

सा० प्र०

चेन्गल्व कालय्या

तंजाऊर के दरबार में कई ऐसी वेश्याएँ थीं जो कविता लिखने में सरस्वती से होड़ लेती थीं। ऐसी कवियित्रियों में रामभद्रम्मा और कृष्णाजी मुख्य हैं। इन दोनों को सँवारकर उन्हें अग्र श्रेणी की कवियित्रियाँ बनाने का श्रेय चेन्गल्व कालय कवि को दिया जाता है। चेन्गल्व कालय विजयराघव नायक के पिता रघुनाथ नायक के समकालीन थे। रघुनाथ राजु या नायक के प्रिय चेमकूर वेन्कट श्रेष्ठ कवि थे। रघुनाथ नायकुडु ने ही वेन्कट कवि को प्रोत्साहन दिया था। चेन्गल्व कालय कवि की शिष्या रामभद्रम्मा का रघुनाथ नायक के दरबार में ऊँचा स्थान था, पर राजा ने इनकी (चेन्गल्व कालय कवि की) परवाह नहीं की। कवि अपनी दूरदृष्टि के कारण पिता रघुनाथ नायक को प्रशंसा न कर भावी राजा विजयराघव नायक की शरण में चले गये थे। युवराज ने इनको बढ़ावा दिया। फिर क्या था? इनका भाग्य खुल गया।

चन्द्ररेखा नामक एक वेश्या के कारण ये विजयराघव नायक के प्रिय मित्र हो गये थे। विजयराघव इनके इतने घनिष्ठ मित्र बन गये थे कि अपनी रानियों के संग भोजन और अल्पाहार के लिए इनके यहाँ आया करते थे। आते समय रिक्त हाथों से न आकर कालय्या और उनके परिवार के लोगों के लिए कुछ उपहार भी ले आते थे। कवि कालय्य चन्द्ररेखा के उपकार को भूल न पाये। अपने 'राजगोपाल-विलासमु' काव्य के सर्गान्त गद्य में इन्होंने चन्द्ररेखा का नाम इस प्रकार लिया है—'मुद्दु चेन्द्ररेखा नाथा, मुद्दु चन्द्ररेखा प्रेम स्थेमाभिरामा, मुद्दु चन्द्ररेखा मदना' आदि आदि।'

कालय्य विजयराघव नायक के दरबार के मुख्य कवि थे। श्रीवत्स गोत्रोद्भव कालय्या नियोगी ब्राह्मण थे। इनके दादा का नाम कालय मन्त्रि था। गंगमाम्बा इनकी मातामही थी। ये वेन्कटय्या और कृष्णमाम्बा के पुत्र थे। वेन्कटय्या 'रणरंग-गन्ध-वारण' नाम से प्रसिद्ध श्री कण्ठ भूपति के मन्त्री थे। 'पार्वती परिणयम्' नामक काव्य को रचनेवाले वेन्कटय्या शिव-भक्त थे। कालय्या भी शिव-पूजा-धुरन्धर थे। अपना परिचय देते हुए इन्होंने अपने को 'श्रीमत्कालहस्तीश्वर करुणाकटाक्षलब्ध सिद्ध सारस्वत कवि' कहा है। विजयराघव नायक के मित्र, बन्धु एवं मार्गदर्शक होने के कारण यह कहा जा सकता है कि कवि कालय्या भी सन् १६३३ से सन् १६४७ ई० तक जीवित रहे होंगे। इस प्रकार ये सत्रहवीं शती के कवि ठहरते हैं।

ये किस प्रान्त के रहनेवाले थे, यह बताना कठिन है। पर 'श्रीमत्कालहस्तीश्वर' शब्द के प्रयोग के आधार पर आलोचकों का अनुमान है कि कालय्या कालहस्ती के किसी निकटवर्ती गाँव अथवा कालहस्ती-क्षेत्र के ही निवासी रहे होंगे।

'राजगोपाल विलासमु' को श्री शिष्टा लक्ष्मी-कान्त शास्त्री एक लक्ष्य-ग्रन्थ मानते हैं। 'चम्पकारण्य महात्म्यमु' नामक स्थल-पुराण से कथानक का चुनाव हुआ था। वह इस प्रकार है—चम्पक वन में गोप्रलय नामक एक मुनि थे। इस मुनि ने घोर तपस्या की। हरि उनके सामने प्रकट हुए। मुनि ने वर माँगा कि

कृष्ण सदा के लिए अपनी सोलह हजार गोपिकाओं और अष्ट पत्नियों के साथ उस प्रान्त में वैसे ही विचरण करें, जैसे द्वारका में किया था। हरि मान गये। उस दिन से उस क्षेत्र को लोग 'दक्षिण द्वारका' के नाम से पुकारने लगे। इस सन्दर्भ का पद्य इस प्रकार है—

वारिज नाभ ! नीवु मुन्दु द्वारक लोपल गोप गोपिका
वारमु रुक्मिणी प्रमुख वारिज नेत्रलु सेव से यंगा
वारिधि तीर शैल वन वाटिकलन विहरिन्चु नट्टि या
मेरलु चम्पकाटवि समीपमुनन् मेरइम्पु मिम्पुगन् ।

'राजगोपाल विलासमु' में कुल ४७० पद्य और गद्य हैं। यह पाँच सर्गों (तेलुगु में सर्ग को आश्वास कहते हैं) का श्रृंगार-काव्य है। पहले चार सर्गों में अपनी अष्ट महिषियों के साथ श्रीकृष्ण के रमण का चित्रण है। अष्ट महिषियों को कवि ने आठ श्रृङ्गार-नायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया है। पाँचवें सर्ग में 'हरिद्रा नदी महात्म्यम्' का वर्णन है।

कृष्ण की श्रृङ्गार-चेष्टा को रुक्मिणी की सहेलियाँ देख लेती हैं। रुक्मिणी लज्जित होती है। लज्जा के कारण उसे क्रोध आता है। वह क्रोध में अपनी वेणी से कृष्ण का ताडन करती है। कृष्ण के आने में थोड़ा-सा समय लगा। कलहान्तरिता रुक्मिणी विरह-ताप से तपने लगी। पहले उसने कृष्ण से न बोलने का निर्णय लिया। अपने इस निर्णय को सहेलियों को सुनाया भी, परन्तु बाद में वह इस निर्णय के लिए पछताने लगी है। इसलिए सामने कृष्ण का जो चित्र था उसे गन्धादि से सजाया। अपने दोनों कुचों को उस चित्र से लगाया। इसे एक सहेली ने देख लिया। उसने रुक्मिणी का उपहास किया। रुक्मिणी ने उसका उत्तर इस प्रकार दिया—

विनुमु लतांगि ! येन् गोलुचु
वेलुपु वेंडितिन् गानि नेम्मदिन
गिनुक दोलंग वल्लभुनिन् गोर्तंन
सेयंग नीवु विन्टिवा ?

'हे मेरी सखि ! मैं नित्य जिस देव की पूजा करती हूँ उसकी पूजा मैंने आज भी की है। कृष्ण के प्रति अपने क्रोध को भूलकर उसकी स्तुति मैंने नहीं की है। क्या तुमने मेरे स्तुतिपाठ को सुना है ?'

आठों रानियों को कृष्ण सन्देशा भेजते हैं। सब यही सोच रही थीं कि कृष्ण उन्हींके यहाँ आ रहे हैं। किन्तु कृष्ण एक साथ आठों पत्नियों के साथ श्रृंगार-केलि करते हैं। भद्रा को एक निर्धारित स्थान पर आने के लिए एक सहेली के द्वारा सन्देशा भेजते हैं। वह जाकर भद्रा से इस प्रकार कह रही है—

समयोचित श्रृंगारमु
समुचितमुगन् बूनवम्म सारसमुखी ! नी
रमणुडु नातोन् जेप्पिन
समयस्थलिन् जेर निपुडे चन्नवलयुन् जुमी ।

'हे भद्रा ! तुम अभी इसी समय अपने प्रियतम कृष्ण से मिलने के लिए जा रही हो। (वह स्थान फूलों और लताओं से आच्छादित है।) संकेत-स्थल पर प्रियतम से मिलनेवाली जिस प्रकार का श्रृंगार करती है उसी प्रकार तुम भी कर लो। हे सारस-मुखी ! जो उचित है, वही करो।'

समास-रचना की दृष्टि से 'राजगोपाल विलासमु' के रचयिता चेन्गल्व कालय्या को आधुनिक विद्वानों का एक वर्ग नन्नय्या और श्रीनाथ के समकक्ष मानता है।

सा० प्र०

चेमकूर वेन्कट कवि

मात्र तंजाऊर दरबार के ही नहीं, पूरे दक्षिणान्ध्र-साहित्य के आलोक-स्तम्भ चेमकूर वेन्कट कवि तंजाऊर के राजाभोज श्री रघुनाथ नायकुडु के सखा, बन्धु एवं सहचर थे। उच्च जाति अथवा कुल के न होने के कारण तत्कालीन श्रेष्ठ साहित्यकारों में इनकी गणना पहले नहीं की जाती थी। दुःखी कवि के हृदय से आह निकली। इन्होंने कहा—"रचना चाहे जितनी

सुन्दर व प्रौढ़ क्यों न हो, समकालीन कवि और साहित्यकार उसकी प्रशंसा नहीं करते।" कबीर के दोहे 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये, ज्ञान' को माननेवाले पण्डितों ने धीरे-धीरे उनकी बहुत प्रशंसा की। इनका 'विजय-विलासमु' काव्य इतना विख्यात हुआ कि सुदूर पल्नाडु (आजकल का गुन्टूर जिला) के रहनेवाले ब्राह्मण-पक्षपाती अप्पकवि ने 'विजय-विलासमु' से कुछ उदाहरण अपने 'अप्पकवीयम्' में उद्धृत किया। चेमकूर वेन्कट कवि ने यह प्रमाणित किया है कि कवि कुल के कारण नहीं, अपने काव्य के सौन्दर्य के बल पर ही यश प्राप्त करता है।

चेमकूर वेन्कट कवि रघुनाथ रायलु या नायकुडु के दरबारी कवि थे। सन् १६११ ई० से लेकर सन् १६३३ ई० तक रघुनाथ नायक तंजाऊर की गद्दी पर थे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि चेमकूर वेन्कट कवि या वेन्कट राजु का जन्म सोलहवीं शती के चतुर्थ भाग में हुआ होगा और वे सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक जीवित रहे होंगे। उनकी प्रशंसा करते हुए रघुनाथ नायक ने कहा था—"तुम (चेमकूर वेन्कट कवि) हर एक पद्य में कुछ न कुछ चमत्कार दिखाने में समर्थ हो। तुम्हारे कविता मार्ग को कोई अपना नहीं सकता। ज्ञान में तुम्हारी बराबरी करनेवाला इस संसार में कोई नहीं है।" रघुनाथ नायकुडु स्वयं कवि-केसरी थे तथा उभय भाषा (संस्कृत और तेलुगु) प्रवीण थे। उन्हें व्यर्थ ही किसी कवि की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इन्होंने अपने पिता का नाम लक्ष्मणामात्य बताया है। माँ का नाम नहीं दिया है। इस बात को लेकर तेलुगु-साहित्य के आलोचक श्री वीरेश लिंगम् ने अनुमान लगाया है कि चेमकूर वेन्कट कवि लक्ष्मणामात्य की भोग-पत्नी के पुत्र होंगे। श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् पंतुल के इस विचार से सर्वश्री निडदवोलु वेन्कटराव, चागन्टि शेषय्या आदि सहमत हैं। शिष्टा लक्ष्मीकान्त शास्त्री चेमकूर वेन्कट कवि को ब्राह्मण मानते हैं। डॉ० आरुद्र इस बात को नगण्य समझकर उसकी चर्चा नहीं करते। वेन्कट कवि को अब्राह्मण माननेवाले आलोचक निम्नलिखित आधार का उल्लेख करते हैं—"कृष्णामण्डल के अमरावति को अपनी राजधानी बनाकर एक वासिरेड्डि वेन्कटाद्रि नायुडु राज करते थे। उनके दरबार में बुच्चि वेन्कु नामक एक कवि था। वह कवि वेश्या-पुत्र था। इस कवि का उपहास दरबार के अन्य कवियों ने किया था। कहा जाता है कि तब बुच्चि वेन्कु ने सबसे कहा था—'काव्य की आलोचना करना छोड़, कवि के कुल को लेकर आप लोग चर्चा कर रहे हैं। पर आप चेमकूरि वेन्कन्न को जानते हैं। कुल ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा है'।"

चेमकूर वेन्कट कवि सव्यसाची थे। वह कलम और तलवार दोनों के सिपाही थे। इनकी भाषा सरल और सरस मानी जाती है। लोकोक्तियों और मुहावरों का इन्होंने अपने काव्य में खुलकर प्रयोग किया है। पेद्दन्न और सूरन के बाद केवल चेमकूरि वेन्कट कवि का नाम तेलुगु-साहित्य में आदर के साथ लिया जाता है। इनके दो काव्य हैं: सारंगधर-चरित्र और विजय-विलासमु। 'विजय-विलासमु' के कृतिपति श्री रघुनाथ रायलु हैं। यह एक प्रबन्ध-काव्य है। 'सुभद्रा परिणयम्' इसकी कथावस्तु है। कवि चेमकूर वेन्कट राजु ने अपने इस काव्य को विजय-भवन नामक सौध में श्री रघुनाथ नायकुडु को सौंपा था। राजा ने अपनी विजय को मनाने के लिए इस भवन का निर्माण किया था। इस भवन में कृति-समर्पण-उत्सव का आयोजन हुआ था। इसलिए कवि ने अपने काव्य को 'विजय-विलासमु' नाम दिया।

कृष्ण-सम्बन्धी इनका एक छन्द उल्लेखनीय है। कपट-वेशधारी अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह सम्पन्न होनेवाला था। दोनों अलग-अलग स्थानों पर हरि-स्मरण करते हुए रात बिताते हैं।

गृष्ण कृष्णा यटन्चु म कोरवाणि
राम रामा यटन्चु न राजसुतुड्डु

'सुभद्रा 'कृष्ण-कृष्ण' कह रही है। कृष्ण का अर्थ अर्जुन भी है। ठीक उसी तरह अर्जुन 'राम' शब्द को रट रहा है। 'राम' का मतलब स्त्री है। इस तरह दोनों एक-दूसरे का नाम रट रहे हैं।'

राम और कृष्ण विष्णु के लिए पर्यायवाची शब्द हैं। श्रीकृष्ण का अर्थ श्री विष्णु है। कृष्ण भक्तवत्सल हैं, इसलिए दोनों कृष्ण का नाम ले रहे हैं।

सा० प्र०

चौडप्प

श्री कृष्णदेवरायलु के बाद साहित्य-श्री ने दक्षिण के राजदरबारों में, मुख्य रूप से तंजाऊर और मदुरै में शरण ली। यह तेलुगु-साहित्य का रीति-युग था। इस काल के अनेक कवियों में कवि चौडप्प ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। अपने उपदेशात्मक शतक में अश्लीलता के माध्यम से मानव-मनोविज्ञान का उल्लेख करनेवाले कवि चौडप्प सत्रहवीं शती के कवि थे। इन्होंने तंजाऊर के रघुनाथ रायलु की प्रज्ञा की प्रशंसा की है। इसके आधार पर श्री चागन्टि शेषय्या लिखते हैं—"कवि चौडप्प सन् १५८०-१६४० ई० के बीच रहे होंगे, ऐसा निर्णय किया जा सकता है।"

तेलुगु के पण्डित और सामान्यजन कवि चौडप्प से परिचित हैं। अश्लीलता के साथ इनका नाम जुड़ा है। पर आलोचकों का कहना है कि चौडप्प स्पष्टवादी हैं। ये 'नरो वा कुञ्जरो' सिद्धान्त में विश्वास रखनेवाले थे। इनका विश्वास था कि संसार में केवल उपदेश और अपशब्द (गालियाँ) बहुत प्रचलित हैं। मट्ल अनन्तराजु के दरबार के ये विदूषक थे। इनके एक साथी भी थे। उनका नाम घंटन था। ये (कवि चौडप्प) जाति के ब्राह्मण और कडप्पा जिले के पुल्लूर नामक गाँव के निवासी थे। इनका कुन्दवर-वंश में जन्म हुआ था। ये नागधीमणि के पुत्र थे। अपने-आपको ये हास्य-कवि, गान-विद्या-प्रवीण तथा सकल सौभाग्यगुणसम्पन्न मानते थे। धरणीनायकों को अपनी कविता के द्वारा प्रभावित करनेवाले कवि चौडप्प ने करीब दो सौ कन्दम् (तेलुगु का एक मात्रा छन्द) नामक छन्द लिखे हैं। ये दो सौ पद्य 'कवि चौडप्प शतकम्' में संकलित हैं। कन्दम् लिखने में महाभारत के अनुवादक तिक्कन्न सिद्धहस्त माने जाते हैं। तिक्कन्न के बाद केवल चौडप्प को ही लोग ऊँचा स्थान देते हैं। तेलुगु में एक कहावत है कि कन्दम् लिखनेवाले को ही कवि और सुअर को मारनेवाले को ही सैनिक कहना चाहिए। चौडप्प कन्दम् छन्द के श्रेष्ठ कवि हैं।

कवि चौडप्प मात्र शृङ्गारी नहीं, भक्त भी थे। कृष्ण की प्रशंसा में इन्होंने कई कन्दम् लिखे हैं। अपने शतक के आरम्भ में ये गोपाल देव की स्तुति करते हैं। अपने गाँव के गोपाल के बारे में इन्होंने इस प्रकार लिखा है—

श्रीपति पुल्लुरि पट्टण
गोपालुड्डु सदयुन्डगुचुन् गुन्ती सुतुलन्
गापाडि नटुल मिम्मुलन्
गापाडुनु कुन्दवरपु कवि चौडप्पा।

'लक्ष्मीपति, पुल्लूरि गोपाल बहुत सदय हैं। उन्होंने कुन्ती के पुत्रों की रक्षा की है। ठीक इसी प्रकार आपकी (पाठकों की) भी रक्षा करेंगे।'

तुलसी दलमुल हरिपद जलजम्बुल
पूज सेयु सरसुल यमद्रू
तलु चूचि येमि सेयन्गल रप्पा
कुन्दवरपु कवि चौडप्पा।

'जो तुलसी-दलों के साथ हरि-चरणारविन्दों की पूजा करते हैं उनके पास यमदूत नहीं फटकेंगे। उनका वे कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे।'

मुन्तेड्डु चमुरुन हरि कत्यन्त मनस्सिद्धि
दीप मनु दिम मिड्डु वान्
डन्तमुनन् जेरु लक्ष्मीकान्तुनि
पुरि गुम्दवरपु कवि चौडप्पा।

'कटोरोभर तेल में बाती डालकर जो प्रतिदिन हरि के सामने दिया जलाता है, वह मरणोपरान्त लक्ष्मीकान्त की पुरी को पहुँचेगा।'

सा० प्र०

जन्नमन्त्रि, कवि राक्षस

एक ही रचना के साथ दो रचनाकारों का नाम जोड़ना तेलुगु-साहित्य की एक चिरप्रतिष्ठित परम्परा है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह उसके लिए अभिशाप है या वरदान ? इस प्रकार की एक महत्त्वपूर्ण कृति है देवकीनन्दन-शतक। इसके साथ दो रचनाकारों का नाम ज़ुड़ा हुआ है। एक हैं जन्नमन्त्रि और दूसरे हैं कवि राक्षस। दोनों को ही 'देवकीनन्दन-शतक' का कर्ता सिद्ध करने के लिए विद्वानों में होड़-सी लगी हुई है।

'विक्रमार्कचरित्र' के कवि जक्कन्न ने अपने कृतिपति के पिता का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि कृष्ण को अपनी रचनाओं के द्वारा विधेय बनानेवाले सिद्धार्थ जन्नमन्त्रि हैं। वे गुरुजनों के आराधक और कविजनों के पोषक हैं तथा हरित मुनि मुख्य वंश रत्नाकरेन्द्र शशि के समान शोभित हैं। जक्कन्न के इस उल्लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि 'देवकीनन्दन-शतक' के रचयिता श्री जन्नमन्त्रि ही हैं। इनके उपस्थिति-काल के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि ये १३७२ ई० के आसपास रहे होंगे। इन्होंने स्वयं अपने विषय में लिखा है-"उद्दंड कविजन काव्य-रचना कर रहे हैं तब तुम क्यों इस प्रयत्न में लगे हो ?" इसके समाधान में वे यह लिखते हैं कि "मेरी रचना को एक बार पढ़ लो, तुम्हें मालूम हो जायगा कि जन्नमन्त्रि किस प्रकार का कवि है।" इन दो आधारों को छोड़कर दूसरा कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

इसके विपरीत 'देवकीनन्दन-शतक' की प्राचीन प्रतियों के आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि उसके रचनाकार कवि राक्षस ही हैं। जन्नमन्त्रि की स्तुति करनेवाले जक्कन्न अपने काव्य में कवि राक्षस का भी नाम लेते हैं। लगता है कि हमारे यहाँ संस्कृत एवं तेलुगु भाषा में लिखनेवाले राक्षस नामधारी दो कवि हैं। श्री मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री एक को संस्कृत का कवि मानते हैं और दूसरे को तेलुगु का। ये दोनों अलग-अलग व्यक्ति थे या एक ही थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अप्प कवि के साथ कस्तूरिरंग कवि ने भी कवि राक्षस का उल्लेख किया है। गौरन नामक कवि ने तेलुगुभाषियों के लिए संस्कृत में एक लक्षण-ग्रन्थ (लक्षण-दीपिका) की रचना की थी। इसमें तेलुगु लाक्षणिकों के तेलुगु पद्यों को उद्धृत किया गया है। इन्होंने कवि राक्षस का नाम लेते हुए उनके द्वारा लिखित संस्कृत श्लोकों को ही उदाहरण के रूप में 'लक्षग-दीपिका' में दिया है। यदि कवि राक्षस ने तेलुगु में लक्षण-ग्रन्थ की रचना की होती तो गौरन ने उसे अवश्य देखा होगा।

कवि राक्षस के नाम से छन्द-शास्त्र की एक पुस्तक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि राक्षस ने 'आदि नारायण चरित्र' नामक ग्रन्थ भी लिखा है। 'गजेन्द्रमोक्षम्' से सम्बद्ध एक छन्द लक्षण-ग्रन्थ से लिया गया है। इसकी रचना-शैली का एक नमूना देखिये :

श्रीयुत लोचनोज्जवल मरीचुलु भानु मरीचि विस्फुर
त्तोयज कान्ति तोड दुलतूगेड्डु पच्चनि पट्टु गट्टिथु
हग्राथत शंख चक्र रुचि रासि गदाधरु डेगुदन्चे ना
रायणु डार्त रक्ष परायणु डा करि राजु पालिकिन्।

'उज्ज्वल श्रीयुत लोचनवाले, सूर्यकान्ति के कारण विकसित कमल के समान शोभा देनेवाले, पीताम्बरधारी, शंख, चक्र, गदाधारी नारायण एक गजराज की पुकार सुनकर पहुँचे।'

नीचे जन्नमन्त्रि का भी एक छन्द उद्धृत किया जाता है जिससे विदित होता है कि वे उच्च कोटि के भक्त कवि थे—

अरथस् जन्दन गन्धि पैं, विदुरु पै नक्रूरु पै गुबंज पै
नरु पै, द्रौपदि पै गुचेल कुनि पै नन्द व्रज स्त्रील पै
बरगंगलु भगवत्कृपारसमु नापै गोन्त रानिम्मु मी
चरणाब्जम्बुल नम्मिनाड हरिकृष्णा ! देवकीनन्दना

करि नेलिन्दि हुळक्कि द्रौपदिकि कोकल् मेच्चि
इच्चिन्दि द
ब्बर काकासुरुनिन् गटाक्षमुन जेपट्टिन् दबद्धम् ब हो
शरणन्नन् बगवानि तम्मुनिकि राज्यम् बिच्चु-
टल्कल्ल यि
त्तरि नन्नेलिन निक्क मी कथलु कृष्णा ! देवकीनन्दना !

'हे कृष्ण ! हे देवकीनन्दन ! मुझ पर भी कृपा कीजिये। मैं आपके चरण-कमलों के भरोसे पर ही जी रहा हूँ। आपने तो चन्दन गन्धि, विदुर, अक्रूर, कुब्जा, अर्जुन, द्रौपदी, कुचेल (सुदामा), नन्द, व्रज की स्त्रियों आदि की रक्षा की है। मेरा भी उद्धार कीजिये। हे देवकीनन्दन ! जब तक आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तब तक मैं आपकी रक्षक उपाधि को मान नहीं सकूँगा। मैं सोचूँगा कि जितनी भी कहानियाँ आपके दयागुण के बारे में प्रचलित हैं वे एकदम झूठी हैं। आपके बारे में लोग कहते हैं कि आपने गजराज की रक्षा की। मैं इसे नहीं मानता। आपने द्रौपदी को वस्त्र दिये। मैं नहीं स्वीकार करता। आपने कागासुर पर दया की है। मैं विश्वास नहीं करता। आपने अपने शत्रु के भाई को राज्य दिया। मैं इसे सरासर असत्य कहता हूँ। आप पहले मेरी रक्षा कीजिये, तब मैं इन सबको मानूँगा।'

सा० प्र०

जन्नमन्त्रि शेषाद्रि शर्मा

जन्नमन्त्रि शेषाद्रि शर्मा का जन्म सन् १८८२ ई० में नेल्लूर जिले के कलवाई नामक गाँव में हुआ था। काश्यपगोत्रीय श्री शर्मा के पिता का नाम सुब्रमण्याव-धानी और माता का नाम श्रीमती कामाक्षम्मा था। आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले श्री शर्मा के पिता, पितामह और प्रपितामह अच्छे विद्वान् थे। ग्यारह वर्ष की आयु में ही ये वैरागियों के एक दल के साथ पैदल ही काशी आ गये और बड़े परिश्रम तथा लगन के साथ मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष एवं आयुर्वेद-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। ये अपने समय के अनेक विद्वानों के भी सम्पर्क में आये। कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् के प्रभाव से ये काव्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। ये कडप्पा के म्युनिसिपल हाईस्कूल में प्रधान अध्यापक भी रहे।

इन्होंने कई पुराणों का अनुवाद किया और लगभग १५० ग्रन्थों की रचना की, जिनमें ताण्डव कृष्ण भागवतमु, संग्रह भागवत, भारत रामायणमुलु, पाण्डवाज्ञातवासमु, श्रीशंकराचार्य चरितमु आदि मुख्य हैं। श्रीकृष्णावतार तत्त्वमु और श्री रामावतार तत्त्वमु के कारण ये अमर आलोचक बन गये। शर्मा जी कुशल अनुसंधायक भी थे। इनका निधन सन् १९५० ई० में हुआ।

सा० प्र०

टेकुमल्ल रंगशायी

ईसा की सत्रहवीं शती को अपनी प्रतिभा से प्रकाशित करनेवाले कवि पुष्पगिरि तिम्मन्न हैं। ये स्वयं कवि थे और अनेक कवियों के घनिष्ठ मित्र थे। अपने मित्रों को अमर बनाने के लिए ये उन्हींके नाम पर काव्य लिखा करते थे। तिम्मन्न के कुल पाँच मित्र थे। उनके नाम इस प्रकार हैं : कंकंटि पाप राजु (उत्तर रामायणम् और विष्णुमाया नाटक काव्य), धरणि देवुल रामय्या (दशावतार-चरित्र), कंकंटि नरसिंह राजु (विष्णुमाया नाटकम्—द्विपद-काव्य), मंचंकालि वेन्कट पति (काव्य नहीं मिल रहे हैं) और टेकुमल्ल रंगशायी (द्विपद में भागवत, जानकी परिणयम्, वीर राघवस्वामि-शतकम् आदि)। इस प्रकार टेकुमल्ल रंगशायी सत्रहवीं शती के कवि हैं।

टेकुमल्ल रंगशायी तेलुगु के प्रथम विश्वकोशकार हैं। श्रृंगार-रसप्रधान रचनाओं का सत्रहवीं शती में बाहुल्य था। फिर भी 'वाणीविलास वनमालिका' नाम से इन्होंने एक विश्वकोश की रचना की है। इस ग्रन्थ

के बारे में डॉ० आरुद्र लिखते हैं—"यह एक नये ढंग की रचना है। इसमें वेद, पुराण, उप-पुराण, स्मृति, षड्दर्शन, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्तम्, आयुर्वेद आदि का सार-संग्रह है। इसमें कुल २५७४ गद्य और पद्य हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ को चार सर्गों में विभक्त किया है। इस ग्रन्थ की रचना इन्होंने 'द्विपद भागवत काव्य' के पहले की थी या बाद में, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। रंगशायी के एक पद्य के अनुसार 'वाणीविलास वनमालिका' ग्रन्थ उनकी अन्तिम कृति है। किन्तु उन्हींके एक और पद्य के अनुसार यह उनकी प्रथम कृति ठहरती है।

रंगशायी मध्व ब्राह्मण (मध्वाचार्य के द्वैत-सिद्धान्त को माननेवाले) थे। डॉ० आरुद्र के अनुसार ये पुष्पगिरि तिम्मन्न के सहपाठी और धर्मपुरि के निवासी थे। श्री शेषय्या के अनुसार यह धर्मपुरि तेलंगाणा प्रदेश में है। रंगशायी के पूर्वजों में तिप्पमन्त्रि एक मुख्य व्यक्ति माने जाते हैं। ये इन्हीं तिप्पमन्त्रि के प्रपौत्र तथा तिप्पमाम्बा और कप्पयामात्य के पुत्र थे। आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले इस कवि का विवाह लक्षमाम्बा के साथ सम्पन्न हुआ था। इनके पाँच पुत्र थे।

रंगशायी द्वारा रचित काव्यों के आधार पर इतना निःसन्देह कह सकते हैं कि ये विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनके बारह स्कन्धोंवाले भागवत की प्रतियाँ पूर्ण रूप में नहीं मिल रही हैं। जो भाग मिल रहे हैं, उनका प्रकाशन नहीं हुआ है। अतः उदाहरणं उपलब्ध नहीं है।

सा० प्र०

तंजनगरमु तेवप्पेरुमाल्लय्या

तंजनगरमु तेवप्पेरुमाल्लय्या का जन्म सन् १८७२ ई० में मद्रास में हुआ था। ये तेलुगु, तमिल और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। 'सर्वदर्शन-संग्रह' और 'कर्णचरित्रमु' आदि इनके द्वारा रचित ग्रन्थ हैं। इन्होंने भगवद्गीता की विशेषार्थप्रतिपादक व्याख्या की तथा 'नन्नेचोड़' में कवियों की प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित कीं, साथ ही वसुचरित्र, मनुचरित्र आदि प्राचीन काव्यों की भूमिकाएँ तथा व्याख्याएँ भी लिखीं। इनके अतिरिक्त 'महाभारत', 'रामायण' और 'भागवत' के गद्यानुवाद द्वारा इन्होंने वैष्णव भक्ति-साहित्य की श्रीवृद्धि की। इनका निधन सन् १९२१ ई० में हुआ।

बा० रे०

तरिगोण्ड बेंकमाम्बा

तरिगोण्ड बेंकमाम्बा का जन्म कड़प्पा जिले के तरिगोण्डा नामक ग्राम में हुआ था। अल्प वय में ही ये विधवा हो गयीं थीं। इसके पश्चात् इन्होंने अपना शेष जीवन काव्य-रचना और ईश्वर-भजन में बिताया। 'राजयोग-सार' और 'वेंकटाचल माहात्म्य' इनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। इनके काव्य में विशुद्ध श्रृंगार-रस-वर्णन और शब्दालंकारों का अद्भुत चमत्कार द्रष्टव्य है। भागवत के दशम स्कन्ध को आपने द्विपद छन्दबद्ध कर काव्य का रूप दिया। इसमें इनकी अन्तस्थ कृष्ण-भक्ति व्यंजित हुई। ये एक परमभक्ता विदुषी नारी थीं। तेलुगु की कवयित्रियों में इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी मृत्यु सन् १८४० ई० में हुई।

बा० रे०

ताडेपल्लि पानकाल राय कवि

वेन्कय्यामात्य के पुत्र ताडेपल्लि पानकाल राय कवि आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले नियोगी ब्राह्मण थे। इन्होंने श्रीवत्स गोत्र में जन्म लेकर 'वैद्य-शास्त्रर्थ-संग्रहम्' नामक पद्य-काव्य लिखा है। विष्णु-भक्त होने के कारण इन्होंने सात शतकों की रचना की है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—मानस-बोध-शतकम्, चित्तबोध-शतकम्, पार्थसारधि-शतकम्, राम-शतकम्, रुक्मिणीपति-शतकम्, लक्ष्मी-शतकम् और मंगलाद्रि नरसिंह-शतकम्। अपने-आपको वे 'श्री वेणुगोपाल वरप्रसादलब्ध' और 'चतुर चमत्कार रस गुम्भितमेय मधुवचन रचना नल्प प्रवीण' मानते

थे। ये केवल वैद्यक-शास्त्र के ही नहीं, राजनीति और गणित-शास्त्र के भी पण्डित थे। इनके शतकों में भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक मिलता है। इन्होंने अपने मन को श्री हरि के चरण-कमलों के भ्रमर बनने का आदेश एक शतक में और दूसरे में चित्त को दिया है। मन और चित्त में अभेद मानते हुए श्री चागन्टि शेषय्या कहते हैं—"यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। एक ही कवि मन और चित्त को सम्बोधित कर शतक लिख सकते हैं। अतः दोनों एक ही कवि की रचनाएं हैं, दो की नहीं।" 'पार्थसारधि-शतकम्' में दास्य-भक्ति की चरम सीमा देख सकते हैं। तुलसी के समान 'नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो' उक्ति को बार-बार दुहराकर के भाव कहते हैं कि "तुम्हें छोड़कर मेरी रक्षा तथा उद्धार करनेवाला इस संसार में और कौन है ?" बालकृष्ण यशोदा मैया को अपने मुँह में सारे ब्रह्माण्ड को दिखाते हैं। इस घटना का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

चिन्न कुमार सन्नु दिन जेल्लुन नीकनि पल्क तल्लिल्ये
तन्ननु नीवु नम्मवदुलैननु जूड्मु नादु वक्त्र मं
चु निखिल प्रपञ्च मुनु जूपिति वैतल वाकिटन गृपा
सन्न मतिन् यशोदकु प्रसन्नुण्ड वै मुनु पार्थ सारधी

यशोदा कृष्ण से कह रही हैं-'हे मेरे लाड़ले पुत्र, तुम्हें माटी नहीं खानी है।' तब कृष्ण ने उत्तर दिया-'माँ ! मैं अस्वीकार करूँ तो तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करोगी। लो, मैं मुँह खोलता हूँ। तुम्हीं देख लो।' इतना कहकर जब कृष्ण ने मुँह खोला तो यशोदा ने उसमें सारे विश्व को देखा। इस प्रकार यशोदा को प्रसन्न करनेवाले पार्थसारथी, मैं तुम्हें भजता हूँ।'

'मनसा हरि पादमु लाश्रयिंपुमा' और 'श्रीहरि पदमुलि कोटि भजिन्चु चित्तमा' मुकुटवाले शतक भी रचना शैली की दृष्टि से उत्तम हैं।

ताडेपल्लि पानकाल राय कवि मंगलगिरि (गुंटूर जिला) के पानकाल नरसिंह स्वामी के भक्त थे। नरसिंह स्वामी पानक-(गुड़ या शक्कर से बना एक पान) प्रिय हैं। इसलिए भक्त लोग इन्हें पानकाल स्वामी या पानकाल रायुडु कहते हैं। कवि के माता-पिता ने अपने पुत्र को भी यही नाम दिया था। इस कवि की अन्य रचनाओं के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है।

सा० प्र०

तामरपल्लि तिम्मय्य

संस्कृत के हरिवंश-काव्य का अनुवाद चार व्यक्तियों ने किया है। वे हैं—एर्रन्न, सोमन, सूरन और तिम्मय्य। ग्रन्थ के अधिकांश भाग का अनुवाद येर्रन्न और सोमन ने किया था। 'वज्रनाभ-वध' नामक अंश को लेकर सूरन ने एक प्रबन्ध-काव्य की रचना की थी। आश्चर्यपर्व के 'शेषधर्म' नामक अंश का अनुवाद किसीने नहीं किया था। उस अंश का अनुवाद तामरपल्लि तिम्मय्य ने किया।

श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् के अनुसार कवि तिम्मय्या १९वीं शती के कवि हैं। इस बात का खण्डन डॉ० आरुद्र और श्री चागन्टि शेषय्या दोनों ने किया है। इनके पूर्वज ऊब्ब मन्त्रि विजयनगर-साम्राज्य के प्रौढ़देव रायलु के दरबार में रहते थे। प्रौढ़देव रायलु पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्ध में विद्यमान थे। एक-एक पीढ़ी के लिए पचीस वर्षों के हिसाब से डॉ० आरुद्र अनुमान लगाते हैं कि कवि तिम्मय्य सन् १५७५ ई० के आसपास के कवि होंगे। किन्तु उक्त काव्य के कृतिपति के नाम के आधार पर श्री चागन्टि शेषय्या इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि कवि ईसा की सत्रहवीं शती में उपस्थित रहे होंगे।

तामरपल्लि तिम्मय्या पण्डित-पुत्र थे। 'सभाभिरामम्' नामक काव्य के कवि शरण मन्त्रि इनके पिता थे। इन्दुपुरेमि के धर्मयामात्य का कहा मानकर तिम्मय्या ने 'शेषधर्म' नामक काव्य की रचना की थी। धर्मयामात्य के अनुरोध पर ही इन्होंने श्रीरामचन्द्र को कृतिपति बनाया था। तिम्मय्या

आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले नियोगी ब्राह्मण थे। इस भार्गव गोत्रोद्भव कवि को नागमाम्बा ने जन्म दिया था। कवि तिम्मय्या गोदावरी जिले के रामचन्द्रपुरम् तालुके के निवासी थे। तिम्मय्या के काल में प्रबन्ध-काव्यों की तूती हर जगह बोल रही थी। ऐसे समय में इन्होंने इस पौराणिक काव्य की रचना सफलतापूर्वक की है। तिम्मय्या के कारण 'शेषधर्म' आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित हुआ।

'शेषधर्म' की कथा इस प्रकार है : पाण्डव वनवास कर रहे थे। भीष्म को अपने साथ लेकर श्रीकृष्ण एक बार काम्यक-वन पहुँचे। युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण ने धर्म, दान एवं कर्तव्य-सम्बन्धी कुछ कहानियाँ सुनायीं। इसके उपरान्त भीष्म ने भी कुछ कहानियाँ कहीं थीं। पुण्य-क्षेत्रों की महिमा के साथ पुण्य-व्रतों का वर्णन भी इस काव्य में देखा जा सकता है। कृष्ण-सम्बन्धी दो उदाहरण देखिये—

"सेम में कृष्ण। मीकु यदु सिम्हमु रामुन्डु लेस्स युन्नवा ठेमरि वृष्णि भोजुलकु ठीवियै रुक्मिणि सत्यभाम युं ब्रेम भजिन्तुरे सुतुलु पेम्पु वहिन्तुरे वैरि भूपतुल् नेममु तोड नेल्लपुडु नीपद पद्ममु लाश्रयिन्तुरे।"

'हे कृष्ण! आप कुशल से तो हैं? आपके भाई बलराम जो यदुकुलसिंह हैं, कैसे हैं? आपके सखा भोज (तिम्मय्या वृष्णि-भोज शब्द का प्रयोग करते हैं) ठाट के साथ हैं न? क्या रुक्मिणी सत्यभामा आदि पत्नियाँ प्रेम के साथ आपकी पूजा कर रही हैं? आपके पुत्र पितृभक्ति का अनुसरण कर रहे हैं न? शत्रु-पक्ष के राजा, जिनको आप हरा चुके हैं, क्या पाद-पूजा कर रहे हैं?'

"तोडि कुलांगनल् मणुलतोन् गनकम्बुल तोडवेन्डितो वाडल वाडलन् सिरिक्कि वन्नेलु वेट्टुचु नाध पुत्रुलं गूडि सुखिम्पगा मनमु कूटिकि गूरकु जिक्कि बिड्डल ल्लाडन्ग नेल्लकालमु महत्माकनुन् गोनुचुंड शक्यमें।"

'पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी श्रीकृष्ण से अपनी रामकहानी सुना रही हैं। अन्य कुलीन स्त्रियाँ मणिहारों के साथ सोने-चाँदी के आभूषणों को पहनकर लक्ष्मी के सौन्दर्य को बढ़ाने के प्रयत्न में जुटी हुई हैं। वे अपने पति एवं पुत्रों के साथ सुखमय जीवन बिता रही हैं। पर यहाँ हम अन्नहीन हैं, वस्त्रहीन हैं। अनेक कष्ट झेल रहे हैं। बच्चे तड़प रहे हैं। कब तक हम अच्छे दिनों की प्रतीक्षा में बैठे रहेंगे?'

सा० प्र०

ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु

आन्ध्र प्रदेश में माताओं द्वारा शिशुओं को पालने में सुलाकर पेंग देते हुए अक्सर गायी जानेवाली लोरी 'जो अच्युतानन्द जो जो मुकुन्दा, लालि परमानन्द राम गोविन्दा' के रचयिता ताल्लपाक अन्नमाचार्य हैं। ये आन्ध्र प्रदेश के लोककवि हैं। इनकी रचनाएँ पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही जन-जन में गायी जाती रही हैं। बच्चों के हठ के कारण कभी-कभी माँ को घर का काम-काज करना भी मुश्किल हो जाता है। बच्चे खाना खाते समय तो और भी तंग करते हैं। ऐसे अवसर पर उनको खिलाने के लिए आन्ध्र की माताएँ अन्नमाचार्य का ही यह गीत गाती हैं—'चन्द मामा रावे (आओ), जाबिल्लि (चन्द्रमा) रावे (आओ), कोन्डेक्कि (पहाड़ पर चढ़कर) रावे, गोगिपूलु (एक तरह के फूल) तेवे (लाओ)।' अगर अन्नमय्या ने मात्र इन दो गीतों को ही लिखा होता तो भी वे तेलुगु-साहित्य के वाग्गेयकार, कर्णाटक-संगीत के मूल स्तम्भ और लोकप्रिय कवि बन सकते थे। इसके लिए पूरा आन्ध्र प्रदेश इनका ऋणी है।

ताल्लपाक अन्नमय्या या अन्नमाचार्य (सन् १४२४-१५०३ ई०) पोत्तापिनाडु (आधुनिक कडप्पा जिले के राजम्पेटा-सिद्धवटम् क्षेत्र) के ताल्लपाक ग्राम के निवासी थे। इनके पूर्वज अधिक विद्वान् नहीं थे, पर अन्नमय्या के बाद इस वंश में विद्यावाचस्पतियों का ताँता-सा लग गया।

अन्नमय्या की माँ लक्कम एक अच्छी गायिका थीं। वे तिरुपति के वेंकटेश्वर स्वामी की आराधिका थीं। अन्नमय्या को संगीत की शिक्षा अपनी माँ से मिली। सम्भवतः इसीलिए बचपन से ही ये संगीत-प्रेमी बन गये।

इनके पिता के बारे में पण्डितों में मतभेद है। डॉ० आरुद्र ने नारायण सूरि को अन्नमय्या का दादा माना है (देखिये–समग्र आन्ध्र साहित्यम्, छठा भाग, पृष्ठ-संख्या १४२) तो डॉ० तिम्मावज्झल कोदण्ड रामय्या उन्हें अन्नमय्या का पिता मानते हैं। (विज्ञान सर्वस्वमु–चतुर्थ खण्ड–तेलुगु-संस्कृति, पृ० सं० ७१४) इनकी वंश-परम्परा विद्वान् कैसे बनी ? इस सम्बन्ध में डॉ० आरुद्र एक कथा बताते हैं–"नारायण सूरि के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। अध्यापकों द्वारा दिये जानेवाले दण्ड से वे बहुत डरते थे। अतः वह घर छोड़कर भाग गये। ऊटकूरु के चिन्तलम्मा के मन्दिर में साँप की एक बाँबी थी। वहाँ जाकर उन्होंने बाँबी में हाथ डालकर भरने का निश्चय किया। वे बाँबी में हाथ डालने ही वाले थे कि एक पुनीत स्त्री (शायद देवी चिन्तलम्मा) ने उन्हें समझाया कि तुम अपने गाँव ताल्लपाक चले जाओ। वहाँ केशव का मन्दिर है। उसमें जाकर शिव की आराधना करो। तुम्हें स्वतः विद्या मिल जायगी। नारायण सूरि ताल्लपाक पहुँचकर स्वामी से प्रार्थना करने लगे कि–"हे स्वामी ! तुम तो सरस्वती के श्वशुर हो। मुझे विद्या प्रदान करो।" भगवान् ने उनकी प्रार्थना सुन ली। वे देखते ही देखते ज्ञानी बन गये। इस घटना के बाद ताल्लपाक के वंशज अपनी विद्वत्ता के लिए पूरे आन्ध्र प्रदेश में प्रसिद्ध हो गये।"

अन्नमय्या के बारे में एक अन्य किंवदन्ती इस प्रकार है–"अन्नमय्या वेद-पाठ को छोड़कर तेलुगु में गीतों की रचना करने लगे। ये हमेशा वेंकटेश्वर स्वामी के विषय में सोचते रहते थे और गीत बना-बनाकर गाया करते थे। गाँव-घर के लोग इनका अनादर करने लगे। हर कोई एक न एक काम इन्हें करने के लिए कहता। ये चुपचाप सबका काम कर देते थे। पशुओं के लिए घास काटकर लाने का काम भाभी ने इन्हें सौंपा था। एक दिन ये घास काट रहे थे और गुनगुना रहे थे। घास के बदले उँगली कट गयी। लहू बहने लगा। दर्द के कारण उनके मुँह से श्रीहरि निकल पड़ा। तुरन्त उन्हें कुछ यांद आ गया। सब छोड़कर तिरुपति की ओर भागे। मात्र पैरों में जूते थे। ये चल पड़े। तिरुपति पहुँचे। भक्त लोग तिरुमला-दर्शन के लिए सीढ़ियों के मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे। भक्तिभाव में डूबे हुए भक्तगण कुछ गा रहे थे। एक ऐसी ही मण्डली से अन्नमय्या मिल गये। तीन-चौथाई रास्ता तय कर चुके थे। जूतों के कारण चला नहीं जा रहा था। थककर एक जगह बैठ गये। बाँसों के नीचे काले अन्नमय्या कन्हैया लग रहे थे। जोरों की भूख लगी थी। ऐसे ही ये बेहोश हो गये। एक स्त्री ने इन्हें जगाकर पूछा–"क्या बात है ?" अन्नमय्या ने कहा—"माँ, मैं भूखा हूँ। दूर से आ रहा हूँ। बहुत थक गया हूँ। भगवान् का दर्शन करवा दो।" माँ ने उनको सान्त्वना दी। अपने पास जो प्रसाद था उसे उन्हें खिलाया। जूतों को उतारकर तिरुमला जाने के लिए कहा और देखते ही देखते वह अदृश्य हो गयी। अन्नमय्या को विश्वास हो गया कि वह स्त्री और कोई नहीं, स्वयं भगवान् बालाजी की पत्नी 'अलमेलु-मंगा हैं।" उनकी प्रशस्ति में अन्नमय्या ने तुरन्त एक शतक की रचना कर डाली। उसका एक छन्द देखिये–

ओ ललितांगि यो कलिकि यो येल जव्वनि यो वधूटि यो
गोल ! मेरुन्गु जूपु कनु गोनल नो अलमेलु मंग म
म्मेलिन तल्लि नी विभुन किन्चुक मा देस जूपु मन्चुनी
पालिकि जेरि म्रोक्कुदुरु पद्म भवादुलु वेंकटेश्वरा।

'हे ललितांगि ! हे मुग्धमोहन सुन्दरी ! हे नित्य यौवने ! हे वधूटि ! हे मेरी माँ ! अपने पति को दिखाओ। पद्मभवादि देवता भी अपनी बात भगवान् तक पहुँचाने के लिए तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं।'

'वेंकटेश्वरा' शब्द से अन्त होनेवाले इस शतक में अन्नमय्या ने कल्पना की बड़ी ऊँची उड़ान भरी है। इन्होंने ऐसी-ऐसी बातों की कल्पना की है जो केवल वेंकटेश्वर और उनकी पत्नी अलमेलुमंगा ही जानते हैं। इनको वे 'देवरहस्य' कहते हैं। इस शतक में कहीं-कहीं शृङ्गार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। इन्होंने इस शतक के बाद बारह और शतकों की रचना की।

कहा जाता है कि एक बार अन्नमय्या पहाड़ पारकर तिरुपति के मन्दिर में पहुँचे। अन्य भक्तों की तरह भगवान् का दर्शन कर हुण्डी में एक कासु (उस जमाने का सबसे छोटा सिक्का) डाल बाहर आये। तृप्ति नहीं मिली तो पुनः एक बार दर्शन किया। मन्दिर में बैठकर गीत बना-बनाकर गुनगुनाने लगे। भक्तों ने इनके गीतों को सुना। सबने बड़ी प्रशंसा की। प्रसाद लेकर ये वहाँ से बाहर आ गये।

दूसरे दिन ये आकाशगंगा और पापविनाशन में स्नान कर गीले कपड़ों को वहीं सुखाने लगे। सोचा, जब तक कपड़े सूख रहे हैं तब तक एक शतक ही क्यों न बना डालूँ? और इन्होंने तुरन्त एक शतक की रचना कर डाली। थोड़ी देर बाद ये मन्दिर पहुँचे। मन्दिर का फाटक बन्द था। फाटक खुलने की प्रतीक्षा में बैठे-बैठे पद-रचना करने लगे। सौ पदों के बाद मन्दिर का द्वार अपने-आप खुल गया। यह देखकर पुरोहितगण दाँतों तले उँगली दबाने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि यह कोई साधारण बालक नहीं है। उन्होंने चन्दन-प्रसादादि से इनको सन्तुष्ट किया।

तिरुपति में उन दिनों घन विष्णुवु नामक एक सुप्रसिद्ध वैष्णव यति रहते थे। यति ने काले अन्नमय्या को देखा। उन्होंने उस बालक को भी वैष्णव बनाना चाहा। रात को भगवान् ने भी यही आदेश दिया। दूसरे दिन यति ने बालक से वैष्णव-दीक्षा ग्रहण करने के लिए कहा। बालक मान गया। इस प्रकार अन्नमय्या वैष्णव बन गये।

अन्नमय्या जब घर नहीं पहुँचे तो माँ का दिल घबड़ा उठा। अपने पुत्र को ढूँढ़ने के लिए उन्होंने लोगों को चारों ओर दौड़ाया। उनका दिल बार-बार कह रहा था कि शायद मेरा पुत्र तिरुपति में होगा। वह तिरुपति पहुँची। वहाँ अपने पुत्र को देखा। उनसे घर लौट चलने के लिए कहा। अन्नमय्या घर लौटने के लिए तैयार नहीं हुए। माँ ने भगवान् से प्रार्थना की। पुत्र दुविधा में पड़ गया। वह कुछ निर्णय नहीं ले पाया। सोचते-सोचते वह सो गया। भगवान् ने उसे स्वप्न में आदेश दिया कि अपनी माँ का कहना मानो और घर चले जाओ। ये माँ के साथ घर चले गये। अन्नमय्या के जीवन पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा। यह घटना उनके जीवन के सोलहवें वर्ष में घटी थी। इस हिसाब से इतिहासकार इनकी जन्म-तिथि सन् १४२४ ई० मानते हैं। स्वप्न में ही शायद भगवान् ने गीतों की रचना करने के लिए भी इन्हें आदेश दिया होगा—ऐसा डॉ० आरुद्र समझते हैं।

लक्कम्मा चाहती थीं कि बेटे का विवाह हो जाय। किन्तु सदा हरि-नाम-स्मरण करनेवाले अन्नमय्या को अपना दामाद बनाने के लिए कोई तैयार नहीं था। पर अन्नमय्या को देखने के बाद उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर एक सज्जन ने उन्हें अपना दामाद बनाना स्वीकार कर लिया। उसने एक साथ ही अपनी दो कन्याओं का विवाह इनसे कर दिया। उन कन्याओं के नाम थे–तिम्मक्क और अक्कलम्म। विवाह के बाद अन्नमय्या अहोबलम् चले गये। वहाँ आदिवण शठगोप मुनि के शिष्य बन इन्होंने दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया। अहोबल नरसिंह स्वामी के गुणों को अन्नमय्या ने कीर्तनों में गाया। हिरण्यकशिपु के गदाघात से स्तम्भ के टूटने और उसमें से उग्र नृसिंह भगवान् के निकलने का चित्रण इन्होंने इन शब्दों में किया है—

अटमरि पेट पेट मनि बेट्लेगसि
चिट चिट रवमुलु जिरुत पोग लेगसि

तट तट मनु चुनु तरलि व्रथ्थलै
पट पट मनु चु पगिले कंभमु।

' 'पेट-पेट' शब्द के साथ पहले खम्भे में दरारें दिखाई देने लगीं। बाद में 'चिट-चिट' ध्वनि के साथ अंगारे और धुँआ उठने लगा। 'तट-त्तट' शब्द के साथ खम्भे के टुकड़े हो गये और 'पट-पट' शब्द के साथ वह धराशायी हो गया।'

उग्र नृसिंह भगवान् ही शान्त नृसिंह बन अहोबलम् में बसे हैं। भगवान् वेंकटेश्वर की मूर्ति अन्नमय्या के अनुसार शान्त नृसिंह की ही है। अन्नमय्या कभी तिरुपति में रहते तो कभी ताल्लपाक या अहोबलम् में। इस बीच इन्होंने वाल्मीकि रामायण का गेय छन्दों में अनुवाद किया। इनका यह अनुवाद बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसकी ख्याति सुनकर सालुव गुन्ड नरसिंह राय ने अन्नमय्या से मिलना चाहा। सालुव गुन्ड नरसिंह राय टंगुटूरु के प्रबन्धक और सेनापति थे। इतना ही नहीं, वे अन्नमय्या के बाल-सखा भी थे। दोनों की मुलाकात हुई। राजा मित्र को अपने साथ टंगुटूरु ले गये। वे रोज इनसे कीर्तन (गीत) सुनते थे और अपार आनन्द का अनुभव करते थे। मित्र के आशीर्वाद से वे सेनापति से राजा बनना चाहते थे। उन्होंने अन्नमय्या से कहा—"जैसे श्रीकृष्ण की सहायता से अर्जुन ने साम्राज्य को पाया, वैसे ही मैं आपकी सहायता से राजपद प्राप्त करूँगा।" अन्नमय्या ने उन्हें राजपद-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। भाग्य ने साथ दिया और सालुव नरसिंह राय निरन्तर आगे बढ़ते गये। विजयनगर-साम्राज्य पर हमला कर उन्होंने उसे जीत लिया और राजा बन बैठे। पेनुगोन्डा (अनन्तपुर जिले का एक केन्द्र, जो विजयनगर-साम्राज्य की राजधानी थी) में उनका राजतिलक हुआ। अपने बाल-सखा के आशीर्वाद को सालुव नरसिंह राय भूले नहीं। उन्हें अपने पास बुलवा लिया। अन्नमय्या पोनुगोन्डा चले गये। वहाँ इनका खूब आदर-सत्कार हुआ। इस तरह इनका जीवन सुख से व्यतीत होने लगा। ये कभी पोनुगोन्डा रहते, कभी अपने गाँव और कभी तिरुपति। कभी-कभी आसपास के पुण्य क्षेत्रों को देखने में अपना समय बिताते थे।

एक बार की बात है, अन्नमय्या पेनुगोन्डा से बाहर थे। नरसिंह राय का उन्हें बुलावा आया। अन्नमय्या पेनुगोन्डा पहुँचे। वहाँ राजा के अनुरोध पर शृंगार-सम्बन्धी गीतों को गाकर सुनाया। एक गीत इस प्रकार है—

कलिकि चकोराक्षि किन् गड गन्नुलु गेम्पै तोच्चिन
चेलुवम् बिण्पु डिदेमो चिन्तिम्परु चेलुलु
नलुवुन प्राणेश्वरुनि पै नाटिन या कोनचूपुलु
निलुवुन बेरुकग नन्टिन नेत्तुरु गादु गदा ?

'अलमेलु की आँखों के छोर लाल हैं। वह अपने पति वेंकटेश्वर को देख रही थीं। आँखें वहीं गड़ गयी थीं। सहेलियों ने जबर्दस्ती उन आँखों को खींचा। इस तरह खींचे जाने के कारण कदाचित् रक्त बह गया हो। कहीं इस रक्त के कारण आँखें लाल तो नहीं हुई ?'

इस कीर्तन को सुनकर सालुव नरसिंह राय मुग्ध हो गये। उन्होंने अन्नमय्या से इसे बार-बार गाने को कहा। अन्नमय्या ने इसे अनेक बार गाया। फिर भी नरसिंह राय को तृप्ति नहीं मिली। मन को एक कीड़ा कुरेदने लगा। वे सोचने लगे, "अगर अन्नमय्या मेरे सम्बन्ध में भी इस प्रकार की शृङ्गारपरक रचना करें तो कितना अच्छा हो ?" अपनी इस इच्छा को उन्होंने प्रकट भी कर दिया। पर अन्नमय्या ने उसे ठुकराते हुए कहा—"नरहरि का कीर्तन करनेवाली जीभ भला किसी नर का कीर्तन कैसे कर सकेगी ?" यह सुनकर नरसिंह राय को क्रोध आ गया। उन्होंने अन्नमय्या को जेल में डलवा दिया। पर अन्नमय्या की जजीरें अपने-आप खुल गयीं। राजा ने पुनः हथकड़ियाँ लगवा दीं। अन्नमय्या ने भगवान् का

गुणगान किया। हथकड़ियाँ पुनः अपने-आप खुल गयीं। यह चमत्कार देखकर राजा ने उनसे क्षमा माँगी और कहार बनकर उनकी पालकी ढोयी। अन्नमय्या ने राजा को क्षमा-दान दिया। इस प्रकार नरसिंहराय कर्णाटक-साम्राज्य के अधिपति बने और अन्नमय्या कर्णाटक-संगीत के मूल स्तम्भ।

अपने जीवन की सान्ध्यवेला में अन्नमय्या ने तिरुपति में रहकर अनेक संकीर्तनों की रचना की। प्रदेश के चारों कोनों में इनका नाम फैल गया। इनसे मिलने के लिए कर्णाटक के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ और गीतकार सन्त पुरन्दरदास आये। इनके संकीर्तनों को सुनकर पुरन्दरदास ने कहा—"अन्नमय्या, तुम तो वेंकटेश्वर के अवतार हो।" पुरन्दरदास के संकीर्तनों को सुनकर अन्नमय्या ने भी उनकी प्रशंसा की और कहा कि "आप पांडुरंग विट्ठल के अवतार हैं।" इस तरह दोनों ने एक-दूसरे की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अन्नमय्या के पुत्र और पुत्री भी कवित्व-शक्ति से सम्पन्न थे। पुत्री के पति रेवणूरि तिरुमल कोन्डय्या भी कवि थे। उन्होंने 'रामचन्द्रोपाख्यानम्' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की। इतना ही नहीं, स्वयं अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का भी एक अच्छी कवियित्री थीं। 'सुभद्रा-कल्याणम्' नामक ग्रन्थ इन्हीं-का रचा हुआ कहा जाता है।

अन्नमय्या ने वैष्णव-धर्मावलम्बी होने के कारण मधुरा भक्ति का प्रचार किया। इन पर तमिलनाडु के भक्त कवियों का गहरा प्रभाव था। स्वरचित पदों के द्वारा वैष्णव-धर्म का प्रचार करनेवाले तेलुगु कवियों में अन्नमय्या अग्रगण्य हैं।

श्रीकृष्ण के विरुद्ध शिकायत लेकर गोपियाँ माँ यशोदा के पास पहुँचती हैं। गोपिकाओं के प्रति माँ यशोदा का कथन अन्नमय्या के इन शब्दों में देखिये—

कानरटे, पेन्चरटे, कटकटा बिड्डुलनु
नेनू मीवलेने कन्टि नेय्यमैन बिड्डुनु
बाइम्पारवेसिन पालु वेन्नथुनु
चेइ पेट्टकुन्दुरा चिन्नि बिड्डुलु
मी इन्ड्लु जतनालु मीरु सेसु कोनक
पाथक दूरे रेमे प्रति लेनि बड्डुनु।

'ओ री! जरा देखो तो सही। क्या तुम लोग बच्चों को पाल-पोस नहीं रही हो क्या? मैं भी तो तुम्हारी तरह एक माँ हूँ। दूध, मक्खन अगर सामने हो तो कौन बच्चा पात्र में हाथ डाले बिना रह सकता है? अरे! तुम्हें तो यत्न से सबका प्रबन्ध करना चाहिए था। अपना कर्तव्य भूलकर इस प्रकार क्यों शिकायत कर रही हो?'

कहते हैं, अन्नमय्या ने एक 'द्विपद रामायण' संकीर्तन करने की दृष्टि से लिखा था, पर आज वह उपलब्ध नहीं है। 'शृङ्गार-मञ्जरी' काव्य के रचयिता के साथ भी अन्नमय्या का नाम जुड़ा हुआ है। यह ग्रन्थ तिरुवेंगलनाथ देव के नाम से अर्पित है। इनके द्वारा लिखे गये बारह शतकों में से केवल 'वेंकटेश्वर शतक' ही उपलब्ध है। इनके पौत्र ने लिखा है कि अन्नमय्या ने 'वेंक्कटाचल महात्म्यम्' नामक ग्रन्थ की रचना करने के पहले ही 'संकीर्तन-लक्षण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। जनश्रुति के अनुसार अन्नमय्या ने बत्तीस हजार संकीर्तन लिखे थे। उनमे से आज मात्र दो हजार संकीर्तन उपलब्ध हैं।

श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने लिखा है—"जो अन्नमय्या को पढ़ नहीं सकते, वे तेलुगु कभी नहीं सीख सकते।" इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं है।

सा० प्र०

ताल्लपाक चिन तिरुमलय्या

ताल्लपाक पेद तिरुमलय्या के ज्येष्ठ पुत्र चिन तिरुमलय्या अपने पिता और पितामह के समान कवि, विद्वान् और अष्टभाषा-कोविद थे। इन्होंने भावपूर्ण

संकीर्तनों के द्वारा श्री वेंकटेश्वर स्वामी की आराधना की है। उपनयन के समय दिया जानेवाला ब्रह्मोपदेश इन्होंने अपने दादा अन्नमय्या से पाया था। अपने जीवन-काल में चिन तिरुमलय्या ने तीन ग्रन्थों की रचना की। वे इस प्रकार हैं—अध्यात्म शृंगार कीर्तनलु, तेलुगु संकीर्तन-लक्षणम् और अष्टभाषा दण्डकम्।

सा० प्र०

ताल्लपाक चिन तिरुवेन्गल नायुडु

ताल्लपाक पेद तिरुमलय्या के चौथे पुत्र चिन तिरुमलय्या ताल्लपाक-वंश के प्रसिद्ध कवि थे। लोग इन्हें चिन्नन्न के नाम से भी जानते थे। इनका उपस्थिति-काल सन् १४९८-१५६१ ई० के बीच माना जाता है। चिन्नन्न के बारे में यह प्रसिद्ध है कि ये एक दिन में एक हजार द्विपदों (एक छन्द-विशेष) की रचना कर लिया करते थे। 'कवि शिरः कम्प योग्य प्रति द्विपद' इनकी उपाधि थी। द्विपद के लक्षणों को जिस स्पष्टता से इन्होंने बताया उतनी स्पष्टता से अन्य लाक्षणिक नहीं समझा पाये हैं।

चिन्नन्न उद्दण्ड कवि माने जाते थे। इन्होंने अपनी कविता से भगवान् को प्रसन्न कर उनसे मकर-कुण्डल पाया था। कविता की परिभाषा देते हुए इन्होंने अपने 'अष्टमहिषी कल्याण' में लिखा है—कविता-कस्तूरी वीणा की झंकार के समान होनी चाहिए, वेणुनाद के बराबर होनी चाहिए, खिली मल्लिका के समान होनी चाहिए।

सरस्वती कटाक्ष (जलजात वासिनि चनुबाल-पुष्टि) से कविता लिखनेवाले चिन्नन्न कुशल गायक भी थे। ये जुलाहों के गुरु थे। इनके द्वारा रचित ये ग्रन्थ बताये जाते हैं—अन्नमाचार्य चरित्र, अष्टमहिषी कल्याणम्, परमयोगि विलासम् तथा उषा-परिणयम्।

ताल्लपाक चिन्नन्न

आन्ध्र की विश्रुत भक्तिगाथा 'विप्रनारायण-चरितम्' के चार कवियों में ये प्रमुख माने जाते हैं। तमिलनाडु के ख्यातिप्राप्त बारह आलवारों में विप्रनारायण नामक एक विष्णु-भक्त हुए हैं। इनकी जन्मभूमि दक्षिण का सुप्रसिद्ध क्षेत्र श्रीरंगम् था। लोगों का विश्वास है कि ये विष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमान वैजयन्ती माला के अवतार थे।

श्री रामानुजाचार्य के कारण जब आन्ध्र में वैष्णव-धर्म का प्रचार हुआ तो अनेकानेक कवि विष्णु-भक्तों की गाथाओं को सुनकर उनको काव्य का रूप देने के कार्य में संलग्न हो गये। विप्रनारायण के नाम के साथ देवदेवी नामक एक वेश्या का वृत्त भी जुड़ा है। इसलिए एक साथ चार-चार कवियों ने इस कथा को लिपिबद्ध किया है। स्थूल रूप से उनके नाम और समय का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—

समय	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकर्ता का नाम
सन् १५४५ ई०	परमयोगि विलासमु-द्विपद	ताल्लपाक चिन्नन्न
सन् १५६४ ई०	परमयोगि विलासमु-चंपू	सिद्धराजु तिम्मराजु
सन् १५८० ई०	विप्रनारायण-चरित्र	चदलवाड मल्लन्न
सन् १५८० ई०	वैजयन्ती विलासम्	सारंगु तिम्मय्य

डॉ० आरुद्र उक्त ग्रन्थों के विषय में लिखते हुए कहते हैं—प्रथम दो कवियों के समय के बारे में विश्वास के साथ कहने के लिए कई आधार हैं, पर बाद के दो कवियों के समय के बारे में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है।

'विप्रनारायण-चरित्र' नामक काव्य के लिए आमुख लिखते समय सर्वश्री जयन्ति रामय्या और मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री इस प्रकार लिखते हैं—'परमयोगिनी विलासमु' काव्य को चदलवाड मल्लन्न और 'विप्रनारायण-चरित्र काव्य' को सारंगु तिम्मय्य ने पढ़ा होगा। 'विप्रनारायण-चरित्र काव्य' को और

सुन्दर बनाने के लिए तथा उसमें निखार लाने के लिए सारंगु तिम्मय्य ने इसे लिखा होगा। श्री चागन्टि शेषय्या अपने 'आन्ध्र कवि तरंगिणी' के आठवें खण्ड में 'वैजयन्ती विलासमु' को सन् १५१० ई० की रचना मानते हैं। वे 'कवि तरंगिणी' के दशम खण्ड में चदलवाड मल्लन्न और सारंगु तिम्मय्य को समकालिक मानते हैं। वे लिखते हैं—"एक दूसरे की रचना को देखे बिना उन्होंने अपने-अपने काव्य की रचना की होगी। उक्त तर्कों के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि प्रथम तीन काव्यों में कथा लगभग एक ही है। केवल सारंगु तिम्मय्य ने कुछ सीमा तक उसे बदला है।"

चिन्नन्न संगीतज्ञ भक्त-कवि थे। पर इनके द्वारा रचित संकीर्तन आज उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। 'परम योगी विलासमु' काव्य में वेश्या देवदेवी विप्रनारायण को पथ-भ्रष्ट करने के लिए शपथ लेती है। अपने प्रयत्नों में उसे सफलता नहीं मिलती तो वह निराशा में डूबकर सोने के लिए जाती है। स्वप्न में श्रीरंगनाथ उसे आश्वासन देते हैं। इसका उल्लेख करते हुए चिन्नन्न कहते हैं—

अनिकनु मूथन्ग सारंग विभुडु-सनु
देन्चि वेरव को सारंग नेत्र
थेल्लि ई प्रोद्दुन केल्ल नी मनसु
जल्ल जे सदे ननि चमिन मेल्कांचि।

'(इस प्रकार निराशा के साथ) जब देवदेवी ने अपने पलकों को बंद कर लिया तो भगवान् विष्णु उसके सामने आकर खड़े हो गये। देवदेवी की पीठ पर हाथ रखते हुए वे उससे कहते हैं : 'हे खंजाक्षी! घबराओ नहीं। कल तुम्हारे लिए अच्छा दिन होगा।' इन वचनों को कहकर वे चले जाते हैं।'

सा० प्र०

ताल्लपाक तिम्मक्क

तिम्मक्क, अन्नमय्या की ज्येष्ठा पत्नी थीं। तेलुगु-साहित्यकारों का कहना है कि ताल्लपाक्क तिम्मक्क तेलुगु की प्रथम कवियित्री हैं। इन्होंने 'सुभद्रा कल्याणम्' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। डॉ० तिम्मावज्झल कोदन्ड रामय्या इनकी उपस्थिति सन् १४००-१५०० ई० के मध्य मानते हैं।

तिम्मक्क ने अपने काव्य की कथावस्तु आदि-कवि नन्नय से ग्रहण किया था। नन्नय के मार्ग का अनुसरण कर तिम्मक्क ने ११६३ पदोंवाले द्विपद काव्य—'सुभद्रा कल्याणम्' की रचना की है। विनय की प्रधानता के कारण तिम्मक्क ने अपने काव्य को काव्य न कहकर 'गीत' कहा है। नन्नय के मार्ग का अनुसरण करते हुए भी तिम्मक्क ने अपनी रचना में अनेक मौलिक उद्भावनाएँ की हैं और जहाँ आवश्यक समझा है, कथा का विस्तार भी किया है। नारी होने के कारण तिम्मक्क नारी-मनोभावों से पूर्ण परिचित थीं। इनकी रचना में नारी-मनोविज्ञान का विश्लेषण मिलता है। इसीलिए तो कहा जाता है कि तिम्मक्क जैसा स्त्री-मनोभावों को जाननेवाला तेलुगु-साहित्य में दूसरा नहीं है।

तप के लिए निकलनेवाले नन्नय के अर्जुन दक्षिण की यात्रा करते हुए 'राजमहेन्द्रवरम्' कवि नन्नय को प्रसन्न करने के लिए आते हैं, वहीं तिम्मक्क एक पग आगे बढ़कर अर्जुन से कहती है—"भाई! राजमहेन्द्रवरम् तो तुम देख चुके। जरा तिरुपति तक चले जाओ। वहाँ से काञ्ची जाकर वरदराज स्वामी के दर्शन कर लो। बाद में आराम से द्वारका पहुँच सकते हो।" अर्जुन तिम्मक्क का कहना मान जाते हैं।

तिम्मक्क की सुभद्रा अपने वय के अनुसार गुड़ियों के विवाह का प्रबन्ध करती हैं। जब अर्जुन हँसी करने लगते हैं तो वह अपने भाई श्रीकृष्ण के पास कपट मुनि की शिकायत लेकर पहुँच जाती है। भाई के समझाने पर वह सेवाभाव बनाये रखने के लिए तैयार हो जाती है। अन्ततः दोनों का विवाह होता है। इसका आयोजन रुक्मिणी करती है, साथ ही

अपनी ननद को उपदेश भी देती हैं कि द्रौपदी के साथ मित्रता निभाना। इन पुरुषों पर विश्वास नहीं किया जा सकता और एक स्त्री के साथ अपने पुरुष को बाँट लेना कोई साधारण बात नहीं है। रुक्मिणी की तरह तिम्मक्क भी भुक्तभोगी है। इसलिए अर्जुन और सुभद्रा को सुहागरात के लिए कमरे में भेजकर द्रौपदी इस प्रकार सोच-सोचकर दुःखी होती है—

तलपोसे मनसुलो तालंग लेक–
थेमि वस्तुवलैन निय वच्चुनु गानि
प्राणेशु निच्चि मटि ब्रतुकन्ग रादु ।

'संसार में सब चीजों को दिया जा सकता है अथवा बाँटा जा सकता है, पर पति को नहीं बाँटा जा सकता। पति को दूसरी स्त्री को सौंपकर नारियाँ कैसे जी सकती हैं ?'

तिम्मक्क की काव्य-शैली ललित और भाषा मधुर है। चरित्र-चित्रण-कला की तो ये वैदुष्यमणि हैं। इसीलिए बाद के कवियों ने इनका अनुकरण किया है। उनमें चेमकूर वेंकट कवि विजय विलासमु के रचयिता) और मुद्दुपलनि (राधिकासान्त्वनमु की रचयिता) मुख्य हैं।

तिम्मक्क ने महाभारत की घटनाओं को अपनी इच्छा के अनुसार तोड़ा-मरोड़ा है। 'सुभद्रा-कल्याणमु' समय तक द्रौपदी का चीरहरण नहीं हुआ था, पर तिम्मक्क ने उसको भी लिख दिया है। ठीक इसी प्रकार 'किरातार्जुनीयम्' के प्रसंग को भी वे जोड़ती हैं। सम्भवतः अर्जुन और सुभद्रा के प्रेम-बन्धन की सुदृढ़ता को व्यक्त करने के लिए वैष्णवी तिम्मक्क ने उक्त बातें जोड़ी होंगी।

सा० प्र०

ताल्लपाक पेद तिरुमलय्या

अपने पिता के संकीर्तनों को संकलित कर उन्हें ताम्रपत्रों पर खुदवाकर आनेवाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का प्रयत्न करनेवाले पेद तिरुमलय्या अन्नमय्या के सुपुत्र थे। ये अन्नमय्या की दूसरी पत्नी अक्कलाम्ब के पुत्र थे। पेद तिरुमलय्या ने भी अपने पिता की ही तरह भगवान् बालाजी की स्तुति श्रृंगार एवं वैराग्यपरक संकीर्तनों को लिखकर की है।

पेद तिरुमलय्या अनेक उपाधियों से विभूषित थे। उनकी उपाधियाँ इस प्रकार हैं-श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, श्रीरामानुज-सिद्धान्त स्थापनाचार्य, वेदान्ताचार्य, कवितार्किककेसरी, शरणागतवज्रपञ्जर आदि। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पेद तिरुमलय्या विद्वत्ता में अपने पिता से भी बढ़कर थे।

इनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं–शीश पद्य शतकमु, श्रृंगारवृत्त-पद्य-शतकमु, वेंकटेश्वरोदाहरणमु, श्रृंगार दण्डकमु, सुदर्शन रगड, चक्रमञ्जरी, द्विपद हरिवंश (अप्राप्त), सुप्रभातस्तव नामक मञ्जरी द्विपद, संकीर्तन-लक्षण-व्याख्या (अलभ्य), वचन भगवत् गीता आदि।

अन्नमय्या के द्वारा यदि गीत या पद प्रचलित हुए तो तिरुमलय्या ने उन्हें साहित्यिक गौरव प्रदान किया। इनका विश्वास था कि ज्ञानसम्पन्न सुकवि की कविता वेदमन्त्र के समान पवित्र है।

अन्नमय्या के संकीर्तनों को ताम्रपत्रों पर खुदवाकर पेद तिरुमलय्या ने अपने पिता को तो अमर किया ही, साथ ही स्वयं भी अमर हो गये।

सा० प्र०

ताल्लपाक श्रीनिवासुडु

ताल्लपाक श्रीनिवासुडु का जन्म एक सुप्रसिद्ध वैष्णव-वंश में हुआ था। ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु के वंश में कितनी पीढ़ियों के बाद और कब इनका जन्म हुआ—यह कहा नहीं जा सकता। अन्नमाचार्युलु के वंशज होने के बाद भी डॉ० आरुद्र के

अनुसार इन्होंने 'कमलवसुधेश, सर्वयुगाधिपेश, विमल शशि कोटि संकाश वेन्कटेशा' नामक मकुटवाले एक शतक की रचना की है। इसके अध्ययन से पता चलता है कि श्रीनिवासुडु के मन में शतक लिखने की कितनी अदम्य इच्छा थी। यह ग्रन्थ अमुद्रित है।

सा० प्र०

तिक्कन

साहित्य और इतिहास दोनों क्षेत्रों में अद्वितीय स्थान पानेवाले तिक्कन माँ तेलुगु भारती के वरदपुत्र थे। ये कलम के सिपाही थे और तलवार के भी। गौतम गोत्रोत्पन्न तिक्कन नियोगी ब्राह्मण थे। तेलुगु में नियोगी का अर्थ 'प्रबन्धक' होता है और वैदिक कर्मकाण्ड के आचरणकर्ता 'वैदिक' कहे जाते हैं। इनका जन्म गौतम गोत्र में हुआ था। इनकी वंशावली इस प्रकार है :

मादनमन्त्रि→केतन→भास्कर→
कोम्मन→तिक्कन

तिक्कन का जन्म सन् १२०५ से १२१० ई० के बीच तथा मृत्यु सन् १२८० से १२८८ ई० के मध्य सम्भावित मानी गयी है। इनका वंश कवियों और योद्धाओं का वंश है। इनके दादा मन्त्रि भास्कर 'सारकविताभिराम' थे। ये गुंटूर के पालक भी थे। ऐसे प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेनेवाले तिक्कन स्वयं शास्त्रज्ञ ही नहीं, चतुर राजनीतिज्ञ एवं एक विशाल साम्राज्य के मन्त्री, सेनापति और राजदूत भी थे। पूर्ववर्ती कवियों के अनुसार ये अति सुन्दर थे। इन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं था। इनका जीवन सुखी और वैभवपूर्ण था। राजा के दरबार में जितने ऊँचे पद हो सकते हैं, इन्होंने उन सबकी शोभा बढ़ायी थी।

ये व्यक्ति नहीं, एक संस्था थे। इनका घर एक विश्वविद्यालय जैसा था। इनके समय का प्रत्येक कवि अपनी रचना को इन्हें सुनाने के लिए लालायित रहता था। इतना ही नहीं, इनके द्वारा अनेक कवियों ने राजा और महाराजाओं तक पहुँचकर नाम, धाम और धन प्राप्त किया था। मन्त्रित्व के लिए सुप्रसिद्ध तिक्कन से परामर्श करने के लिए अनेक राजनीतिज्ञ ताँता बाँधकर आया करते थे। ये शास्त्र और संहिता के मर्मज्ञ थे। धर्म-सम्बन्धी अपने सन्देहों का समाधान पाने के लिए अनेक श्रोत्रिय आये दिन उपस्थित होते थे। समाज में गौरवपूर्ण स्थान इनको स्वतः मिल गया था। समस्या चाहे राजनीतिक हो, धार्मिक हो या साहित्यिक, उसका तुरन्त हल प्रस्तुत करने में ये निपुण थे। इसलिए नेतृत्व ने इनका वरण किया था।

तिक्कन के समय में शिव और विष्णु को लेकर आचार्यों और मठपीठाधिपतियों में भयंकर द्वन्द्व की स्थिति थी। वीरशैवों की इस कट्टरता का विवरण मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य की जीवनी में भी मिलता है। शैवों-वैष्णवों के बीच तिक्कन के कुछ पहले घोर युद्ध हो चुका था। तेलुगु-इतिहास और साहित्य में इस युद्ध का जिसको 'पलनाटि युद्धम्' कहते हैं, विशेष महत्त्व है। ऐसा ही एक उदाहरण ब्रह्मनायडु और नागम्मा का तिक्कन-कालीन विवाद है। ब्रह्मनायडु वैष्णव थे, समाज-सुधारक भी। विपक्ष की नागम्मा शैव थी। इन दोनों गुटों में खून-खराबे की स्थिति उत्पन्न होने पर तिक्कन ने ही उसे रोका था, जबकि जन्मतः ये स्वयं शैव थे। 'हरि' और 'हर' में कोई भेद नहीं है—अपने इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए इन्होंने हरि-हर-तत्त्व को अपनाया। इन्होंने अपनी कृति को नरार्पित न कर हरिहरार्पित किया। जन्म से शैव होते हुए भी इन्होंने लोक-कल्याण के लिए हरि-हर की अद्वैतता की कल्पना कर 'विष्णुरूपाय नमःशिवाय' मन्त्र का जाप करके जिस धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का परिचय दिया वह इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है। हरि-हर के बारे में उनका लिखा यह संस्कृत श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

किमस्थिमालाम् किमु कौस्तुभं वा
परिष्क्रियायाम् बहुमन्यसे त्वं ।
किम् कालकूटः किमु वा यशोदा
स्तन्यम् तव स्वादु वद प्रभो मे ।।

हरिहरनाथ को अपने सामने पाकर तिक्कन ने पूछा : 'हे प्रभो, अलंकार के लिए आप अस्थिमाला पसंद करेंगे या कौस्तुभ ? माँ यशोदा के स्तन्य का दूध आपको अच्छा लगता है या कालकूट विष ?' भगवान् रुद्र को तिक्कन ने छोटा बालक बनाकर उक्त प्रश्न पूछे थे। धर्म-समन्वय की दृष्टि से श्लाघनीय काम करके तिक्कन परवर्ती कवियों के लिए मार्गदर्शक बने। बाद के कई कवियों ने, जिनमें तिक्कन के चचेरे भाई के पुत्र केतन भी हैं, अपनी रचनाओं को हरिहरार्पित किया है।

भाषा एवं साहित्य को जनसामान्य के निकट लाने का श्रेय तिक्कन को ही प्राप्त है। एक मानक साहित्यिक भाषा के लिए इनके पूर्ववर्ती नन्नय को भगीरथ-श्रम करना पड़ा था। इस श्रम का लाभ कालक्रम से बाद में आने के कारण तिक्कन को दाय के रूप में प्राप्त हुआ। इनके समय तक तेलुगु एक मँजी हुई साहित्यिक भाषा बन चुकी थी। तिक्कन ने अपनी रचनाओं से उसे और अधिक परिमार्जित तथा लोकग्राह्य बनाया। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी काव्य-रचना के लिए इन्होंने लोकप्रचलित तेलुगु का वरण किया। 'उपयुक्त होने पर भी मैं संस्कृत का प्रयोग न करूँगा'—अपने 'निर्वचनोत्तर रामायण' में तिक्कन ने उक्त प्रतिज्ञा की है। इतना ही नहीं, अपने समय के उन सब कवियों को तिक्कन ने आड़े हाथों लिया, जो भाषा को कठिन बनाने पर तुले हुए थे। अथर्वणाचार्य द्वारा रचित महाभारत का अनुवाद सम्भवतः तिक्कन के भाषा-सम्बन्धी विचारों के कारण ही नष्ट हुआ होगा। उनके अनुसार कविता में निरर्थक शब्दों के लिए कोई स्थान नहीं है। कविता के लक्षणों के बारे में इन्होंने लिखा है :

तेलुगु कवित्वमु चेप्पं
दलचिन कवि यर्थमुनकु दगिथुन्डेडु मा
टलु मोनि वळु लुं ब्रासं
बुलु निलुपक योगिनि बुलिमि पुन्चुट चदुरे ?

'यति और अनुप्रास के स्थान पर सार्थक शब्दों का प्रयोग करना है। तेलुगु में कविता लिखनेवाले इसे याद रखें।' तेलुगु को तिक्कन ने प्राञ्जल और हृदयस्पर्शी बनाया। इस विशेषता के कारण ही तेलुगु भाषा-भाषियों के लिए इनका महाभारत अति-प्रीतिकर ग्रन्थ बन गया है।

इन्होंने महाभारत के पन्द्रह पर्वों का ललित भाषा में अनुवाद करके आन्ध्रभारती के गौरव का सम्वर्द्धन किया है। पर अरण्यपर्व के शेष भाग को ये पूरा न कर सके। एक कथा के अनुसार अरण्यपर्व के अनुवाद-कार्य में लगे नन्नय पागल बन स्वर्ग सिधार गये थे। इस घटना से परिचित तिक्कन ने उस पर कलम नहीं चलायी। इसका एक अन्य कारण भी निर्दिष्ट किया जाता है जिसके अनुसार इन्होंने रामायण के पूर्वभाग को छोड़कर केवल उत्तर-भाग को ही अपना उपजीव्य बनाया। उत्तरभाग में भी राम-निर्वाण की बात इन्होंने छोड़ दी। पुत्रों के साथ मात्र सुखमय जीवन बितानेवाला कथांश इनके द्वारा अनुवाद के लिए चुना जाना ही इस बात का प्रमाण है कि इन्हें मृत्यु-सम्बन्धी प्रसंग अरुचिकर थे।

महाभारत के अनुवाद के अतिरिक्त तिक्कन का नाम 'निर्वचनोत्तर रामायण', 'विजयसेनमु', 'कवि सार्वभौम छन्दस्सु', 'कृष्ण शतकम्' आदि के साथ भी लिया जाता है। इनके लिखे कुछ संस्कृत-ग्रन्थों का उल्लेख भी मिलता है। इनके कविरूप की प्रशंसा अनेक परवर्तियों के द्वारा मुक्तकण्ठ से की गयी है।

तिक्कन को महानता के विषय में लिखते हुए केतन ने लिखा है : "ये सुकवीन्द्र वृन्द रक्षक हैं। चित्त में नित्यस्थित शिव हैं। इनको कीर्ति दसों दिशाओं में फैली हुई है। तिक्कन सकल कलापारंगत हैं।" 'निर्वचनोत्तर रामायण' में वर्णित निम्नलिखित घटना के आधार पर पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि ये कितने पहुँचे हुए कवि हैं और वाल्मीकि के प्रति इनके मन में कितनी आदर की भावना है। लक्ष्मण राम के आज्ञानुसार गर्भिणी सीता को जंगल में अकेले छोड़कर चले जाते हैं। शिष्यों के द्वारा सीता के बारे में सुनकर वाल्मीकि अपनी दिव्य दृष्टि से सब कुछ जान जाते हैं। वह सीता को अपने साथ आश्रम ले आते हैं। सीता का परिचय आश्रमवासियों से कराते हुए वाल्मीकि कहते हैं—

जनकुनि कूतुरार्थं गुणशालिनि रामुनि देवि सीत या
तनि कोरगामि निय्येडकु दापस वृत्ति जरिंपवच्चे नि
व्वनितकु नेल्ल कृत्यमु दिवानिशमुं बरिकिंचि बान्धवं
बु नेरयजेथुडी थनि तपोधन सत्तमु डप्पगिन्चिनन् ।
(९.४८)

'यह जनक की दुहिता हैं। आर्य गुणशालिनो हैं। राम की पत्नी हैं। उनकी विवशता के कारण योगिनी का जीवन बिताने के लिए यहाँ आयी हैं। इस स्त्री का उपचार दिन-रात कर अपने मैत्री गुण का निर्वाह कीजिये।' इन शब्दों के साथ तपोधन-श्रेष्ठ वाल्मीकि ने उन्हें सीता को सौंपा। वाल्मीकि मितभाषी हैं। उन्होंने आवश्यक बातों की चर्चामात्र की है। शब्दों को यहाँ तौल-तौलकर प्रयुक्त किया गया है।

महाभारत के शान्तिपर्व (२.२७४) में राजनीति का वर्णन देखिये :

राजुनकुन् ब्रज शरीरमु, राजु प्रजकु
नात्म, गान राजुं, ब्रज थुन्
राजोत्तम ! यन्योन्य वि, राजितुलै
युंडवलयु रक्षार्चनलन् ।

'राजा के लिए प्रजा शरीर के समान है और राजा प्रजा के लिए आत्मा। इसलिए राजा और प्रजा दोनों को अन्योन्यता से रहना चाहिए।'

गंगा देवि नामक एक कवियित्री ने अपने 'मधुरा विजयम्' काव्य में तिक्कन के बारे में लिखा है :

तिक्कयज्व कवेस्सूक्तिः कौमुदीव कलानिधेः ।
सतृष्णैः कविभिस्सैवं चकोरैरिव सेव्यते ॥

'चकोर के लिए चाँदनी आस्वादयोग्य है। ठीक इसी तरह कवि तिक्कयज्व की सूक्तियों का आस्वाद लेने के लिए व्यग्र रहते हैं।'

सा० प्र०

तिरुपति कवुलु

तिरुपति कवुलु आन्ध्र प्रदेश के मूर्धन्य कवि थे। ये आधुनिक आन्ध्र-साहित्य के युगप्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। आन्ध्र के साहित्यकारों में इनके अनेक शिष्य हैं जिनमें कवि-सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण मुख्य हैं। बरहमपुर (उड़ीसा का एक जनपद) से लेकर बल्लारि (कर्नाटक का एक जनपद) तक तथा गद्वाल (तेलंगाना की एक रियासत) से लेकर चेन्नपट्टनम् (मद्रास) तक के अनेक प्रमुख जमींदारों और राजाओं ने उन्हें सम्मानित एवं पुरस्कृत किया। इसी कारण इनका युग तेलुगु-काव्य एवं नाटक का स्वर्णयुग माना जाता है।

वेंकटेश्वर शास्त्री और तिरुपति शास्त्री एक साथ काव्य-रचना करते थे। वेंकट शास्त्री आयु में एक वर्ष बड़े थे और पहले से साहित्य-क्षेत्र में कार्य करने लगे थे। उन्होंने तिरुपति शास्त्री को काव्य-लक्षण सिखाया था। दोनों असाधारण प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। दोनों काली के उपासक थे। इनकी रचनाएँ संयुक्त नाम 'तिरुपति-वेन्कटेश्वर-कवुलु'

से प्रकाशित हैं। इन्होंने महाभारत की कई कथाओं को नाटकों में रूपान्तरित किया है।

चेल्लपिल्ल वेन्कटेश शास्त्री गोदावरी-मण्डल के कडियम् नामक ग्राम के निवासी थे। वे श्री कामय्या और श्रीमती चन्द्रम्मा के इकलौते पुत्र थे। उनका जन्म सन् १८७० ई० में हुआ था। प्रारम्भ में उनका मन पढ़ाई में नहीं लगता था, खेल-कूद में अधिक रुचि थी। किन्तु कुछ वर्षों बाद अध्ययन में भी इनकी रुचि जगी और वे फ्रांसीसी तथा तेलुगु भाषाओं के अधिकारी विद्वान् बन गये। मृदंग-वादन और अभिनय-कला में भी वे निपुण हो गये। वे संस्कृत के भी अच्छे जानकार थे। वेन्कटेश्वर-शतक उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

सन् १८७१ ई० में उत्पन्न तिरुपति शास्त्री थेन्डगन्डि नामक गाँव के निवासी थे। इनके पूर्वज भी अच्छे विद्वान् थे। इनके पिता का नाम वेंकटावधानि और माता का नाम शेषमाम्बा था। दान-पुण्य के कारण लोग शेषमाम्बा को अन्नपूर्णा का अवतार मानते थे। श्री बूरुल सुब्बरायडु से इन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी तथा अपने पिता से रघुवंशम् और कुमारसंभवम् का अध्ययन किया था।

तिरुपति शास्त्री एकसन्ताग्राहि थे। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं-बुद्ध चरित्रमु, लक्षणा परिणयमु, एला महात्म्यमु, श्रीनिवास विलासमु, देवी भागवतमु, पतिव्रत, सुशीला, पूर्वहरिश्चन्द्रीयमु, शिवलीललु, नानाराज संदर्शनमु, श्रवणानन्दम् आदि। इनके द्वारा लिखित नाटकों में पाण्डव जननमु, पाण्डव राजसूयमु, पाण्डव विजयमु, पाण्डव प्रवासमु, पाण्डवाश्वमेधमु, मुद्राराक्षसमु, मृच्छकटिकमु, प्रभावती प्रद्युम्नमु, बालरामायणमु आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त विक्रमांकदेव चरित्रमु, चन्द्रप्रभा चरित्रमु, हर्ष-चरित्रमु आदि उनकी गद्य-रचनाएँ हैं। दोनों ने मिलकर गुन्टूरि सीमा, गीरतमु, शनिग्रहम आदि आलोचनात्मक ग्रन्थों की भी रचना की है।

लक्षणा परिणयमु इनका कृष्ण-लीला-सम्बन्धी ग्रन्थ है। लक्षणा कृष्ण की अष्टमहिषियों में एक थी। उसके साथ विवाह करने पर भी श्रीकृष्ण राधा को भूल न सके। उन्हें राधा के साथ की गयी क्रीड़ाएँ याद आती रहीं। तिरुपति कवुलु ने इसका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया है—

अर्ध क्षणम् बेनि यन्तरायमु लेनि
विन्त विन्तल कौन्गिलिन्त लारा
तमि थेरुंगक पोंगु तमकम्मुन नेसंगु
हद्दु पद्दुल लेनि मुद्दु लारा
तडबादु तरि जसि थोडलु नीरुगन् जेसि
पोगरु चूपेडु गुब्ब पोदुलारा
लेनि तप्पुलु चुट्टि पोनि कूरिमि बट्टि
ठव ठवन् दगु चपेटम्मुलारा
तिय्य तिय्यनि केम्मोवि तेने लार
निरुपमानम्पु दोन्तर निद्र लार
तमि नेरुंगनि पुरुषाइतम्मुलार
राधिका कृष्णु लनु विड रादु सुन्डु
—लक्षणा परिणयम् से

'संभोग-चेष्टाओं को एक-एक करके स्मरण कर कृष्ण उनसे कहते हैं कि कभी राधाकृष्ण को मत छोड़ो। राधा की संगति में वे विश्रामरहित आलिंगनों को पाते थे। इसलिए उन आलिंगनों से कहते हैं—हम दोनों को मत छोड़ो। यही बात कृष्ण चुम्बन के बारे में भी कहते हैं। प्रेमवश बेरोकटोक एक-दूसरे को वे चूम लेते थे। मदमस्त कुच-केलि और कुचाघात की याद कर लेते हैं। यों ही एक-दूसरे की गलतियों को ढूँढ़कर प्रेम के साथ राधा और कृष्ण एक-दूसरे को तमाचे मारते थे। कृष्ण उन तमाचों की याद कर लेते हैं। राधा के सुन्दर मुख की याद उन्हें सताने लगती है। सुन्दर ढंग से सोने की क्रिया का स्मरण कर लेते हैं। उन सब क्रियाओं से वे कहते हैं कि हम दोनों को मत भूलो।'

राधा का विरह-वर्णन निम्नलिखित छन्द में अंकित है—

कप्पु कोनंग न पयटगानि मरोक्कटि नोल्लन् डेव्वरेन्
जेप्पिन माट न केरुक चेयक निद्दुरवेन् डोकप्पुडुन
गप्पुखोडे मोवकन्डयि कै कोनडा मुटिपम्मु लन्नियुं
दप्पेनो ? येल्ल कालमोक त्राटनु बो दुरे जारपूरुषुल्

राधा कृष्ण की प्रशंसा भी करती है और निन्दा भी। पुरुष, विशेषकर जार-पुरुषों, से राधा को शिकायत है। उनके अनुसार वे हमेशा एक राह पर नहीं चलते हैं। उनकी रुचि एक-सी नहीं रहती। उनकी शिकायत इस प्रकार है—

'इसके पहले कृष्ण अगर अपने-आपको छिपाना हो तो तो मेरे आँचल को ले लेते थे। अगर कोई उनको कुछ कहता तो मुझसे कहे बिना उनको नींद नहीं आती थी। अगर कोई सुगन्धित पान देता तो प्यार से मुझे दिये बिना स्वयं खाते नहीं थे। ऐसे प्यारे कृष्ण अब बदल गये हैं। इन पुरुषों पर, जार पुरुषों पर, विश्वास नहीं किया जा सकता।'

शृङ्गार-वर्णन में स्वानुभव के कारण सहजता लानेवाले तिरुपति वेन्कट कवुलु धन्य हैं। तिरुपति शास्त्रि की मृत्यु के बाद करीब करीब तीस वर्ष चेल्लपिल्ल वेन्कटेशशास्त्रि जीवित रहे। जीवन के सन्ध्याकाल में उनको मद्रास सरकार ने राजकवि बनाया था। राजभोगों को भोगनेवाले तिरुपति कवुलु का नाम तेलुगु-साहित्य में तब तक आदर के साथ लिया जायगा, जब तक कृष्णा और गोदावरी में पानी बहता रहेगा।

सा० प्र०

तुपाकुल अनन्त भूपालुडु

श्री कृष्णदेवरायलु के बाद तेलुगु-साहित्य का विकास दक्षिण के तंजाऊर, मदुरै, पुदुक्कोट, मैसूर और चेन्जि में होने लगा था। इन पाँच क्षेत्रों की विशेषता यह है कि यहाँ के राजा स्वयं कवि एवं संगीतज्ञ होते थे और दूसरे कवियों को आश्रय दिया करते थे। इसी कोटि के राजा थे—तुपाकुल अनन्त भूपालुडु। गीति-काव्य के कवि क्षेत्रय्या ने इनके पिता की प्रशंसा करते हुए तीन गीतों की रचना की थी। डॉ० नेलटूरि वेन्कट रमणय्य पंतुलु के अनुसार तुपाकुल अनन्त भूपालुडु १८वीं सदी के उत्तरार्ध के कवि हैं। तुपाकुल अनन्तय्या के नाम पर तीन ग्रन्थ मिलते हैं। उनके नाम हैं: भगवद्गीता (वचनानुवाद), विष्णु-पुराण (वचनानुवाद) और रामायण-सुन्दरकाण्ड (वचनानुवाद)। इन तीनों के अतिरिक्त अनन्तय्या ने अपने मित्र कलुवे वीरराजु के साथ मिलकर महाभारत-काव्य का भी अनुवाद वचनकाव्य के रूप में किया था। श्री चागन्टि शेषय्या लिखते हैं—"अनुमान लगाया जा सकता है कि अनन्तय्या ने महाभारत-काव्य को अपने दो मित्रों—कलुवे वीररानु और नारायणय्या की सहायता से रचा होगा।"

तुपाकुल अनन्त भूपालुडु क्षत्रिय थे। ये चन्द्रगिरि कृष्ण भूपालक और भागमाम्बा के पुत्र थे। कृष्णप्पा सन् १६३७ ई० में चेन्जि के राजा के यहाँ सेनापति थे। सन् १६४८ ई० में मुसलमानों ने चेन्जि पर आक्रमण किया। इसलिए कृष्णप्पा गोलकोण्डा के सर्वाधिकारी मीर जुम्ला के यहाँ चले गये थे। इसके बाद पुलिकाट के पास ये विद्रोही के रूप में पकड़े गये थे। तब कृष्णप्पा के परिवार के लोगों को मदुरा जाना पड़ा। इस प्रकार अनन्तय्या मदुरै दरबार के पार्षद या सेना के अधिकारी बनने में सफल हुए होंगे। श्री चागन्टि शेषय्या इन्हें मैसूरवासी मानते हैं। निवासी चाहे कहीं के हों, ये तो अपने-आपको 'चन्द्रगिरि कृष्ण नरेन्द्र तप-फल संजात' मानते हैं।

तुपाकुल अनन्तय्या विष्णु-भक्त थे। इनके पिता वेन्कट कृष्णप्पा वीर वैष्णव थे। दक्षिण के शैव-क्षेत्र को कृष्णप्पा ने वैष्णव-क्षेत्र बनाना चाहा था। वैष्णव-मूर्ति की स्थापना उनका लक्ष्य था। शैवों ने इसका विरोध किया। इन्होंने कई लोगों को गोलो से उड़ा

दिया। तेलुगु में बन्दूक को तुपाकि कहते हैं। बन्दूक से लोगों को मारने के कारण इनको लोग 'तुपाकुल कृष्णप्पा' और उनके वंशज तुपाकुल वंशवाले कहलाने लगे। तुपाकुल अनन्तय्या ने 'भगवद्‌गीता' और 'विष्णु-पुराणम्' के वचनानुवाद को कृष्ण के नाम समर्पित किया था।

अनन्तय्या उभयभाषा-कवित्व-फणीन्द्र थे। काव्यान्त गद्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। 'महाभारत वचनकाव्य' के अन्त में दी गयी पुष्पिका इस प्रकार है—

"इदि (यह) श्री नन्दनन्दन चरणारविन्द सेवानुभाव भावितसार सारस्वतैश्वर्यधुर्य चतुर्विध कविता साम्राज्य भोज चन्द्रगिरि कृष्ण भूपालक तनूज सान्द्र तेजोविशाल तुपाकुल अनन्त भूपालक प्रणीतम्बैन (प्रणीत)।"

इसी प्रकार श्री विष्णु-पुराण काव्य के अन्त में आनेवाला गद्य है—

"इदि श्री नन्दनन्दन वदनारविन्द मत्त मधुकराय मान चित्त चतुर्विध कविता साम्राज्य भोज चन्द्रगिरि कृष्ण भूपालक तनूज भागमाम्बा गर्भ शुक्ति मुक्ति-मुक्ताफल तुपाकुल अनन्त भूपालक प्रणीतम्बैन (लिखित) श्री विष्णुपुराणम्।"

'विष्णुपुराणम्' के विषय में आलोचक श्री शेषय्या लिखते हैं—"अनन्तय्या ने इस वचनानुवाद को संस्कृत-ग्रन्थ के आधार पर किया है।" काव्य अध्यायों में विभाजित है। आन्ध्र पद्य काव्य विष्णु-पुराण से यह अधिक विशाल है। यह संस्कृत-पद-युक्त प्रौढ़ रचना है। इसके केवल १४ अध्यायों की छपाई हुई है। अपने अनुवाद में इन्होंने लिखा है—वसुन्धर नुद्धरिंचि यज्ञ वराह रुपम्बु धरिंचिन नीवु माकु शुभंबोसगुमु अर्थात् 'धरती का उद्धार करने-वाले हरि हमारा कल्याण करें।'

सा० प्र०

तेनालि अन्नय्य कवि

गार्लपाटि राम मन्त्रि के तीन सुपुत्र थे। उनमें से ज्येष्ठ का नाम तेनालि रामकृष्णुडु था। ये पहले शैव थे। वैष्णवाचार्यों के सम्पर्क और वैष्णव-ग्रन्थों के अध्ययन के कारण बाद में ये वैष्णव हो गये थे। तेनालि अन्नय्य राम मन्त्रि के दूसरे पुत्र थे। कौण्डिन्यस गोत्रीय अन्नय्य याज्ञवल्क्य नियोगी ब्राह्मण थे। अन्नय्य तेनालि रामकृष्ण कवि से दस साल छोटे थे। इन्होंने अपनी कृति 'सुदक्षिणा परिणयम्' का प्रणयन कोनोटि रामराजु के मन्त्रि पुलजाल सोमनामात्य के आदेशानुसार किया था। कृतिपति और उनके स्वामी के नाम के आधार पर तेनालि अन्नय्य का आविर्भाव-काल तेलुगु-साहित्य के इतिहासकार सर्वश्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम्, चागन्टि शेषय्या, डॉ० आरुद्र और डॉ० नेलटूरि वेंकट रमणय्या सन् १५५०–६० ई० के आसपास मानते हैं।

तेनालि अन्नय्य धर्मसहिष्णु कवि थे। जन्म से वे शैव थे। पालगुमि भीमेश्वर गुरु (ये पालगुमि येलेश्वर गुरु के—जो कि तेनालि रामकृष्ण कवि के गुरु थे, भाई हो सकते हैं, गृह-नाम के आधार पर और शिष्यों के सम्बन्ध के आधार पर श्री चागन्टि शेषय्या इस निर्णय पर पहुँचते हैं।) के कारण वैष्णव-धर्म के प्रति जब इनकी रुचि बढ़ी तो अन्नय्या कन्दाल भावनाचार्य के पुत्र श्रीरंगाचार्युलु के शिष्य बने। फिर भी अन्नय्या न वीर शैव थे और न ही वीर वैष्णव।

अन्नय्या की प्रतिभा का वर्णन करते हुए कृतिपति पुलिजाल सोमामात्य कहते हैं "अन्नय्या! कपूर से घुले मधुर वचनों को बोलनेवाली सुन्दरी की वाणी के समान तुम्हारी कविता होती है। पूर्वकवियों के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर, हे सत्कवि! काव्य-रचना करो। तुम तो सरस साहित्य की रचना कर तृप्ति पानेवाले हो। 'सुदक्षिणा परिणयम्' काव्य को लिखकर मुझे कृतिपति बनाओ। श्री चागन्टि शेषय्या तेनालि अन्नय्य के बारे में लिखते हुए कहते

हैं—'सुदक्षिणा परिणयम्' की कविता सद् लक्षणों से युक्त है।''

भक्तिभाव में विभोर भक्त, रघुकुलेश्वर में विष्णु-मूर्ति को देखकर उसकी प्रशंसा इस प्रकार कर रहा है-

ए नोकविन्तये रघुकुलेश्वर यादिम विष्णु मूर्ति वै
ई निखिलावनीतलमु नेलेडु निन् गनुन् गोन्टि नेन्डुग ।
नाविनयम्बु ना जपमु ना तपसुन् कलिइन्चे भ ॅक्त स
न्मान धुरन्धरत्वमुन ना जननायक इट्लुपल्कुटल ।

'इसमें आश्चर्य की क्या बात है? हे रघुकुलेश्वर ! तुम तो आदिम विष्णु-मूर्ति हो। तुम्हीं इस धरती के परिपालक हो। आज मैं आपको जान पाया हूँ। यह तो मेरे विनय, जप, तप का फल है कि आप जो भक्तिभाव को ढोनेवाले हैं। इस प्रकार मुझसे कह रहे हैं।'

अपने कृतिपति पुलिजाल सोमामात्य पर कृपा करने के लिए श्रीवेंकटरमण से प्रार्थना करते हुए अन्नय्य लिखते हैं—

श्री लीला हरि नीलपीठ रुचिर श्रीवत्स सम्पन्न व
क्षो लालित्युडु वेन्कटेशुडु कृपन् गोनोटि राम क्षमा
पालस्वामि समस्त राज्य भरणो पायापि कुन् हृद्य वि
द्या लालुन् बुलि जाल राम विभु सोमामात्युनिन्
ब्रोचुतन् ।

'श्रीवत्स सम्पन्न वक्षवाले वेंकटेश्वर जो श्रीलीला हरि नील पीठवाले हैं, कोनोटि रामराजु के मन्त्रि, जो राज्य के समस्त भार को ढो रहे हैं, मेरी रक्षा करें।'

सा० प्र०

तेनालि रामकृष्ण कवि

विजयनगराधिपति कृष्णदेव राय और उनके दरबारी कवि तेनालि रामकृष्ण अकबर-बीरबल के समान दक्षिण भारत में सुविख्यात हैं। तेनालि राम पहले रामलिंग के नाम से जाने जाते थे। वैष्णव-धर्म में विश्वास बढ़ जाने के कारण रामलिंग 'रामकृष्ण' बन गये थे। 'पाण्डुरंग महात्म्यम्' के टीकाकार श्री बुलुगु वेंकट रमणय्य के अनुसार इनका जन्म सन् १५०५ ई० के आसपास हुआ था।

रामकृष्ण वाक्पटु और चतुर कवि माने जाते हैं। इनकी ख्याति का रहस्य इनके चुटकुले हैं। आन्ध्र के लोगों में आज भी यह बात प्रचार में है कि जो तेनालि रामकृष्ण का नाम लेता है उसे कम-से-कम दो ऐसे चुटकुलों को सुनाना होगा जिसका सीधा सम्बन्ध तेनालि रामकृष्ण से है। साधारण जनता तेनालि रामकृष्ण को हास्य-व्यंग्यकार के रूप में जानती है। पर साहित्य के प्रेमी जानते हैं कि तेनालि रामकृष्ण तेलुगु के प्रौढ़ कवि भी हैं। श्री कृष्णदेवरायलु के युग के पाँच प्रौढ़ प्रबन्ध-काव्यों में तेनालि रामकृष्ण द्वारा विरचित 'पाण्डुरंग महात्म्यम्' की भी गणना होती है।

तेनालि रामकृष्ण शुक्ल यजुर्वेदी रामय्या और लक्कमाम्बा के ज्येष्ठ पुत्र थे। रामय्या नियोगि शैव ब्राह्मण थे। अपने पहले पुत्र का नामकरण करते समय उनके मन में तेनालि ग्राम के रामलिंगेश्वर स्वामी भर गये थे। इसलिए वे उसे 'रामलिंग' कहकर पुकारने लगे। रामलिंग शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन-दिन बढ़ने लगे। पिता ने अपने लाड़ले पुत्र को पहले वेद सिखाया। तदनन्तर उन्होंने काव्य, दर्शन, छन्दशास्त्र, अलंकार-शास्त्र आदि का अध्ययन तेनालि के पालगुम्मि एकेश्वर गुरु के चरणों के पास बैठाकर कराया था। धीरे-धीरे ये सकल शास्त्रों के धुरीण विद्वान् बन गये। विद्वन्मण्डली ने इनको 'कुमार भारति' की उपाधि दी। कोन्डवीडु के ऊर देचय्य मन्त्रि ने (जो स्वयं कवि एवं पण्डित थे) रामकृष्ण से 'उद्भटाराध्य चरित्र' नामक शैव ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया। जन्म से शैव होने के कारण रामलिंग मान गये और 'उद्भटाराध्य चरित्र'

नामक काव्य की रचना की। सन् १५२५ ई० के आसपास तेनालि रामकृष्ण कवि विजयनगर (कृष्णदेवराय की राजधानी, ज़ो आजकल कर्नाटक प्रदेश के बल्लारि जिले में होसपेट नामक स्थान पर है) पहुँचे होंगे। कहा जाता है कि राजदर्शन के लिए प्रयत्न करते समय रामकृष्ण कवि ने 'कन्द्रर्पकेतु विलासम्' नामक काव्य की रचना की थी। इस काव्य को रामकृष्ण कवि ने नादेल्ल गोपमन्त्रि (ये साल्व तिम्मरसु के भानजे थे) के सम्बन्धी चिट्टमन्त्रि को समर्पित किया। ये एक ओर काव्य-रचना कर रहे थे और दूसरी ओर दरबार में प्रवेश पाने के लिए प्रयत्नशील भी थे। राजधानी पहुँचने पर तेनालि रामकृष्ण कवि को मालूम हो गया कि राजा वैष्णव हैं और वैष्णव आचार्यों का आदर करते हैं और उनकी सिफारिशों को ठुकराते नहीं हैं। अनुमानतः इसी कारण रामलिंग कवि रामकृष्ण कवि बनकर भट्टरुचिक्काचार्य के शिष्य हो गये।

वैष्णव कवि बनने के बाद 'श्रीपाण्डुरंग महात्म्यम्' नामक प्रौढ़ प्रवन्ध-काव्य को रचकर इन्होंने विरुरि वेदाद्रि मन्त्रि को समर्पित किया। इस कृति-समर्पण के आधार पर तेलुगु के विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तेनालि रामकृष्ण कवि श्री कृष्णदेवरायलु के समकालीन नहीं थे। कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् पन्तुल अपने 'आन्ध्रकवुलु चरित्रमु' (द्वितीय खण्ड) में लिखते हैं—"कृष्णदेवराय के दरबारी कवियों की हँसी उड़ाने की जितनी कहानियाँ तेलुगु-साहित्य में प्रचलित हैं वे सब सच नहीं हैं। यह बात एकदम स्पष्ट है।" इस सम्बन्ध में डॉ० आरुद्र कुछ नहीं लिखते हैं। विरुरि वेदाद्रि रामकृष्ण कवि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं: "तुम सुविख्यात हो, देश के राजदरबारों के सूर्य हो, शैव-वैष्णव-पुराणों के तुम ज्ञाता हो, लौकिक वैदिक लक्षण चातुर्य धैर्यवान् प्रसिद्ध व्यक्ति हो, आन्ध्र भूमि कुचाग्रहाराम तेनालि ग्राम के निर्माता हो, अग्रशाखिका कोयल हो, सरस कवि हो, रम्य गुण कृष्ण हो आदि-आदि।" ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति से विरुरि वेदाद्रि आगे कहते हैं—"स्कन्दपुराण नामक जलधि के कौस्तुभ देवकीनन्दन की कथा को काव्यरूप देकर परम वैष्णवों की कोटि में सुख्याति को प्राप्त करो।" उक्त बातों को अपने कृतिपति से रामकृष्ण कवि ने कहलवाया है। इन उल्लेखों के आधार पर कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् लिखते हैं-"लगता है कि कवि आत्मस्तुति पसन्द करनेवाला व्यक्ति है।"

श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम्, श्री चागन्टि शेषय्या, श्री मुरुजाड श्री राममूर्ति, डॉ० आरुद्र आदि विद्वान् मानते हैं कि तेनालि रामकृष्ण कवि के बारे में जितनी कथाएँ प्रचलित हैं, उनमें से अधिकतर मात्र कल्पनाजन्य हैं। फिर भी एक-दो कथाओं का उल्लेख सबने किया है। इन कथाओं से पाठक तेनालि रामकृष्ण कवि की बुद्धि-कुशलता का अनुमान लगा सकते हैं। इसलिए कुछ कथाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

मूर्ख लकड़हारा काली माता की कृपा के कारण कालिदास बन गया था। इसीसे मिलती-जुलती कथा तेलुगु के विनोदी कालिदास तेनालि रामकृष्ण कवि के सम्बन्ध में भी प्रचलित है। छोटी उम्र में जब रामकृष्ण कवि के पिता का स्वर्गवास हो गया तो ये अपने मामा के यहाँ पलते रहे। मामा ने अपने भानजे को पाठशाला में भर्ती कराया। पर रामकृष्ण को पाठशाला और पढ़ाई में रुचि न थी। वह पाठशाला न जाकर अपने जैसे अन्य लड़कों के साथ मिलकर खेल-कूद में समय नष्ट किया करता था। एक दिन एक सिद्ध ने रामकृष्ण को देखा। लड़के के मुख की आभा से सन्तुष्ट हो उसे एक मन्त्र का उपदेश दिया। मन्त्र की महिमा जानने के लिए एक दिन रात्रि को काली के मन्दिर में उसने जप किया। देवी का साक्षात्कार हुआ। देवी के दोनों हाथों में दो हेमपात्र थे। एक पात्र में दही था और दूसरे में दूध। एक धन का प्रतीक था और दूसरा विद्या का। देवी ने दोनों में से एक को चुनने के लिए कहा। हाथ में लेकर दोनों को देखने की इच्छा से दोनों पात्रों को

बालक ने माँगा। देवी ने पात्र दिये। रामकृष्णं एक क्षण के अन्दर दोनों को मिलाकर एक साथ पी गया। देवी कुपित हो उठी। उसने कहा—"मेरा कहा न मानने के कारण तुम्हें मैं शाप देती हूँ। तुम विद्वान् तो बनोगे, पर लोग तुम्हें विकट कवि अर्थात् हास्य और व्यंग्यप्रधान कवि मानेंगे।" पश्चात्ताप के आँसू बहाते हुए रामकृष्ण ने देवी से क्षमा माँगी। देवी ने क्षमा करते हुए कहा—"फिर भी तुम राजकवि बनोगे।" इतना कह देवी अन्तर्धान हो गयी। इस तरह देवी के कारण मूर्ख बालक मेधावी बन गया।

रामकृष्ण विदूषक एवं बुद्धिमान् कवि माने जाते हैं। इनकी अनेक कथाओं में परम वैष्णवाचार्य ताताचार्य का नाम जुड़ा है। ताताचार्य राजगुरु थे और कृष्णदेवराय गुरु का बहुत आदर करते थे। एक बार की बात है, तेनालि रामकृष्ण से बहुत बड़ी भूल हो गयी। यह जानकर राजा कुपित हुए और उनके कण्ठ तक के शरीर को जमीन में गाड़कर उसे हाथियों से कुचलवाने का दण्ड दिया। सैनिक उन्हें कण्ठ तक गाड़कर हाथी लाने गये। इतने में उस तरफ से जाते हुए एक कुबड़े धोबी ने तेनालि राम को देखा। उस कुबड़े ने निकट आकर कारण पूछा। तेनालि राम की बुद्धि पारे के समान काम करने लगी। उन्होंने एक रास्ता निकाला। कुबड़े से उन्होंने कहा—"मैं भी तुम्हारे जैसा कुबड़ा हूँ। वैद्यजी के कथनानुसार इस इलाज को ले रहा हूँ। अब देखना है कि पीठ का टेढ़ापन गायब हो गया है या नहीं। जरा मेरी सहायता करो।" कुबड़े ने तेनालि राम को गड्ढे से बाहर खींचा। उसने देखा कि राम का टेढ़ापन गायब है। उसने तेनालि राम से प्रार्थना की कि मैं भी इस इलाज को करना चाहता हूँ। मुझे भी गड्ढे में गाड़ दीजिये। रामकृष्ण ने उस कुबड़े धोबी की सहायता की और देखते-देखते वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गये। थोड़ी देर के बाद सैनिक हाथी के साथ आ पहुँचे। उन्होंने कुबड़े धोबी को कुचलवाना चाहा। धोबी हो-हल्ला मचाने लगा। मुश्किल से उसकी जान बची।

एक बार एक स्पर्धा में ताताचार्य तेनालि रामकृष्ण से हार गये। होड़ की शर्तों के अनुसार ताताचार्य को अपने कन्धों पर रामकृष्ण को बैठाकर राजमार्ग से गुजरना पड़ा। ताताचार्य पर सवार रामकृष्ण को कृष्णदेवराय ने देखा। वे आगबबूला हो उठे। सैनिकों को बुलाकर आज्ञा दी कि ऊपर जो सवार है उसको खींचकर कोड़े लगाओ। राजा के संकेतों को रामकृष्ण देख रहे थे। ताताचार्य के कन्धों पर से उतरकर रामकृष्ण ने क्षमा माँगी और प्रायश्चित्त के रूप में अपने कन्धों पर ताताचार्य को ढोने के लिए तैयार हो गये। ताताचार्य ने अनुमति दे दी। थोड़ी देर बाद सैनिकों ने सवार ताताचार्य को नीचे ढकेल दिया। राजा की आज्ञा के अनुसार सैनिक कोड़े लगाने लगे। ताताचार्य शोर मचाने लगे तो सैनिकों ने ताताचार्य को राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा को असली बात का पता लग गया। राजा का कोप और बढ़ गया। सैनिकों को बुलाकर उन्होंने रामकृष्ण के सर को धड़ से अलग करने की आज्ञा दी। रामकृष्ण ने सैनिकों को धन का लालच दिखाकर अपनी जगह एक बकरी को मरवाकर रक्त राजा को दिखाने के लिए कहा। सैनिकों ने ठीक वैसा ही किया। कुछ दिनों के बाद जब राजा का क्रोध कम हो गया तो वे पछताने लगे। उनसे ब्रह्महत्या हो गयी थी। पश्चात्ताप की बात सुनकर रामकृष्ण ने राक्षस का वेष धारण कर कृष्णदेवराय को डराया। तत्पश्चात् रामकृष्ण ने सच्ची बात बता दी। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें उपहार दिया।

तेनालि रामकृष्ण संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। समस्या-पूर्ति (पद्य के चौथे पाद को देकर शेष पादों को पूरा करने के लिए कहना) तेलुगु कवियों के लिए कसौटी मानी जाती है। ताताचार्य की प्रशंसा में वैष्णवों ने कहा—'अप्पय्यदीक्षितात्पूर्वम्

तातः पूज्यो न संशयः ।' कहा जाता है कि रामकृष्ण ने दूसरी पंक्ति को इस प्रकार कहा–'मुखप्रक्षालनात्पूर्वम् पदप्रक्षालनम् यथा ।' अर्थात् हाथ-मुँह धो लेने के पूर्व पाँवों को धो लेने के बराबर ।

वैष्णवाचार्य कन्दाल अप्पलाचार्य से सम्बद्ध यह कथा भी बहुत प्रसिद्ध है । कन्दाल अप्पलाचार्य व्याकरण-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे । उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए एक शिष्य ने कहा— 'अपशब्द भयम् नास्ति अप्पलाचार्य सन्निधौ' अर्थात् अपशब्द को सुशब्द में अपनी व्याख्या के द्वारा बदल सकनेवाले कन्दाल अप्पलाचार्य के सामने डरने की कोई बात नहीं है । शिष्य गुरु की प्रशंसा कर रहा था । उस प्रशंसा को सुनकर श्लोक के दूसरे चरण को रामकृष्ण ने इस प्रकार पूरा किया था—'अनाचार भयम् नास्ति तिष्ठन्मूत्रस्य सन्निधौ' अर्थात् खड़े होकर मूत्र-विसर्जन करनेवाले के पास भी अनाचार का भय नहीं है ।

इन कथाओं से रामकृष्ण के प्रत्युत्पन्नमतित्व का पता चलता है ।

'पाण्डुरंग-महात्म्यम्' तेनालि रामकृष्ण कवि की उत्कृष्ट रचना मानी जाती है । पाण्डुरंग विट्ठल महाराष्ट्र के पण्ढरपुर में स्थित भगवान् हैं । तेलुगु कवि होते हुए भी रामकृष्ण ने महाराष्ट्र के आराध्य भगवान् की कथा लिखी है । इसका कारण यह है कि विजयनगर के राजा विठोबा के अनन्य भक्त थे । हंपि (विजयनगर को आजकल हंपि कहते हैं, यह होसपेट के पास है ।) में आज भी विट्ठल का मन्दिर विद्यमान है । कुछ विद्वानों का मत है कि पण्ढरपुर के मन्दिर से श्री कृष्णदेवराय ने विठोबा की मूर्ति को हटाकर विजयनगर में प्रतिष्ठित किया था । इसके बाद विठोबा की प्रार्थना सुनकर मूर्ति को कृष्णदेवराय ने वापस कर दिया था । वैष्णव बनने के बाद रामकृष्ण का मन विठोबा के प्रति आकृष्ट हुआ होगा । इसलिए कृतिपति विरुरि वेदाद्रि का कहा मानकर रामकृष्ण कटिबद्ध हो गये होंगे । रामकृष्ण ने उक्त कथा अपने ही कथन के अनुसार 'स्कन्द-पुराण' से ग्रहण की है, पर स्कन्द-पुराण में 'पाण्डुरंग-महात्म्यम्' से सम्बद्ध कथा नहीं है । प्रतीत होता है कि रामकृष्ण ने पद्म-पुराण से उक्त कथा को ग्रहण किया होगा ।

इनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'पाण्डुरंग-महात्म्य' है । यह वैष्णव-धर्म सम्बन्धी काव्य है । कवि ने इसको मन्त्री वेदाद्रि को समर्पित किया । इस काव्य को 'पौण्डरीक विभव' भी कहते हैं । काव्य के प्रारम्भ में कवि ने यह स्पष्ट किया है कि इस कथा का आधार स्कन्द-पुराण है । किन्तु मूल ग्रन्थ में निगम शर्मा, राधिका, सुशीला, सुशर्मा आदि पात्रों का उल्लेख नहीं है । इसमें अनेक पवित्र तीर्थों का उल्लेख किया गया है और पौण्डरीक-क्षेत्र की महिमा का गान किया गया है । इसमें कुल पाँच आश्वास हैं । प्रथम आश्वास में काशी-वर्णन एवं अगस्त्य की दक्षिण-यात्रा का उल्लेख है । द्वितीय आश्वास में पौण्डरीक तीर्थ की महिमा एवं गरिमा अंकित है । इसमें पुण्डरीक मुनि का जीवन-वृत्त वर्णित है । तृतीय आश्वास में निगम शर्मा का आख्यान है । इसी आश्वास में कृष्ण की बाल-लीलाओं एवं राधा के जन्म का विवरण है । चतुर्थ आश्वास में राधा की कठोर तपस्या, पुण्डरीक की तपस्साधना, सुशीला-उपाख्यान, हंस, सुग्गा, सर्प एवं मधुकर की कथाओं का समावेश है । पञ्चम आश्वास में कुण्डल-तीर्थ, पद्म-तीर्थ की आदि की महिमा का उल्लेख है ।

तृतीय आश्वास में गद्य में राधा के जन्म-वृत्तान्त का उल्लेख है । ब्रह्मा ने निखिल भुवनमोहिनी तथा अनन्त शक्तिस्वरूपिणी राधा की सृष्टि विष्णु के विनोदार्थ की थी । वे नन्द के साले शतगोप नामक आभीर की प्रिय पुत्री के रूप में अवतरित हुईं । कवि ने यहाँ सुन्दरी राधा के नख-शिख का वर्णन लगभग पचीस छन्दों में किया है । राधा एवं माधव के हृदय में प्रेमोदय का सादृश्य-विधान सूर्य की ओर कमलिनी के आकृष्ट होने से किया गया है (३.२०४) ।

चतुर्थ आश्वास में राधा की कठोर तपस्या का वर्णन किया गया है। माधव ही पतिरूप में प्राप्त हों, इसलिए गोवर्धन पर्वत के समीप ऋण-विमोचन तीर्थ में राधा ऋतुओं के अनुकूल घोर तप करती हैं। गेरुए कपड़े की तरह कोमल कोंपलें हैं, परागावृत भ्रमर, विभूतिलिप्त जटाओं की तरह हैं—राधा वसन्त लक्ष्मी की तरह हैं (४.१४)। राधा को शरद् ऋतु में कृष्ण का साक्षात्कार होता है। उन्हें सारा जगत् विष्णुमय परिलक्षित होता है। कृष्ण राधा के सामने खड़े हो जाते हैं तब राधा आह्लाद का अनुभव करती हैं। इसमें कुमारसम्भव में वर्णित पार्वती-तपस्या का सादृश्य देखा जा सकता है। वे दोनों आदि दम्पति शिव-पार्वती की तरह उल्लसित वातावरण में हैं। यहाँ यादव-किशोर कृशोदरी राधा के साथ माया-शबलित जीव-पुरुष की तरह विविध भोगों से सन्तुष्ट होते हैं (४ ४५)। यों इस काव्य में मोह एवं प्रेम तथा काम और प्रेम में अन्तर बताया गया है तथा कठोर साधना के अनन्तर पति-प्राप्ति का सात्त्विक उदाहरण दिया गया है। इस प्रकार इस काव्य में शृंगार एवं भक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य परिलक्षित होता है। दैहिक आकर्षण के साथ मानसिक दृढ़ता एवं कठोर साधना की सात्त्विक सिद्धि ही परिणय है। इसका ज्वलन्त उदाहरण है–राधा-माधव युगल मूर्ति का प्रणय, जो इस काव्य में अत्यन्त प्रभावशाली शैली में अंकित है।

इनके 'पाण्डुरंग-महात्म्य' से कृष्णभक्तिव्यंजक कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(१)

श्रीपति यड्डुगुल गोड्डुगुल
प्रापोदविन वारिन् दाप भरमे मन्दुन् ?

'जो श्रीपति के चरण-कमलों में विश्वास एवं अनुराग रखता है उसे इस संसार के ताप सता नहीं सकते।

पण्ढरपुर के पाण्डुरंग विट्ठल (जो कि विष्णु के अवतार हैं) का वर्णन तेनालि रामकृष्ण कवि अपने 'पाण्डुरंग-महात्म्यम्' में इस प्रकार करते हैं—

(२)

वेडद कन्नुल वानि वेइ नाममुल वानि
व्रेतल वलपिन्चु वेरपु वानि,
चिप्पकूकटि वानि, चिन्नि नव्वुल वानि,
चेरिविन मन्चि पिन्चियमु वानि
पुलुगु तन्तडि वानि, पोडवुलतुद वानि
पोक्किटि वेलिदम्मि पूवु वानि
मिनुकु टूर्पुल वानि, मिसिमि मेतल वानि
मेरुगु चामन चाय मेतवानि,
दिस्स मोलवानि; पसि कान द्रिप्पु वानि
मुरलि गलवानि, मुव्वंक मुरुपु वानि
विट्ठलाधीशु दलचि तद्विपुल महिम
नोड्डवु ब्रार्मरि क्रीनोड विडिदि प्रोड।

श्री विट्ठलाधीश की महिमा का गान पुराने पीपल के पेड़ की छाया में विश्राम लेनेवाले शिवजी इस प्रकार कर रहे हैं—'कृष्ण अर्थात् विट्ठलजी विशाल नयनवाले हैं। वे सहस्रनामवाले हैं। गोपिकाओं को लुभाकर अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाले कृष्ण अनेक उपायों को जाननेवाले हैं। कृष्ण छोटी चोटीवाले हैं। उनकी मुस्कराहट मोहक होती है। वह विशाल मोर मुकुटवाले हैं। उनका वाहन पक्षिराज गरुड़ है। कृष्ण उत्तमोत्तम हैं। उनकी नाभि में धवल कमल है। वेद उनकी श्वास है। मक्खन खानेवाले कृष्ण की देह-कान्ति नील मेघ के समान चमक रही है। त्रिभंगी कृष्ण देखने में अतिसुन्दर हैं।'

व्यंग्य और हास्य को मिलाकर किया गया इनका बुद्धावतार-वर्णन देखिये—

(३)

प्रतिदिन केशलुन्चनपु रायिडि
नेट्टन बट्टगट्टि पैम्

बुत्पुत मन्चु नुन्म कुरुल बोड
तलन् धरिइम्प नोडियुन्
सतमगु सोम्मु गान विडन् जालवुगा
शिखि पिच्छवल्लि। सौ
गत मत धुर्यं ! दानिन् गटिन्
गट्टुमु, पुट्टमु मिन्न केटिकिन

मोर-मुकुट के बिना कृष्ण का केशालंकार अधूरा रहता है। मुण्डन के कारण बौद्धावतार में उसे भगवान् पहन नहीं सकते। जिस अलंकार के लिए कृष्ण प्रसिद्ध हैं उसे वे छोड़ भी नहीं सकते हैं। इसलिए कवि रामकृष्ण बुद्ध से कहते हैं—'कटिवाले वस्त्र को निकालकर उसके स्थान पर मोर के पंखों को बाँध लो। ऐसा करने से दूसरे वस्त्र-धारण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।' यहाँ कवि बिना केशराशिवाले बुद्ध का वर्णन व्यंग्यमिश्रित शैली में कर रहे हैं।

तृतीय सर्ग में कृष्णावतार-तत्त्व को समझाते हुए ये लिखते हैं—

(४)

वसुमती भार निर्वापणो द्यक्तुण्डु
वर्धित यादवान्वय पयोधि
देवकी वसुदेव शेवधि नन्द
मन्दिर रसालावास पर भृतम्बु
पूतना प्राण संघात वातूलाहि
शकटांग विघटन चटुल बुद्धि
समदतृणावर्त संवर्त समर्वात
पातितार्जुन पाद पद्वयुन्डु
वत्स हृत्सायकम् बभि व्यधित बकुन्डु,
र्मदि ता घुन्डु कालियमान भेदि
निष्ठुरानल पारण नैष्ठिकुण्डु,
कृष्णुन् डाश्रित लोक वर्धिष्णुन्डलरु

'श्रीकृष्ण भूभार को उतरनेवाले हैं। ये यदुवंश नामक समुद्र को बढ़ानेवाले चन्द्र हैं। देवकी-वसुदेव के लिए निधि के समान मूल्यवान् हैं। नन्द-गृहरूपी आम्र वृक्ष के कोयल हैं। पूतना के प्राणों को हरनेवाले हैं। शकटासुर को बुद्धि-बल से मारनेवाले हैं। घमण्डी तृणावर्त नामक राक्षस के लिए यमराज हैं। दो अर्जुन वृक्षों को गिरानेवाले हैं। वत्सासुर के लिए हृदयभेदी बाण हैं। अघासुर को मारनेवाले हैं। कालिय सर्प के दर्प को भंग करनेवाले हैं। दावाग्नि का भक्षण इनका नियम है। आश्रितों की श्रीवृद्धि करनेवाले हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण सुशोभित हैं।'

उद्भटाराध्य - चरित्रमु, कन्दर्पकेतु - विलासमु, पाण्डुरंग - महात्म्यमु, हरिलीला - विलासमु और घटिकाचल - महात्म्यमु—इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। हरिलीला-विलासमु और कन्दर्पकेतु-विलासमु अप्राप्य हैं। कहा जाता है कि 'पाण्डुरंग-विजयमु' नामक एक और काव्य भी इन्होंने लिखा था। टीकाकारों का अनुमान है कि 'पाण्डुरंग-महात्म्यम्मु' का ही दूसरा नाम 'पाण्डुरंग-विजयमु' होगा।

इनकी मृत्यु सन् १५७५-८० के बीच मानी जाती है।

सा० प्र०
रा० शे० गि०

त्यागराज

श्री त्यागराज का जन्म सन् १७६४ ई० में तमिलनाडु के तिरवय्यूरु नामक स्थान में हुआ था। ये गिरिराज कवि के पौत्र तथा राम ब्रह्म के पुत्र थे। इनके पूर्वज कर्नूल जिले के काकर्ल नामक गाँव के निवासी थे। कुछ पीढ़ियों पूर्व ये तमिलनाडु के तिरवय्यूरु में जा बसे और वहीं इन्होंने अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया। श्री त्यागराजु की शिक्षा-दीक्षा शोंठि वेंकट रमरणय्या के यहाँ हुई। बचपन से ही इनका सुझाव भक्ति की ओर था। गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के पश्चात् भी इनकी भक्ति-भावना अविचल रही। यद्यपि ये मुख्यरूप से श्री रामचन्द्र

के उपासक थे, किन्तु कृष्ण-लीला का भी इन्होंने समभाव से गान किया है। 'नौका-विजय' इनका कृष्णलीला-सम्बन्धी ग्रन्थ है, जिसका वर्ण्य विषय गोपिकाओं का चीर-हरण है, किन्तु भागवत की कथा से भिन्न है। इसकी कथा इस प्रकार है—गोपिकाओं को अपने सौन्दर्य पर गर्व था। कृष्ण ने उनका गर्व-भंग करना चाहा, अतः नौका-विहार का आयोजन किया। हठात् आँधी चली, चतुर्दिक् गहन अन्धकार छा गया। नौका के निचले भाग में छेद हो जाने के कारण उसमें पानी भरने लगा। इससे घबड़ाकर गोपिकाएँ कृष्ण से बचाव-हेतु प्रार्थना करने लगीं। इस पर कृष्ण ने उन्हें आदेश दिया कि अपना-अपना कंचुक निकालकर छेद बन्द करें। गोपिकाओं ने उनके कथनानुसार कार्य किया, किन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। दूसरी बार अपना चीर आदि समस्त वस्त्र उतारकर छेद बन्द करने का आदेश हुआ। अब जीवन की नौका प्राण-हानि और मान-भंगरूपी तटों के मध्य दोलायमान होने लगी। उनके लिए दोनों प्राणान्तक थे। विवश हो, प्राणों के रक्षार्थ गोपियों ने अपने वस्त्र उतारे। तभी उन लोगों ने जाना कि यह सब कृष्ण की माया है। गोपिकाओं को अपने गर्व पर पश्चात्ताप हुआ। वे कृष्ण के चरणों में गिर पड़ीं। उनका गर्व भंग हो गया।

यह कथा त्यागराज की अध्यात्मोन्मुख उर्वर कल्पना-शक्ति का उत्तम उदाहरण है।

'नौका-विजय' के अतिरिक्त 'सीताराम-विजय' और 'प्रह्लाद-भक्त विजय' नामक इनके ग्रन्थ मिलते हैं, जो यक्ष-गान नाम से जाने जाते हैं। श्री त्यागराज ने दस हजार गीत या पद लिखे; ये कीर्तन अथवा कृति नाम से विख्यात हैं। ये 'गायक-ब्रह्मा' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके गीत कर्नाटक-संगीत के प्राण हैं। इन्होंने अनेक राग-रागिनियों को जन्म दिया, जो कर्नाटक-संगीत के प्रधान उपजीव्य माने जाते हैं। उत्तर भारत में तानसेन का जो स्थान है, वही दक्षिण में त्यागराज को प्राप्त है। एक लेखक ने इनके सम्बन्ध में कहा है—"त्यागराज के गीत दक्षिणान्ध्र-वाङ्मय के अश्लील श्रृङ्गाररूपी पंक में विकसित अनर्घ पद्म के समान हैं।"

डॉ० के० वी० आर० नरसिंहम् का कथन है कि "त्यागराज ने संगीत को सौन्दर्य के साथ शील भी प्रदान किया।"

त्यागराज के गीत भक्ति, संगीत और साहित्य-रस के छलकते हुए प्याले हैं, जिनका आकण्ठ पान करके भी कोई परितृप्त नहीं होता।

इन्होंने राज्याश्रय का तिरस्कार कर अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत किया तथा भक्ति-भाव से साहित्य और संगीत की आराधना की। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी मातृभाषा तेलुगु में गीतों की रचना की; तमिलनाडु में अपना सारा जीवन व्यतीत किया और आन्ध्रप्रदेश को कर्णाटक-संगीत का अमूल्य उपहार देकर साहित्य, संगीत तथा भक्ति के क्षेत्र में समन्वयात्मक आदर्श उपस्थित किया। इन्होंने मानव-कृत संकुचित सीमाओं को क्षणिक एवं नश्वर बताते हुए साहित्य तथा दर्शन के दिव्यरसपान का पथ प्रशस्त किया। इनकी वाणी और भक्ति परमात्मा के साक्षात्कार का माध्यम बनी। इनका साहित्य कल्पना के उत्कृष्टतम अन्तरिक्ष को छूने में सफल रहा।

बा० रे०

दिट्ट कवि रामचन्द्र

क्रोध में शाप देनेवाले और प्रसन्न होने पर आशीष देनेवाले दिट्ट कवि रामचन्द्र अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में जन्म लेकर उन्नीसवीं शती के उदय तक जीवित रहे। रामचन्द्र कवि दिट्ट कवि नारायण के पुत्र थे, जो स्वयं अच्छे कवि थे। ये अनेक काव्यों के रचयिता दिट्ट कवि पापराजु के पौत्र थे। ये ब्राह्मण थे। इन्होंने कुल चार शतक लिखे हैं। वे हैं—उद्दण्ड राम-शतकम्, रघुकुल-तिलक-शतकम्, राजगोपाल-शतकम् और महिषा-

सुर मर्दनि-शतकम्। इनमें से राजगोपाल शतकम् कृष्णभक्तिपरक रचना है।

ये कृष्णा जिला के नन्दीग्राम तालुके के गोट्टुमुक्कलग्राम के निवासी तथा वासिरेड्डि वेन्कटाद्रि नामक राजा के दरबारी कवि थे। प्रवाह और रमणीयता इस कवि की विशेषता है। इनकी उपर्युक्त कृतियों की नामावली से ही यह स्पष्ट है कि वैष्णव होते हुए भी ये देवी अथवा दुर्गा में आस्था रखते थे।

सा० प्र०

(कवि कोकिल) दुव्वूरि रामिरेड्डी

श्री दुव्वूरि रामिरेड्डी का जन्म गुडूर नामक स्थान में ११ नवम्बर सन् १८९५ ई० को हुआ था। इन्होंने विद्यालय में विधिवत् शिक्षा बहुत कम प्राप्त की। घर पर ही ज्ञानार्जन किया। विज्ञान-शास्त्र और इन्जीनियरिंग में इनकी विशेष रुचि थी। ये मूलतः कृषक थे, अतः एक कृषक को ही नायक बनाकर इन्होंने 'कृषीवलुडु' नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी। ये एक चित्रकार भी थे और मिट्टी की मूर्तियाँ भी बनाते थे। १९ वर्ष की आयु से काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए, किन्तु इन्हें भय था कि कहीं काव्य-प्रतिभा नष्ट न हो जाय, इसीलिए इन्होंने 'कडपटि वीडुकोलु' (आखिरी बिदाई) और 'कवि संशयावस्था' नामक कविताएँ लिखी थीं।

ये तेलुगु, अंग्रेजी, बंगला, फ़ारसी, फ्रेन्च, संस्कृत आदि कई भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने अपनी कविताओं का अनुवाद स्वयं करके 'वायस आफ दि रीड' नाम से छपवाया था। इसकी प्रशंसा में भारत, इंग्लैण्ड और अमेरिका की पत्र-पत्रिकाओं में प्रशंसात्मक लेख निकले थे। 'ब्रिटिश एम्पायर एडिशन आफ इंगलिश पोइट्री' नामक संकलन में भी इनकी तीन कविताएँ छपी थीं। किसी विदेशी संकलनकर्ता द्वारा एक भारतीय कवि की कविताओं के चयन का सम्भवतः यह प्रथम अवसर था। डॉ० कज़िन्स ने 'समदर्शन' नामक अपने ग्रन्थ में भारतीय भाषा कवित्रय के अन्तर्गत सर मुहम्मद इकबाल और पूर्णसिंह के साथ ही दुव्वूरि रामिरेड्डी का भी नाम लिया है। इन्होंने उमर ख़य्याम की रुबाइयों का 'पानशाला' नाम से और शेख सादी के 'गुलिस्ताँ' का गुलाबी तोटा (गुलाब का वन) शीर्षक से अनुवाद किया था। इनके द्वारा 'बोस्ताँ' का अनुवाद 'पन्ड्ला तोटा' (फलों का बाग) शीर्षक से हुआ। इनके अतिरिक्त श्री रामिरेड्डी ने 'सीता वनवासम्', 'कुम्भराणा' तथा 'माधव-विजयम्' नामक नाटकों की भी रचना की। 'कांग्रेसवाला' इनके द्वारा सामान्य बोलचाल की भाषा में लिखा गया नाटक है।

श्री रामिरेड्डी को साहित्य-सेवा के लिए कई पुरस्कार मिले तथा कवि-कोकिल उपाधि से भी विभूषित किया गया।

सन् १९२६ ई० में इनकी पत्नी तथा एकमात्र शिशु का निधन हो गया। इस आघात के पूरे तीन साल बाद इन्होंने दूसरा विवाह किया। इस सन्दर्भ में इन्होंने लिखा था—

I made another garden yea
For my new love
I left the dead rose where it lay
And set the new above.

'अपनी नयी प्रेयसी (अर्थात् पत्नी) के लिए मैंने एक नया बाग लगवाया है। मृत गुलाब को उसी जगह छोड़कर उसी पर और एक नये गुलाब को मैंने रखा है।'

कोमल भावों के इस महान् कवि को जीवन की विषमताओं ने वेदना की गहराइयों में उतरने का अवसर प्रदान किया था, इसलिए ये राधा की वियोग-व्यथा को हृदयंगम करने में सफल हुए थे। 'राधयुत्कण्ठ' नामक कविता में वर्णित राधा-माधव-प्रेम इनकी उत्कृष्ट भाव-भक्ति का परिचायक है—

चल्लनि पन्नीट जलकम्बु लाडि
यगरु धूपमु वेट्टि यलकम्बु लाँचि
नुदुटन् गस्तुरि बोट्टु कुदुदुगान् दीँचि
कन्नुन् दम्मलन् ग्रोत्त काटुक दिद्दि
गोरन्ट पूगुत्ति कोप्पुनन् दुरिमि
कम्म तावुल नीस कलपम्बु नलन्दि
पोडि कप्पुरम्बुलन् बडळिन्न् जल्लि
पान्पुपैन् बुव्वुलु परपुगान् ब रचि
येल राडो सामि इंकेल राडो
यनुचुन् बोग्मु नानु कोनि वेचियुन्टि ।

× × ×

स्वांत मालस्यम्बु सैरिम्प लेक
वेदना भरमुन व्रीलन्ग जोच्चेन्
गनि कनि दारुलु कन्नुलु नोच्चे
ना सामि कृष्णुन्डु ननुन् गांच राडु ।

× × ×

वेचि युन्डि यपुड विभुन् डरुदेन्डु
वेसवि वानल विधमुग नतन्डु
कलवले वच्चुनु गनिपिन्चि पोवु ।

रात को राधा सज-धजकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रही है। कवि रामिरेड्डी उसके बाट जोहने के बारे में बता रहे हैं—

'राधा गुलाबयुक्त ठंढे जल में स्नान कर चुकी है। वह अगरु और ऊद से अपने बालों को सुखा चुकी है। वह माथे पर कस्तूरी तिलक ढंग से लगाने के बाद काजल से आँखों को सजा चुकी है। फूलों के गुच्छ को जूड़े में सँवारा है। शयन-कक्ष में सुगन्धित द्रव्य छिड़क चुकी है। शय्या को ताजे फूलों से सजाकर राधा सोच रही है कि मेरे स्वामी (नाथ) अब तक क्यों नहीं आये हैं। दरवाजे से टेककर वह सोच रही है।

'मन विलम्ब सह नहीं पा रहा है। वेदना तो हद से गुजर गयी है। राह देखकर आँखें थक गयी हैं। फिर भी मेरे स्वामी कृष्ण मुझे देखने नहीं आ रहे हैं।

'गरमी में वर्षा की तरह, स्वप्न की तरह मेरे स्वामी प्रतीक्षा की घड़ियों में कभी-कभी दिखायी देते हैं।'

इनका निधन ११ सितम्बर सन् १९४७ ई० को हुआ।

सा० प्र०

देवुल पल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री

भाव-कविता (छायावाद)-आन्दोलन के प्रमुख स्तम्भ श्री देवुल पल्लि कृष्ण शास्त्री का जन्म सन् १८९७ ई० में हुआ था। पिता-पुत्र दोनों का नाम एक ही था, किन्तु लोग पिता को तम्मन्न शास्त्री और पुत्र को कृष्ण शास्त्री नाम से पुकारते थे। इनकी शिक्षा पिठापुरम में हुई थी। कूचि नरसिंहम् इनके गुरु थे। अंग्रेजी पर इनका अच्छा अधिकार था। इसके अतिरिक्त ये तेलुगु और संस्कृत के भी अच्छे जानकार थे। उच्च शिक्षा के लिए ये पिठापुरम से काकिनाड़ा पहुँचे। वहाँ ये प्रमुख समाज-सुधारक और शिक्षा-शास्त्री श्री रघुपति वेंकट रत्नमु नायुडु के सम्पर्क में आये। यहीं ये ब्रह्मसमाज के प्रचारक बन गये। अपने विचारों के प्रचारार्थ इन्होंने अनेक गीतों की रचना की। कुछ दिनों के लिए ये पिठापुरन् में अध्यापक हो गये, किन्तु प्रबल देशभक्ति के कारण इन्हें पदत्याग करना पड़ा। हरिजन-छात्रावास से सम्बद्ध होने के कारण इन्हें स्वजातियों का भी कोपभाजन बनना पड़ा। ये जाति-बहिष्कृत कर दिये गये।

सन् १९४५ ई० से ये आकाशवाणी से जुड़ गये, तभी से इनके जीवन में नया मोड़ आया। इनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हो गयी और इन्होंने कई संगीतमय नाटकों और गीतों की रचना की। इन्होंने सिनेमा के लिए भी अनेक गीत लिखे। प्रभावोत्पादक वक्ता के साथ ही कृष्ण शास्त्री एक शुद्धतावादी

लेखक भी थे। ये शब्दों को बार-बार बदलते रहते थे। कुछ समय बाद इनके बोलने की शक्ति चली गयी।

'कृष्णपक्षम्', 'कन्नीरु', 'उर्वशि' इनके काव्य-संकलन हैं तथा 'धनुर्दासु', 'सायुज्यमु', 'गुडुडु', 'शिवक्षेत्र-यात्रा' आदि इनके गेय नाटक हैं। कन्नीरु (आँसू) इनका एक विरह-काव्य है, जो पत्नी की मृत्यु के अवसर पर लिखा गया था। मृदु-मधुर-कोमल पदावली, विरह की तीव्र अनुभूति और राष्ट्रीयता इनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। ये विकसनशील विचारधारा के कवि थे। प्रारम्भ में ये भाव-कविता (छायावाद)-आन्दोलन के सूत्रधार थे, बाद में समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप ये अभ्युदयवादी और प्रगतिवादी कवि बन गये।

साहित्यकार होने के साथ ही श्री कृष्ण शास्त्री एक सच्चे भक्त भी थे। ये माधुर्य भाव की उपासना को श्रेष्ठ मानते थे। आत्मा को स्त्री मानते हुए इन्होंने उसे परमात्मा के वियोग में तड़पते हुए चित्रित किया है। मुरली की ध्वनि सुनने के लिए इनकी सर्वेन्द्रियाँ मचल उठती हैं। एक उदाहरण देखिये—

तुम्मेद गन्ड्लु जुम् जुम्मनि पाड
शारद रमणीय सन्द्रंपु राजु
नानंद मुन नोल लाडु चुन्नाडु
....

पन्ड्लु पैरुल मिगुल बन्डि युन्नवि बे
रतिराजु लोक साम्राज्यम्मु नेलु
न.वेल चिन्तल केल मोडदोचि
स्वच्छम्मुगा मुरलि वाइम्पु कृष्ण।
(नेट्टिरेइ–'आज की रात' से)

'हे कृष्ण, बे रोक-टोक अर्थात् स्वतन्त्रता से अपनी मुरली बजाओ। यह देखो, भँवरों का झुण्ड गुनगुना रहा है। शरद् ऋतु की स्वच्छन्द चाँदनी इस समुद्रराज को आनन्दमग्न कर रही है। ··· ये वृक्ष अपने-आप फलवान् बन गये हैं। ये खेत अपने-आप कटाई के लिए तैयार हो गये हैं। अनंग यहाँ सम्राट् बनकर राज्य कर रहा है। ऐसे में चिन्ताओं के लिए स्थान कहाँ? तुम खुलकर मुरली बजाओ।'

विरहविदग्धा राधा सबसे आतूरतापूर्वक पूछ रही है—क्या प्रभु ने मेरे बारे में जिज्ञासा की है? वे कब आनेवाले हैं?

ई दारि न स्वामि नडचेना ?
पादाल जाड लिवि विडिचेना ?
एवरैना ना विभुनि चू चेरा ?–स्वामि
ऐमैना ना माट अन्नारा ?
एन्नाल्ल केन्नाल्ल कन्नारा ?–मीरु
कन्नारा ना स्वामि कन्नारा ?
करि मेनु चिन्नेल्लु विरिसेना ?–स्वामि
चिरु नव्वु वेन्नेल्लु कुरिसेना ?
शिख पैनि शिखि पिन्छ मू गेना ?–स्वामि
ओक सारि नववेणु वूदेना ?
मनसंत कोरिकलु मूगेना ?–मी
मनि किन्त ऊयल लूगेना ?
वृन्दावनी सोम्म इदियेना–का
लिन्दी नदी तीर मिदियेना ?
राधा मनोवीधि विडिचेना ?–स्वामि
ई दारि न कोरकु नडिचेना ?
ऐ वैन नामाट लेडिगेना ?
('चेतन्य लील' से)

विह्वल राधा हर एक से कृष्ण के बारे में पूछ रही है। वह पूछ रही है–'क्या कृष्ण इस राह से गुजरे हैं? क्या ये कृष्ण के पदचिह्न हैं? आपमें से क्या किसीने मेरे प्रभु को देखा है? क्या कृष्ण ने मेरे बारे में पूछताछ की है? कितने दिनों के बाद आपने उनको देखा है? क्या जीभर आप लोगों ने मेरे स्वामी को देखा है? क्या वह सुन्दर शरीरवाले उसी प्रकार सुन्दर आज भी मुस्करा रहे हैं? क्या मोर-मुकुट

उसी प्रकार शोभा दे रहा ? क्या उन्होंने आपके सामने फिर एक बार बाँसुरी बजायी ? अब मेरा मन इच्छाओं से भर गया है। वह झूम रहा है। क्या यह वही वृन्दावन है ? क्या यह वही कालिन्दी का किनारा है ? क्या मेरे स्वामी अपनी राधा को भूल गये हैं ? क्या फिर एक बार मेरे लिए इस पथ पर आयेंगे ? मेरे बारे में क्या वे पूछताछ कर रहे हैं ?'

कृष्ण शास्त्री दास्य-भक्ति में भी विश्वास रखनेवाले थे। वे अपने-आपको दीन-हीन मानकर अपने प्रभु को महान् दीनदयाल मानते थे। एक जगह उन्होंने लिखा है–'**दासिगा नन्डुट ळैन तगना प्राणेशा देवा देवा, नीसेव के गाक मा की नीरस जीवित मेला**' अर्थात् क्या मैं आपकी दासी बनने के लायक नहीं हूँ ? यह शरीर तो आपकी सेवा मात्र के लिए है।

सन् १९८० ई० के नवम्बर महीने की ग्यारह तारीख को अपने दिव्य प्रियतम की सेवा करने के लिए ये परलोकवासी हो गये।

सा० प्र०

दोनूरि कोनेरुकवि

तेलुगु में 'भागवतम्' पोतन के लिए एक पर्यायवाची शब्द है। इसे जानते हुए भी दोनूरि कोनेरुकवि या कोनेरु नायुडु ने 'बाल-भागवतम्' की रचना तेलुगु में की है। यद्यपि ये जानते थे कि लोग इनके काव्य की प्रशंसा नहीं करेंगे। इतना ही नहीं, पोतन के काव्य को चाहनेवाले 'बाल-भागवतम्' की उपेक्षा करेंगे, क्योंकि संसार में लोग अपनी गर्भधारिणी माँ के स्थान को ग्रहण करनेवाली जवान सौतेली माँ को पसन्द नहीं करते। अपने 'बाल-भागवतम्' के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं लिखा है—"यही वेदशास्त्र है। यह तो साहित्य के लिए अलंकार के समान है। एक नहीं, सभी ज्ञानी पण्डित मेरे काव्य के बारे में यही कहेंगे। मेरे इस भागवतम् की प्रशंसा करेंगे। हर माँ के लिए सन्तान प्यारी होती है। माँ चाहे मनुष्यरूपधारी स्त्री हो या कौआ हो।" दोनूरि कोनेरुकवि की दृष्टि में उनकी रचना एक उत्तम काव्य है।

ये नियोगी ब्राह्मण थे। इनका जन्म श्रीवत्स गोत्र में हुआ था। ये आश्वलायन-सूत्रों को माननेवाले थे। इनके पिता का नाम नागय्य मन्त्रि था। अपनी रचना 'बाल-भागवतम्' को इन्होंने आर्वेटि बुक्करायलु के पौत्र तिम्मराजु के नाम पर लिखकर उन्हें अर्पित किया था। कोनेरु नायुडु संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं के कई काव्यों के कर्ता थे। अपने आश्रयदाता के दरबार के ये मणिदीप थे। एक नहीं, आठ भाषाओं के कवियों के ये मित्र थे। साहित्य के पथ के निर्द्वन्द्व पथिक थे। इसलिए इन्हें बुलाकर नल्ल तिम्मराजु ने प्रार्थना की कि "भागवत की कथा की रचना करो। उस ग्रन्थ को 'बाल-भागवतम्' नाम दो।" दोनूरि कोनेरुकवि ने राजा के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। विद्वानों का मत है कि 'बाल-भागवतम्' पोतन के 'भागवतम्' का एक लघु संस्करण है। दोनूरि कोनेरुकवि ने अपने इस भक्तिसंवलित ग्रन्थ की रचना डॉ० आरुद्र और श्री चागन्टि शेषय्या के अनुसार सन् १५४३ ई० के बाद की होगी।

श्रीकृष्ण के निर्वाण के बाद अर्जुन बहुत दुःखी थे। बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें सान्त्वना दी। भाई को उत्तर देते हुए अर्जुन कहते हैं—

तल्लियु-दंड्रियु दात दैवम्बु-नेल्ल
बन्धु तुलु नधीशुंडु दाने
यै युन्डु हरि नन्नु नट मोस
पुच्चि-पोये ने मन्दुनो भूनाथ चन्द्र।

'हे भूनाथ चन्द्र युधिष्ठिर ! अब मैं आपको क्या बताऊँ ? मेरे लिए तो कृष्ण सब कुछ थे। माँ, बाप, दानी, दैव, सखा, बन्धु आदि। ऐसे प्रिय व्यक्ति ने मुझे धोखा दिया है। वे मुझे छोड़कर चले गये हैं।'

श्रीकृष्ण अर्जुन के लिए बन्धु, सखा एवं मार्गदर्शक थे। उनके निर्वाण का दुःख अर्जुन के लिए

असहनीय था। बीती बातों को स्मरण करते हुए वे अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए आगे कहते हैं—

मन्द हासंब् तो माटिकि
नन्नु-नंदंबुगा शौरि थंकिचिपिलुचु
चनुवुल दलचिन जननाथ थेमी
थनवच्चु गुन्डे जल्लनिथेडु निपुडु
अहार श्य्यासनादुलु बोत्तु-मोहम्बु
नेरपु नम्मुर शसनुंडु
तन तनूजु नियेड दंड्रियु पोले-मनमुलो
न तप्पुम रचि मन्निचु।

'मुझे श्रीकृष्ण बार-बार मुस्कराहट के साथ बुलाते थे। उनके बिछोह का स्मरण जब भी आता है तब दुःख बढ़ जाता है। उनके बिना खाना-पीना, सोना सब अरुचिकर लग रहे हैं। मुरारि मेरे लिए पिता समान थे। पितासदृश वह मेरी त्रुटियों को भूल जाते थे। भला ऐसे श्रीकृष्ण को मैं कैसे भूल सकूंगा।'

दोनूरि कोनेरु नाथ कवि कृष्ण के अनन्य भक्त थे। अपने 'बाल-भागवतम्' में एक जगह इन्होंने लिखा है–'**हरि कंटे दैव मन्यमु लेदु**'—अर्थात् 'हरि से बढ़कर महान् देव और कोई नहीं है।'

सा० प्र०

धरणि देवुलु रामय्या

कृतित्व-सम्बन्धी विवाद प्रायः हर साहित्य में देखने को मिलते हैं। सन् १६५० ई० के आसपास के कवि धरणि देवुलु रामय्या की कृति 'दशावतार-चरित्र' के विषय में विद्वानों का विचार है कि उसके रचयिता रामय्या नहीं, उनके मित्र पुष्पगिरि तिम्मन्न हैं। इस सम्बन्ध में श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् पन्तुलु का विचार इस प्रकार है—"दोनों कवि समकालीन थे। दोनों आन्ध्र प्रदेश के दो अलग-अलग क्षेत्रों के निवासी थे। बस, इस एक आधार के सिवा और कोई आधार नहीं है।···दशावतार-चरित्र की रचना से पुष्पगिरि तिम्मन्ना का कोई सम्बन्ध नहीं है।" डॉ० आरुद्र अपने 'समग्र आन्ध्र साहित्यम्' (एकादश खण्ड) में लिखते हैं—"कंकंटि पापराजु के 'उत्तर रामायणम्' में पुष्पगिरि तिम्मन्न की रचना-शैली स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार का शैलीगत प्रभाव 'दशावतार-चरित्र में नहीं दिखाई देता।" श्री चागन्टि शेषय्या कृतित्व-सम्बन्धी विवाद को समाप्त करते हुए कहते हैं—"यह मात्र दन्तकथा है। आधुनिक-युग के साहित्य-प्रेमी धरणि देवुलु रामय्या को एक सुकवि के रूप में ही जानते हैं।"

तेलुगु में राधा-माधव-तत्त्व का प्रचार सबसे पहले चिन्तलपूडि येल्लन्ना ने किया था। उनकी राधा स्वकीया थीं। 'राधा-कल्याण' और 'रुक्मिणी-कल्याण' में येल्लन्ना के अनुसार कोई भेद नहीं है। अन्य कवियों ने इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। पर धरणि देवुलु रामय्या के मत में राधा स्वकीया नहीं, परकीया हैं। तेनालि रामकृष्ण कवि की योगिनी और शक्तिस्वरूपिणी राधा धरणि देवुलु रामय्या के काव्य में शृङ्गाररस को नायिका बन गयीं। इस परिवर्तन का प्रधान कारण समाज में प्रचलित विलास की भावना थी। अमलिन शृङ्गार मलिन बनकर उन दिनों तेलुगु-साहित्य की गन्दी नालियों में बहने लगा था।

धरणि देवुलु रामय्या का परिचय देते हुए श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् (आन्ध्र कवुल चरित्र–तृतीय खण्ड) लिखते हैं—"आज से लगभग सौ वर्ष पहले यह काव्य (दशावतार-चरित्र) लिखा गया था।" श्री वीरेश लिंगम् के उक्त विचार से डॉ० आरुद्र सहमत नहीं हैं। डॉ० आरुद्र के अनुसार रामय्या या राममन्त्रि का जन्म सत्रहवीं शती के आरम्भ-काल में हुआ होगा। उनके (डॉ० आरुद्र) के अनुसार दशावतार-चरित्र का रचनाकाल सन् १६५० ई० के बाद है। श्री चागन्टि शेषय्या भी श्री वीरेश लिंगम् पन्तुलु के मत का खण्डन करते हुए तर्कसहित प्रमाणित करते हैं कि कवि ने सन् १६२० ई० और १६३० ई० के मध्यवर्ती काल में 'दशावतार-चरित्र' की रचना

होगी। अतः हम धरणि देवुलु राममन्त्रि को सत्रहवीं शती के कवि के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

धरणि देवुलु रामय्या आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले नियोगी ब्राह्मण थे। राममन्त्रि सुप्रसिद्ध तिम्मय्यामात्य के पौत्र थे। ये नागयामात्य और फाणियम्मा के सुपुत्र थे। विवादग्रस्त 'दशावतार-चरित्र' में कुल दस सर्ग हैं। (तेलुगु में सर्ग को आश्वास कहते हैं।) इस काव्य के कृतिपति मगदल कृष्णमन्त्रि हैं। 'दशावतार-चरित्र' सत्रहवीं शती का शृङ्गार-रसप्रधान काव्य है।

कृतिभर्त्ता मगदल कृष्णमन्त्रि के आदेशानुसार राममन्त्रि ने इसकी रचना की थी। राममन्त्रि की प्रशंसा करते हुए कृष्णमन्त्रि ने कहा था—"हे राममन्त्रि! तुम तो करुणरसारूढ़ हो। संस्कृत-प्राकृत आदि आठ भाषाओं को जाननेवाले संवेदी हो। तुम मेरे सच्चे मन्त्री हो। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि सुन्दरता से दशावतार-चरित्र को लिखकर मुझे उसका कृतिपति बनाओ। इससे तुम्हें यश मिल सकता है।" कृतिपति के इन शब्दों से कवि राममन्त्रि की प्रतिभा का अनुमान किया जा सकता है। मगदल वंशज प्रलय कावेरी पट्टनम् के निवासी थे। प्रलय कावेरी डच लोगों का बन्दरगाह था। इस प्रलय कावेरी को आजकल पुलिकाट कहते हैं। यह मद्रास से तीस-चालीस मील की दूरी पर बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित है।

दशावतार-चरित्र में दशावतारों का वर्णन है। उसका विवरण इस प्रकार है—

सर्ग	विवरण	गद्य-पद्य-संख्या
१.	मत्स्यावतार की कथा	३११
२.	कूर्मावतार की कथा	६४३
३.	वराहावतार की कथा	२३०
४.	नरसिंहावतार की कथा	२४३
५.	वामनावतार की कथा	१५२
६.	परशुरामावतार की कथा	११६
७	रामावतार की कथा	२०६
८.	कृष्णावतार की कथा	४४८
९.	बौद्धावतार की कथा	८६
१०.	कल्क्यावतार की कथा	४२

वामनावतार में त्रिविक्रम के रूप का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

पेरिगेन् वामनु डंत दंति पोडवै पृथ्वीधरंबंतयै
शरदंभोरुह मित्रशीतकर नक्षत्र ग्रह स्वर्महा
स्फुरितुन्डै जनलोक मव्वलिजगम्बु न्सत्यमुन् मिन्चुचुन्
हरिदंतंबुलु निंडि मेन्डु कोने नत्याश्चर्य मेपारगन्।

'वामन बढ़ रहे हैं। पहले वे हाथी के समान ऊँचे बने। फिर पृथ्वी के समान विशाल और पर्वत के समान लंबे बने। धीरे-धीरे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहों को पार कर तीनों लोकों के उस पार पहुँच गये। इस बढ़ते रूप को देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये।'

कृष्णावतार-वर्णन में राधा की रूप-सज्जा का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है—

कोप्पुन जाजुलुन् बिगिवु गुब्बल कुंकुम तेने मोवि पै
गप्पुर वीडियम्बु जिगि कस्तुरि बोट्टुनु नित्य चल्वयुं
जोप्पडु वारकांतवले जड्कि विन्दोर्नरिंचे गानि यो
क्कप्पुडु मैल दोप नडयाडदु राध मुकुन्दु मुन्दटन्।

'राधा ने जूड़े में फूलों को सजाकर रख लिया है। कसे स्तनोंवाली, माथे पर लाल तिलकवाली, मधु जैसे मुखवाली, ताम्बूल-सेवन करनेवाली राधा अनुपम सुन्दरी दिखाई दे रही हैं। पर कभी-कभी वह कृष्ण को अपने सामने देख आगे बढ़ने से इनकार कर देती हैं।'

वास्तव में धरणि देवुलु राममन्त्रि उच्चकोटि के भक्त और तेलुगु के एक असाधारण कवि हैं।

सा० प्र०

नन्दि तिम्मन्न

नन्दि तिम्मन्न राजा कृष्णदेवराय के अष्ट दिग्गज कवियों में से एक थे। इनके पिता का नाम सिंगयामात्युडु और माता का तिम्माम्बा था। ये आपस्तम्ब-सूत्र को माननेवाले, कौशिक गोत्री, नियोगी ब्राह्मण थे। इनके एक मामा भी कवि थे, जिनका नाम मलय मारुत था। तिम्मन्न के गुरु अघोर शैव थे, जो कडपा जिले के पुष्पगुरि नामक स्थान में रहते थे।

कृष्णदेवराय इनका बहुत सम्मान करते थे। पेद्दन्ना के बाद तिम्मन्न को ही वे सबसे अधिक चाहते थे। तिम्मन्न ने भी अपनी रचना उन्हें सर्मपित की थी।

नन्दि तिम्मन्न अपनी गुणग्राहकता के लिए प्रसिद्ध थे। एक दिन मणिमण्डित कुण्डलों को पहनकर ये अपने घर के आँगन में बैठे हुए थे। एक कवि ने बाहर से इन्हें देखा। अन्दर पहुँचकर उसने तिम्मन्न की प्रशंसा इन शब्दों में की—

मा कोलदि जानपदुलकु—नी कविता
ठोवि थब्बुने कूप नट
दभेकमुलक गगन धुनी-
शीकरमुल चेम्म ? नंदि सिंगयतिम्मा।

'हे नन्दि सिंगयतिम्मा ! आपका गाम्भीर्य हम जैसे जानपदों की कविता में कोई कैसे देख सकता है ? क्या कभी कुएँ में रहनेवाला मेढक आकाश के सीकरों की आर्द्रता जान सकेगा ?'

कवि के मुँह से इस पद्य को सुनकर तिम्मन्न बहुत प्रसन्न हुए और कुछ पास न देखकर उन्होंने अपने एक कान का कुण्डल उतारकर उसको दे दिया। दूसरे दिन तिम्मन्न राजा कृष्णदेव राय के दरबार में पहुँचे। राजा ने देखा कि कवि के एक कान में कुण्डल नहीं है। उन्होंने कारण पूछा। तिम्मन्न ने सारी बात कह दी। कवि द्वारा सुनाया गया पद्य भी उन्होंने कृष्णदेवराय को सुना दिया। पद्य सुनकर कृष्णदेवराय ने 'गगन धुनी' की जगह 'नाक धुनी' रखने का सुझाव दिया। तिम्मन्न को यह सुझाव बहुत पसंद आया और उन्होंने दूसरे कान का कुण्डल उतारकर कृष्णदेव राय को दे दिया।

इनकी प्रसिद्ध कृति 'पारिजातापहरणम्' पाँच सर्गों का श्रृंगारी काव्य है। नन्दि तिम्मन्न ने इन पाँच सर्गों को नाटक के पाँच अंक बना दिये हैं। इसमें प्रचलित काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग न कर कवि ने सीधे कथा ही आरम्भ कर दी है। काव्यारम्भ में सुन्दर प्रकृति के बीच रुक्मिणी अपनी सहेलियों और कृष्ण के साथ जुआ खेलती हुई दिखलाई पड़ती हैं। इसी बीच देवर्षि नारद का प्रवेश होता है। उनके हाथ में देवलोक में विकसित होनेवाला पारिजात पुष्प है। देवर्षि ने यह पुष्प कृष्ण को दे दिया। कृष्ण दुविधा में पड़ गये कि वे वह पुष्प किसको दें ? रुक्मिणी को या सत्यभामा को ? आखिर वह पुष्प उन्होंने रुक्मिणी के जूड़े में पहना दिया। देवर्षि रुक्मिणी की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि "तुम धन्य हो, क्योंकि कृष्ण तुम्हें सबसे अधिक प्रेम करते हैं। अगर सत्यभामा यह बात जान जायगी तो उस पर क्या बीतेगी ?" यहीं दृश्य समाप्त हो जाता है।

दूसरे दृश्य में सत्यभामा का भवन दिखाई देता है। वह उद्यान में सहेलियों के साथ बैठी है। इतने में कुछ सहेलियाँ दौड़ी हुई आती हैं और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को पारिजात पुष्प देने की बात सुनाती हैं। यह सुनकर सत्यभामा बहुत क्रोधित होती है और कोप-भवन में चली जाती है। कृष्ण मनाने आते हैं, अनुनय-विनय करते हैं, पैरों के पास बैठकर प्रार्थना करते हैं। सत्यभामा नागिन की तरह फुफकारती है और क्रोध में आकर अपने बायें पैर से कृष्ण के सर पर प्रहार करती है। बाद में उसे अपने इस कृत्य पर पश्चात्ताप होता है और वह रोने लगती

है। कृष्ण उसे अपनी बाँहों में समेट लेते हैं। यहाँ इस काव्य का प्रथम अंक समाप्त होता है।

इस अंक के बाद की कथा में कृष्ण सत्यभामा समेत अमरावती पहुँचते हैं। वहाँ इन्द्र को परास्त कर पारिजात वृक्ष को धरती पर ले आते हैं। आगे की कथा में सत्यभामा 'पुण्यक-व्रत' का पालन कर अपने पति को दान में दे देती है। इस तरह कृष्ण नारद के सेवक बन जाते हैं। फिर तुलादान की कथा है। इस तरह यह काव्य समाप्त होता है।

काव्य-कला की दृष्टि से इसका प्रथम सर्ग महत्त्वपूर्ण है। एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रूपगर्विता सत्यभामा का वर्णन नारद रुक्मिणी से इस प्रकार करते हैं—

(१)

चक्कनि दान नन्चु नेल जव्वनि नन्चु जगम्बु लोन बे
रेक्किन दान नन्चु बति थेन्तयो न कनुरक्तु डन्चु दा
निक्कुचु विर्रवीगुचु गणिम्पदु कान्तल सत्य इन्तकुन्
सृक्कक थुन्ने नी महिम चूचिन वोदुलु विन्नविन्चिनन् ?

'सत्यभामा रूपगर्विता है। अहंभाव के कारण वह अपने-आपको परम सुन्दरी, युवती तथा तीनों लोकों में अद्वितीय समझती है। अपने पति को अपने आँचल के छोर में बाँध लेनेवाली, ऐंठनेवाली, इठलानेवाली सत्यभामा को यह मालूम हो जाय तो क्या वह दुःखी नहीं होगी ?'

कृष्ण सत्यभामा को मनाने के लिए उसके पैरों के पास जा बैठे और हाथ जोड़कर विनती करने लगे। तब कुपिता सत्यभामा ने उन्हें अपने वाम पाद से मारा। इस पर कृष्ण उससे शान्त होने के लिए कहते हैं—

(२)

ननु भवदीय दासुनि,
मनम्बुन नेय्यपुगिन्क बूनि ता
चिनयदि नाकु मन्नथ,
चल्वगु नी पद पल्लवम्बु म
त्तनु पुलकाग्रकन्ट कवितानमु
दाकिन नोच्चु नन्चु ने
ननियद नल्क् मानवुकदा इक
नैन नराल कुन्तला।

'मैं तुम्हारा दास हूँ। तुमने हमें क्रोध के कारण मारा। मैं तो इसे एक गौरव मानता हूँ। तुम्हारे पास बैठने के कारण मैं पुलकित हो उठा था। इससे मेरे रोंगटे उठ खड़े हुए थे। वे कहीं तुम्हारे कोमल पैरों में चुभ तो नहीं गये ? हे सत्यभामा ! कम-से-कम अब तो शान्त हो जाओ।'

सा० प्र०

नन्नय

आदिकवि एवं वागानुशासनुडु (वागानुशासक) की उपाधियों से विभूषित नन्नय तेलुगु भाषा और साहित्य के प्राण हैं। चालुक्य-वंश के राजा राजराज नरेन्द्र के ये कुलगुरु थे। तेलुगु के प्रथम महाकाव्य महाभारत के ढाई पर्वों को (आदि, सभा और अरण्यपर्व) तेलुगु में मूल संस्कृत से अनूदित करनेवाले नन्नय स्मार्त ब्राह्मण थे। अपने विषय में महाभारत की अवतरणिका में इन्होंने अपने दादा-परदादा को राजाश्रय में रहनेवाला उत्तम ब्राह्मण बताया है। इन्होंने परम्परानुसार नन्दमपूडि और मण्ड शासन-शिलाओं की रचना की है। नन्दमपूडि शासन में लिखा है—"आज्ञप्तिरस्य कटकाधिराजः काव्यानाम् कर्ता नन्नयभट्टो लेखको गंडाचार्य।" डॉ० आरुद्र ने अपने 'समग्र आन्ध्र साहित्यम्' (प्रथम भाग) में नन्नय के वंशवृक्ष का परिचय इस प्रकार दिया है :

भीमन—रणस्तिपूडि शासनकर्ता-सन् १०१९।

बेतन भट्टु—कोरुमिल्लि, कलिदिंडि शासनकर्ता—सन् १०३६।

नन्नय भट्टु—नन्दमपूडि, मन्ड शासनकर्ता—सन् १०५३।

भीमन भट्टु—सोमल देवि शासनकर्ता—सन् १०६५।

अवतरणिका से यह भी ज्ञात होता है कि नन्नय "अविरल जप होम तत्पर, संहिताभ्यास करनेवाले, ब्रह्माण्डादि नानापुराण सम्पन्न, आपस्तम्ब-सूत्र, मुद्गल गोत्रोद्भव, लोकज्ञ तथा बुद्धि में वाचस्पति हैं।" ये वैदिक धर्म में विश्वास रखनेवाले स्मार्त थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजराज नरेन्द्र के अनुरोध पर महाभारत का अनुवाद-कार्य स्वीकार किया था। महाभारत में लिखा गया है कि "मैं (राजराज नरेन्द्र) अनेक पुराणों को सुन चुका हूँ। अर्थ-धर्म-सम्बन्धी शास्त्रों को जान चुका हूँ, अनेक काव्य-नाटकों को देख चुका हूँ, ईश्वरागमादि में भक्ति और श्रद्धा का भाव रखता हूँ। फिर भी मेरे मन में महाभारत को सुनने की बलवती इच्छा है।" नन्नय ने राजा की प्रार्थना को स्वीकार तो कर लिया, फिर भी उनसे कहा—"यह साधारण कार्य नहीं है। महाभारत एक विश्वकोश है। धर्म-तत्त्वज्ञ इसे धर्मशास्त्र कहते हैं। अपनी-अपनी दृष्टि से सबके सब इसे महाग्रन्थ मानते हैं। इसलिए इसे मैं अपनी बुद्धि के अनुसार रचूँगा।"

नन्नय वर्णाश्रम धर्म में विश्वास रखनेवाले थे। ययाति-देवयानी कथा में ये ययाति से कहलवाते हैं कि "मैं क्षत्रिय हूँ। तुम ब्राह्मण-कन्या (शुक्राचार्य की पुत्री) हो। मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। वर्णाश्रम धर्म-संरक्षक क्षत्रिय-वंश का होकर मैं यह पाप-कार्य नहीं कर सकता।"

राजगुरु नन्नय राजदूत भी थे। राजराज नरेन्द्र को उनके सौतेले भाई विजयादित्य ने बहुत सताया। इन्हें तीन बार गद्दी से उतरना पड़ा। जब कोप्पम-युद्ध (सन् १०५३ ई०) में चोल राजा, जो विवाह-बन्धन के कारण अपने जामाता की रक्षा करने आये थे, हार गये तो विवश होकर पश्चिम चालुक्य राजा त्रैलोक्यमल्ल से राजराज को सन्धि कर लेनी पड़ी। राजराज ने अपने कुल-पुरोहित नन्नय को राजदूत बनाकर भेजा। इन्होंने पश्चिमी चालुक्यों के प्रधान-मन्त्री श्री वानस मधुसूदनय्य से मिलकर एक सन्धि-प्रस्ताव तैयार किया। अपने सहपाठी नारायण भट्टु को, जो कि मधुसूदनय्य के सम्बन्धी थे, राजदूत के रूप में वेंगी ले आये। नारायण भट्टु अष्टभाषा-प्रवीण थे। उन्होंने महाभारत की रचना में नन्नय की सहायता ठीक उसी प्रकार की, जिस प्रकार महाभारत-युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन की की थी। उक्त घटना यह प्रमाणित करती है कि नन्नय राजगुरु तथा राजकवि होने के साथ ही राजनीतिज्ञ भी थे।

नन्नय अपनी अक्षर-रम्यता और प्रसन्न कथा-कलितार्थ युक्ति (कथा के साथ महार्थ को जोड़ने की कला) के लिए भी बहुत प्रसिद्ध हैं। ये गम्भीर रचना करने में समर्थ तथा मितभाषी थे। इन्होंने साहित्य-रचना के क्षेत्र में एक नयी प्रथा का शुभारम्भ किया और वह थी—भव्य रचना का भव्य समर्पण। इस प्रकार परवर्ती कवियों के लिए नन्नय ने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

इनके सम्बन्ध में एक दन्तकथा आन्ध्र में प्रचलित है। ये अपने समकालीन कवियों—वेमुलवाड भीमकवि तथा अथर्वणाचार्य से ईर्ष्या रखते थे। इसलिए इन्होंने वेमुलवाड भीमकवि द्वारा रचित 'राघव पाण्डवीयम्' नामक द्व्यर्थी काव्य और अथर्वणाचार्य विरचित 'महाभारत' को जला दिया। अतः वेमुलवाड भीमकवि ने इनको शाप दिया। इस शाप के कारण अनुवाद-कार्य अधूरा रह गया। ये केवल ढाई पर्वों का अनुवाद कर सके। किन्तु यह मात्र दन्तकथा है। वास्तव में राजराज नरेन्द्र के अस्थिर राज्य-शासन के कारण ही महाभारत की रचना अधूरी रह गयी होगी।

महाभारत के अधूरे अनुवाद के अतिरिक्त नन्नय के लिखे निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं—आन्ध्र शब्द चिन्तामणि, चामुण्डिका विलासमु, इन्द्र विजयमु, लक्षणसारमु। 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' तेलुगु भाषा के लिए संस्कृत श्लोकों में लिखा गया व्याकरण-ग्रन्थ है और 'लक्षण-सारमु' एक लक्षण-ग्रन्थ है।

संस्कृत-भाषाभिमानी होते हुए भी नन्नय ने बोलचाल की सजीव भाषा को अपनाया है। अनुवाद होते हुए भी इनकी रचनाएँ मौलिक बन पड़ी हैं। इनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में कहीं मूल का संक्षिप्तीकरण हुआ है तो कहीं विस्तार। इनकी प्रतिभा की परिचायक शकुन्तला-दुष्यन्त की कथा है। ये कभी पूरी कथा का वर्णन नहीं करते। थोड़ा कहकर शेष को पाठकों के लिए छोड़ देते हैं। काव्य में प्रयुक्त व्यंग्य के द्वारा कवि के मनोभाव को पाठक सरलता से जान जाते हैं।

अपने पुत्र और पत्नी को दुष्यन्त लोक-लाज के कारण पहचान नहीं पाये। इस सन्दर्भ में शकुन्तला राजा दुष्यन्त से इस प्रकार कहती है—

विपरीत प्रतिभाष लेमिटिकि नु
वींनाथ ! ई पुत्रगा
त्रपरिष्वंग सुखंबु से कोनुमु, मु
क्ताहार कर्पूर सां
द्रपराग प्रसरंवुन, जंदनमुन्, जं-
द्र ज्योत्स्नयुं बुत्रगा
त्र परिष्वंग मु नट्लु जीवुलकु हृ
द्यम्बे ? कडुन् शीतमे ?

'हे राजा! बेकार की बातों को छोड़ दो। अपने इस पुत्र को अपने गले से लगा लो। अपने पुत्र को गले से लगाने से जो सुख मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। पुत्रालिंगन जिस शीतलता को देता है, वह मुक्ताहार, कर्पूर की गन्ध, चन्दन या चाँदनी में नहीं है।'

सा॰ प्र॰

नर्रांसगन्न ताल्लपाक

नर्रासगन्न अन्नमय्या और तिम्मक्क के सुपुत्र थे। कवित्व-शक्ति इन्हें विरासत में मिली थी। नर्रासगन्न अपनी गद्य-पद्य-शैली के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। इनको लोग नरसय्या और नर्रासहाचार्य के नाम से भी जानते थे। इतना होते हुए भी आज नर्रासगन्न की रचनाएँ नहीं मिल रही हैं। अपने 'अन्नमाचार्य-चरित' में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने लिखा है कि "नर्रासगन्न ताल्लपाक छोड़कर सुंकेसुल नामक ग्राम में जाकर बस गये थे। इसलिए ताल्लपाक नर्रासगन्न, संकुसाल नृसिंह कवि के नाम से प्रसिद्ध हो गये। श्री चागन्टि शेषय्या इस बात का समर्थन करते हैं। पर श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् अपने 'आन्ध्र कवुल चरित्रमु' (द्वितीय भाग) में संकुसाल नृसिंह कवि के बारे में लिखते हुए उक्त बात की चर्चा नहीं करते। श्री कृष्णदेवराय के दरबार में अल्लसानि पेद्दन्न के ईर्ष्या-द्वेष के कारण स्थान न पानेवाले एक स्वतन्त्र कवि के रूप में इनका नाम लिया जाता है।

संकुसाल नृसिंह कवि के नाम से 'कवि कर्ण रसायन' और 'मान्धातृ-चरित्रमु' नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

सा॰ प्र॰

नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि

नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि कौशिक गोत्रीय नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम तिम्मन्न और माता का नाम कृष्णाम्बा था। ये उनके तृतीय पुत्र थे।

गोपमन्त्रि नादेन्ड्ल ग्राम के पटवारी थे। पटवारी से ये गुत्तिदुर्ग (अनन्तपुरम् जिले का एक तालुका) के अध्यक्ष बने। साल्व तिम्मरुसु ने, जो इनके मामा थे, कोण्डवीडु को अपने अधिकार में लेकर गोपमन्त्रि को उसका शासक बना दिया।

श्री चागन्टि शेषय्या मानते हैं कि गोपमन्त्रि का जन्म सन् १४८५ ई॰ हुआ होगा। शासक के रूप में गोपमन्त्रि ने कई सामाजिक कार्य किये। एक कथा के अनुसार कोण्डवीडु में कभी विश्वामित्र नामक यज्ञवाटिका थी, जहाँ यज्ञ-रक्षा के लिए भगवान् श्रीराम पहुँचे थे। वहाँ उनकी स्मृति में एक मन्दिर का निर्माण हुआ था, जिसका नाम राघवेश्वर स्वामि

मन्दिर था। गोपमन्त्रि ने इस मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया था। इसके लिए इन्होंने स्वर्ण कलश भी दान किये थे। इसके अतिरिक्त मैलवरमु नामक ग्राम को इन्होंने भगवान् के नाम अर्पित किया था। ये उत्सव के समय जिस मूर्ति को जुलूस में ले जाते थे उसे दान कर देते थे। इन सब बातों से इनके वैष्णव होने का पता चलता है। गोपमन्त्रि ने इन सब बातों को एक शिलालेख पर खुदवाया। यह कार्य सन् १५२०-२२ ई० के आसपास हुआ होगा।

ये कवियों के उदार आश्रयदाता थे, अच्छे प्रबन्धक और नानाशास्त्रपारंगत थे, देखने में सुन्दर, त्यागी और वीर पुरुष थे।

तेनालि रामलिंग कवि (आगे ये रामकृष्ण बने) ने लिखा है कि "गोपमन्त्रि आत्मपंकज वीथिका-विहारी हैं। ये शूर हैं तथा गम्भीरता में समुद्र के समान हैं।"

नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि ने कृष्णार्जुन-संवाद' नामक एक काव्य-ग्रन्थ लिखकर श्री राघवेश्वर स्वामि को समर्पित किया था। कृष्णार्जुन-संवाद को आधुनिक विद्वान् 'गयोपाख्यानम्' के नाम से जानते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है—"एक बार कृष्ण देवताओं को अर्घ्य देने के लिए प्रस्तुत थे। तभी आकाशगामी गय नामक गन्धर्व ने ऊपर से थूका। वह थूक कृष्ण के हाथों में जा गिरा। क्रोध में आकर कृष्ण ने गय को मारने की शपथ खायी। गय भयभीत हो गया। वह अर्जुन की शरण में गया। अर्जुन ने उसे अभयदान दिया। प्रस्तुत ग्रन्थ में सुभद्रा गय को शरण देनेवाले अर्जुन से कहती है—

प्राण प्रदम्बैन पद्माक्षु विडिचि-प्राणेशा गयुनि चेपट्टिन मेलें।

'प्राणों से भी प्यारे पद्माक्ष कृष्ण को छोड़कर गय को शरण देना क्या अच्छा है ?'

द्रौपदी भी अर्जुन को समझाती है—

मुन्गोन्गु रत्नंबु मुन्गिटि बसिडि-
तन्गोटि जुन्नु राधा भर्त मनकु
निट्टुवन्टि शौरिकि नेल नोको नेडु
कट कटा मन मोद घटिइल्ले किनुक।

'राधापति कृष्ण हम लोगों के लिए सर्वस्व हैं। वे हमारे आँचल में छिपे रत्न हैं। आँगन में पड़े रहनेवाले स्वर्ण हैं। हमारे लिए कृष्ण आसानी से पाये जानेवाले धन हैं। ऐसे प्राणप्रिय शौरि आज हमसे न जाने क्यों नाराज हैं ?'

अक्रूर भी अर्जुन को समझाते हैं—

चेलन्गि वेन्नुड्डु नीकुन् जेसिन मेलु
तलन्पक माटाड धर्मम्बु गादु
दैवम्बु गुरुन्डु बान्धवुन्डु मित्रुन्डु
गोविन्दुन् डतनि मार्कोनन् दगुनथ्य
निग्रहानुग्रह निपुणुन्डु शौरि
आग्रहिम्पक मुन्ने थनुपुमु गथुनि.......

'हे अर्जुन ! कृष्ण ने तुम्हारी बहुत सहायता की है। उसे भूलकर इस तरह की बातें करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम गोविन्द से टक्कर नहीं ले सकते। गोविन्द तो तुम्हारे लिए दैव, गुरु, बन्धु, मित्र, सब हैं। अपने-आप पर अंकुश रखनेवाले कृष्ण को क्रोध आने के पहले ही मेरा कहा मानकर गय को उनके पास भेज दो।'

गोपमन्त्रि ने अपनी रचना में जिस कथा की सृष्टि की है, वह महाभारत में नहीं मिलती। कदाचित् यह कथा उन्होंने ब्रह्मपुराण से ली हो और चतुर्धन के स्थान पर गन्धर्व गय को ला बैठाया हो।

शेषाद्रि और रमण नामक दो कवियों ने गोपमन्त्रि के इस काव्य का सम्पादन किया है। इस सम्पादन में उन्होंने एक आमुख लिखा है, जो इस प्रकार है—

"संस्कृत ग्रन्थों के लिए इस कवि ने 'प्रबोध चन्द्रोदयमु' नामक व्याख्या लिखी है। जिज्ञासुओं के

लिए यह व्याख्या वाङ्मय की शिक्षा है। कवि, त्यागी और भोगी के रूप में गोपमन्त्रि ने आन्ध्र देश की जनता की अपार सेवा की है।”

शेषाद्रि और रमण के इस कथन से नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि की महानता सिद्ध होती है।

सा० प्र०

नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि

नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि का जन्म सन् १८६३ ई० में हुआ था। ये एक उच्चकोटि के कवि, नाटककार एवं सम्पादक थे। राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा की स्थापना के ८० वर्ष पूर्व ही इन्होंने हिन्दी में मौलिक नाटक लिखकर आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी-प्रचार का शुभारम्भ किया था। ‘पारिजातापहरण’, ‘हरिश्चन्द्र’, ‘सारंगधर’ आदि इनकी प्रमुख नाट्य-कृतियाँ हैं।

नाटककार होने के साथ ही पुरुषोत्तमजी एक उच्चकोटि के कवि भी थे। ‘अद्भुतोत्तर रामायण’, ‘यादवाद्रीशोपाख्यान’, ‘माहेन्द्रपुराण’, ‘रंगदासीयमु’, ‘यामिनी-विनोदमु’, ‘बभ्रुवाहन-चरित्र’, ‘कृष्णानदी माहात्म्य’ आदि काव्य-ग्रन्थों में आपकी काव्यात्मक प्रतिभा दृष्टिगत होती है। काव्य और नाट्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने ‘सीताराम-शतक’, ‘मल्लिकार्जुन-शतक’, ‘पूर्वकर्म-शतक’ आदि शतकों की भी रचना की है। इन रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ पुरुषोत्तमजी ने ‘बुधविधेयिनी’ नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया, जिसके माध्यम से इन्होंने जनता में राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया।

सन् १९३८ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

बा० रे०

नायन सुब्बाराव

श्री नायन सुब्बाराव का जन्म २९ अक्तूबर १८९९ ई० को प्रकाशम जिले के पोदिले नामक स्थान में हुआ था। ये श्रीमती उदयम्मा और श्री कृष्णाराव के द्वितीय पुत्र थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने नगर में ही हुई। सन् १९२१ ई० में महात्मा गांधी के असहयोग-आन्दोलन से प्रभावित होकर इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया और स्वाधीनता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इनके जीवन का एक रोचक पक्ष भी है। ये अपने मामा की पुत्री वत्सला से प्रेम करते थे। किन्तु मामा ने इनसे अपनी पुत्री का विवाह इस शर्त पर ही करना स्वीकार किया कि ये कम-से-कम बी० ए० पास कर लें। अतः वत्सला को प्राप्त करने के लिए ये पहले स्नातक बने, तब गृहस्थ। ‘सौभद्रुनि प्रणय-यात्रा’ नामक अपने ग्रन्थ में इन्होंने इसी तथ्य का प्रकाशन किया है।

श्री सुब्बाराव कोमल भावों के कवि हैं। विरह इनकी कविता का मुख्य स्वर है। इन्होंने अपनी माता की मृत्यु पर ‘मातृगीतालु’ तथा पुत्र के निधन पर ‘वेदना-वासुदेवम्’ नामक शोक-काव्यों की रचना की थी। वैष्णव सुब्बाराव भगवान् के अनन्य भक्त थे। इनकी भक्ति प्रवृत्तिमूला थी। ‘वेदना-वासुदेवम्’ में इन्होंने यद्यपि दशावतारों का वर्णन किया है, किन्तु श्रीकृष्ण को सर्वान्तर्यामी मानते हुए कहा है—“आदियुन्नडुमन्तम्मिद मित्यमंचु नेरुंग रानि यव्यक्तपुं बोडवै विश्व जगत् ..” अर्थात् “हे कृष्ण, तुम आदि, मध्य, अन्त रहित हो। मैं कह नहीं सकता कि तुम क्या हो ?” ये पुनः कहते हैं–“विश्व जगती निर्वाहकानन्द धाराविर्भूत समस्त वस्तु हृदयाध्यक्षुन्डनि” अर्थात् “हे अखिल विश्व के निर्वाहक ! आप अपना कार्य आनन्दपूर्वक कर रहे हैं। आप हमारे हृदय के स्वामी हैं।”

इन्होंने जन्मभूमि नामक एक महाग्रन्थ की भी रचना की है। इसमें कई कथाएं हैं, जिनमें विष्णुभक्त संबुरायलु की कथा मुख्य है। ‘श्रीमन्नारायण चरणौ शरणम् प्रपद्ये’ तथा ‘श्रीमते नारायणाय नमः’ इनके जीवन का मूलमन्त्र था। इनके कृतित्व के उपलक्ष्य में सन् १९७८ ई० में आन्ध्र विश्वविद्यालय ने इन्हें

'कलाप्रपूर्ण' की मानद उपाधि प्रदान की थी। इनका गोलोकवास उसी वर्ष हुआ।

सा० प्र०

नायन सोमन्न

कवित्रय के बाद तेलुगु-साहित्य में मुख्य रूप से नायन सोमन्न का ही नाम लिया जाता है। कई विषयों में सोमन्न और एर्रन्न में साम्य है। एर्रन्न ने नन्नय के 'अरण्यपर्व' के शेष भाग को पूरा कर उन्हीं के नाम से काव्य को अर्पित किया। ठीक इसी प्रकार तिक्कन के प्रति गुरुभाव रखनेवाले सोमन्न ने तिक्कन के 'हरिहरनाथ' को ही अपना काव्य 'उत्तर-हरिवंशम्' अर्पित किया। इन्होंने एर्रन्न की तरह सोचा कि हरिवंश की रचना के बिना महाभारत की रचना अधूरी रहेगी। दोनों की रचनाओं का आधार संस्कृत के ग्रन्थ हैं, किन्तु इनमें मौलिकता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहररायलु और वुक्करायलु थे। अपने बड़े भाई के राज्यकाल में वुक्करायलु युवराज के पद पर विभूषित थे। उन्होंने बहुतों को दान दिया है। सन् १३४४ ई० में उन्होंने नायन सोमुडु या सोमन्न को एक गाँव दान में दिया था। इस दान शासन के अनुसार सोमन्न के विषय में यह पता चलता है कि ये अनेक शास्त्रों, पुराणों आदि के ज्ञाता थे।

सोमन्न आपस्तम्ब-सूत्र को माननेवाले थे। इनका जन्म भारद्वाज गोत्र में हुआ था। ये शुक्ल यजुश्शाखा के ब्राह्मण थे। जनमन्त्रि शेषाद्रि शर्मा के अनुसार सोमन्न रायलसीमा (कडपा, कर्नूल, अनन्तपुर और बल्लरी) के निवासी थे। बल्लरी अब कर्नाटक में है। आन्ध्र प्रदेश बनने के बाद चित्तूर को रायल सीमा के जिलों में सम्मिलित कर लिया गया है।

डॉ० जी० नागय्या के अनुसार सोमन्न सन् १३०० ई० से लेकर १३८० ई० तक विद्यमान थे। श्री रामकृष्ण शास्त्री ने लिखा है कि "इनका जन्म सन् १३१० ई० में हुआ होगा और मृत्यु सन् १३६० ई० में। डॉ० आरुद्र के अनुसार सोमन्न एर्रन्न से १५-२० वर्ष छोटे थे। श्री नडकुदरि वीरराजु ने सोमन्न को एर्रन्न का पूर्ववर्ती ठहराया है। चिन्नय सूरि, बहुजन पल्लि सीतारामाचर्युलु, कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् आदि सोमन्न को एर्रन्न से श्रेष्ठ कवि मानते हैं।

तेलुगु-साहित्य का उत्तर मध्यकाल नायन सोमन्न के 'उत्तर-हरिवंश' से प्रारम्भ होता है। यह ग्रन्थ आकार में छोटा है, पर इसकी महिमा महाभारत के समान है। सोमन्नकृत इस कृति में अवतारिका (मंगलाचरण) नहीं है। इसलिए इसे कुछ विद्वान् तिक्कन कवि की रचना मानते हैं। इसमें उत्तर-हरिवंश की कथा वर्णित है, परलोक में यह 'हरिवंश' के नाम से प्रसिद्ध है। अनुमान है कि सोमन्न ने पूरा ग्रन्थ लिखा होगा, पर उसके कुछ अंश कालकवलित हो गये। काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि यह 'प्रबन्ध-युग' की प्रथम कृति है। मानवीय प्रवृत्तियों का इसमें सजीव चित्रण हुआ है। उससे इसका महत्त्व परिलक्षित होता है। कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है—"हरिवंश-रचना के प्रथम कथातत्त्व में वर्तमान समस्त वैचित्र्य मन में सुस्थिर हुए हैं।" इससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि इन्होंने हरिवंश का प्रारम्भिक भाग भी रचा होगा। किन्तु काव्य का पूर्वभाग नष्ट हो गया। इस ग्रन्थ में अनेक कथाओं और उपकथाओं का वर्णन है। फिर भी मुख्य कथा को किंचित् भी हानि नहीं हुई है। इस ग्रन्थ में भगवान् कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध पाँच घटनाओं का वर्णन है। ये घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। सम्बद्धता के अभाव में भी काव्य प्रवाह और प्रसादगुण से सम्पन्न है, क्योंकि इसमें कथा की अन्विति है। कवि विभिन्न कथाओं में सन्तुलन लाकर मूल कथा को प्रभावशाली बनाता है। प्रत्येक कथा तथा उसके पात्र ग्रन्थ के चरित-नायक श्रीकृष्ण को उदात्त बनाने में सहायक हुए हैं।

सोमन्नकृत 'उत्तर-हरिवंश' छः आश्वासों का प्रबन्ध-काव्य है। आरम्भ के दो आश्वासों में नरकासुर-वध, कृष्ण द्वारा ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करना तथा सन्तानकामी श्रीकृष्ण के तपस्यार्थ वन-गमन के मार्ग में पिशाचों की भेंट—ये तीन कथाएँ वर्णित हैं। तृतीय तथा चतुर्थ आश्वासों में पौण्ड्रक वासुदेव, हंस डिभकादि के वध का वर्णन है। अन्तिम दो आश्वासों में बाणासुर की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन है। 'उत्तर-हरिवंश' पहला ग्रन्थ है, जिसमें भगवान् कृष्ण को लोकरंजक रूप में अंकित किया गया है। महाभारत में वासुदेव कृष्ण लोकरक्षक अर्थात् योद्धा, योगी एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में चित्रित हुए हैं। 'उत्तर-हरिवंश' में श्रीकृष्ण मुरलीधर हैं। लोकरंजन ही उनके जीवन का लक्ष्य है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सोमन्न की इस कृति में रुक्मिणी-कल्याण (मंगल), प्रद्युम्न-जन्म आदि कथांश नहीं हैं। ये उसके पूर्वभाग में रहे होंगे। संस्कृत में उपलब्ध हरिवंश की प्रतियों में उर्वशी-नरकासुर संवाद नहीं है। एर्रन्न ने इस कथांश का उल्लेख मात्र किया है किन्तु सोमन्न ने इस घटना का पूरा वर्णन किया है। मूल ग्रन्थ में एवं एर्रन्न की कृति में फलश्रुति है, पर सोमन्न के ग्रन्थ मे फलश्रुति नहीं है। कथा-पूर्ति का उल्लेख भी नहीं है। काव्य का अन्त भी परम्परानुसार नहीं है। इस ग्रन्थ में विष्णु भगवान् का चरित है। विष्णु कृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। अतः कृष्ण में विष्णु के समस्त गुण विद्यमान हैं। सोलह कलाओं की पूर्ण अवतार-मूर्ति हैं—श्रीकृष्ण। वे ग्रह-नक्षत्रों के नियन्ता हैं, मृत्यु भी उनके आदेशों के अनुसार अपना कर्तव्य निभाती है। पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु कृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। इन्द्रादि देवता कृष्ण के अधीन हैं तथा उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। सोमन्न भी तिक्कन की तरह हरिहराद्वैत-सिद्धान्त के अनुयायी थे। पर इस काव्य में विष्णु-तत्त्व की महिमा का गायन किया गया है और स्पष्ट किया गया है कि विष्णु-तत्त्व शिव-तत्त्व से अधिक महिमान्वित है। सोमन्नकृत 'उत्तर-हरिवंश' तेलुगु-साहित्य के लिए अमृत-स्रोत के समान है। इसके प्रत्येक खण्ड के अन्त में नायन सोमन्न ने लिखा है—"तिक्कन सोमयाजि-प्रणीत महाभारत-कथा के अनन्तर.... नवीन गुण सनाथ नायन सोमन्न द्वारा प्रणीत उत्तर-हरिवंश।" इसमें प्रयुक्त 'नवीन गुण सनाथ' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'नवीन गुण सनाथ' का अर्थ साहित्य में नये गुणों को लानेवाला लगा सकते हैं। साहित्य में नवीन पद्धतियों को समाविष्ट करनेवाले कवि के रूप में सोमन्न प्रसिद्ध हैं। इनके पूर्ववर्ती कवि काव्य के लिए आमुख लिखते थे। उस आमुख में वे यह बताते थे कि उन्हें काव्य लिखने की प्रेरणा कहाँ से मिली ? आश्रयदाता से या इष्टदेव से। तिक्कन स्वप्न-वृत्तान्त को आमुख में लाये। अन्य कवियों ने इनका अन्धानुकरण किया। पर सोमन्न ने आमुख नहीं लिखा है। इस प्रकार परवर्ती कवियों के लिए ये मार्गदर्शक बने। इसे एक 'नवीन गुण' कह सकते हैं।

सोमन्न ने 'उत्तर-हरिवंशम्' के अतिरिक्त दो अन्य काव्यों—'आदि अथवा आदित्य-पुराणम्' और 'वसन्त-विलासम्' की रचना की है। पर ये उपलब्ध नहीं हैं। नीचे इनके 'हरिवंशपुराणम्' से दो छन्द उद्धृत किये जाते हैं।

(१)

हरि-हर एक-दूसरे के पास खड़े हैं। इस घटना का वर्णन देखिये—

अभ्रंकष बैन थालपोतु नितन्डु,
त्रुन्चि नान्डीतन्डु पेन्चिनान्डु
साधु सम्मतमुग सामजम्बु नितन्डु,
गाचिनान् डीतन्डु द्रोचिनान्डु

बर्हिर्मुखार्थं मैं पर्वतेशुनितन्डु,
दाल्चिनान् डीतन्डु व्रालिच नाडु
नेन्डु नान्डुनु नेन्डु मन कुन्, जूपन
जेप्पंगन् जून्पन् गलिगे
ननुचुन् गोनियाडु संयमि जनुल कोदवे,
रजत गिरि मीन्द हरि हराधनंबु ।

उ० ह० २ आश्वा १७८-१८०

'ऊँचे बैल को इन्होंने (हरि ने , मारा है। उन्होंने (हर ने) पाला है। एक ने हाथी की रक्षा की है तो दूसरे ने हाथी को मारा है। एक ने पर्वत को उठाया है तो दूसरे ने उसे अपना आवास बनाया है। एक ने सर्प की शय्या बनायी तो दूसरे ने उसे गले का हार बनाया है।'

(२)

पुत्र-प्राप्ति के लिए कृष्ण शिव की आराधना करते हैं। शिवजी प्रत्यक्ष हो कहते हैं—

यदुवंशाम्बुधि चन्द्र नीमदिन् गुमारापेक्ष नालो निरं
गुडु न की चन वीन् दलंचिय तपो घोर क्रियन्मेच्चंगा
बिदपन् जेप्पेडिवाड वै तगुन् दगुन् बृन्दारक श्रेणिकिन्
हृदयाह्लादमुगा मदीय मकुटम् बेक्केन् भवत्पादमुल् ।

'हे यदुवंशोम्बुधि चन्द्र ! मैं तुम्हारे मन की इन्छा जानता हूँ। तुम पुत्र पाने के लिए तपस्या कर रहे हो। मेरे लिए तपस्या कर तुम मुझे श्रेय देना चाह रहे हो। मैं तुम्हारे चरणों को अपने हृदय में सुरक्षित रख चुका हूँ।' इन वाक्यों के द्वारा सोमन्न सिद्ध करना चाहते हैं कि कृष्ण शिव से श्रेष्ठ हैं।

रा० शे० रा०

सा० प्र०

नारन सूरन

नारन, नरन सूरन के पुत्र थे। अपने पिता की कृति कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़कर इन्होंने ज्येष्ठ पुत्र के धर्म को निभाया था। नरन-सूरन, नारन के कारण अमर बन गये हैं।

इनके गृहनाम के बारे में विद्वान् कुछ अन्धकार में हैं। मादय्य गारि मल्लन को हम उनके पिता के नाम के साथ जानते हैं। ठीक इसी प्रकार सूरन को भी पिता के नाम से जानते हैं। पिंगलि सूरन श्री कृष्णदेवराय के समकालीन सुप्रसिद्ध कवि थे। दोनों सूरनों को आसानी से पहचानने के लिए श्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् उक्त सूरन को नारन सूरन का नाम दे गये हैं। श्री चागन्टि शेषय्या इस नाम को प्रामाणिक मानते हैं। नारन सूरन के पिता नरन थे और माता अक्कम्मा। ये ब्राह्मण और कौण्डिन्यस गोत्र के थे। 'वनमाली-विलासमु' और 'उदयनोदयम्' के कवि नारन सूरन के बारे में साहित्य-क्षेत्र के विद्वान् बहुत कम जानते हैं।

'उदयनोदयम्' के कृतिपति के नाम के आधार पर काफी छानबीन के बाद श्री चागन्टि शेषय्या इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि नारन सूरन सोलहवीं शती के पूर्वार्ध के कवि होंगे। प्रथम काव्य 'वनमाली-विलासमु' के कृतिभर्ता के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। काव्य के सर्गान्त पद्य के आधार पर केवल इतना पता चलता है कि कृतिपति थेल्लमाम्बा के पुत्र और ऐतमाम्बा के पति हैं। राजा के दरबार में मन्त्रित्व और सेनापतित्व का भार सँभालनेवाले कोन्डूरि यक्काध्वरि हैं। इससे अधिक कृतिपति के बारे में कुछ पता नहीं चलता। इस काव्य के बारे में श्री चागन्टि शेषय्या लिखते हैं-"वनमाली का अर्थ श्रीकृष्ण है। 'वनमाली-विलासमु' से 'श्रीकृष्णविलासमु' का अर्थ निकलता है। यह काव्य मित्रवृन्दा और श्रीकृष्ण के विवाह से सम्बद्ध है।"

कृष्ण और मित्रवृन्दा के विरह एवं प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन नीचे दिये गये दो पद्यों में देख सकते हैं :

(१)

अप्पुडु कृष्णुन् डिन्दु किरणावलि सोकुन मेनन् दापमुल्
कुप्पलु गूटि राकन् गनि कुन्दुचुन् गेलिवनांतरंबुन
दोप्पु विलास कृत्रिमनगो परिवोधुल केगि वेन्नेलन्
जिप्पिलि जालुवारु मणि सीमसुलन् गल चंद्रशालिकन्।

'तब कृष्ण के शरीर को चन्द्र-किरणें छूने लगें। इसके कारण देह का ताप बढ़ने लगा। शरीर जलने लगा। वे आगेवाले रास्ते पर चले। वहाँ के मणिमय भवन के ऊपरवाले कमरे में वे लेट गये। वहाँ चाँदनी छिटक रही थी। नदी में पानी की तरह चाँदनी बह रही थी।'

(२)

मित्रवृन्दा का कृष्ण के प्रति प्रेम-सम्बन्धी पद्य इस प्रकार है—

नादगु मेलेंरगियु मनम्बुन नोल्लमि चेसेदेनि दा
मोदर ! मत्प्रतिज्ञ विनु मुग्रचिदग्नि देह माहुतिन्
गा दरि कोल्पि निन्ने पतिगांग वटिटन्चेद मूनद नैनन
व्वेदवतो वधूटि गति वेवरु माटलतोटि देटिकिन्

'मेरी भलाई का विचार न कर कुछ निर्णय आप कर लें तो हे दामोदर! मेरी प्रतिज्ञा सुनो। मैं अग्नि-ज्वालाओं में अपनी देह को फेंककर जला लूँगी। तब मैं तुम्हें पति के रूप में पा सकूँगी। इससे आगे मैं और कुछ नहीं कहना चाहती।'

सा० प्र०

नृसिंह कवि

नृसिंह कवि का समय सन् १७६० ई० के आस-पास माना जाता है। ये एक श्रेष्ठ कृष्ण-भक्त कवि थे। इनकी कृति 'कृष्ण-शतक' भक्ति-रसप्रधान एक उत्तम काव्य है, जिसमें श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ वर्णित हैं। 'कृष्णा' इसका मुकुट है। आन्ध्र प्रदेश में यह रचना अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय है।

वा० रे०

नेल्लूरि वीर राघवय्या

देशिराजु कोन्डयामात्य के वंशज संगीत-साहित्य-विशारद थे। वे वीणा-वादन-कला में प्रवीण थे। इसलिए कोन्डय्या के वंशजों को लोग 'वीणा-वाले' भी कहने लगे थे। नेल्लूरि वेन्कटपति जब प्रौढ़ हुए तब कर्णाटक राज्य पतनोन्मुख था। इसलिए पाकनाडु अर्थात् नेल्लूर प्रान्त के निवासी वेन्कटपति को गोलकोण्डा के सुलतान अबुल हसन का दरबारी बनकर उनको अपने संगीत और साहित्य-ज्ञान से प्रसन्न करना पड़ा। पर गोलकोन्डा का भी सूरज जब डूबने लगा तो वेन्कटपति के वंशजों को तिरुनलवेली में जाकर बसना पड़ा। ये लोग प्रवासी थे। इसलिए तिरुनलवेली के लोग इन्हें नेल्लूरिवाले कहने लगे।

वेन्कटपति के तीन पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम वीर राघवय्या था। कुल मिलकर राघवय्या कवि ने इकसठ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें आज मात्र दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं—'यादव-पाण्डव-राघवीयम्' और 'वसुन्धरा-परिणयम्'। 'यादव-पाण्डव-राघवीयम्' का रचना-काल सन् १७१७ ई० माना जाता है। अतः ये अठारहवीं शती के कवि थे।

देशिराजु, वीणा, नेल्लूरि आदि गृह-नामों से प्रसिद्ध वीर राघवय्या पाकनाडु के नियोगी ब्राह्मण थे। ये आपस्तम्ब सूत्रों को माननेवाले काश्यप गोत्रोद्भव वेन्कटपति और मंगमा के ज्येष्ठ पुत्र थे। रंगनार्य इनके पितामह थे। इनका वंश पण्डितों का वंश था। ये प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। उभय भाषाओं (संस्कृत और तेलुगु) में अनेक कृतियों की रचना कर इन्होंने दरबारियों तथा विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त की थी। पुण्यकोटि सोमयाजुल के ये प्रिय शिष्य थे। मन्त्रशास्त्र, छन्दशास्त्र, व्याकरण, अलंकार आदि के

अध्ययन के साथ-साथ गणितशास्त्र का भी इन्होंने अध्ययन किया था। हीरे-जवाहरात के पारखी वीर राघवय्या गज-परीक्षा-निपुण भी थे। प्राकृतादि षड्-भाषाओं के व्याकरणों के ये अधिकारी विद्वान् थे। इन्होंने ये सारी बातें अपने ग्रन्थ में लिखी हैं। इनके द्वारा विरचित कुल ६१ रचनाओं में से बारह ग्रन्थ तेलुगु से सम्बद्ध हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–१. अष्ट दिग्गजाल सीसालु (एक छन्दविशेष का नाम), २. कृष्ण भुजंगम्, ३. कृष्ण लीलामृतं, ४. चाटुवुल (फुटकर पद्य) ५. त्रिपुरारिदण्डकम्, ६. मन्त्रपाद स्तवम्, ७. यादवराघव-पाण्डवीयम्, ८. रस मंजरि, ९. वसुन्धरा परिणयम्, १०. सर्वलोकेश-शतकम्, ११. सानन्द चरित्र, १२. स्तम्भोद्भव गद्य। अपने सामर्थ्य का ढिंढ़ोरा स्वयं पीटनेवाले कवि राघवय्या अहंभावयुक्त कवि माने जाते हैं। अपनी प्रतिभा के बारे में कवि ने लिखा है कि "मैं एक साथ दस अर्थों को देनेवाले वाक्य या काव्य की रचना करने की शक्ति रखता हूँ। पण्डित और पामर दोनों मेरे काव्य को पसन्द करेंगे। पण्डितों के लिए मेरी कविता नारिकेल पाकम है तो पामरों के लिए द्राक्षा पाकम।" अर्थात् वे कठिन और मधुर दोनों शैलियों में लिखने की क्षमता रखते थे।

'वसुन्धरा परिणयम्' की कथा नरकासुर-वध से सम्बद्ध है। नृसिंहावतार की भूदेवी नरकासुर को जन्म देती है। जयन्त के शाप के कारण वह (भूदेवी) द्वापर-युग में सत्यभामा के रूप में जन्म लेती है। सत्यभामा के हाथों नरकासुर का वध होता है। दूसरे सर्ग में उन्होंने कृष्ण की स्तुति पचीस पद्यों में की है। उक्त वर्णन में भारत, भागवत और हरिवंश की कथाओं का समग्र रूप देख सकते हैं।

सा० प्र०

नोरि नरसिंह शास्त्री

श्री नोरि नरसिंह शास्त्री का जन्म ६ फरवरी, १९०० ई० में गुंटूर में एक विद्वद्वंश में हुआ था। ये श्रीमती महालक्ष्मम्मा और हनुमच्छास्त्रि के सुपुत्र थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुंटूर में ही हुई। सन् १९१८ ई० में इण्टरमीडिएट पास करके ये मद्रास पहुँचे। वहाँ से बी० ए०, बी० एल० की उपाधि प्राप्त करके इन्होंने गुंटूर में वकालत प्रारम्भ की।

श्री नरसिंह बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। ये भक्त कवि, कहानीकार, उपन्यासकार तथा नाटककार के रूप में प्रख्यात हैं। इनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं—

१. कहानी—गुलाबि पुव्वु, श्याम सुन्दरुडु, गान भंगमु, चेसुकुन्न वारिकि चेसु कोन्नन्त, भविष्यत्तु वधूसरा।

२ नाटक एकांकी--सोमनाथ विजयमु, खेमारुकुनि, वरागमनमु, आत्ममृति, पतंगयात्र षण्णवति।

३. उपन्यास—नारायण भट्टु, रुद्रम देवी।

इनकी काव्य-भाषा दो प्रकार की है। प्राचीन कथानकों पर लिखी गयी कविताओं की भाषा शास्त्रीय है। इसे ग्रन्थिक (ग्रन्थों की भाषा) कहते हैं। आधुनिक विषयों को इन्होंने बोलचाल की भाषा में लिखा है।

वेणुगान शीर्षक एक कविता का अंश यहाँ दिया जा रहा है जो उनकी कृष्ण-भक्ति का परिचायक है—

मुरलि मुद्दिडु नी मोवि सुरुपु चूचि
तमसु तेर चोल्चि प्रकृति चैतन्य मूने
स्वरमु वेलुवडि नन्त गोपाल कृष्ण
पुलकिन्चे वृन्दावन पुण्यभूमि

—'मुरलि ध्वनि' से

'मुरली को चूमनेवाले तुम्हारे सुन्दर स्वरूप को देखकर सारा जग एकदम निद्रा से जाग उठा। ऐसा लग रहा था, मानो चेतनता अँधेरे के परदे को चीर बाहर आ गयी हो। हे कृष्ण! तुम्हारी मुरली जैसे ही बज उठी वैसे ही पुण्यभूमि वृन्दावन झूम उठी।'

श्री नोरि नरसिंह शास्त्री की मृत्यु बीसवीं शती के पाँचवें दशक के उत्तरार्ध या छठी दशाब्दि के पूर्वार्ध में हुई।

सा० प्र०

पानुगन्टि लक्ष्मी नरसिंह राव

पानुगन्टि लक्ष्मी नरसिंह राव का जन्म सन् १८६५ ई० में सीतानगरम् नामक गाँव में हुआ था। ये रत्नाम्बा और वेन्कट रमणय्या के सुपुत्र थे। राजमहेन्द्रवरम् से स्नातक कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने कई दरबारों में सेवा-कार्य किया। ये कुछ वर्ष पेद्दापुरम् में अध्यापक भी रहे।

द्वैत-सिद्धान्त को माननेवाले माध्व ब्राह्मण श्री पानुगन्टि अपने समय के प्रख्यात विद्वान् थे। इन्होंने हास्य-व्यंग्ययुक्त अनेक निवन्धों और कहानियों की रचना की है। ये एक सफल नाटककार भी थे। सारंगधर चरित्र, राधाकृष्ण कण्ठाभरणमु, विप्रनारायण चरित्र, बुद्ध बोध सुध आदि आपके प्रमुख नाटक हैं।

राधाकृष्ण कण्ठाभरणमु नाटक में राधा कृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर उनकी लोकमोहिनी छवि का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

> व्रेतलु गृच्चिन विविध प्रसव मालि,
> कातति सिग जुट्टु गलुगु वाडु।
> ओक चेत मुरलि, वेरोक चेत नवनीत,
> कबल मिस्पुलु गुल्कन् गलुगु वाडु॥
>
> ज्ञानि कैननु नन्दगरानि चिरु पाद,
> मुलनु बंगरु गज्जललरु वाडु।
> पुट्टतेने राध मोवियु नोक रीति,
> नोडसि बलि यनि तलयूपुवाडु॥
> निट्टि लेतवाडु बृन्दाधि नायुंडु।
> प्रभुडु, गुरुडु प्राण पतियु नाकु॥

'कृष्ण, वृन्दाधिनाथ कृष्ण मेरे प्रभु हैं, मेरे गुरु हैं, वे ही मेरे प्राणपति भी हैं। उनको हर कोई पहचान सकता है। उनके जूड़े में गोपिकाओं द्वारा अनेकानेक फूलों से कसकर पोही गयी माला रहती है। वह एक हाथ में मुरली और दूसरे हाथ में नवनीत लिये रहते हैं। नवनीत खाने के कारण उनके गाल चिकने रहते हैं। हमेशा मनमोहक हँसी उनके ओंठों पर खेलती रहती है। ज्ञानी लोगों की पहुँच के बाहर उनके नन्हें पाँवों में सोने के पायल हैं। मधु कोश एवं राधा के वदन को एक जैसा चाहनेवाले कोमल नन्दकिशोर वृन्दाधिनाथ कृष्ण मेरे प्राणेश्वर हैं, सर्वस्व हैं।'

सा० प्र०

पिंगलि सूरन

संस्कृताभिमान के कारण कन्नड और मराठी भाषाभाषी उपन्यास को 'कादम्बरी' कहते हैं। ठीक इसी तरह तेलुगु भाषाभिमान के कारण आन्ध्र भाषा के विद्वानों को उपन्यास के लिए 'कलापूर्णोदयम्' नाम देना चाहिए था। पर तेलुगुवाले उपन्यास को अंग्रेजों की तरह 'नावेल' कहते हैं। पिंगलि सूरन कृत 'कलापूर्णोदयम्' को तेलुगु-साहित्य के सभी आलोचक तेलुगु का प्रथम उपन्यास मानते हैं। सोलहवीं सदी के पिंगलि सूरन का विश्व के ख्यातिप्राप्त आरम्भिक उपन्यासकारों में विशिष्ट स्थान है।

तेलुगु के प्रथम द्वर्थि काव्य 'राघव पाण्डवीयम्' के लेखक पिंगलि सूरन बोम्म कंटि श्रीनिवासाचार्युलु के अनुसार 'आन्ध्र आख्यान वरिष्ठ' हैं। पिंगलि एक गाँव का नाम है। सूरन के पूर्वज इस गाँव के निवासी थे। इसलिए इस वंश में जन्म लेनेवालों को पिंगलिवाले कहते हैं। सर्वश्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् पन्तुलु, वेम्पराल सूर्यनारायण शास्त्री, विद्वान् भाष्यकाचार्युलु आदि के अनुसार यह पिंगलि कृष्णा जिले का एक ग्राम है। डॉ० आरुद्र के अनुसार पिंगलि महाराष्ट्र में स्थित एक गाँव का नाम है। मन्माड-पूर्णा रेल-मार्ग पर पड़नेवाला यह गाँव सिकन्दराबाद से ३२१ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

पिंगलि सूरन, जिसको डॉ० आरुद्र सूरपराजु कहते हैं, आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। अपने-आपको सूरन चरित्रवान् मानते हैं। इनके वंश के मूल पुरुष का नाम गोकनामात्य है। इन्होंने 'नन्दक स्तवम्' नामक काव्य की रचना की है। इस काव्य में श्रीमहाविष्णु के खड्ग का वर्णन है।

सूरन अमरनामात्य और थब्बमाम्ब के पुत्र थे। इनके दो छोटे भाई थे। वे थे थमलन और थेर्रन। सूरन का वंश पण्डितों का वंश माना जाता है। श्री चागन्टि शेषय्या के अनुसार इनका जन्म सन् १५०० ई० के आसपास हुआ होगा। शैव-धर्मानुयायी होने के कारण इन्होंने 'गिरिजा कल्याणम्' नामक ग्रन्थ लिखा था। यह अब नहीं मिल रहा है। लाक्षणिक कस्तूरिरंग कवि ने अपने 'आनन्द-रंगराट्-छन्दे' नामक ग्रन्थ में 'गिरिजा कल्याणम्' ग्रन्थ से एक छन्द उदाहरण के रूप में लिया है। आचार्य पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् पिंगलि सूरन की कृतियों के बारे में लिखते हैं—'गरुड पुराणम्' की रचना सन् १५४० ई० के आसपास हुई होगी। सन् १५५० ई० में सूरन ने अपने 'राघव पाण्डवीयम्' काव्य को पूरा किया होगा। इन्होंने 'कलापूर्णोदयम्' की रचना सन् १५६० ई० में की होगी। यह तिथि पाँच साल आगे-पीछे भी हो सकती है। 'गरुड पुराणम्' के कृतिपति कौन हैं यह कहा नहीं जा सकता। पर 'राघव पाण्डवीयम्' के कृतिपति आकुवीटि पेद वेंकटाद्रि हैं। इन्होंने नन्द्याल के राजा कृष्णभूपति को 'कलापूर्णोदयम्' समर्पित किया था। अगर सूरन कृष्णदेवरायलु के दरबार के अष्ट दिग्गजों में से एक होते तो इतने बड़े महाकाव्य को उनके नाम पर समर्पित कर सकते थे। किन्तु इन्होंने ऐसा नहीं किया। इसका कारण यह है कि सूरन कृष्णदेवरायलु के समय में नहीं थे। अगर थे तो तरुण या किशोर के रूप में रहे होंगे। 'प्रभावति प्रद्युम्नमु' काव्य को इन्होंने अपने पिता को समर्पित किया है।

पिंगलि सूरन ने अपने पूर्वज गोकन से सम्बद्ध एक कहानी (जो आजकल कहावत के रूप में प्रचलित है) लिपिबद्ध की है। अगर कोई किसीके पीछे हाथ धोकर पड़ जाता है तो निकटस्थ जिलों के लोग कहते हैं—"तुम तो पिंगलिवालों की पेकि (एक गन्धर्व-स्त्री) की तरह पीछे पड़ गये हो।" पेकि अर्थात् गन्धर्व-स्त्री की कहानी इस प्रकार है—"गोकन एक बार एक जंगल से जा रहे थे। रास्ते में उनको काँच का एक टुकड़ा मिला। उसे हीरा समझकर वे घर लाये और उसे सन्दूक में डाल दिया। इस घटना के बाद एक दासी उनके घर में काम करने के लिए आयी। उसने शर्त यह लगायी थी कि काम उसे लगातार मिलना चाहिए। घरवाले बहुत प्रसन्न हुए। वह दासी सभी कार्य एक क्षण में समाप्त करती थी और मालिक से और काम देने के लिए कहती थी। कठिन-से-कठिन कार्यों को भी वह शीघ्र पूरा कर लेती थी। एक दिन गोकन की पत्नी प्रसव-वेदना से तड़प रही थी। मालिक ने दासी से अपनी पत्नी के साथ कमरे में सोने को कहा। दासी मान गयी। रात को मालकिन ने दासी से दिया बुझाने के लिए कहा। दिया दूसरे कमरे में था। बिना अपनी जगह से उठे उस दासी ने अपनी जीभ को फैलाया और दूसरे कमरे में जलनेवाले दिये को बुझा दिया। यह देखकर घरवाले डर गये। दूसरे दिन दासी से कहा गया—'जाकर गंगाजल लाओ।' दासी जल लाने चली गयी। इस बीच वे अपने इस घर को छोड़कर दूसरे गाँव में जाकर बस गये। वह दासी वहाँ भी जा पहुँची। उसके सर पर एक बड़ा ओखल था। वह इतना भारी था कि पाँच या दस आदमी मिलकर भी उसे उठा नहीं सकते थे। मालिक ने दासी से पूछा—'हमें क्यों सताती हो? घर छोड़कर चली क्यों नहीं जाती?' उस दासी ने कहा—'मैं जाऊँगी, पर उस काँच के टुकड़े को मुझे दे दीजिये जिसे आपने सन्दूक में रखा है।' मालिक ने टुकड़ा दे दिया। वह चली गयी।"

'राघव पांडवीयम्' के टीकाकार श्री ई० भाष्यकाचार्य पिंगलि सूरन को श्रीकृष्णदेवरायलु के अष्ट दिग्गज कवियों में से एक मानते हैं। उनका विचार है कि सूरन कृष्णदेवरायलु के जीवन-काल में बाल-कवि के रूप में यश पा गये होंगे। कृष्णदेवरायलु के देहावसान के बाद प्रौढ़ कवि के रूप में इन्होंने ख्याति पायी होगी। यह भाष्यकाचार्युलु की मात्र कल्पना प्रतीत होती है। इनके काव्य के कृतिपतियों के नामों के आधार पर सर्वश्री कन्दुकूरि वीरेश लिंगम्, चागन्टि शेषय्या, गुरुजाड श्रीराममूर्ति, डॉ० आरुद्र आदि की धारणा है कि सूरन श्री कृष्णदेवरायलु के दरबारी कवि नहीं थे। इस सन्दर्भ में डॉ० आरुद्र लिखते हैं—"सूरन के साहित्य-प्रवेश के पूर्व ही श्रीकृष्णदेवरायलु का स्वर्गवास हो गया था।"

सूरन शिव-भक्त थे। फिर भी विष्णु-द्वेषी नहीं थे। ग्रन्थों में प्रतिपादित कथा विष्णु-सम्बन्धी होते हुए भी सूरन ने इष्टदेवता-स्तुति में शिव की प्रार्थना की है। सूरन की प्रथम रचना 'गिरिजा कल्याणम्' आज उपलब्ध नहीं है। दूसरा काव्य 'गरुडपुराण' है। गरुडपुराण विष्णु से सम्बद्ध पुराण है। इस पुराण के वक्ता स्वयं श्री विष्णु हैं और श्रोता विष्णुवाहन गरुड। पर गरुडपुराण का पारायण साधारणतया लोग करते नहीं हैं। जब घर में किसीकी मृत्यु हो जाती है, उस समय आन्ध्र के ब्राह्मण-घरों में गरुडपुराण का पारायण होता है। यह ग्रन्थ भी आज अप्राप्य है।

'राघव पाण्डवीयमु' सूरन की तृतीय रचना है। यह द्व्यर्थक अर्थात् दो अर्थोंवाला काव्य है। अन्वय-भेद के कारण एक साथ दो-दो अर्थ इस काव्य से निकाल सकते हैं। एक अन्वय के अनुसार यह रामायण है तो दूसरे अर्थ के अनुसार यह महाभारत की कथा है। यह एक चमत्कार है। इस प्रकार का चमत्कार सूरन के पहले, लोगों का विश्वास है कि वेमुलवाड भीम कवि ने किया था। वह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसलिए सबसे पहले तेलुगु में द्व्यर्थक काव्य लिखने का श्रेय पिंगलि सूरन को मिलता है। सन् १५५० ई० के आसपास इस काव्य को सूरन ने पूरा किया होगा। विष्णु के अवतार श्री राम के जन्म और कुन्ती के गर्भस्थ शिशु के जन्म से सम्बद्ध यह पद्य देखिये—

भरिइन्चे नपुड्डु विबुधो
त्कर संप्रार्थन मोनर्चु कडन् कदलिपंन्
हरि मध्यम भुवनमुन् ब्रो
चुर्रात दद्गर्भ भाव शोभन लीलन्।

रामायण के अर्थ में—

'सुरगण विष्णु की प्रार्थना करने लगे। प्रसन्न विष्णु ने सुरों की इच्छा-पूर्ति के लिए, भूमि की रक्षा करने के लिए दशरथ की पत्नियों के गर्भ में जा बसने की लीला दिखायी।'

महाभारत के अर्थ में—

'कुन्ती देवी, जो कि कवि के अनुसार हरि (सिंह) मध्यमा है, के गर्भस्थ शिशु के मतानुसार, पण्डितों की इच्छा के अनुसार लोकरक्षणार्थं, गर्भ धारण किया।'

इंग्लैण्ड के शेक्सपियर और फ्रान्स के रबेल्ले जैसे उच्च कोटि के साहित्यकारों के समकालीन पिंगलि सूरन 'कादम्बरी' के समान काव्य 'कलापूर्णोदयम्' के रचयिता हैं। इस काव्य के बारे में तेलुगु-साहित्य के आलोचक, शिक्षा-शास्त्री, राजनीतिज्ञ, आन्ध्र विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डॉ० कट्ट मन्त्रि रामलिंगा रेड्डी ने लिखा है—"कलापूर्णोदय तेलुगु-साहित्य का अद्वितीय काव्य है। अपने-आपमें यह साहित्य की एक नयी विधा है। आदि से अन्त तक इस रोचक काव्य को तेलुगु के आलोचक तेलुगु का सर्वप्रथम उपन्यास मानते हैं। उत्कण्ठा, कथानक, कथोपकथन, मनोविज्ञान आदि बातों का सुन्दर सम्मिश्रण इस काव्य में है। कृष्ण-ब्रह्मा-सरस्वती,

रम्भा, नलकूबर आदि से सम्बद्ध यह काल्पनिक काव्य है।"

गान कला-निपुण मणिकन्धर गानपारंगत वनतीर्थ-यात्रा के लिए निकलता है। तीर्थाटन करते-करते वह तिरुपति (जो वैष्णव-क्षेत्र है) पहुँचता है। दर्शन के बाद श्रीनिवास का वर्णन वह इस प्रकार करता है—

मृदु पदाम्बुजमुलु, मेरुंगु टन्देलुन्, बैन्डि
दुप्पटियुनु, मोल मुप्पिडियुनु
मणिमेखलयु, बोड्डु मानिकंबुनु, वैज
यंतियु, नुरमुन नलरु सिरियु,
वरद हस्तमुन, गटि वर्तिलु केलु शं
खमुन् जक्रमुनु दाल्चु कर युगम्बुन्
दार हारंबलुन्, जारु कंठंबु नि
हपुन् जेक्कुलुनु, नव्वु दलुकु पसलु।

'मणिकन्धर ने वेंकटेश को देखा। श्रीवेंकटेश्वर के पैर अत्यन्त मृदु थे। पाँवों की पैजनियाँ एकदम चमक रही थीं। वे सुनहरे दुकूल पहने हुए थे। मणिमय कटिबन्धन था। नाभि में हीरा जड़ा हुआ था। उर में वैजयन्तीमाला थी। वे वरद हस्तवाले थे। एक हाथ कटि-प्रदेश पर शोभायमान था। शेष दो हाथों में शंख और चक्र थे। फूल-मालाओं के कारण कण्ठ अतिसुन्दर दिखायी दे रहा था। वे कोमल गालवाले थे। मकर कुण्डलवाले, कमल नयनवाले, सुन्दर नासिकावाले, रत्न मुकुटवाले, मोतियों से जड़े नाम (माथे पर की लंबी लकीर) वाले श्री श्रीनिवास को मणिकन्धर ने आँखभर देखा।'

'प्रभावती प्रद्युम्नमु' पिंगलि सूरन द्वारा विरचित अन्तिम काव्य है। यह भी एक उत्कृष्ट कृष्ण-काव्य है। इसमें वज्रनाभ नामक असुर की कन्या प्रभावती श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न से विवाह कर लेती है। वज्रनाभ को मारकर श्रीकृष्ण उसकी कन्या को अपने पुत्र के लिए वधू के रूप में चुन लेते हैं। विवाह श्रीकृष्ण की सहायता से सम्पन्न होता है।

शुचिमुखि नामक हंसिनी इस काव्य की दूती है। श्रीकृष्ण के संग अष्टमहिषी समेत शुचिमुखी भी थी। पिंगलि सूरन कृष्ण और शुचिमुखी का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

तोडलु तलाडगा निडि रुक्मिणी भंजिपन्,
बदमु लोत्तुचु सत्यभाव कोलुव
सुरन्टि चेकोनि भद्र शुश्रूष गाविम्प,
विरिचामरमु भित्रविन्द इन्डन्गन्
गालिन्दि वेड्कतोन् गालन्जि दाल्प,
जाम्बवति तमुल पाकु मडिचि थोसन्ग
गोड्डुगु पावलु केल गोनि नाग्नजित युन्ड,
जल मुलगिन्डि लक्षण वहिप
ग्रोम्मेरुंगुलतोडि कार्मोगुलु वोले,
नोप्पु कृष्णुनि चेरुव नोप्पे हंसि
निन्डु नेलरीतिन् दारकान्वित म भम्बु,
पोलपुन् देलिपेडि नेत्तम्मि कोलनि केलन।

'अष्टमहिषी समेत श्रीकृष्ण शोभायमान दिखायी दे रहे हैं। रुक्मिणी की जाँघ की तकिया बनाकर श्रीकृष्ण सो रहे हैं। सत्यभामा श्रीकृष्ण के पैरों को धीरे-धीरे दबा रही थी। भद्रा पंखा झल रही थी। मित्रवृन्दा फूलों के चँवर को डुला रही थी। कालिन्दी अपने हाथ में उगालदान लिये खड़ी थी। जाम्बवती ताम्बूल दे रही थी। नाग्नजिति हाथों में छतरी और श्रीकृष्ण की पादुकाओं को लिये खड़ी थी। लक्षणा के करों में सुराही थी। इन आठ पटरानियों से सेवा लेनेवाले श्रीकृष्ण वसन्त ऋतु की बिजली की चमक से सुन्दर वर्षा ऋतु के मेघ के समान शोभा पा रहे थे। कमलों से युक्त निकट का सरोवर आकाश के नक्षत्रों के समान दिखायी दे रहा था। इस आकाश के पूर्ण चन्द्रमा के समान शुचिमुखी हंस रूप में दिखायी दे रही थी।'

श्री वेंकटेश्वर और आन्ध्र विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व तेलुगु-विभागाध्यक्ष आचार्य पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् पिंगलि सूरन के बारे में 'विज्ञान सर्वस्वमु'

(विश्वकोश) के चतुर्थ खण्ड में लिखते हैं—"स्त्री-मनोविज्ञान के पारखी, सूरन की समतावाले साहित्यकार का जन्म अब तक नहीं हुआ है। आगे होने की सम्भावना भी नहीं है। 'कलापूर्णोदयमु' और 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' इन दो काव्यों में तरह-तरह की स्त्रियों का चरित्र जीवन्त रूप में चित्रित कर सूरन ने प्रमाणित किया है कि प्रकृति के समान काव्य के लिए भी शक्ति प्रदान करनेवाली स्त्री ही है। वस्तुतः ये दोनों तेलुगु के श्रेष्ठ महाकाव्य हैं।"

एक किंवदन्ती के अनुसार अल्लसानि पेद्दन्न की पौत्री के पति पिंगलि सूरन पहले अपढ़, असभ्य व्यक्ति थे। अपनी पत्नी की विद्वत्ता को देखकर उन्होंने लज्जावश विद्या सीखी थी। पर आज तेलुगु-साहित्य के सभी विद्वान् सूरन को कल्पना और नाटकीय गुणों को समावेश करनेवाले शेक्सपियर के समकक्ष मानते हैं। बहुचर्चित काव्यों के रचयिता पिंगलि सूरन तेलुगु-साहित्य के सर हैं।

सा० प्र०

पिल्ललर्मर्रि पिनवीर भद्रुडु

पिल्ललर्मर्रि पिनवीर भद्र नियोगी ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम नागाम्ब और पिता का नाम गादयामात्य था। पेद वीरन्न इनके जुड़वा भाई थे। भद्रकवि भारतीतीर्थ के प्रिय शिष्य थे। तेलंगाणा के नल्गोंडा जिलें के निकट स्थित पिल्ललर्मर्रि ग्राम इनके पूर्वजोंका निवास-स्थान था। आन्ध्र के लोग अपने ग्राम के नाम को अपने वंशनाम के रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए इस वंश में जन्म लेने के कारण पिनवीर, पिल्ललर्मर्रि पिनवीर भद्र कहलाये।

पिनवीर भद्र के जन्म के बारे में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि नागमाम्बा और गादिराजु को बहुत दिनों तक सन्तान नहीं हुई। उन्होंने सन्तान-प्राप्ति के लिए अनेक व्रतों का पालन किया तथा साधु-सन्तों की सेवा की। अन्त में वे श्रीशैल-क्षेत्र के आसपास रहनेवाले भारतीतीर्थ स्वामी के पास पहुँचे। उन्होंने इन्हें पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। भारतीतीर्थ के आशीर्वाद से नागमाम्बा ने एक साथ दो बच्चों (जुड़वा) को जन्म दिया। माता-पिता ने छोटे बच्चे के सिर पर जटा देखी तो उन्हें आश्चर्य हुआ। लोगों ने इनको बताया कि यह बच्चा शिवजी का अवतार है। माता-पिता ने इनका नाम पेद (बड़ा) वीरभद्र और चिन (छोटा) वीरभद्र रखा।

अनुमान है कि पिनवीर भद्रय्या का बचपन नेल्लूर, बिटगुन्टा या सोमराजु पल्ले में बीता होगा। छोटी उम्र में ही इनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। सोमराजु पल्ले के चिल्लरवेन्न मन्त्रि भी पिनवीर भद्रय्या के बारे में सुन चुके थे। उन्होंने इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। पिनवीर भद्रय्या वहाँ पहुँचे। राजा ने कहा कि महाभारत की कथा से शकुन्तलोपाख्यान को लेकर एक सुन्दर रचना करो जो कालिदासकृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से भी उत्तम हो। पिनवीर मान गये और ग्रन्थ की रचना करके राजा को सर्मपित किया।

जनश्रुति के अनुसार पिनवीर भद्रय्या के ज्येष्ठ भ्राता पेद वीरभद्रय्या अत्यन्त निष्ठावान् व्यक्ति थे। पर पिनवीर भद्रय्या अत्यन्त कामुक। एक बार इन्होंने नरसिंग रायलु (ताल्लपाक अन्नमय्या के मित्र) को एक निश्चित समय के भीतर 'जैमिनी भारतम्' को तेलुगु में लिखकर देने का वचन दिया, पर वचन को भूलकर इधर-उधर के कार्यों में उलझ गये। निश्चित समय के एक दिन पूर्व सन्ध्या को घर पहुँचकर भोजनादि से निवृत्त हो इन्होंने अपने कमरे में प्रवेश किया और उसे अन्दर से बन्द कर लिया। थोड़ी देर के बाद बड़े भाई को लगा मानो दस लोग एक साथ कुछ लिख रहे हैं। उत्सुकतावश दरवाजे के बीचवाले छिद्र से उन्होंने भीतर झांका। उन्होंने देखा कि एक स्त्री, जो सभी अलंकारों से सुशोभित है, तीव्र गति से कुछ लिख रही है। पेदवीर भद्रय्या के दरवाजे के छिद्र द्वारा अन्दर झाँकने पर वह स्त्री यह कहते हुए कि ज्येष्ठजी देख रहे हैं

पीछे हट गयी। फिर शेष भाग को पिनवीर भद्रय्या ने स्वयं पूरा किया।

दूसरे दिन उन्होंने ग्रन्थ राजा को समर्पित कर दिया। राजा अपने कवि के बारे में जानते थे। उन्होंने पिनवीर से पूछा कि "आपने एक रात्रि में इतना बड़ा ग्रन्थ कैसे पूरा कर दिया ?" पिनवीर ने कहा कि "राजन् ! वाणी मेरी प्रियतमा है। उसीके सहयोग से यह कार्य सम्भव हुआ है।" यह सुनकर दरबारी हँसने लगे। तभी अन्तःपुर से एक हाथ हिलता हुआ दिखाई दिया और यह अलौकिक वाणी सुनाई दी कि "राजन्, पिनवीर भद्र जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य है।" इस घटना के बाद सब पिनवीर भद्र की प्रशंसा करने लगे। इस कथा से मालूम होता है कि एक रात्रि के भीतर ही सुन्दर और प्रौढ़ काव्य लिखने की शक्ति पिनवीर के पास थी।

पिनवीर हास्य और व्यंग्यप्रधान संवादों को लिखने में सिद्धहस्त थे। 'जैमिनि भारतम्' के तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण-भीम-संवाद है जिसमें साले और बहनोई के बीच हास्य-विनोद की बातें हुई हैं।

अश्वमेध-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए युधिष्ठिर का निमन्त्रण लेकर भीम द्वारका पहुँचते हैं। वह भोजन का समय था। उस समय कृष्ण मांस-भक्षण कर रहे थे। रुक्मिणी और सत्यभामा हाथ में पंखा लेकर हवा कर रही थीं। भीम को देखकर कृष्ण ने कहा-"कुशल-क्षेम की बातें तो बाद में होंगी, पहले भोजन के लिए बैठ जाओ। लगता है, तुम बहुत भूखे हो ?" इस पर भीम हँसते हुए कहते हैं-"न बाबा, न, तुम्हारे साथ बैठने पर मुझे पेटभर खाना नहीं मिलेगा क्योंकि—

वल्लि चन्नुल पालु द्रावि थन्तट
बोक पूतन बोरिगोन्टि पुरिटि लोन
जननि थुग्गुन तृप्ति सनक निन्नटि
दाका तेरजिति व्रेपल्लेवेन्न लेल्ल
नम्व पोत्तुन दनियक वेक्क संतैन
थुदराग्निनार्चि तिन्द्रोत्सवमुन
जनइत्रि थोसगु भक्षणमु चालक
तिन्टिवा कुचेलुनि चेति थडुकु लोडसि
कडुपु लोपल सकल लोकमुलु वरुस-
गूरुकोन्नप्पुडु नु नरगोरत गानि
तुष्टुडवु गावु नीदु पोत्तुन भुंसिप दी
सने नाकु घन मैन दीपनंनु।
(जैमिनि भारतमु, ३.५८)

'माँ के स्तनों से दूध पीकर और तृप्ति न पाकर पूतना के स्तनों से भी तुमने दूध पिया था। रेण्डी के तेल से-जो माँ के दूध के साथ मिला रहता है-सन्तोष न पाकर पूरे रेपल्ले (रेपल्ले, गुंटूर जिले का एक गाँव है। तेलुगुवालों का विश्वास है कि श्रीकृष्ण इस गाँव के निवासी थे। तेलुगुवाले वृन्दावन या व्रज का नाम नहीं लेते, वे सिर्फ रेपल्ले का ही नाम लेते हैं।) के मक्खन को तुमने खाया था। माँ के स्नेह से तुम्हें तृप्ति नहीं मिली तो इन्द्रोत्सव से जठराग्नि को शान्त किया। माँ खाने के लिए जो चीजें देती हैं उनसे तो तुम प्रसन्न नहीं होते, इसलिए कुचेल (सुदामा) के चिवड़े को खाया। तुम्हारे पेट में अण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड सब कुछ तो है, फिर भी आधा पेट भोजन तुम नहीं करते। मैं तुम्हारे साथ बैठकर नहीं खा सकता।'

संध्या समय है। सूर्य अस्त हो चुका है। हंस, हाथी और भ्रमर कमलों पर टूट पड़ रहे हैं। इनके साथ कमल मानों रति-सुख पा रहा है। इसी भाव को रुक्मिणी से प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं— "देखा तुमने ! पति (सूर्य) जैसे ही ओझल हो जाता है, ये स्त्रियाँ (कुमुदिनियाँ) दूसरे पुरुषों (हंस, हाथी, भ्रमर आदि) से खेलने लग जाती हैं। स्त्री का चित्त हमेशा चंचल होता है।"—

कमलदलाक्षु डन्त निजकामिनि
रुक्मिणि तोड निट्लनुन्।

गमलिनि चूचिते प्रियुडु गन्गोन
रामि मराल सामज
भ्रमर कुलम्बु पैबड गरम्बु
सुखिन्चेडु गाम मेप्पुडुन्
रमणुनि कन्टे नेन्मिदि
गुणम्बुलु गादे लतान्गि कारयन् ।

रुक्मिणी से श्रीकृष्ण ने कहा—'काम की भावना स्त्री में पुरुषों से आठ गुना अधिक रहती है।' इन बातों को सुनकर रुक्मिणी ने कृष्ण को खरी-खोटी सुनायी। उन्होंने कहा–'तुम्हारे पुत्र (ब्रह्मा) का वाहन हंस है। हाथी तो मेरा वाहन है। भ्रमरों को तनूज मानना है। इसलिए आपकी बातें शोभा नहीं देती हैं।'

पिनवीर भद्र ने 'जैमिनि भारतम्' साल्व नरसिंग रायलु को समर्पित किया था और इन्हें विष्णु का ग्यारहवाँ अवतार माना था। अनेक अवसरों पर पिनवीर ने नरसिंग रायलु की प्रशंसा की है।

पिनवीर ने कई ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें अवतार दर्पणम्, नारदीय पुराण, माघ महात्म्यम्, मानसोल्लास सारम्, जैमिनि भारतम् तथा शृंगार शाकुन्तलम् प्रमुख हैं। इनमें से अब जैमिनि भारतम् और शृङ्गार शाकुन्तलम् ही उपलब्ध हैं। इन दो ग्रन्थों के कारण ही पिल्लमर्रि पिनवीर भद्रुडु तेलुगु-साहित्य के अविस्मरणीय कवि बन गये हैं।

सा० प्र०

पिल्लमर्रि हनुमन्तराव

ये हिन्दू कॉलेज गुंटूरु में तेलगु के प्राध्यापक थे। इनकी जन्म-तिथि, मृत्यु-तिथि आदि ज्ञात नहीं है। ये आधुनिक समालोचकों में उल्लेखनीय विद्वान् थे, साहित्य-मनीषी और साधना-समिति के संस्थापक थे। इनकी पहली प्रकाशित कृति 'मधुकण' है। चित्रा, वत्सला, तेलुगु नीडलु (धूप-छाँह), दीप-कलिका, आन्ध्र-प्रतिभा आदि आपकी अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। आपके प्रमुख समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं—साहित्य समालोचनमु, साहित्य-सम्पदा, साहित्य-समीक्षा, पञ्चवटी पर्यालोकन (मु), नव्यान्ध्र साहित्य-वीथुलु (तीन भाग (श्रीकुरुगंटि० सीताराम भट्ट के सह-सम्पादन के साथ)। श्री हनुमन्त राव कवि, पण्डित, कुशल अध्यापक एवं समालोचक थे। 'रागरेखलु' का प्रकाशन सन् १९५२ ई० में हुआ, जिसमें पन्द्रह वर्षों में लिखित ५० फुटकर गीतों का संकलन है। इसमें राजनीति, समाज, प्रकृति-प्रेम, ग्राम-जीवन-सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर समय-समय पर विरचित गीत संकलित हैं। 'स्वातन्त्र्य आया है', 'उत्पात', 'मारणा-होम' आदि राजनैतिक गीत, 'लेरो' (क्या नहीं है ?), 'अश्रु-कण', 'मानव-प्रपञ्च' आदि सामाजिक गीत, 'भ्रमरराज', 'कोयल' आदि प्रकृतिपरक गीत हैं। ग्रामीण जीवन की ओर आकृष्ट होकर कवि ने वलपुतलपुलु (प्रेम-भाव), प्रेम पिलुपुलु (प्रेम-निमन्त्रण), 'आ सेने' (वही खेत) आदि गीत लिखे। कवि ने बच्चों के लिए उपयोगी बाल-गीतों का प्रणयन लोक-गीत-शैली में किया है। इसमें बंगारु-चेल्लायि (सुनेरी बहन), चिट्टि-काकि (मुन्नी-कौआ), तार्यिल (खाद्य-वस्तु) आदि गीत हैं। चिट्टिरो (री मुन्नी) करुण-रसपूर्ण गीत हैं, 'मो प्रिय'–पुत्री शेष-प्रभा की अकाल-मृत्यु पर विरचित शोक-गीत हैं। जिज्ञासा नामक गीत में सृष्टि-सम्बन्धी रहस्यों का उद्घाटन है। 'ऋतु' देवी-देवताओं का निमन्त्रण, संक्रान्ति, उगादि, लक्ष्मी आदि गीतों में काल-गति का चिरन्तन तत्त्व वर्णित है। इसकी शैली उत्तम है। सुगन्धी, षट्पदी, रगड, द्विपद आदि छन्दों का प्रयोग विषयानुकूल है। 'आवंद', 'निर्वद' में मुक्तक छन्दों का प्रयोग है, जिस पर प्राचीन चूर्णिकाओं एवं वृत्त-गन्धि वचन (गद्य-गीत) का पुट स्पष्ट है। कवि ने आनन्दपरक स्वच्छन्द अनुभूति के चित्रण में मुक्तक स्वच्छन्द छन्द का प्रयोग अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल किया है। 'ओ देव देव' आदि संकीर्तन-शैली पर विरचित गेय पद हैं।

'रंगरेगलु' गीत-काव्य में वस्तु-वैविध्य के साथ-साथ शिल्प-विशेषता का गुम्फन भी है। इसी गीत-काव्य में राधिका-विरह (मु) शीर्षक के अन्तर्गत चार गीत हैं। प्रेम में विह्वल राधा श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए लालायित हो प्रिय की खोज में निकलती है। वह अपने मन में यों सोचती है—

> ए दिक्कु बोतिवनि वेदकुदू ?
> ऐ दारि योगितनि वेदकुदू ?
> कोपमें कोनि पोये नंदुना ?
> कोरिक यदुलुंडे नंदुना ?

'किस दिशा की ओर गये हो ? कहाँ मैं खोजूँ ?
किस मार्ग से होकर गये हो ? कहाँ मैं खोजूँ ?
कोप ही क्या तुमको वहाँ ले गया है ? समझूँ
कामना ही क्या खोज ले गयी है ? समझूँ ?'

> वेन्नेललो कय्यालु मरतुवा ?
> कौशिलिलो भावालु करगेना ?
> पोदचाटु पदिलमुग नोदिगितो ?
> एदनुंडि पेकॅलिप दलचितो ?

'ज्योत्स्ना में जो झगड़े हुए हैं क्या उन्हें भूल पाओगे ?
आलिंगन में ही भाव क्या गल गये हैं ?
निकुञ्ज की ओट में कहीं जाकर छिपे हुए हो ?
हृदय से (वेदना को) उगलवाना चाहते हो ?'

रा० शे० रा०

पुरुलूरि सोमराजु

तेलुगु के कृष्ण-भक्त शतककारों में सोमराजु प्रमुख हैं। ये बालगोपाल कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस भक्ति के कारण ही लोग इन्हें बालकृष्ण दासु नाम से पुकारते थे। गुंटूरु जिले का पुसुलूरु ग्राम इनका जन्म-स्थान था। भ्रमण करते-करते ये जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ चैतन्य महाप्रभु की मधुरा भक्ति ने इनको प्रभावित किया। वह उसी भाव से कृष्णोपासना में लीन हो गये। मधुरा भक्ति इनको भाने लगी। इसके बाद इन्होंने तीन शतक लिखे। उनके नाम हैं-चन्द्रदूत-शतकम् (इसे लोग इन्दु-शतकम् भी कहते हैं), मधुर-शतकम् (इसका मुकुट अथवा टेक है—'नीचक्कदनम्बु चूड मन सैनदि चूपुमु नन्द नन्दना' अर्थात् तुम्हारे मनमोहक रूप को देखना चाहता हूँ। हे नन्दनन्दन, अपने मुखारविन्द को दिखाओ।), तीसरा है—बालगोपाल-शतकम्। यह शतकम् इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोग इसको उपकर्णामृतम् (श्रीकृष्ण कर्णामृतम् के समान सुन्दर शतक होने के कारण) नाम से सम्बोधित करने लगे।

पुरुलूरि सोमराजु अपनी मृदु मधुर भावनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। 'इन्दु-शतकम्' से एक उदाहरण देखिये—

> बृन्दारण्यमु सेममा यचटि गोबृंदमुल लेस्सला
> नन्दुंडुनु सतियुन् सुखान्वितुले नानागोप गोपालिका
> सन्दोहम्बुललो हलायुधुडु कृष्ण स्वामि ग्रीडितुरा
> इन्दू ! नन्दुनि मन्द नुंडि कद नीवे तेन्चुटल राकलन्।

(यह दूत-शतक है) बृन्दावन से आनेवाली एक रमणी से गोपिका या राधा पूछ रही है—

'वृन्दावन कैसा है ? वहाँ का गोवृन्द ठीक तो है ? नन्द और नन्दपत्नी प्रसन्न तो हैं ? वहाँ के गोप और गोपालिका-समूह से क्या आज भी हलधर (बलराम) और कृष्ण खेल रहे हैं ? हाँ ! हाँ ! बताओ। तुम तो नन्द के यहाँ से ही आ रही हो न ?'

एक विरहिणी गोपिका सन्देशा भेजते हुए कहती है—'मन्दन् राध येरुंग कुण्ड व्रज भा मल कानकुंडंग गोविन्दुन् मेल्लन तोडितेम्मु।' अर्थात् रेपल्ले से (कृष्ण के निवास-स्थान गोकुल को तेलुगुवाले रेपल्ले कहते हैं) 'तुम कृष्ण को चुपके से अपने साथ ले आओ। पर इतना ध्यान रखो कि राधा इसके बारे में जान न पाये और ब्रज-बालाएँ उन्हें देख न पायें।' इन मृदु-मधुर भावों के कारण डॉ० आरुद्र लिखते

हैं—"पुरुलूरि सोमराजु के तीनों शतक तीन रस-कोश हैं।" ये सत्रहवीं शती के कवि थे।

सा० प्र०

पुरुषोत्तम कवि

'कंस-विजयम्' नामक संस्कृत-शब्द-रहित तेलुगु-काव्य के कवि पुरुषोत्तम, सन्तेन पल्लि के निवासी थे। उन्नीसवीं शती के इस कवि के बारे में कम बातें ज्ञात हैं। सन्तेन पल्लि के 'भारती-ग्रन्थ-मण्डलि' ने 'कंस-विजयम्' का प्रकाशन सन् १९२९ ई० में किया था। आमुख में इनकी जन्म-तिथि सन् १८०९ ई० अंकित है। इस काव्य के बारे में आलोचकों ने लिखा है कि इसे अनुकरण-काव्य नहीं कह सकते हैं। यह भागवत का अनुवाद मात्र है। इस बात पर इतनी आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। 'कंस-विजयम्' के अतिरिक्त उन्होंने दो और ग्रन्थों की रचना की थी। उनके नाम हैं—'चित्रकेतोपाख्यानम्' और 'शिव-रात्रि-महात्म्यम्।' पोतना की वर्णन-शक्ति की तुलना में पुरुषोत्तम कवि की तुलना फीकी पड़ती है। पुरुषोत्तम पोतन की बराबरी नहीं कर सकते हैं। पर वर्णनों में सहजता लाने का प्रयत्न इन्होंने अवश्य किया है। कृष्ण-चरित-सम्बन्धी इस काव्य का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

सा० प्र०

पेदपाटि जग्गन्न

जग्गन्न कवि कृष्णा-मण्डल के पेदपाडु नामक गाँव के निवासी थे। इसलिए लोग इन्हें पेदपाटि जग्गन्न कहने लगे थे। वास्तव में इनका नाम रामाप्रेगड जगन्नाथ कवि था। रामाप्रेगड जगन्नाथ कवि तेलुगु-साहित्य के तीसरे संकलनकार माने जाते हैं। श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के कथन के आधार पर डॉ० आरुद्र और श्री चागन्टि शेषय्या का अनुमान है कि "जगन्नाथ कवि सन् १५५० ई० और १५६० ई० के आसपास विद्यमान रहे होंगे।" श्री जगन्नाथ कवि द्वारा संकलित ग्रन्थ का नाम 'काव्य-सार-वर्णनम्' है। इस संकलन में कुल ६० कवियों के ७८ ग्रन्थों से उदाहरण उद्धृत हैं। अगर आज हम कुछ कवियों के विषय में जान रहे हैं तो इसका श्रेय जगन्नाथ कवि को है। रामाप्रेगड जगन्नाथ कवि को प्रकाश में लानेवाले श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री हैं।

जगन्नाथ कवि आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले कौशिक गोत्रीय नियोगी ब्राह्मण थे। ये जानम्मा और गंगनामात्य के सुपुत्र तथा राममन्त्रि और वीरमाम्बा के पौत्र थे। अपने 'काव्य-सार-वर्णनम्' काव्य को इन्होंने जगन्नाथ स्वामी के नाम अर्पित किया था। अपने ही शब्दों में इनके स्वप्न को सुनिये—

श्रीकर नव पुण्डरीक सम्पदलकुन्
गव यैन नेत्र युग्मम्बु तोड
शंख शरंग स्फुरच्चक्र गदा शोभि
तमु लैन हस्त पद्ममुल तोडन्
नूर्जित मकुट केयूर कौस्तुभ चारु
रमणीय मणि भूषण मुल तोडन्
बदियारु वन्नेल पसिमिन्चु तलुकुल
वलनैन पसिन्डि दुव्वलुवतोड
निसमु गूर्मि मीरि पेरुरमुनन्दु-
गा पुरम् बुन्न दुग्धाब्धि कन्यतोड
श्री जगन्नाथन् डेलमि नाश्रित विधान-
र्मथि गल नाकु प्रत्यक्ष मैनन्जूचि।

'नव पुण्डरीक के समान सुन्दर नयनवाले, शंख चक्र-गदा आदि से शोभित कर-कमलवाले, सुन्दर मुकुट-केयूर-कौस्तुभ आदि मणि-भूषणों से युक्त रमणीय आकृतिवाले, षोडश कलाओं से शोभायमान, पीताम्बर को धारण करनेवाले, वक्षःस्थल में आनन्द के साथ वास करनेवाली क्षीरसागर-पुत्री लक्ष्मी के साथ श्री जगन्नाथ स्वामी ने दर्शन दिये।'

तब जगन्नाथ कवि ने 'चिरदया लोल', 'रक्षण स्नेह-विजय', 'जय जगन्नाथ', 'देवता सार्वभौम' आदि विशेषणों के साथ श्री विष्णु की प्रशंसा की। जगन्नाथ कवि के प्रशंसा-वाक्यों को सुनकर भगवान् श्री विष्णु ने इनसे इस प्रकार कहा—

'आरय राम प्रेग्गड कुलाग्रणि गंगय मन्त्रि जग्ग। मा पेरिट वान्ड वेप्पु डुनु क्षेम धनंवगु माकु नीपइन् गौरव लील नीवु समकट्टिन मेलिमि काव्य सार मिस्पारन्न मत्समर्पणमु नन्वह कीर्तिगम् जेयु नातुडुन्।'

'हे रामाप्रेगड कुलाग्रणि! हे गंगय मन्त्रि के पुत्र! हे स्वनामधारी जगन्नाथ! तुम्हें तो मैं बहुत चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम एक सद्ग्रन्थ-संकलन-कार्य को निभाने जा रहे हो। उसे लिखकर मुझे कृतिपति बनाओ।' इससे इनकी उच्चकोटि की भाव-भक्ति का सन्धान मिलता है।

विष्णु-भक्त पेदपाटि जग्गन्न या रामाप्रेगड जगन्नाथ कवि ने तेलुगु के आठ कवियों को साहित्य में स्थान दिया है। 'काव्य-सार वर्णनम्' के द्वारा अब तक अज्ञात कवियों के विषय में तथा उनके समय के विषय में आसानी से जाना जा सकता है। संकलनकार के रूप में पेदपाटि जग्गन्न कवि ने महत्त्वपूर्ण सेवा की है।

सा० प्र०

पेनुमत्स गोपराजु

पद्मराजु और कन्नमाम्बा के सुपुत्र गोपराजु, वेन्कटाद्रि के सगे भाई थे। ये केशवस्वामी के अनन्य भक्त तथा परम वैष्णव थे। श्री चागन्टि शेषय्या के अनुसार इनका जन्म सन् १५०० ई० के आसपास हुआ होगा। इनके द्वितीय पुत्र का नाम अनन्तराजु था, जो 'अम्बरीष-चरित्र' आदि ग्रन्थों के रचयिता थे। इन्होंने ही थर्लि के 'केशव देवालय' के गोपुर और प्राकार को बनवाया था। इससे इनकी कृष्ण-भक्ति का पता चलता है।

गोपराजु की रचनाओं के बारे में जानने का आधार 'विष्णु भजनानन्द' ही है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने 'अन्तर्वेदी महात्म्यम्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ इन्होंने अपने गुरु केशवस्वामी को समर्पित किया था। यह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है।

सा० प्र०

पेनुमत्स वेन्कटाद्रि

पेनुमत्स वेन्कटाद्रि श्री पद्मराजु और कन्नमाम्बा के पुत्र थे। ये गोदावरी जिले के राजोलु तालुका स्थित थर्ली ग्राम, जो गोदावरी नदी के तट पर है, के केशवस्वामी के अनन्य भक्त थे। इनका जन्म क्षत्रिय-वंश में हुआ था। ये विष्णु-भक्त थे। श्री चागन्टि शेषय्या इनका आविर्भाव सन् १५०० ई० के आसपास मानते हैं। ये दो भाई थे और दोनों कवि थे। वेन्कटाद्रि ने 'इन्दुमती-कल्याणम्' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की और गोपराजु ने 'अन्तर्वेदी महात्म्यम्' की। वेन्कटाद्रि के विषय में केश और मल्लनामक कवियों ने इस प्रकार लिखा है-"वेन्कटाद्रि थर्ली केशवदेव रमणीय पदपद्म महित भृंगी भवन मानस।" ये शब्द इनकी कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं।

बम्मेर केश और मल्लकवियों द्वारा रचित 'विष्णुभजनानन्द' के भी अध्ययन से पता चलता है कि पेनुमत्स वेन्कटाद्रि ने 'इन्दुमती-कल्याणम्' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की थी। यह ग्रन्थ उन्होंने अपने गुरु केशवस्वामी को समर्पित किया था। दुर्भाग्य से आज यह अनुपलब्ध है।

सा० प्र०

पैदिपाटि वेन्कट नृसिंह

'लक्ष्मी-नृसिंह-विलासमु' नामक तीन सर्गोंवाले प्रबन्ध-काव्य की रचना करनेवाले पैदिपाटि वास्तव में एक शतककार हैं। इन्होंने 'मन्नारु कृष्ण-शतकम्' और 'रामचन्द्र-हरी-शतकम्' नामक दो शतकों की रचना की है। वेन्कट नृसिंह कवि आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले आरुवेल नियोगी ब्राह्मण थे। ये शकमर्षण गोत्रोद्भव लक्ष्मीपति और वेन्काम्बा के पुत्र थे। लक्ष्मण पण्डित और मंगाम्बा इनके दादा-दादी थे। पैदिपाटि वंशवाले परम्परया हरि-भक्त थे और कविता लिखने की क्षमता रखते थे।

पैदिपाटि नेल्लूर जिले के कन्दुकूरु तालुके का एक गाँव है। पैदिपाटिवाले उसके आसपासवाले

ग्रामों के पटवारी थे। अपनी काव्य-प्रणाली के बारे में इन्होंने लिखा है—"श्रीनिवासदेव के बाद के अवतारों में अवतार-त्रय का काल लम्बा होने के कारण रामकृष्ण के नाम सीस (एक छन्द) शतक द्वय का अर्पण कर रहा हूँ। इसके बाद नृसिंह-देव के नाम पर एक भव्य काव्य को रचूँगा।" पैदिपाटि वेन्कट नृसिंह सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध के कवि हो सकते हैं।

'चारुतर मन्द हास पोलूरि वासवारि तामित तृष्ण मन्नारु कृष्ण' नामक मकुट से रचे इस शतक में कुल ११२ सीस-पद्य हैं। हर एक पद्य में इन्होंने मुक्त-पद-ग्रस्तालंकार को अपनाया है। इस शतक को कवि ने दस खण्डों में विभक्त किया है। हर एक खण्ड के लिए इन्होंने 'दशक' नाम दिया है। वे दस दशक इस प्रकार हैं—स्तुति, दास-संगति, पितृ-मातृ, बाल, चौरत्व, जारत्व, गोपालन, दुष्ट-विग्रह, शिष्ट-प्रतिपालक और अवतार।

'मन्नारु कृष्ण-शतकम्' के निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इनमें कवि अपने-आपको अनाथ, अधम, तथा दीन-हीन मानकर कृष्ण की शरण में जाता है—

सिद्धिम्प नेर्चुने श्रेयोनिशान्तम्बु
    शान्तम्बु नवन्टि चपल मतिकि
समकूड नेर्चुने सम्पन्निदानम्बु
    दानम्बु नावन्टि हीन गतिकि
जे नार नेर्चुने चिन्ता वियोगम्बु
    योगम्बु नावन्टि भोग रतिकि
बोसगंग नेर्चुने भूतहितत्ववम्बु
    तत्तवम्बु नावन्टि दैन्य कृतिकि
  गान निट्टुवन्टि पतितुन्ड नैन नाकु
  ना कुजातु कट्ल नी नाम मब्वे
  जूरतर मन्दहास पोलूलिवास
  वारितामित तृष्ण मन्नारु कृष्ण।

'मैं तो चपल चित्तवाला हूँ। मुझे शान्ति कैसे मिलेगी? मैं तो हीनमति हूँ। दान-गुण मुझे कैसे मिल सकता है? मैं तो सदैव भोगनिरत रहता हूँ। मैं भला योग बारे में क्या जान सकता हूँ? लोक-कल्याण-सम्बन्धी तत्त्वों को मैं जान नहीं पाऊँगा। मैं तो एक दयनीय व्यक्ति हूँ। मैं तो गुणहीन हूँ। फिर भी मुझे तुम्हारे सत्नाम का सहारा मिल गया है। पोलूलिवास मन्नारु कृष्ण, तुम प्रसन्नमुख हो।'

श्री वीरेश लिंगम् पन्तुलु इन्हें आधुनिक मानते हैं। किन्तु प्राप्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट विदित होता है कि अय्यलराजु नारायण कवि के मामा पैदिपाटि वेन्कट नृसिंह कवि निस्सन्देह सत्रहवीं शती के कवि थे।

सा० प्र०

पोडूरु भोगराजु

पोडूरु भोगराजु गोदावरी-मण्डल के निवासी थे। इससे अधिक इनके विषय में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इन्होंने एक सुन्दर काव्य 'राधा' (प्रकाशन-काल सन् १९५४ ई०) की रचना की है। इसमें राधा की उदात्त शृंगार-भावना और तात्त्विक प्रतिपत्ति का वर्णन है। राधा का चित्रण पुरुषोत्तम कृष्ण से अद्वैत-सिद्धि पानेवाली के रूप में हुआ है। अद्वैत-दशा को प्राप्त करने के लिए वह ध्यानयोग का सहारा लेती है। इस तथ्य का निरूपण करने के लिए एक कथा की कल्पना की गयी है, वह इस प्रकार है—"राधा और कृष्ण आनन्द से जीवन-यापन कर रहे थे। एक दिन वहाँ उद्धव पहुँचते हैं और कृष्ण को अपने यहाँ अतिथि के रूप में आमन्त्रित करते हैं। उद्धव का निमन्त्रण स्वीकार कर श्रीकृष्ण सूर्यास्त के पूर्व वापस आ जाने का वादा कर वहाँ चले जाते हैं। भोजनोपरान्त वह उद्धव को तुरीयावस्था में छोड़कर राधा-गृह की ओर बढ़ते हैं। किन्तु मार्ग में उन्हें आर्त भक्त तपस्वियों की याद सताने लगती है। अतः वह वेणु बजाते हुए ऋषि-वाटिका की ओर मुड़ जाते हैं।

सूर्यास्त होने तक राधा कृष्ण की प्रतीक्षा करती है। तत्पश्चात् वह उद्धव के यहाँ पहुँचती है। राधा ने देखा कि उद्धव निर्विकल्प समाधि में लीन हैं। अन्य लोगों ने बताया कि श्रीकृष्ण यहाँ से जा चुके हैं। राधा कृष्ण के वियोग में विलाप करते हुए उन्हें खोजती है। वह कहती है-

'मब्बुल दागि युन्टिवो, रमा हृदयाब्जमरूप धारन् दब्बिब्बगु चुन्टिवो, सतुल वीक्षणमुल् प्रसरिम्प डेन्दमुन् निब्बर मेल्लन् दूलि रस नोरधि मुन् गुचु नोप्पु चुन्टिवो। अब्ब! तलम्प निन्चुकयु नन्दवु नी गतुलो परात्परा।'

'हे कृष्ण, वास्तव में तुम कहाँ हो? क्या तुम बादलों में छिपे हो? मैं क्या जानूँ तुम क्या कर रहे हो? हो सकता है कि रमा के हृदयरूपी कमल के मकरन्द का पान कर रहे हो। अपनी पत्नियों के साथ खेलते-खेलते थक गये होगे। मैं लाख प्रयत्न कर रही हूँ पर तुम्हारी लीला सोचने पर भी समझ में नहीं आनेवाली है। वह मेरी पहुँच के बाहर है।'

प्रकृति पुरुष भावम्बुनन् बरगि मनकु
नन्दु लेदु वियोगम्मुन्दु कैन
सकल जगमुलु नी कृपा चन्द्रिकलनु
जादु चुन्नवि वेनोल्ल श्यामलांग।

अपने और कृष्ण में अद्वैत-भावना की स्थापना करते हुए राधा कृष्ण से कह रही है—'हे श्यामलांग कृष्ण! हम दोनों में प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध है। हम दोनों कभी बिछुड़ नहीं सकते। हर कहीं तेरी कृपा की चाँदनी फैल गयी है।'

भोगराजु का 'राधा' शीर्षक यह एक लघुकाव्य है। कवि ने इसको रम्य बनाने का भरसक प्रयास किया है और बहुत हद तक उसे सफलता भी मिली है।

सा० प्र०

पोतु कुच्चि सुब्बय्या

पोतु कुच्चि सुब्बय्या १९वीं शती के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शती के पूर्वार्ध तक विद्यमान थे। 'श्रीकृष्ण तुलाभारमु' नामक इनका नाटक सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इसमें राधा को प्रमुख स्थान नहीं दिया गया है, तथापि राधा के विषय में अधिक-से-अधिक जानकारी देना नाटककार का लक्ष्य प्रतीत होता है। राधा-कृष्ण-संवाद, राधा-नारद-संवाद आदि के द्वारा राधा के गुणों और राधा-तत्त्व को बताने की चेष्टा की गयी है।

कृष्ण-सम्बन्धी एक ही कथानक को लेकर कई साहित्यकारों ने नाटकों की रचना की है। उनमें रामडुगु रामकृष्णाचार्युलु तथा वारणासि राममूर्ति मुख्य हैं। इसी परम्परा में मुडुंबि सिंगराचार्युलु का नाटक 'श्री-संगीत कृष्ण-लीला' उल्लेख्य है। इसमें श्रीकृष्ण की बाल-लीला का प्राधान्य है। किन्तु सन्दर्भ राधा का भी आ गया है। वह बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण से परिचित है। घर आये श्रीकृष्ण के प्रति वह अपना अनुराग-व्यक्त करती है। श्रीकृष्ण भी शृंगार-परक चेष्टाएँ करते हैं। इसी बीच राधा का पति आ जाता है। श्रीकृष्ण राधा की बहन सुगुणा का वेश धारण कर घर से निकल जाते हैं। इसी परम्परा में राममूर्ति का श्रीकृष्ण-लीला नामक नाटक भी आता है।

सा० प्र०

प्रोलुगन्टि चेन्नय मन्त्रि

प्रोलुगन्टि-निवासी नायन मन्त्रि और देवमाम्बा के सुपुत्र चेन्नय मन्त्रि या चेन्नय शौरि अष्टभाषाकवि थे। इनका उपस्थिति-काल सन् १४८५-१५१२ ई० माना जाता है। इनके दादा प्रोलगन्टि तिप्पय्या विजयनगर के राजा प्रौढदेव रायलु के यहाँ सेनापति थे। वे अपनी दानवीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। चेन्नय मन्त्रि इन्हीं के एक पुत्र के पुत्र थे। चेन्नय मन्त्रि को एक पुत्र भी था, जिसका नाम नरसन्न था। नरसन्न भी अपने पिता की तरह उद्भट विद्वान् था।

हरिभट्टु नामक एक कवि ने 'नारसिंह पुराणम्' नामक अपने काव्य को राजा की मृत्यु के बाद प्रोलगन्टि-वंश के रंगन मन्त्रि को समर्पित किया था। कृति-समर्पण के सन्दर्भ में हरिभट्टु ने कृतिपति के वंश का भी वर्णन किया होगा। उक्त नारसिंह पुराण में लिखा गया है कि चेन्नय शौरि ने द्विपद के रूप में 'नारसिंह पुराण' को लिखकर अहोबल नरसिंह स्वामी को भेंट किया था। इस काव्य के अतिरिक्त चेन्नय शौरि ने 'बालभारतम्' नामक वचन-काव्य भी लिखा था। कहा जाता है कि चेन्नय ने 'सौभरि-चरित्र' नामक एक जक्कुल-कथा (यक्षगानम्—एक तरह का लोकगीत) भी लिखी थी। जक्कुल-कथा को पहले साहित्यिक गौरव प्राप्त नहीं था। पर 'सौभरि-चरित्र' जैसे यक्षगान के कारण उसको साहित्यिक रूप और गौरवपूर्ण स्थान मिला। जक्कुल-कथा द्वारा सामाजिक और राजनीतिक सुधार के कार्य भी हुए हैं, इसे निम्नलिखित प्रसंग द्वारा जाना जा सकता है—

"साल्व नरसिंह रायलु के यहाँ सम्मेट गुरवराजु नामक एक अत्याचारी सामन्त था। यह लोगों को बहुत सताता था। जनता इससे तंग आ गयी थी। लोगों ने मिलकर सोचा कि एक जक्कुल-कथा को कहानी या नाटक का रूप देकर साल्व नरसिंह रायलु के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय। योजनानुसार राजा के सम्मुख एक नृत्य-नाटिका प्रस्तुत की गयी। राजा ने जब इस जक्कुल-कथा को देखा तो वे सारी बात समझ गये और उन्होंने उस अत्याचारी सामन्त को पद से हटा दिया।" इस कथा से यह प्रमाणित होता है कि लोकगीतों का सम्बन्ध जन-समस्याओं से भी रहा है। साहित्य का समाज और राजनीति से सीधा सम्बन्ध है तथा साहित्य समाज-सुधार का सशक्त साधन है।

चेन्नय ने 'सौभरि-चरित्र' के अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थ लिखे पर दुर्भाग्य से आज उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है।

बम्मेर पोतन

तेलुगु-साहित्य का शुभारम्भ वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर हुआ था। उसी लक्ष्य के अनुसार महाभारत, रामायण, भागवत आदि पुराणों के अनुवाद द्वारा भक्ति, ज्ञान एवं कर्म-सिद्धान्त का प्रचार किया गया। तेलुगु-साहित्य के इतिहास में सन् १०३० से १४०० ई० तक के काल को 'अनुवाद-युग' कहा जाता है। उसके परवर्ती युग (सन् १४०० से १५०० ई० तक) को 'पूर्व प्रबन्ध-युग' की संज्ञा दी गयी है। इसको 'पुराण-युग' अथवा 'श्रीनाथ-युग' भी कहा जाता है। उत्तर मध्य-काल का पूर्वार्द्ध पन्द्रहवीं शती के अन्त तक चलता है। पोतना के साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण करने से पूर्व महाभारत (नन्नय्य, तिक्कना एवं एर्राप्रगड—कवित्रय) भास्कर रामायण एवं हरिवंश (सोमना) आदि काव्यों की रचना हो चुकी थी। पोतना ने अनुवाद के लिए भागवत-पुराण को चुना। इस प्रकार पोतना अनुवाद-युग तथा पुराण-युग के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में आते हैं।

उन दिनों तथा उससे कुछ पहले आन्ध्र प्रदेश में शैव एवं वैष्णव धर्मों के बीच संघर्ष चल रहा था। शिव-केशव को लेकर जो साम्प्रदायिक संघर्ष चलते थे, उनमें पड़कर लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल बैठे थे। पोतना के पहले कविब्रह्मा तिक्कना ने हरिहर की अद्वैतता सिद्ध करने की दिशा में अथक प्रयास किया था। पोतना ने इस प्रयास को और भी व्यापक बनाया। इन दोनों कवियों का जनजीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज आन्ध्रप्रदेश में शिव-केशव तथा राम-कृष्ण में भेद नहीं के बराबर है। काकतीय साम्राज्य के सूर्य का अस्त हो गया था और मुस्लिम-शासन का अन्धकार धीरे-धीरे व्याप्त हो रहा था। धर्म के प्रति लोगों की आस्था कम हो रही थी। ऐसे समय में पोतना के भागवत का अवतरण हुआ। साथ ही उसके द्वारा मध्यकाल में भक्ति का पुनर्जागरण संभव हुआ।

पोतना तृतीय सिंगम नायक (ई० १४२५—१४७५ ई०) के समकालीन थे। ये तेलुगु के रीतिकवि श्रीनाथ से आयु में कुछ छोटे थे। अतः इनका समय सन् १४१० से १४७० ई० तक माना जाता है। पोतना की जन्म-भूमि एवं निवास के बारे में विद्वानों में मतभेद है। इनके गाँव का नाम है 'बम्मेर', जो नल्लगोंड जिले के जनगाँव तालुके के अन्तर्गत है। यह ओरुगल्ल अर्थात् वरंगल से कुछ दूरी पर स्थित है। पोतना ने आन्ध्र महाभागवत के प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय संक्षेप में दिया है, जो इस प्रकार है—'ये कौण्डिन्यसगोत्रीय तथा आपस्तम्ब-सूत्रज नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केसना और माता का नाम लक्कमाम्बा था। पिता केसना बहुकलाकोविद, बहुश्रुत एवं शैव-धर्म के मर्मज्ञ थे। माता दानधर्मपरायणा थीं। इनके ज्येष्ठ भाई तिप्पना ईश्वरभक्त थे। पोतना, पोतन्न, पोतय, पोतन मंत्री, पोतराजु, पोतनामात्य आदि नामों से भी जाने जाते हैं। इनमें पोतना तथा पोतनामात्य अधिक प्रचलित अभिधान हैं। ये विवाहित थे। गृहस्थ होते हुए भी ये निर्लिप्त एवं सात्त्विक जीवन बिताते थे। पोतना के पुत्र का नाम मल्लना था, प्रौढ़ सरस्वती इनके पौत्र तथा केसना-मल्लना (सहोदर) उनके प्रपौत्र थे। ये उच्च कुल में पैदा हुए थे, पर नीच कुल में उत्पन्न परम भागवत को भी आदर देते थे। पोतना की दृष्टि में गृहस्थ का परम कर्तव्य है अतिथि-पूजा। रन्तिदेव के प्रसंग में पोतना ने अतिथि-पूजा का महत्त्व घोषित किया है।

पोतना किसान थे और आजीवन किसान ही बने रहे। इनकी दृष्टि में उदरपूर्ति के लिए क़िसान बनने में लज्जा की कोई बात नहीं थी। ये किसी राजाश्रय में रहकर 'बाल-रसाल नव-पल्लव कोमल काव्य कन्या' को किरातरूपी तथाकथित कर्नाटक राजाओं को सर्मपित कर हेय जीविकोपार्जन की अपेक्षा अपनी कृति को श्री हरि को सर्मपित कर कन्द-मूल-फल खाकर कालयापन करना श्रेयस्कर मानते थे। ये सात्त्विक जीवन के पक्षपाती थे। इनकी चिर कामना यही रही-"हे तापसमन्दार ! तुम मुझे अपने चरण-कमलों की सेवा, अपने चरण-सेवकों की संगति एवं नितान्त भूतदया प्रदान करो।" ये दरिद्र-परिवार में पैदा हुए थे। स्वयं कृषि-कर्म करके अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। न तो किसी प्रलोभन में पड़े, न भय के वश हुए। इनकी प्रकृति भौतिक जीवन से विमुख रहने की थी।

पोतना ने बाल्य-काल में अपने पिता के पास ही प्रारम्भिक शिक्षा का अभ्यास किया था। कहा जाता है कि चिदानन्द योगी इनके गुरु थे, जिन्होंने इन्हें श्रीराम-मन्त्र का उपदेश दिया था। 'वेंकटगिरि वंशावली' में इसका उल्लेख मिलता है। पर पोतना ने कहीं अपने ग्रन्थ में चिदानन्द योगी का नामोल्लेख नहीं किया है। कहा जाता है कि इन्हें कविता करने की शक्ति गुरु वीरभद्रदेव की कृपा से प्राप्त हुई थी। इनके गुरु इवटूरि सोमनाथ थे। पोतना ने प्रत्येक स्कन्ध की पुष्पिका में अपने को 'सहज पण्डित' कहा है। अतः चिदानन्द योगी को इनका गुरु मानना संगत नहीं प्रतीत होता। कुछ विद्वानों का विचार है कि पोतना की शिक्षा-दीक्षा बाल्यावस्था में पिता केसना की ही देखरेख में हुई थी।

पोतना सत्त्व-गुण-सम्पन्न और महातपस्वी थे। लोकश्रुति के अनुसार वेमुलवाड भीम कवि और महाकवि नन्नय 'शापानुग्रह-दक्ष' थे। ऐसी सामर्थ्य पोतना भी रखते थे। पर इन्होंने उसका उपयोग कभी नहीं किया। इन्होंने जो साधना की थी, वह सात्त्विक एवं उच्च थी। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि आन्ध्र-साहित्य-क्षेत्र में पोतना के समान निर्भीक एवं आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति सन्त त्यागराज को छोड़कर और कोई नहीं है। इसलिए इन्होंने न किसी धनी या राजा का आश्रय ग्रहण किया, न उस काल के ब्राह्मणों के समान

पौरोहित्य ही स्वीकार किया। इन्होंने स्पष्ट कहा था–"वृक्ष क्या फल नहीं देते ? नदियों में स्वादिष्ट जल नहीं होता ? पुण्यात्मा गृहिणियाँ मुट्ठीभर भिक्षा नहीं देतीं ? तपस्वियों को धनमदान्ध राजाओं का एहसान ही क्यों ?" (२.२१) इन्होंने और कहा–"कमनीय भूमि-भाग के रहने पर सोने के लिए तूलिकातल्प ही क्यों ? सहज स्वाभाविक भोजन के रहने पर विभिन्न पक्वान्नों की क्या आवश्यकता ? वल्कल, अजिन कुश के होने पर अन्य प्रकार के दुकूलों की चिन्ता ही क्यों ? रहने के लिए गुफाएँ आदि के होने पर सौधप्रासादों से क्या प्रयोजन ?" पोतना के पूर्वज तथा बन्धु-मित्र राजाओं के आश्रय में रहे थे। पर पोतना ने नर या नरेश की प्रशंसा से अपनी वाणी को दूषित नहीं किया।

पोतना की चार कृतियाँ हैं—(१) वीरभद्र-विजयमु, (२) नारायण-शतकमु, (३) भोगिनी दण्डकमु, (४) श्रीमद्भागवत। प्रथम तीन ग्रन्थों के रचयिता के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भागवत पोतना की एकमात्र ऐसी कृति है जिसे सभी विद्वान् प्रामाणिक मानते हैं। यही पोतना की कीर्ति का मुख्य आधार-स्तम्भ है। यह श्रीमद्भागवत का अनुवाद है। इसमें प्रथम स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध तक की कथाओं का पूर्ण समावेश हुआ है। इस प्रकार पोतना की लोकप्रिय कृति श्रीमद्भागवत ही है, जिसमें उनकी सम्पूर्ण विचारधारा, समग्र भाव-धारा, विशिष्ट काव्य-कौशल और सरस भक्ति समाविष्ट है। यदि अन्य रचनाएँ न भी हों तो भी कवि का यश इसी कृति पर जरामरणज भय से विमुक्त है। ये रससिद्ध कवीश्वर थे। इनके द्वारा प्रणीत 'श्रीमद्भागवत' प्रबन्धात्मक मुक्तक है। इसमें वर्णित गजेन्द्रमोक्ष, रुक्मिणी-कल्याण, सुदामा-चरित्र, प्रह्लाद-चरित आदि प्रसंग विशेष उल्लेखनीय हैं।

आन्ध्र महाभागवत की भूमिका में पोतना ने लिखा है : श्रीमन्नारायण-कथा-रचना-कौतूहल से एक दिन सोमोपराग (चन्द्रग्रहण) के अवसर पर गंगा (गोदावरी) नदी की ओर गये और उसके पुलिन पर महेश्वर का ध्यान कर के बैठ गये। उस समय इनको श्रीरामचन्द्रजी का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने पोतना से कहा—"मेरे नाम पर भागवत की रचना करो। तुम्हें भव-बन्धन-मुक्ति होगी।" पोतना ने मन ही मन यह सोचकर कि हरि-कृपा प्राप्त हुई—ध्यान से जाग उठे। कुछ दिनों के बाद ये एक शिलानगर गये और गुरु-बुध-बन्धु-जनों से ग्रन्थ-रचना करने की आज्ञा ली। उसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम और दशम स्कन्धों के प्रारम्भ एवं अन्त में श्रीरामचन्द्र की स्तुति है। इससे यह स्पष्ट है कि पोतना ने श्रीरामचन्द्रजी को अपनी कृति समर्पित की थी। इन्होंने ठीक ही कहा है कि "भागवत के कहनेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हैं। मैं कहूँ तो भव-बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा। तो फिर दूसरी क्यों कहूँ ?" पोतना राम-भक्त थे। इनमें रामायण लिखने की प्रबल उत्कण्ठा थी। पर तब तक 'रंगनाथ रामायण' एवं 'भास्कर रामायण' की रचना हो चुकी थी। पोतना ने कहा—"भास्कर ने तो रामायण की रचना की, नहीं तो मैं लिख-लिखकर रामायण को बैलगाड़ियों पर लाद दिया करता।"

महाभारत की भाँति ही तेलुगु में विरचित भागवत एक कवि के हाथ से पूर्ण नहीं हुई। इसके अनेक कारण बताये जाते हैं। पोतना ने संस्कृत भागवत का पूरा अनुवाद किया होगा। पर उसके कुछ भाग कालान्तर में नष्ट हो गये होंगे। उसे उनके शिष्यों ने पूरा किया होगा। पोतना जल्दी-जल्दी भागवत का अनुवाद पूरा करना चाहते थे। अतः अपने प्रिय शिष्यों को भागवत के कुछ अंशों को सुपुर्द किया होगा, ताकि वे भी इस वाङ्मय-यज्ञ की पूर्ति के लिए अपनी ओर से कुछ समिधा के रूप में समर्पित कर भाग्यशाली बनें। यों आन्ध्र महाभागवत का पञ्चम स्कन्ध गंगना द्वारा, षष्ठ स्कन्ध सिंगना द्वारा और एकादश तथा द्वादश स्कन्ध नारया द्वारा अनूदित हैं। शेष स्कन्ध पोतना द्वारा ही लिखित हैं।

तेलुगु-भागवत संस्कृत भागवत का अविकल अनुवाद नहीं है। भागवत में भक्ति की प्रधानता है। वह निवृत्तिमूलक साधना का उपदेश करती है। पोतना प्रवृत्तिमार्गी हैं। भक्त पोतना तेलुगु-साहित्य के उन महान् कवियों में हैं, जिन्होंने कविता को अपनी भक्ति की अभिव्यंजना का माध्यम बनाया। ये प्रथमतः भक्त थे, बाद में कवि। फिर भी कवि-कर्म के प्रति इनकी निष्ठा कम नहीं थी। आर्थिक संकटों में पिसते हुए भी इन्होंने किसी राजा के नाम काव्य लिखकर धन-संग्रह करने से साफ इनकार कर दिया। भक्ति पर जोर देते हुए इन्होंने ज्ञान और कर्म की उपेक्षा नहीं की। निष्काम कर्म करने का इनका प्रबल आग्रह था। स्वयं इनका व्यक्तिगत जीवन निष्काम कर्म का ज्वलन्त उदाहरण था जिसमें कर्म, भक्ति व ज्ञान का त्रिवेणी-संगम हुआ था। पोतना ने संस्कृत-भागवत में प्रतिपादित नवधा भक्ति को अपना लिया। इन्होंने भागवत में अवतार-लीलाओं का वर्णन किया। केवल दशम स्कन्ध में बाल-लीला एवं भ्रमर-गीत-प्रसंग वर्णित हैं। बाल-क्रीड़ाओं के बाद पोतना ने रासलीला, जल-क्रीड़ा आदि का स्वाभाविक चित्रण किया है। इसमें सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतु-वर्णन, वर्षा-वर्णन भी हैं। उनका संयोग एवं वियोग-शृंगार का वर्णन भी रमणीय है। श्रीमद्भागवत महापुराण कोटि की विशाल रचना है जो अत्यन्त प्रौढ़ संस्कृत भाषा में है। इसमें १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय और १८००० श्लोक हैं। आन्ध्र-महाभागवत में ८००० 'ग्रन्थ' अधिक हैं। ३२ अक्षरों की परिमिति को 'ग्रन्थ' कहते हैं। आन्ध्र-महाभागवत की ग्रन्थ-संख्या लगभग ३० हजार है। पोतना ने श्रीधर-स्वामी की टीका का अनुसरण किया है। इसलिए 'आन्ध्र-महाभागवत' संस्कृत-भागवत की अपेक्षा आकार में बड़ा हो गया है। इन्हें जहाँ कहीं मूल में कठिनाई दिखाई पड़ी, वहाँ श्रीधरी टीका से सहायता ली है। महाभागवत की रचना चम्पू-शैली में हुई है। ये तेलुगु एवं संस्कृत भाषाओं के निष्णात पण्डित और काव्य-रीतियों के पारंगत कलाकार थे। इसलिए इनकी प्रतिनिधि कृति भागवत सर्वांगसुन्दर बन पड़ी है। यदा-कदा पोतना ने लोक-जीवन के अनेक मधुर एवं सरस प्रसंगों को चुनकर काव्य को सहज बना दिया है।

विनयसम्पन्न पोतन जानते थे कि भागवत को समझना अत्यन्त कठिन है। फिर भी उनका संकल्प था कि जितना मैं समझ चुका हूँ उतना दूसरों को समझाऊँगा। पोतन के सामने अब समस्या भाषा की थी। किस भाषा में लिखें ? किस शैली को अपनायें ? सोच-समझकर इन्होंने इस समस्या को इस प्रकार हल किया—"कुछ लोग तेलुगु को पसंद करते हैं। कुछ लोगों को संस्कृत प्रिय है। ऐसे लोग भी हैं जिनको दोनों से प्रेम है। इसलिए सब प्रकार के लोगों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगा।"

पोतना ने पण्डितों और पामरों को एक समान अपनी रचना के द्वारा सन्तुष्ट किया है। इसीलिए इस युग में भी सी० पी० ब्राउन जैसे पण्डित और किसान जैसे पामर अपनी-अपनी बात को समझाने के लिए केवल पोतना को ही चुनते हैं। इस सम्बन्ध में आन्ध्रप्रदेश में एक कथा प्रसिद्ध है।

रायलसीमा आन्ध्र प्रदेश का एक अभावग्रस्त भूभाग रहा है। वर्षा के अभाव के कारण एक बार यहाँ के किसान भूमि-कर न दे सके। सरकार की नीति से वे परिचित थे। इसलिए गाँव के किसानों ने अपने प्रान्त के अंग्रेज अधिकारी सी० पी० ब्राउन (तेलुगु-भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्) के पास एक आवेदन-पत्र भेजने का निश्चय किया। अपढ़ होने के कारण अपनी विवशता को प्रभावशाली भाषा में व्यक्त करने की शक्ति उनके पास न थी। वे चिन्ता में पड़ गये। एक ने कहा—"क्यों न हम गजेन्द्रमोक्षम् के लावोक्किंतयु लेदु (अब मैं निर्बल बन गया हूँ—गजराज के पक्ष में तथा अब मैं निर्धन बन गया हूँ—जनता के पक्ष में) को लिखकर भेजें।" सबने कहा—"यह ठीक रहेगा।"

वस, पत्र को तैयार किया और उसे तुरंत भेज दिया गया। कुछ दिनों बाद उनको ब्राउन साहब से एक पत्र मिला, साथ ही अपेक्षित सहायता भी। जो पत्र किसानों ने लिखा था और जो ब्राउन साहब ने लिखा था, दोनों में कुछ पद्य मात्र थे और ये पद्य पन्द्रहवीं शती के प्रसिद्ध कवि बम्मेर पोतना के थे। इस प्रकार अपनी रामकहानी सुनाने के लिए अपढ़ और अर्द्धशिक्षित जनता ने एक कवि की रचना से सहायता ली। बम्मेर पोतना कितने लोकप्रिय हैं, यह उक्त घटना के द्वारा जाना जा सकता है।

भागवत के बारे में एक और रोचक कहानी लोगों में प्रचलित है। 'गजेन्द्रमोक्षम्' खण्ड को पोतन लिख रहे थे। वैकुण्ठ का वर्णन करना था। पद्य को 'अल वैकुण्ठ पुरंबुलो नगरिलो नामूल' तक लिखकर रुक गये। आगे क्या लिखना है, मालूम नहीं था। इसलिए थोड़ी देर के लिए टहलने के लिए घर से निकले। इनके घर से निकलने के कुछ समय बाद राम पोतन का वेष धारण कर घर पहुँचे और बाकी पद्य को पूरा कर चले गये। जब पोतन आये तो लड़की ने पूछा—"आप फिर बाहर कब निकले ? अभी-अभी तो आये थे।" अपने पूजा-मन्दिर में जाकर पोतन ने देखा तो पद्य को राम ने पूरा कर दिया था। पोतन जान गये और अपनी पुत्री की सराहना करने लगे।

पोतन और श्रीनाथ

'गजेन्द्रमोक्षम्' में गजेन्द्र की पुकार सुनकर उसकी रक्षा के लिए दौड़े चले आनेवाले विष्णु का वर्णन करना था। पोतन ने लिखा—विष्णु अचानक निकल पड़े। अपनी पत्नी को नहीं बताया। साड़ी का आँचल जो उनके हाथ में था उसे भी नहीं छोड़ पाये। शंख और चक्र भी साथ न ले पाये। अपने परिजनों को साथ देने के लिए आज्ञा न दे सके····। कहा जाता है कि इस घटना को पढ़कर इनके बहनोई श्रीनाथ पोतन की हँसी उड़ाने लगे। कहने लगे—"ये तुम्हारे भगवान् कैसे हैं ? अगर रक्षा करनी है तो साधनों को भी साथ लेना है न ? विना हथियार के वे रक्षा कैसे कर पायेंगे ?" यह सुनकर पोतन कुछ न बोले। दूसरे दिन भोजनोपरान्त पोतन उठकर बाहर आ गये। श्रीनाथ के लड़के को कहीं छिपा दिया और कुएँ के पास आकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे—"हाय ! अब मैं क्या करूँ ? श्रीनाथ, तुम्हारा लड़का कुएँ में गिर गया है।" उस समय श्रीनाथ दही-भात खा रहे थे। पोतन की आवाज को सुनकर विना हाथ धोये वहाँ पहुँच गये और आतुरता से पोतन से कहने लगे कि "अब क्या होगा ?" हँसते हुए पोतन ने कहा कि "यह क्या ? विना रस्सी, सीढ़ी लिये यहाँ पहुँच गये हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि खाली हाथों से किसीकी रक्षा नहीं हो सकती ?" इतना कह जब उन्होंने असली बात कही तो श्रीनाथ लज्जित हो गये।

कुछ विद्वानों का विचार है कि पोतना और श्रीनाथ समकालीन नहीं थे और पोतना की पत्नी श्रीनाथ की वहन नहीं थी। फिर भी दोनों को लेकर कई दन्तकथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। दोनों की लोकप्रियता इन कथाओं के लिए कारण हो सकती है। एक ने राजाश्रय के द्वारा धन-धान्य कमाकर भी जीवन की सान्ध्यवेला को कष्टों में बिताया था। दूसरे ने राजाश्रय को ठुकराकर इहलोक के सुख-भोगों को तुच्छ सिद्ध किया था। पोतना का विचार था कि सत्कवि किसान बनकर भी तृप्ति के साथ जीवन बिता सकता है और लोकप्रियता के ऊँचे शिखर पर बैठ सकता है। इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है।

श्रीनाथ भागवत के बारे में सुन चुके थे। वे पोतना से मिलकर उन्हें यह समझाना चाहते थे कि किसी राजा को कृतिपति बनाने से एक तो गरीबी दूर हो जायगी और दूसरे सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। इसी उद्देश्य से वे ओरुगललु की ओर आ रहे थे। नगर की सीमा पर खेत थे। नगर में प्रवेश करनेवाले श्रीनाथ ने देखा कि पोतन अपने

लड़के के साथ जमीन जोत रहे हैं। चार कहारों में से एक तरफ ढोनेवाले दो कहारों को श्रीनाथ ने हट जाने के लिए कहा। दो कहार हट गये। फिर भी पालकी आगे बढ़ती रही। पोतन के पुत्र मल्लन ने यह देखकर अपने पिताजी को इसके बारे में बताया। पोतन ने अपने लड़के से कहा—"तुम भी दो बैलों में से एक को अलग कर दो।" मल्लन ने ठीक ऐसा ही किया। अब श्रीनाथ ने दूसरी तरफवाले कहारों से भी हट जाने को कहा। वे भी हट गये। इसे देख पोतन ने दूसरे बैल को भी हटाने के लिए कहा। अब बिना कहारों की पालकी चल रही थी और बिना बैलोंवाला हल। फिर श्रीनाथ ने पोतन के पास आकर कहा—"कहिये किसानजी, क्या हाल है?" इस तीखे व्यंग्य का जवाब पोतन ने भी तीखा ही दिया। उन्होंने कहा—"अपनी काव्य-कन्या को कतिपय चाँदी के सिक्कों के लिए क्रूर लोगों के हाथों सौंपने से इन्कार कर अगर कोई सत्कवि किसान भी बन जाय तो इसमें बुराई क्या है?" दन्तकथा के अनुसार यह पोतन का पद्य है, पर वास्तव में यह पोतन का पद्य नहीं है। श्रीनाथ ने इसके बाद अपने बहनोई से क्षमा माँगी।

पोतन की गरीबी और श्रीनाथ की अमीरी से जुड़ी एक और कहानी हैं—एक बार श्रीनाथ अपने परिवार और परिजनों के साथ पोतन के घर अचानक पहुँच गये। पोतन की पत्नी घबरा गयी। घर में अतिथि-सत्कार के लिए कुछ नहीं था। अपने पति को उन्होंने धीरे से बताया। ठण्डे दिल से पोतन ने कहा—"घबराओ नहीं, सब ठीक हो जायगा। तुम स्नान कर बरतनों को रसोई में रख बाहर से किवाड़ बन्द कर पूजा-गृह में माँ शारदा का जाप करो।" फिर भारती की प्रार्थना कर श्रीनाथ को साथ ले स्नान के लिए निकले। स्नान कर सब अतिथि घर पहुँचे। पोतन ने रसोई में झाँका। पकवान तैयार थे। पत्नी से परोसने के लिए कहकर स्वयं जा बैठे। अन्दर से सरस्वती चावल और पकवानों को देती रहीं और बाहर से उन्हें लेकर पोतन की पत्नी परोसती गयी। इस प्रीति-भोज के बाद ताम्बूल-सेवन करते समय श्रीनाथ ने पोतन से काव्य को राजार्पण करने की बात कही। इसे सुनकर सरस्वती की आँखें भर आयीं। वे उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। पोतन ने सरस्वती को आश्वासन दिया कि "माँ! मैं अपना पेट भरने के लिए तुम्हें इन मनुजाधमों के हाथ नहीं बेचूँगा। विश्वास रखो।" इन सभी कहानियों से पोतन के स्वाभिमान की झलक मिलती है।

विद्वानों का मत है कि भागवत भी एक कवि की रचना नहीं है। कारण चाहे जो भी हो, पर यह तो मानी बात है कि भागवत के कुछ स्कन्धों को पोतन के साथ-साथ गंगन, सिंगन और नारय ने भी लिखा है। उक्त तीन कवियों को किन परिस्थितियों में ग्रन्थ पूरा करना पड़ा इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित है—

सर्वज्ञ सिंग भूपाल तेलंगाना के रायकोण्ड राज्य के राजा थे। पोतन की रचना के बारे में सुनकर वे उसके कृतिपति बनना चाहते थे। पर पोतन ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। राजा को क्रोध आ गया और उसने आज्ञा दी कि ग्रन्थ को जमीन में गाड़ दिया जाय। सेवकों ने आज्ञा का पालन किया। एक दिन रानी को स्वप्न में दर्शन देकर श्रीराम ने कहा—"जो तुम्हारे पति ने किया है वह उचित नहीं है। तुम अपने पति को समझाओ और गाड़ी गयी प्रति को बाहर निकलवाओ।" रानी ने राजा को समझाया। राजा मान गये। प्रति को राजा ने बाहर निकलवाया। पर तब तक काव्य के कुछ भाग नष्ट हो गये थे। इसलिए उनके शिष्यों ने उस ग्रन्थ को पूरा किया। यह कथा विश्वसनीय नहीं लगती। इसको कूचि मन्त्रि तिम्म कवि ने प्रचारित किया था, ऐसा कहा जाता है।

काव्य के नष्ट हो जाने के सम्बन्ध में उक्त कथा से मिलती-जुलती एक कथा और है। वृद्ध होने पर

पोतना ने अपने लड़के को बुलाकर एक सम्पुट को सौंपते हुए कहा कि इसमें भागवत है, यत्न से रखो। काव्य-समाप्ति के बाद पोतन ने उसे उक्त सम्पुट में सुरक्षित रखा था। पिता के स्वर्गवास के बाद लड़के ने सम्पुट को खोला। उसने देखा कि काव्य का एक अंश नष्ट हो गया है। लड़के ने उसे तुरन्त पिता के शिष्यों को दिखाया। शिष्यों ने उसे पूरा किया। इस कथा को हम मान सकते हैं, क्योंकि पहली कहानी जैसी यह असंगत नहीं प्रतीत होती।

मल्लमपल्लि सोमशेखर शर्मा इतिहास की दृष्टि से विचार करते हुए लिखते हैं कि सन् १४७४ ई० के आस-पास रायकोण्ड राज्य को मुसलमानों ने ध्वस्त किया था। इस विध्वंस के कारण ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट हो गया होगा। श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रि इस मत का समर्थन करते हैं।

श्री निडदवोलु वेंकटराव की यह व्याख्या तर्कसंगत है कि अपने भागवत को शीघ्र समाप्त करने के लिए पोतन ने पहले चार स्कन्धों को पूरा किया होगा। भक्तिरसप्रधान सप्तम, अष्टम एवं नवम स्कन्धों को पहले लिखने के उद्देश्य से उन्होंने पाँचवें स्कन्ध को पूरा करने का काम गंगन को और छठे स्कन्ध को पूरा करने का काम सिंगन को सौंपा होगा। दशम स्कन्ध तक पहुँचने में अधिक समय लगा होगा। इसलिए ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धों को लिखने का भार उन्होंने वेलिगन्दल नारय को दिया होगा। इस तरह रचना की समाप्ति हुई होगी।

पोतना के द्वारा विरचित भागवत की लोकप्रियता का प्रधान कारण उसमें व्यक्त भक्तिभाव है। भाषा इतनी सरल है कि पाठक या श्रोता साधारणीकरण की स्थिति में बहुत जल्द पहुँच जाता है।

पोतना की भक्ति दास्य-भाव की थी। भागवत में मर्यादा-भक्ति और पुष्टि-भक्ति का प्रतिपादन है। इनकी भक्ति अद्वैतपरक थी। इनके लिए शिव-केशव में कोई भेद नहीं था। ये जन्मतः शैव होते हुए भी वैष्णव-उपासक बने थे। इनकी भक्ति समन्वयात्मक थी। इन्होंने स्पष्ट कहा है—

तेटगीति छन्द

चेतुलारंग शिवुनि पूजिंपडेनि
नोरु नोव्वंग हरि कीर्तिनुड्डुवडेनि
दययु सत्यंबु तन लोनदलपडेनि
कलुगु नेटिकि तल्लुल कडुपु चेटु।
(७.१२३)

'हाथ जोड़कर जो शिव की पूजा नहीं करता मुँह खोलकर जो हरि का स्मरण नहीं करता दया, सत्य की भावना जो अन्तरंग में नहीं करता उसका जन्म ही क्यों? माता का गर्भ-धारण ही व्यर्थ है।'

पोतना की दृष्टि में बाह्य साधनों की अपेक्षा मानसिक पूजा श्रेष्ठतर है। मानस-पूजा इनको अत्यन्त प्रिय है। ये महान् भक्त थे। उठते-बैठते, खाते-पीते, सर्व काल, सभी अवस्थाओं में श्रीमन्नारायण के चरण-कमलों में इनका मन लगा रहता था।

इन्होंने सारे विश्व को हरिमय माना है—

इंदुगल डंदु लेडनि
संदेहमु वलदु चक्रि सर्वोपगतुं
डेंदेंदु वेदकि चूयिन
नंदंदे गलडु दानवाग्रणि विंटे।

'इधर है, उधर नहीं है—यह सन्देह छोड़ दें। वह सर्वव्यापी है। जहाँ कहीं भी खोजो, वहाँ वह दिखाई देता है।'

शरीर दृष्टि से दासत्व, जीव-दृष्टि से विश्वात्मा का अंशत्व तथा विशुद्ध आत्मा की दृष्टि से 'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव इन्होंने मान लिया था। विशिष्टाद्वैत में जीवन के सायुज्य या सामीप्य की जिस स्थिति की कल्पना

की जाती है, उसकी जगह पोतना ने अद्वैत-भाव की कल्पना की है।

पोतना ने 'आन्ध्र-महाभागवत' की अवतारिका में मंगलाचरण के प्रारम्भिक छन्द में बालकृष्ण की स्तुति इस प्रकार की है—

श्री कैवल्य पदंबुजेरुटकुनै चिंतिचेदन् लोकर-
क्षैकारारंभकु भक्त पालन कला संरभकुन दानवो-
द्रेकस्तंभकु गेलि लोल विलसद्दृगजाल संभूतना
ना कंजात भवांडकुंभकु महानंदांगना डिंभकुन् ॥
(१.१)

आरम्भ में कथावस्तु की सूचना दी गयी है। उसका भावार्थ यह है कि 'मैं श्री कैवल्य-पद-प्राप्ति के लिए लोकरक्षक, भक्त-पालनदक्ष, दानव-प्रवृत्ति को रोकनेवाले तथा विलास-लीलाओं से ब्रह्माण्ड की सृष्टि करनेवाले महानन्द की पत्नी के प्रिय-पुत्र का ध्यान करूँगा।'

यहाँ कृष्ण लोक-रक्षक एवं लोक-रंजक के रूप में वर्णित हैं। भक्त प्रह्लाद भक्ति की महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं—

कमलाक्षु नर्चिचु करमुलु करमुलु
श्रीनाथु वर्णिचुं जिह्व जिह्व
सुररक्षकुनि जूचु चूड्कुलु चूड्कुलु
शेष शायिकि मोक्कु शिरमु शिरमु
विष्णु नार्कणिचु वीनुलु वीनुलु,
मधुवैरिदविलिन मनमु मनमु
भगवंतु वलगोनु पदमुलु पदमुलु
परुषोत्तमुनि मीदि बुद्धि बुद्धि

तेटगीति छन्द

देवदेवुनि जिंतिचु दिनमु दिनमु
चक्र हस्तुनिब्रकटिंचु चदुवु चदुवु,
कुंभिनीधवु जेप्पेडि गुरुडु गुरुडु
तंडि हरि जेरुयेडि तंडि तंडि।

'कमल-नयन की अर्चना करनेवाले हाथ ही हाथ हैं। श्रीनाथ का वर्णन करनेवाली जिह्वा ही जिह्वा है। सुररक्षक का दर्शन करनेवाली दृष्टि ही दृष्टि है। शेष-शयन का नमन करनेवाला सिर ही सिर है। विष्णु (नाम) का श्रवण करनेवाले कान ही कान हैं। मधुवैरी में संलग्न मन ही मन है। भगवान् की प्रदक्षिणा करनेवाले चरण ही चरण हैं। पुरुषोत्तम की ओर संलग्न बुद्धि ही बुद्धि है। देवदेव का चिन्तन करनेवाला दिन ही दिन है। कुम्भिनीधव की शिक्षा देनेवाला गुरु ही गुरु है। हे पिता! हरि के सन्नाध्यि में रहो, कहनेवाला पिता ही पिता है।'

(७.१६)

पोतनाकृत भागवत के मंगलाचरण का द्वितीय छन्द शिव-स्तुति तथा तृतीय छन्द ब्रह्मपरक है। इस प्रकार के पोतना धार्मिक सहिष्णुता प्रतिपाद और समन्वयवादी कवि थे। इसीलिए वे लोक नायक बने।

'गजेन्द्रमोक्षम्' का यह वर्णन देखिये—आँचल के छोर को छोड़े बिना दौड़नेवाले कृष्ण से इस आतुरता का कारण लक्ष्मी पूछना चाहती थीं। इसलिए उत्सुकता के साथ उनके पीछे चल पड़ती हैं। पर संकोच के मारे वह कारण पूछ नहीं पायीं। इसलिए लड़खड़ाते हुए पैरों से उन्होंने विष्णु का अनुसरण किया। तेलुगु-पद इस प्रकार है—

अडिगेदननि कडुवडि जनु, नडिगिन दनुमगुड
नुडुगडनि नड थुडुगुन् वेड
वेड सिडिमुडि तडन् बडु, नडुगिडु
नडुगिडदु जडिम नडुगिडु नेडलन

रास-क्रीड़ा के समय का वर्णन देखिये—

नल्लनि वाडु पद्म नयनम्बुल वान्डु कृपा रसम्बु पैन्।
जल्लेडु वाडु मौलि परिसर्पित पिन्छमु वाडु नव्वुरा
जल्लेडु मोमु वान् डोकन्डु चल्वल मान धनम्भुतेच्चेनो
मल्लिथलार मी पोदल माटुन लेन्डु गदम्म येप्परे॥
(भागवत, दश०, पू० भा० १०१२)

चीरहरण के बादवाली घटना का पोतना इस प्रकार वर्णन करते हैं। गोपिकाएँ वनप्रान्त की लताओं से पूछती हैं—'क्या तुमने श्रीकृष्ण को देखा है ? काले कृष्ण कमलदल नयनवाले हैं। सब पर कृपा-रस की वर्षा करनेवाले हैं। सिर पर मौलिपिन्छ (मुकुट) धारण करनेवाले हैं। हँसमुख हैं। ऐसे सुन्दर कृष्ण को हमारे चीरों के साथ तुमने देखा है ? हे नवमल्लिकाओ, बताओ, वह कहीं तुम्हारे कुञ्जों में छिपा तो नहीं है ?'

पोतना तेलुगु-साहित्य के पोतन (स्वच्छ या पवित्र) कवि हैं।

रा० शे० रा०

सा० प्र०

बलिजेपल्लि लक्ष्मीकान्तम्

प्रसिद्ध नाटककार एवं अभिनेता श्री बलिजेपल्लि का जन्म सन् १८८१ ई० में गुण्टूर में हुआ था। ये नरसिंह शास्त्री (पिता) और आदिलक्ष्मम्मा (माता) के पुत्र थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मामा के यहाँ हुई। कर्नूल के हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ये वहीं सब रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त हो गये। तत्पश्चात् गुण्टूर हिन्दू कॉलेज में तेलुगु-प्राध्यापक के पद पर कार्य किया। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें दो वर्ष कारागार में भी रहना पड़ा। नाटक-कला पर भाषण देने ये रंगून भी गये थे। ये कई चलचित्रों के गीतकार, कथाकार और संवाद-लेखक थे। इन्होंने कृष्ण-सत्यभामा प्रेम-सम्बन्धी सुप्रसिद्ध नाटक 'सात्राजितीयमु' की रचना की थी। 'सत्य-हरिश्चन्द्रीयमु' इनका दूसरा नाटक है। इनका देहावसान ३० जून १९५३ ई० को हुआ।

सा० प्र०

बालकवि सुब्बन्न

कौशिकगोत्रोद्भव और भोसले-वंश के कीर्ति-केतु शाहाजी ने अनेक कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया था। उनमें कृष्ण-भक्त बालकवि सुब्बन्न एक श्रेष्ठ कवि थे। इन्होंने तीन नाटकों को गेय यक्षगानों में लिखा है। उनके नाम हैं—१. लीलावती शाह राजीयमु, २. शाहमहाराज कल्याणम् (रूपवति के साथ), ३. पञ्चकन्या परिणयम्। इनमें से पहले दो यक्षगान-नाटकों में शाहजी के दो विवाहों का वर्णन है। डॉ० आरुद्र प्रथम को एक साधारण नाटक मानते हैं। दूसरी रचना को ही वह कुछ उत्तम मानते हैं। तीसरा काव्य कृष्ण-सम्बन्धी है। बालकवि सुब्बन्न १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे।

इनके बारे में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नहीं है। श्री चागन्टि शेषय्या लिखते हैं—"बालकवि सुब्बन्न किस जाति के थे और किस गोत्र के थे, यह ज्ञात नहीं है, यह आश्चर्य की बात है। ये अपने बारे में कुछ लिखना नहीं चाहते थे या यह भी हो सकता है कि इनकी लिखी सामग्री आज नहीं मिल रही है।"

बालकवि सुब्बन्ना को शाहाजी ने एक दिन आदेश दिया—"कृष्ण से सम्बद्ध कथाओं में श्रेष्ठ 'पञ्चकन्या परिणयम्' को तुम आन्ध्र-भाषा में रचो। इस मंजु नाटक को हमारे नाम पर अर्थात् हमें अर्पित करो। सुकवियों को प्रसन्न कर सकनेवाले इस नाटक की रचना तुम करो।" आश्रयदाता के आदेशानुसार इन्होंने नाटक लिखकर उन्हें ही समर्पित किया।

'पञ्चकन्या परिणयम्' की कथा इस प्रकार है—"श्रीकृष्ण और सुदामा दोनों गेंद खेल रहे थे। सुदामा हार गये। दूसरे दिन सुदामा ने खेल जीतने का वादा किया। कृष्ण मान गये और अपने मित्र की मनोकामना पूरी करने के लिए दूसरे दिन मैदान की ओर आ रहे थे। उन्होंने रास्ते में पाँच कन्याओं को जलक्रीड़ा करते हुए देखा। कृष्ण उन पर आसक्त हो गये। सुदामा को बुलाकर उन्होंने कहा—"उन पाँचों से मेरा विवाह सम्पन्न करवाओ।" सुदामा मान गये। इसके पश्चात् कृष्ण जलक्रीड़ा करनेवाली कन्याओं के वस्त्रों को लेकर पेड़ पर जा बैठे। कन्याओं ने वस्त्र

वापस करने के लिए प्रार्थना की। कृष्ण ने कहा : "वलराजु केलि रुवारुगा गूडि ना मनंबलरिन्चिते....." "अगर काम-केलि के द्वारा मुझे आप लोग सन्तृप्त कर सकोगी तो....." तब कृष्ण से उन कन्याओं ने इस प्रकार कहा—

बाल गोपाल मम्मोक्क सारि नीवु
गलय मरि नेव्वरु वोट्टुगट्टु बोरु
गान नोल्लमु संसार हानि यैन-इट्टि
पनि सेय वलुवल निम्मु दयुन्।

'हे कृष्ण! कृपया हमारे वस्त्रों को लौटा दो। मान लो, हम तुम्हें सन्तृप्त कर दें, तो हमसे कौन विवाह कर लेगा? यह तो हमारी बरबादी है। हम तुम्हारे प्रस्ताव को अस्वीकार कर रही हैं। इस शर्त को सुनकर कृष्ण उनका पाणिग्रहण करते हैं।' "

सा० प्र०

भैरव कवि

प्रचलित कहावत के अनुसार पण्डित का पुत्र मूर्ख होता है। पर भैरव इसके अपवाद हैं। अपनी विद्वत्ता के बल पर उक्त कहावत को असत्य प्रमाणित करनेवाले भैरव, गौरन (हरिश्चन्द्रोपाख्यान और नवनाथ-चरित्र के रचयिता) के सुपुत्र थे। इनका जन्म ईसा की पन्द्रहवीं शती के दूसरे दशक के अन्त में हुआ था। इन्हें सन् १४२० से १४७५ ई० के बीच विद्यमान माना जाता है। ये जन्म से शैव थे। वैष्णव-धर्म के सार्वजनीनत्व के कारण जब राजा वैष्णव बने तो उनके दरबारियों ने भी वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। वैष्णव-धर्म के व्यापक प्रभाव के कारण 'कवि-गजांकुश' नामक लक्षण-ग्रन्थ के रचयिता शैव भैरव धीरे-धीरे 'श्रीरंग-महात्म्यम्' के कर्ता वैष्णव भैरव बन गये।

'साहित्य लक्षण दीक्षा गुरु' गौरन के 'सुधी सत्पुत्र' भैरव गौतम गोत्रोद्भव ब्राह्मण थे। 'सद्गुण रत्नाभरण' भैरव की प्रशंसा सुधीवृन्द ने खुलकर की है। इन्होंने 'कवि-गजांकुश' की रचना कुकवि मातंगों के मदभंजन के लिए की थी। भैरव भी अपने पिता की तरह भ्रमराम्बा (श्री शैल मल्लिकार्जुन की पत्नी पार्वती) के भक्त थे। उभय भाषा (संस्कृत और तेलुगु) परायण भैरव दुष्कवि पिशाचों के लिए भैरव समझे जाते थे। इनकी प्रशंसा कर मुद्दराजु रामन, लिंगमगुंट तिम्मन जैसे लाक्षणिकों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में 'कवि-गजांकुश' नामक लक्षण-ग्रन्थ के छन्द उद्धृत किये हैं।

'श्रीरंग महात्म्यम्' में भैरव ने अपने-आपको 'गौरनामात्य पुत्र सुधीविधेय भैरव' कहा है। गौरन 'लक्षण-दीपिका' नामक रीति-ग्रन्थ के रचयिता हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ में 'कवि-गजांकुश' के पद्यों को उद्धृत किया है। इन उद्धरणों के कारण श्री मानवल्लि रामकृष्ण कवि इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि 'कवि-गजांकुश' के रचनाकार गौरन से भी प्राचीन होंगे या कम-से-कम होने की सम्भावना है। किन्तु डॉ० आरुद्र का मत है कि बाद के प्रतिलिपिकारों ने भूल से या जान-बूझकर पिता के ग्रन्थ में पुत्र के पद्यों को जोड़ा होगा। पिता की रचना 'लक्षण-दीपिका' के श्लोकों का अनुवाद भैरव ने किया होगा। उसे परवर्ती लिपिकारों ने भूल से भैरव-विरचित मानकर उक्त ग्रन्थ में जोड़ने की भूल की होगी।

'रत्न-परीक्षा' भैरवकृत दूसरा ग्रन्थ है। इससे ज्ञात होता है कि ये हीरे-जवाहरात के पारखी और मर्मज्ञ थे। यह हीरे के गुण-दोषों से सम्बद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। लाक्षणिक भैरव में वीर शैवों का दर्प और युवकों का अल्हड़पन देखने को मिलता है। जैसे-जैसे वय बढ़ता गया वैसे-वैसे सुधीविधेयत्व भी बढ़ता गया। फलस्वरूप 'श्रीरंग महात्म्यम्' नामक वैष्णव-ग्रन्थ की रचना कर बैठे। इससे इन्होंने सुकीर्ति प्राप्त की। भैरव के शब्दों में वैष्णव-धर्म परम धर्म है। सब धर्मों से बढ़कर अधिक सात्त्विक है। जो मनसा, वाचा, कर्मणा इस धर्म का पालन करते हैं वे सबके गुरु बन जाते हैं। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही भैरव के धर्म-सम्बन्धी विचारों में यह परिवर्तन आया होगा।

'श्रीरंग महात्म्यम्' की कथा भैरव ने गरुड़-पुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण से ग्रहण की थी। कथानक में कोई विशेषता नहीं है। कथा इस प्रकार है—कावेरी के किनारे पर विभीषण ने श्रीरंगधाम की स्थापना की। यह धाम उनको रामजी से मिला था। थोड़े समय के लिए धाम को नीचे उतारकर फिर वे उसे लंका ले जाना चाहते थे। उन्होंने उसको नीचे रख तो दिया, परन्तु उसे पुनः उठा नहीं सके। इसलिए वह धाम वहीं रह गया। धीरे-धीरे वह महाक्षेत्र बन गया। अतः यहाँ के निवासी दुष्ट भी मरने के बाद वैकुण्ठ-प्राप्ति के अधिकारी हो गये।

इनकी रचना का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सनत्कुमार वन में तपस्या कर रहे थे। छद्मवेष धारण कर बटुओं के साथ बटु बनकर विष्णु वहाँ गये। इस मायावटु को देखकर सनत्कुमार ने उनसे परिचय-विषयक कुछ प्रश्न किये। उसका उत्तर विष्णु इस प्रकार देते हैं—

इन्दुन्डि वच्चिति निप्पुडे ननगदु
सकल लोकैक सन्चारि गान,
निदि थदि नेलवनि थेर्परिन्पग
बोल देन्दु चूसिन वसिथिन्तु गान,
रुपिन्चि तल्लि दन्डुरुल जूपि
चेप्पगा लेदु वारेव्वरु लेरु गान
वीरुवन्धुदुलनि विवरिन्प
गूडदु सर्व भूत मुलकु समुडु गान।

'मैं सकल लोक-संचारी हूँ। इसलिए यह नहीं कह सकता कि मैं अमुक स्थान से आ रहा हूँ। मैं सर्वत्र रहता हूँ, इसलिए यह नहीं कह सकता कि अमुक स्थान मेरा निवास-स्थान है। मेरा कोई माता-पिता नहीं है। इसलिए किसीको दिखाकर नहीं कह सकता कि ये मेरे माता-पिता हैं। मेरे लिए सब समान हैं, सब भाई-बन्धु हैं, इसलिए यह नहीं कह सकता कि अमुक मेरे भाई-बन्धु हैं।'

इनकी रचनाओं पर पोतन का गहरा प्रभाव लक्षित होता है।

सा० प्र०

मंडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री

मंडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री का जन्म आन्ध्र के एक प्रसिद्ध पण्डित-परिवार में ३० जून सन् १८३३ ई० को हुआ था। आपके पूर्वज आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले पाराशरगोत्रीय वेलनाटि वैदिक ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम कामकवि और माता का नाम ज़ोगम्मा था। इनके पितामह पेरयसूरि 'इन्दुमति कल्याणम्', 'लक्ष्मी नरसिंह मूर्ति स्तुति' आदि काव्य-ग्रन्थों के रचयिता थे। इनके पिता तथा बड़े भाई भी अच्छे कवि थे। इस प्रकार इन्हें कवि-प्रतिभा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। इनके प्रथम विद्या-गुरु इनके पिता ही थे। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने नाना के यहाँ प्राप्त की।

बारह वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। समकालीन अनेक राजा-महाराजाओं से सम्मान प्राप्त करनेवाले श्री मंडपाक पार्वतीश्वर उच्चकोटि के भक्त थे। ये अभिनव आन्ध्र कविता के जनक माने जाते हैं। तेलुगु में शताधिक शतकों के रचयिता बहुत कम हैं, श्री मंडपाक उनमें अग्रगण्य हैं। इस समय उनके केवल ८२ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। उनमें जनार्दन शतकमु, वेंकटरमण शतकमु, वराह नरसिंह शतकमु, गोपाल कृष्ण शतकमु, बालकृष्ण शतकमु, रमानायक शतकमु आदि ग्रन्थ आपकी कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं। बालकृष्ण-सम्बन्धी एक उदाहरण देखिये—

अक्षुल् निन्गनुनट्लु हस्तमुलु निन्नर्चिन्यु नट्लात्मनि
क्षोणम्बुग नम्मु नट्लु चिव निन्नालिंचु नट्लास्थमुन्
दीक्ष न्निन्गोनिथाडु नट्लु करुणन् वीक्षिन्चि रक्षिम्पुमी
साक्षान्मंगल संघ संघटन तृपणा ! बालकृष्णा ! हरी !

भक्त कवि पार्वतीश्वर शास्त्री बालकृष्ण, हरि से प्रार्थना कर रहे हैं। आराध्य से शरणागति-याचना

करते हुए वे कहते हैं—'मेरी आँखें हमेशा आपको ढूँढ़ें, मेरे ये दोनों हाथ आपकी पूजा करें, रत्ती-भर भी कम न होनेवाला अटूट विश्वास आपके प्रति मेरे मन में हो, आपकी प्रशंसा ही मेरे लिए एकमात्र कार्य हो, ऐसा मुझे आशीर्वाद दो, मेरी रक्षा करो, मुझे बचा लो।'

इनका देहावसान ३० जून १८९७ ई० को हुआ।

सा० प्र०

मंत्रिप्रेगड सूर्यप्रकाश कवि

मंत्रिप्रेगड सूर्यप्रकाश कवि का जन्म सन् १८०८ ई० में पीठपुरम् के समीपस्थ तिम्मापुरम् नामक स्थान में हुआ था। ये सीतम्मा और शरभराजामात्य के आत्मज थे। 'कृष्णार्जुन-चरित्र', 'सीताराम-चरित्र', 'भीमलिंग-शतक' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

इनमें से 'कृष्णार्जुन-चरित्र' दो आश्वासों का द्वयर्थी काव्य है, जिसमें कृष्ण और अर्जुन की कथाएँ वर्णित हैं। इस रचना में शब्द-श्लेष की अपेक्षा अर्थ-श्लेष पर अधिक ध्यान दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप यहाँ एक पद द्रष्टव्य है—

"समयमेन्नक भीष्म कजातकेलि
निलय सन्निधि जेरुर नलरु वार्त
विनिन सत्य विरक्ति दुर्वृत्ति यनु चु
जाल र्निदिपकुंडुने जगति नन्नु॥"

'सीताराम-चरित्र' छः आश्वासों का प्रबन्ध-काव्य है। यह भीमलिंगेश्वर को समर्पित है।

'भीमलिंग-शतक' तेलुगु भाषा की सुन्दर लोकोक्तियों, मुहावरों तथा कहावतों का संग्रह है।

इनका देहावसान सन् १८७३ ई० में हुआ।

बा० रे०

मच्चा वेन्कट कवि

मच्चा वेन्कट कवि का जन्म निज़ाम राज्य के जालना नामक स्थान में सन् १८५६ ई० में हुआ था। इनके पिता गंगय्या निजाम की सेना में सरदार थे। 'रुक्मिणी-कल्याणम्', 'द्रौपदी वस्त्रापहरणमु', 'अम्ब-रीषोपाख्यानमु' आदि आपकी रचनाएँ हैं।

कहा जाता है कि जब ये तीन वर्ष के बालक थे, तब एक चोर इन्हें उठाकर भाग गया और इनके कान के झुमके निकालकर इन्हें एक कुएँ में फेंक दिया। कुएँ में जल नहीं था। रोने की आवाज सुनकर पथिकों ने इन्हें कुएँ से निकाला। इस प्रकार भगवान् ने एक भक्त की रक्षा की।

इनके प्रथम विद्या-गुरु इनके पिता ही थे। ये अपने जीवन में क्रमशः अध्यापक, सब रजिस्ट्रार और फिर पर्लाकिमिडि में तेलुगु के विभागाध्यक्ष हुए। इनकी मृत्यु सन् १९०३ ई० में हुई।

सा० प्र०

मडिकि अनन्तय्य

मडिकि अनन्तय्य के जीवन के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। इनके नाम पर केवल एक रचना 'विष्णुमाया नाटकम्' मिलती है। किन्तु इस सम्बन्ध में भी विवाद है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि यह चिन्तलपूडि एल्लनामात्य की कृति है। इस नाटक में गोदावरी-क्षेत्र का वर्णन है तथा सर्पवर-क्षेत्र की महिमा का गान है। अनन्तय्या गोदावरी-तटवासी थे। अतः अधिक सम्भावना यही है कि ये ही उपर्युक्त नाटक के रचयिता हैं। इस नाटक में पुण्डरीक की कथा मिलती है। वह इस प्रकार है—

"यमुना नदी के पास मधुरापुर है। वहाँ पुण्डरीक नामक एक भक्त रहता था। नारद के द्वारा विष्णु-माया सम्बन्धी बातों को सुनकर वह सोचने लगा कि इस माया के बारे में जानना चाहिए। वह श्राद्ध के दिन अपनी पत्नी से भोजन बनाने के लिए कहकर नदी में स्नान के लिए गया। डुबकी लगाते समय पुण्डरीक ने भगवान् से प्रार्थना की कि मैं तुम्हारी माया को जानना चाहता हूँ। जल के अन्दर आने पर उसने अपने सामने एक अब्राह्मण स्त्री को देखा।

उससे उसने विवाह कर लिया। इसके पश्चात् वे कहीं दूर चले गये। दोनों बीस साल तक एक साथ रहे। अकाल पड़ने पर वे गोदावरी प्रान्त की ओर गये, जो सुभिक्ष-प्रान्त माना जाता है। वह अपने लड़के और पत्नी को एक पेड़ के नीचे ठहराकर भीख की तलाश में निकला। एक घर के सामने खड़े होकर भीख माँगी। गृहिणी ने अन्दर से उत्तर दिया कि 'यह असमय है, बाद में आना।' फिर भी पुण्डरीक ने प्रार्थना की कि 'मेरी पत्नी और बच्चा भूखे हैं। कुछ दे दो।' गृहिणी ने बाहर आकर देखा कि भिखारी उसका पति पुण्डरीक है। पत्नी सावित्री इस रहस्य को जान नहीं पायी। पुण्डरीक को ज्ञात नहीं था कि अभी कुछ देर पहले वह नदी में स्नान के लिए गया था और अपने ही घर के सामने खड़े होकर अपनी ही पत्नी से भीख माँग रहा है। सावित्री के सतीत्व के कारण उसकी माया दूर हो जाती है।" इस प्रकार अनन्तय्य वैष्णव-भक्तों की परम्परा में आ जाते हैं।

सा० प्र०

मडिकि सिंगन

विषय को चुनकर उससे सम्बद्ध रचनाओं का संकलन कर, कवि के नाम के साथ रचनाओं का नाम देकर और इन सबको एक ग्रन्थ में संकलित कर मडिकि सिंगन ने साहित्य में एक नयी विधा का शुभारम्भ किया। इस तरह यह तेलुगु-साहित्य के प्रथम आकर-ग्रन्थ-सम्पादक हैं। आज हम बहुत से ऐसे कवियों के नाम सुन रहे हैं जिनकी रचनाएँ नहीं मिल रही हैं। यदि वे साहित्य-लोक में जीवित हैं तो उसका श्रेय सिर्फ मडिकि सिंगन को ही मिलना चाहिए।

मडिकि सिंगन भारद्वाजगोत्रीय नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अय्यल मन्त्रि था। ये गोदावरी के उत्तर में स्थित पेद्दमडिकि में रहते थे। इनके बाग-बगीचे थे। ये कृषि-कार्य करते थे और उपज को गरीबों में बाँट देते थे। आसपास के लोग अय्यल मन्त्रि को अन्नदाता कहा करते थे। ये राजमहेन्द्रवरम् के राजा तोय्येटि आनपोत नायक के मन्त्री थे। इसलिए लोग इन्हें 'अय्यल मन्त्रि' कहते थे। ये सन् १३४५ और सन् १३६७ ई० के बीच विद्यमान थे।

सिंगन ने 'पद्म-पुराण' का अनुवाद तेलुगु में किया है। 'पद्म-पुराण' विष्णु-कथाप्रधान ग्रन्थ है। इसके आरम्भ में सिंगन ने लिखा है—"पद्म-पुराण का अनुवाद ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। फिर भी भक्तिभाव से इसकी रचना करूँगा।"

पद्म-पुराण ग्यारह खण्डों का ग्रन्थ है। हर एक खण्ड के अन्त में गद्य और अनुक्रमणिका है। इसके आधार पर ग्रन्थ की महानता का अनुमान लगाया जा सकता है। पद्मपुराणोत्तर खण्ड में ग्यारह भाग हैं। इसमें वैष्णव-धर्म की श्रेष्ठता का निरूपण है। पद्म-पुराण की कथा को वसिष्ठ महर्षि अयोध्या के महाराज चक्रवर्ती दिलीप को सुनाते हैं। इसमें रामायण और भागवत की कथाएँ हैं। कवि ने श्रीकृष्ण की जीवनी को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

भागवत की कथा के अनुसार श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से (तेलुगुवालों का विश्वास है कि त्रेतायुग की सीता ने द्वापर में रुक्मिणी के रूप में जन्म लिया था) राक्षस-रीति से विवाह किया था। पर मडिकि सिंगन ने दोनों को वेद-मन्त्रों के उच्चारण के बीच दम्पति बनाया है। सिंगन ने दोनों के विवाह को तेलुगु वर-वधू के विवाह में परिणत किया है। एक उदाहरण देखिये—

……वासुदेव रुक्मिणुलकु मंगल स्नानंबु चेयिन्चि दिव्याम्बराभरण माल्यामु लेपनंबुल नलन्करिन्चि विवाह समभंव गुट ननेक वृद्ध पुण्यान्गनलु सेसलु बेद्दुचु नुद्यानसमंट पंबुनकुन् देच्चि ……

सुमुहूर्तंमनुचु भूसुरुलु नलगड निल्चि
ललिमंगलाष्टकमुल पठिम्प
नित्य मंगलमनि निख़िलार्थं

वरुलु नु जेलुवार गैवारमुलु वचिन्प

……………… .. … …………

देव दुन्दुभुलुनु दिव्य गानंबुलु-बुण्यकोर्तनमुलु
भूरि मतुलु
रूढि जेलगे नपुडु रुक्मिणी कृष्णुल वरविवाह
वैभवंबु वोलिचे ।

……………… ……………… ……… …

गल्पतरुवुनु लेतयुनु गलसि मेलसि
थोक्क कुदुटनु मोलचि पेन्पोन्दिनट्लु
बेन्ड्लि पीठंबु पै नुन्डि प्रेम लोलय
नव्वधूवरु लोप्पारि रपुडु चूड ।

'रुक्मिणी-कृष्ण दोनों को मंगल-स्नान करवाकर, अनेक वस्त्रों, आभरणों और आलेपों से विभूषित कर सौभाग्यवती स्त्रियों का आशीर्वाद दिलवाकर कल्याण-मण्डप की ओर विवाह का शुभ मुहूर्त आसन्न जानकर ले गये ।

'सुमुहोर्तो सावधान' कहते हुए ब्राह्मण मण्डप के चारों ओर खड़े होकर मंगलाष्टक पढ़ने लगे । 'शुभ हो, मंगलकारी हो'–सब लोग यह आशीर्वाद देने लगे ।… देव-दुन्दुभि बजने लगी । दिव्य गान का आलाप होने लगा । कीर्तन गाये जाने लगे । इस तरह रुक्मिणी-श्रीकृष्ण का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ ।'

पाणिग्रहण के बाद रुक्मिणी और श्रीकृष्ण एक-दूसरे के समीप आ गये । उस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है-"उस वेदी पर परस्पर प्रेमालाप करनेवाले वे नव वर-वधू ऐसे दिखायी देने लगे मानो कल्पवृक्ष के साथ कल्पलता सिमट गयी है ।"

सूरदास की यशोदा मात्र कृष्ण की माँ थीं । प्रतीत होता है कि उन्होंने बलराम को वैसा वात्सल्य नहीं दिया था, किन्तु मडिकि सिंगन की यशोदा दोनों को समान रूप से प्यार करती हैं । इतना ही नहीं, उन्होंने दोनों का पालन-पोषण एक साथ, एक समान किया । देखिये—

तिरुमणि बेट्टु नौदलल तेल्लनि चीरलु गप्पु जिन्नि या
भरणमु लेल्ल बेट्टु तगु भन्गुल डग्गरि चन्नु लिंच्चु वे
भरमुग नूचि जोललनु बाडु मुदंबुन नन्द गोप सुन्
दरिइदि नित्श कृत्य मुग दा वेनि चन्दग रामकृष्णुलन्

'यशोदा ने बलराम और कृष्ण दोनों के माथे पर तिरुमणि (श्वेत मिट्टी का तिलक, जो वैष्णव लगाते हैं) लगाया । श्वेत वस्त्रों से इन्हें आवृत किया । सुन्दर आभूषणों को पहनाया । उनको बहुत पास से स्तन्य दिया । तत्पश्चात् पालने में सुलाकर लोरियाँ गाने लगीं । उस गोप-सुन्दरी के लिए यह नित्यकृत्य है । इस तरह वह राम-कृष्ण दोनों की देखभाल करती थीं ।'

'तिरुमणि' शब्द पर ध्यान दें तो ज्ञात होता है कि सिंगन वैष्णव थे । इसलिए प्रतिदिन तिलक लगाते थे । इसी तिलक को सिंगन ने राम-कृष्ण के ललाट पर लगवाया है ।

रुक्मिणी कृष्ण तक सन्देशा भेजती हैं । पुरोहित का पुत्र दूत था । उसके आने में देर हो गयी । वह देर का कारण समझ नहीं पायीं । अतः व्याकुल हो गयीं । इसका वर्णन देखिये—

नक्कट ! येक्कडि कारिगेनो ! विप्रु
डेक्कड बोयनो एलको तडसे ।
हरिकि इक्कडि वार्त लन्देनो ! न डुम
तिरिगेनो ! शौरि दो तेच्चुचुन्नाडो ।

……………………………………

'हाय ! हाय ! वह न जाने कहाँ चला गया ? यह ब्राह्मण कहाँ पहुँचा ? यह देर क्यों ? हरि तक यहाँ का समाचार पहुँचा होगा क्या ? कहीं यह ब्राह्मण बीच से ही लौट आया है क्या ? शायद कृष्ण को अपने साथ ला रहा होगा ।'

भक्त सिंगन श्रृंगार-वर्णन करने में भी सिद्धहस्त थे । वह 'श्रृंगार-रस कलाश्रित वचोधन' थे । यह उनकी उपाधि थी ।

'पद्म-पुराण' के अतिरिक्त सिंगन ने 'वसिष्ठ-रामायण' भी लिखी है । सोलह वर्षों के राम जब

वैराग्यभाव को अपनाते हैं तब वसिष्ठ मुनि राम को समझाते हैं। यही वसिष्ठ-रामायण की कथा है। सिंगन ने दो रचनाओं को कन्दनामात्य को समर्पित किया और दो को भगवदर्पित कर दिया। ये हैं—वासिष्ठ रामायण और सकलनीति सम्मतम्। इन्होंने अपने आश्रयदाता मुप्पभूपति के नाम पर कोई रचना समर्पित नहीं की है, यह आश्चर्य की बात है।

सिंगन ने अपने बहुचर्चित 'पद्म-पुराण' की रचना सन् १४२० ई० के आसपास की होगी। ये तेलुगु-साहित्य के स्मरणीय कवियों में गिने जाते हैं।

सा० प्र०

मरिंगंटि सिंगराचार्युलु

'दशरथ राजनन्दन-चरित्र' के कवि मरिंगंटि सिंगराचार्युलु वैष्णव-ब्राह्मण थे। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है :

'इदि (यह) श्रीमल्लक्ष्मी नृसिंहावतार वेंकटेश्वर वरप्रसाद लब्ध सकलैश्वर्य धुरीण यन्ध्र भाषा रिरोष्ठ्यादि विंशति प्रबन्ध निर्माण मौद्गल्य गोत्र पवित्र तिरुमलदेशिक पौत्र वेन्गलाचार्य पुत्र मरिंगंटि सिंगराचार्य प्रणीतम्बैन (लिखा हुआ) दशरथ राजनन्दन चरित्रम्बुनंदु (चरित्र में)....' उक्त कथन से पता चलता है कि श्री वेंकटेश्वर का अनुग्रह प्राप्त होने के कारण भगवान् ने इनको सकलैश्वर्य-सम्पन्न बनाया था। ये मौद्गल्य गोत्रोद्भव थे। इनके पिता का नाम वेंकटाचार्य था और दादा का नाम तिरुमलाचार्य। इन्होंने बीस ग्रन्थों की रचना की थी। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. वरदराज-स्तुति, २. श्रीरंग-शतकम्, ३. चक्रलाञ्छन-विधि, ४. कवि-कदम्बम्, ५. शत-संहित, ६. रामकृष्ण-विजयम्, ७. नाटकशास्त्रं, ८. धनाभिरामम्, ९. प्रेमाभिरामम्, १०. नल यादव राघव पाण्डवीयम् (एक साथ चार कथाओं को एक ही पद्य-रचना के द्वारा व्यक्त करना), ११. सकलालंकार-संग्रह राधा-सुधा-पुराणम्, १२. आन्ध्र भाषा भूषणम्, १३. दशरथ राजनन्दन-चरित्र नामक निरोष्ठ्य रामायण अर्थात् वर्णमाला के उ, ऊ, प, फ, ब, भ, तथा म अक्षरों के प्रयोग बिना रचना करना, १४. निरोष्ठ्य शुद्धान्ध्र सीता कल्याणम्, १५. तारक ब्रह्म राम-शतकम्, १६. श्रीकृष्ण शतानन्दीयम्, १७ कृष्ण-तुलाभारम्, १८. रतिमन्मथाभ्युदयम् तथा १९. रामाभ्युदयम्।

उक्त रचनाओं में वरदराज-स्तुति, श्रीरंग-शतकम्, सकलालंकार-संग्रह, राधा-सुधा-पुराणम्, श्रीकृष्ण शतानन्दीयम् और कृष्ण-तुलाभारम् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी हैं।

कवि मरिंगंटि सिंगराचार्युलु प्रतिदिन एक ग्रन्थ की रचना करने में समर्थ थे। नेबति कृष्णमाचार्युलु नामक एक पूर्ववर्ती कवि ने स्तुति करते हुए अपने ग्रन्थ 'राजनीति रत्नाकरम्' में मरिंगंटि सिंगराचार्युलु के विषय में लिखा है–"आन्ध्र भाषा में निरोष्ठ्य महाप्रबन्ध को लिखनेवाले कर्नाटराय से 'कवि सार्वभौम' जैसी उच्च उपाधि पानेवाले मरिंगंटि सिंगराचार्य का स्मरण करता हूँ।"

उनके बीस ग्रन्थों में से केवल दो प्रकाशित हैं। उनकी भी प्रतियाँ नहीं मिल रही हैं। शेष ग्रन्थ अप्राप्त हैं।

डॉ० आरुद्र के अनुसार गोलकुण्डा के मल्किभराम के समकालीन मरिंगंटि सिंगराचार्युलु उद्दण्ड कवि थे। सम्भवतः ये तेलंगाणा के देवरकोण्डा के निवासी थे। इन्होंने अपने समय के अश्वपतियों, गजपतियों और नरपतियों से सम्मान पाया था। उपहार के रूप में हाथी, घोड़े, छत्र-चामर, मोतियों के हार, जमीन आदि को इन्होंने मल्किभराम से ग्रहण किया था। सिंगराचार्युलु जन्मजात वैष्णव थे।

सा० प्र०

मल्लन्ना

मल्लन्ना अम्मलाम्बा और पोतया के पुत्र थे। इन्होंने 'रुक्मांगद-चरित्र' के आधार पर 'एकादशी

माहात्म्य' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह पाँच आश्वासों का ग्रन्थ द्राक्षासम के भीमेश्वर को समर्पित किया गया है। राजा रुक्मांगद ने मुनियों से एकादशी की महिमा सुनी तो व्रत का अनुष्ठान किया—इसमें इसी घटना का वर्णन किया गया है। धर्म-अधर्म तथा पुण्य-पाप की परिभाषा और परिचय कराना ही इस काव्य की रचना का उद्देश्य प्रतीत होता है।

बा० रे०

माचिराजु वेन्कट कृष्णमूर्ति

माचिराजु वेन्कट कृष्णमूर्ति का जन्म उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ था। ये बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक जीवित रहे। आश्चर्य की बात है कि इनके बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है। किन्तु इतना तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि ये कृष्ण-भक्त थे। इन्होंने 'श्रीकृष्ण-परमात्मा' नामक एक लघु काव्य-ग्रन्थ की रचना की है। उसके आमुख में इन्होंने लिखा है कि कविता करने की शक्ति मुझमें नहीं है, फिर भी पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति को ही मैं काव्य का आदर्श अथवा उद्देश्य मानता हूँ। इस काव्य को तेनाली के ओरियन्टल पब्लिशिंग कंपनी ने सन् १९४८ ई० में प्रकाशित किया था। इसमें कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की भागवत-कथा का वर्णन किया गया है। काव्य की दृष्टि से सामान्य होते हुए भी कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी रचनाओं में इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। कृष्ण-जन्म के बारे में इन्होंने लिखा है—"प्रकृति सहित मै वेल्वडु प्रणव मनग" अर्थात् प्रकृतियुक्त निकलनेवाले प्रणव के समान.... कृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था। ठीक उसी समय गोकुल में यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया था। इसका वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है—"प्रकृति पुरुषुडु ओक मारे वच्चि रनग"-अर्थात् मानो प्रकृति और पुरुष का आगमन एक साथ हुआ हो। वेन्कट कृष्णमूर्ति के अनुसार कृष्ण पुरुष है और माया अथवा यशोदा की पुत्री प्रकृति है। रास-क्रीड़ा का वर्णन करने के पहले कवि ने शरद् ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है।

सा० प्र०

मादय्य गारि मल्लन्न

मादय्य गारि मल्लन्न श्रीकृष्णदेवराय के अष्ट दिग्गज कवियों में से एक थे। इनके पिता का नाम मादय्य था। ये अघोर शिवाचार्य के शिष्य थे। (अघोर शिवाचार्य कडप जिले में रहते थे। कृष्णदेव राय के अष्ट दिग्गज कवियों में तीन और भी इनके शिष्य थे।) इनके पिता के नाम के बाद 'अमात्य' शब्द है, इसलिए श्री चागन्टि शेषय्या इन्हें नियोगी ब्राह्मण मानते हैं। सम्भवतः ये स्मार्त ब्राह्मण थे। स्मार्त लोग मात्र शिव-भक्त नहीं होते। ये हरि और हर दोनों के उपासक होते हैं।

मल्लन सोलहवीं शती के कवि थे। इनकी एक-रचना 'राजशेखर-चरित्र' है। अपनी यह कृति इन्होंने नादेन्ड्ल अप्पन्न को समर्पित की है। नादेन्ड्ल अप्पन्न वैष्णव थे। इसलिए मादय्य गारि मल्लन्न ने कथाभाग में वैष्णव-धर्म की महिमा का गान किया है।

'राजशेखर-चरित्र' में कान्तिमती का वृत्तान्त बताते हुए सुआ दो ब्राह्मणों की कथा सुनाता है। वह इस प्रकार है—"अमरपुरम् में दो ब्राह्मण थे। एक धनी था और दूसरा निर्धन। अपनी दरिद्रता से मुक्ति पाने के लिए गरीब ब्राह्मण विष्णु-मूर्ति की तपस्या करने के लिए यमुना नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह विष्णु भगवान् की इन शब्दों में स्तुति करता है—

विष्णु करुणा विशेषम्बु विश्वमुनकुन्
गारणम् गाक मरि येदि कलदु दिक्कु
कान नर लेनि भक्ति नोकम्बु कंठि
मनलन् गोल्चिन मनुपन्डे मदन गुरुडु।

'इस विश्व के लिए विष्णु की करुणा एक प्रधान कारण है। सम्पूर्ण भक्तिभाव से जो हरि की आराधना

करता है, हरि उसका उद्धार करते हैं। जो हरि-सेवा में तत्पर हैं उनको संसार की कोई चिन्ता नहीं सताती।

अपने आराध्य नारायण का वर्णन ये इस प्रकार करते हैं—

कोलुतुन् देवादि देवुन् गुवलय
सुषमा गुच्छ सच्छाय कायुन्
गलशाम्भोराशि कन्याकच भर
विचरत्क्रम हस्तार विन्दुन्
बलि विध्वंसिन् दपस्वि प्रकर
सुखकर प्रौढ़ कारुण्य लोलुन्
जलशाइन्, जक्रपाणिन्,
जगदवनपरुन्, जंभ संभेदि वंद्युन्।

'मैं उस देव-देव की पूजा करूँगा जिसके शरीर की छाया मनोज्ञ कुवलय गुच्छ के समान है अर्थात् जो घनश्याम है, जिसका एक हाथ सागरपुत्रिका की केशराशि में उलझ गया है। नारायण बलिविध्वंसी हैं। घोर तपस्या करनेवाले ऋषि-मुनियों को अमित सुख देनेवाले करुणाकर हैं। मैं जलशायी, चक्रपाणि, सब लोगों के स्तुतिपात्र, जम्भनामक राक्षस को मारनेवाले सर्वलोकपूज्य नारायण के लिए तपस्या करूँगा।'

सा० प्र०

मुडुम्ब नृसिंहाचार्य

मुडुम्ब नृसिंहाचार्य का जन्म सन् १८४१ ई० में आन्ध्र प्रदेश के सुप्रसिद्ध वैष्णव-क्षेत्र श्री कूर्मम् के निकट वंशधारा नदी के तट पर स्थित अच्युतपुरी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम वीर राघवाचार्य था। अच्युतपुरी में जन्म लेनेवाले श्री नृसिंहाचार्य अच्युत के अनन्य भक्त थे। लोग आदर के साथ इन्हें भगवत् कवि कहकर पुकारते थे। इन्होंने अपने जीवनकाल में विजयनगरम् की गद्दी पर बैठनेवाले चार शासकों को देखा था। ये उन्हींके दरबार में रहे।

तेलुगु के साथ ही संस्कृत के विद्वान् श्री मुडुम्ब नृसिंहाचार्य परम वैष्णव थे। इनको काव्य-रचना की प्रेरणा सिंहाद्रिनाथ से मिली थी। अतः इन्होंने अपनी कृतियाँ उन्हींको समर्पित कीं। ३० वर्ष की आयु में इन्हें स्वप्न में वेदव्यास और भगवान् के दर्शन हुए थे। उसी समय से इनमें काव्य-रचना के बीज प्रस्फुटित हुए। इन्होंने वेदव्यास और केशवस्वामी के मन्दिर भी बनवाये।

सन् १८६४ ई० में इन्होंने अपनी माता के साथ दक्षिण देश की यात्रा की थी। इस यात्रा के दौरान ये कुछ दिनों के लिए श्रीरंगम् में रहे। वहीं रहकर इन्होंने रंगेश-शतकम् नामक काव्य की रचना की। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—प्रौढ़ा शृङ्गारम्, मुग्धा शृङ्गारम्, कामिनी दृष्टि शृङ्गारम्, अंग शृङ्गारम्, संकीर्ण शृङ्गारम्, श्रीकृष्ण चाटुवुलु सत्य-शतकम् आदि। इनकी मृत्यु सन् १९२७ ई० में हुई। इनके निम्नलिखित छन्द में वैष्णवों की शरणागति-भावना का परिचय मिलता है—

नीकट्टि वदलिन नेरिक कन्नुल नद्दि
युत्तरीयम्बुगा नुन्चु कोन्दु
नी चुट्टि विडिचिन निरुपम मालयमुल्
मुद मन्दि कोण्पुलो मुडिचि कोन्दु
नी महत्तर पाद नीरेज तीर्थम्बु
चे द्रावि शिरमुन जिलिकि कोन्दु
नी नोटिक प्रम्बु नेरि वीड मिच्चुनो
नमृतम्बुका गेल नन्दु कोन्दु
नीदु पादुक लौदलन् बादु कोल्पि
चेनटि जन्मम्बु सफलत जेसिकोन्दु
नय्य दास्य मोसगंगदय्य नेडु
वीतभवतृष्ण! रंगेश वेषकृष्ण!

'हे वीतभवतृष्ण, रंगेश वेषकृष्ण, आज मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार कीजिये। एक दास बनकर मैं आपके पहने हुए वस्त्रों को अपने नेत्रों से लगाकर उत्तरीय के रूप में प्रयुक्त करूँगा। आपको पहनायी मालाओं को जब पुजारी उतारेंगे उन्हें आनन्द और

प्रेम के साथ अपने जूड़े में रख लूंगा। जिस जल से आपके पैर धोये जाते हैं उसको आदर के साथ पान कर अपने सिर पर छिड़क लूँगा। अगर आप चबाकर ताम्बूल देंगे तो उसे अमृत जानकर ले लूँगा। मैं आपकी पाद-सेवा कर अपने इस जन्म को सफल बनाऊँगा।'

सा० प्र०

मुद्दु पलनि

उड़िया के गजपति राजाओं के शासन-काल में महाप्रभु चैतन्यदेव के सम्प्रदाय का प्रवेश आन्ध्र प्रदेश में हुआ और राधा-वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रभाव के फलस्वरूप रसिककिशोर के रूप में कृष्ण को अपनाया गया। वे राधापति होकर रसराज श्रृंगार की प्रतिमूर्ति बने। गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण को व्रजेन्द्रकुमार माना है। श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें एक आह्लादिनी शक्ति राधा है। इसमें कृष्ण की किशोरावस्था की ही प्रधानता है। अतः लीलाओं का आधार कान्ताभाव या माधुर्यभाव बन गया है। इस माधुर्यभाव का प्रभाव तेलुगु-साहित्य के मध्य-युग के कवियों पर अधिक पड़ा है।

तेलुगु में श्रृंगारप्रधान काव्य की तीन धाराएँ आरम्भ से प्रचलित थीं। इनमें महाभारत के श्रृंगार-वर्णन तथा पोतन्न कृत महाभागवत के संयोग-वियोग-प्रधान प्रसंगों की श्रृङ्गार-सामग्री पर शास्त्रीयता की छाप स्पष्ट है। अलंकरण के कारण ये काव्य प्रथम धारा की परम्परा में रखे जाते हैं। अन्नमय्य, क्षेत्रय्य आदि कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा राधाकृष्ण की लीलाओं के व्याज से श्रृंगार-वर्णन दूसरी धारा का सीधा अनुकरण है। इन कवियों ने राधाकृष्ण को नायिका-नायक बनाकर उनके विभिन्न श्रृंगारिक व्यापारों के वर्णन में अपनी भक्ति-भावना का आरोप किया है। श्रीनाथ ने हाल की गाथा-सप्तशती का अनुवाद तेलुगु में किया। इसमें गार्हस्थिक परिवेश में यौन-सम्बन्धों के वर्णन हैं। कामशास्त्रीय ग्रन्थों की प्रेरणा इन दोनों के मूल में रही। इनके द्वारा वर्णित संयोग श्रृंगार के वर्णनों से यह सहज ही जाना जा सकता है। कूचिमंचि एर्रनकृत 'कोक्कोक', श्रीनाथकृत 'वीथि-नाटक' (१६वीं शती), अय्यलराजु० नारायणकृत 'हंसविंशती' (१६वीं शती), शेष मुं० वेंकटपति-कृत 'शशांक-विजय' (१७वीं शती), सिंगरय्यकृत 'बिल्हणीय' (मु) (१८वीं शती), कवि चौडप्पकृत 'शतक' (१६वीं शती), रायवेटि कविकृत 'गणिका गुण प्रवर्तन तारावली' (१८वीं शती) आदि ग्रन्थ इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। अठारहवीं शताब्दी में अपने अनुकूल वातावरण को प्राप्त कर श्रृंगारिक काव्यों की परम्परा अधिक पुष्ट और समृद्ध बन गयी। इनमें ऐहिकता का स्वर अधिक मुखर था। इन कवियों ने नायक-नायिकाओं की रति-क्रीड़ा का विशद वर्णन ही नहीं किया, वरन् नायिकाओं के भेदों की उद्‌भावना में इनसे प्रेरणा ली। पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी नामक नायिकाओं की उद्‌भावना के मूल में कामशास्त्रीय ग्रन्थों की यही धारण रही होगी।

मुद्दु पलनि तेलुगु में एकमात्र श्रृंगारप्रधान प्रबन्ध-काव्य की प्रणेता थी। कहा जाता है कि यह तंजाऊर के राजा प्रतापसिंह (सन् १७४६–१७६५ ई०) की रक्षिता थी। मुद्दु (प्रिय) उसका उपनाम है। 'पलनि' दिव्य तीर्थस्थल है, जहाँ सुब्रह्मण्येश्वर स्वामी विलसित हैं। तीर्थों के नाम पर व्यक्तियों का नामकरण करने की प्रथा दक्षिण भारत में अब भी है।

कृतियाँ

मुद्दु पलनि की दो कृतियाँ है—(१) सप्तपदी, (२) राधिकासान्त्वन (मु)।

सप्तपदी—तमिल में आलवार वैष्णव-भक्त कवियों की जो रचनाएँ मिलती हैं, उन्हींका संग्रह आज द्राविड वेद (मु), द्राविड प्रबन्ध (मु) नालायिर प्रबन्ध (मु), पंचमागम (मु) आदि नामों से व्यवहृत

होता है। ये आलवार संख्या में बारह थे। इनमें एक स्त्री भी थी। इन सबकी रचनाएँ २४ भागों में ४,००० पदों (पाशुरों) के रूप में संकलित हैं। आंडाल (गोदा देवी) ने धनुर्मास व्रतोत्सवपरक 'तिरुप्पावै पाशुरों' को लिखा। इन पाशुरों का अनुवाद मुद्दु पलनि ने तेलुगु में किया, जो 'सप्तपदी' नाम से प्रसिद्ध है। कुछ पण्डितों की धारणा है कि इन पाशुरों का अनुवाद मुद्दुपलनि ने सुरपुर रियासत के विद्वान् श्रीनिवास देशिक ने किया हैं। किन्तु लोकमत के अनुसार 'सप्तपदी' मुद्दु पलनि की कृति है, जो अत्यन्त सरल, सहज शैली में प्रस्तुत की गयी है।

राधिकासान्त्वन (मु)

यह मुद्दु पलनि की मौलिक कृति है। यह चार आश्वासों का श्रृंगार-प्रधान प्रबन्ध-काव्य है। इसमें यशोदा की भानजी तथा श्रीकृष्ण की पत्नी इला देवी का चरित्र-वर्णन है। इसलिए इस काव्य का दूसरा नाम 'इलादेवीय (मु)' भी है। यह श्रृङ्गार-रसप्रधान काव्य है। कवियित्री ने इस काव्य की पीठिका में परम्परा के अनुसार इष्टदेव-स्तुति, सुकवि-प्रशंसा, कुकवि-निन्दा एवं रचना करने की प्रेरणा आदि का उल्लेख किया है। एक दिन स्वप्न में बालकृष्ण ने आकर आदेश दिया कि मेरे नाम पर 'राधिका-सान्त्वन (मु)' लिखकर मुझे समर्पित करो। आश्चर्यचकित हो उन्होंने अपने स्वप्न का विवरण अपने गुरुदेव वीरराघव देशिकाचार्य को सुनाया। गुरु ने कहा कि "विष्णु-अंश में सम्भूत श्रीकृष्ण का दर्शन होना सचमुच परम सौभाग्य की बात है। देवदेव श्रीकृष्ण के आदेश का पालन करो।" इस ग्रन्थ में कवियित्री ने अपने प्रिय राजा प्रतापसिंह के व्यक्तित्व की गरिमा का वर्णन किया है। तदनन्तर परिवार का संक्षेप में परिचय दिया गया है। काव्य का प्रणयन दृश्य-काव्य की संवादात्मक शैली में किया गया है।

राजा जनक एक दिन योगीन्द्र शुकदेव से पूछते हैं कि मैं हरि-कथा का श्रवण करना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण की बुआ बनकर राधिका जिस इलादेवी का पालन-पोषण कर बड़ा करती हैं, वही राधिका इला पर क्यों कुपित होती हैं? दक्षिण नायक श्रीकृष्ण उसकी सान्त्वना कैसे करते हैं, इसका विस्तृत वर्णन कीजिये। योगीन्द्र शुकदेव कथा का शुभ आरम्भ करते हैं। नन्द से राधा छोटी है, किन्तु कृष्ण से बड़ी है। राधा की देखरेख में इला बड़ी होती है, उसका विवाह कृष्ण से होता है। इला मुग्धा है। राधिका इला को कृष्ण को सौंप देती है, पर अपने मन में खिन्न रहती है। इला का पिता आकर अपनी पुत्री को दामाद कृष्ण के साथ अपने घर ले जाता है। राधिका उद्विग्न होकर कहती है—

सोम्मुलिय्य वच्चु सोम्मन्द मिय वच्चु
निय्यरानि प्राण मिय्य वच्चु
तनदु विभुनि वेरु तरुणि चेतिकि निच्चि
ताळ वशमें येट्टि दानि कैन।

'गहने दिये जाते हैं, सौन्दर्य-धन दिया जाता है, न दिया जानेवाला प्राण भी दिया जाता है, पर अपने प्रिय को अन्य स्त्री को सौंपकर किसी भी स्त्री को सहना कठिन ही है।'

दूसरे आश्वास में इला और कृष्ण के चले जाने के बाद राधिका विरह-व्यथा में विह्वल होती है। अतीत की मधुर अनुभूतियों का स्मरण करती है। विरह में सन्तप्त हो श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की गरिमा और महिमा का वर्णन करती है। वह तोते से सन्देश भिजवाना चाहती है। वह कहती है—

कनु गोन हरि मोमु गनुन् गोनने कोरु
वीनुलु हरि माट विनन्गन् कोरु।
नासिळ हरि मेन्नि वासनल् गोनन् गोरु
नधरंबु हरि मोवि यानन् गोरुन्।
जेक्किलि हरि गोटि नोक्कु टेक्कुले कोरु
गुब्वलु हरि रोम्मुन् गृम्मुन् गोरु।
करमुलु हरि नेन्तो कौगलिस्पन् गन् गोरु
मेनु श्रीहरि प्रक्क मोलन्गन् गोरु।

तेटगीति

निश्चि योक्कोक्कटे कोरु निदिगो नादु
मनसु गोरेडि कोरिकल मट्टु लेवु
मर्म मेन्दुकु मदन साम्राज्य मिच्चि
नेगडु हरिये याथुर्दाय मगुट शुकम ।

'ये आँखें देखना चाहती हैं हरि के मुख को ही, ये कान सुनना चाहते हैं हरि की बातों को ही, यह नाक सूँघना चाहती है हरि के शरीर को ही, यह अधर चूमना चाहता है हरि के अधर को ही, यह कपोल चाहता है हरि के नख-चिह्नों को ही, ये स्तन आराम करना चाहते हैं हरि के उर पर ही, ये कर लगाना चाहते हैं हरि के गले को ही, यह शरीर बैठना चाहता है हरि के पार्श्व में ही, ये सब एक-एक को ही चाहते हैं मन की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है, रहस्य क्या ? छिपाने की क्या जरूरत, मदन-साम्राज्य को देनेवाले हरि युग-युग तक जीते रहें। रे सुग्गा !'

और कहती है —

वीड्डु बन्धुवुल मगनिन्
वीड्डु धन धान्य गेह विभवम् लेल्लन
वीड्डु प्राणमु लोडलन्
वीडन्गान् जाल हरिमे वेयन नेला ।

(२.६९)

'मैं अपने बन्धुओं को तो छोड़ सकूँगी, मैं अपने पति को भी छोड़ सकूँगी, मैं धन-धान्य, गृह-वैभव को छोड़ सकूँगी। मैं अपने प्राण-पखेरू को छोड़ सकूँगी, पर मैं हरि को छोड़ नहीं सकूँगी।'

इस काव्य में विरह-दशाओं का चित्रण भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। स्त्री की सहज अनुभूतियों की अभिव्यंजना भी पर्याप्त समृद्ध है, क्योंकि वह स्वयं नारी है। यही नहीं, वेश्या भी है। सौन्दर्य के प्रति आसक्ति और प्रेमानुभूति स्त्रीजन की ऐसी सहज प्रवृत्ति है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। नख-शिख-सौन्दर्य, मिलन की आकांक्षा, काम-केलि और पूर्वघटित प्रेम-लीलाओं की वियोग-काल में स्मृति इस काव्य के मुख्य विषय हैं। राधिका सुग्गे से कहती है–

हरि पेरुरमु जूचिनंत जनगुव्वलु
सिग्गुमालुचुरैक चिट्टुल नुब्बु
बसिगापुरायल पलकु विन्नंतने
वीनुल कमृंतनु विंदु लगुनु
मी नांकुतंड्रि नेम्मेनु सोकिनयंत
बुलकलु तनुवेल्ल मोलकलेन्तु
गमलायताक्षुनि गदिसि पै कोन्नंत
दर्मिनिंडु तंडोपतंड मगुनु

तेटगीति

नंद नंदनु डब्बेरा नवविधान
मुलुनु दक्किन चंदान जेलगुजिन्त
मा मनोहरु बासि ने डडल व्रासे
मौर तलव्रात तलकोट्रूलमरि घात ॥

'हरि का विशाल वक्ष देखते ही चोली को फाड़कर लज्जा छोड़ ये स्तन उभर आते हैं। गोकुल गोप नायक की बात सुनते ही कानों को अमृत का आनन्द ही होता है। मन्मथ-जनक के सुन्दर शरीर के स्पर्शमात्र से तनभर में पुलक से रोंगटे खड़े होते हैं। कमल-नयन के पास जा उठाने पर कुतूहल कूट-कूट भर जाता है। अगर नन्द-नन्दन मिलता तो समझ कि नव निधियाँ ही मिलीं। उस मनोहर को छोड़ वियोग-व्यथा सहने को लिखी है विधाता ने ललाट पर रेखा।'

(२.६६)

तृतीय आश्वास में भी सुग्गे ने राधिका की विरह-दशा का वर्णन कृष्ण से किया है। चतुर्थ आश्वास में इला को छोड़कर कृष्ण राधिका के पास आता है। राधिका पहले मान करती है। तदनन्तर काम-क्रीड़ा का भोग पाती है। वैसे इस काव्य में रूप, अभिसार और मिलन का बहुरंगी चित्रण है।

कवियित्री ने राधिका-कृष्ण का उल्लेख अवश्य किया है, पर उनकी क्रियाएँ सामान्य ऐन्द्रिक आसक्ति से युक्त हैं। उसने केवल मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही नहीं की है, वरन् उन्हें एक-दूसरे के प्रति वासना-निमग्न भी दिखाया है। स्वकीया एवं परकीया नायिकाओं की शृङ्गार-चेष्टाओं का सहज वर्णन इस काव्य में है। एक और संयोग-शृंगार के मादक वर्णन हैं तो दूसरी ओर वियोग की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण है। इसमें हृदय की तरलता और गहराई का सम्मिश्रण, दोनों अवस्थाएँ समान रूप से विद्यमान हैं। कवियित्री के प्रेम-वर्णन में एक ओर मनोवैज्ञानिकता का पुट है तो दूसरी ओर सामाजिक स्वस्थता का अंकन भी है।

फलश्रुति में कवियित्री सूचित करती है—

संपदलु गलगु राधिका सांत्वनंबु
चदिविननु विन्न गैकोन्न जदुवुचुन्नू
वारि कव्वारिगा नलवार वारि-
जाक्षु डोसगुनु गोरिकलधिक दयनु

'जो 'राधिकासान्त्वन (मु)' का अध्ययन करेगा, सुनेगा, कमलनयन दयापूर्वक उसकी कामनाओं की पूर्ति करेगा, उसे सम्पत्ति प्राप्त होगी ही।'

काव्य के अन्त में दिये गये तीन स्तोत्र संबोधन-शैली में हैं। वे निम्नांकित हैं—

शार्दूलविक्रीडित

श्रीलक्ष्मी मुख पद्म षट्पद तनुश्रीक्षिप्रनीलांबुदा।
लीला मानुष विग्रहा। प्रमदलेलीहान शय्यास्पदा
कालिंदी तट केलि कोविद महाकंसादि दुष्टामदा
काली योरगारल रंजित पदा कौंतेय धैर्यप्रदा।

कंद

सार गदाधार सदा
चार सदा तनु विनूत्न चारुतरोद्य
न्मारजिताकारयुता
धीरनुतादारचरित धिक्कृत दुरिंता।

मत्तकोकिल

नाग पालक ! नाग दालक ! नाग फालक वाहना !
वार्गधीश्वर ! वागधीश्वर ! वागनश्वरगाहना !
योगचारण ! योगधारण ! योगकारण साहना
भोगशोषण ! भोगिनीषण ! भोगिभूषण मोहना !

वस्तुतः यह शृंगार-रस-प्रधान काव्य है। इस काव्य में गार्हस्थिक परिवेश में यौन-सम्बन्धों के ही वर्णन हैं। प्रथम आश्वास संयोगपरक है, जिसमें ऐन्द्रिय आसक्ति एवं मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। द्वितीय आश्वास 'वियोगपरक' है, जिसमें प्रेम की पुष्टि होती है। तृतीय आश्वास 'योगपरक' है जिसमें अद्वैत की सिद्धि सूचित है। इस प्रकार इसमें संयोग, वियोग तथा योग का सुन्दर समन्वय है। सामन्तीय प्रभाव के कारण शृंगार की यह धारा साधारण धरातल से हटती गयी है। परिणाम यह हुआ कि इसमें कृत्रिमता के साथ आभिजात्य का प्रवेश हो गया। अतः गार्हस्थिक जीवन की सरलता के स्थान पर इसमें नगर-जीवन की कृत्रिमता आ गयी है। सहजता और स्वाभाविकता का स्थान अलंकरण तथा अतिशयोक्ति ने ले लिया है। इसके बावजूद विभिन्न शृंगारिक व्यापारों तथा चेष्टाओं के वर्णन में भक्ति-भावना का पुट झलकता है।

रा० शे० रा०

मोचर्ल नन्नय्या

आदिकवि नन्नय्या के नामधारी कवि मोचर्ल नन्नय्या 'काशीखण्डम्' (द्विपद) काव्य और 'साम्बोपाख्यानम्' काव्य के रचयिता हैं। तेलुगु-साहित्य में ग्यारहवीं शताब्दी के बाद नन्नय नामधारी एक दूसरे कवि का सत्रहवीं शताब्दी में आविर्भाव हुआ था, जो मोचर्ल नन्नय्या नाम से जाने जाते हैं।

ये आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले भारद्वाजगोत्रीय नियोगी ब्राह्मण मोचर्ल माधवामात्य और सिंगम्मा के पुत्र थे। 'कलापूर्णोदयम्' के पिंगलि सूरन मोचर्ल नन्नय्या के मातामह थे। 'काशीखण्डम्' नामक द्विपद काव्य के कृतिपति एक राजा थे। इस राजा को कृतिभर्ता बनाने से नन्नय्या को कुछ लाभ नहीं मिला था। इसलिए इन्होंने अपने दूसरे काव्य 'साम्बोपाख्यानम्' को मोचर्ल ग्राम के बालगोपाल स्वामी के नाम अर्पित किया था। 'साम्बोपाख्यानम्' पाँच सर्गों का काव्य है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन अब तक नहीं हुआ है। 'काशीखण्डम्' काव्य अप्राप्य है। मोचर्ल सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध के कवि हैं। मोचर्ल नेल्लूर जिले का एक गाँव है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि मोचर्ल नन्नय्या नेल्लूर जिले के निवासी थे।

नन्नय्या कृत 'साम्बोपाख्यानम्' कृष्ण-सम्बन्धी काव्य है। कृष्ण के पुत्र साम्ब का विवाह दुर्योधन की पुत्री लक्षणा से सम्पन्न होता है। 'साम्बोपाख्यानम्' में इन दोनों के विवाह की कहानी है। काव्य के आरम्भ में कवि नन्नय्या ने श्रीकृष्ण की स्तुति इन शब्दों में की है—

श्रीमद्गोपनितम्बिनी हृदय राजीवान्तरोल्लास ली
लामोद भ्रमरायमाण महित श्लाघ्य प्रभावुन्डु सु
क्षेमानन्द मेलपं दासुलन् गटाक्षिन्चुन् गृपालोलु डै
श्री मोचलं पुराधिवासुन् डधिक श्रीलुल्लसिल्लन् दयन्।

'श्रीमद्गोपनितम्बिनी के हृदय-कमल को विकसित कर वहीं भ्रमण करनेवाले महामहिम श्लाघनीय प्रभु जो अपने दासों की भलाई चाहते हैं, जो परम कृपालु हैं, जो मोचर्ल ग्राम के आराध्यदेव हैं, जो बालगोपाल हैं, हम लोगों के मन को उल्लसित करें।'

सा० प्र०

रंगाजम्मा

मन्नारुदास विलासमु, उषा-परिणयम्, भारत, भागवतादि की कवियित्री, रामायण-संग्रह आदि काव्यों की रचना करनेवाली पसुपुलेटि रंगाजम्मा विजयराघव नायक के दरबार की शोभा थी। 'श्रृंगार-रस तरंगित पद कवित्व महनीय मति स्फूर्ति' रंगाजम्मा पर विजयराघव अनुरक्त थे। इस अनुराग के कारण अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में फैल गये थे। कुछ साहित्यकारों के अनुसार रंगाजम्मा विजयराघव की रखैल अथवा भोगपत्नी थी। कतिपय अन्य आलोचकों का कथन है कि रंगाजम्मा अपने कृतिपति की धर्मपत्नी थी। व्यक्तिगत जीवन के गुण-दोषों में न पड़कर उसके ज्ञान के बारे में चर्चा करने पर प्रतीत होगा कि रंगाजम्मा एक नहीं, दो नहीं, आठ भाषाओं को जाननेवाली विदुषी मणि थी। वह सन् १६३३ और १६७३ ई० के बीच विजयराघव नायक के दरबार में थी। विजयराघव के हाथों इस कवियित्री का कनकाभिषेक भी हुआ था।

पसुपुलेटि वेन्काटाद्रि की सुपुत्री रंगाजम्मा के गुरु कौन थे, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। पसुपुलेटि नामवाली आन्ध्र में कई महिलाएँ हुई हैं। इनमें से कुछ ने वेश्याओं का व्यवसाय अपनाया होगा। इस एक बात को लेकर यह विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है कि रंगाजम्मा भी वेश्या थी। रंगाजम्मा को वेश्या मानने के लिए शिष्टा लक्ष्मीकान्त शास्त्रि 'अष्टावधानि' एकदम तैयार नहीं हैं। वे अपने 'तंजाऊरु तेलुगु कवुलु' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"अपने पेशे से वह वेश्या हो सकती है, पर वह विद्याविवेकसम्पन्न स्त्री थी। राजनीति-विशारद थी। ऐसी स्त्री वेश्या कभी नहीं बन सकती।" डॉ० आरुद्र और चागन्टि शेषय्या दोनों रंगाजम्मा को विजयराघव नायक की भोगपत्नी मानते हैं।

रंगाजम्मा असाधारण प्रतिभासम्पन्न स्त्री थी। 'मन्नारुदास विलासमु' नामक काव्य में कवियित्री ने अपना जो परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि

वह कई भाषाओं की जानकार विदुषी कवियित्री के साथ ही राजनीतिक कार्यों में भी दक्ष थी।

रंगाजम्मा की विद्वत्ता से परिचित विजयराघव नायक उसको एक काव्य लिखने के लिए आदेश देते हैं। उन्होंने भरे दरबार में सब लोगों के सामने कहा--"शृंगार-रसप्रधान तथा उभय भाषाओं (संस्कृत और तेलुगु) पर अपने अधिकार को जतानेवाले काव्य को रचो। उसको संगीतमय बनाओ। इस काव्य में मेरी कथा हो। इस काव्य को अपनी सुधामय भाषा से एक प्रौढ़ प्रबन्ध बनाओ।" इन वचनों को सुनकर रंगाजम्मा बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने-आपको धन्य माना। उसने उत्तर दिया—"तुम मेरे पति हो (मदभर्तवु), इस धरती के पति हो, इतने लोगों के सामने अर्थात् विदुषीमणियों के सामने जो मेरी सपत्नी सदृश हैं, मुझे कृति लिखने का आदेश दे रहे हो।" इतना कहकर वह 'मन्नारुदास विलासमु' लिखने लगी। 'मन्नारुदास विलासमु' के विजयराघव नायक द्वापर-युग के कृष्ण थे और कान्तिमति द्वापर-युग के चन्द्र की पुत्री।

'मन्नारुदास विलासमु' के अतिरिक्त रंगाजम्मा ने 'उषा-परिणयम्' नामक एक और प्रबन्ध-काव्य लिखा था। 'उषा-परिणयम्' कथा को 'हरिवंशम्' से ग्रहण कर स्वतन्त्र काव्य लिखनेवालों में श्री निडदवोलु वेन्कटरावु के अनुसार रंगाजम्मा अग्रगण्य है। रंगाजम्मा का यह प्रबन्ध तत्कालीन वेश-भूषा, आचार-विचार, रीति-रिवाज, खान-पान आदि के लिए दर्पण माना जाता है।

सूर्य की पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण से द्वापर-युग में सम्पन्न होता है। इस विवाह को देखने के लिए चन्द्र आते हैं। चन्द्र कृष्ण से इस प्रकार कहते हैं—

द्वापर युगमुनन् जन्द्रुडु गोपालुनि
चेन्तन् जेरि कोर्केलु मीरन्
श्रीपति ! रवि, शशिलोचन !
तापस हृदयाब्ज मित्र दानव जैत्रा।
२/३६

'द्वापर-युग में चन्द्र कृष्ण के पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—'हे श्रीपति, रवि-शशिलोचनवाले, ऋषि-मुनियों के मित्र, दानवों को हरानेवाले—

तामरसाप्त पुत्रि थइ धारुणि मीरु कलिंद कन्यकन्
स्वामि विवाह मौट विनि चाल मुदं बोनकूडे नेम्मदि
ब्रेम मदीय पुत्रिकनु बेन्ड्लइ इप्पुडु वेड्ळ मीरंगा
मा मनवालकिम्पुचु समम्बुगन् जूडुमु रेन्डु कन्नुलुन्

'स्वामी, मैंने सूर्य की पुत्री कालिन्दी के साथ आपके विवाह के बारे में सुना है। मेरे मन को अत्यन्त आनन्द मिला। अब आप मेरी पुत्री के साथ भी विवाह कर लीजिये। यह मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है। सूर्य और चन्द्र दोनों आपकी दो आँखें हैं। दोनों को एक समान देखिये।'

कनकाभिषेक का गौरव पाने के लिए रंगाजम्मा के 'मन्नारुदास विलासम्' के प्रधान पात्रों के नामों को बदलकर सौन्दरी नामक एक कवियित्री ने काव्य-रचना का प्रयत्न किया था। उक्त घटना 'मन्नारुदास विलासमु' की लोकप्रियता प्रमाणित करती है। उपर्युक्त ग्रन्थ ने रंगाजम्मा को अक्षय कीर्ति प्रदान की है।

सा० प्र०

रघुनाथ नायकुडु

विजयनगर-साम्राज्य के विजयकेतु श्रीकृष्ण देवरायलु आन्ध्र-भोज माने जाते हैं। तंजाऊर के रघुनाथ नायकुडु को कुछ आलोचक श्रीकृष्ण देवरायलु के अपरावतार मानते हैं। दोनों में कई विषयों में साम्य है। दोनों वीर थे। दोनों कवि थे। दोनों कृतिकर्ता और भर्ता थे। रघुनाथ नायकुडु और उनके पुत्र विजयराघव नायकुडु के कारण साहित्य-सुन्दरी अनेकानेक आभूषणों से सजायी गयी थी। 'नेपाल (सिंघल) भूपाल स्थापनाचार्य', 'कर्णाटक राज पूजनीय धौरंधर्य' आदि विरुदावलियों से विभूषित श्री रघुनाथ नायकुडु का जन्म श्री वृद्धगिरीशम्‌जी के

अनुसार सन् १५७५ ई० में हुआ था। सन् १६१४ ई० से लेकर सन् १६३३ ई० तक ये तंजाऊर की राजगद्दी पर विराजमान थे।

रघुनाथ नायकुडु चेव्वप्प नायकुडु के पौत्र तथा अच्युतप्प नायकुडु के पुत्र थे। मूर्तिमाम्बा इनकी माता थीं। बचपन से ही इन्होंने 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' नामक कहावत को प्रमाणित किया था। वर्णमाला सीखकर ये धीरे-धीरे सभी साहित्य-रत्नों के लिए एक निकषोपल बन गये थे। तीन पीढ़ियों के मन्त्रि गोविन्द दीक्षितुलु से प्रशिक्षण प्राप्त कर ये नीतिकोविद हो गये थे।

रघुनाथ नायकुडु सच्चे अर्थ में साहित्य-समरांगण-चक्रवर्ती थे। इनके समरोत्साह के सम्बन्ध में डॉ० आरुद्र लिखते हैं कि "दूल्हा जैसे बरातियों को साथ लेकर उछलते-कूदते निकलता है, ठीक उसी प्रकार रघुनाथ नायकुडु युद्ध-भूमि के लिए प्रयाण करते थे।" रघुनाथ नायकुडु दादा के दुलारे और पिता के लाड़ले थे। संगीत-साहित्य-कला-पारंगत रघुनाथ नायकुडु अनेक युद्धों में भाग लेनेवाले विख्यात योद्धा थे। पराजय शब्द इनके कोश में नहीं था। पोनगोन्डा के राजा, जिसके रघुनाथुडु सामन्त थे, इम्मडि वेन्कटपति रायलु गोलकुंडा की सेना के साथ टक्कर लेने के लिए तंजाऊर की सेना को राजा के साथ भेजना चाहते थे। रघुनाथुडु अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। वे मात्र राजकुमार थे। पर राज्य के सब कर्मचारी इनकी शक्ति और युक्ति से परिचित थे। इसलिए ज्येष्ठ पुत्र के होते हुए भी अच्युतप्प ने रघुनाथ नायकुडु को युवराज बना, सेना देकर गोलकुंडा भेजा था। इन्होंने शत्रुओं को हराया। इम्मडि वेंकटपति रायलु बहुत प्रसन्न हुए। वे मुँहमाँगी वस्तु देने के लिए तैयार हो गये। रघुनाथ नायकुडु ने चेन्जी दुर्ग के अधिपति कृष्णप्पा को स्वतन्त्र करने के लिए निवेदन किया। एक बार कृष्णप्पा की पत्नियों ने रघुनाथुडु से पति-भिक्षा माँगी थी। उनको अभय देने के कारण ही उक्त इच्छा को रघुनाथुडु ने व्यक्त किया था। इम्मडि वेन्कटपति रायलु रघुनाथुडु के परोपकारी स्वभाव पर मुग्ध हो गये। उन्होंने कृष्णप्पा को तत्काल छोड़ दिया। कृष्णप्पा ने रघुनाथुडु को अपना दामाद बना लिया। अपने जीवन-काल में चार बार रघुनाथुडु को सेहरा बाँधना पड़ा था। बड़ी रानी का नाम कलावती था। दूसरी का नाम इतिहासकार जानते नहीं हैं। तीसरी पत्नी का नाम वेन्कटम्मा था। कृष्णप्पा की पुत्री लक्ष्मम्मा इनकी सबसे छोटी रानी थी। इन्होंने सिंघल के राजा की भी सहायता की थी।

रघुनाथ नायकुडु कृतिकर्ता के साथ-साथ कृतिभर्ता भी थे। इनके दरबार में कई कवयित्रियाँ और कवि थे। कहा जाता है कि रघुनाथुडु ने कुल ग्यारह काव्यों की रचना की थी। उनके नाम इस प्रकार हैं—संस्कृत-काव्य—भारत-कथा संग्रहम्, रामायण-कथा सारम् और संगीत-सुधा। तेलुगु-काव्य—पारिजातापहरणम्, रामायणम् और वाल्मीकि-चरित्र। यक्षगान (लोकगीत, जिनका नृत्याभिनय होता है), अच्युताभ्युदयमु (रघुनाथ नायकुडु ने अपने पिता की जीवनी लिखी है। यह वही काव्य है), गजेन्द्र-मोक्षम् और नल-चरित्र। 'जानकी-परिणयम्' और 'रुक्मिणी-कृष्ण-विवाहम्' भी यक्षगान ही माने जाते हैं।

रघुनाथ नायकुडु की रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ये वैष्णव थे। इनकी रचनाएँ राम और कृष्ण-सम्बन्धी हैं।

वाल्मीकि-चरित्र का निम्नलिखित पद्य कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी है। देखिये—

श्रीहरि नाम कीर्तन मशेष भव प्रभवाति मोह सं
दोह विकर्तनम्बनि श्रुतुल् मोर वेट्टगन् विन्चु वेन्डि सं
देहमु पोक मूदुल गतिन् बेडन् बातुरु कर्म वार्धूलन्
दोहरि साहरिन् मुनिगि योल्लरु दीनि प्रचिन्त येमनन्।

'वेदों का कहना है कि श्री हरि-नाम-संकीर्तन करनेवाले लोगों के पाप यों ही मिट जायेंगे। इस

संसार के पाप-समूह के लिए हरि-नाम सूर्य के समान है। फिर भी कुछ ऐसे मूर्ख हैं जो इस बात को भूलकर सदैव इस संसार के कर्मों में डूबे रहते हैं। सचाई को जानने की चिन्ता उन्हें नहीं सताती है।'

सा० प्र०

रापाक लक्ष्मीपति

अपरोक्षानुभूति, आचार्य विजयं, श्रीमदुपाख्यानम्, नीला-विवाहम्, श्रीकृष्ण विलासं, भद्रायुराभ्युदयं आदि काव्यों के रचयिता रापाक लक्ष्मीपति तेलंगाणा के रहनेवाले थे। निजामाबाद जिले के अन्तर्गत कामारेड्डि तालुके में दोमकोण्डा नामक एक राज्य था। इसके अधिपति कामिनेनिवंशज राजन्न चौदरि थे। वे स्वयं कवि नहीं थे, पर कवियों को अपने यहाँ आश्रय देकर उन्हें धनाढ्य करनेवाले प्रभु थे। रापाक लक्ष्मीपति इस दरबार की शोभा बढ़ानेवाले कवि थे। ये सन् १७०३ ई० के आसपास दोमकोण्डा की गद्दी पर विराजमान थे। अतः रापाक लक्ष्मीपति को आलोचक अठारहवीं शताब्दी का कवि मानते हैं।

ये आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले पराशर-गोत्रीय ब्राह्मण लिंगनार्य के पुत्र थे। 'श्रीकृष्ण-विलासम्' नामक काव्य के अन्त में इन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा है—"इदि (यह) श्रीमद्रामचन्द्र सान्द्र करुणा कटाक्ष वीक्षण प्रसाद प्रासोभय भाषा-विशेष कवित्व तत्त्व निर्माण कर्मण चातुर्यधुर्य पराशर-गोत्र रापाक लिंगनार्य पुत्र लक्ष्मीपति प्रणोतम्वैन (प्रणीत) श्रीकृष्णविलासम्वनु महा प्रबन्धम्वु…।" रापाक लक्ष्मीपति रामभद्र के शिष्य थे। श्री चागन्टि शेषय्या लिखते हैं–"रामभद्र गुरु कौन थे, यह किसी-को मालूम नहीं है। श्रेष्ठ काव्य की रचना करने के लिए राजन्न चौदरि ने इन्हें आदेश दिया था।" रापाक लक्ष्मीपति के केवल दो काव्य 'भद्रायुराभ्युदयमु' और 'श्रीकृष्णविलासमु' मिलते हैं। इनके लिए इन्होंने राजा के कथनानुसार रामारेड्डि पेटा के श्री राजेश्वरजी को और श्री रामचन्द्र को कृतिपति (काव्य को स्वीकार करनेवाला) बनाया था। उक्त काव्यों को दोमकोण्ड दरबार के राजाओं ने ही प्रकाशित करवाया था।

इन्होंने 'श्रीकृष्णविलासमु' नामक काव्य को अपने इष्टदेव श्रीराम के नाम पर अर्पित किया था। इस सन्दर्भ में ये लिखते हैं—

काव्रुन श्रीमत्कृष्ण क
था विर्भूताशया मृतास्वाद सुख
प्रावीण्यम्वुनन् दगु म
द्भावमु रामार्पित प्रबन्धमु गोरेन्
श्रीकृष्ण विलसम्वनु
नाकृति श्रीराम विभुनि कर्पिन्चुट मे
ले कृति यैन सकल लो
का कृति राम प्रभुन्डु नरयुचुनुन्डुन्।

'श्रीकृष्ण-कथा लिखने की इच्छा मुझमें आविर्भूत हुई है। इस कथा का स्वाद अमृत के समान रुचिकर होता है। जैसे ही यह भाव मन में पैदा हुआ वैसे ही मन ने कहा, 'काव्य लिखकर राम के नाम कर दो'।'

'श्रीकृष्णविलासमु' नामक इस कृति को मैं रामार्पण कर रहा हूँ। यह एक अच्छा कार्य है। काव्य चाहे जैसा भी हो, राम उसे अवश्य जानते हैं। इसलिए ग्रहण भी करेंगे।'

श्रीकृष्णविलासमु के पाँचवें सर्ग से लिये गये निम्नांकित छन्द में रुक्मिणी-प्रिय कृष्ण का वर्णन करते हुए ये लिखते हैं—

पंपिनन् जूचि धर्म जुन्डु पार्थुन किट्लनु रुक्मिणी प्रियुं
डिपु जनिंचु मुच्चटल नेन्नुचुन् दिन्नं ग न्नासिनाडु चु
ट्टरुपु पथम्वु दल्चि निकट स्थुल मै मन मेल्ल काल मा
पेम्पुन गादे नलगुरिलो पेरुकु वासिकि वन्ने केंक्कुटल्।

'भेजे हुए पत्र को देकर धर्मराज (युधिष्ठिर) ने पार्थ से कहा, प्रिय बातों की चर्चा करते हुए रुक्मिणी-प्रिय कृष्ण ने पत्र लिखा है। उन्होंने लिखा है कि हम उनके निकट के सम्बन्धी हैं। वे चाहते हैं कि हम बढ़ते रहें, सबकी प्रशंसा पाते रहें और सबके प्रिय बनें।'

सा० प्र०

रामय्य आन्ध्रकवि

सम्पूर्ण तेलुगु-साहित्य में रामय्य ही एक ऐसे कवि हैं जिनके नाम के पहले 'आन्ध्रकवि' शब्द लिखा जाता है। रामय्य ने 'विष्णुकाञ्ची माहात्म्यम्' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा है। सम्भवतः ये सीमा-प्रान्त के थे।

कवि-सार्वभौम श्रीनाथ के साले श्री दग्गुपल्लि दुग्गन ने 'शिवकाञ्ची माहात्म्यम्' नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। काञ्ची शैव एवं वैष्णव-भक्तों के लिए पुण्यक्षेत्र है। शिव-क्षेत्र को शिवकाञ्ची कहते हैं और वैष्णव-क्षेत्र को वैष्णवकाञ्ची। 'शिवकाञ्ची माहात्म्यम्' काव्य को देखकर रामय्य ने सोचा, क्यों न मैं 'विष्णुकाञ्ची माहात्म्यम्' लिखूँ ? इसके बाद तुरन्त वे 'विष्णुकाञ्ची माहात्म्यम्' लिखने के कार्य में संलग्न हो गये। इस बात को लेकर डॉ० आरुद्र कल्पना कर बैठते हैं कि ये कवि दुग्गन के समकालीन होंगे। इस हिसाब से ये रामय्य को पन्द्रहवीं शताब्दी का कवि ठहराते हैं।

सन् १५५०-६० ई० के आसपास श्री पेदपाटि जगन्न नामक एक कवि ने 'प्रबन्ध रत्नाकरम्' नामक ग्रन्थ का संकलन किया था। उसमें इन्होंने रामय्य नाम के एक कवि के तीन छन्दों को दिया है। इस रामय्य के नाम के पहले 'आन्ध्रकवि' के बदले 'वासिराजु' शब्द प्रयुक्त किया गया है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि तेलुगु में एक की जगह दो-दो रामय्य हैं। दोनों एक हो सकते हैं। इस बात की प्रामाणिकता को ढूंढ़ने के लिए भावी आलोचकों से डॉ० आरुद्र ने विनती की है।

काञ्ची की महिमा का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

उज्जयन काशि माया अयोध्या काञ्चि
मधुर द्वारक थनिडि नाममुलु गलिगि
पट्टणमु लोडु गीर्ति संपद वहिन्चु
महिता कैवल्य लक्ष्मि की मन्दिरमुलु।

'उज्जयिनी, काशी, माया (हरिद्वार), अयोध्या, काञ्ची, मथुरा, द्वारका नामक सात नगर अति प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। ये नगर नहीं, वरन् लक्ष्मी के मन्दिर हैं।' संस्कृत के मूल श्लोक में सातों को मोक्षदायक सात क्षेत्र कहते हैं। पर रामय्य इन्हींको लक्ष्मी के मन्दिर मानते हैं। इस प्रबन्ध-काव्य में विष्णुवाहन गरुड़ का भी सुन्दर वर्णन है।

सा० प्र०

रामराजु रंगप्पराजु

ख्यातिप्राप्त पूर्वजों के नाम के पीछे अपना नाम लगा लेना आन्ध्र प्रदेश की एक परम्परा है। अलिय रामराजु सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं। श्रीकृष्ण देवरायलु के बाद दक्षिण के इतिहास में केवल रामराजु के नाम को ही सब लोग जानते हैं। रामराजु के चाचा तिम्मराजु थे। उन्हें लोग पोट्लपाटि तिम्मराजु कहा करते थे। तिम्मराजु की चार पत्नियाँ और उनसे कुल तेरह पुत्र थे। ज्येष्ठ पत्नी के बड़े बेटे का नाम पिन्न कोन्ड्राजु था। रंगप्पराजु के पिता पिन्न कोन्ड्राजु थे और माँ कोनम्मा। रंगप्पराजु अरवीटि बुक्कराजु के वंशज थे। इस वंश के राजा स्वयं कवि थे और कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया करते थे। अनेक राजा कृतिपति भी रहे हैं। उनमें से मात्र दो कृतिकर्ता हैं—एक सिद्धि-

राजु तिम्मराजु थे, जिन्होंने 'परमयोगी विलासम्' नामक काव्य लिखा था। इस वंश के दूसरे कवि हैं—रामराजु रंगप्पराजु। इनकी कृति का नाम 'साम्बोपाख्यानम्' है। यह पाँच सर्गों का काव्य है। कमलाक्षि के पति श्री रंगनाथ की सेवा में चन्द्रवंश के क्षत्रिय राजा रामराजु रंगप्पराजु ने अपने काव्य को अर्पित किया था। रंगप्पराजु वैष्णव-पुंगव थे। तिरुमल श्रीनिवासाचार्युल रंगप्पराजु के गुरु थे। 'साम्बोपाख्यान' की रचना रंगप्पराजु ने सन् १५६० ई० के लगभग की थी। अतः रंगप्पराजु सोलहवीं सदी में रहे होंगे।

'साम्वोपाख्यान' की कथा इस प्रकार है—साम्ब कृष्ण और जाम्बवती के पुत्र थे। इनका विवाह दुर्योधन की पुत्री लक्षणा से सम्पन्न हुआ था। साम्ब को कुछ बाधाओं का सामना करना पड़ा। सभी अवरोधों को पार कर साम्ब लक्षणा से विवाह कर लेते हैं।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ राक्षस-विवाह कर लिया था। उनका पुत्र साम्ब भी अपने पिता के पद-चिह्नों पर चलकर दुर्योधन की पुत्री को उठाकर लाया था। यह बात निम्नलिखित छन्द से विदित होती है—

हरि मुनु रुक्मिणी जलरुहासन नोर्तु ने तेच्चेन् गानि, या
हरितनयुन्डु लक्षणन् ब्रियालि युतम्बुग वेन्गन् देच्चिबि
ट्टरदमु मीदन् बेट्टे नदि यट्टिय ! पुत्रुंडु तंड्रि कन्न नि
भंर बल शौर्य धैर्य गुण भाग्यरसन् धनुडैन जेन्नगुन्।

'साम्ब के पिता श्रीकृष्ण इससे पहले अकेली रुक्मिणी को सब लोगों के देखते-देखते भगाकर ले गये थे। अब उनका पुत्र साम्व आदि लक्ष्मी के मन्दिर की ओर जानेवाली लक्षणा को उनकी सहेलियों समेत जबरदस्ती उठाकर लाये हैं। उसे उन्होंने अपने पक्षिवाहन पर बिठाया है। पुत्र तो पिता से बल, शौर्य, धैर्य और भाग्य में दो पग आगे है।'

काव्य के आरम्भ में रुक्मिणी-कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का वर्णन, कृष्ण को बाल-लीलाओं के वर्णन के साथ मिलता है। नीचे दिये गये उदाहरण में शृङ्गार का वर्णन देख सकते हैं। एक गोपिका श्रीकृष्ण को ललकारती है। ललकारते हुए ही वह उन्हें गले से लगा लेती है—

अल गोवर्धन मेत्ति नाड
ननि गर्वाटोपमुन् जेन्दन्गा
वल दी कोण्डोक कोण्ड लेत्तु
निनु सत्त्व स्फूर्ति मन्मूर्तिन्गान्
वलुमारुन्नुति इन्तु नन्चु नोक
शम्पागात्रि वक्षो रुह्यन्
चलमुल् रायगन् गौन्गलिन्चं
हरिवक्षः पोठि सापेक्षतन्।

'हे कृष्ण ! इतना घमण्ड न करो। तुम्हें तो गर्व है कि तुमने कभी गोवर्धन को उठाया था। अब इस छोटे पर्वत को उठाओ तो सही। तब मैं मानूंगी कि तुम बलवान् हो। इस क्रिया के बाद में प्रतिदिन तेरा गुण गाती रहूँगी। इतना कह बिजली के समान बदनवाली एक शंपागात्री ने अपने दोनों वक्षों को श्रीकृष्ण की छाती से लगाया।'

सा० प्र०

रायप्रोलु सुब्बाराव

श्री रायप्रोलु सुब्बाराव का जन्म सन् १८९२ ई० में हुआ था। ये श्रीमती आदेम्मा और श्री वेन्कटप्पय्या के सुपुत्र थे। इनकी शिक्षा राजमन्ड्री में हुई थी। इनके विचारों पर श्री अब्बारि सुब्रह्मण्यम् शास्त्री का गहरा प्रभाव था। उनको ये अपना गुरु मानते थे। उन्हींके सम्पर्क से ये तेलुगु और संस्कृत के अधिकारी विद्वान् हो गये और काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए। प्रारम्भ में ये आशु कविता करते थे, बाद में इस पद्धति को इन्होंने छोड़ दिया।

श्री रायप्रोलु को आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने तंजाऊरकालीन अश्लील शृङ्गारिक

काव्य-परम्परा से तेलुगु-साहित्य को ऊपर उठाकर उसे उदात्त शृंगार-भावना से मण्डित किया। अंग्रेजी-साहित्य और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निकट सम्पर्क में आकर इन्होंने तेलुगु में भावकवित्वम् (रोमैन्टिक पोयट्री या छायावाद) का प्रवर्तन किया।

नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण बहुत उदार था। तंजाऊर-साहित्य में नारी के भोग्या रूप का प्राधान्य था। इन्होंने भाव-कविता-आन्दोलन के द्वारा स्त्री को पूज्या बनाया। इन्हें नारी के प्रति पूज्यभाव की प्रेरणा अपनी चाची श्रीमती रामडुगु नरसम्मा से मिली थी। इन्होंने इन्हें अनुसूया-चरित्र पढ़ाकर नारी का सम्मान करना सिखाया। इसी भावना से प्रेरित होकर श्री सुब्बाराव ने उदात्त शृंगार-वर्णन ही काव्य का आदर्श माना। इनकी दृष्टि में सच्चा प्रेम शारीरिक सम्बन्धों से परे होता है। प्रेम ही ब्रह्म है। इन्होंने लिखा है—

कर्म में ब्रह्म मनि
ज्ञान में ब्रह्म मनि
नारु—ब्रह्मम् प्रेम
कादो—राधाकृष्ण।

'हे राधा-कृष्ण, लोगों ने कहा है कि कर्म ही ब्रह्म है, ज्ञान ही ब्रह्म है, क्या ब्रह्म प्रेम नहीं हो सकता?'

श्री सुब्बाराव ने संयोग-शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण है श्री अरविन्द और कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव।

श्री सुब्बाराव कर्मवादी थे। वैदिक कर्मों के प्रति उनमें असीम आस्था थी। उनका कथन था कि यह शरीर या जन्म ईश्वर-प्रदत्त है—'ईश्वरुडु अनुग्रहिन्चे नाकी भवम्बु।' इन्होंने प्रसिद्ध आलोचक डॉ० अमरेन्द्र से कहा था कि सभी कवि द्वैतभाव को माननेवाले होते हैं। जब घर में पूजा-पाठ होता था तब ये आटे की मूर्तियाँ बनाकर पूजा किया करते थे। ये भोग-चढ़ावा पसन्द नहीं करते थे, मन्दिर भी नहीं जाते थे, किन्तु प्रत्येक शुक्रवार को घर पर ही पूजा करते थे।

मधुर स्वभाव के श्री सुब्बाराव के दो पुत्रियाँ और चार पुत्र थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में प्राचीन विचारों को नवीन रूप दिया है और पात्रों तथा कथानक के चयन में बहुत सावधानी बरती है। इन्होंने 'कष्ट कमला' नामक अपने काव्य में मध्यम-वर्ग के ब्राह्मण-परिवार का चित्रण किया है, एक गीत में यादवों की बस्ती का वर्णन किया है और अन्य गीत में कृष्ण-दम्पति का जीवन चित्रित किया है। इन्होंने जूठे पत्ते पर कविता लिखकर मरसिया-पद्धति का भी श्रीगणेश किया। प्रसादगुणसम्पन्न भाषा में इन्होंने देश-भक्तिपरक कविताएँ लिखीं। इन्होंने सन् १९०९ ई० में 'आन्ध्र-केसरि' नामक पत्रिका में व्यभिचार के विरुद्ध कविता लिखी थी। इन्होंने गोल्ड-स्मिथ की प्रसिद्ध रचना हरमिट का 'ललिता' शीर्षक से अनुवाद किया था।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविन्द के प्रभाव से ये देवी के उपासक बन गये थे। ये माधुर्य-भाव के भक्त थे। अतः इन्होंने राधा-कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ भी कीं। 'जन्माष्टमि' इनकी कृष्ण-सम्बन्धी रचना है। इसी प्रकार 'रूप-नवनीतम्' नामक कविता श्रीकृष्ण से सम्बद्ध है। इसमें कृष्ण का रूप-वर्णन है। 'लालि' नामक कविता में श्रीकृष्ण के वृन्दावन-विहारी, गोपीवस्त्रापहारी तथा राधाप्रिय रूप का चित्रण है। 'राध-पिलुपु' शीर्षक कविता में प्रेम का सुन्दर विश्लेषण है।

दर्शन न देकर विरह-ताप मात्र देनेवाले कृष्ण से उपालम्भ देते हुए राधा का पक्ष लेकर ये कहते हैं—

राधनु वेधिम्प रादुरा कृष्णा,
राध पै कोपिंप रादुरा कृष्णा
('राध पिलुपु'-से)

'हे कृष्ण, राधा को मत सताओ। उस पर क्रोध क्यों? अर्थात् क्रोध मत करो।'

कृष्ण राधा को नहीं दिखाई दे रहे हैं। न दिखाई देने के कारणों के बारे में राधा इस प्रकार सोच रही है—

वेन्न दोंगिलि कानपिम्प कुन्नावो ?
चीर लेत्तुक पोइ दूर मैनावो ?
तरुणुले निन्नु दारि तप्पिन्चि नारो ?
मधुर लो पौरुले मरपिन्चि नारो ?

'तुम क्यों नहीं दिखाई दे रहे हो ? क्या नवनीत की चोरी के कारण कहीं छिप गये हो ? चीर-हरण कर लगता है, बहुत दूर चले गये हो। क्या गोपिकाएँ तुम्हें गुमराह कर चुकी हैं ? मथुरा के लोग कदाचित् तुम्हें जाने नहीं दे रहे हैं।'

इनका निधन अभी कुछ ही महीने पूर्व (सन् १९८६ ई० में) हुआ है।

सा० प्र०

रायसमु वेन्कटपति

साहित्य और संगीत के पारंगत विद्वान् रायसमु वेन्कटपति श्रीरंग रायलु के दरबारी कवि थे। श्रीरंग रायलु अलियराम रायलु के भाई तिरुमलदेव रायलु के पुत्र थे। श्रीरंग रायलु ने सन् १५३४ ई० से लेकर १५८५ ई० तक शासन किया था। रायसमु वेन्कटपति उनके समकालीन थे। अतः इनका काल भी १६वीं शताब्दी माना जा सकता है। 'लक्ष्मी विलासमु' इनकी प्रसिद्ध कृति है। श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् के अनुसार यह एक मृदु-मधुर रचना है।

रायसमु वेन्कटपति आरुवेल नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अक्कयामात्य था। इनका गोत्र वसिष्ठ था। इनके वंशजों की प्रशंसा तत्कालीन पण्डितों ने लगातार की है। कवि वेन्कटपति के अनुरार इस वंश में जन्म लेनेवालों की कीर्ति दूर-दूर तक फैली थी।

अपने काव्य में इन्होंने लक्ष्मी का वर्णन इस प्रकार किया है—

हरिकिन् बट्टपु राणि वीव यनि कल्याणैक वाक्य स्तुतुल्
परन्गन् पुण्य नदी नदो दकमुलन् पट्टाभि वेकंबु चे
सिरिना नुज्ज्वल हेम कुंभमुलचेन् जेतन्सु गंधाम्बुवुल्
हरिमध्यल्तग निन्चि निन्चि जलकम् बाडिन्चि
रब्जालयन् ॥

'हे लक्ष्मी! तुम हरि की पटरानी हो न ? इसलिए विवाह-सम्बन्धी मंगल वाक्यों से लक्ष्मी की स्तुति कर पूज्य नदी के पानी से उनका अभिषेक करवाया गया। सुगन्धित द्रव्यों से भरे हेम-पात्रों से पानी भर-भरकर स्नान करवाया गया।'

सा० प्र०

रावूरि दोरस्वामि शर्मा (पद्मश्री)

रावूरि दोरस्वामि शर्मा का जन्म २७ सितम्बर सन् १९१९ ई० को मद्रास के निकट चोललिंगपुरम् नामक स्थान में हुआ था। इनकी माँ का देहान्त बचपन में ही हो गया था। अतः पिता ने ही इकलौते पुत्र का पालन-पोषण किया।

ये कुछ वर्षों तक मद्रास के डी० जी० वैष्णव कॉलेज के तेलुगु-विभाग में उपाचार्य रहे। अवकाश प्राप्त करने के बाद आपने शेष जीवन व्याकरण, छन्द आदि से सम्बद्ध साहित्य की रचना में लगाया। ये स्वभाव से बहुत हठी थे। अतः जितने इनके मित्र थे, उससे अधिक शत्रु। ये व्याकरणसम्मत साहित्य-रचना के कट्टर समर्थक थे। व्याकरण और छन्दशास्त्र से सम्बद्ध इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—१. तेलुगु भाष लो छन्दो रीतुलु, २. तेलुगु लो तिट्टु कवित्वमु, ३. तेलुगु साहित्यमु : राम-कथा, ४. अप्प कवीय भाव प्रकाशिका आदि।

किन्तु मूलतः ये एक परम्परावादी कवि थे। कविरूप में प्रसिद्धि पाना ही इनके जीवन का लक्ष्य

था। 'मित्रमणिभूषणम्' इनकी प्रथम काव्य-कृति है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'नरसिंह-शतकम्', 'कोदंड-राम', 'नक्षत्र मालिका' नामक कुछ अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है। 'नरसिंह-शतकम्' इनकी कृष्ण-भक्ति का परिचायक ग्रन्थ है। उसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

भूभारमु दलन्गिम्पन्गन्, ब्राभवमुन
यदुकुलानन् ब्रभविन्चि महा
लोभुल, रवलुलनु जदिपिन,
श्री भासित कृष्णऽवीतु श्री नरसिहा।

श्रीकृष्णावतार के तत्त्व के बारे में कवि लिखते हैं—'हे कृष्ण! भूमाता के भार को कम करने के लिए आपने यदु-कुल में जन्म लिया। लोभियों और खलों को नाश करनेवाले श्रीकृष्ण, आप तो श्रीसमेत सदा रहते हैं।'

निनु ननिशमु निन्दिन्चेड्,
कनककशिपु सम्हरिप घनुडगु प्रह्ला-
दुनि बालिम्प नवतरिंचिन
नरहरि रुपुडीवु-श्री नरसिहा।

'अथक निन्दा करनेवाले कनककशिपु को मारने के लिए और अपने भक्त प्रह्लाद को अभय प्रदान करने के लिए हे स्वामि, आपने नरहरि-रूप को धारण किया है।'

इनका निधन १९ जनवरी सन् १९८६ ई० को हुआ।

सा० प्र०

रावूरि संजीवराय कवि

इस कवि की क्लिष्ट भाषा को साधारण पाठक समझ नहीं पाते थे। तब इन्होंने अर्थ समझाने के लिए अपने काव्य की संस्कृत में टीका लिखी थी। तेलुगु भाषाभाषी इन्हें राकूरि संजीवराय कवि के नाम से जानते हैं। 'वीरनारायण-शतकम्', 'वसुदेवनन्दन-शतकम्' आदि को लिखने के कारण इनका नाम शतककारों में गिना जाता है। इन दो शतकों के अतिरिक्त उन्होंने 'त्रिविक्रम विलासमु', 'भागवत के एकादश-द्वादश स्कन्ध' और 'रुक्मिणी-परिणयम्' ग्रन्थों की भी रचना की है। 'रुक्मिगी-कल्याणम्' के कवि कौन हैं, इस बात को लेकर तेलुगु में काफी वाद-विवाद हो चुका है। डॉ० आरुद्र इसे संजीवराय कवि की रचना मानते हैं। कुछ आलोचकों का कहना है कि अपने मित्र कोप्पर्ति नरस कवि की ओर से संजीवराय ने 'रुक्मिणी-परिणयम्' को समाप्त किया था। अतः इस काव्य को अपने नाम से नरस कवि ने प्रचलित करवाया था। डॉ० आरुद्र के अनुसार इस काव्य का रचना-काल सन् १७८७ ई० है। इनके द्वारा रचित 'वीरनारायण-शतकम्' काव्य सन् १७३१ ई० में लिखा गया था। इन दो तिथियों के आधार पर इन्हें हम अठारहवीं शती का कवि मान सकते हैं।

सुप्रसिद्ध जैन-क्षेत्र कोलनपाळ तेलंगाणा में स्थित एक गाँव है। यह बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) से हैदराबाद जाने के मार्ग पर स्थित है। यहाँ श्री वीर-नारायण का एक मन्दिर है। इस मन्दिर से रावूरि संजीवराय कवि का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। एक कथा के अनुसार गोपराजु रायन्न के अनुरोध पर संजीवय्या ने इस शतक की रचना की थी।

संजीवय्या प्रथम शाखा के नियोगी ब्राह्मण थे। ये सांख्यायन गोत्र के रघुपति के पौत्र तथा गुरव कवीन्द्र और पेद्दमाम्बा के पुत्र थे। संजीवय्या के पूर्वज तेलंगाणा के थे। वहाँ से इस वंश के लोग कोण्डवीडु आकर बस गये थे। कोण्डवीडु और रावूरु में ये लोग रहा करते थे। इसलिए इनके वंशजों को कोण्डुवीडुवाले भी कहते हैं और रावूरि-वाले भी। रावूरि के लोग पटवारी थे। कुछ दिनों के लिए इनको मन्दाल नामक गाँव में रहना पड़ा था।

वहाँ ये कितने वर्षों तक रहे, यह ठीक तरह से बताया नहीं जा सकता।

'वीरनारायण-शतकम्' की रचना के पीछे जनश्रुति के अनुसार दो कहानियाँ प्रचलित हैं, दोनों की चर्चा श्री शेषय्या ने अपने 'आन्ध्रकवि-तरंगिणि' में की है। ससुरालवाले विद्याहीन संजीवय्या की खिल्ली उड़ाने लगे थे। अतः ये विद्यार्जन के लिए वाराणसी गये। वहाँ से लौटते समय कोलनुपाक पहुँचे। वहाँ के दरबारी संजीवय्या को ठगना चाहते थे। ये हनुमान् के भक्त थे। अतः दरबारियों की कुछ चल न पायी। तब संजीवय्या ने राजा से कहा—"गाँव के बाहर एक काँटेदार निकुंज है। उसे खुदवाओ। वहाँ से वीरनारायण स्वामी निकलेंगे।" राजा ने ठीक वैसा ही किया। जब खोदाई का काम हो रहा था, तब संजीवय्या ने 'वीरनारायण-शतकम्' का पाठ किया। अन्त में स्वामी विस्फोट के साथ बाहर आये। दूसरी कहानी में विद्याहीनता की अपेक्षा इनकी दरिद्रता पर अधिक जोर दिया गया है।

'वीरनारायण-शतकम्' के निम्नलिखित छन्द में कृष्ण की स्तुति की गयी है :

वरद जगत् कुटुंब धुरीणुडवु नीवु
 नीगर्भमु ननु जम्मिंचि पिदप
नीमेनि कासिन्चि निन्नुं गृष्णा यनि
 पेर्कोंचु मन गल प्रीतिनुंडु
माकु गल्याणमे चेकूरुन् गाक की
 डेल नेदुर्कोनु नेदुरुकोनिन
केरलितज्जन्यापकीर्ति जन्यमु देव
 रदि गाक योरुलचे युव यवकृत
मैन दौर्जन्य मवयवि दैन यट्लु
प्रबल सबल मुरासुर प्रमथन सम
तुलित बाहाबलोत्सेक कोलनुपाक
वीर नारायण! मुकुन्द! विश कुन्द।

श्रीकृष्ण से कवि प्रार्थना कर रहा है—

'हे वरद जगत् पिता! हम सब तुम्हारी सन्तान हैं। हम तुममें अन्ततः लीन होना चाहते हैं। हर बात के लिए हम 'कृष्ण' कहकर तुम्हारा ही नाम लेते हैं। कल्याणकारी कृष्ण जब तक हमारे पक्ष में हैं तब तक हमारा कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। अगर कोई कुछ अहित करने का प्रयत्न भी करे तो कृष्ण-कोप से वह भस्म हो जायगा।'

संजीवय्या ने 'वीरनारायण-शतकम्' और 'वसुदेव-नन्दन-शतकम्' के अतिरिक्त 'शांकर-विष्णु-शक्ति' से सम्बद्ध अन्य शतकों की भी रचना की थी। पर आज वे मिल नहीं रहे हैं।

सहस्र मास जीनेवाले इस कवि के बारे में श्री शेषय्या लिखते हैं—'यह कवि भगवान् के लिए भी वन्दनार्ह है।'

सा० प्र०

लिंगनमखि तिरुकामय्या

'मनाने' को तेलुगु में 'सान्त्वनम्' कहते हैं। अष्ट पटरानियोंवाले श्रीकृष्ण को हर दूसरे या तीसरे दिन किसी न किसी पत्नी को मनाना पड़ता था। कलह अथवा रूठने का कारण बताकर मनाने के साधनों का वर्णन करना सत्रहवीं शती के कवि बहुत पसन्द करते थे। अतः 'सान्त्वनमु' नाम से साहित्य की एक नयी धारा फूट पड़ी। इसके मूलस्रोत हैं—लिंगनमखि तिरुकामय्या उपनाम श्री कामेश्वर कवि।

'सान्त्वनम्' नाम से लिखा गया प्रथम काव्य 'सत्यभामा सान्त्वनम्' है। अन्न और आश्रयदाता को कृष्ण मानकर अन्नदाता की कामकेलि को कृष्ण के नाम पर वर्णित करना इन सान्त्वनम् काव्यों का लक्ष्य था। मुद्दु पलनि और संमुखम् वेंकट कृष्णप्पा द्वारा लिखित 'राधिका सान्त्वनम्' के रचनाकाल तक उक्त भाव पराकाष्ठा को पहुँच गया था।

लिंगनमखि तिरुकामय्या मधुरा के नायक राजाओं के दरबारी थे। ये श्री कालहस्तीश्वर के भक्त थे।

मधुरा के राजा मुद्दु अलगरि ने इनको 'गौरी भवकरुणा निवेश श्री कामेशा' कहा था। इन उल्लेखों के आधार पर डॉ० आरुद्र कामेश्वर कवि को श्री कालहस्ती का निवासी मानते हैं। ज्ञानप्रसूनाम्बा (पार्वती का एक पर्यायवाची नाम) की दया से तिरुकामय्या विद्यासम्पन्न हुए थे। कालहस्ती के निकट वेन्गन्न गारि लिंगन्न नामक एक सदाचारी व्यक्ति रहते थे। एक बार उन्होंने एक यज्ञ किया। तब से सब लोग इन्हें 'लिंगनमखि' कहने लगे थे। उनके बाद उनके पुत्र और पौत्रों को लिंगनमखिवाले कहने लगे। इस तरह लिंगन्ना के वंशजों के नाम के पहले 'लिंगनमखि' शब्द जुड़ गया।

लिंगन्ना के बाद किस पीढ़ी में श्री कामेश्वर कवि का जन्म हुआ था, यह बताया नहीं जा सकता। लिंगन्ना के वंश में न जाने कब नागन्ना नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ था। ये नागन्ना स्वयं कवि थे। लोग इन्हें नगनकविराज कहते थे। तिरुकामय्या इन्हीं नागन्ना के पुत्र थे। ये एक श्रेष्ठ कवि थे। मुद्दु अलगिरि (मधुरा के राजा) ने इनके बारे में कहा था—"कौए के समान काँव-काँव करनेवाले कवियों को हम हर एक घर में देख सकते हैं। पर तुम तो नीर-क्षीर-न्याय को जाननेवाले कविहंस हो।"

लिंगनमखि श्री कामेश्वर कवि संगीत के साधक थे। बचपन से संगीत और साहित्य में रुचि लेकर इन्होंने अध्ययन किया था। इन्होंने संगीत में नये-नये प्रयोग किये थे। ये पल्लकी-वादन-धुरीण तथा वर्ण गीतादि गान्धर्व सर्व नवीन कल्पना-प्रवीण थे। तिरुकामय्या वाक्चतुर भी थे। ये 'धीरजन हृदय रंजक विहार' थे। अपनी विद्वत्ता से तिरुकामय्या ने पहले मधुरा के तिरुमल नायक को प्रभावित किया था। तिरुमल नायक ने इन्हें धनाढ्य कर दिया। यह घटना सन् १६५० ई० के आसपास या उसके तुरन्त बाद घटी होगी। तिरुमल नायक के बाद मधुरा की गद्दी पर उनका पुत्र बैठा। उसका नाम मुद्दु वीरप्पा था। वीरप्पा के बाद उनके बड़े लड़के चोक्कनाथ ने तेईस वर्षों तक (सन् १६५९ से १६८२ तक) राज्य किया। चोक्कनाथ के एक सौतेले भाई थे। उनका नाम मुद्दु अलगिरि था। दोनों ने कामय्या को आश्रय दिया था। 'रुक्मिणी-कल्याणम्' को लिखकर तिरुकामय्या ने मुद्दु अलगिरि को सौंपा। बाद में राजा के आदेशानुसार 'सत्यभामा-सान्त्वनम्' लिखकर अपनी काव्य-कन्या को देकर तिरुकामय्या ने मुद्दु अलगिरि को अपना दामाद बनाया।

सत्यभामा, नरकासुर-संहार के लिए निकलनेवाले कृष्ण का साथ देना चाहती थी। यह कहकर कि यह (युद्ध) कोई हँसी-खेल नहीं है, कृष्ण ने सत्यभामा के प्रस्ताव को टाल दिया। उन्होंने कहा था–"तुम स्त्रियाँ जानवरों की तरह काम के महत्त्व को जान नहीं सकती हो"—'थरथरु कार्यमुल् मृगमु लट्लु वेलन्दुल देल्प शक्य मे।' कृष्ण युद्ध-भूमि में साधारण कामुकों की तरह विरह-ताप का अनुभव करने लगे। कृष्ण की चेष्टाओं को देखकर एक सखा ने उनसे कहा--"यह क्या कृष्ण! यह तुम क्या कर रहे हो? हे पद्मदलाक्ष! तुम समर-भूमि में हो। यहाँ विरह के लिए स्थान नहीं है। संसार में अनेक प्रेमी हैं और प्रेमिकाएँ भी। इस तरह युद्ध-भूमि में स्त्री के बारे में सोचना तुम्हें शोभा नहीं देता।" देखिये—

वलचिन वारलु लेरो वलपिन्चिन
वारु लेरो वनितल निट्ला।
तलचुकोनि समर मुखमुन-
बलविंचिन वारु गलरे पद्मदलाक्षा।

श्रीकृष्ण के विरह को देखकर एक ने इस प्रकार कहा—

नलिनाक्ष विरह मनगा–
नलुपो तेलुपो इदेटि नटनलु बलिरा
नलुपैन चीक टेदियो–
तेलुपैन वेन्नलेदि तेलिसिदु चेपुमा।

'नलिनाक्ष कृष्ण, मुझे उत्तर दो। तुम तो 'विरह-विरह' कह रहे हो। जरा बता दो तो सही, विरह का रंग क्या है? क्या यह सफेद रंगवाला है या काले रंगवाला? अगर इसका रंग काला है तो अँधेरा किसे कहते हैं? अगर विरह सफेद रंगवाला है तो चाँदनी किसे कहते हैं?'

मधुरा-दरबार के सुप्रसिद्ध कवि लिंगनमंखि श्री कामेश्वर समकालीन शृङ्गारी काव्य-धारा के प्रभाव से अलौकिक कृष्ण को लौकिक धरातल पर प्रस्तुत करते हुए भी अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में सचेष्ट थे।

सा० प्र०

वसवराजु अप्पाराव

श्री वसवराजु अप्पाराव का जन्म सन् १८९४ ई० में विजयवाड़ा के निकट पटमटा नामक गाँव में हुआ था। ये आधुनिक तेलुगु-साहित्य के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। नौकरी की तलाश में ये दिल्ली गये थे, किन्तु उन्माद का दौरा पड़ने के कारण इन्हें बेजवाड़ा वापस आना पड़ा। ये स्वतन्त्र विचारवाले व्यक्ति थे। साहित्य और जीवन दोनों क्षेत्रों में स्वच्छन्दतावादी थे। इसका उल्लेख इन्होंने स्वयं 'साहित्य-भारती पत्रिका' (फरवरी, १९३३ ई०) के सम्पादक को लिखे गये एक पत्र में किया है।

'आन्ध्र-कवित्व-चरित्र' के लेखक श्री वसवराजु ग्रान्थिक भाषावादी थे। इन्हें संस्कृत का भी सामान्य ज्ञान था। बचपन में ही माँ की मृत्यु हो जाने के कारण इनकी शिक्षा मामा गोविन्द राजुलु के यहाँ हुई थी। इन्होंने सन् १९१२ ई० में एस० एल० सी० तथा १९१६ ई० में मद्रास के प्रेसीडेन्सी कॉलेज से बी० ए० पास किया था। कुछ वर्षों तक पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने के पश्चात् इन्होंने बी० एल० पास करके वकालत प्रारम्भ की। किन्तु इस क्षेत्र में इन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इनके समकालीन अनेक तेलुगुभाषी कवि अपनी रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद कराकर नोबुल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। किन्तु इन्हें यह कार्य पसन्द नहीं था। इसीलिए इन्होंने इस प्रवृत्ति की निन्दा की है।

श्री वसवराजु भावकवि (छायावादी) थे किन्तु पलायनवादी नहीं। ये श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे और स्वयं को गोपिका मानकर भगवान् की आराधना करते थे। इनकी रचनाओं के नाम हैं—वसवराजु अप्पाराव गीतालु, सेलयेटि गानमु, आन्ध्र कवित्व चरित्र आदि। 'वटपत्रशायी' नामक कविता में इन्होंने श्रीकृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया है—

ओम्टिगा नुय्याल लूगितिवा
न मुद्दु कृष्णा
जन्टगा नन्नु पिल्व दगदोई?
कन्टिकंता जलमयम्बै
मिन्टि वरकुनु नेक राशै
जन्ट दोरुकनि महा प्रलयपु
टिन्टिलो वटपत्र डोलिक
नोन्टिगा नुय्याल लूगितिवा

झूला झूलनेवाले कृष्ण से कवि पूछ रहे हैं—'हे मुद्दु कृष्ण, अकेले झूला झूल चुके हो क्या? साथ देने के लिए हमें भी बुलाया होता। जमीन-आसमान को प्रेम-प्रलय में डुबोकर इस विश्वरूपी संसार में वटपत्र नामक झूले पर बैठकर अकेले झूल रहे हो।'

वे आगे लिखते हैं—

जगमु लन्नी काल योनि लो
मोगमु लेरुगक निद्रुर बोवग
नगु मोगमु गल मुद्दु बालु ड
वगुचु जोलल बाडुकोन्दू

'सारा जगत् कालयोनि में सुध-बुध भूलकर सो रहा है। पर हँसमुख कृष्ण स्वयं लोरी गा रहा है और सोने जाने की चर्चा भी कर रहा है।'

राधा और अन्य गोपिकाओं की आनन्दमय स्थिति का वर्णन श्री वसवराजु अप्पाराव ने अपने 'गोपाल कृष्णुडु' कविता में इस प्रकार किया है—

एमनि पाडितिवो
गोपाल कृष्णा
एमनि पाडितिवो ?
भामलु पदियारु वेलु
परवशलै सोक्कि सोल—नेमनि
वृन्दावनमा
नंद मथमुगा—नेमनि
यमुना नदिलो
अमृतमु पोंग—नेमनि
वेन्नेल जल्लेड
वेल्लि विरियगा—नेमनि
लोकमु लन्नियु
लोल लाडन्गा
नेमनि पाडितिंवो
गोपाल कृष्णा
एमनि पाडितिवो

सोलह हजार गोपिकाओं के साथ यमुना को अमृत से भरकर विहार करनेवाले वेणुगोपाल कृष्ण का वर्णन करते हुए वे कह रहे हैं—'क्या गान था ? हे गोपाल कृष्ण, क्या गान था वह ? गान-माधुरी के कारण सोलह हजार गोपिकाएँ अपनी सुध-बुध भूल गयी हैं। उस गान ने वृन्दावन को आनन्द से ओत-प्रोत कर दिया है। यमुना को अमृतमय बना चुका है। वह तो उमंग के साथ बह रही है। चाँदनी बिखरी हुई है। गान ने सारे लोक को दोलायमान कर दिया है। सबके सब आनन्दविभोर हो गये हैं। हे कृष्ण, वह कैसा मधुर गान है, जिसने सबको अपने वश में कर लिया है।'

भावकवि वसवराजु अप्पाराव माँ भारती को दुःखी बनाकर सन् १९३३ ई० में छोटी उम्र में ही स्वर्ग सिधार गये।

सा० प्र०

वाविलि कोलनु सुब्बराय

वाविलि कोलनु सुब्बराय का जन्म सन् १८६३ ई० में कड़पा में हुआ था। ये 'वासु-दास' नाम से विख्यात थे। ये कुछ समय तक कड़पा जिले के रेविन्यू इन्स्पेक्टर के पद पर कार्यरत रहे, तदनन्तर मद्रास के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में तेलुगु पण्डित के पद पर आसीन हुए। ये भागवत-भक्त, पण्डित तथा कवि थे। पोतना की कविता इनके लिए आदर्श थी। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति वाल्मीकिकृत रामायण का यथामातृक तेलुगु रूपान्तर है। इस काव्य को आपने ओंरिमिडरा में स्थित कोदण्ड रामस्वामी के श्रीचरणों में सर्मपित किया था। अपनी इस प्रौढ़ कृति के कारण सुब्बराय कवि को 'आन्ध्र-वाल्मीकि' की उपाधि से विभूषित किया गया।

'रामायण' के अतिरिक्त सुब्बराय कवि की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—कृष्ण-लीलामृत, कुमाराभ्युदय, कौशल्य-परिणय, सुभद्र-विजय, भगवत-गीता, आर्य कथा निधि (छः भाग), नल-चरित्र, हरिश्चन्द्र-चरित्र, हनुमन्त-चरित्र आदि।

इन्होंने कुछ समय तक 'भक्त-संजीवनी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। सन् १९३९ ई० में आपका परधामवास हो गया।

बा० रे०

विजयराघव नायक

तंजाऊर के राजा विजयराघव नायक रोम-साम्राज्य के चक्रवर्ती नीरो के भारतीय संस्करण हैं। कहा जाता है कि ज्वालाएँ जब रोम नगर को जला रही थीं तब नीरो अपने महल में बैठकर सारंगी बजा रहे थे। तंजाऊर को शत्रुओं ने घेर रखा था। मन्त्री, सेनापति और सामन्तों ने मिलकर शत्रुओं के आक्रमण के बारे में विजयराघव नायक को सूचना दी। विजयराघव नायक, जो कि एकनिष्ठ विष्णु-भक्त थे, पूजा-गृह को छोड़कर आने के लिए तैयार नहीं थे। राज्य लुट गया, फिर भी ये निश्चिन्त रहे।

आश्रितों को भेड़ियों के हवाले कर विजयराघव नायक राजमहल छोड़कर भाग निकले थे। विश्व के इतिहास में इस प्रकार के राजा बहुत कम दिखाई देते हैं।

श्री राजगोपाल (तंजाऊर के एक वैष्णवालय के देवता) के भक्त, रघुनाथ वसुमतीनाथ और कलावती के सुपुत्र, अष्ट भाषा-विशेषज्ञ, सुकवि, रुक्मिणी-कल्याणादि ४६ ग्रन्थों के रचयिता विजयराघव नायक तंजाऊर के राजा थे।

सुरा-सुन्दरी के दास विजयराघव नायक वीर पुरुष होने के साथ ही वीर वैष्णव भी थे। धर्मसहिष्णुता को विरासत में पानेवाले रघुनाथ नायक वैष्णवाचार्य तिरुमल तात देशिकाचार्य के उपदेशों के कारण कट्टर वैष्णव बन गये थे। इनकी धर्म-असहिष्णुता के बारे में इनकी भोगपत्नी, रंगाजम्मा ने, जो स्वयं कवियित्री थीं, इस प्रकार लिखा है-'इतर मतमुल निर्रसिचियु वेलय वैष्णव मतम्ब्रु निलिपे शाश्वतमुगाग।' अर्थात् 'अन्य धर्मावलम्बियों की अवहेलना कर वैष्णव-धर्म की जड़ों को इन्होंने और मजबूत बनाया है।' इस धार्मिक द्वेष के कारण ही इनके दरबार के परम वीर और शौर्यसम्पन्न रघुनाथ भूपाल इनका साथ छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। श्री चागन्टि शेषय्या के शब्दों में "धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही इनके राज्य का पतन हुआ था।"

एक कथा के अनुसार संगीत-साहित्य-कला-मर्मज्ञ विजयराघव नायक भगवान् कृष्ण के अवतार थे। 'ना विष्णुः पृथिवीपतिः' को चरितार्थ करनेवाले वह वीर, धीर और शूर भी थे। कथा इस प्रकार है—रघुनाथ नायक (विजयराघव नायक के पिता) पुत्रेच्छा से मन्नारुगुडि (तमिलनाडु के एक नगर का नाम) के राजगोपाल स्वामि की सेवा करने के लिए पत्नियों समेत पहुँचे। एक दिन ये स्नानोपरान्त पलथी मारकर बैठे थे। श्री हरि का दर्शन हुआ। हरि ने इनसे पूछा-"कहो, तुम्हारी मनोकामना क्या है ?" रघुनाथ नायक ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "इस पृथ्वी का पालन करनेवाले एक पुत्र को प्रदान कीजिये।" प्रसन्न होकर भगवान् ने राजा रघुनाथ को आश्वासन दिया कि "मैं तुम्हारी प्रिय पत्नी के गर्भ से जन्म लूँगा।" इतना ही नहीं, अपने लिए एक नाम को भी चुन राजा से भगवान् ने कहा —"तुम उसे विजयराघव नाम दो।" भगवान् ने पुनः कहा—'चेलगि वेय्येल्लु पुडमि रक्षिन्चु चुन्दु' अर्थात् एक हजार वर्षों के लिए मैं इस धरती की रक्षा करता रहूँगा। इतिहास के अनुसार सन् १६३३ से लेकर सन् १६७३ ई० तक विजयराघव नायक ने राज्य का पालन किया था। विजयराघव नायक अपने पिता के तृतीय और कनिष्ठ पुत्र थे।

इनकी भोगपत्नी रंगाजम्मा ने अपने काव्य 'मन्नारुदास विलासमु' (मन्नारुदास, विजयराघव नायक का उपनाम था) में एक अन्य कथा को लिपिबद्ध किया है। श्रीकृष्ण का द्वापर-युग में सूर्यदेव की पुत्री कालिन्दी से विवाह हुआ था। इस विवाह के बाद चन्द्र के मन में भी कृष्ण को अपना दामाद बना लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस प्रस्ताव को सुनकर कृष्ण थोड़ा झिझके। कारण कि चन्द्र कृष्ण के साले थे। इसलिए कृष्ण ने चन्द्र से कहा— "इस युग में (द्वापरयुग में) मैं तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह नहीं कर सकता। पर आनेवाले कलियुग में अवश्य कर लूँगा।" चन्द्र को दिये गये इस वचन के अनुसार कृष्ण ने विजय राघव नायक नाम धारण किया। चन्द्र की पुत्री कान्तिमति के नाम से जन्म ले चुकी थी। इन दोनों का विवाह होता है। संक्षेप में यही 'मन्नारुदास' काव्य का कथानक है।

विजयराघव नायक को प्रसन्न करने के लिए उनके दरबार के कवि कामरसु वेन्कटपति सोमयाजी ने एक और कहानी गढ़ी है। वेन्कटपति कविकृत 'विजयराघव चन्द्रिका विहार' के अनुसार विजयराघव कलियुग के अर्जुन हैं और लीलावती इन्द्र

के दरबार की अप्सरा उर्वशी है। कवियों और कवियित्रियों के प्रशंसा-वाक्यों को सुनकर विजयराघव ने घोषणा की थी कि मैं न कृष्ण हूँ और न हो विजय। मैं तो राजगोपाल स्वामी का पुत्र हूँ। उनके अनुसार रघुनाथ नायक ही जो कि इनके पिता हैं, राजगोपाल के अवतार हैं। वह अपनी माँ को साक्षात् अरुणाब्जवल्लि मानते थे। इतना होते हुए भी रघुनाथ नायक के पुत्र विजयराघव नायक में देवताओं की अपेक्षा असुरों के ही अधिक गुण थे। इतिहासकार श्री वी० वृधागिरिशन के अनुसार विजयराघव नायक रघुनाथ नायक की अवैध सन्तान थे (देखिये 'नायकाज ऑफ तंजाऊर' नामक ग्रन्थ)।

असहिष्णुता की दृष्टि से ही नहीं, गद्दी पाने की दृष्टि से भी विजयराघव नायक दक्षिण के औरंगजेब हैं। रघुनाथ नायक की मृत्यु सन् १६३० ई० में हुई थी। पिता की मृत्यु के बाद बड़ा लड़का राजा बना। तीन साल तक विजयराघव नायक अवसर की प्रतीक्षा में बैठे रहे। तत्पश्चात् अपने दोनों बड़े भाइयों को जेल में डलवाकर ये राजा बन गये। इनका राजतिलक सन् १६३३ ई० में हुआ था। अपने पिता के नाम से दो काव्यों को लिखनेवाले पितृ-भक्त विजयराघव नायक के मन में पिता के समान बड़े भाई के प्रति आदर और श्रद्धा की भावना नाममात्र के लिए भी नहीं थी। इन्होंने अपने दोनों भाइयों को जेल में डाल रखा था। इतना हो नहीं, ये दोनों को अंधा भी बना चुके थे। जेसूर के दो पादरियों के पत्रों से उक्त बात की जानकारी मिलती है।

विजयराघव अपने समय के महावीर थे। पिता के साथ युद्धों में भाग लेकर इन्होंने शत्रुओं के दाँत कई बार खट्टे किये थे। इनके जीवन के सन्ध्याकाल से परिचित लोग इस बात का विश्वास भी नहीं कर सकते कि ये कभी तलवार को आसानी से पकड़ सकते थे। जैसे-जैसे इनमें भोग-लालसा का दोष बढ़ने लगा, वैसे-वैसे कायरता भी बढ़ने लगी थी। डॉ० के० आर० सुब्रह्मण्यम् ने लिखा है—"विजयराघव नायक की रानियों की संख्या ७०० थी और भोग-पत्नियों की संख्या ३५००। विजयराघव कभी अपनी जनता के लिए वास्तव में राघव थे। पर कालक्रमेण वे दानव बन गये थे। प्रजा के मन में भी राजा या राज्य के प्रति कोई लगाव नहीं था। वह उनसे घृणा करने लगी थी।"

ये पहले कर्णाटक के राजा तीसरे वेन्कटपति रायलु के सामन्त थे। वेन्कटपति रायलु की मृत्यु के बाद मधुरा और चेन्जि के सामन्तों के कहने पर विजयराघव ने विद्रोह किया था। पर राजा श्रीरंग रायलु ने जब आक्रमण किया तब इन्होंने अपने मित्रों की पीठ में छुरी भोंकी। सन् १६५९ ई० में मधुरा के दूसरे मुत्तुवीरप्प नायक तंजाऊर पर चढ़ आना चाहते थे। कामुक विजयराघव नायक ने बीजापुर के सुलतान से मधुरा पर धावा बोलने के लिए प्रार्थना की। बीजापुर के सुलतान ने तंजाऊर को भी अपने अधिकार में लेने के लिए सेनाएँ भेजीं। आक्रमणकारियों का सामना न कर ये वल्लम्कोटा (दुर्ग) भाग गये थे। तंजाऊर की रक्षा करते हुए विजयराघव के मित्र और सामन्त अपने प्राणों का उत्सर्ग कर बैठे। मधुरा की सेनाएँ जब दुर्ग के प्रधान द्वार तक पहुँची थीं तब विजयराघव ने अपने पूजा-मन्दिर से बाहर आने से इनकार कर दिया था। पर सन् १६७३ ई० के युद्ध में अपने पुत्र, जिनको इन्होंने कारागार में बन्द कर दिया था, को साथ लेकर युद्ध-भूमि में कूद पड़े। इस युद्ध में विजयराघव ने वीर-गति प्राप्त की।

डॉ० आरुद्र विजयराघव नायक को तेलुगु के नाटकों के पितामह मानते हैं। श्रीकृष्ण देवरायलु अपने 'भुवन-विजयम्' भवन में पण्डितों एवं कवियों से मिलते थे। कनकाभिषेक या कवि गंड पेन्डेरम (पाँवों में पहनाये जानेवाला वृत्ताकार सोने का गहना) का उत्सव मात्र वहीं हुआ करता था। राजा भोज के दरबार में शारदा-पीठ था, ठीक उसी प्रकार विजयराघव नायक के दरबार में शारदा-ध्वज था।

अनेक कवियों और कवियित्रियों के लिए इस ध्वज की छाया तीर्थस्थान के समान पवित्र थी। इसलिए डॉ० आरुद्र लिखते हैं—'विजयराघव ने संगीत और साहित्य की जो सेवा की है, वह दूसरों से हो नहीं सकती। इनके दरबार के कवियों और कवियित्रियों ने मिलकर जितने काव्यों की रचना की है, उनसे ज्यादा ग्रन्थों की रचना स्वयं विजयराघव नायक ने की है। विजयराघव ने कुल ५७ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें कृष्ण-सम्बन्धी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—राजगोपाल विलासमु, गोवर्धनोद्धरण, पारिजातापहरणम्, रुक्मिणी-कल्याणम्, राधा-माधव विवादम्, सत्यभामा-विवाहम्, कालीय-मर्दनम्, मोहिनी-विलासम्, प्रह्लाद-चरित्रम्, पूतना-हरणम्, कृष्ण-विलासम्, कंस-विजयम् आदि।

'पूतना-हरणम्' से उद्धृत निम्नलिखित उदाहरण प्रमाणित करता है कि विजयराघव नायक उत्तम श्रेणी के कवि हैं। बालकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन पूतना कर रही है—

विडु विडु न चन्नु विडु विडुरा योरि
बडलितिरा चाल बाल गोपाल।
पगतीर्प ले नैति भळि-भळि नीव न
मोगमैते नेनु सगमैति गदरा!
अम्मक्क चेल्ल इदि येमिरा नीवु
रोम्मेक्कि ते तलकु दिम्मेक्के गदरा
चिन्न वाडनि युन्टि जेल्ल बो नीवु ना
यन्नंटिते युसुरु मिन्नंटे गदरा।

पूतना अपने स्तन से दूध पीनेवाले बालकृष्ण से कह रही है—'छोड़ो रे बालगोपाल! मेरे स्तन को छोड़ो। देखो रे! मैं बहुत थक गयी हूँ। मैं तुमसे बदला नहीं ले सकी। तुम्हारा मुँह लग जाने से मैं तो बस दुबली हो गयी हूँ। ऊइ माँ, यह क्या, तुम तो मेरे कुचों से दूध पी रहे हो, पर मेरा सिर फटा जा रहा है। मैं सुध-बुध खो रही हूँ। मैं समझ रही थी कि तुम अभी छोटे बच्चे हो, तुम्हारे हाथ लगते ही मेरे प्राणपखेरू उड़े जा रहे हैं।'

'कालीय-मर्दनम्' काव्य से एक उद्धहरण देखिये–

अंदेलु गज्जेलु नंदंद मेरयंग-कुंदनपु
सोम्मुलु गुनिसि याडंग
कंदु मोरगा काळीय फणमु पै-
नंद नंदनुडु नटिइंचे नपुडु

'कालिय सर्प के फण पर नन्द-नन्दन नाच रहे हैं। नाचते समय पैरों की पैजनियाँ मृदु-मधुर शब्द के साथ हिल रही हैं। श्रीकृष्ण के शरीर पर के सोने के आभरण धीरे-धीरे हिल रहे हैं। इस प्रकार कृष्ण नृत्य कर रहे हैं।'

सा० प्र०

विश्वनाथ सत्यनारायण

वर्तमान शताब्दी के प्रखर एवं प्रतिभासम्पन्न लेखकों में 'कलाप्रपूर्ण' डॉ० विश्वनाथ सत्यनारायण का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने एक कवि, लेखक, नाटककार, समीक्षक, कुशल संपादक, सफल आचार्य, वक्ता एवं गायक के रूप में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित कर विशेष ख्याति अर्जित की। इनके लेखन की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह एक ओर विशिष्ट वर्ग अर्थात् विशेषज्ञों से सम्बद्ध है, जैसे (रामायण कल्पवृक्ष) तो दूसरी ओर जनसाधारण के लिए (गीत-काव्य) एवं बालकों (बाल-रामायण जो सन् १९५१ ई० में बालप्रभा में प्रकाशित हुई) के लिए भी प्रयोजनीय है। समीक्षक के नाते इन्होंने आलोचना-क्षेत्र में समीक्षा की भाषा को विशेष गरिमा तथा नया तेवर प्रदान किया है।

डॉ० सत्यनारायण का जन्म सन् १८९५ ई० में आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के नन्दमूरु नामक ग्राम में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम शोभनाद्रि तथा माता का नाम

पार्वतम्मा था। शोभनाद्रि के तीन पुत्र थे—सत्यनारायण, वेंकटेश्वर्लु तथा राममूर्ति। सत्यनारायण शोभनाद्रि के ज्येष्ठ पुत्र थे। बचपन में इनकी शिक्षा-दीक्षा बड़ी बहन के घर में सम्पन्न हुई। इनके गुरु थे लोकप्रिय कवि चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री। डॉ० सत्यनारायण मनस्वी, तपस्वी एवं मानवतावादी थे। इन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों से कटु एवं मधुर अनुभव संचित किये थे। लगभग ३६ वर्षों तक (१९२१–१९५७ ई०) इन्होंने विविध विद्यालयों में अध्यापन-कार्य किया। ये बहुश्रुत थे, विद्याव्यसनी थे और आजीवन मनमौजी लेखक की पद्धति निभाते रहे। ये अत्यन्त स्पष्टवादी थे इसलिए साहित्य-क्षेत्र में इनके प्रशंसकों के साथ ही विरोधियों की भी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। युवावस्था में ही पत्नी की मृत्यु हो जाने पर इनका स्वभाव कुछ अधिक प्रखर हो गया। एक स्थल पर अपनी इस कमजोरी की ओर संकेत करते हुए ये लिखते हैं—

माट दुरुसु चेसिनावु, मनसु मेत्तनग
बाट तप्पिन्चिति ब्रदुकु, पुट्टेडु प्रतिभ निच्चितिवि
कोटि शत्रुल गूर्चिनावु कूर्चुन्टि गुन्डिथ लोन
आटगा नन्दमूर्नीलय विश्वेश्वरा ! कुलस्वामी

'नन्दमूरि ग्राम में बसनेवाले कुलस्वामी विश्वेश्वर, तुमने मेरी बातों को कड़वी बनाकर मन को नवनीत बनाया है। मेरी पत्नी को अपने यहाँ बुलाकर मुझे तुमने गुमराह कर दिया है। (मेरी पत्नी के साथ ही मेरे अधुनातन भाव भी चले गये हैं। अब मेरी चित्तवृत्ति उन्नत नहीं है। 'आयमा लेका याधुनिक मैन मदुन्नत चित्तवृत्ति लेदु।') मेरे मस्तिष्क को प्रतिभा से तुमने ओतप्रोत कर दिया है।'

वस्तुतः ये किसी वाद या सम्प्रदाय से नहीं बँधे, क्योंकि ये स्वतन्त्र विचारक थे। डॉ० सत्यनारायण का संस्कृत, तेलुगु और अंग्रेजी पर गहन अधिकार था। इन्होंने समस्त काव्य-विधाओं में अपनी छाप छोड़ी है। तेलुगु-साहित्य-सर्जना एवं समीक्षा के क्षेत्र में डॉ० सत्यनारायण का योगदान महनीय है। इन्होंने डेढ़ लाख पृष्ठों की साहित्य-सम्पत्ति आन्ध्र-सहृदय पाठकों के लिए छोड़ी। ये मसिजीवी थे। निस्सन्देह ऐसा उर्वर, गतिशील और विदग्ध व्यक्तित्व सर्वदा एवं सर्वथा विलक्षण ही कहा जायगा। सन् १९३५ ई० में ये कवि-सम्राट् बने। सन् १९६४ ई० में आन्ध्र विश्वविद्यालय ने इन्हें 'कलाप्रपूर्ण' उपाधि प्रदान की। ज्ञानपीठ-पुरस्कार के वे द्वितीय ग्रहीता बने। भारत-सरकार ने सन् १९७० ई० में पद्मभूषण उपाधि दी। वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की। शतक काव्यपरम्परा में उल्लेखनीय कृति 'मध्याक्करलु' केन्द्रीय साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत हुई। इन्होंने रामायण कल्पवृक्ष (सन् १९३४–१९६२ ई०) का प्रणयन किया। सन् १९६३ ई० में करीमनगरवासियों ने 'विमर्शक चक्रवर्ति' विरुद से इन्हें सम्मानित किया। इस मनीषी का देहावसान १८ अक्तूबर १९७६ ई० को हुआ।

डॉ० सत्यनारायण ने शताधिक ग्रन्थों की रचना की है। अमृत शर्मिष्टम्, देवीत्रिशति आदि संस्कृत कृतियों का तथा आन्ध्र-प्रशस्ति, श्रृंगार वीथि, वरलक्ष्मीत्रिशति, ऋतुसंहार आदि काव्यों का, किन्नेरसानि पाटलु आदि गीत-काव्यों का, एकवीरा, धर्मचक्र, वेयि पडगलु (सहस्र फन), चेलि यलि कट्ट (वेला) आदि उपन्यासों का, वेनराजु, त्रिशूल, नर्तन शाला आदि नाटकों का, शतक-काव्यों, उदाहरण-काव्यों तथा एकांकी नाटकों का प्रणयन इन्होंने तेलगु में किया है। कहा जाता है कि तेलुगु के भव्य साहित्याकाश के सूर्य एवं चन्द्र डॉ० विश्वनाथ सत्यनारायण एवं राय प्रोलु० सुब्बाराव हैं। ये राष्ट्रीय आन्दोलन से अछूते नहीं रह सके। देश-भक्ति इनके काव्यों में झलकती है। (१) कुमाराभ्युदय (मु) एक पौराणिक काव्य है। उसमें देश-भक्ति पर जोर दिया गया है। (२) 'झाँसी की रानी' नौ सर्गों का काव्य है, जिसमें झाँसी की रानी के त्याग, वीरता और बलिदान तथा अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन है।

आन्ध्र-प्रशस्ति एवं आन्ध्र-पौरुष इनके प्रबोधात्मक काव्य हैं, जिन्होंने तेलुगुभाषियों में जाति और देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएँ भरीं। प्रणय और विरह का वर्णन करने में डॉ० सत्यनारायण ने अद्भुत प्रतिभा दिखायी है। इनके प्रेम-काव्यों में शृंगारवीथि, शशिदूत, गिरिकुमार के प्रेमगीत और वरलक्ष्मी त्रिशति उल्लेखनीय हैं। इन्होंने शृंगारवीथि एवं शशिदूत में संयोग शृंगार का सुन्दर वर्णन किया है तथा वियोग-दशा का कातर स्वर गिरिकुमार के प्रेमगीत और वरलक्ष्मी त्रिशति में मुखरित हुआ है। ऋतुसंहार में षट् ऋतुओं का वर्णन साठ छन्दों में किया गया है। किन्नेरसानि-पाटलु (किन्नेरा के गीत) और कोकिलम्म पेल्लि (कोकिल का ब्याह) में सत्यनारायण की गीत-कला का उत्कृष्टतम रूप पाया जाता है।

शृंगारवीथि में पन्द्रह आश्वास हैं। वे हैं—१. शृंगारवीथि, २. श्रीकृष्ण देवुनि निर्वेद (मु), ३. ब्रह्मगीत, ४. साक्षात्कार, ५. यमुना नदी, ६. निरुक्त (मु), ७. रहोमधुरिमा, ८. राधा-स्वप्न (मु), ९. अन्तस्स्पृहा, १०. प्रातस्स्तवमु, ११. राधिका, १२. अमृत (मु), १३. स्नानसुन्दरी, १४. कुपित चालन (मु), १५. राधिका।

यह प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य है जिसमें शृंगारी लीलाओं का अंकन है। 'शृंगारवीथि' पहला आश्वास है जिसके आधार पर काव्य का नामकरण किया गया है। इसमें प्रथम चौदह आश्वास छन्दोबद्ध हैं तथा अन्तिम आश्वास 'राधिका' गद्य-कविता में है।

इसमें राधा की वियोगजन्य स्थिति का धारा-प्रवाह वर्णन है। राधा के वियोग-वर्णन से काव्य का प्रारम्भ होता है। वियोग-वर्णन का आरम्भ वात्सल्य-रस के वियोग-पक्ष से ही किया गया है। वृन्दावन-विहारी कृष्ण इस काव्य में रसिक किशोर के रूप में अंकित हैं। वे प्रेम और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति हैं। अतः गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे अष्ट महिषियों के भी पति हैं। रुक्मिणी, सत्यभामा के प्रिय हैं, पर राधापति के रूप में ही वे रसराज शृंगार के सौन्दर्यमण्डित रूप के विस्तारक बनते हैं। दूती रास के अधीश्वर व्रज-पति कृष्ण के पास जाकर राधा की दयनीय दशा का वर्णन करती है। कृष्ण राधा का स्मरण करते हैं। फिर संयोग की सम्भावना की सूचना दी जाती है। राधा का विरह सारी पृथ्वी पर व्याप्त है। जिन स्थलों पर उसने कृष्ण के साथ विहार किया था, वे अब दुःखप्रद प्रतीत होते हैं।

राधा अपनी भूल पर पछताती है—

पो ने नेंतग बोलु वोयितिनि यी मोसंपुस्वर्लोक वी-
णा नादंबुलु शाश्वतंबनि यनंतंबैन यात्मापव-
र्गानंदंबुलु जेतुलारग शरीरांबोधिलो मुंचितिन
हा नंद व्रज बालु डिट्टिडटवे यंभोजप्रत्रेक्षणा।

'री कमलनयनी! यह नन्दव्रज-बालक हाय! ऐसा बन गया है। सचमुच देखो, मैं ठगी बन गयी हूँ। इस कपटपूर्ण स्वर्लोक के वीणानादों को शाश्वत मानकर मैंने अनन्त आत्मापवर्ग के आनन्द के हाथों शरीररूपी अम्बोधि डुबो दिया था।'

(पृ० ३, छ० ५)

यहाँ कवि ने अपनी कल्पना के बल पर बड़ी सुन्दर योजना की है। कवि ने कुञ्जों, निकुञ्जों, चन्द्र, चाँदनी, मलयानिल, कोयल, पुष्प आदि प्राकृतिक पदार्थों का सुन्दर चित्रण संस्कृत काव्य की पद्धति पर किया है, जिससे उसकी सहृदयता और वाग्विदग्धता का पूरा परिचय प्राप्त होता है।

मिलन की बेला आती है। यमुना नदी के तट पर राधा कृष्ण के साथ विचरण कर रही है। कृष्ण राधा से कहते हैं—

नडयुट नीकु गष्टमयिनट्लुगनुन्नदि नीदु पादमुल
तडबडचुंडे नेत्तु कोनेदन वेस रागदे सिग्गुलेटिले

पडेदवु नीतमोनियत मागसु लेरुनु चेरराल्ले येडपनि सिग्गदेलयिट नेनोकरुडने कादटे चेली।

'तेरे लिए चलना कष्टकारक है न ? तेरे चरण लड़खड़ा रहे हैं, मैं तुझे गोद में उठा लूंगा। जल्दी आ। हिचकने की जरूरत नहीं है। यह अन्धकारपूर्ण प्रदेश है। यहाँ कोई नहीं आयगा। व्यर्थ लज्जित क्यों होती है ? मैं अकेले ही हूँ न यहाँ, री सखी।'

कृष्ण की आठ पत्नियाँ हैं। उनका मन कभी रुक्मिणी पर, कभी सत्यभामा पर, कभी कुब्जा पर लुब्ध होता है। फिर भी राधिका ही उनकी परा-प्रकृति है।

बलि बलि स्वामि स्वामि यनि
पक्कुन नव्वेनु राध राधयै
बलि बलि राध राध यनि पक्कुन
नव्बेनु स्वामि स्वामि यै
यल प्रभुनात्म ता नेरिगिना
मरि राधिका राधकोपलं
दलपुलु गानि ता नेरिगिना
प्रभु विह्सनोक्करोक्करै।

(पृ० २२, छ० ३)

'भला ! भला ! स्वामी ! स्वामी ! यह राधा की ठहाकापूर्ण हँसी !

भली ! भली ! राधा ! राधा ! कह स्वामी स्वामी बन ठहाका हँस पड़े।

प्रभु की आत्मा की पहचानकर सकी राधिका
राधा के अन्तर्गत भावों को प्रभु भी समझ सके
दोनों एक (अद्वैत) बने।'

इन गीतों में कहीं प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन है, कहीं प्रणय की तीव्र अनुभूति का, कहीं करुणा की अभिव्यक्ति का और कहीं रहस्यवादी संकेत का गुम्फन है। किन्नेरा एक छोटी नदी है, गोदावरी उसकी बड़ी बहन है। समुद्र उनका प्रिय है। इस प्रकार जड़ पदार्थों पर मानवता का आरोप किया गया है।

'शृङ्गार-वीथि' में राधा का स्वप्न उल्लेखनीय है। इसमें राधा अपनी सखी से स्वप्न का वर्णन करते हुए मिलन की मधुर अनुभूतियों का उल्लेख करती हैं—

ओ चेलि ! रात्रि नेनु कल योक्कटि
गन्टिनि। दानिलौन् जिरं
टी चतरांगजुन्डु मन नेय्यपुन्
ब्रोवु, यशोदकन्नवान्
डा चरणंबोनर्चे नोक
यद्भुत-मस्मदुरोजमुल् मृदु
श्रीचरणांकितम्बुलुग नृत्यमु
चेसे सकिंकिणी ध्वनिन्।

'री सखी, कल रात को मैंने एक स्वप्न देखा था, जिसमें युवक तथा चतुर मन्मथ ने हमारी प्रिय मूर्ति यशोदा के प्रिय-पुत्र में, एक अद्भुत करतूत रची है। वह यह कि उसने मेरे उरोजों पर किंकिणी-ध्वनियों सहित मृदु चरणों को अंकित कर नृत्य किया।'

राधा आगे कहती हैं—

अदियोक मायगा हृदयमंदुन स्वामि नटिंचु चुंडेनेन्नदि तेलियंगवच्चु, नयिनन् बति रुपमु गानुपिंच, दा पदमुलु कानुपिंचु, बतिपाद तलंबुलु चिल्क मुक्कु पू लेद वेदजल्लिनट्यि समृद्धिगबुल्कल पंट येपंडन्।

'यह सब कुछ कपट-व्यवहार-सा, स्वामी हृदय में दिखा रहा है। यह स्पष्ट ही है, पर पति का रूप दिखाई ही नहीं पड़ता। वे चरण ही दिखाई पड़ते हैं, पति के चरण तक तोते की चोंच ने मानो फूलों को बिखेरा है, वैसे ही पुलकों की फसल की श्रीवृद्धि हुई।' राधा प्रिय के चरण-कमलों की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं—

आ ललितं बुलौ नड्डुगु लंदमुदेच्चेनो मुन्नेरुं गगा
जातानो वानि यंदमु ? कुच द्वयिस्त्री तरमैंन मोह मैं
केल गदिंचि कौगिक गिंचग नेने तलंतु, स्त्रीलयुन्
स्त्रीलयु मध्यगा यनि वचिंचिति वे रनुकोकवे चेली ।

'री सखी ! वे कोमल चरण ही सौन्दर्य को लाये हों ? इसके पहले कदाचित् उनके सौन्दर्य को नहीं जानती हूँ ? इन कुच-द्वय को स्त्रीपरक मोह से पूर्ण हो हाथ से पास खींचकर गले लगाना चाहती हूँ, स्त्री-लोलुप को 'स्त्रीलयु-मध्य' कह बोल उठती हूँ। अन्यथा न समझें।'

राधा फिर अपने को सँभालती हैं—

निदुरनु मेलु कौंटिननि निश्चयमैनदि, यद्दिस्वप्नम-
न्नदि निजमैन दिंक नयिनन बुलकिंचुटयैन नायेदन
गदलुचु नुन्न यटलु पसिकालुलु तोचेडि मेलुकोन्नना-
येद, चिदि मेलुकोन्नदनुटे निजसा, कलये यिदा चेली ।

'यह निश्चित है कि मैं सुप्तावस्था से जाग उठी हूँ, अगर वह स्वप्न ही मानो सच हुआ है, मेरा हृदय पुलकित हो रहा है। ऐसे शिशुचरण दिखाई पड़ रहे हों मेरे जाग्रत हृदय में। क्या इसे जाग्रतावस्था कहना सच है ? या स्वप्न ! री सखी !'

राधा अपने कुच-द्वय पर अंकित चरणों में देवालय में प्रदीप्त दीपों की ज्योति का अवलोकन करती हैं—

व्रालिन नाथु पाद नख बंधुर दीप्ति गुच द्वयंबु वी-
पालि डिकोन्न देवलमुपैनि विमानमुलठ्लु तोचि, से
वा-लस-हस्तमुलु मोगुड्डु नातनि वेनक नटत्पयोधरां-
वोकित मूर्तिकिन मकर तोरण

वैखरि दालचे स्वामिकिन ।

'नाथ के चरण-नखों की दीप्ति में झुकने पर ये मेरे कुचद्वय दीपों के रखे हुए देवालय के ऊपर के विमान की तरह हैं। सेवा में लगे हुए ये मेरे जोड़े हुए हाथ ऐसे हैं मानो उसके पीछे नाचने पर पयोधरान्दोलित उस मूर्ति को, उस स्वामी को मकर-तोरण लगा हुआ हो।'

शृङ्गारवीथि में संयोग शृङ्गार के मादक चित्र स्मृति के रूप में अंकित हैं जिनमें हृदय की तरलता एवं गहराई विद्यमान है। भाव-वर्णन अत्यन्त मार्मिक, मनोहर एवं प्रौढ़ है।

डॉ० सत्यनारायण कृत गीत-काव्यों में उल्लेखनीय हैं—भ्रमर-गीत गोपिका-गीत तथा श्रीकृष्ण-संगीत। भ्रमर-गीत सौ छन्दों का संग्रह है। इसमें विरह में विभोर गोपियों की विरह-व्यथा का सजीव वर्णन मिलता है। इन गीतों में एक ओर गोपियों की सहृदयता और दूसरी ओर वाग्विदग्धता दर्शनीय है। इसमें विरह की द्वादश अवस्थाओं का सुन्दर व मनोहर विवेचन है।

गोपियाँ कहती हैं—

मन सिदि रेंडुगा सगमु मन्नुनु ताकुचु मिन्नु ताकि कों-
चुनु पयि सामु दिव्यमगुचोदुन नीयन भर्तगाग मा
मनसुन पाप मन्न यदि मालिन बैखरि चित्तगियुकों-
चुनु मनुचुंटि मल्ल यदुशूरुड्डु शूरत चूप षटपदा ।

'रे षट्पद ! यह मन दो भागों में विभक्त हुआ है। आधा भाग मिट्टी को छूता है (जो लौकिक है, शरीर-सम्बन्धी है), आधा भाग ऊर्ध्व दिशा को छूता है (जो अलौकिक है, आत्म-सम्बन्धी है)। आत्मा के बिना मन नहीं है। दिव्य आकाश में कृष्ण है, जो हमारा पति है। अतः कृष्ण को, भगवान् को, पति मानने में कोई पाप नहीं है। यही यदुवीर की शूरता है, दूसरों की शूरता शत्रु-संहार में दीख पड़ती है।' यहाँ परमेश्वर कृष्ण की शूरता सर्व जीवों के पालन में, पापों के उन्मूलन में, है।

अंतटि पाटलो यमुन यन्नदि नेरक पोवुचुंडगा
कांतलु मुनगि पोदुरनि कांतुडु वेणुवु पाट मान, मा
यंतट माकोडल्ल तेलियन यमुना नदि तप्पिकोंटि मा
यिंतटि प्रेम स्वामि येद नेमयि पोयनो चेप्पु । षटपदा ।

'हे षट्पद ! कृष्ण वेणु बजा रहे हैं। गोपिकाएँ उस मुरली की ध्वनि के आधार पर जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ जा रही हैं। जंगल काला है, रात काली है, यमुना काली है। गोपिकाओं को रास्ते का पता नहीं है। मुरली की ध्वनि ही एकमात्र उनका सहारा है। यमुना में गिरकर उनके मर जाने की सम्भावना है। अतः कृष्ण वेणु का बजाना बंद करते हैं। गोपिकाएँ तब फिर होश में आती हैं। यमुना का पता चलता है तो दूसरी ओर चली जाती हैं।' यह सारा प्रेम जो प्रिय के हृदय में है, वह कहाँ गया है ? वेणु की ध्वनि में तन्मयता है। वेणु जब बंद होती है तब फिर गोपिकाओं की लौकिक चेतना जगती है। कृष्ण ने इनमें भक्ति की प्रतिष्ठा ही की है, वैराग्य की भावना नहीं। संसार को छोड़ देने की सलाह नहीं दी गयी है। यही भक्ति की पराकाष्ठा है। इसमें निवृत्ति-परक वैराग्य-भावना नहीं है, प्रवृत्तिपरक भक्ति-भावना प्रतिष्ठित है, क्योंकि वेणु विद्यामाया का प्रतीक है।

भ्रमर-गीत एक उपालम्भ-काव्य है, जिसमें कृष्ण-प्रेम में गोपियों की विरह-दशा का वर्णन है। यह रागात्मिका वृत्ति का परिचय देता है।

गोपिका-गीत : यह शृंगारपरक रचना है। इसमें तीन खण्ड हैं। वे हैं—१. चिन्ता-खण्ड, २. अन्वेषण-खण्ड, ३. साक्षात्कार-खण्ड।

चिन्ता-खण्ड में गोपिकाएँ उद्विग्न हो कृष्ण के दर्शन के लिए लालायित होती हैं। एक गोपी कहती है—

नाकोक यूहु तेट्टडु मनुंबुन नंदर मोक्कसारिगा
लोकमु नेंच कन यमुनलो बडि पोदमुवेयि चेतुलं
गै कोन वच्चु स्वामि मरि कन्नुल कवुंनु दीरु विश्व रू-
पाकृति जूड नौ नु गद आपयि जच्चिन नेमि नष्टमौ ।

'मुझे मन में एक ही उपाय सूझ रहा है। वह यह कि हम सब लोक की चिन्ता न कर यमुना नदी में गिर जायेंगी, सहस्रबाहुओं से हमें स्वामी पकड़ने आयेंगे तो आँखोंभर उस प्रिय को देखेंगी, बाद में मर भी जायँ तो कोई हानि नहीं है।'

एक गोपी चरण-चिह्नों के आधार पर श्रीकृष्ण का पता लगाती है—

इदिगो यिंचोक पादचिह्नमु प्रभुंडिच्चोटनोम्यारपुं
बद मैं प्रक्कग गालु मोपि मडमं बैकेति निल्चुंडेने
पोदयुन् दग्गरलेदु काद येदियो थू तुंचगा नेंचेनं
चेद भाविषग स्वामि यी येरुगके हेलाकियं जेसेनो ?

'यह देखो। इधर एक चरण-चिह्न है। प्रभु इधर विलासपूर्वक अपने एक चरण को ऊपर उठाकर, एड़ी को ऊपर उठाकर खड़े हुए होंगे। इधर कोई निकुञ्ज भी नहीं है। हाँ, शायद किसी फूल को तोड़ने के लिए आये हों। यही मेरी भावना है, स्वामी ने इस हेला-क्रिया को कदाचित् अनजाने ही किया होगा।'

रा० शे० रा०

वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु

तेलुगु में प्रायः दो कवि एक साथ मिलकर काव्य-रचना करते हैं। ऐसे युग्म को 'जन्ट-कवुलु' कहते हैं। तिरुपति वेंकट कवुलु बीसवीं सदी के ऐसे ही युगल कवि हैं। वेंकट पार्वतीश्वर भी दो कवियों के युग्म का नाम है। इनकी एकान्त काव्य-सेवा ने तेलुगु-साहित्य को नया मोड़ दिया।

इस युग्म के कवियों के नाम हैं– बालांत्रपु वेंकट-राव तथा ओलेटि पार्वतीश्वर।

वेंकटराव श्रीमती सूरम्मा और श्री वेंकट नरसिंह के सुपुत्र थे। इनका जन्म सन् १८८० ई० में पिठापुरम् के निकट मल्लमु में हुआ था। इन्होंने अपना जीवन एक वकील-गुमाश्ता के रूप में प्रारम्भ किया था। समय मिलने पर ये काव्य-रचना भी किया करते थे। कुछ समय पश्चात् ये ओलेटि पार्वतीश्वर के सम्पर्क में आये। दोनों घनिष्ठ मित्र हो गये और एक साथ मिलकर काव्य-रचना करने लगे। दोनों कवियों को निकट लाने में एक घटना कारण बनी थी। आचन्ट सांख्यायन सम्पादित 'कल्पलता' के माध्यम से एक प्रतियोगिता हुई थी। इसमें ओलेटि पार्वतीश्वर प्रथम आये और वेंकटराव को तृतीय स्थान मिला। यहीं से दोनों मित्र हो गये। इसके पूर्व श्री वेंकटराव 'धनाभिरामम्' नामक एक नाटक तथा 'सुरस' नामक उपन्यास की रचना कर चुके थे। इनकी मृत्यु बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में हुई।

ओलेटि पार्वतीश्वर की माँ का नाम वेन्कम्मा और पिता का नाम अच्युत रामय्या था। इनका जन्म सन् १८८२ ई० में पिठापुरम के निकट कोमन्टिगिरि नामक स्थान में गौतम गोत्र में हुआ था। प्रारम्भ में ये छपाई का कार्य करते थे। बाद में श्री वेंकटराव के साथ मिलकर काव्य-रचना करने लगे। इनका निधन सन् १९५५ ई० में हुआ।

दोनों महापुरुषों ने मिलकर आन्ध्र प्रचारिणी ग्रन्थमाला नामक संस्था की स्थापना की थी। प्रचारिणी ने अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया। सन् १९३० ई० तक इससे लगभग १७० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे।

दोनों व्यक्ति बंगला भाषा जानते थे और बंकिमबाबू के उपन्यासों के प्रशंसक थे। इन्होंने बंगला के कई उपन्यासों का तेलुगु में अनुवाद भी किया था। इनके मौलिक एवं अनूदित उपन्यासों के नाम हैं—इन्दिरा, आरण्यक, उन्मादिनि, सीतारामम्, सीतादेवि-वनवासमु, नीरद, नीलाम्बरि, प्रणयकोपमु, प्रतिज्ञा पालनमु, प्रभावति, श्यामला, शकुन्तला, चंदमामा, राजसिंह, वसुमती-वसन्तमु, वीरपूज, राजभक्ति आदि। इनके अतिरिक्त 'एकान्त सेवा' (सन् १९२२ ई०) इनका प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ है। इसे तेलुगु की गीताञ्जलि माना जाता है। 'काव्य-कुसुमावलि' इनका दूसरा काव्य है। 'एकान्त सेवा' में भक्त अपने आराध्य परमात्मा को प्रेम-पत्र लिखता है। वह परम प्रियतम से अलग होने के कारण दुःखी है। उसकी वेदना इन शब्दों में व्यक्त हुई है—

(१)

विरिदंड मेडलोन वेयुटे कानि
कन्नार नीमूर्तिन् गांचने लेदु
प्रणमिल्लि यड्डुगुलन् बडयु टये कानि
चेतुलारन्ग सेव चेयने लेदु
निनु गान्चि मुग्धनै निल्चुटे कानि
प्रेम दीरंग बल्करिन्पने लेदु
एमेमो मनसु लो नेन्चुटे कानि
तिन्नगा न कोर्के देलुपने लेदु

—एकान्त-सेवा

(२)

आ मनोज्ञ वृन्दावन मन्दु मनमु
आ महा यमुना नदि यन्दु मनमु
आ विनूत्न वीचि कलयन्दु मनमु

…………………………………

तिरिगि विहरिन्चि खेल नोद्रिक्त मतिनि
गूडि चरिइन्चि सुखमुलन् ग्रोल्ल लाडि
येक वृत्ति दिनम्बुलनेक मट्लु
निमिषमुल यट्लु जरपिन नियति येल्लन्
ब्राण नायक थेमरु पादु नैनन्
दलंचुकोन बोकु मय्य ! चिंतंबु नन्दु।

—काव्य-कुसुमावलि के पूर्व स्मृति से

मधुर भक्ति में लीन भक्त अपने भगवान् से कह रहा है— 'मैंने तुम्हें माला पहनायी है, पर आँखभर देख नहीं पायी हूँ। हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए

तुम्हारे चरणों को मैंने छुआ है, पर अपने हाथों से सेवा नहीं कर पायी हूँ। तुम्हारे मनमोहक रूप को देखकर मैं ठगी गयी थी। देखते ही खड़ी-खड़ी देखती रही। पर तुमसे मैं बात नहीं कर पायी हूँ। मैं तो तुमसे बहुत कुछ कहना चाहती हूँ, पर मन की बात तुम्हें नहीं बता पा रही हूँ।'

'वृन्दावन में हम थे। यमुना-तरंगों में भी हम थे। हर कहीं घूमा करते थे। मन में खेलने की अदम्य इच्छा रहती थी। इस इच्छा के कारण हमने अनेक दिनों तक सुखों का एकरस भोग किया है। वे दिन तो यों ही एक पल के समान बीत गये। हे मेरे प्राणनाथ! उन अनुभवों को भूलकर भी स्मरण न करना अर्थात् स्मरण कर बुरा मत मानना।'

वास्तव में वेंकट पार्वतीश्वर कवुलुकृत 'एकान्त-सेवा' तेलुगु-साहित्य की अमूल्यनिधि है।

सा० प्र०

वेंकटामात्य दिट्ट कवि

वेंकटामात्य की रचनाएँ नहीं मिल रही हैं, किन्तु कवि और उनके सम्बन्धियों के विषय में थोड़ी-बहुत सूचनाएँ इधर-उधर लिपिबद्ध हैं। ये ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १६१० ई० में हुआ था। काश्यप गोत्रोद्भव वेंकटामात्य आपस्तम्ब-सूत्रों को मानते थे। इनका जन्म वेणुतुरुपल्लि-वंश में हुआ था। इनके पितामह कविता लिखने में सिद्धहस्त थे। सिद्धहस्त को तेलुगु में 'दिट्टा' कहते हैं। इसलिए वेणुतुरुपल्लिवालों को तब से लोग 'दिट्ट कवि' कहने लगे थे। वेंकटामात्य के पिता विश्वनाथ कवि पेद्दापुरम के संस्थापक अधिपति श्रीवत्सवाय चतुर्भुज तिम्म जगपति महाराज के दरबार में थे। तिम्मराजु को विश्वनाथ कवि ने अपने काव्य 'शेषधर्म' का कृतिपति भी बनाया था।

वेंकटामात्य के शिष्य ईदुल पल्लि भवानीश कवि ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनके अनुसार श्री वेंकटामात्य जन्मजात कवि थे। वह बचपन से ही तेलुगु और संस्कृत में रचनाएँ करने लगे थे। 'श्री विष्णु-पुराणम्' इनकी प्रौढ़ रचना है। एनुगु लक्ष्मण कवि ने, जो इनके सम्बन्धी थे, भी इनकी प्रशंसा की है।

वेंकटामात्य कवि गोदावरी-मण्डल के द्राक्षाराम के निवासी थे। इनकी मृत्यु सन् १६८० ई० में हुई थी।

सा० प्र०

वेटूरि प्रभाकर शास्त्री

वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का जन्म सन् १८८३ ई० में हुआ था। ये उच्चकोटि के कवि, समालोचक एवं अनुसन्धान-कर्ता थे। इन्होंने पहले मद्रास के प्राच्य हस्तलेख भण्डागार में तथा तदनन्तर तिरुपति में अनेक वर्षों तक हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों का सम्पादन तथा संशोधन करके उनके लिए प्रामाणिक और शोधपूर्ण भूमिका-लेखन का कार्य किया। 'हरविलास' और 'क्रीडाभिराम' इत्यादि की भूमिकाएँ शास्त्रीजी की इस प्रतिभा की परिचायक हैं। इन्होंने 'कपोत-कथ', 'विश्वासमु', 'कडुपुतीपु' तथा 'मुन्नाल्लमुच्चट' आदि खण्ड-काव्यों की रचना की। इसके अतिरिक्त इनके कुछ निबन्ध-संग्रह भी मिलते हैं, यथा—'तेलुगु-मेरुगुलु', 'मीगड-तरगलु' आदि। आजीवन साहित्य-सेवारत शास्त्रीजी का सन् १९५० ई० में गोलोकवास हो गया।

बा० रे०

वेणुतुर्ल ओड्डेय्य कवि

'श्रृंगार-रसालवमु' और 'बालगोपाल-विलासमु' नामक दो काव्यों के रचयिता वेणुतुर्ल ओड्डेय्य कवि रायलसीमा के कर्नूल जिले के वेणुतुर्ल ग्राम के निवासी थे। कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् अपने 'कवुल चरित्रमु' (तृतीय भाग) में ओड्डेय्य कवि का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि इस कवि के समय के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

ओड्डेय्य कवि द्वारा रचित 'वालगोपाल-विलासमु' नामक ग्रन्थ के लिए आमुख लिखते हुए श्री पेन्ड्याल वेंकट सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इतिहास के आधार पर यह बात कही है कि वेणुतुर्ल ओड्डेय्य कवि सन् १६०० ई० के आसपास रहे होंगे। तर्क-वितर्क के बाद डॉ० आरुद्र और श्री चागन्टि शेषय्या ने श्री शास्त्रीजी के कथन का समर्थन किया है।

'शृंगार-रसालवालम्' नामक तीन सर्गोंवाले अपने काव्य के अन्त में इन्होंने लिखा है—"इदि (यह) श्रीमद्रामभद्र करुणाकटाक्ष लब्ध कविता चमत्कार वेणुतुर्ल कुलालंकार कौन्डिन्यस गोत्र पवित्र वेन्गनार्य पौत्र साधु चारित्र मंगलगिरि पुत्र विनय-गुणधुर्यं वड्डि कविवर्यं प्रणीतम्वैन (लिखित) शृंगार-रसालवमु।" ग्रन्थ को भगवदार्पण करते हुए ये अन्त में लिखते हैं—

"मैं श्री रघुवीर भक्ति-रस-सिन्धु में विहार करनेवाला हूँ। शुक्ल याजुषाचार हूँ। देशिकांघ्रि-परिचारक हूँ। कविसद्म में श्री रामचन्द्र के नाम पर 'शृंगार-रसालवालम्' नामक काव्य की रचना कर रहा हूँ।"

'शृंगार-रसालवालम्' शृंगाररसप्रधान काव्य है। इसमें कुल तीन सर्ग हैं। इसकी कथा 'हरिवंश' से ली गयी है। इस काव्य में नायक और नायिकाओं के लक्षणों का विशद वर्णन है। श्रीकृष्ण इस काव्य के नायक हैं। नग्नजित नामक कोसल देश की राजकुमारी नीला के साथ श्रीकृष्ण का विवाह सम्पन्न होता है। कूचिमन्चि तिम्मकवि ने आगे इसी कथा-भाग को लेकर 'नीलसुन्दरी-परिणयम्' नामक ग्रन्थ की रचना की है।

एक मुदिता कृष्ण के सम्बन्ध में इस प्रकार विचार कर रही है—

मन्दकुन् बोये न मगन्डु, मामकुन् जूपुलु मन्द मत्तकुन्
मुन्दुगन् तोरपुन् जेवुडु मोहन रूप धरुन्डु कृष्णुन्डॅ
पोन्द समीप गेहमुन नुज्जवल लील वसिन्चि युन्डुनो
इन्दुनिभास्य ! नेम्मदि मदीप्सित मुल कलियिम्प कुन्डुने

'पशुओं के झुण्ड को लेकर चराने के लिए मेरा पति गया है। मेरे मामाजी को ठीक तरह से दिखायी नहीं देता है। सास तो बहरी है। मोहनरूपधारी कृष्ण अगर समीपवाले गृह में रहें तो क्या मेरी मनोवाञ्छा पूरी नहीं हो सकती ?'

'बालगोपाल-विलासमु' की कथा भी हरिवंश से ही सम्बद्ध है। कवि ने इस काव्य की रचना का उद्देश्य कृष्ण-लीला-वर्णन कहा है।

सा० प्र०

वेदुल सत्यनारायण शास्त्री

श्री वेदुल शास्त्री का जन्म २२ मार्च सन् १९०० ई० में कंचर्ल गोपन्न, जो भद्राचल रामदास के नाम से विख्यात है, नामक पावन क्षेत्र में हुआ था। ये श्रीमती गुरम्मा और श्रीकृष्णय्या के सुपुत्र थे। इन्होंने गुरुकुल में रहकर श्री गोटटुपुल्ला श्रीनिवासाचार्युलु से काव्य, नाटक और अलंकारों का अध्ययन किया था। श्री श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री इनके कविता-गुरु थे। ये अपने समय के अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आये और तेलुगु, संस्कृत और बंगला भाषाओं के अच्छे जानकार थे।

स्नातक बनने के पश्चात् इन्होंने काकिनाड़ा, पेद्दापुरम् और पेरुरु में अध्यापन-कार्य किया। कृष्णा-गोदावरी मण्डल के अनेक जमींदारों द्वारा ये सम्मानित भी हुए। श्री देवुल पल्लि कृष्णशास्त्री के सम्पर्क से ये पाश्चात्य कविता की रमणीयता से परिचित हुए तथा इनकी प्रतिभा अधिक विकसित हो गयी।

इन्होंने कई खण्ड-काव्यों की रचना की है, जिनमें—दीपावलि, विमुक्ति, मातल्लि, आराधना तथा मुक्तावलि मुख्य हैं। इनकी कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं। एक कविता में इन्होंने

पुष्प बनकर मातृभूमि के लिए न्योछावर होने की कामना व्यक्त की है।

श्री वेदुल श्रेष्ठ उपन्यासकार और नाटककार भी थे। 'अपराधिनि', 'धर्मपालुडु' तथा 'रंगमहलु' आपके रचित उपन्यास हैं और 'राणा प्रताप', 'अयेषा' एवं 'प्रेम-विजयमु' नाटक।

ये मधुर भाव के उपासक थे। अपने को स्त्री और परमात्मा को पुरुष मानकर इन्होंने मधुर भक्तिप्रधान कविताओं की रचना की है। इनके मत से राधा तथा गोपिकाएँ मधुरा भक्ति की साकार रूप हैं। कृष्ण की प्रत्येक वस्तु से, विशेष रूप से वेणु से इनका गहरा प्रेम है। वेणु पर लिखी गयी इनकी कविताएँ इसका प्रमाण है।

कृष्णासक्तिव्यंजक इनके दो छन्द प्रस्तुत हैं—

(१)

कनु लेत्ति कनि नंतन् गरन्गि पोइतिनि
माटलाडिन यंत ममतनु गोन्टि
पाटन् बाडिन यंतन् बरवश नैति
दरिचेरि नंतने दासिनै पोति
कन्नुलन् जिरुनव्वु वेन्नल गुरियु
वलपु पिल्लन ग्रोवि वाइन्चु नतनि
पादाल सुममाल पगिदि व्रालितिनि
मुडितेने कन्नीट नडुगुलु गडिगि
तोयनि वलपुल पाय न मिच्चि
उन्टि नीकै यनि यन्टि।

-कन्नीटि पाट–दीपावलि से

गोपिका या राधिका के रूप में कृष्ण के प्रति आत्मार्पण करते हुए ये कहते हैं—'एक बार आँख उठाकर देख लो, मैं गल जाऊँगी। बातें करो तो मुझमें ममता बढ़ेगी। तुम गीत गाओ, मैं अपनी सुध-बुध भूल जाऊँगी। मुझे अपने पास आने दो। मैं तुम्हारी दासी बनकर सेवा करूँगी। अपनी आँखों से हँसी या मुस्कराहट की चाँदनी बरसाते हुए मनमोहक ढंग से बाँसुरी बजानेवाले कृष्ण के चरणों पर गिरकर अपने आँसुओं से उनके चरण-द्वय को धोऊँगी। इतना ही नहीं, अपने इस मीठे नवयौवन को उनके लिए अर्पित कर दूँगी। हे प्रभु ! उक्त संदेशा मैं आपके यहाँ भेज चुकी हूँ।'

एक और उदाहरण देखिये—

(२)

नीगीति विश्वमंता गोन्तुविडि पाडु
नीतोड प्राण लीला तान्डवम्माडु
ओ दिव्य गायका
ओ प्राण नायका
एदि इन्कोक्क मारुदरा नी मुरलि
नालो नेडु वृन्दावनमु विरिसिनदि
नालो नेडु यमुना तटिनि मेरसिनदि
ए वसंता निलमो
ए गान कलकलमो
ई ना येडद निन्डा निन्डि पोइनदि
ओ दिव्य गायका
ओ प्राण नायका
एदि इन्कोक्क मारुदरा नी मुरलि
आनंद लेश मैना नोच्चु को लेदु
रा, ना प्रवास पाषाण जीवनमु
भाग्य सुम वासनलो
पुण्य फल माधुरुलो
नीपाट तोपि नेडे पोंगुचुन्नविर
ओ दिव्य गायका
ओ प्राण नायका
एदि इन्कोक्क मारुदरा नी मुरलि

–'मुरलि' दीपावलि से

प्रिय के प्रवास के कारण दुःखी राधिका या गोपिका दिव्य गायक और प्राण-नायक श्रीकृष्ण से विनती कर रही है–'हे कृष्ण ! फिर एक बार अपनी बाँसुरी बजाओ। सारा विश्व तुम्हारे गीतों को मुक्त कण्ठ से गा रहा है। तुम्हारे सहवास के

लिए सबके प्राण मचल रहे हैं। आज मैं ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि मैं स्वयं वृन्दावन बन गयी हूँ। मुझमें ही यमुना भी बह रही है। वसन्त ऋतु का आगमन मेरे मनरूपी उपवन में हो गया है। पक्षियों के कलरव से मेरा हृदय गूँज रहा है। मैं तो अभागिन हूँ। प्रवास के कारण मैं पाषाण हृदय-वाली बन गयी हूँ। तुम्हारे साथ बीते आनन्दमय जीवन का लेश भी मैंने अनुभव नहीं किया है। लगता है, अब मेरा भाग्य जाग रहा है। फिर से वे गीत मेरे हृदय में लहरें मार रहे हैं। हे कृष्ण! हे मेरे प्राणनायक! फिर एक बार अपने वेणु-गान से मुझे आनन्दित करो।'

तन्मयता वेदुल की कविता की विशेषता है। इनकी मृत्यु बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में हुई।

सा० प्र०

वेन्नेलकंटि सूरना

अमर मंत्री के आत्मज वेन्नेलकंटि सूरना का रचना-काल सन् १४८० ई० से १४९० ई० तक माना जाता है। ये रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'विष्णु-पुराण' का तेलुगु में काव्यानुवाद किया था। सूरना ने विष्णु-पुराण के प्रथम भाग का ही रूपान्तर किया है, जिसमें भगवान् विष्णु की महिमा तथा श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है। यह काव्य राघव रेड्डी को समर्पित है। श्री राघव रेड्डी अनवेमा रेड्डी के वंशज थे। 'विष्णु-पुराण' के षष्ठ आश्वास में कृतिपति राघव रेड्डी को सूरना कवि ने इस प्रकार सम्बोधित किया है—

'चाटु तर प्रबन्ध कवि! सन्नुत! सेगरपार्थ!
धीरता हारक शैल! नित्य विनय प्रतिभा विभवाढ्य
भूमि भृत्कूटगुहावहिदत्य नृपकुञ्जर! सेगडि रक्षकणीर
नरेन्द्रदत्त समुदंचित शाश्वत राज्यवैभवा।'

इनकी कृति विष्णु-पुराण द्राक्षापाक-शैली में लिखित है, कविता प्रवाहपूर्ण तथा सरस है।

बा० रे०

वेमना

सत्रहवीं शती मात्र विजयराघव नायक, कवि चौडप्पा, रंगाजम्मा, चेमकूर वेंकट कवि, मुद्दु पलनि जैसे शृङ्गारी कवियों के लिए ही नहीं, वेमन जैसे क्रान्तिकारी समाज-सुधारकों के लिए भी प्रसिद्ध है। जन-भाषा में सामान्य जनों की समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता वेमन की वाणी में थी। वेमन वास्तव में आन्ध्र देश के कबीर हैं। ये प्रकृत्या कवि नहीं थे, पर इनकी वाणी में वह प्रवाह था जो विरले कवियों में ही प्राप्त होता है। "इनमें तत्त्व को अल्प शब्दों में प्रकट करने की अद्भुत शक्ति थी।"

इनका जन्म सन् १६५० ई० में हुआ था। जन्म-स्थान चित्तूर जिले के चन्द्रगिरि तालुके में स्थित मूर्गचितल पल्लि था। इनके पिता का नाम रेड्डेन्न था। वेमन्न एक सम्पन्न परिवार के थे। अज्ञात कारणों से इनके परिवार के लोगों को मूर्गचितल पल्लि छोड़कर कोण्डवीडु जाना पड़ा। यहीं वेमन की पढ़ाई-लिखाई हुई थी। ये सोमशेखरम् नामक विद्वान् के शिष्य थे। उन्हींके कारण इनमें कविता करने की शक्ति आ गयी थी। इन्होंने 'आट वेलदि' नामक छन्द में अपने भावों को प्रकट करने की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है। आरम्भ में भोगी थे, बाद में योगी बन गये। कैसे बने? इसके सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है। वह इस प्रकार है।

एक बार एक वेश्या ने वेमना से इनकी भाभी के गले का आभूषण माँगा। भाभी से वेमना ने उस आभूषण को देने को कहा। भाभी इन्हें बहुत चाहती थी। उनके लिए वेमना पुत्र से भी बढ़कर था। उनकी इच्छा थी कि वेमन सुधर जाय। इसलिए उन्होंने वेमना से कहा—"ले जाओ, पर एक शर्त है। वेश्या से पहले नंगी हो जाने के लिए कहो। जब उसकी पीठ तुम्हारी तरफ हो तब झुककर अपनी दो जाँघों के बीच से इसे लेने के लिए कहो।" वेमना ने वैसा ही किया। वेश्या नंगी होकर आभूषण लेने के

लिए तैयार हो गयी। नंगी और झुकी हुई वेश्या को आभूषण लेते हुए वेमना ने देखा। इनके हृदय में परिवर्तन आ गया। इनके मन में उसकी ओर से वितृष्णा हो गयी। इस घटना ने इन्हें भोगी से योगी बना दिया।

वेमना कबीर के समान जात-पाँति के विरोधी थे। इन्होंने बाह्याडम्बर का खण्डन किया और मूर्ति-पूजा का जोरदार शब्दों में विरोध किया। इनकी भाषा प्रायः चुभती होती थी। ये स्पष्टवादी थे। इन्होंने धार्मिक अन्धविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों पर कड़े प्रहार किये। आज आन्ध्र में कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो अपने भावों को प्रकट करने के लिए 'वेमन-शतकम्' की किसी पंक्ति का प्रयोग न करता हो। इनके द्वारा प्रयुक्त शब्द लोकोक्तियाँ बन गयी हैं।

निर्गुण निराकारवादी होते हुए भी इनकी कृतियों में वैष्णव-भक्ति के निर्मल स्वरूप का दर्शन होता है। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(१)

पाल सागर मुन पव्वलिचिन स्वामि
गोल्ल इन्ड्ल पालु गोर नेल
एदुटि वारि सोम्मु एल्लवारिक प्रीति
विश्वदाभि राम विनुर वेमा।

'क्षीरसागरशायी कृष्ण गोपिकाओं के घरों में घुसकर दूध क्यों पिया करते थे? इस प्रश्न का उत्तर वेमन यों देते हैं—पराया माल किसको नहीं भाता है?"

(२)

भक्ति युन्न चोट परमेश्वरुंडुड
भक्ति लेनि चोट पाप मुन्डु
भक्ति कलुगुवाडु परमात्मुडेनया विश्व···वेमा

'जहाँ भक्ति है, वहाँ भगवान् है। जहाँ भक्ति नहीं है, वहाँ पाप वास करता है। जिसमें भक्ति है वही परमात्मा है।'

वेमना की मृत्यु सन् १७२५ ई० के आसपास हुई थी। लोगों का विश्वास है कि यह घटना अनन्तपुरम जिले के कटारुपल्लि (कदिरि तालुका) में घटी थी। इनकी समाधि आज भी कटारुपल्लि में विद्यमान है।

सा० प्र०

वेमुलवाड भीमकवि

वेमुलवाड भीम कवि तेलुगु-साहित्य के स्पष्टवादी कवि माने जाते हैं। अनेक कवियों ने इनकी प्रशंसा की है। ईसा की १४वीं और १५वीं शताब्दी में विद्यमान श्रीनाथ इनकी स्पष्टवादिता पर प्रकाश डालनेवाले प्रथम कवि हैं। इनके अतिरिक्त अन्य परवर्ती कवियों ने भी इनके विषय में लिखा है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि भीमकवि, कवि भीम थे। ये छन्द-ग्रन्थ के रचयिता, लक्षणकार और ईश्वरानुरागी कवि हैं। जनश्रुति के अनुसार इन्होंने 'कवि जनाश्रय', 'राघव पाण्डवीयम्' (द्व्यर्थी काव्य), 'शतकण्ठ रामायण', 'नृसिंह पुराणम्' आदि ग्रन्थों की रचना की है। किन्तु दुःख की बात है कि उक्त रचनाओं में से एक भी आज प्राप्त नहीं है। आज ये तेलुगु-साहित्य में केवल अपनी फुटकर रचनाओं के कारण जीवित हैं।

ये नन्नय के समकालीन थे। कुछ आलोचक इन्हें कवि तिक्कन का पूर्वज मानते हैं। कतिपय विद्वान् इन्हें चौदहवीं शताब्दी का कवि बताते हैं। प्राप्त फुटकर रचनाओं के आधार पर श्री चागन्टि शेषय्या, एन० वेंकटराव, डॉ० आरुद्र आदि इन्हें ईसा की बारहवीं शती का कवि ठहराते हैं। अपने बारे में एक फुटकर रचना में वेमुलवाड भीमकवि ने इस प्रकार कहा है—"मैं वेमुलवाडा वंशज हूँ। दाक्षाराम के भीमेश्वर का पुत्र हूँ। अनेक काव्यों का कवि हूँ। मेरा नाम भीमन है।" इसी पद्य में आगे इन्होंने लिखा है—'हे राजा! कस्तूरी, घनसार आदि सुगन्धों को मँगाओ।" कस्तूरी, घनसार आदि शब्दों के प्रयोग से पता चलता है कि ये विलासप्रिय थे।

इनके मुँह से निकली हुई बातें प्रायः सत्य सिद्ध होती थीं। इस सम्बन्ध में कई कथाएँ मिलती हैं। ऐसी ही एक कथा के अनुसार एक बार भीमकवि कलिंग के अधिपति चोड़ गंगदेव को देखने गये। राजा इनके बारे में जानना चाहते थे। इन्होंने लिखकर भेजा कि "मैं शाप दे सकता हूँ। इतना ही नहीं, मैं सभी कवियों के सिर को काटनेवाली आरी हूँ।" राजा को यह पढ़कर क्रोध आ गया। उसने कहलवा भेजा-"अभी समय नहीं है, बाद में मिलूँगा।" कर्मचारी के मुँह से यह सुनकर कवि ने शाप दिया कि "बत्तीस दिनों के बाद तुम अपने राज्य को खो बैठोगे।" इनकी वाणी सच सिद्ध हुई। राज्यच्युत राजा दर-दर की ठोकरें खाता हुआ एक दिन गर्त में गिर गया। उसी मार्ग से जाते हुए भीमकवि के पूछने पर राजा ने उत्तर दिया—"कवि भीम का शाप भोग रहा हूँ।" प्रश्नकर्ता को पहचानकर राजा ने उनसे क्षमा माँगी। भीमकवि ने तुरन्त क्षमा कर दिया। अपने शाप को भी इन्होंने वापस ले लिया। राजा को फिर से राज्य मिल गया। इनके चमत्कार की अनेक और कथाएँ भी प्रचलित हैं।

ये आदिकवि नन्नय के समकालीन थे। एक दन्त-कथा के अनुसार नन्नय इनसे ईर्ष्या करते थे। उनको भय था कि वेमुलवाड भीमकवि के 'राघव पाण्डवीयम्' के सामने उनकी 'महाभारत' टिक नहीं सकती। इसलिए उन्होंने उसे नष्ट कर दिया। इसे सुनकर भीमकवि ने नन्नयकृत 'आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि' को गोदावरी में बहा दिया। कुछ लोगों का विश्वास है कि वेमुलवाड भीमकवि के शाप के कारण ही नन्नय आदि तथा सभापर्व के बाद अरण्यपर्व को समाप्त नहीं कर पाये थे।

तेलुगु-साहित्य में इनके समान विवादग्रस्त दूसरा कोई कवि नहीं है। मात्र फुटकर रचनाओं के बल पर 'कवि भीम' कहलानेवाला तेलुगु-साहित्य में कोई नहीं है। सरलता भीमकवि की विशेषता है। यहाँ इनका एक पद उद्धृत किया जा रहा है—

वसुमति लो जिरकालमु
मशकंबै मनुटकंटे मदकरि कुंभ
प्रसनंबगु सिंहंबै
मसलुट योक गडिय चालु मैलम भीमा।

'मक्खी के समान लम्बी आयु पाकर कई वर्षों तक जीने से क्या लाभ है? इससे, हाथी के कुम्भस्थल पर वार करनेवाले शेर बनकर चाहे एक घड़ी ही क्यों न सही, जीना उत्तम है, श्रेयस्कर है।'

'राघव पाण्डवीयम्' नाम से ही स्पष्ट है कि राम और कृष्ण दोनों अवतारों में इनकी समान निष्ठा थी।

सा० प्र०

वेलगपूडि वेंगन्न

लीलाशुक कवि द्वारा विरचित 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' एक सुप्रसिद्ध रचना है। इसका सफल अनुवाद सोलहवीं शती के वेलगपूडि वेंगन्न ने किया था। वेलगपूडि वेंगन्न पेद्दयामात्य के पुत्र थे। लीलाशुक आचार्य सोमगिरि के शिष्य थे। ठीक इसी प्रकार वेलगपूडि वेंगन्न के गुरु का नाम कृष्णाश्रय था। वेलगपूडि-वंश कवियों का कुल माना जाता है। इस वंश में जन्म लेनेवाले कवियों के द्वारा रचित ग्रन्थों के नामों की चर्चा १८वीं शती के वेलगपूडि कृष्ण कवि ने अपने 'भानुमद्विजयम्' नामक ग्रन्थ में की है। डॉ० आरुद्र के विचार से वेंगन्न ने 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' के अतिरिक्त और दो ग्रन्थों—गांगेयोपाख्यानम् और सुमन्तोदयम्—की रचना की होगी। तेनालि रामकृष्ण कवि के भानजे लिंगम् गुन्ट तिम्मन्न ने अपने 'सुलक्षण-सारम्' में वेलगपूडि वेंगन्न द्वारा अनूदित 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' से कुछ उदाहरण दिये हैं। उनके आधार पर वंगोलु सुब्बाराव (शतक-कवुल-चरित्र) अनुमान लगाते हैं कि वेंगन्न सन् १५३० ई० के पहले विद्यमान रहे होंगे। डॉ० आरुद्र का मत है कि वेंगन्न पर पोतन का प्रत्यक्ष प्रभाव है और पेद्दन्न का अप्रत्यक्ष। वेंगन्न की अनुवाद-शैली सरल होते हुए भी सार्वजनीन नहीं है। इसका कारण

संस्कृत के 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' की सुगम एवं सरल शैली है।

तेलुगु प्रदेश का विद्वत्समुदाय 'कस्तूरीतिलकम्' श्लोक से सुपरिचित है। इस श्लोक का अनुवाद वेंगन्ना ने इस प्रकार किया है—

नुदुटन् गस्तुरि बोट्टु नासिक तुदन्मुत्तेम्बु श्री गन्ध सं
पद नेम्मेन गरम्बुलन् गटकमुल्वम्शम्बु हस्ताग्रमम्
डेदपै निस्तुलु कौस्तुभम्बु नरुतन् श्रृंगार हारंबु निम्
पोदवन् कृष्णुड्डु गोपिकावृतुड्डु सर्वोत्कृष्टुडै वर्तिलुन्।

'माथे पर कस्तूरी का तिलक है, मोती की नथुनी है, शरीर पर श्रीगन्ध का लेप है, करों में कंकण है, हाथों में वेणु है, हृदय पर कौस्तुभमणि विराजमान है। गले में हार के साथ सुशोभित कृष्ण गोपिकाओं के साथ अति शोभायमान दिखाई दे रहे हैं।'

एक अन्य पद में वेंगन्न श्रीकृष्ण का प्रशस्ति-वर्णन इस प्रकार करते हैं—

पायनि भक्ति म्रोक्केद नपारकृपा रस धेनु सौख्य स
धाइकि लोक रक्षण विधाइकि भासुर राधिका कुच
स्थाइकि बन्नगाधिप विशाल फणामणि सौघ वोधिका
शाइकि गोपिका नयन सार ससार फल प्रदाइकिन्।

'अपार कृपा-रसवाले श्रीकृष्ण, जो कामधेनु के समान सुख देनेवाले हैं, जो लोकरक्षक हैं तथा पृथ्वी के भार को सँभाल रहे हैं, जो दीप्त कुचवाली राधिका के वल्लभ हैं, जो आदिशेष के फण पर सोनेवाले हैं, जो गोपिकाओं के नयन-कमलों को कृतार्थ करनेवाले हैं, उनको मैं अत्यन्त आदर और भक्ति के साथ नमस्कार करता हूँ।'

सा० प्र०

वेलिगन्दल नारय

आन्ध्र महाभागवत के कर्ताओं में एक नारय भी हैं। इन्होंने भागवत के बारह स्कन्धों में से ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धों को पूर्ण रूप और दशम स्कन्ध के उत्तरभाग को आंशिक रूप से पूरा किया था। ये बम्मेर पोतन के प्रिय शिष्य थे। प्रत्येक सर्ग के अन्त में दी गयी पुष्पिका में इन्होंने लिखा है—(यह) 'परमेश्वर करुणाकलित कविता विचित्र केसन मन्त्रि-पुत्र सहज पाण्डित्य पोतनामात्य प्रियशिष्य वेलिगन्दल नारय नामधेय' द्वारा प्रणीत काव्य है।

नारय परम गुरु-भक्त थे। दशम स्कन्ध के उत्तर-भाग के कवि होते हुए भी इन्होंने अपना नाम सर्गान्त गद्य में लिखना उचित न समझकर उसे छोड़ दिया। एकादश और द्वादश स्कन्धों में वेलिगन्दल नारय का नाम है।

कुछ आलोचक मानते हैं कि सम्पूर्ण भागवत पोतना की ही रचना है। पर श्री गण्टि शेषय्या इससे सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि दशम स्कन्ध को लिखते समय पोतन का निधन हो गया होगा, इसलिए उनके प्रिय शिष्य नारय ने शेष स्कन्धों की रचना कर काव्य को पूरा किया होगा।

एकादश-द्वादश स्कन्धों के आधार पर कवि नारय के सम्बन्ध में हम केवल इतना ही जान सकते हैं कि ये वेलिगन्दल गाँव के निवासी नियोगी ब्राह्मण थे। आज वेलिगन्दल को करीमनगर नाम से जाना जाता है। मडिकि सिंगन के कृतिपति कन्दनामात्य भी इसी ग्राम के निवासी नियोगी ब्राह्मण थे।

नारयकृत एकमात्र उपलब्ध कृति 'भागवत' है। इनकी कविता पोतन की कविता जैसी उत्कृष्ट न होते हुए भी सरल, सुबोध तथा लोकाकर्षक है।

गंगन, सिंगन और नारय तीनों समकालीन कवि थे। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि नारय ने एकादश, द्वादश स्कन्धों के साथ दशम स्कन्ध के उत्तरभाग की रचना की है। इन्होंने उक्त ग्रन्थ के शिथिल भाग को पूरा किया है। नारय ने उपर्युक्त ग्रन्थांश की रचना सम्भवतः सन् १४९०–१५०० ई० के बीच की थी।

सा० प्र०

वेलिदंड्ल वेंकटपति

वेलिदंड्ल वेंकटपति १८वीं शताब्दी के कवि

हैं। ये वेणुगोपाल के उपासक शृंगारी भक्ति थे। पिता का नाम तिरुवेंगल था। माता के नाम का कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। इनका जन्मस्थान प्रलय कावेरी (पुलिकाटु) था, जो मद्रास प्रदेशान्तर्गत चेंगलपट्टु जिले में है। ये कवि सार्वभौम विरुदांकित थे। ठेठ तेलुगु में हजारों कविताएँ लिखकर इन्होंने 'अच्चतेलुगु' (ठेठ तेलुगु) के कविरूप में लोकप्रसिद्धि प्राप्त की थी। इनका 'राधामाधव-संवाद' शृंगार-रसप्रधान प्रबन्धकाव्य है। इसमें तीन आश्वास हैं।

प्रथम आश्वास में मंगलाचरण तया इष्टदेव श्रीकृष्ण के स्तवन के अनन्तर कवि ने कथा का प्रारम्भ संवाद-शैली में किया है। मिथिला नगर के राजा जनक ने समस्त अवतार-कथाओं का श्रवण करते-करते एक दिन योगिराज शुकदेव से कृष्ण-लीला को सुनाने की विनम्र प्रार्थना की। शुकदेव ने उनकी भक्तिपूर्ण बातों से पुलकित होकर यदुकुल-वीर की प्रशंसा कर कमलनयन के ध्यानानन्तर प्रणाम कर पापों के शमन होने पर यों बोले—"हे जनक-राजेन्द्र! श्रीकृष्ण की शृंगारपरक कथा सुनिये।" इसके अनन्तर श्रीकृष्ण-जन्म-सम्बन्धी कथा वर्णित है। नन्द की प्रिय एवं छोटी बहन राधा है। उसका विवाह बचपन में ही एक बुद्ध से हुआ है। राधा पति के घर नहीं जाती, क्योंकि वह गोप उसको देखते ही लजाता है। राधा सयानी हो गयी है।

वेन्नेलनु जलुव पुट्टिन
चेन्नुन बुव्वुलनु दावि चेलगिन रीतिन्
गन्निय सकलांगबुल,
दिन्नग नोक वित वोद में दिन दिनमुनकुन् ॥
(१.१३)

'जैसे ज्योत्स्ना में शीतलता होती है, फूलों में सुगन्ध निकलती है, कन्या के शरीर के सब अंगों में, धीरे-धीरे दिन-प्रतिदिन एक अनोखी बात घटती है।'

राधा ने पूर्वकाल में तप किया होगा, वह नित्य बालगोपाल के साथ खेलती है। उसे उठाती है, चूमती है, पुचकारती है, नहलाती है, खिलाती है, बैठाती है (१.१५, १६)। एक दिन गोपियाँ राधा से शिकायत करती हैं कि कृष्ण हमारे घर आकर दूध-मक्खन की चोरी करता है। यह उसके अनुरूप काम नहीं है, तो राधा कहती है कि "हे मनोहर! इधर आओ, यहाँ भोजन करो। दूसरों के घर क्यों जाते हो? चोरी करके क्यों खाते हो?" (१.२६)

उत्पलमाला :

अल्लुड! दोंडपंडु वलेनायनि वातेर यान निच्चुनी
कोल्लवे पुट्टच्चेंडु लिविगो यनि चन्‌गव बट्टनिच्चुरा
गिल्लि मयूरपिंछ मडिमेननि पेन्नरु लंट निच्चु बो
कल्लरि यंचु कृष्णुडु नगन्नगिराध यदेमिरा युनुन्
(१.२६)

'रे दामाद! क्या तुम बिम्बाफल चाहते हो? लो, यह मेरा अधर है। क्या तुम आंलक (गेंद) चाहते हो? लो, ये मेरे घनस्तन हैं। क्या तुम मोरपुच्छ चाहते हो? लो, ये मेरे सुन्दर बाल हैं। जब कृष्ण हँसता है तो राधा भी हँसने लगती है।'

द्वितीय आश्वास में कृष्ण के कुछ दिन मथुरा में रहकर फिर द्वारका जाने और वहाँ राजा बनकर वैभव भोगने का वृत्तान्त दिया गया है।

बाईस वर्ष की आयु में वे रुक्मिणी एवं १६००० गोपियों से विवाह कर सगुण ब्रह्म के रूप में विलसित होते हैं। किन्तु इन समस्त सुख-भोग-भाग्यों से तृप्त न होकर कृष्ण राधा के चिन्तन में झुलस जाते हैं। इस वियोग-व्यथा का पता किसीको नहीं चलता। वे इसके विषय में किसीको कुछ नहीं बताते, किन्तु बताना ही श्रेयस्कर है, यह समझकर वे अपने प्रिय सखा उद्धव से अपनी अन्तर्व्यथा व्यक्त करते हैं, दैव की निन्दा करते हैं, राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं,

विरह में अतीत की घटनाओं का स्मरण करते हैं और उद्धव द्वारा सन्देश भिजवाते हैं। इधर राधिका विरह की दयनीय दशा में दिन काटती हैं। तोते के द्वारा सन्देश भिजवाती हैं। उस तोते को देख कृष्ण उसका स्वागत करते हैं और राधिका का लिखा हुआ पत्र पढ़कर उद्विग्न होते हैं। फिर कृष्ण एक पत्र लिखकर तोते को देते हैं। वह पत्र ले जाता है। तोता द्वारका के वैभव का वर्णन करता है। राधा कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में रहती हैं।

तृतीय आश्वास में शुकदेव परवर्ती कथा का वर्णन करते हैं। "कृष्ण व्रज लौटते हैं। माता-पिता, भाई-बन्धुओं, गोप-गोपियों से मिलते हैं, इसके अनन्तर राधा के घर जाकर द्वार खटखटाते हैं। राधिका मान करती हैं। कृष्ण की निन्दा-स्तुति करती हैं। कृष्ण और राधिका में परस्पर संवाद चलता है। श्रीकृष्ण राधिका के चरणों पर पड़कर क्षमा-याचना करते हैं। कृष्ण राधिका को शय्या की ओर खींच ले जाते हैं। राधिका का आलिंगन कर कृष्ण अपने शरीर का ताप मिटाते हैं। फिर राधा को कृष्ण द्वारका ले जाते हैं। रुक्मिणी आदि पट्टमहिषियों में सपत्नीसुलभ ईर्ष्या उभर आती है। सत्यभामा, मित्रविन्दा, भद्रा, सुदन्ता, कालिन्दी, लक्षणा भी अपनी दुःख-कथा सुनाती हैं। तब रुक्मिणी कहती है कि एक दिन कृष्ण अवश्य हमें प्यार करेंगे। ईर्ष्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ओकनि सोम्मेमि वेरोक्कनि सोम्मेमि
चक्केर कमरुने चिक्कदन मु
लोकुलु गनेनमि ता कनुंगोन नेम्नि,
वेन्नेलपूनुने विन्नदनमु
अन्त गैकोननेमि यिंत गैकोन नेमि,
यम्रतान कव्वुने यलपतनमु
चेंत नुंडिन नेमि चेत नुंडिन नेमि
विरिबंति कुद्दबुने वेगदुतनमु
ओत्के चवि गोन्नं लेंदे मोविकिनि दीपि
नलुगुरुनु जूड लेंदे नव्वुलकु देलिवि
माट योक मांदुविन्न जाल मनकुतृप्ति
शौरिकड नुंडिननु लेंदे संत संबु
(३.१४७)

'एक का धन हो, दूसरे का धन हो, शक्कर में मीठापन क्यों घटेगा ? लोग देखें या न देखें, चाँदनी में शीतलता क्यों घटेगी ? इतना ले लो चाहे उतना ले लो, अमृत में अभाव कैसे होगा ? पास ही हो, कर में ही रहे, प्रफुल्ल गेंदे के फूल में म्लानता कैसे आयेगी ? अधर का आस्वादन करने पर भी अधर में मीठापन है न ? दो-चार का अवलोकन करने पर भी हँसी में शुभ्रता है न ? उनकी बात एक बार सुनेंगी तो यह हमारे लिए तृप्ति का विषय है। शौरि हमारे पास रहेंगे तो आनन्द ही आनन्द है न ?'

रा० शे० रा०

शंकर कवि

अपने-आपको शशांकमौलि के पादसेवक माननेवाले शंकर कवि देचनामात्य के पुत्र थे। तेनालि रामकृष्ण कवि ने अपने 'उद्‌भटाराध्य-चरित्रम्' को देचनामात्य का नाम लिखकर सौंपा था।

शंकर कवि नियोगी ब्राह्मण थे। ये आपस्तम्बसूत्रों को माननेवाले कौण्डिन्य गोत्र के थे। इनके वंशनाम के विषय में निश्चित पता नहीं चलता। शंकर कवि 'उद्‌भटाराध्य-चरित्रम्' के रचयिता ऊरदेचय्य मन्त्रि के सुपुत्र माने जाते हैं। अतः इनका वंशनाम भी 'ऊर' होना चाहिए।

इनके द्वारा विरचित काव्य का नाम 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' है। इस काव्य के कृतिपति ईडूरि थेल्लय्य आमात्य (मन्त्रि) हैं। ये ईडूरु के पटवारी थे। शंकर कवि की चर्चा करते हुए सी० पी० ब्राउन लिखते हैं—"इस काव्य (हरिश्चन्द्रोपाख्यान) को नेल्लूरि काव्यम् (नेल्लूर का काव्य) कहते हैं और

कवि नेल्लूरि कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस मत से कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् सहमत नहीं हैं। वीरेशलिंगम् के अनुसार नेल्लूर का निवासी गोदावरी की जल्लि-सीमा (भीमवरम् तालुका को जल्लि-सीमा अर्थात् जल-सीमा कहते हैं) में रहनेवाले ईडूरि थेल्लयामात्य को अपना काव्य कैसे दे सकते हैं? कृतिपति और कृतिकर्ता गोलकोण्डा के कुतुबन मलिक अर्थात् नवाब कुली कुतुबशाह के समकालिक थे। इससे यह समझा जा सकता है कि शंकर कवि सन् १५५० ई० के आस-पास रहे होंगे।

उपर्युक्त काव्य (हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्) में हरिश्चन्द्र की पत्नी चन्द्रमति अपने पुत्र के शव को श्मशान ले जाती है और उनसे कहती है—"कृपया लड़के का दाह-संस्कार करने दीजिये।" तब हरिश्चन्द्र कहते हैं—

हरिपद पूजकुन् दोलगि यात्यजु गोल्चि कुलाभिमानमुल्
सरगुन वेच्चपेट्टि हरिचन्दन कीर्तुलु वीटिबुच्चि द
च्करमगु वल्लकाटि कधिकारमु वच्चिन दुष्ट बुद्धिकिन्
गरुण दलम्प नेक्कडिदि गंध गजेन्द्र समान गामिनी

'हे गजेन्द्रगामिनी! मैं दया कैसे दिखा सकता हूँ? हरिपद-पूजा से मुझे हटा दिया गया है। यहाँ मैं एक अन्त्यज का सेवक हूँ। कुलाभिमान को मैं समुद्र में फेंक चुका हूँ। हरिचन्दन के समान अपनी कीर्ति को मैं खो चुका हूँ। अब इस श्मशान का रहनेवाला हूँ। मैं दुष्ट बुद्धिवाला हूँ। भला मैं करुणा कैसे दिखा सकूँगा? करुणा केवल हरिपद की पूजा करनेवाले दिखा सकते हैं अर्थात् करुणा हरि-भक्तों का ही आभूषण है।'

ये पंक्तियाँ हरि-भक्तों में इनका अगाध विश्वास व्यंजित करती हैं।

सा० प्र०

शाहा महाराज (शाह भूपाल)

विजयराघव नायक के बाद भोंसले-वंश के मराठी-भाषी राजाओं के संरक्षण में सन् १६७४ ई० से लेकर लगभग सन् १८५७ ई० तक तेलुगु-साहित्य पनपने लगा था। तंजाऊर का स्थान पूरे भारत के इतिहास में अति ऊँचा है। प्रजा की भाषा तमिल थी। राजकाज के लिए तेलुगु का प्रचलन राजाओं ने किया था। विजयराघव नायक के बाद तंजाऊर की गद्दी पर बैठनेवालों की मातृभाषा मराठी थी। तेलुगु से इतर भाषाभाषी होते हुए भी मराठी बोलनेवाले राजाओं ने तेलुगु भाषा को न केवल सीखा था, वरन् उसमें काव्य-रचना भी की थी। तेलुगु, संस्कृत और तमिल के वाङ्मय के विकास की दृष्टि से महाराष्ट्र के राजाओं का यह काल स्वर्ण-युग माना जाता है। छत्रपति शिवाजी महाराज के सौतेले भाई एकोजी के ज्येष्ठ पुत्र शहाजी या शाहाजी उस युग के निर्माता थे।

ऐतिहासिक परिस्थितियों से महाराष्ट्र के भोंसले-वंशवाले तंजाऊर राज्य के राजा बने थे। विजयराघव नायक के पौत्र चेंगमल दासु को फिर से तंजाऊर की गद्दी पर बैठाने के लिए शाहाजी ने अपने पुत्र एकोजी को भेजा था। राजनीति के क्षेत्र में उस समय ऐसी परिस्थितियाँ आ गयीं कि एकोजी चेंगमल दासु को हटाकर स्वयं राजा बन गये। इनके पुत्र शाहाजी ने तेलुगु-साहित्य की वैसी ही सेवा की जैसी कि श्रीकृष्ण देवरायलु, विजयराघव नायक तथा मदुरै के विजयरंग चोक्कनाथ ने की थी। शाहाजी 'अभिनव आन्ध्र भोज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। तेलुगु भाषाभाषी शाहाजी और उनके वंशजों के चिर ऋणी रहेंगे। शाहाजी ने सन् १६८३ ई० से लेकर सन् १७१२ ई० तक शासन किया था।

शाहाजी महाराष्ट्र के भोंसले-वंश के थे। इनकी मातृभाषा मराठी थी। पर इनका पालन-पोषण तेलुगु वातावरण में हुआ था। डॉ० आरुद्र का कहना है—"राजकुमारों ने जिस वातावरण में श्वास लेना सीखा था उसमें प्राणवायु की भाँति तेलुगु के अक्षर ही थे। तेलुगु और संस्कृत को राजकुमारों ने बचपन से ही सीखा था। एकोजी की मृत्यु सन् १६८३ ई० में

हुई। इनकी दो पत्नियाँ और आठ या नौ भोग-पत्नियाँ थीं। उनके दस पुत्र थे। पर पटरानी दीपाम्बा के सुपुत्र शाहाजी को ही गद्दी पर बैठने के लिए अवसर मिला। जब पिता की मृत्यु हुई तब शाहाजी केवल बारह वर्ष के बालक थे। लिखाई-पढ़ाई तक पूरी नहीं हो पायी थी। कुशाग्र बुद्धि तथा गुरु त्र्यम्बक मखी के प्रशिक्षण के कारण ये तेलुगु और संस्कृत के विद्वान् बने और साथ ही साथ राजनीति एवं प्रबन्ध-विशारद भी। इनके दरबार में कई कवि थे। ये काव्यों के रचयिता और भर्ता भी थे। एक सुप्रसिद्ध फुटकर रचनाकार के अनुसार शाहाजी वाङ्मय-रचना में ब्रह्मा को जीतनेवाले हैं। इस ब्रह्म-विजेता ने कुल २३ ग्रन्थ रचे थे। इनमें अधिकांश नाटक हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—**रामायण गाथाओं से सम्बद्ध रचनावली**—१. शान्ता-कल्याणम्, २. सीता-कल्याणम्, ३. रामपट्टाभिषेकम्।

महाभारत से सम्बद्ध रचनाएँ—मात्र 'द्रौपदी कल्याणम्'।

भागवत (वैष्णव) गाथाएँ—१. कृष्णलीला-विलासमु, २. जलक्रीडलु, ३. रुक्मिणी-सत्यभामा-संवादमु, ४. सती-पतिदान-विलासम्, ५ विष्णु पल्लकि सेवा प्रबन्धम्।

शैव गाथाएँ—१. किरातविलासमु, २. गंगा-पार्वती-संवादम्, ३. त्याग-विनोद-चित्र-प्रबन्धम्, ४. पार्वती-कल्याणम्, ५. भक्तवत्सल-लीलाविलासम्, ६. वल्ली-कल्याणम्, ७. विघ्नेश्वर-कल्याणम्, ८. शंकर सेवा पल्लकि प्रबन्धम्।

अन्य पुराण-गाथाओं से सम्बद्ध ग्रन्थ—१. स्त्री-कल्याणम्, २. शची-पुरन्दरम्।

मौलिक रचनाएँ—१. पंचरत्न-प्रबन्धम्, २. सती-दानशूरम्, ३. त्यागेशपदालु।

शास्त्र-ग्रन्थ—रागमेलविवेकम् (संगीत-शास्त्र से सम्बद्ध काव्य)।

डॉ० आरुद्र शाहाजीकृत 'सतीदानशूरम्' को एक अद्भुत रचना मानते हैं। शेष सामान्य श्रेणी की हैं। शाहाजी के दरबार में लगभग ग्यारह संस्कृत के और सात या आठ तेलुगु के कवि थे।

शाहाजी ने 'कृष्णलीला-विलासमु' नामक अपने ग्रन्थ का आरम्भ कृष्ण की स्तुति से किया है। कृष्ण के अनेकानेक नामों का उल्लेख इसमें मिलता है। इसके बाद कथा का शुभारम्भ होता है।

कृष्ण के परिणयोत्सव-सम्बन्धी एक गीत का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'मन्दर धरुनिकि, माधवुनिकि, नन्दकुमारुनिकि, पोन्दुगा सत्यभामनु पेन्ड्लाडिन गोविन्दुनिकि, यशोदा नन्दुनुनिकि शोभनमे शोभनम्' यह श्रीकृष्ण का विवाहोत्सव है। उक्त पंक्तियों में 'कि' का अर्थ है 'को' और 'शोभनम्' का अर्थ है 'विवाहोत्सव'। तेलुगु में विवाह को 'पेन्डली' कहते हैं।

कृष्ण अपने मित्रों के साथ खेलने के लिए आते हैं। शाहाजी के शब्दों में इस वर्णन को देखिये—

मेलगु वोर कोंडे पइ मिन्नुला देर मयूर पिंळमुल्
नील पयोद वर्णमु मुल नेन्चग मेनि कांतुलन्
बालुरन गूडि जलमुलु बा गुग जेयुचु नन्द नन्द गो
पालुडु वच्चे गोपवर बालुर गूडुक याट लाट जान्।

'नन्द-नन्दन गोपाल गोपबालों के साथ खेलने के लिए आ पहुँचे हैं। वे कैसे दिखायी दे रहे हैं? इसका वर्णन पहले तीन पदों में कवि ने किया है। देखिये, आगेवाले सुन्दर जूड़े में मोरपंख को लगाकर, नीले आकाश के समान शरीरवाले कृष्ण बालकों के साथ मिलकर धीरे-धीरे वहाँ पहुँचे।'

सा० प्र०

शेषय्या

धर्मपुरी के निवासी होने के कारण शेषय्या को लोग धर्मपुरि शेषय्या कहा करते थे। यह धर्मपुरी

तेलंगाणा के ओरुगल्लु (आजकल ओरुगल्लु को वरंगल कहते हैं) के पास गौतमी नदी के किनारे का एक गाँव है। यह एक सुप्रसिद्ध नृसिंह-क्षेत्र है। इस तीर्थ के बारे में चित्रभारतम्, पद्मपुराणम्, नवीन वसिष्ठ रामायणम् आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। 'शेषय्या धर्मपुरि रामायण' नामक यक्षगान इनकी प्रमुख रचना है। ये सुप्रसिद्ध शतककार भी हैं। इन्होंने 'भूषण-विकास श्रीधर्मपुरि-निवास दुष्ट-संहार नरसिंह-दुरित दूर' मुकुट को लेकर एक शतक रचा था। सीसम् (एक छन्द-विशेष का नाम) शीर्षक शब्द से इसका सम्बन्ध है। 'नरहरि शतकम्' के साथ भी शेषय्या का नाम जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त 'धर्मपुरि नृकेसरी' मुकुटवाला एक और शतक भी मिला है। इसके रचयिता का नाम शेषाचल दास है। शेषाद्रि रमण कवुलु (कवि के लिए कवुलु बहुवचन रूप है) शेषाचल दास कवि को शेषय्या मानते हैं। 'भूषण विकास-शतकम्' नाम से प्रसिद्ध 'नरसिंह-शतकम्' में कवि ने अपने नाम का उल्लेख इस प्रकार किया है—

शेषय्य यनु कवि चेप्पिन पद्यमुल्
    चेवुल कानंद मै चेलगु चुन्डु
ने मनुजुन्डैन नेलमि नी शतकम्बु
    भक्ति तो विन्न सत्कलमु गलुगु
जेलगि ई पद्यमुल जेंचि व्रासिन वारु
    कमलाक्षु करुणनु गांतु रेपुडु
निम्पुगा पुस्तकंबेपुडु बूजिन्चिन
    दुरित जालम्बुलु दोलगि पोवु
निद्दि पुण्याकरंवनि येपुडु जनुलु
गष्ट मेन्नक पठिइम्प गलुगु मुक्ति
भूषण विकास श्री धर्मपुरि निवास
दुष्टसंहार नरसिम्ह दुरित दूर।

'शेषय्या कवि द्वारा कथित पद्य, सुनने में मीठे होते हैं। अगर कोई भक्तिभाव से इस शतक का श्रवण करता है तो उसे लाभ मिलेगा। इन पद्यों को जो एक बार मिलाकर लिखता है वह कमलाक्ष अर्थात् कृष्ण की करुणा का पात्र बनता है। इस पुस्तक की जो पूजा करेगा है उसके संकट तत्काल दूर हो जायेंगे। इस ग्रन्थ का पारायण करनेवाले मुक्ति अवश्य पायेंगे?'

रचना के आधार पर कवि की जाति के सम्बन्ध में सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है। शेषाद्रि रमण 'कवुलु-शतक' की भाषा का अध्ययन कर इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि शेषय्या लुहार थे। उनका उपस्थिति-काल सन् १८०० ई० के आस-पास माना जाता है। शेषय्या कवि और कंचर्ल गोपन्ना, जिन्हें आन्ध्र के लोग भद्राचल रामदासु कहते हैं, में बहुत साम्य हैं। सरकारी कोश से पैसे खर्च कर दोनों ने मन्दिर का निर्माण करवाया था। दोनों को कारागार में बन्द किया गया था। दोनों को स्वयं भगवान् ने ऋण-मुक्त किया था। भगवान् से शेषय्या कवि पूछते हैं—"अपने शंख-चक्र आदि को गिरवी रखकर मुझे पैसा दो। देखो, मैं तुमसे लड़ने के लिए भी तैयार हो गया हूँ।"

शेषय्या 'श्रवणानन्द शतक' लिखनेवाले समर्थ कवि हैं। निन्दा-स्तुति-सम्बन्धी निम्नलिखित 'सीसपद्यम्' (एक छन्द का नाम) शेषय्या को भक्त कवि के रूप में अमर बनाता है।

अन्द रेमैन निनडुग वच्चेद रन्चु
    क्षीरसागरमन्दु जेरिनावु
नीचुट्टु सेवकुल निलुव कुन्डुटदु नै
    भयद सर्पमु मीद बन्डिनावु
भक्त बृन्दमु वेन्ट बडि चरिन्चदरन्चु
    नेगसि पोय्येडि पक्षि नेक्कि नावु
दासुल नीद्वार मासिम्प कुन्कु
    मन्चि योधुल कावलुन्चि नावु
लावुगल वाज्वौति वेलामु नेनु
निन्नु जूतुनु तंड्री नीरजाक्षा

(नरसिंह-शतकम्)

'भक्तवत्सल भगवान्, तुम्हें भय है कि लोग अपनी-अपनी माँगों को प्रस्तुत कर तंग करेंगे। इसलिए क्षीरसागर में जाकर सो गये हो। तुम नहीं चाहते हो कि लोग तुम्हारे चारों ओर खड़े हों, इसलिए उस भयंकर सर्प पर जाकर सो गये हो। भक्त लोग घेरा डाल सकते हैं, यह जानकर तुम पक्षी पर बैठकर आसमान में विचरण कर रहे हो। भक्त लोग सीधे तुम्हारे घर पहुँचकर तुम्हें तंग कर सकते हैं। इसलिए द्वार-रक्षकों के रूप में बलवानों को तुमने रखा है। तुम तो हे मेरे तात! बहुत बड़े हो। तुमसे मैं कैसे मिल सकता हूँ?'

सा० प्र०

श्रीगिरि कवि

श्रीगिरि कवि अनुमानतः १४वीं शताब्दी के भक्त हैं। इनके नाम से दो रचनाओं–'नवनाथ-चरित्र' और 'श्रीरंग-महात्म्यम्' का उल्लेख मिलता है। 'श्रीरंग-महात्म्यम्' एक वैष्णव-ग्रन्थ है। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों ग्रन्थों के रचयिता एक ही श्रीगिरि कवि थे अथवा भिन्न-भिन्न? बहुत सम्भव है कि ये पहले शिव-भक्त रहे हों, बाद में वैष्णव हो गये हों और दोनों ग्रन्थों की रचना की हो।

सन् १३७४ ई० में मडिकि सिंगन ने 'सकलनीति सम्मतम्' नामक एक ग्रन्थ का संकलन किया था। इस ग्रन्थ में श्रीगिरि कवि का नाम है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रीगिरि कवि या तो मडिकि सिंगन केसमकालीन रहे होंगे या उनके पूर्ववर्ती। 'विक्रमांक-चरित्र' लिखनेवाले जक्कन्न ने भी आदर के साथ इनका नाम लिया है। जक्कन्न (सन् १३७५-१४०४ ई०) ने श्रीगिरि कवि द्वारा विरचित 'नवनाथ-चरित्र' पद्य-काव्य को गद्य में लिखा था। इसके आधार पर कहा जाता है कि श्रीगिरि कवि में चौदहवीं शताब्दी के पूर्व भाग विद्यमान थे।

श्री चागन्टि शेषय्या ने लिखा है कि श्रीगिरि कवि पश्चिम गोदावरी जिले के भीमवरम् तालुके में स्थित मोगल्लु ग्राम के निवासी थे। इस कवि के नाम के पहले 'प्रथम कवि' शब्द है। श्री शेषय्या का विचार है कि शायद यह इनका उपाधि-नाम होगा। शेषय्या के अनुसार इनका वंश-नाम चेन्नमल्लु भी हो सकता है। 'श्रीरंग-महात्म्यम्' से स्पष्ट है कि ये कृष्ण-भक्त थे।

सा० प्र०

श्रीनाथुडु

कवि-सार्वभौम की उपाधि से विभूषित श्रीनाथुडु तेलुगु-साहित्य के प्रसिद्ध लोकरंजक कवि हैं। इन्होंने ऐसी अनगिनत फुटकर रचनाएँ की हैं जो यह प्रमाणित करती हैं कि ये तेलुगु के बहुचर्चित हास्य-व्यंग्यकार रहे हैं। इनके काशीखण्डम् के कृतिपति के बड़े भाई श्री अल्लाडवेमा रेड्डी ने इनसे कहा था कि आप जैसे सत्कवि आजकल धरती पर नहीं हैं। इस तरह नपे-तुले शब्दों में कवि की प्रशंसा करनेवाले आश्रयदाता धन्य हैं।

श्रीनाथुडु का जन्म एक विद्वद्वंश में हुआ था। ये पुण्याचारवती भीमाम्बा और विद्याराजीव भव मारय के लाड़ले पुत्र थे। इनके दादा कमलनाभामात्य चन्द्रचन्दन मन्दार सदृश कीर्तिवान् और सरस साहित्य साम्राज्य-चक्रवर्ती समझे जाते थे। 'नासिकेतोपाख्यान' के कवि दग्गुपल्लि दुग्गन इनके छोटे साले थे। 'भीमेश्वर-पुराण' के कृतिपति वेण्डपूडि अन्नमन्त्रि इनके सम्बन्धी थे।

श्रीनाथ के पूर्वज भारद्वाजगोत्रीय आपस्तम्वसूत्री यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। ये पाकनाटि सीमा (वीरेशलिंगम् के अनुसार गुंटूर और नेल्लूर जिले का मध्य भाग) में स्थित कालपट्टनम् के निवासी थे। डॉ० आरुद्र का विचार है कि यह स्थान मचिलीपट्टनम् के पासवाला काळीपट्टनम् है। इसके अमान्य होने पर काळीपट्टनम् के निकटवाला कलपटम् भी हो सकता है। इन्होंने अपने दादा के यहाँ रहकर अध्ययन किया। आठ बरस की आयु में इनका उपनयन सम्पन्न हुआ। दादा की जन्म-मरण-तिथि के

आधार पर श्री वीरेशलिंगम् का अनुमान है कि इनका जन्म सन् १३६५ ई० के आसपास हुआ होगा। डॉ० एस० आर० रंगनाथन का विचार है कि श्रीनाथ ने अपने बाल्यकाल में एर्रन को देखा होगा। इनके गुरु श्री पेद्दन थे। इन्होंने किशोरावस्था में 'मरुत्तराट-चरित्र' नामक एक काव्य की रचना अपने गाँव में ही की थी। यह घटना सन् १३८३ ई० में घटी होगी। इसके बाद सन् १३८४ ई० में 'पल्नाटि-चरित्र' के अन्तर्गत आनेवाली बालक की कहानी को इन्होंने लिखा होगा। श्री वीरेशलिंगम् का कहना है कि इस रचना के कारण किशोर श्रीनाथ को कुछ पैसे मिले होंगे। श्रीनाथ जान गये होंगे कि रचनाओं को लिखकर राजा-महाराजाओं को अर्पित करने से पैसे मिल सकते हैं। इस विचार के कारण अपने गाँव को छोड़कर, जो कि एक संकीर्ण क्षेत्र था, इन्होंने एक विशाल क्षेत्र में पदार्पण किया।

अवचि तिप्पय्य सेट्टि (अपने समय के वणिक् श्रेष्ठि) श्रीनाथ के बालसखा थे। श्रीनाथ अपनी कविताओं को तिप्पय्य सेट्टिको सुनाते थे। तिप्पय्य सेट्टि वस्तुओं को नौकाओं में लादकर देश-विदेश भेजते थे। उनकी पहुँच दूर-दूर तक थी। अनेक राजा-महाराजा उनके मित्र थे। तिप्पय्य सेट्टि कोन्डवीडु (रेड्डी राजाओं की राजधानी) के वसन्तोत्सव को दिखाने के लिए एक बार श्रीनाथ को अपने साथ ले गये। बड़ों से परिचय करवाया। अनवेमा रेड्डी के मंत्री मामिडि पेद्दन्न से भेंट करायी। पेद्दन्न के तीनों पुत्र श्रीनाथ का आदर एक कवि-मित्र के रूप में करते थे। इसलिए इन्होंने अपनी दो कृतियों को दो भाइयों के नाम अर्पित कर दिया। यह घटना सन् १३८७ ई० की है। अब श्रीनाथ पूर्ण युवा हो गये थे।

तत्कालीन कवियों के लिए अष्टभाषा-ज्ञान अति आवश्यक था। श्रीनाथ सरस्वती से वर प्राप्त कर सकल विद्या सनाथ हो गये थे। इनके साले दग्गुपल्लि दुग्गन ने अपने 'नासिकेतोपाख्यान' में श्रीनाथ के बारे में लिखा है कि श्रीनाथ संस्कृत, शौरसेनी आदि आठ भाषाओं के पण्डित थे। पतञ्जलि के महाभाष्य का इन्होंने अनुशीलन किया था। वेद, स्मृति, अष्टादश पुराण, आगम, सांख्य, योग-सिद्धान्त आदि को भी निश्शेष पढ़ चुके थे। इसलिए जब पेदकोमटि वेमा रेड्डी ने (जो चन्दवोलु और कोन्डवीडु को एक करना चाहते थे) श्रीनाथ को राजदूत बनाकर काञ्चीपुरम् के अवचि तिप्पय्य सेट्टि के पास भेजा तो वे कार्यभार को सँभालने लगे। अवचि तिप्पय्य सेट्टि के कहने पर विजयनगर के रायलु ने कोन्डवीडु के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया। श्रीनाथ की सहायता के कारण पेदकोमटि वेमा रेड्डी कोंडवीडु पर अपना अधिकार जमा सके। यह घटना प्रमाणित करती है कि श्रीनाथ मात्र कवि ही नहीं थे, वरन् वे कुशल राजनीतिज्ञ एवं योद्धा भी थे।

अवचि तिप्पय्य सेट्टि के कहने पर इन्होंने 'हरविलासमु' नामक काव्य लिखकर समर्पित किया। इसके बाद श्रीनाथ अपने जीवन में तीव्रगति से आगे बढ़ते गये। अपनी सहायता करनेवाले श्रीनाथ को वेमा रेड्डी ने यथोचित आदर दिया। उन्होंने राज्य के शिक्षा-मन्त्री-पद पर इनको विभूषित किया। पूरे तेलुगु-साहित्य में श्रीनाथ ही ऐसे कवि हैं जिनकी नियुक्ति राज्य-शिक्षाधिकारी के रूप में हुई। उत्तरदायित्व से भरे इस पद पर श्रीनाथजी सन् १४०२ से लेकर सन् १४२० ई० तक विराजमान रहे। शिक्षामन्त्री के पद को सँभालने के काम में ये इतने व्यस्त रहते थे कि काव्य-रचना के लिए उनको समय नहीं मिलता था। इस बीच (सन् १४०५–१४०८ ई०) इन्होंने अपने आश्रयदाता के साथ काशी की तीर्थयात्रा की। इसके बाद ही इन्होंने 'काशीखण्ड' की रचना की।

श्रीनाथ तेलुगु के लब्धप्रतिष्ठ शृङ्गारी कवि हैं। विविध प्रान्तों और जातियों की स्त्रियों का वर्णन

करने में इन्होंने कलम तोड़ दी है। इस आधार पर कोई इन्हें शृङ्गारी, कामुक और लम्पट कहे तो यह उसकी भूल होगी। पूरे आन्ध्र प्रदेश में ऐसा कोई पद नहीं था जिसको इन्होंने न पाया हो, कोई ऐसा राजा नहीं था जिसने इनका सम्मान न किया हो। यहाँ तक कि पेदकोमटि वेमा रेड्डी के शत्रु-पक्ष के राजा रावसिंग भूपाल ने भी इनको सम्मानित किया था। उत्थान और पतन, जीवन के इन दोनों पक्षों का श्रीनाथजी को अनुभव करना पड़ा। गौड डिंडिम भट्टु के काँसे के नगाड़े को वाद-विवाद में जीतकर इन्होंने तुड़वाया था। आन्ध्र के दरबारों में इनका कनकाभिषेक भी हुआ था। लेकिन बुरे दिनों में राज-कर देने के लिए भी इनके पास पैसे नहीं रह गये थे। कृष्णवेणी नदी की बाढ़ के कारण इनकी सारी फसल बह गयी थी। फलस्वरूप कर न भर पाने के कारण किले के पासवाला गोल काला पत्थर इनके भुजस्तम्भ पर चढ़ा दिया गया था।

श्रीनाथजी अपनी हास्यप्रियता के लिए प्रसिद्ध हैं। कठिनाइयों के बीच भी ये हँसते रहते थे। एक बार पल्नाडु में, जो कि बंजर भूमि है, इन्हें ठहरना पड़ा। वहाँ ज्वार की रोटियों के सिवा कुछ नहीं मिलता था। इस सन्दर्भ में ये लिखते हैं कि यहाँ अगर स्वर्ग से रम्भा भी चली आये तो उसे तकली पर सूत कातना पड़ेगा, मन्मथ ही क्यों न आये, खाने के लिए उसे केवल ज्वार की रोटी ही मिलेगी।

पल्नाडु में पानी की तंगी रहती है। एक बार श्रीनाथ को प्यासा रहना पड़ा। क्रोध में आकर इन्होंने शिवजी को खरी-खोटी सुनायी। इन्होंने कहा—"धनवान् सोलह हजार स्त्रियों से विवाह कर सकता है। तुम तो भिखारी हो। तुम्हें दो पत्नियों की आवश्यकता नहीं। गंगा को छोड़ दो, तुम्हारे लिए पार्वती काफी हैं।"

पंच भक्ष परमान्न खाने के लिए एक बार श्रीनाथ को ज्वार के अन्न के साथ इमली और बच्चल कूरा (एक शाक का नाम) का साम्बार, जो कड़ुआ और खट्टा होता है, विवश होना पड़ा। दुःखी श्रीनाथ के मुख से श्रीकृष्ण के प्रति यह व्यंग्य निकल पड़ा—

फुल्ल सरोज नेत्र थल पूतन चन्नुल चेदु द्राविना
वल्ल़ दवाग्नि म्रिंगिति नटन्चु निक्केद वेलर्रातिन्तृणी
पल्लव युक्त मौ नुड्कु बच्चलि शाकमु जोन्न कूटितो
मेल्लन नोक्क मुद्द दिग म्रिंगुमु नीपस गान वच्चेडिन्।

'हे विकसित कमलों के समान नेत्रवाले! पूतना के स्तन से विष को पीने का दावा मत करो। विषदावाग्नि को निगलने की बात को लेकर ऐंठो नहीं। एक बार पल्नाडु आ जाओ। यहाँ तुम्हें खाने के लिए ज्वार का अन्न, इमली और बच्चल शाक से बना 'सांबार' मिलेगा। एक कौर खाओ तो मैं मान जाऊँगा अर्थात् तुमसे खाया नहीं जायगा।'

श्रीनाथ संस्कृतनिष्ठ तथा सरल तेलुगु दोनों प्रकार की भाषा लिखने में समर्थ थे। इनके 'शृङ्गार-नैषधम्' के बारे में यह कहा जाता है कि प्रजा ने श्रीनाथ से यह कहा था कि तुम अपनी प्रथमा विभक्ति को ले लो और हमें अपना नैषध लौटा दो। साधारणतया ये क्लिष्ट तथा दुर्बोध भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ बतायी जाती हैं—

१. मरुत्तराट-चरित्र, २. शालिवाहन सप्तशति, ३. पण्डिताराध्य-चरित्र, ४. शृंगार-नैषधम्, ५. हर-विलासमु, ६. भीमेश्वर-पुराण (भीमखण्डम्), ७. क्रीडाभिरामम्, ८. काशीखण्डम्, ९. शिवरात्रि-महात्म्यम्, १०. पल्नाटि-वीर-चरित्र और फुटकर रचनाएँ। इनके अतिरिक्त अन्य छः ग्रन्थ भी इनके लिखे बताये जाते हैं। ये हैं—१. धनञ्जय-विजयमु, २. नन्दनन्दन चरित्रमु, ३. कामशास्त्रमु, ४. काटम राजु कथा, ५. वल्लभाभ्युदयमु तथा ६. मानसोल्लासमु। किन्तु ये ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं।

श्रीनाथ जन्मना शैव थे, फिर भी विष्णु के प्रति इनके मन में अपार आदर की भावना थी। 'शृंगार-

नैषधम्' का मंगलाचरण विष्णु-सम्बन्धी है। 'हरविलासमु' में कन्चि वरदराजु (विष्णु) का वर्णन है। 'काशीखण्डम्' के शिवशर्मोपाख्यान में शिव-केशव के अभेद को स्थापित करनेवाला एक सौ आठ नामावलिवाला एक स्तोत्र है। 'पल्नाटि-वीर-चरित्र' के 'कल्लु प्रतिष्ठ' भाग में अपने बारे में इन्होंने लिखा है—'चेन्न केशवपाद सेवारत।' 'पल्नाटि-वीर-चरित्र' की रचना के पीछे जनश्रुति के अनुसार एक कहानी है।

पल्नाडु में रहते समय श्रीनाथ को एक बार एक नासूर (व्रण) ने बहुत सताया। माचर्ला के चन्दिकावंक नदी में स्नान कर तीरस्थ चेन्न केशव स्वामी की इन्होंने पूजा की। कहा जाता है कि व्रण कम होने लगा। एक दिन रात स्वप्न में स्वामी ने इनको 'पल्नाटि-वीर-चरित्र' लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इन्होंने ग्रन्थ को अल्पकाल में पूरा कर दिया, पर अपनी आदतों को बदल न सके। एक कामुक की रचना होने के कारण चेन्न केशव ने उसे ठुकरा दिया और शाप दिया कि ग्रन्थ पंचम वर्णवालों के हाथ लग जायगा। इसके परिणामस्वरूप ही सम्भवतः खोजकर्ताओं को यह ग्रन्थ एक हरिजन के ही घर में मिला।

श्रीनाथ जनता के कवि हैं, राष्ट्रकवि हैं। जन्मभूमि का इतना विस्तृत वर्णन आज तक किसी कवि ने नहीं किया। तेलुगु-साहित्य में राधा का नाम सबसे पहले लेनेवाले कवि श्रीनाथ ही हैं। भीमेश्वर-पुराण (भीमखण्डम्) के कृतिपति की स्तुति में राधाकृष्ण का चित्रण है।

कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनकी प्रसिद्ध कृति 'नन्दनन्दन-चरित्र' है। इस ग्रन्थ के कृतित्व के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये मूलतः शिव के भक्त थे। अतः इसकी रचना इन्होंने नहीं की होगी। पर 'काशीखण्ड', 'श्रृंगार-नैषध' तथा 'हरविलास' में विष्णु-सम्बन्धी वर्णन है।

पटमैलारु रेड्डी (सन् १४२४ से १४२९ ई०) वैष्णव-भक्त थे। उनके यहाँ से श्रीनाथ को नियमित वृत्ति मिलती थी। इसलिए इन्होंने 'नन्दनन्दन-चरित्र' अवश्य लिखा होगा। खेद है कि यह कृति उपलब्ध नहीं है। परन्तु दो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसके दो छन्दों की दो पंक्तियाँ मिलती हैं। गणपवरपु वेंकट कविकृत 'प्रयोगरत्नाकर (मु)' में तथा कवि कस्तूरीरंगकृत 'आनन्दरंगराट् छन्द' में भी इसका उल्लेख है। इन दोनों रीति-ग्रन्थों में 'नन्दनन्दन-चरित्र' से दिये गये दो उदाहरण 'सीस' नामक छन्द में हैं—

१. 'रामानुजुंडु निरन्तरमु पदारुवेलनूटेनमंड्रु वेल
दुलतमि।'

'श्रीकृष्ण सतत एक सहस्र एक सौ आठ गोपिकाओं से विलसित।'

२. 'शाश्वत विश्व विश्वम्भरा भारमीरानुकुमारुंडेलं-
शलंडु।'

'सदैव के लिए यह राजकुमार विश्व विश्वम्भरा-भार का अवश्य वहन करेगा।'

श्रीनाथ ने अपनी कृति 'भीमखण्डम्' के मंगलाचरण की प्रस्तुत अवतारिका में इष्ट देवता की स्तुति-रूप में राधाकृष्ण की प्रार्थना की है—

बालिक मोमु मत्तवन् बर्हि किशोरक लास्य लीलवैं-
वालिचि पच्च कटपुरपु वासन तोडि मुखारविन्द तां-
बूलपु मोंवि मोवि पयि मोमुचु राधकुनिच्चुधूर्त गो-
पालुडु पोचुगावुत मपार कृपा मति मन्त्रि यन्ननिन्।

'वंडपूडि अन्नमात्य की रक्षा कृपापूर्वक धूर्त गोपाल करें, जो तिरछे मुख (बालिका के मुख) को मत्त वनबर्हि किशोर (कृष्ण) लास्यलीलापूर्वक ऊपर उठाकर कर्पूर से सुगन्धित अपने मुखारविन्द के ताम्बूल (पान) को अधर को अधर से मिलाते हुए राधा को दे रहे हैं।'

श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री

श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री का जन्म सन् १८६६ ई० में देवरपल्लि नामक स्थान में हुआ था। ये वेन्कट सुब्ब सोमिदम्मा और वेन्कट सोमयाजि के सुपुत्र तथा आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले थे। इनका अधिकांश समय राजमहेन्द्रवरम् में बीता। इन्होंने लगभग २०० ग्रन्थों की रचना की, जिनमें श्रीकृष्ण महाभारतमु, श्रीकृष्ण भागवतम् और श्रीकृष्ण रामायणमु प्रमुख हैं।

भारत, भागवत और रामायण का अनुवाद करनेवाले श्रीपाद कृष्णमूर्ति काव्य-विवेक, अविचल भक्ति और अद्भुत पाण्डित्य-प्रतिभा के धनी थे। महाभारत का अनुवाद करते समय इन्हें अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा था। द्रोणपर्व लिखते समय इनके पुत्र का निधन हो गया, किन्तु विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए भी ये निरन्तर साहित्य-सेवा में लगे रहे। इनका निधन बीसवीं शती के छठे दशक में हुआ।

सा० प्र०

संकुसाल नृसिंह कवि

कथासरित्सागर के कर्ता गुणाढ्य और कविकर्ण रसायन के संकुसाल नृसिंह कवि में एक-दो साम्य हैं। राजाश्रय न मिलने के कारण गुणाढ्य ने काव्य के पृष्ठों को पढ़-पढ़कर जलाया था। इसी प्रकार नृसिंह कवि को जब राजाश्रय न मिला, साथ में लाया सारा धन खर्च हो गया और जब बेचने के लिए उनके पास पद्य भी न रहे, तो वैराग्यभाव के कारण कृति को भगवान् के नाम पर अर्पित कर उन्होंने तृप्ति प्राप्त की। वैराग्यभाव क्रोध के बाद आया था। संकुसाल नृसिंह कवि ने क्रोध में राजाओं की कड़ी निन्दा की है। राजाओं के लिए पिशाच जनुलु (जन), जीव टलवमुल आदि शब्दों का इन्होंने प्रयोग किया है। ये लिख गये हैं कि मैं नहीं चाहता कि सब मेरी कृति की प्रशंसा करें। किसलय पत्ते की प्रशंसा करने के लिए क्या एक कोयल नहीं रहती? मेरे लिए भी एक पर्याप्त है। उस एक के लक्षणों को इस प्रकार संकुसाल नृसिंह कवि बताते हैं—कविता को भलीभाँति जाननेवाला, कविकण्ठ विभूषण एक काफी है। कविवर नृसिंहविरचित 'कविकर्ण रसायन' का आस्वादन करने के लिए इस नृसिंह कवि के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। ये सम्भवतः कडप जिले के सुंकेशुल नामक स्थान के निवासी रहे होंगे, जो पहले संकुसाला के नाम से प्रसिद्ध था। डॉ० वेटूरि प्रभाकर शास्त्री संकुसाल नृसिंह कवि को ताल्लपाक नरसिंगन्न मानते हैं। कवि ने अपने बारे में स्वयं कुछ नहीं लिखा है। अतः इनके विषय में किसीको विशेष जानकारी नहीं है।

दन्तकथाओं में संकुसाल नृसिंह कवि का नाम पेद्दन्न, श्रीकृष्ण देवरायलु और उनकी पुत्री मोहनांगी आदि के साथ लिया जाता है। कहते हैं कि इनकी प्रतिभा और कविता को देखकर पेद्दन्न पहले डर गये थे और बाद में ईर्ष्या करने लगे थे। उन दिनों राजदर्शन के लिए पेद्दन्न से मिलना अनिवार्य था। पेद्दन्न नृसिंह कवि को राजा से मिलाना नहीं चाहते थे। इसलिए वे बात को टालते गये। इनके पास जो पैसे थे वे खर्च हो गये। इनको भूख सताने लगी। बेचारे क्या करते? अपनी कविता को बेचने लगे। कृष्णदेव राय की पुत्री मोहनांगी ने चार हजार सिक्के देकर एक कविता को खरीद लिया था। वह अपने पिता कृष्णदेव राय के साथ एक बार शतरंज खेल रही थी। कृष्णदेव राय के मन्त्री और हाथी के बीच एक प्यादा मोहनांगी का अटक गया था। बेचारी उस प्यादे को बचाने के लिए प्रयास कर रही थी। वह संकुसाल नृसिंह कवि की चार पंक्तियों को गुनगुनाने लगी। मोहनांगी गुनगुना रही थी—दो राजा या बलवानों के बीच कमजोर या गरीब कैसे जी सकेगा? कृष्णदेव राय खेलना छोड़कर पूछने लगे कि "क्या बात है बेटी? तुम रुक क्यों गयी,

उन पंक्तियों को दुहराओ।" मोहनांगी पहले सकुचायी, फिर उसने पूरा पद्य दुहरा दिया। उन पंक्तियों का भाव इस प्रकार था–"उभरते हुए स्तनद्वय को देखकर तनुमध्य (कटि) जाने कहाँ जाकर छिप गयी? अगर कहीं है भी तो उसका चिह्न नहीं। दो उद्दण्ड योद्धा राजाओं के बीच गरीब कैसे पनप सकता है?" पता लगाने पर उनको ज्ञात हुआ कि पेद्दन्न के कारण नृसिंह कवि को निराश घर लौटना पड़ा था। राजा बहुत दुःखी हुए। किन्तु यह मात्र कथा है, तथ्य नहीं। पेद्दन्न इतने निर्दय नहीं थे। कृष्णदेव राय की पुत्री का नाम मोहनांगी न होकर तिरुमलाम्बा था। इस कथा के आधार पर तत्कालीन समाज को आसानी से समझा जा सकता है।

संकुसाल सिद्धहस्त कवि, किन्तु अहंकारी थे। ये अपने विषय में स्वयं लिखते हैं कि "मैं चाहूँ तो रागी को विरागी बना सकता हूँ और विरागी को रागी।"

'कविकर्ण रसायनम्' मान्धातृ-चरित्र है। मान्धाता के पिता यवनाश्व बहुत वर्षों तक सन्तानहीन थे। सन्तान पाने के लिए उन्होंने इन्द्रयाग किया। परिणामस्वरूप मान्धाता का जन्म हुआ। मान्धाता बड़े हुए। वे न्यायसंगत राज करने लगे। एक बार रावण पर चढ़ गये। घोर युद्ध हुआ। शिवजी ने हस्तक्षेप कर युद्ध को रोका। बाद में उनका विवाह विमलांगी से हुआ। कुछ वर्षों के बाद मान्धाता तपस्या करने चले गये। तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र ने अप्सराओं को भेजा। अन्ततोगत्वा ब्रह्मा से परामर्श करके इन्द्र ने विष्णु से उन्हें दर्शन देने का अनुरोध किया। भगवान् मान गये। मान्धाता का जन्म सफल हुआ। इस ग्रन्थ में कवि ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि शरणागति ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा मोक्ष पा सकते हैं।

शरणागतुलकु दक्कन्, बरुलकु
मोक्षम्बु लेदु भवनस्युडु नि
भंरुडु नन निरुदेरन्गुल-बरगु
प्रसन्नुन्डु सुकृत परिपाक भिदन्।

'शरणागतों को ही मोक्ष मिल सकता है। अन्य को मोक्ष कभी नहीं मिल सकता। गृहस्थी तथा निर्भर दो तरह के लोग होते हैं। दोनों जब शरणागत बनते हैं तब प्रसन्नचित्त भगवान् विष्णु उन पर समान रूप से प्यार की वर्षा करते हैं।'

शरणागति को उत्तम धर्म माननेवाले कवि संकुसाल अपने-आपको अधम और विष्णु को सर्वोत्तम माननेवाले सच्चे वैष्णव हैं—

ज्ञान प्रौढ महाकवीश्वरवचस्संस्तूय मानुन्डु ल
क्ष्मीनाथुन्डु मदल्प वाक्य रचना स्वीकर्त गाकुन्डुने?
नाना भूपतु लेल्ल गानुकलु रत्नश्रेणुलु लर्पिपंगा
धान मुष्टि मुचुन् गुचेलु गरुणन् धन्यात्मु का जूडडे।

'महाज्ञानी और प्रौढ़ कवीश्वरों द्वारा नित्य किये जानेवाले स्तुति-पाठों को सुननेवाले लक्ष्मीनाथ विष्णु क्या मुझ जैसे एक छोटे कवि की अल्प रचना को स्वीकृत करेंगे? क्यों नहीं? जब भुवन के सब भूपति अमूल्य रत्नराशियों को उपहार में अर्पित कर रहे थे, तब मुट्ठीभर चिवड़े को लानेवाले सुदामा को (सुदामा को तेलुगु में कुचेल कहते हैं) धन्य बनानेवाले विष्णु करुणाकर हैं। इसलिए मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे।'

सा० प्र०

सत्यवोलु भगवत् कवि

सहज कवि पोतन ने श्रीमद्भागवत की कथा 'रुक्मिणी-कल्याणम्' को अपनी लेखनी द्वारा सुविख्यात बनाया था। तब से अनेक कवियों ने इस कथा के द्वारा लोगों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ने का प्रयत्न किया। उनमें से कूचिमंचि तिम्मकवि, लिंगनमखि कामेश्वर कवि, कोटीश्वर और सत्यवोलु भगवत् कवि मुख्य हैं। इनमें से सत्यवोलु भगवत् ही एक ऐसे कवि हैं जो चरित्र-चित्रण और कथोपकथन की

दृष्टि से पोतना से न केवल होड़ लेते हैं, बल्कि कुछ स्थानों में उनसे भी आगे बढ़ जाते हैं। कूचिमंचि तिम्म कवि और पोतन से सत्यवोलु भगवन्तम् की तुलना करते हुए डॉ० आरुद्र लिखते हैं—"इस युग में कूचिमंचि तिम्मकवि ने 'रुक्मिणी-कल्याणम्' की रचना निश्चित ढर्रे पर चलनेवाले काव्य के रूप में की है। पर भगवन्त ने एक विलक्षण मार्ग को अपनाकर काव्य को पूरा किया है। यह पोतराजु (पोतन) के 'रुक्मिणी-कल्याणम्' की बराबरी कर सकता है। कूचिमंचि और सत्यवोलु को दो पलड़ों में रख दें तो तराजू की सूई सत्यवोलु की ओर ही झुकती है। पोतराजु के चित्रण में जो रमणीयता नहीं है, उसे सत्यवोलु में देख सकते हैं।" सत्यवोलु के प्रशंसकों में श्री चागन्टि शेषय्या और कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् भी हैं। आलोचकों के अनुसार इनका जन्म सन् १७५० ई० के आसपास हुआ होगा।

सत्यवोलु भगवत्कवि नियोगी ब्राह्मण तथा आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले भारद्वाज गोत्रीय थे। ये जनार्दन मन्त्रि और पेरमाम्बा के पुत्र तथा भगवनामात्य और पेरमाम्बा के पौत्र थे। गोदावरी मण्डल के रामचन्द्रपुरम् तालुके में स्थित जन्नाड इनका निवास-स्थान था। श्री चागन्टि शेषय्या के अनुसार आज भी इस ग्राम में सत्यवोलु के वंशज रहते हैं। ये तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर के अनन्य भक्त थे। अतः अपने काव्य को बालाजी के नाम पर लिखकर उन्हींको अर्पित भी किया है। कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

धीरत शतशतकंबुलु-दारावलुलुन्, दशावतारावलुं
जारुदाहरणम्बुलु-श्रीराजित दण्डकमुल जेप्पिन वाडन्

'मैंने सौ शतकों की तारावलियों को, दशावतारावलि को, उदाहरणों को, दण्डकों को, लिखा अथवा कहा है।' पर इनमें से दशवतारावलि को छोड़कर शेष नहीं मिल रहे हैं। 'दशावतारावलि' इतनी प्रचलित रचना है कि उस समय के सन्तर्पणों (अन्नदान) में इसका विधिवत् पारायण होता था। लोग इसको तोते की तरह रटे हुए थे। दिट्टकवि प्रकाशम् और काशी चैनुलु नामक विद्वानों ने इनका अनुकरण भी किया था। 'दशावतारावलि' के अन्तिम दो पादों में 'वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीशनाथ, रक्षण परायणुण्ड नारायणुण्ड' अनिवार्य रूप से आता है। शायद यह शत शतकों में से एक शतक का अन्तिम पाद रहा होगा।

'दशावतारावलि' में वर्णित कृष्णावतार-सम्बन्धी एक छन्द देखिये—

ब्रह्मनु गन्न पर ब्रह्म मूर्ति वै
याद्यन्त शून्युण्डवय्यु 'धर्म
संस्थापनार्थाय संभवामि युगे यु
गे' यटंचुनु देवकी तनयुड
वै बलराम सहायुडवै शिष्ट
रक्षणमुनु दुष्ट शिक्षणमुनु
सलुपुचु रुक्मिणि सत्यभाम सुदन्त
भद्र कालिन्दि जाम्बवति मित्र
विन्द लक्षणयुनु बदार्वेल नूर्गु
रंगनलु वेलयु कृष्णा ह्वाय प्रसिद्ध वैकुण्ठ···

'हे वैकुण्ठनाथ, लक्ष्मीनाथ, रक्षणपरायण, नारायण ! तुम तो ब्रह्म को जन्म देनेवाले परब्रह्म हो, तुम आदिमध्यान्तरहित हो। धर्म की स्थापना के लिए युग-युग में तुम्हारा जन्म होता रहा है। देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लेकर, बलराम की सहायता से अबाध गति से दुष्ट-शिक्षण और शिष्ट-रक्षण करते आ रहे हो। रुक्मिणी, सत्यभामा, सुदन्ता, भद्रा, कालिन्दी, जाम्बवती, मित्रविन्दा, लक्षणा नामक अष्ट महिषियों तथा सोलह हजार एक सौ गोपांगनाओं के तुम पति हो।'

रुक्मिणी एक गरीब ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण के पास सन्देशा भेजती है। काम को सफलतापूर्वक पूरा कर आनेवाले ब्राह्मण से दूसरे दिन मिलने के लिए रुक्मिणी कहती है। गरीब ब्राह्मण का हृदय इस

वाक्य को सुनकर बैठ जाता है। वह निराश वापस लौटता है। आशावादी होने के कारण वह घर पहुँचता है। देखता है कि घर का नक्शा ही बदल गया है। इस सन्दर्भ में कवि सत्यवोलु इस प्रकार लिखते हैं—'रमणि चूचि नपुडे राजिल्लु चन्द मुननु विप्र वदन मलरे नखिल वैभवमुल नद्भुतकर मुग' अर्थात् 'रुक्मिणी तो साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। दरिद्रता को दूर करने के लिए उसकी एक दृष्टि पर्याप्त है। रमणि रुक्मिणी ने विप्र की ओर देखा। उस एक दृष्टिमात्र से उसकी झोपड़ी सकल वैभवों से युक्त सदन बन गयी।'

डॉ० आरुद्र के शब्दों में "सत्यवोलु भगवन्तम् ने यह प्रमाणित किया है कि लक्षण-ग्रन्थों में कथित नियमों का पालन करते हुए भी अच्छी कविता लिखी जा सकती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से चरित्र-चित्रण करने में कवि भगवन्तम् पूर्णतया सफल हुए हैं।"

सत्यवोलु भगवन्तम् अठारहवीं शती के प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं।

सा० प्र०

सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायकुडु

चित्रकला को पिता से तथा संगीत-ज्ञान को माता से उत्तराधिकार में पानेवाले सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायक मीनाक्षय्या और अलिमेलक्का के पुत्र थे। संगर सव्यसाचि, संगर किरीटि (श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रि ने अपने ग्रन्थ 'तंजाऊर आन्ध्र राजुल चरित्रमु' में उक्त विशेषणों का प्रयोग सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायक के लिए किया है) आदि नामों से प्रसिद्ध वेंकट कृष्णप्प मात्र शूर-वीर ही नहीं, मनमोहक रूपवाले सुन्दर पुरुष भी थे। इनके सौन्दर्य और प्रतिभा से प्रभावित वाग्गेयकार (गीति-काव्य के कवि) क्षेत्रय्या ने एक गीत में लिखा है—"रम्मन वे समुखान रायबार मेटिके" अर्थात् "उसे सामने आने के लिए कहो, मध्यस्थ या पंच की कोई आवश्यकता नहीं है।"

सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प अपने समय के रंगीन व्यक्ति थे। इनके समान ही इनके काव्य 'अहल्या-संक्रन्दनम्', 'सारंगधर-चरित्र' और 'राधिका-सान्त्वनम्' भी मनोरंजक हैं।

विजयरंग चोक्कनाथ मधुरा के राजा तथा तंजाऊर, चेन्जि और मधुरा के अधीश्वर श्रीकृष्णदेव रायलु के सामन्त थे। उनकी मृत्यु के बाद जब विजयनगर-साम्राज्य का पतन हुआ तब एक-एक करके सब सामन्त स्वतन्त्र बन बैठे। तिरुमल नायक मधुरा के स्वतन्त्र राजा बने। उन्हींके वंशज थे विजयरंग चोक्कनाथ। सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायक विजयरंग चोक्कनाथ के दलवाल थे। इनके बारे में इनके मित्र शेषम् वेंकट कवि, जिनको वेंकट कृष्णप्पा ने आश्रय दिया था, लिखा है कि "ये लोला मनोजाकृतिवाले हैं, जयन्तरूप कविकल्पक हैं, भाषाफणि ग्रामणी हैं, रिपु जयाधार हैं और शौर्य सान्द्र हैं।" वेंकट कृष्णप्प के पिता सदैव राजाओं के साथ रहा करते थे। इसलिए लोग इन्हें 'सम्मुखम्वाले' कहने लगे थे। वेंकट कृष्णप्प ने अपने प्रभु के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया था और प्रभु के समान ही इन्होंने विलासिता का जीवन बिताया था। विजयरंग चोक्कराजु की मृत्यु (सन् १७३२ ई०) के बाद उनकी पत्नी (मीनाक्षम्मा) ने चार साल के लिए (सन् १७३२ से लेकर सन् १७३६ ई० तक) राज्य की बागडोर सँभाली थी। इसके बाद उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। उनकी मृत्यु के बाद राज्य मुसलमानों के अधीन हो गया। तब से वेंकट कृष्णप्पा अपने सम्बन्धी वडगरै जमींदार के यहाँ रहने लगे थे। शेषम् वेंकटपति के अतिरिक्त वेंकट कृष्णप्पा ने पुणिगे कृष्ण कवीन्द्र को भी अपने यहाँ पहले आश्रय दिया था।

वेंकट कृष्णप्पा विजयरंग चोक्कराजु के प्रिय मित्र थे। ये अपनी वीरता और सरस कविता के कारण विजयरंग चोक्कराजु के दरबार और हृदय में अपने लिए महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में सफल हुए थे। इन्होंने 'जैमिनी भारतम्' नामक एक वचन-काव्य लिखकर विजयरंग चोक्कनाथ को समर्पित

किया था। 'जैमिनी भारतम्' के सर्गान्त में दिये गये वाक्यों से पता चलता है कि वेंकट कृष्णप्पा के मन में चोक्कनाथ के प्रति कितना आदरभाव है—"इदि (यह) श्रीमत् पान्ड्य मण्डलाधीश्वर श्री विजयरंग चोक्कनाथ महीनाथ करुणाकटाक्ष सम्पादित गजतुरंग मान्दोलिका (पालकी) प्रमुख निखिल सम्पत् पारम्परी समेधमान समुख मीनाक्षी नायक तनूभव मीनाक्षी देवी कटाक्षलब्ध कविता सम्प्रदाय वेंकट कृष्णप्प नायक प्रणीतम्बैन (प्रणीत) जैमिनी भारतंबुन '' " उक्त वाक्यों से पता चलता है कि वेंकट कृष्णप्पा मधुरै की मीनाक्षी के भक्त थे। यदि मीनाक्षी-कटाक्ष से उनकी पत्नी मीनाक्षी देवी का सम्बन्ध मानें तो भी इतना कहा जा सकता है कि वेंकट कृष्णप्पा में अपार भगवद्भक्ति थी। इनको काव्य-रचना की प्रेरणा श्रीरंगम् के स्वामी से मिली थी। मीनाक्षी का अर्थ पार्वती से लगायें तो निस्सन्देह यह कह सकते हैं कि वेंकट कृष्णप्पा हरिहराभेद को माननेवाले कवि एवं शासक थे।

इन्होंने 'सारंगधर-चरित्र' नामक काव्य का लेखन-कार्य श्री रंगनाथ के अनुरोध पर ही किया था। 'सारंगधर-चरित्र' के ये वाक्य उक्त बात को प्रमाणित करते हैं—

रंगधर पति नेनु सारंगधर चरित्रवचनमु चेसि
तत्कृतिनि माकु नंकितमु सेथुमु शुभंबुल गुनु नीकु''''

'मैं रंगधर पति हूँ, (इसका अर्थ विजयरंग चोक्कनाथ भी लगा सकते हैं।) तुम सारंगधर-चरित्र का गायन करो। तुम्हारा कल्याण होगा।'

'राधिका-सान्त्वनम्' सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायक के द्वारा रचित अन्तिम काव्य है। कुछ आलोचकों के अनुसार इस काव्य में प्रक्षिप्त अंशों की संख्या अत्यधिक है। मुद्दुपलनि पर भावापहरण का आरोप लगाने के लिए किसीने यह कहा होगा। चाहे कुछ भी हो, सभी आलोचक इसे एक सुन्दर काव्य मानते हैं। 'सत्यभामा-सान्त्वनम्' की परम्परा में इस काव्य की रचना कृष्णप्प ने की थी। यह कृष्णप्प को अमर बनानेवाला काव्य है। इस काव्य को वेंकट कृष्णप्पा ने गोपालदेव के नाम पर अर्पित किया था। इसमें रूठी राधा को श्रीकृष्ण मनाते हैं। यह काव्य शृंगार-रसपूर्ण है। इस काव्य के अन्त में सम्भोग वर्णन-सम्बन्धी वचन हैं। ऐसा वर्णन सारंगधर-चरित्र को छोड़कर अन्य तीनों ग्रन्थों में है। 'राधिका-सान्त्वनम्' में कहा गया है—"मदन कदनारम्भ समुज्जृम्भमान मनोभिलाषल (मनोभिलाषाओं का) ना राधा माधवुल मन्दानन्द।"

दरबारी कवि होने के कारण चमत्कारपूर्ण संवादों को लिखने में सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्पा सिद्धहस्त थे। 'अहल्या-संक्रन्दनम्' में कई ऐसे संवाद हैं जो अत्यन्त आकर्षक हैं। 'राधिका-सान्त्वनम्' का यह उदाहरण देखिये—

कृष्ण :	सहेली :
पोलनतिरो	एमि ?
त्रोव विड्डु पोवले	एच्चटिकि
इंति चेन्तके	तोलि रुचि वीडवो
विडनु	त्रोतुमु
द्रोब्बुदु पोम्मु	पोनु
माटल केडमौनु	कानि विकटानकुन् जोच्चिति
औनु	एव्वरो
बलिमि मिटारि	रम्मिदिगो
वच्चिति	राकलमानवो हरी
अर्थात्	
हे ललना	क्या ?
रास्ता छोड़ो, जाना है।	कहाँ ?
अपनी प्रेयसी के पास।	पुरानी रुचि या स्वभाव को क्यों नहीं छोड़ते हो ?
नहीं छोड़ सकता।	तो धक्का दूँगी।
मैं भी धक्का दूँगा, हटो।	नहीं जाऊँगी।
बातें नहीं होंगी।	तो सुन्दर प्रान्त को आ गये हो ?

हाँ।	कौन ?
सुन्दर सुदृढ़ शरीरवाली।	आओ न ?
लो, आ गया।	हे हरि ! तुम आये बिना नहीं रह सकते हो क्या ? (आना क्या बंद नहीं कर सकते ?)

उक्त संवाद का पद्य-रूप :

पोलतिरो ! येमि ? त्रोवविडु, पोवले नेच्चटिकिति यें
तेलिरुचिवोडवो वीडनु द्रोतुमु द्रोब्बुद पोम्मु पोनु मा
टल केडमौनु गान विकटानकुन् जोच्चिचति नोनु थेव्वरो
बलिमि मिटारि रम्मिदिगो वच्चिचति राकल मानवो
हरी !

अभिसारिका राधा का वर्णन देखिये :

शौरिनि बिल्वंगा जनिन चक्कनि केल रादु ये
दारिनि जन्नदो नडुमन् दारेनो चे रेनो लेदो गोपिका
जार्रुनि गानदो कननो चक्कंग न वेत विन्नविंचेनो
सारेकु, लेक शौरि नुडि चक्केट थुवकेट मेक्कि सोक्केनो

'शौरि को निमन्त्रण देने के लिए जिस सहेली को मैंने भेजा था वह क्यों नहीं वापस आ रही है ? न जाने वह किस रास्ते से गयी है ? कहीं बीच में भटक तो नहीं गयी ? कृष्ण तक पहुँच पायी है या नहीं ? यह भी तो मालूम नहीं है। उस गोपिका-जार को वह देख पायी है या नहीं ? अगर देख और पहचान पायी हो तो क्या मेरी व्यथा को बार-बार समझाने की कोशिश करने में सफल हो पायी होगी या नहीं ? मैं यह भी नहीं जानती। कहीं ऐसा न हुआ हो कि कृष्ण के द्वारा दिये गये पकवानों को खाकर वहीं कहीं गिर गयी हो।'

सम्मुखम वेंकट कृष्णप्पा ने पूर्ववर्ती ख्यातिलब्ध कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर काव्य-रचना की थी। आलोचकों का अनुमान है कि इनका जन्म अठारहवीं शती के आरम्भ में हुआ होगा। इनके जैमिनी-भारतम्' (वचन-काव्य) का रचना-काल सन् १७३० ई० के लगभग हो सकता है। इन्होंने पिल्लल मर्रि पिन वीरभद्र कवि का अनुकरण किया था और धरणि देवुल रामय्या की रचना 'दशावतार-चरित्र' से प्रेरणा ग्रहण कर 'अहल्या-संक्रन्दनम्' की रचना की थी। तंजाऊर के रघुनाथ नायक के दरबारी कवि चेमकूर वेंकट कवि के आदर्श पर इन्होंने 'सारंगधर-चरित्र' नामक वचन-काव्य को पूरा किया था। आलोचकों का मत है कि विवादग्रस्त 'राधिका-सान्त्वनम्' 'सत्यभामा-सान्त्वनम्' का ही एक परिष्कृत रूप है।

सा० प्र०

सारंगु तम्मय्या

सन् १५८० ई० के आसपास गोलकुण्डा में एक पटवारी रहते थे। उनका नाम सारंगु तम्मय्या था। सारंगधर तम्मय्या के पूर्वज थे। दन्तकथा के अनुसार राजमहेन्द्रवरम् के राजा राजराज नरेन्द्र का दूसरा नाम सारंगधर था। सौतेली माँ के घृणित प्रस्ताव को ठुकराने के कारण उसने राजा से कहकर इनके पैर कटवा दिये थे। इसलिए सारंगु नामक विशेषण इनके नाम के पहले लगता है। इन्होंने 'वैजयन्ती-विलासमु' नामक काव्य की रचना की थी। रचना को समाप्त कर इन्होंने उक्त काव्य को श्रीराम के नाम समर्पित किया था। 'वैजयन्ती-विलासमु' चार सर्गों का काव्य है। इसमें कुल मिलाकर ५६८ गद्य और पद्य हैं। कवि के माता-पिता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

देवदेवी और मधुरवाणी नामक दो वेश्याओं को देखकर भी विचलित न होनेवाले विप्रनारायण को देवदेवी ने अपने संकेतों पर नचवाना चाहा। इस सम्बन्ध में देवदेवी ने मधुरवाणी की चुनौती को स्वीकारा। दूसरे दिन से वह अपने काम में लग गयी और धीरे-धीरे विप्रनारायण को अपना दीवाना बना लिया। देवदेवी की माँ उपहार चाहती थी। विप्र-नारायण के पास देने के लिए कुछ नहीं था। उनकी ओर से स्वयं भगवान् अपने हार को सौंप देते हैं।

भक्तों को यह ज्ञात हो गया। सबने विप्रनारायण का परिहास किया। अन्ततः भगवान् ने स्वयं सबके सामने आकर बता दिया—

लीला विनोदमुन कै ईलागुन
नेनु वीरि निखुरि रति रा।
ट्केलिन् गूर्चिति मद्वनमालिक
इत डप्सर : प्रमद ई सतियुन् ॥

'यह सब मैंने अपने मनोरंजन के लिए किया है। मेरे ही कारण ये दोनों इतने प्रेम-विह्वल बन गये हैं। यह विप्रनारायण मेरे वन का माली है। यह सती देवदेवी वास्तव में एक अप्सरा है।'

सुमधुर हास्य, कहावतों और मुहावरों से भरी भाषा के लिए सारंगु तम्मय्या का काव्य बहुत प्रसिद्ध है। चदलवाडा मल्लन्न और सारंगु तिम्मय्या की तुलना करते हुए सर्वश्री जयन्ति रामय्या और मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री लिखते हैं—"कुछ बातों में सारंगु तम्मय्या आगे रहते हैं तो बहुत सी बातों में चदलवाडा मल्लन्न।"

सा० प्र०

सिंहाद्रि अंकन्ना

'दारु जगन्नायका' नामक शतक की रचना अंकन्ना कवि ने की थी। इनके पिता का नाम सिंहाद्रि था। बेहरार्थं नामक व्यक्ति ने इनकी प्रशंसा की है। अपना परिचय देते हुए कवि ने एक पद्य में लिखा है—"बेहरार्थं स्तोत्र पात्रुण्ड (पात्र हूँ) सुज्जन मान्युण्ड (मान्य), नृसिंह सेवकुण्ड (सेवक) सिंहाद्रिनन्द नुन् (नन्दन हूँ), कद्र कवीन्द्र नामकुण्ड (नामवाला हूँ)।" इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अंकन्ना का वास्तविक नाम कद्रय्या था। सिंहाद्रि के भगवान् को लोग अप्पन्ना के नाम से जानते हैं। इसलिए डॉ० आरुद्र लिखते हैं—"अंकय्या या अंकन्ना नाम ही अधिक समीचीन है।" कह नहीं सकते कि यह कवि वास्तव में कौन है? पर ,जगन्नायक' के नाम से एक और शतक भी मिला है। इसके रचनाकार अंकन्ना हो भी सकते हैं और नहीं भी। इनकी दास्य-भक्ति का नीचे एक सुन्दर उदाहरण दिया जाता है। देखिये—

तंड्री ! नायेड नीकु
न्नेनरु लेदा दैव चूडामणी
गुन्ड्रातिनि सति जेय वार्तं
विनि नीकुन् प्रोक्कुचुन् वेडुचुन्।
वेन्ड्रम्वैन भवाब्धि बापि
दयतो वीक्षिन्चि दैन्यम्बु तो
नुन्ड्रे नीकु भयम्बु ले दन
वदेमो हा जगन्नायका।

'हे मेरे पिता, देवचूडामणि! मुझ पर दया करो। मुझे लगता है कि आपने मुझे भुला दिया है। मैंने यह बात सुनी है कि आपने पत्थर को पवित्र स्त्री बनाया है। इसे सुनकर मैं आपकी वन्दना कर रहा हूँ। मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि इस भवताप को मिटाइये। मुझे आश्वासन दीजिये कि डरने के लिए कोई बात नहीं है।'

इस शतक के अतिरिक्त इनका लिखा एक और शतक मिला है, उसका मुकुट है 'नीलकधराध्यक्ष जगन्नायका'। श्री सी० पी० ब्राउन इसे अतिक्लिष्ट काव्य मानते हैं।

सा० प्र०

सिंहाद्रि वेन्कटय्या

श्रीकृष्ण की पत्नी लक्षणा अष्ट महिषियों में से एक थी। वह सबसे छोटी रानी थीं। श्रीकृष्ण-लक्षणा-परिणय की कथा को लेकर तेलुगु के अनेक कवियों ने काव्य लिखे हैं। उनमें सिंहाद्रि वेन्कटय्या अत्यन्त विवादग्रस्त कवि हैं। तेलुगु-साहित्य के मैक्समुल्लर श्री सी० पी० ब्राउन ने इन्हें सामान्य स्तर का कवि माना है। कवि और काव्य के बारे में उन्होंने लिखा है—

"This poem is useless. It is composed in a bad pedantric style and is in many places nearly un-intelligible. Yet it is much admired by some learned Telugus. The subject of the poem is marriage of Krishna, which is the theme of at least twenty Telugu poems."

"यह काव्य (लक्षणा-परिणयम्) एक अनुपयोगी काव्य है। काव्य की रचना शेखी बघारनेवाली हीन शैली में हुई है। अनेक स्थानों पर अर्थ स्पष्ट नहीं हैं। फिर भी कई तेलुगु विद्वान् इस काव्य के प्रशंसक हैं। इसका विषय कृष्ण-विवाह है। इस कथा को लेकर कम-से-कम बीस तेलुगु कवियों ने काव्य-रचना की है।"

ब्राउन साहब के इस मत से डॉ० आरुद्र और श्री चागन्टि शेषय्या सहमत नहीं हैं। श्री चागन्टि शेषय्या ने उक्त कथन का खण्डन करते हुए लिखा है-"ब्राउन पण्डित के प्रथम वाक्य में सचाई नहीं है। यह बुरा काव्य नहीं है। ये काव्य के रसास्वादन किये बिना लिखे गये वाक्य जान पड़ते हैं। बीस ग्रन्थों में कृष्ण-विवाह-सम्बन्धी कथा देखी जा सकती है। पर कृष्ण-लक्षणा-परिणय-सम्बन्धी काव्य तेलुगु में तीन-चार से अधिक नहीं हैं।" काव्यों की तालिका देते हुए (समग्र आन्ध्र साहित्यम्-दसवाँ खण्ड) डॉ० आरुद्र प्रमाणित करते हैं कि तेलुगु में ऐसे सिर्फ दस काव्य ही हैं। अस्तु, सिंहाद्रि वेन्कटय्या बहुचर्चित और विवादग्रस्त 'लक्षणा-परिणयम्' नामक तीन सर्गवाले काव्य के कर्त्ता हैं। वे इस काव्य को 'चमत्कार मंजरि' भी कहते हैं। यह तेलुगु का एक शृंगार-काव्य है।

सिंहाद्रि वेन्कटय्या या वेन्कटाचार्युडु जन्म से श्री वैष्णव थे। ये गौतम गोत्रवंशी चेन्नकेशनार्य के पुत्र थे। श्री वीरेशलिंगम् पन्तुलु के अनुसार सिंहाद्रि वेन्कटय्या सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध के कवि हैं। अपने गुरु रामानुजाचार्य को इन्होंने कृतिभर्ता बनाया है। उसने भद्राचलम् के श्री रामचन्द्र की स्तुति की है। इस स्तुति के आधार पर श्री चागन्टि शेषय्या का अनुमान है कि ये सम्भवतः गोदावरी नदी-तट के वासी होंगे।

मद्रदेशाधिपति बृहत्सेन महाराज की कन्या सुगुणा लक्षणा के साथ श्रीकृष्ण का पाणिग्रह मत्स्य-यन्त्र-भेदन के बाद ही हुआ था। उस घटना का वर्णन वेन्कटय्या इस प्रकार कर रहे हैं—

बंगरु दुप्पटम्बु पलेवाटुग नोप्प हसन्मुखान्जुडै
रिंगुन नारि गोल नमरिंचि तटालुन द्रुन्चे नाधनु
इचंगुड्डु गोप यौवत भुजन्गुड्डु मोदित संगुड्डुं गृपा
पांगुड्डु दृप्त दर्प बल भंजन यन्त्रमु मत्स्य यन्त्रमुन्।

'अपने सुनहरे उत्तरीय को एक भुजा से सरकाकर हँसते हुए धनुष-बाण लेकर देखते-देखते युवक कृष्ण ने मत्स्य-यन्त्र को निशाना बनाया। बाण के छूटते ही तत्काल यन्त्र टूट गया।'

मधुररस-सम्बन्धी यह छन्द भी सुन्दर है—

एलमिगन् जिन्न नाडे तनु नेत्तुक मुद्दोर्नरिचु व्रेतमून्
कल जिगि मोवि चन्नुलुनु गंकुड्डु काय लवक दोण्ड पं
डुलुम नोर्नचि याडिन घुनुन् डिपु डेन्दरिनैन् पेंड्लियै
पोलुपगु टेमि यन्चु नोक प्रोड नगिन्चे सखी जनंबुलन्।

'अनेक कन्याओं के साथ विवाह कर लेनेवाले श्रीकृष्ण की हँसी उड़ाते हुए एक प्रौढ़ा ने कहा, ये तो नटखट कृष्ण हैं। बालकृष्ण को जब गोपकन्याएँ उठाकर प्यार करती थीं, तब उनके गोलियों के समान स्तन-द्वय से खेल-खेलकर उन्हें संतरे की आकृतिवाले बनानेवाले श्रेष्ठ कृष्ण आज अनेक के साथ विवाह कर रहे हैं, तो आश्चर्य की क्या बात है?'

सा० प्र०

सिद्धराजु तिम्मराजु

सिद्धराजु तिम्मराजु अलिय रामराजु के भानजे थे। इन्होंने अपने पिता के सम्बन्ध में लिखते हुए एक

साथ चार विशेषणों का प्रयोग किया है। 'वे भोग वैभव नूतन सुत्रामुडु (इन्द्र) हैं। उनकी माँ कोनमाम्बा थीं। वे शूर-वीर थे। ५० हजार सैनिकों को लेकर उन्होंने कोण्डपल्ली, मचिलीपट्टनम् पर आक्रमण किया था।' रामराजु ने गोलकुण्डा पर चढ़ाई की थी। इस अभियान में सिद्धिराजु तिम्मराजु ने इनका साथ दिया था। सन् १५४४ ई० के आसपास तिम्मराजु कोण्डवीडु के स्वामी बने थे। 'परमयोगिनी विलासमु' के रचयिता ताल्लपाक चिन्नन्न इनके समकालीन थे। चिन्नन्न ने अपने काव्य को द्विपद छन्द में लिखा था। आचार्य निडुदवोलु वेन्कटरावु का विचार है कि सिद्धराजु तिम्मराजु ने चिन्नन्न की रचना पढ़ी थी। उसके बाद ही इन्होंने उसका रूपान्तर पद्य में किया। (देखिये चदलवाड मल्लन्न द्वारा लिखित विप्रनारायण-चरित्र की प्रस्तावना) 'परमयोगि विलासमु' की रचना रक्षसतंगडि (यहाँ अलिय रामराजु मुसलमानों के हाथ मारे गये थे) के युद्ध के पूर्व अर्थात् १५५७ ई० के बाद सिद्धराजु तिम्मराजु ने की होगी। कवि के अनुसार उसका काव्य नवीन भावों का भाण्डार है। यह रसमय है और साथ ही साथ 'सन्नुत शब्द शुद्धि' युक्त भी है।

चिन्तामग्न देवदेवी सोने गयी। स्वप्न में श्रीरंग नायक प्रत्यक्ष होकर समझाने लगे—

इट्टि चिन्ततोड निन्त योकिन्त गूर्कुंटयु रंगनाथ-
कुण्डु गरुण
पोलुपु मीर दानि कल लोन ब्रत्यक्ष-मगुचु
गानिर्पिंचि यादरमुन
एल विचारिन्चेद वो बालिक : नी कोर्के येल्ल
फलितंबु ग ने
वालायम् गाविन्चेद-जालि युडुगु मनुचु बलिकि
चनियेन् जनिनन्।

'इस चिन्ता के साथ देवदेवी ने थोड़ी देर के लिए सोना चाहा। उसकी आँख लग गयी। श्रीरंग नायक ने, जो दयावान् हैं, स्वप्न में प्रकट होकर आदर के साथ कहा—'हे बालिके! तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। मैं तुम्हारे लिए मार्ग को सुगम बनाऊँगा। चिन्ता तजो।' इतना कहकर वे ओझल हो गये।'

एक बार लक्ष्मी ने श्रीविष्णु से कहा—"हे नाथ! आप पक्षपाती हैं। यह आपको शोभा नहीं देता।" इन्दिरा के वचनों को सुनकर कमलनयन विष्णु लक्ष्मी से इस प्रकार कहने लगे—

तन्ड्रि कन्टेनु दल्लिकि दनयुल्न्दु
बरम वत्सलता धर्म गरिम मिगुल
नधिक मनि पल्कुदुरु गान नब्जवदन
इट्टि कारुण्य मुचितम येन्दु नीकु।

लक्ष्मी के प्रश्न के उद्देश्य को जाननेवाले विष्णु ने कहा—'सब लोगों का कहना है कि पिता से भी बढ़कर माँ ही सन्तान को अधिक चाहती है। इसलिए हे कमलाक्षी! इस प्रकार सब पर दया दिखाना तुम्हारे लिए अधिक उचित है।'

सिद्धराजु तिम्मराजु ने मंगलगिरि के नरसिंह स्वामी की स्तुति इन शब्दों में की है—

श्री रंजिल्लग बानकम् बनिशमुन् सेविम्पगा दद्गुणम्
बारुदिन् बोलुपोन्देनो यनग योगानन्द माधुर्यल
क्ष्मीरम्याकृति नोप्पु मंगलगिरि श्रीमन्नृसिंहुन्डु स
त्कारुण्यामृत वृष्टि चे दनुपु नित्यम्बुं ब्रसन्नावलिन्।

'मंगलगिरि के नृसिंह स्वामी, जिन्हें भक्त लोग पानकाल नरसिंह स्वामी (अर्थात् गुड़, इलायची और पानी से मिला पान पीनेवाले स्वामी) कहते हैं, नित्य प्रसन्न रहते हैं। मीठा 'पानकम्' का अनवरत पान करने के कारण मधुर गुण उनको मिला होगा। लक्ष्मी के साथ नृसिंह स्वामी सदैव योगानन्द-मुद्रा में रहते हैं। वे अहर्निश भक्तजनों पर दया की वृष्टि करते रहते हैं।'

'विप्रनारायण-चरित्र' में देवदेवी विप्रनारायण को अपना दास बना लेना चाहती है। वह दास बनाने का प्रण भी करती है और अन्ततः बना भी लेती है।

ठीक इसी प्रकार विप्रनारायण-चरित्र के चार कवि अपनी-अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर पाठकों को अपना दास बना लेने में काफी हद तक सफल हुए हैं।

सा० प्र०

सेट्टि लक्ष्मी नरसिंहम्

श्री सेट्टि लक्ष्मी नरसिंहम् का जन्म अगस्त, सन् १८७९ ई० में गंजाम के गोपालपुरम् नामक गाँव में हुआ था। ये एक सुकवि, नाटककार, अभिनेता, प्रख्यात वकील, कुशल प्रशासक तथा युवा-पीढ़ी के मार्गदर्शक थे। नोबुल पुरस्कार-प्राप्त करनेवाले सर सी० वी० रामन आपके शिष्य थे। उनके अतिरिक्त इनके और भी अनेक प्रतिभाशाली शिष्य थे।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा विजयनगरम् में हुई थी। तत्पश्चात् ये प्रेसीडेन्सी कॉलेज (मद्रास) में भर्ती हुए। वहाँ से इन्होंने प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया। इनका विवाह एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। ये अपने समकालीन साहित्यकार गुरुजाड अप्पाराव का बहुत सम्मान करते थे। संस्कृत के मृच्छकटिकम् नाटक का अनुवाद करके इन्होंने उन्हें समर्पित किया था। उन्होंने अपने दूसरे प्रसिद्ध नाटक 'चित्र-हरिश्चन्द्रीयम्' को प्रसिद्ध समाज-सुधारक और साहित्य-सेवी श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पन्तुलु को समर्पित किया था।

ये मास्टरजी श्री रघुनाथ वर्मा द्वारा स्थापित 'जगन्मित्रा नाटक समाज' के सक्रिय सदस्य थे। ये प्रायः भीम, भीष्मपितामह, सत्यवान्, अर्जुन, दुर्योधन आदि पुराणपुरुषों का अभिनय करते थे। इन्होंने प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा द्वारा बनाये गये चित्रों के आधार पर काव्य-रचना करके जयपुर के महाराजा विक्रमदेव को अर्पित किया था। 'राधागंगावतरणम्' इनका प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'रुक्मिणी-कल्याणम्' (सन् १९०५ ई०), 'कीचकवध' (१९०७ ई०), चित्रहरिश्चन्द्रीयम्' (१९१३ ई०), 'लुब्धा ग्रेसर चक्रवर्ति प्रहसनम्' (१९१४ ई०) आदि नाटकों की भी रचना की थी। ये राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इसका प्रमाण इनका 'रुक्मिणी-कल्याणम्' नामक नाटक है। इनका निधन १२ जून, सन् १९३८ ई० को हुआ।

सा० प्र०

हरिभट्टु

हरि भट्टारक, हरि भट्टोपाध्याय, हरि सूरि, हरिहर भट्ट आदि नामों से प्रख्यात हरिभट्टु ईसा की सोलहवीं शती के कवि हैं। इनके द्वारा विरचित 'रति-रहस्यम्' (संस्कृत-रचना) प्रमाणित करता है कि ये युवावस्था में रागी थे। वय के साथ जब इनका राग विराग में परिणत हुआ तो ये ऊँचे दरजे के बैरागी बन गये। इस मानसिक परिवर्तन के कारण ही इन्होंने 'मत्स्य-पुराण' नामक अपने काव्य को श्रीरंगम् के रंगनाथ स्वामी को अर्पित किया था। 'मत्स्य-पुराण' के पहले इन्होंने 'वराह-पुराणम्' की रचना की थी। अपने इस काव्य के लिए हरिभट्टु ने कंबम् मेट्टु नामक ग्राम के पटवारी कोलिपाक एर्रय्या को कृतिपति बनाया था। कवि के देहावसान के बाद इनके पुत्र ने अपने पिता की अन्तिम रचना 'नारसिंह-पुराण' के उत्तरभाग को फिर से एक राजा के नाम समर्पित किया था।

तेलुगु के अन्य सुप्रसिद्ध स्मार्त भक्तों की तरह हरिभट्टु भी हरिहर में अभेद माननेवाले अद्वैती थे। श्री वैष्णवों के प्रभाव में आकर ये स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त के प्रचारक बन गये थे। हरिहर भट्ट धीरे-धीरे हरिभट्टु नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ये आपस्तम्ब-सूत्रों को माननेवाले भारद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण राम विद्वन्मणि के सुपुत्र थे। चन्द्र भट्ट के वंशज होने के कारण सभी लोग हरिभट्टु के पिता रामचन्द्रुडु को चन्द्रनामांक राम कहा करते थे। तिम्मम्मा इनकी माँ थीं। हरिभट्टु

पोतन की भाँति राम को ही अपना सर्वस्व माननेवाले भक्त थे। इस अनन्य भक्ति के कारण इन्होंने अपने पुत्र का नाम 'राम' रखा था।

प्रसिद्ध समालोचक ओलेटि वेंकट राम शास्त्री ने 'नारसिंह-पुराण' (उत्तरभाग) के आमुख में हरिभट्टुकृत निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है—वराह-पुराणम्, मत्स्य-पुराणम्, भागवत के षष्ठ, एकादश तथा द्वादश स्कन्ध और नारसिंह-पुराणम् (उत्तरभाग)। अपनी प्रथम कृति 'वराह-पुराणम्' के लिए इन्होंने कोलिपाक येरंय को कृतिपति के रूप में चुना था। इस समर्पण के बाद कवि ने अनुभव किया कि नर को कृतिभर्ता नहीं बनाना चाहिए। इसलिए 'मत्स्य-पुराणम्' लिखकर श्रीरंगम् के रंगनाथ स्वामी के नाम अर्पित किया। इन्होंने भागवत के षष्ठ स्कन्ध को भक्ति के साथ श्रीकृष्ण को अर्पित किया था। अन्तिम काव्य को हरिभट्टु के पुत्र ने प्रोलगंटि रंगन के नाम अर्पित किया। कविकृत उक्त ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिभट्टु कंबम् मेट्ट जिसे आजकल कम्ममु मेट्टा कहते हैं, के निवासी होंगे। उसके आसपासवाला ग्राम भी इनका निवास-स्थान हो सकता है। हरिभट्टु को चिन्नपल्लै नामक एक ग्राम दान में मिला था। वीरमम नाथकुडु नामक राजा ने अपने माता-पिता की पुण्य स्मृति में चिन्नपल्लै को दान में दिया था, ताकि उन्हें सद्गति मिले। दान देते समय उन्होंने चिन्नपल्लै नाम को 'राम समुद्रम्' में बदल दिया था। उक्त शासन के आधार पर आलोचकों ने अनुमान लगाया है कि कवि हरिभट्टु का जन्म सन् १४५० ई० में हुआ होगा और मृत्यु सन् १५२० ई० में।

कवि ने 'वराह-पुराणम्' में श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है।

पूतना श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल पहुँचती है। वह अपने स्तन को श्रीकृष्ण के ओंठों से लगाती है। अपने दोनों हाथों से दोनों कुचों को पकड़कर बलपूर्वक कृष्ण मर्दन करने लगे। पूतना के स्तनों में पीड़ा होने लगी और मुँह से कृष्ण पूतना के रक्त को चूसने लगे। इस घटना का वर्णन देखिये—

विडुविडु मनचुनु, बेदवुल तडुपुचु
नोर्मोत्तुकोनुचु दनुन् बडन् द्रोपन्
विडुवक, तत्प्राणम्बुल वेडलन्गन् गुच विषमु
शिशुवु-वेसन् बोल्चुटयुन्

स्तनदात्री पूतना पीड़ा के कारण चिल्लाते हुए कृष्ण से कह रही है—'छोड़ो, छोड़ दो। वह अपने होंठों को काट रही है—चिल्ला रही है। अपने स्तन से कृष्ण को अलग कर नीचे ढकेल देने का प्रयत्न कर रही है। फिर भी कृष्ण नहीं छोड़ रहा है। विष का पान कर रहा है। पूतना के प्राण निकल रहे हैं।'

शिशुपाल-वध-सम्बन्धी निम्नलिखित पद्य में शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दा कड़े शब्दों में कर रहा है। अग्रपूजा के लिए वह श्रीकृष्ण को अयोग्य कहता है। देखिये—

ईसभ यन्दकृत्य मिदि-इट्लोनरिन्चि नरेन्द्रु बुद्धि पूमेंसनो ? काक ज्ञानमुन मिन्चिन संयमिवर्युं लुन्डन्गा भूसुरु लुन्डन्गा, नृपति-पुंगवु लुन्डन्ग, नग्रपूजकुन् गासुकुन् बोनि ई पसुल कापरि, पेदरि गोल्ल ड्हुंडे ?

'इस सभा में यह कैसा अनुचित हो रहा है ? क्या राजा की बुद्धि घास चरने गयी है ? जब सभा में इतने बड़े ज्ञानी और संयमी लोग उपस्थित हैं, ब्राह्मण लोग हैं, राजा-महाराजा हैं, इन सबको छोड़कर अग्रपूजा के लिए इसे (कृष्ण को) तुम कैसे चुन सकते हो ? यह सर्वथा अयोग्य है। एक दमड़ी देकर भी कोई इसे नहीं खरीद सकता। यह तो गायों को चरानेवाला गरीब ग्वाला है। यह अग्रपूजा के लिए सर्वथा अयोग्य है।'

सा० प्र०

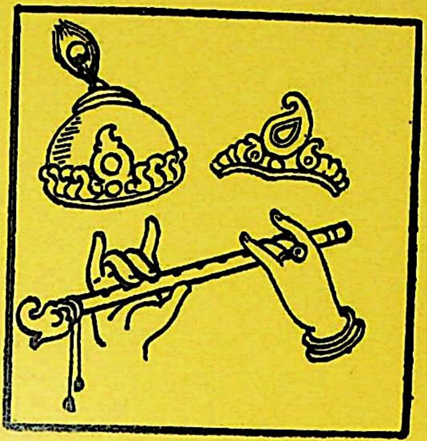

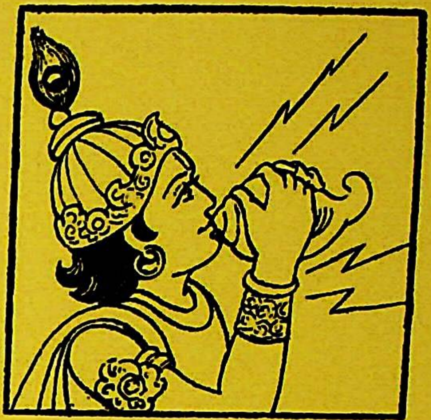

नेपाल में कृष्णभक्ति का विकास

—डा० डिल्लीराम तिमसिना
—भगवती प्रसाद सिंह

नेपाल के कृष्णभक्त

—डा० डिल्लीराम तिमसिना

नेपाल में कृष्ण-भक्ति का विकास

हिन्दू अधिराज्य नेपाल अपने इतिहास के आदिकाल से ही एक धर्मप्राण देश रहा है। विभिन्न युगों में यह शैव, शाक्त, वैष्णव तथा बौद्ध-मत का केन्द्र बनता रहा किन्तु उनके अनुयायियों तथा प्रचारकों में, धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव के कारण, कभी संघर्ष नहीं हुआ। सभी मत एक साथ विकसित होते रहे। इसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक उदारता उनकी जीवन-पद्धति का एक अनिवार्य अंग बन गयी। यहाँ के मन्दिरों में शिव, विष्णु, बुद्ध, भैरव आदि विभिन्न मतों के आराध्यदेवों की मूर्तियाँ एक साथ स्थापित मिलती हैं और यहाँ का जनसमुदाय सबके प्रति समान भाव से आस्था के सुमन अर्पित करता है। हिन्दू-संस्कृति की विशालता एवं उदारता का यह जीवन्त प्रतीक है।

नेपाल में वैष्णव-धर्म के प्रसार का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन भारत में इसका प्रधान पुरस्कर्ता एवं संरक्षक लिच्छवि-राजवंश था, जो गुप्त राजाओं का समकालीन (४०० से ८०० ई०) था। गुप्त राजाओं से इसके वैवाहिक सम्बन्ध के प्रमाण मिलते हैं। गुप्त-वंश वैष्णव-धर्म का पोषक था। सम्भव है इसका भी प्रभाव लिच्छवि राजाओं पर पड़ा हो। इन राजाओं के शासनकाल में निर्मित तथा गण्डकी-तट पर स्थित दण्डघाट की विष्णु-मूर्ति और बूढ़ा नीलकण्ठ में शेषशायी विष्णु की विशाल मूर्ति आज भी उनकी विष्णु-भक्ति का साक्ष्य दे रही है। इसके अतिरिक्त इन राजाओं के शिलालेखों में भी विष्णु तथा नरनारायण की स्तुतियाँ उत्कीर्ण हैं। श्रीकृष्ण-चरित के आदिगायक कृष्ण द्वैपायन व्यास की स्तुति में एक पूरा काव्य ही शिलांकित मिला है। इसमें महाभारत को पंचम-वेद कहा गया है।

लिच्छवियों के पतन के अनन्तर यहाँ मल्लवंश का शासन स्थापित हुआ, जो १५वीं शती के आरम्भ से १८वीं शती के अन्त तक चलता रहा। यह भारत के मुगल बादशाहों का समकालीन युग था। इसे नेपाल के इतिहास का मध्यकाल, किन्तु कला एवं साहित्य के विकास की दृष्टि से स्वर्णयुग, माना जाता है।

मल्ल राजागण यद्यपि मुख्य रूप से शैव और शाक्त-मत में आस्थावान् थे, फिर भी साहित्य तथा कला के प्रेमी होने के कारण वैष्णव-धर्म को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। इनमें से कुछ तो वास्तव में कृष्ण-भक्त थे। इस काल में निर्मित भातगाँव (भक्तपुर) तथा पाटण के कृष्ण-मन्दिर नेपाली स्थापत्य-कला के आदर्श माने जाते हैं। विगत ४०० वर्षों से ये नेपाली कृष्ण-भक्तों की श्रद्धा और पर्यटकों के आकर्षण-केन्द्र रहे हैं। इतना ही नहीं, मल्ल-वंश के अनेक राजाओं और उनके आश्रित कवियों ने श्रीमद्भागवत तथा गीत-गोविन्द के आधार पर संस्कृत में अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। इसी समय से नेपालवासियों का भारत के कृष्ण-भक्तों तथा कृष्ण-तीर्थों—मथुरा, वृन्दावन—से सम्पर्क स्थापित हुआ। फलतः प्रणामी-सम्प्रदाय का आश्रम स्थापित हुआ और उसके अनुयायियों की परम्परा प्रवर्तित हुई। स्वामी प्राणनाथ-विरचित 'कुलजम' की दो प्राचीन पाण्डुलिपियाँ नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं।

नेपाली भाषा में साहित्य-रचना का आरम्भ अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में गोरखा-वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीनारायण शाह द्वारा परस्पर संघर्षरत छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व मिटाकर, नेपाल के एकीकरण के पश्चात् हुआ। उनके सुयोग्य प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा ने पूरे देश में सुदृढ़ शासन-व्यवस्था तथा शान्ति-स्थापना द्वारा साहित्य, धर्म-साधना तथा कला के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

नेपाल में कृष्ण-भक्ति का विकास

हिन्दू अधिराज्य नेपाल अपने इतिहास के आदिकाल से ही एक धर्मप्राण देश रहा है। विभिन्न युगों में यह शैव, शाक्त, वैष्णव तथा बौद्ध-मत का केन्द्र बनता रहा किन्तु उनके अनुयायियों तथा प्रचारकों में, धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव के कारण, कभी संघर्ष नहीं हुआ। सभी मत एक साथ विकसित होते रहे। इसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक उदारता उनकी जीवन-पद्धति का एक अनिवार्य अंग बन गयी। यहाँ के मन्दिरों में शिव, विष्णु, बुद्ध, भैरव आदि विभिन्न मतों के आराध्यदेवों की मूर्तियाँ एक साथ स्थापित मिलती हैं और यहाँ का जनसमुदाय सबके प्रति समान भाव से आस्था के सुमन अर्पित करता है। हिन्दू-संस्कृति की विशालता एवं उदारता का यह जीवन्त प्रतीक है।

नेपाल में वैष्णव-धर्म के प्रसार का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन भारत में इसका प्रधान पुरस्कर्ता एवं संरक्षक लिच्छवि-राजवंश था, जो गुप्त राजाओं का समकालीन (४०० से ८०० ई०) था। गुप्त राजाओं से इसके वैवाहिक सम्बन्ध के प्रमाण मिलते हैं। गुप्त-वंश वैष्णव-धर्म का पोषक था। सम्भव है इसका भी प्रभाव लिच्छवि राजाओं पर पड़ा हो। इन राजाओं के शासनकाल में निर्मित तथा गण्डकी-तट पर स्थित दण्डघाट की विष्णु-मूर्ति और बूढ़ा नीलकण्ठ में शेषशायी विष्णु की विशाल मूर्ति आज भी उनकी विष्णु-भक्ति का साक्ष्य दे रही है। इसके अतिरिक्त इन राजाओं के शिलालेखों में भी विष्णु तथा नरनारायण की स्तुतियाँ उत्कीर्ण हैं। श्रीकृष्ण-चरित के आदिगायक कृष्ण द्वैपायन व्यास की स्तुति में एक पूरा काव्य ही शिलांकित मिला है। इसमें महाभारत को पंचम-वेद कहा गया है।

लिच्छवियों के पतन के अनन्तर यहाँ मल्लवंश का शासन स्थापित हुआ, जो १५वीं शती के आरम्भ से १८वीं शती के अन्त तक चलता रहा। यह भारत के मुगल बादशाहों का समकालीन युग था। इसे नेपाल के इतिहास का मध्यकाल, किन्तु कला एवं साहित्य के विकास की दृष्टि से स्वर्णयुग, माना जाता है।

मल्ल राजागण यद्यपि मुख्य रूप से शैव और शाक्त-मत में आस्थावान् थे, फिर भी साहित्य तथा कला के प्रेमी होने के कारण वैष्णव-धर्म को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। इनमें से कुछ तो वास्तव में कृष्ण-भक्त थे। इस काल में निर्मित भातगाँव (भक्तपुर) तथा पाटण के कृष्ण-मन्दिर नेपाली स्थापत्य-कला के आदर्श माने जाते हैं। विगत ४०० वर्षों से ये नेपाली कृष्ण-भक्तों की श्रद्धा और पर्यटकों के आकर्षण-केन्द्र रहे हैं। इतना ही नहीं, मल्ल-वंश के अनेक राजाओं और उनके आश्रित कवियों ने श्रीमद्भागवत तथा गीत-गोविन्द के आधार पर संस्कृत में अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। इसी समय से नेपालवासियों का भारत के कृष्ण-भक्तों तथा कृष्ण-तीर्थों—मथुरा, वृन्दावन—से सम्पर्क स्थापित हुआ। फलतः प्रणामी-सम्प्रदाय का आश्रम स्थापित हुआ और उसके अनुयायियों की परम्परा प्रवर्तित हुई। स्वामी प्राणनाथ-विरचित 'कुलजम' की दो प्राचीन पाण्डुलिपियाँ नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं।

नेपाली भाषा में साहित्य-रचना का आरम्भ अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में गोरखा-वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीनारायण शाह द्वारा परस्पर संघर्षरत छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व मिटाकर, नेपाल के एकीकरण के पश्चात् हुआ। उनके सुयोग्य प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा ने पूरे देश में सुदृढ़ शासन-व्यवस्था तथा शान्ति-स्थापना द्वारा साहित्य, धर्म-साधना तथा कला के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

यह एक सुखद आश्चर्य है कि भगवान् पशुपतिनाथ और महायोगी गोरखनाथ की उपासना-भूमि की लोकभाषा का प्रथम कवि इन्दिरस कृष्ण-भक्त था और उसके द्वारा विरचित 'कृष्ण-चरित्र' नामक गीति-काव्य नेपाली भाषा की प्रथम रचना है। यद्यपि नेपाली-साहित्य के इस आदिकाल में वीरगाथा के साथ राष्ट्रीय भावना की रचनाओं की भी परम्परा मिलती है, किन्तु समग्ररूपेण भक्ति की ही प्रवृत्ति प्रधान ठहरती है। धर्मपरायण नेपाली जनमानस का आरम्भ से ही अध्यात्मोन्मुख होना स्वाभाविक था। यह धार्मिकता ही उसका सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक रिक्थ है। नेपाल के इस आदिकालीन साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि उसमें धर्मभावना के साथ श्रृंगार का भी पर्याप्त मिश्रण हुआ है फिर भी प्रधानता भक्ति की ही रही। इसके समक्ष अन्य सभी तत्त्व गौण हो गये थे। स्थानीय साहित्य के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अठारहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते कृष्णभक्तिपरक रचनाओं के निर्माण की जो परम्परा चली उसके पीछे यहाँ की धर्मभावापन्न जनता में भागवत, महाभारत और गीता में वर्णित कृष्ण-चरित का व्यापक प्रभाव तथा कृष्ण के लोकमोहक व्यक्तित्व के प्रति अपार आकर्षण था। किन्तु इस काल के कृष्णाश्रित काव्यों में हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य जैसे विशद तथा सरस प्रसंगों का प्रायः अभाव है। कुछ विद्वानों के मत में इसका एक कारण इन काव्यों के रचयिताओं की रासलीला के घोर श्रृंगारी प्रसंगों के प्रति विरति थी। अन्य विचारकों ने इसका कारण उस युग के साहित्यकारों की मौलिक कृष्ण-काव्य-रचना की अपेक्षा कृष्ण-कथा से सम्बद्ध पुराणों के अनुवाद में अधिक रुचि लेना था। सम्भवतः इसीसे इस काल में निर्मित कृष्ण-काव्यों में मौलिकता की कमी तथा वर्णनात्मकता की प्रधानता दिखाई देती है। कृष्ण-चरित की अलौकिकता के प्रतिपादन तथा राधा की उपेक्षा इस युग के कृष्ण-भक्ति-साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता है। सारांश यह कि आलोच्य काल के कृष्ण-भक्त कवियों का ध्यान सीधे-सादे शब्दों में भक्ति-निवेदन की ओर अधिक रहा है, कवित्वपूर्ण भाषा में अपने उद्गारों की अभिव्यक्ति की ओर प्रायः नहीं के बराबर।

नेपाली साहित्य का पूर्व-मध्यकाल सामान्यतया सन् १८४१ से १८८२ ई० तक विस्तृत माना जाता है। यह हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल का परवर्ती युग है। अतः चिरकालीन सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण उससे अप्रभावित नहीं रह सकता था। यहाँ भी हिन्दी की भाँति भक्ति-स्रोतस्विनी तीन धाराओं में प्रवाहित हुई—निर्गुण-भक्ति, राम-भक्ति तथा कृष्ण-भक्ति। इस युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा समर्थ कवि भानुभक्त (सन् १८४१ ई०) ने रामायण की रचना कर नेपाली-साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात किया। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता से सगुण-भक्ति को राष्ट्र की जीवनधारा में एक बार फिर उभरकर सामने आने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस काल में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परागत प्रवृत्ति अधिक समृद्ध हुई और उसने नेपाली-वाङ्मय को अनेक ग्रन्थरत्नों से अपूर्व समृद्धि प्रदान की। उसका सबसे बड़ा योगदान है राधा-तत्त्व का विकास। आदिकालीन कृष्ण-भक्तों द्वारा उपेक्षिता राधा इस युग के कृष्णोपासक कवियों की मुख्य प्रेरणा-स्रोत बन गयीं। राधा के साथ रुक्मिणी को भी यथोचित महत्त्व दिया गया और उनके चरित को आधार बनाकर अनेक उत्कृष्ट काव्यों की रचना हुई।

नेपाली साहित्येतिहास के उत्तर-मध्यकाल (सन् १८८३ से १९१२ ई०) में कृष्ण-भक्ति-विषयक रचनाओं की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रही। पं० शिखरनाथ सुवेदी और होमनाथ खतिबड़ा की विविध आयामी कृतियों से, बदलती हुई परिस्थितियों के साथ, उसके विकास का अनुमान लगाया जा सकता है।

नेपाल में निर्मित मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य के पर्यालोचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके रचयिता अपनी सांस्कृतिक परम्परानुकूल अत्यन्त उदार रहे हैं। निर्गुण-सगुण तथा शैव-वैष्णव के साम्प्रदायिक भेदभाव से दूर रहकर उन्होंने नाथसिद्धों का भी गुणगान किया है। पतञ्जलि गजुर्याल का 'हरिभक्त-माला' तथा बालगोपाल-वर्णन के साथ 'मत्स्येन्द्रनाथको कथा' तथा शिखरनाथ सुवेदी का 'दुर्गाकवच' की रचना करना इसका प्रमाण है।

इस सन्दर्भ में दूसरी बात जो लक्ष्य करने की है, वह है नेपाली कृष्ण-भक्ति-काव्य की स्वतन्त्र सत्ता। नेपाल के आदिकालीन कृष्ण-साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह स्थानीय भक्तों तथा विद्वानों के अपने चिन्तन से उद्‌भूत था, किसी बाह्य प्रेरणा से नहीं। यह दूसरी बात है कि उसके उपजीव्य ग्रन्थ भी श्रीमद्‌भागवत, महाभारत और गीता ही थे, जो भारतीय कृष्णोपासक कवियों के भी प्रेरणा-स्रोत थे। अनुवाद से आरम्भ होकर मौलिक कृतियों के सृजन तक की यह सारस्वत-यात्रा स्वयं उसके प्रकृत विकास एवं मौलिकता का परिचायक है।

आधुनिककालीन नेपाली-साहित्य में भी, इतरदेशीय वाङ्मय की भाँति, भक्ति के मूलाधार श्रद्धा, विश्वास और भावुकता का स्थान तर्क, सन्देह तथा बौद्धिकता ने ले लिया है। आज के साहित्यकार की दृष्टि में परलोक एवं आदर्श की अपेक्षा इहलोक और यथार्थ का चित्रण मानवोत्थान के लिए अधिक उपयोगी है। इससे भक्ति की प्रकृत धारा के प्रसार तथा तदाश्रित साहित्य के निर्माण में व्यवधान अवश्य उपस्थित हुआ है किन्तु उसके लुप्त होने की सम्भावना नहीं है। तत्त्व के रूप में ही नहीं, धार्मिक जनसमुदाय के बीच एक जागृत, सशक्त तथा प्रेरणाप्रद आन्दोलन के रूप में यह भक्ति-मन्दाकिनी अब भी प्रवहमान है। लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा जैसे प्रगतिशील कवि की रचनाओं में उसकी झलक देखी जा सकती है। इस दिशा में नेपाल के वर्तमान धर्मपरायण राजवंश द्वारा निर्मित, संरक्षित तथा संचालित व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक पीठों, धार्मिक संस्थाओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं साहित्यकारों का भी विशेष सहयोग रहा है।

पाटन के कृष्ण-मन्दिर में शताब्दियों से चला आता हुआ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-महोत्सव आज भी बड़े धूमधाम से मनाया जाता है, जिसमें महाराज तथा महारानी स्वयं उपस्थित होते हैं। वनकाली स्थित सनातनधर्म समिति द्वारा सप्ताहव्यापी कृष्णजन्माष्टमी-उत्सव आयोजित होता है। इन विशेष अवसरों के अतिरिक्त पूरे वर्षभर संकीर्तन-मण्डलियों द्वारा विभिन्न स्थानों पर हिन्दी तथा नेपाली के भक्त कवियों के भजनों के साथ यहाँ की मौखिक परम्परा में प्रचलित कृष्णचरित-सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। इसके साथ ही कृष्ण-भक्ति के विविध सम्प्रदायों तथा व्यक्तिगत साधकों के अपने आश्रम हैं—प्रणामी-सम्प्रदाय और कृष्णमंजरीदेवी के आश्रम लोकप्रसिद्ध हैं। इधर 'इस्कन' द्वारा 'श्रीकृष्ण-संचेतना' के प्रचारार्थ एक विशाल मन्दिर स्थापित हुआ है, जिससे मध्यकालीन वातावरण की सृष्टि करके साम्प्रदायिक कृष्ण-भक्ति के प्रसार का आन्दोलन व्यापक रूप से चलाया जा रहा है। इस दिशा में नेपाल की मीरा के नाम से प्रसिद्ध कृष्णमंजरी देवी साधना तथा साहित्य-रचना दोनों दृष्टियों से एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं। ये प्रयास प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जनमानस में बीजरूप में विद्यमान कृष्ण-भक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त करेंगे, ऐसा विश्वास है।

उपर्युक्त रचनाकारों के अतिरिक्त नेपाल में कृष्ण-भक्ति-साहित्य के उद्‌भव एवं विकास में निम्नांकित भक्तों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है—

क्रमसं०	रचनाकार	ग्रन्थ	समय
१.	वंशमणि	कृष्णचरित्रकाव्यम् (संस्कृत)	अज्ञात
२.	मानाङ्क	वृन्दावनकाव्यम् ,,	सं० १७२८
३.	मान्धातासिंह (राजा)	गीतकेशव ,,	,, १७३४
४.	जयरणजीतमल्लदेव (राजा)	कृष्णचरित्र नाटक ,,	,, १७९५
५.	बिल्वमंगल संन्यासी	गोपालस्वरूपाङ्ग काव्य ,,	,, १७९७
६.	रामचन्द्र कवि	राधाविनोदकाव्यम् ,,	,, १८४७
७.	जयभूपतीन्द्र मल्ल	कंसवध नाटकम् ,,	—
८.	छविलाल पाल्पाली	गोपीगीत (नेपाली)	—
९.	कृष्णनाथ सिग्देल	सुदामा-चरित्र ,,	—
१०.	हरिहर लभिछाने	सुदामा-चरित्र ,,	—
११.	दलबहादुर कार्की	सुदामाभाषाश्लोक (नेपाली)	—
१२.	अब्जनाथ ओझा	गोपिका-स्तुति ,,	—
१३.	ज्योतिप्रसाद गौतम	कृष्णक्रीड़ा निकुञ्ज ,,	—
१४.	बैजनाथ सेढ़ाई	कालाप्रतापमाला ,,	—
१५.	रहरसिंह राई	गोपिनीको श्लोक ,,	—
१६.	गोविन्द बहादुर	सर्वलहरी ,,	—
१७.	मुरारी ढुंगाना	श्रीमद्भागवत-कथासार ,,	—
१८.	बद्रीदास	रुक्मिणी-हरण लीला ,,	—
१९.	नरेन्द्रनाथ रिगाल	महाभारत का अनुवाद ,,	—
२०.	दीर्घमान	भागवत का अनुवाद ,,	—
२१.	शम्भुप्रसाद उपाध्याय	,, ,, ,, ,,	—
२२.	केसरनाथ उपाध्याय	गीता का अनुवाद ,,	—
२३.	गंगनाथ शर्मा	,, ,, ,, ,,	—
२४.	भुवनप्रसाद ढुंगेल	,, ,, ,, ,,	—
२५.	रामप्रसाद सत्याल	महाभारत टीका ,,	सं० १९३१–२०३०
२६.	कृष्णप्रसाद ऐमी	आदिपर्व, उद्योगपर्व, वनपर्व (नेपाली)	सं० १९४०-१९८५
२७.	चक्रपाणि चालिसे	संक्षिप्त महाभारत ,,	सं० १९४०–२०१५
२८.	लेखनाथ पौडेल	गीतासार (पद्य) ,,	सं० १९४१-२०२२
२९.	कोमलनाथ अधिकारी	कोमलगीता ,,	सं० १९५०–२०२२

—डॉ० डिल्लीराम तिमसिना

—भगवतीप्रसाद सिंह

●

नेपाल के कृष्ण-भक्त

इन्दिरस

कृष्ण-भक्त इन्दिरस नेपाली भाषा के प्रथम कवि माने जाते हैं। नेपाली-साहित्य के प्रायः सभी आदिकालीन कवि संस्कृत के विद्वान् थे। इन्दिरस की भी संस्कृत में अच्छी गति थी। इसका प्रमाण उनके द्वारा विरचित 'गोपिका-स्तुति' नामक ग्रन्थ है, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ३१वें अध्याय का नेपाली भाषा में अनुवाद है। संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग इसकी विशेषता है। इसकी भाषा अवधी, भोजपुरी तथा मैथिली से प्रभावित है। कहीं-कहीं अरबी, फारसी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। शैली गीतिकाव्य के अनुरूप सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। इसकी रचना सं० १८८४ में हुई थी। यह भक्ति-काव्य हिन्दी, मैथिली तथा बंगला कृष्ण-भक्ति-काव्य की भाँति शृंगार-रसपूर्ण है। इन्दिरस अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि थे। नेपाली-साहित्य में भक्ति-काव्य की परम्परा के प्रवर्तक के रूप में इनका विशिष्ट स्थान है।

इनके दो छन्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

व्रज त बेस् बन्यो तिम्रि जन्मले।
लक्ष्मि छन् जहाँ तिम्रि प्रीतिले॥
प्रिय! निहार हे प्राण! धर्दछन्।
तिमिरि हुन् सबै खोजि गर्दछन्॥

'तुम्हारे जन्म से व्रज का उत्कर्ष हुआ, तुम्हारी प्रीति से यहाँ सतत लक्ष्मी रहती हैं। प्रिय! देखो, तुम्हारे लिए प्राण-धारण किये हुए ये सब (गोपियाँ) तुम्हारी हैं, ये चारों ओर तुम्हें खोजती हैं।'

(२)

मधुर शब्दले बेस बोलिले।
बुझ निहारका चित्त चोरले॥
अकल गुम् भयो हामि दासिको।
रस पिलाउ हे! कृष्ण ओठको॥

'हे कमलनयन, वीर कृष्ण! मधुर शब्द और मनोहर वाणी से मुग्ध हम दासियों को अधरोष्ठ का रसामृत पान कराओ।'

डि० ति०

गुणराज उपाध्याय

गुणराज उपाध्याय का जन्म काठमाण्डू में सं० १९७२ में हुआ था। पिता का नाम हर्षनाथ उपाध्याय खनाल तथा माता का नाम लोकजननी था। ये सं० २०३१ में स्वर्गवासी हुए।

काशी में रहकर इन्होंने संस्कृत-वाङ्मय का अध्ययन किया था। संस्कृत में भी इनकी कुछ रचनाएँ हैं। नेपाली में इनकी १० कृतियाँ उपलब्ध हैं। भक्तिभाव से सम्पन्न इनके मौलिक कृष्ण-काव्यों में 'गोविन्दगीत' (सं० २००२) और 'श्रीकृष्ण-सन्देश' (सं० २००२ से २०२९) महाकाव्य उल्लेखनीय हैं। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के दो पद्य नीचे दिये जाते हैं—

(१)

प्यारा थियौ कृष्ण, कता बताऊ।
भैगो बिरायौं न रिसाउ आऊ॥
भन्दै कुनै पागल झैं बिहाल।
गर्थो सखिको हद अङ्गमाल॥

'हे कृष्ण! तुम प्यारे थे। कहाँ हो? बताओ। अच्छा, हम लोगों ने भूल की, रुष्ट मत होओ,

आओ। इस प्रकार विह्वल तथा पागल के समान विलाप करती हुई विभोर गोपी सखी का अङ्कमाल करती है।'

वियोगिनी गोपियाँ कहती हैं—

(२)

फलेर राम्रो फल फूल खासा।
उस्ते छ वृन्दावन को तमासा॥
हरे ! त्यहाँका तर कुञ्जबाट।
त्यों बाँसुरीको सुनिदै न नाद॥

'खिले हुए अत्यन्त सुन्दर फूलों एवं फलों से सम्पन्न वृन्दावन का दृश्य उसी प्रकार दर्शनीय है। किन्तु हे कृष्ण ! अब वहाँ के कुञ्जों से उस वंशी का नाद नहीं सुनाई पड़ता।'

डि० ति०

पतञ्जलि गज़ुर्याल

इनका जन्म सं० १८८० में ललितपुर के निकट इमाखेल नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता पं० अरविन्द गजुर्याल भीमसेन थापा के समय में सरकारी जागीरदार थे। सं० १८९८ में इन्हें संस्कृत का अध्ययन करने के लिए काशी भेजा गया। वहाँ पाँच वर्षों तक इन्होंने धर्मग्रन्थों तथा ज्योतिष का अध्ययन किया। इसके बाद ये नेपाल लौट आये और अपना सारा जीवन स्वाध्याय में बिताया। पिता के देहावसान के अनन्तर आर्थिक कष्ट के कारण इन्होंने कुछ दिनों तक सरकारी नौकरी की। फिर उसे छोड़ दिया और शेष जीवन अध्ययन, भजन तथा स्वाध्याय में व्यतीत किया। सं० १९४४ में ये दिवंगत हो गये।

पौराणिक कथाओं पर आधारित इनकी अनेक स्फुट रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनके स्वतन्त्र काव्यों में तीन प्रसिद्ध हैं—'मत्स्येन्द्रनाथको कथा', 'हरिभक्तमाला' और 'बालगोपाल-वाणी'। इनमें अन्तिम दो कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'हरिभक्तमाला' ३९ छन्दों का कृष्ण-काव्य है। इसके प्रथम ३८ छन्द वसन्ततिलका और अन्तिम मालिनी वृत्त में रचा गया है। 'बालगोपाल-वाणी' काव्य का प्रथम छन्द स्वागता है, शेष १६ छन्द शिखरिणी हैं। इसमें बालकृष्ण के चरित के साथ दशावतारों का भी वर्णन किया गया है। इन दोनों काव्यों से एक-एक छन्द नीचे उद्धृत किया जाता है।

(१)

बगल्मा कृष्णैलाइ लिइकन यशोदा शयनमा।
सुकाला पाल्नू भो बसिन जब निद्रा नयनमा॥
उ हाउ लौ आयो हाउ भनेर मुख ढाक्ती जननिलाई।
उठ्या हाँस्तै ख्वै हाउ भनि गरे कुरा कुण्डल हिलाई॥

'बगल में कृष्ण को लेकर यशोदा बिस्तर पर सो गयी, जब नयनों में नींद नहीं आयी तो 'वह देखो हाउ, वह हाउ आ गया' (बच्चों को भय दिखाने के लिए नेपाली में 'हाउ' शब्द का प्रयोग किया जाता है) कहकर पुत्र का मुँह ढँकने लगी। बालकृष्ण हँसते हुए उठे और कान के कुण्डल हिलाकर बातें करते हुए जननी से पूछा—'माँ, हाउ कहाँ है माँ' ?'

(२)

वाग्दान् भया कि अरुलाइ ह्र्यौति कन्या।
जाउ प्वैल पालन म सक्तिन कैले भन्न्या॥
काम्ता हजूरले गरेको म देख्छु ठिक्कै।
सम्झन्छु झल् झलि र मन् खुशि हुन्छ निक्कै॥

'दूसरे के लिए वाग्दत्ता कन्या रुक्मिणी का हरण किया और कभी तो 'दूसरे के साथ जाओ, मैं पालन नहीं कर सकता हूँ' कह दिया। श्रीकृष्ण महाराज ! मैं आपका काम तो ठीक ही देखता हूँ अर्थात् आपने उचित नहीं किया। इन घटनाओं का किंवा आपके चरित्रविशेष का स्मरण करते हुए मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है।'

डि० ति०

यदुनाथ पोख्र्याल

यदुनाथ पोख्र्याल का जन्म नेपाल के सप्तरी जिले में संवत् १८६५ के लगभग एक विर्लावल ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता पृथ्वीधर पोख्र्याल सप्तरी के सम्पन्न व्यक्ति थे।

यदुनाथ मौलिक रचनाकार थे। अनेक छन्दों में कविता लिखनेवाले ये प्रथम नेपाली कवि हैं। भुजंगप्रयात, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों में इन्होंने कविताएँ रची हैं। इनके देश-प्रेम के उद्‌गार से भरपूर स्तुति-पद्य प्रसिद्ध हैं।

भुजंगप्रयात छन्द में रचित 'कृष्ण-चरित्र' इनकी सर्वप्रथम कृति है। यह भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित एक छोटी-सी रचना है। इसमें अन्त्यानुप्रास-योजना की असफल चेष्टा की गयी है। उन्नीस छन्दों में रचित यह ग्रन्थ मौलिक तथा संगीतमय काव्य है। सामान्य रूप से इसमें भक्ति-रस प्रवाहित होता है। यह रचना सर्वप्रथम काशी से प्रकाशित हुई थी। ईश्वर-भक्ति के साथ देश-भक्ति इनकी कविता की विशेषता है।

इनके दो छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

यसोदाजिका काखमाथी बस्याका,
यता ऊति हेर्दँ हँसी दूध पींदा।
दिशा सब् उज्यालो गराया प्रभूले,
खुसी चित्त मेरो तुल्याया हरीले॥

'यशोदाजी की गोद में बैठकर इधर-उधर देखते हुए दूध पीते समय प्रभु कृष्ण ने सभी दिशाओं को उज्ज्वल किया और मेरे मन को मुदित किया।'

(२)

चरण् पद्ममा वैजनी बाहुलीमा,
क्वणत् कङ्कणै किङ्किणी छन् कटीमा।
द्विजामी असल् पैह्रि खेल्दा झटक् त्यों,
सदा सम्झँदा छाति मेरो भरिन्थ्यो॥

'चरण-कमल में पैंजनी, बाहुओं में शब्दायमान कङ्कण तथा कटि में किङ्किणी हैं। सुन्दर उत्तरीय पहनकर खेलते समय के दृश्य का स्मरण करते हुए मेरा हृदय (आनन्द से) भर जाता है।'

डि० ति०

लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा

श्री लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा का जन्म, पण्डित तिलमाधव देवकोटा तथा राज्यलक्ष्मी देवी के सुपुत्र रूप में सं० १९६६ में काठमाण्डू में हुआ था। जन्म-नक्षत्र के अनुसार इनका नाम तीर्थमाधव रखा गया। परन्तु लक्ष्मीपूजा (दीपावली) के दिन जन्म होने के कारण लक्ष्मीप्रसाद नाम से प्रख्यात हुए।

देवकोटाजी संस्कृत के संस्कार में पले और बढ़े। इनके पिता पं० तिलमाधव संस्कृत के विद्वान् तथा कवि थे। बड़े भाई अंग्रेजी तथा नेपाली में कविता करते थे। इनकी माता तथा बड़ी बहन भी कवयित्रियाँ रहीं। लक्ष्मीप्रसाद के स्वयं भी प्रतिभाशाली होने से सोने में सुगन्ध मिल गया था। इनकी शिक्षा संस्कृत से प्रारम्भ हुई और बाद में बी० ए०, बी० एल० करके एम० ए० तक अध्ययन किया।

ये नेपाली भाषा तथा साहित्य के सफल अध्यापक, अकादमी के विद्वान् सदस्य और कुछ काल तक नेपाल के शिक्षा-मन्त्री भी रहे थे। इन्होंने विश्व के अनेक देशों का भ्रमण किया था। बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्युत्पन्नमति देवकोटा की वक्तृत्व-कला आकर्षक थी। ये मूलतः कवि थे और कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हुए। ये नौ भाषाओं में कविता रचते थे और चौदह भाषाओं का ज्ञान रखते थे।

इनकी लगभग साठ कृतियों में नाटक, लघुकथा, उपन्यास, निबन्ध, प्रबन्ध, स्फुट कविता, गीति-काव्य, कोश-काव्य, खण्ड-काव्य तथा महाकाव्य सभी एक से एक बढ़कर हैं। इनके नौ

मौलिक खण्ड-काव्य और पाँच उदात्त महाकाव्य हैं। इनकी लगभग सभी रचनाएँ लोकप्रिय हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में—"नेपाली के महाकवि देवकोटा हिन्दी-साहित्य के प्रसाद, पन्त, निराला तीनों हैं।"

देवकोटा नाममात्र से लक्ष्मीप्रसाद थे, किन्तु अर्थाभाव से सदैव ग्रस्त रहे। ये कल्पना और कवि-प्रतिभा के धनी सरस्वती-प्रसाद अवश्य थे। सं० २०१६ में कैंसर रोग से इनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

दस वर्ष की अवस्था में इन्होंने भवसागर पार करने की समस्या को लेकर सर्वप्रथम कविता रची थी जो इस प्रकार है—

घनघोर दुःखसागर जान भाइ।
नगरे घमण्ड कहिले मर्नु छ हामिलाई॥

'संसार को विकट दुःख का सागर समझो और कभी तो हमें मरना ही है, अतः घमण्ड न करो।'

'मृत्युशय्याबाट' इनकी अन्तिम रचना है जिसमें कृष्ण-भक्ति की आवश्यकता और अनिवार्यता बतायी गयी है। इसके दो छन्द नीचे दिये जाते हैं—

जीवन के अन्तिम क्षण में मृत्यु-शय्या पर अत्यन्त पश्चात्तापपूर्वक कृष्ण का स्मरण करते हुए कवि कहता है—

(१)

संसाररूपी सुख स्वर्गभित्र।
रमें रमाएं लिइ भित्र चित्र॥

सारा भयो त्यो मरुभूमि तुल्य।
राते परे झैं अब बुझ्छु बल्ल॥

रहेछ संसार निशासमान।
आएन ज्यूँदै रहँदा नि ज्ञान॥
आखीर श्रीकृष्ण रहेछ एक।
नभक्ति भो, ज्ञान नभो विवेक॥

'संसाररूपी सुखमय स्वर्ग में मैं खूब रमा, हृदयपटल में सुन्दर चित्र लेकर आन्दविभोर हुआ। किन्तु यह सारा क्षणिक सुख मरुभूमि-तुल्य हुआ। अब मैं इन सबको अन्धकारमय मानता हूँ, रात्रि-स्वरूप समझता हूँ। संसार निशासमान है, जीवित अवस्था में यह ज्ञान नहीं आया। श्रीकृष्ण ही एक तत्त्व हैं, जो वास्तविक हैं। परन्तु खेद है, न भक्ति हुई, न ज्ञान हुआ, न विवेक।'

इनके प्रयाणकाल के उद्‌गार कितने मर्मस्पर्शी हैं—

(२)

महामरूमा कण झैं म तातो।
जलेर मर्दो बिनु आश लाटो॥

सुकी रहेको मरु झैं छ खाली।
चिताग्नि तापी जल डाल्न फाली॥

संस्कार आफ्नो सब नै गुमाएँ।
म शून्यमा शून्यसरी बिलाएँ॥

जन्में म यो स्वर्गविषे पलाएँ।
आखीर भै खाक त्यसै बिलाएँ॥

'अनभिज्ञ भोला-भाला निराश मैं महामरु में तप्त कण के समान जलकर राख हो रहा हूँ, मर रहा हूँ। केवल सूखे पेड़ के समान शरीर रह गया है, चिताग्नि तपकर जलसेचन पाने की प्रतीक्षा में है। अपना सब संस्कार गँवा चुका हूँ। मैं शून्य में शून्य के समान विलीन हो गया। मैं इस भूस्वर्ग में पैदा हुआ, पला-पोसा, अन्त में राख होकर वैसे ही विलीन हो गया।'

डि० ति०

वसन्त शर्मा

इनका जन्मकाल कहीं स्पष्टतया उल्लिखित नहीं है। रचनाकाल के आधार पर ये इन्दिरस और

विद्यारण्य केसरी के समकालीन माने जाते हैं। काठमाण्डू के पास भक्तपुर में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम परमानन्द था।

इनके दो काव्य उपलब्ध हैं—१. श्रीकृष्ण-चरित्र (सं० १८८४) और २. समुद्रलहरी (सं० १९००)। श्रीकृष्ण-चरित्र दो भागों में विभक्त है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में ८७ छन्द और उत्तरार्ध में ८२ छन्द हैं। सभी शार्दूलविक्रीडित वृत्त में रचे गये हैं।

श्रीमद्‌भागवत और महाभारत में वर्णित श्रीकृष्ण-चरित्र को आधार मानकर अपनी कल्पना का रंग देते हुए कवि ने १६९ छन्दों में स्वतन्त्र रूप से 'श्रीकृष्ण-चरित्र' खण्ड-काव्य की रचना की है। भाषा-शैली की दृष्टि से इसमें नेपालीपन अधिक है। मर्यादावादी होने के कारण कवि ने चीरहरण तथा रासलीला के अश्लील अंश को हटाकर सौम्य चित्र प्रस्तुत किया है। कवि का ध्यान कृष्ण-चरित की अलौकिकता के प्रतिपादन की ओर अधिक रहा है। श्रीकृष्ण के प्रति सामान्य जनों की भक्ति बढ़ाने के ध्येय से नवीन उद्‌भावनाओं द्वारा उनके चरित्र को रुचिकर तथा मनोहर बनाने की ओर उसका विशेष ध्यान रहा है। कवि के ही मतानुसार इस ग्रन्थ की रचना आत्मानन्दलाभ हेतु सं० १८८४ में की गयी है।

इस ग्रन्थ के दो छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कोही एक् मथुरापुरी नगरिमा श्रीकृष्ण औतार् भया।
शङ्खै चक्र गदा पद्म भुज विषे पाऊ कमल् झैं थिया॥
नीधार्‌मा मणिका मुकुट्‌कन जडी चक्रै सुदर्शन् लिया।
देख्या श्री वसुदेवले चतुरभुज् सम्पूर्ण दर्शन् दिया॥

'किसी एक मथुरापुरी में श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। उनके चार बाहु शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त थे और चरण कमलतुल्य कोमल थे। ललाट में मणि मुकुट सुशोभित था और हाथ में सुदर्शन चक्र लिये थे। श्री वसुदेव ने देखा तो भगवान् श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज सहित समग्र दिव्य स्वरूप का दर्शन दिया।'

(२)

को हाम्रो जिउनू वर्ष सयनै की आज दुःखै हरण्।
को होस् मानुष जन्म फेरि भवमा की होस गंगा मरण्॥

येती मात्र छ मन्सुवा भगत को सो नाथ! पूरा हवस्।
यो संसार असारबाट मकनै मुक्ती मुरारे! मिलोस्॥

'या तो हम लोगों को सौ वर्ष तक जीना है या आज ही दुःखहरण होना है। या तो भव में फिर मनुष्य-जन्म हो या गंगा-मरण हो। इतनी ही भक्त की इच्छा है। हे नाथ कृष्ण! सो पूरी हो। हे मुरारे! इस असार संसार से मुझे मोक्ष मिल जाय।'

डि० ति०

विद्यारण्य केसरी अर्याल

विद्यारण्य केसरी पण्डित दैवज्ञ केसरी अर्याल के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८६३ के माघ मास में काठमाण्डू के समीप जिला नुवाकोट के अन्तर्गत सुनाखानी गाँव में हुआ था।

इन्होंने अपने पिता के साथ रहकर काशी में विद्याध्ययन किया था। प्रसिद्ध पण्डित बालशास्त्री इनके सहपाठी थे। पिता के स्वर्गवास होने के पश्चात् ये तीस वर्ष की आयु में काठमाण्डू लौट गये और वहीं रहकर श्रीमद्‌भागवत दशम स्कन्ध के पैंतीसवें अध्याय (गोपिका युगलगीत) का नेपाली भाषा में शार्दूलविक्रीडित छन्द में अनुवाद किया। ग्रन्थ के अन्त में माहात्म्य-वर्णन के रूप में इन्होंने दो मौलिक पद्यों की भी रचना की है। इनके भाषा-प्रयोग में हिन्दी का विशेष प्रभाव है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं-'द्रौपदी-स्तुति' (हिन्दी) और 'वंशी-चरित्र' (नेपाली)। इन्होंने संवत् १८९४ से लेकर अन्तिम काल तक काठमाण्डू में रहकर संस्कृत शास्त्रों के पठन-पाठन में जीवनयापन किया। इनकी दिव्यधाम-यात्रा सं० १९१२ में हुई। 'युगलगीत' के दो छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

बाऊँ काँध उपर् बिसाइ चिउँडो
बाँके गरी भ्रूनयन्,
पैह्री मोर मुकुट् रतन् मणि जडित्
कुण्डल् श्रवण पर् धरी ।
कोमल् अङ्गुलिचालि कालि मुरली
राखी अधर् पर् भली,
बाजी कृष्ण जहाँ बिझी सँगिनि हो
ज्यूनू कसोरी अब ॥

'बायें कन्धे पर चिबुक रखकर, भ्रूनयन वक्र बनाकर, मोर-पंख का मुकुट पहनकर, कान में मणि जड़ा रत्न-कुण्डल धारण करके, अधरोष्ठ में काले वर्ण का सुन्दर वेणु रखकर, कोमल अंगुलि चलाकर कृष्ण ने वेणुवादन किया। सखियो ! वंशी का रव चुभ गया। अब कैसे जियें ?'

(२)

वन्माला तुलसी छ श्याम उरमा
सुन्दर् तिलक् भालमा,
देखी दिव्य सुगन्धले मन हरी
छोडी कमल्को वन ।
आई मत्त भई भ्रमर्हरू पनी
गाउँछन् सुयश् कृष्णको,
गुञ्जन् शब्द गरी हरी वरिपरी
वंशी बजाउँदा सखी ॥

'हे सखि ! कृष्ण के उरःस्थल में वनमाला और तुलसी है, ललाट पर सुन्दर तिलक है। यह देखकर दिव्य सुगन्ध से आकृष्ट भौंरे भी मत्त होकर कमलवन छोड़कर यहाँ आते हैं और हरिभगवान् के चारों ओर गुंजायमान शब्द करते हुए वंशी-वादन के समय कृष्ण का सुयश गाते हैं।'

डि० ति०

शिखरनाथ सुवेदी

श्री शिखरनाथ सुवेदी का जन्म संवत् १९२१ में काठमाण्डू में हुआ था। इन्होंने अपने काव्यसाधनारत तपोमय जीवन का उत्तरार्ध काशी में व्यतीत किया और सं० २००५ में वहीं शरीर-त्याग किया।

सुवेदीजी धार्मिक प्रवृत्ति के नीत्युपदेशक तथा व्यवहारपटु रसिक कवि थे। नेपाली भाषा में रचित इनकी एक दर्जन से अधिक पुस्तकें हैं। इनमें 'श्रृंगार-दर्पण', 'शिखरनाथ-भाष्य', 'स्वस्थानीव्रतकथा', 'दुर्गाकवच', 'पिनासको कथा', 'थरगोत्र-प्रवरावली' तथा 'बृहत् कृष्ण-चरित्र' प्रसिद्ध हैं।

काशी के नेपाली पुस्तक-प्रकाशकों की व्यावसायिक परम्परा के अनुसार विभिन्न प्रकाशकों ने उत्तराधिकारिविहीन स्वर्गीय नेपाली लेखकों की कृतियाँ अपने अधीन कर लीं और लेखकों का नाम बदलकर अपने अनुकूल नामों पर छपाने का प्रबन्ध किया। कुछ प्रकाशकों ने लेखक को नाममात्र का पारिश्रमिक देकर अपने ही नाम से अथवा अपने अनुकूल किंवा अधीनस्थ व्यक्तियों के नाम से भी छपाने की व्यवस्था की। सम्भवतः सुवेदी का 'बृहद् कृष्ण-चरित्र' इसी रोग का शिकार हुआ है। अतएव उनके नाम से सम्प्रति 'कृष्ण-चरित्र' उपलब्ध नहीं है।

एक व्यवसायी रचयिता का 'असली पुरानो खालको ठूलो कृष्ण-चरित्र' (द्वितीय संस्करण, १९२८ ई०) उपलब्ध और प्रचलित है। इसके रचयिता हैं—पं० पद्मप्रसाद उपाध्याय, जो स्वयं साधक, लेखक किंवा कवि के रूप में अपरिचित हैं, किन्तु उनके नाम से एक 'कृष्ण-चरित्र' प्रसिद्ध है। यह श्रीमद्भागवत के दशम, एकादश तथा द्वादश स्कन्धों पर आश्रित है। इसके चार छन्द नीचे दिये जाते हैं—

मङ्गलाचरण

(१)

राधा पियारि कन चुम्बन अङ्कमाल ।
गर्ने सदा अति सुखी भइ हाँस ख्याल ॥
नाच्ने निकुञ्ज-बिचमा मुरली बजाई ।
श्रीकृष्ण मङ्गल गरून् सब लोकलाई ॥

'अपनी प्यारी राधा का चुम्बन तथा अङ्कमाल करनेवाले, सदा अति सुखी और प्रसन्न होकर हास्य-

विनोद करनेवाले और मुरली बजाकर निकुञ्ज के बीच में नाचनेवाले श्रीकृष्ण सबका मङ्गल करें।'

दशमस्कन्ध (पूर्वार्ध) का प्रारम्भिक छन्द—

(२)

निकुञ्ज वनमा जाई, बजाई दिव्य बाँसुरी।
मोह पार्ने सबैलाई, दिउन् रस् कृष्ण माधुरी॥

'वन-निकुञ्ज में जाकर वंशी बजाते हुए सबको मुग्ध करनेवाले कृष्ण मधुर रस से सिञ्चित करें।'

एकादश स्कन्ध

(३)

शशिशून्य निशीसरी भयो।
प्रभु मेरो अब शक्ति गैगयो॥
किन नाथ छकाइबक्सियो।
कित मेरो अपराध क्यै थियो॥

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम चले जाने पर अर्जुन विलाप करते हैं—

'हे प्रभो ! मैं चन्द्रमारहित रात्रि के समान हुआ। अब मेरी शक्ति चली गयी। हे नाथ ! आपने मुझे क्यों छका दिया ? मेरा कोई अपराध था क्या ?'

द्वादशस्कन्ध का प्रारम्भिक छन्द—

(४)

राधा का रसलीलामा, प्रेमले लठ् हुने हरि।
बर्षाऊन् नित्य हामीमा, करुणारसको झरि॥

'राधा की रसलीला में प्रेम से मुग्ध होनेवाले भगवान् कृष्ण निरन्तर हम लोगों के ऊपर करुण-रस की वर्षा करें, दया करें।'

इसी प्रकार केवल प्रस्तुत ग्रन्थ में रचयिता किंवा लेखक के रूप से परिचित पं० गौरीशंकर शर्मा द्वारा रचित एक और 'असली ठूलो (बृहत्) श्रीकृष्ण-चरित्र' (श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध) उपलब्ध है। इसके ३ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

पूर्वार्धं का प्रारम्भिक पद

(१)

गोपीलाई छकाई गइ
मधुवनका कुञ्जमा भेट गर्ने।
हाँसी हाँसी विलासी बनि
नटखटका प्रेमले चित्त हर्ने॥

श्रीराधाकृष्णका तो प्रकृति-
पुरुषका मोहिनी दिव्य मूर्ति।
सारा संकष्ट नाशी सदय भइ
गरून् कामना नित्य पूर्ति॥

'गोपी को छकाकर, मधुवन के कुञ्ज में जाकर मिलनेवाले, हँस-हँसकर नटखट बनकर प्रेम से मन हरण करनेवाले, प्रकृति-पुरुषरूप श्रीराधाकृष्ण की मोहनी दिव्य मूर्ति सदय होकर सारे संकट को नष्ट करके सदा इच्छा पूर्ण करें।'

बालकृष्ण पूतना का प्राणसहित दूध पीकर उससे कहते हैं—

(२)

आज्ञा भो हरिले म हूँ शिशु तथा
हो दुग्ध नै जीवन।
तेसैको भरमा म छू र तिमिले
ख्वायौ खुशी भैकन॥

प्यूने काम हुँदा पिएँ खुशि भई
कामै गर्‍यौ प्राण् दिने।
तोमो नै भन पूतने ! मकन लौं
दोषी म केले हुने ?

'मैं शिशु हूँ, दूध ही जीवन है, मैं उसीके भरोसे हूँ और तुमने प्रसन्न होकर मुझे दूध पिलाया। पीना मेरा काम था, इसलिए प्रसन्न होकर पिया, तुमने प्राण देने का काम किया। पूतना ! तुम्हीं बताओ मैं कैसे और क्यों दोषी हूँ ?'

उपसंहार

(३)

थरि थरि गरि लीला लोककल्याणकारी।
विमल मति गराई पापसन्ताप खारी॥
पृथिविभरि भएका दुष्ट को नाश पारी।
अभय सुजनलाई पार्दथे श्री मुरारी॥

'लोककल्याणकारी भगवान् श्रीकृष्ण विविध प्रकार की लीला करके बुद्धि निर्मल कराकर, पापसन्ताप को ध्वस्त करते हुए धरातल के समस्त दुष्टों को नष्ट कर सज्जनों को निर्भय करते थे।'

डि० ति०

हीनव्याकरणी विद्यापति

नामसाम्य से मिथिला के विद्यापति का स्मरण होता है, किन्तु हीनव्याकरणी विद्यापति नेपाली हैं। इनका जन्म सं० १८५० से पूर्व अनुमित है। इनका रचनाकाल संवत् १८८८ के लगभग माना जाता है। इनकी प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं—'सातराग', 'सात नायिका' और 'गीतवाणी' (कृष्ण-काव्य)। ये नेपाली के सर्वप्रथम रीतिकवि माने जाते हैं।

कवि जयदेव के 'गीतगोविन्द' काव्य का नेपाली अनुवाद इनकी गद्य-रचना है। जोसमनि सन्त-सम्प्रदाय के अम्बरगीर योगी ने भी 'गीतगोविन्द' का नेपाली भाषा में गद्यानुवाद किया है, जो विद्यापति की गद्य-शैली की अपेक्षा क्लिष्ट है। विद्यापति कवि हैं किन्तु अम्बरगीर कवि के रूप में परिचित नहीं हैं।

हीनव्याकरणी विद्यापति ने हिन्दी-मिश्रित नेपाली भाषा में 'गीतगोविन्द' का अनुवाद किया है। नेपाली में ब्रजबुली किंवा हिन्दी भाषा को देशी भाषा, पक्की बोली, साधुभाषा, जोगीभाषा आदि नाम से भी पुकारते हैं, क्योंकि साधु-सन्त लोग ऐसी भाषा का व्यवहार करते रहे हैं।

'गीतगोविन्द' के प्रारम्भिक और अन्तिम छन्द में विद्यापति ने अपने को 'हीनवैयाकरण' तथा 'हीन व्याकर्णी' कहा है। इनके दो छन्द नीचे दिये जाते हैं, जिनमें राधाकृष्ण के प्रणमन और शरणगमन का उल्लेख किया गया है—

(१)

श्रीगणपति राधाकृष्णजिकौं
करिके वारंवार प्रणम शरण।
हिनुवैयाकरण विद्यापति कठिन
काव्य गीतगोविन्द भाषाकरण॥

(२)

गीत्‌गोविन्द यो काव्य राज्‌भाषा
षोली टीका लेख्यां त्यो सभै।
हीन्‌व्याकर्णि कि मेरी यो
कवितामा हास्ये नहोस् संत को॥

'समग्र 'गीतगोविन्द' काव्य का राजभाषा (नेपाली) में टीकासहित मैंने अर्थ लिखा है। हीनव्याकरणी मेरी इस कविता में सन्तों का हास्य न हो, अर्थात् मेरी अशुद्ध वाणी को सन्त लोग हास्य की दृष्टि से न देखें।'

डि० ति०

होमनाथ उपाध्याय खतिवड़ा

होमनाथ श्री ५ त्रैलोक्य विक्रम की धाई माँ के पुत्र (धात्रीपुत्र) थे। इनका जन्म सं० १९११ में काठमाण्डू में हुआ था। ये 'सुब्बा' पद पर प्रतिष्ठित थे। राजद्रोही के रूप में देश से निष्कासित होकर

ये आजीवन काशी में रहे। काशी में रहकर इन्होंने व्यवसाय के रूप में नेपाली भाषा और साहित्य का लेखन तथा प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ किया। इनके धार्मिक तथा पौराणिक काव्य-ग्रन्थ नेपाली जगत् में बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय रहे हैं। काशी के तत्कालीन नेपाली विद्वान् होमनाथ को 'नेपाली होमर' कहते थे। इनका देहावसान सं० १९८४ में काशी में हुआ।

होमनाथ के सुपुत्र पं० केदारनाथ उपाध्याय खतिवड़ा भी पिता के साथ लेखन-कार्य करते रहे। इनके प्रकाशन के अधिकांश ग्रन्थों में इन दोनों पिता-पुत्रों का नाम संयुक्त रूप से मिलता है। होमनाथ के द्वारा प्रारम्भ की गयी कतिपय रचनाओं को केदारनाथ ने पिता के नाम से पूर्ण किया। केदारनाथ ने होमनाथ के 'कृष्ण-चरित्र' में भी क्षेपक पद्यों को जोड़कर काव्य का आकार बढ़ाया और रमणीय बनाया। केदारनाथ के पुत्रों और पोतों ने भी सुब्बा होमनाथ केदारनाथ के नाम से लेखन तथा प्रकाशन-कार्य का संचालन किया। इस प्रकार होमनाथ के परिवार द्वारा संचालित 'हितैषी' कम्पनी के नाम से यह प्रकाशन-संस्था आज भी काशी में विद्यमान है।

होमनाथ की प्रसिद्ध कृतियाँ इस प्रकार हैं—श्रीकृष्ण-चरित्र, रामाश्वमेध काण्ड, विराट्पर्व, सभापर्व तथा नृसिंह-चरित्र। 'श्रीकृष्ण-चरित्र' श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण-कथा पर आधृत स्वतन्त्र कृष्ण-काव्य है। इस पद्य-ग्रन्थ का पूरा नाम 'श्रीमद्भागवत कृष्ण-चरित्र' है। शुद्ध भाषा में सरस तथा सरल ढंग से इसमें कृष्ण का चरित्र चित्रित है। यह नेपाली भाषा का लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसके चार छन्द नीचे दिये जाते हैं—

पूर्वार्धं के प्रारम्भ का प्रतिज्ञा तथा प्रार्थनापरक छन्द—

(१)

लक्ष्मी पार्वति विष्णु रुद्र यमराज् श्री चन्द्र सूर्यहरू।
सब्लाई म पुकार्दछू यस घरी द्यौता जती छन् अरू॥
भाषाश्लोकविषे चरित्र हरिको गर्छू तयारी भनी।
मन् भो यो परिपूर्ण सब् गरिदिउन् द्यौता हरूले पनी॥

'लक्ष्मी, पार्वती, विष्णु, रुद्र, यमराज, चन्द्र, सूर्य और अन्य सभी देवताओं को इस समय मैं पुकारता हूँ। पद्यमय नेपाली भाषा में हरि (कृष्ण) भगवान् का चरित्र चित्रित करने की इच्छा हुई। समस्त देवगण मेरी इस कामना को पूर्ण कर दें।'

बालकृष्ण का स्वरूप-वर्णन—

(२)

मेघ् झैं वर्ण छ लाल् अधर् नजर-
छन् लामा कमल्का सरी।
पीताम्बर पहिरेर फेरि शिरमा
सुन्दर अलंकार धरी॥

साह्रै सुन्दर मूर्ति देखि हरिको
खुशी भई मन्महाँ।
हात् जोरी वसुदेव देवकि दुवै
स्तव् गर्न लाग्या तहाँ॥

'मेघतुल्य वर्ण है, अधरोष्ठ लाल हैं, कमल के समान विशाल नयन हैं, पीताम्बर पहनकर शिर में सुन्दर अलंकार धारण किये हुए हैं, ऐसे हरि भगवान् (कृष्ण) की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति को देखने से मन में प्रसन्न होकर वसुदेव और देवकी दोनों हाथ जोड़कर वहाँ (कारागार में) स्तुति करने लगे।'

राधाकृष्ण-वर्णन के सन्दर्भ में पं० केदारनाथ द्वारा रचित क्षेपक पद्य—

(३)

राधाजिका त्यै प्रतिबिम्बमाहाँ ।
आफ्नू मिलाई प्रतिबिम्बताहाँ ॥
श्रीकृष्ण गै मोहनरूपधारी ।
हेर्नूभयो नेत्रकटाक्ष पारी ॥

'राधाजी श्रृंगार करके अपने सुन्दर स्वरूप को दर्पण में देखकर चकित रहती थीं। अकस्मात् वहाँ आकर राधा के उसी प्रतिबिम्ब में अपना प्रतिबिम्ब मिलाकर मोहनरूपधारी श्रीकृष्ण ने कटाक्षपूर्ण वक्रदृष्टि से देखा।'

राधाकृष्ण-वर्णन-विषयक होमनाथ का एक छन्द—

(४)

साम्ना साम्ने रही ती, सुध-बुध नभई,
क्यै पनी आफ्नु तन्को ।
कैल्हे हेरी परस्पर्, रमणिय
रङ रूप् तृप्त गर्थें नयन्को ॥
कैल्हे एक् साथ उठी वरिपरि टहली,
प्रेमका बात गर्थें ।
एक् छायाँ एक् स्वरूप् झैं, हुन गइ
ति दुवै, प्राणिको चित्त हर्थें ॥

'आमने-सामने रहकर वे दोनों अपने शरीर को भी विस्मृत करके रहते थे। कभी एक-दूसरे के रमणीय रूप को देखकर नयन को तृप्त करते थे, कभी एक ही साथ उठकर इधर-उधर टहलकर प्रेम की बातें करते थे। एक ही छाया तथा एक ही स्वरूप के समान होकर वे दोनों (राधाकृष्ण) लोगों के चित्त को चुराते थे।'

डि० ति०

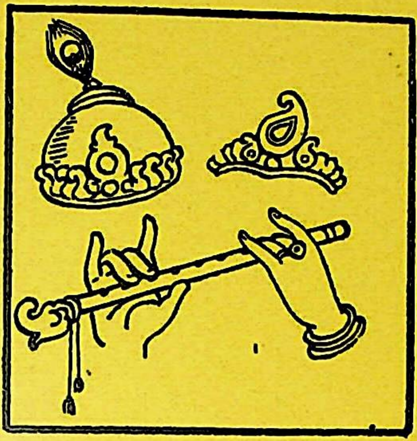

पंजाब में कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा

—डा० शमीर सिंह

पंजाबी का कृष्णकाव्य : स्वरूप और विशेषताएँ

—डा० मनमोहन सहगल

पंजाब के कृष्णभक्त

—डा० शमीर सिंह
—डा० मनमोहन सहगल
—डा० राम प्रकाश गुप्त

पंजाब में कृष्ण-भक्ति-काव्य को परम्परा

पंजाब भारतीय वाङ्मय का एक प्रधान रचना-स्थल रहा है। इतिहास साक्षी है कि अधिकांश वेदों, उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों की रचना, प्रचार एवं प्रसार का केन्द्र पंजाब की धरती ही रही है। महर्षि व्यास ने पंच-नद (पंजाब) की पावन भूमि को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। महाभारत की मुख्य घटनास्थली इसी भूभाग में स्थित है जहाँ गीता का सन्देश सुनाकर श्रीकृष्ण भगवान् रूप में लोकपूज्य हुए थे। कालान्तर में यहाँ की पूरी सांस्कृतिक परम्परा भगवान् कृष्ण के बहुआयामी जीवन के साथ एकाकार होकर विकसित हुई। अस्तु, पंजाब की कृष्ण-काव्य-परम्परा का आरम्भ महर्षि व्यास द्वारा विरचित महाभारत से मानना असंगत न होगा।

पंजाब प्रदेश में रचित कृष्ण-काव्य की पृष्ठभूमि इस धरती की अन्तश्चेतना से पूर्णरूपेण: जुड़ी हुई है। यहाँ के जन-जीवन में पौराणिक भक्ति-भावना अर्थात् निर्गुण तथा सगुणोपासना को प्रवृत्तियाँ अनायास ही अंकित रही हैं। भारतीय संस्कृति मूलतः आस्थावादी रही है। उसकी इस आस्था का व्यावहारिक रूप हमें अनेकानेक उपासना-पद्धतियों में देखने को मिलता है। इसकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता समन्वयशीलता है। सम्भवतः यही कारण है कि विराट् सत्ता के उभय रूपों, निर्गुण तथा सगुण, को समन्वित रूप में प्रस्तुत करना उचित समझते हुए यहाँ के तत्त्वचिन्तकों ने जनसामान्य की दुविधाओं का निराकरण किया है।

पंजाब के इतिहास में १३वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक का समय राजनीतिक अधोगति तथा उथल-पुथल का रहा है। सम्भवतः इसीलिए इस प्रदेश में रचित साहित्य या तो विनष्ट हो गया या खण्डित रूप में उपलब्ध हो सका। इन्हीं निराशाजनक परिस्थितियों में गुरु नानकदेव जैसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने भक्ति-मार्ग का प्रचार एवं प्रसार करके त्रस्त जनता के मन में उत्साह एवं आशा का भाव जगाया। इस समय पंजाब प्रान्त के निकटवर्ती प्रदेश ब्रज में सगुणोपासना का बोलबाला था। अतः पंजाब की जनता में सिक्ख गुरुओं के द्वारा प्रतिष्ठित प्रभु-नाम-उपासना के साथ ही सगुण उपासना के तत्कालीन आधारभूत स्तम्भ श्रीकृष्ण के प्रति लगाव भी घर करने लगा। इसीलिए कालान्तर में पंजाब के वैष्णव-मतावलम्बियों ने निर्गुणवादी गुरु नानकदेवजी को भी विष्णु के नामावतार के रूप में समझना शुरू कर दिया। अस्तु, पंजाब की जन-चेतना में नाम-उपासना एवं गुरु-भक्ति तथा पौराणिक भक्ति-भावना दोनों की पुष्टि होने लगी। वस्तुतः सिक्ख गुरु इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि पंजाब में सांस्कृतिक नव-जागरण के लिए जहाँ एक ओर ब्रह्म की परिकल्पना को जन-मानस में परिव्याप्त करना अपेक्षित है, वहीं सगुणोपासना के आधारभूत अवतारी पुरुषों, राम तथा कृष्ण, के प्रति भक्तिभाव जाग्रत करना भी आवश्यक है। यही कारण है कि पंजाब की धरती पर सगुण-भक्ति का स्वर धीरे-धीरे उभरकर सामने आने लगा। इस जनवादी चेतना को पल्लवित करने के लिए विभिन्न पुराणों तथा महाभारत के भाषानुवाद किये जाने लगे। ये अनुवाद गुरुमुखी लिपि में और ब्रजभाषा को अपनाकर किये गये।

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब प्रान्त में रचित कृष्ण-काव्य को कालक्रमानुसार इस प्रकार रखा जा सकता है—

१. रुक्मिणी-मंगल तथा सुदामा-चरित्र (हृदयराम भल्ला)।
२. कथा क्रिशनचन्द्रजी की (सोढी मिहिरबान)।
३. सुदामा-चरित्र तथा श्याम-सनेही (आलम कवि)।
४. सुदामा चलतरि (साधुजन या साधुराम)।
५. कृष्णावतार (गुरु गोविन्दसिंहजी के दरबारी कवि राम तथा श्याम)।
६. सुदामा-चरित्र (साहिबदास)।
७. रास-बिलास (रामदास मिश्र)।
८. संवाद ऊधो-गोपीआँ (मस्तराम)।
९. द्रौपदी-चरित्र तथा रुक्मिणी-मंगल (बाबा रामदास)।
१०. गिरधर-लीला (क्रिशनदास)।
११. खगमंजरी (गंगाराम)।
१२. दशम-स्कन्ध (कवि निहाल)।
१३. कान्ह गुजरी का झगड़ा तथा गीत-गोविन्द (फतहचन्द)।
१४. सुदामा-मंगल तथा रुक्मिणी-मंगल (जातिदास)
१५. सुदामा-चरित्र (उमादास)।
१६. गोपी-उद्धव-संवाद (कुन्दन मिश्र)।
१७. कृष्ण-कौतूहल, बारांमाहा श्री किशुनजी का तथा रासमण्डल्ल-लीला (साहिबसिंह म्रिगिंद)।

इन रचनाओं को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में ऐसी रचनाएँ आती हैं जो श्रीमद्भागवत पुराण तथा गीत-गोविन्द को लेकर उनके भाषानुवाद के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। द्वितीय वर्ग में वे रचनाएँ रखी जा सकती हैं जो श्रीकृष्ण की जीवन-लीला को लेकर लिखी गयी हैं। तृतीय वर्ग में वे रचनाएँ हैं जो सुदामा-चरित्र से सम्बन्ध रखती हैं और मूलतः दैन्य एवं सख्य भक्तिभाव से ओतप्रोत हैं। चतुर्थ वर्ग में उन रचनाओं को रखा जा सकता है, जो भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ महाभारत को उपजीव्य बनाकर लिखी गयी हैं।

पंजाब प्रान्त में कृष्ण-काव्य से जुड़ी हुई ऐसी रचनाओं का विशेष महत्त्व है, जिनकी लिपि गुरुमुखी एवं भाषा व्रज है। ऐसे कृष्ण-काव्य का सृजन मध्ययुग में पंजाब के कृष्ण-भक्त कवियों ने विविध काव्य-रूपों बारामांहा, वार, मिठड़े, झगड़े आदि को अपनाकर किया है। यद्यपि पंजाब के कृष्ण-भक्त कवियों ने इन काव्यरूपों में श्रीकृष्ण-गोपी-संवाद, गोपियों की विरहाकुलता, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-प्रसंग आदि विषयों को अपनाया है फिर भी भाषा और शैली की दृष्टि से इस कोटि का कृष्ण-काव्य अपनी मौलिकता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पंजाबी कृष्ण-काव्य का स्वरूप अथवा विषय कुछ भी हो, गुरुमुखी लिपि के इस वर्ग के व्रजभाषा में रचित कृष्ण-काव्य का अपना महत्त्व है, क्योंकि यह कृष्ण-काव्य इस प्रदेश की मानसिकता को ब्रज प्रदेश की जन-चेतना से जोड़कर दोनों का नैकट्य एवं एकात्मता प्रकट करता है। वस्तुतः मध्ययुग में समीपवर्ती प्रदेशों से अनेक कृष्ण-भक्त कवि पंजाब में आकर राजाश्रय प्राप्त करते रहे और इस प्रदेश की लिपि गुरुमुखी को सीखकर व्रजभाषा के माध्यम से कभी अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति के अनुकूल और कभी अपनी व्यक्तिगत रुचि एवं परम्परा को आधार बनाकर कृष्ण-काव्य की सर्जना करते रहे।

भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का जैसा मनोहारी तथा सर्वांगीण चित्रण व्रजभाषा में सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने किया है, वैसा दशम गुरु गोविन्दसिंहजी के दरबारी कवियों राम और श्याम द्वारा रचित कृष्णावतार में भी सहज ही देखने को मिल जाता है। यह रचना मूलरूप से गुरुमुखी लिपि में है। २४९२ छन्दों की यह महत्त्वपूर्ण कृति भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार-ग्रहण के हेतु-निरूपण से आरम्भ होकर उनकी बाल-लीलाओं, कंस-वध तथा जरासन्ध और शिशुपाल की सेनाओं के साथ उनके युद्ध के वर्णन तक विस्तृत है। वस्तुतः इस रचना में समाहित युद्ध-वर्णन इसकी विशेष उपलब्धि है। देखा जाय तो बाल-लीला के विविध प्रसंग, गोपी-लीला-वर्णन एवं रास-वर्णन के प्रसंग तो परम्परागत हैं, परन्तु कंस-वध-प्रसंग के उपरान्त कृष्णावतार के रचयिता ने अपनी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना की मौलिकता का स्पष्ट परिचय दिया है। निस्सन्देह श्रीकृष्ण के समूचे जीवन से सम्बद्ध उक्त रचना उनके व्यक्तित्व के विस्तृत तथा विविध आयामों को उद्घाटित करती है और श्रीकृष्ण-चरित के विविध पहलुओं से जुड़े हुए अन्यान्य पक्षों को सँजोती हुई उसे महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है। कवि ने इस काव्य में तद्युगीन जन-चेतना का आश्रय लेकर असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की तथा अत्याचार व अनाचार पर सदाचार की विजय का पूरे विश्वास के साथ आख्यान किया है।

पुराणों में अवतारवाद को दो धरातलों पर प्रतिष्ठित किया गया है। एक तो दुष्टों के विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए और दूसरे भक्तजनों के उद्धार तथा उनको लीलाजन्य आनन्द प्रदान करने के लिए। यों तो विष्णु के चौबीस अवतारों का आविर्भाव दुष्ट-दमन हेतु होता रहा है, परन्तु मध्ययुग में श्रीकृष्ण का लोकरंजक एवं लीलामय रूप ही जनमानस पर छाया रहा। मध्ययुगीन कृष्ण-भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के विविध जीवन-प्रसंगों को आधार बनाकर उनके लीलामय स्वरूप को ही अधिक-से-अधिक उभारा है। परिणामतः श्रीकृष्ण का लोकरक्षक रूप ब्रज प्रदेश में पल्लवित न हो सका। परन्तु दशम ग्रन्थ के 'कृष्णावतार' में श्रीकृष्ण के लोकमंगलकारी एवं दुष्ट-दमन करनेवाले रूप को ही महत्त्व दिया गया है। अस्तु, समूचे कृष्ण-काव्य में गुरुमुखी लिपि में निबद्ध ब्रजभाषा की यह रचना अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस कृति का महत्त्व इस कारण भी है कि इसके रचयिता ने रास-लीला के प्रसंगों को भी ऐसे कौशल से प्रस्तुत किया है कि उसमें कृष्ण का लोकमंगलकारी रूप ही उभरकर सामने आया है। उदाहरण के लिए यह पद देखिये—

जो जुग तीसर मूरति राम, धरी जिह अउर कर्यो अतिसीला।
सत्रुन को सु संघारि कहै, प्रतिपारक साधन को हरि हीला॥
द्वापर मो सोऊ कान्ह भयो, मरीया अरि को परीया पट पीला।
सो हरि भूमि बिखै ब्रिज को, हँसि गोपिन साथ करै रस लीला॥[1]

सम्भवतः समूचे हिन्दी-साहित्य में पंजाब प्रान्त में रचित यह पहली रचना है, जिसमें श्रीकृष्ण को युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर तथा दया एवं क्षमावीर के रूप में दर्शाया गया है। यदि देखा जाय, तो कृष्णावतार के रचयिता का उद्देश्य श्रीकृष्ण को लोकनायकत्व प्रदान करना प्रतीत होता है। वह तद्युगीन जनमानस में धर्मयुद्ध की पावन भावना को प्रतिष्ठित करना चाहता था—

---

[1] दशम ग्रन्थ : कृष्णावतार, छन्द-संख्या ४७३।

दसम कथा भागौत की, भाखा करी बनाइ।
अवर बासना नाहि प्रभु, धरम-जुध्ध के चाइ ॥ २४९१ ॥

इसीलिए इस कवि ने श्रीकृष्ण को सांस्कृतिक उत्थान तथा राजनीतिक पुनर्गठन के लिए अग्रसर एक कर्मठ नेता और धर्म, देश व संस्कृति की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध एक धार्मिक योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया है।

गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी कृष्ण-काव्य के कुछ अध्येताओं का अभिमत है कि पंजाब प्रान्त में मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य पर मूल रूप से सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों का प्रभाव है।[1] ऐसा कहना समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कविगण साधुओं के अखाड़ों तथा रजवाड़ों के आश्रय में रहते हुए श्रीकृष्ण की महत्ता को अपने आश्रयदाताओं के साथ जोड़ने और उसीको उद्‌घाटित करने के लिए कभी उनकी दानशीलता को लक्ष्य करके 'सुदामा-चरित' काव्य लिखते, कभी उनकी वीरता को दर्शाने के लिए 'असुर-निकन्दन' का चित्रण करते, कभी राजाओं के भोग-विलास को देखकर 'रास-विलास' तथा 'गोपी-लीलाएँ' वर्णित करते और कभी विवाह-अपहरण आदि प्रसंगों पर 'रुक्मिणी-मंगल' का प्रणयन करते थे।[2]

पंजाब में मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तक सिक्ख गुरु थे। उनके द्वारा रचित निर्गुण-निराकार भक्ति-काव्य का तत्कालीन धार्मिक-सांस्कृतिक मनःस्थिति पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि यहाँ एक लम्बे समय तक काव्य-रचयिता सगुण-साकार भक्ति से विमुख बने रहे, परन्तु धीरे-धीरे अपनी लोकरंजक प्रवृत्ति तथा युगीन राजनीतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप सगुण भक्ति-भावना जन-जीवन की मानसिकता के अधिकाधिक समीप तथा अनुकूल बनती गयी। अस्तु, सगुण भक्ति-आन्दोलन की धारा ने सहज रूप से जन-जीवन को अपनी प्रवृत्तिगत परिधि में समाहित कर लिया और १८वीं तथा १९वीं शताब्दियों में अनेक भक्त एवं साधक कवियों ने पंजाबी भाषा में भी राम तथा कृष्ण के जीवन-चरितों को लेकर काव्य-रचना शुरू कर दी। पंजाबी भाषा में मध्ययुग में रचित कृष्ण-काव्य को संगृहीत करने का श्रेय डॉ० मनमोहन सिंह (चोणवां पंजाबी क्रिशण कवि) को प्राप्त है। एक और प्रयास प्यारासिंह पद्म ने भी किया है। आपने पंजाबी में रचित कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी बारांमासा, मिठड़े, झगड़े, वार आदि को संकलित किया है। इस दिशा में डॉ० साहिबसिंह 'अरशी' के द्वारा किया गया कार्य भी स्तुत्य है। इन्होंने मध्ययुग से लेकर आधुनिक काल तक के प्रतिनिधि पंजाबी कृष्ण-काव्य को संकलित करने का प्रयास किया है, जो हरियाणा, भाषा-विभाग की ओर से निकट भविष्य में प्रकाशित होनेवाला है।

पंजाब में पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि में जो कृष्ण-भक्ति-काव्य प्राप्त होता है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

---

[1] डॉ० जयभगवान गोयल : साहित्य-मार्ग (सूरदास-विशेषांक), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, अंक ११, १९८० ई०, पृष्ठ २७।

[2] डॉ० मनमोहन सहगल : पंजाब का हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ १०४।

१. कवि सोंधा (मिठड़े क्रिशन-राधा-प्रेम के)।
२. रसक राम (सींहरफी, बैंत कांन-गुजरी दे, बारांमाह वैंत चबोले क्रिशनजी दे तथा बारांमाह क्रिशनजी दा)।
३. मस्तराम (संबादि ऊधो तथा गोपीआं का)।
४. दाना कवि (कथा कान्ह-गुजरी दी)।
५. केसो (बारांमाहा स्री क्रिशनजी दा, बारांमाहा केसो का)।
६. साहिबसिंह म्रिगिंद (बारांमाहा स्री क्रिशनजी, रास-मण्डल-लीला, क्रिशन-कौतूहल)।
७. मूलसिंह (बारांमाहा)।
८. निहालसिंह (बारांमाहा)।
९. हाफ़िज बरखुरदार (बारांमाहा)।
१०. आनंदघन (पदावली, इशकलता तथा फुटकल पड़े)।
११. नागरीदास (पद मुकतावली तथा उत्सवमाला)।

इन कृष्ण-भक्त कवियों के अतिरिक्त भावनदास, चंदसखी, गुआलदास, मनहरिदास, फतमलजी, रसिकबिहारी, माधउदास, बूड़ा, टहकन, कँवलराम, लखमीचंद, चरनदास, रसकलाल, कमाल, बिहारी, रामराइ, भगवान नाराइण, अनंतदास, छब्रीलदास, भगवान राइ, बालमीक, जोगी बालक्रिशन, रसनिधि, भय्याराम, संतदास तपसी, करमनदास, सिआम कवि, चंद, गुनकारी, वलीराम, गिआनचंद, लालदास, मीरन, फेरू, महीधरिजी, खेमकरन, जीवन, बिजैसखी, साँवरी सखी, वल्लभ रसिक, संत सखी, मीरां, जै गुपाल गोसुआमी, हरीराइजी, सूरदास (काफी), तेजभान महासिंघ, भक्त पत्तमल, लखवीदास, केवलराम आदि कृष्ण-भक्त कवियों की श्रीकृष्ण-चरित को आधार बनाकर स्फुट रूप से राग-रागिनियों में लिखी गयी रचनाएँ भी यहाँ मिलती हैं। डॉ० मनमोहन सिंह को ऐसे ६१ कृष्ण-भक्त कवियों की जानकारी प्राप्त हुई है। यह पंजाबी कृष्ण-काव्य की बहुमूल्य निधि है। निःसन्देह इन कृष्ण-भक्त कवियों की कविता उच्चकोटि की है। कहना न होगा कि इनमें से अनेक हिन्दी के प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवि हैं।

भक्त कवि लखमीचंद के द्वारा वर्णित गोपियों की विरह-वेदना हृदयस्पर्शी, प्रौढ़ एवं परिपक्व है। यथा—

ऊधो मोहन लाल कउन ब्रिज बसाई।
मेरी बिरहो अगनि की भाइ सु कउन बुझावसी ॥ १ ॥ रहा उ ॥

पुंने बारांमाह इबें कुरलांदिआं।
लिखि-लिखि पतीआं निति सुनेहे देंदिआं ॥ १ ॥

मरहि कठन बिखु खाइि सगल ब्रिज नारीआँ।
कैसे कै राखे प्रांन जु लाल विसारीआँ ॥ २ ॥

तेल फुलेल रबेल लगहि चिनगारीआँ।
जमना जमु हो रही बिना गिरधारीआँ ॥ ३ ॥

कउल नैन के बिरहु तपत है छातीआं।
नित उडेनी हाँ कागु लिखेनी हाँ पातीआं ॥ ४ ॥

• • •

इहु बिरहु रस प्रेम कोई जन पाव हे।
राधे लाल सनेहु लखमीचद गावहे ॥ ८ ॥

यदि देखा जाय, तो पंजाबी भाषा में रचित समस्त कृष्ण-काव्य का आधार भगवान् श्रीकृष्ण के लोकरंजक-पक्ष से ही सम्बद्ध है। पंजाबी के बहुत कम कृष्ण-भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के लोकरक्षक एवं लोक-नायक अथवा योद्धा-रूप को उभारा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध जिन विषयों को लेकर काव्य-सर्जना की, वही विषय किसी न किसी रूप में पंजाबी कृष्ण-काव्य-रचयिताओं ने भी अपनाये हैं। किन्तु इसके आधार पर यह कहना असंगत होगा कि उनकी काव्य-सर्जना मात्र अनुकृति के धरातल पर टिकी हुई है। यह किसी भी तरह से मध्ययुगीन ह्रासोन्मुख राजनीतिक चेतना को उन्नत जीवन-मूल्यों के साथ जोड़ने में समर्थ नहीं हो सकी। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि हिन्दी कृष्ण-काव्य की तुलना में पंजाबी कृष्ण-काव्य संकुचित तथा सीमित बनकर रह गया है। परन्तु पंजाबी में रचित कृष्ण-काव्य निम्न कोटि का नहीं है, जैसा कि डॉ० मनमोहन सिंह का मत है।[1] पंजाबी कृष्ण-भक्त कवि 'माधउदास' के द्वारा श्रीकृष्ण का स्वरूप-चित्रण अथवा नख-शिख-वर्णन किसी हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि की रचना से निम्न कोटि का नहीं जान पड़ता। यथा—

माए नी नंद लाल जो डिट्ठा वाल सुरंग निआले।
अखड़ीआं होइ कउल टहकन भउंरा भउंरा सु काले।
कंनो सोइन लुड़कन सोहन मानो सूरज झाले ॥

• • •

नक्क जिन्हां दा तोते दीआ चिंजू होठ गुली रंग रत्ते।
मोती चंडक बतीसी सोहे हस्सै त बिजलि लसके।
खब्बी बुक्ल पीत पीतंबर लटकि चलंदड़ा चाले ॥

• • •

माथे उपर मुकट बिराजे चले त अंग हलाए।
जान घटां विचिकारे परबत मोरां पाइलु पाए ॥

श्रीकृष्ण के स्वरूप एवं साज-सज्जा का सीधा एवं सापेक्ष वर्णन तो लगभग प्रत्येक कृष्ण-भक्त कवि ने किया है, परन्तु पंजाबी कृष्ण-भक्त कवि पत्तमल ने श्रीकृष्ण के द्वारा धारण किये जानेवाले वस्त्रों की जोड़ी का जो भावभीना और सूक्ष्म चित्रण किया है, वह अत्यन्त मनोहारी है और पंजाबी कृष्ण-काव्य की विशेष उपलब्धि भी। इससे पतमल की श्रीकृष्ण के प्रति सहज भक्ति लक्षित होती है। ऐसा वर्णन समूचे कृष्ण-काव्य में अनूठा और अद्भुत जान पड़ता है। यथा—

---

[1] साहित्य-मार्ग (सूरदास-विशेषांक), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, अंक ११, १९८० ई०, पृष्ठ २।

सुंदर सिआम दा जोड़ा। मोहन लाल दा जोड़ा ॥ १ ॥ रहा उ ॥
धन्ने नला बीजिया जमन किनारे आये।
जमना जल सिउ सिंचिआ प्रीति सों हित चित लाये ॥ २ ॥
चुणि लिआईआँ सभ गोपीआँ उना बेलिआ सहिज सुभाई।
फिरि वाटू पिंजारे नूं संउपिआ उस लीता धनखु चढ़ाई ॥ ३ ॥

• • •

फिरि दास कंबीरे नूं संउपीआ सिताबी नली बहाई ॥ ५ ॥
कमाली नलीआं वट्टी आँ पूतु कमालु पी आंइ।
तरिपआं लोई भगतणी बुंणिआं कंबीरे चाइ ॥ ६ ॥

• • •

हछ्छा जोड़ा बणि रहिषा हरख जसोधे माइ।
पहिराआ परमु प्रीति सो जन कहत पत्तमल राइ ॥ ९ ॥

पंजाबी कृष्ण-काव्य में श्रीकृष्ण को बाल एवं यौवनलीला के भी मधुर चित्र मिलते हैं। ऐसे मनोहर वर्णन हिन्दी के अष्टछापी कवियों की रचनाओं के समान ही सरस एवं मनोहर हैं। 'माधउदास' ने श्रीकृष्ण की माखनचोरी का मार्मिक चित्रण किया है। उनके कृष्ण गोपियों के घर जाते हैं, छींके पर रखे हुए मक्खन तक पहुँचने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास करते हैं, छींका उतारकर मक्खन खाते हैं। उनके इस कृत्य का उलाहना देने के लिए एक गोपिका यशोदा के पास पहुँच जातो है--

वरजि नी जसोधे अनोखड़ा नी बाल।
चलि करि देखि साडै परि दा हवाल ॥ रहाउ ॥
अज भलकी हुणिमैं रिणकणा नी पाइया।
चारि पंज बालकु संणि लै दउड़दा नी आइया ॥
भजें रिडिकिआ भी नहीं मरुन मंगदा नी हालु।

इसी प्रकार दही बेचने के लिए जाती हुई गोप-बालाओं के साथ छेड़खानी करने, उनकी मटकी फोड़ने तथा दही छीनने का सरस वर्णन भावनदास की रचना में मिल जाता है। एक उदाहरण देखिये—

हमारी जसमत रानी खड़ी आ सिआनी,
तेरा सांगपानी क्रिशन असां नालि केरे किऊ।
असीं जमुना जाइए जल भरि आईये,
बाट हमारी प्रभ घेरे किउं ॥
मोरी बहींआं मरोरे मटकीआं फोरे,
खादा माखुणु खसि पेड़े किउ।

श्रीकृष्ण की इस दधि-लीला से गोपियाँ अप्रसन्न नहीं होतीं, अपितु उन्हें कृष्ण के इस कार्य से आनन्द ही मिलता है। चन्द्रसखी ने इनके मनोभावों को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

माई तेरा मोहन मिलिआ दुख गइआ सभ तन दानी ।
मेरा गुआरिनि के संग खेलत जाता ।
हम दधि बेचन जाति नगर में माई मेरा मारगि बलिआ ।
व्रिन्दावन की कूंज गलनि में माई मेरा आंचल फड़िआ ॥

कृष्ण-लीला के अन्तर्गत मुरली का वर्णन कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। कृष्ण का वेणु-वादन, गोपियों का उसके प्रति ईर्ष्याभाव आदि का चित्रण पंजाबी के कवियों ने बड़े मनोयोग से किया है। मुरलीवाले के रूप पर मोहित ऐसी एक गोपिका का वर्णन 'खेमकरन' कवि ने इन शब्दों में किया है—

मैं कमली वे कमली कीती इस बंसरी दीआ तानां।
रैनि दिना मैंनूं चैन न आवै मैंनूं ग्रहि कारज बिसरानां ॥

कृष्ण-लीला चित्रण में कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है-राधाकृष्ण तथा गोपीकृष्ण-प्रेम-वर्णन। हिन्दी के अधिकांश कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का विविध रूपों में अंकन किया है। पंजाबी काव्य में भी ऐसे चित्रण विस्तार से मिलते हैं। प्रेम की संयोग-वियोगात्मक नाना स्थितियों से युक्त सरस वर्णन पंजाबी काव्य में मिल जायेंगे। कृष्ण के प्रेम में दीवानी गोपियों की दशा का एक चित्र 'कमाल' नामक कवि के शब्दों में देखिये—

असी भूलीआं न गईआं प्रभजी के संग ॥
चलो सखी मथरा जाइ बसीए तजिअै गोकुल गांउ ।
कुबजा दी जाइ टहल कमाईअे दासी धराइअै नांउ ॥
आग लगे इन नेत्रां जिस नहीं दिसदा सिआमु ।
श्याम सुंदर बिन जोवयां नहीं जीवन का कामु ॥

अन्यत्र, पंजाबी कृष्ण-काव्य में गोपियों के विरहोद्‌गारों का जो हृदयस्पर्शी चित्रण गुआलदास ने किया है वह किसी भी हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि की रचना से हीन प्रतीत नहीं होता। उदाहरण के लिए—

साथों रहिगइआं माएं मैडो घिन्न नी समालि ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जितु बंझां तितु बंझणा देंदा पाइआ सु बिरहुं दा जालि ॥ १ ॥
अतणि चरखा त पिड़ पूणीआं जूहदी रही सु तकलेंदे नालि ॥ २ ॥
अठ्ठे पहिर मैनूं धिआन महोन दा होरु न सुरति खिआल ॥ ३ ॥
दास गुआल तेरा जस गावै मैंनूं रख चरखे दे नालि ॥ ४ ॥

निष्कर्षरूप में यह कहना उचित होगा कि पंजाबी कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के नख-शिख तथा साज-सज्जा का वर्णन, बाल-लीलाओं का वर्णन, श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य गोपियों की प्रेम-क्रीड़ा का चित्रण, गोपियों तथा अन्य व्रजवासियों के विरहोद्गार का वर्णन, कुब्जा के प्रति प्रकट की जानेवाली नारी-सुलभ ईर्ष्या का वर्णन, निर्धन एवं असहाय सुदामा के प्रति भगवान् के प्रेम तथा सहानुभूति का वर्णन तथा रुक्मिणी-विवाह के प्रसंग को लेकर श्रीकृष्ण के शौर्य का वर्णन पंजाबी कृष्ण-काव्य के आधारभूत विषय हैं।

इन कवियों ने मध्यकालीन पंजाबी कविता में प्रचलित विविध काव्यरूपों का आश्रय लेकर काव्य-रचना की है। इन्होंने दोहरा (दोहा), सोरठा, बैंत, कुंडलिया, सवैया, कवित्तु, कड़वा, छप्पै, मिठड़ा, सीहरफी, बारांमाहा, चौबोला, बरवै, छन्द, पदें, संवाद, वार, अरल्ल (अरिल्ल), माझ, उलांभा (उलाहना), काफी आदि छन्द तथा अन्यान्य राग-रागिनियों—सिरी राग, राग तिलंग, राग बिलावल, राग सूही, राग भैरउ, राग हिंडोल, राग परज, राग आसा, राग खंभावरी, राग जैजावन्ती, राग मारु, राग गउड़ी, राग पूरबी, राग वडहंस, राग रामकली, राग कानड़ा, राग ढोला, राग बिहागड़ा, एकताल, व तिताल आदि को अपनाकर काव्य-सर्जना की है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पंजाबी में कृष्ण-काव्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। आवश्यकता खोज एवं सही पहचान की है। निःसन्देह इसकी उपलब्धि से पंजाबी साहित्य की परख और पहचान में सहायता मिल सकती है तथा पंजाबी साहित्य के इतिहास में नवीन उपलब्धियाँ भी हो सकती हैं। इनके अभाव में उसका मध्ययुग आज भी अपूर्ण और अधूरा-सा जान पड़ता है।

पंजाब में रचित हिन्दी कृष्ण-काव्य मूलतः गुरुमुखी लिपि को अपनाकर व्रजभाषा में लिखा गया है, जिसका ब्योरा हम पहले दे चुके हैं। यहाँ पंजाब के कृष्ण-काव्य की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना आवश्यक है। पंजाब प्रदेश की जन-चेतना में संघर्षशील संस्कारों की बहुलता रही है। इसलिए यहाँ असहाय स्थिति एवं रुदन की प्रवृत्ति का अभाव है। इन्हीं संस्कारों के कारण पंजाब के कवियों के द्वारा रचित कृष्ण-काव्य में राधा और श्रीकृष्ण का प्रेम ही मुख्य विषय बना रहा और उसमें भी संयोग शृंगार ही प्रधान रहा। विरह-विह्वल अवस्था में उद्भासित राधा और श्रीकृष्ण के चित्र देखने को कम मिलते हैं। परम्परा का निर्वाह करने के लिए इन कृष्ण-भक्त कवियों ने भी विरह-चित्रण किया है, परन्तु इसमें सूरदास तथा अन्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों जैसी व्याकुलता देखने को कम मिलती है। अस्तु, यहाँ कृष्ण-काव्य का संयोग-पक्ष ही प्रधान रहा और हास-विलास, राग-रंग, रासलीला, श्रीकृष्ण और गोपियों के बीच चलनेवाली छेड़-छाड़, राधाकृष्ण की कुंज-लीलाएँ और हास्य-विलास, वंशी-वादन तथा गोपियों की प्रणयातुर मनःस्थिति के चित्र ही प्रधान हैं। विरहदग्धा राधा तथा गोपियों की वेदना, भ्रमरगीत-प्रसंग, बारहमासा, षट्ऋतु-वर्णन आदि का भी उल्लेख हुआ है, परन्तु इन विषयों पर इन कवियों की पकड़ बहुत ढीली और औपचारिक है। यही स्थिति रुक्मिणी-मंगल काव्य की भी है। यहाँ विरह का स्वर बहुत क्षीण दिखाई पड़ता है।

पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य का दूसरा गुण इसका ओजस्वी स्वर है। दैत्य-संहार-लीला, गोवर्द्धन-धारण, कालिय-दमन, कंस तथा अन्य योद्धाओं का वध, जरासन्ध और शिशुपाल-युद्ध आदि प्रसंगों का व्यापक चित्रण हुआ है।

श्रीकृष्ण से सम्बद्ध औदात्य को प्रदर्शित करनेवाली घटनाओं का भी इस प्रान्त के कवियों ने विशेष उत्साह से वर्णन किया है। इस दिशा में द्रौपदी-चरित तथा सुदामा-चरित के प्रसंग उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने सुदामा की दीनदशा तथा कृष्ण की उदारता और सदाशयता के चित्र पूरे उल्लास एवं विस्तार के साथ अंकित किये हैं। श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा और उनकी पत्नी को धन-धान्य से सम्पन्न कर देने के प्रसंग को सामने रखकर इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की दानवीरता की प्रवृत्ति को लक्षित करने की चेष्टा की है।

पंजाब के कृष्ण-काव्य की अन्य विशेषता इन कवियों की श्रीकृष्ण के प्रति गहरी श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम है। इन तत्त्वों को दृढ़ बनाने के लिए यहाँ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अनेक भाषानुवाद किये गये हैं। इस काव्यधारा को जीवित रखने के लिए महाभारत के अश्वमेधपर्व तथा अन्य पर्वों को भी अनूदित किया गया है। डॉ० मनमोहन सहगल का मत है कि "कविगण अपने मित्रों, सम्बन्धियों या आश्रयदाताओं को गीता का पावन सन्देश संक्षेप में सुनाने एवं मनन कराने के लिए उसे साररूप में लिखते तथा उस रचना को निरन्तर पाठ करने के लिए प्रयोग में लाते होंगे।"[1]

मध्ययुग में पंजाबवासियों की मानसिकता में श्रीकृष्ण का विराट् एवं बहुपक्षीय व्यक्तित्व इस तरह घुल-मिल गया था और श्रीकृष्ण उनके लिए इतने अपने हो गये थे कि पंजाब के कई कवियों ने श्रीकृष्ण के जीवन-चरितों से इतर काव्य-रचना करके भी अपनी रचनाओं को 'श्रीकृष्ण' से ही जोड़ा है। इस दृष्टिकोण से आचार्य अमीरदासकृत 'श्रीकृष्ण-साहित्य-सिन्धु' एवं 'व्रजराज-विलास सतसई' तथा किशोरचन्द तिवारीकृत 'श्री राधागोविन्द संगीत-सार' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

इससे स्पष्ट है कि पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य में आश्रयदाताओं की प्रेरणा तथा मध्ययुगीन जातिगत संस्कारों का स्वर मुखरित है। पंजाब के ये कवि अपनी श्रद्धा-भक्ति तथा प्रेम के कारण श्रीकृष्ण के औदात्य का प्रतिपादन करके आश्रयदाताओं की गुणग्राहकता का मूल्य चुकाते थे। निःसन्देह इन कवियों का सामन्ती वातावरण के प्रति आकर्षण युगीन परिस्थितियों का परिणाम था। कुछ भी हो, पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य, विशेषतः गुरुमुखी लिपि में लिखित हिन्दी कृष्ण-काव्य, को विद्वानों ने आज तक प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। इसका प्रधान कारण कृष्ण-भक्ति-साहित्य के मर्मज्ञों का गुरुमुखी लिपि से अपरिचित होना है। दूसरा कारण पंजाबी साहित्य के विद्वानों की व्रजभाषा-साहित्य की अनभिज्ञता है। परिणामतः पंजाब का यह मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य उभयभाषी साहित्यकारों की दृष्टि से ओझल रहा और हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में समाविष्ट नहीं हो सका। इस दिशा में डॉ० मनमोहन सहगल, डॉ० जयभगवान गोयल, डॉ० हरिभजन सिंह, डॉ० राजगुरु, सः शमशेर सिंह 'अशोक' प्रभृति विद्वानों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। डॉ० धर्मपाल मैनी तथा मेरे (डॉ० शमीर सिंह) द्वारा 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ' नामक पुस्तक का सम्पादन इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इस पुस्तक में विभिन्न पुस्तकालयों, संग्रहालयों तथा निजी स्रोतों में पड़े हुए गुरुमुखी लिपि के हिन्दी ग्रन्थों की सूची, उनके लेखकों की नामावली तथा उपलब्धि क्रमबद्ध रूप में दी गयी है। मध्ययुग के नाभा राज्य के आश्रित कवि गोपालसिंह 'नवीन' द्वारा संकलित 'सुधासर' ग्रन्थ का सम्पादन तथा लिप्यन्तरण भी किया गया है। यह ग्रन्थ देवनागरी लिपि में भाषा-विभाग, पटियाला के सौजन्य से प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध यह ग्रन्थ देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित होकर कई अज्ञात कवियों के काव्य को साहित्यकारों के सामने लाने में लाभकारी सिद्ध होगा।[2]

पंजाब प्रान्त में रचित कृष्ण-काव्य मध्ययुग की वह बहुमूल्य निधि है जिसे सुरक्षित रखना आज के साहित्यकारों का पुनीत कर्तव्य है। इसके अन्वेषण एवं संरक्षण से हिन्दी-साहित्य समृद्ध हो सकता है।

—डॉ० शमीर सिंह

---

[1] १. डॉ० मनमोहन सहगल : पंजाब का हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ १५८।

[2] २. डॉ० शमीर सिंह, हिन्दी-विभाग, खालसा कॉलेज, अमृतसर के द्वारा सम्पादित तथा लिप्यन्तरित और शीघ्र प्रकाश्य।

पंजाबी का कृष्ण-काव्य : स्वरूप और विशेषतायें

श्रीकृष्ण विष्णु के सोलह कला-पूर्ण अवतार थे। उनका व्यक्तित्व नीतिज्ञ, दार्शनिक, साधक, संरक्षक, लोकरंजक, आध्यात्मिक नेता तथा मूर्त-प्रेम का समन्वय था। भारत के समूचे विस्तार में श्रीमद्-भगवद्गीता के रूप में श्रीकृष्ण के उपदेशों को ग्रहण किया गया है। हिन्दी-साहित्येतिहास में एक सम्पूर्ण काव्य-धारा कृष्ण-भक्ति-शाखा के नाम से प्रचलित हुई, अनेक कवियों ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के अलग-अलग पहलुओं पर काव्यात्मक रचनाएँ कीं, उनकी लीलाओं के चित्रण किये। उन्हें आलम्बन बनाकर रागात्मिका, वत्सला, दास्य एवं सख्यभावी भक्ति के चित्रण किये गये। सूरदास, मीरा और रसखान की माधुरी प्रवहमान हुई, भक्त कवियों ने कृष्ण-प्रेम पाकर अपने को उनकी शरण में ही समर्पित कर दिया। प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक-काव्य, लीला-काव्य और मंगल-काव्य लिखे गये, श्रीकृष्ण-जीवन के चमत्कारों को चित्रित किया गया, उनके उदात्त दृष्टिकोण और निम्न जातियों के प्रति प्रेमिल व्यवहार पर काव्योद्गीत प्रस्तुत किये गये।

वास्तव में यह भक्ति-धारा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की कथाओं की देन थी। ज्यों-ज्यों जन-मानस उनसे प्रभावित होता गया, त्यों-त्यों श्रीकृष्ण का चरित्र तथा उनके प्रति भक्ति-भावना लोक-प्रचलित होती चली। यह प्रभाव मध्यकाल में भारतभर में प्रसारित हुआ और केवल ब्रज-भाषा में ही नहीं, भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी सम्बद्ध साहित्य की रचना होने लगी। पंजाब प्रदेश उससे इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। पंजाब के कवियों ने श्रीकृष्ण के विभिन्न जीवन-पहलुओं पर साहित्य लिखा। यहाँ की विशेषता यह थी कि उस काल की अधिकांश रचनाएँ ब्रज-भाषा में होते हुए भी गुरुमुखी लिपि में लिखी गयी थीं। प्रदेश में गुरु-परम्परा का इतना गहन प्रभाव था कि ब्रज के कवि भी गुरुओं की लिपि को अभि-व्यक्ति का माध्यम बनाते थे। इससे जहाँ गुरुमुखी के प्रति उनकी श्रद्धा एवं जनता तक पहुँचने की उनकी जागरूक प्रवृत्ति प्रकट होती है, वहाँ आधुनिक पंजाब में उनकी रचना के उपेक्षित रह जाने के कारण भी विद्यमान दीख पड़ते हैं। रचना की भाषा ब्रज थी, पंजाबी भाषा के आधुनिक विद्वानों ने उसे पंजाबी स्वीकारने से इनकार किया और पाण्डुलिपियों की उपेक्षा कर दी। हिन्दी-जगत् के विद्वानों को गुरुमुखी लिपि का ज्ञान नहीं था, परिणामतः वे कृष्ण-साहित्य के इतिहास में पंजाब में उपलब्ध कृष्ण-काव्य को उचित स्थान नहीं दे पाये। इस प्रकार पंजाब में रचित ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य समग्ररूप में प्रायः अदृश्य ही बना रहा। हमने मूल पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण करने के बाद विषय को उपयुक्त रूप देने का साग्रह प्रयास किया है। अपेक्षा यह है कि उक्त पाण्डुलिपियों को हम देवनागरी में लिप्यन्तरित करके हिन्दी-जगत् का ध्यान आकर्षित करें। हमारा विश्वास है कि यदि ऐसा सम्भव हुआ तो हिन्दी-साहित्येतिहास के पुनर्लेखन का प्रश्न तीव्र हो उठेगा। किन्तु लिप्यन्तरण एवं प्रकाशन-सम्बन्धी आर्थिक कठिनाइयाँ सदैव हमारा पथावरोध करती रही हैं, इसीलिए आज सर्वांग-रहस्योद्घाटन हो जाने के बाद भी यह सम्पन्न साहित्य उसी प्रकार दीमक का भोजन बन रहा है, जैसे आज के पूर्व अज्ञानावस्था में था।

पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य पंजाबी और ब्रज-भाषा दोनों भाषाओं में उपलब्ध है। ब्रज-भाषा कृष्ण-काव्य भी अनेक रूपों और पद्धतियों में लिखा गया है। कृष्ण-जीवन की प्रमुख घटनाएँ, कृष्ण की लोक-रंजक और लोक-रक्षक लीलाएँ, शृंगारिक उद्भावनाएँ, भक्ति-भावनायुक्त काव्य, सम्पूर्ण जीवन-चरित

आदि पक्षों में उक्त साहित्य को विभाजित किया जा सकता है। पंजाब में विक्रम की १६वीं शताब्दी से लेकर २०वीं शताब्दी तक के दीर्घ काल-विस्तार में कृष्ण-भक्तिपरक अथवा कृष्ण-चरितात्मक रचनाएँ बराबर लिखी जाती रही हैं। कविगण साधुओं के अखाड़ों तथा रजवाड़ों के आश्रय में श्रीकृष्ण की महानता को अपने आश्रयदाताओं के संग जोड़ने और उसीको उघाड़ने-उभारने के लिए उनकी दानशीलता को लक्ष्य करके सुदामा-चरित्र-काव्य लिखते, कभी उनकी वीरता को दर्शाने के लिए असुर-निकन्दन का चित्रण करते, कभी राजाओं के भोग-विलास को देखकर रास-विलास और गोपी-लीलाएँ वर्णित करते और कभी विवाह-अपहरण आदि प्रसंगों पर रुक्मिणी-मंगल का प्रणयन करते। द्रौपदी-चरित्र, भक्तवत्सल कृष्ण, गिरिधारी तथा बालकृष्ण के मनोहर चित्र पंजाबी में गिनती के ही मिले हैं।

पंजाब के कृष्ण-काव्य में हिन्दी प्रदेशीय कृष्ण-काव्य की भाँति ही शृंगारी भावना प्रमुख रही है। भ्रमर-गीत-प्रसंग को लेकर गोपी-विरह तथा निर्गुण पर सगुण की विजय दर्शाने के कतिपय प्रयास भी हुए हैं। संयोग शृंगार के बहिर्मुखी अनुभवों एवं वियोग शृंगार के अन्तर्मुखी तथा बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण अनुभावों के सुन्दर चित्र पंजाब के कृष्ण-काव्य में द्रष्टव्य हैं। गुरु गोविन्दसिंहकृत 'कृष्णावतार' सरीखी रचना में श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन चित्रित करते हुए भी कवि का लक्ष्य वीर-भावना को उद्दीप्त करना रहा है। कृष्णावतार के श्रीकृष्ण योद्धा अधिक हैं, लीलाधर कम। उनकी लोकरंजक लीलाओं में भी पराक्रम और शक्ति का दिग्दर्शन कवि की मूल चेतना रही है। श्रीकृष्ण के नीतिज्ञ एवं दार्शनिक पक्षों पर प्रकाश डालने के लिए पंजाब के कवियों ने श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक भाषानुवाद प्रस्तुत किये हैं। महाभारत के विभिन्न पर्वों का भाषानुवाद गुरु गोविन्दसिंह के दरबार में करवाया गया और स्वतन्त्र रूप से भी कुछ कवियों ने ऐसा किया। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की अनेक भाषा-टीकाएँ पंजाबी में की गयीं। कवि कृष्णदास (सं० १६०२), कवि निहाल (सं० १६१०), कवि भूपत (सं० १७४४), गुरु के दरबारी कवि कीरतसिंह (सं० १६०४-०५) आदि ने भागवत को लोकप्रिय बनाने में सहयोग दिया।

भगवद्गीता का भाषानुवाद करनेवालों में कवि आनन्दराम (१८२५ वि०), कवि किशोरदास (१८५१ वि०), साधु गोविन्ददास (१६२२ वि०), ज्ञानदास (१८२६ वि०) आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त पंजाब के अनेक कवियों ने मौलिक कृष्ण-काव्य का प्रणयन ब्रज-भाषा में किया।

तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण मध्यकालीन पंजाब में पर्याप्त लोकप्रिय रहे, क्योंकि उनके बहुरंगी जीवन में कवियों को अपनी रुचि का आलम्बन खोजने का अवकाश बराबर मिलता रहा।

—डॉ० मनमोहन सहगल

पंजाब के कृष्ण-भक्त

अमीन ख्याल

पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध और बहुचर्चित साहित्यकार अमीन ख्याल का फारसी लिपि तथा ब्रजभाषा में लगभग १२० दोहों का एक संग्रह 'किन-मिन' के नाम से प्रकाशित है, जिसकी एक प्रति गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के दुर्लभ पुस्तक-विभाग में उपलब्ध है। अमीन-साहित्य के ये दोहे भले ही शुद्ध ब्रज-भाषा में न होकर पंजाबी तथा उर्दू की रंगत लिये हुए हों, परन्तु एक पाकिस्तानी कवि के द्वारा ब्रजभाषा में विरचित होने के कारण विशेष महत्त्व रखते हैं। इन दोहों का प्रतिपाद्य विषय भक्ति, नीति, शृंगार, प्रभु-महिमा, व्यावहारिकता आदि हैं, फिर भी इस कवि ने श्रीकृष्ण के जीवन के कुछेक पक्षों को लेकर दोहों की जो रचना की है, वह भारतीय पौराणिकता के साथ उसके गहरे लगाव के परिचायक है। नमूने प्रस्तुत हैं—

शाम के कारन शाम को, मनवा न तरसा।
जेतैं पाना शाम को, अपना आप गवा॥

अन्तर बेदन खा गयो, तन पे रह्यो न चाम।
पड़ गई कारी शाम रे, आयो न मेरे शाम॥

पीरी पर गई धूप रे, कारो हो गई शाम।
मैं चली मोरे श्याम को, कह दीजो परनाम॥

उर्दू-साहित्य का यह कवि श्रीकृष्ण के प्रभुत्व को आख्यायित करके जहाँ उससे मिलाप के लिए व्यक्ति को अहम् से मुक्त होने का सन्देश देता है, वहाँ उसने श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आतुर एक विरहिणी की मनोदशा का भी मर्मस्पर्शी अंकन किया है।

श० सिं०

अमीरदास

पंजाब के उत्तरमध्यकालीन हिन्दी-काव्य को विविध विषयक प्रौढ़ ग्रन्थों से समृद्ध करनेवाले भक्त-कवि आचार्यों में अमीरदास अग्रगण्य हैं। आचार्यत्व में केशव, देव, भिखारीदास, मुक्तक काव्य-रचना में बिहारी-मतिराम, वीर काव्य-रचना में भूषण, लाल आदि कवियों के समकक्ष आचार्य कवि अमीरदास भक्ति-नीति-क्षेत्र में भी समर्थ रचनाकार सिद्ध हुए हैं।

इनका जन्म वैष्णव-कुल में, संवत् १८४० विक्रमी में, पंजाब के मालवा प्रदेश में हुआ था। इनकी माता का नाम राजकुमारी और पिता का नाम जीतराम था। बाल्यकाल से ही इनकी वृत्ति भक्ति-वैराग्य में थी। संस्कृत का इन्होंने गहन ज्ञान प्राप्त किया था। युवावस्था में ही ये उदासी-सम्प्रदाय के दीवानी-मतान्तर्गत 'अलमस्त पूर्ण' के नाम से प्रसिद्ध महात्मा रामदास के शिष्य बन गये, जिनका डेरा पटियाला में है। कहते हैं, अपने अन्य गुरु-भाइयों से कुछ मतभेद होने पर ये अमृतसर आ गये और अपना अलग डेरा बनाकर जन-सेवा तथा साहित्य-साधना करने लगे। वहाँ से इन्हें महाराजा रणजीतसिह के द्वितीय पुत्र युवराज शेरसिंह लाहौर के खालसा-दरबार में ले गये, जहाँ सम्भवतः ये संवत् १९०० वि० तक रहे। इसी समय के आसपास महाराजा शेरसिंह और उनके पुत्र की हत्या के पश्चात् ये तीर्थयात्रा पर चले गये। उससे लौटकर ये पुनः अमृतसर तथा लाहौर में भक्ति-साहित्य-साधना में लीन हो गये। इनका देहावसान संवत् १९३० से पूर्व किसी समय अनुमानित है। इनकी अन्तिम उपलब्ध रचना 'अश्वसंहिता प्रकाश' है। इसका रचनाकाल संवत् १९१७ वि० है। तब तक इनकी ख्याति एक कृष्ण-भक्त के रूप में उत्तर भारत के सांस्कृतिक-साहित्यिक केन्द्र काशी तक पहुँच चुकी थी, जिसका प्रमाण संवत् १९३३ वि० में भारतेन्दु-रचित 'उत्तर भक्तमाल' की ये पंक्तियाँ हैं—

कविवर दास अमीरं कृष्ण पद मैं प्रतिपागी।

– – –

श्री हरिचरण के प्रेम प्रचार हित जिन उपदेश बहुत दिये।
ये चार भक्त पंजाब में, चार वेद पावन भये ॥ १८९ ॥

'भये' शब्द के प्रयोग से, उस समय तक अमीरदास का परलोकवासी हो जाना स्पष्ट है। इनके जीवन-वृत्त-सम्बन्धी कुछ सूत्र अन्त:साक्ष्य से प्राप्त हैं—

श्री वैष्णव कुल मैं प्रगटि, भयो उदासी संत।
जीतराम पितु मात मम, राजकुमारो अनंत ॥

• • •

जन अमीर तप अति कर्‌यो, तपसी साधु प्रकासि ॥

• • •

कृष्ण-भक्ति लयलीन रहि, पढ़त सदा गुरु ग्रन्थ।
अति उदार सेवा-निपुण, सुभ संतनि के पन्थ ॥

• • •

राम अनुज गुरु जै गोपाला।

अमीरदास भक्त, कवि एवं काव्यशास्त्र-निपुण आचार्य होने के साथ-साथ कुशल वैद्य और विज्ञानी भी थे। इनकी विपुल ग्रन्थराशि इनके गहन स्वाध्याय, चिन्तन और मनन का प्रमाण है। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं--

१. सभामण्डन (विविधांगनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ), १८८४ वि०
२. वृत्तचन्द्रोदय (एकांगनिरूपक पिंगल ग्रन्थ), १८८७ वि०
३. ब्रजराज-विलास-सतसई (भक्ति श्रृंगारपरक मुक्तक रचना), १८८९ वि०
४. श्रीकृष्ण-साहित्य-सिन्धु (विविधांग निरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ), १८९० वि०
५. शेरसिंहप्रकाश (अलंकार-निरूपक वीरकाव्य), १८९७ वि०
६. फाग-पचीसी (कृष्ण-भक्ति-विषयक लघु काव्य-कृति), १८२४ वि०
७. ग्रीष्म-विलास (ऋतु-वर्णन-काव्य), १८८४ वि०
८. भगवत्-रत्नाकर (भक्ति-ग्रन्थ), १८८४ वि०
९. अमीर प्रकाश (वैद्यक-ग्रन्थ), १८८७ वि०
१०. वैद्य-कल्पतरु (,,), १९०७ वि०
११. अश्वसंहिता प्रकाश (,,), १९१९ वि०

इनमें से यद्यपि क्रम-संख्या ३, ६, ८ ही प्रत्यक्षतः कृष्ण-भक्ति-विषयक रचनाएँ हैं, तथापि अन्य सभी कृतियों में भी उदाहरणरूप प्रस्तुत किये गये अनेक छन्द भक्तिपरक हैं और सर्वत्र श्रीकृष्ण ही कवि के आराध्यदेव के रूप में विराजमान हैं।

उदाहरणस्वरूप कुछ छन्द प्रस्तुत हैं :

१. श्रीराधा ब्रजचंद पै, जाचै दास अमीर।
चरन सरन सुख सिंधु मुहि, देहु बँधावो धीर ॥
(सभा-मण्डन)

२. कविन पुंज रसिकान मन, जिहि लखि होत अनंद।
त्रिविध ताप उपसमकरन, जै जै श्री ब्रजचंद ॥
जड़ अमीर विनती करै, तुम पै श्री ब्रजनाथ।
दारुन दास सुजान मुहि, देहि चरन को साथ ॥
(वृत्तचन्द्रोदय)

३ विनती करत अमीर, तुम पै श्री नागर नवल।
हरो कठिन भवपोर, काली-मरदक गिरधरन ॥
(श्रीकृष्ण साहित्यसिन्धु)

४. छहि रितु रूरे तरुनि रहत नवलता विराजो।
कोकिल कीर कपोल, मोद भरि निरतत राजी ॥
रतन जडत सब रमत भानुजा तीर भूप वर।
सुखद गोपगण सहित नंद नंदन करुनाकर ॥
जे अतिमनादी ब्रह्मादि ते पर ध्यान जोग न परौं ?
सो अबलौं जिह बंसी ररै, श्री वृंदावन वर्णन करौं ॥
(भगवत्-रत्नाकर)

५. ध्यान धारिवे जोग को, श्री राधा व्रजचंद ।
निर्मल कौन निवास हित, वृन्दावन सुखकंद ।।

कहाँ कहाँ तिन जीव जै, नहिं अस जपत गुपाल ।
स्वास स्वास सब स्वास की, सुखसों करत सँभाल ।।

श्री जसुधा जसधाम तूँ सिख सुत कों किन देत ।
आछो अनुग अमीर है, पायं पलोटन हेत ।।
(व्रजराज-विलास सतसई ।)
रा० प्र०

अवतार सिंह 'अरपन'

अवतार सिंह के जीवन से सम्बद्ध कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, परन्तु राधाकृष्ण-विषयक इनकी एक रचना मिली है। उसके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं –

१. सुण मेरीए सखीए नी, तैनूं हाल सुणांदी हां ।
तैनूं गुजरे वेले दा, इक सीन विखांदी हां ।।
ओह कैसा वेला सी,
ओह पिआरा वेला सी,
ओह सोहणा वेला सी,
मेरे जद कोल सखी मेरा अलबेला सी ।
ओह प्रेम कन्हैया नी, ओह मुरली वाला नी ।।
ओह शाम मुरारी नी, ओह कंबली वाला नी ।।
ओह मेरा साईं नी, गोकल दा गवाला नी ।।
दुनिआं दा राखा नी, गउआं दा राखा नी ।।
इक दिन ओह गोकल विच, बंसी वजांदा सी ।।
दिल जांदे राहीआं दा, ओह मोहंदा जांदा सी ।।
मै वी सुण बंसी नूं, ओधर नूं धाई नी ।।
बंसी दीआं तानां ने, कीता सौदाई नी ।।

• • •

अज्ज लम्भे ना सोहणा ओह ।
ओह कोमल प्रीतां दा, ते सुच्चा रीतां दा ।।
गोकल विच डिठ्ठे ना, पिआरा मनमोहणा ओह ।।
अड़ीए ! जिस नूं चावां नाल मक्खन खवांदी सां ।
फिर दिल दी कोई सुणदी सां, ते कोई सुणांदी सां ।।
हुण इस विच तड़के नूं, रिड़कन जां पांदी आं ।
खिच्च खिच्च के रस्सी नूं, मधाणी खड़कांदी आं ।।
याद आ आ के ओहदी, फेर डाढा सतांदी ए ।
चेते आ आ के ते, लोहड़ा ही पांदी ए ।।

रसिक भक्त कवि श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति में लीन एक अन्य भक्त को सम्बोधित करके कहता है :

'मैं तुम्हें बीते हुए समय का एक दृश्य दिखाता हूँ। वह समय कितना सुहावना और प्यारा था, जब मेरे पास मेरा अलबेला कन्हैया, मुरलीवाला, मुरारी, कंबलीवाला, स्वामी, गोकुल का ग्वाला, गो-रक्षक श्रीकृष्ण निवास करता था। एक दिन वह गोकुल गाँव में वंशी-वादन कर रहा था और उधर से निकलनेवाले सभी लोग उसकी मुरली की ध्वनि को सुनकर मोहित हो रहे थे। मैं भी उसकी वंशी की मधुर तान को सुनकर दौड़ी-दौड़ी वहां गयी, क्योंकि मैं बावली-सी बन गयी थी। आज वह श्रीकृष्ण हमें छोड़कर चला गया है और कहीं दिखाई नहीं देता। प्रेम की रीति को निभानेवाला वह प्यारा मनमोहन गोकुल में कहीं भी दिखाई नहीं देता। उसे मैं चाव से माखन खिलाती थी और अपने मन की बातें उससे कहती थी और सुनती थी। अब जब मैं प्रातःकाल दूध बिलोती हूँ और रस्सी को खींच-खींचकर मथानी को खड़काती हूँ, तो मुझे श्रीकृष्ण की याद आती है और मेरा मन खिन्न होकर तड़पने लगता है। जैसे ही मुझे उसका ध्यान आता है, मैं व्याकुल हो उठती हूँ। मैं उसकी याद में सदा रोती रहती हूँ। श्रीकृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि के लिए, उसके प्यार को पाने के लिए ये (नेत्र) सदा आँसू ही बहाते रहते हैं। ये नेत्र इतने आँसू बहाते हैं कि आँसुओं से मेरा मुँह भी धुल जाता है।'

अन्यत्र, इसी बार में यह दर्शाया गया है कि भक्तों की प्रत्येक काल में प्रतिष्ठा होती रही है। श्रीकृष्ण का सुदामा को देखते ही सिंहासन छोड़कर

दौड़कर आना और सम्मानपूर्वक उस मलिन वस्त्रधारी ब्राह्मण को अपने निकट स्थान ग्रहण कराना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। सुदामा से मिलकर श्रीकृष्ण गद्गद हो उठते हैं। वे सुदामा के चरण को धोकर उसे गंगाजल से भी पवित्र जानकर पान करते हैं। हाथों में चँवर लेकर उनके सिर के ऊपर फिराते और आदर-सम्मान करते हैं :

वारै जाइ सोचिदा किंतु संजम दरशन पाई।
हउ दुरबल ब्राहमन एत गल्ल उह वे प्रवाहु गुसांई ॥

ओथै सोलह संहस्र बरननं किंतु मंदरि अंदरि जाई।
फिर पहुचा जाइ दुआरका देह दुरबल अति निभानी ॥

ओस अंग पुराने कपड़े धूलि राहे दी लपटानी।
किनै ठाकि न भूले घतीआसु दरवाजे दी दरवाणी ॥

जाइ वाड़िआ अंदरि महल दे जिथ्थेक्रिशन रुक्मण राणी।
देखि दरशन दूरहु दौड़िआ दुख भंजन सारंग पानी ॥

हिकिहिकै दे नाल सि लाई उन प्रभ हेतु सु प्रभु निरबाणी।
मंझू आनंद उमडोआ मुखि गदि गदि बोलै बाणी ॥

सिंहासन आन बहालिओन इिह अचरज गल्ल रमाणी।
पीतंबरि देही झाड़ोउनु वेखि विप्र भइआ हैराणी ॥

पैर मलि मलि धोवै विप्रु दै गणी रुकमनि पलटणि पाणी ॥
चरनामतु सिर ते रखिओन जाण गंगा समुद्र समाणी ॥

सेवा मिसटानि भूचाइिन कढि पाना दी महिमानी।
चोआ है चंदन लाइिओन बिप सेज सुखाली गाणी।
लै चउर सिर ते चलिओन धन प्रोत तेरी प्रमाणी।
साधूजन सद कुरबाणी ॥

इस तरह साधुजन ने पौराणिक कथा को लेकर अपनी भाषा में जिस ढंग से व्यक्त किया है, वह पंजाबी कृष्ण-काव्य-जगत् में सराहनीय है।

एक अन्य छन्द में उनकी तीव्र विरहासक्ति व्यक्त हुई है—

मेरे नैन बिचारे हुण रोंदे ही रहिंदे ने।
बंसी दीआं तानां लई। पिआरां दीआं खानां लई ॥
इिह आपरपे आप 'अरपन', चोंदे ही रहिंदे ने।
रो रो के आपणा मुख्ख, धोंदे ही रहिंदे ने ॥

शा० सिं०

आनन्दराम

इस भक्त कवि का जन्म अठारहवीं शताब्दी विक्रमी का प्रथम चरण अनुमानित है, क्योंकि इनकी काव्य-कृतियों में रचना-काल १७६१ विक्रमी दिया गया है। इनका जीवन-परिचय विशेष ज्ञात नहीं है, किन्तु इनकी रचना में पंजाबीपन एवं गुरुवाणी-शैली का पुट होने से इनका पंजाबवासी होना स्पष्ट है—

गीता एक ओंकार, अथ नमस्कार।
परम पुरुष परमातमा, एक ओंकार अभेव।
त्रिवरन मय त्रैलोक गति, वंदहि तीनों देव।
गुर करि गोबिन्दहि मिलै, गोबिन्दहि गोबिन्द।
बंदनीय सब काल है, सत गुर पद अरविन्द ॥

इनकी प्रसिद्ध रचना 'परमानन्द-प्रबोध' है जिसका आधार श्रीमद्भगवद्गीता है। अन्तःसाक्ष्य के अनुसार इसकी रचना संवत् १७६१ में हुई थी—

परमानन्द प्रबोध यह, कीनो आनन्दराम।
पढ़ै गुनै यहि जो सुनै, सो पावै प्रभु धाम ॥

ससिर उदध धारा समित, कातिक उज्जल मास।
रवि पाँचे पूरन भयो, यह गीता परकास ॥

इस कवि की अन्तर्वृत्ति पूर्णतः कृष्णमय है। यथा—

क. कृष्ण कृपा ते होत है, भक्ति युक्ति को ज्ञान।
ताते बन्धन तें छुटै, यह गीतारथ जान ॥

ख· भगवत सत श्री कृष्ण जू, यह कीया निरधार।
करै भगति अक्षय यहै, सबै वेद को सार ॥
ग. जो कोऊ चाहे भव तर्‌यो, कृष्ण चरण के पास।
और सकल श्रम छाड़ि के, गीता करै अभ्यास ॥
रा० प्र०

आलम

प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि आलम गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि थे। इसके पूर्व ये औरंगजेब के पुत्र मुअज्ज़म के दरबार में सं० १७४४ तक रहे थे। वहीं शेख नामक रंगरेजिन से इनका प्रेम हो गया था। मुअज्ज़म के बन्दी हो जाने के बाद शेख के साथ ये गुरु गोविन्दसिंह की सभा में आ गये थे। यहाँ रहते हुए ही इन्होंने अकबर के दरबारी कवि जोध की संस्कृत भाषा की कृति 'माधवानल कामकन्दला' को आधार बनाकर 'माधवानल कामकन्दला' की रचना की थी। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—'आलमकेलि', 'सुदामा-चरित्र' और 'स्याम-सनेही'।

'सुदामा-चरित्र' स्यात् आलम की अन्तिम रचना है। यह भक्ति-भाव से आपूरित है। इसका वर्ण्यविषय कवि हिरदेराम के सुदामा-चरित्र जैसा ही है। सुदामा का पत्नी की प्रेरणा के कारण बालमित्र श्रीकृष्ण के पास मथुरा में जाना, वहाँ खूब सेवा-आदर प्राप्त करना, किन्तु खाली हाथ लौटना, कृष्ण के द्वारा विश्वकर्मा के माध्यम से पीछे सब कायाकल्प करवा देना, घर आकर सुदामा का अपनी झोंपड़ी की जगह महल देखकर पछताना और बाद में अपनी स्त्री से सब रहस्य जानकर प्रभु गुण-गान करना।

नरोत्तम दास के प्रसिद्ध 'सुदामा-चरित' से इसका स्वर मिलता-जुलता है। कवि ने रचना के आरम्भ में भगवान् कृष्ण की स्तुति में कहा है—

सतनाम अरु बहुत बंदगी
जो इसको नीके कर जाने।
ज्यों-ज्यों याद करे वह बंदा
त्यों-त्यों वह नीके कर जाने ॥
देखो कर्म कियो बांमन ने
जो कछ दिया सो मन मे जाने।
ऐसो कौन बिना गिरधारी जो
गरीब के दुख को माने ॥

तदुपरान्त सुन्दर एवं आकर्षक शब्दावली में सुदामा की दीन दशा-वर्णन से लेकर कृष्ण-लीलाओं और सुदामा के विस्मय का चित्रण किया गया है। सुदामा लौटकर घर आता है, झोंपड़ी की जगह भव्य भवन देखकर दुःखी होता है। ब्राह्मणी अट्टालिका से बुलाती है, तो उसे भी नहीं पहचान पाता और विचित्र मनःस्थिति में आ जाता है—

औरत इन्तजार चौबारह,
देखि धनी कूं बांह डुलावै।
ऊचो नजरि देखत रे बांभन,
इह मिहरी किहो काज बुलावै ॥ ५४ ॥

मैं मिसकीन गरीब बांभन हौं,
इह तौ किसी भूप की राणी।
मेरे दिल मह यही अचम्भा,
जोह न बरा इहां सौ आनी ॥
सायति मुझे देखि कै दुर्बल,
दौलतवंत जराफतबानी।
भरम भुलान भया अयाना,
यही बात अपनै मनि मानी ॥ ५५ ॥

उपर्युक्त उदाहरण में उर्दू-फारसी की शब्दावली का प्रचुर प्रयोग द्रष्टव्य है। औरत, इन्तजार, नजरि, मिसकीन, गरीब, दौलत, जराफत आदि शब्द उसी कोटि के हैं, किन्तु पर्याप्त प्रचलित माने जा सकते हैं। तात्पर्य यह कि इस प्रकार की शब्दावली के कारण हम 'सुदामा-चरित्र' की भाषा को क्लिष्ट हो गयी नहीं मान सकते। इसमें 'मिहरी', 'बांभन', 'सायति', 'अयाना' आदि शब्द ठेठ पूर्वी बोली के हैं जिससे अनुमान होता है कि उक्त रचना आलम ने पंजाब से लौटकर मुअज्ज़म के आश्रय में पुनः जाकर लिखी होगी। शायद यही कारण है कि आलम कृत 'सुदामा-चरित्र'

की कोई प्रति गुरुमुखी लिपि में पंजाब में उपलब्ध नहीं हो सकी। इसकी एक ही खण्डित प्रति 'काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी' में देखने को मिली है; जिसमें केवल ६० छन्द हैं। 'स्याम-सनेही' की रचना पंजाब में हुई होगी, क्योंकि गुरुमुखी में उसकी एक़ाधिक प्रतियाँ पंजाब के विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त हैं।

'स्याम-स्नेही' कवि आलम की कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी दूसरी रचना है। इस कृति का प्रणयन आलम ने पंजाब में रहते हुए किया, ऐसे प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी एकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ गुरुमुखी लिपि में लिखी पंजाब के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। प्रतिलिपियों में गुरु गोविन्दसिंह का नाम-संकेत एवं परम्परित '१ ओं गुरु प्रसादि' लिखने की पद्धति देखी जा सकती है। इसका रचनाकाल संवत् १७४४ तथा १७५५ के बीच ठहराया जा सकता है। अध्ययन के लिए जो प्रति हमने प्रयोग की है, वह सेंट्रल स्टेट लायब्रेरी, पटियाला की पाण्डुलिपि सं० ५२८ है। इसमें कुल १७१ पन्ने हैं, आकार ५"×३" का है किन्तु लिखित भाग केवल ४"×२" है। लिखाई अति सुन्दर है। लिपि गुरुमुखी है। आरम्भ इस प्रकार किया गया है :—"१ ओं सतिगुर प्रसादि। स्वस्ति। स्री गणेशाय नमह। अथ स्याम स्नेही लिख्यते आलम क्रित।" छप्पय छन्द—

मुख मंडल पर लसै जौन मंडित मयंक जनु।
जटित जोति अरधंग गवर मंज्जत दप्पन तनु।
धवल धूरि धर अंग उच्च सोभत संकर बर।
फणि भूखन पत चारु चार बुझियति चंदन पर॥

जिहि मिलत गंग आलम सुमति,
किअ जल थल उज्जल बरन॥
नव करत जोति नव अंग कहिं,
सुभ विभूत नव उद्धरन॥९॥

'स्याम-स्नेही' में रुक्मिणी-कृष्ण के पूर्व-राग, विरह एवं मिलन का चित्रण किया गया है। कुन्दनपुर के राजा के चार पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री रुक्मिणी सौन्दर्य की प्रतिमा थी। उसकी सखियों ने उसे कृष्ण से विवाह की प्रेरणा दी। वह गौरी-पूजन करने लगी। स्वप्न में गौरी ने उसे संकेत दिया कि श्रीकृष्ण और वह पहले से ही पति-पत्नी हैं—कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और रुक्मिणी लक्ष्मी की। इस पर वह तन-मन से कृष्ण की होकर जीना चाहने लगी। यहीं पूर्वराग-जन्य विरह के सुन्दर चित्र मिलते हैं। रुक्मिणी के माता-पिता को उसके कृष्ण-प्रेम से कोई विरोध न था। किन्तु उसका भाई रुक्म रुक्मिणी का विवाह चन्देरी के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्म के सन्देश पर शिशुपाल अपने सहायकों-वक्रदन्त एवं जरासन्ध को लेकर रुक्मिणी को ब्याहने चला। इधर रुक्मिणी की सखियों को यह पता चला तो उन्होंने मन्दिर के पुजारी को श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी का सन्देश-वाहक बनाकर भेजा। श्रीकृष्ण को जब स्थिति का ज्ञान हुआ तो वे बलराम आदि को यादव-सेना सहित पीछे आने को कहकर शिशुपाल के पहुँचने से पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। रुक्मिणी को अपने रथ पर लेकर वे द्वारका की ओर बढ़े। शिशुपाल ने पीछा किया। यादव-सेना से टकराव में शिशुपाल भाग गया। रुक्म की सेना पराजित हुई। श्रीकृष्ण द्वारका सुरक्षित पहुँच गये। द्वारकावासियों ने हर्षोल्लास से पर्व मनाया और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह सम्पन्न हुआ।

इस रचना में आलम ने रुक्मिणी-सौन्दर्य-चित्रण, रुक्मिणी-विरह-चित्रण, श्रीकृष्ण का नख-शिख-चित्रण, साँवला-सलोना रूप-चित्रण, विवाह और मिलन आदि के विवरण बड़ी आकर्षक शैली में प्रस्तुत किये हैं। सखियों द्वारा शिशुपाल के निमन्त्रण की बात पर रुक्मिणी का आत्महत्या को उद्यत होना एवं श्रीकृष्ण के पास दूत भिजवाने का चित्रण चौपाई छन्द में द्रष्टव्य है—

सखी धाइ कै सुनि सभ आई ।
रुकमिनि कुँवरि मरै बरियाई ॥

धाइ धाइ अंकम भरि लीनी ।
कानि लागी जीवन सिख दीनी ॥

जौ तुम प्रान देहु हम हाथा ।
हम सभ मरहिं तिहारै साथा ॥

तिह पाछै तुरि जननी मरै ।
मै मर जाउ मरन को डरै ॥

पहिले एक मंत्र सुन लेहु ।
जउ न होइ तउ प्राननि देहु ॥

जब लगु निकटि न आवै मीचहि ।
सोलह पहर अजौ है बीचहि ॥

आठ पहर जो धावन धावै ।
लै द्वारका बात पहुँचावै ॥

दसयों पहर चाह जौ पावहि ।
वै प्रभु एक निमख महि आवहि ॥

अपनै हाथ लिखौ दुख पाती ।
ब्रामन हाथ पठावहु राती ॥

गउरि मंदिर द्विजदीन पुजारी ।
मै लै आवउं जाइ हंकारी ॥

गउरि बचन हिरदे ठहरावहु ।
लिखि कागरु द्विज हाथ
पठावहु ॥ ७० ॥

कवि ने श्रीकृष्ण का पूर्वरागजन्य प्रेम, पत्र-वाचन के समय की संवेदशील दशा और श्रीकृष्ण की उतावली का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। अपहरण के समय मन्दिर में जब रुक्मिणी का शृंगार किया गया, तो रुक्मिणी में दिव्य सौन्दर्य की झलक देखने को मिलती है—

निकसत कुँवरि रूप की रेखा ।
सहस कला जनु सूरजु देखा ॥
जगमग दरसु दीठि नहि आवै ।
रूप की जोति लपट जनु धावै ॥
रवि ससि नखत सहित दुऊ जाने ।
चकचउंधे सब लोक भुलाने ॥
ससिमुख के सनमुख गिरि परहीं ।
देवी जानि दंडवत करहीं ॥ १५१ ॥

श्रीकृष्ण जब रुक्मिणी को शिशुपाल से सुरक्षित करके द्वारका पहुँचते और रुक्मिणी से विवाह रचाते हैं, तो उसके बाद की स्थितियों के वर्णन, मिलन की उत्कण्ठा और प्यार की पराकाष्ठा के चित्र हैं। संयोग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

खेल जाम जुग रैनि बिहाई ।
बैठे बहुरि सेज परि जाई ॥

लाज भरे लोइन मतवारे ।
सकुचि कूँवरि नहि जोरहि तारे ॥

प्रथमि समागम के डर डरई ।
काँपत मन धर धर हिय करई ॥

छिनु छिनु क्रिस्न कछ अनुसरई ।
छइतन मदन मोद संकरई ॥ १८१ ॥

'स्याम-स्नेही' की कथा का आधार श्रीमद्भागवत है। स्वयं कवि ने इस तथ्य की स्वीकृति देते हुए भाषा में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी की इस कथा को लिखने का उद्देश्य बताया है। आलम का विश्वास है कि संस्कृत की यह भागवत-कथा अधिक लोगों की समझ में नहीं बैठती थी, इसलिए उसने इस सुन्दर कथा को भाषा में प्रस्तुत करके यश प्राप्त किया है—

पहिले सुनी भागवत रीति ।
दसम माहि रुकमिनी की प्रीति ॥

सुनत समीर सांति मन आई ।
चित्त ताल जड़ उतरी काई ॥

जल हित उपजत रंग डुलाए ।
कवि कलोल तट लै परसाए ॥

बानी ब्यास समझ नहि आवै ।
टीकाकार कछू समझावै ॥

ऐसी आंकिन की कठिनाई ।
तिह भाखा किउ जाइ बनाई ।।
जउ कवि समझिउ बुधि अनुसरै ।
एक आंक की पोथी करै ।।

'स्याम-स्नेही' में दोहा-चौपाई छन्दों का प्रमुख रूप से प्रयोग हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों एवं शब्दानुशासन की छटा इस रचना का विशेष आकर्षण है। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी साहित्य में 'स्याम-स्नेही' का विशिष्ट स्थान है। इसकी भाषा ब्रजी है, किन्तु अरबी-फारसी शब्दावली से मुक्त नहीं रह सकी है। कवि ब्राह्मण होते हुए भी मुस्लिम संपर्क एवं 'आलम' उपनाम के कारण फारसी प्रभाव में लिप्त है।

म० मो० स०

ईसरदास उदासी

साधु ईसरदास उदासी पंजाब के तलवण्डी ग्राम के निवासी और सरदार बुधसिंह के पुत्र थे। इनके जीवन के विषय में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। जनश्रुति से पता चलता है कि इनकी साधना-भूमि लुधियाना नगर से चार मील की दूरी पर स्थित 'लुहारे' नामक गाँव था।

आपकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—'काफ़ियाँ, किस्सा रेल गड्डी, कहि-कुमरनीआं, फुटकर गजलें, किस्सा इशक-माशूक, बारामाहाँ अथवा क्रिशन-लीला।' इनमें क्रिशन-लीला तथा कहि-कुमरनीआँ की भाषा हिन्दी-पंजाबी मिश्रित है। कृष्ण-चरित से सम्बद्ध इनकी प्रसिद्ध रचना क्रिशन-लीला अथवा बारामाहाँ है। कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में नीचे दी जाती हैं—

'मघ्घर बाझ तुहाडे मिलिआं जीवन साडा भारी ।
घर-घर कंत सुहागण रावे, मैं किऊं तुसां विसारी ।
नंदलाल बिन तेरे मैंनूं, होई पुंज खुआरी ।
मघ्घर मौहरा खाइ मरूं, जिंद तुसां बाझ दुखयारी ।
- - -
इसरदास तेरे अग्गे अरज़ करां दिलकारी ।।'

श० सिं०

उत्तमसिंह तेज़

उत्तमसिंह तेज का जन्म जुलाई सन् १९१० ई० में उत्तमगढ़, अमृतसर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम बल्लासिंह था। ये अमृतसर नगर के गुरु बाजार के चौरसती अटारी नामक चौक में रहते थे। यहाँ ये हलवाई की दूकान करते थे। इसके पूर्व ये उसी नगर में जुलकियाँ की गली बाजार तवाड़िआँ में रहते थे। लोकमानस की सही पहचान करने-वाला यह कवि पंजाबी के लोकप्रिय और प्रसिद्ध रचनाकारों में से था। इनके लिए काव्य-रचना व्यवसाय न होकर शौक और स्वाभाविक प्रकृति से प्रेरित थी। इसीलिए इनकी कविता जनसामान्य की रुचियों का प्रतिबिम्ब बनकर उन्हें अभिव्यक्ति देती है।

उत्तमसिंह तेज अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, क्योंकि उस समय आज की तरह स्कूली शिक्षा का प्रचलन नहीं था। अतः आपके पिता ने तेज साहिब को लंडे पढ़ाये, ताकि वह उनकी दूकानदारी में सहायता कर सके। १२ वर्ष की अल्पायु में ही पिता का देहान्त हो गया। लोकजीवन की अनुभवी होने से इनकी माता ने पिता के अभाव का इन्हें अनुभव नहीं होने दिया। वे इनको सदा परिश्रमी जीवन-यापन की ओर प्रेरित करती रहीं। घरेलू आर्थिक संकट को देखकर उन्होंने तेज को किताबों की एक दूकान पर बैठा दिया। इसी व्यवसाय में उत्तमसिंह तेज का जीवन रच-मिच गया और आपने बाजार माई सेवां में एक पुस्तक-विक्रेता की दूकान करनी शुरू कर दी, जिसे इनके लड़के आज भी चला रहे हैं।

उत्तमसिंह तेज को बचपन से ही कविता रचने का शौक था। आप जब कभी अपने पड़ोस में ढोलक की आवाज सुन लेते, तो वहाँ पहुँच जाते और सारी रात गीत-गायन में सम्मिलित रहते। गीतों के प्रति

इतनी गहरी निष्ठा और लगन के फलस्वरूप ही तेज़ ने बहुत से गीत रचे, जो बाद में आपने 'रंग-रंगीले गीत' नामक संग्रह के रूप में प्रकाशित कराये। इनकी यह पुस्तक गुरुमुखी और देवनागरी में ६० संस्करणों में प्रकाशित हो चुकी है। गीतों के प्रति इस निष्ठा ने तेज़ को कविता के प्रति प्रेरित किया और आपने अमृतसर के ही प्रसिद्ध कवि विधातासिंह 'तीर' को अपना काव्य-गुरु बनाया, जिनसे इनको पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। फलतः काव्य-सर्जना में ये और भी अधिक लगन के साथ प्रवृत्त हो गये।

तेज़ साहिब ने पंजाबी-साहित्य-जगत् को १० अमूल्य काव्य-रचनाओं से सुशोभित किया है। ये मूल रूप से गीतकार थे। अतः इनके द्वारा रचित गीत-संग्रहों में 'धुखदे धूंएं, दब्बे भांबड़, कूलीआं छमकां, तेज़ धारा, नूरी जोतां' और लोकगीत-परम्परा के अन्तर्गत—'रंग-रंगीले गीत, नचदा पंजाब, झूमदा पंजाब, तेज़ तराने, तेज़ तरंगां' आदि प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। देश-भक्ति, धार्मिकता, समाज-सुधार एवं सदाचार तेज़ की कविताओं और गीतों का मुख्य स्वर है। 'जथ्थेदार साडा, मज़दूर, किसानदा जीवन, धुखदे धूंएं, गरीबदा जीवन' आदि आपकी प्रसिद्ध काव्य-रचनाएँ हैं। कहना न होगा कि पंजाब के इस लोककवि का पंजाबी जनजीवन के साथ गहरा और निकटवर्ती सम्बन्ध था। इनकी कविता जनसाधारण को धार्मिक ऐक्य तथा पारस्परिक भाईचारे का भव्य सन्देश देती है।

एक ओर जहाँ इस कवि ने पंजाबी जनजीवन को अपनी काव्य-सर्जना का केन्द्र बनाया, वहीं दूसरी ओर कृष्ण-कथा तथा श्रीकृष्ण-जीवन से सम्बद्ध अनेक कविताएँ और गीतों की सर्जना करके राधा-कृष्ण के प्रति भी अपनी श्रद्धा अर्पित की है। इस दिशा में 'करिशन उपदेश नंददा लाल, भगत सुदामा, तूं एथेआ के की लैणा, राधा' आदि इनकी लोकप्रिय कविताएँ हैं। आपके सुपुत्र के कथनानुसार 'राधा' नामक आपकी कविता अत्यन्त लोकप्रिय थी और इसे श्रोतागण बार-बार सुनने के लिए लालायित रहते थे।

अपनी 'करिशन-उपदेश' कविता में इन्होंने कुरुक्षेत्र में कौरव-पाण्डवों के बीच हुए युद्ध-वर्णन को विषय बनाया है। सेनाएँ एक-दूसरे के सामने रण-स्थल में डटी हुई हैं। भयंकर युद्ध छिड़ गया है। अर्जुन त्रस्त और भीरु बनकर युद्ध से मुँह फेरे बैठा है। ऐसे समय पर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेश को लेकर इस कविता की सर्जना की है। इसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

(१)

कौरव-पाण्डव कुरशेतर दे रण अंदर,
लै आए जदों फ़ौजां नूं बंगार के ते।
चढ़ के रथ्थ ते वेखिआ चहु तरफीं,
अरजन वीर ने सोच विचार के ते॥

चाचे ताये नाने बाबे वीर डिठे,
खड़े मौत नूं गातरे धार के ते।
भथ्थे सणे गंडीव नूं रथ्थ दित्ता,
उहने मोड़िओ हेठ उतार के ते॥

हथ्थ जोड़ भगवान नूं कहिण लग्गा,
हे महाराज! मैं कर नहीं जंग सकदा।
जिहड़े खून चों बणिआ सरीर मेरा,
ओस खून नाल हथ्थ नहीं रंग सकदा॥

• • •

तूं हैं सूरमा छत्री धनुषधारी,
जिधर जाएँगा हलचली पा देंगा।
परबत तेरे गंडीव तो डोल जासन,
सागर पलां दे विच झुका देंगा॥

खौफ खावणगे कई महां रथ्थी जोधे,
हाथी खाक दे विच मिला देंगा।
डोरां खिचीआं जदों गंडीव दीआं,
दोवें जमीं असमांन कंबा देंगा॥

जित्त नच्चेगी तेरे इशारिआं तें,
खुशी हस्सेगी तेरी कमान उत्ते ।
'तेज़' चमकेगा सूरिआं पांडवां दा,
झण्डा झुल्लेगा सारे जहान उत्ते ।।

'कौरव और पाण्डव कुरुक्षेत्र के रणस्थल में अपनी-अपनी सेनाओं को सजाकर तथा दलबद्ध करके आये हैं। रथ पर चढ़कर योद्धा अर्जुन युद्धभूमि के चारों ओर देखकर सोच-विचार करने लगा कि उसके सामने उसके सगे-सम्बन्धी एवं पारिवारिक सदस्य ही मौत का आलिंगन करने हेतु खड़े हैं। जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को रथ तथा तरकस सहित धनुष-बाण दिये तो उसने सब कुछ लौटा दिया और पुनः हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थी हुआ कि मैं युद्ध नहीं कर सकता। अर्जुन ने आगे युक्तिसहित प्रार्थना की कि मैं अपने ही पारिवारिक सदस्यों पर शस्त्र नहीं उठा सकता।

अर्जुन की कायरतापूर्ण उक्तियाँ सुनकर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि तुम क्षत्रिय-वंश में पैदा हुए हो और फिर सिद्धहस्त धनुषधारी हो, तुम्हारे तीर जिधर जायेंगे हलचल मच जायगी। तेरे धनुष-बाण की मार के सामने तो पर्वत भी डोल उठेंगे और युद्ध-अग्नि की उष्णता से सागर का जल भी पलों में शुष्क हो जायगा। अर्जुन को उत्साहित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि युद्ध-भूमि में बड़े-बड़े विपक्षी योद्धा तेरी शूरवीरता के सामने आतंकित हो उठेंगे और महाकाय हाथी भी तहस-नहस हो जायेंगे। जब तुम गाण्डीव (धनुष) की डोरी खींचोगे तो धरती और आकाश मानो तुम्हारे सामने नतमस्तक हो जायेंगे। तुम्हारी निश्चय ही विजय होगी और तुम्हें इस विजय का अत्यन्त उल्लास प्राप्त होगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण पाण्डव-बन्धुओं को साहस बँधाते हुए कहते हैं कि तुम्हारी विजय-पताका सारे ही जगत् पर फहरायेगी।'

अपनी 'नन्ददा लाल' कविता में उत्तमसिंह 'तेज़' ने श्रीकृष्ण की बाललीला का भव्य चित्र पेश किया है—

(२)

जमनां किनारे उत्ते रास रचांवदां ।
बंसरी बजा के पिआ जग नू नचांवदा ।।
शाम दिआं कुंडलां चि वसदी सवेर ए।
सावलां सलोना पिआ भेटदा हनेर ए ।।
एस दा संगीत तारां दिल दीआं हलांवदा,
जमना किनारे·······

वीनीआं मरोड़ के इिह दूर जावे नसदा ।
तोड़ तोड़ मटकीआं नूं ख़्हे सदा हसदा ।।
नैणां वाले 'तेज़' नाल जादू जिहा पांवदा ।
जमना किनारे उत्ते रास रचांवदा ।।
जमना किनारे ·······

श्रीकृष्ण के ग्वालिनों के साथ रास-प्रसंग का उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि 'यमुना नदी के तट पर ग्वालिनों के साथ श्रीकृष्ण ने रास रचायी हुई है। अपने वंशी-वादन के साथ वह सबको मस्त कर रहा है और नचा रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण के काले-काले केश-कुण्डलों में उसका मुख इस तरह चमक रहा है जैसे चन्द्रमा ही निकला हुआ हो। इस शोभा एवं छवि के कारण रात्रि की कालिमा नष्ट हो जाती है और मानो सबेरा हो जाता है। चारों ओर का वातावरण संगीतमय बन जाता है और प्राणि-मात्र उससे आनन्दित हो उठते हैं। श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वह ग्वालिनों के साथ छेड़छाड़ करता हुआ उनकी मटकियों को तोड़ देता है और नटखट की तरह हँसता रहता है। इस प्रकार ग्वालिनों के साथ अठखेलियाँ करता हुआ श्रीकृष्ण मानो चारों ओर जादू-सा करता जाता है और यमुना नदी के तट पर ग्वाल-बालिकाओं के साथ रास रचाने में मस्त है।'

इन्होंने सुदामा-श्रीकृष्ण की परम्परागत कथा को लेकर 'भगत-सुदामा' नामक कविता की रचना की है। भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर द्वारका से जब सुदामा अपने घर लौटते हैं, तो उनकी पत्नी

उसका स्वागत करती हैं और प्रसन्नतासहित भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का गान करती हैं—

(३)

जां उह पहुँचा घर नूं तक तक दिल विच
खुशीआं मनावे ।
अग्गों लैण लई घरवाली नठ्ठी नठ्ठी आवे ।।

कहिंदी क्रिशनचन्द्र ने पाए इिह सब महिल असाडे ।
खुशीआं होईआं चार चुफेरे दरशन होए तुहाड़े ।।

पाल विखाइआ ओस यराना उसदी है वडयाई ।
धन धन ओहदी अचरज लील्हा,
धन धन क्रिशन कन्हाई ।।

श्रीकृष्ण-सुदामा के प्रसंग का उल्लेख करते हुए कवि का कथन है कि 'जब श्रीकृष्ण से मिलकर सुदामा अपने घर लौटा तो मन ही मन अति प्रसन्न था। उसका स्वागत करने के लिए उसकी गृहिणी दौड़ी-दौड़ी आयी। वह सुदामा को बताने लगी कि यह सब भव्य महल श्रीकृष्ण ने बनाये हैं। वह अपने पति को पुनः घर में देखकर खुशी का अनुभव करने लगी। श्रीकृष्ण ने तुम्हारे साथ बचपन की मैत्री का निर्वाह किया है। इसमें उनका बड़प्पन है। वह श्रीकृष्ण की अद्‌भुत लीला एवं खेल का उल्लेख करके उनके प्रति भक्तिभाव व्यक्त करती है।'

सरदार उत्तमसिंह 'तेज' ने इस तरह पंजाबी भाषा तथा लोकजीवन की गहन प्रवृत्तियों और रुचियों को अपनी कविता तथा गीतों में चित्रित करने के साथ ही भारतीय जन-जीवन में लोकरंजक तथा अप्रतिम धर्मोपदेश के रूप में प्रतिष्ठित आराध्य श्रीकृष्ण-कथा को लेकर भी उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना की है। इसमें आलोच्य कवि की धर्म-निरपेक्षता तथा भाषागत एवं धार्मिक एकता की भावना उभरकर सामने आती है।

श० सिं०

उमादास (भवानीदास)

उमादास पटियाला-दरबार के मुख्य कवि थे। महाराज महेन्द्रसिंह के दरबार में कवि उमादास उपनाम भवानीदास की उपस्थिति असन्दिग्ध रूप से स्वीकार की जाती है। इनके माता-पिता और जन्म-मरण की तिथियों का पता नहीं चलता। पटियाला-दरबार में महाराज नरेन्द्रसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह के अपूर्ण महाभारत-भाषानुवाद को इनके द्वारा पूरा कराया था। इनकी रचित अन्य रचनाओं में—'नीति-रत्नाकर, कुरुक्षेत्र-माहात्म्य, नाम-माला, पंचरत्न, बारहमाहा, काव्य-कौतूहल' आदि प्रसिद्ध हैं। उमादास की कृष्ण-सम्बन्धी प्रसिद्ध कृति 'सुदामा-चरित्र' महाराज महेन्द्रसिंह के राज्य-काल में रची गयी थी। अन्तःसाक्ष्य से स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना राजाज्ञा से सं० १९२५ में पूरी की गयी थी।

कथा चित्र अनुसार उमादास बरनन करत ।
देख सासतर सार आइस लै महाराज की ।। २।।

कवि उमादास की 'सुदामा-चरित्र' नामक रचना पटियाला-नरेश के निजी पुस्तकालय 'मोतीबाग लाइब्रेरी' में (पाण्डुलिपि-संख्या ९१) सुरक्षित है। रचना की भाषा सरल ब्रज और लिपि गुरुमुखी है। इस कवि ने आरम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् हरि-स्मरण तथा प्रभु-स्तुति में एक-एक छन्द कहकर फिर सुदामा का वृत्तान्त दिया है। कवि ने सुदामा-श्रीकृष्ण की पौराणिक कथा को प्रबन्धात्मकता प्रदान करने के निमित्त बीच-बीच में देश, काल एवं वातावरण को लेकर वन, वनस्पति, नगर-शोभा आदि का वर्णन विशेष रुचि के साथ किया है। ये काव्यात्मकता में सिद्धहस्त थे। इसीलिए 'सुदामा-चरित्र' में पदे-पदे चमत्कार-प्रदर्शन का सहारा लेते हैं। वन में चलते-चलते सुदामा थककर निद्राग्रस्त हो जाते हैं। जब उनकी आँख खुलती है, तो सामने

द्वारका के भव्य मन्दिर देखते हैं। इस पर श्रीकृष्ण योगमाया के चमत्कार से सुदामा की सारी थकान और मानसिक सन्ताप दूर कर देते हैं—

माया दियो सवाइ दिज,
मग फिर दियो जगाइ।
उठ्यो द्वारका तब लखी,
रह्यो हरख सिर नाइ ॥ ४५ ॥

'सुदामा-चरित्र' में उमादास ने शकुन-विचार को विशेष महत्त्व दिया है। सुदामा की पत्नी सुशीला उनकी प्रतीक्षा में ध्यानमग्न है, तभी उसका वाम नेत्र फड़कता है और शकुन की प्रसन्नता के साथ ही उसके सामने घबराये-से सुदामा खड़े दिखाई देते हैं। कवि ने इसी तरह के शकुन सुदामा के द्वारका में प्रविष्ट होने के समय भी उल्लिखित किये हैं।

द्वारका-प्रवेश के समय सुदामा को अपने वाम, दक्षिण एवं सम्मुख ऐसे ही शकुन दिखाई पड़ते हैं और वे अपनी यात्रा की सफलता का अनुभव करने लगते हैं। ऐसी कल्पना करके वे मन ही मन पुलकित हो उठते हैं। कवि उमादास ने सुदामा तथा श्रीकृष्ण के चरित के प्रति विशेष रुचि एवं आकर्षण व्यक्त करके अपने भक्त-हृदय का परिचय दिया है। श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप-लावण्य का उल्लेख करते हुए ये उनके ध्यान में आठों याम लगे रहने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं—

नैन कंज से बिसाल, उर वैजयन्ती माल,
भाल पै मुकुट, कान कुण्डल सुहात है।
कौसतुभ मनि राजै जान खग राज राजै,
देख कोट काम लाजै, मेघ जिम गात है।
निजजन के उधार, धार भुजा चार,
चारु तामे संख, चक्र, गदा पद्म दरसात है।
पीत है बसन, कुन्द-कली-से दसन,
ऐसे रमा के रमन मन बसो दिन-रात ॥ ३ ॥

सुदामा के चरित्र को शाब्दिक अभिव्यक्ति देते हुए उमादास कहते हैं—

भयो है सुदामा दिज जाके पास नाहिं दामा,
जीत लीनौ कामा, नित जपै हरि नामा है।
रामा मै न चित जाको, गुन को अरामा मानो,
भामा है सुशीला, अभिरामा सुखधामा है॥
जोग नाहि जामा जाके जामा जामा पूजे हरि
'उमादास' जोग के जतनहू को ग्रामा है।
जाके धामा माहि सदा दारिद दमामा बजै
घर मे न सामा तन छामा कछु स्यामा है ॥ ५ ॥

द्वारका पहुँचने पर सुदामा का श्रीकृष्ण के द्वारा अपूर्व स्वागत किया जाता है। उमादास भक्त की यह रचना निःसंदेह पंजाब में कृष्ण-काव्य की स्वस्थ परम्परा को बनाये रखने में यथेष्ट सहायक हुई है।

मूलतः देवी-भक्त होते हुए भी इन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर राधा-कृष्ण में प्रगाढ़ आस्था व्यक्त की है। एतद्विषयक कुछ दोहे नीचे दिये जाते हैं—

मंगल भगवत विष्णु, वैनतेय ध्वज मंगल।
कमलनैन जो कृष्ण, मंगल मंगल रूप हरि ॥
सब जग की बाधा हरहु, जो राधा सुख रास।
जिह रसबस राखै क्रिशन, बरणत बारह मास ॥
दीरघ बनै न मान, एक रूप हरिराधिका।
बारह मास बखान, सुपन विषै दूतो कियो ॥

श० सि०
रा० प्र०

कमालदास

इनके जीवन से सम्बद्ध तथ्य अज्ञात हैं। इनकी एकमात्र प्राप्त रचना 'उद्धव-गोपी-संवाद' है। उससे

कृष्ण-लीला के प्रति इनकी गहरी आसक्ति का पता चलता है। उक्त ग्रन्थ का एक अंश नीचे दिया जाता है—

असीं भूलीआं न गईआं
प्रभ जी के संग ॥१॥ रहाउ ॥
चलो सखी मथरा जाइ बसीए,
तजीए गोकल थाऊ।
कुबजां दी जाइ टहल कमाईऐ,
दासी धराईऐ नाऊ॥
आसु लगे इिन नेत्रां जिस
नहीं दिसदा सिआमु।
शाम सुन्दर बिन जीवण
नहीं जीवण दा कामु॥२॥

दुध मखणे छाही दे दे पालिआ,
एह तां मात यशोधा दा बाल।
कंस गुमानी दा भाणजा इिह तां
प्रीत की जाणै पास॥
नंद महर दा लाडला सिरी
करिसन का नाऊ।
भगत उदारण आइिआ
तारिआ सु गोकुल नाऊ॥
अथो एह संदेसड़ा जाइि
कहीऐ करिशन सुनाइि।
गोपीआं सभ जोगन होइिआं
अंग बिभूत लगाइि॥
मोहन तुमरे दरस बिन सूके सगल सरीर।
पापी नैन न सूकते भर-भर लिआवे नीरु॥
सुक सुक होईआं पिंजरा हाल ते होईआं बिहाल।
गोपीआ सभ स्री क्रिशन बिन जगु कहो दास कमाल॥

श्रीकृष्ण ग्वालिनों को छोड़कर मथुरा चले गये हैं। वे कहती हैं कि 'हमने बड़ी भूल की है कि हम श्रीकृष्ण के साथ नहीं गयीं। इसलिए अब वे मन्त्रणा करती हैं कि गोकुल गाँव को छोड़कर चलो अब मथुरा नगरी में निवास करें। वहाँ जाकर कुब्जा मालिन की सेवा करके सेविका कहलाने की पदवी प्राप्त करें। हमें गोकुल में श्रीकृष्ण दिखाई नहीं देता और उनके वियोग में हम रोती रहती हैं। वे अनुभव करती हैं कि उसके बिना हमारा जीवन किसी भी तरह से सार्थक नहीं है। माता यशोदा के पुत्र को हमने दूध, मक्खन और दही खिलाकर पाला है। वह कंस अभिमानी का भानजा है। उसे प्रेम के द्वारा पाया जा सकता है। वह नंद बाबा का प्यारा है जिसका नाम श्रीकृष्ण है। भक्तजनों का उद्धार करने के लिए उसने अवतार धारण किया है।' गोकुल-निवासी श्रीकृष्ण के सखा उद्धव को सन्देश देते हुए कहते हैं कि 'गोपियों ने तो योग धारण कर लिया है और श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना हम काँटे की तरह सूख गये हैं। परन्तु हमारे नेत्रों से विरह के आँसू बहते रहते हैं अर्थात् उनके नेत्र कभी नहीं सूखते। ग्वाल-बालिकाएँ विरह के कारण सूखकर पिंजर बन गयी हैं और पहचानी भी नहीं जातीं। कवि का कहना है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के बिना बेचैन हैं।'

श० सिं०

कान्हसिंह बंगा

कान्हसिंह 'बंगा' के नाम से प्रसिद्ध होते हुए भी वस्तुतः उस गाँव के मूल निवासी न होकर चेडपुर, जिला मांटगोमरी (पाकिस्तान) के रहनेवाले थे और देश-विभाजन के बाद पंजाब-प्रदेश के जालंधर जिले में स्थित ग्राम बंगा में आ बसे थे। इनके पिता का नाम भाई कृपासिंह ग्रन्थी था। इन्होंने अमृतसर में रहकर भाई ठाकुर दिआलसिंह से शिक्षा ग्रहण की थी। भारत आने के पूर्व चेडपुर (पाकिस्तान) में रहते हुए ही इन्होंने नानकचन्द नाम के किसी सन्त से दीक्षा प्राप्त कर ली थी। इसका स्पष्ट निर्देश लाहौर के एक लीथो प्रेस में छपी हुई इनकी कृति की पुष्पिका के इन शब्दों में मिलता है—

लवपुर नगर दुआरे लिखकर,
केसर सिंघ छपाई है।

साहलमो दरवाजे सुन्दर,
नन्द-गुपाल बनाई है ॥
नानकचन्द मनोहर लाला,
सभ के गुरू सहाई है।
चैडपुरी के वासी कविता,
'कान्ह केहर' प्रगटाई है ॥

इनकी कृतियों में 'जंगनामा, हरीसिंह नलवा, हीर-सोहणी, सस्सी, मिरजा-साहिबाँ, लैला-मजनूँ, शीरीं-फरहाद' आदि किस्सा-काव्य तथा 'गुरबिलास, बारामाहाँ और दूतीआं कान्ह गूजरी कीआं' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें अन्तिम दो कृष्णचरित-विषयक हैं। इनकी रचनाओं में उर्दू, पंजाबी तथा ब्रज का मिश्रित रूप व्यवहृत हुआ है। इनकी पंजाबी-काव्य की झगड़े की शैली में विरचित 'दूतीआं कान्ह गूजरी कीआं' का रचनाकाल सं० १९४८ वि० (१८९१ ई०) है। अतः इसीके आसपास इनका उपस्थिति-काल निश्चित किया जा सकता है।

'बारामाहाँ' हिन्दी की बारहमासा-पद्धति पर रचित विरह-काव्य है। इसमें वियुक्ता राधा के विरह तथा ऊधव को देखकर गोपियों के श्रीकृष्ण का सन्देश सुनने के लिए लालायित एवं उत्सुक होने का चित्रण सरल भाषा में हुआ है—

दोहरा–
सावन राधा तड़फदी, पलक न पावै चैन।
लगी प्रीत चित शाम सो, बरसत जल नित नैन ॥६॥

छन्द–
सावन चिन्ता करती राधका, तन मन सुरत न मासा।
क्रिशनचन्द कुबजा संग रत्ते, करते भोग बिलासा ॥
तेल फुलेल कूबरी अरपति, चन्दन धरो सुबासा।
कान्हसिंघ राधा चित तड़फति, क्रिशन मिलन की
आसा ॥ ७ ॥

• • •

दोहरा–
मघर मै ऊधो चले, गोकल पुर ततकाल।
लांघ चलै जमना जबै, आइ मिली ब्रिज बाल ॥

छन्द–
ऊधव देख गवारन दौरी, मन मै भयो अनन्द।
एक कहै हम आन मिला है, आज नन्द को नन्द ॥
जब पहचान करी तब ऊधो, बैठ गई पग बन्द।
'कान्हसिंघ' सखीआं चौफेरे, जयों पर वारयो
चन्द ॥ ७ ॥ ९ ॥

इस 'बारामाहाँ' का अन्त 'स्री क्रिशन नमः बारां-माह स्री क्रिशन राधाजी को संपूरनं ॥ सुभनमसतु ॥' शब्दों से हुआ है।

'बारामाहाँ' दोहा-चौपाई शैली में रचा गया है। कान्हसिंह बंगा ने अपने-आपको 'महेंदरू' जाति का बताया है। इस 'बारामाहाँ' का रचनाकाल कवि ने ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार दिया है—

दोहरा
संमत ससि^{१} वसु^{८} नाथ^{९} नव^{९} फागन बुध तिथ नौम।
कान्हसिंह महेंदरू लखयो सुभदाइक दिन भौम ॥२॥

अतः इस रचना का समय सं० १८९९ ठहरता है।

कवि श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त प्रतीत होता है। वह ग्रन्थ के अन्त में सन्देश देता है कि जो प्राणी इस 'बारामाहां' को प्रेमपूर्वक पढ़ेगा, उसे श्रीकृष्ण का नैकट्य प्राप्त होगा और वह इस लौकिक जगत् में हर तरह से आनन्दपूर्ण रहेगा तथा जीवन-मुक्त हो जायगा।

पढ़े सुने जो प्रेम सौ क्रिशन अन्त होइ चित्त।
सुखी रहै इस जगत मैं अन्त मुकत सुन मित्त ॥ ३ ॥

'बारांमाहा' को पूरा करने के बाद कवि सुधी पाठकों से भूल के लिए क्षमा-याचना करता है–

दोहरा-

बारांमाह स्री क्रिशन को करयो बुध अनुसार ।
भूल चूक सभ बखसीओ बुधजन दीन दिआर ॥ १ ॥

'बारांमाहा' का वर्ण्य-विषय श्रीकृष्ण की पुराण-प्रसिद्ध कथा के अनुरूप ही है। श्रीकृष्ण गोकुलवासियों को छोड़कर यमुना नदी के पार मथुरा चले जाते हैं। कवि ने कुब्जा मालिनी के प्रसंग को अति सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण को मथुरा में देखकर कुब्जा मन ही मन प्रसन्न होती है। उसके सारे शारीरिक रोग-शोक दूर हो जाते हैं और वह पुष्प भेंट करके मन की इच्छा पूरी करती है—

दोहरा-

जेठ क्रिशनजी तज गये, राधा जमना पार ।
कुबजा के मंदर बसै, करे कलोल अपार ॥ ५ ॥

छन्द-

जब कुबजा देखे शाम सुन्दर जी मन मै भई कुसाली ।
रोग सोग तन ते सभ भागै जब देखे बनमाली ॥
भाँत-भाँत के पुषप लिआई भर मेवे की थाली ।
कान्ह सिंघ प्रभु कुबा हटाया यो सभ से का वाली ॥ ६ ॥

'दूतीआं कान्ह गूजरी कीआं' श्रीकृष्ण तथा ग्वालिनों के पारस्परिक उपालम्भों तथा हास-व्यंग्यात्मक छेड़-छाड़ से भरपूर है। इसमें गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अन्तर्निहित प्रेमभाव व्यक्त हुआ हैं। उक्त रचना से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

किऊं तुम हम संग करैं मजाखां, नंद महर दा पालक वे ।

चोरी करि दुध माखन खावऊं, होर संगि लै बालक वे।
तेरे घरि कोई माऊं भैण है, बण तूं तिस दा मालक वे ॥ २ ॥

सुण गुजरी तूं गवारनि नारन, कारन करें अवल्ले नी।
चोर यार न आखीं आड़ि के, लख्ख दाम है पल्ले नी ॥
तूं दुध बेचन हारि गुआरि, मुझको आकर छल्लें नी ।
देखें साडे महल माड़ीआं, साथि हमारे चल्ले नी ॥३॥

—'झगड़े दूतीआं' से

× × ×

काला रंग न निंद गुजरीए, तेरी सूरत जेहड़ी नी ।
देणी तैं ना सानूं अड़ीऐ, सूरत अउर चंगेरी नी ।
कंबी कहें खूंडी ते भूरी, कुब्बी तां रोटी बेही नी ।
कान्ह सिंघ तों पुछ पियारी, साडे भाणे कोही नी ॥ १७ ॥

तेरे भाणे होवां कैसी, तूं न मेरा साइं वे ।
आदि बंस ना तेरी जाणां, किथ्थों दी बतशाही वे ।
लोक समझदे ठाकुर तैनूं, साडा है दुख हाई वे ।
देहि गागर हुण जावां घर मैं, वाह तूं पूरी पानी वे ॥ १८ ॥

ग्वाल-बालिकाएँ श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमाभक्ति प्रदर्शित करती हुई कहती हैं—'तुम हमारे साथ मजाक हँसी क्यों करते हो? तुम तो स्वयं दूसरे ग्वाल-बालकों को साथ लेकर दूध-माखन की चोरी करते हो। यदि तुम्हारे घर कोई माता अथवा बहन है तो उनके साथ ऐसा मजाक करो। ग्वालिनों को उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि तू तो मात्र ग्वालिन है और कर्म बड़े अद्भुत करती है, जो तुम्हें शोभा नहीं देते। मुझे चोर आदि कहने की जरूरत नहीं, मेरे पास तो लाखों का धन है। तुम तो मात्र दूध बेचनेवाली ग्वालिन हो और मुझे इधर आ-आकर छल रही हो। मैं तो भव्य महलों का स्वामी हूँ।

श्रीकृष्ण ग्वालिन को उत्तर देते हुए आगे कहते हैं कि मेरे काले रंग की निन्दा कर रही हो, तेरी सूरत कौन-सी सुन्दर है? श्रीकृष्ण का कथन है कि मुझसे अधिक सुन्दर छबिवाला और कोई कहीं देखा भी है? तू तो रातभर पड़ी रही सूखी हुई रोटी के समान टेढ़ी-मेढ़ी है। कान्हसिंह कवि का कथन है कि हमारे लिए तो उस श्रीकृष्ण के समान और

कोई नहीं है। वह ग्वालिन श्रीकृष्ण को उत्तर देती हुई कहती है कि मैं चाहे कैसी भी हूँ, तू मेरा स्वामी नहीं है। मैं तो तुम्हारे वंशादि के विषय में कोई ज्ञान नहीं रखती और तू स्वयं को बादशाह बताता है। मुझे इस तथ्य का भी पता नहीं है। सभी लोग तुम्हें अपना स्वामी एवं रक्षक समझते हैं, परन्तु हमें तो तुम दुःख देनेवाले ही हो। वह श्रीकृष्ण से अपनी छीनी हुई गागर माँगती है और श्रीकृष्ण को छोड़कर घर लौट जाने का सप्रेम आग्रह भी करती है।'

श० सिं०

कालीदास गुजरांवालिया

कालीदास गुजरानवाला के निवासी थे। इनका जन्म सन् १८८२ ई० में हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता पण्डित जैदिआल महाराजा शेरसिंह के दरबार से सम्बद्ध थे। आपके बड़े भाई पण्डित गौरीशंकर छन्द-शास्त्र के ज्ञाता और हिन्दी के उच्चकोटि के कवि थे। इसलिए साहित्यिक मर्मज्ञता आपकी पैतृक एवं पारिवारिक सम्पत्ति थी। आपकी आरम्भिक शिक्षा मस्जिद के मौलवी के पास सम्पन्न हुई। बाद में आपने उर्दू तथा फारसी का भी अच्छा अभ्यास किया। हिन्दी एवं पंजाबी भाषाओं तथा छन्द-शास्त्र का ज्ञान आपने अपने बड़े भाई से प्राप्त किया था।

अपनी यौवनावस्था में कालीदास ने बाबा हरीसिंह के साथ हजूर साहिब (नदेड़) की यात्रा की और वहाँ अमृत-पान किया। तदुपरान्त आपका नाम मानसिंह रख दिया गया, परन्तु आपका साहित्यिक नाम कालीदास ही प्रचलित रहा और इसी नाम से आप रचना भी करते रहे। सन् १९४४ ई० में मानसिक रोग के परिणामस्वरूप आपका निधन हो गया।

पण्डित कालीदास गुजरांवालिया की सभी उपलब्ध रचनाएँ पंजाबी भाषा में हैं। इनमें 'पूरन भगत, गोपीचन्द, रामाइण, क्रिशन-लीला' आदि प्रसिद्ध हैं। आपकी कृतियाँ पाण्डित्य, रहस्यवाद, दर्शन, धर्म तथा परम्परागत काव्य-तत्त्वों को आत्मसात् करती हुई गम्भीर एवं प्रौढ़ स्तर की हैं। हिन्दू-धर्मशास्त्र तथा पुराणों की आपको अच्छी जानकारी थी। भारतीय महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत—का भी इन्हें पर्याप्त ज्ञान था।

इनकी रचनाओं में कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध 'भँवरा-कली' तथा 'मोहन-पत्रिका' प्रसिद्ध हैं। दोनों ही पंजाबी भाषा में रचिंत हैं। उनकी लिपि गुरुमुखी है।

कालीदास गुजरांवालिया कृत 'भँवराकली' ऐसी रचना है, जिसमें 'भँवरे' (भ्रमर) को सन्देशवाहक बनाकर राधा के विरह-उद्गारों को शाब्दिक अभिव्यक्ति दी गयी है। भ्रमर मध्ययुगीन हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में रचित शृंगारपरक काव्यों का प्रमुख अंग रहा है। कृष्ण-भक्त कवियों ने भ्रमर-गीत के माध्यम से वियोग-शृंगार की जो रचनाएँ की हैं, वे अनुपम हैं। कालीदास ने भी भँवरे के द्वारा गोकुल में निवास करते हुए राधा तथा अन्य गोपियों की विरह-दग्धावस्था को चित्रित किया है। इसे कुछ विद्वानों ने 'क्रिशन-लीला' की भी संज्ञा दी है।

भगवान् कृष्ण जिस दिन से राधा और गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गये और वहाँ जाकर कुब्जा से नाता जोड़ लिया, उसी दिन से विरह की ये साक्षात् मूर्तियाँ उदास हैं और रात-दिन उनके वियोग में पागल होकर आँसू बहाती रहती हैं। वे नारीसुलभ ईर्ष्या से कुब्जा के प्रति मन ही मन अपना आक्रोश प्रकट करती हैं। वे गोकुल-निवासियों के तानों से तंग आ गयी हैं। उन्हें तो मानो अपने पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों की सजा मिल रही है—

(१)

लै जा शाम सुनेहड़ा भौरा कालड़िआ।
राधा फिरे दिवांगन करमा वालड़िआ॥
जिस दिन दा कर दुरिआ शाम अजोड़ा वे।
लै लै उभ्भे स्वास होड़िआ जीउ थोड़ा वे॥

नीच कंस दी दासी, कुबजां मालण वे ।
मिहणे दिंदे लोक, होई सड़ बालण वे ॥

मैं थक्की समझां ना, ना मथरा जाईं वे ।
रथ्थ इक रोज लिआऊँदा, पैर ना नाईं वे ॥

रल मिल ताहने देवन, सम्भे सईआं वे ।
डाहढ़े रब्ब घणाईआं, की बण गईआं वे ॥

खोटे कीते करम दुखां ते जालड़िआ ।
लै जा शाम सुनेहड़ा भौरा कालड़िआ ॥

श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति में आसक्त गोपियाँ याद करती हुई काले भ्रमर को सन्देश देती हुई कहती हैं–'तुम बहुत भाग्यशाली हो, परन्तु हम तो श्रीकृष्ण से मिलने के लिए बावली हुई फिरती हैं। वे कहती हैं कि जिस दिन से श्रीकृष्ण दूर बसने लगे हैं, हमें चैन नहीं पड़ता और दुःखी-सी रहती हैं। तूने निम्न जाति की कुब्जा मालिन के साथ स्नेह का नाता जोड़ लिया है और हमें समाज के उलाहने सहन करने पड़ते हैं। वे कहती हैं कि हम तो श्रीकृष्ण को मथुरा न जाने के लिए कह-कहकर थक गयी हैं। उन्हें सब सखियाँ मिलकर उलाहने देती हैं। वे प्रभु से पूछती हैं कि यह जो कुछ हो रहा है उनकी समझ से बाहर है। प्रतीत होता है कि हमने कोई बुरे कर्म-किये हुए हैं जो हमें विरह की पीड़ा सहन करनी पड़ रही है।'

कालीदास गुजरांवालिया की राधा-कृष्ण से सम्बद्ध दूसरी रचना 'मोहन-पत्रिका' है। इसमें यशोदा माता के अपने पुत्र श्रीकृष्ण के प्रति अद्वितीय स्नेह और वात्सल्य से परिपूर्ण भावों की जैसी अभिव्यक्ति हुई है, वह हिन्दी कृष्ण-काव्य में व्यक्त वात्सल्य से किसी भी तरह से कम प्रभावपूर्ण नहीं है। एक नमूना देखिये—

(२)

पुत्र मोहन किथ्थे गिआ चल के ।
खबर पुचाई सानूं अज-भलके ॥

तेरी मां उडीक रही बार खड़के ।
करूँगी पिआर लाड नाल फड़के ॥

हाड़ि जो मोहन तेरा लाड मारदा ।
छाती नाल लाके मेरा हीआ ठारदा ॥

सुंद्र मोहन मेरे पियारे लालजी ।
आन के जो देख माईवाला हाल जी ॥

हे मोहन जदों कहें चल नैर जी ।
चल दे तुरन्त कर दे न देर जी ॥

देख दे नहर नित्त दुड़ि वार जी ।
है नहीं मोहन कहां बार बार जी ॥

हे मोहन हे मोहन मैं पुकारदी ।
देखदी चुफेरे फिरां निगा मारदी ॥

माता यशोदा श्रीकृष्ण को स्मरण करती हुई कहती हैं–'हे पुत्र ! तुम किस स्थान पर चले गये हो ? मुझे शीघ्र अपनी सूचना दो। तेरी माता घर के बाहर खड़ी होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, तुम शीघ्र आ जाओ। मैं तुम्हें प्यार करूँगी। वह कहती है कि मुझे तुमसे अथाह प्यार है । मेरी छाती के साथ लग जाओ, ताकि मुझे तनिक ठण्ढक महसूस हो सके। हे सुन्दर मोहन लाल जी, एक बार आकर अपनी माता की दुःखी हालत को देखो। वे श्रीकृष्ण को पुकारती हुई कहती हैं कि जब भी नैर को चलने के लिए कहा मैंने तनिक भी विलम्ब नहीं किया। हम श्रीकृष्ण को इधर-उधर देखती फिरती हैं और उसे 'मोहन-मोहन' सम्बोधन करके बुलाती हैं।'

(३)

मिठड़ा (राग सूही)

बंसरी वाला मैं मिले मैं मिले नी शामि मैं मिले ।
नी मैं जानीआं सदकड़े घोल ॥ २ ॥ रहाउ ॥

वड्डे वेले उठ के मैं रिड़कना पाउनीआं,
मक्खन ते छाहो मैं वक्ख कढेनीआं,
घोली रती कु मुड्डणा चौल ॥ १ ॥

लिखि लिखि भेजां ऊधो चेरीआं,
लिखां आजजो ते जहीरीआं,
होरी आइ बहु सैडंड़े कोल ॥ २ ॥

एक विरहिणी श्रीकृष्ण के प्रति अपना विरह व्यक्त करती हुई कहती है—'यदि मुझे वह बंसीवाला मिल जाय, तो मैं उस पर बलिहार जाऊँगी। प्रातः-काल उठकर मैं दूध-दही बिलोती हूँ और मक्खन तथा छाछ बनाती हूँ, फिर थोड़े से चावल भी तैयार करती हूँ। मैं उद्धव के हाथ पाती लिख-लिखकर भेजती हूँ और श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हूँ कि होरी के समय आकर मुझसे मिलो।'

(४)

राग हिण्डोल

शामा ब्रिज लट कंतड़िआ,
आवी मैंडे आवी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
दुहु नैणां बिचि बैठक तैंडी,
डरदी पलक न लाई ॥ २ ॥
कउण वकील घता प्रेम तैं,
विचि जाइ कहींदी माई ॥ ३ ॥
संतां दे हंत जनमु लीतोई,
ब्रिज विचि चारीओ गाई ॥ ४ ॥
मैं वारी कुरबान कीता,
तै तों भावन साई ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमाभक्ति व्यक्त करती हुई एक ग्वालिन कहती है—'ब्रज में मुक्त रूप से विचरण करनेवाले श्रीकृष्ण, मेरे पास आओ। मैंने तुम्हें अपने दोनों नेत्रों में बसाया है, मैं इस डर के मारे पलक भी नहीं झपकाती कि कहीं श्रीकृष्ण का स्वरूप नेत्रों से ओझल न हो जाय। कौनसा ऐसा व्यक्ति है, जो मेरा श्रीकृष्ण के साथ न्याय करा दे। आपने तो सज्जन व्यक्तियों के कल्याण-हित ही संसार में अवतार धारण किया है और ब्रज प्रदेश में गौएँ चराकर आनन्द लिया है। मैं आपकी लीलाओं पर बलिहार जाती हूँ। आप मुझे अतिप्रिय हैं।'

(५)

राग परजु

लिख भेजां ऊधो ताई,
सानूं मोहनि आनि मिलाई।
नहीं सिकदी मरि वै सांई,
विछोड़ा भाई पाइआ।
हरि-हरि सो पीर मन बिरहु,
विआकुल मोहन मोहि गइआ मोरे राम ॥ १ ॥
रहाउ ॥

दुध मख्खन दे दे पालिआ,
असां तन मन तै हाणिआ।
हुण आवी कदो नंदि वासिआ,
सिकण भाइ भइआ ॥ २ ॥

तैनूं कुबजां कामन पाए,
ब्रिजि विचि सुनेहे आए।
तूं होइओ कुबजां दा सांई,
सांईआं कुबजा मरि जाई ॥
तां जाणा निआऊं भाइआ ॥ ३ ॥

लै टिकिआ गऊआ चरावै,
दुध मख्खण चोर कहावै।
पकड़ेंदी नूं शरम न आवै,
सुणि महाराज भइआ ॥ ४ ॥

सानूं लाइआ प्रेम कटारी,
तेरी बंसी मारनि हारी।
साडी सउकणु भई पनिहारी,
कुब्बजां दा शाम भइआ ॥ ५ ॥

जन मनोहरि दास पुकारे,
प्रभ गोपी कुआल उधारे।
साडे सतिगुरू काज सवारे,
गुर-मिल मेलि मिलाइआ ॥ ६ ॥

एक विरहातुर तथा प्रेमासक्त ग्वालिन उद्धव के पास सन्देश लिखकर भेजती है 'श्रीकृष्ण! मुझे शीघ्र

ही आकर दर्शन दो। श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई मैं मृतप्राय-सी हो गई हूँ। श्रीकृष्ण के विरह के कारण मैं व्याकुल तथा चिन्तित रहती हूँ। हम ग्वालिनों ने श्रीकृष्ण को दूध-मक्खन दे-देकर पाला है। मेरी इस विरहातुरता का ध्यान रखते हुए कभी दर्शन दे देना। हमें व्रज प्रदेश में यह सन्देश मिल रहे हैं कि तुम कुब्जा मालिन के साथ प्रेम का नाता जोड़े हुए हो और कुब्जा के ही बनकर रह गये हो। कुब्जा मर ही क्यों नहीं जाती? हमारे साथ न्याय करनेवाला कोई भी नहीं है। श्रीकृष्ण दूध-मक्खन की चोरी करके खाता है और व्रज प्रदेश में गौओं को चराता है। वह गौएँ चराता हुआ ग्वालिनों को पकड़ लेता है। उसे तनिक भी लज्जा नहीं आती। हम श्रीकृष्ण की वंशी से इस तरह पागल हैं कि जैसे तेज कटार का घाव लग गया हो। श्रीकृष्ण कुब्जा के होकर रह गये हैं। उसने मानों हमारे प्रियतम को हमसे छीन लिया है, यही सब कुछ हमें साल रहा है। मनोहरदास कवि का कथन है कि श्रीकृष्ण ग्वालिनों का उद्धार कर रहे हैं। वे कहती हैं कि हमारे जीवन-सम्बन्धी काम तो उस सच्चे गुरु अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण से पूर्ण होनेवाले हैं। हम सब श्रीकृष्ण के साथ मिलाप की कामना करती हैं।'

(६)

राग बरवा

माए नी नंदलाल जो डिठ्ठा, वाल सुवंमनि आले।
अखडीआं दुइि कउल दहकन्न, भउर सकाले।
कंनी सोइिन लुड़कन सौहन, मानो सूरज झाले।
दमां बाझों मैं मुल्ल विकाणो, सुणि सुणि मिठड़ी गालें।
माए नी की करां, की करां नो मैं की करां,
मन लगड़ा सु हरि जो दे नाल॥

ग्वालिन अपने मन के प्रेमभाव को व्यक्त करती हुई कहती है—'मैंने श्रीकृष्ण के दर्शन किये हैं। उसके केश अति सुन्दर हैं। उसके दोनों नेत्र कमल के समान शोभा दे रहे हैं मानों काले भँवरे ही मँडरा रहे हों। वह कानों मे सुन्दर कुण्डल पहने हुए है, मानों साक्षात् सूरज चमक रहा हो। उसकी मधुर वाणी को सुनकर हम तो अपना सब कुछ न्योछावर करना चाहती हैं। हम क्या करें, हमारा मन श्रीकृष्ण में लगा हुआ है। हम उनसे मिलने के लिए व्याकुल हैं।'

श० सिं०

किशोरीदास

अमृतसर-निवासी कृष्णभक्त कवि किशोरीदास का समय संवत् १८३० से १८७० विक्रमी के मध्य बताया जाता है। इनके भक्तिविषयक स्फुट पद विभिन्न प्राचीन काव्य-संग्रहों में प्राप्त हैं।

उदाहरण—

कब मैं या मारग पग धरिहौं।
वेद पुरान संत जो गावत,
करि विश्वास अचल अनुसरिहौं॥

• • •

श्री वृन्दावनवास निरन्तर,
राधाकृष्ण रूप लखि अरिहौं।
किशोरिदास हरिव्यास कृपाबल,
महल टहल सेवा सुख भरिहौं॥

रा० प्र०

कृष्णदास

परमभक्त कृष्णदास का आविर्भाव-काल विक्रमी संवत् की अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है, क्योंकि इनकी अधिकांश काव्य-रचना उन्नीसवीं शती विक्रमी के प्रथम चरण में हुई। इनका विशेष जीवन-परिचय प्राप्त नहीं है। अधिकांश रचनाएँ पंजाब के प्राचीन ग्रन्थागारों में गुरुमुखी लिपि में विद्यमान होने तथा पंजाबी की भी अनेक काव्य-कृतियाँ (कान्ह गूजरी दा झेड़ा, बारह माँह आदि) प्राप्त होने के कारण इन्हें निस्सन्देह पंजाब के सगुण भक्ति काव्य-रचयिताओं में स्थान दिया जा सकता है। इनकी हिन्दी-रचनाएँ ये हैं—

१. दशमस्कन्ध भागवत (संवत् १८२३ वि०), २. श्री गिरधर-लीला, ३. ज्ञान-प्रकाश (संवत् १८२५ वि०)। इनकी सम्पूर्ण कविता कृष्ण-भक्ति-रस से ओतप्रोत है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) गिरधर लीला करी बखान।
जपियहि ऐसे श्री भगवान॥
इह लीला कोइ सुनै सुनाइ।
प्रेम भगति माधव की पाइ॥
जै गिरधारी नन्द कुमार।
कृष्णदास पग पर बलिहार॥

(ख) तीरथ जोग ध्यान तपज्ञान।
कोऊ न हरी कथा समान॥

(ग) जन्म करम गुण रहित मुरारि।
अगम अगोचर अलख अपारि॥
कृष्णदेव हे जग के ईस।
सकल लोक पति विस्वेबीस॥

(घ) जै श्री कृष्ण चन्द सुख धाम।
सरब व्यापो पूरन काम॥
जै जै जै जै जै श्री कृष्ण।
सरब व्यापी पूरन विष्ण॥

(ङ) ऐसी कृपा कृपानिधि करो।
सभै दूख तन-मन के हरो॥
अन्तर बाहर तुम ही बसो।
अन्त समै हम सों मिल हँसो॥
जै जै जै करुणा भण्डार।
कृष्णदास पग पर बलिहार॥

रा० प्र०

कृष्णलाल

साहित्य-जगत् में 'बिहारी सतसई' के टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध कवि कृष्णलाल मूलतः पंजाब के एक कृष्ण-भक्त साहित्य-साधक थे। इनका जन्म विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण अनुमानित है। अन्तःसाक्ष्य से इनका दशमेश गुरु गोविन्दसिंह का समकालीन होना प्रमाणित है। इन्होंने दशम गुरु के सान्निध्य में, उनके दिव्य सांस्कृतिक व्यक्तित्व से अभिभूत होकर, उन्हींको समर्पित करने के लिए 'गोविन्दगीता' की रचना आनन्दपुर साहब में की—

गीता सास्त्र की भाषा, आनन्दगढ़ में कीन।
खालसे के उपदेश को, कही कृष्ण प्रवीन॥

गुरु गोविन्दसिंह संवत् १७६१ विक्रमी (सन् १७०४ ई०) में आनन्दपुर छोड़कर, दिल्ली होते हुए दक्षिण-यात्रा पर चले गये थे, जहाँ संवत् १७६५ वि० (सन् १७०८ ई०) में उनका गुरुलोकवास हुआ। अतः कवि कृष्णलाल ने संवत् १७६१ वि० से पूर्व ही कभी 'गोविन्दगीता' की रचना की होगी। यह रचना मूलतः कवि कृष्णलालकृत 'महाभारत' के भाषानुवाद का ही एक अंश है। इसकी पुष्पिका में 'खालसा' शब्द का प्रयोग इस बात का सूचक है कि तब तक दशमगुरु आनन्दपुर में 'खालसा-पंथ' की स्थापना कर चुके थे, जिसका समय १३ अप्रैल, १६९९ ई० (प्रथम वैशाख संवत् १७५६ वि०) इतिहास-विदित है। कवि कृष्णलाल ने 'महाभारत' के अनेक पर्वों का हिन्दी-काव्यानुवाद किया जिनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ अब भी पंजाब के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। एक-एक पर्व के अनुवाद में पर्याप्त समय लगा होगा। उदाहरणतः 'स्वर्गारोहण पर्व' के अनुवाद में कवि ने स्वयं तीन वर्ष लगने की बात कही है—

तीन बरष महि इह इतिहास।
संपूरन कियो रिषि व्यास॥

• • •

महाभारत पूरन भयो, भाषा करी बनाइ।
कृष्णलाल की बेनती, हरिजन दास जनाइ॥

इस प्रकार कवि कृष्णलाल की काव्य-साधना का समय विक्रमी संवत् की अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। इसी आधार पर उनका

जन्म सत्रहवीं शताब्दी विक्रमी के अन्तिम चरण में स्वीकार्य है। कवि ने 'महाभारत' के 'स्वर्गारोहण' पर्व के अनुवाद की आरम्भिक पंक्तियों में बताया है कि उसके पितामह का नाम 'वैसाखीमल' और पिता का 'गुलाबराय' था। ये सात भाई थे जिनमें अन्य सभी वाणिज्य-व्यवसाय में चतुर थे, केवल यही (कृष्णलाल) वणिक्-वृत्ति से विमुख हो इधर-उधर भटकते रहते थे। अन्त में प्रभु-कृपा से इनके हृदय में ज्ञान-अंकुर प्रस्फुटित हुए—

वैसाखी मल नाम जिह, खत्री दाऊ जात।
गुलाबराय हमरा पिता, पुत्र जाहि के सात ॥
साति पुत्र हमरे पित के घरि।
सब विवहार करत निज निज वरि ॥
हम काहू विवहार न लागे।
इत-उत फिरैं वणज ते भागे ॥
सरब करम जायो कोऊ अंकर।
कछु सुभ मति मो रिद भई संचर ॥

कवि कृष्णलाल की अन्तरंग भक्ति-भावना का ही यह सुफल था कि ये आजीवन 'महाभारत' के विभिन्न पर्वों के अनुवाद में संलग्न रहे। इनकी इतर काव्य-रचना केवल 'बिहारी सतसई की टीका' ही है। इनके नाम से प्राप्त 'राम-चरित्र' तथा 'गोविन्दगीता' भी मूलतः महाभारत के 'वनपर्व', 'व्यासाश्रमपर्व', 'अश्वमेध पर्व' तथा 'स्वर्गारोहण पर्व' आदि के अंग हैं। कविकृत 'महाभारत' के सभी (अठारह) पर्वों का अनुवाद उसकी प्रकृष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचायक है जिसे कवि प्रभु की ही अनुकम्पा मानता है—

साबर रूप है ग्रन्थ यहि, कथा सु जल गंभीर।
करुणा रूपी नाव पर, मोहि चढ़ावो वीर ॥
जग प्रसिद्ध होइ ग्रन्थ यह, तब करुणा परसादि।
कृष्णलाल मो पर दया, करो देव देवादि ॥

एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जगदीस जगदपति जगनायक।
बिस्वंभर सुखनिधि सुखदायक ॥
नरहर निर्वैर निरंकार।
अच्युत सुख रूप धरणि धार ॥

पंकज लोचन भुज बल भारौ।
अवगति अघ-मोचन बनवारी ॥

अजर अमर अजोनि पर उपकार।
अविगत सनातन जगधार ॥
रा० प्र०

केसोदास (केशो-गुणी)

पंजाब-प्रदेश का यह गुरु-भक्त प्रसिद्ध कवि सोढी मिहिरबान तथा उनके सुपुत्र हरिजी का समकालीन था। सोढी मिहिरबान का देहावसान सन् १६४९ ई० में हुआ बताया जाता है और उनके पिता पृथीचन्द का देहान्त सन् १६१८ ई० में। अतः केसोदास का रचनाकाल सन् १६१८—१६४९ ई० के बीच हो सकता है। केसो की कविता रीतिकालीन कवियों की तरह चमत्कारपूर्ण तथा आश्रयदाताओं की स्तुति करने की परम्परा से पूरी तरह प्रभावित दिखाई देती है। आपने गुरु नानकजी की महिमा में भी कुछ सवैयों की सर्जना की है। ये सवैये गुरु अर्जुनदेव के बड़े भाई पृथीचन्द के वंश में गुरु कहलानेवाले व्यक्तियों के यशगायन के हेतु रचे गये 'वारां' और 'सतोत्रों' के रूप में हैं। इनकी एक प्रति गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में (क्रम-संख्या ५९८) सुरक्षित है। अन्यत्र इस कवि को १८वीं शताब्दी का बताते हुए सरदार प्यारासिंह पद्म ने इनके द्वारा रचित 'माझें' तथा एक 'बारांमाहा' भी बताया है, किन्तु हमारे मतानुसार केसो कवि ने दो 'बारांमाहा' की सर्जना की जिनके कतिपय नमूने निम्नलिखित हैं—

(१)

बारांमाहा स्री क्रिसनजी

हाड़ हैरान होई हरि बाझों हरि बिन मंदर खाली।
वगण लोआं शाम सलोआं पैंही घुप्प घुपाली ॥

रुत बसंत कोकला बोले बैठ अंब दी डाली ।
वे केसो नूं दस असानू कह आवणगे ब्रिजपाली ॥

• • •

असू असू मथुरा पुरि बिच चंचला दी चतुराई ।
हाथ जोड़ के बिनती करीउ दीजीओ क्रिसन दुहाई ॥

तन बिभूत मल मैले कपड़े राधा सुध न काई ।
केसो इक संदेसा मेरा कहीओ बलभद्र जू के ताई ॥

• • •

फागन फेर आए हरि दुआरे इक चरन गोपीआं फड़िआ ।
सो उह घड़ी सुलखणी जां शहु महिली आके बड़िआ ॥

रल मिल सहीओ दिउ बधाई चन्द सखी रा चढ़िआ ।
केसो चुण चुण कलीआं छेज बिछावां अज्ज दिन भागीं भरिआ ॥

जेठ का महीना आ गया है। राधा श्रीकृष्ण के वियोग में व्याकुल होकर कहती है—'श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में घर सूना-सूना-सा लग रहा है। गर्म और शरीर को झुलसा देनेवाली लू चल रही है। फिर वसन्त की ऋतु आती है और कोयल की कू-कू विरहिणी के लिए और भी कष्टप्रद हो जाती है। केसो कवि कहते हैं कि विरहदग्ध राधा कह उठती है कि वह व्रजवासी अर्थात् श्रीकृष्ण गोकुल गाँव में कब आयेगा ?'

'असूज का महीना आया है। यह राधा के लिए और भी चिन्ताजनक है। वह जानती है कि मथुरा नगरी के नर और नारियाँ चंचल और चतुर हैं। इसीलिए राधा उद्धव से हाथ जोड़कर नम्रतासहित विनय करती हैं और मथुरा के निवासियों की चंचलता तथा चतुराई एवं छल-कपट से कृष्ण को बचे रहने के लिए दुहाई देती हैं। राधा ने तो श्रीकृष्ण के वियोग में योग धारण कर लिया है। शरीर पर विभूति धारण कर रखी है। उसे तो अपनी भी सुधि नहीं। वह चेतनाशून्य-सी बनी हुई है। केसो कवि कहते हैं कि उद्धव को मानों श्रीकृष्ण के निमित्त अपना सन्देश देती हुई वह व्याकुल हुई जाती हैं।'

'फाल्गुन का सौभाग्यशाली महीना आ गया और राधा के निवास पर उसके विरह को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण आ जाते हैं। राधा श्रीकृष्ण का मधुर मिलाप होता है। अन्य ग्वाल-बालिकाओं ने उनके चरण-स्पर्श किये हैं। कैसा सौभाग्यशाली और शुभ समय है, जब श्रीकृष्ण ने उन्हें आकर दर्शन दिये हैं। सभी ग्वाल-बालिकाएँ एक-दूसरे को बधाई देती हैं। उनके लिए तो मानो श्रीकृष्ण का आगमन आकाश पर चाँद दिखाई देने के तुल्य है। केसोदास कवि कहते हैं कि ग्वाल-बाँलिकाओं तथा विशेषतः राधा की मनोकामना पूर्ण हुई है। वे सब मिलकर सुगन्धित कलियाँ एकत्र करके उनके मार्ग को सुसज्जित कर रही हैं। उनके लिए मिलाप होनेवाला आज का दिन सौभाग्यशाली और शुभ है।'

(२)

बारांमाहा केसो का

दोहरा—

चेतरि चितिओ शाम जी राधे राई बिहाल ।
चरनबंध बेनती करो कहां जाओ नंदलाल ॥

छन्द—

क्रिशन जी चले कि चेत चड़े ।
कि राधे बारा क्रिशन दी फड़े ॥
कि बिंदिराबन छडिदे तुरदे खड़े ॥
कि कितने गुवाल गोपीआं खड़े ।
कि रोए नैण टिमदे सड़े ।
कि सिर पुर बिरहु न गारे चड़े ॥
तुमानूं केहड़ी गोपी सड़े दसुखां लाल जी ॥
तू आख हकीकत सारी । सदके जांदी तुधु उत्तों वारी ॥
मुड़ि घरि आईं क्रिशन मुरारी । राधे करम कित दी हारी ॥

बाकी पईओ केहड़ी भारी तैनूं मान की।
तूं उठ चलिओ मथुरा शहर। राधे करे गड़े कहर ॥
कि मिलता कर दी चढ़ी दुपहिर ओधरो चलिओ
तीजा पहिर।
सियाम बिनु मग खाइके जहर कि मेरे बिच कलेजे
लहिर ॥
कि सेजों बालदी ॥

फुलनरी कि नरहर किऊं बे केसो।
किवे सयाम नू मोड़ों।
राधे रही हथ्थ कर जोड़।
कि मिंतां करई लाख करोड़ ॥

रुत बसंत कूकदे मोर।
बागीं पाइिल पाऊंदी जोर ॥
साथो उठ चलिउ लड़ि तोड़।
राधे जोबन दे धन घोर ॥
विछोड़े जाल दी ॥

इस बारांमाहा में राधा का विरहोद्गार अत्यन्त तीव्रता से व्यक्त हुआ है। कृष्ण के वियोग में उसे तनिक भी चैन नहीं पड़ता, रात-दिन नींद नहीं आती।

'चैत्र का महीना है। श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए राधा व्याकुल है। वह श्रीकृष्ण की शरण में आकर विनय करती है कि तुम्हारे अतिरिक्त हमारा और कोई सहारा नहीं है।

चैत्र का महीना है और श्रीकृष्ण राधा तथा गोपियों को छोड़कर चल पड़े हैं। राधा श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर रोकती है। वृन्दावन के ग्वाल-बाल तथा बालिकाएँ खड़ी होकर श्रीकृष्ण को रोकते हैं। श्रीकृष्ण को गोकुल छोड़ते देखकर गोकुल-निवासी आँसू बहाते हैं। विरह के कारण उनकी दशा अति चिन्ताजनक है। राधा श्रीकृष्ण से प्रश्न करती हैं कि तुम्हें कौनसी ग्वाल-बालिका देखकर ईर्ष्या का अनुभव करती है? वे श्रीकृष्ण से सारी वास्तविकता के विषय में पूछती हैं। वे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर बलिहार जाती हैं। राधा कहती हैं कि मेरे तो कर्म ही हार गये हैं। मैं तुम्हें पुनः घर लौटने के लिए विनय करती हूँ। तुम्हें किस बात का गर्व है अथवा कौनसी बाधा है जिसके कारण तुम मेरे पास नहीं आते? तुमने मथुरा नगर में निवास बना लिया है, यह राधा के लिए बड़े कहर की बात है। विनय करते-करते दोपहर हो गया है और दिन का तीसरा पहर आरम्भ हो गया है। बिना जहर खाये ही मेरे हृदय में विरह-पीड़ारूपी जहर की लहरें उठ रही हैं और मेरी सुखदायक सेज अब अग्नि के समान दाहक बन गयी है।

राधा श्रीकृष्ण को पुकार-पुकारकर कह रही है कि मथुरा गये हुए श्रीकृष्ण को किस प्रकार लौटने के लिए कहूँ? राधा हाथ जोड़-जोड़कर लाख-करोड़ बार उनसे विनय करती हैं कि इस विरह की पीड़ा से मुक्त करो। वसन्त की ऋतु आ गयी है, बागों में मोर की कूक और भी व्याकुल करती है। वे जोर-जोर से और प्रसन्न हो-होकर नाचते हैं। ऐसी मन-मोहक और आनन्दमय वसन्त ऋतु में राधा श्रीकृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि तुम मेरे साथ नाता तोड़कर चले गये हो। राधा तो यौवनावस्था में वियोग की कष्टदायक और जला देनेवाली अग्नि से जलती जा रही हैं।'

इसमें कुब्जा की नारी-सुलभ ईर्ष्या के भी मार्मिक चित्र अंकित हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिये—

(२)

फुलनरी कि नरहर किऊं बे केसो। काबल सानू मथरा।
किअं बहि रहिआ चंदरा चतुरा। रातीं नींद न पाऊंदी
कतरा ॥
नी इिन कुबजां कीता करना। सानू दिने रात दा
खतरा ॥
राधे नू सहस मोहि ॥

'राधा श्रीकृष्ण को पुकारती हुई कहती हैं कि यद्यपि तुम मथुरा में हमारे पासवाले क्षेत्र में ही निवास कर रहे हो, फिर भी हमारे लिए तो ऐसा है

कि जैसे तुम दूर-देशान्तर काबुल नगर में चले गये हो। वह श्रीकृष्ण को पुनः उपालम्भभरे स्वर में कहती हैं कि तुम हमें छोड़कर क्यों अलग रहने लग गये हो? वह श्रीकृष्ण को चतुर और दुखदायक (चंदरा) भी कहती है। उसे श्रीकृष्ण के वियोग में रात-रातभर नींद नहीं पड़ती। वह अन्य ग्वाल-बालिकाओं को सम्बोधन करके कहती है कि कुब्जा ने मेरे साथ खोटा कर्म किया है। इसीलिए हमें विरहावस्था में दिन-रात आठों पहर भय-सा लगने लगा है।'

श० सिं०

(राजा) खुशालचन्द (खुशालराय)

खुशालचन्द का जन्म सन् १७०१ ई० में जीवन-दासजी के घर हुआ बताया जाता है। इनके पिता मुगल-सम्राट् औरंगजेब तथा बहादुरशाह दोनों के दरबार में कर्मचारी थे। ये दीवानी-विभाग में एक उच्च पद पर नियुक्त थे। बाद में इनको दिल्ली के निकट एक छोटी रियासत का राज्य-भार सौंपा गया। अतः आपके नाम के साथ 'राजा' शब्द जुड़ गया। सन् १७२३ से १७३६ ई० तक मुहम्मदशाह रंगीले के साथ मरहठों की लड़ाइयों में खुशालराय ने तलवार भी चलायी। जालन्धर के निकट भी आपको जमीन मिली थी। आपकी रचनाओं में हर रंग का प्रभाव सहज रूप से मिल जाता है।

खुशालराय का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। जहाँ आप उच्च-कोटि के सन्त एवं भक्त-कवि हैं, वहीं उच्चस्तरीय शृंगारी-कवि भी ठहरते हैं। आपका जीवन विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं का सम्मिलन है। इनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति के मिले-जुले चित्र प्रस्तुत हुए हैं। आप गुरु साहिबान के व्यक्तित्व से अति प्रभावित थे। इसके साथ ही मुगल दरबार से भी आपका गहरा सम्बन्ध था। आपका कथन है कि "मैं मुगल सरकार दी नौकरी विच प्रसन्न हां, किअंकि इथे मैं जीवन दे धारमक ते दुनिआवी दोवें पख निभा सकदाहाँ।" खुशालराय की रचना इतिहास, साहित्य, बोली एवं भाषा तथा संगीत सभी दृष्टियों से अद्भुत है। ये किसीसे बँधे नहीं रहे। अतः मुक्त रहकर साहित्य-सेवा की। आपने अपने समय में प्रचलित विविध धर्मों तथा उनके अधिकारी महापुरुषों का समान रूप से आदर किया। इन्होंने जहाँ गुरु नानकदेव, हजरत अली आदि युगपुरुषों का चरित-गान किया है, वहीं 'राझां' आदि लौकिक-नायकों को भी अपनी काव्य-साधना का विषय बनाया। इस प्रकार इस कवि ने भाषायी वैषम्य एवं शैलीगत वैभिन्न्य को मिटाकर फारसी, उर्दू, पंजाबी, हिन्दी आदि भाषाओं को अपनी कविता का माध्यम बनाया।

खुशालराय की सारी रचनाएँ कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत नहीं आतीं। फिर भी इन्होंने श्रीकृष्ण की जीवन-कथा को लेकर पर्याप्त काव्य-सर्जना की है। इस भक्त-कवि की रचनाओं में फुटकर रूप से राधा कृष्ण-लीला-सम्बन्धी होली (राधा-क्रिशन दे रूप बिच), दान-लीला, मान-लीला, रास-लीला, बंसरी ते विअंग, सुदामा-चरितर आदि प्रसंगों के साथ श्रीकृष्ण के मनोहारी रूप-लावण्य का भी वर्णन मिलता है—

'माई मेरे मनमोहन मोह लीऊ मंद मंद मुसकाइ।'
'मेरी अखीआं क्रिशन दरस नित बांछे।'

'कर बरजोरी दान माँगत हो,
कहा जानूं तेरा नाउ है।'

'राधे संग सगल ब्रिज बनता,
नन्द-नन्दन के संग गोपाल।'

अन्यत्र इन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी प्रणति निवेदन करते हुए कहा है—

कन्हीईआ रे! क्रिशन मुरार रे!
सरन गिरी हौं दवार परी हौं अब कों मोड़ि उधार रे।

दीन हीन गुन धीन करंम की कापै करूं पुकार।
होइ खुशाल टेर सुन मेरी अपनौ बिरद समार रे॥
श० पि०

खुशीराम 'आरफ़' (लाला)

लाला खुशीराम 'आरफ़' पाकिस्तान के बन्नू-क्षेत्र के निवासी थे। इनके काव्यगुरु फज़लशाह बताये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। कृष्ण के जीवन-सम्बन्धी आपकी 'खुशीराम दा क्रिशन सुदामा' नामक एक रचना प्रसिद्ध है। खेद है कि इसकी एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इनकी 'खुशीराम दी गऊ माता' नामक एक अन्य कृति बारामाहा-पद्धति पर विरचित है। इसके एक पद में आरफ़ ने श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता का आख्यान किया है। वह नीचे दिया जाता है—

चेत्र चेत विच चेत उसी नूं,
जो स्री क्रिशन मुरारी गिरवरधारी।
देवकी नंदन असुर नगंदन
भगतां का हितकारी दुष्टहितकारी॥

द्रुपत सुता की लज्जा राखी,
पांडव की जो नारी सभा मझारी।
'खुशीराम' सुन टेर नाग की,
दौड़े छोड़ असरारी गरड़ सवारी॥
श० सिं०

गंगाराम

कवि गंगाराम पटियाला-दरबार के प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिन्हें महाराजा करमसिंह के राज्यकाल (सम्वत् १८७०-१६०२ वि०) में पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ था। इन्होंने महाराजा की प्रशस्ति एवं विनय द्वारा न केवल महाराजा को सदैव प्रसन्न रखा, बल्कि 'मान-मंजरी' की रचना करके एवं 'शोभा-शृंगार' में महाराजा के सुचारु राज्य-संचालन की प्रशंसा करके पटियाला-दरबार में सदैव अपने लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त किया। गंगाराम के आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। रचनाकाल सं० १८७५ से सं० १६०० तक के आसपास माना जाता है। कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी इनकी मात्र एक रचना 'खग-मंजरी' ही उपलब्ध है। 'शोभा-शृंगार' इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसमें इन्होंने गणेश-स्तुति के उपरान्त परमात्मा का गुणगान और तब गुरुओं का यश-शृंगार वर्णित किया है। तदुपरान्त अमृतसर, भटिंडा, पटियाला आदि नगरों की शोभा का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। सोलह शृंगार, सर्वशृङ्गार एवं विरहन बारहमाहा आदि के वर्णन शोभा-शृंगार के उत्तरार्ध के अंग हैं। बारहमाह की भाषा की बानगी प्रस्तुत है—

दह दिस आइ गगन घन गाजा।
ब्रिहो बिओग काम दल साजा॥
उगमत सिआम घुमरे घन आए।
सेतं चाल बग पंख दिखाए॥ १९५॥

खरग बीज चमकैं चहुँ ओर।
बान बूंद बरसे घर घोरा॥
उनमत मेघ आइ चहुँ फेरी।
कंत उबार मदन हम घेरी॥ १९६॥

छन्द-संख्या १९६ तो जैसे मलिक मुहम्मद जायसी की प्रसिद्ध रचना पद्मावत से लेकर रख दी गयी है। भाषा सरल, किन्तु आकर्षक है। कवि ने यह रचना सं० १८९२ में पटियाला नगर में महाराजा करमसिंह के लिए प्रस्तुत की :

पटयाले सुभ धाम नाम न्रिप करम सिंघ बरा।
नितानेम मन प्रेम पाठ गुरमुख पूज कर हरा॥
सोभा-सिंगार तहं हित करयो गंगाराम सुजान कब।
अच्छर सुधार अपराध जहि, छिमो करहु कवराज
सब॥ २३१॥

ठारां सत पुन बानवे संमत विक्रम नाम।
माघ सुदी सूभ त्रोदसो क्रित कब गंगाराम॥ १३२॥

शोभा-शृङ्गार की यह पाण्डुलिपि पटियाला की सेण्ट्रल पब्लिक लायब्रेरी की क्रम-संख्या ५८५ पर

मौजूद है। इसी पाण्डुलिपि के ११६ पत्रों के उपरान्त खग-मंजरी नामक कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी रचना उपलब्ध हुई है। इसमें कवि ने आरम्भ करने से पूर्व पक्षियों की एक सूची दी है—कोयल, गरुड़, तूती, मोर, मैना, बाज, अगनबतोंत, कुलंग, चात्रक, बगुला, हंस, बहरी, मुरगाई आदि। इन्हीं पक्षियों को आधार बनाकर खग-मंजरी का कवि राधा-मान-वर्णन करता है, जिसमें उक्त पक्षियों के भावों को उजागर किया गया है। कुल ३१ पक्षी हैं और खग-मंजरी के ३१ कवित्तों में राधा-प्रेम-रस के भाव भरे गये हैं। रचना के अन्त में कवि कहता है—

एहु संवाद भयो ब्रिज मो हरि
सो जब राधके मांन करयो है।
एकहि एक कबित्तन मो इकतीस
सबै खग भाव भरयो है॥
गंगाराम कहै रस प्रेम मई खग
मंजरि तांहि ते नांव धरयो है।
ठारां सै बानवै मघर मावस
सुद्ध करो कब चूक परयो है॥२३२॥
—इति खग-मंजरी समापत

तात्पर्य स्पष्ट है कि खग-मंजरी एक ऐसी चमत्कारपूर्ण रचना है जिसका स्वरूप अन्योक्ति का है। इसमें पक्षियों के माध्यम से राधा-प्रेम चित्रित हुआ है। यह एक तत्कालीन प्रयोग कहा जा सकता है। कथा-नायिका अपने प्रेमी से रूठती है, फिर दोनों ओर विरह पनपता है। कृष्ण राधा से संभोग के अभिलाषी हैं, राधा कृष्ण के दर्शनों की प्यासी है, बीच में मान की दीवार है। बड़ा मनमोहक वातावरण है—दोनों को मान न करने का उपदेश है—

काहे री आन कु दोस लगावत
मैं हरि के गुण जानत नीको।
कंचन काच की बूझ नहीं, समझावत
मो हित कै उन ही को।
सुख कारन बोइ अतो बिरवा
फर लागत होइ बंबूरनि फीको।
जाहि चली न करो झगरा,
बिन काज अली रिस आवत जीको॥ ६॥

प्यारी धरो चित मै तुमरे हित,
एक करौं बिनती सुन लीजै।
का कहीयै परबीन तरू पिय
साय निदान जू मान न कीजै।
कौन भलो करहो सुनरी।
अपने कर घोर हलाहल पीजै।
छांड गुमान पिआर करो,
हँसकै मिल पाइन मो सिर दीजै॥ १६॥

'खग-मंजरी' की भाषा सरल है। राधा कृष्ण की मान-मनुहार अन्ततः समाप्त दिखायी गयी है। दोनों का पुनर्मिलन कवि को अभीष्ट है। गोपियों को भी इसमें सुख है। वे सब प्रसन्न होकर वृन्दावन में रास रचाने लगती हैं, श्रीकृष्ण उनको सहयोग देते हैं और रचना के अन्त में चतुर्दिक् प्रेम, उल्लास एवं नृत्य-वादन का समाँ बँध जाता है।

गोपी गवाल सबै मिल कै,
बिंदराबन मो रस रास मचाई।
ताल म्रिदंग पखावज बेन,
मुचंग उपंगर है धुन छाई॥
नाचत गावत रीझ-रिझावत,
सो दब को बरन्यो नहिं जाई।
राधका मोहन त्रित करै,
मिल मानहु नीर तरै मुरगाई॥ ३१॥

म० मो० स०

गणेशसिह बेदी

पंजाब के उत्तरमध्यकालीन भक्तकवियों में गणेशसिह बेदी का विशिष्ट स्थान है। यह विलासपुर (वर्तमान हिमाचल प्रदेश) न-नरेश के धर्मगुरु एवं आचार्य थे। इनकी केवल चार

रचनाएँ उपलब्ध हैं—श्रीकृष्ण-चरित्र चन्द्रोदय, शृङ्गार-शतक, विक्रम-विलास और श्री गुरुनानक सूर्योदय।

उदाहरण :

रोक मग कह्यौ कान्ह, दीजै बेग दधि दान,
दान कहा ? दान लेन द्विजन को काम है ।
एरी दीजै कर, कर गहौ नित कामिनी कौ
दीजिये रसम, जाय लीजे सुरधाम है ॥

देह री बिसूल, सूल सोहत है संभु कर,
दीजै री जगात सो तो भूपन को काम है।
मैं हूँ ब्रजराज, ब्रजराज कहै कंस जू को
कौन कंस ? सोई जा को बास सुरधाम है ॥

रा० प्र०

गुरु अर्जुनदेव

ये गुरु रामदास के पुत्र तथा उत्तराधिकारी थे। इनके द्वारा सन् १६०४ ई० में सम्पादित गुरुग्रन्थ साहिब मध्यकालीन पंजाब की प्राचीनतम रचना कही जा सकती है, जिसमें श्रीकृष्ण के अनेक नामों एवं जीवन-प्रसंगों को उद्धृत किया गया है। हरि, कृष्ण, दामोदर, गिरिधर, मुरारी आदि संज्ञाएँ अनेक सन्दर्भों में प्रयुक्त हुई हैं। वासुदेव कृष्ण को देवों का देव कहकर पुकारा गया है—

एक क्रिसने सरब देवा देव देवात आतमा ।
आतमा बासुदेवसि जे को जाणे भेउ ।।४।।
—वार आसा० श्लोक सं० २, पृष्ठ ४६९

यद्यपि गुरुग्रन्थ साहिब की वाणी निर्गुण मतावलम्बी है, तथापि यथासन्दर्भ उसमें श्रीकृष्ण के जीवन-प्रसंग, मिथ तथा पौराणिक कथावत्ता अनेकधा देखने को मिलती है। चन्द्रावली गोपी को छलने, इन्द्र से परिजात वृक्ष छीनकर सत्यभामा को देने तथा वृन्दावन में लीला करने की बात एक स्थान पर बड़े सुयोग्य ढंग से प्रस्तुत की गयी है—

जुज महि छली चन्दावलि कान क्रिसनु जादनु भइआ
पारजात गोपी लै आइआ बिद्रावन महि रंगु कीआ
॥ २ ॥ म० १ ॥
—श्लोक, बारामासा, पृष्ठ ४७०

स्पष्ट है कि ग्रन्थकार ने श्रीकृष्ण को वर्ण्य-विषय बनाया था। जयदेव और नामदेव के पदों में तो कृष्ण और विट्ठल की आराधना भी उपलब्ध है। गुरुग्रन्थ साहिब के लिपिक भाई गुरुदास ने अपने वार साहिब में श्रीकृष्ण की प्रशस्ति एवं पर्याप्त विवरण दे रखा है। भाई गुरुदास की वारों की भाषा ब्रजमिश्रित पंजाबी है, इसलिए हम उन्हें न भी गिनें तो भी गुरुग्रन्थ में कृष्ण-प्रसंग झुठलाये नहीं जा सकते। पंजाब का मध्यकालीन कृष्ण-काव्य अपना उत्स गुरुवाणी में पाता है और वहीं से विकसता हुआ अनेक मौलिक ग्रन्थों में ढल गया है।

म० मो० स०

गुरु गोविन्दसिंह

सिक्ख-धर्म के दसवें गुरु गोविन्दसिंहजी भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड माने जाते हैं। आपका जन्म नवम गुरु तेगबहादुरजी के घर सं० १७२३ वि० में पटना (बिहार) नगर में हुआ था। आपके पिता उस समय पूर्वी प्रान्तों की यात्रा पर थे। चार वर्ष के इस बालक को गुरु तेगबहादुरजी के द्वारा बसाये गये आनन्दपुर नगर में लाया गया और आप नौ वर्ष की अल्पायु में अपने पिता के द्वारा दिये गये हिन्दू-धर्म के निमित्त बलिदान के उपरान्त गुरु-गद्दी पर बैठे।

समय के साथ-साथ आपके व्यक्तित्व में सन्त, योद्धा और कवि के लक्षण समन्वित होते गये। आपने आनन्दपुर तथा पाऊँटा साहिब नगरों में रहते हुए शस्त्र तथा शास्त्र-विद्या में निपुणता और पंजाबी, ब्रजभाषा तथा फारसी, इन तीनों प्रचलित भाषाओं का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया। गुरुजी ने जहाँ युद्ध के क्षेत्र में अपनी तलवार के बल पर शत्रुओं के दाँत खट्टे किये और आजीवन पराजय

स्वीकार नहीं की, वहाँ साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी अमूल्य निधियों के द्वारा वह कर दिखाया, जिसका दूसरा उदाहरण आसानी से न मिलेगा। आप न केवल एक उच्चकोटि के काव्य-रचयिता थे, वरन् काव्य-प्रेमियों और सर्जकों को प्रेरणा भी देते थे। प्रसिद्धि है कि गुरुजी के संरक्षण में ५२ कवि सतत काव्य-रचना करते रहते थे। यह संख्या घटती-बढ़ती रहती थी। गुरु गोविन्दसिंह-जी तथा उनके आश्रित कवियों के द्वारा रचित एक दर्जन से ऊपर रचनाएँ उनके द्वारा सम्पादित 'दशम ग्रन्थ' में संकलित हैं, जिनमें 'चौबीस अवतारों की कथा' में विष्णु के चौबीस अवतारों का आख्यान हुआ है। इन अवतार-पुरुषों में ही २१वें अवतार 'श्रीकृष्ण' हैं, जिनकी कथा का आधार भागवत-पुराण का दशम स्कन्ध है। परन्तु गुरुजी ने युग-प्रवृत्ति के अनुरूप इसे नया रूप दिया है।

'श्रीकृष्णावतार' पंजाब में रचित कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी एक अनुपम महाकाव्य है। इसमें कुल २४९२ छन्द हैं। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध यह बृहत् रचना पाँच खण्डों में विभक्त है, जिसके पहले तीन खण्ड—'बाल-लीला-वर्णन, रास-मण्डल-वर्णन तथा मथुरागमन व गोपी-विरह-वर्णन' पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण-चरित्र के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं, किन्तु युद्ध-त्रर्णन तथा स्फुट वर्णनों म अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी की गयी हैं। कवि ने श्रीकृष्ण के जरासन्ध तथा उसके अन्यान्य योद्धाओं के साथ होनेवाले युद्धों का वर्णन कर इस भाग को 'युद्ध-प्रबन्ध' नाम दिया है। वास्तव में गुरुजी का मुख्य लक्ष्य 'धर्म-युद्ध' वर्णन ही रहा है। इसीलिए आपने लगभग ९०० छन्दों में श्रीकृष्ण को योद्धा के रूप में प्रस्तुत करके अपनी धर्मयुद्ध-प्रियता प्रतिपादित की है—

दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहि प्रभु, धरम जुद्ध के चाइ ॥२४९१॥

प्रथम खण्ड 'बाल-लीला-वर्णन' का वर्ण्य-विषय बालक श्रीकृष्ण की लीलाएँ, वात्सल्यमयी उक्तियाँ, दैत्य-वध तथा दूध-दही-माखन आदि की चोरी के प्रसंगों को लेकर श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं का उल्लेख है। श्रीकृष्ण के जन्म का समाचार सुनकर आकाश के देवता और धरती के सब नर-नारी आनन्दित होते हैं। घर-घर में खुशियाँ मनायी जाती हैं कि अवतारों के अवतार का जन्म हुआ है—

देव सभै हरखै सुन भूमहि,
अउर मनै हरखै नर-नारी।
मंगल होहि धरा धरि में,
उतरियो अवतारन को अवतारी ॥ ७६ ॥

'दशम ग्रन्थ' की 'कृष्णावतार' नामक रचना में बालक श्रीकृष्ण की बालोचित मनःस्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है—

भूख लगी जब ही हरि को,
तब पै जसुधा थन को तिनि चाहियो।
मात उठी न, भयो मन क्रोध,
तबै पग सों महि गोड कै बाहियो ॥
तेल धरिओ अरु घोउ भरिओ,
छुटि भूमि पर्‌यो जसु 'सयाम' सराहियो।
होत कुलाहल मधपुरी,
धरनी को मनो सभ शोक सु लाहियो ॥ १०४ ॥

बालक कृष्ण को देखने जानेवाली, कंस के द्वारा प्रेषित, गोपियों के शृङ्गार का चित्रण कृष्णावतार के रचयिता ने अति सटीक ढंग से किया है—

काजर नैनि दीए मन मोहत,
ईंगुर की बिंदुरी जु बिराजै।
टांड भुजान बन्ही कटि केहरि,
पाइन नूपर की धुनि बाजै ॥
हार गरे मुकताहल के गई,
नन्द दुआरहिं कंस के काजै।
बास सुबास बसी सभ ही तन,
आनन पै ससि कोटिक लाजै ॥ ८४ ॥

चीर-हरण लीला तथा ब्रज की ग्वाल-बालिकाओं के साथ क्रीड़ाओं का उल्लेख भी सुन्दर बन पड़ा है। गोपियाँ जब चीर-हरण का उलाहना पेड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण को देती हैं, तो श्रीकृष्ण कभी आलिंगन-चुम्बन का प्रस्ताव रखते हैं और कभी उन्हें जल से बाहर निकलकर नमस्कार करने को कहते हैं--

'देउँ बिना निकरे नहिं चीर' कह्यो
हँसि कान्ह 'सुनो तुम पिआरी'।
सीत सहो जल मैं तुम नाहक
बाहरि आवहु गोरी अउ कारी ॥
दे अपुने अगूआ पिछूआ कर
बारि तजो पलती अरु भारी।
'यों नहि देउं !' कहिओ हरि जी,
'तसलीम करौ कर जोरि हमारी' ॥ २५५ ॥

द्वितीय खण्ड 'रास-मण्डल' में श्रीकृष्ण तथा राधा का सौन्दर्य-निरूपण, मान-मनुहार, गोपियों की रूप-माधुरी, बंसी-वादन, रासलीला, केलि-क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन आदि के भावोत्तेजक चित्र प्रस्तुत हुए हैं। वृन्दावन की कुंज गलियों में राधा-कृष्ण की लुका-छिपी तथा ऐसी ही अन्य क्रीड़ाओं के मनोहारी दृश्य अंकित हुए हैं :

अति भागत कुंज गलीन बिचे,
ब्रिखभानुसुता को गहे हरि ऐसे।
कैधौं धवाइ धवाइ महां,
जमुना तटि हारत मानक जैसे।
पै चढ़ि कै रस है मन नैनन,
भउहं तनाइ कै मारत लैसे।
यौं उपजी उपमा जिम स्यार,
मनो जित लेत म्रिगी कहु जैसे ॥ ६६२ ॥

राधा का मान और श्रीकृष्ण का मनुहार करना 'रास-मण्डल' का विशेष प्रसंग है। राधा अपने भोलेपन के कारण शीघ्र ही मान जाती हैं और श्रीकृष्ण के सामीप्य से पुलकित हो उठती हैं। रोमांचित हुई वह मानों ठगी-सी रह जाती हैं—

ब्रिखभान सुता कबि सयाम कहै,
अति जो हरि के रस भीतर भीनी।
'री !' ब्रिजनाथ कह्यो हँसि कै,
छबि दाँतन की अति सुन्दर चीनी ॥

ता छबि की अति ही उपमा,
मन मैं जु भई कबि के सोउ कीनी।
जिऊँ घन बीच लसै चपला,
तिह को ठग कै ठगनी ठग लीनी ॥ ७४७ ॥

इस रचना का तृतीय खण्ड 'गोपी-विरह' तथा 'मथुरा-गमन' प्रसंग का है। इस खण्ड में ग्रन्थ-रचयिता की मौलिक उद्भावनाओं का परिचय मिलता है। घटनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप के साथ-साथ, लोकमंगल रूप को विशेष रूप से उभारने का यत्न किया गया है। विरह-चित्रण करते हुए मात्र गोपियों को ही तड़पते हुए न दिखाकर नन्द बाबा, यशोदा माता आदि को भी विरहाकुल अंकित किया गया है। उद्धव के प्रस्थान के पश्चात् गोपियों की तरह नन्द बाबा भी विह्वल हो उठते हैं—

जब 'नन्द' पर्यो गिरि भूमि बिखै,
तब याहि कह्यो जदुबीर अए।
सुनि के बतियाँ उठि ठाढ़ भयो,
मन के सभ सोक पराइ गए ॥

उठ कै सुधि सों इिह भाँति कह्यो,
'हम जानत' ऊधवि' पेच कए।
तज कै ब्रिज को पुर बीच गए,
फिरि कै ब्रिज मैं नहीं स्याम अए ॥ ८९५ ॥

• • •

कहि कै इिह बात पर्यो धरि पै,
उठि फेरि कह्यो संग ऊधव इोऊँ।
तजि कै ब्रिज स्याम गए मथुरा,
हम संग कहो कब कारनि कीऊँ ?

तुमरे अब पाइं लगों उठकै,
सुभई बिरथा सुकहो सभ जीऊँ।
तिह ते नहीं लेत कछू सुधि है,
मुहि पापि पछानि कछू रिसि सीऊँ ।।८९७।।

यही व्याकुल दशा यशोदा माता की भी है :

बारह मास रखियो उदरै महि
तेरहि मास भए जोऊ जईया।
पालि बडो जु कर्यो तब ही,
हरि को सुनि मै मुरलीधर भय्या ।।
तांही के काज किधौ त्रिपवा,
बसुदेव को कै सुत बोलि पठईया।
पै हमरे घट-भागन के घरि,
भीतर पै नहीं स्याम रहईया ।। ७९५ ।।

गोपी-विरह का वर्णन 'कृष्णावतार' में बारहमासा-शैली में हुआ है। चैत्र मास से लेकर फाल्गुन महीने तक ग्रन्थ-रचयिता ने वातावरण के अनुकूल विरह के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। अक्रूर श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए आते हैं। श्रीकृष्ण से गोपियों का बिछुड़ना उनके लिए निष्प्राण होने के बराबर है। वे तड़प उठती हैं :

जाही के संगि सुनो सजनी,
हमरो जमुना तटि नेहु भयो है।
तांही के बीच रह्यो गड कै,
तिह ते नहीं छूटन नैकु गयो है ।।
ता चलबे की सुनी बतीया,
अति ही मन भीतर सोक छयो है।
सो सुनीयै सजनी हम कउ तजि कै,
ब्रिज कउ मथुरा को गयो है ।। ७९९ ।।

विरह-दग्धा गोपियाँ वसन्त ऋतु के आगमन पर और भी उद्दीप्त हो जाती हैं। वसन्त ऋतु की सुगन्धित वायु, पुष्प-पराग के कण, प्रकृति की रोमांचकारी छबि आदि की मनोहारी झलक गोपियों के लिए जले पर तप्त तैल का कार्य करती हैं। उन्हें पक्षियों की चहचहाहट, कोयल की कू-कू और भी सालती है। विरह के ऐसे दृश्य अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं :

बास सुबास अकास मिली अरु
बासत भूमि महां छबि पाई।
सीतल मन्द सुगन्धि समीर
बहै मकरन्द निसंक मिलाई ।।
पैर पराग रही है बैसाख
सभै ब्रिज लोगन को दुखदाई।
मालिन कै बकसे रस को
टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई ।। ९१५ ।।

चतुर्थ खण्ड 'युद्ध-प्रबन्ध' में श्रीकृष्ण और उनके भाई बलराम का जरासन्ध की सेना के साथ युद्ध दिखाया गया है। जरासन्ध कई बार महाबली योद्धाओं को साथ लेकर विशाल सेना के साथ आक्रमण करता है, परन्तु हर बार पराजित होता है। अन्त में वह पकड़ा जाता है और श्रीकृष्ण दयावश उसे क्षमा कर देते हैं। 'युद्ध-प्रबन्ध' खण्ड का विशेष लक्ष्य जनमानस में वीर-भावना को उद्दीप्त करना है, ताकि वे अनाचारी और नृशंस शत्रुओं से लोहा ले सकें। श्रीकृष्ण और बलभद्र का योद्धा-रूप कितना मनमोहक है—

'राम' लीयो धनु पानि सँभारि,
धस्यो तिन मैं मनि कोपु बढ़ायो।
बीर अनेक हने तिह ठउर,
घनो अरि सिउँ तब जुद्ध मचायो ।।
जो कोऊ आइ भिर्यो बल सिउं,
अति ही सोऊ घाइनि के संग घायो।
मूरछ भूमि गिरे भट भूमि,
रहे रन मैं तिह सामुहे धायो ।। १७६२ ।।

• • •

कान्ह कमान लीए कर मै
रन मै जब केहरि जिऊँ भयकारे।
को प्रगटिओ भट ऐसो बली जगि,
धीर धरे हरि सों रन पारे ।।

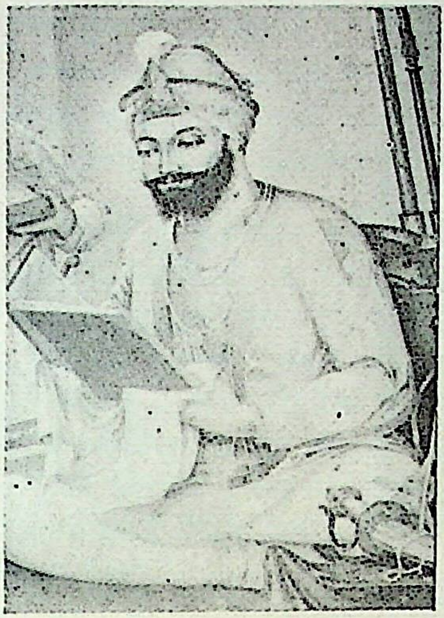

श्री गुरु गोविन्द सिंह : पूजा-आसन पर, पृ० ३८१

श्री उत्तम सिंह 'तेज', पृ० ३६२

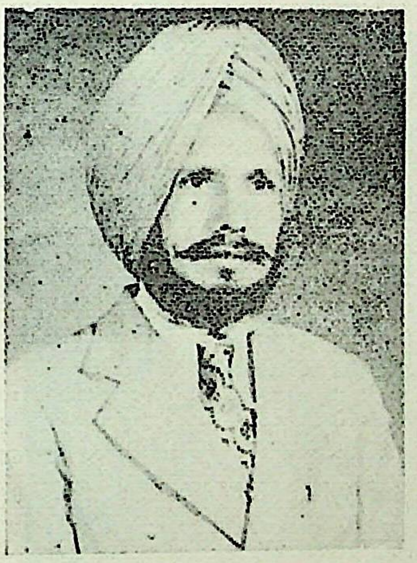

श्री साहिब सिंह 'अर्शी', पृ० ३४६

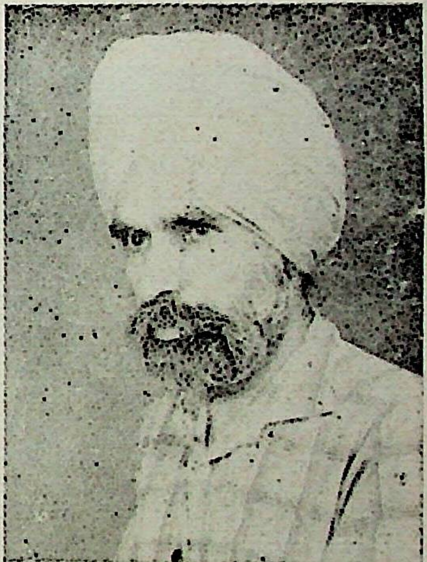

श्री धन्ना सिंह 'रंगीला', पृ० ४०८

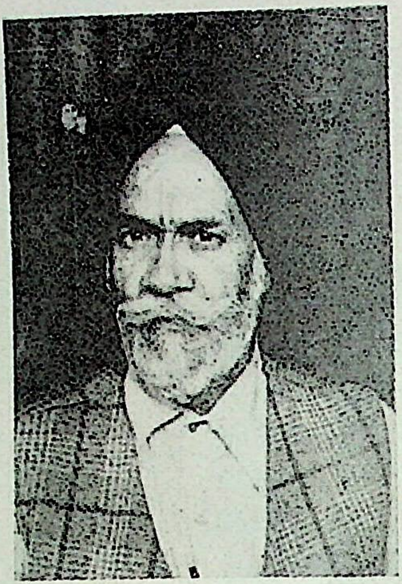

श्री प्यारा सिंह 'निरछल', पृ० ४१६

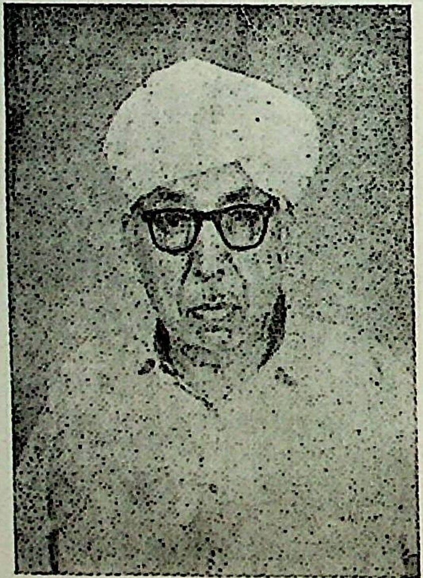

श्री शामदास 'आजिज़', पृ० ४५

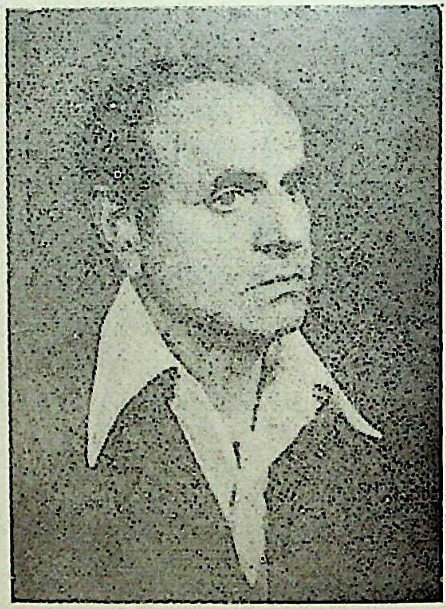

श्री रामलुभाया 'पदम', पृ० ४५०

अउर सु कउन तिहूँ पुर मै,
बल-स्याम सिऊँ बैर को भाऊ बिचारे।
जो हठ कै कोऊ जुधु करै,
सु मरै पल मै जम लोकि सिधारे ।।१७६३।।

'कृष्णावतार' के युद्ध-प्रबन्ध खण्ड में योद्धाओं की गर्वोक्तियाँ-व्यंग्योक्तियाँ, शस्त्रास्त्रों की टंकार तथा शब्दों के नाद-सौन्दर्य का अद्भुत आकर्षण पैदा करके रचयिता ने अपनी श्रेष्ठ काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त योद्धाओं का युद्ध-क्षेत्र में परस्पर अट्टहास तथा उपहास भी युद्ध की भीषणता को रेखांकित करता है—युद्ध-स्थल का दृश्य अति मार्मिक है, जिसमें योद्धाओं की गर्वोक्तियाँ मुखरित हुई हैं—

पारथ हेरि हसिओ सुनि बैन
चल्यो मन भीतर कोप भर्‍यो।
धनु बान सँभारि कै पानि लीयो
ललकारि परिओ न रतीकु जर्‍यो ।।
उत ते खड़गेस भयो समुहै
अति बानन के दुहूँ जुध कर्‍यो।
तब पारथ सिऊँ लरबे तजिके
त्रिप भीम के ऊपरि धाइि पर्‍यो ।।१६२०।।

खड्गसिंह योद्धा हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर विपक्षी योद्धाओं पर वार करते हैं। शूर-वीरों के वस्त्र रक्त की लाली से इस तरह रँगे हुए हैं, मानो फाल्गुन के महीने में फाग खेल रहे हों—

बान चले तेई कुंकम मानहु,
मूठ गुलाल की संग प्रहारी।
ढाल मनो डफ माल बनी,
हथानल बंदूक छुटै पिचकारी ।।
स्रउन भरे पट बीरन के,
उपमा जनु घोर के केसर डारी।
खेलत फागु कि बीर लरै,
नवलासी लीए करवार कटारी ।।१३८५।।

'कृष्णावतार' के अन्त में ग्रन्थकार ने अनेक फुटकर प्रसंगों को लेकर श्रीकृष्ण के उदार, उदात्त, सुभट, सुकीर्त पौराणिक एवं परम्परागत पक्षों को उद्दीप्त किया है। यहाँ रचनाकार अपने अभीष्ट-सिद्धि हेतु श्रीकृष्ण के सभी जीवन-पक्षों का आश्रय लेकर अपने लक्ष्य का संकेत भी करता है—

हे रवि! हे ससि! हे करुनानिध!
मेरी अबै बिनती सुन लीजै।
अउर न माँगत हउ तुम ते कछू
चाहत हउ चित मैं सोई कीजै ।।
सत्रुन सिउ अति ही रन भीतर
जूझ मरो कहि साच पतीजै।
सन्त सहाइ सदा जग माह
क्रिपा करि स्याम इहै बरु दीजै ।।१९००।।

अस्तु 'कृष्णावतार' के रचयिता ने श्रीमद्भागवत-पुराण की दशमस्कन्ध की कथा को लेकर अपनी नवीन उद्भावनाओं से इसे युगानुरूप बनाकर जनसामान्य के लिए प्रेरणा का स्रोत बना दिया है।

'भ्रमर-गीत' प्रसंग में इनकी गोपियाँ उद्धव को निरुत्तर कर देती हैं। वे अपनी ज्ञान की गठरी बाँधकर जब वापस मथुरा लौटते हैं, तो गोपियाँ उनके हाथ श्रीकृष्ण को अपना प्रेम-सन्देश भेजती हैं। गुरु गोविन्दसिंह की यह एक नवीन उद्भावना है, जिसमें उद्धव-गोपी-संवाद के पश्चात् पराजित उद्धव गोपियों के दूत बन जाते हैं। उन्हें सान्त्वना देते हुए वे श्रीकृष्ण को पुनः ब्रज में ले आने का विश्वास दिलाते हैं—

जाइि कै हउँ मथुरा मै सखी,
हरि ते तुम ल्यैबे को दूत पठैहौं।
बीतत जो तुम पै बिरथा,
सभ ही जदुराइि के पास कहैहौं ।।
कै तुमरी बिनती उहवै बिधि,
जा रिझिहै बिधि ता रिझवैहौं।
पाइिन पै कबि स्याम कहै हरि,
को ब्रिज भीतर फेरि लियैहौं ।। ९३२ ।।

'दशम ग्रन्थ' के 'कृष्णावतार' की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें श्रीकृष्ण के साथ राधा का सान्निध्य आरम्भ से बन जाता है और ग्रन्थ के अन्त तक चलता है। इस प्रकार ग्रन्थ-रचयिता ने श्रीकृष्ण और राधा की जीवन-सम्बन्धी अन्यान्य घटनाओं को तो परम्परा से ग्रहण किया है, किन्तु ग्रन्थ के लगभग आधे से भी अधिक भाग में विस्तृत युद्ध-प्रबन्ध में मौलिकता का परिचय देकर नवीन उद्भावनाओं के द्वारा कृष्ण-कथा को युगीन प्रेरणा का स्रोत बना दिया है।

श० सि०

गुरु तेगबहादुर

सिख-पन्थ के नवम गुरु तेगबहादुर का जन्म संवत् १६७८ विक्रमी में गुरु हरगोविन्द के घर हुआ था। यह पंचम गुरु अर्जुनदेव के पौत्र थे। अर्जुनदेव के समय से ही सिख-समुदाय परिस्थितिवश धर्म और राजनीति में समान उत्साह दिखाने लगा था। अतः गुरु तेगबहादुर को भक्ति, शक्ति, विद्या, धृति एवं बलिदान-भावना दयरूप में ही प्राप्त थी। यह परिवार में सबसे छोटे होते हुए भी, अपने गुणों के कारण गुरु-पद पर आसीन हुए थे। संयोग की बात है कि मदान्ध मुगल-सम्राट् जहाँगीर के हाथों जिस प्रकार गुरु अर्जुनदेव शहीद हुए उसी प्रकार जहाँगीर के पौत्र औरंगजेब के हाथों गुरु अर्जुन के पौत्र गुरु तेगबहादुर का बलिदान संवत् १७३२ विक्रमी में हुआ। ये एक तेजस्वी सन्त और धर्म-योद्धा थे। इनकी वाणी में ज्ञान और भक्ति का मधुर संयोग है। गुरु अर्जुनदेव द्वारा आदिग्रन्थ के सम्पादन का जो कार्य आरम्भ हुआ था, उसे गुरु तेगबहादुर ने पूरा किया। इनकी रचना में निर्गुण भक्ति के साथ-साथ सगुण भक्ति का स्वर भी समन्वित है। इन्होंने ग्रन्थ में नानक छाप से ही अपनी रचनाएँ रखी हैं। एक पद देखिये :

हरि के नाम बिना दुख पावै।
भगति बिना सहसा नहि चूकै,
गुर इह भेद बतावै।
जोग जाप निहफल तिह मानौ,
जो प्रभु जस बिसरावै।।
मान मोह दोनों कऊ परिहरि
गोविन्द के गुन गावै।
कहु नानक इह विध कौ प्रानी,
जीवन मुक्त कहावै।।

रा० प्र०

गुलाब

गुलाब कवि का जीवन-वृत्त अप्राप्त है। सत्रहवीं शताब्दी में रचित इनका 'रुक्मिणी-मंगल' नामक लघु ग्रन्थ तत्कालीन भक्ति-प्रवृत्ति और भाषा-स्थिति का सम्यक् परिचायक है। उस युग में, विशेषतः पंजाब में भक्तिकाल की रचना हिन्दी में स्वल्प परिमाण में ही हो रही थी, पुराण-अनुगामी संस्कृत-ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा अधिक थी। गुलाब कवि ने इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए 'भाषा' में भक्ति-रचना करने का समर्थन इन शब्दों में किया है—

जौ भाषा यहि नहि भली, तौ गुन है इस माहि।
कीरति हरि की सौं मिली, तीन लोक जो नाहि।।

इसी दृष्टिकोण से इन्होंने सरल-सरस ब्रजभाषा में 'रुक्मिणी-मंगल' की रचना की।

एक छन्द देखिये :

कँवल-नैन केसी-हरण, गिरधारी पग प्रीत।
इस गुलाब को कामु नहि, अवरन स्यों सुनि मीत।।

रा० प्र०

गुलाबसिंह

निर्मला पन्थ के उद्भट विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ साधु गुलाबसिंह का जन्म संवत् १७६९ विक्रमी में गाँव सेखव, जिला लाहौर में हुआ था। इनकी माता का नाम 'गौरी' एवं पिता का नाम 'जगराय' था। इन्होंने कई वर्षों तक काशीवास करके संस्कृत का ज्ञान

प्राप्त किया। कहा जाता है कि यह गुरु गोविन्दसिंह के अनुरोध पर वहाँ गये थे। वहाँ से लौटकर इन्होंने कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध महात्मा मानसिंह से गुरु-दीक्षा ग्रहण की और उन्हींकी प्रेरणा से अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया। इस सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य से भी अनेक संकेत प्राप्त होते हैं—

क. एक ओर ऐरावती, द्वितीय बिपाशा जान।
सेखव नगर सुमध्य तिन नगरिनि में प्रधान॥
तहँ उपजे, वाराणसी पढ़ै सु विद्या जाय।
भविष्य अर्थ प्रकाश यहि कियो ग्रन्थ सुखदाय॥
(स्वप्नाध्यायी, छन्द ५८, ५९)

ख. गउरी श्री सुभ माता पिता जगराय नाम।
गुलाबसिंघ मतिमान भयो सुत ताको धाम॥
पुर सेखव कुरखेत बास सुभ सन्त मनाए।
प्राची कूल सु तीरथ नीर सरसती छाए॥
(अध्यात्म रामायण)

ग. जा पद पंकज नीर लहि, बन्धन दए निवारि।
मानसिंघ गुरु को नमो, तपो गिआन अवतार॥

इनकी रचनाओं की संख्या २०, २५ तक बतायी जाती है, परन्तु गोस्वामी तुलसीदास की भाँति इन्हें भी कतिपय विद्याभिमानी और ईर्ष्यालु पण्डितों का कोप-भाजन बनना पड़ा। फलतः इनकी अनेक रचनाएँ नष्ट हो गयीं। इस समय इनकी पाँच पुस्तकें उपलब्ध हैं—१. भावरसामृत (१८३४ वि०), २. मोक्ष-पन्थ (१८३५ वि०), ३. अध्यात्म रामायण (१८३९ वि०), ४. प्रबोध-चन्द्रोदय तथा ५. स्वप्नाध्यायी (१८४९ वि०)। इनमें से 'भावरसामृत' ही इनकी मौलिक काव्यकृति है। शेष चारों रचनाएँ संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद-रूप में लिखी गयी हैं।

कवि गुलाबसिंह की कविता मूलतः भक्ति-भाव-प्रेरित है। सरस्वती की वन्दना करते हुए इन्होंने लिखा है—

देवी माता सारदा सरद इन्दु सम हास।
बन्दौं पद पंकज सदा करो सुमति परकास॥

कुछ अन्य भक्तिपरक पद इस प्रकार हैं—

क. या जग मैं जिनके पद पंकज,
सेवत नित्य सुरेस्वर भारी।
और सुरगन सेवत है अरु,
जाहि भजैं भव मैं मुख चारी॥
तात भजे जगमात भजे,
पुनि जाहि मनाइ जितै त्रिपुरारी।
सो जननायक होहु प्रसन्न,
गहे पद बन्दन भेंट हमारी॥

ख. भलो बुरो अध्यासहि जोइ।
राग द्वेष को कारन सोइ।
सो यह भलो बुरो अध्यास।
निखिल द्वैत ते भयो प्रकास॥
सरब अनरथ लहै नर तौ लौ॥

ग. पद जाहि भजे क्रितकारज होइ
सूख भरे सब दूख गए हैं।
सब लोकन मैं जस पूर रहै, कुल
सुद्ध भई जिह माँहि जए हैं॥
तन औ मन चीत उपाधि बिना,
घन सैधव सै चिद रूप भए हैं।
हम ता जननाइक के कर जोर सु,
सीस निवाइ के पाइ पए हैं॥

घ. गहि अपरोक्ष ज्ञान, मनो नास क्षय वासना।
जीवन मुक्ति सुजान, होवै भाखी प्रकट यहि॥
साधन जीवन मुक्ति जो, हरि गुरु पाद मनाइ।
गुलाबसिंघ या मैं कही, यतन करो सुख पाइ॥

रा० प्र०

गुलाम हुसैन

गुलाम हुसैन उपनाम मियाँ हुसैन पाकिस्तान में स्थित चनाब (झनां) नदी-क्षेत्र के निवासी थे। इनकी दो सीहर्फियाँ 'हीर-हुसैन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाषा अति मधुर और आकर्षक है। कविता में विरह और प्रेम की तड़पन व्याप्त है। 'सीहरफी-क्या, यह तो साक्षात् इश्क का बाग है।' ऐसा पंजाबी भाषा के प्रसिद्ध इतिहासकार बाबा बुद्धसिंह का विचार है। नायक और नायिका की विभिन्न संयोग-क्रीड़ाएँ, उपालम्भ और हास-परिहास शृङ्गार-रस की अनुपम सृष्टि करते हैं। गुलाम हुसैन की 'सीहरफी' पंजाबी काव्य-जगत् में अद्वितीय है और शिरोमणि भी। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध इस कवि का एक 'बारांमाहा' प्रसिद्ध है जो पंजाबी भाषा में रचित बारांमाहा-काव्य का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। यह कार्तिक महीने से आरम्भ होकर आश्विन में समाप्त होता है। इस रचना से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

छन्द

मंघर चड़े सो सरदी होई।
बंदी ब्रिहों ने बंन्ह परोई ॥
पंडत लगन विचारो कोई।
शिआम नू ऐडी देर क्यों होई ॥
तैनूं रामचन्द दी दोही।
झूठ न बोलना ॥ १ ॥

देखीं खोल पत्तरे सारे।
देंदी थाल मोतीआं वारे ॥
कब घर आवण शिआम हमारे,
मैं तां हार गई ॥ २ ॥

रीझां मर गई शिआम नहीं आइआ।
पंडत कोलों मता ना पाइआ ॥
पापी झूठा सुखंण सुनाइआ।
मेरा पुछ के मन पछताइआ ॥
उलटा लगा फिकर सुआइआ,
सोहणे लाल दा ॥ ३ ॥

सोहणे लाल नूं किकुर लिआईए,
आगिआ पीर मुरशदी पाईए ॥
जोगण हो के ढूंढण जाईए,
सईओ ? अंग विभूत रमाईए ॥
जा दरवाजे अलख जगाईए,
बूहे शिआम दे ॥ ४ ॥

दोहरा

बैठी धूआं धत्त के, लै पीर मुरशद दा नाम।
गुलाम हुसैन तप जोणसां, जब मुझ मिले शिआम ॥
अज्ज मिले मुहि शिआम जी, होई बहुत अनंद।
गुलामसैन पीआ पा गए, दिल नू बहुत उमंग ॥१२॥

चलत असू के चलत ही, कीए बारां मास।
आए सुन्दर शिआम जी, मन की पूरी आस ॥
आईआं सभे गोपीआं, दरसन करने हेत।
ऐसे सुन्दर शिआम का, किसे ना पाइआ मेत ॥

'अगहन का शीतकालीन महीना शुरू हो गया है, विरह के कारण विरहिणी बन्दी बन गयी है। वह पण्डित से लगन (मन्त्र) विचार कर भगवान् श्रीकृष्ण के उसके पास न आने का कारण जानना चाहती है। वह पण्डित को रामचन्द्र की शपथ देकर कहती है कि मेरे साथ झूठ नहीं बोलना। वह उसे ठीक तरह से ज्योतिष आदि लगाने के लिएं कहती है, इसके लिए वह पण्डित को मोती आदि देने का वचन भी देती है। इस प्रकार वह श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती रहती है और स्वयं को पराजित-सी अनुभव करती है। भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उसकी सभी

प्रेम-सम्बन्धी अभिलाषाओं का अन्त हो गया है। पण्डित भी श्रीकृष्ण के न लौटने का कारण नहीं बता सका। वह पश्चात्ताप करती है कि व्यर्थ में ही उसने पण्डित से ज्योतिष लगवाया। उस झूठे और पापी पण्डित ने तो झूठी बातें ही बतायीं। अब तो उसे श्रीकृष्ण के लौटकर न आने की चिन्ता लग गयी है। वह श्रीकृष्ण को लौटा लाने की युक्ति जानना चाहती है, ऐसी युक्ति उसे कोई पीर अथवा गुरु बता दे। कभी वह अन्य ग्वाल-बालिकाओं से परामर्श करती है कि योगी बनकर उसे ढूंढ़ने चलना चाहिए। वह अन्य सखियों को साथ लेकर श्रीकृष्ण के द्वार पर अलख जगाकर उसके दर्शन करना चाहती है।

वह विरहिणी योग धारण करके धुनी रमाकर अपने पीर व मुरशिद का नाम आलाप करती हुई श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी है। वह कहती है कि श्रीकृष्ण के साथ मिलाप होने से उसका जीवन सार्थक बन सकता है।

वह कहती है कि यदि आज मुझे श्रीकृष्ण मिल जायँ तो बहुत आनन्द होगा। गुलाम हुसैन कवि का कथन है कि विरहिणी के हृदय में अपने प्रियतम को पाने की उत्कट इच्छा है। पौष का महीना व्यतीत होने पर उसे श्रीकृष्ण के साथ मिलाप की आशा बँध गयी है। वर्ष के बारह महीने पूरे होने पर श्रीकृष्ण उसके पास आ गये हैं और उसके मन की कामना पूरी हो गयी है। सभी ग्वाल-बालिकाएँ श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए आ गयी हैं। अन्त में भक्त कवि कहता है कि श्रीकृष्ण की अद्भुत लीला है। उसका रहस्य कोई भी नहीं जान पाया।'

श० सिं०

गोविन्ददास

गोविन्ददास मूलतः एक उदासी महात्मा थे, किन्तु इनकी भक्त आत्मा पूर्णतः कृष्णार्पित रही। इनका स्थान चिनाब नदी के किनारे 'आमातपुर' अथवा 'अमातपुर' नामक गाँव था, जैसा कि इन्होंने अपनी प्रायः प्रत्येक रचना के अन्त में सूचित किया है—

क. सेम दिवस आमातपुर, चन्द्रभाग तट पूज।
(मनुस्मृति-भाषा)

ख. पूरब को अमात चन्द्रभागा के किनारे ·····।
(महिम्न भाषा-प्रबन्ध)

ग. ·········पुर अमात मो थान।
महानदी श्री चन्द्रभाग तट, प्रभुपद पदम पुरान।
(विष्णुसहस्रनाम)

घ. सरता हरता अघ चन्द्रभगा तट,
एक अमातपुरी सुभ वासा
(राम-हृदय-भाषा)

ये अपने समय में इतने विख्यात ज्ञानी तथा भक्त थे कि लोग इन्हें 'परमहंस' के नाम से सम्बोधित करते थे। इन्होंने स्वयं अपनी विभिन्न रचनाओं में 'परमहंस' के रूप में स्वनाम-निर्देश किया है। यथा—

'परमहंस गोविन्द के, राखो हृदय मँझार।'

इनका रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरांश एवं बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश है। इनकी निम्नलिखित ग्रन्थ-सूची से यह स्पष्ट हो जाता है :

१. श्री रामहृदय भाषा (१९०५ वि०), २. श्री रामगीता (१९१५ वि०), ३. भगवत्-प्रभाव (१९१५ वि०), ४. महिम्न भाषा-प्रबन्ध (१९१६ वि०), ५. विष्णुसहस्रनाम (१९१६ वि०), ६. श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा (१९२२ वि०)।

प्रथम दोनों ग्रन्थ रामभक्ति-विषयक हैं तथा अन्य सभी कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध हैं। इनके भक्ति-परक विभिन्न छन्दों में कृष्ण-चरण-सर्मपित हृदय की उद्दाम ललक शब्द-रूप में उमड़ पड़ी है—

क. नाम ललाम सहस्त्र स्याम को, ग्राम ग्राम अघनासी।
सुनत सुनावत गावत ध्यावत, पावत पुरख प्रकासी ॥

ख. नाम ललाम ललाम कृष्ण कै, सुन्दर सुमन समूहा।
तिन फूलै फूलन की माला, जगमग ज्वाला व्यूहा ॥
ललक ललक लाटा लसकै जित, अस सुभ माल बनाई।
परमहंस गोविन्ददास नै, कृष्णचन्द्र गल पाई ॥

ग. कमलनैन सुख चैंन सैन से, सैन मैनता हारी।
मंद-मंद मुसकात मनोहर, नंद-नंद सुखकारी ॥
अंग-अंग सों रंग-रंग कै, भल-भल भूषन भ्राजै।
परमहंस गोविन्ददास उर, सो सद वसन विराजै ॥

घ. प्रणव-प्रणव श्री प्रणव को, परमातम पद ध्याइ।
परमहंस गोविन्द जन, केसव कीरति गाइ ॥

ङ. जिनकी कृपा कटाक्ष ते, कलि के कलुष निरास।
वह गुपाल गिरिवर धरन, प्रणवों गोविन्ददास ॥

रा० प्र०

(पण्डित) घनैयालाल मौजी

घनैयालाल 'नवांकोट' (अमृतसर) के निवासी थे। रेलवे-विभाग में लम्बी अवधि तक नौकरी करने के बाद ये सेवा-मुक्त हुए। मौजी ने 'कृष्ण-सुदामा' नाम की एक रचना आजाद बुक डिपो, अमृतसर से प्रकाशित करायी थी।

सुदामा की पत्नी निर्धनतापूर्वक जीवन व्यतीत करती है। उसकी दशा अन्यत दयनीय हो जाती है। इससे विवश होकर वह अपने पति सुदामा के समक्ष व्याकुल होकर मुखरित हो उठती है—

(१)

कई दिन बीते अन्न खाहदिआ नूं बच्चे,
मुख्ख दे नाल शोर मचान लग्गे।
अम्मां दियो भोजन बाबा दियो रोटी,
बाल भुख्ख हथ्थों कुरलान लग्गे ॥
जिहड़े मुखड़े फुल्लां वांग टहकनें,
गर्मी मुख्खदी नाल मुरझान लग्गे।
रोंदे वेख जिगर दे टुकड़िआं नूं,
हंजू अख्खां दे विचों जान लग्गे ॥
किहड़ी हो गयी 'मोजियां' भुल्ल
साथों जिहड़ी सानूं गरीबी सतान लग्गी।
वेखी भां तो जाई न इिह हालत,
फड़े चरन ते मुहों सुनाण लग्गी ॥

सुदामा की पत्नी दरिद्रता से विवश होकर अपने पति से कहती है कि 'कई दिन व्यतीत हो गये हैं, बच्चों ने भोजन नहीं किया। वे अब भूख के कारण शोर मचा रहे हैं। वे अब भोजन माँगते हैं और भूख से कुरलाहट भी कर रहे हैं। वे बच्चे जो फूलों के समान अति कोमल थे अब गर्मी और भूख से मुरझा गये हैं।' वह आगे कहती है कि 'मुझसे अपने दिल के टुकड़ों अर्थात् बच्चों को भूख के कारण रोते हुए नहीं देखा जाता।' वह कहती है कि 'सम्भवतः हमसे कोई बहुत बड़ी भूल हो गयी है, जो हम गरीबी के कारण दुःखी हैं। मुझसे बच्चों की यह दयनीय दशा देखी नहीं जाती। अतः वह सुदामा के चरण पकड़कर उसे कुछ उपाय करने के लिए कहने लगी।'

(२)

क्रिशन यार मेरा बेशक प्राण प्यारी,
पर दौलतमंद गरीब दा यार नाहीं।
दौलतमंद दाहर कोई भरे पानी,
ते गरीब दा करे एतिबार नाहीं ॥
यार जिहया न मतलबी जग उत्ते,
यार जिहया ही कोई मददगार नाहीं।
यार यार तों जान कुर्बान करदा,
झूठा यार मेरा क्रिशन मुरार नाहीं ॥
तेरे कहन ते दवारका चला जांना,
झोली जा के आप मैं अड़नी नाहीं।

खुशी नाल दित्ता ते मैं लै लवांगा,
आन 'मौजिया' आपनी घड़नी नाहीं ॥

सुदामा अपनी पत्नी को श्रीकृष्ण के बिषय में बताते हुए कहते हैं 'निःसन्देह श्रीकृष्ण मेरा बाल-सखा है, परन्तु धनवान् तथा निर्धन का कोई रिश्ता नहीं होता। गरीब व्यक्ति का इस संसार में कोई भी विश्वास नहीं करता, जबकि धनवान् के साथ हर कोई सम्बन्ध बनाना चाहता है। मित्र के समान इस संसार में कोई स्वार्थी नहीं होता, परन्तु मित्र के समान कोई दूसरा सहायता करनेवाला भी नहीं होता। एक अच्छा मित्र अपने मित्र के लिए जरूरत पड़ने पर अपने प्राणों की बाजी भी लगा सकता है और श्रीकृष्ण तो मेरा अच्छा तथा सच्चा मित्र है। तेरे कहने पर मैं श्रीकृष्ण के पास द्वारका चला जाता हूँ, परन्तु मैं उसके पास जाकर आँचल नहीं फैलाऊँगा। यदि श्रीकृष्ण ने मुझे अपनी इच्छा से कुछ दिया तो स्वीकार कर लूंगा, परन्तु मुझे अपना सम्मान नहीं खोना है।'

अन्ततः सहमत होकर वे द्वारका जाते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण के पास कुछ समय व्यतीत करके जब वे अपने घर लौटते हैं तो उसका वैभव देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं—

(३)

आखर पहुँच गया नगर आपने विच,
गल्लां वेखदा बहुत निआरीआं ने।
जिथ्थे झुग्गी गरीब ने पाई होई सी,
ओथ्थे दिसदे महल ते माड़ीआं ने ॥
जिथ्थे दिनें रातीं मिट्टी उडदी सी,
ओथ्थे दिसदे फुल फुलवाड़ीआं ने।
कोहिदा नज़र बच्चे अज्ज आंवदे नहीं,
न ओह दिसदीआं झुग्गीआं पिआरीआं ने ॥
मेरे पिछों कोई धनवान आके,
मेरी जगह ते कबज़ा जमा बैठा।
मिली इक न दमड़ी दवारका चों,
जो कुझ है सी ओह वी गवाँ बैठा ॥

'श्रीकृष्ण से मिलकर सुदामा अन्ततः जब अपने घर लौटता है, तो बहुत परिवर्तन हुआ देखता है। जिस स्थान पर उसकी छोटी-सी कुटिया थी, वहाँ वह भव्य महल बना हुआ था। जिस स्थान पर आठों पहर मिट्टी उड़ती थी, वहाँ पुष्पाच्छादित वाटिकाएँ हैं। सुदामा को अपने बच्चे भी नजर नहीं आते और न ही उसकी प्यारी कुटिया ही दिखाई देती है। उसे लगता है कि उसकी अनुपस्थिति में किसी धनवान् ने उसकी कुटिया तथा सारी जगह पर अधिकार कर लिया है। वह पछता रहा है कि श्रीकृष्ण से भी कुछ नहीं मिला और जो उसके पास था, वह भी चला गया। वह विचित्र दुविधा में पड़ा हुआ है।

श० सिं०

(पण्डित) चक्रधर 'बेज़र'

पण्डित चक्रधर 'बेज़र' का जन्म पाकिस्तान के जिला सियालकोट के गाँव 'संखत्रा' में सन् १८९८ ई० में हुआ था। बाल्यकाल में ही ये अपने मामा श्री मुनीलाल 'प्रेम' के पास चौक पासियाँ, कूचा आचारजां, अमृतसर में आ गये। श्री मुनीलाल 'प्रेम' आपके काव्य-गुरु भी थे। 'प्रेम' जी महाराजा रणजीत सिंह के पुरोहित थे और उन्हें आवासीय मकान भी उन्हींकी ओर से दान में मिला हुआ था। श्री मुनीलाल 'प्रेम' की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। अतः वे 'बेज़र' को पुत्र-तुल्य ही मानते थे। पण्डित चक्रधर 'बेज़र' का गृहस्थ-जीवन सुखमय नहीं रहा, क्योंकि ये अफ़ीम खाने और शराब पीने के आदी थे। इनकी एकमात्र सन्तान का नाम जोगिंद्रपाल थे, जिसने बेकार और आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया। पण्डितजी पुत्र के आलस्यपूर्ण जीवन से सतत चिन्तित रहते थे।

अमृतसर-निवासी यह स्टेजी कवि ज्योतिष-विद्या में भी सिद्धहस्त था। इन्होंने ज्योतिष-विद्या का विधिवत् ज्ञान पण्डित हरदत्त शास्त्री से प्राप्त

किया था। अपने मामाजी के मरणोपरान्त पण्डित चक्रधर 'बेज़र' पुरोहिती का धन्धा करते रहे। 'आचारज' लोग किसी व्यक्ति के देहावसान पर पूजा-पाठ एवं क्रिया-कर्म आदि का कार्य किया करते थे। पण्डित चक्रधर 'बेज़र' का पुत्र निःसन्तान रहा। उनकी एक बहन पंजाब के फगवाड़ा नगर में रहती हैं। श्री जोगिन्द्रपाल 'सेवक' आज भी अमृतसर नगर के इसलामाबाद मुहल्ले में रहते हैं और प्रसिद्ध स्टेजी कवि हैं। आपका कथन है कि 'बेज़र' के समय में कवि-दरबारों का केन्द्र अमृतसर में बिजल पहलवान का अड्डा हुआ करता था। पण्डितजी को संगीत-विद्या से भी गहरा लगाव था। पण्डित मायाधारी आपके संगीत-गुरु थे। श्री जोगिंद्रपाल 'सेवक' के कथनानुसार 'बेज़र' का देहावसान सन् १९६६ ई० में अमृतसर में ही हुआ।

पण्डित चक्रधर 'बेज़र' पंजाबी, उर्दू और हिन्दी भाषाओं के ज्ञाता थे, परन्तु काव्य-रचना के लिए आपने पंजाबी भाषा को ही अपनाया। 'बेज़र' की प्रसिद्ध काव्य-कृतियों में से 'सुन्दर रामायण' अत्यन्त लोकप्रिय है। इसका प्रकाशन गुरुमुखी तथा देवनागरी लिपियों में दुर्गा प्रेस, चौक पासियाँ, अमृतसर से हुआ था, परन्तु अब यह अप्राप्य है। 'सुन्दर रामायण' में युद्ध-स्थल में रावण-पक्ष के कुम्भकरण तथा भगवान् रामचन्द्र के मध्य हुए शस्त्र-प्रहार का दृश्य इस कवि के काव्य-कौशल का प्रमाण है—

कटा-कट होई फटा-फट ओथे,
खटा-खट पई तेज़ तलवार चल्ले।

चटा-चट बानर झटा-झट राकश,
सटा-सट करदे अपणे वार चल्ले॥

कुंभकरण होइआ मारन मरन उत्ते,
ओहदों लखण दी पई कटार चल्ले।

अपने धनख नूं खिच के कंन तीकर,
रामचन्दर करदे मारो-मार चल्ले॥

कुंभकरन तद झपटिआ राम उत्ते,
रामचन्दर भी झट तयार होए।

बदल-बदल के अपणे पैंतड़े नूं,
पिआ वार उत्ते ओथे वार होए॥

पण्डित चक्रधर 'बेज़र' ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में श्रद्धा व्यक्त करते हुए भजन लिखे हैं, जो अत्यन्त लोकप्रिय तथा सरस हैं। आपके ये भजन देवनागरी, गुरुमुखी तथा फ़ारसी लिपियों में—'अमीरसिंह पुसतकांवले, बाज़ार माई सेवां, अमृतसर' से प्रकाशित होते रहे। इनकी भाषा पंजाबी ही है। 'भजनामृत, बेज़र दे भजन, चक्रधारी कीर्तन (देवनागरी में), नवें-नवें भजन, दरोपदी सवंबर (गुरुमुखी लिपि में)' और 'मोतीचूर भजन, रसभरे भजन तथा दरोपदी-लीला (फ़ारसी लिपि में)' प्रकाशित हैं। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध आपकी 'ऊषा अनरिध' नामक कृति अत्यन्त सरस और लोकप्रिय है। यह रचना 'हरभजन सिंह हरचरन सिंह पुसतकांवाले, बाज़ार माई सेवां, अमृतसर' से सन् १९५३ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसकी अन्य विशेषता गद्य-पद्य-मिश्रित होना है। 'बाणासुर' पराजित होकर भगवान् कृष्ण के सम्मुख क्षमा-याचना करता है :

जित्ती सैन क्रिशन जी लिआ बणासुर घेर।
हथ्थ जोड़ के बोलिआ बीर बणासुर फेर॥

मैनूं मारो मूल ना मैं आतर ते दीन।
'बेज़र' मंना आप दी जेहड़ी आखो ईन॥

आपकी कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध 'द्रोपदी-सवंबर' नामक रचना से कुछ अंश प्रस्तुत हैं :

दोहरा

होईआं खूब तिआरीइं द्रुपद दी नगरी आण।
सुणिआ नगर निवासीआं डाढ़ी खुशी मनाण॥
होई सजावट शहिर दी बझ गए बंधनवार।
द्रुपद दी पुरी दी हो गई सोभा अपर अपार॥

इन्द्र पुरी तों वध गई द्रुपद पुरी दी शान ।
विच विमानां बैठ के देवना देखन आन ।
घर-घर वज्जे ढोलकी कुड़ीआं गावण गीत ।
करदे देसा चाल नूं नाले कुल दी रीत ॥

'बेज़र' के मन में सदा श्रीकृष्ण की छवि बसी रहती है। वे प्रभु के सामने श्रद्धायुक्त खड़े रहते हैं।

निस दिन दिल विच वसदा सुन्दर शाम मुरार ।
'बेज़र' दो हथ्थ जोड़दा खला ओस दे दवार ॥

पण्डित चक्रधर 'बेज़र' अमृतसर के ऐसे स्टेजी कवियों की परम्परा से सम्बन्ध रखते हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण तथा भगवान् रामचन्द्रजी के जीवन को आधार बनाकर ऐसी लोकप्रिय काव्यकृतियाँ रचीं, वे आज भी उनके शिष्यों तथा जनसाधारण में इन युग-पुरुषों के लिए श्रद्धा एवं आध्यात्मिक आस्था की साक्षी बनी हुई हैं।

श० सिं०

चतरदास

चतरदास का जीवन-काल सन् १५९५ से १६५६ ई० तक माना गया है। ये गुरु सन्तदास के शिष्य थे। उनकी आज्ञा का पालन करके इन्होंने श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध का दोहा-चौपाई-शैली में भाषानुवाद सन् १६३५ ई० में पूरा किया था। यह अनुवाद हिन्दी-भाषा में है, फिर भी इसमें पंजाबी-भाषा की मधुरता को भलीभाँति देखा जा सकता है। चतरदास का काव्य-कौशल प्रशंसनीय है। छोटे-से छन्द (बहर) में भावों की सघनता देखी जा सकती है। शब्दावली चाहे सर्वसामान्य ही हो, परन्तु भाव-वैशिष्ट्य देखते ही बनता है। इन्होंने पंजाबी-भाषा में कृष्ण-चरित से सम्बद्ध फुटकर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने श्रीकृष्ण के परलोक सिधारने के प्रसंग को लेकर मानवमात्र के लिए त्याग और मोहरहित होने का सन्देश दिया है और उनका नाम-स्मरण करके हर तरह के पाप से मुक्त होने का तथ्य मार्मिक शब्दों में प्रतिपादित किया है। भक्त-कवि की मान्यता है कि श्रीकृष्ण अवतारी महापुरुष हैं, सब देवताओं में शिरोमणि हैं और ब्रह्मा आदि देवता भी उनके सेवक हैं। वे धरती के पापरूपी भार को दूर करने के लिए अवतार धारण करते हैं। अन्त में श्रीकृष्ण का उद्घोष है कि जो-जो प्राणी उनके सच्चे भक्त बनकर भक्ति में लीन रहते हैं, वे सब कृष्णलोक में प्रवेश करते हैं। जो कृपानिधान की आराधना करते हैं, उनके सब दुःखों का विनाश होता है और परमपद को प्राप्त होते हैं। इनकी कविता के कुछ अंश उद्धृत हैं—

सूत दुआरका को तुम जावो ।
समाचार सभ जाइ सुनावो ॥

सभ को मरन राम निरबान ।
अब मोको तहँ करन पिआन ॥

दुआरावती रहै मत कोई ।
तन कऊं धरे जहाँ कऊ कोई ॥

छिन-भंगर सभ नाना रूप ।
निशचल जाणों मोहि अरूप ॥

मेरे चरण निरन्तर भजो ।
दूजी सकल बासना तजो ॥

हर के जनम-करम गुण गावै ।
सभ मिल जै जै शबद सुनावै ॥

बारंबार करै परनाम ।
मुख ते भाखै हर को नाम ॥

तब हरजी बैकुण्ठ पधारे ।
यां बिध सभ के कारज सारे ॥

तांते जहाँ कथा हरजी की ।
पूजा धिआन धारना जी की ॥

ब्रह्मादक सकल सुर जेते ।
हर की गत नहि जानैं तेते ॥

होइ कर प्रगट गुपत होइ जावै ।
तां कऊं खोज न कोई पावै ॥

• • •

ऐसे सकल सकत मै देवा ।
ब्रह्मादक करैं जां सेवा ॥

हरवे को धरनी को भार ।
धरिओ हतो मानुख आकार ॥

जोग साध कर राखैं देह ।
पुरखारथ कर मानैं एह ॥

जो इह चरित पढ़ै उठ प्रात ।
क्रिशनदेव की निरमल जात ॥

सो द्रिढ़ भगति क्रिशन की पावै ।
जांते क्रिशन लोक मैं जावै ॥

क्रिशन बिओग बिकल अत चित्त ।
जैसे किरपण गए ते बित्त ॥

• • •

तिन दोनिओंने चरनन परे ।
तब सुरारथो बचन उचरे ॥

भगतन हेत धरैं अवतार ।
नानां भांत करैं उधार ॥

तिन मैं क्रिशन सुनीअ भगवान ।
गिआन किरिआ सभ सकत परधान ॥

जिनके नाम लीए भव नाहीं ।
लै कर राखै निज पद माहीं ॥

ते अब सन्तदास से नाम ।
देह धरे जीवन के काम ॥

किरपा निधान भगत करवावै ।
अपनी सकत हिरदै मैं लिआवै ॥

ऐसी बिध भौदुख मिटावै ।
अपने परमपदीं पहुँचावै ॥

प्रेम परवाह मगन नित्त रहै ।
भौ दावगनीं कदे न दहै ॥

श० सिं०

छज्जू भगत

पंजाब के प्रसिद्ध प्रभु-प्रेमी छज्जू भगत विक्रमी संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में तत्कालीन पंजाब की राजधानी लाहौर में उत्पन्न हुए थे। ये भाटिया जाति के क्षत्रिय थे। इनका पैतृक व्यवसाय स्वर्णकार का था। ऐतिहासिक साक्ष्यानुसार ये पंचम सिख-गुरु अर्जुनदेव तथा मुगल सम्राट् जहाँगीर के समकालीन थे। प्रारम्भ में इनकी वृत्ति वाणिज्य द्वारा धन-सम्पदा अर्जन की ओर अधिक थी। जनश्रुति के अनुसार, एक दिन अपनी अटारी पर बैठे-बैठे छज्जूमल ने बनजारे के ये शब्द सुने—"ले लो अच्छे संगतरे ....अच्छे संगतरे, अच्छे संगतरे ।" बनजारे के अन्तिम शब्द छज्जू के मन में दिव्य सन्देश बनकर अंकित हो गये। 'अच्छे के संग ही तरा जा सकता है' यह मन्त्र इस व्यापारी के हृदय में ऐसा गड़ गया कि उसी दिन से इन्हें साधु-संगति की धुन लग गयी। स्थान-स्थान से सन्त-महात्मा, सूफी-संन्यासी, भक्त-कवि आकर इनके निवासस्थान पर ठहरने लगे। सदा ज्ञान-चर्चा, सत्संग-प्रवचन और साधु-सेवा का क्रम चलता रहता। कुछ ही दिनों में, जनसामान्य में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध हो गयी—

जो सुख छज्जू दे चौबारे ।
ना ओह बलख ना बुखारे ॥

सन्तों, सूफियों और भक्तों के संसर्ग से छज्जू स्वयं भी काव्य-रचना करने लगे। सदाचार और सत्संग-महिमा से सम्बद्ध इनकी अनेक सूक्तियाँ पंजाब के लोक-समुदाय में प्रचलित हैं। अधिकांश काव्य मुक्तक तथा विभिन्न लोकधुनों पर आधारित हैं। क्रमबद्ध स्वतन्त्र रचनाएँ केवल दो ही मिलती हैं—१. योगवासिष्ठ भाषा, २. भगवद्गीता भाषा। इन रचनाओं के नाम से ही स्पष्ट है कि ये दोनों इसी नाम के संस्कृत-ग्रन्थों के पद्यबद्ध हिन्दी-

रूपान्तर हैं। 'योगवासिष्ठ भाषा' में १० प्रकरण तथा कुल २१२ छन्द हैं, जबकि मूल योगवासिष्ठ एक बृहदाकार ग्रन्थ है। अतः इसे 'छायानुवाद' ही कहा जा सकता है। 'भगवद्गीता-भाषा' में कवि ने संस्कृत के अधिकाधिक समतुल्य अनुवाद का सफल प्रयास किया है। यथा —

संस्कृत

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, २.३७, ३८)

हिन्दी

रण में मरे तौ स्वर्ग गति, हने तौ राज प्रधान ।
ता ते अरजन उठ लड़ो, निश्चय करि संग्राम ॥

दुख-सुख लाभ-अलाभ सम, जित जों हार न होइ ।
जुद्ध करो विधि जानि करि, पाप न लागै कोइ ॥

कालान्तर में इनके नाम से 'छज्जू-पन्थ' भी प्रचलित हुआ, जिसमें समन्वित उपासना-पद्धति प्रचलित थी। देश-विभाजन (सन् १९४७ ई०) के पश्चात् इनका प्रमुख केन्द्र मांटगुमरी (पाकिस्तान) में पड़ जाने के कारण, इस पन्थ का अस्तित्व अब लुप्तप्राय है। छज्जू भगत का देहावसान संवत् १६९६ विक्रमी (सन् १६३९ ई०) में हुआ।

छज्जू भगत के अनेक स्फुट छन्द भी प्राप्त हैं, जो इनकी भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। यथा—

पंज पैसे तेरी गुथली, त्रै मट्ठे दुई खोट ।

छज्जू खोटा वणज करे, दिआ निति तुट्ड तोट ॥

'तेरी गुथली (देह) में पाँच पैसे (तत्त्व) हैं। उनमें तीन हल्के हैं और दो तो सर्वथा खोटे हैं। खोटा व्यापार (दुष्कर्म) करने पर घाटा ही घाटा होगा।'

मूड़ी टक्के सत करु, नाना वट्टी सारु ।
छज्जू नालि सुजान दे, सँगु करि लंघी पारु ॥

'सत्य की पूंजी लगाओ और सार-तत्त्व की बिक्री करो। प्रियतम के संग लगे रहने से शीघ्र ही बेड़ा पार हो जायगा।'

• • •

जो लौड़हि सुख माणिआ, करि साधा का संग ।

छज्जू साधा के संग में, आठों पहर अनन्द ॥

• • •

ना को दिस्से जीउँदा, ना कोई हिस्से मोया ।
छज्जू इहु जग सच्चे दा पेखना, दिस्से नित नया ॥

एक उदाहरण 'योगवासिष्ठ भाषा' से प्रस्तुत है—

काष्ठ आहि जो पूतली, सदा निरन्तर वासु ।
त्यों जग सकल अव्यक्त ते, सूने सून प्रकासु ॥

जैसे सागर ते लहिर, जल ते होइ न आनि ।
तैसे सभी जग सूनते, सूनै महि बिलमानि ॥

कृष्ण-भक्ति से सराबोर एक पद देखिये —

सदा परौं गोविन्द सरनाई ।
जनम मरण ते लेत छुडाई ॥

जब लग जीवन है दिन चार ।
तब लग आपन काज सँवार ॥

जब लग अबुध न भई बितीत ।
तब लगि तू कर ले हरि स्यों प्रीत ॥

छज्जू जी अमृत बचन सुनावै ।
जो हरि सिमरै सो फलु पावै ॥

रा० प्र०

जनकदुलारी

श्रीमती जनकदुलारी अमृतसर नगर की निवासी थीं। इनके जीवन के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त

नहीं है। इस कवयित्री के श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कुछ गीत मिले हैं, वे प्रस्तुत हैं :

(१)

शामां जमना ते आया करो।
रल नाल सखियां दे,
सोहनी रास रचाइआ करो॥
रल नाल ………………

इह ते सीन निराला ए।
दोहां पासे हैन गोपियां,
बिच बंसीवाला ए॥
दोहां पासे ………………

शाम गौवां चराई जांदा।
मुरली बजाई सोहनी,
नाले मसत बनाई जांदा॥
ओए शाम ………………

रातीं दुध नूं जमावांगी।
जमना ते आ मोहना,
तैनूं मक्खन खवावांगी॥
ओए रातीं ………………

श्रीकृष्ण को संबोधन करती हुई ये कहती हैं—'हे श्याम! यमुना नदी के तट पर आकर ग्वालिनों के साथ मिलकर रास रचाया करो। श्रीकृष्ण गोपियों के मध्य घिर गये हैं। यह एक विचित्र दृश्य है। श्रीकृष्ण गौएँ चरा रहा है, साथ ही अपने वंशी-वादन से प्राणिमात्र को मस्त भी करता जा रहा है। श्रीकृष्ण के साथ प्रेम का नाता स्थापित किये हुए एक ग्वालिन अपनी मनेच्छा व्यक्त करती हुई कहती है कि मैं रात में दूध जमाकर उसे प्रातः बिलोऊँगी और माखन निकालकर श्रीकृष्ण को खिलाऊँगी।'

अन्यत्र कृष्ण की प्रतीक्षा में व्याकुल कवयित्री ने उन्हें भक्तों का उद्धारक माना है :

(२)

मेरा तरसे है दिल,
मोहे आ शामां मिल न बिसराना।
आके शामां तूं दरस दिखाना॥

अपने भगतों को आके बचा ले।
इन्हें दुष्टों से आके छुड़ा ले॥
किशती मझधार है,
डूबे संसार है, पार लगाना।
आके शामां तूं दरस ………

मेरा जीवन तूं सफल बना दे।
अपने दवारे दा रसता दिखा दे॥
मेरी अखियों में आ,
मोहे दिल में बसा, दे ठिकाना।
आके शामां तूं दरस ………………

'मेरा हृदय तुम्हारे दर्शन के लिए तड़प रहा है। मुझे भुला न देना। आकर मुझसे मिल जाना। अपने भक्तजनों को आकर दुष्टों से छुटकारा दिला दो। मेरी जीवन-नौका भवसागर के बीच डूब रही है, तू ही आकर इसे पार लगा सकता है। मेरे जीवन को आकर सफल बना दो, मेरा तुम्हारे साथ कैसे मिलाप हो, यह रहस्य भी समझा दो। श्रीकृष्ण! मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ और मुझे अपने हृदय में स्थान दे दो, जिससे मुझ जैसे अनाथ को भी सही ठिकाना मिल जाय।'

श० सिं०

जातिदास (जातिराम)

कवि जातिदास उपनाम जातिराम पटियाला-नरेश नरेन्द्रसिंह के दरबार में विशेषतः समादृत थे। ये कुरुक्षेत्र से लगभग चालीस कोस की दूरी पर सुनाम नामक स्थान के रहनेवाले थे। पटियाला से भी यह जगह निकट पड़ती है। इनका जन्म सुनाम के एक सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार में पण्डित लालचन्द

के घर हुआ था। बड़े होकर ये पटियाला-दरबार के आश्रित हुए और विशेष आदर के अधिकारी बने—ऐसा 'सुदामा-मंगल' में इन्होंने स्वयं लिखा है :

कुरछेतर मुकतो को धाम।
पसचम चाली कोस सुनाम ॥

लालचन्द सुत जातीराम।
दिज सनाढ़ ता सुत हरिनाम ॥

राजसथान सुभग पटयाला।
स्री नरिन्द्र सिंह तहाँ भूपाला ॥

अपनी दूसरी रचना 'रुक्मिनी-मंगल' में इन्होंने वंश-परम्परा का भी उल्लेख किया है :

लालचन्द सुत जातीराम।
ताको सुत कहिओ हरिनाम।
जाति बिप्र क्रिसन धर ध्यान।
रच्यो रुकमनी मंगल गान ॥

उक्त दोनों छन्दों से यह ज्ञात होता है कि 'सुदामा-मंगल' तथा 'रुक्मिनी-मंगल' का रचयिता जातिदास न होकर उनका पुत्र हरिनाम है। प्रतीत होता है कि हरिनाम कवि ने ही इन रचनाओं का सृजन करके अपने पिता जातिदास को समर्पित कर दिया था। किन्तु 'रुक्मिनी-मंगल' की पुष्पिका में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता।

'इति स्री रुकमनी मंगल जातिदास क्रित संपूरनं। साल १९१५ मिति बैसाख सुदी १२, वार ऐतवार।' इससे स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण-काव्य के अन्तर्गत 'सुदामा-मंगल' तथा 'रुक्मिनी-मंगल' दो रचनाएँ जातिदास की ही हैं।

'सुदामा-मंगल' में भक्तकवि जातिदास ने ऐसी उद्भावनाएँ की हैं, जो अन्य सुदामा-चरित्र-काव्यों में नहीं मिलतीं। सुदामा के द्वारका पहुँचने पर श्रीकृष्ण के द्वारा किया गया आतिथ्य-सत्कार तथा सुदामा के द्वारा रनिवास की स्त्रियों के सामने श्रीकृष्ण की जीवन-कथा का आख्यान इस कवि की मौलिक उद्भावना है। सान्दीपनि गुरु के आश्रम में श्रीकृष्ण और सुदामा के गुरुभाई के रूप में शिक्षा ग्रहण करने की कथा इस कवि ने बड़ी तन्मयता से आख्यायित की है। इसके साथ ही कृष्ण-जन्म, असुर-संहार, कंस-वध, द्वारका-राज्यग्रहण, गोपियों के साथ किये गये दान-लीला, रास-लीला आदि प्रसंग भी जातिदास ने सुदामा के द्वारा वर्णित कराये हैं। सान्दीपनि-आश्रम के प्रसंग को स्वोक्ति के रूप में प्रस्तुत करके भक्त कवि ने 'सुदामा-मंगल' की पृष्ठ-भूमि को यथेष्ट उद्दीप्त कर दिया है। रास-लीला और दान-लीला के प्रसंगों में जातिदास इतना रम गये हैं कि मूल कथा पीछे छूट जाती है। गोपियाँ श्रीकृष्ण को दान देने से इनकार नहीं करतीं, वरन् ऐसा कटु व्यंग्य प्रस्तुत करती हैं जो समूचे कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है :

हँस कै बोली गुआर बात हम और बिचारी।
नन्द-जसोधा साध बुध वाको कछु निआरी।
वे तो गोरे रंग-रूप याको है कारा।
उनको सुत यह नाहि कछू उनकी अनुहारा।
मोल लियो है दाम दै, धेनु चुगावन काज।
दूध दहो माँगत सदा, वाहि न आवत लाज।
दान दध को नहीं ॥ ७३ ॥

इस कृति में जातिदास ने रास-लीला का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। श्रीकृष्ण और गोपियाँ फिरकी लेती हुई अपने चारों तरफ प्रत्येक वस्तु को घूमते हुए पाती हैं। राधा और अन्य गोपियों ने शृंगार किया है। संगीत की एकस्वरता वातावरण को और भी मनोहारी एवं आकर्षक बना रही है। संगीत के माधुर्य के कारण शंकर की समाधि भंग हो गयी है, ब्रह्मा वेद-विद्या भूल गये हैं और देवताओं की सुध खण्डित हो रही है। राधा का शृंगार तो अनुपम है :

राधका किओ सिंगार चन्द्रावती संग,
गुआर चीर पंचरंग अंग भूषण उजास री ।
सीस फूल केसर मुकत माँग बेंदी भाल,
दमकै करण फूल दामनी प्रकास री ॥

देख रासमण्डल अखण्डल की ओप घटी,
रम्भा गंन धुवति फिरति आसपास री ।
खट राग रागनी छत्तीस तार दुआदस मै,
बाजत सपत स्वर रास मध्य बाँसुरी ॥ ८२॥

'सुदामा-मंगल' का अन्त भी अन्य 'चरित-काव्यों' से अलग तरह से हुआ है। अपने घर के पास पहुँचकर जब सुदामा को अपनी झोपड़ी का ठिकाना नहीं मिलता तो हताश और निराश होकर वे रात्रि व्यतीत करने के लिए एक समीपवर्ती मन्दिर में आश्रय लेते हैं। इस समय मन्दिरवासी ब्राह्मणों को भोजन का निमन्त्रण मिलने पर सुदामा भी अन्य ब्राह्मणों के साथ जजमान के घर भोजन करने हेतु जाते हैं। तब पता चलता है कि वस्तुतः भोजन का आयोजन तो उसकी पत्नी सुशीला ने ही किया है। सुशीला के द्वारा सुदामा के पहचाने जाने पर उसकी सारी निराशा दूर हो जाती है :

भुजा पकर भीतर ले आई ।
सेज ऊपर दिये बठाई ॥

खटरस भोजन विंजन पाये ।
पाछे बीड़ा पान चबाये ॥

बिप्र सुदामा भगति अपारा ।
तीन लोक गावत संसारा ॥

आयो सुख दारिद सब गयो ।
बिप्र सुदामा आनंद भयो ॥ ९८ ॥

कृष्ण-चरित से सम्बद्ध जातिदास की दूसरी रचना 'रुक्मिनी-मंगल' है। इसकी हस्तलिखित प्रति सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी, पटियाला में (क्रम सं० ५१० पर) उपलब्ध है। यह गुरुमुखी लिपि में है। इसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध रुक्मिणी-श्रीकृष्ण-विवाह-प्रसंग पर आधारित है। कवि ने इस रचना में नारद के द्वारा आशीर्वाद दिलाकर कृष्ण-कथा का वर्णन कराया है, जिसमें श्रीकृष्ण के परिचय के साथ ही उनकी विविध लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। महाराज भीखम और उनकी रानी नारद से श्रीकृष्ण के विषय में हर तरह से जानकारी प्राप्त करते हैं। रास-लीला के विषय में उनकी बड़ी उत्सुकता है :

भीखम रानी प्रेम बस, रुकमन मन आनन्द ।
कहो रास कैसे रचो, ब्रिन्दाबन ब्रिजनन्द ॥

मद्ध राधिका रूप उजारी ।
चन्द्राबल मनमोहन हारी ॥

आसपास गोपी घिर आई ।
रम्भा देख ठगोरी खाई ॥

भूखन चीर सुरंग सुहाई ।
केसर मध चन्दन महकाई ॥

चन्द्र बदन म्रिगनैन निहारै ।
देखि रूप मुनि बिरत बिसारै ॥

सीस फूल कुण्डल ससि भाला ।
छुटी अलक मनो अवरत ज्वाला ॥

मुकता माल चोला उर साजै ।
कर कंकन पग झाँझर बाजै ॥

निरत करत सब भाव बतावै ।
षसट राग रागनी उपजावै ॥

दो-दो गोपी इक-इक कान्हा ।
दामन ज्यों पकड़ै घनस्यामा ॥

'रुक्मिनी-मंगल' का दूसरा विलक्षण पक्ष है—कृष्ण-रुक्मिनी-विवाह के अवसर पर पंजाबी संस्कृति तथा रीति-रिवाजों का पालन। जातिदास ने फेरों के अवसर पर जूते-दुपट्टे छिपाने, गालियाँ गाने, दान-दहेज देने, बहू के घर पहुँचने पर सास के द्वारा पानी वार-वार कर ग्रहण करने, कंगना खेलने आदि पंजाबी रीति-रिवाजों के अति आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये हैं–

साली दिस्ट बचाइ के, दुपटा दियो लुकाइ ।
दुपटा तुमरा जब देऊँ, दीजै मासी मंगाइ जी ।
सारी दिस्ट बचाइ के जोड़ा दियो लुकाइ ।
जोड़ा तुमरा जब देऊँ, मा दीजै नानी मंगाइ जी ।।

स्पष्ट है कि जातिदास की इन दोनों रचनाओं का उद्देश्य श्रीकृष्ण-कथा का युगानुरूप आख्यान करना है। 'सुदामा-मंगल' में यह कार्य सुदामा से कराया गया है, तो 'रुक्मिनी-मंगल' में इसे नारद ने सम्पन्न किया है। वस्तुतः ब्राह्मण-परिवार में जन्मा यह कवि भक्तिभाव से परिपूर्ण है और इसीलिए वह अपने चरित-नायक श्रीकृष्ण का गुणाख्यान मुक्त-कण्ठ से करता है। जातिदास के द्वारा रचित श्रीकृष्ण-चरित-सम्बन्धी इन दोनों रचनाओं का पंजाब में निर्मित कृष्ण-काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

श० सिं०

जी० मोहन फुर्ता

जी० मोहन फुर्ता अमृतसर जिले के गिलवाली गाँव के रहनेवाले थे। यह गाँव अमृतसर से कोई पाँच किलोमीटर की दूरी पर तरनतारन जानेवाली सड़क पर स्थित है। इनकी श्रीकृष्ण-सम्बन्धी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'कुञ्जबिहारी' नामक रचना में इस कवि ने श्रीकृष्ण की जीवन-कथा के विविध पक्षों को लेकर गीत लिखे हैं, जो मेहरसिंह ऐंड संज, माई सेवां बाजार, अमृतसर द्वारा प्रकाशित हैं। इन गीतों के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

(१)

शाम घनैय्या बंसी बजैय्या,
जमना पै आए रे, बंसी बजाये रे ।

ढूंढ थकी मैं जमना-तट पर,
छुप-छुप जाए, मेरा शाम ।।

माने न मेरी एक भी गिरधर,
बहुत सताये, मेरा शाम ।

भाग खुल जाये जो दरस दिखाये,
जमना पै आए रे ।।
बंसी बजाये रे शाम ....

(२)

सुन जा मेरी यह सदा, सुन तो जा ।
दुषटों से मेरी लाज बचा ।। सुन जा मेरी.......

नग्न सभा के बीच करें यह,
इनको कोई दे तूं सज़ा । सुन जा मेरी ....
तू ही रखवाला है बंसी बजैय्या ।
सुन भी तो ले यह दरद की कथा ।।

कहाँ छुपे हो क्रिशन मुरारी, रही हूँ नीर बहा ।
सुन जा मेरी यह सदा, सुन तो जा ।।
सुन जा........ ....

श० सिं०

ज्ञानचन्द धवन

ज्ञानचन्द धवन का जन्म अमृतसर नगर की गली तेलियां-वछछोंवाली में हुआ बताया जाता है। बाल्यावस्था में ही अमृतसर से परिवार के साथ ये लाहौर चले गये थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये देश-विभाजन के बाद लाहौर से दिल्ली चले आये और वहीं पर इनका निधन हो गया। इसके अतिरिक्त ज्ञानचन्द धवन के जीवन से सम्बद्ध और कोई जानकारी नहीं मिलती। इन्होंने श्रीकृष्ण और गोपियों की लीलाओं को लेकर जो रचनाएँ की हैं उनमें 'बंसी दी तान, कृष्ण-बंसरी' आदि प्रसिद्ध हैं। खेद है कि इनमें से कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है।

श० सिं०

ज्ञानचन्द सचदेवा

ज्ञानचन्दजी अपने समय में अमृतसर के प्रसिद्ध कवि और लोकगीतकार थे। ये वहाँ के गांधी बाज़ार में मानचित्र व कैलेण्डर आदि बेचने का व्यवसाय करते थे। इन्होंने श्रीकृष्ण तथा राधा के विविध

जीवन-प्रसंगों को लेकर गीतों की रचना की है। कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी इनका एक गीत प्रस्तुत है:

मेरे मन की उसंग, पूरी मोहन के संग,
होगी धीरे-धीरे, होगी हौले-हौले।
देखो री सखी आए वोह नाथ, वोह नाथ,
दिल होता है दंग, देख मोहन दे रंग,
होगी धीरे-धीरे .... ॥

सुन मुरारी तेरे कष्ट निवारें मोहन बंसीवाले,
जे कोई परीतम की दिल में जोत जगा ले,
सखियों के संग गोरी हरी के द्वार चली,
मन को है जीत लिया, चढ़ा मोहन का रंग,
मेरे मन की उमंग .. .. ॥

इसके अतिरिक्त इस भक्त कवि के विषय में कोई और जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

श० सिं०

तेजभान

भक्त तेजभान का आविर्भाव १८वीं शताब्दी में हुआ था। इन्होंने विभिन्न रागों में 'शब्दों' और 'माझों' की रचना की है। इनके अतिरिक्त इन्होंने श्रीकृष्ण के द्वारा मथुरा के राजा कंस के विनाश का वर्णन 'वार' के रूप में भी किया है।

ज्योतिषियों ने राजा कंस को बताया था कि तेरी बहन देवकी की कोख से जो पुत्र जन्म लेगा, वही तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। यह जानकर कंस देवकी के घर जो बच्चा जन्म लेता उसे मार डालता था। देवकी ने अपनी सखी यशोदा को अपना दुःख सुनाया। निश्चय हुआ कि वे अपनी सन्तान परस्पर बदल लेंगी। अतः श्रीकृष्ण के जन्म लेते ही उन्हें यशोदा के पास गोकुल भेज दिया गया और यशोदा की पुत्री को देवकी के पास लाया गया। जब कंस को इस बात का ज्ञान हुआ तो उसने बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए पूतना दाई को स्तनों पर जहर लगाकर गोकुल भेजा। परन्तु वह जहर के असर से स्वयं ही मर गयी। इसी तरह श्रीधर ब्राह्मण के द्वारा किये गये यत्न भी असफल रहे। अन्त में कंस ने अक्रूर के द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाया। श्रीकृष्ण मथुरा गये। मल्ल-युद्ध रचा गया और श्रीकृष्ण को मरवाने के लिए हर तरह के यत्न किये गये, परन्तु इन्होंने कंस के शक्तिशाली मुष्टिक मल्ल चण्डूर (चाणूर) आदि को मल्ल-युद्ध में मार दिया। अन्त में श्रीकृष्ण ने कंस को भी मारकर अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव को कारागार से मुक्त किया।

संक्षेप में 'वार-कान्ह-कंस की' की कथावस्तु यही है, जो कुल ४० पउड़ियों में उल्लिखित है। प्रत्येक पउड़ी के साथ एक-एक श्लोक भी है। श्लोकों की भाषा पंजाबी-मिश्रित हिन्दी है, परन्तु पउड़ियाँ शुद्ध पंजाबी में रचित हैं। इसकी भाषा से यह अनुमान भलीभाँति हो जाता है कि यह वार काफी पुरानी है। इसकी वर्णन-पद्धति से तेजभान कवि की श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा व्यंजित होती है। यह वार प्रो० गंडासिंह के निजी संग्रहालय में सुरक्षित है। इसकी एक प्रतिलिपि भाषा-विभाग, पटियाला (क्रम-संख्या ३) में भी उपलब्ध है। स० प्यारासिंह 'पद्म' ने इस वार को अपनी पुस्तक 'पंजाबी वारां' में प्रकाशित भी कराया है। उपर्युक्त रचना के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं—

सलोक

सिमरउ सुंदर सिआम कउ,
हित चित्त मनसा धार।
सुखदाता प्रभ दुख हरणि,
तेजभान बलिहार ॥ १ ॥

पउड़ी

आदि भवानी जुआलपा,
सुख दाती दुख बिडारे।
गणपति देव मनाइ करि,
सभे काज सँवारे ॥

दसम कथा की बिधि सुणीं,
जिऊँ करि बेद उचारे।
कंस राजा इक दैंत सी,
जुग जंमिआ दुआपरि वारे ॥
बेद न कोई घरि उपरि आपि पसारे।
दुखभंजन सुंदर सिआम जी,
केतिआं दे गरबि निवारे ॥
तेरी गति लखी ना जाइि,
कान्ह जी तेजभान बलिहारे ॥ १ ॥

● ● ●

सलोक

गोकलि गइिआ बासदेव,
जाइि ठाढा नंद दुआरि।
क्रिशन छोड़ि कंनिआ लै,
घरि आइिआ काज सँवारि ॥

पउड़ी

कनिआ लै बासदेव जी
खड़ि देवकी आगै पाए।
चउँकीआं सभे सुत्तीआं रहीआं
उस फेर किवाड़ चा अड़ाए ॥
खबरीं होइिआ कंस नूं
मिल मंत्री सभै आए।
कनिआं देख कोपिआ मिलि
विप्र सभे सदवाए ॥
मै सिरों फड़ि सभनां मारसां
विच वेदां कुड़ अलाए।
एथे जम्मी कंनिआ तुसां
बालक आख सुणाए ॥
ऐसी पुछह सुहागणी देवकी
सतवंती सचु अलाए।
पहिलों जंमिआ बालक फिरि
कंनिआ उलटि दिखाए ॥
भाई मैं भी सुरति न लधीआ
कोई गइिआ चलत विखाए ॥ ५ ॥

● ● ●

सलोक

कपड़ लुट्टे कंस दे,
सभ गुआरा पैधे अंग।
मथरा नूं चल्ले उतावले,
सभ दैंत खड़ोते केणि ॥ १ ॥

पउड़ी

इत वल्ल उत वल्ल गुआर हैनि,
रथ्थ बैठे दोनो भाई।
सिरि परि चीरे लाल हैनि,
मोर पंख रहैं झड़ि लाई ॥
चल कै मथरा वसीऐ सभ,
दरशन कउ उठि धाई।
मालणि आई कंस दी घसि,
अंगि सुरीचि लै आई ॥
चरणीं लग्गी कुचील नारि,
जिस पूरन भगति कमाई।
करि किरपा उस नूं दितीआं,
त्रिहु लोआं दी सम्रथाई ॥
पटराणी मालणि भई, भगतां दी खरी सुहाइि।
मेरे माधवा तेजभानू, बलि जाइि ॥ २९ ॥

सलोक

संतन कउ सुख देइि कै,
ठाकुर जी आइि गोकल माहि।
सभी गुआरनि घरि आनंद भइिआ,
मिटि गई चिंता ताहि ॥ १ ॥

पउड़ी

जसोदा नूं वधाईआं,
क्रिशन बलभद्र जी आए।
नंद महर भी हरख भइिआ,
विचि गोकलि मंगल गाए ॥

करन कारन ते बाहरा आपि,
जाणै जो करै सो कीता पाए।
निरभउ सति निरवैर है,
तेरा भजन करै सो सुख पाए॥
तेजभान बलिहारणे बलिहारणे,
जो उसतति आखि सुणाए॥ ४०॥

'तेजभान' के द्वारा रचित 'माझ' का नमूना भी राधा और श्रीकृष्ण के प्रेम की साक्षी भरता है और उनके राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव का द्योतक है—

जिऊँ जिऊँ हाल हकीकत आखां,
तिऊँ तिऊँ जाहि परेरा।
इक लोकां दी बदनामी साड़े,
पिआ जग उल्हामा तेरा।
अग्गे सूल सूलां दे आहे,
उथ्थे इशक चमकाइआ तेरा।
तेजभान होर सभु किछु चगा,
इक्क बिछड़ जान भसेरा॥ १॥

उसतति निंदा करि करि थक्की,
बेईमान लुकाई।
हाल पराइआ जाणै नाहीं,
वेखहु दूतां चाई।
लग्गा निहु भुलाणे झुग्गी,
बाकी रही न काई।
तेजभान चुग प्रीति चरोकी,
कि असां अनोखी लाई॥ २॥

केहा जोग लै आइओ ऊधो,
सानूं जोग जहिर दी घुट्टी।
गिरधर जोग असां नाल कीता,
असां मिलदिआं सुखी हुंदी।
अकै तां गिरधर मिलै असानूं,
नाही साडी औस निखुट्टी।
तेजभान असीं नारी जोग की जाणा,
सानूं बिहुं पिआ कर झुट्टी॥

• • •

कैनूं ब्रिज विच आइिओ ऊधो,
तूं आण रुआईआं सहीआं।
तूं बेदरद तैनूं दरद ना कोई,
असीं दरदवंदा दुख सहीआं।
कुबजां संग उन आपु रखाया,
असां सभ दुख सिर पर सहीआं।
रहु वे ऊधो ब्रिज वांति न आवीं,
असीं आप सिआम होइि रहीआं॥

श० सिं०

तेजासिंह 'साबर'

तेजासिंह साबर का जन्म नानकपुरा गाँव जिला लायलपुर (पाकिस्तान) में नानकसिंह के घर हुआ था। आपने अपनी आजीविका कमाने के लिए दूकानदारी, घड़ीसाजी, फोटोग्राफी आदि कई धंधे किये। देश-विभाजन के बाद ये दिल्ली आकर रहने लगे और अपना अधिकांश समय कवि-गोष्ठियों तथा कवि-मण्डलियों में कविता करके व्यतीत करते रहे। आप 'सेनापति' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका का भी सम्पादन करते थे। तेजासिंह 'साबर' के कविता के क्षेत्र में 'परछावें, यादगार, मन-मंदर, छटकार, बधीचले, मेरी दुनिआँ, राज करेगा खालसा, मेरी प्रसिद्ध कविता, पूरब दा चानण और निरी अग्ग' आदि काव्य-संग्रह प्रसिद्ध हैं। आपका एक 'लहूचूस' कहानी-संग्रह तथा आलोचना के क्षेत्र में 'नवीन-साहित्य' पंजाबी साहित्य-जगत् में विशेष रूप से चर्चित हैं।

मूलतः तेजासिंह साबर' सिख-इतिहास और धर्म की परम्परा को बनाये रखनेवाले कवि थे। जीवन की विविध स्थितियों का आपको गहरा अनुभव था। श्रीकृष्ण के जीवम और व्यक्तित्व से सम्बद्ध 'साबर' कवि की एक रचना के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

एके नूं बेशक सांत कहो,
ते दिन नूं बेशक रात कहो।

ऐ पर मेरे इस शाम नूं,
जी शाम नहीं प्रभात कहो।

जां शाम चल्ले लटक के,
जां रास पांदे मटक के।

जमना सो इदां चलदी,
बस अटक के बस अटक के।

राधा नूं उह वैराग सी,
हर तरफ उस दे राग सी।

मसती च' चुक लई बंसरी,
उह बंसरी नहीं नागसो।

इतना बिरहा दा दुख सी,
नैनां च' इतनी भुख सी।

उस जफ्फी पाई शाम नूं,
पर शाम नहीं उह रुक्ख सी॥

• • •

ऐ तड़फ! तूं बेहोश रहो,
ऐ धड़कने मदहोश रहो।

छेड़ी है मुरली काह्न ने,
खामोश रहो खामोश रहो।

है कउण नैणो छा गए,
हनेरे नूं चानण खा गए।

तड़फें तूं जिस लई 'साबरा',
उह आ गए उह आ गए॥

इस कवि ने राधा-कृष्ण के प्रणय-व्यवहार को लेकर वियोग का चित्र सरल व सपाट शैली में प्रस्तुत किया है, जो श्रीकृष्ण के प्रति कवि की निष्ठा का सूचक है।

श० सिं०

दाना कवि

दाना कवि के जीवन के सम्बन्ध में अपेक्षित तथ्य उपलब्ध नहीं है। इनकी 'काह्न-गुजरी का झगड़ा' नामक रचना १८वीं शताब्दी के आरम्भ में बादशाह फर्रुखसियर (१७१३-१७१९ ई०) के समय रची हुई बतायी जाती है। इस ग्रन्थ से दाना कवि सिक्ख-धर्म के अनुयायी सिद्ध होते हैं। उक्त पुस्तक की कई प्रतियाँ उपलब्ध हैं। ऐसा स: प्यारासिंह 'पद्म' का विचार है। 'काह्न-गुजरी का झगड़ा' की कुछ पंक्तियाँ नमूने के लिए प्रस्तुत हैं—

सतजुग तेता दुआपर कलजुग मनो तपोसर भारे।
मथरा के बिच कान जंमिआ सयाम रूप अवतारे॥

पल बिच लड़का पल बिच बावन पल बिच देह पसारे।
पल बिच जोगी पल बिच भोगी पल बिच दुग्धाधारी॥

पल बिच दही जगता मंगे लूटे कंस गवारी।
गोकल दे बिच पैदा होइआ गोकल गुजरी गँवारी॥

कन्न बुंदे नक बेसर सोहे सूरति दी मतवारी।

'सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग चारों ही युगों में बहुत बड़े यशस्वी तपीश्वर पुरुष हुए हैं, परन्तु मथुरा नगरी में श्रीकृष्ण नाम के एक अलौकिक पुरुष ने अवतार धारण किया है। वह क्षण में बालक-रूप, क्षण में वामन अवतार रूप तथा दूसरे क्षण में पूरे शरीर का प्रसार कर लेता है। वह पल में योगी और पल में ही सांसारिक भोग-भोगी बन जाता है, परन्तु दूसरे ही क्षण वह दूधाधारी बनकर अपना स्वरूप बदल लेता है। उसका भगवद्स्वरूप इतना अस्थिर है कि पल में ही एक भिक्षुक का रूप धारण कर लेता है तो दूसरे ही क्षण विष्णु का गदाधारी अवतार बनकर कंस के द्वारा बसायी गयी मथुरा का नाश करता है। कवि का कहना है कि गोकुल में गँवारी गूजरियों के बीच श्रीकृष्ण ने जन्म लिया है। उसके स्वरूप का वर्णन करता हुआ यह कवि कहता है कि उसके कानों में कुण्डल और नाक में नथुनी (बेसर एवं बुलाक) की शोभा के कारण उसकी छवि अत्यन्त मनोहारी है।'

श० सिं०

दियालचन्द मिगलानी

दिआलचन्द मिगलानी का जन्म १८ अप्रैल, १९१७ ई० को जिला लायलपुर (पाकिस्तान) में चौधरी आतमाराम मिगलानी के यहाँ हुआ था। आप अपने आरम्भिक जीवन में कबीरवाला (मुलतान) में निवास करते थे। देश-विभाजन के उपरान्त ये रोहतक (हरियाना) में रहने लगे। आपने दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करके ज्ञानी तथा ओ० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। जीवन की कटु वास्तविकता से आपका गहरा सम्बन्ध रहा है। कुछ वर्षों तक इन्होंने ड्रामा इन्स्पेक्टर के पद पर काम किया, तत्पश्चात् वैश्य हाईस्कूल रोहतक में अध्यापन करने के बाद लोक-सम्पर्क-विभाग रोहतक में ही पब्लिसिटी सुपरवाइजर हो गये। कवि-सम्मेलनों में मिगलानी की स्रोदी कविताएँ अति लोकप्रिय हुईं। आपके 'बल वे दीवड़िआ' (१९५६ ई०) तथा 'धार्मिक गीत' (१९५७ ई०) दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। आपकी कविता राष्ट्रीय भावना को मुखरित करती है। इन्होंने कविता में स्रोदी-तत्त्व को प्रधानता दी है। कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी कवि मिगलानी की रचना 'राधा दा निहोरा' राधा-कृष्ण के अभिन्न सम्बन्ध को वाणी देता है। अपने प्रिय (श्रीकृष्ण) से बिछुड़ी हुई राधा उसे निहोरा (ताना) देकर कहती है कि यदि तुम मेरे स्थान पर राधा होते, तो तुम भी विरह की पीड़ा को समझ सकते। वास्तव में कवि ने अपने प्रियतम से बिछुड़ी हुई नारी के वियोग की गहरी टीस को इस कविता में व्यक्त किया है—

मोहन ! जे तूं राधा होंदों, मैं होंदी घनीशाम।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

तूं हथ्थ जोड़ के मैनूं कहिंदो, आ जा शाम मुरारी।
मुड़ मुड़ करदों मिनतां तरले, जादों सदके वारी॥
मैं ना आऊंदी कोल तेरे, तेरा उठदा चैन अराम।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

मिठ्ठी मिठ्ठी सुर बंसीदी, तेरे मन बिच बसदी।
गुम हो जांदी सुध बुध तेरी, मैं तक तक के हँसदी॥
दरसन लोभी नैनां तेरे, रोंदे बदलां बांग।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

यादां दे बिसतरे ते जद, सौं जांदे तेरे नैन।
मैं इक सुंदर सुपना बग के, खोह लैंदी सुखचैन॥
तूं उठ नसदों वियाकल हो के, लै लै मेरा नाम।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

तां तूं मनदों दुख बिरहों दा, किऊँकर प्रेमी सहिंदे।
पारे वांग सदा उह तड़फन, मुंहों कुझ न कहिंदे॥
पिआर दे बदले दरदां भिन्ने, हंझू मिलन इनाम।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

मोहन ! जे तूं राधा होंदों, मैं होंदी घनीशाम।
जेकर मैं होंदी घनीशाम ॥

श० सिं०

दिआलसिंह

दिआलसिंह की रचनाओं में कहीं भी रचनाकाल का संकेत नहीं मिलता। पता चलता है कि इन्होंने 'सिंघां दी वार' की रचना ३० अप्रैल १७९७ ई० के पश्चात् ही की थी। 'चारि बागि पंजाब' का रचयिता दिआलसिंह को सिक्ख-राज का कवि लिखता है। इसलिए 'बारांमाहा' १९वीं शताब्दी के आरम्भ की रचना प्रतीत होती है।

दिआलसिंह कवि का यह 'बारांमाहा' श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् राधा के विरह से आरम्भ होता है। इस कवि के द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण का चरित्र सज्जन, करतार, ठाकुर आदि कवियों की उक्तियों का मिला-जुला रूप है। राधा की विरहावस्था को भावपूर्वक किन्तु लौकिकता के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। 'बारांमाहा' का शिल्प-विधान अति सुन्दर है। प्रत्येक महीने के शुरू में एक दोहा (दोहरा) देकर फिर छन्द दिया गया है, जो चार चरणों का है। अड़िल (अरिल्ल) छन्द के प्रयोग से कविता में प्रवाह और गति पैदा की गयी है।

राधा श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए अम्बिका और ज्वाला नामक शक्तियों की आराधना करती हैं। इस रचना में श्रीकृष्ण के पुनः ब्रज लौटने का वर्णन करके राधा और श्रीकृष्ण का पुनर्मिलन दिखाया गया है। अन्य ब्रजवासी भी इसका आनन्द लेते हैं। दिआलसिंह के द्वारा रचित 'बारांमाहा' से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(१)

दोहरा

चेत्र महि रथ्थ बैठ के, मथुरा चलिओ कान्ह।
साजग जांदा देख के, लग्गे कलेजे बाण ॥ १ ॥

छन्द

सुणो सखी जब चेत्र चढ़िआ।
जांदे सज्जण दा जा लड़ फड़िआ ॥

काला नाग कलेजे लड़िआ।
मैनूं छड्डु नां जाईं अड़िआ ॥
विस गई धाइि के ॥ १ ॥

मिनतां करदी दुइि कर जोड़।
मेरी लग्गी प्रीत नां तोड़ ॥
इस मथरा दा रसता छोड़।
ऊधो लै गए प्रभ नूं मोड़ ॥
बरै घर आइि के ॥ २ ॥

मैं रोंदी उस वेले दी आही।
जिस वेले मैं प्रीत लगाई ॥
वढ्ढ वढ्ढ खांदां ब्रिहों कसाई।
मासा मास नहीं रत्त काई ॥
घर वेखीं आइि के ॥ ३ ॥

'चैत्र का महीना लगते ही श्रीकृष्ण राधिका को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। प्रियतम को जाते देखकर उसका हृदय विरह-बाण से विद्ध हो जाता है। वह सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि चैत्र लगने पर प्रियतम के जाते हुए जब मैंने उनका पल्ला पकड़ा तो जैसे मुझे नाग डंस गया और मैं विष के प्रभाव से मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मैं दोनों हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि हे प्राणेश्वर, मुझसे लगी हुई प्रीति को मत तोड़ो, मथुरा का मार्ग छोड़ दो। ऊधव प्रभु को अपने साथ ले गये, इससे हम विरह की आग में जल रही हैं। हमें इस बात का दुःख है कि यदि कृष्ण को हमें छोड़कर चले ही जाना था तो उन्होंने प्रीति का नाता ही क्यों जोड़ा? अब तो विरह की अग्नि में सतत जलना पड़ रहा है। हमारे शरीर पर रत्तीभर भी मांस नहीं रह गया, विरहरूपी कसाई सब खा गया।'

(२)

छन्द

चड़दे फग्गण लग्गी बहार, गल विच पाईए फुल्लां हार।
मेरे घर आए करतार, पाले लहि गए लख्ख हजार ॥
मिलण वधाईयां ॥ १ ॥

रथ्थ चढ़के हुण प्रभजी आए, सरसे ब्रिज दे लोक सवाए।
मुड़घर गिरधर मेरे आए, सखीआं हार सिंगार बनाए ॥
होण सवाईयां ॥ २ ॥

राधे कीए नवें सिंगार, मांग संधूर वणी सिरदार।
सेज वछाई खूब सवार, उप्पर बैठे आप मुरार ॥
नवनिध पाईयां ॥ ३ ॥

जीवें दिआलसिंघा तूं भाई, मैं हुण प्रभ जी अंग लगाई ॥
मेरी इछ पुंन्नी वर आई, तन बिच पीड़ ना रहीआ काई।
सभे गवाईयां ॥ ४ ॥ १२ ॥

अन्त में भक्त कवि का निवेदन है—

दोहरा

जिऊं सुख राधे जी लयो, तिऊं सुख दीजै सिआम।
चिंता सगलि मिटाईऐ, पावऊं सुख बिसराम ॥

'फाल्गुन में वसन्त ऋतु की शोभा चारों ओर छायी हुई है। गले में पुष्प-माला पहने हुए श्रीकृष्ण घर लौटकर आ रहे हैं। विरहिणी के विरह के दिन निकल गये हैं। शीत भी समाप्त हो गयी है। उसे

बधाई मिल रही है। श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर घर लौटकर आये हैं। ब्रजवासी अति आनन्दित हो उठे हैं। ग्वाल-ग्वालिकाओं ने भी अपना शृंगार किया है और वे खुशी से सवाई हो गयी हैं। राधा ने तो विशेष रूप से अपना शृंगार किया है। माँग में सिन्दूर धारण करके वह सब गोपियों में प्रधान बन गयी है। उसने सँवारकर सेज को सुसज्जित किया है और उस पर श्रीकृष्ण आकर बैठ गये हैं, मानो राधा को नौ निधियाँ और आठों सिद्धियाँ मिल गयी हैं। राधा की इच्छा पूरी हुई है और श्रीकृष्ण के साथ उसका मिलाप हुआ है। उसकी शारीरिक विरहजन्य पीड़ा दूर हो गयी है और उसने श्रीकृष्ण को अपने अंगों से लगा लिया है।

कवि की कामना है कि जिस तरह राधा ने श्रीकृष्ण के साथ मिलाप के उपरान्त आनन्द का अनुभव किया है, वैसा सुख प्रभु सबको प्रदान करें। हमारी सभी चिन्ताओं का अन्त हो और हम सतत सुख का अनुभव करते रहें।'

श० सिं०

देवा

देवा पंजाब के विख्यात कृष्ण-भक्त कवि हैं। इनके द्वारा विरचित श्रीकृष्ण की बाल-लीला, राधाकृष्ण-प्रेम तथा उद्धव-गोपी-संवाद विषयक भक्ति-पद व फुटकर छन्द उपलब्ध हैं। इन्हींमें से कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं:

माझां

चीरहरण-लीला

कदंब तरोवर उपरि बैठा,
राधे द्रिषटो आइआ।
देहु तों ढोटा नंद महर दा,
सखीआं सही कराइआ॥

करि बीचारु रखो मनि अंदर,
जेता वन मैं आइआ।
'देवा' राधे क्रिशन पुकारी,
इनही चोर चुराइआ॥

गोपी-उपालम्भ

भौंर कान्ह इआना कुझ ना जाणो,
तुसी सुर मारनीआ मदमाती।
जो तुसां लहिर जोबन दी उट्ठी,
तां जाए मिलो द्रम झाती॥
लोक वेद दी लाजां छोड़ी,
इशक़ तुसाडी अहीरां दी जाती।
'देवा' जसुधा तपत उठी मुख,
घरि जाहु गुआरन चुपाती॥

ग्वालिनों के उलाहने को सहन न करके माता यशोदा उनसे प्रत्युत्तर में कहती हैं: 'यदि श्रीकृष्ण को तुम भँवरे के समान चंचल समझती हो, तो तुम सब किसी भी तरह से कम नहीं हो। तुम सभी यौवन के मद में मत और सुन्दर शरीरवाली हो। यदि तुम सब पर यौवन का नशा सवार है, तो शीघ्र ही जाकर उससे मिलाप कर लो। तुमने तो लोक-लाज को तिलाञ्जलि ही दे दी है। रोमांस एवं प्रेम करना तो तुम अहीर जाति की नारियों का मुख्य कर्म है। देवा कवि कहता है कि इस तरह यशोदा माता ने ग्वालिनों पर क्रुद्ध होकर उन्हें अपने-अपने घर जाने के लिए कहा।'

श० सिं०

धनीराम चात्रिक

धनीराम चात्रिक पंजाब की धरती से जुड़े हुए राष्ट्रवादी पंजाबी काव्यधारा के अग्रणी आधुनिक कवि हैं। इन्होंने कृतियों के माध्यम से पंजाबी जनसमुदाय को अपनी धरती, इतिहास और मातृभाषा के साथ अटूट सम्बन्ध का जो बोध कराया है वह राष्ट्रीय भावना उद्बुद्ध करने में विशेष सहायक हुआ है। यों तो इन्हें यथार्थ और समसामयिक चेतना का कवि माना जाता है, किन्तु इन्होंने श्रीकृष्ण के जीवन से जुड़े हुए गोपी-उद्धव-संवाद को लेकर एक लघु रचना 'गोपी-ऊधो-

संवाद' भी लिखी है, जिसका मूलविषय श्रीकृष्ण के मित्र उद्धव के साथ गोपियों का पारम्परिक वाद-विवाद ही है। धनीराम चात्रिक की यह रचना पंजाबी कृष्ण-काव्य-जगत् में अनूठी और कवि की श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग एवं आदरभाव की सूचक है :

ऊधो काहन दी गल्ल सानूं,
काहनूं चिणग चुआतीआं लाईआं नी।
मसां मसां सन आफरन घाउ लग्गे,
छवीआं नशतरां आन चलाईआं नी ॥

असीं कालजा घुट के बहि गए सां,
मुड़ के सुत्तीआं कला जगाईआं नी।
तेरे गिआन दी पुड़ी नहीं काट करदी,
ऐन्हां पीड़ां दीआं होर दवाईआं नी ॥

आप आऊणदी नहीं जे नीत उसदी,
काहनूं गोंगलू तों मिट्टी झाड़दा हैं।
जेकर अग्ग नूं नहीं बुझाऊण जोगा,
पा-पा तेल किऊं सतिआं नूं साड़दा हैं ॥

उस नूं आप अखीं आके देख जाए,
सानूं कूंज दे वांग कुरलादिआं नूं।
वाटां वेंहदिआं जिद लुड़छादिआं नूं,
झुल-झुल हिज़र विच मुकदिआं जांदिआं नूं ॥

* * *

हुछ्छा ! कंस की गद्दीआं सांभीआं नी,
साडे नाल वी अंग कुझ पाल छड़दों।
कोई महिलां दीआं लूहलां नहीं लाह खड़दा,
दो दिन सानूं बी धौलर विखा छड़दों ॥

आखीं प्रेम इह पिछांह नहीं मुड़न जोगा,
बेड़े सिदक दे ठिल्लदे रहिण गे वे।
एस इशक दी छिड़े गी वार माहीआ,
जिथ्थे चार बन्दे रल के बहिण गे वे ॥

कड़ीआं कुवजा दा किसे नहीं नाऊँ लैणा,
राधा आप पिछों क्रिशन कहिण गे वे।
त्रै सौ सठ जुड़ पए गी नार तैनूं,
जम-जम होण पए दूणे इकबाल तेरे ॥
परलो तोक पर मंदरां विच चात्रिक,
एसे बंदी ने वसणा नाल तेरे ॥

श्रीकृष्ण मथुरा से अपने मित्र उद्धव को गोपियों को सान्त्वना देने के लिए गोकुल भेजते हैं। सन्देशा सुनने के वाद गोपियाँ उद्धव से कहती हैं : 'हम विरह की अग्नि से दीपक की लौ की तरह सन्तप्त हैं। बड़ी मुश्किल से हमारे विरहरूपी घाव भरने शुरू हुए थे कि तुमने आकर उन्हें फिर से ताजा कर दिया है। हम तो मन को समझा-बुझाकर और धैर्य धारण करके रह रही थीं, तुमने आकर फिर से सारी बातें याद दिला दी हैं। यह जो तुम हमें ज्ञान का पाठ पढ़ा रहे हो उससे हमारे विरहरूपी रोग का निदान नहीं हो सकता। यदि श्रीकृष्ण स्वयं गोकुल नहीं लौटना चाहते, तो तुम्हें भेजने की क्या आवश्यकता थी ? यदि श्रीकृष्ण हमारी विरहरूपी अग्नि को बुझा नहीं सकते तो इस जलती हुई विरहाग्नि पर तेल डालकर उसे क्यों भड़काते हैं ?' वे उद्धव को सन्देश देती हुई कहती हैं कि 'श्रीकृष्ण स्वयं आकर कूंज (क्रौंच) की तरह कुरलाहट करती हुई हमें देख जायँ। हम तो सदा उनकी प्रतीक्षा में ही रहती हैं और उनकी याद में घुल-घुलकर अपने प्राण नष्ट कर रही हैं तथा सदैव तड़पती रहती हैं।'

इसी क्रम में वे निवेदन करती हुई कहती हैं—'कृष्ण ने तो कंस राजा का आसन सँभाल लिया है, अच्छा ही होता यदि हमारे साथ भी कुछ नाता स्थापित करके रखते। हमें मथुरा के महलों का कुछ उतार नहीं लेना था, यदि कुछ समय के लिए हमें भी वहाँ ले जाते। उद्धव ! तुम श्रीकृष्ण से जाकर कह देना कि हमारा श्रीकृष्ण के साथ प्रेम का नाता स्थायी है, हम तो बड़े धैर्य के साथ इस प्रेम के नाते को निभाती रहेंगी। जब भी कुछ प्रेमी लोग मिलकर परस्पर बात-चीत करेंगे, गोपियों और श्रीकृष्ण के प्रेम की कथा सदा चलेगी। इस संसार में कुब्जा को कोई भी नहीं याद करेगा। श्रीकृष्ण के साथ सदा राधा के ही नाम का नामोच्चरण होता रहेगा।' आगे वे श्रीकृष्ण के लिए

कल्याण-कामना करती हुई कहती हैं कि 'भगवान् करे तुम्हें ३६० नारियों का संयोग प्राप्त हो, परन्तु जब तक यह जगत् बना रहेगा, इस गोपी (राधा) से ही तुम्हें दाम्पत्य-सम्बन्ध निभाना है।'

श० सिं०

धन्नासिह 'रंगीला'

पंजाबी के स्टेजी कवि धन्नासिह 'रंगीला' का जन्म १६ जुलाई १९१९ ई० को गली ऊठांवाली, अहाता अखाड़ा ब्रह्मबूटाजी, चौक परागदास, अमृतसर में हुआ था। आपके पिता सरदार गुपालसिंह अरोड़ा, गाँव माँगट भाई बन्नोसिंह, जिला गुजरात (पाकिस्तान) के निवासी थे। रंगीला की माता का नाम बिशनदेई था। देश के विभाजन के उपरान्त ये अमृतसर नगर में आकर बस गये थे।

इन्होंने सन् १९३४ ई० से ही काव्य-रचना शुरू कर दी थी। इससे पूर्व इन्होंने सन् १९३३ ई० में हरसासिह 'चातर', जो 'वारां दे बादशह' भी कहलाते हैं, को अपना काव्य-गुरु बनाया था। आप एक प्रसिद्ध स्टेजी (मंचीय) कवि के रूप में २६ जनवरी १९५५ ई० में फरूटमण्डी, अमृतसर की ओर से कराये गये कवि-दरबार में प्रथम दर्जे के कवि घोषित और पुरस्कृत हुए थे। सन् १९६८ ई० में आपको पंजाब सरकार की ओर से भी पुरस्कृत किया गया। अब तक 'रंगीला' के १३ काव्य एवं गद्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। विविध विषयों पर रची इनकी बहुत सी कविताएँ अप्रकाशित रूप में पड़ी हैं।

धन्नासिह 'रंगीला' के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह निम्नलिखित हैं—

'दिल दे छाले, रंगीले दे गीत, मसिआ दा मेला, गुरु नानक दे गीत, सतिगुरां दे नूरी गीत, माला दे तलवार, रंगीले प्रसंग, वीर मेरा घोड़ी चड़िआ, उच्ची तेरी जग उच्चे शान खालसा' आदि काव्य-रचनाएँ तथा 'अमृतसर दे ऐतिहासिक गुरुद्वारे', 'अमर कहानीयाँ', 'माता सुलखनी', (उपन्यास) और 'अमर जीवन' प्रभृति प्रसिद्ध गद्य-रचनाएँ हैं। आपकी कविताओं का मुख्य विषय धर्म, देश-प्रेम, मातृभाषा-प्रेम, समाज-सुधार आदि है। इसके अतिरिक्त 'रंगीला' ने कोई बीस ट्रैक्ट विभिन्न विषयों को लेकर रचे हैं।

जहाँ इस श्रेष्ठ कवि ने अन्यान्य विषयों को लेकर गीत तथा कविताएँ रची हैं, वहीं श्रीकृष्ण-कथा के भी विविध पक्षों को लेकर काव्य-रचनाएँ की हैं, जो मुख्यतः गीत हैं।

इनकी एक रचना में गोपियाँ श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से तंग आकर, परन्तु मन ही मन लगाव को भी दर्शाती हुई, माता यशोदा को उलाहना देती हैं, तो श्रीकृष्ण उन्हें धमकी देकर शान्त कर देते हैं। श्रीकृष्ण और गोपियों के परस्पर संवाद को इस कवि ने अति सरल तथा भावमय भाषा में व्यक्त किया है :

(१)

सखी दा उलाहभा (बोलीआं) :

मां जशोधा गल्ल सुण मेरी, तेरा लाल सतावे।
जदों वी नदी ते न्हावन जाईए, मगरे मगरे आवे॥
धक्का मार नदी बिच सुट्टे, तक्क तक्क खिल्लियां पावे।
बाहर निकल जे फड़न लगीए, जोर दी दुड़की लावे॥
माना रोक लैईं ना साथों खुम्भ ठपावे।
माता........................ .. ..॥

• • •

एने विच आ झट्ट सांवला, ओहनूं दबका मारे।
जो जो बोल कबोल तूं बोलें, सुन लै सखीए सारे॥
लख चलित्र कर लै भावें, शाम कदे ना हारे।
ऐवें पई तूं रोअब विखावें, वेखां तेरे कारे॥
मेरे डोबे नूं कोई ना जग ते तारे।
मेरे... .... ॥

• • •

सखी ने चरन सी पकड़े, आखे सदके वारे।
फेर कदे शकायित ना करसां, भुल्ली भुल्लन हारे॥

अखीओं करे ना ओहले, शामां सूरत पिआरी पिआरो।
असीं हां तेरीआं सखीआं, तूं ए साडा क्रिशन मुरारी ॥
तूं 'रंगीला' एं तेरी कुदरत सारी।
तूं 'रंगीला' एं तेरी कुदरत सारी ॥

एक ग्वालिन श्रीकृष्ण की माता यशोदा को उलाहना देती हुई कहती है—'श्रीकृष्ण हमें बहुत सताता है, जब-जब हम यमुना नदी पर नहाने के लिए जाती हैं, वह हमारे पीछे-पीछे ही आता है। वह हमें धक्के दे-देकर नदी में ढकेल देता है और देख-देखकर हमारी हँसी उड़ाता है। जब हम बाहर निकलकर उसे पकड़ने का यत्न करती हैं, तो वह तेजी से भाग जाता है। श्रीकृष्ण को ऐसी शरारतों से मना करो, कहीं ऐसा न हो कि हम उसकी पिटाई कर दें।'

जिस समय ग्वालिन माता यशोदा को उलाहना दे रही थीं, तभी श्रीकृष्ण ने आकर गोपी को धमकाना शुरू कर दिया। वे कहने लगे कि 'जो-जो चुगली-वाली बातें तुमने माता यशोदा से कही हैं, वे सब मैंने सुन ली हैं। चाहे तू लाख पाखण्ड अर्थात् दिखावे-वाली बातें कर ले, मैं कभी हार नहीं मानूंगा। तू ऐसे ही मुझ पर रोब दिखा रही है। मैं तुम्हें देख लूंगा। तू क्या कर सकती है? इतना समझ-विचार लो कि इस जगत् में मेरे डुबाये हुए को कोई भी पार नहीं लगा सकता।'

जब यह बातें श्रीकृष्ण से सुनीं तो ग्वालिन उनके चरण पकड़कर विनय करने लगी। वह कहने लगी कि 'तुम तो ऐसे ही नाराज हो गये हो। फिर मैं कभी तुम्हारी शिकायत नहीं करूँगी, केवल इस बार मुझे क्षमा कर दो। वह प्रसन्नचित्त हुई कहे जा रही थी कि तुम्हारी प्यारी सूरत कभी मेरी आँखों से ओझल नहीं होती। हम सब तुम्हारी सेविका हैं और तुम हमारे कृष्ण मुरारी हो। तू रंगीला है, यह सारी सृष्टि तेरे द्वारा ही संचालित है।'

इस भक्त-कवि की कुछ अन्य लघु रचनाएँ भी श्रीकृष्ण-जीवन के विभिन्न पक्षों पर हैं।' जिनमें 'जोदड़ी' (विनय), 'सुदामे दी शरधा', 'दरोपती दी फरियाद' आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

अपनी 'जोदड़ी' रचना में कवि राष्ट्र-प्रेम से अभिभूत होकर श्रीकृष्ण से देश के शत्रुओं से सुरक्षा की याचना करता है—

(२)

मेरे शाम अगिआन दी शाम पै गई,
मुड़ के गिआन दा सूरज चढ़ा आके।
काली नाग नूं जिस तरां नथ्थया सी,
ओसे तरां नथ्थ जुलम नूं आप आके।
बने होए दरयोधन ने हिन्दवाले,
अरजन इहना नूं फेर बना आके ॥

• • •

हिन्द द्रोपती दी लाज हथ्थ तेरे,
देश दुशमनां हथ्थों बचा आके।
गोकल विच सईयां वेहिंदीआं ने,
रास ओहना दे विच रचा आके।
जिवें रंग सुदामे तूं चाहड़िआ सी,
तेवें रंग 'रंगीले' नूं ला आके ॥

'हे श्याम! चारों ओर अज्ञान अर्थात् निराशाजनक वातावरण व्याप्त है। तुम पुनः अवतरित होकर ज्ञान का सूर्य उदय करके मानवमात्र का मोह दूर करो। जिस तरह तुमने कालिय नाग को नाथकर गोकुलवासियों की रक्षा की थी उसी तरह चतुर्दिक् परिव्याप्त अत्याचार को दूर करो। सारे भारत-वासी दुर्योधन की भाँति अत्याचारी बन गये हैं, तुम इन्हें न्यायप्रिय अर्जुन की तरह शूर-वीर बनाकर भारतीयता की सुरक्षा करो।

भारतवर्षरूपी द्रौपदी का नारीत्व तुम्हीं सुरक्षित रख सकते हो, अन्यथा समाज-विरोधी शक्तियाँ इन्हें दबोच लेंगी। जैसे तुम

गोकुल में ग्वालिनों के साथ रास रचाकर उन्हें आनन्दित करते थे, वैसे ही भारतवासियों को आनन्द प्रदान करो। जैसे तुमने सुदामा के दारिद्रय को दूर करके उसे धन-सम्पदा से सम्पन्न कर दिया था वैसे ही भारतवासियों की दरिद्रता को दूर करो।'

एक अन्य रचना 'सुदामे दी शरधा' में इस कवि ने श्रीकृष्ण और सुदामा की परम्परागत कथा को लेकर सुदामा के मनोभावों का यथार्थ चित्रण किया है। जीवन की निर्धनता एवं दरिद्रता से थका-हारा और अपनी पत्नी से प्रेरित सुदामा श्रीकृष्ण से मिलाप करने के लिए मन ही मन प्रसन्न और अपने ही विचारों में मग्न द्वारका की ओर चला जा रहा है—

(३)

तुरिआ जांदा सी सुदामा दरशनां नूं,
चुंमन बंजरां ओस दे चरन पईयां।
भोली सूरत ते सादा लिबास तन ते,
दिल दरिया अन्दर रीझां तरन पईयां॥

भावें लत्तां थकेवें नाल चूर होईआं,
फिर वी पैर अगांह वल्ल धरन पईयां।
नैनां विच बिठाल मुरार ताईं,
पलकां नाल ओह चौर सी करी जांदा॥

प्रेम छौह अंदर कदे रूढ़ी जांदा,
खियालां विच चरनी सीस धरी जांदा॥

'जब श्रीकृष्ण का बाल-सखा सुदामा उसके दर्शनार्थ जा रहा था तो मार्ग की वनस्पतियाँ आदि उसका चरण-स्पर्श कर रही थीं। उसका चेहरा उसके भोलेपन को प्रतिबिम्बित कर रहा था तथा उसके मन में अपने मित्र के साथ मिलाप करने का चाव बढ़ता जा रहा था। वह बहुत थक गया था। फिर भी मन की उमंग के कारण उसके कदम आगे ही आगे बढ़ते जा रहे थे। सुदामा अपने मित्र श्रीकृष्ण को आदरसहित नेत्रों में बैठाकर मानो अपनी पलकों से श्रद्धापूर्वक चौंर डुला रहा था। श्रीकृष्ण के प्रेम में बँधा हुआ सुदामा अपने ही विचारों में लीन उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त किये जा रहा था।'

धन्नासिंह 'रंगीला' ने अपनी 'द्रोपती दी फरियाद' रचना में कौरव-सभा के प्रसिद्ध प्रसंग को लेकर द्रौपदी की श्रीकृष्ण के द्वारा चीर बढ़ाकर लज्जा रखने का वर्णन किया है—

(४)

सोहने चंद यशोधा दे नंद लाला,
मेहर मेरे उत्ते महाराज रख्खीं।
राखा तूं अनाथां निमाणियां दा,
मान मेरा वी गरीबनिवाज़ रख्खीं॥

रो-रो आखदी दिलां ते राज तेरा,
सत्त धरम मेरा धरमराज रख्खीं।
मान मत्ते दरयोधन दा मान तोड़ीं,
भरी सभा अंदर मेरी लाज रख्खीं॥

मेरी पत नूं रोलना चाहुंन जेहड़े,
अपनी मौते ओह मर के अखीर मुक्कन।
बेशक आप मुक्कां जिसम उत्तों,
इन्ने बख्श दे कदे ना चीर मुक्कन॥

• • •

पहुँची कूक जां दुखी द्रोपती दी,
तक्क दुरयोधन दा रग बदरंग होइआ।
चीर दरोपती दे लाह लाह ढेर लाये,
सबर नाल जद जबर दा जंग होइआ॥

• • •

अख्खां साहवें 'रंगीला' मुरार दिसिआ,
तपदी होई दरोपती ठरन लग्गी।
चरन हंजूआं दे नाल धो धो के,
चीर पलकां दा चरनां ते करन लग्गी॥

'द्रौपदी विनय करती हुई कहती है कि हे यशोदा-नन्दन, मुझ पर अपनी कृपा-दृष्टि रखना। तुम तो

अनाथों की रक्षा करनेवाले हो और मुझ जैसी अनाथ एवं असहाय नारी की लज्जा तुम्हीं बचा सकते हो।' वह रो-रोकर श्रीकृष्ण से फरियाद करती है—'तुम ही हर व्यक्ति के धर्म की रक्षा करनेवाले हो। अभिमानी दुर्योधन का गर्व अवश्य ही चूर करना और कौरव-सभा में मेरे नारीत्व की रक्षा करना। जो मेरी प्रतिष्ठा को भ्रष्ट करना चाहते हैं, उन्हें अच्छी तरह से प्राण-दण्ड देना, मेरे शरीर पर इतने वस्त्र हों कि उतारे जाने पर मैं कभी नग्न न हो पाऊँ।'

'जब द्रौपदी की पीड़ायुक्त वाणी श्रीकृष्ण तक पहुँची तो दुर्योधन त्रस्त हो गया तथा उसके मुख की सारी कान्ति चली गयी। वह द्रौपदी के वस्त्र उतार-उतारकर सभा में फेंकता जा रहा था और द्रौपदी के शरीर पर वस्त्र समाप्त ही नहीं हो रहे थे, मानो अत्याचार पर सदाचार एवं अन्याय पर न्याय की विजय हो रही थी।

द्रौपदी ने साक्षात् श्रीकृष्ण के दर्शन कर लिये थे। दुःखी तथा अपमानित द्रौपदी धैर्य धारण करने लगी। उसके नेत्रों से आँसू बह रहे थे, मानो वह अपने अश्रु-जल से श्रीकृष्ण के चरणों को धोती जा रही थी।'

श० सिं०

नाराइिण सिंह

नाराइिणसिंह पाकिस्तान में स्थित ग्रीवाल गाँव जिला झेलम के निवासी थे। इनके विषय में और जानकारी उपलब्ध नहीं होती। इन्होंने 'एकमाहा' तथा 'सतमाहां' के अतिरिक्त दो 'बारांमाहे' भी लिखे हैं और वे दोनों श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार का उनका पहला काव्य 'पोथी बियोग लील्हा स्री राधाकिशन' है, जो पंजाबी बारांमाहा-काव्य के अन्तर्गत विशेष स्थान रखता है। अन्य बारांमाहों के समान यह चैत्र मास से आरम्भ न होकर भादों महीने से शुरू होता है। वियोग श्रृंगार में सावन-भादों के महीने और शीतकालीन ऋतु विरह उद्दीप्त करने में विशेष सहायक मानी गयी है। वर्षा-काल में जल की बूँदें और फुहार विरह-सन्तप्त नारी के लिए तो प्राणलेवा ही बन जाती हैं। भादों में राधा श्रीकृष्ण से वियुक्त हो जाती हैं। विरह-दग्धावस्था में वे रो-रोकर दिन काट रही हैं। वियोग के भीषण रोग से सूखकर वे तिनका हो गयी हैं। शरीर की छवि क्षीण पड़ गयी है:

(१)

भादरों भड़क सताइिआ नी, घनेरा दुख पाइिआ जदों,
अखीआं थीं उहले मेरे, क्रिशन सिधा गिआ।
डाढी बिरहुं दी पीड़ कोलों होई है अधोर,
वगे अखीआं थीं नीर, नी कलेजे तीर ला गिआ॥

कदो राम जी मिलावे शाम गले नाल लावे,
मैनूं क्रिशन दे बिछोड़े वाला भारा गम खा गिआ।
वेखी खां नाराइिण सिंघा सुक के कुरंग होई,
क्रिशन दे विछोड़े वाला रोग जुस्से धा गिआ॥ १॥

भक्त कवि राधा और श्रीकृष्ण की वियोगावस्था का चित्रण करता हुआ कहता है: 'भादों के महीने में विरह का घना दुःख सहन करने को मिला है। प्रियतम श्रीकृष्ण पास नहीं है। विरह की पीड़ा से मैं अति अधीर हो गयी हूँ। हृदय वियोग के कष्टदायक तीरों से बिंधा पड़ा है। मेरी इच्छा है कि कभी तो आकर श्रीकृष्ण मुझे गले से लगाकर मेरी पीड़ा को हरेंगे। श्रीकृष्ण से बिछुड़कर मैं गहरे दुःख में डूबी रहती हूँ। विरह की अग्नि से जलकर, सूखकर मैं तिनके के समान हो गयी हूँ। मेरा रंग भी काला पड़ गया है। श्रीकृष्ण के वियोग के गम्भीर रोग ने हमारे स्वास्थ्य को शिथिल बना दिया है।'

फागुन का महीना राधा के लिए अत्यन्त दुःखदायक है। जहाँ अन्य 'बारांमाहा' रचयिताओं ने इस महीने में राधा और श्रीकृष्ण का मिलाप कराकर होली तथा वसन्त ऋतु की मनोहारी छटा में संयोग-श्रृंगार की सृष्टि की है, वहाँ नाराइिण सिंह ने इस महीने में वियोगावस्था का चित्रण किया है। वसन्त ऋतु में अन्य गोपियाँ अपना श्रृंगार करके मन-भावन

के मिलाप के लिए उत्सुक हैं किन्तु राधा अंगारों की तरह विरह से सन्तप्त है। उसे श्रीकृष्ण के वियोग की अग्नि साल रही है। फटे हुए वस्त्र धारण करके उसने मुँह पर विभूति रमा रखी है मानो उसका रूप-लावण्य समाप्त हो गया हो। लगता है कि जीते जी उसे श्रीकृष्ण के दर्शन न हो पायेंगे।

(२)

चढ़िया फग्गण महीना, मेरा जल गिआ सीना।
जदों सहिमिआ ते सहिआ होइआ
सईआं नूं मैं वेखदी।

सईआं कीते नी शिंगार, मैनूं लग्गण अंगिआर।
जिहे क्रिशन दे विछोड़े वाली अग्ग पई सेकदी।
मूंह ते बिभूत लाई, रूप नहीं रिहा काई।
पाटे चीर मारी मैं विधाता दे जो लेखदी।
दस्सो खां नाराइिण सिंघा,
किथ्थों मैंडे ज़ागण भाग,
जीऊंदी अख्खीं कदो भाई राम जी नूं वेखदी।।७।।

'फागुन का महीना आ गया है, मेरा हृदय जल रहा है। साथवाली सखियों के द्वारा किया गया श्रृंगार मुझे अग्नि की तरह जला रहा है। विरह से दग्ध श्रीकृष्ण के वियोगरूपी अग्नि को सेंकती रहती हूँ। मैंने अपने मुख पर विभूति मली हुई है। मेरा सारा रूप-लावण्य चला गया है। मैंने फटे हुए वस्त्र पहन रखे हैं, मानो विधाता ने मेरे भाग्य में यही कुछ लिख रखा था। नाराइिण सिंह कहते हैं कि उसका भाग्य कब सुधरेगा? क्या उसे प्राण रहते प्रिय के दर्शन हो सकेंगे?'

भक्त-कवि नाराइिण सिंह के द्वारा रचित यह 'बारांमाहा' परम्परागत परिपाटी को लिये हुए है और चैत्र मास से शुरू होकर फाल्गुन की वसन्त ऋतु में समाप्त होता है। प्रारम्भ में एक दोहा (दोहरा) देकर बारह महीनों का उल्लेख किया गया है और चैत्र महीने के अन्त में एक 'रहाउ' की पंक्ति भी दी गयी है। इस 'बारांमाहा' रचना से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

(३)

दोहरा
चेत्र चिता समान है,
ज़िस मैं पड़िओ वियोग।
राधे हड्डीं धस गिआ,
हिजर शाम दा रोग।।

चेत्र चिन्तावान खलोती,
स्री क्रिशन छप गए नी।
टुट्टे हार सिंगार सरीरों,
प्रिथवी ते झड़ पए नी।।

रत्ते पलंघ ते लाल सिरहाणे,
बिना शाम भट्ठ पए नी।
अतर फुलेल नाराइिण सिंघा,
मी रोंदी छड गए नी।। १।।

बौरी-बौरी होइि राहि उडीकां
किऊँ इतना चिर लाइिआ ई।। रहाउ।।

'चैत्र का महीना राधा के लिए चिता के समान है, क्योंकि श्रीकृष्ण उसके पास नहीं हैं। श्रीकृष्ण के वियोगरूपी रोग से सूखकर उसकी ठठरी मात्र रह गयी है। उसके नेत्रों में सदा चिन्ता झलकती रहती है। उसकी यह चिन्ता श्रीकृष्ण के उससे दूर होने के कारण है। उसने श्रृङ्गार आदि करना भी छोड़ दिया है। वह लाल रंग के बिछौने पर बिना किसी तरह के सिरहाने के मानो अग्नि की गर्म भट्ठी में झुलस रही है। उसने इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थों का सेवन करना भी छोड़ दिया है। वह तो बावली-सी होकर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का मार्ग जोहती रहती है।'

श० सिं०

नारायण स्वामी

१९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में काव्य-रचना करनेवाले नारायण स्वामी रावलपिण्डी के एक गाँव

में उत्पन्न हुए थे। किशोरावस्था में ही ये भक्ति-आवेश में गृह त्यागकर वृन्दावन चले गये। कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनकी गेय पदावली, गज़लें आदि 'ब्रजविहार' नामक संग्रह में संकलित हैं। भाषा की सरसता और गेयता इनकी कविता का विशेष गुण है।

उदाहरण

(१)

सखि ! मेरे मन की को जानै ।
ऐसो को हैं अन्तरजामी, तुरत पीर पहिचानै ।
नारायण जो बीत रही है, कब कोई सच मानै ।।

(२)

स्याम दृगन की चोट बुरी री ।
....
नारायण नहिं घूरत सजनी,
जाकी जासों प्रीति जुरी री ।

रा० प्र०

निहाल

पंजाब के ब्रजभाषा-काव्य को विविध विषयक संस्कृत, फारसी ग्रन्थों के अनुवाद से समृद्ध करनेवाले भक्त कवि निहाल ऐसे रचनाकार हैं जिनकी लेखनी को काव्यशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, नीति, भक्ति, शृंगार आदि के प्रतिपादन की अपूर्व क्षमता का वरदान प्राप्त था। अन्तःसाक्ष्य के अनुसार इस कवि के पूर्वज कश्मीर से दिल्ली होते हुए पंजाब में आये। इनके पिता दिलाराम चालीस वर्ष तक दिल्ली-दरबार में रहकर, पटियाला-नरेश महाराजा साहबसिंह के पास आ गये थे। कवि निहाल का लालन-पालन यहीं हुआ। युवराज कर्मसिंह की इन पर विशेष कृपा थी। सिंहासनारूढ़ होने पर उन्होंने कवि निहाल को राज दरबार में सम्मानपूर्ण स्थान दिया—

तजि काश्मीर आये पंजाब ।
दिल्ली निवास कीनो सिताब ।।

• • •

जामें प्रवीण बढ़ दिलाराम ।
दस चार इलम को मनो धाम ।।

चालीस साल बीते सुचैन ।
महाराज कृपा कै हेरि नैन ।।

ता नगर पटियाले वास कीन ।
महाराजा साहबसिंह चीन ।।

ता तनै कवि जानौ निहाल ।
श्री कर्मसिंह ता पै दयाल ।।

ह्वै के कृपाल प्रतिपाल कीन ।
निज सभा बीच तहि ठौर दीन ।।

महाराजा कर्मसिंह का शासन-काल संवत् १८७० से १९०२ वि० तक था। तदुपरान्त क्रमशः महाराज नरेन्द्रसिंह और महेन्द्रसिंह गद्दी पर बैठे। कवि निहाल को इन दोनों का आश्रय भी समान रूप से प्राप्त रहा। इस प्रकार ये लगभग पचास वर्ष तक राज्याश्रय में रहकर काव्य-साधना करते रहे। ये संस्कृत और फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। काव्य, ज्योतिष, वैद्यक, राजनीति एवं लोक-व्यवहार का इनके कवि-व्यक्तित्व में अद्भुत सम्मिश्रण था। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

१. साहित्य-शिरोमणि (विविधांग निरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ)–१८९१ वि०, २. माधवनिदान भाषा (वैद्यक-ग्रन्थ)-१८९४ वि०, ३. सुनीति पन्थ प्रकाश (फारसी ग्रन्थ 'इखलाके मुहसनी' का अनुवाद)–१८९६ वि०, ४. चन्द्र-किरण (प्रेमाख्यान) –१८९६ वि०, ५. ज्योतिष-प्रकाश (ज्योतिष-ग्रन्थ) –१८९६ वि०, ६. लघु जातक भाषा (ज्योतिष-ग्रन्थ)–१८९६ वि०, ७. सभामण्डन ('आईन-ए-अकबरी' का भाषानुवाद)–१९०१ वि०, ८. रामायण रामचन्द्रोदय–१९०३ वि०, ९. पूर्ण प्रकाश–१९१० वि०, १०. कथा राजा हरिचन्द की–१९१० वि०, ११. कथा नृपकन्या की–१९१० वि०, १२. कथा राजा फूल की–१९१० वि०, १३. रुक्मिणी-मगल–१९२४ वि०, १४. गौरां मंगल–१९२४ वि०, १५. सुदामा-चरित्र–

१६२४ वि०, १६. भागवत-दशमस्कन्ध, १७. महाभारत–दानपर्व।

इस सूची से स्पष्ट है कि इनकी भक्तिविषयक अधिकांश रचनाएँ कथात्मक हैं और उनका आधार पूर्व-रचित संस्कृत-हिन्दी ग्रन्थ हैं। इनकी भक्ति-भावना दास्यभाव की प्रतीत होती है—

श्री यदुनाथ सुनौ बिनती,
सुख साथ अनाथ को साथ जु दीजै।
दास सुदामा की आस पुरी,
त्यों आस पुरी हमरी प्रभु कीजै॥
....
दास निहाल निहाल करौ,
इस साल में हाल सु आस पुरीजै॥

रा० प्र०

निहालसिंह

निहालसिंह कवि अमृतसर जिले के वैरोवाल गाँव के निवासी थे, यह इनके द्वारा रचित 'बारांमाहा' की अन्तिम पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है—

(१)

फागणि फाग रुति है आई,
कांन खेलदा हांरी, करे बहु जोरी।
अत्र गुलाल मले मुखि ऊपरि,
संग राधका गोरी, मलदा रारी।
हँसि-हँसि खेल करे क्रिशन राधका,
मति करि बड़ी मेरी दुख हरिउ री।
निहालसिंघ करै वैरोवाल मैं,
जिसे बारता तोरी बन रही जोरी॥

'फाल्गुन के महीने में फाग (वसन्त) ऋतु आ गयी है, श्रीकृष्ण बलपूर्वक ग्वाल-बालिकाओं तथा ग्वालों के साथ होली खेल रहे हैं। श्रीकृष्ण गुलाल और इत्र जैसा सुगन्धित पदार्थ राधा तथा अन्य ग्वालिनों के मुख पर मल रहे हैं। श्रीकृष्ण और राधा हँसते-हँसते होली का खेल रचा रहे हैं। वे इस तरह गोकुलवासियों के साथ होली खेलकर उन्हें आनन्दित कर रहे हैं।' वैरोवाल गाँव के निवासी निहालसिंह कवि ने कविता बनाकर राधा और श्रीकृष्ण की जोड़ी की क्रीड़ाओं का आख्यान किया है।

इनके कुछ छन्द उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

(२)

चेत्र चरन क्रिशन के सिमरो,
पूजो क्रिशन गुपाल उहु नन्द लाल।
विचि मथुरा दे जनम लीओ है,
मो पर हो क्रिपाल कीआ खिआल॥

सिमिर नाम हरिजी का पिआरे,
सिर तों हटदा काल जाए जंजाल।
क्रिशन-क्रिशन करो रोज पिआरे,
कहिंदा सिंघ निहाल कर प्रतिपाल॥

'चैत्र का महीना आ गया है, भक्त कवि निहालसिंह कहता है कि हमें श्रीकृष्ण का पुण्य स्मरण करना चाहिए, जिसने मथुरा में जन्म लिया और मुझ पर अति कृपा की है। उस भगवान् श्रीकृष्ण का नाम-स्मरण करने से मृत्यु का भय भी टल जाता है और सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्ति भी मिलती है। निहाल सिंह कवि तो प्राणीमात्र को श्रीकृष्ण के नाम का जाप करने का सन्देश देता है, क्योंकि वही सबका पोषक है।'

(३)

असू आन के कहि गुआरन सुणी
हो क्रिशन मुरार, हे निरंकारु।
चेटक लाइओ मैनू कल्ला छोडिआ
मैं घरु बारु अपुना दुआरु॥

ब्रिहो ने मारु मुकाई मैं ता होई
आं बहुत लवारु सुणीओ सारु।
निहालसिंघ कहै राधे पिआरी
मैनूं घरु उतार नूं इक बारु॥

'असूज (आश्विन) के महीने में विरहदग्ध ग्वालिन भगवान् श्रीकृष्ण को सम्बोधन करती हुई कहती है कि हे मुरारी, प्रेम का जादू डालकर तुम मुझे छोड़कर चले गये हो। मैंने तो तुम्हारे लिए घर-बार सब कुछ छोड़ दिया है। विरह का रोग तो मानो मेरा प्राण ही ले लेगा। इसीलिए मुझे भवसागर से पार लगानेवाले मेरी पुकार को सुन लो। विरह से विह्वल राधा कहती है कि मुझे केवल एक बार विरह-सागर के पार उतार दो। बस, एक बार दर्शन दे दो, जिससे मैं तुम्हारे साथ मिलाप करके विरह-व्यथा से मुक्त हो जाऊँ।'

इन छन्दों से निहालसिंह की कृष्ण-चरित में गहरी निष्ठा प्रकट होती है।

श० सिं०

निहालसिंह 'कवीन्द्र'

भाई कान्हसिंह 'नाभा' के मतानुसार निहालसिंह 'कवीन्द्र' का जन्म सन् १८३० ई० में हुआ था। इनके नामराशि शिष्य निहालसिंह ने इनका देहावसान-काल सन् १८८७ ई० बताकर इनकी आयु ५३ वर्ष की बतायी है, जिसके हिसाब से निहालसिंह 'कवीन्द्र' का जन्म-समय सन् १८३४ ई० बैठता है। आपके पिता का नाम मल्लसिंह था। ये शबाज़पुरा गाँव, जिला अमृतसर के निवासी थे। भाई कान्हसिंह 'नाभा' ने निहालसिंह 'कवीन्द्र' की माता का नाम कुइर देवी तथा नानी का नाम कुइरां बताया है, जो ठीक प्रतीत नहीं होता। आपका पालन-पोषण ननिहाल में नाना सुखासिंह की देख-रेख में हुआ था।

निहालसिंह 'कवीन्द्र' के कथनानुसार आप अभी शैशवावस्था में ही थे कि आपकी माताजी अपने मायके दीवाली का त्योहार मनाने के लिए गयीं और अमृतसर नगर में ही उनका देहान्त हो गया। आपकी नानी-नाना ने, जो दरबार-साहिब (हरिमन्दिर) के निकट बुंगा साहेबां में रहते थे, आपका पालन-पोषण किया। अभी आप कुछ ही सयाने हुए थे कि नानी-नाना का भी साया सिर से उठ गया। अतः आप सन्त लालसिंह निरमले के सेवक बन गये। काव्य-सूझ निहालसिंह कवीन्द्र ने ज्ञानी रामसिंह से प्राप्त की और आप सोहलांवाले बुंगे में ही टिक गये। अनुमानतः सन् १८८६ या १८८७ ई० में इनका देहावसान हुआ।

निहालसिंह 'कवीन्द्र' की रचनाएँ इनके शिष्य निहालसिंह के द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'कवीन्द्र-प्रकाश' में संकलित हैं, जिसमें 'वेदान्ती बारांमाहा, तिथां, षटशास्त्र को सार, भवसागर सेतु, स्री महावाक्य ग्रन्थ, स्री दोहा भेदावली, सत्तवार, निरमल पन्थ प्रकाश, छप्पय भेदावली, स्री मोहारनी की दोहा भेदावली, स्री वरणी सवैये भेदावली, स्री सुधासरी चित्त भेदावली, कवीन्द्र भेदावली और निरपख वाक' सम्मिलित हैं। यह भी सम्भव है कि उक्त रचनाओं में से कुछ आपके शिष्य निहालसिंह की भी हों। 'कवीन्द्र प्रकाश' २६७ पत्रों की अति सुन्दर लिपि में लिखित रचना है जिसका कुछ भाग प्रकाशित भी है। 'दोहा भेदावली' तो अलग से प्रकाशित हुई भी उपलब्ध हो जाती है। निहालसिंह 'कवीन्द्र' की कविता ओज-गुण से भरपूर है और शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप है। काव्य-शास्त्र से सम्बद्ध आपके ग्रन्थ इतने प्रौढ़ हैं कि बिना परम्परा के ज्ञान के उनका अर्थ जानना असम्भव है। भाषा में संस्कृत शब्दावली का बाहुल्य है और पंजाबी भाषा के शब्द अपेक्षाकृत कम हैं। ऊहात्मक शैली को अपनाया गया है और अलंकारों की साज-सज्जा का प्रदर्शन सहज में भी दिखाई देता है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत 'कवीन्द्र' का एक 'बारांमाहा' उपलब्ध होता है। इसमें कवि ने सांसारिक प्राणियों को श्रीकृष्ण के नाम-स्मरण पर जोर दिया है, क्योंकि वह यम से भी हमारी सुरक्षा कर सकता है। यथा—

चेत्र चरन क्रिशन के सिमरो पूजो,
किशन गुपाल, उहु नन्दलाल।
विचि मथुरा दे जनम लीओ है,
गो विप्र हो क्रिपाल, कीआ खिआल॥

सिमिर नाम हरिजी का पिआरे,
सिर तों हटदा काल, जाए जंजाल।
क्रिशन क्रिशन करो रोज पिआरे,
कहिंदा सिंघ निहाल कर प्रतिपाल॥ १॥

राधा श्रीकृष्ण को मथुरा-नरेश कंस से शिकायत करने की धमकी देती है और अपनी खोयी हुई मुँदरी माँगती है। वह श्रीकृष्ण पर मुद्रिका को चुराने का आरोप लगाती है। यहाँ इनकी रचनाओं से दो अंश उद्धृत किये जा रहे हैं :

सावण समझ करी तूं काना,
कंस कोल मैं जावां, फौज लिआवां।
इिह मुंदरी है सवा लाख दी,
मुल मुंद्री दा पावां, पकड़ि मंगावां॥

तैने मुंद्री चुक लई काना,
जद मैं जमना नावा, ता पछुतावां।
निहालसिंघ गई सखी नाल दी जलदी,
मैं घर जावां, इिह फुरमावां॥ ५॥

• • •

मघर मोर मुकटि सिर छाजे,
बंसी खूब बजावैं, मन नूं भावै।
सुने अवाजु मसतु होइि, गुआरनु
नर-नारी, चलि आवै, सीस निवावै॥

राधा क्रिशन पुकार करुदीआं,
आनु चरनु बलि लावै, तां सुख पावै।
निहालसिंघ पुकारे राधे,
कान्ह न नजरी आवै, चूक सुणावै॥ ९॥

सावन में राधा श्रीकृष्ण से अपनी मुद्रिका लौटा लेने के लिए कंस की सैन्य-शक्ति का भय दिखाती हुई कहती है, 'जो मुद्रिका तुमने चुरा ली है, वह पूरे सवा लाख रुपये की थी। मैं तुम्हें कंस की सेना से पकड़वाकर मुद्रिका वापस ले सकती हूँ। उसके खो जाने का मुझे पश्चात्ताप है। जब मैं यमुना नदी में स्नान कर रही थी तो तुमने मेरी मुद्रिका चुरा ली। मेरे साथवाली सखी तो जल्दी-जल्दी घर लौट आयी, परन्तु मैंने घर वापस आकर यह बात कही।'

श्रीकृष्ण की साज-सज्जा का ब्योरा देती हुई ग्वालिन कहती है, 'उसके सिर पर मोर-मुकुट सुसज्जित है और वंशी बजाता हुआ मन को आनन्दित कर रहा है। मैं उसकी वंशी की मधुर ध्वनि को सुनकर मस्त हुई फिरती हूँ। सभी ग्वाल-बालक और बालिकाएँ श्रीकृष्ण को सीस झुकाकर प्रणाम करके चल रहे हैं। राधा श्रीकृष्ण को पुकारती हुई कहती है कि वह उसके चरणों पर अपना शीश झुकाती है। ऐसा करके उसे अति सुख मिलता है। कवि का कथन है कि जब राधा को श्रीकृष्ण नजर नहीं आता, तो वह समझने लगती है कि सम्भवतः उससे कोई बड़ी भूल हो गयी है।'

श० सिं०

पिआरासिंह 'निरछल'

पिआरासिंह 'निरछल' आबादी भगतसिंह पुरा, सुलतान विंड रोड, अमृतसर के निवासी एक ऐसे मंचीय कवि थे जो अपनी कविता के कारण जनसाधारण के मन के राजा बन गये। इस कवि के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी, फिर भी श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके इन्होंने आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक संवेदना को जो शब्दावली दी है, वह अनुपम है—

(१)

चंगी गल्ल कोई किसे दी मनदा नही,
हर कोई आपणी रिहा मना शामां।
इिह गल्ल हार के आखरमी पै रहो ए,
उड्ड गई शरम लहि गई हया शामां॥

हुण लोड़ ए शुदरशन जहि चक्करां दी,
छड्डी आण के चक्कर चला शामां।
डर जंग दा ऐटम दा खौफ मुक्के,
ऐसी हुण इक ठण्ड वरता शामां।।

छुरीआं गऊआं दे गलां ते चलदीआं ने,
ते कलीआं मधोलीआं जांदीआं ने।
हुंदे जुलम अनिआं नूं वेख के ते,
गऊआं तेरीआं घास ना खांदीआं ने।।

श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके यह कवि देशव्यापी दूषित वातावरण को व्याख्यायित करता हुआ कहता है—'आज कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे की अच्छी बात मानने को तैयार नहीं है और हर कोई अपनी ही जिद पर डटा हुआ है। हर किसीने सामाजिक लज्जा एवं संकोच को तिलांजलि दे रखी है। ऐसे दूषित वातावरण में तुम्हारे सुदर्शन चक्र की फिर आवश्यकता है। कोई ऐसी चाल चला कि संसार के लोग विनाशकारी परमाणु बमों के खतरे से मुक्त हो जायँ। आज ऐसा वातावरण है कि कुछ लोग गो-हत्या करने पर तुले हुए हैं और फूलों जैसे जीवों की हत्या करने में संकोच का अनुभव नहीं करते। इस तरह के डरावने वातावरण को देखकर श्रीकृष्ण, आपकी गौएँ भी घास खाने से संकोच कर रही हैं।'

(२)

बासां वांग आपो विचदी खहि रहे ने,
कातल बण गिआ भाई दा भाई शामां।
मिलदा नही इनसाफ़ अदालतां चों,
जावे वाड़ ही खेत नूं खाई शामां।।

लज्ज रही नां सौहरे निल्लजिआं नूं,
करन नूंहां दे नाल लड़ाई शामां।
कुकड़ वांगरां खेह उडा के ते,
जावण आपणे सिर विच पाई शामां।।

पथ्थर दिलां ते कोई नहीं असर हुंदा,
तुसीं पिआर दी बंसी बजाई शामां।
हुण वी कर चारा जे इहि समझ जांवण,
तेरे नाम दी पावां दुहाई शामां।।

'आजकल हर कोई आपस में लड़ रहा है और भाई भाई का हत्यारा बन रहा है। न्यायालय में भी कोई न्याय नहीं करता, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे रक्षक ही भक्षक बन बैठा हो। ससुर भी इस सीमा तक निर्लज्ज हो गये हैं कि अपनी बहुओं के साथ ही झगड़ते रहते हैं। हर कोई मुर्गे की तरह अपने पंखों से मिट्टी उड़ाकर अपने ही शीश पर उँडेल रहा है। लोगों के मन पत्थर की तरह कठोर बन गये हैं। अतः हे कृष्ण! आप स्वयं ही उन्हें प्यार का पाठ पढ़ाओ।'

(३)

शामां बंसरी चों मार फूक ऐसी,
टुटे दिलां विच पिआर आ जाए।
दिलां विचों कदूरतां निकल जांवण,
टुटीआं झांजरां विच झनकार आ जाए।।

टिंगां सुकीआं चि मुड़ के जान पै जाए,
उजड़े चमन विच फेर बहार आ जाए।
आपे विचदी पिआर दे गीत गाईए,
ढठ्ठे दिलां विच फेर ललकार आ जाए।।

गऊआं गोपीआं दी अज्ज फरियाद सुणके,
'निरछल' इहनां दी आस पुजा शामां।
नगन कोई दरोपती ना होवे,
छेती आ शामां, छेती आ शामां।।

भक्त कवि श्रीकृष्ण को सम्बोधित करता हुआ कहता है—'वंशी की कोई ऐसी अद्भुत तान छेड़ो कि सब देशवासी परस्पर प्रेम के साथ रहने लगें। हर किसीका मन दूषित भावनाओं से रहित हो जाय और चारों ओर आनन्दमयी झंकार व्याप्त हो जाय। वृक्षों की सूखी हुई डालियों में पुनः चेतना व्याप्त हो उठे और निर्जन बागों में भी फिर से वसन्त ऋतु जैसा सुहानापन छा उठे। हम सब परस्पर प्यार-

पूर्वक रहना सीख जायँ और निरुत्साहित प्राणी भी साहसी बन जाय। आप गौओं और ग्वालिनों की पुकार सुनकर उन्हें निराशा से बचाकर आशावान् बनाओ। शीघ्रातिशीघ्र फिर से संसार में अवतरित होकर नारीत्व के सम्मान की रक्षा करो।'

श० सिं०

फतेहचन्द

फतेहचन्द के जीवन-सम्बन्धी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये पटियाला-दरबार में महाराज नरेन्द्रसिंह के आश्रित कवि थे। महाराजा का जीवन-काल (सं० १८८० से १९१६ वि०) और सिंहासनासीन होने का समय सं० १९०२ वि० है। इन्होंने सं० १९१३ वि० में महाराजा नरेन्द्रसिंह के दरबार में प्रसिद्ध संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' का भाषानुवाद प्रस्तुत किया था।

फतेहचन्द के 'गीत-गोविन्द' की एक प्रति सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी पटियाला में सुरक्षित है। इस कृति का क्रम सं० ५७० तथा कुल पन्ने ४६ हैं। यह गुरुमुखी लिपि में है किन्तु भाषा हिन्दी है। रचना के अध्ययन से पता चलता है कि इस कवि ने संस्कृत के 'गीत-गोविन्द' का ज्यों का त्यों अनुवाद न करके कहीं-कहीं अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। कवि ने ग्रन्थ के रचनाकाल-सम्बन्धी निम्नलिखित सूचना दी है :

क्रित राम ब्रह्म रस ससि बरख,
मास सुकारतिक बारहर।
तिथ सुकल पंचमी सुभग,
भंजन रंजन इहं नामवर॥

इस प्रकार इसका रचना-काल कार्तिक शुक्ल पंचमी सं० १९१३ वि० ठहरता है।

इस ग्रन्थ के अन्त में पुष्पिका के रूप में कवि ने महाराजा नरेन्द्रसिंह के परामर्श एवं प्रेरणा का संकेत दिया है :

'इति स्रीमत लाड़लीलाल पदारबिन्द मन मलिन्द महेन्द्र नरेन्द्र म्रिगेन्द्र कीरति स्री जैदेव कबि क्रित स्री गीत गोबिन्द फतेहचन्द भाखा विवरणे नाम खस्टमोध्याय समापतमस्तु॥ ६॥ सुभमस्तु॥ राम॥'

फतेहचन्द द्वारा प्रस्तुत उक्त भाषा-अनुवाद के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :

चन्दन चरचित नील बपु पट पीत सुधारी।
चल मणि कुण्डल केल गंड युग मंडत भारी॥
बिलसत मुगध बधू निकर, नन्दनन्दन सानन्द।
मन्द मन्द बिहँसत खरे, बनमाली जगबंद॥

• • •

पीन पयोधर तासु भार भर कोइक नारी।
मिल अनुराग समेत मदन मोहन सुखकारी॥
अंग अंग सानन्द अति, प्रीत तरंग बधाइ।
गोप बधू गावत सुसुर, पंचम राग सुहाइ॥
हाव भावन भरी॥
आलिंगन हरि करत अंगना काहुक धारी।
काहुक चुम्बत बदन चन्द अति आनन्दकारी॥
कोइक रमा रमावते, काहू लख मुसकंत।
कोऊ बाम अभिराम सों, स्याम सकाम चलंत॥
अन्त नहिं जासुको॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पटियाला-दरबार का यह भक्त कवि संस्कृत भाषा का विद्वान् और भाषानुवाद-कला का अच्छा ज्ञाता था।

श० सिं०

फतेहसिंह

कपूरथला-नरेश महाराजा फतेहसिंह अनेक कवियों के आश्रयदाता होने के साथ-साथ स्वयं भी कृष्ण-भक्त कवि थे। इनका शासनकाल संवत् १८५८ से १८९३ तक माना जाता है। इनके रचित अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं, यथा—भावरत्नमाला (कृष्ण-चरित्र-सम्बन्धी प्रश्नों के कविताबद्ध उत्तर), गोविन्दगीता, प्रकरण-कलानिधि, सभामण्डन आदि। इनके अतिरिक्त पंचदशी-संग्रह, विवेक-चिन्तामणि, कुंडलिया-

संग्रह, सीहरफियाँ एवं कविरंजन नामक अन्य कृतियाँ भी फतेहसिंह के नाम से उपलब्ध हैं। किन्तु यह कवि उपर्युक्त महाराज फतेहसिंह का आश्रित कोई दूसरा फतेहसिंह प्रतीत होता है। अन्तःसाक्ष्य से भी यह बात प्रमाणित है--

कविरंजन यह ग्रन्थवर, कियौ परम चित लाइ।
फतैसिंह भुवपाल कौ, प्रेम हुकुम धन पाइ॥

हमारे विवेच्य कवि उपर्युक्त महाराजा फतेहसिंह हैं जिनके 'भावरत्न' और 'गोविन्दगीता' नामक ग्रन्थ कृष्ण-भक्ति-विषयक हैं।

इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं :

(१)

कनक सरस मरकत सरस, तन छवि नव अभिराम।
रविजा तट बिहरत मुदित, राधासंजुत श्याम॥
श्रीराधा हरि करि कृपा, भनत फते मृगराज।
दियो अचल तिहुं काल मैं, हमको राज समाज॥

(२)

फागुन फूल फूले मनु तनु,
प्रिय प्रेम न अंक न समावत है।
हार सिंगार सजाइ रंग भर,
मिलि सखियन रस भावत है॥
रोग वियोग सोग दुख दारुन,
सो अब नेर न आवत है।
फते मृगिंद इंद सम पिय मुख,
हेरि हेरि सुख पावत है॥

रा० प्र०

फ़ीरोज़दीन 'शरफ़'

फ़ीरोज़दीन 'शरफ़' का जन्म सन् १८९८ ई० में अपने ननिहाल लाहौर में हुआ बताया जाता है। इनके पिता का नाम बीरखान था। इन्होंने मात्र आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। अकाली असहयोग-आन्दोलन और खिलाफत-लहर के सम्बन्ध में स्टेजी कवि के तौर पर आपने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। इस यवन कवि ने इसके अतिरिक्त सिख-गुरुओं के कीर्तिगान, श्रद्धा एवं उपासना को लेकर भी कविताएँ लिखी थीं जो अतिप्रसिद्ध हैं। आप मंचीय कवि के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय थे। पेप्सू-सरकार की ओर से आपको सन् १९५३ ई० में सम्मानित किया गया था। ये फिल्मों में गीत भी लिखते रहे। इससे इनको बहुत ख्याति मिली। ११ मार्च १९५५ ई० को लकवा रोग से इनका लाहौर (पाकिस्तान) में देहान्त हो गया।

फ़ीरोज़दीन 'शरफ़' की आधा दर्जन से अधिक रचनाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। सन् १९३६ ई० के बाद इनकी दो रचनाएँ 'सरफ सुनहेहे' और 'शरफ दे गीत' प्रकाशित हुए। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध इनकी रचनाएँ कृष्ण-चरित के विभिन्न पक्षों को सामने लाती हैं। इन्होंने श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई गोपियों की मनःस्थिति के चित्रण के साथ ही उनके स्वरूप और शारीरिक आकर्षण को भी रूपायित किया है। इनके कुछ छन्द प्रस्तुत हैं :

शाम--

(१)

जद दी अख्ख तेरे नाल लाई
अख्ख ना लाई शामां।
पई कल पावे कल-कल तेरी,
कल ना पाई शामां॥
हुण ते दरश दिखा शरफ़नूं
शरन है आई शामां॥

नन्ददुलारे--

किशन पिआरे नंद दुलारे बल-बल तैथों जावां।
कुंजबिहारी कूंजां बांगू मैं पई करलावां॥
जे तूं दरस दिखावें पिआरे भेटा इह चढ़ावां॥

गोकुलवासी—

तेरी बाँकी छब उदासी जेंढी,
ला गई बड़ी उदासी ।
सोहण दा सी दिल खोवण दा,
हुण मैं समझी दासी ॥
निरगुण हुण मैं होई निरासी,
आवां गोकल वासी ।
मिनतां करदी 'शरफ़' पिआरे,
तेरी दरश पिआसी ॥

श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई एक विरहिणी की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कवि लिखता है : 'जब से मेरा तेरे साथ प्रेम का नाता जुड़ा है, मुझे नींद नहीं आती । मैं प्रतिपल तेरी राह देखती रहती हूँ। पलभर भी चैन नहीं पड़ता। मैं तेरे शरण में आयी हूँ ।इस बेचैनी की दशा में तुम मुझे दर्शन दे जाओ ।'

श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई यशोदा माता उन्हें याद करती हुई कहती हैं, 'हे कृष्ण नन्ददुलारे ! मैं तुम्हारे ऊपर बलिहार जाती हूँ। हे कुञ्जबिहारी ! मैं डार (झुण्ड) से बिछुड़ी हुई क्रौंच पक्षी के समान कुरलाती (कूकती) हुई फिरती हूँ। यदि तुम मुझे दर्शन दो, तो तुम्हें बहुमूल्य भेंट अर्पित करूँगी ।'

गोकुल गाँव की गोपी श्रीकृष्ण का पुण्य-स्मरण करते हुए कहती है, 'जब से तुम बिछुड़े हो, हमारा मन अत्यन्त उदास तथा खिन्न रहता है । मैं सेविका बनी रहना चाहती हूँ। तुम जो हमारा हृदय चुराकर ले गये हो उसका रहस्य मैं अब जान गयी हूँ । मैं तो अब तक निर्गुण-निराकार में ही विश्वास करती रही इसीलिए मुझे घोर निराशा का सामना करना पड़ रहा है। मेरा इस निराशा का आकर निराकरण करो। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, दर्शन देकर हमारी प्यास बुझाओ ।'

राधे और श्रीकृष्ण (शाम) के मिलाप को लेकर भी इस कवि ने एक पद की रचना की है जिसमे वह राधे-श्रीकृष्ण के मिलाप के कारण सृष्टि में व्याप्त हर्षोल्लास की प्रतीति करता है और स्वयं श्रीकृष्ण की मधुर बंसी की धुन के आकर्षण से अभिभूत होकर उनकी स्तुति करते रहने में विश्वास प्रकट करता है। यह कवि प्रेमाभक्ति का अमृतपान करके श्रीकृष्ण के नाम-रूप-राशि को प्राप्त करने का इच्छुक है और इस प्रकार अपने अज्ञानजनित विकारों का अन्त करना चाहता है :

(२)

जद तो राधे शाम दा, आके होइआ प्रकाश ए ।
सूरज चंद्रमा चढ़ पए, दिल बन गया अकाश ए ॥
बंसी बणा गा शाम दी, अगले जनम में सबदग बिच ।
तेरे भवन दी उसतती तों, होंवदा विशवास ए ॥
तैनू नजर न आवे भला किऊँ, मूरती भगवान दी ।
मोह माइआ अज्ञान ने, हिरदे नू कीता नास ए ॥
पहुँचां मैं बैकुंठ बिच, किस पासिओ दस्सों तुसीं ।
गवरधन दा रस्ता साफ, ते बिखड़ा बड़ा कैलाश ए ॥
भगती दा अम्रित बख्श मैंनू, वासतां इ नाम दा ।
किउ कि 'शरफ़' दे नाम की, शाम दी ही रास ए ॥

प्रेमाभक्ति का अभिलाषी भक्त कवि कहता है— 'जब से मैंने राधा तथा श्रीकृष्ण को अपने हृदय में बसाया है, मेरा हर प्रकार का अज्ञान दूर हो गया है। मेरी यह कामना है कि अगले जन्म में भी श्रीकृष्ण से अपना नाता नहीं तोड़ूँगा और उसकी बंशी बनकर यह प्रेममय नाता बनाये रखूँगा। ऐसे व्यक्ति को भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते, जिसका हृदय माया से उत्पन्न विकार स नष्ट हो गया हो। मे स्वर्ग में भला कैस स्थान प्राप्त कर सकता हूँ ? मेरे लिए श्रीकृष्ण को प्रेम के द्वारा प्राप्त करना आसान है, परन्तु स्वर्ग का मार्ग दुर्गम है। मुझे तो एकमात्र तुम्हारा भक्ति की ही कामना है । मुझे तो केवल श्रीकृष्ण के नाम की राशि ही चाहिए, जिसे लेकर मैं तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त कर सकता हूँ ।'

श्रीकृष्ण और गोपियों के सम्बन्धों को लेकर भी इन्होंने संयोग श्रृंगार के चित्र प्रस्तुत किये हैं—

(३)

क्रिशन-गोपी—

सखी—

नंद दे दुलारे काहनां,
राधका पिआरे काहनां,
वीणी मेरी छोड़ दे।

शाम—

पुषप दी वेल सखीए,
चंबे ते खेल सखी ए,
प्रेम मेरा मैनूं मोड़ दे।

सखी—

तूं हैं सिआणा काहनां,
बुरा है जमाना काहनां,
घर मैं है छडो जाणा,
नैण मेरे हथ्थ जोड़ दे,
वीणी मेरी छोड़ दे, नंद दे दुलारे काहना।

शाम—

प्रेम वसा के सखी ए, प्रीत लगा के सखी ए।
गुस्से बिच आके सखी ए, शीशा न दिलदा तोड़ वे,
प्रेम मेरा मैनूं मोड़ दे॥

सखी—

काहनां मैं हारी तैथों।

शाम—

सखीए मैं वारी तैथों।

सखी—

शाम बलिहारी तैथों।

शाम—

नैणां-नैणां संग जोड़ दे॥

सखी भगवान् श्रीकृष्ण से अनुनय के स्वर में कहती है कि 'तुम नन्दबाबा तथा राधा के प्यारे हो। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरा हाथ छोड़ दो।' इस पर श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं 'कि तुम पुष्पलता तथा चमेली की डाली के समान कोमल तथा सुन्दर छविवाली हो। यदि तुम मुझसे मुक्त होना चाहती हो तो प्रेम का स्थापित नाता तोड़ दो अर्थात् एक बार कह दो कि मुझे तुमसे प्रेम नहीं है।' इस पर प्रेममग्न सखी उत्तर देती है कि 'श्रीकृष्ण, तुम बहुत चतुर हो, परन्तु समाज बड़ा निर्दय है। मुझे घर लौटकर जाना भी है। इसलिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि मुझे मुक्त कर दो।' अपनी प्रेमिका के उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तुमने मेरे साथ प्रेम का नाता इतना घनिष्ठ तथा पक्का कर लिया है कि अब उसका टूटना कठिन है। अतः अब तुम्हारा क्रुद्ध होना और मेरा दिल तोड़ना कदापि उचित नहीं है।' अन्त में सखी प्रेम-दीवानी बनकर श्रीकृष्ण से पराजय स्वीकार करती है और श्रीकृष्ण भी उसके प्रेम पर बलिहार जाते हैं और उससे नैनों से नैन मिलाने अर्थात् प्रेम का नाता बनाये रखने के लिए अनुरोध करते हैं।'

श० सिं०

बग्गासिंह

बग्गासिंह ने अन्य नामों से भी काव्य-रचना की है। ऐसे नामों में उज्जलसिंह, ओंम हरी आदि हैं। ये प्रसिद्ध कवि बीरसिंह के शिष्य थे—

बीरसिंघ गुर देव, सकल संतन मन भाइआ।
तां का सेवक नाम, सिंघ उज्जल कवि गाइआ॥
—गिआन गुटका

प्रसिद्ध है कि बग्गासिंह कवि ने 'राम-कथा' की रचना लाडवे के स्थान पर की थी। इसका रचना-काल सन् १८४० तथा १९४० ई० के बीच बताया जाता है। यह तथ्य इस रचना के अन्तःसाक्ष्य से भी प्रमाणित हो जाता है। कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत बग्गासिंह की 'क्रिशन-कथा' नामक रचना बतायी जाती है। इसकी भाषा शुद्ध ब्रज है और इसमें ९२ छन्द हैं। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है और हस्तलिखित रूप में प्रो० प्रीतमसिंह, पटियाला के पास उपलब्ध है।

श० सिं०

बलदेवचन्द्र 'बेकल'

बलदेवचन्द्र 'बेकल' का जन्म अमृतसर नगर में श्री हरीचन्दजी के घर सन् १९१२ ई० में हुआ था। आपने दसवीं कक्षा तक स्कूली शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद ज्ञानी की परीक्षा उत्तीर्ण की। पंजाबी प्रेस, अमृतसर में कुछ समय तक नौकरी करने के उपरान्त इन्होंने फिल्म-क्षेत्र को अपनाया। इनको गीत-रचना की कला विरासत में मिली थी, क्योंकि ये पंजाबी-साहित्य के सुप्रसिद्ध किस्साकार तथा गीतकार लाला धनीराम 'चात्रिक' के भतीजे थे। शुरू से ही बेकल साहिब लाला धनीराम 'चात्रिक' के गीतों का गान करते थे। बाद में धीरे-धीरे गीत-रचना की रुचि विकसित हो गयी। आपके अपने कथनानुसार 'पंजाबी दे प्रसिद्ध कवी धनीराम चात्रिक दे गीत गाऊंदा-गाऊंदा ही अज्ज माड़ा-मोटा गीतकार अखवाऊंण जोगा हो गिआ हां।'

बेकल के काव्य-जीवन का आरम्भ कांग्रेस-आन्दोलन से हुआ। इसके बाद धार्मिक मंच पर ही गीत गाते-गाते इस कवि ने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली। बेकल साहिब योग्यता को गीतकार की अनिवार्यता समझते थे। ये फ़ीरोजदीन 'शरफ़' की शैली के गीतकार थे। जिस तरह फ़ीरोजदीन 'शरफ़' के अधिकांश गीत फिल्मों तथा ग्रामोफोन रिकार्डों पर प्रचलित हुए, उसी प्रकार इनके गीतों ने भी फिल्म-जगत् में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की। 'सूरदास, लैला मजनूँ, मेरा पंजाब, मेरा माही, रावी पार' आदि फिल्मों के गीत इन्होंने ही लिखे थे। इसके फलस्वरूप ये कुछ ही दिनों में काफी लोकप्रिय हो गये। इन्होंने बाद में फिल्म-जगत् को तिलाञ्जलि दे दी और अमृतसर नगर में हां पुस्तकों का दूकान चलाने लगे। अपने चाचा लाला धनीराम 'चात्रिक' को ये अपना काव्य-गुरु मानते थे। 'सतरंगी पींघ, अरशी दरशन, जीवन लहिरां, मिट्ठे मिहणे, बेकल दे गीत, इनसान बोलिआ' आदि बेकल के लोकप्रिय काव्य-संग्रह हैं। भाषा आपने ठेठ पंजाबी अपनायी तथा श्रृंगार और वीर-रस को अपनी कविता में विशेष स्थान दिया। कृष्ण-कथा, श्रृंगार और देश-प्रेम आपके गीतों के मुख्य विषय रहे हैं।

इन्होंने जहाँ समाज-सुधार तथा गुरु-गाथाओं को लेकर गीत रचे, वहाँ हिन्दू-धर्म सम्बन्धी अन्यान्य देवी-देवताओं तथा प्रथाओं को लेकर भी भजन बनाये। इनमें श्रीकृष्ण-सम्बन्धी इनकी रचनाएँ विशेष रूप से लोकप्रिय हुईं। आपकी कृष्ण-कथा सम्बन्धी रचनाओं में 'बेकल दीआं गलीआं वे, तेरीआं तांघां, साडा शाम रूस्सिआ, तेरीआं प्रेम कहानीआं, मैं मालण मतवाली वे' आदि उपलब्ध हैं, जो पंजाबी राधा-कृष्ण-काव्य में उच्च स्थान की अधिकारी मानी जाती हैं।

इनके कुछ गीत 'बेकल दे गीत' नामक संग्रह के रूप में 'नानकसिंह पुस्तकमाला' अमृतसर की ओर से सन् १९४३ ई० तथा पुनः १९४६ ई० में प्रकाशित हुए थे। इस संग्रह से कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :

'साडा शाम रूस्सिआ' गीत में बेकल को सन्देह है कि उनका श्रद्धेय श्रीकृष्ण उनसे रूठ गया है, माने या कि न माने। इस माध्यम से उन्होंने अपने विरहोद्गारों की अभिव्यक्ति की है—

> नी हुण किहड़े पज्ज बुलाईए ?
> साडा शाम रुस्सिया।
> किहनूं दिल दी पीड़ सुणाईए ?
> साडा शाम रुस्सिया॥

'मेरा कृष्ण मुझसे रूठ गया है। मुझे पता नहीं कि कौन-सा बहाना करके उन्हें पुनः मनाऊँ। किसके सामने अपने मन की व्यथा को व्यक्त करूँ ? मेरा अपना कृष्ण मुझसे रूठ गया है।'

इसी तरह 'बेकल' के एक अन्य गीत 'काहना' में श्रीकृष्ण के प्रेम में आसक्त एक ग्वाल-बालिका मन ही मन उनके साथ मिलाप करने के लिए सदा

उत्कण्ठित रहती है। वह श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए लालायित है—

काहना—

मैं मालन मतवाली, काहना
मैं मालन मतवाली।
करीं पूरीआं दिल दीआं आसां,
दीन दुनी दे वाली। काहना····
कोमल कलीआं, फुल्ल महिकदे;
सारे दरशन लई सहिकदे;
कुबजां वांङू, कुब्बी हथ्थ जोड़ां ?
मोड़ न देवीं खाली। काहना ··
अज्ज ते दिल दी आस पुजा दे,
हर इक रीझ ते रूप चढ़ा दे,
सांवली-सांवली झलक दिखा के—
'बेकल' मन दा मोर नचा दे;
ऐसी टेर सुणा मुरली दी—
झूमें डाली-डाली। काहना ··
मैं मालन मतवाली।

एक ग्वाल-बालिका श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हुई कहती है, 'मैं एक मदमस्त मालिन हूँ। आप मेरे मन की इच्छाओं को पूर्ण करिये, क्योंकि आप तो प्राणिमात्र के रक्षक हो। बाग में कोमल कलियाँ हैं और पुष्प अपनी सुगन्धि से महक फैला रहे हैं। ऐसे रोमाञ्चमयी वातावरण में आपके दर्शनार्थ सभी भक्तजन उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि मैं भी कुब्जा की तरह आपकी दासी बन आपसे वरदान पाने की इच्छुक हूँ। मेरे दिल की आशाओं को पूर्ण करो तथा मेरे मन के चाव को भी पूरा करो। अपनी साँवली सूरत के दर्शन कराकर मेरे मन को प्रसन्न कर दो। अपनी वंशी की मधुर तान सुनाकर इस रोमाञ्चकारी वातावरण में और भी मस्ती भर दो, ताकि वृक्षों की प्रत्येक डाली मस्ती से झूम उठे।'

बलदेवचन्द्र 'बेकल' ने चाहे राधा-कृष्ण की कथा को लेकर बहुत ज्यादा रचनाएँ न की हों, फिर भी इस गीतकार कवि को रचनाओं में श्रीकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा तथा भक्तिभाव प्रतिबिम्बित होता दिखाई देता है।

श० सिं०

बाबा बुधसिंह

बाबा बुधसिंह का जन्म लाहौर नगर (पाकिस्तान) में लहिणासिंह के घर सन् १८७८ ई० में हुआ था। आप 'भल्ला' वंश सिख-धर्म के तीसरे गुरु अमरदास से सम्बद्ध थे। महाराजा रणजीत सिंह ने आपके दादा बाबा टहिलसिंह को गोइंदवाल नगर के पास चार गाँव की जागीर दी थी, जिसे आगे चलकर अंग्रेज सरकार ने वापस ले लिया था। बाबा बुधसिंह ने फारसी-भाषा में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा एक मस्जिद में मौलवी साहब से प्राप्त की। फिर मिशन हाईस्कूल रंगमहिलों से दसवीं कक्षा तक शिक्षा पायी। आप विवाहित होने के उपरान्त भी उच्च शिक्षा-प्राप्ति में संलग्न रहे और १८९६ ई० में एफ० ए० पास करने के बाद कुछ समय के लिए म्युनिसिपैलिटी की नौकरी कर ली। फिर १९०२ ई० में रुड़की से इंजीनियरिंग की परीक्षा पास करने के पश्चात् लायिलपुर, सरगोधा, मीयांवाली, रोहतक, हिसार, कोहमरी आदि नगरों में एस० डी० ओ० के पद पर नियुक्त रहे। अन्त में १९३० ई० में लाहौर नगर के सुपरटेंडिंग इंजीनियर नियुक्त हुए। १३ अक्तूबर १९३१ ई० को लाहौर-अमृतसर सड़क पर कार-दुर्घटना के कारण बुरी तरह से घायल होकर ये १६ अक्तूबर को परलोकवासी हुए। बाबा बुधसिंह की जीवन्त मानवतावादी नीति तथा सहृदयता से भरपूर कथनी और करनी विशेष रूप से स्मरणीय है। व्यावहारिक तौर पर भी आपने 'मांझी-पंजाबी-संस्कृति' का जीवनभर प्रचार किया।

इनकी 'हंसचोग, कोइिल कू, बबीहा बोल, नीतीसूतर, वैराग-सूतर, सिंगार-सूतर, चंदर हरी, दलेर कौर, मुंदरी छल, नार नवेली, प्रीतम छुह (काव्य-संग्रह), दामनी नाटक, प्रेम-कहानी (फारसी लिपि में),

हेमन्त कुमारी' (अप्रकाशित काव्य-संग्रह) आदि रचनाएँ पंजाबी-साहित्य की बहुमूल्य निधियाँ हैं। इनमें से पहली तीन रचनाएँ तो पंजाबी शोध तथा आलोचना का आधार मानी जाती हैं। पंजाबी-साहित्य के निर्माताओं में आपका प्रमुख स्थान है।

कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध बाबा बुधसिंह का एक अप्रकाशित 'बारांमाहां' उपलब्ध होता है। इसकी एक प्रति प्रो० प्रीतमसिंह (पटियाला) के पास सुरक्षित है। यह श्रीकृष्ण के जीवन के वियोग-पक्ष से सम्बद्ध है और 'बारांमाहां-वियोगी' के नाम से प्रचलित है। इस रचना का आरम्भ इस तरह से होता है—

दोहरा—

चेत सखी चितवे खड़ी,
सभ गोपी ब्रिजलाल।
तन-वियोग हा-हा करे,
घरि आवै नन्दलाल॥

'बारांमाहां-वियोगी' में भी आपके एक अन्य 'बारांमाहां-संयोगी' की तरह अन्त में श्रीकृष्ण-राधा में मिलाप होता है।

श० सिं०

बाबा रामदास

बाबा रामदास का जन्म पटियाला जिले के हरगणा गाँव में हुआ था। आप 'उदासीन-सम्प्रदाय' से सम्बद्ध थे। महाराजा नरेन्द्रसिंह के समय आपका पटियाला-दरबार में आना-जाना बना हुआ था। 'दीवाना-सम्प्रदाय' से सम्बद्ध एक दूसरे रामदास भी महाराजा नरेन्द्रसिंह के शासन-काल में ही हुए हैं। उनका भी राजदरबार से गहरा नाता था। दीवाने साधु रामदास का रचनाकाल १८०२-१८२६ ई० बताया जाता है। ये अमृतसर के प्रसिद्ध वैद्य और कवि अमीरदास के गुरु थे।

बाबा रामदासजी उदासीन-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे फिर भी इनकी रचनाओं में सगुण तथा निर्गुण उभय भक्ति-भावनाओं के दर्शन होते हैं। इनकी एक बृहत् रचना 'बाणी रामदास' के नाम से उपलब्ध है, जिसमें अधिकांशतः 'गुरुग्रन्थ साहिब' के पदों के ही भाव मिलते हैं। बाबा रामदास की कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी रचनाएँ–'द्रोपदी-चरित्र' तथा 'रुक्मिनी-मंगल' हैं। इस कवि के अनेक पद ऐसे भी हैं, जो रागबद्ध हैं तथा गेय हैं।

'द्रोपदी-चरित्र' तथा 'रुक्मिनी-मंगल' स्वतन्त्र रूप से लिखी हुई प्राचीन पाण्डुलिपियों के साथ उपलब्ध होती हैं। कुछ विद्वानों ने उक्त दोनों रचनाओं का रचयिता किसी 'रामलला' नामक कवि को स्वीकार किया है। परन्तु आधुनिक शोध इस तथ्य की साक्षी भरता है कि ये दोनों रचनाएँ 'रामलला' की छाप लिये हुए भी 'रामदास' की ही हैं।

'रुक्मिनी-मंगल' रचना का आरम्भ—'स्री गणेसाय नमाह। अथ रुक्मिनी-मंगल लिख्यते' से होता है। 'रुक्मिनी-मंगल' का कथानक नारदमुनि के राजा भीखम के घर आने से होता है। रुक्मिनी की माता उसे नारद मुनि के चरण-स्पर्श करने का आदेश देती है। मुनिराज आशीर्वाद देते हैं कि रुक्मिनी को मनभावन वर श्रीकृष्ण प्राप्त होगा—

कछु सकुच के कछु हरख के, कर जोर के ठाढ़ी भई।
कृष्ण वर तुम पाइए, यह आइस नारद दई॥ ६॥

रुक्मिनी को स्वप्न में निश्चय हो जाने पर कि श्रीकृष्ण अवश्य ही उसे वरण कर लेंगे, वह पूर्वराग से पीड़ित हो उठती है। रात-दिन वह श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न रहती है। इस कवि ने रुक्मिनी के पूर्वराग की तीव्र अभिव्यक्ति इस प्रकार की है :

हम चकोर तुम चन्द्र माधो,
तुम बिना कैसे जीओ।
तुम स्वात बूँद हम चात्रक को,
गति निस-दिन पीय-पीय पीओ॥ ११३॥

रुक्मिनी अपने भाई रुक्म की सहमति न समझती हुई अपनी सखियों के हाथ श्रीकृष्ण को सन्देश भेजती है। श्रीकृष्ण सन्देश सुनकर अपने भाई बलभद्र को साथ लेकर आते हैं। रुक्मिनी तो श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में दीवानी हो जाती है। वह हर्षोल्लास की अवस्था में झरोखों से श्रीकृष्ण को देखकर आनन्द-विभोर हो उठती है—

हलधर कृष्ण दोऊ भ्राता सुभट सुन्दर सूरवो।
रामलला प्रभ भकत वछल असुर गंजन हैं दवौ ॥१९३॥

अगम भयो अव रुकमिनी, फरकी बाईं आँख।
दौर चढ़ी जाइ महिल पे, सरकत मोती नाक ॥१९४॥

चढ़ी झरोखे भामनी, देख पीया को राह।
रामलला आनन्द भयो, द्रिसट परेऊ नाह ॥१९५॥

अन्त में श्रीकृष्ण और रुक्मिनी का विवाह होता है। वे दोनों द्वारका आते हैं। खुशियाँ मनायी जाती हैं। कवि दम्पति को अखण्ड सुख-भोग का आशीर्वाद देता है।

उक्त पाण्डुलिपि के ५० पत्रों के बाद १८ पत्रों में द्रौपदी-चरित्र का वर्णन है। इस रचना में कौरवों की सभा में पाण्डवों के द्वारा सब कुछ हारने के पश्चात् दुर्योधन के इच्छानुसार द्रौपदी को अपमानित करने की कथा का उल्लेख हुआ है। असहाय द्रौपदी द्वारा श्रीकृष्ण को स्मरण किये जाने पर वह अपमानित होने से बच जाती है। द्रौपदी की साड़ी खींचते-खींचते दुःशासन हताश हो जाता है और अन्ततः उसे श्रीकृष्ण के सम्मुख भरी सभा में लज्जित होना पड़ता है।

'द्रोपदी-चरित्र' का रचयिता न केवल श्रीकृष्ण के चरित्र को अपेक्षित महत्त्व देना चाहता है बल्कि उसे अन्य सभी पात्रों से ऊपर उठाना भी चाहता है। भक्ति-भावना एवं श्रीकृष्ण के प्रति विश्वास को प्रकट करना भी रचनाकार का उद्देश्य प्रतीत होता है। पाण्डवों के यज्ञ के अवसर पर दुर्योधन का अपमान हुआ था। फिर दुर्योधन को अपमान का बदला लेने का सुअवसर मिल गया। दुर्योधन को तो मात्र कोई बहाना चाहिए था। वह अपनी कुनीति एवं कुकर्म से बाज न आया :

गहिओ दुसासन चीर क्रोध करि बचन उचारी।
को तेरो रछपाल ताहि तू लेहु हकारी॥

तेरी रछिआ को करै, मैं देखहुँ तिस जाइ।
तीन लोक राखै कवन, कुपिओ द्रुजोधन राइ ॥३९॥

विपत्तिग्रस्त द्रौपदी नेत्र मूँदकर श्रीकृष्ण से रक्षा की याचना करती है :

द्रोपती धरिओ धिआन मनहि मन अति ही रोई।
तुम बिन स्री नन्दलाल इहां मेरा नहीं कोई॥

बूड़ति हौं दुख सिंध मैं, सरन दुआरका नाथ।
त्राहि-त्राहि सुध लीजीओ, अब हौं भई अनाथ॥

भक्तजनों की रक्षा तथा प्रभु-कृपा के महत्त्व को दर्शाना ही इस रचना का मूल उद्देश्य है। द्रौपदी की पुकार को सुनकर श्रीकृष्ण अबला की लज्जा की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं और कौरवों द्वारा किये गये अपमान से द्रौपदी की रक्षा करते हैं—

उतरे चीर अनंत रंगारंग रंग सारी।
अबर लगे अंबार सगल सैना पचहारी॥

भोजपत्र अभ्रक जिवैं, उतरै चीर अपार।
दुरजोधन बिसमै भइआ, कौतक नैन निहार ॥५७॥

• • •

जांको राखे क्रिसन, ताहि पति कौन गवावै।
गहै सिंघ की ओट, सिआर तिहि कहा डरावै॥

नगन न होवै द्रोपती, रछ्या करी मुरार।
पुहप देव बरखा करैं, जै जै सबद उचार ॥५८॥

श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध बाबा रामदास की अन्य दो रचनाएँ 'रासमण्डल-पंचाध्यायी' तथा 'लीला-रासमण्डल' भी एक ही पाण्डुलिपि में प्रतिलिपित हैं। सेन्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला की पाण्डुलिपि-संख्या ५३४ में पहले १२३ पन्ने 'रास-

मण्डल पंचाध्यायी' तथा शेष १८ पन्ने 'लीला-रासमण्डल' के हैं।

दोनों ही रचनाओं का वर्ण्य-विषय श्रीकृष्ण तथा गोपियों की रास-लीला है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की मुरली की मधुर धुन सुनकर दीवानी हो जाती हैं और मग्न होकर नृत्य करने लगती हैं। जब श्रीकृष्ण के साथ फेरी लेती हैं तो वे आनन्दविभोर होकर अपना सर्वस्व अर्पण कर देती हैं। श्रीकृष्ण गोपियों को उनके घर-बार से विरत होने का निषेध भी करते हैं। किन्तु प्रेम में दीवानी गोपियाँ सामाजिक रोक की तनिक भी चिन्ता नहीं करतीं :

अपुना पति तिआग भजै अनकउ,
दुख दे मन कउ नरकै नित रोई।
सुख नहीं सुपने सठ कउ,
करिकै हठ कउ सभ आइ रखोई॥

घर छोड़ फिरै पर कंत हिरै,
ध्रिग नारि कुनारि कहै सभ कोई।
करि कार बुरी पग मार छुरी,
गरि फाँस परी जम अंति बिगोई॥ २३॥

* * *

सवैया

इह बात सुनी जब कांनर को,
सभ ही सखीआं अति कातर होई।
होइ अधीन खरी हरि पै जल,
नैनन सिउ अंचरा उर धोई॥

सभ सिआम भईं अभिरांम सखी,
कंठ सूकि गए नंहि बोलत कोई।
रमदास भूलो तिनि देह दसा,
मन मारि अलि बन मैं सभ रोईं॥ २४॥

गोपियाँ प्रेम-विह्वल हुई खिची आती हैं। श्रीकृष्ण के समझाने पर भी नहीं समझतीं। वंशी-ध्वनि पर सुध-बुध खोकर नृत्य करने लगती हैं। श्रीकृष्ण प्रेमवश हो गोपियों के हाथ बिक जाते हैं। अतः श्रीकृष्ण को गोपियों के पूर्ण समर्पण तथा आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति पर विश्वास है इसीलिए वे हठपूर्वक गोपियों का निषेध भी नहीं करते और उनके साथ रास रचाने में आनन्द लेते हैं।

बाबा रामदास की दूसरी रचना 'लीला-रासमण्डल' का प्रेम-भक्ति अथवा चिन्तन-तत्त्व से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह तो मात्र श्रीकृष्ण और गोपियों के नृत्य (रास) को प्रस्तुत करती हैं। वाद्य-यन्त्रों तथा वंशी की मधुर तान के साथ श्रीकृष्ण गोपियों के साथ नृत्य करके फेरा काटते हैं—

राग बसन्त

चलि देखौ री सखी राग रंग।
जहि मधुर ताल बाजत मृदंग॥ १॥ रहाउ॥
डफ बैन झांझ मुरली मुचंगा।
सुर सहनाई अस उपंगा॥
अलिगोजे अलि गंजउरा।
पिक बंबीहे मगन मोरा॥

राग-रंग में मस्त गोपियों के नख-शिख-शृंगार का भी इस कवि ने अनूठा चित्रण किया है। रास का एक मनोहारी दृश्य प्रस्तुत है :

सभ गावत गोरी सरस गीत।
सिआम सुन्दर कउ लाइ प्रीत॥
कोकल से मुख कहत बैन।
म्रिग-छौना ते अधिक नैन॥ १॥

बन खेलन आईं ब्रिज की नारि।
संग कौल नैन सुन्दर मुरारि॥ १॥ रहाउ॥

पहिरे तन भूखन लाल हीर।
अति सुखदायक सुभग चीर॥
गलि बिचि सोभत मुकतिमाल।
केसर कुंकम तिलक भाल॥ २॥

* * *

किह् लौ बरनौ देहं अंग ।
बारौं छब परिकोदिन अनंग ॥

रामदास सभ मिलीं जाइ ।
जिउँ सागर कउ गंग धाइ ॥ ५ ॥

इस कवि ने 'लीला-रासमण्डल' में होली के उल्लासमय अवसर पर गोपियों और श्रीकृष्ण के बीच रस-क्रीड़ा का भी उल्लेख किया है। दोनों ओर से तरल रंग-छटा बिखेरी जाती है। गुलाल उड़ा-उड़ाकर फाग-क्रीड़ा की जा रही है। होली खेलने का गोपियों का बुलावा भी इस कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है :

चलीं सखी भरि सरस रंग ।
सभ मिलि खेलैं सिआम संग ॥

अलता अंबीर लै लै अपार ।
रंग केसर छिरकैं बार-बार ॥ ६ ॥

स्पष्ट है कि बाबा रामदास की प्रेमाभक्ति से सराबोर भावना उनकी रचनाओं का मुख्य विषय है। श्रीकृष्ण के चारित्रिक गुणों को मुखरित करना इस कवि का उद्देश्य है। अस्तु, रामदास के श्रीकृष्ण गोपियों के पथभ्रष्ट होने का निषेध करते हैं। उन्हें सन्मार्ग पर लाने का दायित्व निभाते हुए दिखाये गये हैं। इस तरह प्रेमाभक्ति का निरूपण इन रचनाओं का प्रधान स्वर है।

बाबा रामदासकृत गुरुमुखी लिपि में श्रीकृष्ण-राधा विषयक एक पंजाबी रचना भी उपलब्ध होती है 'झगड़ा मुंदरी दा'। यह इस भक्त कवि की एक ऐसी कृति है जिसमें गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की छेड़-छाड़ और प्रेम की अनूठी स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। मथुरा से गोपियाँ दूध, दही और माखन बेचने के लिए निकली हैं। श्रीकृष्ण की वेशभूषा का वर्णन करके कवि ने गोपियों के साथ उनकी छेड़-छाड़ को अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है :

रामदास मथरा में गुजरी,
चली सभ साज बनाई है ।
मोती मांग सीस नकबेसर,
करनफूल छबि छाई है ॥

मटकी सीस बाजूबंद पहुँची,
दुलरी अधिक सुहाई है ।
रजत जड़ित कर मुंदरी सोहै,
दधि बेचन को आई है ॥ १ ॥

मारग मांहि मिले मनमोहन,
कहु गुजरी कित जावों री ।
दधि का दान हमारा देवो,
दूख लगै देहु खावों री ॥

प्रीति रीत मैं देह की गुजरी,
किह तुम रार मचावों री ।
रामदास जे मानत नाहीं,
सभ दधि लूट के खावों री ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण की धमकी सुनकर गोपियाँ क्रुद्ध हो उठती हैं और उनको नन्दबाबा का नौकर कहकर और अधिक छेड़ती हैं :

लूटनहारे आज निहारे,
नंद महिर घर नौकर तूं ।
दो दमड़ी को कमरी ओड़ के,
किस पर करनैं आकड़ तूं ॥
मोर पंख सिर ऊपर धर के,
तबी कहावैं ठाकुर तूं ।
रामदास बंसी के जोरे,
मौ पै मांगै माखन तूं ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण क्रोध में आकर गोपी की मटकी सिर से उतार लेते हैं। दोनों भुजाओं से पकड़कर उसकी अँगुली से मुँदरी निकाल लेते हैं और उसे अपने आलिंगन में भर लेते हैं। गोपी यह सब देखकर व्याकुल हो जाती है :

श्रीकृष्ण के मुंदरी उतार लेने पर गोपी के क्रोध-मिश्रित स्नेहभाव को इस कवि ने रोचक रूप से व्यक्त किया है। परस्पर वार्तालाप तथा उलाहनेभरी छेड़-छाड़ बड़ी स्वाभाविक और छल-कपट-रहित है—

चोर होवें कि या साधू होवें,
मुंदरी वेहु हमारी वे।
माँगत बहुत देर भई मो को,
नहीं तां देवों गारी वे॥

रात दिने कहु झूठ-झूठ तुझ,
तांते मूरति कारी वे।
रामदास जिस घर तूं जनमयों,
धन्न पिता महितारी वे॥ ९॥

• • •

धंनय धंनय तुझे किआ हमारी,
तूं वड घर की देख लई।
दो कौड़ी की मुंदरी कारन,
हा-हा करदिआं जान लई॥

चल ब्रिज में बनजारे पासों,
मुंदरी लै दूं और नई।
चिंता छोड़ सबर कर ग्वारिनि,
रामदास जो भई सु भई॥ १०॥

अन्ततः ग्वाल-बालिका मुंदरी-माँगती माँगती अति व्याकुल हो जाती है तो श्रीकृष्ण उसे लौटाने पर राजी हो जाते हैं। गोपियाँ जब श्रीकृष्ण की मुरली और उसमें जड़ित मुंदरियों को देखती हैं, तो उनमें जड़े हुए नगों में उन्हें कई ब्रह्माण्डों के दर्शन हो जाते हैं। वह ऐसी दुर्लभ मुंदरियों को देख विस्मित हो जाती हैं।

रामदासजी की रचनाओं से कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

(१)

तब हँस बोले शयाम सुंदर जी,
को अति रोस मचावो री।
हाँसी करत रहत संग तेरै,
लै मुंदरी घर जावो री॥

मुँदरी मुरली मांहि रहित है,
आपुनी चीन्ह उठावो री।
रामदास मुंदरीलै अपनी,
मत दूजी लै जावो री॥ १६॥

(२)

देखन लागी गवारनि मुरली,
मुंदरी देखी अमित तहां।
एक-एक ब्रहिमाण्ड मोल की,
आपुनी सम कोई देखी नां॥

कोटि-कोटि की सूरज सोभा,
इिक इिक मुंदरी पेखी तहां।
रामदास सुर नर मुनि दुरलभ,
ऐसी मुंदरी देखो तहां॥ १७॥

(३)

जो मुंदरी इिह सुणे सुणावे,
जनम-मरन नहीं पावत है।
ब्रह्मादिक मुनि शेष सारदा,
निस-दिन धियान लगावत है॥

राधा क्रिशनजी को प्राणी सिमरियो,
अंत प्रभू गति पावत है।
बुरी परी सोध लऊ कवियो,
रामदास गुण गावत है॥

श० सिं०

बिहारी

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि बिहारीलाल से भिन्न पंजाब के कृष्णभक्त-कवि बिहारी दशम गुरु गोविन्दसिंह के सम-कालीन थे अथवा परवर्ती इसमें मतभेद है, परन्तु इनके नाम से पंजाबी में अन्यान्य सन्दर्भ लेकर लिखी गयी कविता मिलती है। इस कवि के जीवन-विषयक अपेक्षित विवरण उपलब्ध नहीं हैं।

भाई वीरसिंह ने 'कलगीधर चमतकार' की साखी 'इबराहीम अजमेर सिंह' में लख्खी वन में हुए कवि-दरबार में सम्मिलित अन्य कवियों के साथ बिहारी कवि का भी नामोल्लेख किया है। डॉ० मोहनसिंह दीवाना तथा सरदार तेजासिंह (भूतपूर्व प्रोफेसर, खालसा कॉलेज, अमृतसर) ने भी बिहारी कवि को गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवियों में शामिल करके इनकी कविता के नमूने प्रस्तुत किये हैं। मिश्र-बन्धु-विनोद के रचयिता ने एक 'लालबिहारी' नामक कवि का उल्लेख किया है और उसका जन्म-काल सं० १७३० वि० (सन् १६७३ ई०) बताया है। इस ग्रन्थ में लालबिहारी का रचना-काल भी सं० १७५५ वि० (सन् १६९८ ई०) बताया गया है। बिहारी के जीवन-सम्बन्धी ये तथ्य गुरु गोविन्दसिंहजी के समय से मेल खाते हैं। अतः गुरुजी के दरबारी कवियों में आनेवाले बिहारी कवि यही हो सकते हैं, भले ही इनकी कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध न हो। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी इनका एक 'मांझ' मिला है, जिसकी भाषा पंजाबी है। वह नीचे उद्धृत है :

बिन्द्राबन दीआं ठंढीआं छांवां,
भौरीं रुण-झुण लाइिआ।
कढि कलेजा कोइले कीता,
कोई दादुर दुंद रचाइिआ ॥
बिजली चमके ते घनीअर गरजै,
मेरा सुत्ता प्रेम जगाइिया।
इकस मुरलीवाले बाझ बिहारी,
सानूं खूनी सावण आइिया ॥

कवि वृन्दावन के सुखमय वातावरण का वर्णन करता हुआ कहता है कि 'वृन्दावन में वृक्षों की ठण्डी छाया है। चारों ओर वन में मोर मधुर ध्वनि से आलाप कर रहे हैं। परन्तु राधा ग्वालिन का हृदय विरह की अग्नि से जलकर कोयले के समान काला पड़ गया है। मोर की मधुर ध्वनि उसे मेढक की टर्र-टर्र के समान प्रतीत होती है। इस पर आकाश में काले बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है। यह सब कुछ राधा के मन में श्रीकृष्ण के प्रति सुषुप्त प्रेम को जाग्रत कर देता है। राधा को श्रीकृष्ण के बिना सावन का रिम-झिम करता हुआ महीना पीड़ादायक और भयभीत कर देनेवाला लगता है।'

श० सिं०

बुधसिंह

ये पटियाला-नरेश अमरसिंह के समय में विद्यमान थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में अमरसिंह तथा उनके पुत्र बुधसिंह का उल्लेख किया है—

क. ता के बीर लिख्यो यहि पिंगल,
अमरसिंह निज कर धर धीर ॥

ख. पर दुख खंडन उदारचित,
विक्रम बुधसिंह राइ गंभीर ॥

अमरसिंह का शासनकाल सं० १८२२ से १८३८ तक रहा।

उपलब्ध कृतियों में से कुछ के रचनाकाल से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है। यह कवि मूलतः बनूड़ गाँव, जिला पटियाला का निवासी था।

ये अपने नाम के साथ 'शशिज मृगेन्द्र' उपनाम का प्रयोग करते थे। पंजाब में, विशेषतः पटियाला-दरबार के कवियों में अपने नाम के पर्यायरूप को उपनाम के रूप में प्रयुक्त करने की परम्परा रही है, जैसे साहबसिंह 'मृगेन्द्र', वसन्तसिंह 'ऋतुराज' आदि। इनका उपनाम 'शशिज मृगेन्द्र' ही इन्हें खालसा-दरबार के एक अन्य कवि 'बुधसिंह' से पृथक् करता है। यहाँ 'शशिज मृगेन्द्र' छापवाले कवि बुधसिंह का परिचय अभीष्ट है, जिनकी कृष्ण-भक्ति में विशेष आस्था थी। इनकी प्रमुख काव्यकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

१. माधवानल कामकन्दला (१८३० वि०), २. माधवानल भाषा (१८३७ वि०), ३. राधामान

(१८३७ वि०), ४. मदन-चन्द्रोदय (१८४७ वि०), ५. अद्भुत नाटक (१८६३ वि०) और ६. गुरु-रत्नावली।

इनकी भक्तिमयी कविता में हृदय-रस के साथ-साथ संगीत-माधुरी का भी अद्भुत समावेश है—

(१)

ललित सुमन घन, अलिन पनच मन,
बिहरत उपवन सुषमा समाज जू।
रतन जटत सुघरत हू मुकुट सीस,
कटि पै निषंग पंच बानन बिराज जू॥

सकल सिंगार सुख सार मध हितकार,
परम सुधार तरुनाई तर बाज जू।
कमल अनंद सुख नंद नंद नंद नंद,
जै जै शम्बरारि बीर जै जै रितुराज जू॥

(२)

कवि शशिज मृगिंद अनंदयुत,
जाचत है जुग जोरि कर।
दै भगति दान भगवान निजु,
जाउँ तुरत भवसिंधु तर॥

(३)

मोर मुकुट मुरली मधुर,
मधुर बैन सुखकंद।
नमो राधिका प्रानपति,
स्याम रूप नँद-नंद॥

रा० प्र०

बुल्हेशाह

आप कसूर (पाकिस्तान) के निवासी सूफी कवि थे। 'काफी' शैली में पंजाबी-काव्य-जगत् में पर्याप्त काव्य-रचना की गयी है। आलोच्य कवि ने भी इसी काव्यरूप में सूफी रंगत की काव्य-रचना की, जो पंजाबी-काव्य की विशिष्ट पूँजी है। बुल्हेशाह की काफियाँ गेय हैं और पंजाबी-साहित्य-जगत् में प्रसिद्ध ही नहीं, समादृत भी हैं। इनका देहान्त ११७१ हिजरी में माना जाता है। इस कवि की पंजाबी-भाषा में कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी एक 'काफ़ी' मिलती है, जिसमें श्रीकृष्ण के बाँसुरी-वादन की महिमा का वर्णन करके उनके प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया है। मूल रूप में यह काफ़ी इस तरह है—

(१)

बंसी काहन अचरज बजाई॥
बंसी वालिआ चाका रांझा।
तेरा सुख है सब नाल सांझा॥
तेरीआं मौजां साडा मांझा,
साडी सुरती आप मिलाई।
बंसी काहन अचरज बजाई।

बंसी वालिआ काहन कहावें।
सभ दा नेक सरूप मनावें॥
अखीआं दे विच नजर न आवें।
कैसो बिखली खेल रचाई।
बंसी काहन अचरज बजाई।

बंसी सभ ते भोरी सुट्टे सटावे।
अरथ इसदा कोई बिरथा पावे॥
जो कोई आनन्द दी सुर पावे,
सो इस बंसी दा सुदाई।
बंसी काहन अचरज बजाई।

• • •

इस बंसी दे पंज सत तारे।
आप आपणी सुर भर दे सारे॥
इक सुर सब दे विच दम मारे,
साडी इस ने होश भुलाई।
बंसी काहन अचरज बजाई।

बुल्हा पंज पए तकरार।
बूहे आन खलोते यार॥
रखीं कलमें नाल बियोपार,
तेरी हसरत भरे गवाही।
बंसी काहन अचरज बजाई।

श्रीकृष्ण ने अद्भुत वंशी की तान छेड़ी है। कवि वंशीवाले श्रीकृष्ण को सम्बोधन करके कहता है: 'हम सब तेरे साथ रहकर ही सुख का अनुभव करते हैं और तेरे साथ मिलकर जीवन व्यतीत करने से ही आनन्द मिलता है। हम तुझे 'कान्ह' कहकर पुकारते हैं। तुम सब लोगों को शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करते हो। तुम सबकी आँखों में हो, परन्तु नजर नहीं आते हो। यह सब तेरी अद्भुत लीला है। श्रीकृष्ण की वंशी अति भोली है और इसके स्वर के अर्थ को कोई विरला ही समझ पाता है। इस संसार का जो प्राणी इस वंशी की मधुर एवं मोहक ध्वनि को सुनता है, वही इसके अधीन हो जाता है। श्रीकृष्ण की वंशी में कई मधुर स्वर हैं, परन्तु इसके अलग-अलग स्वरों में मात्र एक स्वर विद्यमान है, जिसके कारण सब लोग अपने-आपसे विभोर हो जाते हैं। मेरा यार (यमराज) मेरे द्वार पर आकर खड़ा है और पाँच पीर एवं मुर्शिद (हजरत मुहम्मद साहिब तथा उनके चार सलाहकार) उसके साथ संवाद करते हैं। वे इस बात की साक्षी भर रहे हैं कि उसने आजीवन प्रभु-भक्ति की है और शुभ कर्म किये हैं।'

श० सिं०

भगवान

इनके लौकिक जीवन-सम्बन्धी कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। कुछ फुटकर छन्द काव्य-संग्रहों में मिलते हैं, जिनमें कृष्ण-प्रेम की महिमा, वंशी-वादन तथा रूप की मोहकता तथा नामोपासना का माहात्म्य वर्णित किया गया है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:

(१)

नंद दा नंदन नेहु निबाहू,
तिस नाहे नीति न साई।
हरि हीरा तजि कंचनु बाझऊ,
तिस तूं मति न आई॥

दुक्खां दे चुहले विच पा,
विसिरिआ सुखदाई।
लहै भगवान से वडभागण,
जिस दा मित्र कन्हाई॥

नदी किनारे झिलमिल तारे,
चंद चानणो बाई।
बिंद्रा़बन दे मंदर उपरि,
मुरली कान्ह बजाई॥

इक मुरली सुर नर सभ मोहे,
गोपी सुध विसराई।
कहै भगवान हरि हासि रचो,
मैंडी जिंद तमासै आई॥

हरि रसमती मधै रती,
हरि रस भीना सीना।
हरि-गुन गहणा आडी चोटी,
हिरदै नाम खजीना॥

मोहन दा मुख वेख सोहै,
नन्द नसीह खजीना।
कहै भगवान मन आशक होइआ,
मनमोहन दाना बीना॥

श० सिं०

भावनदास

इस भक्त-कवि के जीवन से सम्बद्ध अपेक्षित जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी, परन्तु कृष्ण-चरित से सम्बद्ध इनके दो छन्द प्रस्तुत हैं—

(१)

पाती मैनूं होर न कोई सुनावऊ ॥ २ ॥ रहाउ ॥
करऊ सखी चंगिआई मै नाल
टुटि मोहण आइि मिलाऊ ॥

जीवऊ जानी जीऊ मंहिडा मेरी
जान जानी विचि पावऊ ॥

दारू लाइिआ लगदा नही
तुसी कोई घसिआ लावऊ ॥

भावन जे ए मैं बिरहु दिवानी
टूक झात असा मिलावऊ ॥

एक गोपी अपने आराध्य श्रीकृष्ण के साथ मिलाप करने के लिए व्याकुल होकर कहती है, 'श्रीकृष्ण के साथ मेरा जो नाता टूट गया है, उस प्रेम के सम्बन्ध को कोई हितैषी फिर से स्थापित कर दे। मेरे प्रिय युग-युग तक जियें। मेरे विरह-रोग को ठीक करने के लिए कोई औषधि भी नहीं मिलती। हे प्रियतम ! इसका कोई उपचार तुम स्वयं करो। मैं विरह के कारण बावली हो गयी हूँ। कोई ऐसा है जो मुझे श्रीकृष्ण से मिला दे ?'

(२)

सिरीराग

सूरत तोरी मोहणी वारी वे
मोहणा मैं देखण दी देवा ॥ १ ॥ रहाउ ॥
कोई जो चेटक लाइिओ वारी वे
मोहणा विसरिआ तन ग्रेह ॥ १ ॥
सभु जग आखे कमली वारी वे
मोहणा कोई न जाने तैणा ॥
आखिआ सो इन्हा लोइिणा वारी
वे मोहणा करीए समझ सनेह ॥
भावनदास दी बेनती वारी वे
मोहणा पलि पलि दरशन देहि ॥

श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति में लीन एक गोपी उनके दर्शन की अभिलाषा व्यक्त करती हुई कहती है : 'प्रियतम ! तुम अत्यन्त रूपवान् हो। मैं तुम्हारे सुन्दर स्वरूप पर बलिहार जाती हूँ। कोई ऐसा मेरा हितैषी है जो मुझे बिछुड़े हुए श्रीकृष्ण से मिला दे ? सारा संसार मुझे बावली कहता है, परन्तु कोई भी मेरी विरह-पीड़ा को नहीं समझता। मैं स्नेहभाव का नाता जोड़ने की याचना करती हूँ। हे मोहन ! मुझे पलभर के लिए दर्शन देकर मेरे मन की इच्छा पूरी कर जाओ।'

श० सिं०

भैयाराम

भैयाराम जिला होशियारपुर के गाँव हरिआणा के निवासी और एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार से सम्बद्ध थे। इसका प्रमाण 'बारां माहा नथो भय्ये दा' के अन्तिम पद से मिल जाता है।

(१)

चढ़े चेत चित चौंप, दुआबे बिच हरिआणा।
बागीं बड़ी बहार, भय्ये दा बीच टिकाणा ॥
शाहूकार दा पुनाह, मन खोजदा जावे।
भय्या जात ब्राह्मण, उस दा इशक
कमावे ॥ १३ ॥

'चैत्र का महीना आने पर मन आनन्दित हो उठता है, दुआबा प्रदेश (सतलज तथा व्यास नदियों के मध्य का क्षेत्र) में ही हरियाणा का अनुभव होने लगता है। बागों में वसन्त ऋतु का आगमन हो गया है। आश्रयदाता के पास रहता हुआ मन ही मन में उस प्रभु के विषय में विचार करने लगता है। ब्राह्मण-जाति का कवि भैयाराम प्रभु के प्रेम में लीन है।'

भैयाराम को एक लड़की के साथ प्यार हो गया था, किन्तु उनका यह प्यार-सम्बन्ध अधूरा ही रह गया। परिणामस्वरूप दीवानेपन में कविता करने लगे। धीरे-धीरे भक्त-कवि होकर, ये प्रतिवर्ष चिन्तपुरनी नामक तीर्थस्थान पर भक्ति-भाव से प्रेरित हो जाया करते थे। वहाँ माता के भजनों का गायन करके ये सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हो गये। आपके कविता-गायन का ढंग इतना निराला था कि मूल कविता में एक अद्भुत भक्ति-रस का आभास होने लगता था। अपने समकालीन सुथरों के साथ आपका विशेष स्नेहभाव था।

इनकी कविता में लौकिक तत्त्व प्रधान है। छन्द-पिंगल, भाषा-शैली पर पूरे उतरते हैं। 'ढिओढ' इनका प्रिय छन्द है। इनकी काव्य-शैली अपनाये गये

विषय तथा वातावरण को एकरस बना देती है। इस कवि ने शुद्ध पंजाबी-भाषा का प्रयोग किया है।

भैयाराम ने कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत कतिपय मांझों की रचना करके श्रीकृष्ण तथा राधा के प्रति अपने पूज्यभाव का परिचय दिया है। कुछ नमूने प्रस्तुत हैं :

(२)

माए नी मैं रहां कुआरी,
बांदी की सुख पाइआ।
सोन दे के लाल विहाजिआ,
तांबा निकल आइआ॥

खुल्हे केस गले विच मेरे,
जो लिखिआ सो पाइआ।
भय्याराम जद तों सायों बिछड़े,
तद तो योग कमाइआ॥

माए नी सुण मेरीए माए,
आ पिआ सिरि तारे।
लोक जाणत हथ महिंदी रंगली,
लहू भिने हथ सारे॥

मारां लत्त बुझावां बत्ती, अग्ग लावां,
इस खारे शगनां वाले।
जिन्हां दे नाल मुहोबत्त साडी,
लद्द चले वणजारे॥

माए नी सुण मेरीए माए,
की तदबीरां करीए।
योगण बण मिलिआ सांवरा,
केहड़ा पंथ हुण फड़ीए॥

जा तप करीए माधो बन मैं,
वरां सांवरा बरीए।
भय्या राम साडा जीवन भारी,
जा जमना डुब मरीए॥

• • •

सिर धर मटकी जानोआ लटको,
सिआम मिलिआ मैंनूं खिलदा।
सांवले कोलों नैण छिपाए,
उस तेरा मोलिआ दिलदा॥

सांवले मैंडा मैं सांवले दी,
फरक न रहिआ विच दिलदा।
लख गुआर पई झख मारे,
दिल कितिआ ते दिल मिलदा॥ ८॥

राधा-कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति-भावना अर्पित करते हुए कवि ने लोककाव्य-शैली में एक विवाहिता विरहिणी के रूप में अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं। विरहिणी अपनी माता से निवेदन करती है : 'यदि प्रिय का वियोग ही विवाह के बाद मिलना था तो इससे अच्छा यही था कि मैं अविवाहित ही रहती। मैंने अपना सोने जैसा जीवन पति को अर्पित किया था मगर वह ताँबा प्रमाणित हुआ। यह मेरे साथ धोखा हुआ। विरहदग्धा मेरी दशा अति शोचनीय है। मेरे भाग्य में जो लिखा था वही मिला है। जब से अपने प्रिय से मेरा वियोग हुआ है योग धारण किये हुए उसे ढूंढ़ती फिरती हूँ।

मेरा विवाह हुआ, यह एक विचित्र लीला है। सब लोग समझते हैं कि मैंने हाथों में सौभाग्यवती बनने के लिए मेंहदी लगा रखी है, मगर मेरे हाथों का लाल रंग तो विरहरूपी अग्नि की ज्वाला के कारण हो गया है। मेरा जी करता है कि इस प्रज्वलित वेदी की अग्नि को बुझा दूं। किसी भी तरह यह मुझे अच्छी नहीं लगती। जब मेरे प्रिय ही मुझे छोड़कर चले गये हैं, तो ऐसी औपचारिकता की क्या अपेक्षा हो सकती है।

(विरहिणी गोपी (जीवात्मा) अपनी माता से विरह से मुक्त होने के लिए अन्य उपायों के विषय में भी विचार करने को कहती है।) योग धारण करने अथवा तपस्वी बनने से भी उस प्रियतम से मिलाप नहीं हो सकता। अतः इससे तो यही अच्छा है कि यमुना

नदी में डूबकर अपने प्राणों का अन्त ही कर लिया जाय। मात्र ऐसा करने से ही विरह से मुक्ति मिल सकती है।

मैं अपने शीश पर मटकी रखकर प्रियतम से मिलाप हेतु बाहर जाती हूँ। उससे मिलकर मेरा मन आनन्दित हो जाता है। मैं लज्जावश छिपी रहती हूँ, परन्तु वह रसिक श्रीकृष्ण मेरा हृदय हर लेता है। यह देखकर मैं स्वयं श्रीकृष्ण की हो जाने के लिए लालायित हो जाती हूँ। मैं श्रीकृष्ण की तथा श्रीकृष्ण मेरे होकर मिलन की अवस्था का आनन्द लेते हैं। मिलाप होने पर मेरा विरह-कातर हृदय उल्लास से भर जाता है। कवि का कथन है कि वह ग्वालिन चाहे इधर-उधर भटकती फिरे, परन्तु जिसके साथ प्रीति का नाता होता है, उसके साथ मिलाप होने पर ही उसे चैन पड़ता है।'

श० सिं०

मखनलाल खत्री

इस कवि के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। श्रीकृष्ण-द्रौपदी-सन्दर्भ-सम्बन्धी उसकी एक कविता के कुछ अंश मिलते हैं। वे यहाँ प्रस्तुत हैं :

वे मैं खड़ी दरोपदा नार वे।
मेरी अरज़ सुनो तूँ मुरार वे॥

मेरे नाल इिह की जुलम कयांवदे।
विच सभा दे नगन करांवदे॥

सुनो अज्ज तूँ मेरी पुकार वे।
मेरी अरज़ सुनो मुरार वे॥

करदे जुलम ज़रा नहीं संगदे।
मेरे कपड़े लाहवन अंग दे॥

खड़ी विच सभा शरमशार वे।
मेरी अरज़ सुनो मुरार वे॥

पिआ जुलम दुसासन कयांवदे।
मैनूं केसां तों पकड़ लिआंवदे॥

खिच्च साड़ी कीती तार-तार वे।
मेरो अरज़ सुनो मुरार वे॥

• • •

गोकल नगरी नूं आप बचाइिआ री वे।
मोहन गोवरधन उंगली उठाइिआ वे॥

दित्ता इिंदर दा गरभ निवार वे।
मेरी अरज़ सुनो मुरार वे॥

नामे, पीपे ते सदने कसाई नूँ।
तूं तारिआ सो मीरांबाई नूँ॥
लिआ वे सुदामा उतार वे।
मेरी अरज़ सुनो मुरार वे॥

दुर्योधन की राज-सभा में खड़ी द्रौपदी श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हुई कहती है : 'मेरे साथ कौरव-पुत्र अन्याय एवं जुल्म कर रहे हैं। भरी सभा में मुझे नग्न करके अपमानित कर रहे हैं। इसलिए हे कृष्ण! मुझ अबला की पुकार सुनकर मेरी सहायता करो। वे मेरे साथ अन्याय करते हुए तनिक भी झिझकते नहीं और मेरे वस्त्र उतारने पर तुले हुए हैं। मैं भरी सभा में लज्जित और अपमानित-सी खड़ी हूँ। अतः मेरी विनय स्वीकार करो। दुःशासन केशों को पकड़कर मुझे सभा में लाया है। उसने मेरी साड़ी खींचकर तार-तार कर दी है। इसलिए हे कृष्ण! तुमसे सहायता की याचना करती हूँ। तुमने गोवर्धन पर्वत को अँगुली पर धारण करके गोकुल के लोगों की सुरक्षा की थी और इन्द्र देवता के गर्व को चूर किया था। इसलिए मेरी भी पुकार सुनो। इसी भाँति तुमने नामदेव, पीपा, सदना, मीरा, सुदामा आदि भक्तजनों की आड़े समय पर सहायता की थी और उनका उद्धार किया था। अतः इस विपत्ति के समय मेरी सहायता कीजिये।'

श० सिं०

मनहरिदास

ये पंजाब-प्रदेश के किस स्थान के निवासी थे, माता-पिता का क्या नाम था, जन्म-काल क्या था

आदि के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके श्रीकृष्ण के चरित्र पर फुटकर छन्द मिलते हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं :

राग सूही

मेरा लै गइिआ चुराइि,
नंद महर दा सवेम।
असी मन मोहि गइिआ बेन बजाइि,
गली असाडली आवेदा।
असी राधे, तूं भ्रिखभान सुता नी,
लजो गईए, ओह अहीर कहावेदा॥

इशक न पुछदा जात नी भोली माए,
मसलति विचि न आवेदा।
असी. तेरी लोक करेग चरचा नी,
नी लजों गईए तैनूं तां शरम न आवेदा।
बिरोंह बुरी वलाइि, नी भोली माइि,
लोक परलोक सणांवदा॥

• • •

अनी जसोधा राणी, बालक नूं समझाइि,
इिह तां अजकल चंचरु काइि उपांवदा।
सगों डर गई घनईए दी आटै,
लै जाऊ भैगां अहु देखि बालक आंवदा॥

• • •

प्रभ दे घुंमारी आले बाल,
माथे तां मुकुट सुहांवदा।
संग लै चली राधे दी माए,
प्रभ आइिआ ते बन बजांवदा।

नैन सिउ नै मिलाइि,
प्रभु नैणा दे विच समांवदा।

हुणी राधेक्रिशन मिले,
प्रेम पूरा होइिआ।
तेरा मन हरि हरि जन सांवदा॥

श० सिं०

मस्तराम

मस्तराम के जीवन से सम्बद्ध कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस कवि की श्रीकृष्ण-चरित-विषयक एक रचना 'संवाद ऊधो-गोपीआं' सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी, पटियाला में (पाण्डुलिपि क्रम संख्या ५२५ पर) उपलब्ध है। ५१ छन्दों की इस लघु रचना का वर्ण्य-विषय अक्रूर के द्वारा श्रीकृष्ण को गोकुल से अपने साथ मथुरा ले जाना, श्रीकृष्ण का मथुरा से ऊद्धव को दूत बनाकर गोपियों के पास भेजना और गोपियों तथा उद्धव के तर्क-वितर्कात्मक संवाद हैं। रचना का अन्त सूर्यग्रहण के अवसर पर दिखाया गया है, जब कुरुक्षेत्र के पावन स्थल पर श्रीकृष्ण का राधा और गोप-गोपियों से मिलन होता है। मस्तराम की यह रचना ब्रजभाषा में रचित है, मगर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। इस कृति का रचनाकाल सं० १८४७ वि० है। इस तथ्य से सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कवि सं० १८०० वि० के आसपास हुआ होगा। रचना के प्रत्येक छन्द के अन्त में मस्तराम ने अपने नाम की छाप दी है। गोपियाँ मिलकर श्रीकृष्ण को अक्रूर के द्वारा मथुरा न लिवा जाने की युक्ति निकालने पर विचार करती हैं—

आऊ सखीए मसलति कोजीए नी,
जिऊ मोहनि मथरा न जावै।
असां सुन्दर रूप निहारिदीआं नू,
कोई दुख विछोड़े दा ना पावै॥

दिनु बीतदा पंथु तकेदीआं नूं,
मुख होइि जा धैन चराइि आवै।
मसतराम उह सुख न सऊदीआं नी,
जिनां प्रेम कलेजड़े घाऊ लावै॥ २॥

श्रीकृष्ण अपने सखा उद्धव को ब्रज की गोपियों को आश्वासन देने के लिए भेजते हैं। उद्धव को देखकर गोपियाँ एकदम प्रसन्न हो उठती हैं, मानों उन विरह की अग्नि में तड़पती हुई ब्रजनारियों

के लिए सुख-सन्तोषरूपी सहारा आ गया है। उद्धव सन्तप्त गोपियों को सान्त्वना देते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण ब्रजवासियों की उपकार-गाथा को रात-दिन गाते रहते हैं। अन्ततः गोपियों की बातों से निरुत्तर होकर वे मथुरा लौट जाते हैं और गोपियों को श्रीकृष्ण को वापस गोकुल ले आने का वचन भी देते हैं:

ऊधो आ गिआ मन प्रसंन हूआ,
दुखीआं के दुख निवारने को।
गिआनी रूप दइआ का जगत मै जी,
जग कूप ते जीव निकारने को॥
जग सिंध मै साध जहाज है जी,
असाध के पार उतारने को।
मसतराम साधू जग ते आए,
यही काम है दीन उबारने को॥ २२॥

ऊधो भगत दिलासा बहुत कीआ,
अब साम जो बेग ही आवते हैं।
वही पूत वही तुम मातपिता,
सभी दुख बियोग मिटावते हैं॥
निसदिनु तुमहि चितारते हैं,
उपकार तुमारे ही गावते हैं।
मसतराम हम नहीं तो जाइके जी,
बेग सिआम को साथ ले आवते हैं॥ २७॥

प्रभु-कृपा से मिलन का अवसर आता है। सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र के सरोवर पर राधा तथा गोप-गोपियों से श्रीकृष्ण का मिलन होता है। गोपियाँ पहले चित्रलिखी-सी खड़ी रहती हैं, फिर दौड़कर श्रीकृष्ण से मिलती हैं। नन्द-यशोदा भी श्रीकृष्ण से लिपट जाते हैं, मानों ब्रजवासियों के जीवन की निराशा में एक आशा की किरण फिर से प्रस्फुटित हो उठी हो। अन्त में कवि मस्तराम श्रीकृष्ण से यह याचना करते हैं कि आप दया के भण्डार हो। अतः मुझ जैसे मतिमन्द को भी प्रेमाभक्ति का दान देकर जीवन सफल बनाओ—

सूरज ग्रहन को परब जब आइ पहुचिआं,
कुरुखेत मैं सिआम जी चरन धारे।
सुण गोपीआं सकल ही धाइ आईं,
जसमत नंदहू सिआम जिन प्रान पिआरे॥
गोपी दरस गोपाल को पाइओ जी,
हरि द्रिसट करि दुरित के दुःख जारे।
मसतरास गोपी गिआन रूप हुई,
आप रूप ही देखिए जगत सारे॥ ५०॥

अति दिआल हो क्रिशन का रूप है जी,
मोहि मूड़ को भी प्रेम का दानु दीजै।
डाढ होत है निपटि कठोर हीआ,
सैल तारि के जग मै सोम लीजै॥
आप गुभार अउतार सभ संत हो जी,
जिहिं दइआ ते बेग रस आप पीजै।
मसतराम बड पतत को तारीए जी,
किवे एहु भी कोरडू मोठ भीजै॥ ५१॥

भक्त कवि मस्तराम का हृदय श्रीकृष्ण के प्रेम को पाने के लिए लालायित है। उनका विश्वास है कि मात्र प्रभु का प्रेम पाकर ही वह अपने अवगुणों का निवारण कर सकता है। इस भक्त-कवि ने एक तरह से सगुण की उपासक गोपियों के मन में ज्ञान का प्रकाश उमड़ते हुए दिखाया है। ऐसा दृष्टिकोण सम्भवतः पंजाब प्रदेश की निर्गुणवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण विकसित हुआ होगा। इस रचना-विशेष में श्रृंगार तथा गोपी-उपालम्भ की अद्भुत संरचना हुई है, मात्र एक ही छन्द इस प्रसंग में दिया गया है। सम्पूर्ण रचना में आदि से अन्त तक हृदय-ग्राही सहज भक्ति-भाव की प्रांजलता झलकती दिखाई देती है। यह इस रचना का वैशिष्ट्य है। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध अन्य कोई रचना मस्तराम के नाम से उपलब्ध नहीं होती।

श० सिं०

मिलखीराम 'मिलखी'

मिलखीराम 'मिलखी' परम्परावादी पंजाबी कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। आपके पिता का

नाम गुलाबमल्ल था। मिलखी जाति के खत्री थे तथा लाहौर (पाकिस्तान) के रहनेवाले थे। इनमें बचपन से काव्य-रुचि पनप गयी थी। सन् १९१६ ई० में आपने प्रसिद्ध कवि लाहौरासिंह को काव्य-गुरु बना लिया था। ये ऊँचे स्वर में और पूरी लय से कविता-गान करते थे। इनके किस्से बहुत प्रसिद्ध हैं। मिलखीराम की कई रचनाओं का एक संग्रह 'खून दा पिआला' अथवा 'कुलिआत मिलखीराम' नाम से प्रकाशित है। इनकी कविता में इश्क हकीकी और कहीं-कहीं इश्क मजाज़ी का निरूपण है। इन्होंने बैंत छन्द में रचना की है। इन बैंतों में कल्पना की प्रचुरता पायी जाती है। इनकी रचनाओं में हास्यरस की बहुलता है। उस विषय पर बैंत छन्द के अतिरिक्त इन्होंने सीहर्फियों में भी रचना की है। जैसे 'मिलखी दी सलीमो गंजी' और 'मिलखी दा गंजा बटेरा' आदि। जीवन के आरम्भ में अत्यन्त एकान्तप्रिय होने के कारण ये लगातार १२ वर्षों तक जंगलों में विचरण करते रहे।

कृष्ण-कथा को लेकर इन्होंने 'बारांमाहा स्री क्रिशन' तथा 'आरती स्री क्रिशन दी' दो लघु रचनाओं का प्रणयन किया है। 'बारांमाहा स्री क्रिशन' चैत्र मास से आरम्भ होकर होकर फाल्गुन में समाप्त होता है। मिलखीराम ने सरल तथा सुबोध पंजाबी-भाषा में श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेमोपालम्भ का निवेदन करने के साथ ही श्रीकृष्ण की लीलाओं का भी गान किया है। कवि का कहना है कि मेरा श्रीकृष्ण के साथ मिलाप न हो सका और उसकी प्रतीक्षा में मेरे बाल भी पक गये हैं। इसीके अन्तर्गत इन्होंने ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ किस तरह गोपियाँ और गोप-बालक श्रीकृष्ण के साथ होली खेलने का आयोजन करते हैं आदि प्रसंगों का भी वर्णन किया है। मिलखीराम की यह रचना श्रीकृष्ण के प्रति गहरी लगन और प्रेमाभक्ति को संकेतित करती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(१)

हाड़ हस के गवरधन परबत,
उंगली उत्ते खलाइिआ सी।
काली नाग नू फिर जमना ते,
जा के दरस दिखाइिआ सी॥
नरसी भगत दी हुंडी तारी,
सांहन्न शाह सदाइिआ सी।
मिलखी कोल जे आऊँणा नहीं सी,
पहिलों पिआर किऊँ पाइिआ सी॥ ४॥

पोह पिआरा बंसी वाला,
करदा नहीं खिआल सईओ।
भौंदी फिरदी बांग शुदैनां,
दिसे न नंद लाल सईओ॥

ताहने तीर जगत दे रोकां,
सीना करके ढाल सईओ।
मिलखीराम ना होसी पूरी,
चिट्टे हो गये वाल सईओ॥ १०॥

फगन फेर सईयां सब रल के,
नवीं पुशाक वटावण जी।
नाल शाम दे होली खेडन,
लाल गुलाल उडावन जी॥

भर पिचकारी मारन सखीआं,
सौ सौ खुशी मनावण जी।
मिलखी जेहीआं दरशन बाझों,
रो रो गल्ल वीवावण जी॥ १२॥

'श्रीकृष्ण ने गोकुल-निवासियों की इन्द्र के प्रकोप से सुरक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को अँगुली पर धारण किया था, जमुना के किनारे कालियनाग को नाथा था। फिर जाकर उसे दर्शन दिये थे, जिससे उसका शेष जीवन सुधर गया था। नरसी भक्त की कठिनाई के समय हुण्डी अदा करके उसे ऋणमुक्त किया था तथा स्वयं धनाढ्य कहलवाया था। मिलखीराम भी तुम्हारे प्यार तथा मिलन के लिए लालायित

है। प्रियवंशी धारण करनेवाला उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। उसके साथ मिलाप करने के लिए मेरी विरहिणी जीवात्मा पागल हो गयी है किन्तु उसे वह वंशीवाला कहीं भी दिखाई नहीं देता। इस संसार में रहते हुए मुझे लोगों के उलाहने तथा अमर्यादित वचन सहन करने पड़ते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करते-करते मेरे बाल भी पक गये हैं। फागुन के महीने में सभी सखियों ने मिलकर नये वस्त्र बनवाये हैं। वे सब प्रियतम के साथ मिलकर होली का फाग खेलती हैं और लाल गुलाल उड़ाती हैं। पिचकारियाँ भर-भरकर एक-दूसरे पर रंग डालती हैं और खुशियाँ मनाती हैं। किन्तु श्रीकृष्ण के दर्शन न करके मैं इधर-उधर कुरलाती फिरती हूँ।'

मिलखीराम की श्रीकृष्ण से सम्बद्ध दूसरी लघु रचना 'आरती स्री क्रिशन महाराज दी' है। अपनी इस कृति में इन्होंने श्रीकृष्ण की शोभा एवं छवि का आख्यान करके उनकी बाल-लीलाओं, गोपियों के साथ क्रीड़ा, भक्तजनों की रक्षा, अत्याचारी और अनाचारी कंस का संहार आदि की चर्चा की है। अन्त में कवि कहता है कि श्रीकृष्ण का भक्तजनों के साथ लगाव रहता है। इसमें इन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन-सम्बन्धी अपने मन की प्रबल इच्छा कई स्थलों पर व्यक्त की है :

(२)

आरती करां स्री क्रिशनजी दी,
चरनां तों बलिहारी जी।
मोर मुकट मथ्थे तिलक बिराजे,
कुंडल दी छब निआरी जी॥

जोत जगांवा संख बजावां,
कोल फुल्लां दी खारी जी।
भगत आपणी देह नंद लाला,
अरजां करे विचारी जी॥

ब्रिंदाबन बिच रास रचावे,
राधा तेरी पिआरी जी।
गवाल बाल संग गौआं चरावे,
धन दी बीजी किआरी जी॥

गोपीआं नाल रल खेडे,
सुंदर शाम मुरारी जी।
नरसी भगत ते किरपा कीती,
हुंडी जाके तारी जी॥

विच सभा दे रखिआ कीती,
द्रोपती अरज गुजारी जी।
कंस पापी नूं मार मुकाइआ,
हैसी बहुत हंकारी जी॥

भगतां नाल मुहबत तेरी,
राधे शाम मुरारी जी।
मिलखीराम नूं दरशन देना,
बंसीवाले गिरधारी जी॥

भक्त कवि मिलखीराम श्रीकृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हुआ कहता है—'मैं तुम्हारी सुन्दर मनमोहक शोभा पर बलिहार जाता हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण के माथे पर तिलक सुशोभित है तथा उन्होंने कानों में सुन्दर कुण्डल धारण कर रखे हैं, जिनकी छवि अद्भुत है। श्रीकृष्ण की अमूल्य भक्ति का याचक बनकर मैं उनकी सुन्दर छवि की ज्योति प्रज्वलित करके, शंखनाद करके तथा पुष्प अर्पण करके आरती भी उतारता हूँ। वृन्दावन में ग्वाल बालिकाओं और राधा के साथ तुमने रास रचायी थी और ग्वाल-बालकों के साथ गौएँ चरायी थीं। हे नन्दलाल, मुझे अपनी भक्ति दो। हे सुन्दर छविवाले श्रीकृष्ण, तुमने ग्वाल-बालिकाओं के साथ क्रीड़ाएँ की हैं। तुमने नरसी भक्त तथा द्रौपदी की लज्जा रखी थी और उनकी चिन्ताओं को दूर किया था। तूने ही मथुरा-नरेश, अनाचारी एवं पापी कंस का संहार किया था। भक्त जनों के साथ तुम्हारा विशेष स्नेह है। इसलिए हे गिरधारी! हे वंशीधर, मिलखीराम को भी दर्शन देना।'

एक और लघु रचना 'आरती' की भी मिलखीराम ने रचना की है, जो उन्हें भक्त कवियों

की श्रेणी में ला खड़ा करती है। कवि का विश्वास है कि श्रीकृष्ण ही देशवासियों की नैया पार लगा सकते हैं। वह तो श्रीकृष्ण के अलौकिक गुणों के कारण उन पर बलिहार जाना चाहता है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का आख्यान इस कवि ने इस छोटी-सी रचना में बड़ी तन्मयता से किया है—

(३)

जै जै तेरी क्रिशन कन्हैया।
लोरीआं देवे जशोधा मईया।।
गौआं चरावे बंसी बजावे।
जमना दे कंडे ते रासां रचावे।।
धरती दी बंसी दा मोहन बजईया।
जै जै तेरी क्रिशन कन्हैया।।
प्रेम वधावें पाप मिटावीं।
मुकती दा मारग असां नूं दिखावीं।।
पार लंघावीं देस दी नैईया।
जै जै तेरी क्रिशन कन्हैया।।

'हे कृष्ण तरो जय हो। माता यशोदा तुम्हें प्यारपूर्वक लोरियाँ देती हैं। तू यमुना नदी के तट पर गौएँ चराता है और ग्वाल-बालिकाओं तथा बालकों के साथ रास रचाता है। मोहन! तू धरती के सारे जन-जीवों को प्रिय है। मेरी यह मनोकामना है कि सांसारिक प्राणियों के साथ तुम्हारा प्रेम बढ़ता जाय और वे तुम्हारे साथ स्नेहभाव स्थापित करके बुरे कर्मों से बचते हुए भक्ति-मार्ग पर अग्रसर हो सकें। हे प्रभु! हमारे देश की नैया को इस संसाररूपी सागर से पार लगा दो।

श० सिं०

मूलसिंह

मूलसिंह आरम्भ में कुछ दिनों तक लाहौर-दरबार में रहे। उसके ध्वस्त हो जाने पर पटियाला-दरबार में महाराजा नरेन्द्रसिंह के संरक्षण में आ गये। मूलसिंह उच्चकोटि के विद्वान् और बहुज्ञ थे। कविता करने का शौक उन्हें बचपन से ही था। इनकी दो रचनाओं—'नरिन्द्र-विलास' तथा 'महेन्दर अशटक' के अतिरिक्त कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध एक 'बारांमाहा' भी मिलता है, जिसकी भाषा पंजाबी मिश्रित हिन्दी है। नमूने के लिए इनके द्वारा विरचित 'बारांमाहा' के कुछ पद दिये जाते हैं—

चेत महीने चले स्यांम जी, मथुरा ओर सिधारे।
सारे ब्रिज दी रोवे लुकाई, बहि-बहि जमन किनारे।।
हार सिंगारि उतार चोलीआं, चीर गोपीआं ढारे।
बाझ स्याम दे मूलसिंघा, सभ सुङे महिल चुबारे।।१।।

'चैत्र के महीने में भगवान् श्रीकृष्ण गोकुल गाँव को छोड़कर मथुरा को प्रस्थान कर गये हैं। यह देखकर ब्रज के सभी नर-नारी जमुना नदी के किनारे बैठे रो रहे हैं। श्रीकृष्ण से अलग होकर ग्वालिनों ने अपने आभूषण तथा सुन्दर वस्त्र उतार दिये हैं। उन्हें श्रीकृष्ण के बिना महल तथा अपने घर सूने-सूने प्रतीत होते हैं।'

असू मास उदास होइ घरि,
तिआग गोपीआ चलीआं।
जाइ पुकार करिन विच बन दे,
करिके बाहो खलीआं।।

आइ दीदार दिखाइ असानूं,
माण लईए सुख रलीआं।
सियाम तुसां बिन मूलसिंघा,
सभ सुङीआं ब्रिज दी गलीआं।।

'असूज का महीना आ गया है। गोपियाँ उदास होकर अपने घरों को छोड़कर वन में जाकर बाँहों को उठा-उठाकर श्रीकृष्ण को पुकारती फिरती हैं कि हे श्रीकृष्ण! फिर से आकर हमें दर्शन दो और तुम्हारे साथ मिलकर हम खुशियाँ मनायें (क्रीड़ाएँ करें)। तुम्हारे बिना ब्रज की सारी गलियाँ सूनी-सूनी-सी दिखाई देती हैं।'

फागन रुते बसंत फूलिआ,
सियाम रचाई होरी।

केसर छिनक गुलाल मुहि ते,
डारत जोर बिजोरी ॥
लाल गुलाल भइआ मुख मसतकि,
भिगी राधरां गोरी ।
हस हसिउता मूर्लसिघा दोऊ,
खेलत बनी अनूपुंम जोरी ॥ १२ ॥

दोहिरा

प्रभ जी मिलीउ राधके,
पाइिउ अटिल सुहाग ।
राधके सियाम गल लाइिके,
कहिउ सुनाइि बैरागु ॥

'फाल्गुन का मंगलकारी महीना आ गया है। श्रीकृष्ण ने फाग रचाया है। वह ग्वालिनों के मुँह पर जबरदस्ती गुलाल मलते हैं और इत्र-फुलेल उड़ेलते हैं। राधा तो गुलाल और दूसरे रंगों से पूरी भीगी हुई है। दोनों हँसते-हँसते होली खेल रहे हैं। राधा-श्रीकृष्ण की जोड़ी बड़ी अनुपम बन पड़ी है। श्रीकृष्ण का राधा के साथ मिलाप हो गया है और वह अपने-आपको सुहागिन अनुभव करती है। राधा ने श्रीकृष्ण के गले लग-लगकर अपने मन के विरहजन्य उद्गारों को कह सुनाया है।'

श० सिं०

रघुवर प्रसाद

इनके जीवन के विषय में विवरण उपलब्ध नहीं है। इनकी एक लघु पुस्तक 'लावनी-मनमोहिनी' रतन एण्ड को० बुक्सेलर्स, दरीबा कलां, दिल्ली-६ की ओर से प्रकाशित हुई थी। इसमें श्रीकृष्ण-सम्बन्धी 'लावनी, रास-लीला, लावनी-मनमोहिनी, ख्याल (कृष्ण-रुक्मिणी की कथा)' आदि संकलित हैं। उसके कुछ काव्यांश यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

कुचन में विष लगाय नारी,
गोद बालक ले बैठारी ।
पकड़ी छाती मुख में धरी,
लगे पय पीने गिरधारी ॥

दोहा

क्षीर पियत मुस्क्यात कृष्णजी,
खींच लिये हैं प्राण ।
गिड़गिड़ाय के गिरी पूतना,
निकल गई है जान ॥
बैठे उर ऊपर यदुराई,
पूतना हरि मारन धाई ॥

(२)

बंशी की तान पड़ी कान,
गोपियाँ जागीं ।
सम्हार नहीं तन-बदन की,
मन में पागीं ॥

तजि लोकलाज गृहकाज,
पती को त्यागी ।
लै लै गोबिन्द का नाम,
विकल बन-बन भागी ॥

हो गई सकल ब्रजबाम,
मदन मतवारी ।
कुंजन में रचो है रास,
कृष्ण गिरधारी ॥

(३)

कहे यशोदा सुनो ग्वालिनी,
तुझे कहत नहीं लगे शरम ।
चार रोज का कुँवर कन्हैया,
वो क्या जाने बुरा करम ॥

तुम अलमस्त जवानी छाई,
मदन में हुआ गरम ।
जाय कृष्ण से झगड़ा ठाना,
आय के हमसे कहो मरम ॥

रस को माती तुम इठलाती,
बिगड़ गई है चाल तेरी ।
चंचल चपल छैल नटनागर,
रोकत गैल सखिन केरी ॥

(४)

मदन मोहन को वर पाती,
आज रुक्मिणी भई अहिवाती ।
लड़े बलराम ठोक के ताल,
हुए निश्चर सब बेहाल फौज संहार,
किये नन्दलाल रुक्मिणी हरि लीन्हे तत्काल ।

रुक्मिणी को श्रीकृष्णजी,
निज रथ लिए चढ़ाय ।
जरासंध शिशुपाल जीत के,
पहुँचे द्वारिका जाय ॥
सकल दुनियां सब हरषाती,
आज रुक्मिणी भई अहिवाती ॥

श० सिं०

रणजीत सिंह

रणजीत सिंह का जन्म वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार मेहरसिंह कम्बोज था, जो नबीपुर गाँव तहसील पट्टी, लाहौर (आजकल जिला अमृतसर) के निवासी थे। इसके अतिरिक्त और कोई जानकारी इस कवि के बारे में उपलब्ध नहीं होती। रणजीतसिंह के कृष्ण-काव्य-सम्बन्धी दो 'बारांमाहा' मिलते हैं, जिनमें से एक का नाम है 'बारांमहा' और दूसरे का 'बारांमाहा क्रिशन वियोग'। ये १९१४ ई० में प्रकाशित हुए थे। दोनों रचनाओं में से कुछ अंश नमूने के लिए प्रस्तुत हैं :

क. (१) बारांमाहा क्रिशन-वियोग

ओंकार सतिगुर प्रसादि
बैसाख बिसार गए हरि मैनूं,
मै कीता अभिमान ।
अंतरजामी क्रिशन सवामी,
दिल दी लई पछान ॥
कुबजा पास गए तज मैनूं,
मैं मतोमंद अजान ।
बोध शाम जिंद हरी बिन तड़फे,
निकसे नहीं परान ॥

कत्तक कंत पिआरे बाझों,
हो गई मैं बुरहाल ।
किस नू खोल सुनावां दुखड़े,
दुपट्टे सीतीआं मेरे नाल ॥
रोंदी पापण जनम गुवालां,
सिर पर आ गिआ काल ।
बोध शाम जिंद शुकर गुजारां,
मिले जे क्रिशन मुरार ॥

'वैशाख का महीना आ गया है। श्रीकृष्ण मुझ मानिनी नायिका को छोड़कर चले गये हैं। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। वे हर व्यक्ति के मन की बात को जाननेवाले हैं। मुझ अल्पबुद्धि तथा अज्ञानी को छोड़कर वे कुब्जा के पास मथुरा चले गये हैं। मेरे प्राण श्रीकृष्ण के बिना सदा तड़पते रहते हैं। न तो श्रीकृष्ण के साथ मिलाप होता है और न मेरे प्राण ही निकलते हैं।

कार्तिक का महीना आ गया है। प्रिय श्रीकृष्ण के बिना मेरा बुरा हाल है। मैं तो किसीको अपने मन का दुःख भी नहीं बता सकती। इसी प्रकार श्रीकृष्ण से बिछुडी हुई मैं अपना दुःखमय जीवन बिता रही हूँ। मेरा अन्तिम समय समीप आ गया है। मुझे तभी चैन होगा जब श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त होंगे।'

यह बारांमाहा पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय में (क्रम सं० ८९१.०४ सि: ८५ क्रि० के अंतर्गत) उपलब्ध है।

ख. (२) बारांमाहा

जेठ जरा नहीं हरीहर भजिआ,
जनम हरी बिन बीते नी ।
बिरहों आग जलावे मैनूं,
कौन पाप मै कीते नी ॥
बोध शाम जिंद हरी बिना नी,
बिरथै प्राण किओं जीते नी ॥

अस्सू सुआस तिआग जिंद खोटी,
हरी आसा मन धारहे रे ।
निंदिआ चुगली पापण छड़दे,
हरीहर नाम उचारहे रे ।।
चुगली कर-कर गंद की पावें,
खोटो तूं बदकार हे रे ।
बोध शाम जिंद हरीहर तज लै,
सड़ेगी नरक मझार हे रे ।।

माघ मारइस मन पापी नूं,
मोड़िआ वस्से घर बार ।
काम क्रोध हंकार लोभ नी,
तज तब मिले करतार ।।
आसा त्रिसना चिंता इन में,
डूबा सब संसार ।
बोध शाम जिंद मिल सतिगुर को,
कर दे बेड़ा पार ।।

'जेठ का महीना आ गया है। मैं प्रचण्ड विरह-ज्वाला से जली जा रही हूँ। मैंने घोर पाप किये हैं, जिनकी सजा मुझे मिल रही है। मैंने हरि का भजन नहीं किया, इसलिए मानव-जन्म व्यर्थ में ही बीता जा रहा है। हरि से मिलाप हुए बिना मेरा जीवन निरर्थक है।

असूज का महीना आ गया है, मेरे मन में हरि के साथ मिलन की आशा बँध गयी है। दूसरों की निन्दा, चुगली आदि करना दुष्कर्म है, इसलिए इन्हें व्यवहार में लाकर दूषित बने हो। इन व्यावहारिक कुकर्मों का त्याग करो, नहीं तो तुम्हें नरक की भीषण अग्नि में जलना पड़ेगा।

माघ का महीना आ गया है। हमें विकारों की ओर आकर्षित मन पर नियन्त्रण रखना चाहिए। प्राणी जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक उसका प्रभु के साथ मिलाप नहीं हो पाता। सांसारिक प्राणी आशा, तृष्णा एवं चिन्ता में डूबा रहता है, इससे वह सच्चे गुरु अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं करता। वे ही उसे संसाररूपी सागर से पार उतार सकते हैं।'

श० सि०

रत्नहरि

उत्तरमध्यकालीन पंजाब में ब्रजभाषा-काव्य को चरमोत्कर्ष तक पहुँचानेवाले कवियों में भक्त रत्नहरि का नाम अग्रगण्य है। उत्कृष्ट काव्य-रचना, पाण्डित्य-प्रतिभा और गीति-शैली को देखते हुए इन्हें सूर-तुलसी, नन्ददास-सरीखे उत्कृष्ट कवियों की पंक्ति में गौरवपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।

रत्नहरि का जन्म एक क्षत्रिय-परिवार में, संवत् १८४८ विक्रमी, कार्तिक मास की आठवीं तिथि को गुलाबसिंह के घर हुआ था। इनकी माता का नाम रामकुमारी था। ये इतने स्वाभिमानी थे कि महाराज रणजीतसिंह द्वारा कई बार आमन्त्रित किये जाने पर भी अमृतसर छोड़कर लाहौर नहीं गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कृत उत्तरभक्तमाल में इनकी अनुशंसा इस प्रकार की गयी है—

क्षत्रियवंश गुलाब सिंह सुत मत रामानुज ।
रामकुमारी गर्भरत्न, त्यागी मंडल धुज ।।
सुबसु वंद वसु चंद आठ कातिक प्रकटाये ।
श्री हरि महिमाग्रन्थ ललित बत्तीस बनाये ।।
रणजीतसिंह बहु विधि कह्यो,
तदपि नाहिं दरसन दियो ।
श्री भक्त रत्नहरिदास जू,
पावन अमृतसर कियो ।।

उल्लेखनीय है कि इन्हीं दिनों अमृतसर में उदासी महात्मा रामदास के एक अन्य शिष्य अमीरदास भी भक्ति-साहित्य-साधना में लीन थे। रत्नहरि उन्हींके गुरुभाई प्रतीत होते हैं, क्योंकि दोनों का रचना-काल और निवास-स्थान एक है। अमीरदास

तो रणजीतसिंह के दरबार में चले गये, परन्तु रत्नहरि नहीं गये। दोनों के अलग अलग डेरे अब भी अमृतसर में विद्यमान हैं।

भक्त रत्नहरि सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और उच्चकोटि के वैरागी महात्मा थे। इनकी विद्वत्ता और काव्य-प्रतिभा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इनके जीवन-काल में ही (संवत् १९३३ वि० में) रचित 'उत्तरभक्तमाल' में इनका नाम सम्मिलित हो गया। इनकी बत्तीस रचनाओं में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१. राम-रहस्य, २ प्रश्नोत्तरी, ३. रामललाम-गीता, ४. सारसंगीत, ५. दाशरथि-दोहावली, ६. यमक-दमक दोहावली, ७. नानक-यश-चन्द्रिका, ८. भागवत-एकादशस्कन्ध, ९ कौशलेश-कवितावली, १०. गुरकीरत-कवितावली, ११. कुसुम क्यारी, १२ दशमस्कन्ध-कवितावली, १३. महिम-कवितावली, १४. नानक नवक, १५. रासपंचाध्यायी, १६. ब्रजयात्रा, १७. कवित्त-कादम्बिनी, १८. रघूत्तम-सहस्रनाम, १९. ब्रह्मरहस्य, २०. शुक-रत्नाकर, २१. जानकी जीवन यमक पचीसी, २२. भव-प्रभाव भाषा, २३. श्रीकृष्ण-कवितावली, २४. रघुवरपद-रत्नावली, २५ रघुवर-लीला, २६. विनय-बारहो।

उपर्युक्त ग्रन्थ-सूची से स्पष्ट है कि भक्त रत्नहरि की कविता राम-भक्ति एवं कृष्ण-भक्ति का अनूठा संगम प्रस्तुत करती है। कृष्ण-भक्ति विषयक पद्यों में इनकी दैन्यभाव में अनन्य आस्था द्रष्टव्य है—

बारहिं बार बिनै हों कीनी।
मेरी कही न कांन करी को एक बार सुनि लीनी॥
द्रुपद सुता को एक बेर पुनि सुनि दै बसन बढ़ाई।
मेरी बेर-बेर को टेर सुनत जु अबेर लगाई॥
नाम आपको अधिक आपते, सुनि सो हम गहिलीनो।
सो बरबस बसि करि हितु मैं सुठि रतनहरी हम चीनो॥
रा० प्र०

रसक रामगोपाल

रसक रामगोपाल के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती, फिर भी इस कवि के नाम से दो 'बारांमाहा' तथा एक 'सीहरफी' मिलती है। अपने एक 'बारांमाहा' के अन्तिम पद में इन्होंने अपना कुछ परिचय दिया है जिससे ज्ञात होता है कि ये गुरु नानकदेव द्वारा बसाये गये 'देहरापुरी' के निवासी थे। देहरापुरी रावी नदी के किनारे स्थित 'डेरा बाबा नानक' नामक कस्बा, जिला गुरदासपुर (पंजाब) है या पाकिस्तान का डेरा साहिब, यह निश्चयपूर्वक बताना कठिन है।

छप्पै

संमत अज मुख ब्रसट, कंठ दस ग्रहि सस जानो।
क्रिशन पख्ख त्रिहावार, तिथ असटम हित मानो॥
माघ मास रित सिसर, राम तुल दिज उडार बरि।
ऐरावत के कूल नाम, रस-राम प्रीत धर॥
नानक सथान देहरा पुरी, बसत भगति गोपाल का।
गुरलाल दिआल करुणा करी, दुरगा जी रछपाल का॥

इस छप्पय से यह विदित होता है कि रसक रामगोपाल जाति के ब्राह्मण थे और इन्होंने इस 'बारांमाहा' की रचना माघ कृष्ण ८ सं० १८२४ वि० में की थी। इनके गुरु लालदयाल थे। 'बारांमाहा क्रिशनजीदा' शीर्षक यह बारामासा कवित्त, सवैया, कड़खा, कुण्डलिया, छप्पय आदि छन्दों में लिखित है। इससे कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कुण्डलिया

चेत चड़िओ सुन री सखी, पीया मन भए उदास।
करि बिनती राधे थकी, नहिं तिआगे ब्रिज बास॥

नहिं तिआगे ब्रिज बास, सांवरे एक न मानी।
दरपन मैं मुख देख, राधके मन अभिमानी॥

छोड़ कुंज जादव गए, करि कुबजा सों हेत।
नहिं आवत सुन री सखी, एह चिंता मन चेत॥

'चैत्र का महीना चढ़ते ही राधा का मन उदास हो उठा है। श्रीकृष्ण ने राधा की एक बात भी नहीं मानी और वे ब्रज प्रदेश में लौटकर नहीं आये। राधा यह सब जानकर अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में देखती है और मन ही मन अभिमान करती है। यादवपति श्रीकृष्ण ने ब्रजप्रदेश की कुंज गलियों को छोड़कर कुब्जा के साथ नाता जोड़ लिया है। राधा एक सहचरी से अपनी चिन्ता प्रकट करती हुई कह रही है कि श्रीकृष्ण तो वापस लौटकर नहीं आये।'

(२)

कवित्त

कोकला सुहाई नी बिसाखरुत आई कैसे,
कहो कन्हाई मै तां ब्रिहों ने सताई नी।
ना मतो संदेश कीआ जोगना दा भेस लाई,
कूबरो प्रवेस राधे चित्त सो भुलाई नी।।

चित्त को चुराइि गिआ कपट कमाइि लै को,
केते जादू पाइि शांम बंसरी बजाई नी।
हाइि हाइि हाइि मैं तां की करां नी माइि,
मन लै गया रिझाइि घर मालन धवाई नी।।

'वैशाख का महीना आ गया है, कोयल कूकती हुई मन को अच्छी लगती है, परन्तु मैं तो श्रीकृष्ण के वियोग के कारण पीड़ित हूँ। श्रीकृष्ण ने राधा को अपने मन से भुला दिया है और स्वयं कुब्जा के साथ नाता जोड़ लिया है। राधा को यह सन्देश भेजा है कि योग-धारण कर लो। श्रीकृष्ण राधा के मन को चुराकर अपने साथ ले गया है, मानो उसने राधा के साथ छल किया हो। श्रीकृष्ण ने अपनी वंशी की मधुर ध्वनि से राधा पर जादू-सा कर दिया है। वह अपनी माता से वियोग की पीड़ा का दुःख प्रकट करती हुई कहती है कि उसे सूझता ही नहीं कि वह अब क्या करे। कृष्ण ने राधा को रिझाकर उसे बेचैन कर दिया है और स्वयं कुब्जा मालिन के घर बसेरा बना लिया है।'

(३)

कड़खा

रुत सावण भई बरसते मेंगले,
घटा कारी निआरी डरावै।
काम के बान मोहि सीने लगे,
प्रीत की रीत बिआकुल करावै।।
कूकते मोर घनघोर सुणके जिवे,
शाम मुरली अधर पर बजावै।
एस मुरली प्रान हरि लीए री,
सखी मालनी संग किऊ, हेत लगावै।।

इस भक्त-कवि के द्वारा रचित एक अन्य 'बारां-माह बैंत', 'चौबोले क्रिशन जी दे' में 'चौबोला' काव्य-रूप को लेकर बारह महीनों में विरह-विदग्धा राधा तथा गोपियों की स्थिति का अंकन करके फिर फाल्गुन के सुहावने महीने में उन्हें मिला दिया गया है—

(४)

चौबोला

फागण फाग सुहावना निकट वसै नंदलाल।
परोपकार इतने किए अब हम भए बिहाल।।
अब हम भए बिहाल काज हमरे तुम आप सँवारो।
हरदम वस्से हमारे हिरदे सकले कसट निवारो।।
हम अधीन गुपाल लालजी पिछली बात विसारो।
तुमरी सरन कनाई एहु हमरे मन आई।।
रसक रामगोपाल मीत दी सिफत सुणाई।।

एक अन्य छन्द में इस कवि ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का उल्लेख किया है:

पोह परम सुख नंद के, खेल रहे नंदलाल।
जाइि पताल काली नथिओ, फन पर निरत गुपाल।।
फन पर निरत गुपाल, किंकनी कमर नूपर बाजे।
मोर मुकट पीतांबर, झुकिओ हाथ बंसरी साजे।।
ब्रिज के काज सँवारन धारिओ इंद्र कोप सम भाजे।
माखन चोर गुपाल लाल ऊखल साथ बिराजे।।

अंरंजन-जुंमलां भांईं उंनको मुंकत कराई।
रसक रामगोपाल मीत बिंद्राबन गई ताई॥

रसक रामगोपाल रचित 'सीहरफी बैंत कान गुजरी दे' में श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ छेड़छाड़, गो-रस बेचने आनेवाली ग्वाल-बालिकाओं से कर वसूल करने और इस पर गोपियों के टका-सा जवाब दिये जाने पर उनका बाँसुरी की मधुर तान छेड़कर गोपियों को अपने वश में करने का प्रसंग वर्णित है—

अलफ आन ब्रिखभान लाडली,
दध बेचने सिधारी, सिर पुर खारी।
मारग में मिल गए कांन जी,
मटकी पकर उतारी, तू पर डारी॥
दे जगात गोरस दा गुजरी,
है तूं गोकल नारी, हमरी पिआरी।
रसकराम अरीन कर झेड़ा, बणि
बैरन हितकारी, अरज हमारी॥

• • •

दाल दूर हो घूर न अड़िआ,
लाख टका मुल्लय ई, गोरस लिआई।
पांच लाख के भूखन तन दे,
लख्ख दई घड़वाई, जो सरि आई।
मेरा बीस लाख का जोबन लूटा,
लोट लाज वडिआई, नदी रुड़ाई॥

• • •

ये यदुपति कर पकर बंसरी,
प्रेमसहित मुख लाई, चाइ बजाई।
अपने बस्स कर लई राधके,
प्रेम प्रीत उपजाई, होस भुलाई।
सो ब्रिजलाल प्रेम के भूखे,
करो प्रेम मन छाइ, होइ सहाई।
डेहरे महिरदान को लोहला,
रसकराम बतलाई, आख सुणाई॥

वास्तव में रसक रामगोपाल ने श्रीकृष्ण तथा गोपियों के प्रसंग पर तीन रचनाएं रचकर पंजाब के कृष्ण-भक्त कवियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

श० सिं०

राजा खुशहालराय

पंजाब की समग्र साहित्यिक प्रवृत्तियों को भक्ति-रंग में ढालनेवाले कवि खुशहाल राय का उत्तरमध्य-कालीन सगुण काव्य-रचयिताओं में विशेष स्थानहै। इनकी रचना यद्यपि कतिपय स्फुट पदों में सीमित है जो साहित्य-जगत् में 'विष्णुपदे खुशहालराय' के नाम से प्रसिद्ध है तथापि ये कुछ पद ही कवि की प्रकृष्ट काव्य-प्रतिभा के परिचायक हैं। राधा-कृष्ण-भक्ति के रंग में सराबोर इनके होली, दानलीला, मानलीला, रासलीला, वंशीलीला, सुदामा-चरित्र आदि से सम्बद्ध पद ब्रज के अष्टछापी कवियों की स्मृति ताजा कर देते हैं। ब्रजभाषा के अतिरिक्त पंजाबी, फारसी, उर्दू, मुलतानी आदि में भी इन्होंने कई पद लिखे हैं। अपनी समकालीन विविध काव्य-प्रवृत्तियों को उन्होंने इन पदों में समाहित करने का प्रयास किया है। गुरुमत, सूफीमत, प्रेमाख्यान आदि के विविध साहित्य-रूपों की एकत्र बानी इनके 'विष्णुपदों' में दृष्टिगोचर होती है। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं :

(१)

कन्हैया रे ! कृष्ण मुरार रे।
सरन गिरो हौं द्वार परी हौं, अब कै मोहि उधार रे॥
दीन हीन गुन छीन करम की, का पै करूं पुकार रे।
होइ खुशहाल टेर सुन मेरी, अपनो बिरद संभार रे॥

(२)

भाई मेरे मनमोहन मोहि लियो मंद मंद मुसकाइ।

(३)

मेरी अँखियाँ कृष्ण दरस नित बांछें।

रा० प्र०

रामदास मिश्र

भक्त रामदास मिश्र महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी कवि थे। ये तोशाखाने के प्रमुख अधिकारी बेलीराम मिश्र के सुपुत्र थे। इस कवि की कोई भी रचना हस्तलिखित रूप में उपलब्ध नहीं है। इस नाम के एक कवि की एक रचना 'रास-विलास' की लिथो प्रति उपलब्ध होती है, जिसके मुखपृष्ठ से ज्ञात होता है कि यह बेलीराम मिश्र के पुत्र रामदास मिश्र विरचित है, जिसे देवनागरी लिपि में लाहौर के 'मित्रविलास यन्त्रालय ने सं० १९२५ वि० में प्रकाशित किया था। इसी लिथो कापी के मुखपृष्ठ पर रामदास मिश्र की अन्य रचनाओं—'राधा-पुष्पाञ्जलि', 'रासविलास' (ब्रजभाषा में) तथा 'रासविलास' (गुरुमुखी लिपि) में लिखा हुआ मिलता है। अतः इनकी दूसरी रचना 'राधा-पुष्पाञ्जलि' है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी। 'रासविलास' के आरम्भ में देवी-देवताओं के स्तुतिगान से अनुमान लगाया जा सकता है कि ये मूलतः भक्त थे। इनका जन्म सं० १८६९ वि० में हुआ, ऐसा डॉ० हरिराम गुप्त की पुस्तक 'पंजाब ऑन दि ईव ऑफ फर्स्ट सिक्ख वार' से ज्ञात होता है। आपके पिता मिश्र बेलीराम डलवाल गाँव जिला झेलम (पाकिस्तान) के निवासी थे। इनके पूर्वज दीवानचन्द मिश्र अपने परिवार-सहित सं० १८६६ वि० में लाहौर-दरबार के आश्रित हो गये थे।

सुदामा-श्रीकृष्ण की कथा को लेकर रामदास मिश्र ने 'सुदामा-द्विज-दारिद्रय-दमन' नामक ग्रन्थ की सर्जना की। वास्तव में यह रचना उनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'रास-विलास' का ही एक भाग है, ऐसा 'रास-विलास' को देखने से विदित होता है। इस ग्रन्थ की कथा परम्परागत ही है। सुदामा का दरिद्रता से विवश होकर अपने बाल-सखा श्रीकृष्ण के पास द्वारका जाना, श्रीकृष्ण का अपने सखा का चरण-प्रक्षालन करना और चरणामृत ग्रहण करना आदि। सुदामा की लायी हुई तंदुल की भेंट को स्वीकार करके श्रीकृष्ण उसकी निर्धनता को समूल समाप्त कर देते हैं। कवि ने अन्त में श्रीकृष्ण की आरती की है। वस्तुतः 'रासविलास' श्रीकृष्ण-लीला का ब्रजभाषा में आख्यान है। इस ग्रन्थ की रचना तीन 'उल्लासों' में सम्पन्न हुई है। प्रत्येक उल्लास में सात-सात विलास हैं। प्रथम 'उल्लास' में श्रीकृष्ण की लीलाओं, शृङ्गार, विवाह, दैत्य-संहार तथा सुदामा-द्विज-दारिद्रय-दमन आदि का चित्रण हुआ है। द्वितीय 'उल्लास' में गोपियों का स्वरूप, विवाह-वर्णन, ऋतु-अनुकूल विरह-सन्ताप-चित्रण, राधा-श्रीकृष्ण झूला-प्रसंग, राधा-लालित्य आदि प्रसंगों का उल्लेख हुआ है। तीसरे 'उल्लास' में ऋतु-चित्रण, राधा के अन्यान्य नायिका-रूप, मान-लीला, रास-मण्डल, मानहरण और अन्त में श्रीकृष्ण की आरती उतारी गयी है। रामदास मिश्र समर्पित भक्त-कवि हैं। अतः राधा और श्रीकृष्ण के प्रति कवि के मन में अनन्य श्रद्धा है। आत्मनिवेदन के रूप में कवि की श्रीकृष्ण से प्रार्थना उसके श्रद्धाभाव की परिचायिका है। रचना का नमूना प्रस्तुत करने के लिए तीन काव्यांश उद्धृत किये जाते हैं :

(१)

गोपिका जन जीव-जीवन
जान जीवन मीन को,
प्रान दान समान दरसन,
दान दीजै दीन को।

दास को नित पास अपने
दास दीजै चरन में,
दरस दीजै तरस कीजै
राखिए निज सरन में।

(२)

बन-बन जोगिनि बन-बन डोलैं।
गोरख गोरख गोरख बोलैं॥

लोइन लाल-लाल अनुरागे।
प्रीतम प्रेम पान रस पागे॥

चीर-चीर तन कंथा पावैं।
हरि-हरि सिंगी नाद बजावैं॥

अलख लखन की अलख जगावहिं।
हरि रस अमल धतूरा खावहिं॥

कान्ह कान्ह श्रुति मुंद्रा साजै।
कंत कंत तनु तन्त्री बाजै॥

बिथरीं अलक कंठला सोहै।
जाहि निरष नागिन मन मोहै॥

ब्रंज रज अंग बिभूति रमावैं।
रसना नाथ-नाथ रट लावैं॥

जोग जुगति जगनाथ अराधैं।
ध्यान निरन्तर लाहि समाधैं॥

(३)

देषत हीं दिज दीन दशा प्रभु,
दीन-दयालु सषा लष पाये।
चौगुने चायन प्रेम परायन,
नंगे ही पाँईन सो उठ धाये॥

चुम्बक पै जिम लोह परै लष,
फूल सुगन्ध मधुव्रत जाये।
दासन के दुष नासन स्री,
गरुडासन छांडि सिंहासन आये॥

वारि विहीन सुमीन मलीन पै,
दीन दयाकर सागर धाये।
सादर बादर चातक पै चल,
रंक के अंक सुरेश सनाये॥

चन्द चकोर चितौन चलै लष,
पंकज प्रात प्रभाकर जाये।
दारिद पन्नग को विष नासन,
दासन पै गरुडासन आये॥

दास दहूँ दिश (?) एक दशा मिलि,
दीन सों दीनदयाल कहाये।
रंक महानिधि पाइ रह्यो,
दृग-हीन मनो दृग षोल दिषाये॥

रोगिन पायो धनन्तरि जोग,
संजोग वियोगिन मीत मिलाये।
जीवन है निर्जीवन को किधौं,
जीव रह्यो जगजीवन पाये॥

'सुदामा-द्विज-दारिद्रय-दमन' के अन्त में कवि ने श्रीकृष्ण की आरती का आयोजन करके अपने भक्त-हृदय का परिचय दिया है। आरती का नमूना प्रस्तुत है—

जै बंसीधर स्रीधर जै परमानन्दा,
जै जै जै परिपूरन वृन्दावन चन्दा,
जै देव जै जै देव।

जै जगदीश मुरारी मोहन गिरधारी,
जै रस-रास बिहारी, जै जै बनवारी,
जै बंसीधर···

कर कंकन कटि किंकिनि श्रुति कुण्डलवाला,
मोर मुकुट पीताम्वर सोहै बनमाला,
जै बंसीधर····

थालहिं डोल फिरावै भैरव ताल भरै,
दीपक दीप जगावै सुर स्री राग करै,
जै बंसीधर····

नाचत मेघ मलारे मुकुता बरसावैं,
रागिनीयाँ मिल रागन गोबिन्द गुन गावैं,
जै बंसीधर ···

दीन सुदामा तारे दारिद दुष टारैं,
गज के फंद छड़ाये, भवसागर तारे,
जै बंसीधर····

जै बंसीधर स्रीधर जै परमानन्दा,
जै जै जै परिपूरन वृन्दावन चन्दा,
जै देव जै जै देव॥

श० सिं०

रामसिंह पंजाबी

पंजाबी-साहित्य के इतिहास में एक ही नाम के कई साहित्य-सेवी हुए हैं, उन्हींमें से एक रामसिंह

पंजाबी भी हैं। नवीनतम शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि रामसिंह पंजाबी नाम का कवि तो एक ही है, चाहे रामसिंह नाम से और कवि हुए होंगे। आप पटियाला-नरेश नरिन्द्रसिह (सन् १८४६–६२ ई०) के आश्रित कवि रहे हैं। इसके अतिरिक्त इनके जीवन के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

रामसिंह नाम से जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है—'मिठड़े, सिघां दा बारामांहा, आनन्दपुर दी वार अथवा सोढीआं दी वार, सीहरफी सोभा महाराजे नरिन्द्रसिहजी की, सुनीति-प्रकाश, दुरद-दरपण, सीहरफी वलभा विरतंत, सीहरफी दम्भ विडम्बन, असपनामा और भगतमाला सटीक।' इनमें से कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध मिठड़े विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित 'मिठड़े' का पाठ तीन स्थानों पर प्रकाशित एवं अप्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है—

१. पंजाबी दुनीआं, जून १९५७, पृ० २०–२३।

२. पंजाबी झगड़े (सं० पिआरासिंह पद्म) १९७४, पृ० ८६–८९।

३. गुरु नानकदेव युनिवर्सिटी अमृतसर, पाण्डुलिपि नं० ५५५, पृ० १४-२०।

रामसिंह विरचित 'मिठड़े' का रचनाकाल १९वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया जाता है। इस रचना में कवि ने राधा और श्रीकृष्ण की प्रेमकथा को प्रथम मिलन से आरम्भ करके वियोग तक पहुँचाकर पारस्परिक उलाहनों के रूप में चित्रित किया है। परन्तु कवि राधा और श्रीकृष्ण के उलाहनों में सन्तुलन नहीं बैठा पाया है। उसने अधिक बल श्रीकृष्ण की स्तुति पर दे दिया है। रचना के नौ छन्दों में से पहले तीन श्रीकृष्ण-स्तुति में, दूसरे तीन श्रीकृष्ण और राधा के वियोग-निरूपण में, एक छन्द उलाहनों का तथा शेष दो परस्पर मिलाप के विषयों को लिये हुए हैं। कवि की यह रचना लघु होते हुए भी काव्यगत विरोधी स्थितियों तथा प्रवृत्तियों की टकराहट को सँजोये हुए है। कुछ काव्यांश यहाँ प्रस्तुत हैं :

(१)

भस्स जेही मालणी दे फिरदा है पिछे लग्गा,
रात अते दिदों भेस कीता है चोर दा।
केवड़ा गुलाब ते खेल सी चंबेली छड्ड,
अक्क संदे फुल उत्ते लोभे चित्त भोर दा॥
हीरिआं नूं छड्ड के नी अक्क दा विहाझ करे,
रामसिंह लिखे लेख नाहि कोई मोड़दा॥

राधा श्रीकृष्ण के प्रति अपने मन का आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है—'वह मथुरा जाकर निम्न जाति की मिट्टी के समान कुब्जा के साथ रम गया है और रात-दिन उससे चोरी-चोरी मिलता है। श्रीकृष्ण ने चंबेली, गुलाब तथा केवड़े के समान राधा तथा अन्य गोपियों को छोड़ दिया है और सुगन्धिविहीन पुष्प सूँघना पसंद किया है। उसने हीरे जैसी गोपियों को छोड़कर आक को पसंद किया है। रामसिंह कहते हैं कि भाग्य का लिखा हुआ कभी मिटाया नहीं जा सकता।'

राम सिंह पंजाबी द्वारा लिखी गई यह रचना अन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। सगुण भक्ति की साधना में राधा और श्रीकृष्ण लौकिक अनुभव के स्तर से ऊपर उठकर जीव और ब्रह्म के रहस्यमय प्रतीक बन जाते हैं। किन्तु रामसिंह पंजाबी के मिठड़े शुद्ध सगुण रूप के उदाहरण बनकर पाठकों के हृदय में राधा और श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-भाव को उद्दीप्त करने में यथेष्ट रूप से सहायक हैं।।

श्रीकृष्ण का यशोगान कवि ने इस प्रकार से किया है—

परम पवित्र है, बचित्र सद मित्रां दा,
दुरजन दुलंया है, घन्नैया गऊआं चारदा।
रसक रसीला ते, रंगीला है छबीला लाल,
अलख बखाला बेद, ऐसे नी उचारदा॥

कालहूं को काल अछ दान देत साधन को,
सन्तन को बैर कोऊ मन में न धारदा।
ठाकरां दी महुं नी जसोधा जे मैं झूठ आखां,
रामसिंघ कान्ह जी पै जिंदड़ी नूं वारदा॥

ग्वाल-बालिकाएँ श्रीकृष्ण के प्रति अपने मन के उद्‌गार प्रकट करती हुई और मन ही मन उनके साथ अपना प्रेम प्रदर्शित करती हुई कहती हैं—

(२)

ब्रिहों दे बाण दी अमान सानूं लग गए,
कीती हां खराब तेरे नित दे गुआलोआं।
काली काली रातीआं दे फिरदा है बिच जानी,
सस ते नणान भैड़ी देंदी सानूं गाल्हीआं॥
आंढ ते गुआंढ साडे दूतीआं दा वेहड़ा बुरा,
लूती लावे लोक मा नूं मारदे नी भान्हीआं।
कसम ईमान दी जहान सभे जाणदा नी,
रामसिंघ यार दे मैं वार-वार जानीआं॥ ५॥

मझीआं दे वासते नी सार लैंदा चारने दी,
रात अते दिने घाहु रज्ज के खवाऊंदा।
इक ते साहंस होण साहंस हू रे लख करो,
शगन सावल्ला अज्ज सानूं दिस आऊंदा॥
कसम ईमान दी जहान सभे जाणदा नी,
रामसिंघ सार सानूं सांई नू मिलाउंदा॥ ९॥

ग्वाल-बालिकाएँ श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई हैं। वे कहती हैं—'हमें रात-दिन विरह के सन्तप्त बाण पीड़ित करते हैं। श्रीकृष्ण काली रात के अँधेरे में विचरण करता रहता है और हमें सास तथा ननद के उलाहने सहने पड़ते हैं। हमारा पास-पड़ोस बहुत बुरा है, वे सब उसे देखकर चुगली करती रहती हैं। सारा संसार हमारे श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम से परिचित है। हम तो उस पर बलिहार जाती हैं। श्रीकृष्ण रात-दिन दूधधारी पशुओं को घास खिलाता है। हमें यह सब देखकर कोई शुभ सगुन ही दिखाई देता है और सम्भवतः शीघ्र ही हमारा श्रीकृष्ण के साथ मिलाप हो जायगा। ऐसा सब लोगों को प्रतीत हो रहा है।'

अस्तु, अन्तिम छन्द में गोपियों और श्रीकृष्ण का इश्क-मजाजी इश्क-हकीकी में बदल जाता है और आत्मा (राधा) का परमात्मा (श्रीकृष्ण) के साथ मिलन हो जाता है। अतः रामसिंह पंजाबी की यह रचना भक्ति-विह्वल गोपियों की संयोग तथा वियोग उभय प्रकार की मनःस्थितियों को साकार करनेवाली पंजाबी कृष्ण-काव्य की अमूल्य निधि है।

श० सिं०

लाला खुशीराम 'आरफ़'

लाला खुशीराम 'आरफ़' पाकिस्तान के बन्नू-क्षेत्र के निवासी थे। इनके काव्य-गुरु फजलशाह बताये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कोई जानकारी नहीं मिलती। श्रीकृष्ण के जीवन-सम्बन्धी आपकी 'खुशीराम दा क्रिशन सुदामा' नामक एक रचना प्रसिद्ध है, परन्तु खेद है कि इसकी एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इनकी 'खुशीराम दी गऊ माता' नामक एक अन्य कृति महा-पद्धति पर विरचित है। इसके एक पद में आरफ़ ने श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता का आख्यान किया है। वह नीचे दिया जाता है :

चेत्र चेत विच चेत उसी नूं,
जो स्री क्रिशन मुरारी, गिरवरधारी।
देवकी नन्दन असुर नगन्दन,
भगतन का हितकारी, दुष्ट हितकारी॥

दुरपद सुता की लज्जा राखी,
पाण्डव की जो नारी, सभा मंझारी।
'खुशीराम' सुन टेर नाग की,
दौड़े छोड़ असरारी, गरड़ सवारी॥

इस कवि की एक अन्य रचना 'बारांमाहा बंसी वाले दा' भी मिलती है, जिसमें से एक पद प्रस्तुत है—

माघ महीने गुजरे यारो,
दरशन देंदा शाम नहीं।
बिलकुल बेकल बेकल होई,
दिन ते रात आराम नहीं।
एहो कजिआ रहे हमेशां,
होंदी उमर तयाम नहीं।
खुशीराम जे राम न थोवी,
खुशी मेरा फिर राम नहीं॥

श० सिं०

शामदास 'आजिज़'

अमृतसर-निवासी शामदास 'आजिज़' का जन्म आश्विन बदी त्रयोदशी संवत् १९५३ वि० (सन् १८९६ ई०) को इनके चाचा दासमल्ल के घर हुआ था। आपके पिता काशीराम 'दासमल्ल काशीराम' नाम की मुरब्बा बनानेवाली एक फर्म के मालिक थे जो अमृतसर के बाजार मिश्री में स्थित थी। आजिज साहिब की कहीं पर औपचारिक शिक्षा नहीं हुई, फिर भी आप पंजाबी, उर्दू, हिन्दी आदि भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे और इन भाषाओं में कविता करने में सिद्धहस्त थे। सन्त दुनीचन्द नमकमण्डी अमृतसरवाले आपके काव्य-गुरु थे। काव्य-रचना का अभ्यास आपको बचपन से ही पड़ गया था। ७ वर्ष की अल्पायु में ही ये कविता करने लग गये थे। इसके अतिरिक्त आजिज ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र के भी ज्ञाता थे। पौराणिक तथा शास्त्रीय ज्ञान के कारण आपकी काव्य-सूझ उच्च कोटि की थी। लाला धनीराम चात्रिक, गण्डासिंह याचक, मुनीलाल प्रेम, विधातासिंह 'तीर', हीरासिंह 'दरद' आदि कवि आपके समकालीन थे। अपने समय के कवियों में आप इतने प्रसिद्ध और महान् थे कि लगभग बीस वर्षों तक आप हिन्दू-कवि-सभा के प्रधान बने रहे। आपके शिष्य-प्रशिष्यों में देसराज 'सादक', लायिलपुरी शोरीलाल, निर्मल बम्बईवाले, हीरालाल लखनऊवाले, रामलुभाया 'पद्म' आदि प्रसिद्ध हैं। आपकी कविता का मुख्य भाव करुणरस से सम्बद्ध है। इसी मानवीय गुण का प्रचार एवं प्रसार आपने अपने निजी जीवन में भी किया।

आजिज़ साहब करुण रस के तो बादशाह समझे जाते थे। सांसारिक प्रपंचों से आप पूर्णतः निर्लिप्त रहते थे। दीन-हीन और असहायों की सेवा-सहायता करके आपको विशेष सुख तथा शान्ति मिलती थी। आपको कवि-सम्मेलनों में जो धनराशि प्राप्त होती उसे 'रामकन्या पाठशाला' अमृतसर को दान के रूप में दे देते थे। इस संस्था की आपने आजीवन सेवा की। लाहौर में इन्हें कविविद् की उपाधि से सम्मानित किया गया और 'पंजाबी आदर्श कवि सभा', अमृतसर के आप लम्बे समय तक प्रधान बने रहे। 'पंजाबी संगीत सभा' अमृतसर के आप संस्थापक थे और इसे जी-जान से आपने चलाया।

आप अमृतसर नगर के एक व्यक्ति न होकर संस्था थे और आजीवन अपने शिष्य-प्रशिष्यों की मण्डलीसहित राष्ट्र-सेवा के कार्य में संलग्न रहे।

आपने जहाँ राधा-श्रीकृष्ण को लेकर काव्य-रचना की, वहाँ सामाजिक जनकल्याण तथा धार्मिक ऐक्य को स्थापित करने के लिए भी सतत प्रयास किया। इनके एक शिष्य श्री रामलुभाया 'पद्म' के कथनानुसार इन्होंने जीवन में जो कुछ कमाया, उसे समाज-सुधार तथा दीन-दुखियों के सेवार्थ अर्पित कर दिया। यही कारण है कि शामदास 'आजिज़' के परिवार का कोई व्यक्ति अब अमृतसर में नहीं रहता। यहाँ तक कि उनका निवास-स्थान भी प्रश्न का विषय बन गया है। इनका निधन सन् १९७७ ई० में हुआ।

शामदास 'आजिज़' ने राधा-कृष्ण के जीवन तथा लीलाओं को लेकर कुछ कविताएँ लिखी हैं, जो उनके शिष्य श्री रामलुभाया 'पद्म' के पास सुरक्षित हैं।

श्रीकृष्ण की महिमा तथा यश का आख्यान इस कवि ने अपनी 'शाम' नामक कविता में इस तरह किया है—

परिपूर्ण प्रभु परम पवित्र,
पारब्रह्म परमेश्वर शाम।
मोर मुकुट मुरलीधर मनहर,
मदनमोहन मंगलेश्वर शाम।।

कमल नैन किशोर कृपालु,
करुणानिधि कामेश्वर शाम।
ब्रजनन्दन ब्रिन्दाबन वासी,
ब्रिजमोहन ब्रजेश्वर शाम।।

गोपीनाथ गोवर्धनधारी,
गीता के ज्ञानेश्वर शाम।
'शामदास' आजिज़ के सब कुछ,
धनेश्वर सर्वेश्वर शाम।।

अपनी एक अन्य कविता 'क्रिशन बारे' में इन्होंने बालक श्रीकृष्ण की वेश-भूषा का मनोहर चित्रण करके वात्सल्य-भाव की अभिव्यक्ति की है। माता यशोदा बालक श्रीकृष्ण के मिट्टी से लथपथ सांवले-सलोने रूप को देखकर मन में फूली नहीं समातीं। कवि की इस कविता में शब्द मैत्री के प्रयोग के द्वारा नाद-सौन्दर्य की सर्जना अनुपम बन पड़ी है—

आजा आजा सबके जां।
रिढ़दा रिढ़दा आवे न।।

तक तक पिछांह बल्ल हस्सें।
माता फड़े अगांह नूं नस्सें।।

हूँ हूँ करे मचाए शोर।
जिऊ जंगल विचव नच्चे मोर।।

सिर ते बाल घुंघरांवाले।
जिऊँ भौरे ने कंवल बुआले।।
नक्क बुलाक दा मोती लमके।
जिऊँ प्रभाती तारा चमके।।

लक्क तड़ागी बध्धी होई।
जिदां इन्दर-धनुष है कोई।।

श्रीकृष्ण की वेशभूषा तथा मुख-मुद्रा पर आकृष्ट भक्त कहता है: 'मैं तुझ पर बलिहार जाता हूँ। तुम मेरे पास छोटे बालक की तरह घुटनों के बल चलकर आ जाओ। माता यशोदा जब तुम्हें पकड़ने का यत्न करती हैं तो तुम झट से पीछे की ओर दौड़ जाते हो और हँसने लगते हो। तेरे सिर पर घुंघराले केश इस तरह शोभा पा रहे हैं जैसे काले-काले भँवरे कमल के फूलों के चारों ओर मँडरा रहे हों। नासिका में बुलाक इस तरह चमकता है जैसे सवेरे का तारा चमक रहा हो और कमर पर बँधी हुई तड़ागी आकाश में दिखाई दे रहे इन्द्र-धनुष के समान शोभा दे रही है।'

श० सिं०

साधुजन/साधुराम

सिक्ख-धर्म के छठे गुरु हरिगोबिन्दजी के परम श्रद्धालु शिष्य साधुजन प्रारम्भ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इनकी अपार श्रद्धा और धार्मिक वृत्ति को देखकर ही गुरु हरिगोबिन्दजी ने अपनी सुपुत्री बीबी वीरो का विवाह उनके साथ ज्येष्ठ १६८६ वि० में कर दिया था। सरदार शमशेर सिंह का विचार है कि साधुजन के पिता का नाम धर्मचन्द तथा माता का नाम नन्दकौर था। वे पंजाब प्रान्त के खोसला खत्री (क्षत्रिय) थे। गुरुजी आपके भक्ति-भाव और साधु स्वभाव से प्रभावित होकर आपको 'साधुजन' कहकर पुकारते थे। इनके जीवन से सम्बद्ध अन्य विश्वसनीय और प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। साधुजन के शिष्य धर्मदास की वाणी से ज्ञात होता है कि आप अपने अन्तिम दिनों में सियालकोट (पाकिस्तान) चले गये थे। डॉ० धर्मवीर सिंह 'जौली' के मतानुसार साधुजन आजीवन अविवाहित रहे, जबकि आपके अन्य शिष्य रूपराय ने आपको विवाहित बताया है। डॉ० देवेन्द्रसिंह विद्यार्थी इनको गुरु हरिगोबिन्दजी का समकालीन नहीं मानते। वे इनका विवाह गुरुजी की दूसरी पुत्री बीबी भानो के साथ सम्पन्न हुआ स्वीकार करते हैं। आपके अनुसार दो साधुजन हुए हैं—एक खत्री और दूसरा बाणिया। दोनों की वाणी और जीवन-सम्बन्धी तथ्यों के मिल

जाने के कारण कई भ्रम और सन्देह पैदा हो गये हैं।

कुछ भी हो साधुजन ने सन्तों-भक्तों की वाणी के अनुरूप ही राग-रागिनियों के अनुसार पद लिखे हैं। आपकी वाणी का मुख्य विषय गुरु-महिमा, मन-प्रबोधन, प्रभुशरण-सुख, विकारों के प्रति वितृष्णा तथा नाम-महिमा का माहात्म्य है। 'पदावली' के अतिरिक्त साधुजन ने 'महाभारत की भाषाटीका, ध्रुव-चरित्र, रामायण तथा प्रह्लाद-चरित्र' भी लिखे हैं। कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आपकी 'वार पूतना दी' और 'सुदामा-चलितर' दो रचनाएँ मिलती हैं। ये दोनों रचनाएँ पंजाबी-साहित्य के प्रमुख काव्य-रूप में बाद में लिखी गयी हैं।

भक्त कवि साधुजन ने 'वार पूतना दी' में कृष्ण-चरित से सम्बद्ध 'पूतना' के प्रसंग को अपनी साहित्य-सर्जना का विषय बनाया है। इसके आरम्भ में ही 'वार पूतना की लिखी बोलना साधुजना का' कथन मिलता है। पूतना बालक श्रीकृष्ण को मारने का बीड़ा लेती है। अपने स्तनों में विष लगाकर वह मथुरा नगर के आसपास के सभी बालकों को मारकर गोकुल में श्रीकृष्ण को मारने के लिए प्रवेश करती है। वह माता यशोदा के सम्मुख बालक कृष्ण के रूप-लावण्य का आख्यान करके उसे अपनी गोद में लेकर जैसे ही स्तन बालक कृष्ण के मुँह में देती है, निढाल होकर धरती पर गिर पड़ती है और देखते ही देखते श्रीकृष्ण उसके शरीर से प्राण खींच लेते हैं। इस घटना का वर्णन साधुजन ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है :

बीड़ा लीता पूतना द्रिग डाकन वांग निहारें।
विहु दा गंढा रगड़ के थण उपर चंढो ढालै॥

उस नींगर सभ खपाइिनि गड़ मथरा नगर दुआले।
आइि वड़ी विच गोकले जिस आगै कान समाले॥

जननी सुन्दरी सिआम दी ढाइि पोड़्हा आनि घगाले।
दैंते दी वैणि अलाइिआ जिसु अंदरि खोट हिआले॥

नीगर सुनि कै जंमिआ मैं आईं ओढल छालै।
कुछड़ मेरे देहि तूं मुंहि देखनि नूं जीउ भालै॥

कुछड़ लैकर शिआंम नूं जननी नूं पासे टालै।
पोतड़िआं विच बालका वेख हँसै चरति विखालै॥

दुहथड़ि मम्मा पकड़ि कै मुख अंदरि सिआम पखालै।
प्रान धू सरीरों कढिअन जन मछि ढहाए जाले॥

सिर परने ढठी पूतना थराथरा जिऊं भुंचाले।
उस मरदी होई आखिआ धू खासी बिसिअर काले॥

चड़ि बैठा ऊपरि हिक दे मनमोहन चंडा नो गाले।
चोट पहिली :लाई अनवाले॥

मथुरा में कंस मल्लयुद्ध का आयोजन करता है। श्रीकृष्ण को भी गोकुल में निमन्त्रण जाता है। श्रीकृष्ण अपने भाई बलभद्र सहित मथुरा में मल्ल-क्रीड़ा में सम्मिलित होने के लिए आते हैं। श्रीकृष्ण ने चण्ड और चण्डूर जैसे मल्लों को चित्त करके पर्याप्त यश अर्जित किया। मथुरा-निवासी श्रीकृष्ण का दर्शन करके आनन्दविभोर हो उठते हैं। राजा कंस को तो श्रीकृष्ण साक्षात् काल के समान प्रतीत होते हैं। श्रीकृष्ण कंस का वध करके मथुरा का राज्य-प्रबन्ध उग्रसेन को सौंपते हैं। इस विजय की खुशी में यशोदा माता को बधाइयाँ मिलती हैं। उस समय नन्दबाबा प्रसन्न होकर अपार धन दान में देते हैं :

छिन्न पवाईअन कंस ने गोकल ते सिआम सदाइिआ।
बलभद्र सुन्दर सिआम उठि दोवै भाई सिधाइिआ॥
कट सुन्दर कोचु सहावनी प्रभु नाना रूप बनाइिआ।
विचि फिरदे मालन घतदे पिर चंड चंडूरे छाइिआ॥
ढोडि दुआला सिआम जी जिन अंदरि भड़थू पाइिआ।
देखि दरशन सुन्दर सिआम दा नर-नारी धिआन लगाइिआ॥
जड़ जाओ राजे कंस दी देख केहा बार आनाइिआ।
देखि उठ पिछाहा चलिआ राजे नूं काल दिखाइिआ॥
प्रभु लंमा हथ्थ पसरि के गहि कंसै लै पटकाइिआ।
राज मिलिआ उगरसैन नूं दैंता दा वेस गवाइिआ॥

विचि गोकल मिलिन बधाईयां जशोधाघर मंगल
गाइिआ ।
सिर ऊपरि लै लै वारने नन्द बहु दरबु लुटाइिआ ॥
साधुजन हरिजसु गाइिआ ॥

राग सूही की वार रूप में रचित 'सुदामा-चलितर' नामक रचना में भक्त-कवि साधुजन ने श्रीकृष्ण और सुदामा की द्वारका में हुई भेंट को अपना विषय बनाया है। इसके अतिरिक्त अन्य सुदामा-चरित्रकारों के द्वारा उपेक्षित सान्दीपनि गुरु के पुत्र को पुनर्जीवित करने का प्रसंग भी इसमें समाहित है। श्रीकृष्ण के बचपन के मित्र सुदामा जब अपनी पत्नी के कहने पर द्वारका जाते हैं, तो अपने साथ श्रीकृष्ण के लिए चावल की भेंट लिये जाते हैं। श्रीकृष्ण अपने सखा के द्वारा लाये हुए चावलों को आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। सुदामा की निर्धनावस्था को देखकर श्रीकृष्ण विश्वकर्मा को बुलाते हैं और अपनी अद्‌भुत लीला के द्वारा सुदामा के लिए भवन-निर्माण कराते हैं। सारी रात श्रीकृष्ण सुदामा के पास बैठकर परम सुख का अनुभव करते हैं। सबेरा होते ही सुदामा अपने घर को प्रस्थान करते हैं और श्रीकृष्ण के गुणों का आख्यान करते हैं। साधुजन की उपर्युक्त रचना से एक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

प्रभु अन्तरजामी बुझिआ,
इिह तन्दुलि भेट लिआइिआ।
भरि कछुह मुठिय भराईओन,
मुखि मेल मेरे मन भाइिआ ॥

सुआदि जिऊँ जिऊँ मिठै,
लगिआसु मुठ दुईनूँ हथ्थ चलाइिआ ।
मुहि सिधे जा फिरि आदिओनता,
रुकमणि हथ्थ हटाइिआ ॥

मैं प्रीति तुसाडे संगिदी,
रख मैनूँ जदि गाइिआ ।
हथ्थ छाडि तुसाडे भगतु दा,
प्रभु अंतरि मता पकाइिआ ॥

किआ कीजै दान भगति नूं,
विसकरमा निकटि बुलाइिआ ।

रचि लीला सकल बैकुण्ठ दी,
दुख भंजन आपि सुनाइिआ ॥

सभ राति विहानी बैठिआं,
आनन्द परम सुख पाइिआ ।

परभाते आभड़ि वंजओन दिज,
घर दी ओर सिधाइिआ ।

चित चितवै गुण गोबिंद दे,
तिह लोकां विच समाइिआ ॥

मैनूँ माइिआ मूल न चितीओन,
जिनि जगत सकल भरमाइिआ ॥

जीआ जातो न मेरा भगतु है,
बिख माइिआ ते फड़िकाइिआ ।
साधुजन हरि जस गाइिआ ॥

श० सिं०

साहिबदास

कवि साहिबदास के जीवन-सम्बन्धी तथ्य प्रायः अनुपलब्ध हैं। उदासीन-सम्प्रदाय में साहिबदास का संतरेण का गुरु होना प्रसिद्ध है। ऐसा भी समझा जाता है कि आप अलाल रेलवे स्टेशन के निकट हेड़ी गाँव के निवासी थे और भूदन में आकर बस गये थे। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध आपकी 'सुदामा-चरित्र' नामक कृति उपलब्ध होती है। यह रचना हस्तलिखित रूप में पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला के पुस्तकालय में क्रम संख्या ४३ पर दर्ज है। इसकी पुष्पिका इस तरह से है—'सुदामा-चलित्र पुरा होइआ। भुलचुक बखसणा। गुरु प्रसादि लिखत सिव सिंघ जट गुरु संगतजी का गुलाम।' रचना के अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है कि साहिबदास के गुरु 'रामकुँवर' नामक व्यक्ति थे। उनका स्मरण इन्होंने विशेष आदर से किया है :

आनदेव जाचो नहीं, इह मति दीजै देव।
बिसन रूप स्री राम कुइर की कीजै सेव ॥

···· · राम-कुइर अरु राम मै
भेद न जानउ कोइ ·· ·· ··· ।।

प्रसिद्ध है कि रामकुँवर बाबा बुढ़ाजो के वंशज थे। गुरु गोविन्दसिंहजी ने रामकुँवर को अमृतपान कराकर इनका नाम 'गुरुबख्श सिंह' रखा। अतः रामकुँवर दशम गुरु गोविन्दसिंहजी के समकालीन थे। गुरुजी का समय सं० १७२३ से १७६५ वि० है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि साहिबदास अपने गुरु की शरण में सं० १७६५ और सं० १७७० के बीच में आये होंगे। इस आधार पर 'सुदामा-चरित्र' का रचनाकाल सं० १७७०-७५ के आसपास निश्चित किया जा सकता है। अनुमान है कि रामकुँवर साहिबदास के काव्य-गुरु रहे होंगे, न कि आध्यात्मिक गुरु, क्योंकि दशम गुरु के द्वारा सिक्ख बनाये जाने के बाद इनके द्वारा किसी अन्य को अपना आध्यात्मिक गुरु बनाने की बात असम्भव प्रतीत होती है। यह भी तथ्य विचारणीय है कि साहिबदास गुरु गोविन्दसिंहजी के देहावसान के बाद ही रामकुँवर की शरण में आये होंगे अन्यथा गुरु गोविन्दसिंहजी के दरबारी कवियों में से किसी न किसीने इनके नाम का संकेत अवश्य किया होता। इन आधारों पर कहा जा सकता है कि 'सुदामा-चरित्र' १८वीं शती विक्रमी के आठवें दशक की रचना है।

'सुदामा-चरित्र' के आरम्भ में साहिबदास ने मंगलाचरण तथा देव-स्तुति के पश्चात् सुदामा-कथा को आरम्भ किया है। इनके अनुसार सुदामा एक स्वाभिमानी तथा निर्धन ब्राह्मण थे। वे श्रीकृष्ण के बाल-सखा, भक्त और भाग्यवादी व्यक्ति थे। अपनी पत्नी सुशीला की प्रेरणा से वे श्रीकृष्ण के पास द्वारका गये थे, किन्तु वहाँ अपने आत्मसम्मान की पूर्णतया रक्षा की थी।

बोलिउ सुदामा सुनहु तुम बामा, माइआ
हमरे न कामा तुमारो मति होनी है।
जाचउ न मेरी बाति सुनीये तोअ मेरी
तू करहै किआ रेरी कवन सिख दीनी है ।।

इससे स्पष्ट है कि वे धन लोभ के कारण नहीं, वरन् मात्र भक्ति-भाव से प्रेरित होकर बालसखा से मिलने गये थे।

साहिबदास ने द्वारका से लौटते हुए सुदामा को विचारमग्न दिखाया है। वह सोचता है कि भला हुआ जो श्रीकृष्ण ने उसे माया के प्रपंच से मुक्त रखा—

हमरे सखा सुजान प्रभु रछिआ कीनी।
भला कीआ भगवान दान हम लछ (लक्ष्मी) न दीनी ।।
अति प्रसन्न दिजवर भइओ क्रिसनदेव उसतत करति।
धन्न प्रभु गिरवर धरन सन्तन के संकट हरत ।।

साहिबदास का सुदामा अपार धन-सम्पदा प्राप्त होने पर भी शान्त, अनासक्त और सही अर्थों में ब्राह्मण दिखाई देता है। वह श्रीकृष्ण के यशगान तथा स्मरण करने का उपदेश अपनी पत्नी को देता है—

तब ही पिआरी सो उचारी बाति,
गिरधर की प्रभ सिउ जो भई सबै बाम को सुनाई है।
ऐसो मुरारी चाह पूरी हमारी सब,
सबको हितकारी बलराम जू को भाई है।
ऐसो सखाई बड़ाई ताकी कहा कीजै,
जेते हैं जीअ जन्त सबको सहाई है।
चिति ही मै जानि लीजै सिमरनि निसि प्रात कीजै,
ताको भजन कीजै अब इहै चिति आई है ।।

साहिबदास ने अपनी इस रचना में आत्म-सम्मान, श्रद्धा, संकोच, आश्चर्य, भगवत्-स्मरण, प्रेरणा, दया, दान-माहात्म्य आदि गुणों का आख्यान करके 'सुदामा-चरित्र' को पंजाब प्रदेश में रचित कृष्ण-काव्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना दिया है। फलतः इसके रचनाकार साहिबदास पंजाबी कृष्ण-भक्त कवियों की अग्रिम पंक्ति में स्थानबद्ध हो जाते हैं।

श० सिं०

साहिबसिंह 'मृगेन्द्र'

कविवर बाबा साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' संगरूर-दरबार के अति समादृत कवि हुए हैं। संगरूर-दरबार में निवास के दौरान इस प्रतिभासम्पन्न कवि ने अपनी उत्कृष्ट कृतियों से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया। इन्होंने लगभग उन्नीस प्रौढ़ रचनाओं से पंजाब में रचित हिन्दी-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। किन्तु इस कवि ने अपनी किसी भी छोटी-बड़ी रचना में अपने जीवन-विषयक तथ्य नहीं दिये। इस सम्बन्ध में इनके सुपुत्र कवि मदनसिंह 'मृगेन्द्र' ने अपने 'क्रिसनखण्ड' में जो तथ्य दिये हैं, उनके आधार पर इनके जीवन-सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो जाती है। इनके अनुसार साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' का जन्म १९वीं शती ई० के प्रारम्भ में हुआ था। ये जींद रियासत के महाराजा स्वरूपसिंह तथा उनके सुपुत्र राजा रघुवीर सिंह दोनों के दरबार में राजकवि के रूप में सुशोभित रहे। जींद राज्य के इतिहास में इन उभय राजाओं का शासन-काल क्रमशः सन् १८३७ से १८६४ ई० तथा सन् १८६४ ई० से १८८७ ई० तक निर्दिष्ट है।

साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। आपके पूर्वज पंजाब-प्रदेश के निवासी थे। इनके पिता दीवानसिंह धार्मिक प्रवृत्ति के विद्या-प्रेमी और सज्जन पुरुष थे। वे महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में मुख्य ग्रन्थी के पद पर नियुक्त थे। साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' के दादा बहादुर सिंह सिक्ख-धर्म के अमृत-धारी और धर्मपरायण व्यक्ति थे—

तिह सुत भए बहादुर सिंह श्री गुरपंथ स्नाह।
सजे सिंह वर सुधार एक, जायो मंत्र गुरवाह॥

कहा जाता है कि आपके पिता दीवानसिंह होशियारपुर जिले के जगमाल गाँव के निवासी थे। 'मृगेन्द्र' महाराजा रणजीत सिंह के काल में लाहौर आ गये थे। पुनः लाहौर में अपने स्वाभिमान की सुरक्षा न कर सकने के कारण ये कैथल-नरेश के आग्रह पर कुरुक्षेत्र में आकर बस गये थे। यहाँ से साहिबसिंह जींद-नरेश के पास संगरूर गये। साहिबसिंह द्वारा रचित 'मनुमानस-प्रवाह' के निम्नांकित छन्द से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

कवि त्रिगिंद याते प्रथम, रहत सदा कुरुखेत।
केवल क्रिपा नरिंदबर, इत निवास को हेत॥

इसके अनन्तर ये आजीवन जींद-नरेश स्वरूपसिंह तथा उनके सुपुत्र महाराजा रघुवीर सिंह के संरक्षण में रहे। यही नहीं, नाभा के महाराजा भगवान सिंह तथा पटियाला-नरेश नरेन्द्रसिंह भी इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे तथा इनका आदर करते थे। महाराज स्वरूपसिंह आपको राजसिंहासन के पास सम्मानपूर्वक बैठाते थे। इन्हें इनके निवास-स्थान से सरकारी सवारी ले जाने तथा पुनः छोड़ने आया करती थी। संगरूर-दरबार में इतना आदर कदाचित् ही किसी अन्य राजकवि को मिला हो। कहना न होगा कि पंजाब-प्रदेश की रियासतों के संरक्षण में हिन्दी तथा पंजाबी-साहित्य को समृद्ध करनेवालों में साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' का अन्यतम स्थान है।

कवि साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' सरलचित्त, भावुक और उच्च कोटि के सज्जन पुरुष थे। आपका परिवार सनातन-धर्म का अनुयायी था। अत. आप भगवान् कृष्ण को अपना इष्टदेव मानते थे। यही कारण है कि आपकी रचनाओं में पुरुषार्थ चतुष्टय को अर्जित करके अन्ततः स्वानुभूति द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करने का निर्देश है। आपने काशी में लगातार दस-ग्यारह वर्ष तक संस्कृत धार्मिक ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया था। आप षट्शास्त्री थे, साथ ही आपको भारत के अनेक स्थानों की यात्रा का अनुभव भी प्राप्त था। इन्होंने लगभग दो दर्जन हिन्दी और पंजाबी भाषा के ग्रन्थों की रचना की। आपके हिन्दी ग्रन्थों में 'प्रेम-पयोदधि' एक उत्कृष्ट रचना है, जो ब्रजभाषा में रचित है।

कवि मृगेन्द्र प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ संगीतज्ञ तथा चित्रकला के भी प्रेमी थे । इनका देहावसान-काल सन् १८८७ ई० के आसपास माना जाता है । आपने कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध पाँच रचनाएँ प्रस्तुत कीं—

१. बारामाहा (पंजाबी), २. कृष्ण-कौतूहल, ३. रासमण्डल-लीला, ४. बारामासा श्रीकृष्णजी, ५. भगति-भाव-प्रभाकर ।

'बारामाहा' में वियोग शृङ्गार का वर्णन बारह मासों के माध्यम से हुआ है । श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् और फिर मथुरा में कुब्जा के प्रेम-पाश में फँसने की सूचना मात्र से विरहदग्ध गोपियाँ और भी अधिक सन्तप्त हो उठती हैं । यह रचना सं० १९०९ वि० में असूज महीने की पंचमी तिथि को सम्पन्न हुई । इस बात की पुष्टि इसी ग्रन्थ के अन्त में दिये हुए निम्नलिखित छन्द से हो जाती है—

हरिजी सफल मनोरथ कीते ।
गुवारनि सुख पाए मन चीते ।।

गोपी गुवाल मुकटि पद लीते ।
प्रेम की कीरति परम पुनीते ।।

कवि म्रिगराज छन्द सुभ कीते ।
संमत रस नभ अदि ससि बीते ।।

असू शुकल पंचमी बीते ।
पड़ सुन पावन होते पुनीते ।।
बिप्रवार नूँ ।।

इस ग्रन्थ की एक प्रति सेण्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला (सं० २१५६) में सुरक्षित है । इसमें ३४ पत्र हैं । इस ग्रन्थ का आकार १०″×७″ है । प्रत्येक पृष्ठ में ९ पंक्तियाँ हैं । इस ग्रन्थ का लेखन स्पष्ट, शुद्ध और काली स्याही से हुआ है, परन्तु शीर्षक तथा छन्दों के नाम और विराम-चिह्न लाल स्याही से अंकित हैं । इसका हाशिया रंगीन है । अन्त में कवि ने ग्रन्थ का नाम 'स्री क्रिशन राधाजी का विरह नाटक' दिया है ।

'कृष्ण-कौतूहल' काव्य के प्रारम्भ में ही इसके रचनाकाल का उल्लेख हुआ है—

उन्नीससौ साल छबीसा ।
दसम स्कंध भागवत में से कहे चरित जगदीसा ।।

अर्थात् इसकी रचना सं० १९२६ वि० में भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर हुई है । इसकी भी एक प्रति सेण्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला (सं० २१६५) में सुरक्षित है । इसके ८५ पत्र हैं और लिपिकर्ता अज्ञात है । ग्रन्थ सजिल्द है । लेख शुद्ध एवं स्पष्ट है तथा हाशिया लाल रेखाओं से युक्त है । यह ग्रन्थ दस विश्रामों में विभक्त है । प्रथम अध्याय की पुष्पिका से यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने आश्रयदाता महाराज रघुवीर सिंह की आज्ञा से की :

श्री रघुबीर सिंह नर राई,
रसक प्रेम बस चारी ।
तिन हित रची मृगेन्द्र सुरुचि करि,
हरि कीरति बिसतारी ।।

इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं, कंस के द्वारा भेजे गये राक्षसों के हनन, कंस-वध, देवकी और वसुदेव की कारागार से मुक्ति, नाना उग्रसेन को मथुरा के सिंहासन पर बैठाना तथा होली के त्योहार पर ब्रज के नर-नारियों के उल्लास का वर्णन किया गया है ।

'रासलीला मण्डल' ग्रन्थ की रचना १९३० वि० चैत्र सुदी, मंगलवार को हुई । इसकी एक प्रति भाषा-विभाग, पटियाला के पुस्तकालय में सुरक्षित है । इस रचना का आधार श्रीमद्भागवत-पुराण का दशम स्कन्ध है–

साहबसिंह यथामति लीला मण्डलरास बनाया ।
दसम स्कन्ध भागवत में से चुन-चुन भाव दिखाया ।।

इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण तथा गोपियों का परस्पर वार्तालाप, छेड़छाड़, वन-विहार, नारद-प्रसंग, अक्रूर का कृष्ण को अपने साथ मथुरा ले जाना, उद्धव और गोपियों का वार्तालाप, राधा और गोपियों के विरह को कृष्ण द्वारा शान्त करना आदि भावपूर्ण तथा सारगर्भित घटनाओं का वर्णन हुआ है।

'बारामासा श्रीकृष्णजी' की रचना १६३० वि० में जेठ बदी पंचमी, रविवार को हुई। पटियाला की सेण्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी में यह ग्रन्थ हस्तलिखित रूप से सुरक्षित है। इसमें कुल ३३ पत्र हैं। शीर्षक, छन्दों के नाम, विराम-चिह्न, अंक आदि लाल स्याही तथा मूल सामग्री काली स्याही में अंकित है। इस ग्रन्थ में मृगेन्द्र ने अन्य कृष्ण-भक्त कवियों—देव, बिहारी आदि की तरह राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में चित्रित करके उनके प्रेम का निरूपण किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर विरह-विदग्ध गोपियों की दशा, उद्धव द्वारा गोपियों को ज्ञानोपदेश देने, गोपियों का बारामासा के माध्यम से अपनी विरह-दशा का निवेदन और पुनः श्रीकृष्ण का ब्रज आकर राधा और गोपियों की विरह-व्यथा को दूर करने का वर्णन है।

'भगति-भाव-प्रभाकर' बृहत्काय रचना है जो सं० १६२७ वि० में रची गयी। इसका उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है :

संमत रस रसना सरप, निधि ससि जेसठ मास।
भयो प्रतिस्टित नृपति ग्रह, पटियाले सुखरास॥

इस ग्रन्थ की एकमात्र प्रति खालसा कॉलेज, अमृतसर के सिख हिस्ट्री रिसर्च विभाग (सं० २१८६) में सुरक्षित है। इस काव्य में कवि ने भगवान् कृष्ण और राधा की लीलाओं का गुणगान करके उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना का निवेदन किया है। ग्रन्थ में कुल दस अध्याय हैं।

साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' द्वारा रचित इन रचनाओं से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

चड़दे माह विसाख सुहाए।
सखीआं सब सिंगार बनाए॥

चुण के कलीआं हार बनाए।
बागीं सेज बंद कसवाए॥

प्रीतम पीआ गरे लटकाए।
करदीं केल सभे मनभाए॥

मैनूं ब्रिहों नित सताए।
पल पल देखां दुख सवाए॥
उठ प्रभात नूं॥

—'बारामाहा' से

• • •

सुन राधे सुंदर बर जोरी।
रास रचूं गाऊं बर होरी॥

नृत करूं खातर सभ तोरी।
मैं रस बस गुड़िया जिम डोरी॥

तव मुख चन्दा नैन चकोरी।
जै जै राधे नवल किसोरी॥

तोरी कीरती सब जग छावनी,
कवि म्रिगेन्द्र श्री क्रिसन राधा के,
हिय में ओरी ये बसावनी॥

—'कृष्ण-कौतूहल' से

• • •

आवो सखी रल-मिल सभी करि सोलां सिंगार।
रतन जड़ाऊ घढ़वी सिर पर धरो सवार॥
दधि बेचन को चली सकल मिलकै ब्रिजनारी।
आदि भवानी भगवती जपती हूँ तेरा नाम॥
दधि बेचन को हम चलीं एक पंथ दो काम।
एक पंथ दो काज लाज तुझको है मैया॥
हम पियासी हैं दरस की नन्दजी को कँवर कनैया।
मोर मुकट सांवर सुन्दर ब्रिन्दाबन धेन चरैया।
कहूँ मिल जा मीत कुंज गलीयों में मुख धर बेन
बजैया॥

• • •

हाथ जोर बिनती करूँ सुनो जगत के राय।
गुवारनियाँ बस प्रेम के हमरा कुछ न बसाय।
जोग मैं ग्यान बहुत बतलाया।
उन ते हमरी एक न मानी अपना दुख समझाया।
रो-रो परी तरफती सगरी तुम बिछरत दुख पाया।
उनको दरसन दीजै हरजी दिल हमार भर आया।

—'रासलीला मण्डल' से

• • •

सावन रे भावन दूर दरद वियोग को क्योंकर कटे।
कूबरी को उबरी देख दुबरी देह हूवै छतीयां फटे॥
कर जतन जाइ जरूर हरि संग बिनती हमरी कहो।
बचहे न ब्रिज बनिता बिचारी ब्रिहो दुख हमरा दहो।

—'बारामासा श्रीकृष्णजी' से

• • •

बड बुद्ध उदार गिरा के अगार,
बिचार यहाँ मग जोहि रहे।
उकतान के नीर अनूठे सुधार,
कै संक की पंक पै स्योहि रहे॥

रच भारत मध्य पुरान बड़े,
हहराने हरान सो होहि रहे।
मत वेद त्रिगिंद बिचार महा-,
सुख मोद बिनोद मनोहि रहे॥

—'श्री भगति-भाव-प्रभाकर' से

श० सिं०

सुदामा

ये बुन्देलखण्ड के एक गरीब ब्राह्मण कवि थे, जो गुरु गोविन्दसिंहजी के दरबार में आकर रहे। इन्होंने श्रीकृष्ण के बाल-सखा सुदामा के दारिद्रय का उल्लेख गुरु गोविन्दसिंह के सम्मुख करके उनसे दान प्राप्त करने की याचना की थी। इस कवि के सम्बन्ध में और कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। गुरु दरबार में इनके द्वारा सुनाया गया छन्द प्रस्तुत है—

एक संग पढ़े अवंतका सनदीपन के,
वहै सुधि आई तो बुलाइ बूझी बामा मैं।
पुंगीफलो होत असीस देतो नाथजी को,
तंदुल ले दीजै बाँध लीजै फटे जामा मैं॥

दीन दुआर सुनकै दयाल दरबार मिले,
एथों कुछ दीनो पाई अगनत सामां मैं।
प्रीत कर जाने गुरू गोबिन्द के माने तांते,
वहै तूं गोबिन्द वहै बामन सुदामां मैं॥

इस कवि ने गुरु गोविन्दसिंहजी की श्रीकृष्ण के साथ तुलना करके सुदामा की तरह उनसे दान में कुछ प्राप्त करने की अपनी इच्छा को व्यक्त किया है। गुणग्राहक तथा उदार गुरुजी ने इनको अभीष्ट दान देकर सन्तुष्ट किया और अपने दरबारी कवियों में स्थान देकर कृतार्थ किया था।

श० सिं०

सूरदास

आपके जीवन के सम्बन्ध में इतना ही पता लगता है कि इनका जन्म पंजाब-प्रदेश में सन् १८७० ई० में हुआ था। इनकी एक पुस्तक 'सार-संखेप-सूर-सागर' मिलती है। उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं :

वे कनिआ राम रमईआ तुझे।
गाल काहे की दीजै वे।
तेरे चरन कमल धोहि पीजै वे॥

दुइ मावां दुइ पिउ तेरे वे।
तूं सुण लै साहिब मेरे वे॥

तेरी भैण सुभद्रा वाई वे।
सौ ताँ अरजन संगि सिधाई वे॥

तेरी फुफी कुंती रानी वे।
सो तीन लोक में जानी वे॥

उस कैसा करम कमाइआ वे।
तिन करन कुआरी जाइआ वे॥

तेरी द्रोपती अति पिआरी वे।
लो कहोए पंच भरतारी वे॥

• • •

बसदेव असाडे आइआ वे।
असां मामा करि बुलाइ आवे॥
तेरा सूरदास जस गावे वे।
मनि चिंदिआ सो फलु पावै वे॥

इस छन्द के वर्ण्य-विषय से स्पष्ट होता है कि इनकी कविता लोकगीत-शैली में लिखी गयी है और कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण है।

श० सिं०

सोढ़ी मिहिरबान

मिहिरबानजी का पूरा नाम सोढ़ी मनोहरदास मिहिरबान था। आप बाबा पृथ्वीचन्द के पुत्र तथा गुरु रामदासजी के पौत्र थे। गुरु-वंश से सम्बन्ध के अनुसार मिहिरबानजी पंचम गुरु अर्जुनदेवजी के भतीजे और स्वयं को गुरु-गद्दी का अधिकारी मानते थे। गुरु-परम्परा में गुरु-गद्दी का उत्तराधिकर आध्यात्मिक धरातल पर सम्पन्न व्यक्ति को ही देने की रीति थी। अतः चतुर्थ गुरु रामदासजी ने अपने बड़े पुत्र पृथ्वीचन्द को गुरु-गद्दी के योग्य न पाकर उसे अपने छोटे पुत्र अर्जुनदेव को सौंप दी, तो ईर्ष्या का वातावरण पनप उठा। परिणामतः पृथ्वीचन्द तथा उनके वंशजों ने अलग से गुरु-गद्दी स्थापित कर ली।

मिहिरबान का जन्म सं० १६३७ वि० में हुआ था। प्रसिद्ध है कि इनका मनोहरदास नाम तीसरे गुरुअमरदासजी के द्वारा रखा गया था। मिहिरबान ने 'जन नानक' अथवा 'नानकदास' के नाम से गद्य और पद्य-रचनाएँ कीं। आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ 'जन्मसाखी गुरु नानकदेव', 'आदि-रामायण' तथा 'कथा क्रिसनचन्द्रजी की' हैं। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध इस कवि की एकमात्र रचना 'कथा–क्रिसनचन्द्रजी की' है, जिसका निर्माण इन्होंने लगभग सं० १६८०–८२ वि० में किया था।

सेन्ट्रल पब्लिक लायब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित ग्रन्थ क्रम-संख्या ४९९ पर प्राप्त यह रचना श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन को अंकित करती है। इसका अधिकांश पंजाबी-मिश्रित ब्रजभाषा में लिखित है। सारी कथा २१ भागों में विभाजित है तथा प्रत्येक भाग के अन्त में एक श्लोक दिया गया है। वास्तविकता यह है कि सोढ़ी मिहिरबानजी ने कुछ 'गोष्ठियाँ' लिखी थीं। इनके पुत्र 'हरिजो' ने पिता की गद्यात्मक व्याख्या कर दी और साथ में एक-एक श्लोक और जोड़ दिया। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ये व्याख्याएँ तथा श्लोक ही 'कथा श्रीक्रिसनचन्द्रजी की' के नाम से प्रचलित हो गयी।

इस रचना में श्रीकृष्ण की लीलाओं और ग्वाल-बालिकाओं के साथ उनके सम्बन्धों को अति मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध सोढी मिहिरबान के द्वारा लिखित १५वीं तथा १६वीं गोष्ठियों में उल्लेख हुआ है। १५वीं गोष्ठी में श्रीकृष्ण को लीलावतार के रूप में चित्रित करके उन्हें पूर्ण ब्रह्म बताया गया है। गोष्ठी के आरम्भ में ही मिहिरबानजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के यश का आख्यान कोई कर नहीं सकता। वह तो सारी सृष्टि के कर्ता हैं। पृथ्वी के सारे कणों की गणना तो चाहे कोई व्यक्ति कर भी डाले, परन्तु श्रीकृष्ण के गुणों की गणना कोई नहीं कर सकता। अतः कवि सुनी-सुनायी बातों को ही शब्दबद्ध करके मनःसन्तोष प्रकट कर लेता है :

तबि स्री सतिगुरु मिहिरबानुजी बोलिआ जि सुनु बच्चा, अनंति जि स्री क्रसनचन्द है। जिनि के जनम अरु करम गुण लीला गिणणे कउंसो कउंणु पुरखु है जो समरथु होइ सकै। सृष्टि का जो करता पुरखु है, जे कबहूँ भूमि के रेतु के किणके गिणणे कउँ कोई समरथु होइ भी सके परु स्री क्रसनचन्द के गुणां की संषिआ कहणे कउँ कोई समरथु नाही। परु जितणोकु सुणी-सुणाई बाति है तितनोकु कहि सुणावता हौं। जिउँ गुरु बाबे नानक को कहिआ है :

सुणि सुणि आषणु आषणा,
जे तुधु भावे तां करे तमाऊँ।

श्रीकृष्ण की लीलाओं का आख्यान करते हुए मिहिरबानजी आगे कहते हैं :

'सो सुनु बच्चा, उसकी लीला अमिति है। परुजी इनां अवतारां की लीला परेम साथि मगनु होइ करि अरु निहकामु होइ करि संसार का संग तिआगि करि गुरु के उपदेसु करि करि जो एसु लीला कउं गावहिंगे ते पुरषु मुकति कउं पावहिंगे।'

सलोकु—
लीला प्रभ अवतार की, गनी न जाइ अनन्ति।
प्रेम मगनु अरु धिआनु करि, गावहि हरि जस सन्तु ॥
मन की सरधा जान के, नानक मिले भगवन्त।

सोलहवीं गोष्ठी में ग्रन्थकर्ता ने चारों युगों में श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी लीलाओं का गान किया है—

'......दुआपर के विषे देवते अरु मानुषु राजे की निआई स्री क्रिसनचन्दजी कउं करि मानते थे। अरु इउं करि करि भी जानते थे जो एहु पुरषोत्तम पुरुषु है। इकु वासदेउ। ऐकु संकरषणु। परदमनु। इकु अनरुध, इकु नाराइणु। रिषि। विसेसवरु। इकु सरब भूतातमा। इनां नामां करि करि स्री क्रिसन जी कउ लोकु जपतु थे।'

पाँचवीं गोष्ठी में गोपियों के चीर-हरण के प्रसंग को कवि ने अपना मुख्य विषय बनाया है :

'तब गोकुल कीआं गुआरनीआं स्री क्रिसनचन्द भरता पावणे को नमित जमन के बिरवै मांघ मासु नितप्रत इसनान करने जातीआं थीआं। तब इसनान करने के समें स्री क्रिसनचन्दजी आए, तब गोपीआं कि वसत्र लेकर कदमु ब्रिछु ऊपर जाइ बैठा। तब उह लागीआं जाडे सिउ कांपणे।'

अन्यत्र निर्गुण-सगुण के अभेद पर बल देते हुए मिहिरबान ने श्रीकृष्ण को मूल सत्पुरुष स्वीकार किया है और यह भी कहा है कि वह जन्म नहीं लेता। यह तो उसकी एक लीला मात्र है :

निरगुणु सरगुणु एकु है, धारिओ क्रिसन अवतारु।
अनेक कारज के कारने, जनु नानक कीओ अकारु ॥
पूरन अवतारु दुआपर महि कीआ।
स्री क्रिसन अवतारु अरु जनमु जगु लीआ ॥
संकट नहीं पड़ै जनम नहीं आवै।
आपे अपणां खेल बनावै ॥ १ ॥

अस्तु, वे परमात्मा को अयोनिज एवं अजन्मा ही मानते हैं, किन्तु लीला के कारण वह कोई भी रूप धारण करके अपने भक्तजनों का संरक्षक बनता है।

आपके द्वारा निर्मित कृष्ण-साहित्य ने श्रीकृष्ण के परम्परागत आध्यात्मिक स्वरूप को प्रतिष्ठित करने के साथ ही निर्गुण भावापन्न पंजाबी जन-मानस में सगुण के प्रति श्रद्धा तथा आदरभाव जानकर सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

श० सिं०

सोमनाथ

सोमनाथ के जीवन से सम्बद्ध कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनकी मात्र एक रचना 'प्रेम-पचीसी' की सूचना मिलती है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —

मंगल मूरति बिगन हर, सुंदर त्रिभवन पाल।
खेवक प्रेम समुंद के, जै जै स्री नंदलाल ॥
कथा कीती तकसीर तुसाडी, नहीं मुखड़ा दिखावै है।
रात दिनां बिन तैंडी चरचा, मुझ नूं होर न भावै है ॥
बेदरदी महबूब गरंदे, क्यों सीरंगदी करदा है।
सोमनाथ नेही सों कैसा, दिल अंदर दा परदा है ॥
वे तुझ से महिबूब गोबिंदे, नैन असाडे उरझे हैं।
कौन सकै सुरझाइ इन्हां नूं, ए औरन से उरझे हैं ॥
बेदरदी पहिचान दरद नूं, भुल्ला दिखा तै अरदा है।
सोमनाथ नेही सों कैसा, दिल अंदर दा परदा है ॥
जो कुछ कोई कहै सुनै सुनि, निहचै कान न धरदा है।
इशक पयाल से खता ना आवै, सोई मता बिहरदा है ॥

नंद किसोर रैन दिन मैनूं, छिन वी तूं ना बिसरदा है।
सोमनाथ नेही सों कैसा, दिल अंदर दा परदा है॥
मुझे न था मालूम कि जालम, तूं नंदलाल अयाना है।
भौंह कटाछ कमान बान सों, चुकदा नहीं निशाना है॥
मैंडी जुग अखीआं ने तैंडा, नहीं इशक निबरदा है।
सोमनाथ नेही सों कैसा, दिल अंदर दा परदा है॥
रुच रुच नित्त गोबिन्दे तैंडा, सांवल रूप संवरदा है।
ज्यों ज्यों मैंडी अखियों रचदा,
त्यों त्यों होर निखरदा है॥
मैंडी तलब न ऐंच अदा सिऊँ,
मन क्यौं खैंच परकदा है।
सोमनाथ नेही सों कैसा,
मन अंदर दा परदा है॥
पचीसी यह प्रेम की,
सुन सुख पावै मित्त।
सोमनाथ कवि नै रच्यो,
नंदकिशोर नमित्त॥

श० सिं०

सौंधा

सौंधा अमृतसर नगर के समीपवर्ती घनुपुर-काले नामक गाँव के निवासी थे। ये पंजाब-प्रदेश के उन कवियों की श्रेणी में आते हैं, जो आजीवन साहित्य-सर्जना में लगे रहे। जीवन में आर्थिक अभाव के कारण ये सदैव चिन्तित रहते थे। सम्भवतः इसीलिए इन्हें राजे-महाराजों के प्रीत्यर्थ किस्से लिखने पर विवश होना पड़ा था। आपकी रचनाओं में विदेशी शक्तियों, मुख्यतः अंग्रेजों से सिक्ख-धर्म एवं कौम की रक्षा हेतु अपने इष्ट गुरुओं के प्रति की गयी प्रार्थनाएँ मिलती हैं। अपने विद्या-गुरु का नाम इन्होंने 'गुरुसहाय कुंदरा' दिया है। आपके द्वारा निर्मित रचनाओं में से 'हातमनामा, अंम्रितसर-उसतति, कान्ह-कथा, गुरु-बंसावली, दस-गुरु उसतति, साखीआं गिआन उपदेश, मिठड़े, प्रेम-दी वार, गुरु-प्रणाली, रामायण-बारांमाहा, झगड़ा जट्टी ते खत्राणी दा'—आदि आज भी उपलब्ध हैं। इनमें से अंम्रितसर-उसतति, गुरु-वंसावली, दस-गुरु उसतति, गुरु-प्रणाली, कान्ह-कथा आदि रचनाएँ आपके भक्त-कवि होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कई रचनाओं में आपकी भाषा स्पष्ट रूप से हिन्दी-पंजाबी मिश्रित है। इनकी कृतियों में इष्ट-गुरुओं तथा श्रद्धेय चरितों के प्रति श्रद्धाभाव की अभिव्यक्ति हुई मिलती है। कृष्ण-काव्य से सम्बद्ध कवि सौंधा की तीन रचनाएँ—'कान्ह-कथा, प्रेम-दी वार, मिठड़े' उपलब्ध हैं। मिठड़े-काव्य में कवि सौंधा ने राधा और अन्य गोपियों की ओर से श्रीकृष्ण को उलाहने तथा उनकी विरहावस्था का मांसल चित्रण किया है। मिठड़ों की विषय-वस्तु दो आधारों पर विचारणीय है—आध्यात्मिक और दार्शनिक। कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत मिठड़ों को प्रेमा-भक्ति का ही रूप समझा जाता है और यह उस व्यक्ति को उपलब्ध होती है, जिस पर प्रभु की कृपा हो।

राधा श्रीकृष्ण पर अपना पूर्ण अधिकार समझती है और दर्पण में अपना सुन्दर रूप देखकर गर्व करती है। वह भ्रम कर बैठती है कि उसके समान और कोई रूपवती नहीं है। वह सोचती है कि मैंने अपने प्रेम के फंदे से श्रीकृष्ण को बाँध रखा है। इस गर्वोक्ति को सुनकर श्रीकृष्ण उसे छोड़कर गोकुल से मथुरा चले जाते हैं और वहाँ कुब्जा को अपना लेते हैं। श्रीकृष्ण के वियोग के समय राधा उन्हें जो उलाहने देती है, वही कवि सौंधा के द्वारा रचित मिठड़ों का वर्ण्य-विषय है। राधा को इस बात की शिकायत है कि श्रीकृष्ण उस जैसी रूपवती को छोड़कर रीछ-पुत्री और कुरूप कुब्जा के साथ प्रेम-मग्न हैं। वह श्रीकृष्ण को निर्लज्ज कहती है। राधा का मन श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल है। इससे उसे तनिक भी चैन नहीं मिलता। वह कहती है कि एक मैं हूँ कि श्रीकृष्ण के वियोग में सन्तप्त हूँ और दूसरी ओर वे कुब्जा से रँग-रेलियाँ मना रहे हैं। निराश और दुःखी होकर वह श्रीकृष्ण पर विभिन्न प्रकार के लांछन लगाती है—

सोहणी नूं छड्डु के कसोहणी दे नाल रत्ता,
कुब्बी जेही नार नित्त सीने नाल लाउँदा।
रीछ संदी पुत्री लै आइिया डोली बिच पाइि,
काले जैहे काह्न नूं हयाऊ नहीं अ.ऊँदा॥

जग दा है हासो हीन सावरे दा नाऊँ काह्न,
बंसरी बजाइिके है नारी नूं रिझाऊँदा।
इिकना नूं साई देंदा इिकना वधाईआं,
काह्न जणी-खणी नाल नेहु काहे नूं लगाऊँदा॥

जिह्नीं अक्खीं डिट्ठा उन्हीं लग्गे, किऊँ न मिट्ठा,
काह्न डिट्ठे बाझों नारी नूं आराम नहीं आऊंदा॥

राधा श्रीकृष्ण के वियोग से पीड़ित है। वह उनको उलाहना देती हुई कहती है: 'श्रीकृष्ण ने मुझ जैसी सुन्दर स्वरूपवाली गोपी को छोड़कर कुरूप कुब्जा का साथ दिया है और उसे अपनी छाती से लगा कर प्यार करता है। यह सब मेरे लिए असह्य है। उन्होंने रीछ की पुत्री कुब्जा को अपना लिया है, ऐसा करते हुए उन्हें तनिक भी लज्जा न हुई। सारे लोग उनका मजाक उड़ा रहे हैं और वे अपने वंशी-वादन से उसे रिझाते फिर रहे हैं। वे हर स्त्री के साथ प्यार का नाता जोड़ते फिर रहे हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। जिस किसीने भी श्रीकृष्ण को देखा है, उसे वे मनभावन लगे हैं। व्रज की ग्वालिनें श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना चैन नहीं महसूस कर रही हैं। वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है।'

इस प्रकार कवि सौंधा के मिठड़ों में राधा-कृष्ण के प्रेम-वियोग, उलाहनों का रूप दिखाई देता है, साथ ही साथ कवि की प्रेमाभक्ति का भी परिचय मिलता है। कवि ने राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर यह बताने का यत्न किया है कि व्यक्ति अहंकार और गर्व को छोड़कर ही प्रियतम का अटूट प्रेम प्राप्त कर सकता है।

'प्रेम-दी वार' कवि की भक्तिपरक रचना है। पंजाबी-साहित्य में 'वार' शब्द युद्ध-सम्बन्धी काव्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है, अर्थात् वह रचना जिसमें शूरवीरता का प्रसंग समाहित हो। पंजाबी कवियों ने वार-काव्य-रूप का धार्मिक काव्य-रचना के लिए भी प्रयोग किया है। कवि सौंधा ने इसी शैली में राधा और श्रीकृष्ण की प्रेमासक्ति का निरूपण किया है।

अक्रूर का रथ श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए गोकुल पहुँचता है। वहाँ पर अक्रूर माता देवकी का स्नेहमय सन्देश श्रीकृष्ण को देते हैं और मथुरा-निवासियों की करुणदशा का वर्णन करते हैं। इस पर श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर राधा तथा अन्य गोपियाँ विरह से विह्वल हो उठती हैं। वे सब मिलकर मन्त्रणा करती हैं कि श्रीकृष्ण अब हमें पराया समझने लगे हैं और मथुरा में अपने माता-पिता तथा अन्य स्वजनों से मिलने के लिए लालायित हैं। यह सब उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद लगता है। राधा और अन्य गोपियों के मार्मिक उद्‌गारों को ही कवि ने इस काव्य में वाणी दी है—

जदों कन्हीआ चलिआ, सभ पिछे पईआं।
पुत विछोड़े मंमिओ, घर छड गईआं॥

वगी अन्हेरी प्रेम दी, मज्ज लगरां गईआं।
डारों कूंजां बिछड़न, कुरलावन पईआं॥

'जब श्रीकृष्ण गोकुल गाँव छोड़कर मथुरा चले जाते हैं तो सब ग्वालिनें उनके पीछे जाती हैं। उन्हें इस बात की भी चिन्ता नहीं रहती कि वे बच्चों को छोड़कर आयी हैं। मानों उनके मन में प्रेम का तूफान उठ खड़ा हुआ है और इस झंझावात में वे वृक्षों की टहनियों की तरह टूटकर गिर पड़ी हैं अथवा जैसे एक कूंज (क्रौंच—प्रवासी पक्षी) अन्य कूंजों से बिछुड़कर कुरलाहट करती फिरती हैं, ठीक वैसे ही वे श्रीकृष्ण से बिछुड़कर कुरलाती फिरती हैं।'

राधा और गोपियों की विरह-स्थिति के साथ-साथ कवि ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि श्रीकृष्ण को प्रेम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उनसे लौकिक सम्बन्ध न जोड़कर अलौकिक सम्बन्ध जोड़ना चाहिए, क्योंकि श्रीकृष्ण साक्षात् ब्रह्म के अवतार हैं।

'प्रेम-दी वार' की 'पउड़ीयाँ' शुद्ध पंजाबी-भाषा में रचित हैं। यही कारण है कि इनमें उत्तम काव्य-निपुणता के साथ-साथ राधा और श्रीकृष्ण के प्रति कवि-हृदय की भक्ति की झलक भी मिलती है।

श० सिं०

हकूमतजन (हकूमतदास, हकूमतराय)

हकूमतजन रियासत बहावलपुर (पाकिस्तान) के निवासी थे। इन्होंने कृष्ण-लीला से सम्बद्ध 'बारांमाहा' की रचना की है। यह १८८९ ई० में प्रकाशित हुई थी। यह कृति लघु होती हुई भी श्रीकृष्ण और राधा के प्रगाढ़ प्रेम तथा वियोग की उत्कृष्ट छवि प्रस्तुत करती है। प्रारम्भ में चैत-वैसाख वर्णन के लिए ककहरा शैली, किन्तु आगामी महीनों के लिए साधारण शैली का अनुसरण किया गया है। इस 'बारांमाहा' के कुछ नमूने निम्नलिखित हैं—

चिच्चा चेत्र महीने दे बिच,
सांवरे कीतो तिआरी है।
ब्रिहुं अगनि दे बाण तिखेरे,
वेदन मैं तन मारी है॥
हिकमत होश न रही तिल जिती,
सुध-बुध छीनी सारी है।
कहै हकूमत बिनां किशन दे,
जीवन जनम खुआरी है॥

• • •

भादों भरम मेरे मन जागिआ,
पीआ-पीआ पुकारां मैं।
शाम सांवरीआ नज़र ना आवे,
वतदी काग उडारां मैं॥
सेज सवां मोको नींद ना आवे,
तूल सिरहाणे साड़ां मैं।
कहै हकूमत मिलां क्रिशन कउ,
चरनां ते चित्त डारां मैं॥

• • •

असुज आस मेरे मन ईहां,
पीआ पीआ मैं पई करदी।
छाऱी काली लग्ग गई मन बिच,
हाड मास को पई चरदी॥
ओडर चिणग पई तन ऊपर,
जान जिगर दे बिच वड़दी।
कहै हकूमत मिलां क्रिशन कओ,
लूं-लूं मेरे वैणे उरदी॥

• • •

माघी मूरति शाम देखकर,
फूलों सेज बिछाई है।
नुगदी पेड़ा रास खोरनी,
भांत भांत मिठिआई है॥
ले मेरे सांवरे आगे राखी,
सांवरी फाग गाई है।
कहै हकूमत शाम सलौणे,
मन दी आस पुजाई है॥

भक्त-कवि हकूमतजन के इस 'बारांमाहा' में विरह की चाहे उत्कृष्ट दग्धता व्यंजित न हुई हो, फिर भी इन्होंने राधा और गोपियों के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम को दर्शाकर उनका जैसा यशगान किया है, वह अत्यन्त आकर्षक है। विरह की मारी राधा, गोपियाँ और अन्य गोकुलवासियों का श्रीकृष्ण के साथ मेल होता है, तो गोपियाँ आनन्दविभोर होकर फाग रचाती हैं और अपने मन की साध पूरा करती हैं।

श० सिं०

हरिनाम

पंजाब के उत्तर मध्यकालीन हिन्दी-काव्य को अपनी बहुमुखी प्रतिभा से समृद्ध करनेवाले भक्त कवि

हरिनाम का प्रामाणिक जीवन-वृत्त ज्ञात नहीं है। इनकी विविध विषयक रचनाओं से केवल इतनी सूचना मिलती है कि ये कपूरथला-नरेश महाराजा फतेसिंह और निहालसिंह के समकालीन थे। महाराजा फतेसिंह का शासन-समय संवत् १८५८ से १८९३ वि० तक है। निहालसिंह के सिंहासनारोहण का समय संवत् १८९३ विक्रमी है। स्पष्ट है कि ये इससे पूर्व ही निहालसिंह के युवराजत्व-काल में उनके सम्पर्क में आ चुके थे, क्योंकि इनके भक्तिविषयक उपलब्ध ग्रन्थों का रचनाकाल विक्रमी संवत् की उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक है। सभी रचनाएँ आकार और छन्द-परिमाण में बहुत बड़ी हैं जिनका केवल एक-एक वर्ष के अन्तराल से पूर्ण होना सम्भव नहीं प्रतीत होता। कवि इनकी रचना पहले से ही समय-समय पर करता रहा होगा और फिर उसने महाराजा निहालसिंह के पदारूढ़ होने पर इन्हें क्रमशः उनके प्रति समर्पित कर दिया होगा। 'श्री निहालसिंह-प्रताप-पंचाशिका' और 'श्री निहालसिंह-प्रेमेन्दु-चन्द्रिका' नामक रचनाएँ भी कवि ने इन्हीं महाराजा निहालसिंह की प्रशस्ति में लिखी हैं। संयोग की बात है कि कवि ने अपनी कृष्ण-भक्ति-विषयक अधिकांश रचनाएँ महाराजा फतेसिंह को और राम-भक्ति-विषयक रचनाएँ उनके पुत्र निहालसिंह को भेंट की हैं। अस्तु, इस साक्ष्य के आधार पर कवि हरिनाम का समय विक्रमी संवत् की उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सुनिश्चित होता है।

कवि ने अपनी रचनाओं में पिता का नाम 'राय रामसुख' बतलाया है जो स्वयं एक सुकवि थे—

(क) राय रामसुख सुकवि सुत, कवि हरिनाम समान
(वाल्मीकि-रामायण)

(ख) राय रामसुख सुत सुमति, कवि हरिनाम सुजान।
(रामाश्वमेध-भाषा)

ये 'राय रामसुख' भी उपर्युक्त कपूरथला-नरेश महाराजा जस्सासिंह और फतेसिंह के सभा-पण्डित रहे थे। इनकी 'श्री जस्सासिंह विनोद' और 'श्री फतेसिंह-प्रताप-प्रभाकर' आदि रचनाएँ उपलब्ध हैं।

इनकी निम्नलिखित रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ पंजाब के विभिन्न संग्रहालयों में प्राप्त हैं—

१. गीत-गोविन्द (१८९१ वि०), २. ब्रह्मवैवर्त-पुराण–सटीक (१८९१ वि०), ३. राधामाधव (१८९१ वि०), ४. वाल्मीकि-रामायण (१८९४ वि०), ५. व्यंग्यार्थ-बतीसी (१८९५ वि०), ६. रामचन्द्र-चन्द्रिका–सटीक (१८९६ वि०), ७. रामाश्वमेध-भाषा (१८९७ वि०), ८. श्री निहाल-सिंह-प्रताप-पंचाशिका और ९. श्री निहालसिंह-प्रेमेन्दु-चन्द्रिका (१८९७ वि०), १०. रसमंजरी (१९०० वि०), ११. रस-तरंगिणी-भाषा (१९०३ वि०) और १२. साहित्य-बोध।

इनके अतिरिक्त 'कविवल्लभवचनिका' तथा 'गर्गसंहिता' नामक रचनाएँ भी इनकी लिखी बतायी जाती हैं, परन्तु परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि ये दोनों रचनाएँ एक अन्य भक्त कवि 'हरिचरणदास' की हैं जिनका रचनाकाल लगभग अर्द्धशताब्दी पहले का है।

इनके अधिकांश भक्तिकाव्य संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद अथवा टीकारूप हैं। फिर भी विशिष्ट छन्द-सीमा के भीतर प्रतिपाद्य विषयवस्तु को समेटने में इन्होंने अपनी रचना-प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। दोहा, चौपाई, सोरठा और कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग कवि ने कुशलतापूर्वक किया है। सभी रचनाओं की भाषा सहज और ललित है।

'गीत-गोविन्द' संस्कृत-कवि जयदेव के प्रसिद्ध काव्य का भाषा-रूपान्तर है जिसकी रचना संवत् १८९१ वि० में पूर्ण हुई—

'कृति ससिनव वसु ससि बरख,
मास फाल्गुन वार रवि।'

यह रचना कपूरथला-नरेश फतेसिंह के निमित्त लिखी गयी थी जिनका शासनकाल १८५८-१८९३ विक्रमी है।

'राधा-माधव' १३७ अध्यायों में लिखित एक विशाल ग्रन्थ है जो महाराजा फतेसिंह के शासनकाल में रचा गया।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के कृष्ण-खण्ड की टीका गद्य में लिखित है। इनकी रचनाओं से कृष्ण-भक्ति-विषयक कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. गति लहि अनंद मकरंद रति,
मन मलिंद नँद नंद।
बंदों पद अरविंद जुग,
भानु-नंदिनी-कंद॥

२. रसना रस निंदा बिबस,
दंभ निरत अघ भौन।
खोए दिन बिन प्रभु भगति,
ह्वैहै मम गति कौन॥

(गीत-गोविन्द से)

३. तब संग सखीन मिली वृषभानु
कुमारि चली मटुकी सभधारी।
सभ आवत देखत वै मुखरा
निज माथहि हाथ धर्यो सुकुमारी॥
ब्रजबास चली मिल धाम तबै
नित पूरन काम करै बनवारी।
घनस्याम सदा सुख धाम करो
'मृगनायक' धामहि धाम सुधारी॥

(राधामाधव से)

(यहाँ 'मृगनायक' = सिंह > हरि पद का प्रयोग कवि-नाम के लिए हुआ है।)

रा० प्र०

हरिराम

पंजाब के सगुण-भक्ति-काव्य में निरंजनी-सम्प्रदाय के भक्त-कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हरिराम निरंजनी ऐसे ही कवियों में से एक हैं। इनकी 'भूषण-भारती' एवं 'छन्द-रत्नावली' (१७९५ विक्रमी) के अतिरिक्त स्फुट भक्तिपरक रचनाएँ भी प्राप्त हैं। कृष्ण-भक्ति की छाप उनमें सर्वत्र विद्यमान है।

उदाहरण—

बार न लाई कृष्ण तुम, द्रुपद सुता की बार।
पार दुशासन ना लह्यो, बढ़ गए बास अपार॥
बढ़ गए बास अपार, इन्द्र तब तुम्हें अराधे।
अनुज रूप धरि ताहि, काज ताके तुम साधे॥
अब हरि राम सु बार, बार कीनी इक कारन।
तुम तारे हम सुने, सो नर अंतज कपि बारन॥

रा० प्र०

हरियाजी

पंजाब में कृष्ण-सम्बन्धी सगुण काव्य-रचना को सर्वप्रथम प्रचलित करने का श्रेय हरियाजी को है। इनके समय और जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में यद्यपि पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नहीं है, तथापि विभिन्न विद्वान् इन्हें जहाँगीर और गुरु अर्जुनदेव का समकालीन मानने में सहमत हैं। एक परम्परा इन्हें उदासी-सम्प्रदाय के अन्तर्गत, दीवाना-मत के संस्थापक मिहिरबान का आत्मज अथवा शिष्य स्वीकार करती है। इस उपपत्ति का आधार यह है कि इनकी एकमात्र रचना 'ग्रन्थ हरियाजी का' की एकमात्र हस्तलिखित प्रति उदासी-सम्प्रदाय के दीवाना-मतानुयायी साधुओं के डेरे बल्लूआणा में विद्यमान है। यह ६९४ पत्रों का एक विशालकाय ग्रन्थ है, जिसमें हरियाजी की सम्पूर्ण वाणी तैंतीस (३३) रागों के अन्तर्गत संकलित है। ग्रन्थ में यत्र-तत्र प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त-कवि सूरदास की नीति-शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। बाल-लीला एवं भ्रमरगीत-प्रसंग में कवि ने विशेष रुचि दिखलायी है। यथा—

बाल-लीला

१. जसोधा तुम सरि अवरि न माई।

२. दुक समझावहु अपने बार कूं, सुनहु जसोधै माई ।
बार-ब्वार लै संगी साथी, बैकुंठ बोलै जाई ।।

भ्रमरगीत-प्रसंग

१. ऊधो प्यारे कहियहु गोपी जाई ।
जोग कमावहु मन न डोलावहु, आग्या है ब्रजराई ।।

२. ऊधो अब हम जोगु न होई ।
जो तुम मुखते जोग पठावहु, दृढ़ कर चित्तु न जोई ।।

कृष्ण-लीला-गान में कवि ने वंशी-मोहिनी एवं राधा-कृष्ण-प्रणय के प्रसंगों का भी सरस चित्रण किया है । उदाहरणतः

वंशी

१. धनु-धनु भाग बांस की मुरलिया,
ठाकुर अधर लगात ।

२. बिंद्राबन मँहि बेनु बजावै ।
सुनि-सुनि घोर मेरो मनु न अघावै ।।

राधा-कृष्ण-प्रणय

कालि सखी जमुना के तीरा,
मिल्या नंददुलार री ।
ताते मति असु रत भई है,
जोगीसर ज्यों मतवार री ।।

मोकूं निरख इक तिलु मुसकाना,
दीया अधरा बिथारु री ।
ज्यौं रैणि अंधेरी बद्दल बरखत,
जनु कीया बीजु उजार री ।।

नृप कन्या श्री राधे खोई,
गाया कान्ह पियार री ।।

विभिन्न कृष्ण-लीलाओं को हरियाजी ने यथा-सम्भव पंजाबी वातावरण के अनुकूल ढालने का यत्न किया है । वृन्दावन-विहारी कृष्ण पंजाबी बालकों के समान साग, सत्तू और खिचड़ी खाते हैं और वह भी 'वादी' में । यशोदा कहती है—

सागु सतू खीचड़ी वाटि खाइ मेरे फरजन्द ।

भक्त-कवि के रोम-रोम में कृष्ण समाये हैं—

अन्दर कान्हा बाहर कान्हा, कान्हा जीभ समाया ।
जल थल महिचल कान्हों कान्हा, दूजा कहा द्रिस्टाया ।।
रा० प्र०

हाफ़ज़ बरखुरदार

हाफ़ज़ बरखुरदार नाम के दो कवि हुए हैं। इनमें से एक गाँव मुसलमानी (लाहौर) के निवासी और दूसरे गाँव चिट्टी-शेख, जिला सिआलकोट (पाकिस्तान) के रहनेवाले थे। इन दोनों में से एक धार्मिक पुस्तकों का लेखक था और दूसरा प्रसिद्ध किस्साकार । 'बारांमाहा' इसी दूसरे बरखुरदार (किस्साकार) द्वारा रचित प्रतीत होता है यह 'बारांमाहा' सरदार पिआरासिंह 'पद्म' के द्वारा प्रकाशित 'पंजाबी बारांमाहे' नामक पुस्तक में उपलब्ध है, जिसकी नक़्ल संकलनकर्ता ने किसी पुरातन प्रति से की थी। इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतियों में बाद में दोहरे (दोहे) भी लिख दिये गये हैं। बरखुरदार के द्वारा रचित इस 'बारांमाहा' के कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

जब चढ़िआ माह बैसाख,
मिलण की आस, पक्की घर दाख,
न चलिओ राख रही मैं राख,
नसीहत करां लाख ते लाख,
कूकें दी सिआम जी ।
जब बण तिण फूले फूल,
मेरे तन लगी बिरहों दी सूल,
बदन रंजूल अकल गई भूल,
न रहिंदे मूल चले भगवान जी ।
मेरे सिकदे नैन मलूक,
महिल बिच कूक ना नैणी नींद,
ना तन बिच दूख,
मेरा तन दीआं बिरहों ने फूक,
कबहूं न आराम जी ।

बरखुरदार चले अज्ज सिआम,
राधा रही अकेली धाम,
असां नूं महुरा पाणी ताम,
साडो नैंणी नींद हराम,
जालम कीती बिरहों तमाम,
चलेआ शाम जी ॥ २ ॥

'वैसाख का महीना आने पर मुझे अपने प्रिय से मिलने की आशा निश्चित-सी हो गयी है। घर में अंगूर पक गये हैं। मैं व्याकुल होकर श्यामजी से विनय करती है कि मुझसे और अलग न रहो।' (वह पुनः अधीर होकर कहती है कि) जब जंगल में फूल खिलते हैं, मेरे मन में विरह का शूल उठता है। मेरा शरीर बेकरार हो उठता है और मैं बेसुध हो जाती हूँ। (वह भगवान् श्रीकृष्ण से कहती है कि) ऐसी दशा में मेरे प्राण ही निकल जाते हैं। मेरे भोले-भाले नेत्र तुम्हारी प्रतीक्षा में लगे रहते हैं। मैं महलों में ही कूकती रहती हूँ। मुझे तनिक भी नींद नहीं पड़ती। मुझे कहीं भी सुख नहीं मिलता, क्योंकि मेरे शरीर को तो विरह की अग्नि ने जला दिया है। भक्त-कवि बरखुरदार कहते हैं कि ऐसी विरहिणी राधा को छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण चले गये हैं। उस अकेली को पानी भी विष के समान लगता है। वह बेचैन है और उसे नींद तक नहीं आती। वह पुकारकर कहती है कि यह विरह का कष्ट कब समाप्त होगा? ऐसी व्याकुल मनःस्थिति में वह भगवान् श्रीकृष्ण को आने के लिए पुकारती है।'

(२)

जब कत्तक जागे पाले,
वांढी किचरकु बैठी जाले,
खातर तेरी बण त्रिण भाले,
साडे पैरीं पुरपुर छाले,
दिसदे कोठे परबत काले,
लैंदी तेरे बहुत सम्हाले,
पूजा नाकरां।
अबै मैं बैठी बिच महलां,
सिर पुरमार इशक दी झल्लां,
रो रो लिखां किताबां घल्लां,
किसनूं पास तुसाडें घल्लां,
देवे बैठ तुसानूं गल्लां, किहड़े कासदां।

'जाड़े का महीना कार्तिक आ गया है। कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी है। मुझे कितनी देर और जलना होगा? मैंने कृष्ण को वनों में ढूँढ़ा है। चलते-चलते मेरे पैरों में छाले पड़ गये हैं। मुझे तो चारों ओर विरह की अग्नि के प्रभाव से मकान आदि भी काले दिखाई देने लगे हैं। मुझे पूजा से भी कोई सरोकार नहीं रहा। मैं तो उसकी याद को मन में सँभाले रहती हूँ। मैं रो-रोकर अपना दुःख कागजों पर लिखती हूँ, मगर उसे तुम्हारे तक पहुँचानेवाला दूत भी तो नहीं मिलता, जो मुझे तुम्हारे पास बैठाकर तुमसे बातें करा दे।'

(३)

बरखुरदार न भावे भोजन,
कामनि बिरहों कोती अति रोगन,
नित उठ रोंदी दरद विओगन,
मलां विभूत कि होवां जोगन,
कमला यार ना मानो को गुण,
साडे सिर पर गजदा जोबन,
ना घत्तदा पाखरां ॥ ८ ॥
रब्ब ने आण मिलाए साथी,
धोते बाल मले मल न्हाती,
लग्गा रंग मुशक बहु भांती,
भिन्ने बाल फुलेरे छाती,
कामनि मसत बदन दिल माती,
आइ खड़ी साहमणे।

बरखुरदार पीआ अज्ज आइि,
देखिआ सिआम ने मन चित्त लाइि,
कामणि लई पीआ गल लाइि,
रही लीलाइि,
कि मन परचाइि कि सेजु सहावणी ॥ १२ ॥

'विरहदग्धा नायिका को विरह ने रोगग्रस्त बना दिया है। उसे तो भोजन तक अच्छा नहीं लगता। वह प्रतिदिन प्रिय के वियोग में रोती रहती है। विरह की पीड़ा से व्याकुल रहती है। वह चाहती है कि संसार को छोड़कर शरीर पर भस्म धारण करके योग-धारण कर ले। फिर भी प्रियतम उसकी इस पीड़ा से बेसुध हैं। उन्हें तो यह भी सुध नहीं कि प्रियतमा का यौवन बीता जा रहा है। प्रभु-कृपा से जब विरहिणी का अपने प्रिय से मिलाप होता है, तो वह स्नान करती है, केश धोती है और केशों में इतर-फुलेल मलती है। उसे जैसे इश्क की सूझ आ जाती है। वह मन में आनन्द अनुभव करती हुई मस्त होकर प्रिय के सम्मुख खड़ी हो जाती है। बरखुरदार कहता है कि प्रियागमन पर उसने श्याम के पूरे चाव के साथ दर्शन किये। उस विरहिणी ने मन्त्रमुग्ध होकर प्रिय के सामीप्य का आनन्द लिया और मन की इच्छा को पूरा किया। इस मिलन के उपरान्त उसे मानो अपनी सेज (शय्या) सुहावनी एवं सुशोभित-सी प्रतीत होने लगी।'

श० सिं०

हिम्मतसिंह सागर

हिम्मतसिंह के जीवन-सम्बन्धी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती, फिर भी श्रीकृष्ण-विषयक इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। उनके कुछ अंश दिये जाते हैं—

(१)

सांवला सलोना—

कोई ओहनूं क्रिशन आखे, कोई घनीशाम आखे,
कोई ओहनूं सांवला सलोना है पुकारदा।
कोई गोपाल आखे, कोई नंदलाल आखे,
कोई नाल राधा ताईं जोड़ के पिआरदा ॥
मखनां दा चोर नाले बंसी अते मुकटवाला,
कोई ओहनूं गोवरधन गिरधारी है पुकारदा।
लक्खां नदी नाले जिवें, 'सागर' ने बणांवदे,
तिवें लक्ख नां है, मेरे क्रिशन मुरार दा ॥

'इस जगत् में कोई व्यक्ति उसे श्रीकृष्ण, कोई घनश्याम और कोई साँवला कहकर पुकारता है। कई लोग उसे गोपाल तथा कई नन्दलाल कहते हैं और अन्य लोग उसे राधा के साथ मिलाकर प्यार सहित बुलाते हैं। श्रीकृष्ण को कोई माखनचोर, वंशी व मोर-मुकुट को धारण करनेवाला कहकर अभिहित करते हैं, परन्तु वह संसार में गोवर्धन पर्वत का धारणकर्ता के नाम से भी प्रसिद्ध है। जिस तरह लाखों छोटी व बड़ी नदियाँ मिलकर सागर को जन्म देती हैं, वैसे ही मुर नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण के लाखों नाम हैं।'

(२)

मुरली

ए नी मुरली ए दस्सां की सिफत तैं विच,
बुल्लीआं नाल तैनूं छुहाए सोहणा।
टोटा लकड़ दा तन ते सौ छेकां,
तां वी घुट कलेजड़े लाए सोहणा ॥

अंग संग है तैनूं उह नाल रखदा,
पल भर तेरा विसाह न खाए सोहणा।
राधा भुल्ले तां भुल्ले बेशक ओहनूं,
ऐ पर तैनूं न कदे भुलाए सोहणा ॥

अड़ीए ! की जादू ए कोल तेरे,
कीता वस्स तूं किस तरां शाम ताईं।
जिस नूं दुनियां दे लोक न मोह सके,
मोह लिआ तूं ओस घनीशयाम ताईं ॥

भक्त कवि श्रीकृष्ण की वंशी की स्तुति करता हुआ कहता है—'हे मुरली ! मैं तुम्हारी कौन-कौन सी प्रशंसा करूँ ? सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें अपने ओठों के साथ छुवाकर रखता है। तू मात्र एक लकड़ी का टुकड़ा है, जिसमें सैकड़ों छेद हैं, तब भी वह तुम्हें प्यार सहित अपने वक्ष के साथ लगाये रहता है। वह तुम्हें प्रतिक्षण अपने साथ ही रखता है और पलभर के लिए भी तुम्हें अलग नहीं करता। निस्सन्देह राधा तुम्हें भुला देती है, श्रीकृष्ण परन्तु तुम्हें कभी नहीं भुलाता। तुम्हारे पास कौन सा जादू है, जिससे तुमने श्रीकृष्ण को अपने वश में कर रखा है ? जिसे संसार के लोग मोह नहीं सके, एक लकड़ी का टुकड़ा मात्र होकर तुमने उस श्रीकृष्ण को अपने प्रति आकर्षित कर लिया है।'

श० सिं०

हृदैराम भल्ला

हृदैराम भल्ला अपनी रचना 'हनुमन्नाटक' के कारण सुप्रसिद्ध हैं। इस कवि का जन्म-समय तो अज्ञात ही बना हुआ है, फिर भी 'हनुमन्नाटक' के अन्त में लिखित पंक्तियों के आधार पर ज्ञात होता है कि इन्होंने जहाँगीर के समय में चैत्र शुक्ला द्वितीया सं० १६८० वि० में 'हनुमन्नाटक' को समाप्त किया था :

संवत् विक्रम नृपति सहस खट सत असीह पर।
चैत्र चाँदनी दूंज छत्र जहाँगीर सुभट पर॥

इसके अतिरिक्त कृष्ण-चरित से भी सम्बद्ध हृदैराम भल्ला की दो रचनाएँ—'रुक्मिनी-मंगल' तथा 'सुदामा-चरित्र' उपलब्ध होती हैं।

हृदैराम भल्ला कृत 'सुदामा-चरित्र' की मूल प्रति देवनागरी लिपि में ही रही होगी, ऐसा कृति के अध्ययन से प्रतीत होता है। परन्तु इस रचना की देवनागरी लिपि में कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं है। जो प्रतियाँ मिलती हैं वे गुरुमुखी लिपि में ही लिखित हैं। एक प्रति मोतीबाग पुस्तकालय, पटियाला में क्रम संख्या २२५ के अंतर्गत मौजूद है, जो गुरुमुखी लिपि में है। इसका प्रतिलिपि-काल बुधवार मगहर सुदी १४ सं० १९०७ वि० है। एक प्रति पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर (पाकिस्तान) में भी उपलब्ध है जिसकी लिपि देवनागरी है। इस रचना की भाषा परिमार्जित ब्रजी है।

'सुदामा-चरित्र' की मूल कथा परम्परागत है। कवि ने सुदामा के चरित्र को उनकी दारिद्र्यावस्था के चित्रण के द्वारा दर्शाया है। अपनी पत्नी सुशीला की प्रेरणा से वह श्रीकृष्ण से मिलने के लिए द्वारका जाता है। उक्त कथा को काव्यात्मकता प्रदान करके कवि ने अपनी रचनापटुता का परिचय दिया है, साथ ही श्रीकृष्ण के प्रति आत्मीयता ज्ञापित करके प्रगाढ़ भक्ति-भावना भी व्यक्त की है। ब्राह्मणी सुशीला के शब्द प्रेरणाप्रद हैं—

बात के कहेते बुरो मानत हो प्राननाथ,
गोविन्द से मीत होत बड़ो दुख पाइयै।
घर में कल्पब्रिछ कांमधेन, पारस औ सुमेर,
सो बिसाद प्रान कहँ भूखन सताइयै॥
धांम मै तो नाज को कनूका नहीं साची कहौं,
जाहु क्यों न द्वारका जहाँ ते कछु पाइयै।
आजु हूँ को भीख भेट लेहु भैयां स्याम जू को,
लौठिया लै कंत ऐक-दन्त को मनाइयै॥ १२॥

सुदामा द्वारका से लौटने के बाद व्याकुल हैं। वे अपनी झोंपड़ी को न देखकर घबरा रहे हैं कि रात का अँधेरा कैसे कटेगा। वे मन ही मन पछता रहे हैं कि श्रीकृष्ण ने मुझे कुछ भी न दिया—

आयो दिजराज लटि दीनबन्ध ! कहां जांउ,
बासुर गंवायो रैन कैसे कै बिहाइगी।
सोइबे को धांम है न गांठ कछू दांम है न,
काम बर नारि सो मिलै ते फारि खाइगी॥

मोसो धौं अनारी तब कछू न संभारी जब,
देत हो मुरारी मोहि राजधनु राइगी ।
स्याम ते बिदा ह्वै आयो दछ्छना टका न पायो,
कैसी-कैसो सौंज घर हूँ की खोइ जाइगी ।। ४२ ।।

द्वारका से लौटने पर अपनी स्त्री सुशीला व जीर्ण कुटी को सामने न पाकर वे हताश हो गये। उस दशा में कभी अपनी पत्नी पर क्रुद्ध हो उठते हैं, तो कभी अपने-आपमें लज्जित होते हैं कि मेरी अनुपस्थिति में किसने मेरा घर ध्वस्त कर विशाल महल का निर्माण कर दिया। वे बेचैन-से होकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं—

सूक गयो बदन न सदन परत डीठ,
दांत पीसे बैठ जाइ मूओ सिर मूल ते ।
नीके दिन काटत है भीख के कनूका मांग,
क्यों रे दुख पाऊँ धरि नारि प्रतिकूल ते ।।
अबहों न जानों ईहां कौने ये महल कीने,
कासों कहाँ जैसी आग उठी तन तूल ते ।
भयो भ्रम भारी कहाँ जांऊ गिरधारी,
मैडीया हमारी सु उपारी काहू मूलते ।। ४५ ।।

इस प्रकार, भक्त-कवि हृदैराम भल्ला ने परम्परा से चली आ रही सुदामा-श्रीकृष्ण की कथा को लेकर पंजाब-प्रदेश का निवासी होते हुए भी ब्रजभाषा में सफल रचना करके अपनी मौलिकता एवं हिन्दी-भाषा-प्रेमी होने का परिचय दिया है। इस कवि की एक अन्य रचना 'रुक्मिनी-मंगल' उपलब्ध नहीं होती।

श० सिं०

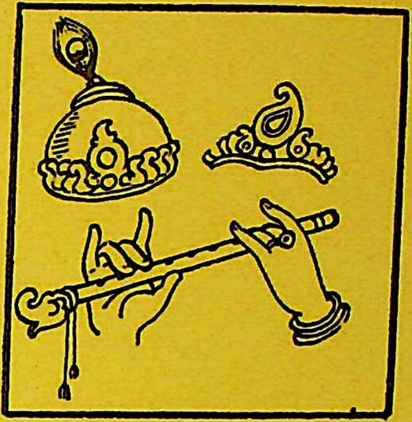

बंगाल में भागवत धर्म : विकास के सोपान

—डा० दयानन्द श्रीवास्तव

बंगभूमि की कृष्णभक्ति परंपरा

—प्रो० सुकुमार सेन

गौड़ीय भक्तिदर्शन

—डा० दयानन्द श्रीवास्तव

बंगला के कृष्णभक्त

—डा० दयानन्द श्रीवास्तव
—डा० नरेशचन्द्र बंसल
—डा० तपेश्वरनाथ
—डा० हौसिला प्रसाद सिंह
—डा० श्रवणकुमार गोस्वामी
—डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव
—डा० सदानन्द गुप्त
—डा० मुश्ताक़ अली

बंगाल में भागवत-धर्म : विकास के सोपान

बंग-भूमि में भागवत-धर्म का उद्भव और विकास गुप्त तथा गुप्तोत्तर-काल में हुआ। अधिकांश गुप्त सम्राटों के उपास्यदेव वासुदेव-विष्णु थे, इस कारण ही गुप्तवंशीय सम्राट् 'परम-भागवत' कहलाते थे। गुप्त राजाओं की शक्ति के अभ्युदय के साथ ही देश के अन्य भागों के समान बंगाल में भी भागवत-भक्ति (वैष्णव-भक्ति) की स्थापना और प्रसार हुआ। बंगाल में वैष्णव-धर्म से सम्बद्ध प्रथम अभिलेखीय प्रमाण बांकुड़ा जिले के शुशुनिया नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। पुष्करण (शुशुनिया के निकट पोखरण) के राजा चन्द्रवर्मन ने ईसा की चौथी शताब्दी में इसे प्रसारित किया था। चन्द्रवर्मन समुद्रगुप्त के समकालीन थे। उन्होंने अपने को 'चक्रस्वामिनः दासाग्रेगातिसृष्टः' कहा है। यहाँ 'चक्रस्वामिन्' विष्णु के लिए प्रयुक्त हुआ है। बनिय गुप्त के ताम्रपत्र-लेख में प्रयुक्त 'प्रद्युम्नेश्वर' संज्ञा से यह स्पष्ट होता है कि यह शब्द बंग-समाज में 'विष्णु' के पर्यायवाची रूप में रूढ़ हो गया था।

बंगाल में वैष्णव-धर्म के उद्भव और विकास में ऐतिहासिक स्रोतों के साथ-साथ कुछ विशिष्ट काव्य-ग्रन्थों की भूमिका भी स्मरणीय है। इस विषय का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीधरदास रचित 'सदुक्तिकर्णामृत' है। इस कृति से यह सूचना मिलती है कि सन् १२०५ ई० के आसपास बंगाल में हरिहर, उमा, महेश्वर और अर्धनारीश्वर की उपासना व्यापक रूप में जनप्रिय हो चुकी थी। तत्पश्चात् सेनकालीन बंग-समाज में विष्णु की उपासना का वामन, राम (दाशरथी), बलराम तथा कृष्ण की पूजा के रूप में व्यापक प्रचार हुआ। वैष्णव-धर्म के उन्नायक सेनवंशीय राजाओं में लक्ष्मणसेन का स्मरण अत्यन्त सम्मानपूर्वक किया जाता है। भोवाल के 'अनुदान-पत्र' में इनका स्मरण देवकी-वसुदेव-पुत्र 'कृष्ण-वासुदेव' के रूप में किया गया है। विक्रमादित्य के समान लक्ष्मणसेन ने भी अपनी सभा में विद्वानों को गौरव प्रदान किया था। इनमें से अधिकांश वैष्णव आचार्य और भक्त थे। सनातन गोस्वामी ने लक्ष्मणसेन के सभा-द्वार पर उत्कीर्ण जिन पंचरत्नों का उल्लेख किया है, उनकी मूल भावना भक्तिमूलक थी। यथा—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

'गीतगोविन्द' के चौथे पद में जयदेव के अतिरिक्त उमापतिधर, शरण, गोवर्धन तथा धोयी का उल्लेख मिलता है। उनके काव्य के प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण के विविध आख्यान हैं। 'सदुक्तिकर्णामृत' के कुछ पदों में (६१-५-८०, ८१, ८२ (३४) १०५) कालिन्दी-तट पर की गयी कृष्ण-लीलाएँ वर्णित हैं। भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक के भी कुछ पद्य इसमें उद्धृत हैं। इस प्रकार राधा-कृष्ण-भक्ति का विकास सेन-काल की एक विशिष्ट उपलब्धि थी।

सप्त ग्रामांचल के त्रिवाणी नामक स्थान में एक वैष्णव मन्दिर उपलब्ध हुआ है, जो बंगाल में नव वैष्णववाद (Neo Vaishnavism.) के अभ्युत्थान की सूचना देता है। ग़ाज़ी ज़फ़र खाँ ने सन् १२९८ ई० में इसे मस्जिद में रूपान्तरित कर दिया था, परन्तु इसमें तनिक सन्देह नहीं कि यह विष्णु-मन्दिर ही था। इसके निचले आधार-स्तम्भ पर तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की वैष्णव-भावना-प्रेरक मूर्तियाँ उत्कीर्ण

हैं, जिनका सांकेतिक परिचय प्राक् बंगला भाषा में दिया गया है। इन मूर्तियों में सीता-निर्वासन, रामराज्याभिषेक, राम द्वारा रावण-वध, खर व त्रिशिर-वध, धृष्टद्युम्न-दुःशासन-युद्ध, चाणूर-वध, गोपी-चीर-हरण, कृष्ण-बाणासुर-युद्ध आदि प्रमुख हैं। अदीना मस्जिद भी इसी प्रकार एक वैष्णव-मन्दिर की नींव पर खड़ी है।

बंगाल में वैष्णव (मुख्यतः कृष्ण)-भक्ति की वरीयता का कुछ परिचय तद्युगीन साहित्यिक कृतियों में भी मिलता है। इस दृष्टि से उमापतिधर की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। उमापतिधर लक्ष्मणसेन के सभाकवियों में थे। यद्यपि ये शैव थे, परन्तु इन्होंने विष्णु के मत्स्य और नृसिंह-अवतार-विषयक पदों की भी रचना की है। इनके पद 'कृष्णलीला', 'कृष्णकुमारम्', 'हरिक्रीड़ा', 'वेणु-वादन', 'कृष्ण-रुक्मिणी' शीर्षकों में विभक्त हैं। कविराज धोयी ने 'पवनदूतम्' काव्य की रचना की। गोवर्धन ने हाल कृत 'गाथा-सप्तशती' के आधार पर 'आर्या-सप्तशती' शीर्षक काव्य की रचना की। इसमें विष्णु, गोपी, कृष्ण तथा राधा-विषयक पद हैं। इसी ग्रन्थ से रूपगोस्वामी ने त्रिविक्रम, वामन (दशावतार विष्णु) कूर्म-कमठ-हलधर तथा बलराम-विषयक पदों का संकलन किया है। 'सदुक्तिकर्णामृत' में ब्रज-सम्वन्धी पद संकलित हैं। बल्लालसेन के गुरु अनिरुद्ध ने 'भागवत-तत्त्व-मञ्जरी' की रचना की। लक्ष्मणसेन के समकालीन हलायुध भट्ट ने 'ब्राह्मण-सर्वस्वम्', 'जन्माष्टमी-तत्त्व' आदि वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया।

रूप और सनातन गोस्वामी अपने इन पूर्ववर्ती काव्यों से परिचित लगते हैं। **'गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः'** प्रतीकवाले उनके श्लोक द्वारा इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि जयदेव का काव्य 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' से प्रेरणा ग्रहण करता है। इन दोनों ग्रन्थों के कुछ पदों में भावलोक की अद्भुत समता है। अतः यह निर्विवाद है कि 'गीत-गोविन्द' बंगला वैष्णव-पदों की पूर्वपीठिका या पृष्ठभूमि है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'बडु चण्डीदास' कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' भी 'गीत-गोविन्द' से ही अनुप्रेरित है। इससे स्पष्ट है कि बंगाल के मध्यकालीन वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन में 'गीत-गोविन्द' की विशिष्ट भूमिका है।

सेन राजाओं ने बंगाल में संस्कृत के अध्ययन को प्रमुखता प्रदान की। इनकी राजसभाओं में श्रुति-स्मृतियों का पठन-पाठन होता था। इनकी ही प्रेरणा से रामायण और महाभारत के अनुवाद हुए एवं वैष्णव-पदावलियाँ रची गयीं। बडु चण्डीदास कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' (१५वीं शताब्दी), मालाधर वसु कृत 'श्रीकृष्ण-विजय' और कृत्तिवास ओझा कृत 'बंगला-रामायण' इसी युग की रचनाएँ हैं।

श्रीधरदास का 'सदुक्ति-कर्णामृत' (रचनाकाल ११२७ ई०) लक्ष्मणसेन के राज्याभिषेक के २७वें वर्ष में प्रणीत हुआ था। श्रीधर का परिवार कट्टर वैष्णव था। इनके पिता वटुदास, विष्णु के वाराहरूप के उपासक थे। अतः श्रीधर के पदों में विष्णु के अवतारों के विविध रूपों का वर्णन स्वाभाविक है। इनमें राधा-विषयक पदों की ही संख्या अधिक है। परवर्ती वैष्णव-पदावलियों पर इनका विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

चौथी शताब्दी में चन्द्रवर्मन के 'शुशुनिया' शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रवर्मन 'चक्र-स्वामिन्' के उपासक थे। इस ऐतिहासिक परम्परा में 'पहाड़पुर' की खुदाई में उपलब्ध राधिका-कृष्ण की युगल मूर्ति का विशेष महत्त्व है। इससे बंगदेश में राधा-कृष्ण-भक्ति की विकसनशील परम्परा का परिचय मिलता है। वैलण में उपलब्ध भोजवर्मन के ग्यारहवीं शताब्दी के अभिलेख में कृष्ण को 'महाभारत-सूत्रधार' कहा गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें 'गोपीशतकेलिकर' नाम से भी अभिहित किया गया है। तत्पश्चात् हमारा ध्यान पुनः पालवंशीय राजाओं की ओर आकर्षित होता है। इस तथ्य का उल्लेख ऊपर किया गया है कि

पालवंशीय राजा यद्यपि बौद्ध-मतानुयायी थे, परन्तु वैष्णव-धर्म के प्रसार और वैष्णव-मन्दिरों के निर्माण में उन्होंने पूर्णरूपेण योगदान किया था। अतः बंगाल में वैष्णव-भक्ति या राधा-कृष्ण-भक्ति के शृंखलाबद्ध इतिहास का आरम्भ यहीं से होता है। सेनवंशीय राजाओं के शासनकाल में 'गीत-गोविन्द' की रचना हुई। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय तक बंगाल में राधा-कृष्ण-विषयक काव्य-परम्परा भी पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। बंगाल में कर्णवंशीय राजा चेदिकर्ण देव ने श्रीमद्भागवत वर्णित भावावेगमूला अथवा रागात्मिका भक्ति के प्रचार में सहयोग दिया था। उल्लेखनीय है कि बंगाल के सेनवंशी राजा कटीव-वंशी क्षत्रिय थे। इनके काल में रचित 'गीत-गोविन्द' तथा बड़ु-चण्डीदास कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' भावमूला भक्ति-काव्य का प्रेरणा स्रोत बना।

यहाँ जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' का संक्षिप्त विश्लेषण प्रासंगिक है। जयदेव 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित 'गोपी-कृष्ण' आख्यान से प्रभावित नहीं थे। इस प्रसंग में यदि किसी अन्य प्रभाव की कल्पना की जा सकती है तो 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' की। 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' के पन्द्रहवें (कृष्ण-जन्म) खण्ड में यमुनातट पर बालक कृष्ण और बालिका राधा की बाल-क्रीड़ाएँ वर्णित हैं। यह प्रसंग अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इसके परवर्ती खण्ड में राधा के रूपलावण्य के अनेक प्रसंग मिलते हैं। यहाँ राधा-कृष्ण के लौकिक विवाह की भी कल्पना की गयी है। गौड़ीय वैष्णव-भक्ति में स्वकीया भाव के विकास का सम्भवतः यह भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इस ग्रन्थ में माधुर्यभाव को वरीयता दी गयी है, परन्तु इसमें ऐश्वर्यभाव पूर्णतः उपेक्षित नहीं है (यह विशेषता गीत-गोविन्द में भी मिलती है—जय जय देव हरे, दशाकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः—यहाँ राधा के स्थान पर लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है।) तत्पश्चात् धीरोदात्त नायक के स्थान पर धीरललित नायक को प्रश्रय मिलने लगता है और माधुर्यभाव की भक्ति ही प्रधान भक्ति बन जाती है।

गौड़ीय वैष्णव-भक्ति तान्त्रिक मतवाद से भी प्रभावित प्रतीत होती है। यहाँ हमारी दृष्टि 'वैष्णव-पाञ्चरात्र' की ओर आकृष्ट होता है। 'तन्त्रसार' के लेखक कृष्णानन्द वागीश, चैतन्य के समकालीन थे। बंगाल में इनका मत भी प्रचलित था। बंगाल के वैष्णव उससे भी प्रभावित लगते हैं। 'राधा-कृष्ण' की युगल-मूर्ति की उपासना-पद्धति में हमें इस प्रभाव का आभास मिलता है। गौड़ीय वैष्णव-भक्ति में राधा की कल्पना कृष्ण की शक्ति के रूप में की गयी है। कुछ विद्वान् इस कल्पना में शक्ति-तत्त्व एवं 'काम-गायत्री' के प्रभाव की सम्भावना स्वीकार करते हैं। 'नारद-पाञ्चरात्र' में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामी ने अपनी टीकाओं में तन्त्रों से भी उद्धरण दिये हैं। उन्होंने 'उज्ज्वल-नीलमणि' में स्पष्ट कहा है कि तन्त्र में राधा ह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं (तन्त्रे प्रतिष्ठिता)।

ऊपर वर्णित परिवेश में चैतन्य का प्रादुर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उस समय बंगाल ही नहीं, समस्त उत्तरी भारत मुसलमानी आक्रोश और हिंसा से आक्रान्त था, साथ ही साथ ब्राह्मण-धर्म की रूढ़िवादी प्रवृत्तियाँ समाज को जड़ीभूत बना चुकी थीं। स्थानीय पूजा-विधियाँ, विशेषरूप से मनसा-पूजा तथा धर्मठाकुर की उपासना ऐसी धार्मिक विधाएँ थीं, जिनसे समाज के परिष्करण को आघात लग रहा था। सिद्ध व नाथ-सम्प्रदाय की उपासना-विधियों का दुष्परिणाम समाज भोग रहा था। कवि कर्णपूरकृत 'चैतन्य-चन्द्रोदय' में ऐसे छद्मवेशधारी साधुओं, कापालिकों तथा तान्त्रिकों की मर्यादा-निषिद्ध क्रियाओं का उल्लेख मिलता है।

चैतन्य के जन्म के समय नवद्वीप संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का प्रसिद्ध केन्द्र था। पर यह अध्ययन-अध्यापन केवल तर्क तथा नव्य-न्याय तक ही सीमित था। यह स्थान रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद और नव्य-वैष्णव-वाद, इन दोनों का केन्द्र बन गया था। इस परिवेश में कुछ भक्तों का आविर्भाव हुआ। यह भक्त-मण्डली क्रमशः धार्मिक विचारों के आदान-प्रदान व श्रीमद्भागवत के पठन-पाठन में संलग्न रहती थी। चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र मूलतः वैदिक ब्राह्मण व आचार्य थे, परन्तु वैष्णव-भक्ति और उसके चिन्तन-पक्ष में भी उनकी आस्था थी। इस प्रकार चैतन्य वैष्णव-धर्म में आस्था रखनेवाले परिवार में उत्पन्न हुए थे। वे नवद्वीप की भक्तमण्डली, माधवेन्द्रपुरी और उनके शिष्यों से भी प्रभावित थे। इनमें कमलाक्ष भट्टाचार्य का व्यक्तित्व अत्यधिक प्रभावशाली था। उनका नाम अद्वैत था। वे ज्ञान-भक्ति तथा वैराग्य के उपदेशक आचार्य थे। उनके प्रभाव से चैतन्य भी ज्ञान-मार्ग की ओर आकृष्ट हुए। परन्तु वेदान्त के निष्णात आचार्य होते हुए भी वे अद्वैत वैष्णव-भक्ति मतवाद के कल्पनाकार बने। उनकी कल्पना को चैतन्य ने व्यवस्थित रूप दिया।

बंगाल में कृष्ण-आख्यान तथा भक्ति की भूमिका

'कृष्णायन' अथवा 'कृष्ण-आख्यान' का विकास दो गाथा-चक्रों के माध्यम से हुआ। प्रथम के अनुसार कृष्ण यादवों के नायक और देवकी-पुत्र हैं। ये कृष्ण-वासुदेव के रूप में विख्यात हैं। इनकी जीवनी पराक्रम-पूर्ण आख्यानों से परिपूर्ण है। द्वितीय गाथा-चक्र के अनुसार कृष्ण गोप-बालक हैं और उनकी जीवनी अनेक अलौकिक शृंगारिक आख्यानों से समन्वित है। ईसा-पूर्व युग का भारतीय साहित्य कृष्ण-वासुदेव के पराक्रम-प्रधान आख्यानों से भलीभाँति परिचित था। इन आख्यानों में 'कंस-वध' आख्यान विशेष उल्लेखनीय है। रामायण के एक छन्द में गोप-बालक कृष्ण के साहसिक कार्यों का उल्लेख मिलता है।

'परिगृह्य गिरिं दोर्भ्याम् वपुर्विष्णोर्विडम्बयन्।'

इस अंश में कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन-पर्वत-धारण करने का उल्लेख मिलता है (लंका ६९, ३२)। 'कृष्णाख्यान' से सम्बद्ध दूसरी उल्लेखनीय रचना अश्वघोष कृत 'बुद्ध-चरित' है, जिसमें गोपाल कृष्ण के शौर्य का उल्लेख मिलता है।

'ख्यातानि कर्माणि च यानि सौरेः शुराद् यज्ञ तैष्ववला बभूवः।'

भारतीय वाङ्मय में विष्णु के अवतार रूप में कृष्ण-गोपाल का उल्लेख ईसा की चौथी शताब्दी से मिलने लगता है। हरिषेण-रचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति में 'विष्णुगोप' का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार कालिदास ने 'मेघदूत' में 'गोपवेष-विष्णु' का उल्लेख किया है। महाभारत में भी एक सन्दर्भ में व्रज में कृष्ण के आरम्भिक जीवन का उल्लेख मिलता है—

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्याश्चिन्तितो हरिः।
गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्णगोपीजनप्रिय ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे ! रमानाथ ! व्रजनाथार्तिनाशनम् ॥
कौरवार्णवमग्नां मां उद्धरस्व जनार्दन।

—सभापर्वन् 'बंगला संस्करण' ६८-४-४२।

परन्तु कृष्ण-गोपाल-आख्यान का सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध प्रतिपादन पौराणिक साहित्य में ही हुआ है। पुराणों ने विभिन्न कालों में क्रमबद्ध रूप में कृष्ण की ब्रज-कथा को किस रूप में विकसित किया है, इसका अवलोकन कराना यहाँ मेरा उद्देश्य है। 'हरिवंश-पुराण' में बीस अध्यायों में ब्रज में कृष्ण की शौर्य-कथाओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'शकटभंग', 'पूतना-वध', 'प्रलम्ब-व्रध', 'दाम-वध', 'यमलार्जुन-भंग', 'वृक-दर्शन', 'वृन्दावन-प्रवेश', 'कालियदमन', 'धेनुक-वध', 'प्रलम्ब-वध', 'गोवर्द्धन-धारण', 'गोविन्दाभिषेक', 'हल्लीसकक्रीड़ा', 'वृषभासुर-वध', 'केशीवध', आदि लीलाएँ विष्णु तथा भागवत-पुराण में वर्णित हैं। कृष्ण-लीला-विषयक आख्यानों की दृष्टि से हरिवंश-पुराण और अन्य पुराणों में पार्थक्य है। 'हरिवंश' में वर्णित एक आख्यान के अनुसार कृष्ण की अभिलाषा गोव्रज का परित्याग कर, वृन्दावन में बसने की हुई। अतः संकर्षण से परामर्श कर वे स्वरचित वृकों से गोपबालाओं को भयभीत करते हैं। परन्तु विष्णु व भागवत-पुराणों में इसका उल्लेख कुछ भिन्न रूप में हुआ है। कृष्ण अपने विरुद्ध किये गये अनेक घातक प्रयत्नों से भयभीत होकर स्वयं ब्रज का त्यागकर वृन्दावन में बसना चाहते हैं। 'हरिवंश' में वृषभ राक्षस का उल्लेख नहीं मिलता और अन्य दो पुराणों में उसका नाम अरिष्ट है। गोप-बालाओं के साथ कृष्ण का नैश्यनृत्य, 'हल्लीसक' नाम से व्याख्यायित है, अन्यत्र इसे 'रास' नृत्य कहा गया है। परन्तु यहाँ कृष्ण की किसी प्रेमिका गोपी का उल्लेख नहीं आया है। कृष्ण-सखा श्रीदामा तथा गोवर्धन पर्वत पर भण्डोर वटवृक्ष का ही उल्लेख मिलता है।

यद्यपि हरिवंश-पुराण की अपेक्षा विष्णु-पुराण में कुछ अतिरिक्त कथाएँ भी हैं, जैसे गर्ग का 'नाम संस्कारोत्सव', एक अनाम गोपी का उल्लेख, गोपबालाओं का कृष्ण-प्रेम, परन्तु व्यापकता की दृष्टि से विष्णु-पुराण पूर्णतः हरिवंश-पुराण पर आधारित है। इन दोनों ग्रन्थों में वर्णित' 'हल्लीस-रासक' में समानता है। कृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् गोपियों का विलाप 'विष्णु-पुराण' कर्ता की एक नवीन उद्भावना है।

'तृणावर्त-मोक्ष', 'वत्सवक-वध', 'कृष्ण की गायों की ब्राह्मण द्वारा चोरी', 'दावाग्नि-मोचन', 'दावाग्निपान' 'गोप-ब्रालाओं द्वारा कात्यायनी-पूजा', 'चीरहरण', 'यज्ञ पत्न्युद्धरण', 'सुदर्शन-मोक्ष', 'शंखचूड-वध', 'व्योमासुर-वध' आदि प्रसंग भागवत-पुराण की नवीन उद्भावनाएँ हैं।

भागवत-पुराण के पाँच अध्यायों (१०। २९--३३) में कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। 'रास-पंचाध्यायी' संज्ञक ये पाँच अध्याय विष्णु-पुराण में भी हैं। काव्य के रूप में ये अंश अत्यन्त रोचक हैं। विष्णु-पुराण में कृष्ण और गोप-ब्रालाओं के प्रेम के उदात्त रूप की कल्पना की गई है, जिसका अधिक विस्तृत वर्णन 'भागवत' में हुआ है। ऊपर उल्लेख किया गया है कि यद्यपि गोपी-कृष्ण-प्रेम का सर्वप्रथम उल्लेख विष्णु-पुराण में आया है, परन्तु भागवत में कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए गोपियाँ कात्यायनी की पूजा करती हैं। यहीं कृष्ण की एक सर्वप्रिया गोपी का उल्लेख मिलता है (१०-३०-२८)। परन्तु उसके नाम का उल्लेख यहाँ नहीं आया है। कुछ कृष्णसखा गोपों के नाम का उल्लेख आया है—वे हैं श्रीदामा, वृषभ, सुबल, स्तोक, भद्रसेन, अर्जुन, विशाल, तेजस्विन्, वरूथप आदि। 'वायु-पुराण' में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि कृष्ण का पालन-पोषण गोष्ठ में हुआ था, वे नन्द-यशोदा के पोष्यपुत्र थे। अग्निपुराण में कृष्ण-गोपाल की अलौकिक लीलाएँ वर्णित हैं, किन्तु कृष्ण और गोपियों की प्रेम-कथा यहाँ अनिर्दिष्ट है।

रथस्थो मथुरान्वगात कंसोक्ताक्रूरसंस्तुतः।
गोपिभिरनुरक्ताभिः क्रीडिताभिर्निरीक्षितः॥ (२-२२-२३)

परवर्ती पुराणों में 'पद्म' व 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' ध्यातव्य हैं। 'पद्मपुराण' में व्रंज-आख्यान इस रूप में वर्णित नहीं है। इसमें कृष्ण की नित्य लीलाएँ निरूपित हैं। यहाँ व्रंजमण्डल का भौगोलिक विवरण मिलता है, परन्तु यह व्रंज लौकिक नहीं, अपितु अलौकिक, अर्थात् गोलोक है। इसमें रासमण्डल की स्वरूप-योजना विस्तृत रूप में वर्णित है। रास-लीला में कृष्ण-राधिका, गोप, गोप-बालाओं के बैठने के निश्चित स्थानों का भी निर्देश है। ऐसा सम्भावित लगता है कि यह अंश 'पद्मपुराण' में परवर्ती काल में युक्त हुआ है। कालिय का उल्लेख यहाँ 'काली' रूप में हुआ है। ऐसी सम्भावना लगती है कि राधा-कृष्ण सम्प्रदाय के संगठन के समय उसमें अलौकिक तत्व भी समाविष्ट हो गये। यही कारण है कि 'पद्म-पुराण' में अनेक गोप-गोपियों का उल्लेख मिलने लगता है।

'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' इसके परवर्ती काल की रचना है। रायबहादुर विद्यानिधि ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि इसका सम्पादन १६वीं शताब्दी में पश्चिम बंग में हुआ था। इसके आदिरूप का परिचय 'गीतगोविन्दकार' को था। 'ब्रह्मवैवर्त' में व्रजाख्यान विश्रृंखलित, अधूरा और कौतूहलपूर्ण है। इसमें प्रमुख गोप-गोपियों का विस्तृत वंश-परिचय दिया गया है। यहाँ प्रथम बार राधा-कृष्ण का नामोल्लेख आया है।

लोक-साहित्य में प्रधान गोपी राधा या राधिका का उल्लेख पहली बार सातवीं या आठवीं शताब्दी में हाल कृत 'गाथा-सप्तशती' में आया है। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में भी इसका उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् इस नाम का प्रयोग अनेक सन्दर्भों में हुआ है। यह भी ध्यातव्य है कि राधा की प्रतिद्वन्द्विनी चन्द्रावली की प्रसिद्धि 'पद्मपुराण' के रचनाकाल में हो चुकी थी (पाटल खण्ड ३९-९)।

गोपियों के स्थान पर कृष्ण-प्रिया के रूप में राधा का स्थापन उत्तरवर्ती पुराणों के पूर्व हो चुका था, काव्यांग-निरूपक ग्रन्थों के काव्य-संकलनों से इस कथन की पुष्टि होती है। परवर्ती ग्रन्थों में गोप-कुमारियाँ कृष्ण की सहचरियाँ बन जाती हैं।

परवर्ती काल के अपौराणिक (लोक-भाषा व संस्कृत) साहित्य में कृष्ण की श्रृंगार-क्रीड़ाओं में नौका-लीला व दान-लीला का संयोजन मिलता है। नौका-आख्यान में कृष्ण गोपियों को यमुना के अपर तट पर ले जाते हैं और इसके प्रतिदानस्वरूप राधा से प्रेम की आकांक्षा प्रकट करते हैं। राधा उपेक्षा-भाव व्यक्त करती हैं। कृष्ण उन्हें मध्यधार में भयभीत करते हैं। अन्य उपाय न होने पर राधा समर्पण करती हैं। इस प्रसंग का प्राचीनतम उल्लेख 'प्राकृत-पैंगलम्' में मिलता है। सन्दर्भ इस प्रकार है—

अरे रे वाहड् काण्ह णाव छडिउ डगमग कुगति ण देह ।
तइ इत्थी णइहि सन्तार देइ जो चाहइ सो लेहि ॥

रूपगोस्वामी कृत पदावली में दान-विषयक १३ पद संकलित हैं। इसमें पाँच रूपगोस्वामीरचित हैं, दो किसी अज्ञात कवि के हैं, दो मनोहर तथा संजय कविशेखर के हैं। जगदानन्द राय, सूर्यदास और मुकुन्द भट्टाचार्य के एक-एक पद संकलित हैं। मुकुन्द भट्टाचार्य कृत एक पद नीचे दिया जा रहा है—

इदम् उद्दिश्य वयस्याः स्वं ईहिता दैवतं नमत ।
यमुनैव जानुदघ्नी भवतु न वा नाविकोऽस्त्व अपरः ।

'बन्धुओ ! इस प्रार्थना से अपने-अपने आराध्यदेवों को नमन करो, यमुना जानुदघ्नी हो जायें, या कोई अन्य व्यक्ति नाविक हो जाय।'

हिन्दी कवि सूरदास ने इस आख्यान से प्रेरित होकर अनेक पदों की रचना की है। बंगला-साहित्य में यह कथा 'श्रीकृष्ण-भक्त-कीर्तन' में, माधवाचार्य कृत श्रीकृष्ण-मंगल में, श्यामदास कृत 'गोविन्द-मंगल' में और सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के एक वैष्णव गीत-संग्रह में मिलती है।

दानलीला का वस्तुपक्ष इस प्रकार है—अनिच्छुक तथा लज्जाशीला राधा के प्रेम में निराश कृष्ण उससे साक्षात्कार करने की अभिलाषा से मथुरा-पथ पर प्रतीक्षा-रत हैं। (अथवा एक अन्य सन्दर्भ के अनुसार गोवर्द्धन पर्वत पर प्रतीक्षा-रत हैं।) राधा अपनी सखियों के साथ दूध-दही बेचने मथुरा जाती हैं (अथवा एक अन्य सन्दर्भ के अनुसार गोवर्द्धन-पूजा हेतु दुग्ध-घी ले जाती हैं)। कृष्ण करसंकलन-कर्ता के छद्म वेश में उसका मार्ग रोकते हैं। कुछ क्षण तक दोनों में शृंगारमूलक वाग्युद्ध होता है। अन्त में राधा स्वेच्छा या अनुराग से समर्पिता हो जाती हैं।

रूपगोस्वामी ने इस विषय पर 'दानकेलि-कौमुदी' शीर्षक एक 'भणिता' की रचना की थी। माधव भट्ट या माधव कवि ने इस विषय पर 'दानलीला' नामक काव्य की रचना की है। यह ग्रन्थ 'वस-कर-रस-इन्दु' वर्ष अर्थात् वि० संवत् १६२८, (ई० सन् १५७१) में रचा गया था।

आरम्भ में दान-आख्यान का रतिमूलक अभिप्राय नहीं था। कृष्ण और उनके अन्य गोप-बन्धु गोपियों के दूध-दही का मात्र सेवन करना चाहते थे। वृन्दावनदास इस आख्यान से परिचित थे। माधवकृत 'दानलीला' काव्य का यही प्रतिपाद्य था। इनके काव्य की अन्तर्दृष्टि रतिमूलक नहीं थी।[1]

जीवगोस्वामी कृत 'गोपालचम्पू' तथा 'प्रेमामृत' या 'गोपाल-चरित' में कृष्ण का वर्णन राधा के वस्तु-भारक (वाहक) रूप में हुआ है। इस दृष्टि से 'प्रेमामृत' और 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' में समानता है। 'प्रेमामृत' में कथा के वर्णन का क्रम इस प्रकार है—

बंगला में यह क्रम भार-नौका-दान आख्यानक रूप में है। प्रेमामृत में ये आख्यान क्रमिक व शृंखलाबद्ध हैं। परन्तु श्रीकृष्ण-कीर्तन में ऐसा नहीं है। भागवत में वर्णित गौण घटनाएँ, जैसे फल-विक्रेता से कृष्ण का फल क्रय करना इत्यादि रूपगोस्वामीकृत 'गोपाल-चम्पू' में अधिक विस्तार से दी गयी हैं। निम्नलिखित कुछ विशिष्ट घटनाओं के संयोजन का श्रेय रूपगोस्वामी को है—

कृष्ण नागरी का रूप धारण कर राधिका से मिलते हैं (युवती-वेश गूढ़ो हरी-भक्ति-रसामृत-सिन्धु, चतुर्थ संस्करण, बहरामपुर संस्करण ६१८, उद्धव-सन्देश)। बंगला कृष्ण-भक्ति में 'कलंक-भंजन' सन्दर्भ

---

[1] अम्बिकाचरण ब्रह्मचारी ने कलना से चैतन्य भागवत (अध्याय—१२–१४) के पूरक अंश का प्रकाशन किया था। इस कृति के सम्पादन में जिन दो पाण्डुलिपियों का उपयोग किया गया था, उनमें से एक वृन्दावनदास के घर से प्राप्त हुई थी। अन्तिम अध्याय (१५) में 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' में वर्णित दानखण्ड का स्मरण हो आता है। बहुत सम्भव है, रचनाकार श्रीकृष्ण-कीर्तन अथवा किसी अन्य स्रोत से परिचित रहा हो।

की उद्भावना १६वीं शताब्दी में हुई। राधा अपनी भगिनी (कुछ के अनुसार भाई) का रूप धारण कर कृष्ण से मिलने जाती हैं, सुबल राधा का रूप धारण कर घर में ही रहता है (प्रविशति सुबलो यत्र राधिका वेशगूढ़ः-भक्ति-रसामृत-सिन्धु, पृ० ६१४)। राधा कृष्ण के उपवन से पुष्प चुराती हैं-(स्वमुत्प्रेक्षित लीला स्तव माल पृ० ५८४)। इस प्रसंग में कृष्ण का चिकित्सक रूप धारण करना, भिक्षुक-रूप धारण करना इत्यादि की कल्पना १६वीं शताब्दी के वैष्णवों द्वारा की गयी। विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'चमत्कार-चन्द्रिका' में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का नियोजन किया गया है। राधा के पति अभिमन्यु प्रेमीयुगल के सम्मुख अकस्मात् प्रकट हो जाते हैं, ऐसी परिस्थिति में कृष्ण 'काली' का रूप धारण कर उन्हें भयभीत कर देते हैं।

इस प्रकार राधा के पति अभिमन्यु का प्रथम उल्लेख सोलहवीं शताब्दी में मिलता है। रूपगोस्वामी ने अभिमन्यु का उल्लेख 'अहीन' (तद्भव) रूप में भक्ति-रसामृत-सिन्धु' (८३१-८४०) में किया है। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' तथा मुरारि गुप्त कृत 'चैतन्य-चरितामृत' में यह नाम 'अयान' रूप में आया है। रूपगोस्वामी वर्णित ब्रह्म-वैवर्त में इसका 'रायान' रूप में उल्लेख है। अन्य नामों में जटिला (अभिमन्यु की माता का नाम), कुटिला (उसकी झगड़ालू बहन) मुखरा (राधा की दादी) कीर्तिदा (कृत्तिका-राधा की माता), जरती (एक वृद्धा), गोवर्धन मल्ल (चन्द्रावली का पति), विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मवैवर्त में राधा की माता का नाम कलावती है, किन्तु श्रीकृष्ण-कीर्तन में 'पदुमा' (पद्मा) या कालिनी (कालिन्दी) है।

'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में कृष्ण के गोप-सखाओं का उल्लेख आया है।—'एतेषु केऽपि शास्त्रेषु केऽपि लोकेषु विश्रुता' (७२९) अर्थात् इनमें से कुछ का उल्लेख शास्त्रों में आया है, कुछ लोक-परम्परा से ग्रहण किये गये हैं। वस्तुस्थिति यह है कि ये नाम लोक-जीवन में सोलहवीं शताब्दी में प्रचलित थे। 'श्रीकृष्ण-विजय' (१४८० ई०) में निम्नलिखित गोपियों का उल्लेख मिलता है। चन्द्रावली, शशिरेखा, चित्ररेखा, प्रिया, वनप्रिया, मदनमञ्जरो, श्रीमती, मधुमती, माधवी, कादम्बिनी, नवरंगा, रतिलेखा, कुन्तिनी, सीमन्तिनी, ललिता, श्यामला, धवला, रति, भद्रा, पद्मा, हरिप्रिया, विशाखा, इन्दुमुखी, सुमुखी, वल्लवी, चन्द्रिका, विलासिनी, अप्सरा, चतुरा, मधुरा, माधवी तथा शशिमुखी। माधवाचार्य कृत 'श्रीकृष्ण-मंगल' में लीलावती, शुचि, प्रेमवती, विलासिनी, स्वर्णप्रभा, हरिप्रिया आदि नाम आये हैं। 'पौर्णमासी' का उल्लेख आंशिक दैवी चरित्र के रूप में आया है, जो कृष्ण-राधिका के मिलन-संयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करती है। सोलहवीं शताब्दी की कृति 'जगन्नाथ-वल्लभ' में इसका परिचय मदनिका रूप में मिलता है। मथुरादास कृत 'वृषभानुजा' नाटिका में इसका परिचय वृन्दा रूप में मिलता है। बंगला काव्यों, मुख्यतः वर्णनात्मक आख्यानक काव्यों, विशेष रूप से 'श्रीकृष्ण-कीर्तन', 'श्रीकृष्ण-मंगल', में पौर्णमासी के स्थान पर पितृमही 'बड़ाई' का नाम आया है। 'श्रीकृष्ण-मंगल' और 'गोविन्द-मंगल' में यही नाम स्वीकार किया गया है।

'दोल-लीला' अथवा 'होरी' की सर्वप्रथम प्रस्तुति रूपगोस्वामी द्वारा हुई। इसका एवं 'झूलन-लीला' का प्रचलन सोलहवीं शताब्दी में हुआ। इस कोटि के गीत हिन्दी-साहित्य में प्रचुर मात्रा में हैं।

गार्हस्थिक भूमिका में राधा-कृष्ण प्रीति के चित्रण की आरंभिक अवतारणा गोविन्ददास कविराज ने संस्कृत महाकाव्य 'गोविन्द-लीलामृत' में की थी। इसमें राधा-कृष्ण की दिनचर्या वर्णित है, जिसे पारिभाषिक शब्दावली में 'अष्टकालीन-लीला' कहते हैं।

व्यापकता की दृष्टि से 'हरिवंश-पुराण' में कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ ही वर्णित हैं, कृष्ण और गोपियों के श्रृंगार-प्रसंग आरम्भिक रूप में और विशेषकर वर्षा ऋतु के सन्दर्भ में आये हैं। इनकी आवृत्ति विष्णु व भागवत पुराणों में हुई है। 'श्रृंगार-सन्दर्भ' में विरह का चित्रण सर्वप्रथम 'विष्णुपुराण' में मिलता है (५-१३-२४, १८-१४-३१)। इसका विस्तार 'भागवत' में हुआ है। वात्सल्य-चित्रण भी सर्वप्रथम भागवत में, विशेष रूप से श्रृंगार के औचित्य-स्थापन के निमित्त हुआ है।

लोक-साहित्य में केवल दो ही तत्त्व—वात्सल्य और श्रृंगार-सर्वप्रिय रहे हैं। इनमें श्रृंगार की लोकप्रियता अपेक्षाकृत अधिक रही। राधा-कृष्ण-प्रेम का भावन अनेक स्तरों और सन्दर्भों में हुआ। यथा—पूर्व राग, अनुराग, अभिसार, मिलन, मान, विरह, सम्भोग आदि। व्रज-आख्यान का मुख्य स्वरूप कृष्ण-शौर्य-वर्णन इसमें पूर्णतः उपेक्षित हो गया।

मूर्तिकला में कृष्णाख्यान का प्रथम अंकन ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में मिलता है। ईसा की चतुर्थ शताब्दी में कृष्णाख्यान स्थापत्य-कला में अभिप्राय (मोटिफ़) रूप में बहुप्रचलित हो चुका था। गोवर्धन-धारण, नवनीत-चौर्य, शकट-भंग, धेनुक-वध, कालिय-दमन आदि दृश्य मन्दौर से प्राप्त एक भग्न द्वार के पक्ष-स्तम्भ पर उत्कीर्ण मिलते हैं। इनका समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना गया है। इस प्रसंग का एक सुन्दर उदाहरण मथुरा से प्राप्त एक बालुकाश्म उद्भृत में उपलब्ध है। इसमें कृष्ण गोवर्धन पर्वतधारण किये हुए रूपायित हैं। इसका समय सम्भवतः ईसा की चौथी शताब्दी है। मूर्तिकला के कृष्णाख्यानों में गोवर्धन-धारण सर्वप्रिय रहा है। एक अत्यन्त सुन्दर प्रस्तुति महाबली-पुरम् में मिलती है। उत्तरवर्ती काल की महत्त्वपूर्ण कृति बदामी की वैष्णव गुफाओं और उसके पहाड़ी किले से प्राप्त हुई है। इसका समय ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी माना गया है।

बंगाल की मूर्ति-कला में कृष्णाख्यान का प्राचीनतम उदाहरण पहाड़पुर में प्राप्त हुआ है। इसका समय ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी है। इस प्रकार के एक उद्भृत में कृष्ण अपनी पारम्परिक मुद्रा में एक नारी, सम्भवतः अपनी किसी प्रिय गोपी के साथ अंकित हैं। सर्वप्रथम प्रोफेसर सुनीतिकुमार चटर्जी ने संकेत किया था कि यह महिला या नारी-आकृति राधा की है।

इससे यह स्पष्ट है कि बंगाल की मूर्ति-कला या भित्ति-कला में कृष्णाख्यान के दृश्यों को प्रस्तुत करने की परम्परा सोलहवीं शताब्दी तक प्रचलित थी। इस प्रकार की कुछ नाट्य-प्रस्तुतियों का साक्षात्कार चैतन्यदेव ने गौड़ के निकट 'कानाइ' की नाट्यशाला में किया था—

> प्राते चलि आइला प्रभु कनाइर नाट शाला।
> देखिल सकल ताहां कृष्ण चरित लीला॥
>
> (चैतन्य-चरितामृत)

'प्रातः काल चलकर प्रभु कन्हाई की नाट्यशाला में आये, जहाँ उन्होंने सम्पूर्ण कृष्ण चरित-लीला को देखा।'

यद्यपि कृष्ण की आराधना पूर्वकाल से ही प्रचलित थी, परन्तु उपासना हेतु कृष्ण-गोपाल की पाषाण, मिट्टी या काष्ठ-प्रतिमा (घुटनों के बल चलते हुए शिशुरूप में या किशोररूप में वंशी-वादन करते हुए) की परम्परा सोलहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई। इस प्रकार की मूर्तियों के सर्वसुन्दर

उदाहरणों में अग्रद्वीप (कटवा के निकट) से प्राप्त गोपीनाथ की प्रतिमा है। इस मूर्ति का निर्माण चैतन्यदेव के अनुयायी भक्त गोविन्द-घोषने प्रभु के आदेश के अनुसार किया था।

आरम्भ में राधा की आकृति कृष्ण-मूर्ति के साथ सुनियोजित नहीं थी, और न कृष्ण के साथ राधा की उपासना ही प्रचलित थी। यह परम्परा सोलहवीं शताब्दी के मध्य आरम्भ हुई थी। इसकी स्थापना में नित्यानन्द महाप्रभु की द्वितीय पत्नी जाह्नवी देवी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। 'प्रेम-विलास' एवं 'भक्ति-रत्नाकर' के अनुसार वृन्दावन की यात्रा में राधा-मूर्ति-विहीन कृष्ण-मूर्ति को देखकर उन्हें आन्तरिक पीड़ा हुई थी। घर लौटने के पश्चात् उन्होंने राधा-मूर्ति निर्माण करने का आदेश दिया। मूर्तियों के निर्माता नयान भास्कर थे। इन मूर्तियों को उन्होंने वृन्दावन भेजा। जीवगोस्वामी की प्रेरणा से ये मूर्तियाँ कृष्ण-मूर्ति के पार्श्व में स्थापित की गयीं। इस समय से विष्णु की प्राचीन मूर्ति तथा घुटने के बल चलते हुए शिशु-कृष्ण की मूर्ति के अतिरिक्त बंगाल में अकेले (राधा-विहीन) कृष्ण-मूर्ति की उपासना नहीं होती।

—डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव

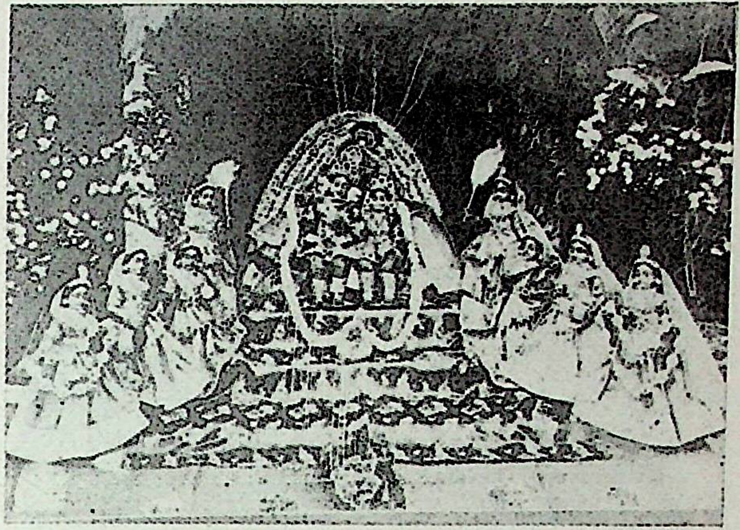

ठाकुर मदनगोपाल जी : नवद्वीप, पृ० ६४४

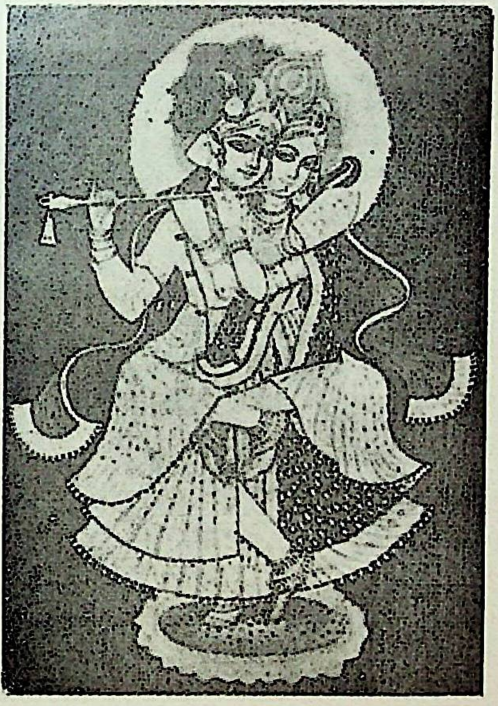

रसब्रह्म राधाकृष्ण

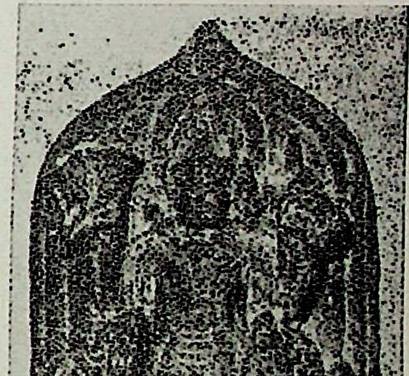

अधोक्षज श्री विष्णु : चैतन्य महाप्रभु के
पिता श्री जगन्नाथ मिश्र के गृहदेवता
पृ० ५८२

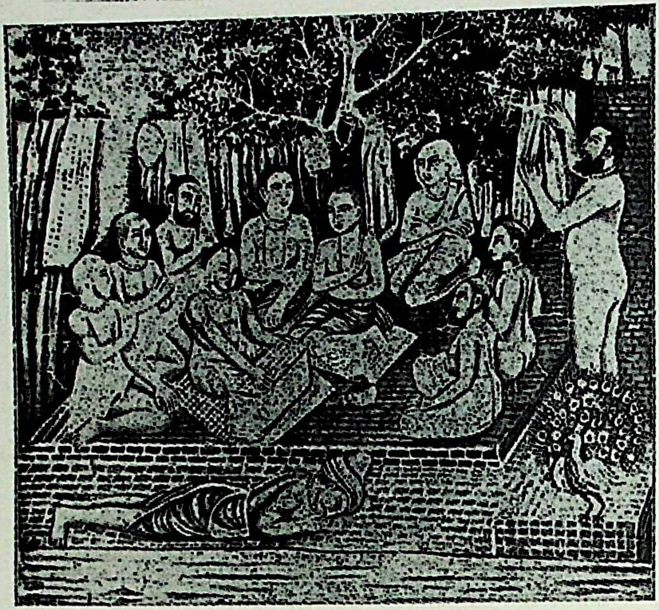

श्रीक्षेत्र में नरेन्द्र सरोवर के तट पर पार्षदगण सहित श्रीमन्महाप्रभु
श्री गदाधरपण्डित गोस्वामी से श्रीमद्भागवत सुनते हुए, पृ० ५८२

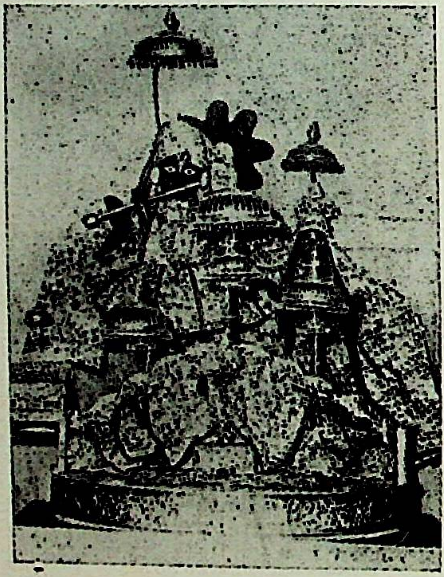

ठाकुर श्री राधादामोदर : वृन्दावन
(श्री जीवगोस्वामी द्वारा सेवित),
पृ० ६०५

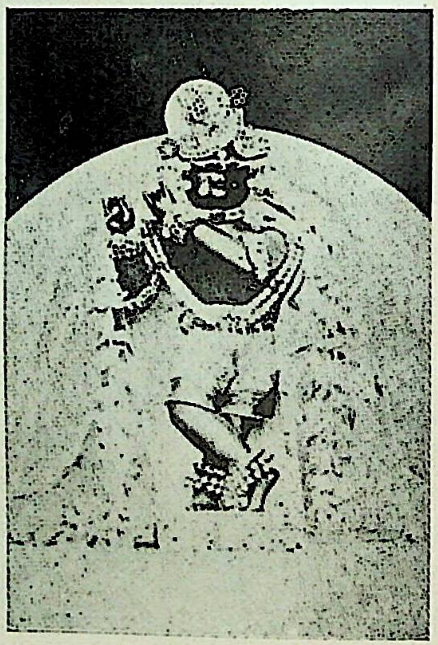

श्री राधारमण : वृन्दावन
(श्री गोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा सेवित),
पृ० ५६५

बंग-भूमि की कृष्ण-भक्ति-परम्परा

पूर्वी भारत में आर्य-संस्कृति ने, जहाँ तक हमारा ज्ञान है, एक विशेष रूप धारण कर लिया था। मौर्य-साम्राज्य के पराभव के पश्चात् मध्यदेश का पुनः सांस्कृतिक अभ्युत्थान हुआ। संस्कृत-साहित्य के पठन-पाठन की सुदृढ़ परम्परा पुनः स्थापित हुई। इसके फलस्वरूप बंगाल में वेदज्ञ ब्राह्मणों का प्रवेश होने लगा। इस कालावधि के पूर्व बंगाल में वेद-विरोधी बौद्ध और जैन-धर्म प्रचलित थे। वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा ही बंगाल (पूर्वी भारत) में रामायण और महाभारत सम्बन्धी पुराकथाओं का प्रचार हुआ और बंग-समाज में गृह-देवता (कुल-देवता) के रूप में विष्णु, शिव, चण्डी आदि की पूजा की परम्परा स्थापित हुई। फलस्वरूप साहित्य में इनसे सम्बद्ध तीन प्रकार की काव्य-धाराएँ स्थापित हुईं—(क) आध्यात्मिक साधकों का धार्मिक गान (चर्या-गीत), (ख) उपदेश-काव्य (दोहा-छाड़ा) तथा (ग) देवी-देवता-विषयक महात्म्यमूलक गेय कविता।

तुर्की-आक्रमण के समय बंगाल में मुख्य रूप से चार धार्मिक परम्पराएँ प्रचलित थीं-(क) ऐतिह्यवाहित ग्राम-देवी की पूजा से सम्बद्ध साहित्य, (ख) महायान बौद्धधर्म से सम्बद्ध साहित्य, (ग) योगी-मत तथा शैव-मत से सम्बद्ध साहित्य और (घ) पौराणिक ब्राह्मण-मत (जिसमें शिव व चण्डी की उपासना का विधान था) से सम्बद्ध साहित्य। मुसलमानों के राजत्व-काल की प्रथम दो-तीन शताब्दियों में ये धर्म एक-दूसरे में क्रमशः मिश्रित होने लगे थे। अन्त में वे दो धाराओं में समीकृत हो गये—(क) पौराणिक (ख) अपौराणिक। बारहवीं शताब्दी के अन्त में पूर्वी भारत में तुर्कों के आक्रमण होने लगे थे। दो शताब्दियों तक स्थिति अराजकतापूर्ण रही। संस्कृत और लोकभाषा-शिक्षा के केन्द्र छिन्न-भिन्न हो चुके थे। ऐसी स्थिति में धर्म के एक मिश्रित रूप का अभ्युदय हुआ, जिसमें एक देवता-विशेष की उपासना भिन्न-भिन्न रूपों में होने लगी। इसी प्रक्रिया में कृष्णोपासना के दो रूप प्रतिस्थापित हुए। प्रथम में कृष्ण पूतना-विनाशी, गोवर्धनधारी, कंस-विनाशक रूप में, और दूसरे में गोपी-केलिकर-रूप में पूज्य हुए।

बारहवीं शताब्दी में जिनके द्वारा साहित्य की रचना हो रही थी, वे संस्कृत-साहित्य के प्रति आस्थावान् थे। उनका सम्बन्ध राजसभाओं से था। उनमें से कई धर्मगुरु, साहित्यकार भी थे। इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि सेन राजाओं के शासनकाल में मन्दिरों के प्रस्तरों पर उत्कीर्ण शिव और विष्णु की अस्त्रीक व सस्त्रीक, दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मिली हैं। इन्हीं मूर्तियों के मध्य महिषमर्दिनी या राजेश्वरी चण्डी की उत्कीर्ण मूर्तियाँ भी हैं। इस प्रकार ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के परवर्ती साहित्य की संरचना और प्रकृति पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि इस समय 'मनसा-काहानी', 'चण्डी-काहानी' आदि लोक-प्रचलित कथानकों पर आधारित गीतों, रामायण, कृष्ण-लीला तथा अन्य पौराणिक कथानक, छोटे-छोटे गीतों और पांचाली नृत्य-गीतों के, ग्रामोत्सवों अथवा देव-पूजन के उपलक्ष्य में देव-मन्दिरों में गाये जाने की परम्परा थी।

मांगलिक अनुष्ठानों पर गाये जानेवाली गीतियों को मंगल-काव्य की संज्ञा दी गयी थी। यह नाम अशोक के समय अजाना नहीं था। अशोक के धौली और जौगड़-शिलालेखों से ग्रामोत्सवों पर गाये

जानेवाले मांगलिक गीतों का सांकेतिक उल्लेख मिलता है। 'इयं च लिपि अनु चातुमासं तिसेन नखते ज सोतविया कामं च शगसि रजनासि अंतला पि ति मेज एकेन पि सोतविया' (इस लिपि को चतुर्मास मध्य-तिष्य-नक्षत्र में सुनना होगा (चाहिए)। इच्छा होने पर विशेष-विशेष अवसरों पर तिष्यनक्षत्र के अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों में भी सुना जा सकता है।) तिष्य (पुष्य) नक्षत्र में निश्चय ही कोई गार्हस्थिक परम्परा प्रचलित थी, जिसकी ओर ये पंक्तियाँ संकेत करती हैं।

वसन्त मास का नाम फाल्गु था। फल्गु उत्सव अर्थात् रंगीन चूर्ण के खेल का उत्सव, विशिष्ट नृत्य-गीत संयुक्त होने के कारण इसे 'फागोत्सव' नाम से ख्याति मिली। रास-नृत्य-गीत अवहट्ठ में रासक नाम से विख्यात हुआ। मयेली नाच-गान चर्चरी, चांचर अथवा चच्चरी नाम से प्रसिद्ध हुआ। बंगाल में चांचर की परम्परा प्रायः लुप्त हो गयी। अन्तलिका नृत्य से झूमर तथा झमाल गान विकसित हुआ। पुतुल नाच के साथ नृत्य-गीत पाञ्चालिका नाम से विख्यात हुआ। विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश-गान के साथ नृत्य का निदर्शन है, इसमें चर्चरी, अन्तालिका का उल्लेख है।

विशुद्ध साहित्यिक गीत-कविता साधारणतः संस्कृत और प्राकृत नाटकों में उपलब्ध है। यह अवहट्ठ और लोककाव्यों में भी ग्रहण की गयी। इसका प्रथम उल्लेख चौदहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में रचित 'पारिजात-हरण' नाटक में मिलता है। यह नाटक संस्कृत में रचित है। इसमें इक्कीस गान मैथिली भाषा में है। यह उमापति उपाध्याय रचित नाट्यकृति है। ये मिथिला के राजा हरिसिंह देव के मन्त्री थे। 'पारिजात-हरण' से एक उदाहरण (नटरागे गीतम्) यहाँ उद्धृत है। दूती कृष्ण के पास आकर नायिका के विरह का वर्णन करती है—

कि कहब माधव तनिक विशेषे। अपनह तनु धनि पार कलेशे॥
अपनुक आननु आरसि हेरि। चानक भरम कोप कत बेरि॥
भरमह निअ करु-उर पर आनि। परश तरश सरसीरुह जानि॥
चिकुरनिकर निज नयन निहारि। जलधर धार जानि हिय हारि॥
आपन वचन पिकरव अनुमाने। हरि हरि तेह परितेजय पराने॥
माधव करिअ अवह संधाने। सुपुरुस निठुर न रहय निदाने॥
सुमति 'उमापति' भन परमाने। माहेशरदेइ हिन्दूपति जाने॥

सेन राजाओं के कौलिक देवता शिव थे, परन्तु अपने शासन के उत्तरवर्ती काल में ये विष्णु-उपासक हो गये थे। लक्ष्मण सेन की सभा में कृष्णलीला-कहानी का विशेष आदर था। स्वयं लक्ष्मण सेन, उनके पुत्र एवं सभापण्डितों ने कृष्ण-लीला विषयक श्लोक लिखे। महायान-उपास्य अनेक देव-देवी' ब्राह्मण-तान्त्रिक उपासना में स्वीकृत हो चुके थे एवं लोपोन्मुख तान्त्रिक बौद्धमत ब्राह्मण-मत में प्रवेश कर गया था। ग्रामदेवी-देव के स्थान पर शास्त्रसम्मत देव-देवियों के नाम गृहीत होने लगे थे। बंगाल में पाषाण-निर्मित अथवा पट-प्रतिमा-पूजा सर्वप्रथम बौद्ध-तान्त्रिक-मत में प्रचलित हुई और गुप्त-शासनकाल से ब्राह्मण-धर्म में भी स्वीकृत हुई। परम्परा से प्रचलित तान्त्रिक महायान सम्प्रदाय तथा उसके युगनद्ध हेरुक के समानान्तर अर्धनारीश्वर-उपासना की भाँति सपत्नीक विष्णु-मूर्तिपूजा बंगाल में प्रचलित हुई और महिषासुरमर्दिनी या

राजेश्वरी-चण्डी की मूर्ति को मन्दिर में प्रतिष्ठित करके पूजा करने की परम्परा प्रचलित हुई। इस प्रदेश में प्रस्तर की मूर्ति का गढ़ना सम्भव नहीं है, अतः विष्णु-पूजा, शालिग्राम-शिला और शिव की पूजा शिवलिंग के रूप में करने की प्रथा विकसित हुई। चण्डी की पूजा शरदोत्सव-रूप में परिणत हुई। (सदुक्ति-कर्णामृत १-५, १-३४।) परन्तु राधाकृष्ण की युगलमूर्ति की उपासना की प्रथा तुर्की-आक्रमण के पश्चात् विशेष रूप से प्रचलित हुई।

गौड़वंशी राजमन्त्रियों में से अनेक मन्त्री विष्णु के उपासक थे। बंगाल में नववैष्णववाद के अभ्युत्थान में इनका विशेष योगदान रहा है। इनके माध्यम से बंगाल में विलुप्त कृष्णलीला विषयक पदावली उमापति और विद्यापति की पदावलियों से नवजीवन प्राप्त कर सकी।

साहित्य और अध्यात्म, दोनों क्षेत्रों में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरंभ में पूर्व बंगाल में भागवत-पुराण प्रचलित था, इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। सर्वानन्द, विष्णु के उपासक थे। उन्होंने 'टीका-सर्वस्व' में जिन प्राचीन ग्रन्थों के अंशों को उद्धृत किया है, उनमें हरिवंश-पुराण व विष्णु-पुराण के अंश तो हैं, किन्तु 'भागवत-पुराण' के अंश नहीं हैं। यदि वैष्णव-शास्त्र का यह ग्रन्थ उस समय प्रचलित होता तो उन्होंने इसका उल्लेख अवश्य किया होता। पन्द्रहवीं शताब्दी में विष्णु-उपासक बृहस्पति मिश्र राय मुकुट ने 'अमरकाव्य' की टीका 'रसचन्द्रिका' नाम से की थी। इसमें बहुसंख्यक ग्रन्थों का उल्लेख है, परन्तु 'भागवत-पुराण' का उल्लेख नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक बंगाल में भागवत-पुराण प्रचलित नहीं था।

सर्वप्रथम गौड़ सुल्तान से सम्बंधित मालाधर वसु (सन् १४७३ ई०) ने 'भागवत' का अनुवाद तथा रामकेलि (ग्राम) के सुलतान हुसेनशाह के मन्त्री सनातन ने पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में 'श्रीमद्भागवत' की आलोचना की थी। इस बीच तिरहुत में 'भागवत' प्रचलित हो चुका था। संवत् १४६५ (लक्ष्मण सं० ३४९) में विद्यापति ने 'भागवत-पुराण' की प्रतिलिपि की थी। अतः पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में तिरहुत व बंगाल में 'भागवत-पुराण' प्रतिष्ठित हुआ।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में चैतन्य ने जिस भक्ति-सरिता को प्रवाहित किया, उसकी भूमिका गौड़ राजसभाओं में राज्य-कर्मचारियों द्वारा निर्मित हुई थी। इसके साथ-साथ एक दूसरी भूमिका की निर्मिति माधवेन्द्र पुरी द्वारा हुई।

पन्द्रहवीं शताब्दी के समापन वर्षों में, जब गौड़ पर हुसेनशाह ने अधिकार कर लिया तो गौड़ नगर के उपकण्ठ में स्थित रामकेलि ग्राम में एक शिष्ट-संस्कृत-बोध को कवि-गोष्ठी उस समय विख्यात हो चुकी थी। रामकेलि-कवि-गोष्ठी के पण्डितजन वैष्णव-मतानुयायी थे और उनमें से अनेक कृष्ण-आख्यान-विषयक संस्कृत-काव्य के रचयिता थे। उनमें एक चतुर्भुज नामक वैष्णव-कवि हो चुके हैं। उन्होंने 'विधु-मनु-शताब्दे' (अर्थात् १४९३ ई०) में 'हरिचरित' शीर्षक काव्य की रचना की। यह काव्य तुकान्त मात्रिक छन्द में रचित है। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

सुर समूह समीहित सिद्धये। धरणिधारणगोद्विजवृद्धये।
यदुकुलेह अवतार य एषः नमः। सततमस्तु मुदे मधुसूदनः॥

'देवताओं की इष्टसिद्धि-निमित्त, भू-भार-मोचन एवं गो-ब्राह्मणों की वृद्धि के लिए जिन्होंने यदुकुल में जन्म ग्रहण किया, वे मधुसूदन हमारे लिए आनन्द का कारण बनें।'

सनातन और रूपगोस्वामी, दोनों भाई रामकेलि ग्राम के निवासी थे। ये हुसेनशाह के विश्वासपात्र मन्त्री थे। इनका पदाधिकारी नाम क्रमशः 'साकर मल्लिक' (छोटे राजा, पूर्वकाल के प्रतिराजा) एवं दबीर खाश (प्रधान मुन्शी) था। ये गौड़ मनीषियों के गोष्ठपति भी थे।

हुसेनशाह के अधीन कार्य करते हुए रूप गोस्वामी ने कुछ काव्यग्रन्थों और गीति की रचना की। उनमें 'हंसदूत', 'उद्धव-सन्देश' एवं 'गीतावली' मुख्य हैं। संन्यास-ग्रहण के पश्चात् रूप गोस्वामी ने अन्य कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचे—काव्य, नाटक व सिद्धान्त-ग्रन्थ। लक्ष्मणसेन के सभाकवि धोयी ने पवन-दूत के समान हुसेनशाह के सभासद के रूप में मेघदूत के अनुकरण पर 'उद्धव-सन्देश' की रचना की। उससे एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कृष्ण के गोष्ठ से प्रत्यावर्तन का समय हो गया है। राधा का मन चञ्चल है-- यह समझकर उनका प्रसाधन करती हुई सखी कहती है—

वेगुर्नायं प्रसरति गवां धूम धारा कृशानां, वेणुर्नासौ गहन कुहरे कीरोरवीति।
पश्योन्मत्ते रविरग्यियौ नाधुनापि प्रतीचीं, मा चाञ्चल्यं कलय कुचयोः पत्रवल्लीः तनोमि॥

'जिसे तुम गोधूलि समझती हो. वह अग्नि-धूमोद्गार है। जिसे तुम कृष्ण की वंशी-ध्वनि समझती हो, वह गहन-वन में साद्र वेणु-ध्वनि है। देखो, अभी सूर्य अस्ताचलगामी नहीं हुआ है, अतः चञ्चल न हो, मैंने पत्र-पल्लव से कुच-युग्म को आवृत कर रखा है।'

एक दूसरा छन्द है। कृष्ण गोष्ठ से लौट आये हैं। गुरुजनों की उपस्थिति के कारण राधा गृहद्वार पर आकर दिवसान्त में एक बार प्रियदर्शन-निमित्त आकुल है। उसके मनोभावों को समझकर सखियाँ कहती हैं—

मा मन्दाक्षं गुरु गुरुजनाम् देहलीं गेहमध्यात्, एहि क्लान्ता दिवसमखिलं हन्त विश्लेषतास्मि।
एषः स्मरो मिलति मृदुले वल्लवोचित्तहारी, हारी गुञ्जावलीभिरलिभिर्लीढगन्धामुकुन्दो॥

'गुरुजनों की उपस्थिति से लज्जित न होना। (तुम) समस्त दिन कृष्ण-दर्शन-विहीना रहीं। अतः घर से बाहर आकर देहली पर खड़ो रहो। हे मुग्धे! देख, अलिलीढ गन्ध गुञ्जामालवान्, गोपी-चित्तहारी मुकुन्द लौट आये हैं।'

जयदेव के गान का अनुसरण कर रूपगोस्वामी ने कुछ पदावली की रचना की थी। ये रचनाएँ 'गीतावली' नाम से संकलित थीं। बड़े भाई सनातन, रूप के गुरु थे। इनके एक पद में रूप के प्रयोग में श्लेष है। एक अर्थ गुरुनाम है, दूसरा नाम नायक और उपास्य का है। परवर्ती काल में कुछ वैष्णव कवियों ने संस्कृत-पदावली की रचना की, परन्तु रूप की रचना की तुलना में वे साधारण हैं। रूप का एक गान उद्धृत कर रहा हूँ।

ज्योत्स्ना में राधिका अभिसार करेंगी। सखी उनके अभिसारानुकूल वेशभूषा का वर्णन करती है :

त्वं कुचवल्लित मौक्तिक माला। स्मित सान्द्रीकृत शशिकरजाला॥
हरि अभिसार सुन्दरि सित वेशा। राका रजनि रजनि गुरु रेखा॥

परहित माहिष दधि रुचि सिंचिया। वपुरर्पित घन चन्दन निचया ॥
कर्ण कराश्वित कैरव हासा। कलित सनातन संग विलासा ॥

'द्रुत नि:श्वास के कारण तुम्हारे वक्ष की माला स्पन्दित हो रही है। (तुमने) स्मित हास से ज्योत्स्ना को घनीभूत कर दिया है। हे सुन्दरी! तुमने धवल परिधान धारण कर रखा है। इस समय अविलम्ब हरि-अभिसार के लिए चलो। पूर्णिमा-निशा डूब रही है। तुमने माहिष-दधि के समान श्वेत वक्षोवास-धारण किया है और सर्वांग प्रगाढ़ चन्दन का लेप कर लिया है। तुम्हारे कानों में विकसित कुमुद शोभायमान हैं। तुमने सनातन का सानिध्य पाने के लोभ में विलास का अवलम्ब ग्रहण कर लिया है।'

रूपगोस्वामी की रचना-चातुरी के दर्शन उनके दो नाटकों—'विदग्ध माधव' (सं० १५२४) एवं 'ललित माधव' (सं० १५२९) में होते हैं। उनके 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' एवं 'उज्ज्वल नीलमणि' वैष्णव-रसशास्त्र के सर्वप्रामाण्य ग्रन्थ हैं।

रूपगोस्वामी ने 'पद्यावली' शीर्षक से 'वैष्णव-कविताओं' का एक संकलन किया था। इसमें बंगाली कवियों द्वारा रचित व्रजलीला-विषयक प्रकीर्ण श्लोक संकलित हैं। कुछ श्लोक समसामयिक अथवा अल्पकाल परवर्ती वैष्णव-कवियों के हैं। उनमें माधव चक्रवर्ती, जगन्नाथ सेन, जगदानन्द राय, संजय कविशेखर, केशव भट्टाचार्य, केशव छत्री, गोविन्द भट्ट इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ गौड़ दरबार के कर्मचारी भी थे। बंगाली कवियों की रचनाओं के कुछ उदाहरण यहाँ दे रहा हूँ:

पन्थाः क्षेत्रभयो हन्त ते परिहर प्रत्यूह सम्भावनाम्, एतन्मात्रमधारि सुन्दरि मया नेत्र प्रणाली पथा।
नीरे नीलसरोज लांछजनं कूले तमालाङ्कुरः, कुञ्जे कोऽपि कालिन्द शैल हितुः पुंस्कोकिलः खेलति ॥

'तुम्हारा पथ मंगलमय हो, विघ्न की आशंका लेशमात्र न करना। हे सुन्दरी! मैं इसी क्षण देखकर आ रही हूँ। कालिन्दी के जल में एक उज्ज्वल-नीलवर्ण पद्म, तट पर एक छोटा तमाल तरु और कुञ्ज में एक कोकिल क्रीड़ा-रत है।'

बंग-प्रदेश में सोलहवीं शताब्दी में चैतन्य-धर्म का जो चतुर्दिक् प्रसार हुआ था, उसका आरम्भ राष्ट्रीय स्वाधीनता का आश्रय लेकर पूर्ववर्ती शताब्दी में ही हो चुका था। इलियासशाह सुलतान की शक्ति और प्रतिपत्ति पूर्व भारत के अतिरिक्त सुदूरपूर्व दक्षिण प्रान्तपर्यन्त स्वीकार हो चुकी थी। इस शताब्दी के आरम्भ से ही अराकान के राज्यच्युत राजा सिंहासनोद्धार की आशा से गौड़ सुलतान के आश्रय में प्रार्थी बनकर यहाँ बीस-पचीस वर्षों तक रहे। उन्होंने यहाँ की संस्कृति के प्रति अनुराग लेकर, देश लौटकर गौड़ सुलतान की सहायता से सिंहासन का पुनरुद्धार किया। इस प्रकार अराकान राज्यसभा का बंगला-संस्कृति से सम्पर्क स्थापित हुआ। चटगाँव के साथ इसके पूर्व ही उसका सम्पर्क स्थापित हो चुका था। परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में चटगाँव व बंगला-संस्कृति का सूत्र विच्छिन्न हो गया था।

सोलहवीं शताब्दी में चटगाँव और सिलहट से जो विद्वान् और भक्तगण चैतन्य के सम्पर्क में आये, वे पूर्व-दक्षिण और पूर्व-उत्तर के निवासी थे। इस शताब्दी के प्रथमार्ध में बंगला-संस्कृति पूर्वमुखापेक्षी हुई थी। शताब्दी के शेषार्ध में पश्चिम की संस्कृति-धारा का संयोग बंगला-संस्कृति के माध्यम से असम के साथ हुआ। तिरभुक्त कवि विद्यापति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। जौनपुर के अन्तिम

शर्की (शिया) सुलतान हुसेनशाह दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी व सिकन्दर लोदी-द्वारा पराजित हो पहले बिहार (सं० १४७५) तथा बंगाल में शरणापन्न हुए। गौड़ सुलतान हुसेनशाह ने उन्हें ससम्मान आश्रय दिया। सपरिवार व सुजनों के संग हुसेनशाह शर्की ने गंगातटवर्ती कहलगाँव के निकट अपना निवास बनवाया। उन्होंने अपना शेष जीवन यहीं व्यतीत कर दिया। शर्की सुलतान के साथ कुछ कवि व गुणीजन भी बंगाल आये थे। इन्हीं में से सूफो साधक कवि कुतबन थे। इनका 'मृगावती' काव्य अवधी-साहित्य की प्रसिद्ध तथा प्रधान रचना है। कुतबन के काव्य के अल्पपरवर्तीकाल में कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने विख्यात 'पद्मावती' या 'पद्मावत' की रचना की।

'मृगावती' काव्य की रचना ९०९ हिजरी (१५६० शक, १५०३ ई०) में हुई थी। काव्य के आरम्भ में कवि ने हुसेनशाह की प्रशंसा की है। हिन्दी के साहित्यकारों के अनुसार ये हुसेनशाह जौनपुर के शर्की सुलतान हुसेनशाह थे। किन्तु इसके अनेक वर्ष पूर्व ही शर्की सुलतान राज्यच्युत हो चुके थे। कुतबन उक्त ग्रन्थ की रचना के समय तो गौड़ सुलतान के आश्रय में थे। कुतबन शर्की सुलतान के आश्रित थे तथा उनके साथ बंगाल आये, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उन्होंने जिस हुसेनशाह की अभिशंसा की है वह सिंहासन-च्युत हुसेनशाह शर्की नहीं थे, अपितु सिंहासनारूढ़ हुसेनशाह सुलतान थे। गन्धर्वराय गौड़ सुलतान के सभा-सदस्य थे। दरबार के प्रसंग में कुतबन ने उनका उल्लेख किया है। सुतरां इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

मेरा अनुमान है कि कुतबन और जौनपुर-परम्परा के कवियों द्वारा ही लौकिक प्रणय-काव्यधारा का नवीन विकास हुआ था। नूतन काव्यधारा इसलिए कह रहा हूँ कि अपभ्रंश-अवहट्ट में इस प्रकार की काव्य-परम्परा प्रचलित थी, परन्तु उनमें से एक 'विद्यासुन्दर-कहानी' के अतिरिक्त कोई अन्य कथानक साहित्य में गृहीत नहीं हुआ। ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण यह है कि प्राचीन बंगला-साहित्य मुख्य रूप से देव कथाओं पर ही आधारित था। अतः 'विद्यासुन्दर-कहानी' देवता-माहात्म्याख्यायक रूप में ही बंगला-साहित्य में गृहीत हुई।

अपने राज्य के हिन्दू कर्मचारियों के प्रभाव से स्वाधीन मुसलमान शासकों ने किसी-किसी कवि-पण्डित का पोषण राज-कर्त्तव्य मान लिया था। कर्मचारी अथवा सभासद होने पर भी वे कवि-पण्डितों को उपाधि देते थे। यह उपाधि नाम के अन्त में युक्त की जाती थी, जो मूलतः तुर्की शब्द 'खान' (खाँ) अर्थात् 'ठाकुर' या 'महाशय' अर्थवाचक होता था जैसे शुभराज खान, गुणराज खान, यशोराज खान इत्यादि। इनमें से 'राज-खान' अंश पृथक् होकर परवर्तीकाल में 'राय खाँ' में परिवर्तित हो गया।

इस काल के कवि-पण्डितजन अपनी रचनाओं में राजा (सुलतान) का नाम सम्मान या कृतज्ञता-ज्ञापनार्थ जोड़ देते थे। गीति-कविता में यह प्रक्रिया सर्वप्रथम तिरहुत में दृष्टिगोचर हुई। उमापति उपाध्याय ने अपनी रचनाओं में साधारणतया राजा के नाम के साथ हिन्दूपति का योग भी किया। साथ ही साथ राजमहिषी का नाम भी दिया है। एक शताब्दी के पश्चात् विद्यापति और उनके समकालीन कवियों में इस प्रवृत्ति को हम नियमित रूप से ग्रहीत पाते हैं।

बंगाल व तिरहुत से प्राप्त दो गीतों में हुसेनशाह का उल्लेख है। एक की भणिता 'नव-कविशेखर' है जो यशोधर की 'भणिता' है। दूसरा गीत विद्यापति का है।

प्रथम मैथिल-कवि की रचना प्रतीत होती है। इसमें हुसेनशाह शर्की का उल्लेख है। द्वितीय रचना के सम्बन्ध में सन्देह है। सप्तदश शताब्दी के एक महत्त्वपूर्ण वैष्णव-लेखक कह गये हैं कि विद्यापति नाम या भणिता का व्यवहार एक बंगाली कवि ने भी किया है। इतना होने पर भी गौड़ दरबार से इनके सम्बन्ध होने का कोई सूत्र नहीं मिलता। गान में पाठान्तर के अन्तर्गत 'हुसेनशाह' के स्थान पर 'नसीरशाह' भी मिलता है। उक्त गान में दो भणितायें हैं।

भनइ जसोधर नव कवि शेखर पुहवी तेसर काहां।
साह हुसेन भृंग सम नागर मालति तां हां॥
साह हुसेन अनुमाने यारे हानल मदन बाने।
चिरं चिरन्जीवी होउ पन्च-गौड़ेश्वर कवि विद्यापति भाने॥

पाठान्तर—

नसीरा साह ये (जे) जाने, यारे (जारे) हनल मदन वाने।
चिरन्जीवी हउ पन्चगौड़ेश्वर कवि विद्यापति भाने॥

'पन्चगौड़ेश्वर' शब्द का यदि अभिधार्थ लें तो गान में सम्बोधित व्यक्ति बंगाल के सुलतान हुसेनशाह अथवा उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन नसरतशाह हैं।

यदि नीचे उद्धृत रचना वास्तव में विद्यापति की है, तो इसमें सम्बोधित शाह नसीर (सं० १४४२-४६) बंगाल के नसीरुद्दीन शाह हैं :

विद्यापति भान।
अशेष अनुमानि।
सुलतान शाह नसीर मधुप भूले कमला वाणी।

बंगाल के सुलतान हुसेनशाह का उल्लेख हम यशोराज खान के निम्नांकित पद में विवादित रूप में पाते हैं :

श्रीयुत हसन जगत भूषन, सोइ इह रस-जान।
पन्च गौड़ेश्वर, भोग पुरन्दर, भने यशराज खान॥

तिरहुत से प्राप्त एक गान में, कंसनारायन की भणिता में 'नसिरा-शाह' सुलतान का नाम आया है। भणिता के अन्त में कुछ अस्पष्टता है।

सुमुखि-समाद समादरे समदल नसिरा शाह सुरताने।
नसिरा भूपति सौरभ देई पति कंस नरायन भाने॥

यह कंस नरायन कौन है ? क्या ये ताहिरपुर के राजा कंस नारायन थे ?

तिरहुत से प्राप्त विद्यापति के एक गान की भणिता में सुलतान गयासुद्दीन का नाम है :

वे कते उ चोरि गुपुत कर कतिखन विद्यापति कवि भान।
महलम जुगपति चिरें जीवें-जीवें जीवधू गासदीन सुरुतान॥

इससे ऐसी धारणा बनती है कि विद्यापति पन्द्रहवीं शताब्दी के कवि नहीं थे। ये हुसेनशाह के पुत्र एवं उनके वंश के अन्तिम नृपति गयासुद्दीन महमूदशाह (सं० १५५३-५८) के आश्रित थे।

चौदहवीं शताब्दी में उमापति उपाध्याय-रचित संस्कृत-नाटक के मध्य जो गान हैं' उनकी भाषा तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में रचित विद्यापति के गीतों की भाषा एक समान है। पन्द्रहवीं शताब्दी की यह भाषा और गान का वैशिष्ट्य सम्पूर्ण पूर्वी भारत के लौकिक साहित्य की गीतकविता की आदर्श भाषा-शैली थी।

सोलहवीं और परवर्ती शताब्दी के बंगला-साहित्य की इस भाषा और उसके साहित्यिक स्वर में बहुसंख्यक पदों की रचना हुई। आधुनिक काल में बंगाल में यह भाषा 'ब्रजबुली' नाम से विख्यात हुई। ऐसा अनुमान होता है कि आरम्भ में इसका मूल नाम 'ब्रजाउली' था (अर्थात् ब्रज-सम्बन्धी) जैसे सोनाली (सोनावलि), असमिया, रूपालि आदि।

ब्रजबुली के मूल में दो भाषाएँ हैं—एक अवहट्ट और दूसरी मैथिली। इसमें मैथिली भाषा का ही प्रभाव अधिक है। यह मैथिली तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की भाषा है। विद्यापति के समय में ब्रजबुली गीति-कविता-रीति मिथिला में प्रचलित थी। इसके अनन्तर संस्कृत भाषा राजसभाओं से पृथक् हो गयी और उसके स्थान पर ब्रजबुली मोरंग, बंगाल, उड़ीसा और असम में प्रचलित हुई। प्रत्येक अंचल की स्थानीय भाषा की कुछ न कुछ छाप इस पर पड़ी।

इन सभी अंचलों में ब्रजबुली गीति-कविता का विशेष विकास नहीं हो सका। परन्तु निश्चित रूप से ज्ञात हुआ है कि तिरहुत के बाहर ब्रजबुली का प्राचीनतम गान उड़ीसा में रचित हुआ था। यह गान 'परशुराम-विजय' नामक एकांकी नाट्य-रचना में आया है। इसके रचयिता उड़ीसा के राजा 'गजपति कपिलेन्द्र देव' (राज्य-काल सं० १४३५-६६) थे। वस्तुस्थिति यह है कि यह रचना उनके किसी सभा-कवि की है। उमापति की नाट्य-कृति के समान यह रचना भी संस्कृत में है। ब्रजबुली में केवल एक गान है (अमर रागेन गीयते)। वह नीचे दिया जा रहा है :

केवन मुनि कुमार परस्त दक्खिन कर,
बामेन शोहे धनुशर ना।
कोपेन बोलइ वीरत, तू से मो वधिलू तात,
आज तोर छेदिवइ माथ ना॥
सुन राजन हो कि ए तोर राजो ब्रह्म वधे ना।
ए तोर चन्द्र वदन मेघे कि चाक्किला जन्ह,
ताहा देखि विकल मो मन ना॥
आवर देखइ अरिष्ट राजो तो रुधिर वृष्टि,
पुर बेड़ि रोतन्ति शृगाल ना।
सुन राजन हो, किए तोर राजो ब्रह्म वधी ना।

(इसकी भाषा पर उड़िया की छाप है, और भणिता का अभाव लक्षणीय है।)

बंगाल में ब्रजबुली की सर्वप्राचीन रचना किस काल की है, इस विषय में निर्णय लेना कठिन है, फिर भी रचना-काल की दृष्टि से दो गीतों के प्रति प्राचीनतमता का आग्रह बनता है। उनमें से एक है यशोराज खान रचित। इन्होंने कृष्ण-चरित-विषयक एक प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन किया था। यह गान इसमें भी है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग के एक वैष्णव कवि, 'पीताम्बर दास' ने 'रसमञ्जरी' शीर्षक रचना का प्रणयन वैष्णव-कविता में 'अलंकाररस' विवेचन की दृष्टि से किया था। उन्होंने भी इस गान को उद्धृत किया है। इसमें कवि ने हुसेनशाह का नामोल्लेख किया है। अतः यह रचना उनके राजत्वकाल (सं० १४९३-१५१९) की है। कृष्ण का गोष्ठ से लौटने का समय हो गया है, राधा उनके दर्शन के लिए व्यग्र है। उसकी व्यग्रता इतनी तीव्र है कि वेशभूषा सम्पूर्ण करने (प्रसाधन करने) का अवकाश नहीं है :

एक पयोधर चन्दन लेपित, आरे सहजइ गोर।
हिम-धराधर कनक-भूधर कोरे मिलल जोर॥

माधव तुअ दरसन काजे।
आध पसाधन करत सुन्दरी वाहिर देहली माझे॥

दाहिन लोचन काजरे रन्जित धवल रहल वाम।
नील धवल कमल उगले, चान्द पूजल काम॥

श्रीयुत हुसन जगत भूषन, सोइ इह रस जान।
पन्च गौड़ेश्वर, भोग पुरन्दर, भने यशराजखान॥

द्वितीय गान नेपाल से प्राप्त विद्यापति-पदावली के एक संग्रह में उपलब्ध हुआ है। यह रचना त्रिपुरा के राजा धन्यमानिक के सभाकवि राजपण्डित ज्ञान की रचना है। धन्यमानिक का शासनकाल सन् १४९०-१५२२ ई० है। अतः यह रचना इसी काल की है। उदासीन कृष्ण को राधा की दूती मानिनी राधा की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती है :

प्रथम तोहार प्रेम गौरव बाउलि गैल।
अधिक आदरे लोभे लुबुधलि चूकलि ते रति खेल॥

प्रेमह एक अपराध माधव पलटि हेरह ताहि।
तोहे विन जेहो अमृत पिवए तेहो न जीव-ए राहि॥

कालि परशू ई मधुर जे छलि आज से भेलि तीति।
आनह बोलब पुरुष निर्दय (सहजे) तेज पिरीति॥

वैरिह के एक दोष भरमिअ राज पण्डित ज्ञान।
बारि कमला-कमल रसिया धन्य मानिक जान॥

'तुम्हारे प्रथम प्रेम का जो गौरव था, (वह) गौरव गर्वित हो गया, अत्यधिक लोभ-लुब्ध होने से रति-क्रीड़ा में चूक हो गयी। माधव, एक अपराध क्षमा करो। राधा को पुनः देखने चलो, तुम्हें छोड़कर यदि राधा अमृत-पान भी करे तो भी बच नहीं सकती। कल-परसों तक जो मधुर था, वह तिक्त हो गया। अन्य लोग कहेंगे पुरुष निर्दय है, सहज में ही (उसने) प्रेम की उपेक्षा कर दी। शत्रु का भी एक दोष क्षम्य है। राजपण्डित ज्ञान (कहते हैं) बालिका-कमल-रसिक धन्यमानिक (इसका मर्म जानते हैं)।'

पन्द्रहवीं शताब्दी में भागवत-पुराण बंगीय कृष्ण-भक्ति का नवीन स्रोत बना। इसके वाहक चैतन्य महाप्रभु के आगमन के प्रदर्शक बने। ये अद्वैत-मत में दीक्षित कृष्ण-रस-आप्लावित संन्यासी माधवेन्द्र पुरी थे। ये किस प्रान्त के निवासी थे, इसका हमें परिज्ञान नहीं। ये बंगाली हो सकते हैं, दाक्षिणात्य भी हो सकते हैं। गोवर्धन में गोपाल मूर्ति को प्रकट कराकर इन्होंने सेवा-प्रतिष्ठा की। गोपाल की सेवा हेतु चन्दन-काष्ठ लाने के लिए ये दो-चार वर्षों के अन्तराल से द्रविड़ देश की यात्रा करते थे। इनकी इस यात्रा का मार्ग गंगा-तटवर्ती राढ़ से होकर बालेश्वर, कटक, पुरी होते हुए दाक्षिणात्य-पथ था। माधवेन्द्र पुरी अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अनेक पण्डित जनों ने इनसे भक्ति-दीक्षा ग्रहण की। इन पण्डित जनों में से एक व्यक्ति थे चैतन्य की माता व भ्राता के दीक्षागुरु अद्वैताचार्य और दूसरे व्यक्ति थे गुनराज खाँ। कुछ लोगों की धारणा है कि चैतन्य के अभिन्न नित्यानन्द को भी अद्वैत के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला था। गौड़ सुलतान सेवारत सनातन एवं रूप को भी माधवेन्द्र के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सम्भवतः माधवेन्द्र पुरी द्वारा ही बंगाल में 'भागवत' का प्रचार हुआ था। वे पूर्णरूपेण 'भागवतिया' वैष्णव थे।

एवं व्रतः स प्रियनामकीर्त्या-जातानुरागद्रुतचित्त उच्चैः।
हस्त्योथा (त्था) रोदिति रौति गायति उन्मादवत नृत्यति लोकबाह्यः।

'इस निष्ठा से वे प्रिय का नाम-संकीर्तन करते-करते अनुराग-भाव से आकुलित होकर अट्टहास करते, रोदन करते, विलाप करते, संसार का परित्याग कर पागल के समान नृत्य करते।'

माधवेन्द्र पुरी के मुख्य और सर्वप्रिय शिष्य ईश्वरपुरी चैतन्य के दीक्षागुरु थे। गया में दीक्षित होने के पश्चात् चैतन्य ने आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया। जिस पथ से माधवेन्द्र पुरी दक्षिण की यात्रा करते थे, उसके निकट ही कुलीन ग्राम था। कुलीन ग्राम में ही गुनराज खाँ को माधवेन्द्र पुरी का दर्शनलाभ हुआ था। चैतन्य के जन्म के पूर्व पश्चिम बंगाल में कुलीन ग्राम वैष्णव-धर्म का मुख्य केन्द्र था। 'यवन' हरिदास भी इस स्थान पर शरणापन्न हुए थे। इस ग्राम की महिमा वर्णन करते हुए कृष्णदास कविराज ने लिखा है—

कुलीन ग्रामोर भाग्य कहने न जाय।
शूकर चराय डोम सेह कृष्ण गाय॥

कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध बंगला का प्रथम ग्रन्थ है गुनराज खाँ कृत 'श्रीकृष्ण-विजय' (गोविन्द-विजय या गोविन्द-मंगल)। उसका उल्लेख जयानन्द कृत 'चैतन्य-मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य-मंगल' में मिलता है।

'श्रीकृष्ण-विजय' के आरम्भ में प्रधानतया भागवत के अनुसार कृष्ण-चरित वर्णित है। बीच-बीच की कथा हरिवंश-प्रेरित है। 'श्रीकृष्ण-विजय' की कुछ पाण्डुलिपियों में गोपियों के संग दानलीला और नौका विलास-आख्यान भी वर्णित है। ये दो आख्यान भागवत, हरिवंश व विष्णु-पुराण में नहीं हैं। अतः ये दोनों प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। 'कृष्ण-विजय' का मुख्य रस मधुर नहीं है, कृष्ण की बाललीला व वात्सल्य-रस का ही इसमें प्राधान्य है। यद्यपि इसमें भागवत-वर्णित गोप-गोपियों का भी उल्लेख मिलता है। तृतीय प्राचीन कवि (बड़ु) चण्डीदास हैं, पदावली के अतिरिक्त उनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' है। इस कृति की रचना चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई थी।

इस रचना का प्रतिपाद्य है–कृष्ण-बलराम का अवतार ग्रहण करना तथा कृष्ण का मथुरा-गमन। इन दो घटनाओं के मध्य राधा के प्रति कृष्ण का आकर्षण, नाना रूप से दोनों का मिलन तथा राधा-प्रेम से वितृष्ण होकर कृष्ण का वृन्दावन-परित्याग। इन घटनाओं को नियोजित कर प्राकृत-प्रेम के आकर्षण-विकर्षण का नियोजन किया गया है। दान-खण्ड, नौका-खण्ड श्रीकृष्ण-कीर्तन की प्रधान वर्ण्य घटनाएँ हैं। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में आदिरसात्मक कृष्ण-लीला-गान 'रमालि' या 'धमालि' नाम से प्रसिद्ध था। श्रीकृष्ण-कीर्तन इस 'धमालि' के समकक्ष (अनाख्यायित) 'पाञ्चाली' काव्य है। पाञ्चाली काव्य द्विरूपात्मक है–नाट्य-गीत और आख्यायिका। श्रीकृष्ण-कीर्तन 'गीत-गोविन्द' के समान 'पाञ्चाली' नाट्य-गीत है। वास्तविकता यह है कि यह कृष्ण-कथा प्राचीन काल से ही तीन रसों में विभक्त होकर विकसित हुई है। प्रथम विस्मय व वात्सल्य के अन्तर्गत पूतना-वध, गोवर्धन-धारण, कालिय-दमन, कंस-वध इत्यादि कृष्ण-लीला-सम्बन्धी आख्यान हैं। गुप्त-पूर्व स्थापत्य-कला में ये घटनाएँ रूपायित हुई है। इसके पश्चात् आदिरसात्मक आख्यान आते हैं। परवर्ती काल में रास, दान, नौका इत्यादि की कल्पना की गयी। उस समय सामाजिक अथवा गार्हस्थ्य उत्सव आदि के अवसरों पर (मुख्यतः कन्याओं के मध्य) जिन आदिरसात्मक गानों का गायन होता उनके नायक कृष्ण तथा नायिका अनाम गोपिका या राधा थीं। जयदेव ने इन गानों का साहित्यिक रूपान्तरण किया। तत्पश्चात् इन तत्त्वों के समावेश से कृष्ण को आधार बनाकर नववैष्णव-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में लोक-प्रचलित आदिरसात्मक कृष्ण-गान 'धामाली' या 'धमाली' नाम से विख्यात हुआ। श्रीकृष्ण-कीर्तन इसी प्रकार 'धमाली' रीति रस अनाख्यायिक पाञ्चाली काव्य है। इसमें वात्सल्य-रस पहले अद्भुत-रस के साथ ही संयुक्त था, परवर्ती काल में यह पृथक् हुआ।

चैतन्य के समसामयिक अर्थात् सोलहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में एक वैष्णव कवि चण्डीदास का सन्धान मिला है। इन्होंने 'श्रीमच्चरणारविन्दमधुव्रत श्री चण्डीदास' नामक एक काव्य का प्रणयन किया है। इसमें राग मार्गीय भक्ति-तत्त्व एवं माधुर्य-लीला का उत्कर्ष निरूपित किया गया है। काव्य का आरम्भ इस रूप में हुआ है—

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
उपेन्द्र सान्द्र कारुण्यं आनन्दं नन्दनन्दनम्॥

'वृन्दावन अधिष्ठित लक्ष्मी के आनन्दमन्दिरस्वरूप करुणामूर्ति नन्द-नन्दन उपेन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।' एक कविराज चण्डीदास ने 'गीत-गोविन्द' की टीका लिखी है। यह नहीं कह सकता कि ये वही चण्डीदास हैं, जिन्होंने लक्ष्मण भट्ट प्रभृति सुहृदय वर्ग के अनुरोध पर 'दीपिका' नामक 'काव्य-प्रकाश' के ध्वनि-प्रकरण की टीका लिखी थी। परन्तु दीपिकाकार चण्डीदास भक्ति-मार्ग के पथिक थे, इसका परिज्ञान टीका के पुष्पिका-श्लोक से होता है :

सायं सूर्यात्मजायाः पुलिनपरिसरे बालकैः संवृतः सन्,
धावन् धावन् (वयस्यैः) कृतविविधरवो गोसमूहं विचिन्वन्।
स्वैरं गोपाङ्गनाभिः कृतविविधवनक्रीडनो दैत्यवश-
ध्वंसी वंशीविलासो व्रजकुलतिलकः पातु वः गोपवेशः॥

'सन्ध्या समय यमुना के विपुल पुलिन पर गोपालकवेष्टित (वयस्यों के साथ) दौड़ते-दौड़ते, गायों को खोजते-खोजते जिन्होंने विविध रूप धारण किया था, जिन्होंने गोपांगनाओं के साथ वन में इच्छानुसार

विविध लीलाएँ की थीं, जिन्होंने दैत्य-वंश का विनाश किया था, जो वंशी-विलासी हैं, जो व्रजकुल-तिलक हैं, वे ही गोपवेश हरि तुम्हारी रक्षा करें।'

चैतन्य के तिरोधान के कुछ काल पूर्व कृष्ण-बलराम के समान गौरांग-नित्यानन्द की काष्ठ-निर्मित युगल मूर्ति की अवतारवत् आराधना आरम्भ हो चुकी थी। चैतन्य व नित्यानन्द के तिरोधान के पश्चात् बंगाल के वैष्णवों ने अद्वैत को अपना प्रधान नेता स्वीकार कर लिया था। परन्तु नित्यानन्द के पुत्र वीरभद्र के वयस्क होने पर वैष्णव-सम्प्रदाय दो दलों में विभक्त हो गया। इस प्रकार अद्वैत के जीवनकाल में ही बंगाल का वैष्णव-समाज दो दलों में पूर्णतः विभक्त हो गया था और वैष्णवों का नेतृत्व खड़दह एवं शान्तिपुर इन दो पृथक् गुरु-परम्पराओं द्वारा होने लगा था। इसके अतिरिक्त एक अन्य सम्प्रदाय, श्रीखण्ड-सम्प्रदाय, का भी अभ्युदय हुआ। श्रीखण्ड के राजवैद्य मुकुन्ददास, उनके अनुज नरहरिदास सरकार एवं रघुनन्दनदास, ये तीन व्यक्ति चैतन्य के प्रिय भक्त थे। इनके अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे। नरहरिदास ने गौरांग गदाधर की पूजा का प्रवर्तन किया था। खड़दह-सम्प्रदाय एवं श्रीखण्ड-सम्प्रदाय में पार्थक्य था। खड़दह-सम्प्रदाय वृन्दावन भक्ति-पद्धति से प्रभावित था। इस सम्प्रदाय के भक्त गृहस्थ थे। श्रीखंड-सम्प्रदाय ऐश्वर्य प्रधान था और साहित्य-संगीत के प्रति विशेष रूप से आग्रहशील था।

माधवेन्द्र पुरी के वृन्दावन-आगमन के पश्चात् यहाँ क्रमशः बंगाली वैष्णव-भक्तगण आने लगे। चैतन्य ने संसार-परित्यागी वैष्णव-भक्तों को वृन्दावन भेजा। इस प्रकार वृन्दावन में बंगला वैष्णव-भक्तों के सम्प्रदाय का गठन हुआ। सनातन व रूप को शिक्षित कर चैतन्य ने उन्हें वृन्दावन भेजा। उनके भेजने का उद्देश्य था कि सनातन व रूप लुप्ततीर्थों का उद्धार करेंगे, नूतन भक्ति-शास्त्र की रचना करेंगे और निःसम्बल वैष्णव-भक्तों का पालन करेंगे। सनातन-रूप के कुछ समय पूर्व चैतन्य ने इसी उद्देश्य से सुबुद्धि राय को वृन्दावन भेजा था। व्रज में रूपगोस्वामी ने कृष्ण-विषयक 'दान-केलि-कौमुदी' शीर्षक नाटक की रचना की। रूपगोस्वामी की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं—'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' व 'उज्ज्वल नीलमणि'। ये वैष्णव रस-शास्त्र-विषयक रचनाएँ हैं। रूप गास्वामो ने इन ग्रन्थों में कृष्णलोला-भावना को संस्कृत अलंकार-शास्त्र के अनुसार रूपायित किया।

सनातन ने 'वृहद्-भागवतामृत' के आधार पर वैष्णव-भक्ति-दर्शन का निर्देशन किया। इन्होंने 'दिग्दर्शिनी' शीर्षक से इसको टोका लिखी। भागवत के दशम स्कन्ध की टीका इन्होंने 'वैष्णवतोषिणी' नाम से की। इनसे प्रेरित होकर गोपाल भट्ट ने 'हरिभक्ति-विलास' की रचना की जिसका प्रतिपाद्य है—वैष्णव-धर्म एवं वैष्णवाचार। जीवगोस्वामा ने गौड़ीय-वैष्णव-आध्यात्मिक-चिन्तन-विधि को भारतीय दर्शन-शास्त्रानुकूल व्याख्यायित किया और उसे एक नवीन धर्मगोष्ठी-भित्ति पर स्थापित कर छः सन्दर्भ-ग्रन्थों, अनेक टीकाओं एवं अन्य ग्रन्थों की रचना की। इनके रचित असंख्य ग्रन्थों में 'गोपाल-चम्पू' विशेष उल्लेख्य ग्रन्थ है। इसमें कृष्ण की व्रजलीला-वर्णन के साथ गोलोकलीला-वर्णन भी संयोजित है। कृष्ण के साथ राधा को समान मर्यादा दिलाकर उन्होंने गौड़ीय वैष्णव-चिन्तनधारा को एक नवीन दिशा दी। इस कार्य का सूत्रपात रामानन्द राय एवं स्वरूप दामोदर ने किया था। कृष्ण-मूर्ति के वाम पार्श्व में राधा-मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं युगल मूर्ति की उपासना-विधि की स्वीकृति जीवगोस्वामी द्वारा होने के पश्चात् ही यह उपासना-पद्धति पहले वृन्दावन में तत्पश्चात् बंगाल में प्रचलित हुई। युगल मूर्ति की उपासना-विधि के संस्थापित होने के पश्चात् वल्लभ भट्ट (वल्लभाचार्य) सम्प्रदाय और गौड़ भक्ति-पद्धति में महत्त्वपूर्ण पार्थक्य हुआ। जीव-

गोस्वामी के समय से ही बंगाल के वैष्णवों में वृन्दावन के गोस्वामियों के चिन्तन को सर्वाधिपत्य मिला। मुरारिगुप्त ने चैतन्य-जीवनी-कहानी को श्लोकबद्ध किया। तत्पश्चात् स्वरूप दामोदर ने उनका अनुसरण किया। इन दोनों व्यक्तियों की रचनाएँ 'कड़चा' नाम से विख्यात हुईं।

चैतन्य के जीवन-काल में उनकी जीवनी को आधार बनाकर किसी 'बंगदेशीय विप्र' ने संस्कृत में एक नाट्य-रचना की थी। इस कोटि का एक अन्य नाटक चैतन्य के तिरोधान के पश्चात् रचा गया। इसका नाम 'चैतन्य-चन्द्रोदय' (१५७२ ई०) है। इसके रचयिता चैतन्य-भक्त नित्यानन्द सेन के कनिष्ठ पुत्र परमानन्ददास थे, जो 'कविकर्णपूर' नाम से प्रसिद्ध थे। 'वृन्दावन-कथा' का आधार लेकर इन्होंने 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' शीर्षक महाकाव्य की रचना की थी। इनकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना 'चैतन्य-चरितामृत' है। यह चैतन्य-जीवनी-विषयक (रचना-काल ई० १५४२) महाकाव्य है।

बंगभाषा में प्रथम चैतन्यावदान-काव्य वृन्दावनदास कृत 'चैतन्य-मंगल' है। यही कारण है कि बाद में कृष्णदास कविराज ने वृन्दावनदास की वन्दना 'चैतन्य-लीला-व्यास' सम्बोधित करके की है। उन्होंने वृन्दावनदास के इस काव्य को भागवत-पुराण की मर्यादा देते हुए इसका नामांकन 'चैतन्य-भागवत' किया।

कृष्णदास रचित चैतन्यावदान ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है—'चैतन्य-भागवत' एवं 'चैतन्य-चरितामृत' (रचयिता—कृष्णदास कविराज)। कृष्णदास कविराज कृत 'सारंग रंगदा' एवं 'गोविन्द लीलामृत' नामक संस्कृत की दो अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम 'श्री कृष्णकर्णामृत' की टीका है। द्वितीय कृति महाकाव्य है। उनकी एकमात्र बंगला रचना 'चैतन्य-चरितामृत' है (१६१०)। इस रचना में कृष्ण की गोलोक-लीला और व्रज-लीला—दोनों ही वर्णित हैं, परन्तु कृष्णदास ने व्रज-लीला को वरीयता दी है। नित्य वृन्दावन में कृष्ण नवकिशोर नटवर हैं और सर्वदा राधा उनकी लीला-सहचरी हैं।

चैतन्य की जीवनी को प्रत्यक्ष कर जिन्होंने नाट्य-रचना की थी उनमें दो व्यक्ति प्रमुख थे। एक व्यक्ति नवद्वीपलीला के साथी मुरारिगुप्त थे। दूसरे जन नीलाचल के शेषपर्यन्त साक्षी स्वरूपदामोदर थे। 'चैतन्य-चरितामृत' केवल चैतन्य-चरित का ही काव्य नहीं है। जीवनी के साथ-साथ इसमें चैतन्य-प्रवर्तित भक्ति-धर्म तथा अध्यात्म-तत्त्व का विश्लेषण भी है। मुरारिगुप्त का अनुसरण कर लोचनदास या लोचनानन्द-दास ने चैतन्य-मंगल की रचना की थी। तत्पश्चात् नरहरिदास रचित 'श्रीकृष्ण-भजनामृत' एक और महत्त्व-पूर्ण कृति है। यह गद्य-पद्य मिश्रित है।

नरहरिदास ने चैतन्य को अपने उपास्यदेव के रूप में स्वीकार किया था और गौरांग-पूजा-विषयक एक लघु निबन्ध लिखा था। यह ग्रन्थ पद्य में, शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में है। इस ग्रन्थ का नाम 'गौरांगाष्ट-कलिका' है।

लोचनदास कृत 'चैतन्य-मंगल' के समान ही चैतन्य-चरित विषयक कुछ अन्य काव्य-ग्रन्थ गेय 'पाञ्चाली-प्रबन्ध' रीत्यनुसार लिखे गये। इनमें एक रचना है चूड़ामणिदास कृत 'गौरांग-विजय'। यह ग्रन्थ आंशिक रूप में ही उपलब्ध है। इसकी रचना वृन्दावनदास कृत 'चैतन्य-भागवत' के आदर्श पर हुई है। इसमें 'नाचाड़ी' अंश की अपेक्षा 'शिकली' अंश ही अधिक है। इसमें राग-रागिनियों का भी उल्लेख है।

जयानन्द कृत 'चैतन्य-मंगल' लोचन और चूड़ामणि के काव्य-ग्रन्थों के समान गेय, आवृत्ति-मूलक और लोचन के काव्य के समान पौराणिक तत्त्वों की ओर अभिमुख है। नैमिषारण्य में एक दिन उद्धव

ने नारद से जिज्ञासा की कि कलिकाल में जीव पापग्रस्त होकर कष्ट पा रहे हैं। उनके उद्धार-निमित्त क्या कृष्णावतार नहीं होगा ? तत्पश्चात् नारद ने 'जैमिनीय-संहिता' के अनुसार उद्धव को ब्रह्मा-महेश्वर-संवाद सुनाया। कलियुग के अनाचार को देखकर पृथ्वी ब्रह्मा के पास गयी। ब्रह्मा पृथ्वी को लेकर क्षीरोदसागर गये, भगवान् द्विजरूप में अवतार ग्रहण करेंगे, ऐसा स्वीकार किया। चैतन्य के संन्यास-ग्रहण और उनके दक्षिण-भ्रमण तक के प्रामाणिक विवरण के आधार पर १८९५ ई० में प्रकाशित 'गोविन्ददास का कड़चा' एक उल्लेखनीय वैष्णव-रचना है। कड़चा के रचयिता गोविन्ददास कर्मकार चैतन्य के समकालीन और उनके संन्यास-ग्रहण के साक्षी थे।

वैष्णव-पदावली का प्रथम क्रम

वैष्णव-गीत-कविता की ख्याति 'पद' रूप में है। अठारहवीं शताब्दी के पूर्व इस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं होता था। 'पद' से दो छत्र गान या गान का दो छत्र बोध होता था, जैसे 'ध्रुव पद'। 'पदावली' शब्द का प्रथम व्यवहार जयदेव ने किया था। इन्होंने इसका प्रयोग दो अर्थों में किया था। प्रथम पदालंकार के अर्थ में और द्वितीय 'पदमय-गीत' के अर्थ में (मधुर कोमल कान्त पदावलीं शृणु तथा जयदेवसरस्वतीम्)। वैष्णव-पदावली के अधिकांश रचयिता 'महाजन' या महान्त (साधु पुरुष) या गुरु थे। यही कारण है कि सत्रहवीं शताब्दी के शेष भाग में वैष्णवगीति-कविता महाजन-पदावली नाम से विख्यात हुई।

प्रारम्भ से ही वैष्णव-गीति-कविता में दो भाषाओं का मिश्रण होता रहा है, किसी-किसी पद में बंगला और ब्रजबुलि का मिश्रण मिलता है। ब्रजबुलि-रचना के मध्य दो-चार व्रज भाषा के शब्द मिलते हैं। व्रजवासी वैष्णवों द्वारा व्रजभाषा में रचित कुछ पदों की भाषा मिश्रित हो गयी है।

जयदेव के अनुकरण पर संस्कृत गीत-कविता की परम्परा विकसित हुई, किन्तु मन्द गति से। जयदेव की रचना के तत्काल पश्चात् उल्लेख्य रचना रूपगोस्वामी कृत 'गीतावली' है। 'गीत-गोविन्द' और 'गीतावली' को दो मध्यवर्ती रचनाएं 'ध्रुवा-गीति' शीर्षक से उपलब्ध हुई हैं। एक गान्धार राग में और दूसरी श्रीराग में गेय थी। प्रथम गान कृष्ण के प्रति दूती की उक्ति है—

केशव कमलमुखो मुखकमलम्।
कमल नयन कलयातुलममलम्॥
कुञ्जगेहे विजनेऽतिविमलम् (ध्रु०)।
सुरुचिरहेमलतामवलम्बय तरुण तरं भगवन्तम्॥
जगदवलम्बनवलम्बितुमनु कलयति पातु भवन्तम्॥

द्वितीय गान कृष्ण के प्रति राधा की उक्ति है—

रसिकेर केशव हे।
रससरसीमिव मामुपयोजय
रसमिव रसनिवहे॥

गीत-गोविन्द के अनुसरण पर उस समय मिथिला में जो गीति-नाट्य लिखे गये उनके गान संस्कृत में लिखित नहीं हैं, अपितु ब्रजबुलि-मैथिली में रचित हैं। इस प्रकार की रचनाएं बंगाल में पन्द्रहवीं-सोलहवीं

शताब्दी में नहीं मिलतीं। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में गोविन्दास कविराज रचित जो 'संगीत-माधव' नाटक उपलब्ध हुआ है, वह प्रायः नाममात्र के लिए पर्यवसित है। गोविन्ददास के सम-सामयिक और परवर्ती किसी-किसी लेखक ने एकाध संस्कृत-गान की रचना की थी। उदाहरण के लिए एक 'ध्रुवा-गीति' उद्धृत किया जा रहा हूँ—यह पुरुषोत्तम मिश्र की रचना है।

सुजन वद मधुरिपुनाम।
दुष्कृतम पहाय याहि दुर्लभ हरिधाम ॥ ध्रु० ॥
पुत्र मित्र बान्धवगणमिह न कलय सत्यम्।
पुरुषोत्तममिश्र गदितमनुभाव्य नित्यम् ॥

'सज्जनों! मधुरिपु मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण का नाम लो। पापों का त्याग कर दुर्लभ वैकुण्ठ में जाओ। पुत्र, मित्र, बान्धवों में आसक्त मत हो, वे सत्य नहीं है। पुरुषोत्तम मिश्र के द्वारा कथित वचनों का अनुध्यान नित्य करो।'

बंगाली वैष्णव गीति-कवियों का आदर्श विद्यापति का गान था। ये विद्यापति मिथिला के एक विशेष राजकवि थे, ऐसा मानना उचित नहीं है। सामान्यतः 'विद्यापति' गीत-रचयिता कवियों की साधारण उपाधि थी। इन कवियों में मैथिली कवि थे, बंगाली कवि थे, यहाँ तक कि नेपाली कवि भी थे। फिर भी इन कवियों में जो उल्लेखनीय हैं, वे हमारे मान्य विद्यापति हैं, सद्विप्र 'सदुपाध्याय' विद्यापति ठक्कुर। ये १४६० ई० तक जीवित, समर्थ तथा विद्यारत थे।

मिथिला के राजा शिवसिंह के सभासद के रूप में परिचित विद्यापति का जो ऐतिह्य मिथिला में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में प्रचलित था उसके अनुसार मिथिला में कीर्तन-पदावली की रचना और गीति-पद्धति का रूप विद्यापति और शिवसिंह के उद्योग से निर्दिष्ट हुआ था। 'राग-तरंगिणी' में संकलित लोचन ने इस विषय में जो कुछ कहा है, उसकी ओर पण्डितों की दृष्टि आज तक आकृष्ट नहीं हुई है। उसे यहाँ उपस्थापित कर रहा हूँ।

बांग्ला देश में विख्यात 'भूदेव-पदावली-कीर्तन' के इतिहास का प्रथम पर्याय शान्तिपुर (सम्भवतः नवद्वीप) और नीलाचल में चैतन्य के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव से प्रेरित है। सन्यास-ग्रहण करने के पश्चात् और गौड़ गमनागमन-पथ में शान्तिपुर में अद्वैत के घर में या नीलाचल में जो नृत्य-गीत का उपक्रम हुआ था उसके प्रसंग में कृष्णदास कविराज ने जिन गीतों को उद्धृत किया है वे पूर्ण पदावली नहीं हैं, ध्रुवागीति हैं।

कृष्णदास द्वारा उल्लिखित ध्रुवापद-समूह इस प्रकार है। इसकी भाषा आंशिक रूप में व्रजबुली-मैथिली और आंशिक रूप में बंगला है—

कि कहव रे सखी! आजुक आनन्द उर।
चिर दिन माधव मन्दिरे मोर ॥
सेइतपरान नाथ पाइनू।
जहाँ लागि मदन दहने झुरि गेनु ॥

हाहा प्रान-प्रिय सखी किना होल मोरे।
कानू प्रेम-विषे मोर तनु मनु जरे।।
रात्रि दिने पोड़े मन गोया खन पाउँ।
जहाँ गेले कानु पाउं ताहां उडि याउं।।

'हे सखि ! मैं आज के आनन्द का क्या वर्णन करूँ। चिरकाल के बाद माधव मेरे मन्दिर में आ गये हैं। अन्त में प्राणनाथ, जिसके लिये मैं मदन पीड़ा से जर्जर हो गयी थी, मुझे मिल गये। प्राणप्रिय सखि ! आज मेरी क्या स्थिति हो गई। कृष्ण के लिये जो प्रेमविष मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ था, वह अब सारे शरीर में व्याप्त हो गया है, मन को भी उसने प्रभावित कर दिया है। मेरा मन दिन रात जल रहा है कैसे उस क्षण को प्राप्त करूँ ? कहाँ जाऊँ जहाँ जाने से कन्हाई मुझे प्राप्त हो जाए। मैं वहीं उड़ जाऊँगी।'

मैथिली में इस प्रकार के ध्रुवा-पद-समूह भनिता संयुक्त हैं और पुरानी पोथियों में 'भनइ इत्यादि' का योग करके आधुनिक विद्यापति पदावली का संकलन हुआ है। ऐसा अनुमान होता है कि परवर्ती काल में बंगला पद-रचयिता ध्रुवा-गीत से परिचित थे। अनेक ध्रुवा-गीत कालक्रम में परम्परा रूप में ग्रहीत होते रहे। परवर्ती काल के किसी-किसी जीवनी ग्रन्थ में कुछ सुन्दर ध्रुवा-पद उद्धृत हैं। यथा—

शारंगधर तू या चरने मन लाइ रे !
एकत कालिया कानू तिनु अई बाँका।

सोलहवीं-सत्रहवीं-अठारवीं शताब्दी के पाञ्चाली काव्यों में ध्रुवा-पद मिले हैं, ऐसी धारणा बनती है कि वे प्राचीन ध्रुवा-पद की आवृत्ति-मात्र हैं। किसी-किसी ध्रुवा-पद को केन्द्र में रखकर नवीन गीति-कविता भी रची गयी थी। एक उदाहरण दूँ—ऊपर ध्रुवा-पद का जो उदाहरण दिया गया है उसका अवलम्बन कर 'विद्यापति' के नाम से दो पृथक् गान रचे गये थे। प्रथम गान राधामोहन ठाकुर संकलित 'पदामृत-समुद्र' (आनुमानिक १७२० ई०) में उपलब्ध है, द्वितीय विभिन्न पद-संग्रहों में उपलब्ध है, जो सुपरिचित हैं।

(१)

दारुन वसन्त जत दुख देल।
हरिमुख हेरइते सब सुख भेल।।

यतहुं आछिल मोर हृदयक साध।
से सब पूरल हरि परसाद।।

कि कहव रे सखि आनन्द उर।
चिर दिन माधव मन्दिरे मोर।। (ध्रुव)

रभस आलिंगने पुलकित भेल।
अधरकि पाश विरह दुर गेल।।

भनइ विद्यापति आर नइ आधि।
समुचित उषधे ना रहे वैयाधि।।

(२)

पाप सुधाकर जो दुख देल।
पिया मुख दरशने सब सुख भेल॥

आंचल भरिया जदि महानिधि पाउ।
आर दुरदेश हाम पिया न पठाउं॥

शीतेर उड़जो पिया गिरिषेर वा।
वरिखार छत्र पिया दरियार ना॥

भन-ए विद्यापति शुन वर नारि।
पियासे मिलल जैन चातक वारि!

मूल ध्रुवा-गान में तीन पद थे, 'पदामृत-समुद्र' के पाठ में प्रथम छत्र था, द्वितीय पाठ में मूल का प्रथम छत्र था शेष-तृतीय व चतुर्थ छत्र भाषान्तरित हुआ था। प्रथम गान प्राचीनतर है, द्वितीय वर्धितांश बंगाली कवि की रचना है।

विषय की दृष्टि से वैष्णव-पदावली सर्वत्र कृष्ण-लीलामय नहीं है। चैतन्य को कृष्ण-अवतार के पर्याय रूप में स्वीकार करने के बाद पर्याप्त मात्रा में पद रचित हुए। चैतन्य के कीर्तन-भाव-तन्मय रूप को देखकर व स्मरण कर उनके कुछ भक्तों ने वन्दना-पदों की भी रचनाएँ कीं। परवर्ती काल में अनेक कवियों ने इसका अनुकरण किया।

चैतन्य के तिरोधान के पश्चात् जब 'पाला-बन्दि-कीर्तन-मण्डली' बैठती उस समय प्रत्येक पाला द्वारा ये पद गीतिरूप में उपक्रमित हुए और मान, विरह आदि भावों के अनुसार गौर पदावली की रचना प्रारम्भ हुई। इस प्रकार कीर्तन-पदावलियों का संकलन 'गौरांग-चन्द्रिका' नाम से विख्यात हुआ। चैतन्य के साथ कभी-कभी प्रमुख रूप में नित्यानन्द, अद्वैत व गदाधर भी वन्दित हुए हैं।

राधा-कृष्ण-पदावली का प्रधान स्वर विरह है। इस विरह-स्वर के साथ वात्सल्य, अनुराग और मिलन के श्रेष्ठ पद भी हैं। चैतन्य-महिमा सूचक प्रथम पद के रचयिता अद्वैत आचार्य थे जिन्होंने उक्त पद का प्रकाशन नीलाचल में किया था। चैतन्य के आद्य अनुचर मुरारि गुप्त को प्रथम-पदावली-रचनाकार के रूप में हम पाते हैं। बंगला व ब्रजबुलि में मुरारि गुप्त ने केवल सात या आठ पदों की रचना की थी, ऐसा विश्वास नहीं होता। इनमें से दो अत्यन्त सुन्दर हैं और वैष्णव-पदावली की अन्यतम रचनाएँ है।

प्रथम गान में प्रेमविपन्ना के सर्वत्यागी दुःसाहस की अभिव्यक्ति है—

सखि हे फिरिया आपन घरे चाउ (जाउ)।
जीयन्ते मरिया वे आपना खाइयाछे,
तारे तुमि कि आर बुझाउ॥

नयन पूतली कर, लेइलो मोहन रूप,
हियार माझेर करि प्रान।
पिरीति आगुन जालि, सकल पोड़ाइया छि,
जाति कुल शील अभिमान।।

ना जानिया मूढ़ लोके कि जानि कि बोले मोके,
ना करिये श्रवन गोचरे।
श्रोत विखार जले ए तनु भासाइयाछि,
कि करिवे कुलेर कुकुरे।।

खाइते, शुइते रइते आन नाहि लय चिते।
बन्धु बिने आनि नाहिं भाय।।

मुरारी गुप्त कहे पिरीति एमति हैलैं,
तार यश तीन लोके गाय।।

द्वितीय गीत में विरहिणी की पीड़ा प्रकाशित हुई है :

कि छार पिरीत केला, जीवन्ते बधिया आइला,
वांचिते संशय भेल राइ।
सफरी सलिल बिन, गोङाइव जत दिन,
शुन शुन निठुर मधाइ।।

घृत दिया एक राति, जलि आइला युगवाति,
से केमने रहे जयोगाने।
ताहे से पवने पून, निभाइल वासों हेन,
झट आसि राखइ पराने।।

बुझि लाभ उद्देशे, साक्षात पिरीति तोषे (तो ये)।
स्थान छाड़ा बन्धु वैरी इय।
तात साक्षी पद्म-भानु, जल छाड़ा तार तनु,
शुखाइले पिरीति न रय।।

यत मुखे बाढ़ाईला, ततदुखे पोड़ाइला,
करिला कमुद बन्धु भाँति।
गुप्तु कहे एक द्विपक्ष छाड़िल देशे,
निदाने हइल, कहु राँति।।

इस परम्परा में मुकुन्ददत्त व वासुदेवदत्त कृत 'गौर-पदावली' का विशेष महत्त्व है। इनकी भाषा ब्रजबुलि है। 'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि' व 'पद-कल्पतरु' में वासुदेव व गोविन्ददास के पद संकलित हैं। अन्य पदकर्ताओं में नरहरिदास, गोविन्दघोष, माधवघोष एवं वासुदेव की विशेष ख्याति 'गौर-लीला'

विषयक पदकर्ताओं के रूप में है। इनमें वासुदेव घोष ने कृष्णलीला-विषयक पदों का संयोजन गौरलीला-विषयक पदों के साथ कर गौर-लीला-पदावली की रचना की थी। इसमें गौर (चैतन्य) की नवद्वीप-लीला अथवा 'नीलाचल-लीला' का प्रत्यक्षदर्शी के समान अंकन हुआ है। कृष्ण की शैशव-लीला के समान इन्होंने गौरांग की शैशव-लीला का वर्णन किया है। कृष्ण के रूप को देखकर जिस प्रकार ब्रज की गोप-युवतियाँ मुग्ध होती थीं, उसी प्रकार गौरांग के रूप को देखकर नवद्वीप की युवतियाँ अनुरूप भाव से आकृष्ट हुई थीं। इस प्रकार की पदावली 'नदीया-नागरी-भाव' के पद रूप में विख्यात है।

बंगाल के विभिन्न अञ्चलों से प्रतिवर्ष वैष्णव चैतन्य-सत्संग के निमित्त नीलाचल में समवेत होते थे। इनमें कुलीन ग्राम का वैष्णव-सम्प्रदाय बहुत बड़ा था। कीर्तन-गान का इनका अपना सम्प्रदाय था। इनमें मुख्य थे 'श्रीकृष्ण-विजय' के रचयिता मालाधर वसु के दो पुत्र सत्यराज खान व रामानन्द वसु। रामानन्द के पदों की संख्या अति अल्प है, परन्तु इनमें कृष्ण की वात्सल्य-पदावली और गौर-पदावली संकलित है। 'वैष्णव-पदावली' रचयिताओं में रामानन्द का स्थान बहुत उच्च है।

चैतन्य के मुख्य अनुचरों और शिष्यों में से कुछ भक्तों की पदावलियाँ अनुराग एवं निष्ठाभावानुप्रेरित हैं। इनके मध्य नित्यानन्द महाप्रभु के भक्तों का प्राधान्य है। नित्यानन्द के प्रभावान्तर्गत ही इन्होंने वात्सल्य और सख्य भावापूरित पद रचे हैं। इन भक्त-पदकर्ताओं में वासुदेव घोष सर्वाग्रगण्य हैं। वासुदेव के पश्चात् सर्वाधिक विशिष्ट बलरामदास थे। बलरामदास ने बंगला और ब्रजबुलि, दोनों भाषाओं में पद रचे हैं। बलरामदास ने राधाकृष्ण-लीला-विषयक पद भी रचे हैं।

इस बीच श्रीखण्ड में नरहरि-रघुनन्दन के शिष्य-प्रशिष्यों का एक विशेष सम्प्रदाय गठित हो गया था। वृन्दावन के गोस्वामियों ने इस केन्द्र के अनुशीलन के आधार पर वैष्णव-पदावली को दिशान्तर प्रदान किया। सोलहवीं शताब्दी के 'ब्रजबुलि' के कवियों में जो सर्वश्रेष्ठ थे उनमें से अधिकांश इसी अंचल के थे अथवा नरहरि सरकार या रघुनन्दन दास के शिष्य-भक्त थे। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य राम-गोपाल दास ने अपने 'शाखानिर्णय निबन्ध' में जो व्याख्या दी है उसके अनुसार यशोराज खान, कविरंजन कविशेखर इत्यादि 'ब्रजबुलि' के कविगण 'राजसेवी' व श्रीखण्ड वासी थे।

वैष्णव-साधना-विधि

चैतन्य के परम गुरु श्रीमाधवेन्द्रपुरी ने गोपाल सेवा, की प्रतिष्ठा की थी परन्तु वे स्वयं किसी देवता की पूजा के प्रति आकृष्ट नहीं थे, फिर भी देवता-सेवा के समर्थक थे। नीलाचल आने के पश्चात् महाप्रभु ने किसी देवविग्रह की पूजा अथवा सेवा नहीं की थी, वे केवल प्रतिदिन, जगन्नाथ दर्शन करते थे परन्तु यह पूजा नहीं थी अपितु दर्शन, मनन और साधना का अंग था। चैतन्य के जीवन-काल में उनके किसी भक्त ने किसी विग्रह अथवा मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं की। परन्तु उनके तिरोधान के पश्चात् बंगाल में नित्यानन्द एवं अन्य अनेक भक्तों ने कृष्ण-मूर्ति की स्थापना कर पूजा की परम्परा चलायी। ब्रज-धाम में रूप व सनातन ने इस कार्य को सम्पन्न किया।

भक्तजन चैतन्य को ईश्वर का रसमय-विग्रह स्वीकार करते हैं और चैतन्य जगन्नाथ को ईश्वर-मूर्ति के रूप में मानते थे। चैतन्य की मृत्यु के पश्चात् परोक्ष उपासना हेतु नहीं, अपितु प्रत्यक्ष सेवा के लिए

विग्रह अपेक्षित माना गया और इस विग्रह-सेवा के निमित्त जगन्नाथ की भोग-सेवा प्रारम्भ हुई तथा कृष्ण-विग्रह के सेवा-निमित्त सांसारिक गुरु की आवश्यकता प्रतीत हुई।

चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत के तिरोधान के पश्चात् गुरु को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा। चैतन्य के निर्देश से सनातन व रूप ने जिस भक्ति-शास्त्र की रचना की थी, उसमें ईश्वर के पश्चात् गुरु का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रथम श्रेणी की गुरु सखी है। सखियाँ राधा के अंश हैं। द्वितीय श्रेणी की भक्त हैं सखी-सहायक मंजरी, फूलकली, कोढ़ी या देवदासी। सखियाँ अप्राकृत तथा मंजरियाँ महागुरु स्थानीय हैं। महान गुरु मंजरियों द्वारा अनुगृहीत हैं। उनकी अनुकम्पा से साधक शिष्य मंजरी का अनुग्रह-लाभ प्राप्त करते हैं। मंजरी की कृपा से सिद्धि प्राप्त कर भक्त ब्रज में राधाकृष्ण के सेवा-रस का आस्वादन करते हैं और मंजरीत्व को प्राप्त होते हैं। सखी-मंजरी के अनुग्रह के अतिरिक्त कृष्ण-प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है। रागानुगा मार्ग का यही रहस्य है :

गोपी अनुगति बिना ऐश्वर्य ज्ञाने।
भजि लेइ नाहि पाय ब्रजेन्द्र नन्दने ॥

(चैतन्य-चरितामृत २, ६)

रघुनाथ दास ने मञ्जरी की कथा स्पष्ट करते हुए कहा है :

यदवधि मम काचिन्मन्जरीरूपपूर्वा,
ब्रजभुवि बत नेत्रद्वन्द्वदीप्ति चकार।
तदवधि तव वृन्दावनराज्ञि प्रकामं,
चरणकमलललसं दिदृक्षा ममाभूत्।

(विलाप-कुसुमाञ्जलि)

'जिस दिन किसी एक रूप मञ्जरी ने इस ब्रज-भुवन में मेरे ऊपर उज्ज्वल कटाक्ष किया था, हे वृन्दावनेश्वरी! उस दिन से, तुम्हारे चरण-कमलों के अलभ्यराग दर्शन के लिए मेरी प्रगाढ़ अभिलाषा जागृत हुई है।'

श्री रूपरतिमञ्जर्यो पद सेवैक गृध्नुता।
असंख्येनापि जनुषा व्रजे वासोऽस्तु मेऽनिशम् ॥

'रूप-मञ्जरी व रति-मञ्जरी के पद-सेवा-लुब्ध होकर ही असंख्य जन्मों में हम सर्वदा ब्रजवास करेंगे।'

कृष्णदास कविराज ने अपने काव्य में मंजरियों की सेवा का विस्तृत विवरण दिया है। मंजरी-तत्त्व से गृहीत होने पर द्विधा या विलम्ब नहीं रह जाता है। इनमें प्रमुख थे—रूप (रूप-मञ्जरी), सनातन (रति-मञ्जरी या लवंग-मञ्जरी), रघुनाथ दास (रस-मञ्जरी), गोपाल भट्ट (गुन-मञ्जरी), रघुनाथ भट्ट (राग-मञ्जरी) तथा जीव (विलास-मञ्जरी)। इनके पश्चात् थे वृन्दावन के अन्यान्य महन्त, जैसे कृष्णदास

कविराज (कस्तूरी-मञ्जरी), अन्त में आते थे बंगाल के वैष्णव महान्त, जैसे जाह्नवी देवी (अनंग-मञ्जरी) आदि सिद्ध नाम को प्राप्त हुए। कर्णपूर कृत 'गौर-गनोद्देश्य-दीपिका' में अनेक सिद्धों (मञ्जरियों) के नामों की सूची दी गयी है।

चैतन्य के तिरोधान के पश्चात् बंगाल में दो गुरु-गोष्ठियाँ संस्थापित हुईं। शान्तिपुर में अद्वैत, सीता देवी एवं उनके पुत्र परम्परानुकूल आडम्बरहीन वैष्णव-दीक्षा देते थे। नित्यानन्द ने विवाह करके गृहस्थ-जीवन स्वीकार किया था। सम्भवतः वे किसीको दीक्षा नहीं देते थे। उनके तिरोधान के पश्चात् उनकी द्वितीय पत्नी जाह्नवी देवी और कुछ काल पश्चात् उनके पुत्र वीरभद्र या वीरचन्द्र रीति-अनुकूल दीक्षा देते थे। वीरभद्र के पश्चात् खड़दह का गुरुपाट प्रायः समाप्त हो गया, यद्यपि नित्यानन्द की कन्या गंगा देवी के पश्चात् उनकी सन्तानों ने अपनो इच्छानुकूल कुछ समय तक इस गुरु-परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न किया था।

गौड़ीय वैष्णव-समाज में जाह्नवी देवी प्रथम महिला महान्त (गोस्वामिनी) थीं जिन्होंने गोस्वामियों के समान ही विशेष सम्मान अर्जित किया था। कृष्ण-मूर्ति के पार्श्व में राधा-मूर्ति की स्थापना के प्रति इनका विशेष आग्रह था। इस हेतु इन्होंने बंगाल से राधा-मूर्ति वृन्दावन भेजी थी।

वैष्णव गोस्वामी होने पर भी वीरभद्र ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। तीर्थयात्रा या देशभ्रमण अथवा धनी शिष्य के गृह-भ्रमण के अवसर पर ये 'शोभायात्रा' की व्यवस्था करते थे।

इस प्रकार बंगाल के वैष्णव अनुचिन्तन में वृन्दावन का गुरुत्व स्वीकृत हुआ, परन्तु बंग प्रदेश में चैतन्य के पश्चात् नित्यानन्द और अद्वैत का ही गौरव मान्य हुआ। कृष्णदास कृत 'चैतन्य-चरितामृत' के पूर्व वृन्दावन के गोस्वामियों की रचनाओं में नित्यानन्द व अद्वैत की रचनाओं की समुचित स्वीकृति नहीं मिलती है। इसका यह कारण नहीं कि वृन्दावन के गोस्वामी नित्यानन्द व अद्वैत के सदृश सम्मान अर्जित न कर सके थे। परन्तु सत्य यह है कि चार प्रधान गोस्वामी—सनातन, रूप, रघुनाथ भट्ट व रघुनाथदास—दोनों प्रभुओं की महिमा से प्रत्यक्ष रूप से अवगत थे। रघुनाथ स्वयं अद्वैत के शिष्य थे। वास्तविकता यह है कि गोस्वामियों ने शास्त्र और साधना-पद्धति-सम्बन्धी रचनाएँ की थीं। उनके ग्रन्थों की भाषा संस्कृत थी, शास्त्रदेवता कृष्ण थे—गम्भीर दृष्टि से विचार करने पर 'राधा-कृष्ण' थे। चैतन्य कृष्ण के अवतार थे और उन्होंने राधा की देह-कान्ति और प्रेमभाव का आश्रय ग्रहण किया था। इस प्रकार वे युगपत् रूप में राधा-कृष्ण थे। इस सन्दर्भ में किसी अधीन-ईश्वर अथवा उपभगवान् की कल्पना सम्भावित नहीं है। अद्वैत और नित्यानन्द भगवत् थे—ऐसा मानकर उनकी कल्पना 'मञ्जरी' रूप में नहीं की जा सकती। सनातन गोस्वामी ने 'बृहत् श्री भागवतामृत' में वैधी भक्ति-साधना के प्रसंग में ब्रह्मा, शिव तथा, महाविष्णु का उल्लेख किया है। वे कृष्ण के कलाधर हैं। इस दृष्टि से वे कृष्ण के अंशावतार हैं। गोलोक-लीला के रंगमंच पर इन अंशों की कोई भूमिका नहीं है। अतएव वृन्दावन के गोस्वामियों के रसशास्त्र की रागानुगा साधना-पद्धति में नित्यानन्द, अद्वैत का प्रसंग विवर्जित है।

तत्कालीन बंगाल में गोस्वामियों के मतानुसार वैष्णवों के उपास्य, सेवन के पात्र और श्रद्धास्पदों की नामावली इस प्रकार हैं :

श्री चैतन्य, नित्यानन्द, श्री अद्वैत सीता ।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता ॥

कृष्णदास कविराज की प्रेरणा ने दो भिन्नमुखी वैष्णव-धाराओं का संयोजन किया । उन्होंने 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना की थी । यहाँ तक कि इसमें गोस्वामियों तक के ग्रन्थों का भी मर्म समाहित है और इसी प्रसंग में बंगाल के वैष्णव-ठाकुरों की रचना व भावना का सामंजस्य भी रक्षित है । 'चैतन्य-चरितामृत' के प्रत्येक परिच्छेद के प्रथम व शेष पद में कृष्णदास का यह उद्देश्य परिलक्षित है :

जय जय श्री चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत चन्द्र जय गौरव भक्त वृन्द ॥
श्री रूप-रघुनाथ-परे जार आश ।
'चैतन्य-चरितामृत' कहे कृष्णदास ॥

—प्रो० सुकुमार सेन

गौड़ीय-भक्ति-दर्शन

श्री चैतन्य महाप्रभु-प्रवर्तित वैष्णव-धर्म गौड़ीय-वैष्णव-धर्म के नाम से विख्यात है। इसमें कृष्ण साक्षात् ब्रह्म के रूप में उपास्य हैं। सामान्य जन की यह धारणा है कि बंगाल में कृष्ण-उपासना-प्रेरित वैष्णव-धर्म के प्रवर्तन का श्रेय महाप्रभु चैतन्यदेव को है। परन्तु चैतन्य के प्रादुर्भाव के पूर्व से ही बंगाल में वैष्णव-धर्म-साधना और भक्ति का विकास परम्परित रूप में हो रहा था। राधा-कृष्ण के विभिन्न आख्यानों का संदर्भ ग्रहण करते हुए जयदेव की वाणी संस्कृत में प्रस्फुटित हो चुकी थी। बंगला वाङ्मय में इसका सूत्रपात बड़े-चण्डीदास (बड़ु चण्डीदास) द्वारा हुआ। परन्तु धार्मिक दृष्टि से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि गौड़ीय-वैष्णव-भक्ति अनेक दार्शनिक और धार्मिक चिन्तन-प्रक्रियाओं का संश्लिष्ट रूप है। विद्वानों का मत है कि जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' पर भागवत का प्रभाव परिलक्षित होता है। यह द्रष्टव्य है कि जयदेव के प्रथम पद में जिस कथा का उल्लेख है, वह ब्रह्मवैवर्त-पुराण के पन्द्रहवें अध्याय में आयी कृष्ण-जन्म-खण्ड-कथा पर आधारित है। इसमें वर्षाऋतु में यमुना के तट पर राधा-कृष्ण-लीला का वर्णन है, जिसमें राधा-कृष्ण के रूप-लावण्य का वर्णन स्थूल और मांसल धरातल पर हुआ है तथा इसका प्रतिपाद्य है राधा-कृष्ण का शृंगारिक और रतिमूलक वर्णन। यहाँ राधा-कृष्ण के लौकिक विवाह की भी कल्पना की गयी है। यह वर्णन स्वकीया-भाव-प्रधान है। परन्तु बंगाल के भक्ति-चिन्तन में परकीया-भाव की प्रधानता है। यद्यपि इसमें राधा-कृष्ण का शृंगारिक वर्णन है परन्तु इसकी मूल दृष्टि ऐश्वर्य-भाव की भक्ति है और कृष्ण का ऐश्वर्य-वर्णन ही इसका उपजीव्य है। उल्लेखनीय है कि यही दृष्टि जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' की भी है। 'दशावतार स्तोत्र' और 'जयजय देव हरे' स्तोत्र में इसी ऐश्वर्य का वर्णन है—"दशाकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।" परन्तु यहाँ राधा के स्थान पर लक्ष्मी का उल्लेख है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि यहाँ कृष्ण का धीरोदात्त नायकत्व क्रमशः ललित नायकत्व में परिवर्तित हो गया है। इसी क्रम में मधुरतत्त्व का प्राधान्य भी परिलक्षित होने लगता है। इस दृष्टि से यह प्रमाणित नहीं हो पाता कि जयदेव वास्तव में 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' से प्रभावित थे।

जयदेव पर निम्बार्क का प्रभाव भी स्वीकार किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष विवादास्पद है। विद्वानों की यह मान्यता है कि बंगाल में कृष्ण-भक्ति के प्रेरणा-स्रोत के रूप में 'गीत-गोविन्द' का ऐतिहासिक महत्व है। अपर मत की यह प्रस्तुति है कि बंगाल में कृष्ण-भक्ति के उत्सव और विकास में 'गीत-गोविन्द' या 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' की अपेक्षा 'श्रीमद्भागवत' की प्रेरणा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। चैतन्यप्रेरित गौड़ीय वैष्णव-मतवाद को माध्व-सम्प्रदाय के साथ भी युक्त किया जाता है। यद्यपि चैतन्यपूर्व माध्व-सम्प्रदायप्रेरित-भक्ति बंगाल में प्रचलित थी, परन्तु चैतन्य-मत भी इस सम्प्रदाय की भक्ति और दार्शनिक चिन्तन से किसी स्तर पर प्रभावित रहा है, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। एक अन्य मत के अनुसार चैतन्य माध्व सम्प्रदाय के वैष्णव-भक्त थे, कारण इनके पूर्ववर्ती अद्वैत मत का सम्बन्ध मध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित वैष्णव-दर्शन से था। यह भी उल्लेखनीय है कि माधवेन्द्र पुरी (जिन्होंने चैतन्य-पूर्व बंगाल में वैष्णव-धर्म का प्रचार किया था) स्वयं मध्वाचार्य की भक्ति-धारा के प्रस्तोता थे। चैतन्य के दीक्षागुरु ईश्वरपुरी व संन्यास-गुरु केशव-भारती भी माध्व-भक्ति-परम्परा में दीक्षित थे। कुछ विद्वानों ने इस तथ्य के प्रति सन्देह व्यक्त किया है। परन्तु कवि कर्णपूर ने 'गौरगणोद्देश-दीपिका' में इस तथ्य का समर्थन करते हुए इनका सम्बन्ध मध्वाचार्य

की भक्ति-पद्धति से स्थापित किया है। उपर्युक्त ग्रन्थ के इस निर्णय पर भी शंका प्रकट की गयी है। यह निष्कर्ष प्रामाणिकता की अपेक्षा रखता है।

अनुसन्धानकर्ताओं ने इस विषय पर नवीन आलोक प्रदान करते हुए कहा है कि चैतन्य शांकरमतानुयायियों के समान 'दशनामी-सम्प्रदाय' में दीक्षित संन्यासी थे। उनकी यह मान्यता इस तथ्य पर आधारित है कि श्रीधरस्वामिन् ने शंकराचार्य की अद्वैत-भावना का संयोजन भागवत की भावप्रवण भक्ति के साथ किया था। इन्होंने विष्णु-पुराण, भगवद्-गीता तथा श्रीमद्भागवत की टीकाओं में 'अद्वैतमुक्ति' के निमित्त भक्ति को महत्त्वपूर्ण साधन माना है। (देखिये Pre Chaitanya Vaishnavism in Bengal. पृ० १८) बहुत सम्भव है चैतन्य किसी न किसी रूप में श्रीधर स्वामी से प्रभावित रहे हों। विष्णुपुरी के कुछ पद रूप गोस्वामी की पदावली में संकलित हैं, जिसका मूल स्वर भक्तिवाद है। माधवेन्द्रपुरी व ईश्वरपुरी भक्तिवादी शंकराचार्य-सम्प्रदाय के आचार्य व भक्त थे। वे अपने को माध्व सम्प्रदायवादी नहीं कहते थे। चैतन्य सम्भवतः इसी प्रकार के 'भक्तिवादी' सम्प्रदाय में दीक्षित थे। वे अपने को माध्व-सम्प्रदायवादी नहीं मानते थे। यह निर्विवाद है कि चैतन्य अपनी ही आन्तरिक भाव-प्रेरणा से भावप्रवण भक्ति के प्रेरणा तथा स्रोत बने। अतः जिस भावप्रवण भक्ति को चैतन्य ने अपनाया उसका मूल रूप श्रीधर कृत श्रीमद्-भागवत की टीका में विद्यमान है। माध्व-सम्प्रदाय भावप्रवणता की अपेक्षा सैद्धान्तिक है तथा न्याय और सांख्य-दर्शन से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त केशवभारती और ईश्वरपुरी ने भी चैतन्य को भावमूला (भावात्मक) भक्ति की ओर अभिमुख किया है।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि चैतन्य के प्रादुर्भाव के पहले अद्वैत संन्यासी माधवेन्द्रपुरी बालकृष्ण की मूर्ति की श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उपासना करते थे। चैतन्य की माता और उनके बड़े भाई ने माधवेन्द्रपुरी से ही दीक्षा ली थी। चैतन्य माधवेन्द्रपुरी के अन्यतम भक्त ईश्वरपुरी के शिष्य थे। माधवेन्द्रपुरी ही मथुरा में नव-वैष्णव-केन्द्र के संस्थापक थे जो परवर्तीकाल में चैतन्य की प्रेरणा से वृन्दावन में रूपान्तरित हुआ। अतः वैष्णव-धर्म के रूप में प्राचीन काल से प्रवाहित धर्म-साधना चैतन्य की प्रेरणा से बंगाल में नव-वैष्णववाद के रूप में स्थापित हुई। यह भक्ति-पद्धति गौड़ीय वैष्णव-धर्म के नाम से विख्यात हुई।

गौड़ीय वैष्णव-धर्म, सिद्धान्त और दर्शन दोनों ही दृष्टियों से 'भागवत-पुराण' की व्याख्या पर आधारित है। अन्य वैष्णव-धर्मों के सैद्धान्तिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में जब हम गौड़ीय वैष्णव-भक्ति का मूल्यांकन करते हैं, तो प्रथमतः जो दृष्टि हमें आकृष्ट करती है, वह यह है कि अन्य सम्प्रदाय सिद्धान्त-निरूपण की दृष्टि से वेदान्त-सूत्रों के नये-नये भाष्य प्रस्तुत करते हैं परन्तु गौड़ीय भक्ति और दर्शन का एकमात्र आधार 'श्रीमद्भागवत' ही रहा है। चैतन्य का यह विश्वास था कि 'श्रीमद्भागवत' वेदान्त-सूत्रों का ही भाष्य है।

वृन्दावन के गोस्वामी

गौड़ीय वैष्णव-भक्ति के स्वरूप-निदर्शन के लिए षड्-गोस्वामियों का उल्लेख अपेक्षित है। चैतन्य-भक्तों के दो स्पष्ट वर्ग मिलते हैं। एक वर्ग नवद्वीप के भक्तों का है, दूसरा वृन्दावन के भक्तों का, जो मूलतः षड्गोस्वामी के नाम से विख्यात हैं। ये हैं—रघुनन्दनदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट,

सनातन गोस्वामी, रूपगोस्वामी एवं जीवगोस्वामी। नवद्वीप के भक्त चिन्तन और भक्ति-दर्शन के धरातल पर वृन्दावन के गोस्वामियों से पृथक् हैं। वे चैतन्य को ही कृष्ण का अवतार मानते हैं, चैतन्य के 'राधा-भाव' में विश्वास करते हैं तथा राधा-कृष्ण को अभिन्न-अपृथक् मानते हैं। इसी परम्परा में नरहरि और उनके शिष्य लोचन आते हैं, जिन्होंने इस भक्ति-पद्धति में 'गौर-नागर-भाव' की प्रस्थापना की है। इस सिद्धान्त के अनुसार कृष्ण नागर हैं और भक्त नागरी। परन्तु मुरारिगुप्त चैतन्य को भगवत् का अवतार मानते हैं। उनके मत में अवतारकी दो कोटियाँ हैं—(क) युगावतार और (ख) कार्यावतार। युगावतार चार हैं—शुक्ल, यज्ञ, पृथु व चैतन्य। कार्यावतार दस हैं—मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, तथा कल्कि। मुरारिगुप्त चैतन्य को आवेश-अवतार मानते हैं। उनकी उपासना वे चतुर्भुज-विष्णु-रूप में करते थे। कवि कर्णपूर उनकी उपासना द्विभुज-विष्णु के रूप में करते थे। उनका विश्वास था कि कृष्ण का अवतरण दुःखी जन को पीड़ा से विमुक्त करने हेतु हुआ है। 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' के 'नमस्कारिया' में कृष्ण को नमन करते हुए उन्होंने कहा है—'देवो स कुलदैवतं विजयताम् चैतन्यकृष्णो हरिः'। कर्णपूर ने वैधी और रागानुगा भक्ति-पद्धतियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि रागानुगा भक्ति किसी निश्चित मार्ग का अनुसरण नहीं करती।

वे अद्वैत मुक्ति की सम्भावना में विश्वास नहीं करते थे। संकीर्तन को ही भक्ति का एकमात्र साधन मानते थे। 'नवद्वीप-सम्प्रदाय' के वृन्दावनदास चैतन्य को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। साथ ही साथ वे रागानुगा भक्ति और राधाभाव की भक्ति में भी विश्वास करते हैं। नरहरि सरकार के अनुसार बलभद्र, ब्रह्मा, विष्णु और शिव, कृष्ण के ही अवतार हैं। लक्ष्मी, रुक्मिणी, जानकी और राधा, कृष्ण की सहचरियाँ हैं।

जीवगोस्वामी ने कृष्ण के लिए 'प्रमाण-प्रमेय' संज्ञा का प्रयोग भक्ति-विषयक व्याख्याओं में किया है। उन्होंने 'सर्वसम्वादिनी' में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव या अनुपलब्धि, सम्भाव्य एवं ऐतिह्य के विविध तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में इस पक्ष का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार मनुष्य चार प्रकार की विभ्रान्तियों द्वारा भ्रमित होता है। ये हैं—भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव। इनमें शब्द ही सर्व विश्वसनीय प्रमाण है। शब्द अप्राकृतिक वचन-लक्षण है। इसका समर्थन वेदान्तसूत्र करते हैं (११-१-११)। पुराणों ने केवल सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तत्त्वों का उल्लेख किया है। मत्स्य-पुराण के प्रमाण पर यह सिद्ध होता है कि सात्त्विक गुण का वर्ण्य-विषय कृष्ण का विभुरूप है। राजसिक का वर्ण्य-विषय ब्रह्मा तथा तामसिक का शिव है। शिव की भव्यता और विभव-वर्णन करनेवाले पुराणों में वैष्णव की आस्था नहीं होनी चाहिए।

सात्त्विक पुराणों में कृष्ण की भव्यता का वर्णन है। इस दृष्टि से श्रीमद्भागवत सर्वोपरि है। जीवगोस्वामी भागवत को ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानते हैं (शंकराचार्य इसे नहीं मानते हैं)। जीवगोस्वामी की प्रतिस्थापना है कि जीव चिद्रूप है, यह माया-आवृत है, माया संसार का हेतु है, साथ ही माया भगवत् की बाह्य शक्ति भी है, अतः भगवत्-माया से उच्चतर और असंस्पर्शित है। इस प्रकार जीव और भगवत् में स्वरूप और सामर्थ्यगत अन्तर है। जीवगोस्वामी अद्वैतवादियों के उपाधि और परिच्छेदवाद या प्रतिबिम्बवाद का खण्डन करते हैं। वे एकजीववाद में विश्वास नहीं करते। भागवत के प्रमाण पर वे जीव के अनेकत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध सेवक-सेव्य-भाव का है। मायाबद्ध जीव की मुक्ति के पश्चात् भी ब्रह्म और जीव का यह सेव्य-सेवकभाव बना रहता है। 'भागवत' का प्रयोजन

प्रीति है। इस प्रयोजन से ही माया का बन्धन कट सकता है, यह साधन-भक्ति है, जो प्रेम-भक्ति का प्रथम सोपान है। भक्ति से ही ज्ञान सम्भव है। भागवत के अनुसार कृष्ण ही उपास्य हैं जो परमतत्त्व अथवा महातत्त्व हैं। भागवत से ही वास्तविक वस्तु का बोध होता है।

वदन्ति तत्त्वविदम् तत्त्वं यद् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्दयेत्॥

जीवगोस्वामी ने 'अद्वयज्ञान' की परिकल्पना की है, परन्तु इनका 'अद्वयज्ञान' निर्गुण अद्वैतवादियों के द्वैत सिद्धान्त या एकात्मवादी सिद्धान्त से भिन्न है। इनका आशय सगुण मतवाद का द्वैतवादी सिद्धान्त है। पुराण में इसका उल्लेख सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, युति, मन्वन्तर, ईशानु-कथा, निरोध, मुक्ति तथा आश्रय का निर्देश है। इनमें आश्रय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। परमात्मा ही आश्रय है। जीव परमात्मा का अंश है। अतः वह भी आंशिक आश्रय है। श्रीकृष्ण ही आश्रय हैं। वे अखण्ड और अविभाज्य हैं। उनके तीन पक्ष हैं—उपासक, योग्यता, वैशिष्ट्य। सत्त्व, रज और तम से भगवत् मुक्त रहता है। ये जीव की ही विशेषताएँ हैं। भगवत् (कृष्ण) अप्राकृतिक हैं। वे स्वरूपशक्तियुक्त हैं। उनकी इस शक्ति के दो गुण हैं—(क) अचिन्त्यत्व और (ख) स्वाभाविकत्व। शक्ति अन्वेक्षणीय है, मनुष्य के चिन्तन और तर्क के परे है। परन्तु शक्ति और शक्तिमान् का सम्बन्ध विचित्र है। जो स्वामिकत्व है, ब्रह्म का प्राकृत अंग है और उसकी सम्पूर्णता-विधायिनी भी है। शक्ति के तीन प्रभेद हैं—स्वरूपा, तटस्था और बहिरंगा। ये क्रमशः परा (स्वरूपशक्ति) तटस्था (जीवशक्ति) व बहिरंगा या माया शक्तियाँ हैं। विष्णुपुराण में इन्हें परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या कहा गया है। विमोह-अवस्था में जीव तटस्था या मायाशक्ति से आच्छादित रहता है। जीव ईश्वर की स्वरूपशक्ति के अधीन रहता है। क्षेत्रज्ञा और माया शक्तियाँ सृजन तथा पुनर्जन्म के बन्धन का कारण बनती हैं। स्वाभाविकत्व का अर्थ है ईश्वर की नैसर्गिक शक्ति। विष्णुपुराण में इन्हें संधिनी, संविद् और ह्लादिनी कहा गया है जो सत्, चित् और आनन्द के ही नामान्तर हैं।

अचिन्त्य-भेदाभेद-दर्शन में 'ब्रह्म' का स्वरूप

बंगाल के वैष्णव-भक्ति-विषयक चिन्तन में 'ह्लादिनी शक्ति' का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है, जिसकी परिभाषा दी गयी है—"ह्लादरूपोऽपि भगवान् यथा ह्लादते ह्लादयति च सा ह्लादिनी"। भगवान् अपने भक्तों व पार्षदों को यह शक्ति अवदानरूप में देते हैं। यह मूलतः शक्ति की चिरन्तन लीला है, जिसमें वह अपने भक्तों के साथ संलग्न रहती है। इसे 'अनादि-लीला-रस' भी कहा गया है। यह अनादि रस ही ब्रह्म का स्वरूप है। वैष्णवों ने इसे मधुर रस की संज्ञा दी है। अचिन्त्य-भेदाभेद-मत के अनुसार शक्ति और शक्तिमन्त के पारस्परिक विलयन से ब्रह्म जगत् में अपना विस्तार करता है। विश्व माया सन्निहित ब्रह्म का परिणाम है। विश्व का प्रादुर्भाव निर्विशेष ब्रह्म से होता है। यह विश्व कृष्ण की प्रभा है। जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है, यह इस सिद्धान्त का प्रथम पक्ष है, जीव व ब्रह्म में भेद है, यह इस सिद्धान्त का द्वितीय पक्ष है। तीसरे पक्ष के अनुसार जीव और ब्रह्म में भेद भी है, अभेद भी है। चित् रूप में ब्रह्म और जीव अभिन्न हैं, परन्तु ब्रह्म विभु-चित् है, जीव अणु-चित् है। ब्रह्म सर्वज्ञाता है, जीव सर्वज्ञाता नहीं है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् तत्त्व है, जीव सर्वशक्तिमान् नहीं है, उसकी शक्ति ब्रह्माश्रित है। ब्रह्म माया का स्वामी है। जीव मायाशक्ति से प्रभावित है, वह माया के बन्धन में है। एक विश्वसर्जक है, दूसरा ब्रह्म द्वारा सर्जित है। जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध अंश-अंशी का है अतः उनमें भेद भी है, अभेद भी है। बंगाल-

वैष्णव-सम्प्रदाय इस मत का पोषण शक्ति व शक्तिमन्त सिद्धान्त के पूरक रूप में करता है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप हैं, आनन्द और ब्रह्म की शक्ति में प्रभेद नहीं है, वे मूलतः अभिन्न हैं, एक हैं। परन्तु इनमें स्वगत अथवा आन्तरिक भेद भी है। विष्णु-पुराण में इसे अचिन्त्य-ज्ञानगोचर कहा गया है। जीवगोस्वामी ने इसे 'भिन्नाभिन्नत्वादि विकल्पश्चिन्मयि तम् अणुवयः' कहा है। जैसे अग्नि और ताप में भिन्नता भी है, अभिन्नता भी है।

यद्यपि अचिन्त्य दर्शन का विमर्श श्री चैतन्य ने किया था, परन्तु उसकी व्याख्या और स्वरूप-विश्लेषण में जीवगोस्वामी, रूपगोस्वामी और सनातनगोस्वामी का ऐतिहासिक महत्त्व है। इन्होंने 'लघुभागवतामृत,' 'बृहद्भागवतामृत', 'षट्सन्दर्भ आदि' ग्रन्थों में चैतन्य द्वारा रूपायित दार्शनिक चेतना को अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन के रूप में प्रस्तावित किया। परवर्ती काल में श्री बलदेव विद्याभूषण ने 'गोविन्द-भाष्य' का प्रणयन किया, चैतन्य उद्भूत मत के साथ श्रीमद्भागवत, विष्णु-पुराण, गीता तथा पद्मपुराण में नियोजित दार्शनिक चिन्तन को समन्वित किया और चैतन्य द्वारा वपित बीज को अचिन्त्य-भेदाभेद रूप में प्रस्तावित किया। परन्तु रूपगोस्वामी, सनातनगोस्वामी, जीवगोस्वामी, प्रबोधानन्द सरस्वती, कृष्णदास कविराज, व्रजाचार्य नारायण भट्ट और विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसे शास्त्रीय रूप दिया। इनकी प्रपत्ति का मूल यह है कि शक्ति-शक्तिमान् का सम्बन्ध अचिन्त्य-भेदाभेद भाव का है। 'अचिन्त्याभिन्ना, भिन्नत्वादिविकल्पैश्चिन्तयितुमशक्याः' अर्थात् भिन्न-अभिन्न द्वारा जिसका चिन्तन नहीं किया जा सकता है, केवल अर्थापत्ति के द्वारा ही जो ज्ञान-गोचर होता है, वह अचिन्त्य है। कस्तूरी और उसकी गन्ध का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। गन्ध कस्तूरी से पृथक् नहीं है। इन दोनों में अभेदता सिद्ध होती है। कस्तूरी और सुगन्धि में भेद-अभेद है, अतः दोनों में भिन्नत्व-अभिन्नत्व का सिद्धान्त स्थापित होता है। परन्तु यह भिन्नाभिन्न-सिद्धान्त अचिन्त्य है। अपने अचिन्त्य शक्तिबल से ही परब्रह्म जगत्‌रूप में परिणत होता है—

अचिन्त्य शक्ति युक्त भगवान्।
इच्छाय जगद्रूपे पाय परिणाम ॥

तथापि अचिन्त्य शक्त्ये हय अधिकारि।
प्राकृत चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त धरि ॥

नाना रत्नराशि चिन्तामणि होयते।
तथापिह मणि रहे स्वरूपे अविकृते ॥

प्राकृत वस्तुते यदि अचिन्त्य शक्ति हय।
ईश्वरेर अचिन्त्य शक्ति इथेकि विस्मय ॥

(चैतन्य चरितामृत)

भगवान् के सगुण-निर्गुण आदि विरोधी धर्मों का सन्निवेश अचिन्त्य-शक्तियोग से होता है। ईश्वर और जीव दोनों ही चेतनरूप हैं। परमेश्वर विभु-चैतन्य है, जीव अणु-चैतन्य है। चैतन्य अंश के कारण दोनों ही अभिन्न हैं, परन्तु एक बिन्दु है और दूसरा अणु है। अतः दोनों में भेद है। यह भेद-अभेद अचिन्त्य शक्ति से एक ही समय सिद्ध होता है। रूपगोस्वामी ने इसे भगवान् की विरोधभञ्जिका शक्ति कहा है, जो तत्त्वतः अचिन्त्य-शक्ति ही है। ब्रह्म निर्गुण तथा अमूर्त कृष्ण का ही प्रकाश है। कृष्ण ही शक्तिरूपा राधिका के

साथ वृन्दावन (नित्यधाम) में लीलारत रहते हैं। कृष्ण आनन्दराशि हैं, जीव उस आनन्द का आस्वादन करता है, अर्थात् अणु-चैतन्य विभुचैतन्य का आस्वादन करता है। कृष्ण अद्वय ज्ञानस्वरूप हैं—

कृष्णेर विचार शुन सनातन।
अद्वय ज्ञान तत्त्व व्रजे व्रजेन्द्र नन्दन॥
सर्वादि सर्व अंशी किशोर शेखर।
चिदानन्द देह सर्वाश्रय सर्वेश्वर॥

(चैतन्य चरितामृत म० ली० १३१-३२)

जीव या जीवात्मा

परमात्मा में उत्पत्ति, स्थिति और लय की क्षमता होती है। वह जीव का संचालक है। जीवगोस्वामी जीव व ब्रह्म के सम्बन्ध की गीता (१३।१ श्लोक) के आधार पर व्याख्या करते हैं- परमात्मन् क्षेत्रज्ञ है, जीव क्षेत्र हैं, परमात्मा समष्टि जीवान्तर्यामी और व्यष्टि जीवान्तर्यामी दोनों ही हैं। जीवगोस्वामी के अनुसार जीवात्मा कृष्ण का अंश है, जीव उसके साथ संयोजित है, परन्तु वह स्वरूपशक्ति के साथ संयुक्त नहीं है। माया बहिरंग शक्ति है। कृष्ण अविभाज्य है, अतः जीवात्मा शक्तिस्वरूप नहीं है। इससे वह कृष्ण या चैतन्य का विभिन्नांश है। जीवात्मा प्रकृतितः चित्स्वरूप होने के कारण ज्ञातृ है। यद्यपि जीवात्मा अणुवत् है, फिर भी, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व भी है, जो शाश्वत है। बद्धजीव का अपना पृथक् अस्तित्व है, बन्धन-मुक्ति या मोक्ष के पश्चात् उसका विलयन ब्रह्म में नहीं हो जाता। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष के पश्चात् जीव का ब्रह्म में विलयन होता है, परन्तु गौड़ीय वैष्णव-दर्शन के अनुसार मोक्ष के पश्चात् भी जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। 'चैतन्य-चरितामृत' के अनुसार जीव दो प्रकार के हैं-- (क) नित्य मुक्त (ख) बद्ध। नित्यमुक्त ही कृष्ण-पार्षद हैं। वे कृष्ण-सेवार्पित हैं। नित्यमुक्त-जीव का एक रूप ऐश्वर्यगत नित्यमुक्त है, दूसरा रूप माधुर्यगत नित्यमुक्त है। ऐसे जीव ब्रजलीला व नवद्वीपलीला में कृष्ण के सहचर हैं। नित्य बद्धजीव मायाबद्ध तथा आत्मविस्मृत है। गौड़ीय-भक्ति-दर्शन के अनुसार जीवात्मा ब्रह्म की शक्ति है, अतः वह शक्तिमन्त (अर्थात् कृष्ण या चैतन्य) का अंश है। जीवगोस्वामी के अनुसार जीवात्मा कृष्ण का अंश है, जो जीवशक्ति के साथ संयोजित है, परन्तु वह स्वरूपशक्ति के साथ संयुक्त नहीं है। माया उसकी बहिरंगाशक्ति है। अतः माया स्वरूपशक्ति से उसे पृथक् रखती है। कृष्ण अविभाज्य हैं। जीव विभाज्य हैं, अतः जीवात्मा स्वरूपशक्ति-रूपा स्वरूप नहीं है। जीवात्मा प्रवृत्तितः चित् स्वरूप है' अतः वह ज्ञातृ और कर्तृ दोनों ही है। बन्धन-मुक्ति के पश्चात् उसका कृष्ण में विलय नहीं होता। शंकराचार्य ने मोक्ष के पश्चात् जीव का ब्रह्म में विलयन स्वीकार किया है। परन्तु चैतन्य-मत में मोक्ष के पश्चात् भी जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व की अवधारणा व्याप्त है। कृष्ण-सेवा जीव की स्वाभाविक प्रकृति है। गौड़ीय-वैष्णव-चिन्तन में भक्ति द्वारा मोक्ष-प्राप्ति की परिकल्पना की गयी है। भक्ति ही जीव को ब्रह्म का नैकट्य प्रदान करती है। ज्ञान भक्ति के साथ संयोजित होकर आत्म-विद्या के रूप में प्रकट होता है और शुद्ध विद्या के साथ संयुक्त होकर गुह्य विद्या हो जाता है।

भक्ति

कर्म, योग, ज्ञान और भक्ति, ब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार के माध्यम हैं। कर्म यज्ञ का पर्यायवाची है, इसमें जीव माया से मुक्त नहीं हो पाता। योग परमात्मा से एकाकार होने की भावना से ध्यान का मार्ग है।

ज्ञान का लक्ष्य सार्युज्य (निर्विशेष भक्ति में लीन हो जाना) मुक्ति है। परन्तु भक्ति में ईश्वराराधन, नामस्मरण तथा लीलागान साधन भक्ति हैं। ज्ञान, कर्म, योग भक्तिमिश्रित भक्ति है। कृष्ण-सेवार्पित भक्ति कृष्ण के अनुरंजन के लिए है। माया से मोक्ष पाने की भावना से रहित भक्ति केवला या शुद्धा भक्ति है। गौड़ीय भक्तों का लक्ष्य सायुज्य-भक्ति नहीं, अपितु रस-भक्ति है। गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्त श्रीकृष्ण और चैतन्य दोनों की भक्ति करते हैं। वे उनकी लीला का ध्यान करते हैं। अर्चन व स्मरण-भक्ति के अतिरिक्त भक्त साधन-भक्ति भी कर सकता है। भक्त उसका नामस्मरण करता है, जो चित् और आनन्द स्वरूप है। सर्वोपरि यह है कि गौड़ीय वैष्णव-भक्त उस सर्वोच्च निष्काम रसिक में आस्था रखते हैं, जिसे कृष्ण कहते हैं। वे उनकी लीला का ध्यान करते हैं, अनुभव करते हैं कि वे उनकी लीला के सहचर हैं। साधन-भक्ति से भक्त के मन में परिशुद्धता आती है, उसमें स्वरूप-भक्ति का अभ्युदय होता है और वह भक्ति साध्य-भक्ति में रूपान्तरित हो जाती है। तब भक्त मोक्ष-पद को ओर अग्रसर होता है। वह वृन्दावन या नवद्वीप में कृष्ण या चैतन्य का लीला-सहचर बन जाता है। यह साहचर्य दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा कान्ता, भाव में से किसी एक द्वारा प्राप्त हो सकता है। वृन्दावन या नवद्वीप में से किसी एक स्थान पर भक्ति करते हुए भक्त शुद्ध सत्त्व को प्राप्त होता है।

संसार

गौड़ीय भक्ति-सिद्धान्त के अनुसार शक्ति और शक्तिमान् के पारस्परिक विलयन से ब्रह्म विश्व में आत्मविस्तार करता है। विश्व माया-सन्निहित ब्रह्म का परिणाम है। परन्तु वह माया से संस्पर्शित रहता है। विश्व का प्रादुर्भाव निर्विशेष ब्रह्म से होता है, जो श्रीकृष्ण की प्रभा है। इसके अतिरिक्त माया, जीव, काल, कर्म ये सभी जीवब्रह्म की शक्तियाँ हैं। वे विश्व-सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का प्रतिपादन करती हैं। शंकराचार्य के विवर्तवाद के विपरीत गौड़ीय वैष्णव-भक्त विश्व को सत्य या यथार्थ मानते हैं, यद्यपि वे इसके क्षणिक व अनित्य रूप को भी स्वीकार करते हैं। जगत् कृष्ण की बहिरंगा शक्ति का विलास है। वेदान्त-सूत्रकार ने जगत् को ब्रह्म का परिणाम बताया है। गोविन्द-भाष्य में परिणामवाद को ही शास्त्र-सम्मत कहा गया है, विवर्तवाद को शास्त्र-असम्मत बतलाया गया है। गौड़ीय भक्तों की यह प्रतिस्थापना है कि संसार की उत्पत्ति विवर्त नहीं है। अपितु यह परिणामवाद की प्रक्रिया है। विवर्तवाद का सिद्धान्त शंकर के मायावाद का आनुषंगिक है। परन्तु गौड़ीय वैष्णव-भक्तों के अनुसार सृष्टि-उत्पत्ति परिणामवाद का ही फल है। भगवत् अस्तित्व के समान इसका अस्तित्व भी सम्पूर्ण है, फिर भी संसार व भगवत् में अन्तर है। संसार सापेक्षिक और अशाश्वत (क्षयवान) है, भगवत् सम्पूर्ण और चिरन्तन है। परमात्मन् समष्टि जीवान्तर्यामिन् और व्यष्टिजीवान्तर्यामिन् दोनों है। धर्म व दर्शन की भाषा में यह कह सकते हैं कि अवतार का सम्बन्ध गोचर जगत् से है, सबकी उत्पत्ति परमात्मा से है और भगवत् उनमें सर्वोपरि है। पुरुषरूप में भगवत् के स्वरूप दो हैं गर्भोदक शायिन् व क्षीरोदक शायिन्। व्यूह-सिद्धान्त के अनुसार करनार्णव शायिन् जीव गोचर या व्यक्त जगत् का संचालक है। अतः इसका समस्त चिन्तन व दर्शन-पक्ष व्यूह-सिद्धान्त व संकर्षणवाद पर आधारित है। जीवगोस्वामी का प्रतिपाद्य है जीव तथा जीव-शक्ति का अवस्थान। अतः जीव व भगवद् का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमन्त का है। भगवद् का अंश होते हुए भी जीव का रवि और रविरश्मि के समान स्वतंत्र अस्तित्त्व है। यही उसका भगवद् से अचिन्त्यभेदा-भेद सम्बन्ध है।

माया

चैतन्य-मत में माया की द्विरूपात्मक कल्पना की गयी है निमित्तमाया अथवा जीवमाया तथा

उपादानमाया अथवा गुणमाया। यह विभाजन या वर्गीकरण उत्पत्तिवाद के आधार पर किया गया है। जीवमाया जीव को मलावृत कर देती है 'जीवम् ज्ञानं आवृणोति।' यह सृष्टि-स्थित्यन्त-कारणी कहलाती है। यही उत्पत्तिलय-विनास का हेतु है। विद्या और अविद्या, जीवमाया के दो रूप हैं। विद्या जीव के लिए मुक्त्यात्मिका और अविद्या आवरण तथा विक्षेपात्मिका है। उपादानमाया या गुणमाया द्रव्य, क्षेत्र, प्राण, आत्मन् और विकार उत्पादक है।

शक्ति-तत्त्व

कृष्ण की शक्ति अचिन्त्य तथा अनन्त है—

कृष्णेर अनन्त शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति, माया शक्ति जीव शक्तिनाम॥

अन्तरंगा बहिरंगा तटस्था कहि वारे।
अन्तरंगा स्वरूप शक्ति सबार उपरे॥

(चै० च० मध्य०-८)

अर्थात्, यह चिच्छक्ति, मायाशक्ति एवं जीवशक्ति, जिन्हें अन्तरंगा, बहिरंगा एवं तटस्था भी कहते हैं, विष्णु-पुराण में इन्हें परा, क्षेत्रजा एवं अविद्या कहा गया है—

विष्णुशक्ति: परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

चिच्छक्ति श्रीकृष्ण के स्वरूप में अवस्थित है। श्रीकृष्ण चित्स्वरूप हैं, अतः उनकी यह चित्-शक्ति, स्वरूपशक्ति के रूप में व्याख्यायित है। यह भगवान् की अन्तरंगाशक्ति है, अतः इसे अंतरंगा-शक्ति भी कहते हैं। इसके साथ ही कृष्ण अपने ऐश्वर्य और माधुर्य का प्रकाश करते हैं।

श्रीकृष्ण की मायाशक्ति से ब्रह्माण्ड एवं जड़ जगत् की उत्पत्ति हुई है। अतः मायाशक्ति बहिरंगाशक्ति है। श्रीकृष्ण की जीवशक्ति के अंशस्वरूप अनन्त कोटि जीव हैं।

श्रीकृष्ण इन शक्तियों से युक्त हैं, फलस्वरूप भगवान दो अंशों में प्रकट होते हैं-स्वांश और विभिन्नांश में। प्रथम से नारायण. राम आदि का अवतार हुआ है तथा द्वितीय से जीव आदि का विस्तार हुआ है।

स्वांश, विभिन्नांश, रूपे हइया विस्तार।
अनन्त वैकुण्ठ ब्रह्माण्डे करेन बिहार॥
स्वांश विस्तार चतुर्व्यूह अवतार गण।
विभिन्नांश जीवांतर शक्ति ते गणन॥

(चै० च० मध्य०-२८)

इनकी तीन शक्तियाँ हैं— ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्। सच्चिदानन्दस्वरूप होने के कारण श्रीकृष्ण ये तीन रूप धारण करते हैं। भगवान् की स्वरूपशक्ति दो रूपों में प्रकट होती है-स्वरूप तथा स्वरूप-

विभव। स्वरूप-विभव के अन्तर्गत ही धाम, परिकर एवं सेवकों की गणना की जाती है। लीला के पार्षदगण स्वरूप-वैभव के अंग हैं। श्रीकृष्ण की लीलाभूमि ही लीलाधाम है। इसमें गोलोक की ख्याति सर्वोपरि है। कृष्ण को भाँति ही लीलाधाम, लीलासहचर, सेवक और भक्त सभी नित्य हैं। उनकी लीला अगोचर है, अतः वह अप्रकट-लीला कहलाती है। परन्तु सगुण रूप में उनकी लीला गोचर है। द्वारका, मथुरा तथा वृन्दावन कृष्णलोक हैं। प्रकट धाम के समान अप्रकट धाम में भी यमुना, कुंज-निकुंज, कदम्ब, करील, गोप-गोपी, धेनु, वत्स, शुक-सारिका आदि विद्यमान रहते हैं। मथुरा और द्वारका में यादवगण श्रीकृष्ण के लीला-सहचर हैं और वृन्दावन-लीला में गोप-गोपीगण।

बंगाल के वैष्णवों में वृन्दावन-लीला की विशेष महिमा है। बालरूप में प्रकट होकर भगवान् ने नित्य लीलाएँ की हैं। अप्रकट लीला में कृष्ण केवल किशोररूप में रहते हैं, परन्तु अवतार लेकर वे नरलीला करते हैं। शिशु, बाल्य, पौगण्ड व कैशोर रूपों में उन्होंने अनेक प्रकार की लीलाएँ की हैं। गोलोक-लीला में विप्रलम्भ की सम्भावना नहीं रहती, अतः उसे 'एकांगी-लीला' कहते हैं। परन्तु ब्रज-लीला 'मधुर-लीला' है। 'चैतन्य-चरितामृत' में कृष्ण की लीलाओं का गुणगान करते हुए कहा गया है कि श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं में सर्वश्रेष्ठ नरलीला ही है।

कृष्णेर यतेक खेला सर्वोत्तम नर लीला,
नर-वपु ताहार स्वरूप।

गोपवेश, वेणुकर, नवकिशोर नटवर,
नर लीला होय अनुरूप॥

'कृष्ण की जितनी भी लीलाएँ हैं, उनमें सर्वोत्तम नर-लीला है। उनका गोपरूप, कर में वेणुधारी, नवकिशोर-नटवर-रूप नर-लीला के अनुरूप है। नर-रूप में लीला करनेवाले कृष्ण परब्रह्म हैं। उनका नर-रूप प्राकृत स्वरूप है।'

'रसो वै सः'—कहकर कृष्ण की लीला का गान किया गया है। रसतत्व ब्रह्म का ही पर्याय या रूप है। ब्रह्म स्वयं ही इस रस का आस्वादक है। अर्थात्, वह स्वयं आस्वाद्य और आस्वादक है। वह अपनी ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव से आस्वादन करता है।

ह्लादिनी शक्ति

कृष्ण की स्वरूपशक्ति के अन्तर्गत ह्लादिनी शक्ति प्रमुख है, जो उसके रसमय स्वरूप का हेतु है—'ह्लादात्मापि यभ्या ह्लादते ह्लादयति च सा संवित्।' (सिद्धान्त-रत्न पृ० ४०) चैतन्य-चरितामृत में इसकी व्याख्या प्रस्तुत रूप में की गयी है, 'कृष्ण के आह्लादे ताहि नाम आह्लादिनी।' श्री जीवगोस्वामी ने भागवत-सन्दर्भ (पृ० १९१) में इसका परिचय दिया है—

ह्लादरूपोऽपि यया सम्विदुत्कर्षरूपया तं ह्लादं सम्बोति सम्वेदयति च सा ह्लादिनी।

कृष्ण अनादि-अनन्त हैं, आनन्दस्वरूप हैं। जीव भी उनके आनन्दस्वरूप हैं, कृष्ण स्वयं ह्लादरूप हैं, वह शक्ति कृष्ण को आह्लादित करती है तथा जीव को ह्लाद-दान देती है—अतः यह शक्ति भगवद् और जीव दोनों में ही व्याप्त है। श्रीकृष्ण में यह ह्लादिनी-शक्ति रसरूप में है, जीव में भक्तिरूप में। राधा ही

ह्लादिनी शक्ति हैं। भगवान् नित्यप्रेम स्वरूप हैं और आह्लादिनी रूप में राधा नित्य प्रेमरूपिणी हैं। राधा प्रेमस्वरूपा ही नहीं अपितु प्रेमदायिनो भी हैं। श्रीकृष्ण में राधा ह्लादिनी शक्तिरूप में निरन्तर विद्यमान हैं। राधा को भगवान् की 'प्रेमकल्पलता' कहा गया है। भक्तों के लिए वे प्रेम-कल्पतरु हैं। ह्लादिनी शक्ति ही रति, स्नेह, मान, प्रणय. राग, अनुराग, भाव और महाभाव रूप में ऐसे जीवों को जिन्हें कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त है, शुद्ध-सत्त्वमयी निर्मल मनोवृत्ति प्रदान करती है।

राधा-तत्व

महाभावस्वरूपिणी राधा ह्लादिनी शक्ति की प्रतिमूर्ति हैं। वे कृष्ण की शक्ति हैं। राधा प्रेमभक्ति-प्रकाशिका हैं। कृष्ण और उनके भक्तों में पारस्परिक प्रेम की सघनता है, उससे एक विशेष प्रकार का उल्लासभाव जागृत होता है। इस उल्लास को भक्तिशास्त्र में रति कहा गया है। कृष्ण के प्रति इस प्रीति के कारण भक्तों में प्रीतिभाव का स्फुरण होता है, यह प्रीति ही प्रेम है। कृष्ण के प्रति भक्तों में जब ममता का स्फुरण होता है, तो कृष्ण के ऐश्वर्यमूलक स्वरूप के बोध का लोप हो जाता है और कृष्ण व भक्त का सम्बन्ध पूर्णतः प्रीतिमय हो जाता है। भक्त प्रीति-पथ की बाधाओं का अतिक्रमण करने को निरन्तर तत्पर रहता है। उसमें स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव आदि का क्रमशः स्फुरण होता है :

प्रेम क्रमे बाढ़ि हय स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥

(चै० च० म० १९।)

प्रेम के अभ्युदय से चित्त द्रवित होता है, द्रवण शीलता की इस प्रक्रिया को 'स्नेह' से संज्ञायित किया गया है, जिससे कृष्णदर्शन की लालसा अतिवेगवती हो जाती है. और पल भर का कृष्ण-वियोग भक्त के लिए असह्य हो जाता है। प्रिय के प्रति कुटिल भाव को मान कहते हैं। मान प्रिय के प्रति भक्त की आस्था को दृढ़ बनाता है, जिसकी पूर्ण परिणति प्रणय की संज्ञा प्राप्त करती है। इससे प्रिय के साथ अभेद भाव का स्फुरण होता है, जिसकी चरम परिणति 'राग' में होती है। राग की स्थिति में वियोग क्लेशकारी होता है, परन्तु प्रिय-वियोग-क्लेश भी प्रीतिकर होता है। फिर कृष्ण के प्रति प्रीति भाव दृढ़तर होता है, प्रीति की यह दृढ़ता 'अनुराग' कहलाती है। 'अनुराग' के संचरण से परस्पर आकर्षण में दृढ़ता उत्पन्न होती है और वह निरंतर विकसित होती रहती है, अनुराग का विकास 'मान' रूपी भावदशा को प्राप्त होता है, और भक्त का चित्त कृष्ण रूप-विभव में सुख की अनुभूति करता है। यह अनुभूति तन्मयता प्राप्त करती है। इस तन्मयता को वैष्णव-दर्शन-चिन्तन में 'महाभाव' की संज्ञा दी गई है। कविराज गोस्वामी ने महाभाव को भाव-पराकाष्ठा कहा है—

ह्लादिनी सार प्रेम प्रेमसार भाव।
भावेर पराकाष्ठा नाम महाभाव॥

महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठकुराणी।
सर्वगुण-खानि कृष्ण कान्ता शिरोमणी॥

(चै० च० आदि० ४)

ह्लादिनी का सार प्रेम है, प्रेम का सार भाव है, भाव की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है। श्रीराधा ठकुरानी महाभावस्वरूपा हैं, जो सर्वगुणखानि व कृष्ण-कान्ता शिरोमणि हैं।' ब्रजगोपियाँ

श्री मदनगोपाल : नवद्वीप पृ० ५८२

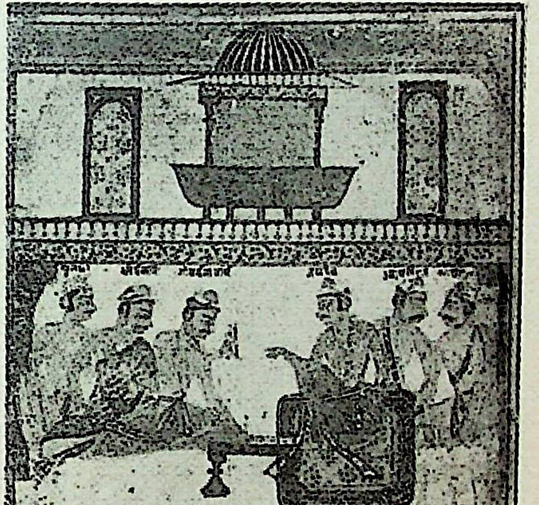

बंगाल के महाराज लक्ष्मणसेन ओर उनके आश्रित कृष्ण भक्तकवि जयदेव, गोवर्धनाचार्य, उमापति, शरण, धोयी तथा श्रुतधर पृ० ४७१

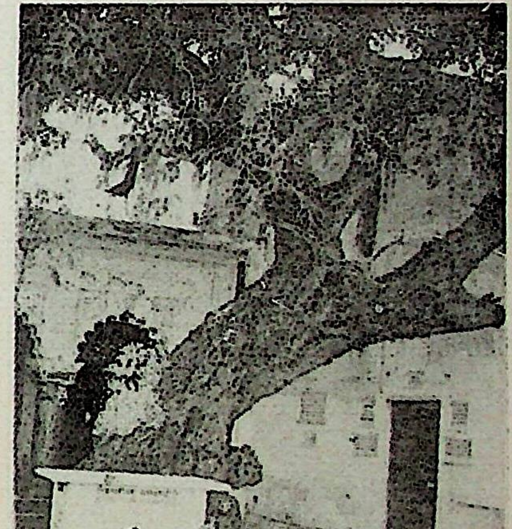

इमलीताल (वृन्दावन) पर चैतन्यमहाप्रभु का निवासस्थान पृ० ५८३

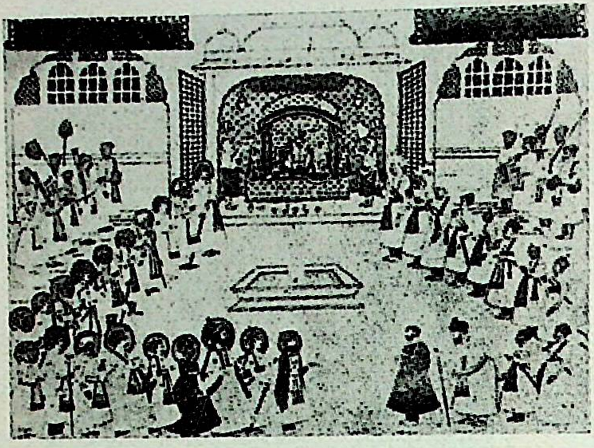

ठाकुर श्री राधागोविन्द (श्री रूपगोस्वामी द्वारा सेवित) : वृन्दावन
पृ० ६७३

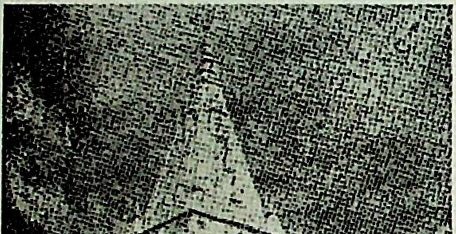

श्री योगपीठ मन्दिर : नवद्वीप
पृ० ५८२

महाप्रभु चैतन्य का जन्मस्थान : मायापुर (नवद्वीप)
पृ० ५८२

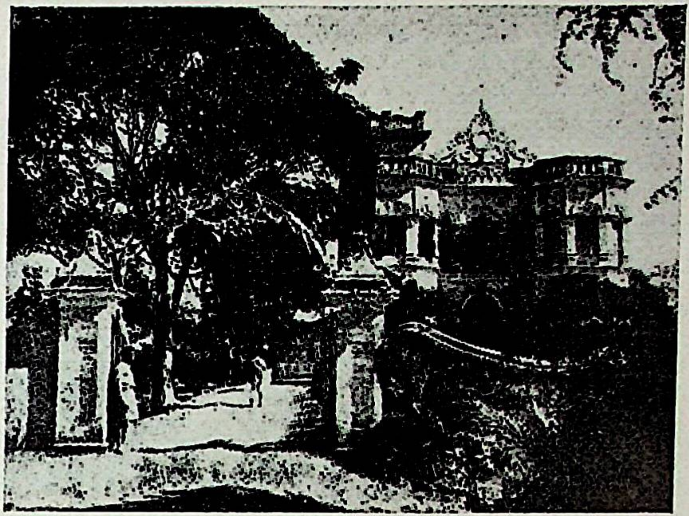

श्री चैतन्य-जन्मभूमि मायापुर (नवद्वीप) के प्रमुख केन्द्र चैतन्यमठ में
श्री सरस्वती ठाकुर का भजन स्थान

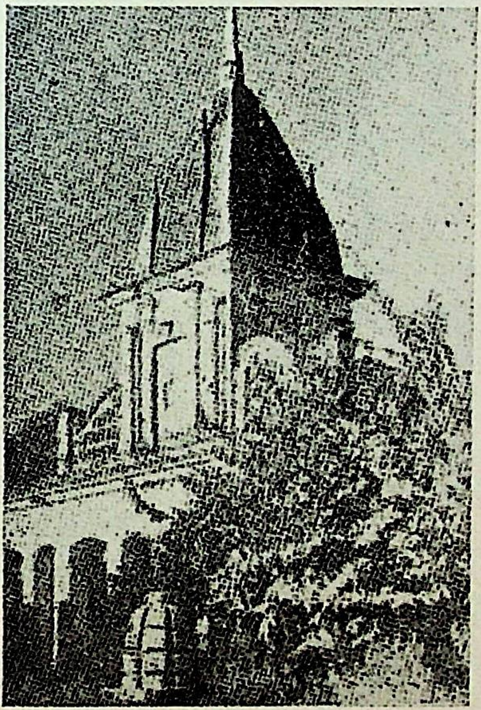

चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप में सर्वप्रथम यहीं से
संकीर्तन आरम्भ किया था पृ० ५८२

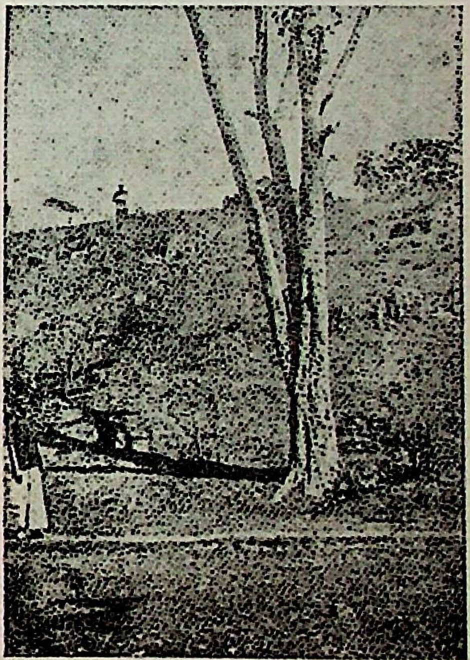

राजा वल्लभसेन तथा लक्ष्मणसेन का ध्वस्त
राजप्रासाद : मायापुर (नवद्वीप), पृ० ४७२

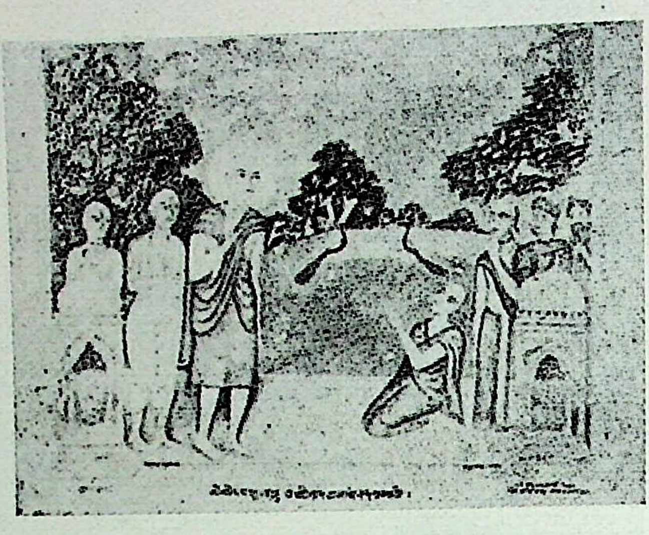

श्री महाप्रभु एवं श्रीपाद प्रबोधानंद सरस्वती, पृ० ५०७

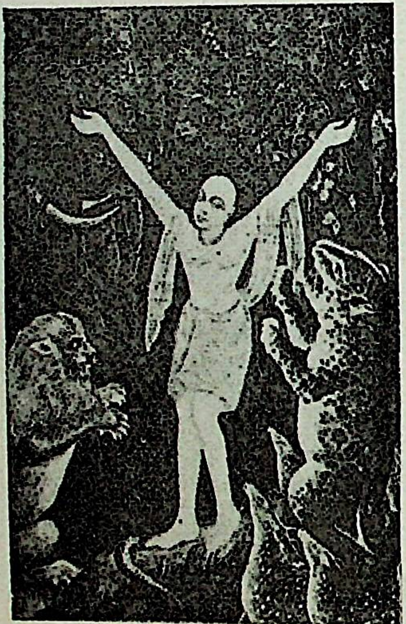

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पशु-पक्षियों से भी कीर्तन
कराया था : उसका एक आधुनिक भावचित्र
श्री गौरांग मन्दिर, वृन्दावन
पृ० ५८३

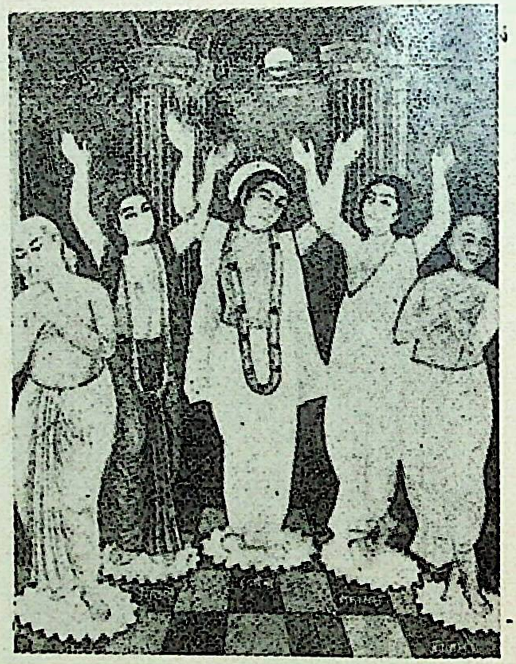

गौड़ीय-वैष्णव-संप्रदाय के पंचतत्त्व : सर्व श्री
अद्वैताचार्य, नित्यानंद, चैतन्य महाप्रभु,
नरोत्तम ठाकुर तथा श्रीनिवासाचार्य
पृ० ५२५

महाभाव-स्वरूपा हैं। राधिका वृन्दावनेश्वरी हैं। कृष्णदास कविराज ने राधिका को महाभाव-स्वरूपा कहा है। रूपगोस्वामी ने भाव और महाभाव को अभिन्न माना है। उन्होंने भाव की दो अवस्थाओं की कल्पना की है—पूर्वावस्था तथा परावस्था। पूर्वावस्था को रूढ़भाव तथा परावस्था को अधिरूढ़-भाव कहा है। अधिरूढ़-भाव ही महाभाव है। इससे स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य एवं पुलक (सात्त्विक-भाव) उद्दीप्त होते हैं। इन्हें रूढ़ महाभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इसमें एक पल का विरह असह्य हो जाता है, मिलन का विस्तृत काल एक क्षण का प्रतीत होता है। 'उज्ज्वल-नीलमणि' की टीका 'किरण' (टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती) में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है, 'कृष्णस्यसुखेपीड़ाशंकया निमिषस्यापि असहिष्णुतादिकं यत्र स रूढ़ो महाभावः कोटि ब्रह्माण्डगतं समस्तसुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति, समस्त वृश्चिकसर्पादिदंशनकृतदुःखमपि यस्य दुःखस्य लेशो न भवति सोऽधिरूढ़ो महाभावः' अर्थात् 'श्रीकृष्ण के सुख में पीड़ा की आशंका से क्षणभर के लिए जो असहिष्णुता उत्पन्न होती है वही रूढ़ महाभाव है। इस सुख की तुलना में कोटि ब्रह्माण्ड का सुख लेशमात्र भी नहीं है। समस्त वृश्चिक-सर्पादिके दंश का दुःख इस दुःख का लेशमात्र नहीं है, यही अधिरूढ़ महाभाव है। रुक्मिणी तथा सत्यभामा की रति रूढ़भाव है, व्रजगोपियों की रति अधिरूढ़-भाव है जिसका पर्यवसान महाभाव में होता है। 'उज्ज्वल-नीलमणि की 'लोचन-रोचनी' टीका (जीवगोस्वामी) के अनुसार मादन हर्षवाचक है। अतः इसमें हर्षानुभूति की प्रधानता होती है। मादन की व्याख्या 'दिव्यमधुविशेषवत् मत्तताकर' रूप में हुई है। वह दिव्य-मधुवत् विशेष प्रकार की मत्तता उत्पन्न करनेवाला है। मादन-भाव की अधिकारिणी केवल राधा हैं। प्रत्येक स्थिति में उनकी आकांक्षा कृष्ण की सुख-कामना है। वे निरन्तर कृष्णमयी रहती हैं :

कृष्णमयी कृष्ण जार भीतरे बाहिरे।
जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े तहाँ कृष्ण स्फुरे॥

'राधा कृष्णमयी हैं, कृष्ण उनके अन्तर-बाहर हैं, जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि पड़ती है, वहीं कृष्ण-रूप का स्फुरण होता है।'

राधाभाव (महाभाव) : महाभाव के दो रूप हैं—(१) ललिताभाव अर्थात् ममैव। ' तुम मेरे ही हो, मेरे अतिरिक्त तुम और किसी की कामना नहीं करते, (२) राधाभाव (तवैवाहम्) अर्थात् मैं तुम्हारी ही हूँ, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य कोई नहीं है। राधा वह शक्ति है जो श्रीकृष्ण के प्रति सखाभाव से समर्पिता है। वह पूर्णतः प्रेममूर्ति है। राधा 'प्रेम-प्रतिमा' हैं। बंगाल के वैष्णव-भक्तों ने इसी रूप में राधा का स्मरण किया है। इन्होंने प्रेमस्वरूपा, महाभावस्वरूपा राधा ठकुरानी की वन्दना की है। महाभाव को इन्होंने 'राधाभाव' की संज्ञा दी है। आराधक अपने स्वरूप को भूलकर राधाभाव में लीन हो जाता है तब वियोग-व्यथा अतितीव्र हो जाती है।

गोपियों में भी दो प्रकार की गोपियाँ हैं—नित्यप्रिया, जीव के साधनलब्ध-दिव्य-प्रेम-वपु-रूपा। इनके अतिरिक्त देवी श्रेणी की गोपियाँ भी हैं—देवयोनि में जन्म लेने के अवसर पर उनकी नित्य प्रियायें अंश-रूप में अवतरित होती हैं। कृष्णावतार में वे ही गोपियाँ नित्य प्रियाएँ (राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रा, तारा, चित्रा, गोपाली, घनिष्ठा, पालिका आदि) गोप-कन्याओं के रूप में

अवतरित होती हैं। राधा आदि भावप्रधान गोपियाँ यूथेश्वरी कही जाती हैं। राधा महाभावस्वरूपा गरीयसी और अतिगरीयसी हैं। 'चैतन्य-चरितामृत' में कृष्णदास कविराज ने राधिका का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

प्रेमेर स्वरूप देह प्रेम विभासित। कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित ॥
सेई महाभाव हय चिन्तामणि सार। कृष्णांश पूर्ण करे एइ कार्य जार ॥
महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप। ललितादि सखी तार कायव्यूह रूप ॥
राधा प्रति कृष्ण स्नेह सुगन्धि उद्वर्तन। ताहे सुगन्धित देह उज्ज्वल वरण ॥

श्रीरूपगोस्वामी ने इसी भाव को व्यक्त करते हुये एक 'कचड़ा' कहा है :

राधा कृष्ण प्रणयविकृतिह्लादिनीशक्तिरस्या,
देवात्मानावपि, भुवि पुरादेहभेदो गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं,
राधाभावद्युति सुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥

'राधा कृष्ण की ही प्रणय विकृत ह्लादिनी-शक्ति हैं। राधा-कृष्ण मूलतः एकात्म हैं, परन्तु वे देह-भेद को प्राप्त हुए थे। उन दोनों ने जिसमें ऐक्यलाभ किया है, मैं उस राधाभाव द्युति-सुवलित-चैतन्याख्य कृष्ण-स्वरूप को प्रणाम करता हूँ।'

राधा-कृष्ण अभिन्न हैं। केवल लीला-विलास के लिए वे भिन्न रूप धारण कर लेते हैं। राधा पूर्ण शक्ति हैं तथा कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। वैष्णव-भक्तों व आचार्यों के अनुसार राधा-कृष्ण-तत्त्व सभी तत्त्वों का सार है :

राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान।
दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमान ॥
मृग मदतार गन्ध जैछे अविच्छेद।
अग्नि ज्वालाते यैछे कभु नाहि भेद ॥
राधा कृष्ण इछे सदा एकयै स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ॥

(चैतन्य-चरितामृत, आदि० ४)

'कस्तूरी और उसकी सुगन्ध, अग्नि और उसकी ज्वाला (स्फुलिंग) में भेद नहीं है। इसी प्रकार राधा और कृष्ण में भेद नहीं है, वे एक स्वरूप हैं। लीला-रस के आस्वादन के निमित्त उन्होंने दो रूप धारण किया है।' यह अभेद में भेद की अवधारणा ही अचिन्त्य-भेदाभेद है, जो गौड़ीय दर्शन का मूल सिद्धान्त है। राधा-कृष्ण के युगलरूप की उपासना वैष्णव-साधकों का परम उद्देश्य है।

राधा-कृष्ण की लीला में व्रज-गोपियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, कारण लीलाविलास में वे 'काय-व्यूह-रूप' (अर्थात् एक ही शरीर से तद्रूप अनेक रूपों का प्राकट्य) हैं। गोपियों की राधा से कोई पृथक् सत्ता नहीं है :

सखी विनु एइ लीलार पुष्टि नाहिं हय ।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादियाँ ॥
(चै० च० आदि०–६०)

‘सखी (बहुकान्ता) के अभाव में रस की प्रतीति नहीं होती । इस हेतु ह्लादिनी-शक्ति अपना रूप विस्तार करके अनेक गोपियों के रूप में प्रकट होती है । ‘चैतन्य-चरितामृत’ में इसका उल्लेख निम्नलिखित रूप में मिलता है—

राधा स्वरूप कृष्ण प्रेम कल्पलता ।
सखीगण हय तार पल्लव पुष्प पाता ॥
(चै० च० मध्य–८)

‘श्री राधा-कृष्ण प्रेम की कल्पलता हैं, सखियाँ उस लता के पल्लव, पुष्प तथा पत्र के समान हैं ।’ वे राधा-कृष्ण की केलि का सम्पादन करती हैं । काम और प्रेम के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि काम में इन्द्रिय-तृप्ति का आग्रह रहता है, आत्मसुख की प्रेरणा रहती है, किन्तु प्रेम में कृष्ण को सुख प्रदान करने की अभिलाषा रहती है ।

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम ।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे प्रेम नाम ॥
(चै० च० मध्य०–४)

प्रेम निर्मल भास्कर है । गोपियों की कान्ताभावमयी लीला भी भास्करस्वरूपा है । श्रीमद्भागवत में नारद ने गोपियों के प्रेम के इसी आदर्श-रूप का वर्णन किया है :

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥
(श्रीमद्भागवत १०।४७।६१)

गोपियों के प्रेम की उज्ज्वलता से उद्धव अभिभूत हैं, वे उनकी चरण-धूलि पाने के लिए वृन्दावन के लता-गुल्म के रूप में जन्म लेने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं ।

चैतन्य-तत्त्व

गौड़ीय वैष्णव-भक्तों ने चैतन्य-तत्त्व को सर्वोपरि माना है । इसमें चैतन्य की उपासना श्रीकृष्णरूप में होती है-श्रीकृष्ण ही चैतन्यरूप में अवतरित हुए हैं । चैतन्य-चरितामृत (आदि० २) में उनका वर्णन इसी रूप में हुआ है—

सेह कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्र कुमार ।
आपने चैतन्यरूपे लेले अवतार ॥

परन्तु अवताररूप में भी चैतन्य राधा-भाव की द्युति से द्योतित हैं। श्री रूपगोस्वामी ने अपने भक्ति रसामृत-सिन्धु में इसी भाव की व्यंजना की है :

वयसो विविधत्वेऽपि
सर्वभक्ति रसाश्रयः।
धर्मो किशोर एवात्र
नित्यलीलाविलासवान् ॥

कृष्ण (चैतन्य) अपने ही माधुर्य के आस्वादक हैं, इसकी पूर्णता के लिए वे राधा का प्रेमभाव ग्रहण करते हैं। अत नवद्वीप की प्रकटलीला में श्रीकृष्ण-रूप-चैतन्य राधा के महाभाव से युक्त हैं। यही कारण है कि चैतन्य ने राधा का गौरवर्ण धारण किया है :

राधिकारभाव वर्ण अंगीकार करि,
नवद्वीपे शची गर्भ शुद्ध दुग्ध सिन्धु।
ताहाते प्रकट हेला कृष्ण पूर्ण इन्दु ॥

'राधिका के भाव व वर्ण को अंगीकार कर श्रीकृष्ण गौरांग रूप में अवतरित हुए। श्री चैतन्य की नवद्वीपलीला कृष्ण की व्रजलीला का पूरक है। व्रज की अपूर्ण-लीला इन्होंने नवद्वीप में पूरी की।'

इस लीला को परिशिष्ट-लीला भी कहते हैं। चैतन्य प्रेम के अवताररूप में श्रीकृष्ण हैं तथा प्रेम की चरम परिणतिरूप में राधिका हैं। श्री जीवगोस्वामी ने इसकी व्याख्या 'अन्तःकृष्णः बहिः राधा' रूप में की है।

अन्तः कृष्ण बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादि वैभवं,
कालौ संकीर्तनाद्यैः स्म कृष्ण-चैतन्यमाश्रिता।

(जीवगोस्वामी-'श्री भागवत-सन्दर्भ' द्वितीय श्लोक।)

गौड़ीय भक्ति और साधना रागमार्गी साधना है। 'रागानुगा' 'लोभमार्ग' के रूप में विख्यात है (लोभएव प्रवर्त्तक-विश्वनाथ चक्रवर्ती, रागवर्त्म-चन्द्रिका ६।२)। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-माधुर्य से आप्लावित (क्षुब्ध) होकर कृष्ण-भजन में प्रवृत्त होने की प्रक्रिया रागमार्गी साधना की प्रेरणाभूमि है। इस प्रेरणाभूमि पर पहुंचकर व्यक्ति रागमार्गी भक्ति का अधिकारी हो जाता है। कृष्णलीला के श्रवण या दर्शन से उनके प्रति सहज आकर्षण का स्फुरण होता है। यह आकर्षण भगवत्कृपा-हेतुक और अनुराग भक्त-कृपाहेतुक होता है। रागमार्गी भक्ति-प्राप्ति के साधन को 'उपाय-परम्परा' कहते हैं। इस 'उपाय-परम्परा' में 'शास्त्र-अध्ययन' अथवा 'गुरुकृपा' ही साधन हैं। रागानुगा भक्ति को लोभ-भक्ति भी कहा गया हैं। यह लोभ भक्ति कृष्ण-तथा उनके प्रियजनों के स्मरण तथा निरन्तर व्रजवास पर अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त व्रजवासियों के समान निरन्तर राधा-कृष्ण में समर्पित रहना भी एक अपेक्षित साधन है, साथ ही साथ वैधी भक्ति-मार्ग में निर्दिष्ट श्रवण-कीर्तन आदि भी अपरिहार्य हैं। रागानुगाभक्ति के निमित्त ऊपर निर्दिष्ट तत्त्वों के अतिरिक्त नामस्मरण और संकीर्तन का स्थान सर्वोपरि है। (रागस्य मनोधर्मत्वात्) अर्थात् राग मन का विशेष धर्म है, उज्ज्वल भाव से कृष्ण के साथ ही राधिका, ललिता, विशाखा, रूपमंजरी आदि का स्मरण भी इसी

'राग' के अन्तर्गत समाविष्ट है। भक्त या साधक में कृष्ण के 'दास' होने का अभिमान भाव विद्यमान रहता है। उसके साथ ही सिद्ध-देह-सेवा का भी महत्त्व स्वीकार किया गया है।

गौड़ीय मार्ग में भजनांग का भी उल्लेख मिलता है जो निम्नांकित रूप में वर्णित है-(क) स्वाभीष्ट भावमय, (ख) स्वाभीष्ट भावसम्बन्धी-अर्थात् दास्य और सखाभाव की भक्ति स्वाभीष्ट भावमय है। (ग) भावानुकूल के अन्तर्गत-वैष्णव रूप ग्रहण आता है। अर्थात्—तुलसीमाला, गोपीचन्दन (राधाकुण्ड की रज) नाम मुद्रा, चरण-चिह्न। तुलसी-सेवा, परिक्रमा आदि भी इसमें आते हैं। परन्तु भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए इन्होंने इसे 'सच्चिदानन्द-स्वरूप-निर्विकार' कहा है। (भक्तेः सच्चिदानन्दरूपत्वान्निर्विकारत्वेऽपि) निर्विकार होते हुए भी वह गुण-युक्त है जो क्लेशनाशिनी, शुभप्रदायिनी, मोक्षदायिनी, सुदुर्लभ और आनन्ददायिनी है। रूपगोस्वामी ने भक्ति के इन गुणों का उल्लेख करते हुए 'नवधा-भक्ति' को महत्त्व दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भक्ति के अन्य पाँच रूपों का भी संकेत किया है—श्रीमद्भागवतास्वाद, नामसंकीर्तन, श्रीमूर्ति-सेवा, मथुरा या वृन्दावन-वास, कृष्ण-भक्त-संग।

व्रजवासियों के अनुकरण तथा कृष्ण-गुण-श्रवण से कृष्ण के साथ भक्त के तादात्म्य की स्थिति 'जातरति' की अवस्था है।

भक्ति-रस

रूपगोस्वामी ने 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में भक्ति की प्रतिस्थापना 'रसरूप' में की है। इस दृष्टि से 'उज्ज्वल-नील-मणि' का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमें भक्ति को रस-रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न है। इन्होंने भक्ति-रस की व्याख्या 'रस एवं रसराज' रूप में की है। उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है कि कृष्ण की लीला में जिस लौकिक रस का अविधान होता है वह उनकी ही स्वरूप-शक्ति का लीला-विलास है। इस प्रसंग पर विचार करते हुए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की ओर ध्यान आकृष्ट होता है जहाँ उन्होंने कहा है, 'तत्र शृंगारे नामरति स्थायो भाव प्रभवः'। उज्ज्वलवेषात्मकः (ना० शा० ६।४५।४६)। इस शृंगार के देवता विष्णु हैं और यह श्यामवर्ण है। इस प्रकार भक्ति-रस उज्ज्वल-रस है, इसके स्वामी हैं भगवान् कृष्ण। गौड़ीय वैष्णवों ने इसे 'अप्राकृत-रस' कहा है। भगवान् ही रसस्वरूप हैं। भक्ति-रस के आलम्बन विभावकृष्ण हैं, आलम्बन रूप में उनके चौंसठ गुण हैं। इनमें माधुर्य चतुष्टय प्रमुख हैं—रूपमाधुरी, लीला माधुरी, प्रेम माधुरी, तथा वंशी माधुरी,। भक्तों में कृष्ण के नायकत्व की अवधारणा तीन रूपों में है—पूर्णतम, पूर्णतर और पूर्ण। उनका प्रथम रूप गोकुल में, द्वितीय रूप मथुरा में तथा तृतीय रूप द्वारका में प्रकट हुआ। कृष्ण धीर-ललित नायक हैं, परन्तु लीला-विलास में वे धीरोदात्त रूप भी धारण कर लेते हैं। 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' के अनुसार कृष्ण-रति ही भक्ति-रस है और कृष्ण पुरुषनिष्ठ आठ महदोषों से रहित हैं (अष्टादश महादोषैः रहिता भगवत्तनुः। सर्वैश्वर्यमयी सत्यविज्ञानानन्दरूपिणी ॥' अपने इसी ग्रन्थ में अन्यत्र रूपगोस्वामी ने कहा है :

विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः ॥

(भक्ति-रसामृत-सिन्धु, दक्षिण भाव, २।१।५)

एषा कृष्ण रतिः स्थायीभावो भक्ति रसो भवेत् (२।१।५, भक्ति-रसामृत-सिन्धुः, दक्षिण भाग) इसके अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण इत्यादि से प्रकट स्थायी भाव कृष्ण-रति है जो विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव द्वारा आस्वाद-अवस्था को प्राप्त होकर भक्ति-रस में परिवर्तित हो जाती है। भक्ति-रसामृत-सिन्धु, दक्षिण विभाग-प्रथम लहरी में भक्ति-रस के आलम्बन और उद्दीपन दोनों विभावों का वर्णन है। गोस्वामिपाद ने उक्त ग्रन्थ (द्वि० लहरी–१) में अनुभावों के लिए **'उद्भासुर'** शब्द का प्रयोग किया है।

अनुभावास्तु चित्तस्थाभावानामवबोधकाः।
ते बहिर्विक्रियाप्राया, प्रोक्ता उद्भासुराख्यया॥
(भक्ति-रसामृत-सिन्धु, द्वितीय० १)

अर्थात् अनुभाव जिनके भावों के प्रकटीकरण की आंगिक प्रक्रिया है। भक्ति के सन्दर्भ में रूप-गोस्वामी ने सात्त्विक भावों की परिकल्पना में नवीनता प्रदर्शित की है—उन्होंने सात्त्विक भावों के रूप में–रत्याभास से उत्पन्न सात्त्विक भाव, सत्त्वाभास से उत्पन्न, सत्वरहित और विपरीत सात्त्विक भाव की प्रस्तावना की है। 'भक्तिरसामृत सिन्धु' में परम्परा-गृहीत व्यभिचारी भावों के अतिरिक्त १३ नवीन संचारी भावों की प्रस्तुति है—मात्सर्य, उद्वेग, दम्भ, ईर्ष्या, विवेक, निर्णय, क्लैव्य, क्षमा, उत्कण्ठा, विनय, संशय, धृष्टता आदि—(भक्ति-रसामृत-सिन्धु, दक्षिण विभाग—४।७५-७६)।

गौड़ीय भक्तिचिन्तकों के अनुसार भक्त के मन में श्रीकृष्ण के प्रति जो रति उत्पन्न होती है, वह मुख्य रूप से पाँच प्रकार की होती है। भक्ति-रस के ये पाँच प्रकार हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। रूपगोस्वामी ने 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी इस पर विचार किया है।

'उज्ज्वल-नीलमणि' में भक्ति-रस को 'मधुर-रस' की संज्ञा देते हुए उसे 'भक्ति-रसराज' कहा गया है। रूपगोस्वामी को इस मधुर-रस का परिज्ञान चैतन्य की प्रेरणा से ही हुआ था। इसका संकेत चैतन्य-चरितामृत में मिलता है—

प्रभु कहे सुन रूप भक्ति रसेर लक्षण।
सूत्र रूप कहि विस्तार ना जाय वर्णन॥
पारावार शून्य गम्भीर भक्ति रस सिन्धु।
तोमा चलाइते तार कहि एक बिन्दु॥
(चै० च० मध्य० १९)

शान्तरस को व्याख्यायित करते हुए रूपगोस्वामी ने कहा है कि निर्विकल्पता का भाव शुभ है. यह शान्त रस का स्थायी भाव है। इस रति के उदित होते ही भक्त निर्विकल्प स्थिति में आ जाता है। वह कृष्ण और उनके अवतार को सर्व-ऐश्वर्यशाली रूप में ग्रहण कर लेता है, इसे वह चिरन्तन मानता है। विषय-वासना से मुक्त होकर वह कृष्ण-चरणों में आत्मसमर्पण कर देता है। परन्तु इस स्थिति में भक्त और कृष्ण के बीच पूर्ण आत्मीयता स्थापित नहीं हो पाती।

दास्य-भक्ति-रस—श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य में अनुरक्त भक्त उनकी सेवा कर अपनी भक्ति को सफल करना चाहता है। भगवान् ऐश्वर्यशाली हैं और भक्त दीन या दास है। दास्यरति इसका स्थायी भाव

है। श्रीधर स्वामी ने इसे 'सप्रेम भक्ति नामक रसराज' कहा है। इसके दो भेद हैं—(१) सम्भ्रम-प्रीति एवं (२) गौरव-प्रीति।

सख्य-भक्ति-रस

प्रगाढ़ विश्वासमय रति ही सख्य रति है। इसमें भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति सम्भ्रमभाव नहीं रह जाता। सख्य-रति की प्रमुख दशाएँ हैं—प्रणय, प्रेम, स्नेह तथा राग। इसमें भी वियोग-दशा की प्रतीति होती है। इसका स्थायी भाव विस्तम्भ नामक रति है।

वात्सल्य-भक्ति-रस में कृष्ण और भक्तों का पाल्य-पालक का सम्बन्ध रहता है। यशोदा, नन्द, देवकी इस भाव के भक्त हैं। बाल कृष्ण उनके उपास्य हैं।

मधुर-भक्ति-रस

मधुर-भक्ति-रस को अलौकिक श्रृंगार तथा उज्ज्वल-रस की संज्ञा से भी विभूषित किया गया है। रूपगोस्वामी ने इसका विस्तृत विवेचन 'उज्ज्वल-नीलमणि' में किया है। उन्होंने इसे 'मधुर, तलरहित अथाह समुद्र' कहा है। इसका अवगाहन वे असाध्य मानते हैं। इसे उन्होंने 'भक्ति-रसराट्' कहा है। लौकिक तथा अलौकिक श्रृंगार के भेद को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा है कि लौकिक पक्ष में रति काम-गन्ध-प्रेरित रहती है, अलौकिक रति चिन्मयरूपा और काम-गन्ध-शून्य है। गौड़ीय वैष्णव-भक्त इस चिन्मयरूपा मधुर-भक्ति के प्रति ही आस्थावान् हैं। रूपगोस्वामी ने 'उज्ज्वल-नीलमणि' में मधुर-रस को ही वास्तविक भक्ति-रस कहा है। (मधुराख्यो भक्तिरसः) मधुरा रति इसका स्थायी भाव है। इसके तीन प्रभेद हैं—साधारणी, समंजसा एवं समर्था। रूपगोस्वामी ने इनकी तुलना मणि, चिन्तामणि और कौस्तुभ मणि से की है। प्रथम कुब्जा में, द्वितीय रुक्मिणी, सत्यभामा आदि में तथा तृतीय (समर्था) राधा, ललिता, विशाखा आदि व्रजांगनाओं में है। समर्था रति ही सर्वश्रेष्ठ रति है। मधुर-रस की वृन्दावन-लीला का स्थायी भाव समर्था-रति है। कृष्ण इसके नायक, राधिका नायिका तथा चन्द्रावली प्रतिनायिका है। समर्था रति ही 'महाभाव-दशा' को प्राप्त कराती है। इसी रति में, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव आदि संयुक्त रहते हैं। प्रेम के तीन भेद हैं—प्रौढ़, मध्यम तथा मन्द। मधुर-रस ही उज्ज्वल रस है। सामान्यतः मधुर-रस के दो भेद हैं—सम्भोग और विप्रलम्भ।

गौड़ीय वैष्णव भक्तों की यह अवधारणा है कि विप्रलम्भ सम्भोग को उन्नतिशील बनाता है। यह धारणा रूपगोस्वामी-कृत 'उज्ज्वल-नील-मणि' पर आधारित है। उनका कथन है—'स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगोन्नति-कारकः'। इन्होंने सम्भोग श्रृंगार का प्रभेद—संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न एवं समृद्धमान् – इन चार रूपों में व्याख्यायित किया है।

श्रीकृष्ण स्वरूपशक्ति के साथ अपनी लीला का विस्तार बाल, पौगण्ड तथा किशोर रूपों में करते हैं। इन विभिन्न अवस्थाओं में उनकी लीला एक साथ चलती है। एक ही समय वे गोपियों के साथ निकुंज-लीला करते हैं, माँ यशोदा के सम्मुख बाल-क्रीड़ा करते हैं तथा सखाओं के साथ सख्य-क्रीड़ा में लीन रहते हैं। रूपगोस्वामी ने इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या करते हुए इस प्रक्रिया के लिए 'प्रकाशभेद' संज्ञा का प्रयोग किया है। (लघुभागवतामृत, पूर्व-खण्ड, १३)। चैतन्य-सम्प्रदाय के भक्त नित्य-विहार और नित्य-लीला-

सिद्धान्त के प्रति आस्थावान हैं। इस 'नित्य-लीला-विहार' सिद्धान्त के प्रति उनकी दृष्टि बहुत स्पष्ट है। उनकी दृष्टि में नित्य-विहार 'सम्भोग शृंगार का पर्यायवाची ही नहीं है, अपितु कृष्ण की समस्त क्रीड़ाएँ 'नित्यविहार' की अंग हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने सभी लीलाओं में सम्भोग और विप्रलम्भ का होना अपरिहार्य माना है। इस क्रम में पूर्वाह्न में कृष्ण का गोचारण निमित्त वन-गमन, मध्याह्न में राधाकुण्डादि में गोपियों-सखियों से मिलन, तत्पश्चात् सन्ध्या समय गोचारण से व्रजागमन, गोदोहन तथा मध्यरात्रि में वृन्दावन आकर निधुबन में गोपियों से मिलन का क्रमिक वर्णन नित्य-विहार के सैद्धान्तिक पक्ष के अनुरूप ही नियोजित है। 'उज्ज्वल-नील-मणि' की 'आनन्द-चन्द्रिका टीका' में 'विहार' शब्द की व्याख्या करते हुए इसे 'विहारश्च सम्प्रयोगात्मको' (सम्प्रयोगात्मक) कहा गया है जिसकी व्याख्या करते हुए रूपगोस्वामी ने निर्देश किया है कि विरह-भाव के साथ मिलन की स्थिति स्वयंसिद्ध है। मिलन की एकात्म (तन्मयी) अवस्था में विरह-अवस्था का विस्मरण हो जाना स्वाभाविक है, यही कारण है कि विरह के परिप्रेक्ष्य में संयोग-चित्रण को अनिवार्य अंग माना गया है।

उज्ज्वल-नील-मणि के शृंगार-भेद-प्रकरण में रूपगोस्वामी ने कहा है—

विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
काषायिते तुवस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।

चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तों ने मधुर-रस के अन्तर्गत प्रोषित-भर्तृका तथा स्वाधीन-भर्तृका, इन दोनों के वर्णन-विधान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है, परन्तु रूपगोस्वामी का निर्देश स्वाधीन-भर्तृका के प्रति है। श्रीकृष्ण-सेवा ही परम पुरुषार्थ है, यही दृष्टि गौर-सेवाभाव में निहित है। श्रीकृष्ण (गौरांग) की साधन-भक्ति का यहाँ विधान है :

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
(भक्ति-रसामृत-सिन्धु)

साधन-भक्ति के ६४ अंग स्वीकार किये गये हैं, जिनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में मिलता है। मधुर-रस के अन्तर्गत विप्रलम्भ शृंगार को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसमें पूर्वराग, प्रेमवैचित्र्य, प्रवास आदि विधानों की स्वीकृति है, सम्भोग शृंगार के अन्तर्गत संक्षिप्त विधान, संकीर्ण सम्भोग, सम्पन्न सम्भोग तथा समृद्धमान् सम्भोग के वर्णन के प्रति गौड़ीय वैष्णव-भक्त विशेष आस्थावान् है।

भक्तिरस की विवेचना करते हुए वैष्णव-आचार्यों ने नायिका-भेद की परम्परित शास्त्रीय परिपाटी का ही अवलम्ब ग्रहण किया है। इस परम्परा के परिप्रेक्ष्य में अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषित-भर्तृका, स्वाधीन भर्तृका आदि नायिकाओं का वर्णन किया गया है।

गौड़ीय भक्तों ने अपनी भक्ति-पद्धति के लिए 'पंचम-पुरुषार्थ' संज्ञा का प्रयोग किया है। पंचम पुरुषार्थ से उनका आशय 'प्रेममूलाभक्ति' से है। चैतन्य-चरितामृत के 'आदि प्रकरण' में इसका परिचय निम्नोद्धृत पंक्तियों द्वारा दिया गया है—

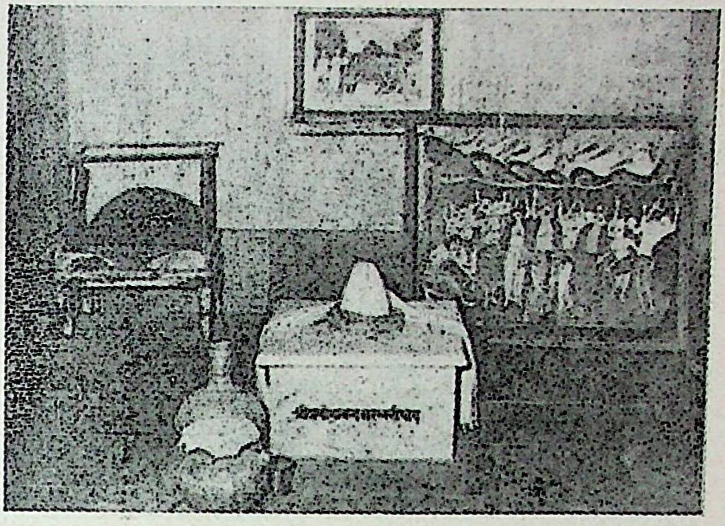

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधि : वृन्दावन, पृ० ५०७

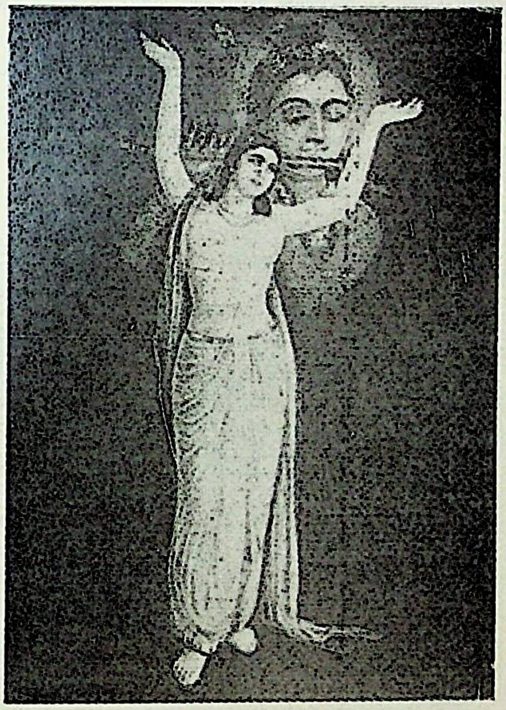

श्री गौरांग महाप्रभु (कीर्तन मुद्रा में)
श्री योगपीठ-मंदिर
चैतन्य महाप्रभु का जन्म स्थान, मायापुर (नवद्वीप)
पृ० ५८२

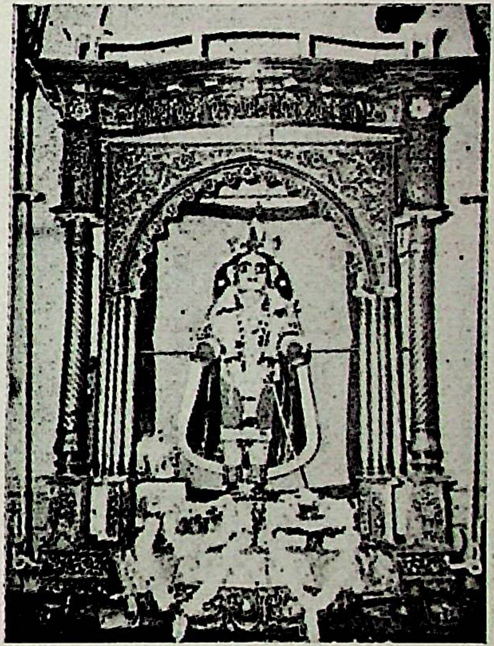

श्रीमती विष्णुप्रिया देवी के आदेश से निर्मित
श्री धामेश्वर महाप्रभु का विग्रह
पृ० ५८२

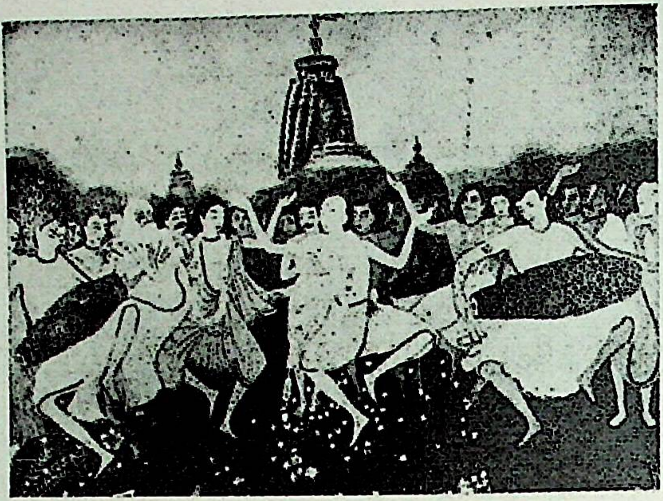

श्री जगन्नाथ मंदिर (पुरी) के समक्ष महासंकीर्तन
उड़िया-गौड़ीय-मिलन
अद्वैताचार्यजी, श्री नित्यानन्दजी और महाप्रभुजी, पृ० ५८३

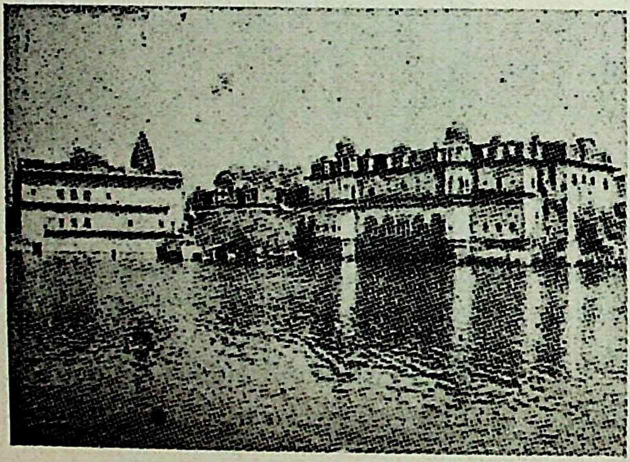

मानसी गंगा, गोवर्द्धन : पीछे श्रीहरिदेवजी के मंदिर का शिखर दिखाई दे रहा है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यहाँ हरिकीर्तन और उद्दंड नृत्य किया था, पृ० ५८३

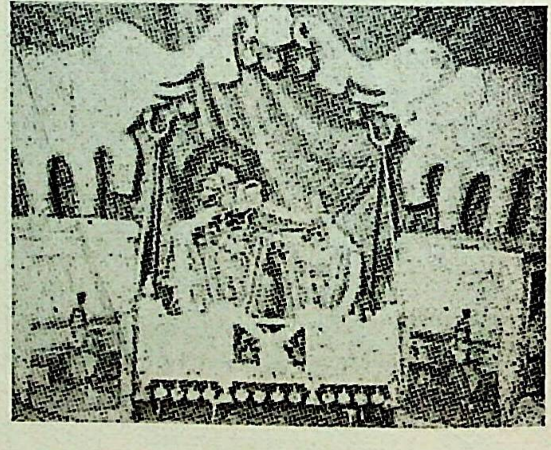

श्री गदाधरभट्ट के सेव्य ठाकुर राधामोहनजी : अठखम्भा, वृन्दावन, पृ० ६८५

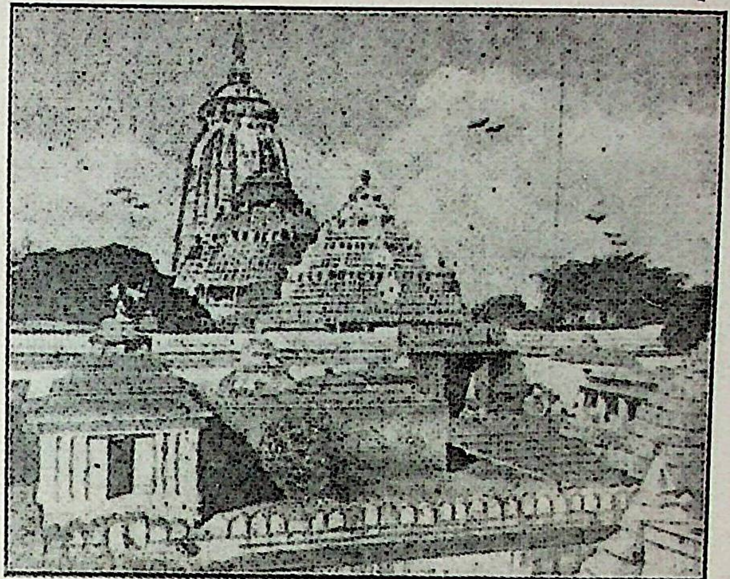

चैतन्य महाप्रभु सेवित श्री जगन्नाथ जी का मन्दिर : पुरी, पृ० ५८२

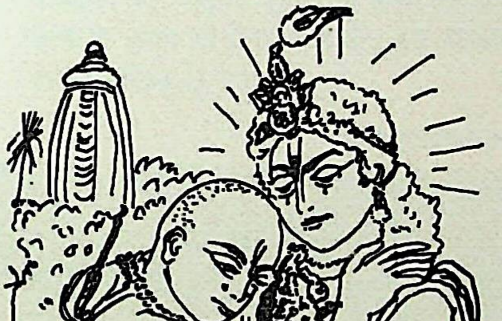

गौर-श्याम (चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीकृष्ण) मिलन
पृ० ५८२-५८३

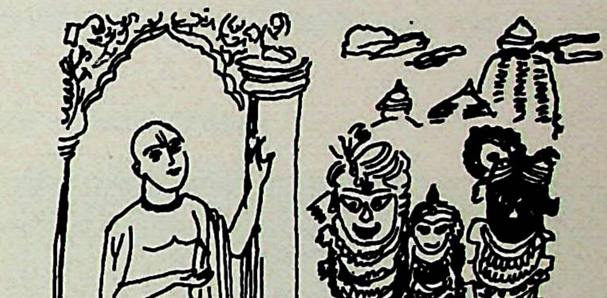

चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ जी के सान्निध्य में
पृ० ५८३

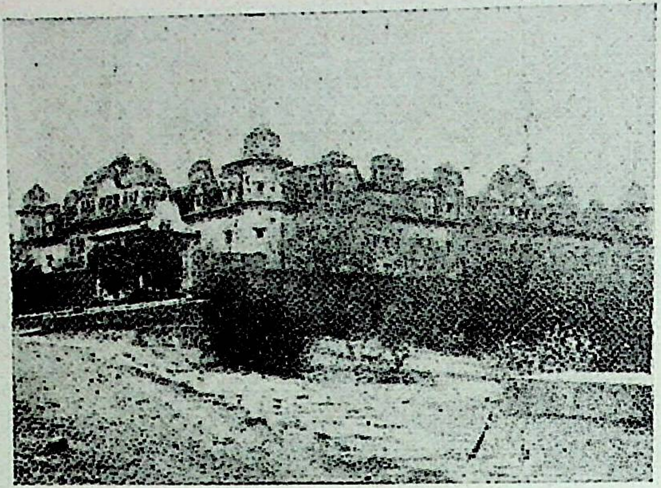

श्री नारायण भट्ट द्वारा स्थापित श्रीजी (लाड़िलो जी) के लिए
जयपुर नरेश द्वारा बरसाना के निकट बनाया गया मन्दिर

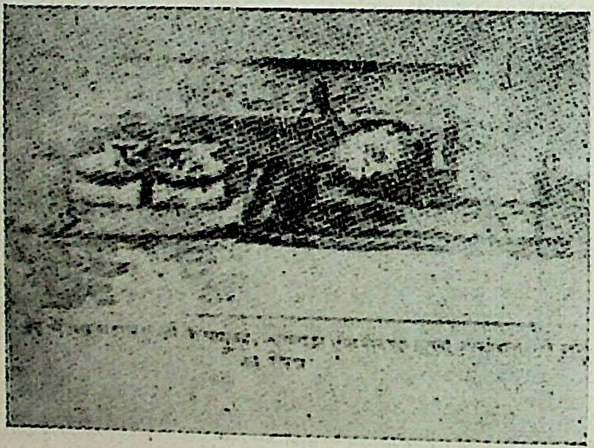

श्री चैतन्य महाप्रभु के स्मृति चिह्न पादुका, कमण्डल तथा
गुदड़ी : गम्भीरा मठ, पुरी, पृ० ५८३

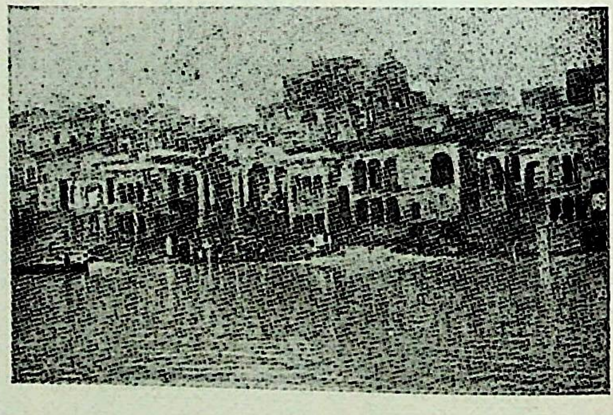

मथुरा आगमन के अवसर पर श्री चैतन्य महाप्रभु का
स्नान तथा विश्राम स्थल, पृ० ५८३
'मथुरा आसिया कैल विश्राम'
तीर्थस्नान : (चैतन्य-चरितामृत)

कृष्ण विषय प्रेम परम पुरुषार्थ ।
यार (जार) आगे तृण प्राय चारि पुरुषार्थ ।।

पंचम पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृत सिन्धु ।
ब्रह्मादि आनन्द यार नेह एक बिन्दु ।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से अधिक महत्त्वपूर्ण पंचम पुरुषार्थ कृष्ण-प्रेम है । कृष्ण के प्रति इस एकनिष्ठ समर्पित भक्ति को 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में 'उत्तमा-भक्ति' कहा गया है । इसके तीन भेद माने गये हैं--साधन-भक्ति, भाव-भक्ति तथा प्रेम-भक्ति । साधन-भक्ति के लिए श्रवण-कीर्तन आदि अपेक्षित हैं । वैधी अथवा नवधा-भक्ति इसीके अन्तर्गत है । वैधी भक्ति 'मर्यादा-मार्गी' भक्ति है, यह शास्त्र-सम्मत है । 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है—

शास्त्रोक्तया प्रबलया तन्मर्यादान्विता ।
वैधी भक्तिरियं कैश्चन्मर्यादा-मार्ग उच्चयते ।।

(भ० र० सि० १।२।२६९)

रागानुगा भक्ति में 'व्रज-भाव' की प्रधानता रहती है, जिसमें भक्त व्रजवासियों के भावों का अनुकरण करता है। कृष्ण-भक्ति-निमित्त व्रजभाव अपेक्षित है । इसमें राधा-भाव भी सन्निविष्ट है। इस प्रकार की प्रतिस्थापना है कि व्रजधाम नित्य है । इस नित्य-व्रजधाम में कृष्ण के परिकर भी नित्य हैं । सुबल, नन्द, यशोदा आदि कृष्ण के परिकर हैं । ये परिकर कृष्ण की रागमार्गी भक्ति करने के अधिकारी हैं। इन परिकरों का अनुगत होकर ही कृष्ण-भक्ति-साधना सम्भव है। सुबल आदि कृष्ण के व्रजसखा है, वे सखा-भाव से कृष्ण की सेवा करते हैं । इसे गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-शास्त्र में रागात्मिका-सेवा कहा गया है। भक्ति-रसामृत-सिन्धु के अनुसार—

विराजयन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु ।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ।।

अर्थात् व्रजवासियों में निरन्तर विद्यमान भक्ति की अनुरति भक्ति ही रागात्मिका-भक्ति है ।

मधुरा-भक्ति

राय रामानन्द और महाप्रभु चैतन्य में भक्ति के साध्य और साधन-तत्त्व पर जो शास्त्रार्थ हुआ उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मधुरा-भक्ति में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि सभी भाव स्वतः संयोजित हैं। अतः माधुर्य-भक्ति का स्थान सर्वोपरि है। इसका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने किया है। चैतन्य-चरितामृत की मध्य-लीला (८) में गोपियों की प्रतिस्थापना मधुर-रस-उपासना के सर्वोत्तम आदर्श रूप में हुई है। गोपियों का अनुगत होकर ही व्रज-कुंज-सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया जा सकता है । इस मधुर रस का विवेचन 'उज्ज्वल-नील-मणि' में हुआ है। 'नील-मणि' का प्रयोग भगवान् कृष्ण के लिए एवं 'उज्ज्वल' का प्रयोग 'मधुर-भक्ति' और श्रृंगार के लिए हुआ है। कृष्ण के लीला-विलास में राधा के साथ व्रजांगना भी सहभागिनी है ।

'उज्ज्वल-नील-मणि' में गोपिकाओं को स्वकीया और परकीया, इन दो रूपों में विश्लेषित किया

गया है। रुक्मिणी, सत्यभामा स्वकीया हैं, परन्तु राधा तथा अन्य गोपिकाएँ परकीया हैं। इन्होंने प्रेम-प्रभावान्तर्गत कृष्ण को पतिरूप में स्वीकार किया है—

रागेणैवार्पितात्मनो लोकयुग्मानुपेक्षिणा।
धर्मेणास्वीकृता यास्तु परकीया भवन्तु ताः॥

लौकिक धरातल पर रूपायित इस प्रेम में अलौकिकता का संकेत है। इसमें शारीरिकता त्याज्य है और आत्मा का आकर्षण ही ध्यातव्य है। जीवगोस्वामी परकीया प्रेम के उत्कर्ष के कुछ विशेष तत्त्वों का उल्लेख करते हैं, उनमें वारणत्व, प्रच्छन्न-कामुत्व एवं दुर्लभत्व प्रमुख हैं। अपने प्रतिपादन के प्रमाण-पुष्ट सम्प्रेषण के लिए आचार्य चरण ने भरत, रुद्र और विष्णुगुप्त के गीतों को उद्धृत किया है—

(क) तत्र निषेध निःशेषः सुदुर्लभत्वं च यन्मृगाक्षीणाम्।
तत्रैव नागराणां निर्भरमासज्यते हृदयम्॥

(विष्णुगुप्त)

(ख) वामता दुर्लभत्वं च स्त्रीणां या च निवारणा।
तदेव पञ्चवाणस्य मन्ये परमायुधम्॥

(रुद्र)

भक्ति के सन्दर्भ में गौड़ीय वैष्णव-भक्त परकीया-भाव के प्रति ही विशेष रूप से आग्रहशील थे। ये 'तुंगजारमेव' सिद्धान्त के पोषक थे। इस अवधारणा की प्रेरणा ने उन्हें परकीया-भाव के प्रति आग्रहशील बनाया है। परकीया-भाव रस का उल्लसित रूप है। यह रस केवल व्रज में ही उपलब्ध है, अन्यत्र नहीं। व्रज-बधुओं में यह परकीया-भाव-रस नित्य रूप में विद्यमान है। इसकी चरम परिणति राधा-प्रेम में है। यह भाव प्रौढ़ (वह प्रेम जिसमें ईषत् विप्रलम्भ असह्य है), निर्मल एवं भक्ति-प्रेरित सभी भावों में सर्वश्रेष्ठ है और कृष्ण के माधुर्य-आस्वादन का निमित्त है। इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में हुई है—

परकीया भावे अतिशयेर उल्लास।
व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास॥
व्रज वधूगणेर एइ भाव निरवधि।
तार मध्ये श्री राधार भावेर अवधि॥
प्रौढ़ निर्मल भाव प्रेम सर्वोत्तम।
कृष्णेर माधुरी आस्वादनेर कारण॥

(चैतन्य-चरितामृत, आदि०-४)

परकीया-भाव इस मधुरा भक्ति का उपजीव्य रहा है। रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामी ने अपनी विवेचनाओं में भक्ति के सन्दर्भ में इसे शास्त्रीय रूप दिया है। मधुरा भक्ति की व्याख्या और विवेचना करते हुए गौड़ीय आचार्यों ने जीवगोस्वामी की पदावली से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः।
ते चोन्मीलित-मालती सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ।
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥

ऐसी धारणा प्रचलित है कि यह श्लोक चैतन्य महाप्रभु को विशेष प्रिय था। इसकी सत्यता का प्रतिस्थापन श्री कृष्णदास कविराज के उल्लेखों से भी हो जाता है।

इस श्लोक का स्मरण कर श्री चैतन्य के हृदय में राधा का परकीया रूप प्रतिभासित हो जाता था और उनका मन बार-बार वृन्दावन लौट जाने के लिए आतुर हो उठता था। परन्तु परकीया भाव के प्रति इनकी स्वतन्त्र धारणा है, जो लौकिक दृष्टि से व्याख्यायित नहीं हो सकती। रूपगोस्वामी ने परकीया-भाव-विषयक मान्यता की व्याख्या करते हुए कहा है :

रागेणैवार्पितात्मनो लोकयुग्मानुपेक्षिणाः।
धर्मेणाऽस्वीकृता यास्तु परकीया भवन्ति ताः॥

परकीया में कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ आन्तरिक अनुराग होता है, विवाह को वे बाह्यधर्म मानती हैं, इस बाह्यधर्म का परित्याग कर परकीया प्रेम-प्रेरित-राग द्वारा ही कृष्ण का वरण करती हैं। इस प्रकार के वरण में परकीया की भावना नहीं रहती, अपितु इसकी परिणति तत्त्वतः स्वकीया-भाव में ही है। राधा आदि का वर्णन ह्लादिनी के रूप में ही हुआ है, परन्तु उनका सांसारिक रूप योगमाया द्वारा निर्मित हुआ है। गोपियाँ जब कृष्ण से मिलने के लिए गृह त्यागती हैं तो उनके स्थान पर उनके ही समान गोपियाँ निर्मित हो जाती हैं। इस दृष्टि से ये भक्त भागवत से प्रभावित प्रतीत होते हैं, जहाँ इसी प्रकार का भाव अभिव्यक्त है—

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायिना।
मन्यमाना स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥

विवेच्य प्रसंग में एक विशेष तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। जीवगोस्वामी ने लीला-प्रसंग में स्वकीया-पक्ष का ही समर्थन किया है। परकीया को वे मायास्वरूपा मानते हैं। इसे वे मायिक (मायिकपरकीया वाद) की संज्ञा देते हैं, जिससे गोपियों की प्रतिष्ठा द्विगुणित हो जाती है। जीव गोस्वामी की यह प्रतिस्थापना उनके 'प्रीति-सन्दर्भ' 'नामक ग्रन्थ में जिस रूप में हुई है उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, 'यत् कश्चित् परकीयासु लघुत्वं व्यक्त, तत् खलु प्राकृत नायकमवलम्बानुसुयुक्तं तत्रैव जुगुप्सितत्वात्। अत्र तु गोपीनां तस्तीनां चैत्यादिनां तत् प्रख्यानात्।' तात्पर्य यह है कि प्राकृत नायक के सन्दर्भ में परकीया-भाव निश्चय ही हीन है, इसके विपरीत अप्राकृत नायक के प्रति यह प्रतिष्ठापूर्ण है। जीवगोस्वामी परकीया-भाव के प्रति अपनी वितृष्ण-भावना में भी परकीया और स्वकीया में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु गौड़ीय वैष्णव भक्तों ने परकीया-भाव को ही वरीयता दी। गौड़ीय वैष्णवों के 'जीवनी-खण्ड' में उल्लेख किया गया है कि गौड़ीय वैष्णव-भक्त दो शाखाओं में विभक्त हो गये थे, स्वकीयावादी और परकीयावादी। इसके निर्णय के निमित्त एक संगोष्ठी आयोजित हुई, जिसमें परकीयावादी विजयी हुए। 'ग़ौर-पद-तरंगिणी' में इसका उल्लेख हुआ है (देखिये पृष्ठ २३६)। अतः राधा के प्रति वैष्णवों में परकीया भाव की ही दृष्टि रही।

चैतन्य (गौरांग) के प्रादुर्भाव का निमित्त भी यही माना गया है।

चैतन्य राधाकृष्ण रूप में अवतरित हुए थे। उनके गौर वर्ण की आभा वस्तुतः राधा की ही आभा या कान्ति है। तात्पर्य यह कि कृष्णरूप में राधा की आभा लेकर उन्होंने अवतार धारण किया था, यही कारण है कि इनके रूप का वर्णन करते हुए वैष्णव-आचार्यों ने कहा है—

अन्तः कृष्णः वहिर्गौरः दर्शितांगादि वैभवं।
कालौ कालौ संकीर्तनाद्यैः स्म कृष्ण चैतन्यमाश्रितः॥

चैतन्यरूप में कृष्ण ने एक विशेष कारण से अवतार ग्रहण किया था। राधा-प्रेम की इस अनुप्रेरणा से वे अभिज्ञ होने के लिए उत्कण्ठित हो गये जिसके कारण राधा प्रियतम (कृष्ण) के माधुर्य का पान करने के लिए उत्सुक रहती हैं। राधा में व्याप्त प्रेम-महिमा का वे साक्षात्कार करना चाहते थे। स्वयं कृष्ण में जो माधुर्य है, उसके प्रति भी वे जिज्ञासु थे। इस निमित्त भी उन्होंने गौरांग रूप में अवतार ग्रहण किया था।

'चैतन्य-चरितामृत' में इसकी विस्तृत व्याख्या मिलती है। कृष्ण-प्रेम की चरम उपलब्धि राधा-भाव में निहित है। चैतन्य के जीवन का प्रतिपल राधाभाव से आप्लावित होने का यही रहस्य है। 'चैतन्य-चरितामृत' में राधाभाव में लीन श्री चैतन्य की उन्मादावस्था के अनेक हृदयस्पर्शी चित्र मिलते हैं :

गम्भीरा मन्दिरे राते नाहि निद्रा लव।
भिते मुख सिर घसे क्षत हय सब॥
तीन द्वारि कपाट प्रभु याचे ना बाहिरे।
कभु सिंधु द्वारे पड़े, कभु सिन्धु तीरे॥

(चै० च० मध्य० २)

'गम्भीरा मन्दिर में रात्रि में प्रभु को निद्रा नहीं आती। वे कभी भित्ति से सिर घिसते हैं, उनका सिर आहत हो जाता है, तीनों द्वारों के कपाट बन्द कर वे भावविभोरावस्था के कारण बाहर नहीं निकलते, (भावविभोर होकर) कभी सिंहद्वार पर (मूर्च्छित अवस्था में) पड़ जाते हैं, कभी विह्वल होकर सिन्धु के तट पर पड़े रहते है। इस प्रकार चैतन्य का राधाभाव देहोत्तर प्रेम की चरम परिणति है।

गौड़ीय वैष्णव कृष्णप्रेम को नित्यसिद्ध मानते हैं—वह साध्य नहीं है, "नित्य सिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभु नय (नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकटच हृदि साध्यता।। कृष्ण का अवतार 'भूभारहरण' के लिए हुआ था, इस प्रकार की अवधारणा गौड़ीय वैष्णवों में प्रचलित थी, परन्तु इस पक्ष का प्रतिपादन उनके रचित साहित्य में बहुत कम मिलता है। इनके दर्शन और साहित्य के विश्लेषण से यह स्पष्ट विदित होता है कि कृष्ण का आविर्भाव मधुर भक्ति के लोकप्रसार तथा आस्वादन के लिए ही हुआ था।

—डा० दयानन्द श्रीवास्तव

बंगाल के कृष्ण-भक्त

अद्वैताचार्य

अद्वैताचार्य का जन्म अनुमानतः शकाब्द १३५५ (१४३४ ई०) में चैतन्यदेव के ५२ वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण परिवार में सिलहट में हुआ था। इनका मूलनाम कमलाकर भट्टाचार्य था। इनके पिता का नाम कुबेर पंडित और माता का नाम नाभा देवी था। ये वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। वेदान्ती के रूप में ये 'कमलाक्ष' नाम से विख्यात थे। इनके विषय में यह जनश्रुति प्रचलित है कि ये महादेव और महाविष्णु के अवतार थे। यह भी कहा जाता है कि इनकी अर्चना और आह्वान पर भगवान् गौरांग ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। इसका उल्लेख 'चैतन्य चरितामृत' में हुआ है।

> गंगाजल, तुलसी मंजरी अनुक्षण,
> कृष्णेर आह्वान करे न करिया हुंकार।
>
> कृष्ण पादपद्म भावि करेन समर्पण,
> एइ मते कृष्णे लइल अवतार॥

'ये (अद्वैताचार्य) निरन्तर गंगाजल व तुलसीदलों से श्रीकृष्ण का आवाहन बिना अहंभाव के करते थे और उन्हें उनके चरण कमलों में अर्पित करते थे। इसी प्रकार से श्रीकृष्ण जो का अवतरण हुआ।'

अद्वैताचार्य के पूर्वज नरसिंह नाड़ियाल थे। वे गौड़ हिन्दू राजा गणेश के मंत्री थे। नाड़ियाल वंश में जन्म लेने के कारण अद्वैताचार्य को 'नाड़ाबूड़ा' या 'नाड़ा' कहा जाता था। कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि इनके सिर पर चोटी (नाड़ा) थी, इसलिए ये 'नाड़ा' कहलाते थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं—सीता और जानकी। इनसे छः पुत्र हुए थे जिनमें अच्युत, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल, गौरांगदेव के भक्त थे।

अद्वैताचार्य के शिष्य ईषाननागर ने 'अद्वैत-प्रकाश' नाम से इनकी जो जीवनी तैयार की है उससे ज्ञात होता है कि इन्होंने शान्ताचार्य से संस्कृत भाषा और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की थी। शान्ताचार्य शान्तिपुर के निवासी थे। शिक्षा समाप्त होने पर अद्वैताचार्य शान्तिपुर से नवद्वीप में आकर बस गये। यहीं पर एक पाठशाला स्थापित करके ये छात्रों को षट्दर्शन की शिक्षा देने लगे। चैतन्य के ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप ने इन्हीं की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करके इनके प्रभाव से सन्यास ग्रहण किया था। वेदों के अच्छे ज्ञाता होने के कारण ये 'वेद पंचानन' की उपाधि से विभूषित किये गये थे। 'प्रेम-विलास' से ज्ञात होता है कि अद्वैताचार्य जीवन के अंतिम दिनों में कुछ समय के लिए भक्ति-मार्ग से विमुख होकर ज्ञानमार्गी हो गये थे। चैतन्यदेव ने इन्हें पुनः भक्ति-मार्ग की ओर आकृष्ट किया। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि भक्ति-मार्ग में इनके प्रत्यावर्तन से रुष्ट होकर चैतन्यदेव के दो शिष्यों—कामदेव नागर और शंकर—ने इनसे अपना संबंध तोड़ लिया था।

ईशान नागर के उल्लेख से ज्ञात होता है कि अद्वैताचार्य का देहावसान चैतन्यदेव के महाप्रयाण के २५ वर्ष बाद हुआ। 'प्रेम विलास' के अनुसार इनकी मृत्यु सं० १५३९ में हुई। किन्तु प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में इस विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

द० श्री०

अनन्ताचार्य

वैष्णव भक्ति साहित्य में अनन्त दास, अनन्त आचार्य, अनन्त राय, नाम से एकाधिक भक्तों एवं पदकर्त्ताओं का परिचय मिलता है, परन्तु ये सभी नाम अनन्त आचार्य के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। गौड़ीय परम्परा के अन्तर्गत इनका सम्बन्ध अद्वैताचार्य की अद्वैत शाखा से था। ये गंगातीरस्थ अठिसारा ग्राम के निवासी तथा चैतन्य एवं गदाधर के समकालीन और उनके अनन्य भक्त थे। सन् १५८२ ई० में कटवा

में आयोजित मेला (वैष्णव सम्मेलन) में ये उपस्थित थे। 'चैतन्य चरितामृत' में इनका स्मरण परम वैष्णव-भक्त के रूप में किया गया है—

पण्डित गोसांइर शिष्य अनन्त आचार्य।
कृष्ण प्रेममय तनु उदार सर्व आर्य॥
ताहार अनन्त गुन के करे प्रकाश।
प्रिय शिष्य इहौ पण्डित हरिदास॥
तिहौ बड़ कृपा करि आज्ञा दिल मोरे।
गौरांगे शेष लीला वर्निवार तरे॥

(आदि०–अष्टम परिच्छेद।)

'अनंताचार्य पंडित गोस्वामी के शिष्य थे। उनका जीवन कृष्ण प्रेममय था। वे सर्वगुणसम्पन्न और उदार थे। उनके अनन्तगुण के प्रकाशन की क्षमता किसमें हैं ? हरिदास पंडित उनके प्रिय शिष्य थे। उन्होंने अत्यंत कृपा करके आज्ञा दी कि तुम गौरांग की शेष लीला का वर्णन करो।'

इससे स्पष्ट है कि अनन्तदास व अनन्ताचार्य दोनों एक ही व्यक्ति थे। प्रतीत होता है कि पहले इन्होंने अद्वैताचार्य-शाखा में दीक्षा ली थी, कुछ काल पश्चात् ये पण्डित गोसाई शाखा में दीक्षित हुए। अपने जीवन काल के उत्तरार्ध में ये वृन्दावन चले गये थे। वहाँ ये गोविन्द सेवा के अधिकारी हुए। इसका उल्लेख 'भक्ति-रत्नाकर' के १३वें श्लोक में मिलता है। इस ग्रंथ के अनुसार वृन्दावन में इनकी गुरु-परम्परा का उल्लेख इस रूप में मिलता है— पुण्डरीक विद्यानिधि, गदाधर पण्डित, अनन्त आचार्य, हरिदास पण्डित, राधाकृष्णदास। 'शाखा निर्णय' (श्रीमत् पण्डित गोस्वामी कृत) में इनका स्मरण निम्नलिखित रूप में किया गया है—

वन्देऽहमनन्तादभुतमनन्ताचार्य संज्ञकम्।
नानारसोद्भूतं गौरप्रेम्नोहिभाजनम्॥
श्रील श्री गोविन्द देवस्य सेवासुखविलासिनम्।
दयालुं प्रेमदं स्वच्छं नित्यानन्द विग्रहम्॥

'मैं अनन्त से भी अद्भुत अनन्ताचार्य नामके आचार्य को प्रणाम करता हूँ। वे नाना रसों से निर्मित तथा श्रीगौर के प्रेमभाजन थे। श्रीश्री गोविन्ददेव सेवा सुख में ही जिनका एकमात्र आनन्द था। वे दयालु प्रेमी, स्वच्छ हृदय और नित्यानन्द के साकार विग्रह थे।'

वन्दे अनंताचार्यवर्यं महाभाव कदम्बकम्।
आपादमस्तकं यस्य पुलकेनोज्वलीकृतम्॥

'महाभाव स्वरूप अनन्ताचार्य आचार्यों में भी वरेण्य हैं। आनन्दरस के पुलक से उनका सारा अंग उज्ज्वल है।'

वृन्दावन धाम में अनन्ताचार्य के पश्चात् उनके शिष्य हरिदास पण्डित या द्विज हरिदास गोविन्द जी के सेवाधिकारी हुए। 'भक्तिरत्नाकर' की तेरहवीं तरंग में इसका उल्लेख मिलता है—

गदाधर पण्डित गोसांइए शिष्यवर्ग।
गोविन्देर अधिकारी श्री अनन्ताचार्य॥
तार शिष्य हरिदास पण्डित गोसाई।
गोविन्दाधिकारी सुन कहि अन्य नाई॥

'गदाधर पंडित के शिष्यवर्ग और श्री अनन्ताचार्य श्री गोविन्द के पूजन के अधिकारी हैं। उनके शिष्य पंडित गोसाई हरिदास गोविन्दसेवा के अधिकारी हैं—यही मैं कहता हूँ, इनके गुणों का अन्त नहीं है।'

'रसिकमंगलग्रन्थ' में श्यामानन्दपुरी के प्रशिष्य और रसिकानन्द के शिष्य अनन्तराय का उल्लेख मिलता है। इनका कोई सांकेतिक परिचय भी नहीं मिलता। वैष्णव ग्रन्थों में अन्य किसी अनन्त का उल्लेख नहीं मिलता। वैष्णव पदकर्ता अपने पदों की अन्तिम पक्ति में दैन्य भाव प्रकाशन की भावना से अपने नामों के साथ 'दास' शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। इसी न्याय से ये संप्रदाय में श्रीराधा की सखी सुदेवी के अवतार माने जाते हैं। इनके नाम के साथ भी 'दास' शब्द जुड़ गया होगा। इनके दो भक्ति-भाव-पूर्ण पद यहाँ उद्धृत हैं :

(१)

काँचा से सोनार तनु झलमल अंग ।
चाँद बदने हासि आसिया तरंग ॥

अवनि विलम्बित गले वनमाल ।
सौरभे वेढ़ल मधुकर जाल ॥

आर दुई भुज पर खर शर चाप ।
हेरइते रिपुगण थरहरि काँप ॥

'उन (श्रीकृष्ण) का शरीर कच्चे सोने से बना है, उनकी अंगकान्ति अति उज्ज्वल और जगमगाती हुई है। उनके मुखमंडल में चन्द्र हँस रहा है जैसे समुद्र में लहरें आ रही हैं। उनकी भूमि तक लटकती भुजाएँ और गले में वनमाला है जिसके सौरभ से आकृष्ट मधुकरों ने घेर कर जाल-सा बना लिया है। अन्य भुजाओं में तीक्ष्ण शर और धनुष हैं। इनके दर्शन से शत्रुगण भयभीत होकर काँपते हैं।'

दूर्वा दल तूल नख विधु साज ॥

तदधहि दुहू कर जलधर श्याम ॥
तहिं शोभे मोहन मुरली अनुपाम ॥

नखमीन विधु जिनि तर्लहि सुरंग ।
ताहे मीन आभरन मूरछे अनंग ॥

तदधहि करहिं कमन्डलु दण्ड ।
जाहे कलि कलुष पाखण्ड खण्ड ॥

ग्रीव संखे उरे मनि मोति विलोल ।
श्रीवत्सांकित कौस्तुभ दोल ॥

मलयजमय उर परिसर पीन ।
नाभि गभिर कटि केशरि खीन ॥

वसन सुरंग चरन परियन्त ।
पदनख निछनि दास-अनन्त ॥

'दूर्वादल जैसे श्याम गोविन्द के नखों ने चन्द्रमा का रूप धारण किया है। उनके नीचे दो भुजाओं में, जो मेघ के सदृश नीले वर्ण की हैं, मोहन-मुरली शोभायमान है। उनके नख की शोभा ने चन्द्रमा को भी जीत लिया है। उस (मुरली) के नीचे छोटे-छोटे छेद हैं, जिनमें मीन के आभरण लगे हैं जिसकी सुन्दरता से कामदेव भी लज्जित होते हैं। उक्त दो हाथों के नीचे दो हाथों में दण्ड और कमण्डल हैं जिनके प्रभाव से कलि का दोष, पाखण्ड तथा उद्दण्डता खण्डित हो जाती है। कण्ठ में मोती की माला हिल रही है। वक्षःस्थल में कौस्तुभ मणि लटक रही है। मलयचन्दन से उनका प्रशस्त वक्ष शोभित है। उनकी नाभि गहरी तथा सिंह के सदृश क्षीण कटि है। पैरोंतक लटकता हुआ उनका वस्त्र सुन्दर रंग का है। उनके पदनख का ध्यान अनन्त आचार्य करते हैं।'

बंगला पद

(२)

कानुर लागिया जागि पहाइलूँ,
ए घोर अन्धारे राति ।
एत दिन सइ निचये जानिलूँ,
निठुर पुरुष जाति ॥

मेघ दुर दुर दादुरीर बोले,
झिझा झिनि झिनि बोले ।
घोर अन्धियारे विजुरी छटा,
हियार पुतली दोले ॥

जतने सजालूँ फूलेर सेज,
गन्धे मोह-मोह करे ।
अंग छूफरि सहने न जाय,
दारुन विरह जरे ।

मनेर आगुनि मने निभाइते,
केमन करये प्रान ।
कानुर एमन निठुर चरित,
ए 'दास-अनन्त' भने जान ।

(पद कल्प० ८।३४०।२८७)

'मैंने कृष्ण के लिए यह घोर अन्धकार पूर्ण रात्रि जागते हुए बितायी। सखि ! इतने दिनों के बाद मैंने निश्चय ही जान लिया कि पुरुष जाति

कितनी निष्ठुर है। मेघ का गर्जन हो रहा है? झींगुर 'झिनि झिनि' शब्द कर रहे हैं और मेढक बोल रहे हैं। इस घोर अन्धकार में विजली की छटायें चमक रही हैं, मेरा हृदय उससे काँप उठता है।

मैंने फूलों की शय्या बनाई। वह सुगन्ध से मन मोह लेती है। सुगन्ध शरीर छू कर जाता है तो सहा नहीं जाता।

दारुण विरह ज्वर असह्य हो गया है। मन की आग बुझती नहीं, प्राण व्याकुल हो रहा है। कन्हैया ऐसा निष्ठुर है कि कहा नहीं जाता। 'दास-अनन्त' यही कहता है।'

ब्रजबुली पद

(३)

विकच सरोज भान मुख मण्डल,
दिहि भंगिम नट खंजन जोर।
किये मुख माधुरि, हाम उगारइ,
आनन्दे आँखि पड़लहि मोर॥

वरनो ना हय रूप वरण चिकनिया,
किए घन पुन्ज किये कुवलय दल।
किये काजर किये इन्द्रनील मणिया,
अंगद वलय हार मणि कुण्डल॥

चरणे नुपुर कटि किंकिणि कलना।
अभरण वरण किरणे अंग थर थर,
कालिन्दी जले इयछे चांदकि चलना॥

'उनका मुखमंडल खिले कमल तथा नयन दो खंजन के समान बंकिम हैं। मेरी दृष्टि उन पर पड़ी तो आनन्द से भर उठा। उनका सौंदर्य वर्णन करना कठिन है। कमल के समान उनका रंग हैं। आँखों की पुतलियाँ इन्द्रनील मणि के सदृश हैं जिनमें काजल लगा है। शरीर में अंगद, वलय, हार तथा मणि-कुण्डल हैं। चरणों में नूपुर और कटि में करधनी की मधुर ध्वनि हो रही है। उनके आभरणों की छाया कालिन्दी के जल पर पड़कर ऐसी चमक रही है जैसे उसपर चन्द्र चल रहा है।

कुन्चित केश वेश कुसुमावलि,
शिर पर शोभे शिखि चाँद कि छाँदे।
अनन्तदास प्रभु अपरुप लावनि,
सकल युवति मन पड़ि गेओ फांदे॥

(पद कल्पतरु—२६८)

'उनके घुँघराले केश फूलों से शोभित हैं। शिर पर मोरपंख है। अनन्तदास प्रभु का यह अनुपम लावण्य अपने नेत्रों से देखता है। श्रीकृष्ण की सुन्दरता ने सब युवतियों के मनको फँदे में फंसा लिया है।'

द० श्री०

अनन्त पण्डित

अनन्त पंडित औरियार ग्राम के निवासी थे। इनके विषय में विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं है। ये संभवतः अनन्त आचार्य से भिन्न थे।

द० श्री०

अनन्तपुरी

अनन्तपुरी का मूल नाम अभिराम दास था तथा इनका जन्मस्थान पारनड़वेलुन (बर्द्धमान) का उल्लेख मिलता है। 'नड़बेलुने अनन्तपुरी महिमा प्रचुर' जैसे उल्लेखों से ज्ञात होता है कि अपने समय में ये अत्यंत विख्यात भक्त थे। महाप्रभु चैतन्य के आविर्भाव के पूर्वही इन्होंने श्री गोपीनाथ की सेवा-विधान का प्रचलन किया था। अग्रहायण शुक्लाष्टमी को इनका तिरोधान हुआ। इनके तिरोधानोपरान्त श्री देवसेवा, अतिथि सेवा, कृष्ण महोत्सव आदि विधान का अनुपालन श्रीपाट के भक्तगण करते रहे। तत्पश्चात् राजा मान सिंह की कृपा से दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने ४०६ बीघे जमीन का अनुदान "श्रीपाट" को दिया। बर्द्धमान के राजा कृष्ण राम राय ने भी २०० बीघे जमीन का अनुदान दिया। राजारामचन्द्र भी १५३ रु० का वार्षिक अनुदान देते थे। वेलुन ग्राम के निकट

अग्नि कानन ग्राम के राजा राधावल्लभ को श्री अनन्तपुरी ने स्वप्न में श्री गोपनाथ के वामपार्श्व में 'राधा-गोपीनाथ' की युगलमूर्ति की स्थापना का आदेश दिया। ऐसी जनश्रुति है कि वर्द्धमान के मारकुल नामक स्थान के डकैतों के सरदार राजा रामचन्द्र राय ने इस पाट के अलंकारादि को चुराने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण कर दिया। श्रीविग्रह की माया के फलस्वरूप डाकुओं का हृदय परिवर्तित हो गया और उनके सरदार राजा रामचन्द्र राय ने इस श्री पाट के निमित्त १०० बीघे जमीन दान करके ताम्र-पत्र पर अंकित करा दिया।

द० श्री०

अनन्त राय

अनन्त राय श्री श्यामानन्द दामोदर के शिष्य थे। इनका विशेष परिचय नहीं मिलता। यह अनन्त आचार्य या अनन्त दास से भिन्न प्रतीत होते हैं।

द० श्री०

अनन्त वर्मन (चोड़ गंगदेव)

अनन्तवर्मन गंगवंशीय राजा थे। इन्होंने ग्यारहवीं शती उत्तरार्द्ध (१०७५ ई०) में पुरी में श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी। श्री मन्दिर के उत्तर-द्वार के सम्मुख स्थित तिरमल राज्य के चतुर्थ राजा नृसिंह देव के ताम्रलेख से उपर्युक्त तथ्य प्रमाणित होता है। ताम्र-लिपि में "अयं चक्रेऽथ गंगेश्वरः" के पश्चात् 'अनन्त वर्मन् चोड़गंगदेव' अंकित है। इस राजवंश की चौथी पीढ़ी में होने वाले राजा अनंग भीम (द्वितीय) ने मन्दिर के प्राकार व पार्श्व-भित्ति का निर्माण कराया था। इन्होंने मन्दिर की यथेष्ट श्रीवृद्धि की। मन्दिर में नित्य सेवा, नीराजन आदि की नियमित परम्परा इन्हीं के आदेश से आरम्भ हुई।

द० श्री०

अनिरुद्ध

अनिरुद्ध सर्वज्ञ के पुत्र तथा श्रीरूप-सनातन के पितामह थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। श्री रूप-सनातन जैसे महापुरुषों के पूर्वज होने से गौड़ीय परम्परा में इनका विशेष सम्मान है।

द० श्री०

अनुकूल चक्रवर्ती

अनुकूल चक्रवर्ती श्री रसिकानन्द के शिक्षा-गुरु थे। इससे उनकी प्रगाढ़ भक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। आपका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है।

द० श्री०

अनुकूल चन्द्र ठाकुर

अनुकूल चन्द्र ठाकुर २०वीं सदी के पूर्वी भारत के एक परम यशस्वी कृष्णभक्त एवं प्रख्यात योग-साधक हुए हैं। इनका जन्म पूर्वी बंगाल के पावना जिलान्तर्गत पद्मा नदी के किनारे अपने ननिहाल हिमायतपुर गाँव में श्रावण शुक्ला नवमी तदनुसार १४ सितम्बर, १८८८ ई० को हुआ था। इनकी माता मनमोहिनी देवी हिमायतपुर के जमींदार तथा प्रसिद्ध राधाकृष्ण भक्त श्री रामेन्द्र नारायण भादुड़ी की सुपुत्री थीं। पिता श्री शिवचन्द्र चक्रवर्ती पावना के ही निकट गुआखाड़ा गाँव के निवासी थे, पर कालान्तर में उसे छोड़ कर वे अपनी ससुराल हिमायतपुर में जा बसे थे।

श्री अनुकूलचन्द्र ठाकुर को कृष्ण-भक्ति के संस्कार मातृपक्ष से प्राप्त हुए थे। माता मनमोहिनी देवी बचपन से ही कृष्णभक्ति-परायणा थीं। कहा जाता है कि एक दिन उन्होंने अपनी मातामही से राधाकृष्ण की पूजा करने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कहा कि पूजा के पूर्व मंत्र लेना आवश्यक होता है। यह सुनकर बालिका मंत्रदीक्षा के लिए हठ करने लगी। पिता ने व्यंग्य में कहा, 'मदन मोहन से कहो, दीक्षा वही देंगे।' ऐसा कहना था कि वह रोज मंदिर जाकर भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करने लगी। रात-रात भर विलखती रहती। अन्त में अचानक एक रात अचेत हो जाने पर आधी रात को दिव्य रश्मियों से मन्दिर

जगमगा उठा। वह जगकर देखने लगी तो सिंहासन पर विग्रह की जगह एक ज्योतिर्मय पुरुष बैठे मिले। इस दिव्य पुरुष के सामने धीरे-धीरे स्वर्ण के समान चार अक्षर चमक उठे और उस ज्योतिर्मय पुरुष ने उसमें निर्दिष्ट मंत्र का उच्चारण किया। मंत्रप्राप्ति मात्र से ही बालिका को अपार आनन्द की अनुभूति हुई। अन्त में अपनी एक संबन्धी विन्ध्यवासिनी देवी के घर एक चित्र देखकर उसे विस्मय हुआ कि यह तो वही चित्र है जिसे उसने आधीरात को मंदिर में देखा था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह चित्र श्री हुजूर महाराज का है। पता लगाकर वह गुरुदेव के चरणों में जा उपस्थित हुई। जी भर कर उनका दर्शन किया। कालांतर में उन्हीं मनमोहिनी देवी को ठाकुर अनुकूल चन्द्र को गर्भ में धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ग्यारह माह के बालक अनुकूल चन्द्र को लेकर वे हरिपुर निवासी उमेश लाहिड़ी महाशय के पास गईं। वे निष्ठावान् ब्राह्मण थे। घर के एक हिस्से में गोपाल-मन्दिर था जिसमें वे घण्टों बैठकर ध्यान किया करते थे। एक दिन ध्यान के बीच ही कुछ गिरने की आवाज से उनकी आँखें खुल गईं, तो देखा-गोपालजी की मूर्ति नीचे गिरी है और बालक अनुकूलचन्द्र सिंहासन पर बैठे मुस्कुरा रहे हैं। इस दृश्य को देख लाहिड़ी जी निहाल हो गये। पर माता बालक की धृष्टता पर क्रुद्ध हो गई। उन्होंने अनुकूल को बहुत डाँटा। लाहिड़ी जी ने समझा कर शांत किया। उन्हें यह विश्वास हो गया कि यह कोई असाधारण तेजस्वी बालक है।

इनका विद्यारंभ काशीपुर के प्राइमरी स्कूल में हुआ। ये महान् पितृभक्त थे। ५ वर्ष की उम्र में ही रुग्ण पिता की दवा ये इच्छामती नदी पार कर छः मील दूर से लाते थे। कृष्ण भक्ति की स्फुरणा तो मानो सहजात थी। छुटपन से ही नामजप का अखण्ड-प्रवाह चल पड़ा था। जीवन के आरंभ में एक ही नशा था-अपनी कठोर मां को सेवा से प्रसन्न रखना। इनकी मातृ-पितृ भक्ति आरंभ से ही अपूर्व थी।

जीवन के आरंभिक चरण में एक बार इन्हें दक्षिणेश्वर जाने का अवसर मिला। वहाँ जाते ही उक्त स्थान इन्हें पूर्वपरिचित-सा लगा। वहीं उन्होंने देवी मां काली को स्वप्न में देखा। इसके बाद मां काली के इन्हें कई बार साक्षात्कार-दर्शन हुए। (द्रष्टव्य आलोचना प्रसंगे-प्रथम भाग, पृष्ठ २३)।

इन्हें बचपन से ही जप का अभ्यास था। नाम जपते हुए ये तन्मय हो जाते थे। सारा विश्व दिव्य-प्रकाशपुन्ज सा लगता, एकानुभूति प्रबल हो जाती। इसी अवस्था में एक दिन ये एक वृक्ष को हृदय से लगाने दौड़ पड़े थे।

१७वें वर्ष में प्रवेश करते ही इनका विवाह पावना इन्स्टीटयूट के शिक्षक रामगोपाल भट्टाचार्य की ज्येष्ठा पुत्री सरसी बाला (१२ वर्ष) के साथ १३ अगस्त, १९०६ को हो गया। इस समय वे ९वीं कक्षा के छात्र थे।

दयावान तो ये परले सिरे के थे। प्रवेशिका परीक्षा की फीस एक निर्धन मित्र को दे दी। स्वयं अनुत्तीर्ण रहे।

कलकत्ता प्रवास में इन्होंने डाक्टरी की पढ़ाई शुरू की। नेशनल मेडिकल स्कूल में दाखिल हुए। रोज पदयात्रा, गंगा-सेवन, उपवास आदि कार्यक्रम चलते। मां द्वारा श्री गुरुदेव श्री सरकार साहब (गाजीपुर) के आदेशानुसार उन्हें दीक्षा संस्कार दिया गया। होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति में अद्भुत यश मिलने लगा।

ये हरिसंकीर्तन के नशे में उन्मत्त रहने लगे। इनके अनन्य पार्षद थे—किशोरी मोहन। ठाकुर अनुकूल चन्द्र स्वयं गीत लिखते, स्वर संयोजन करते और उस अंचल के परम भक्त वैष्णव श्री किशोरी मोहन पूरे भावावेश में गाते थे। इस कार्य में इनके दूसरे सहायक थे-श्री अनन्तनाथ राय। वे एक बार भगवद्-दर्शन की तीव्र उत्कंठा में आत्महत्या पर उतारू हो गये। सहसा उसी समय अनन्त नाथ राय

के समक्ष ठाकुर अनुकूल चन्द्र प्रकट हो गये और दरवाजा तोड़ कर मित्र का उद्धार किया। पूछा—'कहाँ जा रहे हो।' उत्तर मिला—'भगवान् की खोज में।' ठाकुर ने चेताया—'भगवान् तो तुम्हारे पीछे रात-दिन दौड़ रहे हैं।' वे उनके चरणों में नत हो गये।

२४ से २६वें वर्ष के मध्य उनके कीर्तन-मण्डल में—सतीश चन्द्र गोस्वामी जैसे सिद्ध सन्त आ जुड़े। कीर्तन-गान से श्री ठाकुर भाव-विह्वल हो जाते। सबके साथ झूम उठते। उनकी कीर्तन-मण्डली को देखकर गौरांग महाप्रभु की स्मृति सजग हो उठती। हिन्दू-मुसलमान सभी जुट जाते। चरम भावावेश पूर्ण कीर्तन में कभी-कभी श्री ठाकुर मूर्च्छित होकर गिर जाते। जब वे भाव-समाधि में गहरे डूब जाते, उनके मुख से सहसा निकले तात्विक वचनों का अखण्ड प्रवाह लोगों को आश्चर्य में डाल देता। विज्ञान या चिकित्सा शास्त्र इस रहस्य की व्याख्या करने में असमर्थ है। किन्तु हजारों लोगों की देखी सुनी भाव समाधि की प्राण-स्पन्दन हीन अवस्था में वाणियों का निकलना एक अश्रुतपूर्व वास्तविकता है। इससे भी आश्चर्यजनक बात तो यह है कि वे इस स्थिति में अपरिचित भाषाओं में भी तत्वोपदेश करते थे। इस अवस्था में उच्चरित वाणियों का विषय होता था—सृष्टि-तत्व, अवतारवाद, धर्म, तत्वज्ञान, भक्ति, कर्म, भ्रातृ-भाव, प्रेम, नाम और कीर्तन माहात्म्य आदि। दुर्भाग्यवश साधनों की कमी से १९१४ से १९१९ ई० तक महासंकीर्तन के समय भाव-समाधि में निकली हुई उनकी वाणियों में ७१ दिनों की वाणियाँ ही लिपिबद्ध हो सकीं। 'पुण्यपुथी' नाम से बंगला में इनका संकलन निकल चुका है। वाणियाँ हिन्दी बंगला, अंग्रेजी तथा संस्कृत के अतिरिक्त अनेक अज्ञात भाषाओं में भी निकलीं पर जानकारी के अभाव में वे लिपिबद्ध न हो सकीं। वे इतनी त्वरित गति से निकलती थीं कि बंगला को छोड़कर अन्य अज्ञात भाषाओं की वाणियों को लिख सकना इनके परिकरों के लिए असम्भवप्राय था।

महासंकीर्तन की पयस्विनी ने निकटवर्ती समस्त भूभाग को आप्लावित कर दिया। असंख्य हिन्दू मुसलमान श्री ठाकुर के शिष्य हो गये। आधुनिक बांगला देश के कुष्टिया जिले पर इनकी मण्डली का अधिक प्रभाव पड़ा। श्री ठाकुर का नारा था :—

बुद्ध ईसाय विभेद करिस,
श्री चैतन्य रसूल कृष्णे।
जीवोद्धारे आविर्भूत होन,
एकई ओरा ताओ जानिसने ?

'बुद्ध और ईसा मसीह में अन्तर समझते हो और श्री चैतन्य, अल्लाह और कृष्ण में भिन्नता देखते हो ? जीवों का उद्धार करने के लिए संसार में जो महापुरुष आविर्भूत हुए हैं—यह भी तुम नहीं जानते हो ?

कुष्टिया की भक्तमण्डली ने १९२९ के १४-१५ सितम्बर को विश्वगुरु-आविर्भाव-उत्सव मनाया। हजारों मील की दूरी से असंख्य लोग हिमाइतपुर में आ जुटे। यह दृश्य अपूर्व था। संकीर्तन, गान, धर्मोपदेश, प्रवचन आदि से सारा वातावरण स्पंदित हो उठा। भक्तों के अथक प्रयास से हिमाइतपुर में धर्म, शिक्षा, साहित्य, संगीत, तपोवन, विद्यालय, कला केन्द्र आदि से सम्बद्ध अनेक संस्थान खुल गये। यहाँ का जीवन कर्ममय था। ठाकुर की भाव धाराएँ लिपिबद्ध होती रहीं। शिक्षा, समाज सुधार, साधना आदि अनेक विषयों पर इनकी गद्य-पद्यमयी वाणियों का संग्रह होता गया। सत्संगियों द्वारा प्रेस भी स्थापित हो गया। पत्रिका निकलने लगी। इस नगरी का नाम पड़ा—सत्संग।

श्री ठाकुर की साधना से प्रभावित होकर देशबन्धु चित्तरंजनदास जैसे लोकप्रिय राजनेता ने आपके आश्रम में विधिवत् दीक्षा लेकर शिष्यत्व ग्रहण किया। गाँधी जी ने 'यंग-इण्डिया' में इनका एक पत्र छापा था, जिसमें इन्होंने गाँधी जी से श्री ठाकुर के सम्पर्क में आने के लिए अनुरोध किया था। गांधी जी ठाकुर जी से मिलने आये और इनके अपरिमित मानवप्रेम तथा

अपूर्व व्यक्तित्व से अभिभूत हो गये। इसके बाद राजेन्द्र बाबू, विपिन चन्द्र पाल, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, शरच्चन्द्र और सुभाषचन्द्रबोस जैसी विभूतियों ने इनका साक्षात्कार प्राप्त कर अपना सौभाग्य माना।

३० अगस्त, १९४६ ई०को ठाकुर महाशय की उत्तरार्द्ध-लीला का शुभारंभ हुआ। २ सितम्बर, १९४६ को रोहिणी रोड स्थित बड़ाल बंगला, देवघर में ९ बजे प्रातः श्री ठाकुर आ विराजे। यहाँ रहते हुए कई ओर से बाधाएँ आयीं और षड्यंत्र हुए, जिसका मुख्य कारण था इनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता से कुछ स्थानीय लोगों का द्वेष। इससे कुछ समय के लिए इन्हें देवघर छोड़ कर दुमका जाना पड़ा। पीछे विरोध धीरे-धीरे शांत हो गया और पुनः ये देवघर लौट आये और फिर निरन्तर बाईस वर्षों तक यही पुण्यधाम इनकी लीलास्थली रही।

धर्ममय जीवनयापन के लिए श्री ठाकुर ने लोगों को धर्म का सही अर्थ बताते हुए कहा, 'धर्म सबाई बांचे बाड़े। सम्प्रदाय रा धर्म ना रे। इनका स्पष्ट उद्घोष था, '—भारतवासियो! यदि भविष्यत् कल्याण का आवाहन करना चाहते हो तो साम्प्रदायिक विरोध को भूल कर विश्व के पूर्वकाल के गुरुओं के प्रति श्रद्धा सम्पन्न हो उठो और अपने मूर्त्त एवं जीवन्त गुरु या भगवान् में आसक्त होओ। उन्हें ही स्वीकार करो जो उनसे प्रेम करते हैं।' इन्होंने जीवनोत्कर्ष के तीन स्तम्भ माने हैं यजन, याजन तथा इष्टभूति। इनमें यजन के अन्तर्गत—नाम, ध्यान, भजन, आत्मविश्लेषण, आत्मनियंत्रण, सदाचार, स्वाध्याय, व्रत, प्रायश्चित, पूजा और प्रार्थना है। उनमें भी मुख्य हैं—नाम और ध्यान। अपनी इष्टनिष्ठा को दूसरे में संचारित कर देना ही याजन है। स्वयं सत्पथ पर चलते हुए दूसरों को भी तो चलाना है। इसके लिए आवश्यक है—सत्चर्चा। हमें सर्वदा इस प्रकार रहना है जिससे हम उस परम प्रेममय से संयुक्त रहें।

इष्टभूति, यजन-याजन दोनों की नींव है। इष्ट के भरण-पोषण के लिए कुछ करना ही इष्टभूति है। जब तक हम परम प्रियतम के लिए कुछ नहीं करते तब तक हमारा प्रेम बढ़ता नहीं। श्री ठाकुर के शब्दों में 'शरीर और मन के युक्त आग्रह सहित ईप्सित में केन्द्रित हो उनकी ही भरण कामना से उपार्जन कर दैनन्दिन सर्वप्रथम उन्हें जो अर्घ्य निवेदन किया जाता है उसे ही इष्टभूति कहा जाता है।'

भगवत्प्रेम तथा सदाचार-प्रचार से लाखों जीवों के उद्धारक ठाकुर महाशय का नित्यधाम गमन २९ जनवरी, १९६९ ई० को ब्राह्ममुहूर्त में ८१ वर्ष की अवस्था में हुआ।

इनके द्वारा स्थापित सत्संग केन्द्र आज भी जन कल्याणरत हैं। ये भारतवर्ष के अतिरिक्त पाकिस्तान, वर्मा, योरोप, अफ्रीका अमेरिका आदि देशों में भी फैले हैं। भारत में असम, बंग, बिहार, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली आदि प्रदेशों में इनके सत्संग-मन्दिर प्रतिष्ठित हैं जिनका संचालन इनके लाखों धर्मानुयायी और शिष्यों द्वारा होता है। इसका मुख्य केन्द्र देवघर है। यहां वर्ष में दो बार आनन्द बाजार का आयोजन होता है जिसमें सत्संग प्रेमी हजारों अनुयायी सम्मिलित होते हैं। इस संस्था का अपना प्रेस है। जहां से दो पत्रिकाएं-आलोचना (बंगला) सात्वती (हिन्दी) के नाम से निकलती हैं। ठाकुर जी के अनेक ग्रंथ और वाणी संग्रह यहां से प्रकाशित हुए हैं।

सत्संग अतिथि-भवन से लगे गोशाला, प्रार्थना-भवन, पुस्तकालय, अस्पताल, शिल्पशाला, अमर द्युति सन्ध्या तथा महिला महाविद्यालय भी हैं। श्री ठाकुर की योजना यहां शाण्डिल्य विश्वविद्यालय स्थापना की थी, किन्तु वह पूरी न हो सकी।

ठाकुर महाशय की वाणियों का पुस्तकाकार प्रकाशन विभिन्न संकलन ग्रंथों में हुआ है जिनमें मुख्य है : (१) सत्यानुसरण, (२) तपोविधायना (३) विधिविन्यास, (४) सद्विधायना, (५) सेवाविधायना, (६) निष्ठाविधायना, (७)

दर्शन - विधायना, (८) समाज - सन्दीपना, (९) धृति - विधायना (१०) आचार - चर्या, (११) आलोचना प्रसंगे (१० खण्ड-श्री ठाकुर के साथ कथोपकथन), (१२) पुण्यपुथी, (१३) अनुश्रुति, (६ खण्ड), (१४) नारी-पथे, (१५) शाश्वती (३ खण्ड) (१६) अमिय-लिपि, (१७) आशिष-वाणी, (१८) उपासना, (१९) प्रीतिविनायक, (२०) चर्यासूक्त, (२१) अमिय वाणी आदि। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी में भी कुछ कृतियां हैं- (१) रिवीलेशंस आंव श्री ठाकुर इन इंगलिश (खंड ० १-९), (२) लार्ड्स प्रेयर आदि।

इनकी रचना के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) आदर्श विनायक (हिन्दी अनुवाद)

"आचार्य के आविर्भाव से
स्वाध्यायी गुरु का गुरुत्व आचार्य में आता है।
जिन्होंने आचरण कर जाना है।
पुनः पुरुपोत्तम के आविर्भाव से आचार्य का गुरुत्व पुरुषोत्तम में आता है।
वे एक ही साथ गुरु, आचार्य एवं वैशिष्ट्यशाली आपूर्यमाण पुरुषोत्तम हैं।
जब आचार्य या पुरुषोत्त नहीं रहते हैं
तभी स्वाध्यायी गुरु के प्रति उनका गुरुत्व आता है
जब पुरुषोत्तम नहीं रहते हैं
आचार्य रहते हैं—
तब आचार्य ही ग्रहणीय हैं,
पुरुषोत्तम के अभ्युदय में
आचार्य गुरु आदि सभी ही
उनमें
और जितने पूर्वतन पुरुषोत्तम हैं वे सभी साम्प्रतिक पुरुषोत्तम में आपूरित जीवन्त हो उठते हैं।
स्वरूप सन्दीपना से सार्थक हो उठते हैं—
पुरश्चरणी अनुदीपन से,
एक शब्द में, जब पुरुषोत्तम वर्तमान रहते हैं,
तब से वे शरणीय हैं,
पुरुषोत्तम के अवर्तमान में
तन्निष्ठ, आचार्य ही शरणीय हैं, और आचार्य भी
जब नहीं रहते हैं
तब पुरुषोत्तमनिष्ठ स्वाध्यायी गुरु ही आश्रयणीय है,
सारांश में आचार्य एवं स्वाध्यायी गुरु के
गुरुत्व का उत्स ही है—
पुरुषोत्तम-निष्ठा,
एवं सर्वावस्था में पुरुषोत्तम ही
मनुष्य के उपास्य एवं इष्ट हैं।"

(२) अनुश्रुति (प्रथम भाग) हिन्दी अनुवाद :

'सत्ता सच्चिदानन्दमय
सच्चिदानन्द का परिपोषक जो वही धर्म,
धर्म मूर्त होता आदर्श में
आदर्श में दीक्षा लावे अनुराग
अनुराग लावे वृत्ति नियंत्रण
वृत्ति नियंत्रण लावे धृति
धृति लावे महानुभूति
महानुभूति लावे संहति
संहति लावे शक्ति
शक्ति लावे संवर्द्धना
और यही धृति लावे प्रणिधान,
प्रणिधान द्वारा ही आवे समाधि
और समाधि द्वारा ही आवे कैवल्य—
तृष्णा का एकान्त निर्वाण—
महाचेतन समुत्थान।"

त० ना०

अनुपम वल्लभ

अनुपम वल्लभ का मूल नाम अनुपम मलिक था। ये चैतन्य शाखा के आचार्य, जीव गोस्वामी के पिता तथा रूप-सनातन गोस्वामी के कनिष्ट भ्राता थे। इनके पिता का नाम कुमारदेव था। महाप्रभु

चैतन्य ने उन्हें 'अनुपम' कहकर संबोधित किया था। इसके बाद ये इसी नाम से विख्यात हुए :—

अनुपम मल्लिक तार नाम श्रीवल्लभ।
रूप गोसांइर छोटो भाइ परम वैष्णव ॥

'भक्ति-रत्नाकर' में इन्हें गौड़ेश्वर हुसेन शाह की टंकशाला का कोषाध्यक्ष बताया गया है—

श्री रुपेर अनुज वल्लभ विज्ञवर।
अनुपम नाम युइल श्री गौर सुन्दर ॥
रघुनाथ बिने जेहो अन्य नाहि माने।
सदामत्त रघुनाथ विग्रह से बाने ॥
साक्षात श्रीरघुनाथ चैतन्य गोसाइ।
आपना मानेय धन्य एछे प्रभु पाइ ॥

बाल्यकाल से ही 'अनुपम' श्री श्रीरघुनाथ के प्रति भक्तिभाव से सर्मपित थे। उन्हीं के नाम का भजन-संकीर्तन-पूजन करते थे। एक दिन सनातन ने अनुपम से कहा, 'अनुपम! श्री रघुनाथ का भजन पूजन छोड़ दो। हम तीनों भाई मिलकर श्रीकृष्ण भजन संकीर्तन करें। अनुपम ने अग्रज की आज्ञा स्वीकार कर ली, परन्तु रात्रि वेला में अनुपम की दशा चिन्त्य हो गई। रघुनाथ को ये भूल नहीं पाते थे। इनको मर्मान्तिक पीड़ा होने लगी। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वाणी मौन हो गई। अनुपम के मनोभाव को समझकर श्री गोस्वामी ने कहा "तुम्हारी भक्ति दृढ़ हुई" (चै० च० अन्त-४,४३) गौड़ गमन के समय श्रीरूप और अनुपम गंगातट पर प्रभु-भक्ति में तल्लीन होकर पद गान करते-करते भाव विह्वल हो गये थे !

श्री रूप-वल्लभे लेया आइला गौड़ देशे।
श्री वल्लभ अप्रकट होला गंगातीर,
नीलाचल गेला रूप बहुदिन परे ॥

द० श्री०

अपूर्व चरण । अद्वैतदास बाबा जी)

अद्वैतदास बाबा जी का बचपन का नाम अपूर्वचरण था। इनका जन्म गौड़मण्डल के मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत वयदाई ग्राम में सन् १८७० ई० में फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन हुआ था। इनके पिता का नाम श्री नीलकण्ठ और माता का नाम श्रीमती ब्रजरानी देवी था। डेढ़ ही वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहान्त हो गया। इनका लालन-पालन और प्रारम्भिक शिक्षा इनके बड़े भाई की देख-रेख में हुई। भाई इनका विवाह कर देना चाहते थे लेकिन एक दिन ये सहसा अपने बन्धु श्री मृत्युंजयदास के साथ घर से निकल पड़े और श्रीधाम नवद्वीप होते हुए मयनाजल पहुँचे। वहाँ मित्र ठाकुर महाशय के आश्रम में रहकर संकीर्त्तन की शिक्षा लेने लगे। श्री विष्णुदास बाबा से इन्होंने दीक्षा लेकर वेश ग्रहण किया। इसी समय इनका नाम अद्वैतदास पड़ा।

वेश ग्रहण करने के बाद ये मृत्युंजयदास के साथ श्री विष्णुदास बाबा जी के भजन-स्थान नारंगाबाद में रहकर भजन करने लगे। इसके बाद श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त किये गये। यहीं पर श्री मनोहरदास पंडित से श्रीमद्भागवत आदि भक्ति-शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद ये श्रीजगदानन्ददास बाबा जी के साथ रहकर गोवर्द्धन में सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा (द्वितीय) के आनुगत्य में अष्टकालीय लीला-स्मरण करने लगे। कुछ ही दिनों बाद एक महान् पण्डित के रूप में इनकी ख्याति फैल गयी। वहाँ से ये राधाकुंड में जाकर रहने लगे और श्रीमद्भागवत आदि भक्ति शास्त्रों की आलोचना करने लगे। अपने गुरुदेव श्री विष्णुदास बाबा जी की अस्वस्थता का संवाद पाकर ये गोवर्द्धन चले गए। लेकिन रास्ते में ही इन्हें पता चल गया कि इनके गुरुदेव नहीं रहे, तब से ये गोविन्द कुण्ड चले गये और अपने गुरुदेव के स्थान पर तुलसी के निकट बैठकर भजन करने लगे। यहीं पर श्री चाँपाठाकुर ने इनसे वेश ग्रहण किया तथा इनके अनेक शिष्य हुए जिनमें

श्री वैष्णवदास शास्त्री, श्री भागवत दास, श्री कुञ्जबिहारीदास, श्री दीन शरणदास, श्री प्रेमानन्द शास्त्री, डॉ० अमरनाथ सेन तथा श्री रासगौर घोषाल प्रमुख थे। सन् १९६२ ई० में फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की एकदशी के दिन इन्होंने अपना शरीर त्यागा।

मु० अ०

अभिराम गोपाल

अभिराम गोपाल भक्तिमती राधा के ज्येष्ठ भ्राता थे। इनकी पत्नी का नाम मालिनी देवी था। कृष्ण नगर के अन्तर्गत रगनाकुल नामक स्थान में इनका श्रीपाट था। इनका मूल नाम रामदास था, किन्तु वैष्णव भक्तों के मध्य ये अभिराम गोपाल नाम से प्रसिद्ध थे। लोकमानस में यह विश्वास चला आ रहा है कि द्वादश गोपालों में ये अन्यतम श्रीदास थे। ये नित्यानन्द के पार्षदों में से थे तथा रामदास, राम तथा अभिराम ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध थे। श्रीकृष्ण लीला में ये श्रीदामा के सखा थे और राम लीला में भरत के प्रतिरूप माने जाते थे। अभिराम गौरांग प्रभु का दिया हुआ नाम था। 'लीलागृह' में निम्नलिखित प्रसंग मिलता है।

गौरांग—

नित्यानन्दे डाकि तबे बलेन हसिया।
आज होइते डाको सबे अभिराम भाइया॥
एइ नाम राखिलाम करिया निश्चय।

'नित्यानन्द को बुलाकर प्रभु (गौरांग) ने हँसते हुए कहा, 'आज से सभी (उन्हें) अभिराम कहकर बुलावें (सम्बोधन करें)। आज मैंने यही नाम रखा है।' चैतन्य चरितामृत में इनके विषय में कुछ अतिरिक्त सूचनाएँ उपलब्ध होती है—

रामदास, अभिराम, सखा-प्रेम राशि।
प्रभुर आज्ञाय नित्यानन्द गौड़ चलिला,
श्री रामदास, माधव आर वासुदेव घोष॥

'रामदास अथवा अभिराम प्रेमराशि के सखा हैं, प्रभु की आज्ञा से नित्यानन्द गौड़ चले तो साथ में श्रीरामदास, माधव और वासुदेव भी चले।'

उपर्युक्त पद से यह स्पष्ट होता है इनका मूल नाम रामदास था और अभिराम दास महाप्रभु का दिया हुआ नाम था।

श्री वृन्दाबन दास ठाकुरकृत 'ऐश्वर्यामृत-काव्य' (अप्रकाशित) में एक प्रसंग आया है कि श्रीनित्यानन्द प्रभु ने देवघर में ब्रजलीला के समय पर्वत-गुहा-विलीन-तन श्रीदामा को प्रकट कर श्रीगौरांग-लीला में दीक्षित कर कृष्णभक्ति प्रचार हेतु नवद्वीप भेजा था। इसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि जीवोद्धार के लिए उन्होंने विप्रगृह में जन्म लिया था। ये सभी शास्त्रों के पण्डित थे और इन्होंने विप्र कन्या मालिनी से विवाह किया था—

जीव उद्धारित अवतीर्ण विप्र घरे।
सर्व शास्त्रे पण्डित परम मनोरम।
नृत्य गीत वाद्ये विशारद अनुपम॥
प्रभु नित्यानन्द बलरामे इच्छाते।
करिल विवाह विज्ञ विप्रेर गृहेते॥
श्री अभिराम पत्नीनाम श्री मालिनी।
ताहार प्रभाव कत कहिते न जानि॥

'जीव उद्धार हेतु विप्रगृह में जन्म ग्रहण किया, सर्व शास्त्र निष्णात और परम मनोरम व्यक्तित्व वाले नृत्य गीत-वाद्य में अनुपम विशारद नित्यानन्द प्रभु व वलराम की इच्छा से विप्रगृह में विवाह किया। अभिराम की पत्नी का नाम श्रीमालिनी था, उनका प्रभाव वर्णनातीत है। चैतन्य महाप्रभु की इन पर अपार कृपा थी।'

अभिराम दास के विषय में एक विशेष घटना का उल्लेख प्रायः सभी वैष्णव ग्रन्थों में मिलता है—

सबे मिलि नवद्वीपे करिबे कीर्तन।
श्रीदाम लागिया प्रभु भावेन तखन॥

प्रेम पुलकित हइया करेन क्रन्दन।
कहाँ गेला श्रीदाम बलि होला अचेतन॥

तबे नित्यानन्द आशि कोलेते करिला ।
चेतन करिला तारे बोलिते लागिला ।।

श्रीदाम रहिला कोथ वलह हमारे ।
जाइब एखन आमि आनिते ताहारे ।।

तखन बोलेन प्रभु नित्यानन्द प्रति ।
बृन्दावने रहे तिहों जाइ शीघ्र गति ।।

'हम सब नवद्वीप में मिलकर कीर्तन करेंगे, उस क्षण श्रीदामा के विषय में प्रभु सोचते हैं, प्रेम पुलकित हो क्रन्दन करते हैं। श्रीदामा अर्थात् अभिराम गोपाल का स्मरण करते हैं, 'श्रीदामा कहाँ चले गए' यह कहकर वे अचेत हो गये। तब आकर नित्यानन्द ने उन्हें अपने अंक में भर लिया। चेतन अवस्था के लौटने के पश्चात् नित्यानन्द कहने लगे, 'मुझे इसका परिज्ञान करायें कि श्रीदाम कहाँ हैं। उन्हें लाने के लिए तत्काल जाऊँगा।' तत्पश्चात् प्रभु ने नित्यानन्द से कहा, 'श्रीदाम वृन्दावन में हैं। उन्हें शीघ्र ले आओ। श्रीदाम (अभिराम) के लौट आने पर ही महाप्रभु प्रकृतिस्थ हुए।'

इनकी तेजस्विता के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि जब ये श्रीविग्रह एवं शालिग्राम को प्रणाम करते थे तो उन दोनों का तेज 'अभिराम' के तेज के सम्मुख मंद पड़ जाता था। नित्यानन्द के सात पुत्रों का तेज भी इनके तेज के सम्मुख मन्द पड़ जाता था। केवल वीरभद्र गोस्वामी इनके प्रणाम के तेज को सह पाते थे। वीरभद्र गोस्वामी गौरांग के द्वितीय कलेवर रूप में प्रसिद्ध थे। अभिराम दास रचित 'वीरभद्राष्टक' नामक ग्रन्थ में इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन है। वीरभद्र से अपने ग्रन्थ 'गंगास्तोत्र' में लिखा है—'प्रभु के अनुचर श्रीदामा का मैं सखा हूँ। मैंने तुम्हारी महिमा के परिज्ञान के लिए स्थान-स्थान की परिक्रमा की है, परन्तु हे माता गंगे! तुम्हें बारह बार प्रणाम करने के पश्चात् मैंने अनुभव किया कि तुम अक्षयशरीर हासमग्न हो। उस समय मैं तुम्हारे असाधारण ऐश्वर्य से अवगत हुआ।' इनके विषय में अनेक अलौकिक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक कथा के अनुसार इनके पास 'जयमंगल' नामक एक चाबुक था। श्रीनिवास आचार्य को इन्होंने इसी चाबुक से मारा था जिसके फलस्वरूप श्रीनिवास आचार्य पाप मुक्त हो गये थे—

अभिराम गोस्वामिर प्रताप प्रचंड ।
जाये देखि काँपे सदा दुर्जन पाखण्ड ।।

अभिराम पूर्व्वे श्रीदाम खानाकुले स्थिति ।
खानाकुल कृष्ण नगर ग्राम नाथ स्थिति ।।

'अभिराम गोस्वामी का प्रताप प्रचंड था, जिसको देखकर दुर्जन तथा पाखण्डी सदैव कांपते थे। अभिराम कृष्ण नगर के खानाकुल ग्राम के निवासी थे। इस प्रकार की जनश्रुति है कि श्रीकृष्ण लीला के पश्चात् इन्होंने पुनः जन्म नहीं ग्रहण किया और श्रीदामा नाम से सखा के रूप में ये गोलोक लीला के नित्य परिकर हो गए।'

द० श्री०

अमोघपण्डित

नवद्वीपवासी महेश्वर विशारद के पुत्र और उड़ीसा के महाराजा प्रतापरुद्रदेव के श्रद्धेय थे सार्वभौम भट्टाचार्य। उनकी कन्या का नाम षाठी था। षाठी का विवाह अमोघपण्डित के साथ सम्पन्न हुआ था। सार्वभौम पहले मायावादी, चूडान्त वेदान्ती पण्डित थे। इनका वास्तविक नाम वासुदेव भट्टाचार्य था। 'सार्वभौम' उनकी उपाधि थी। महाप्रभु चैतन्य के प्रेमातिशय व्यक्तित्व से ये प्रभावित हुए थे। गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम के बहनोई थे, जो महाप्रभु की भगवत्ता स्वीकार करते थे। इन्हीं के माध्यम से सार्वभौम मायावाद से व्यक्तिवाद में प्रवृत्त हुए थे। 'चैतन्यशतक' महाप्रभु चैतन्य की स्तुति में वैसे ही फूट पड़ा था जैसे प्रबोधानंद सरस्वती के मुख से 'चैतन्य-चन्द्रामृत' निःसृत हुआ था।

'चैतन्य चरितामृत' से ज्ञात होता है कि सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्यदेव को अपने घर प्रसाद पाने के लिए भक्तिपूर्वक राजी कर लिया था। षाठी की माँ महाप्रभु के प्रति मातृस्नेहपूर्ण महाभक्ता थीं। कृत्कृत्य होकर अनगिनती अन्नादि व्यंजनों को परोसा गया। इसी समय षाठी का पति अर्थात् सार्वभौम का जामाता अमोघ वहाँ आ पहुंचा और प्रभु की निन्दा करने लगा—'सह अन्न तृप्त हय दशबार जन। एकेला सन्यासी करे एतक भोजन।' भट्टाचार्य को क्रोध आ गया और वे अपने जामाता अमोघ को लाठी लेकर मारने दौड़े। अमोघ की प्राकृत बात से सार्वभौम तथा षाठी की माँ वेहद विचलित हो गईं। यहाँ तक कि अपनी सुपुत्री से प्रभुनिन्दक पति के परित्याग का प्रस्ताव तक कर डाला क्योंकि स्मृति का निदेश है—'पति पतितं त्यजेत्।'

अमोघ भयाक्रांत होकर पलायन कर गया। दूसरे दिन उसे विशूचिका होगई, उससे महत् अपराध जो हुआ था। दूसरे दिन गोपीनाथ आचार्य महाप्रभु का दर्शन करने उनके स्थान पर गए। महाप्रभु ने भट्टाचार्य का हाल पूछा। ज्ञात हुआ भट्टाचार्य और षाठी की माँ दोनों उपवास कर रहे हैं और अमोघ मरणासन्न है। इतना सुनकर महाप्रभु अमोघ के पास दौड़कर पहुंचे और उसके सीने पर हाथ रखकर बोले–'यह ब्राह्मण-हृदय (जो सहज ही शुद्ध होता है) श्रीकृष्ण के विराजित होने योग्य स्थल है। तुमने द्वेष रूप चाण्डाल को कैसे बैठा लिया ? इस परम पवित्र स्थान को कैसे अपवित्र कर दिया। अमोघ ! उठो पवित्र कृष्णनाम जपो, तुम्हारे ऊपर कृपा होगी।' तभी अमोघ को चेत हुआ और वह 'कृष्ण-कृष्ण' कहते उठ बैठा तथा प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करने लगा। यहाँ तक कि आत्मग्लानि से भरकर अपने गालों को फाड़ने लगा, किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने उसके हाथों को पकड़ लिया। भक्त के सम्बन्ध से महाप्रभु चैतन्य की पितृवत् कृपा पाकर अमोघ उनके एकान्तिक भक्त हो गए। इनकी प्रकृति उद्धत से महाशांत हो गयी। तभी से ये कृष्ण-प्रेम में डूबे रहते थे।

यह इतिवृत्त चैतन्य-देव के दक्षिण प्रयाण से पूर्व का है। अतः वि० सं० १५६७ से पहले ही अमोघ पण्डित महाप्रभु के संपर्क में आए होंगे। 'चैतन्य-चरितामृत' (आदिलीला) से ज्ञात होता है कि ये गदाधर पण्डित गोस्वामी की शाखा में थे। 'शाखा-निर्णयामृत' में लिखा है—

अमोघ पण्डितं वन्दे श्रीगौरेणात्मसात्कृतम्।
प्रेम गद्गद सान्द्रांगः पुलकाकुल विग्रहम्॥

ऐसा ज्ञात होता है कि अमोघ पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य के ज्ञानाभिमानी विद्वान् जामाता थे, जो न्याय-वेदान्त के पण्डित भी रहे होंगे। महाप्रभु चैतन्यदेव की प्रेमाभक्ति से ये आरंभ में बिलकुल अप्रभावित थे। अपने परम पण्डित श्वसुर, स्नेहशीला सास तथा चारुशीला पत्नी षाठी द्वारा महाप्रभु का अलौकिक आदर-सत्कार देखकर अमोघ का उद्धत प्राकृतमन दग्ध हो जाता था। सहजिया-तान्त्रिक साहित्य के कुछ अध्येताओं ने षाठी को चैतन्य-देव की साधना-सहचरि मानकर अप-प्रचार किया है। गोपालभट्ट कृत 'हरिभक्ति-विलास' में लिखा है—

कुमनः सुमनस्त्वंहि याति यस्य पदाब्जयोः।
सुमनाऽर्पणमात्रेण तं चैतन्यप्रभुं भजे॥

'जिनके चरण-कमलों में सुमन अर्पण करने मात्र से कुमना (खोटे मन वाला) भी सुमना (सज्जन) हो जाता है, मैं उन्हीं श्री चैतन्य-महाप्रभु का भजन करता हूँ।'

न. च. बं.

आनन्द दास (आनन्द चन्द्र)

आनन्द या आनन्द दास उत्तरवर्ती वैष्णव भक्ति आन्दोलन के उन्नायक आचार्यों में प्रमुख थे। इनका समय १६८० ई० के आसपास माना जाता है। इनके पद विभिन्न संग्रहों में यत्र-तत्र बिखरे हैं। 'पदकल्पतरु' में इनका एक पद (सं० २८७२)' 'आनन्द-भणिता'

से और एक अन्य पद (२७६४) 'आनन्ददासभणिता' से युक्त है। इनका एक तीसरा पद (सं० २४५५) बंगला-ब्रजबुली मिश्रित है। नीचे इनके दो पद उद्धृत हैं—प्रथम पद चैतन्य देव के प्रति है।

(१) बंगला पद

लाग्याछे नयाने नव-नागर गोरा।
कुलवती युवती सतीर मन चोरा॥
हेरिगोरा मुखशशि,
नाहिजानि निशि दिशि,
सदाइ आनन्दे भासि,
प्रेमेर रसेर भोरा।

अरुण नयन कोणे,
चाहे गोरा यार पाने,
प्राण सहिते दाने,
कि करिब मोरा॥

आनन्द चन्द्रर वाणी,
शुनहे सकल प्राणी,
भज गोरा दिन क्षणे,
शचीर किशोरा।

(दास, ब्रजबुली लिपि० सं० २०६६)

'नव नागर गौरचन्द्र नयन मनोहर हैं। वे गृहस्थ युवतियों का मन हर लेते हैं। गौरांग का मुखचन्द्र देखकर दिन-रात कट जाते हैं। मैं निरन्तर उनके ध्यान में आनन्द सागर में तैरता रहता हूँ। प्रेम के रस से भर जाता हूँ। अपनी लाल आँखों से वे जब किसी की ओर देखते हैं, तब वह उन्हें अपना प्राण भी सौंप देता है। हमें और कुछ करते नहीं बनता। आनन्द चन्द्र के इस वचन को सभी लोग सुनो। गौरांग का भजन दिन रात करो—वे शची के किशोर पुत्र हैं।'

(२) ब्रजबुली

वृषभानु-नन्दिनी के शोभा वनी।
वरण किरण कवि जिनि दामिनी॥
चरण कमल पर नखर निशाकर,
मञ्जिर रञ्जित मधुर ध्वनी।
किए विधि अद्भुत उरु युग निरमित,
कटि नीलिम वसन वासिनी॥

किए मुख छन्द, जिनि कोटि चन्द,
काम कामान भांगा मृगनयनी।
श्याम भुजंगिनि, वेणी के लावनी,
'आनन्द' मति गति दुख हरणी॥

(पदकल्पतरु—२८७२)

'वृषभानु की कन्या की शोभा अनुपम है। उनके शरीर का वर्ण बिजली की चमक को भी परास्त करता है। उनके चरण कमलों के नाखून चन्द्रमा के सदृश हैं—चरणों के नूपुर मधुर ध्वनि करते हैं। विधाता ने कैसे अद्भुत उरुयुगलों का निर्माण किया है? उनकी कटि क्षीण है। वे नीले वस्त्र धारण किये हैं। उनके मुख की शोभा कोटि चन्द्र की सुन्दरता को लज्जित करती है। उस मृगनयनी के भ्रूयुगल कामदेव के धनुष के समान हैं। काले सर्प ने उनकी बेणी का रूप धारण कर लिया है। राधा जी आनन्द के मन की चंचलता का दुःख दूर करनेवाली हैं।'

द० श्री०

ईशान (प्रथम)

ईशान (प्रथम) चैतन्य महाप्रभु के परिवार के अतिविश्वासी भृत्य थे। श्री गौरांग महाप्रभु के गृहत्याग और सन्यास ग्रहण के पश्चात् ये शचीमाता एवं श्री विष्णुप्रिया ठाकुरानी की रक्षा और सेवा के लिए उनके पास रह गये। "चैतन्य-भागवत" में इसका उल्लेख इस प्रकार आया है—

सेविलेन सर्वकाल आइ रे ईशान।
चतुर्दश लोक मध्ये महाभाग्यवान॥

ईशान ने बराबर शचीमाता की देखभाल की। चौदह भुवन में वे बड़े भाग्यवान थे।

'वैष्णव-वन्दना' में भी इनकी चर्चा आई है—

वन्दिव ईशानदास करजोड़ करि ।
शची ठाकुरानी जारे स्नेह केलि बड़ि ॥

'मैं हाथ जोड़कर ईशानदास की वन्दना करता हूँ जिन पर शचीमाता का अपार स्नेह था ।'

"भक्ति-रत्नाकर" में भी इनका उल्लेख गौरांग प्रभु के प्रियपात्र के रूप में किया गया है ।

द० श्री०

ईशान (द्वितीय)

ईशान द्वितीय रूपगोस्वामी के समकालीन थे और उनके साथ वृन्दावन में रहते थे। जिस समय श्री रूपगोस्वामी विट्ठलेश्वर के घर श्री गोपालजी के दर्शनार्थ जाते थे, तब ये उनके सहचर रूप में साथ जाते थे ।

द० श्री०

ईशान नागर

ईशान नागर अद्वैत महाप्रभु के शिष्य थे। इनका जन्म शक सं० १४१४ (१४९२ ई०) में श्रीहट्ट जिलान्तर्गत लाउड़ परगना के नवग्राम में हुआ था। जब ये पाँच वर्ष के थे, इनके पिता का स्वर्गवास हो गया और इनकी विधवा माता पुत्र के साथ श्रील अद्वैत प्रभु के संरक्षण में आ गई। अद्वैत महाप्रभु ने दोनों को अपना संरक्षण देकर इन्हें दीक्षित किया। अद्वैत के संरक्षण में ही इन्होंने वैष्णव धर्म एवं दर्शन का अध्ययन किया। शक सं० १४९० (१५६८ ई०) में इन्होंने 'अद्वैतप्रकाश' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। अद्वैत की जीवनी के अतिरिक्त इन्होंने वैष्णव धर्म की प्रपत्तियों का विश्लेषण भी किया है। 'अद्वैत-प्रकाश' में नित्यानन्द के तिरोधान, अद्वैत का खड़दह-भ्रमण, महाप्रभु के तिरोधान के पश्चात् विष्णुप्रिया देवी की तपश्चर्या आदि का विवरण-क्रम इस ग्रन्थ को प्रामाणिकता को संदिग्ध करता है। (देखिये— प्रो० सुकुमार सेन—बंगला साहित्येर इतिहास—एकादश परिच्छेद पृ० ३९४-३९५, प्रथम खण्ड पूर्वार्ध-पंचम संस्करण, १९७० ई० ईस्टर्न पब्लिशर्स)। यह ग्रन्थ बारह परिच्छेदों में विभक्त है और पयार छन्द में रचित है।

द० श्री०

ईश्वरपुरी

ईश्वरपुरी चैतन्य महाप्रभु के दीक्षागुरु थे। इनका जन्म कुमार हट्ट (वर्तमान हाली शहर) में १५वीं शती के प्रथम दशक में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रील श्याम सुन्दर आचार्य था और ये कुलीन ब्राह्मण वंश के थे। इनके गृहस्थ जीवन के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। ये माधवेन्द्रपुरी के शिष्य और नित्यानन्द के प्रेरक गुरु थे। इनकी प्रेरणा से ही उन्होने सन्यास ग्रहण कर लिया और वैष्णव भक्ति में निष्णात हुए। इनका परिचय 'प्रेम-विलास' की निम्नखित पंक्तियों में उपलब्ध होता है—

राढ़ीय ब्राह्मण श्याम सुन्दर आचार्य ।
कुमारहट्टवासी विप्र सर्व गुने वर्य ॥

तार पुत्र ईश्वरपुरी बुद्धि बृहस्पति ।
वेद वेदान्तादि शास्त्रे तार भारी गति ॥

परम पण्डित ईश्वर छाड़ि गृहवास ।
माधवेन्द्र शिष्य होइया पारिला सन्यास ॥

ईश्वर पुरी नाम सन्यास आश्रमे ।
माधवेर करे सदा चरन सेवने ॥

'राढ़ीय ब्राह्मण श्याम सुन्दर आचार्य कुमार हट्टवासी विप्र सर्वगुण सम्पन्न थे। उनके पुत्र ईश्वरपुरी बुद्धिबृहस्पति, वेद-वेदांग में जिनकी तीव्र गति, परम पण्डित, गृहवास त्यागी, ईश्वर अनुरक्त, माधवेन्द्र पुरी के शिष्य, सन्यास आश्रम में विख्यात ईश्वरपुरी माधव के निरन्तर चरन सेवक थे।'

इनके विषय में अनेक अलौकिक कथायें प्रसिद्ध हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि ये सिद्ध पुरुष थे :

ईश्वरपुरी करेन श्रीपद सेवन ।
निरन्तर कृष्णनाम करे स्मरण ॥

तुष्ट होइया पुरी तारे केल आलिंगन ।
कृष्ण नाम कृष्ण लीला शुनाय अनुक्षण ।।
वर दिला कृष्णे तोमार होइक प्रेमधन ।

'ईश्वरपुरी श्रीपद सेवन करते हैं, निरन्तर कृष्ण नाम का स्मरण करते हैं। तुष्ट होकर वे श्रीमूर्ति का आलिंगन करते हैं, प्रतिक्षण कृष्ण नाम और कृष्ण लीला गान करके सुनाते हैं। इन्हें किसी अज्ञात शक्ति ने वर दिया था कि कृष्ण प्रेम में तुम्हारी अनुरक्ति दिन प्रति दिन होती जाय।'

निमाई पण्डित (चैतन्य) अपने आरम्भिक जीवन में व्याकरण और शास्त्र में निष्णात होने की चेष्टा में रहते थे। एक समय की घटना है निमाई पण्डित विद्याविलास में लीन थे। ईश्वरपुरी उस समय नवद्वीप-निवासी गोपीनाथ आचार्य के घर निवास कर रहे थे। यहीं निमाई पण्डित के साथ साक्षात्कार हुआ। ये दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए। एक दिन ईश्वरपुरी ने चैतन्य से हँसकर कहा–

हसियाबोलेन तुमि परम पण्डित ।
आमि पुथि करियाछि कृष्णेचरित ।।
सकल बोलिया कथा थाके कोनदोष ।
इहारो आमार होवे परम सन्तोष ।।

'हँसकर उन्होंने कहा, तुम परम पण्डित हो। मैंने कृष्ण चरित्र सम्बन्धी एक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। सभी कहते हैं कथा में कुछ दोष है। इस दोष का निवारण कर सकें तो मुझे परम सन्तोष होगा।'

उपर्युक्त पंक्तियों को सुनकर निमाई पण्डित ने कहा, "क्या यह एक भक्त का वाक्य है। जिस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण चरित वर्णित हो उसमें जो दोष–दर्शन करे वह महा पापी है। भक्त-जन भक्ति भावनासे जो कुछ लिखते हैं उससे सन्तुष्ट होते हैं। अन्त में ईश्वर पुरी के विशेष अनुरोध करने पर गौरांग (चैतन्य) ने हँसते हुए एक स्थान विशेष का निर्देश करते हुए कहा, 'इस स्थान पर धातु प्रयोग दोषपूर्ण है।' उस समय ईश्वरपुरी मौन रहे। समस्त-रात्रि चिन्तन के पश्चात् दूसरे दिन उन्होंने चैतन्य से कहा, 'आपने जिस धातु का प्रयोग परस्मैपद में किया है उसका प्रयोग मैंने आत्मनेपद में दिया है। चैतन्य ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। अनेक वर्षों के पश्चात् गौरांग प्रियजनों के परिबोधार्थ गया गए। वहाँ इनका ईश्वरपुरी से पुनः साक्षात्कार हुआ। एक दिन गया में श्राद्धकर्म समाप्त कर भोजन की तैयारी करने लगे। भोजन अभी बना ही था कि ईश्वरपुरी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने पूछा, 'क्या तुम्हारा रंधन हो गया। मैं क्षुधित हूँ और ठीक समय पर आ गया हूँ। 'गौरांग ने सविनय कहा,--"मेरा परम सौभाग्य है कि आप यहाँ आज उपस्थित हैं। कृपया भोजन ग्रहण करें।" ईश्वरपुरी ने कहा, 'हम दोनों इस भोजन को अपने-अपने लिए दो भागों में बाँट लें।' परन्तु प्रभु ने ईश्वरपुरी की बात न सुनी। उन्हें भोजन कराया, फिर स्वयं रंधन कर भोजन किया। तब ईश्वरपुरी ने गौरांग के कान में दशाक्षर मंत्र पढ़कर उन्हें दीक्षित किया। इसके अनंतर गौरांग और ईश्वरपुरी की फिर कभी भेंट नहीं हुई।

प्राक्-चैतन्य-युग में वैष्णव भक्ति के उन्नयन और प्रचार में इनका विशेष योगदान रहा। इन्होंने अपने गुरु माधवेन्द्रपुरी द्वारा पूर्वी भारत में अनुष्ठित भागवत धर्म के प्रचार को आगे बढ़ाया और उसे सुव्यवस्थित आधार प्रदान किया।

इनके द्वारा संस्कृत में विरचित 'श्रीकृष्णलीलामृत' काव्य-ग्रन्थ अप्राप्त है। किंतु रूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल-नीलमणि' में इनकी एक दूसरी कृति 'रूक्मिणी-स्वयंवर' के दो श्लोक उद्धृत किये हैं। उनमें से एक श्लोक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

धन्यानां हृदि भासतां गिरिवरप्रत्यग्रकुज्जौकसाँ,
सत्यानन्द रसं विकार विभवव्यावृत्तमन्तर्महः ।
अस्माकं किल वल्लवीरतिरसो वृन्दाटवीलालसौ,
गोपः कोऽपि महेन्द्रनील रूचिरश्चित्तैर्मुहुः क्रीड़तु ।।

'उन धन्य पुरुषों के हृदय में गिरिवर गोवर्धन के समीप नवीन कुंज में विचरणशील सत्य-आनन्द-रसस्वरूप कृष्ण सदा भासित रहें और विकार विरहित होकर वे उन ज्योतिर्मय के स्वरूप को ध्यान में लावें। गोपियों के प्रेमी और वृन्दावन विलासी गोपकिशोर जो महेन्द्र पर्वत के समान नीलवर्ण हैं, हमारे चित्त में सदा ही खेलें।

द० श्री०

उदयादित्य

उदयादित्य सजौर के राजा प्रतापादित्य के पुत्र थे। रामगोपाल दास कृत 'रसकल्पवल्ली' की एक पाण्डुलिपि में नृप उदयादित्य का उल्लेख एक निष्ठावान वैष्णव भक्त के रूप में हुआ है। (बी० एस० पी० पी० बी० ३७, पेज ११४)। ये गोविन्द दास कविराज के समसामयिक थे। गोविन्द दास कविराज ने एक प्रतापादित्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि ये सजौर के राजा थे और मानसिंह ने इन्हें पराजित किया था। उदयादित्य इन्हीं के पुत्र थे। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने प्रख्यात उपन्यास 'बहू ठाकुरानी' में इस घटना का भी आधार ग्रहण किया है। 'रस-कल्पवल्ली' में इनके एक खण्डित पद की निम्नलिखित दो पंक्तियां मिलती हैं—

एमन बन्धुरे मोर जे जन भंगाय।
एहेन अबलार वध लागिवे क ताय।।

सम्भवतः राधा की उक्ति है 'इस प्रकार के प्रिय सखा से जो प्रीति में भेद उत्पन्न कराता है, उसे अबला-बध का दोष लगता हैं' एक अन्य पाण्डुलिपि में इस भाव का एक और पद मिलता है—

श्याम बन्धुरे मोर जे जन भांगाय।
एहेन दुःखिनी राधार बध लागे ताय।।

कुलेर कामिनी करी सिरजिले विधि।
देखिते ना पाइ रूप श्याम गुणनिधि।।

बाहिर ना हइ आमि गुरजनार डरे।
दारुण ननदी वाणी कोउ नाना छले।।

ना मारिएं ननदिनी बाओ दुंटि आंखि।
ए भर दुपुरे येन श्याम रूप देखि।।

'रस कल्प वल्ली'
(वंग साहित्य परिचय, भा० २, पृ० १३२५ पर उद्धृत)

'जो (मेरे) प्रिय श्याम को मुझसे विलग करेगा, उसे दुःखिनी राधा के बध का दोष लगेगा। विधि ने यद्यपि मेरा सृजन कुलकामिनी के रूप में किया है, फिर भी मैं रूप-गुण-निधि श्याम के दर्शन से वंचिता हूँ। गुरु जन के भय के कारण मैं घर से बाहर नहीं निकल पाती, मेरी ननद विदग्घता पूर्ण शब्दों से मुझ पर व्यंग्य करती है। मेरी ननद मरे नहीं, अपितु अपने दोनों नेत्र खा जाय, और मुझे दोपहर (दिन) में ही श्याम के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो सके।'

नीचे उद्धृत पद में कृष्ण मिलन हेतु आतुर राधा के भावों का वर्णन है—

कि बोलिते जानो मुजि कि बोलिते पारी।
एक गुणहीन आर परवश नारी।।

तोमार लागिया मोर जगत गुरुजन।
सकल हइलै वैरी केह नाहि आपन।।

बाधेंर माझेर ये मन-हरिनीर वास।
तार माझे दीघल छाड़िते नारी श्वास।।

उदय आदित्य कहे ओइ भये उठे।
तोमार पिरीति खामि तिलक पाछे छुटे।।

(पदकल्परस सं० १२१)

'मैं क्या बोलती हूँ, और समझकर क्या बोल सकती हूँ। एक तो मैं गुणहीन हूँ दूसरे परवश नारी हूँ। हे श्याम, तुम्हारे कारण सभी गुरुजन मेरे शत्रु बन गये हैं, कोई अपना नहीं।

द० श्री०

उद्धवदास (प्रथम)

वैष्णव भक्तों में दो उद्धवदासों का उल्लेख मिलता है। दोनो में लगभग १३५ वर्षों का अन्तर

है। यहाँ दोनों का संक्षिप परिचय दिया जा रहा है।

उद्धवदास (प्रथम) का जन्म १५८३ ई० में हुआ था। ये गदाधर पण्डित के शिष्य थे और खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। बाद में ये वृन्दावन में स्थायी रुप से रहने लगे थे। राधाकृष्ण-लीला-वर्णन इनके पदों का मुख्य विषय है। इन्होंने ब्रजबुली व बंगला दोनों में ही पद रचे हैं। इनके दो छंद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं। इनमें प्रथम ब्रजबुली का है और दूसरा बंगला का।

(१)

चारि योजन वृन्दावन मण्डल।
तार मध्ये नाम चिन्तामणि रम्य स्थल॥

मध्य योगपीठ पर नगरा मथन।
प्रधान प्रकृति संगे रमणी रतन॥

सम्मुखे ललिता सखी अति रूप रासि॥
धरम उरे स्थाना सखी मन्द मृदु हासि।

रसेर कलिका सखी सेइ से उतरे।
अग्निकोणे हरिप्रिया फुलधनु सेरे॥

पूर्व भागे विशाखा संकेत सुजान।
अरसने वस्या सखि स्यामेर परान॥

कनक गौर पद्म से सेइ नइ रीते।
दिग-विदिग चन्द्रावली आदि करीते॥

कुन्जे-कुन्जे विहरइ परम सुन्दरी।
किशोर वयस वेश समान रमणी॥

गोकुल गोलक मुस्क (?) उद्धव रमणी।
—ब्रजबुली साहित्य का इतिहास, पृ० १०६।

'वृन्दावन मण्डल चार योजन विस्तृत है। उस के मध्य में चिन्तामणि नाम की रम्य स्थली है, फिर उसके मध्य में योग-पीठ पर कृष्ण विराजमान हैं। प्रधाना प्रकृति जो रमणी श्रेष्ठ है, उनके साथ है। सामने परमसुन्दर ललिता सखी विराजमान हैं। वह मन्द मन्द हँसती हैं। रस-कालका सखी उत्तर दिशा में है। अग्निकोण में हरिप्रिया ने कामदेव की शोभा बनायी है। पूर्वदिशा में परम संकेतज्ञा विशाखा हैं। ये सभी सखियाँ कृष्ण की प्राण प्रिया हैं। ये कंचनांगी राधा जी की नित्यनई विधि से सेवा करती हैं।

परम सुंदरी राधा चन्द्रावली आदि किशोर वय की समान वेशयुक्ता सखियों के साथ कुंज कुंज में गोकुल के नेत्रों के तारे कृष्ण के साथ विहार करती हैं। उद्धव दास ऐसा वर्णन करते हैं।'

दूसरे पद में यमुना तट पर कदम्ब वृक्ष के नीचे कृष्ण के मुरली-वादन का चित्र है—

बंगला पद (वंशीध्वनि-श्रवण)

(२)

यमुना समीप नीप तरु हेलन,
श्यामर मुरलिक रन्धे।
राधा चन्दा बलित मुखि,
गउये गीत परबन्धे॥

शुनि धुनि राइ रोखे (शेषे) भेल गर गर,
थर थर कम्पित अंग।
चन्दावलि वलि वंशी वजाउत,
विलमये ताकर संग॥

एत कहि माने मलिन मेल विधुमुख,
छर छर अरुन नयान।
कहतहि चपल चरित सङ्गे (संगे) पीरिति,
आजु होयल समाधान॥

राइक निरस वचन सुनि एक सखि,
मन माहा दुखचय पाई।
कानुक निपड़े कहिते सब विवरन,
उद्धव सङ्गे (संगे) चलि याइ।

—पदकल्पतरु पृ० ३००'

'यमुना के निकट कदम्ब तरु की टेक लिए श्री कृष्ण मुरली रन्ध्र से 'राधा चन्द्रावलित विमल मुखि' गीत-प्रबन्ध गाते हैं।' चन्द्रावली के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वे आगे कहते हैं—

चन्द्रस्तव मुख बिम्ब ।
चन्द्रा नखशषि कुन्तले चन्द्रो,
नव चन्द्रस्त ललारं ।
सत्य चन्द्रावली त्वमसि

—(विदग्ध माधव, चतुर्थ अंक)

द० श्री०

उद्धव दास (द्वितीय)

द्वितीय उद्धवदास का समय १७१८ ई० है । ये श्री निवासाचार्य के प्रपौत्र और राधा मोहन ठाकुर के शिष्य थे । ये गदाधर पण्डित की शाखा से सम्बद्ध थे । 'पद-कल्पतरु' के संकलन कर्त्ता वैष्णवदास इनके अन्तरंग मित्र थे । उद्धवदास का मूल नाम कृष्णकान्त मजुमदार था । ये जाति के वैद्य तथा मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत टेला वैद्यपुर के निवासी थे । इन्होंने अपने एक पद में अपने पूर्व वैष्णव सन्तों की वन्दना की है । वह पद इस प्रकार है—

श्री ठाकुर महाशय तार यत शाखा हय,
मुख्य कुछ करिवे प्रकाश ।
रामकृष्ण आचार्य ख्याति, नौ गंगानारायन चक्रवर्ती,
भक्तिमूर्ति गामिला निवास ।।

रूप रघुराय नाम गोकुल श्रीभगवान,
भक्ति नाम श्री उद्धव दास,
श्रील राधावल्लभ चाँदराय प्रणमिव,
चौधुरी श्री खेतरी निवास ।।

श्री राधा मोहन-पद यार (जार) धन-सम्पद
नाम गाय ए उद्धवदास ।

—(प०क०त०, पंचम खण्ड २३)

'श्री ठाकुर महाशय की जितनी शाखाएँ हैं उनमें कुछ शाखाओं को प्रकाशित करूँगा । विख्यात रामकृष्ण आचार्य, गंगानारायण चक्रवर्ती भक्ति के मूर्तिमान रूप हैं, गामिला उनका घर है, रूप, रघुराय, गोकुल, श्री भगवान, श्री उद्धवदास, श्री राधावल्लभ, चाँद राय चौधुरी जो खेतरी के निवासी हैं, उन्हें प्रणाम करूँगा । श्री राधा मोहन पद ही जिनकी एक मात्र सम्पदा है मैं उन उद्धवदास का यशगान करूँगा ।'

इस पद में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भक्त उद्धव दास का भी स्मरण किया है । इन उद्धवदास ने पूर्वराग, मान, आक्षेपानुराग, बाल-लीला, गोष्ठ, रासलीला, दानलीला, होरी, झूलन, माथुर, विरह, रूपवर्णन आदि नाना विषयक पदों की रचना विशुद्ध बंगला व ब्रजबुली दोनों में की हैं ।

द० श्री०

उद्धारन दत्त

उद्धारन दत्त नित्यानन्द शाखा के वैष्णव भक्त थे । ये शक संवत् १४०३ में विद्यमान थे । कृष्णलीला के अन्तर्गत इनकी गणना द्वादश गोपाल में की जाती है । (देखिये गौर-गणोद्देश्य-दीपिका, श्लोक १२९) । "चैतन्य-चरितामृत" में भी इनकी महिमा का गान मिलता है—

महाभागवत श्रेष्ट दत्त उद्धारन ।
सर्वभावे से सेवे नित्यानन्देर चरण ।।

(चैतन्य-चरितामृत, आदि०)

इनका जन्म १४०३ शक (१४८१ ई०) में हुगली नदी तटवर्ती सप्तग्राम के एक स्वर्णकार वंश में हुआ था । ४८ वर्ष की आयु में इन्होंने नीलाचल की यात्रा की, वहाँ पूजा-आराधना करते हुए छः वर्षों तक निवास करते रहे, तत्पश्चात् शेष सम्पूर्ण जीवन इन्होंने वृन्दावन में ही व्यतीत किया । आज भी वृन्दावन में इनकी समाधि विद्यमान है । कुछ लोगों की धारणा है कि उद्धारनपुर में ही इन्होंने शरीर त्यागा । अपने निवास स्थान उद्धारनपुर में इनके द्वारा प्रतिष्ठित निताई-गौर-मूर्ति आज भी वैष्णवों के लिए एक प्रमुख आकर्षण केन्द्र है ।

द० श्री०

कंसारिसेन

कंसारिसेन नित्यानन्द शाखा के वैष्णव भक्त थे, ये वैद्य कुल के थे । कृष्ण की ब्रज-लीला में ये रत्नावली की सखी माने जाते हैं । (देखिए—गौरगणोद्देश दीपिका-१९४ । २००२) ।

कनाई खुटिया

कनाई खुटिया चैतन्य देव के समकालीन एवं उनके अनुयायी वैष्णव भक्त थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में अन्य कोई सूचना नहीं मिलती। इनका एक पद-अप्रकाशित 'पद रत्नावली' में संकलित है। यह नीचे उद्धृत है—

आक्षेप अनुराग

मन चोरार बांशी बाजिउ धीरे-धीरे ।
आकुल करिल तोमार सुमधुर स्वरे । ध्रु० ।
आमारा कुलेर नारी हइ, गुरूजनार माझे हइ ।
ना नाजिउ खलेर बदने ।
आमारा वचन राखे, नीरव होइया थाके,
ना बधिउ अवलार प्राने ।।

जेबा छिलौ कुलाचार, से गेल यमुनार पार,
केवल तोमार एइ आँके ।
जे आछे निलज प्रान, शुनिया तोमार गान,
पथे जाइते थाके ना ना थाके ।।

तरले जनम तोर, सरल हृदय मोर ।
ठेकियाछ गोङारेर हाते ।
कानाइ खुटिया कय, मोर मने हैन लय ।
बांशी होल अबला बधिते ।।

(अप्रकाशित पद-रत्नावली—४३४,
पदरससार १३५ पृ०)

'मन हरण करने वाली वंशी धीरे-धीरे बजना। तुम्हारे मधुर स्वर ने हमें व्याकुल कर दिया है।

हम लोग गृहस्थ वधुएँ हैं, गुरुजनों के बीच रहती हैं—दुष्टों की मुख की ओर ताकती तक नहीं। हमारी बात को मानकर चुप रहना उचित है। इन निरीह अबलाओं का प्राण न लो। कुल के आचारों को मानने वाली यमुना के तट पर गईं—यह तो केवल तुम्हारे पुकार के कारण हुआ। जो लज्जाहीन हैं वे तुम्हारे गीत सुनकर पथ पर चलती रहती हैं, कहीं टिकती नहीं। तुम्हारा जीवन चंचल है और मेरा हृदय सरल है। अब हमने गौरहरि के हाथों में शरण लिया है। कानाइ खुटिया कहता है—मुझे ऐसा लगता है कन्हाई की बंशी अबलाओं के प्राण लेने के लिए ही बनी है।'

द० श्री०

कवि वल्लभ

कवि बल्लभ के पिता का नाम राजवल्लभ तथा माता का वैष्णवी था। ये करतोया नदीं के तटपर महास्थान के पाप-आरोड़ा ग्राम के रहने वाले थे। इनके गुरु उद्धवदास थे। नरहरि-सरकार के शिष्य ब्राह्मण मुकुटराय कवि बल्लभ के मित्र थे। उन्हीं के अनुरोध से इन्होंने 'रसकदम्ब' ग्रन्थ की रचना की। 'रसकदम्ब' काव्य वैष्णव-सिद्धान्त ग्रन्थ है और बंगीय वैष्णव साहित्य में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

स० गु०

कवि शेखर राय

कवि शेखर राय १६वीं शताब्दी के श्रेष्ठ ब्रजबुलि कवियों में से थे। इनका जन्म सिंह वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम चतुर्भुज और माता का नाम हीरावती था। इनका मूल नाम देवकीनन्दन था, परंतु लोग कवि शेखर राय नाम से ही उन्हें जानते थे।

सिंहवंशे जन्म नाम देवकीनन्दन ।
श्रीकविशेखर राय बले सर्व्वजन ।।
बाप चतुर्भुज नाम मा हीरावती ।
कृष्ण जार प्राणधन कुल शील जाती ।।

'सिंह वंश में जन्म हुआ, नाम देवकी नन्दन था, सब लोग उन्हें श्री कवि शेखर राय नाम से पुकारते हैं। पिता का नाम चतुर्भुज और माता का नाम हीरावती था। कृष्ण ही उनके प्राण, धन, कुल, शील और जाति थे।' इनका निवास स्थान वर्द्धमान जिले का पड़ान ग्राम था। ये श्रीखण्ड के रघुनन्दन गोस्वामी के शिष्य थे।

कवि शेखर का पदावली-संग्रह 'दण्डात्मिका-लीला' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्रिया-प्रियतम का अष्ट-काल-लीला-विलास तीस दण्डों में वर्णित है।

स० गु०

कानुदास (कानुराम दास),

कानुदास नित्यानन्द प्रभु के शिष्य और सदाशिव कविराज के पौत्र थे। ये परम वैष्णव एवं पदकर्ता पुरुषोत्तम दास के पुत्र थे। 'चैतन्य-चरितामृत' में इनके विषय में कहा गया है--

श्री सदाशिव कविराज बड़ महाशय।
श्री पुरुषोत्तमदास ताहार तनय॥

तार पुत्र महाशय श्री कानु ठाकुर।
यार देहे बहे कृष्ण प्रेमामृत पूर॥

'श्री सदाशिव कविराज बड़े सज्जन हैं। श्री पुरुषोत्तम दास उनके पुत्र हैं। उनके पुत्र श्रीकानु ठाकुर महाशय हैं जिनके हृदय में अजस्र कृष्णप्रेमामृतधारा बहती है।'

नीचे दिए गए पद में कानुदास ने चैतन्य के सन्यास-ग्रहण और गृह-त्याग के कुछ काल पश्चात् नित्यानन्द द्वारा प्राप्त शची देवी के साक्षात्कार का वर्णन किया है—

नदिया नगर गेंला नित्यानन्द राय।
दण्डवत हइया पड़े शची मातार पाय॥
तारे कोले करि शची कांद ये करुणो।
नयनेर जल भीजे अरुण नयने॥
फुकारि फुकारि कान्दे कातर हियाय।
गौरांगेर कथा कहि प्रबोधये ताय॥
नित्यानन्द बले माता थिर कर मन।
कुशले अछये सुखे तोमार नन्दन॥
तोमारे देखितें मोर पाठाइया दिल।
तोर पद नेगे कत प्रणत करिल॥
कानुदास कहे माता कहि तोमार ठाइं।
तोमार प्रेमे बाधा आछे गौरांग गोसाइं॥

(प० क० त० २२६४)

'नित्यानन्द राय नदिया नगर को गये और वहाँ उन्होंने शचीमाता के चरणों पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया। शचीमाता उन्हें गोद में लेकर करुण स्वर से रोने लगीं। अश्रुओं से उनके अरुण नेत्र भीग गये। उनके फूट-फूट कर रोने से हृदय कातर हो गया। गौरांग की बातें कहकर नित्यानन्द ने उन्हें सात्वना देते हुए कहा—'माँ अपना मन ठीक रखो, तुम्हारा पुत्र सकुशल है। तुम्हें देखने के लिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है, तुम्हारे चरणों में उन्होंने अनन्त प्रणाम निवेदित किया है।' कानुदास कहते हैं—'माँ तुमसे सत्य कहता हूँ गौरांग गोसाइं तुम्हारे प्रेम से आबद्ध हैं।'

इन्होंने ब्रजबुली में भी पद रखे हैं। इनके दो पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

मन्दिर तेजि कानन माहा पइठलुं,
कानु मिलन प्रति आशे।
अभरण वसन अंगे सब साजल,
ताम्बुल कर्पुर वासे॥

सजनी सो मुझे विपरित भेल।
कानु रहल दुरे मन्मथ आसि कुरे,
सो नाहि दरशन देल॥

फुल शरे जर-जर सकल कलेवर,
कातरे महि गड़ि याइ।
कोकिल बोले डोले घन जीवन,
उठि वसि रजनी गे जाइ॥

शीतल पवन गरल समान भेल,
हिमाचल वायु हुताश।
लोचन नीर थिर नाहि बांघये,
कहये कानुराम दास॥

(प० क० त० ३३४)

राधा की उक्ति है—'कृष्ण मिलन की प्रत्याशा से मैं गृहवास त्याग कर कानन में चली आई। (मिलन

उल्लास से) मैंने अपने अंग-प्रत्यंग को आभूषण और आवरण से सुसज्जित कर लिया है। मुख को ताम्बूल-कर्पूर से सुवासित कर लिया है। हे सखि! आज मेरे लिए ये ही विप्रियकारक हो गए हैं। कान्ह मुझसे दूर हैं, मन्मथ स्फुरित हो रहा है, फिर भी वे मुझे अपने दर्शन से वंचित किए हुए हैं। पुष्पशर से मेरा कलेवर (शरीर) जर्जर हो रहा हैं और मैं धराशायिनी हो रही हूँ। कोकिल कलरव से मेरा जीवन जरा-मरण के बीच डोल रहा है, इस प्रकार की अवस्था में मेरी रातें बीत रही हैं। शीतल पवन मेरे लिए गरल समान है और हिमगिरि वायु हुताशन जैसी है। मेरे नेत्र निरन्तर निर्झरित हैं। कानुरामदास भी राधा के साथ ही रुदनवत् हैं।'

(२)

पवनक परशहिं विचलित पटलव,
शवदहि सजल नयान।
सचकिते सघने नयने घनि निरखये,
जानल आयल कान॥

माधव समुझल तूया चतुराई।
तमालक कोरे आपन तनु छापकि,
अब केछे रहल छपाई।
प्रवहि विलम्बे फिरये सब कानने,
पून अनुमानये चीते।
भूलल पन्थ अन्त नाहि पावल,
ना बुझिए नागर रीते॥

नूपुर रनित कलित नव माधुरि,
शुनइते श्रबन उल्लास।
आगुसर राइ कानने अवलोकइ,
कहतहि कानुराम दास॥

द० श्री०

कानु फकीर

कानुफकीर का मूल नाम अलीरजा था, किन्तु ये कानुफकीर के नाम से विख्यात थे। इन्होंने अनुमानतः १८वीं शती में वांशखालि थानान्तर्गत उशाईन ग्राम में जन्म ग्रहण किया था। इनकी दो स्त्रियाँ और तीन पुत्र थे। ये भक्त और कवि थे। साधना-मार्ग में इन्होंने वैष्णव, तंत्र, योग और सूफी भाव का आश्चर्यजनक समन्वय किया था। इनके गुरु दरवेश करीमुद्दीन थे। इनका एक पद नीचे उद्धृत है:

ज्ञान सागर, सिराज कुलुष, ध्यान माला,
तुमि नारायन हरि तुमी हर ब्रह्म गौरी,
देवेर देवता तूया मूल।
अष्ट लोके परिहार, रातुल चरने जार,
शरन मागे सब देवकुल॥

तुमि गुरु, मातु, पिता, तिलोक परमदाता,
तारिनि, करुनासिन्धुमय।
जगत रुद्रानी तनु, शिवलीला राधाकानु,
सत्व-रज तम-शक्तिमय॥

होन आलीराजा वले, श्यामकाली पद तले,
शक्ति लीला शंकर घरनी।

(बंगला साहित्येर इतिहास—मध्ययुगीन
बंगला साहित्य के मुसलमान कवि, पृ० १९३)।

'तुम ज्ञान के सागर हो, सिराज पापमूर्ति है, ध्यान ही माला है। नारायण या हरि तुम ही हो। तुम शिवजी, ब्रह्मा तथा पार्वती हो। तुम ही सब देवों के देव हो। तुम सब के मूल हो। आठ लोकों को छोड़कर तुम्हारे चरणों की शरण देवतागण लेते हैं। तुम ही गुरु, पिता, माता हो, त्रिलोक के श्रेष्ठ दाता तुम ही हो। संसार सागर से पार कराने वाले तुम परम करुणा के सागर हो, रुद्र की रुद्राणी जगद्रूपिणी है, यही उनका शरीर हैं। शिव की लीला राधा और श्रीकृष्ण जी हैं। यह हीन आलि (अलीरजा) तुम्हें राजा कहता है। तुम श्याम वर्ण काली के पैर के नीचे विराजमान हो। शंकर की पत्नी शक्ति की यह लीलाहै।'

द० श्री०

कानु पण्डित

कानु पंडित श्रीखण्ड निवासी रघुनन्दन के पुत्र थे। खेतुरी उत्सव में इनके उपस्थित होने का उल्लेख सांप्रदायिक साहित्य में मिलता है। इनका लिखा कोई वैष्णवपद अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

द० श्री०

काशीश्वर ब्रह्मचारी

काशीश्वर ब्रह्मचारी ईश्वरपुरी के शिष्य थे। ईश्वरपुरी के निधन (देहरक्षा) के पश्चात् ये पुरी चले गये और वहाँ महाप्रभु चैतन्य की सेवा में कालयापन करने लगे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कोई जानकारी नहीं मिलती है।

द० श्री०

किशोरदास (प्रथम)

किशोरदाश के जीवन वृत्त सम्बन्धी विवरण अज्ञात है। 'प्रेम विलास' ग्रन्थ में इनको श्यामानन्द का शिष्य कहा गया है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके दो पदों (अप्रकाशित) में से एक पद 'कृष्णापदामृत-सिन्धु' में संकलित हैं, दूसरा 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ में। महाप्रभु की विरह दशा विषयक इनका एक छन्द इस प्रकार है—

ढल ढल दुटि आंखि प्रसन्न-वरन।
देखिया फाटिछे हिया न जाय धरन॥
अकलङ्क शशी जिनि श्रीमुख शोभन।
मलिन देखिए आजु सिलेर कारन॥
पूर्व्व भाव मने पड़ि छाड़ये विश्वास।
तृषित चातकी जनु पानिक पियास॥

'उनके दो विशाल नेत्र हैं। शरीर का वर्ण उज्ज्वल है। उन्हें देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। अपने को सम्भालना कठिन है। कलंकविहीन चन्द्र से भी बढ़कर उनके मुख की शोभा है। आज किस कारण से श्रीमुख मलिन है। आज उन्हें पूर्वभाव का स्मरण आ रहा है। बार-बार निःश्वास छोड़ रहे हैं। मानो प्यासे चातक को पानी की प्यास लगी है।'

इनका समय १५८३ ई० के आसपास माना जाता है।

द० श्री०

किशोरदास (द्वितीय)

जीवन सम्बन्धी कोई सामग्री उपलब्ध न होने के कारण किशोरदास के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता। अनुमान के आधार पर इनका समय १७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है। इनका एक हस्तलिखित ग्रन्थ 'दासग्रंथावली' के नाम से मिलता है जिसमें ब्रजबुलि के पद हैं। इन्होंने 'उद्धवसंवाद' ग्रंथ की भी रचना की है। एकपद उदाहरण के लिए नीचे दिया जाता है जिसमें राधा की अभिसार यात्रा का चित्रण किया गया है।

जय जय जय बिजइ कुंजे।
कुंजरवरगामिनी
प्रेम तरंगे भरल अंगे
संगे बरज रमणी॥

गगन मण्डल अति निरमल
शरद सुखद जामिनी।
नील वसन हाटकवरण
झलकत घन दामिनी॥

द्रिमिकि द्रिमिकि खावपाखाज–
ठाम ठमकि चलनी।
अनु अनु अनु झुनु झुनु झुनु
बाजत नूपुक किंकिणी॥

जंत्र तंत्र तरन मान
घनि घनि नवजौवनी।
ताना नाना सुललित वीणा॥
बायत सुघड़ रमणी॥

मिलत श्याम कुंजधाम
अनुपाम सुख शोहिनी।
दास किशोर सुखेर नाहि ओर
हेरि श्याममन मोहिनी।

स० गु०

किशोरीदास

किशोरीदास गोविन्ददास चक्रवर्ती के तृतीय पुत्र थे। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ये किशोरदास से भिन्न व्यक्ति थे। गोविन्ददास चक्रवर्ती और किशोरीदास दोनों ही श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे (कर्णानन्द २,३) प्रोफेसर सुकुमार सेन (हि० ब्र० लि०) ने इनका एक पद उद्धृत किया है। वह यहाँ दिया जा रहा है—

कि हेरिलाम कालिन्दर घाटे।
से रूप कोटि मदन ना आंटे।
जलद वरन सेह युवा।
युवतीर ज ति कुल डुवा॥
हिया जर जर अनुरागे।
ता विने झगड़ सब लागे॥
दिया जाति कुलेर विदाय।
शरण लइलाम तछु पाय॥
किशोरी दासेर चिते जागे।
से रूप देखिया चल आगे।

(हि० ब्र० लि०, पृ० २०१)

द० श्री०

'आज यमुना के घाट पर क्या देखा! उस रूप की शोभा कोटि मदन से भी बढ़कर है। मेघ के समान रंग है उस किशोर का। उसके प्रति अनुराग से हृदय व्याकुल हो गया। उसके बिना सब तुच्छ लगता है। जाति कुल का बन्धन तोड़कर मैंने तुम्हारे चरणों में शरण लिया। किशोरीदास का चित्त उस रूप के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा, अतः आगे चलना चाहिए।'

द० श्री०

कुबेर पण्डित

कुबेर पण्डित अद्वैताचार्य के पिता थे। धर्म-साधना एवं भक्ति इनके वंश का संस्कार बन चुका था। ये भरद्वाज वंशज अग्निहोत्री याज्ञिक ब्राह्मण थे। इनका विवाह नवग्राम के नाड़ियालवंशज महानन्द ब्राह्मण की कन्या नामा देवी के साथ हुआ था। इनके छः पुत्र और एक कन्या थी। अद्वैत इनके सबसे छोटे पुत्र थे। ये राजा दिव्यसिंह के सभा-पण्डित थे।

द० श्री०

कुमुदानन्द चक्रवर्ती

कुमुदानन्द नामक दो वैष्णव भक्तों का उल्लेख मिलता है—प्रथम भक्त हैं कुमुदानन्द चक्रवर्ती और दूसरे हैं कुमुदानन्द ठाकुर। यहाँ दोनों का संक्षिप्त परिचय अलग-अलग दिया जा रहा है।

कुमुदानन्द चक्रवर्ती वृन्दावन के निवासी थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्री 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना की थी।

कुमुदानन्द चक्रवर्ती, प्रेमी कृष्णदास॥
आर जत वृन्दावनवासी भक्तगन।
शेष लीला शुनिते सवार होत मन॥

द० श्री०

कुमुदानन्द ठाकुर

कुमुदानन्द ठाकुर श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

कुमुदानन्द ठाकुरे प्रभु दयाकेल।
प्रभु कृपा पाइया तिहों कृतार्थ होल॥

इनके विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके नाम से एक पद 'संकीर्तनानन्द' में संकलित है, जो इस प्रकार है—

गोविन्द लीलामृत।
काचा गरम त नवनि जड़ित॥
मनोहर तनु खानि।
हासिआ हासिआ अमिया भाखिया,
वले आध आध बानि॥

पाखानि नाचा नुपुर वाजाआ,
वसिआ माएर कोले।
सोना ए जड़ित मुकुता लम्बित,
शोभिछे नासिक तले॥

गलाए जड़ित रु रु नख रुचि,
थाथनि मुकुटा झूरि।
कुमुदानन्द कहै एमन वालकेर,
निछनि हइया मरि।

(श्री श्री संकीर्तनामृत पृष्ठ २८८पद ७०)

'गोविन्द की लीला अमृत के समान है। उनका शरीर नवनीत से बना है। अस्फुट स्वर से उनकी जो वाणी निकलती है वह सुनने में अमृतसी लगती है। मां की गोद में बैठकर जब वे पैर हिलाते हैं तब नूपुर की ध्वनि उठती है। नाक में मोती और वक्ष पर जड़ाऊ अलंकार शोभित हैं। गले में मोती का हार है। कुमुदानन्द कहते हैं ऐसे बालक का दर्शन करते हुए ही मैं प्राण त्याग करूँ।'

द० श्री०

कृष्णकान्त

इनका मूल नाम कृष्णकान्त मजूमदार था। इनका जन्म अम्ब्रष्ट कुल में हुआ था। इन्होंने सुललित ब्रजबुली में राधा-कृष्ण-भक्ति विषयक पदों की रचना की है, जिसका प्रतिपाद्य प्रियप्रियतम की रासलीला है। 'पद-कल्पतरु' में इनके २९ पद संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कोई अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है। इनके दो पद यहां दिए जा रहे हैं—

कनक धराधर भदहर देह।
मदन पराभव सुवरन गेह॥

हेरे देख अपरुप गोर किशोर।
कैछन भाव नह ए किछु ओरु॥
घन पुलकावलि दिहि जलधार।
उरध नेहारी रचइ फुत्कार॥

निरुपम निरजन रास-विलास।
अचल सुचक्षर गद गद भाव॥

किए वर माधुरी वांशी निशान।
हइ वलि सघने केत निज काम॥

सदन तेजि तब चलत एकान्त।
मिलन अब जानि किए कृष्ण कान्त।

(श्रीगौर पदतरंगिनी, पृ० २३१, पद ४४)

द० श्री०

कृष्णदास कविराज

'भक्त दिग्दर्शिनी तालिका' के अनुसार कृष्णदास कविराज का जन्म शक १४१८ (सन् १४९६ ई०) में कण्टक नगर या कटवा से दो कोस दूर नइहाटी के सन्निकट झामपुर ग्राम (बर्द्धमान जिलान्तर्गत) में वैद्य या अम्वष्ट कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम जगदीश और माता का नाम सुनन्दा था। श्यामदास इनके कनिष्ट भ्राता थे। शैशव में ही ये मातृ-पितृ विहीन हो गए थे। कृष्णदास कविराज नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे। नित्यानन्द के आदेश से ही इन्होंने वृन्दावन की यात्रा की थी एवं सुप्रसिद्ध षट् गोस्वामियों के संरक्षण-निर्देशन में भक्ति-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना में संलग्न हुए थे। यह ग्रन्थ रागानुगा भक्ति का मान्य ग्रन्थ है और वंगीय वैष्णव समाज में इसकी ख्याति द्वितीय भागवत् के रूप में है। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य 'चैतन्य महाप्रभु की शेष लीला' है। कृष्णदास कविराज ने स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन इन्होंने पण्डित हरिदास, शिवानन्द चक्रवर्ती और वृन्दावनवासी अनेक भक्तों की प्रेरणा से किया था। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है—

गोविन्द-लीलामृत काव्य (संस्कृत), कृष्णकर्णामृत, चैतन्य-चरितामृत, प्रेमरत्नावली, वैष्णवाष्टक, रागमाला इत्यादि।

'पद कल्पतरु' की टीका में इनके १५४५, १६३२, १६५१, ३०४१, ३० ५५ संख्यक पाँच पद संकलित हैं। नित्यानंद गोस्वामो, सनातन, रूप, रघुनाथ दास, रघुनाथ भट्ट और जीव गोस्वामी को इन्होंने अपना दीक्षागुरु कहा है—'एइ छय गुरु शिक्षा गुरु जे आमार।' इनकी मृत्यु शक सं० १५०४ में हुई।

इन्हें संस्कृत भाषाका गम्भीर ज्ञान था और इनका अध्ययन व्यापक था। इसका परिचय 'गोविन्द-लीलामृत' (संस्कृत) महाकाव्य के निम्नांकित छन्दों से मिल जाता है—

श्रीचैतन्य पदारविन्दमधुश्री रूप सेवा फले।
दिष्टे श्री रघुनाथदासकृतिना श्री जीवसद्गते ॥

काव्यं श्री रघुनाथ भट्टेर गोविन्दलीलामृते।
सर्गोह्यं रजनो विलास वलितः पूर्वंत्रयो विशंकः ॥
जय जय नित्यानन्द,
जय कृपा मय।
जहां होइते पाइन,
रूप सनातनाश्रय ॥

जाहां होइते पाइनू,
श्रीरूप आश्रय।
सनातन कृपाय,
पाइन भक्ति सिद्धान्त।
श्रीरूप कृपाय पाइन रसभाव प्रान्त ॥

नीचे के छन्द में राधाकृष्ण की अष्ट प्रहरी नित्य लीला का वर्णन है—

कुञ्जात् गोष्ठं निशान्ते प्रविशति
कुरुते दोहवान्नाशनाद्यं,
प्रातः सायं लीलां विहरति
सखानि संगेन् चारयन गाः।
मध्यान्हे चाथ नक्तं विलसति
विपिने राधया द्वाप शहं,
गोष्ठं याति प्रदोषे रसपति सुददा
यः स कृष्णो पातुनः ॥

'वे कृष्ण हमारी रक्षा करें हैं, जो निशां के समय कुञ्ज से गोष्ट जाते हैं, दुग्ध-दोहन व भोजन करते हैं। प्रभात और सन्ध्या समय जो सखाओं के संग गोष्ठ में गायें चराते और लीला करते हैं, मध्याह्न और रात्रि में जो कुञ्जवन में राधिका के संग विलास करते हैं, अपराह्न में जो गायों के साथ गोशाला लौट आते हैं और जो सन्ध्या समय सुहृदयों को आनन्दित करते हैं।'

चैतन्य-चरितामृत तीन खण्डों में विभक्त काव्य-ग्रन्थ हैं, परन्तु खण्डों का शीर्षक 'लीला' है। प्रत्येक परिच्छेद 'लीला' परिच्छेदों में विभक्त है। डॉ० सुकुमार सेन का निष्कर्ष है कि चैतन्य चरितामृत बांगला साहित्य का प्रथम पठनीय एवं अतीव गेय ग्रन्थ है। इसके तीन पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

आजु कुञ्जे राधा माधव झुलरि।
सखिगन मेल करति गान,
घन घन घन मुरली मान,
नासार बेसर लोलरि ॥
झूलना घमने चमके गाइ।
विहांसि माधव घउइ ताइ,
आनन्दे अवर परश पाइ,
चारि घरइ कोलरि।
प्रिय सहचरी टामइ भोरि,
अलसे अवश रहल गोरि ॥
घुमाअल घनी रसे विभोरि,
दुःखी दीन कृष्णदास बोलरि ॥

(वैष्णव-पद-लहरी, पृ० ५७५)

(२)

पंच गव्य पन्चामृत शत घट जले।
गौरांगेर अभिशेक कुतूहले ॥

रतन-वेदरि पर वसि गोराचांद।
अपरुपरूप से रमनी मन-कांप ॥

शान्तिपुर नाथ आर नित्यानन्द राय।
हेरि गौरांग मुख प्रेमे भासि जाय ॥

मुकुन्द मुरारि आदि सुमधुर गाय।
हरि बोल अरे दास नाचिया वेशाय ॥

कहे कृष्णदास गोरा चांदेर अभिमेल।
नादियार नर नारी देखे अविषेक ॥

(वै० प० ५७४)

'पंचगव्य और पंचामृत से भरे सैकड़ों घड़े हैं—वे श्री गौरांग के अभिषेक के लिए एकत्रित किये गये हैं। रत्नमय आसन पर गौरचन्द्र बैठे हैं उनका अनुपम सौन्दर्य देखकर रमणीगण चकित हो उठीं। शान्तिपुर के स्वामी (श्रीगौरांग) और नित्यानन्द को देखकर सभी प्रेममग्न हो जाते हैं। इस अवसर पर मुकुन्दमुरारी सुमधुर गीत गाते हैं, हरि बोल कहकर सबलोग नाचते हैं। कृष्णदास कहते हैं कि गौरांग के इस अभिषेक को नवद्वीप के नर-नारी देखते हैं।'

(३)

श्री चैतन्य चरितामृत,
अपने नाचिते जवे प्रभूर मन होइल।
सात सम्प्रदाय तवे एकत्र करिल॥

उदण्ड-नृत्य प्रभु छाड़िया हुंकार।
चक्र भ्रमि भ्रमे आलात आकार॥

नृत्ये जाहां वाहीं प्रभूर पड़े पदतल।
ससागर शैल मही करे टलमल॥

शुप्त स्वेद पुलकाश्रु कम्प वेवर्न।
नाना भावे विवश गर्व्व हर्ष दैन्य॥

(पद कल्पतरु) १५४५

'जब प्रभु को स्वयं नाचने की इच्छा हुई तब सात सम्प्रदायों को एकत्रित किया गया। तब प्रभु हुंकार ध्वनि करके उद्दण्ड-नृत्य करने लगे। चक्र के घूमने के सदृश अथवा 'अलात-चक्र' के समान नृत्य होने लगा। प्रभु के पैर कहाँ पड़ते हैं, बाँहें कहाँ फैलती हैं, कहा नहीं जाता। उनके पैरों के घात से सागर सहित पर्वत हिल उठते हैं। आवेश से स्वेद, कम्प, पुलकाश्रु, वैवर्ण्य सभी प्रकट होते हैं। उस समय नाना भाव, विवशता, गर्व, दैन्य आदि सभी लक्षित होते हैं।'

द० श्री०

कृष्णदास दुःखी (श्यामानन्दपुरी)

कृष्णदास दुखी उत्कलवासी थे। इनका जन्म दण्डकेश्वर के अन्तर्गत धारोन्दा बहादुरपुर ग्राम में सद्गोपकुल में शकसं.१४५७ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीकृष्ण मण्डल और माता का नाम दूरिका था। हृदय-चैतन्य-ठाकुर इनके दीक्षा गुरु थे। गुरु के आदेश से इन्होंने वृन्दावन धाम की यात्रा की। यहाँ जीवगोस्वामी का आश्रय ग्रहण कर इन्होंने श्रीनिवास एवं नरोत्तम के साहचर्य में भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन किया। इनके विषय में कोई अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है। 'गौरपद-तरंगिनी' में इनका एक पद संकलित है। वह नीचे उद्धृत किया जा रहा है। ये पहले वृन्दावन दास और बाद में 'श्यामानन्द' नाम से विख्यात हुए।

भुवन-आनन्द-कन्द बलराम नित्यानन्द,
अवतीर्न होल कलि काले।
घुचिल सकल दुख देखिया ओ चांद मुख,
भासे लोक आनन्द हिल्लोले॥

जय जय नित्यानन्द राय,
कनक चम्पक पांति अंगुले चांदेर पांति,
रूपे जितल कोटि काम मनु।
उ मुख मण्डल देखि पूर्ण चन्द्र किसे लेखि,
दीघल नयन भाङ्० धनु।
आजानुलम्बित भुज तथा थल पंकज,
कटि क्षीन करि अरि जनु॥

चरन कमल तले भकत भ्रमर वुले,
आधवानी अमिजा प्रकाश।
इहुं कलियुगे जीवे उद्धार होइल सवे,
कहे दीन दुःखी कृष्णदास।

(गोर-पद-तरंगिनी-पद—८, पृ० २७३)

'मुवन के आनन्द के मूल बलराम के स्वरूप नित्यानन्द प्रभु कलिकाल में अवतीर्ण हुए। उनके मुखचन्द्र के दर्शन से सब दुःख दूर हो गये, सभी आनन्द-सागर में मग्न हो गये। जय जय नित्यानन्द राय। सोने के रंग के चम्पक पुष्प के समान उनकी अंगुलियाँ हैं जिस में चाँद की पंक्तियाँ शोभित हैं—रूप ने कोटि काम को भी जीत लिया

है। नयन दीर्घ हैं, भौहें धनुष के सदृश, भुजाएं आजानुलम्बित तथा कटि क्षीण है। उनके चरण कमलों में भक्तगण भौंरे के समान लुब्ध रहते हैं। इस कलियुग में जीवों का उद्धार करने के लिये उनका आविर्भाव हुआ है—ऐसा ही दीन कृष्णदास कहता है।'

द० श्री०

कृष्णदास (सुवर्ण चित्रधारी)

सुवर्ण चित्रधारी कृष्णदास नीलाचल के निवासी और जगन्नाथ मन्दिर के एक विशिष्ट पुजारी थे। इनके विषय में और कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। इनके द्वारा रचित किसी पद का भी संधान नहीं मिलता।

द० श्री०

केदारनाथ भक्तिविनोद ठाकुर

अधिसूर के अंतर्गत पुरुषोत्तमदत्त के वंश में पन्द्रहवें स्थान पर श्री नित्यानन्द प्रभुपाद के कृपापात्र हुए—कृष्णानन्द। इनकी नवीं पीढ़ी में आनन्दचन्द्र नाम के धार्मिक, अनासक्त एवं आस्थावान् भक्त हुए। इन्हीं के सुपुत्र थे श्रीकेदारनाथ ठाकुर।

श्री केदारनाथ की मनोवृत्ति प्रारम्भ से ही धर्म की ओर थी। इन्होंने छः वर्ष की आयु में ही रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थों का मनोयोग से अध्ययन किया। तान्त्रिक उपासना के रहस्य को जानने के लिये ये एक ब्रह्मचारी जी के यहाँ भी आते-जाते रहते थे। जब आप नौ वर्ष के हुए तो श्री जगद्भट्टाचार्य से ज्योतिष का अध्ययन करने लगे। जिस समय ये ग्यारह वर्ष के थे, इनके पिता श्री आनन्दचन्द्र जी दिवगंत हो गए। इनका प्रारम्भिक जीवन बड़ा अभावपूर्ण था। श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर इनके परममित्र बान्धव थे। उनसे आपने संस्कृत एवं पाश्चात्य दर्शनों का विशेष अध्ययन किया। आपने वाहनापाड़ा के श्री विपिन विहारी गोस्वामी से चैतन्य मत में दीक्षा ग्रहण की। वि० सं० १९१५ में इन्होंने नीलाचल की पैदल यात्रा की। इनके पितामह एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उनसे मिलने ये छुटिग्राम भी गये। उनके घर में श्रीराधामाधव एवं श्रीजगन्नाथजी के विग्रह पूजित थे। उन्होंने इन्हें परमवैष्णव होने का आशीर्वाद दिया। वहाँ से ये कटक, भद्रक, मेदनीपुर आदि स्थानों पर श्री हरिकथा का प्रचार करते रहे और अन्यान्य अपधर्मों का निरसन करते हुए गम्भीर सिद्धान्त-प्रतिपादक मौलिक लेख लिखे। अनेक मौलिक तथ्यपूर्ण ग्रन्थों का इन्होंने प्रकाशनभी कराया। इनके ग्रंथों की एक उल्लेख्य विशेषता थी—सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजनादि अनुबन्ध चतुष्टय को स्पष्ट रूपसे स्थापित करना। गेय साहित्य में भी इनका अच्छा प्रदेय रहा। इनके प्रत्येक पद में मौलिकता का सरस निदर्शन है। अरुणोदय-कीर्त्तन, नगर-कीर्त्तन, कार्पण्य-पंजिका आदि आपकी आस्वाद्य रचनाएँ हैं।

अपनी आत्मकथा में इन्होंने लिखा है कि एकबार जब ये तारकेश्वर में रह रहे थे तो श्रीप्रभु का इन्हें स्वप्नादेश हुआ—'तुम वृन्दावन जा रहे हो, किन्तु तुम्हारे घर के पास नवद्वीप धाम में जो समस्त कार्यविशेष है, उन्हें कौन करेगा ?' इस स्वप्नादेश से पूर्व इनका मथुरा मण्डल में जाने का पक्का इरादा था, किन्तु फिर ये नवद्वीप धाम में ही आकर श्री महाप्रभु के जन्मस्थान का अन्वेषण करते रहे और इसी बीच इन्होंने वर्तमान गंगा के उत्तर पूर्व में प्रोज्ज्वल प्रकाश को देखा तथा 'भक्तिरत्नाकर' आदि ग्रन्थों के निर्देश के अनुसार प्राचीन 'मायापुर' की स्थिति का निर्णय किया।

इनके द्वारा जो ग्रन्थ प्रणीत हुए उनके नाम हैं—१. श्रीकृष्ण-संहिता, २. कल्याण-कल्पतरु, ३. श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत टीका सहित श्रीमद्भगवत-गीता, ४. श्रीचैतन्यशिक्षामृत, ५. श्रीमद्बलदेवविद्या-भूषण कृत भाष्य सहित श्रीमद्भगवतगीता एवं विष्णुसहस्रनाम ७. श्रीकृष्ण-विजय, ८. चैतन्योपनिषद् ९. आम्नायसूत्र, १०. शरणागति, ११. जैवधर्म तत्व-

सूत्र १२. श्रीगौरांगस्मरणमंगलस्तोत्र, १३. हरिनाम-चिंतामणि, १४. दत्तवंशमाला, १५. श्रीभागवतार्क-मरीचिमाला एवं १६. दत्तकौस्तुभम् ।

आत्मनिवेदनात्मक प्रकृष्ट प्रार्थना एवं विज्ञप्ति-युक्त इनका एक मधुर पद उदाहरणस्वरूप नीचे दिया जाता है—

कबे आहा गौरांग बलिया ।
भोजन शयने, देहेर यतन,
छाड़िब विरक्त हइञा ॥

नवद्वीपधामे, नगरे नगरे,
अभिमान परिहरि ।
धाम वासी घरे, मधुकरी
लंबे खाइब उदर भरि ॥

नदी तटे गिया, अंजलि,
अंजलि पिव प्रभुपदजल ।
तरुतले पड़ि, आलस्य
त्यजिव पाइव शरीरे बल ॥

काकुति करिया, गौर गदाधर
श्रीराधा-माधव नाम ।
कांदिया कांदिया डाकि,
उच्च रवे, भ्रमिव सकल धाम ॥

वैष्णव देखिया, पड़िव चरणे,
हृदयेर बन्धु जानि ।
वैष्णव ठाकुर प्रभुर कीर्त्तन,
बेखाईवे दास मानि ॥

'मैं कब हे गौरांग ! इस पद का उच्चारण करूँगा । भोजन तथा शयन के समय इसे बोलता रहूँगा । विरक्त होकर शरीर का ध्यान भी छोड़ दूँगा । नवद्वीप नगर के घर घर से, अहंकार छोड़ कर मधुकरी द्वारा भिक्षा प्राप्त करूँगा और भरपेट भोजन करूँगा । नदीं के किनारे जाकर करपुट में पानी लेकर और उसे प्रभु का चरणामृत समझकर पीऊँगा, पेड़ के नीचे सो जाऊँगा । आलस्य छोड़ दूँगा, इसीसे शरीर में बल मिलेगा । गौर, गदाधर, श्री राधामाधव के नाम लूँगा और रोदन भी करूँगा । उनके नाम ऊँचे स्वर से गाते हुए सब धामों का दर्शन करूँगा । किसी वैष्णव को देखकर अभिमान छोड़कर उसके चरणों की धूलि लूँगा और उसे अपना प्रियजन समझूँगा । वैष्णवों और प्रभु की सेवा तथा कीर्तन से दास के समान जीवन व्यतीत करूँगा ।

न० चं० बं०

गंगादास पण्डित

गंगादास पण्डित चैतन्य महाप्रभु (निमाई) के शिक्षा गुरु थे । नवद्वीप में बिद्यानगर नामक स्थान में इनकी चतुष्पाटी (पाठशाला) थी । निमाई (चैतन्य) चतुष्पाटी में व्याकरण का अध्ययन करते थे । प्रसिद्ध वैष्णव भक्त गदाधर पण्डित और मुरारिगुप्त इस पाठशाला में श्री चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी थे । महाप्रभु के सन्यास लेने पर गंगादास पण्डित उनके अनुयायी भक्त बन गये थे । नदिया की भक्त-मण्डली के साथ महाप्रभु के दर्शनार्थं ये नीलाचल जाया करते थे । पुरी में रथयात्रा के अवसर पर जगन्नाथ के रथ के आगे ये संकीर्तन-मण्डली के मुख्य गायक के रूप में पहचाने जाते थे। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है ।

द० श्रो०

गंगानारायण चक्रवर्ती

गंगानारायण चक्रवर्ती मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत गंगा तटवर्ती गमला (गम्पिला) ग्राम के निवासी थे । अपने समकालीन वैष्णव समाज में ये एक श्रेष्ठ भक्त तथा पण्डित के रूप में ख्यात थे । ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे । नरोत्तम ठाकुर के ही संरक्षण में इन्होंने भक्ति-शास्त्र बिषयक ग्रन्थों का अध्ययन किया था । गंगा नारायण के परिवार में इनकी पत्नी नारायनी देवी एवं विधवा कन्या विष्णुप्रिया थीं । इन्होंने अपनी पत्नी एवं कन्या को भी दीक्षित किया । नरोत्तम ठाकुर की देह-रक्षा के पश्चात् ये सपरिवार

वृन्दावन चले आये और भजन साधन में निरन्तर लीन रहने लगे। वृन्दावन के वैष्णव भक्तजनों में इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। ये सुविख्यात विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे।

द० श्री०

गरुड़ पण्डित

गरुड़ पण्डित महाप्रभु की वैष्णव भक्ति शाखा के भक्त थे। ये नवद्वीपवासी थे। चैतन्य चरितामृत में इनके विषय में निम्नोक्ति मिलती है—

गरुड़ पण्डित लय श्रीनाम मंगल।
नाम बोले विषयारे ना करिल बल ॥

इनके विषय में इसके अतिरिक्त अन्य कोई सूचना उपलब्ध नही है।

द० श्री०

गिरधरदास (प्रथम)

गिरधरदास श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे। 'रसकल्पवल्ली' में इनका उल्लेख आया है। इनके पद 'क्षणदा-गीत-मंगल' अप्रकाशित 'पदरत्नावली' और 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। उनमें से एक पद नीचे दिया जा रहा है—

रासलीला (पूरबी)

मधुर वृन्दा बिपिने माधव,
बिहरे माधवि संगिया।
दुहुँक गुन दुंह गउये सुललित,
चलत नतंक भंगिया।

श्रवन युग पारि, देइ अनोअन,
नउल किसलय तोड़िया।
दुहुंक भुजदुहुं कान्ध हेलन,
चुम्बइ मुखशशि मोड़िया ॥

तेजिमरन्द धाइ बेउल,
मुखर मधुकर पांतिया।
मत्तकोकिल, मंगल गाउत,
नाच शिखि कुल भातिया ॥

सकल सखिगन कुसुम बरिखल,
करये आनन्दे मोरिया।

दास गिरिधर, कबहुं हेरब,
कांति श्यामेर गोरिया ॥

'मधुर वृन्दावन में माधव राधा के साथ विहार कर रहे हैं। दोनों के गुण दोनों गाते है और नृत्य की भंगिमा में चलते हैं। दोनों के कान नवीन किसलय से शोभित हैं। दोनों के कंधे पर दोनों की भुजाएँ हैं और दोनों मुड़कर एक दूसरे के मुख चन्द्र का चुम्बन करते हैं। मधु को छोड़कर मधुकर उनकी ओर जाते हैं और उन्हें घेर लेते हैं। कोकिल मतवाले होकर गीत गाते है और मोर आनन्द से नाचते हैं। सब सखी गण उन पर फूलों की वर्षा करती हैं। गिरधर दास आशा करते हैं कि मैं कब श्याम और श्रीराधा के इस आनन्दघन रूप का दर्शन करूँगा ?

द० श्री०

गिरधरदास (द्वितीय)

गिरघरदास के जन्म और मृत्यु की तिथि अज्ञात है। इनका रचना काल शक संवत् १६५८ के आसपास माना जाता है। ये नरहरि सरकार के शिष्य थे। इनके कुछ पद 'रसकल्पवल्ली' (रामगोपालदास), "क्षणदा गीत-चिन्तामणि' और 'संकीर्तन' नामक ग्रंथों में संकलित हैं। इनके एक संस्कृत ग्रंथ का भी पता चलता है जिसका नाम है—'परकीया-रस-स्थापन-सिद्धान्त-संग्रहम्'। १६५८ शक में इन्होंने बंगला में 'गीत-गोविन्द' का अनुवाद किया था। इसका एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

ए मते वसन्ते हरि करये विहार ॥
हे सखि सुन्दरि ! पवने लवंग,
कुह-कुह करि वकुल फूले मधु,
गति दूरे जार।

युवति जने हरि,
लता मृदु विचलित,
कोकिल कल कूजित,
पिये मधुकर गन,
तार प्रति मनोरथ,
नाचेन कर परकार।
शीतल गन्ध वहार॥

कुञ्जे भ्रमरीगन गाय,
ताहे लम्बित तरु डाल।
मन्मथे हय काल॥

द० श्री०

गिरिधारीदास बाबा

गिरिधारीदास बाबा का जन्म वि० सं० १९५१ में पूर्ववंग के यशोहर (जेसोर) जिले में हुआ था। इनका घरका नाम गिरीन्द्रनाथ था। बाल्यावस्था में ये काफी अस्वस्थ रहते थे। ज्वरातिसार भोगते-भोगते एक बार मृतप्राय हो गए, किन्तु प्रभु-कृपा से आपको स्वास्थ्य लाभ हुआ। लिखने-पढ़ने में रुचि न होने पर भी रामायण, महाभारत आदि पौराणिक आख्यायिकाओं को सुनते-सुनते आपमें प्रभु-प्रीति जाग्रत हो उठी। ये नृत्यगीत में बड़े निपुण थे। तुलसी-सेवा में इनकी विशेष निष्ठा थी।

श्री विपिनविहारी चट्टोपाध्याय जिस समय नारायल में मुंसिफ थे, तब गिरीन्द्रनाथ भी वहीं एक विद्यालय की छठी कक्षा के छात्र थे। विपिनबाबू का यह नियम था कि वे प्रातः एवं सन्ध्या-काल में उच्चकण्ठ से हरिकीर्त्तन किया करते थे। एक दिन जब वे नित्यानन्द भाव में विभोर होकर संकीर्त्तन कर रहे थे, तब उन्होंने गिरीन्द्रनाथ की स्वभाव सुलभ भक्ति देखकर इन्हें एक प्रिय एवं निष्ठावान् भक्त के रूप में रूपान्तरित कर दिया। दो वर्ष के बाद विपिनबाबू की बदली बांकुड़ा को हो गई। गिरीन्द्रनाथ उनका वियोग सहन न कर सके और घर से मात्र एक पात्र लेकर निकल पड़े। विपिनबाबू ने इन्हें पुत्र की तरह रखा और अपने आचरण तथा उपदेश से वैराग्ययुक्त भगवत् सेवा की शिक्षा देने लगे। चार वर्ष बाद विपिनबाबू ने इन्हें अष्टादशाक्षर मन्त्र की दीक्षा दे दी। इसके बाद गिरीन्द्रनाथ भक्तिभाव में पूर्णतया निमग्न हो गए। जब ये नगर के बाहर घूमने निकलते तो चार कोस पर्यन्त ऊर्ध्व बाहु मुद्रा में हरिबोल ध्वनि करते-करते उन्मत्त हो उठते थे। इनकी अयाचक वृत्ति थी। जो भी मिल जाता उसे स्वीकार कर लेते थे। कभी-कभी पर्याप्त भिक्षा न मिलने पर भूखे रह जाते। इन्हें संग्रहणी का रोग था, इसलिए भूख सहना मुश्किल हो जाता था। एक बार ऐसी परिस्थिति में इन्होंने बाजार से लेकर कुछ खा लिया। गुरुदेव ने इनका बहिष्कार कर दिया, किन्तु इनकी साधना और कठिन चर्या को देखकर उन्होंने इन्हें पुनः अपने पास बुला लिया। कुछ समय पश्चात् श्री विपिनबाबू का देहान्त हो गया। इस घटना से मर्माहत हो ये नवद्वीप के गंगाघाटों पर पड़े रहते थे। सारा समय हरिनाम कीर्त्तन में गुजरता। महाप्रभु के मन्दिर में जाकर आरती-दर्शन कर ये विभोर हो जाते थे। अन्त में श्रीहरिदास ठाकुर के समाधि मन्दिर के महान्त श्रीगोविन्ददास से इन्होंने भेख ले लिया। तब से ये गिरधारीदास नाम से विख्यात हो गये। इन्होंने 'श्रीहरिबोल-कुटीर' की प्रतिष्ठा की। ये नित्य चैतन्य-भागवत का पाठ करते थे। कुटीर के निर्माण के बाद इन्होंने दो चार व्यक्तियों को दीक्षा तथा एकान्त भजननिष्ठ श्रीमद्विशम्भरदास तथा श्रीहरिदास को वेशाश्रय दिया। अन्त में जगन्नाथपुरी में श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि मन्दिर में कुछ दिन वास कर ये नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

न० च० बं०

गिरिधारी दास

बाबा गिरधारी दास ताड़ास के जमींदार राजर्षि बनमाली रायबहादुर के बड़े भाई थे। इनका पूर्व नाम अन्नदा प्रसाद था। बचपन से ही इनकी वृत्ति

आध्यात्मिक थी। पिता के देहान्त के बाद भक्तिमती माता ने इन्हें गौरकिशोर शिरोमणि महाराज के चरणों में संर्मपित कर दिया। शिरोमणि महाराज के देहावसान के बाद सन् १८९० ई० में इन्होंने गोविन्द कुण्ड, गोवर्धन के श्रीकृष्णदास बाबा से वेश ग्रहण किया और राधाकुण्ड में भजन करने गगे।

इनके तीव्र वैराग्य, विनयपूर्ण व्यवहार और भजनावेश पर मुग्ध हो व्रजवासी वैष्णव इन्हें 'महात्मा' कहकर पुकारा करते थे। कृष्णदास नामक एक वैष्णव महानुभाव से इनका प्रेम हो गया। उनके साथ इष्टगोष्ठी कर ये परम तृप्ति लाभ करते थे।

एकबार कृष्णदास ने किसी कारण से बंगदेश जाने का निश्चय किया। एक दिनपूर्व उन्होंने इनके निकट अपना निश्चय व्यक्त किया। ये गंभीर हो गये। अन्य विषयों पर बातें होती रहीं, पर भीतर ज्वालामुखी सुलगता रहा। जब बर्दाश्त नहीं हो सका तो भूमि पर लोट कर फूट-फूटकर रोने लगे। कृष्णदास ने विस्मित हो रोनेका कारण पूछा तो बड़ी कठिनाई से इतना ही बता सके—"मैं बड़ा अपराधी हूँ, विषयी हूँ, मैंने एक निवृत्तिनिरत तथा भक्ति निष्ठ वैष्णव के भजन में विघ्न उपस्थित किया। हे, पतिपतावन प्रभो! रक्षा करो।"

इनकी कातरोक्ति सुनकर कृष्णदासजी ने पूछा—"इतना कातर क्यों हो रहे हैं?"

गिरिधारी दास ने कहा—"यह हतभाग्य ही आपके भजन में विघ्न का कारण है। आपके हृदय में बंगदेश जाने की वासना मेरे ही संगदोष से जगी है।"

कृष्णदास ने रोते हुए कहा—"आपका संग छुड़वा कर राधारानी मुझे ही दंडित कर रही है।"

"यदि बंगदेश जाना ही है तो मेरी एक प्रार्थना है, आप कल न जाकर तीन दिन बाद जायँ।" विनयपूर्वक गिरधारी दास ने कहा।

कृष्णदास मान गये। गिरधारीदास ने तीन दिन अन्न जल ग्रहण नहीं किया। केवल अपनी कुटी में राधारानी से प्रार्थना करते रहे—"हे राधारानी! कृपा करो। कृष्णदास तुम्हारा धाम छोड़कर न जायँ।"

इधर कृष्णदास अपनी भजन कुटीं में गिरधारी दासके नाम गुणादिका स्मरण कर विह्वल होते रहे। तीसरे दिन रात्रि में उन्होंने तन्द्रा के आवेश में देखा कि उनके दीक्षा गुरु उनसे कह रहे हैं—"गिरधारी दास तीन दिन से उपवास करके राधारानी से प्रार्थना कर रहे है।"

तंद्रा भंग होने पर कृष्णदास गिरिधारी दास की कुटी की तरफ भागे गये। कुछ दूर जाते ही उनका रुदन सुनायी पड़ी। वे तुलसी के थाले के पास भूमि में लुंठित हो कह रहे थे—"हे वृन्दादेवी! कृपा करो। कृष्णदास तुम्हारा धाम छोड़कर न जायँ।"

यह सुनकर कृष्णदास अधीर हो उठे। वे गिरधारीदास के चरणों में गिरकर रोने लगे। महात्मा ने उन्हें हृदय से लगा लिया। कृष्णदास जी फिर बंगदेश नहीं गये। गिरधारीदास के साथ आनन्दपूर्वक इष्टगोष्ठी कर भजनरसास्वादन करने लगे।

महात्मा प्रतिदिन संध्या-आरती के समयश्रीराधा विनोद के दर्शन को जाते थे। राजर्षि वनमाली जी भी कुण्डतट पर अपनी 'राजबाड़ी' में रहकर ठाकुर 'श्रीराधाविनोद' की सेवा और भजन किया करते थे। पौष मास की कृष्णा त्रयोदशी, सन् १९०१ ई० को किसी वैष्णव ने उनसे आकर कहा—"आज

महात्माजी मधुकरी के लिए नहीं निकले। कुटी का दरवाजा बन्द है। पुकारने से भी उत्तर नहीं दे रहे हैं।" राजर्षि चिंतित हो उठे। अपने मैनेजर श्री कामिनी कुमार घोष और अन्य वैष्णवों को साथ ले वे उनकी कुटी पर पहुंचे। दरवाजा तुड़वा कर भीतर प्रवेश किया। देखा महात्मा दाहिनी करवट से दाहिना हाथ सिरके नीचे रखे आनन्द-निद्रा में सो रहे हैं। भींगा हुआ कोपीन और बहिर्वास एक ओर पड़ा है। सूखा कौपीन और बहिर्वास धारण किये हैं। भीषण शीतकाल होते हुए भी शरीर पर और कोई वस्त्र नहीं है। मुखपर अति उल्लासमय हँसी और फेन है।

उसी अवस्था में इन्हें बाहर लाया गया। उच्च स्वर में नाम कोर्तन किया गया। देह में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं हुआ, पर शरीर में कठोरता नहीं थी। बाह्य अवस्था आने की प्रतीक्षा करने पर भी जब चेतनतान हीं हुई तो दाह करने का निश्चय किया गया। किसी ने सोचा, कदाचित् चिता पर अग्नि के ताप से चेतना आ जाय। पर निराशा ही हाथ आयी। महात्मा राधारानी की नित्य सेवा हेतु गोलोक के लिए प्रयाण कर चुके थे।

स० गु०

गीतगोविन्द (गोविन्दगीत)

गीतगोविन्द श्रीनिवासाचार्य के कनिष्ठ पुत्र थे। गौरांगप्रिया इनकी माता थीं। ये तीन भाई थे— वृन्दावन वल्लभ, माधव तथा राधाकृष्ण। इनका एक पद 'पदकल्पतरु' में संकलित है जिससे इनका आचार्य श्रीनिवास का पुत्र होना प्रमाणित होता है।

'मनेर आनन्दे श्रीनिवास सुत, गीतगोविन्द चित्त मोर से' प्राप्त सूचना के आधार पर इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के मध्य भाग में हुआ था और ये सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक जीवित रहे। 'पदामृत-समुद्र' में राधानाथ ठाकुर ने इनकी संवर्द्धना में लिखा है—

'श्रीगोविन्दगीतं वन्दे विदितं भूमि सर्वतः'

तथा

श्रीमदाचार्य प्रभोः श्रीगोविन्दगीतसंज्ञकः व भक्तपुत्रांश्च श्रीगोविन्दगीतमित्यादिना पुनर्वन्दते'।

इन्होंने नित्यानन्द प्रभु से सम्भवतः ११ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी ख्याति श्रेष्ठ भक्त, पण्डित एवं पदकर्त्ता रूप में है। इनकी रचनाओं का शृंखलावद्ध संकलन नहीं मिलता। इनके पद यत्र-तत्र बिखरे हैं। अप्रकाशित 'पदरत्नावली' में इनके कुछ भक्ति-विषयक पद संकलित हैं। 'क्षणदा-गीतमंगल' में भी इनके दो पद (पद संख्या १४५, १९६) राधा-कृष्ण लोला-विषयक हैं। 'गौर पद-तरंगिनी' में इनके दो पद संकलित हैं, जो नित्यानन्द विषयक हैं। इन्होंने 'वीर-रत्नावली' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें नित्यानन्द प्रभु के पुत्र 'वीरभद्र' की महिमा वर्णित है। इनका दो पद नीचे उद्धृत है, जिसमें नित्यानन्द महाप्रभु की प्रशस्ति वर्णित है—

(१)

नाचे नित्यानन्द भुवने आनन्दे,
वृन्दावन गुन शुनिया रे।
वाहुयुग तूलि बोले हरि हरि,
चलन मन्थर गतिया रे॥

किवा से माधुरी वचन चातुरी,
गदाधर मुख हेरिया रे।
माधव गोविन्द श्रीवास मुकुन्द,
गाउत (गावत) ओ रस भाखिया रे॥

'संसार को आनंद देने वाले नित्यानन्द महाप्रभु नाच रहे हैं। वृन्दावन के गुणगान से उनका मन पुलकित है। अतः दो भुजाएँ ऊपर उठाकर मुंह से 'हरि' 'हरि' कहते हुए मन्दगति से चल रहे हैं।

उनकी वचनचातुरी का क्या वर्णन करूँ। गदाधर के श्रीमुख दर्शन से वे विह्वल हैं। माधव, गोविन्द, श्रीवास, मुकुन्द आदि भक्तगण उनके साथ गाते हैं। और उस रस से वे भी आप्लावित हैं।'

(२)

नाचत नित्यानन्द चांद रे ॥
प्रेम गद्‌गद् चले आध पद,
धरि गदाधर हात रे ।
ओ चांद वदने हास घने घने,
अरुन लोचन-भंगिया रे ॥

सु कुसुम हार हृदि दोलत,
सुघर सहचर रंगिया रे ।
रातुल चरणे मन्जीर बाजत,
रंगेर नाहिक ओर रे ।
मनेर आनन्दे श्रीनिवास सुत,
गीत गोविन्द मोर रे ।
(पद कल्पतरु पद २२१२)

'नित्यानन्दचन्द्र नांच रहे हैं। प्रेम से विह्वल होकर वे आधे पग चलते हैं। उन्होंने गदाधर का हाथ पकड़ लिया है। उनके चन्द्रवदन में मृदुहास है, आखें ईषत् लाल हैं। फूलों का हार हृदय पर शोभित है—चरण कमल में नूपुर बज रहा है। रंग की सीमा नहीं। श्री निवास के पुत्र ने हृदय के आनन्द से गोविन्द के इस गीत की रचना की।'

द० श्री०

गुनराज खाँ (मालाधर वसु)

गुनराज खाँ कुलीन ग्राम के निवासी और गौड़ेश्वर रुक्नुद्दीनशाह (शासनकाल—१४५९-७४ ई०) के समय में विद्यमान थे। कुलीन ग्राम बंगाल के पश्चिमी भाग में स्थित वैष्णव तीर्थ के रूप में ख्यात रहा है। यहीं पर इनकी भेंट श्री माधवेन्द्रपुरी से हुई थी।

इनका मूल नाम मालाधर वसु था। गुनराज खाँ इनकी उपाधि थी। यह उपाधि इन्हें गौड़ेश्वर रुक्नुद्दीन शाह से प्राप्त हुई थी। मालाधर वसु ने इसका उल्लेख एक स्थल पर किया है—'गौड़ेश्वर दिला नाम गुनराज खाँ'। प्राचीन वैष्णव-भक्तों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनके पिता का नाम भगीरथ और माता का नाम इन्दुमती था। ये वर्द्धमान के निकटवर्ती कुलीन ग्राम के निवासी थे। सत्यराज खान इनके पुत्र और रामानन्द वसु उनके पौत्र थे। प्राप्त सूचना के अनुसार चैतन्यदेव के अवतरण के पूर्व ही इनका तिरोधान हो गया था। गुनराज खाँ रचित 'श्रीकृष्ण-विजय', बंगला साहित्य का प्रथम भात्र-मूलक आख्यानक-काव्य-ग्रन्थ है। यह पांचाली काव्य-शैली में रचित है। इस ग्रन्थ की उत्तरवर्ती परम्परा में जयानन्द कृत 'चैतन्य-मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य-चरितामृत' नामक काव्य ग्रन्थ आते हैं। चैतन्यदेव 'श्रीकृष्ण-विजय' को श्रद्धा से देखते और इसका नित्य पाठ करते थे। 'श्रीकृष्ण-विजय' के अन्तर्गत अत्यन्त संक्षेप में इन्होंने राम कथा का भी वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ की रचना-प्रेरणा का उल्लेख करते हुए इन्होंने लिखा है—

भागवत अर्थ जत पयारे बांधिया ।
लोक विस्तारिते जाइ पांचाली रचिया ॥

भागवत शुनिते अनेक अर्थ चाहि ।
ते कारने भागवत गीत छन्दे गाहि ॥

कलिकाले पाप चित्त हव सब नर ।
पांचालीर रसे लोक हइव विस्तर ॥

गाहिते गाहिते लोक पाइव निस्तार ।
शुनिया निष्पाप इव सकल संसार ॥

इस ग्रन्थ की रचना इन्होंने ७ वर्षों (१४७३ ई० ८० ई०) में की थी। 'श्रीकृष्ण-विजय' पांचाली-शैली में एक गीतिकाव्य है। इसकी कथा भागवत-कथा

पर अवलम्बित है, कहीं-कहीं हरिवंश-पुराण का भी अवलम्ब ग्रहण किया गया है। इस ग्रन्थ से एक अंश यहाँ उद्धृत है—

जत जलस्थल जन्तु सुन्दर रूप धरे।
वैष्णव शरीर जेन सेविया हरि रे॥

वरिवार धारा पाइया गिरि स्निग्ध इहइल।
हरि सेवि लोक सब चैतन्य पाइल॥

दुइ दिके वन वाडि पय अइसा दिल।
वेद ना जानिया येन द्विज नष्ट हइल॥

शबदे येन विजुलि आशि जाय।
निर्धन पुरुष येन कामिनी ना पाय॥

मेघेर चड़ेते जेन मयूर नृत्यु करे।
वैष्णव जन तेन विष्णु अनुचरे॥

'जल स्थलवासी वर्षा-जल से जिस प्रकार लावण्य प्राप्त कर लेते हैं, उसी प्रकार हरि-सेवा से भक्त-जन शोभा पाते हैं। वर्षा का जल पड़ने से जिस प्रकार पर्वत आघातित नहीं होते, उसी प्रकार हरिनिष्ठचित्त विपत्ति नहीं पाते। तृणाच्छन्न और अपरि पारिपथ निचिह्न होने पर तथा वेद ब्राह्मणों द्वारा पठित न होने पर लुप्त हो जाते हैं, काल ग्रस्त हो जाते हैं। जैसे बिजुली कड़क कर लुप्त हो जाता है वैसे ही निर्धन व्यक्ति के पास कामिनी अनुरक्त नहीं रह पाती। घिरे बादल को देखकर जिस प्रकार मयूरी नृत्य करती है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन में तपित, खिन्न भक्त विष्णु के दर्शन से तृप्त होते हैं।'

इस ग्रन्थ में कृष्ण की दानलीला और नौका-विलास सम्बन्धी कथायें भी वर्णित है।

द० श्री०

गुप्तदास

गुप्तदास कवि अभिराम ठाकुर के शिष्य थे। 'पदकल्पतरु' एवं 'क्षणदा-गीत मंगल' में इनके नाम से एक-एक पद उपलब्ध हैं। सामान्य धारणा यह है कि गुप्तदास मुरारि गुप्त का वैष्णव नाम था, परन्तु वस्तुतः गुप्तदास रामदास या अभिराम दास के शिष्य थे। अभिराम दास नित्यानन्द शाखा के वैष्णव और उनके अनुयायी थे। अतः मुरारिगुप्त और गुप्तदास का एक होना सम्भव नहीं लगता। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कोई और तथ्य उपलब्ध नहीं है। 'पद-कल्पतरु' और 'क्षणदा-गीत-मंगल' में संकलित इनके दोनों पदों को नीचे दिया जा रहा है—

(१)

प्रेमे मत्त महाबली चले दिग दिग दलि,
धरनी धरिते नारे मार।
अंगभंगी सुन्दर, गति अति मन्थर,
कि छार कुंजर मातो जाय॥

प्रेमे पुलकित तनु कनक कदम्ब जनु।
प्रेम धारा बहे दुहि आँखें।

'प्रेम से मतवाले होकर वे दिशाओं को मथते हुए चलते हैं। उनका भार पृथ्वी सहन नहीं कर सकती। उनकी अंग-भंगी सुन्दर है। गति मन्द है। गज की गति उससे पराजित हो जाती है। उनका शरीर प्रेम से पुलकित है। सोने के कदम्ब वृक्ष के सदृश उनका जीवन है। उनकी दोनों आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे है।'

(२)

नाचे गाये गोरा गुने,
पुरुष पेड़ाछे मने,
भाइया भाइया बलि डाके॥

अहंकार भाल माटो, केशरीर रव छुटे,
शुनि बुक फाटि मरे पाषण्डीर जना।
लकुड़ नारिक साते, अरुन कन्जक हाते,
हलधर महावीर बला॥

केवल पतित बन्धु रत्नेर रतन सिन्धु,
अन्धेर लोचन परकाश।

पतितेर अवशेषे रहिलेक गुप्तदासे,
पुनः यहने केल तल्लास ।
(श्री गौरपद तरंगिनो पद-५४)

(२)

ठाकुर श्री अभिराम, केवल प्रेमेर धाम,
अवनि बिहरे निजानन्दे ।
गौराङ्ग चाँदरे रङ्गी, निताइ चाँदरे संगी,
अखिल जीवेर मन बान्धे ॥

श्री राधिकार अग्रज, श्री कृष्णेर सखा वर्यं,
पुरुषे श्रीदाम चार नाम ।
एवे सेइ भावे मत्त नाहि जाने दिवा रात्र,
तेजि नाम ठाकुर अभिराम ॥

गौरांगे प्रेम रसे, सदा प्रेमानन्द भासे,
दिवा निशि किछुइ ना जाने ।
सकल भकत संगे, विहरे परम रंगे,
गान नृत्य करे हर्ष मने ॥

दीम हीन अकिन्चने, तारे कइल प्रेम दाने,
पुराइल मने अभिलाष ।
पतितेर अवशेषे, पड़ि रइल गुप्तदासे,
केमे प्रभु ना कइल तलास ।
(हि०न्र०बु० वीएसपी एम० एम० ९८२)

'अभिराम ठाकुर प्रेम के आलय है । वे आत्मानंद में मग्न हो संसार का भ्रमण कर रहे हैं । गौरांग ने चन्द्रमा का रूप धारण कर लिया है । नित्यानन्द उस चन्द्रमा के सहचर हैं । उनके रूप ने सभी जीवों का मनमोहित कर लिया है । श्री राधा के अग्रज, श्रीकृष्ण के सखागण श्रीदाम आदि चार सखाओं के साथ जिस प्रकार की लीला होती थी आज भी श्री गौरांग की लीला उसी प्रकार हो रही है । उसी भाव से वे मतवाले हैं । दिन-रात का ध्यान नहीं है । अविराम नाम का ही कीर्तन हो रहा है । श्री गौरांग के प्रेमरस आनन्द सागर में सब मग्न हैं । वे दिन या रात भूल गये हैं । भक्तों के साथ सभी असीम आनन्द से विचरते हैं । गान तथा नृत्य सबके साथ चल रहे हैं । इस दीनहीन तथा अकिंचन को अपने प्रेम का दान देकर उन्होंने मेरी अभिलाषा पूरी की है ।'

गोकुलदास

वैष्णव-भक्त और पदकर्ता के रूप में एकाधिक गोकुलदास का उल्लेख मिलता है । 'चैतन्य चरितामृत' में नित्यानन्द शाखा के अन्तर्गत गोकुलदास नामक वैष्णव-भक्त का उल्लेख आया है । इस प्रकार की धारणा भी प्रचलित है कि 'पद-कल्पतरु' के संग्रहकर्ता वैष्णवदास का ही नाम गोकुलदास या गोकुलानन्द था । ये जाति के वैद्य थे और मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत 'वैद्यपुर' के निवासी थे । ये राधामोहन ठाकुर के समसामयिक, परन्तु वय में कनिष्ठ थे ।

राजा वीर हाथीश्वर के समसामयिक विष्णुपुर निवासी एक वैष्णव भक्त गोकुलदास महन्त का भी उल्लेख मिलता है । ये ठाकुर महाशय के शिष्य थे । ठाकुर महाशय के एक दूसरे वैष्णव-भक्त कीर्तनिया वैष्णव दास का भी उल्लेख मिलता है । ये उनके कीर्तन दल के प्रधान दोहारा और संगीतज्ञ थे । ये याजिग्राम के निवासी थे ।

इनके अतिरिक्त एक और गोकुलदास का परिचय प्राचीन काव्य संग्रहों से मिलता है जो आचार्य के शिष्य थे और कवीन्द्र नाम से विख्यात थे । ये शेरगढ़ के निवासी थे ।

'भक्ति रत्नाकर' में इनका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

पंचकूटे सेरगढ़ वासी श्री गोकुल
पूर्ववास कढ़इ कवीन्द्र भक्ता तुल्य ॥
(भक्ति रत्नाकर पृष्ठ ६१९)

इनके दो छन्द नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

जय जय गोविन्द मोहन ।
युगल किशोर जय रसिक रमन ॥

जय राधा वल्लभ मुरली अधर ।
जय ब्रज बिनोद प्रेम सुधाकर ।।

माधव गिरिधर, गोपी-चिर-हारी ।
ललित त्रिभंग नागर बनोवारी (वनवारी) ।।
रति सुख सागर, ब्रज सुविलासी ।
रूप रसायन गोकुल वासी ।।
ब्रजपति बाल लाल मद नायक ।
परम प्रबोन प्रेम सुख दायक ।।

श्यामेर बाने कि पियारी शोहै ।
श्री गोकुलदास कि मन मोहे ।।
(श्री गौरपद-तरंगिनी, पृ० ३४० पद २२)

'अनन्त सुन्दरता से मनोहर गोविन्द की जय हो। युगल किशोर रसिक रमण की विजयहो। राधा वल्लभ मुरलीधारी व्रजवासी जनों के आनन्द, प्रेमामृत के सागर माधव गिरिधारी गोपियों के वस्त्र हरनेवाले की जय हो।'

(२)

निकुन्ज निवासे, महारस रसे रसिक शेखर ये ।
सो राधा वल्लभ, जगत दुर्लभ,

आमार वल्लभ से ।।
जार बांका आंखि,
गोपी हिया बेखि हाएन तिखिन शर ।
सो गोपी केश्वर, विश्वेर ईश्वर,
सेइ मोर प्रानेश्वर ।।

गोपी कुच कुन्ते, यो कर पल्लवे,
होयत परम शोभा ।।

कटि भव बन्ध, तछू
पद द्वन्द्व मुनिर मानस लोभा ।।
यों पहुँ गोकुले गोपीर दूकूले
चोराउल हासि हासि ।
ए 'गोकुलदासे' तार पद
आशे ध्याये दिवस निशि ।।
(श्री गौ० त० , पृ० २४० पद २२)

'निकुंज निवासी महारस के रसिक श्रेष्ठ रसराज ही राधा के परमप्रिय हैं। जगत दुर्लभ वे मेरे प्राणप्रिय हैं। उनकी आँखें वंकिम हैं। गोपियों के हृदय को बिंधने वाली उनकी तिरछी आँखें ही तीक्ष्ण शर हैं। वे ही गोपियों के स्वामी, विश्व के ईश्वर और मेरे प्राणेश्वर हैं।'

द० श्री०

गोकुलानन्द

गोकुलानन्द के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये १६५३ ई० में विद्यमान एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे। 'दास-पाण्डुलिपि' में गोकुलानन्द रचित ९ वैष्णव पद (सभी बंग भाषा के) संकलित हैं। इनमें से दो पद उदाहरणस्वरूप यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

संग परिकर गौरवर सुन्दर,
या ओत सुर धनु तीर ।
ओ रूप नेहारि चित उताओल,
सरम भरम गेओ हइन अधोर ।।

सजनी गोरा रूपेर कतइ माधुरी,
सती कुलवती हाम भरछन वेयाकुल,
निमिखेते अइल बउरी ।
अतनु कुसुम सरे, अन्तर जर जर,
दुइ गेओ लोक परिवाद ।।

गौर रूप साचरे, जीवन (यौवन) अथिर,
इह मझु मने साध ।
यत गुरु गरवित सब हामते जय,
ना करब कुलेर विचार ।।

गोकुलानन्द हिया, रूपेर सायर माझे,
डूबल ना जाने सांतार ।।
(गौर-पद-तरंगिनी, पृ० १००)

(२)

(अद्वैत—चैतन्य संकीर्तन-नृत्य)

नाचे रे अद्वैत घुरि घुरि नाचे रे ।
गोर निताइ आगें सखि नाचे पाछे पाछे ।।

हसके हमके नाचे कटि दोलइया।
क्षणे क्षणे नाचे पहुं गाले हात दिया॥

क्षने ताले ताले बूड़ा अंगुल नाचाय।
क्षणे करताल दिया तालधरे पाय॥

उदन्ड करये नृत्य अर्द्धबाहु करि।
क्षने नाचे दुइ करे कटि अटि धरि॥

कांकालि करिया बांका क्षने नाचे बुड़ा।
वड़ि बसि खुलि माथे क्षने बाधे चूड़ा॥

त्रिभंग भंगिमा करि क्षने के दांड़ाय।
कखने भूमि कम्प करि लाभेन झम्पे जाय॥

कभु चित भाले बुड़ा बांका हइया पड़े।
कभु नव भंगि करि हाते पद धरे॥

नृत्य देखि गोर निताइ हासिते लागिल।
गोकुलानन्देर मने आनन्द बाड़िल॥

'अद्वैत घूम-घूम कर नाच रहे हैं। गौर और निताइ आगे नाचते हुए चलते हैं उनके पीछे अन्य लोग। कभी कमर हिलाकर, कभी गाल पर हाथ रख कर नाचते हैं।

कभी ताल मिलाकर बृद्ध अद्वैत नाचते हैं, कभी करताल से पैर का ताल ठीक कर लेते हैं, कभी उद्दण्ड नृत्य होता है—हाथ ऊपर उठ जाते हैं। कभी दोनों हाथों से कमर पकड़कर नाचते हैं। कभी कमर टेढ़ी बनाकर वृद्ध नाचते हैं। कभी धूल में बैठ जाते हैं। कभी चूड़ा बाँध लेते हैं, कभी त्रिभंगी मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। कभी जमीन को कंपाते हुए छलांग मारते हैं और आगे बढ़ते हैं—कभी झुक जाते हैं, कभी नवीन भंगी से हाथों से पैर पकड़ते हैं। उनका इस प्रकार नृत्य देखकर गौर और निताइ हंसने लगते हैं—इससे गोकुलानन्द के मन का आनन्द बढ़ गया है।'

द० श्री०

गोकुलचन्द्र (गोकुलानंद)

गोकुलानन्द गोकुलदास और गोकुलचन्द एक ही व्यक्ति हैं। इनका वास्तविक नाम था—गोकुलानन्द सेन। ये वैद्य जाति के थे और मुर्शिदाबाद जनपद के अन्तर्गत चौसा, वैद्यपुर नामक स्थान के निवासी थे। ये नयनानन्द के भाई थे। इनका जन्मकाल सत्रहवीं शताब्दी का प्रथम दशक माना जाता है। इनके पदों की पाण्डुलिपि बंगीय साहित्य परिषद पुस्तकालय में सुरक्षित है। उस पाण्डुलिपि में संकलित पद 'कीर्तन-रचनावली' शीर्षक के अन्तर्गत हैं। इनके दो पद नीचे उद्धृत हैं—

(१)

धैर्यंम रहु धैर्यंम रहु, गच्छम मथुराये।
ढूँउह पुरी पति प्रतीक्षे, यहं दरसन पाअये॥

अतिभद्रम अति भद्रम, शीघ्र कुरु गगना।
अविलम्बे मथुरापुरी, प्रवेश करिल ललना॥

एक रमणी अल्प वयसी, निज प्रयोजन पूछे।
नन्द जात कृष्ण ख्यात, कार भवनें आछे॥

शुनि सोघनी कहइ वाणी, सां काहां हियां
(कहइ) आअब।
वसु-देवकी सुत कृष्ण खोजत, कंस रिपु माधब॥

सोइ सोइ कोइ कोइ, दरशने मझु भासा॥
गोकुलचन्द्र कहे ज़ाओ, ओइ ये उच्च वासा।

(२)

ललितार सने राइ गेला घर।
श्याम प्रेमे गर गर समय अन्तर॥

निरवधि चमकित नहे गृह काज।
सं (ग) रे वन्धुर गण तेजि सब लाज॥

हैन काले आइला तथि व्रजवधूगण।
राइ बले भाल हइले आइले सखी गण॥

पिया बिनु हिया मोर धरणे ना जाय।
ताहार दर्शने पुनि सृजह उपाय॥

जरि जारे विशार विशाखिका करे निवेदन।
सूर्य पूजिते आजु करिब गमन॥

सामग्री आनिआ देह उत्तम करिआ ।
सखि-सने चले गोकुल राधेर लइया ॥

(वं० सा० प० पाण्डु० २४१६
हि० व्र० वु०, पृ० २१४ से उद्धृत)

'ललिता के साथ राधा घर गयी हैं। श्याम के प्रेम से मन भरा है लेकिन हृदय भयग्रस्त है। निरन्तर मन व्यग्र है। वह घर के कामों में लग नहीं रहा है, सब लज्जा छोड़कर प्रियतम के गुणों का स्मरण हो रहा है। इसी समय व्रजवधूगण वहाँ पहुंची। उन्हें देखकर श्री राधाजी कहती हैं—आप लोग आ गयी हैं—बहुत ठीक हुआ। प्रियतम के दर्शन के बिना मेरा हृदय व्याकुल है - जिस प्रकार उनका दर्शन हो उसका कोई उपाय करो। तब संकेत से विशाखा को कहती हैं—आज सूर्य के पूजन हेतु जाऊँगी, सभी पवित्र होकर पूजा की सामग्री जुटा लाओ। इसके बाद सभी सखियाँ राधा को साथ लेकर गोकुल की ओर चल पड़ीं।'

द० श्री०

गोपालदास (प्रथम)

वैष्णव भक्तों की सूची में एकाधिक गोपालदास का उल्लेख मिलता है, इनमें प्रथम गोपालदास का नाम राम गोपालदास था। किंतु ये गोपालदास नाम से ही विख्यात थे। इनका जन्म श्रीखण्ड में वैद्यवंश में हुआ था। ये चक्रपाणि के प्रपौत्र थे। चक्रपाणि ने रघुनन्द के साथ रथयात्रा के अवसर पर महाप्रभु के दर्शन-निमित्त पुरी की यात्रा की थी। गोपालदास के दीक्षागुरु रतिपति ठाकुर थे। इन्होंने 'रसकल्पवल्ली' नामक रचना का समापन कार्तिक शुक्ल सं० १५६५ अथवा सं० १५९५ (वाण अंग सर ब्रह्म) में किया था रसकल्पवल्ली में इनके कुछ ब्रजबुलि के पद संकलित हैं। ये बंगला एवं ब्रजबुलि, उभय भाषाओं के पदकर्त्ता थे। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

कि कहव राइक हरि अनुराग ।
निरवधि मनहि मनो भव जाग ॥

सहजे रूचिर तनु साजि कत भाति ।
अभिसरु शारद पुणमि- कराति ॥

धवल वसन तनु चन्दन पूर ।
अरुण अधरे धरु विशद कपूर ॥

कवरी उपरै करु कुन्द विथार ।
कण्ठे विलम्बित मोतिम हार ॥

कइरव झांपल करतल कांति ।
मलयज चन्दन वलयक पांति ॥

चांद कि कौउदी तनु तेह भांति ॥

छाया बौरी ना छाड़ल बाद ।
चरणे शरण करु यामिनि आध ॥

गोपालदास कह सुचतुर गोरी ।
नूपुरक रतन तुले मुख पूरी ॥

(क्षणदा०, २३३, अप्र० पद र०, ३१९)

'कृष्ण के प्रति राधा के अनुराग का वर्णन मैं कैसे करूँ। मनोभव (अनंग) उसके हृदय में निरन्तर जागृत रहता है। अपने सहज मनोहर रूप को विविध सौन्दर्य प्रसाधनों से श्रृंगारित कर शरद-पूर्णिमा की रात्रि में अभिसार (कृष्ण-मिलन) के लिए राधा अपने गृह से निकली। उसने धवल वस्त्र धारण कर लिया है, तन में चन्दन चर्चित कर लिया है। अरुण अधरों में कपूर रख लिया है। कवरी को कुन्द पुष्प से सजा लिया है। गले में मोतियों की माला है। अपने गुलाबी हाथों में उसने सफेद कुमुदिनी ले लिया है। अपनी चूड़ियों में चन्दन का लेपन कर लिया है। ज्योत्स्ना और उसके वर्ण में पार्थक्य नहीं रह गया है' वैसे ही जैसे क्षीर-नीर को पृथक् नहीं किया जा सकता। किन्तु उसकी छाया बैरिन के समान उसका साथ नहीं छोड़ रही है। परन्तु अर्धरात्रि में वह उसके चरणों में समीकृत हो जाती है। गोपालदास कहते हैं कि गोरी (राधिका) बहुत ही चतुर है। नूपुरों में जड़ित रत्नों में तूल (रुई) लपेट लिया है।'

(२)

(राधिका का उपालम्भ)

छल करि वाणी कतये परलापसि,
तोहारी वचन परमाण ।
चार पहर राति पोहायलुं,
आयलि राति-विहान ।।

माधव, आजि बड़ देयलि दुख ।
इह आरति न बुझिया ।
अब तोहे हेरि पायलुं वड़ सुख ।।

भाल हि सिन्दूर, काजले पूरल,
वदन-हि दशन-क-रेख ।
हेरइते तोहे-लाज मोहि होयत,
जावक राण-परतेख ।।

कमलिनि पाइ सरस-रसे भूललि,
ना बुझलि मालति-गन्ध ।
कहइ गोपालदास नाहि समुझलि,
कि फुले काये मकरन्द ।।

(पी० के० टी० ३९५, रस मञ्जरी)

'तुमने अपने प्रलापपूर्ण वाणी से मुझे छला है, उसका प्रमाण (स्वयं) तुम्हारे वचन हैं। चार प्रहर रात्रि मैंने जागरण में व्यतीत की, किन्तु तुम प्रभात के समय आए। माधव ! तुमने मुझे बड़ी वेदना दी। मेरी व्याकुलता तुम नहीं समझ सके, परन्तु अब तुम्हें देखकर मुझे बड़ा सुख मिला। तुम्हारा भाल सिन्दूरी है, और काजल-रेखा के चिह्न हैं। (इस रूप में) तुम्हें देखकर मुझे लज्जा आ रही है। कमलिनी पाकर तुम उसकी सरसता से उन्मादित हो मालती-गंध के महत्त्व को भूल गये। गोपालदास कहते हैं, कि किस पुष्प का मकरन्द अधिक स्निग्ध है, इसे तुम नहीं समझ सके।'

वैष्णव ग्रन्थों में यह उल्लेख भी मिलता है कि महाप्रभु के समसामयिक चक्रपाणि चौधुरी के वृद्ध प्रपौत्र रामदास चौधुरी 'रसकल्पवल्ली' के लेखक थे। इन्होंने गोपालदास भणिता से भक्ति विषयक पदों की रचना की थी।

द० श्री०

गोपालदास (द्वितीय)

गोपाल दास (द्वितीय) का उल्लेख चैतन्य-शाखा के वैष्णव भक्तों की तालिका में मिलता है (चैतन्य-चरितामृत-आदि १०।११३)। ये महेश ग्रामनिवासी तथा जीव गोस्वामी के शिष्य थे। इनके जीवन का अधिकांश वृन्दावन में व्यतीत हुआ। इन्होंने श्री रूप और सनातन के संरक्षण में वैष्णव भक्ति और दर्शनका अध्ययन किया था। ये स्वकीया भाव से राधा की भक्ति करते थे।

द० श्री०

गोपालदास (तृतीय)

गोपालदास (तृतीय) श्रीनिवास आचार्य के शिष्य एवं पदकर्ता थे। ये बुधरि पाड़ा ग्राम के निवासी थे और सन् १५१२ ई० में विद्यमान थे।

गोपालदास प्रभुर एक शाखा ।
प्रभुर परम प्रिय, गुनेर नाइ लेखा ।।
बुधुई पाड़ा बाड़ी, कृष्ण कीर्तनिया ।

इन्होंने श्री वृन्दावनदास और मुकुन्ददास गोस्वामी के आदेश से सन् १५१२ ई० में "श्रीराधाकृष्ण रसकल्पलता" नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

मधुपुर पन्थिक बिन करु तोर ।
कालिदमन करि धुचारल ताप ।
पुनरपि कालिन्दी अनल सन्ताप ।।
अब सब विष सम मेगेलि नारि ।
भरले गरल अब दुइ चारि ।।
दिने दिने युवती तनु अवशेष ।
गोपालदास दशमि परिवेश ।।

(अप्रकाशित पद-रत्नावली, ३१९)

'मधुपुर के पथिक-कर जोड़कर तुम्हारी विनती करती हूँ, । माधव से मेरी बिनती (सन्देश) कहना

कि कालियदमन करके आपने सम्पूर्ण व्रज को ताप-विमोचित कर दिया था, परन्तु अब कालिन्दी पुनः ताप-सन्तापित करने लगी है और हम विरहिणियां उस ताप के प्रखर प्रवाह को भोग रही हैं। दिन प्रतिदिन व्रज युवतियों का तन क्षीण हो रहा है। गोपालदास इस परिवेश का दर्शन (वर्णन) करते हैं।'

द० श्री०

गोपालदास (चतुर्थ)

गोपालदास (चतुर्थ) श्रीनिवास प्रभु के शिष्य थे और वृन्दावन में निवास करते थे। वृन्दावनदास और गोविन्दराम इनके परम मित्रों में से थे। इनके साथ मिलकर ये 'राधा-कृष्ण-रास' करते थे। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

सजलि शहिण नयना केने नाचे।
खाइते सुइते मुजि सायाह्न न पाइलूं,
अकुशल हय जानि पाछे॥

शयने सपनो आमि भय येन वसिगो,
बिनि दुखे चिन्ता उपजाय।
सुख नाहिं पाइ निज गाय॥

नगर बाजारे सब कान कान करैगो।
काहार पुछिले केह उतर न देवगो॥

केह नाहिं कहे सांचा बोल।
आमारे छाड़िया पिया विदेशे जाइबे गो,
एहि कथा बुझि अनुमाने।
गोपालदास कहे कहिते लागये भय,
केवा जान आइल विमाने॥

(वैष्णव पदावली, पृ० ७३ विरह शेकिनी।)

द० श्री०

गोपाल भट्ट

गोपाल भट्ट मूलतः दक्षिण के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १५०३ ई० में हुआ था। ये श्री रंगम के निकट कावेरी के तट पर स्थित वेलिगुण्डि ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम वेंकट था। महाप्रभु चैतन्य के जीवनी-लेखकों के अनुसार अपनी दक्षिण-यात्रा में वे गोपाल भट्ट से मिले थे। इन्होंने वैष्णव स्मृति पर 'हरिभक्त-निवास' नामक ग्रंथ की रचना की थी। 'पद कल्पतरु' में इनके तीन पद संकलित हैं, जो व्रजभाषा में लिखे गये हैं। परवर्तीकाल में इन्हें वृन्दावन में सनातन, रूप, प्रभृति प्रसिद्ध षट् गोस्वामियों का सानिध्य प्राप्त हुआ था। श्रीमहाप्रभु के परवर्ती काल के सर्वापेक्ष वैष्णव आचार्य के ये मंत्र-गुरु थे। इनका वैकुण्ठवास १५७८ ई० में हुआ था। 'पद-कल्पतरु' में संकलित इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

देखनि सखि कमल-नयन,
कुन्ज में विराज हैं।
वामे ते किशोरी गोरी
अलस अंग अति विभोरि,
हेरि श्याम नयन चन्द
मन्द मन्द हास हैं॥

अंगे अंगे वाहे भीड़,
पूछत बात अति निविड़,
प्रेम तरंगे ढरकि परत,
कमल मधुप संग रे।
शारी-शुक-पिक करत गान,
भमरा-भमरी धरत तान,
शुनि ध्वनि उठ बैठत,
चार चपल यात रे॥

श्री गोपाल भट्ट आश,
वृन्दावन कुंजवास,
शयन सपन नयन हेरि,
भूलल मन आप रे॥

(वैष्णव गीत में 'अभिसारिका युगल रूप' से संकलित पृ० ३७१, पद सं० १५९)

(२)

वृषभानु नन्दिनीते मन मोहन,
के मन लागि बसि।

पान खाउत पिक, गीनते ढरंकतं,
झलक जेव पावस ससि ॥

मधुरिम हास वसनते झांपि सोहत,
मेहते ज्यों बिजुरी गोप्या ।
कण्ठहि लोलत मोतिम हार,
कनक मुकुरे ज्यों तारक श रोप्या ॥

शांउर चीत उनते नागिउ,
पलकन नारे आंखि ।
युथ युथ मनमथ झलत,
गोपाल भट्ट इखे साखि ॥

(श्री गौ० प० त० २६३३)
द० श्री०

गोपीकान्त

गोपीकांत श्री निवासाचार्य के प्रपौत्र और सुबलानन्द ठाकुर के पौत्र थे। 'पदकल्पतरु' में इनके ब्रजबुली के तीन (सं० ५९७, ५९८, २३८२) और बंगला का एक पद संकलित है (३०३१)। इनमें से तीन पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

राधा माधव सहचरि साथ ।
कत कत उपजये रसमये बात ॥

ना जानिए प्रेम कलह किषे भेल ।
निज प्रतिबिम्ब-भाने दुहूँ गेल ॥

चीत पुतलि सम सहचरि थारि ।
कि कहब बचन कहइ नहि पारि ॥

दुहं जन भेल अकारन मान ।
एक दिशे सुन्दरि आर दिश कान ॥

वन माझ दुहुं परवेशल जाइ ।
एक तरुर मूले बैठलि राइ ॥

एकलि रोयत अवनत शीर ।
क्षर क्षर नयने गलए घन नीर ॥

भ्रमि भ्रमि माधव आउल ताइ ।
हेरिलि तरु मुले रोयत राइ ॥

कानुक नयने झरये तब लोर ।
धिरे-धिरे जाइ गइ करु कोर ॥

कह गोपीकान्त दास किये गेलि ।
अद्‌भुत दुहुंक प्रेस रस-केलि ॥
(श्री पद० क० त० ५९७/३९६)

(२)

अहे नाथ मो बड़ पातको दुराचार ॥
तोमार से श्री चरन करलूं आराधन,
वृथा देह वहि फिरि भार । (ध्रु०)
दारुन विषय कोरे हइलूं पाइया मीठ,
विष हेन ज्ञान नांहि हय ।
तोमार भकत संगे तव नामामृत रंगे,
हत चित ताहे ना भूवय ॥

तुमि से करुनासिन्धु, जगत-जीवन-वंधु,
निज कृपा चले जदि लेह ।
पतित पावन नाम घोषना रहिये श्याम,
जगते करिवे एइ खेह (थेह) ॥

एइ कृपा कर प्रभु तुया भक्त संग कभू,
ना छाड़िये जीवन भरने ।
तव लीला गान-गुन भुवुक आमार मने,
गोपीकान्त करे निवेदने ॥

(श्री प० क० ३०३१ / २३४)

'कीर्तनानन्द' (२७-२८) से इनका वह पद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिसमें इन्होंने वैष्णव भक्ति के स्वरूप-विधान में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करने वाले भक्तों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है—

(३)

श्री विद्यापति-कविवर शेखर,
कयल बहुत विधि गात ।
श्री गोविन्द कवीन्द्र शिरोमणि,
त्रि जगते याहार चरित ख्यात ॥
श्री जयदेव बहु रस वर्णन,
कवि सायर चण्डीदास ।

श्री रामानन्द नाटक परकाशक,
सुमधुर प्रेम विलास ॥
श्रील सन्तान कयल गीतावली,
विविध भावं तरंगी ।
श्री रामचन्द्र, कविवर भूपति,
बलराम दास तछु संगी ॥

श्री नरहरिदास. ठाकुर कवि सुधर,
गोविन्द घोष कवि सिन्धु ।
ठाकुर वृन्दावन, वासुदेव घोष आर,
सकल कविगण इन्दु ॥
भावक चक्रवर्ती बहुत प्रकाशल,
ज्ञान दास कवि आर्य ।
यदुनाथ दास अभिसार वर्णित,
तहि कवि वर व्यासाचार्य ॥
प्रार्थना कयल ठाकुर नरोत्तम,
माधव घोष कवि धाम ।
वंशी वदन किए श्री वल्लभ कवि,
लोचनदास अनुपाम ॥
ठाकुर पितामह, सुवलानन्द पठु,
कयल कतहुं सु छन्द ।
श्री घनश्याम कविराज राजवर,
अद्‌भुत वर्णन बन्ध ॥
रह वर कवि-वर चरण सरोरुह,
सिरसि धायल हाम हार ।
गोपीकान्त दास कह भवनिधे (?) डुबल
कवहुं पायब हाम पार ॥

(कीर्तनानन्द, पृ० २७–२८)
द० श्री०

गोपीकान्त वसु

'चैतन्य चरितामृत' से ज्ञात होता है कि गोपीकांत वसु चैतन्यदेव के अनुयायी थे। इनका वात्सल्य रस प्रधान एक पद 'कृष्ण-पदामृत-सिन्धु' में संकलित है, पद इस प्रकार है—

बिहाने यशोदा राणी कोले लइया नील मणि,
आंगिनाते वसिल कौतुके ।
गोपालेर मुख अंग कर पद तल रंग,
निरीक्षण करे अनिमिखे ॥

ध्वज-व्रजांकुश-जव, मृगाकुंश-कुश-लव,
संख-चक्र-शुद्ध सकल ।
त्रिकोण-गोष्पद धनु, उर्द्धरेखा शंख-धनु,
मत्स्य जनु (जनु) जम्बु फल ॥

ए सब देखिया राणी अद्‌भुत मने गणि,
विश्व रूप करयै भावन ।
शुनेछि पुराण वेदे एइ चिह्न चार पदे,
तिहं हयेन ब्रह्म सनातन ॥

विधि भव योगि चार, चरणे करिया सार,
भावन करये चिर काल ।
एके मुख गुण सत्व ता चना पाय तत्व,
तिहं केने आभार छाओयल ॥

हेन काले विश्व माया, आच्छन्न नन्देर जाया,
मोहित हइया बले शिशु ।
तुलिय आपन बुके,
चुम्बन करये मुखे गोपीकान्त ॥

'प्रभात वेला है, अपने आंगन में नीलमणि (कृष्ण) को गोद में लिये यशोदा रानी बैठी हैं। उनकी बाल लीला देखकर वे विस्मित हो रही हैं। वे निर्निमेष गोपाल के मुख कर और पद-तल की लालिमा देख रही हैं। शिशु के पदतल में ध्वज, वज्र, मत्स्य, जम्बु फल, यव (जव) हस्ति, अंकुश, हल के फाल. शंख, चक्र, त्रिकोण गोष्पद, धनुष, उर्द्ध रेखा, आदि चिह्नों को देखकर चकित हो गईं', "मैंने सुना है कि वेद, पुराण में ऐसा वर्णन है कि इन लक्षणों से विभूषित व्यक्ति विश्वरूप पर-ब्रह्म होता है। उसकी आराधना सृष्टिसर्जक शिव और योगी करते हैं। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन ने इसी रूप का साक्षात्कार किया था।" यशोदा का मन शंकालु

हो गया—जो पर-ब्रह्म है, वह मेरा पुत्र कैसे हो सकता है?

नन्द की गृहिणी मायावशवर्तिनी हो गयी—मायावशवर्तिनी होने पर उसका वात्सल्य उमड़ आया और वत्सल भाव से कह उठीं मेरे लाल! और हृदय से लगाकर स्नेह-चुम्बन लेने लगी—ऐसा वर्णन गोपीनाथ वसु करते हैं।'

द० श्री०

गोपीनाथ सिंह

गोपीनाथ सिंह चैतन्य महाप्रभु के समकालीन एवं चैतन्य शाखा के ही वैष्णव भक्त थे। चैतन्य चरितामृत में इनका परिचय निम्न लिखित शब्दों में मिलता है—

गोपीनाथ सिंह—एक चैतन्येर दास
अक्रूर बलि प्रभु चांदे केला परिहास।

'गोपीनाथ सिंह चैतन्य के सेवक थे, महाप्रभु ने 'अक्रूर' सम्बोधन से उनका परिहास किया था। ये भट्टाचार्य के बहनोई थे। 'चैतन्य-चरितामृत' आदि दृश्य में निम्नांकित पंक्तियाँ दी गई हैं—

बड़शाखा एक सार्व भौम भट्टाचार्य।
तार भगिनी पति गोपीनाथ सिंह॥
नदीया निवासी विशारदेर जामाता।
महाप्रभूर भल तेहाँ प्रभूर तत्व ज्ञाता॥

इससे यह ज्ञात होता है कि ये नदिया के निवासी, महाप्रभु के कृपापात्र तथा गौड़ीय वैष्णव भक्ति के तत्त्वज्ञाता थे।

द० श्री०

गोवर्धन दास

गोवर्धनदास नामक चार वैष्णव-भक्तों का उल्लेख मिलता है—

(१) रघुनाथ दास के पिता गोवर्धन दास प्रथम—ये चाँदपुर ग्राम निवासी थे। यवन हरिदास कुछ दिन इनके यहाँ ठहरे थे। इसका उल्लेख राधा वल्लभदास ने अपने एक पद में किया है। ये परम वैष्णव थे। इन्होंने बंगला एवं ब्रजबुली उभय भाषाओं के पद रचे हैं।

(२) द्वितीय गोवर्धन दास जयपुर निवासी थे और जयपुर के गोकुलचन्द विग्रह के प्रधान पुजारी थे। ये बंगाली वैष्णव-भक्त थे या नहीं अथवा इन्होंने 'बंगला' या 'ब्रजबुली' में भक्ति विषयक पदों की रचना की है या नहीं, इन सब तथ्यों की प्रामाणिक सूचना उपलब्ध नहीं है, परन्तु इनका उल्लेख 'कीर्तनिया' एवं 'पदकर्ता' के रूप में हुआ है। इनका समय शक संवत् १७०० माना जाता है।

(३) तीसरे गोवर्धन दास नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। इनके विषय में प्रसिद्ध हैं, **'गोबर्धन-भाण्डारी शरण सर्व विदित—महाशय करे तारे अतिशय प्रीति।** 'नरोत्तम विलास' में भी इसी प्रकार का कथन मिलता है—**'तय श्री भाण्डारी गोबर्धन भाग्यवान, जेहं सर्वमते कार्य करे समाधान।'** इनके विषय में इससे अधिक सूचना नहीं मिलती।

(४) 'रसिक मंगल' में एक अन्य गोवर्धन दास का उल्लेख मिलता है। ये कृष्ण-भक्त थे और इनका सम्बन्ध श्यामानन्द परिवार से था। परन्तु भक्तिविषयक इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

पद कल्पतरु में प्रथम गोवर्द्धनदास (रघुनाथ दास के पिता) के १६ पद संकलित हैं। उनमें कुछ पद उदाहरणार्थ नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

गौरवरन हिरन किरन,
अरुन वसन तार॥
राता उतपल नयन युगल,
प्रेम धारा बहि जाय॥
देख देख नवद्वीपराज,
मधुर भाव उपनि आय।
कहये आवेशे पूरब विलासे,
मधुर रजनी कथा।

अनिया झरन, ऐछन वचन,
हरल मनेर वेधा ॥

शुनि हरषित सकल भवत,
प्रेमेर सागरे भासे ।
ये सब सोडरि कारये गुमाई,
दीन गोवर्धन दासे ॥

'गौरांग के गौरवर्ण (शरीर) और उनके अरुण-वस्त्र से हिरण्य-किरण प्रस्फुटित हो रही है। उनके युगल नयन लाल कमल के समान हैं, जिनसे प्रेम की अश्रुधारा बह रही है। हे सखि ! नवद्वीपराज गौरांग के इस सौंदर्य का अवलोकन करो। भक्तों के मध्य भाव-विभोर होने से उनका कण्ठ गद् गद् हो रहा है। वे मधुर रजनी में पूर्व जन्म की रसवती कथा (कृष्ण-जन्म की कथा) गद्-गद् कण्ठ से कह रहे हैं। उनके मधुर वचन से अमृत निर्झरित हो रहा है, वह मन की व्यथा हर लेता है। प्रेम के सागर चैतन्य की वाणी से सभी भक्त हर्षित हैं। यह सब स्मरण कर अभिमानी दीन गोवर्धनदास कथा करता है।'

(२)

वन विहार (राग गान्धार)

बाल जुड़ करि शिशुगन मेलि,
नामाइल यमुनार जले।
आनन्दे गोगेन करे जल पाने,
पिउ पिउ सभे बोले ॥

उच्च पुच्छ करि जले पेह भरि,
उपरे उहिल धेनु ।
राखाल मेलिया हेलिया हेलिया,
घन बाज सिउव बेनु ॥

नव तृन पाइया धेनु खाइया खाइया,
भ्रमये जमुना तीरे ।
नन्देर नन्दन करि गोचारन,
सखागन संगे फिरे ॥

बेलि अवसान देखि बलराम,
धेनूगन लेया सुखे ।
कृष्ण माझे करि सखागन घेरि,
चलिला गोकुल मुखे ॥

गोष्ठे प्रवेशिया गोगन राखिया,
पथेते मिलिया भाय ।
पुत्र कोले निला परान पाइला,
दास गोबर्धन गाय ।

(इति तृतीय शाखायां द्वाविंशति पल्लव
२६।१२४१।२६६)

(३)

हरि लीला (राग विहागड़ा)

बाजे दिग दिग ये थेया होरि रंगे० । घु ।
किशोर किशोरि सखिनि मेलि,
तपन-तनया तीरे केलि,
सुखमय अति मधु ऋतु-पति,
रति पति तथि संगे ॥

चन्दन धन्दन सूचक चन्दन,
यंत्र रंध्रे बरिखे सघन,
अरुन बसन लूलित रसन,
श्रम-जल गल अंगे ।
बीन मुरज सर उपंग,
द्रिमिकि द्रिमिकि द्रिमि मृदंग,
चंचल गति खन्जन जिति,
नृत्यति अति भङ्गे ॥
गाउये (गावे) रामके गोपि मेलि,
गोरि, गुर्ज्जरि, रामकेलि,
सुभगा सुहिनि सुहइ साहानि,
संगित रस तरंगे ।
यूथे यूथे धुरतिवृन्द,
माझे शोहत गोकुल चन्द,
गोबर्धन हृदि वर्द्धन,
करु गर्द्धन अनक अंगे ।

(१९।१४४३।२९१)

गोविन्द आचार्य

गोविन्द आचार्य का जन्म सन् १५३३ ई० में हुआ था। इस प्रकार ये चैतन्य के समकालीन वैष्णव-भक्त थे। देवकीनन्दन ने अपने ग्रंथ 'वैष्णव-वन्दना' में इनका परिचय नीचे उद्धृत पंक्तियों में दिया है—

गोविन्द आचार्य पद करिल बन्दन।

राधाकृष्ण रहस्य ये करिल बरनन॥

कवि कर्पूर ने अपने ग्रन्थ 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' (समय सन् १५७६ ई० पद सं० ४१, तृतीय संस्करण) में इनका गुणगान करते हुए इन्हें परम वैष्णव और श्रेष्ठ-पदकर्ता कहा है। इनके अधिकांश पद 'गोविन्द-कविराज' और 'गोविन्द-चक्रवर्ती' के पदों में घुल-मिल गए हैं। 'रसकल्पतरुवल्लीकार' ने इनके एक ब्रजबुली पद को निम्नलिखित चार पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

घन मेघ वरिखे, बिजुरी चमके।
ताहा देखि प्राण मोरा हुथ-शुरी कांपे॥

छाड़ छाड़ आंचल निलज मुरारी।
लाज नाहिक तोर हाम परनारी॥

(बंगीय साहित्य परिषद पत्रिका,
सं० ३७ पृ० ११५)

न० च० सं०
द० श्री०

गोविन्ददास कविराज

श्री गोविन्ददास कविराज बड़े प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। इन्होंने व्रजभाषा तथा बंगला में बहुत से पद सृजित किए हैं और नाटक एवं अन्य काव्य रचे हैं। श्री जीव गोस्वामी तथा व्रजभक्तों ने इनकी असाधारण काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर इनको 'कवीन्द्र' की उपाधि से विभूषित किया था। इनका जन्म वि० सं० १५९४ में बर्दवान जिला के अन्तर्गत श्रीखण्ड नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता चिरंजीव सेन श्रीखण्ड-वासी दामोदर कविराज की कन्या सुनन्दा देवी से विवाह कर उसी ग्राम में रहने लगे थे। इनके दो पुत्र हुए–प्रथम का नाम श्री रामचन्द्र कविराज और द्वितीय का श्री गोविन्द कविराज था। एक दिन किसी को वर के वेश में देखकर श्रीनिवासाचार्य प्रभु ने एक कविता पढ़ी। कविता का तात्पर्य यह है—"विवाह में लोग इतना उत्साह दिखाते हैं तथा पैसा खर्च कर माया का जंजाल माथे पर मोल लेते हैं। माया गले में फाँसी लगा रही है, यह नहीं समझते और उल्टे उत्सव मनाते हैं। अमंगल में मंगल समझकर बड़े प्रसन्न होते हैं।" श्री रामचन्द्र कविराज के हृदय पर ये शब्द अंकित हो गये। दूसरे दिन ये घर त्यागकर श्रीनिवासाचार्य प्रभु की शरण में चले गये और उनके शिष्य हो गये। बाद में यह श्री नरोत्तमदास ठाकुर के बड़े प्रेमी भक्त हो गये और शेष जीवन में उनके साथ भजन-कीर्तन तथा नाम-प्रचार करने में लगे रहे। यह बड़े अच्छे कवि हुए।

श्री गोविन्ददास कविराज अपने शाक्त मातामह के आश्रय में रहने से देवी के सच्चे उपासक हो गए। एक बार मातामह द्वारा पूजित शक्ति-यंत्र से प्रक्षालित जल को पीने से इनकी माता की प्रसव पीड़ा शांत हो गई और बिना कष्ट के प्रसव हो गया। इससे इनका विश्वास और बढ़ गया। देवी ने इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर इनको आदेश दिया कि तुम श्रीनिवासाचार्य प्रभु की शरण में जाओ और श्रीकृष्ण का भजन करो। परन्तु देवी में अटल विश्वास होने से इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। ठीक इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि चण्डीदास भी वासुलीदेवी के बड़े भक्त थे। देवी उनकी सेवा से बड़ी प्रसन्न हुईं और उनको आज्ञा दिया कि तुम श्रीकृष्ण का भजन करो तथा श्री कृष्ण-लीला का वर्णन करो, तुमको श्रीकृष्ण-भक्ति प्राप्त होगी। इसी से चण्डीदास ने अपने बहुत से पदों के अन्त में "वासुली आदेशे द्विज चण्डीदास कहे" (अर्थात् वासुली देवी के आदेश से द्विज चण्डीदास कह रहे हैं) ऐसा लिखा है।

एक दिन एक वैष्णव श्री गोविन्ददास कविराज के घर पधारे। कविराज ने उनका बड़ा आदर किया। प्रातः काल स्नान करने के पश्चात् संध्या-पूजा करने के निमित्त इन्होंने अतिथि को देवी के निजी मंदिर में भेज दिया। ब्राह्मण वैष्णव ने मन्दिर में जाकर देखा कि सिंहासन पर कालीजी की मूर्ति है, पास में एक श्री शालिग्राम की शिला है और पूजा की सब सामग्री विधिवत् सजाकर रखी है। वैष्णव ने बड़े प्रेमसे शालिग्राम को स्नान कराया, चंदन लगाया और मंत्र पढ़कर पुष्प तथा तुलसी चढ़ाया। नैवेद्य की रखी हुई सब सामग्री का भोग लगाया। पूजा समाप्त कर वे बाहर चले आए। कुछ समय पश्चात् नित्य की पूजा करने के हेतु पुजारी जी आए। बची हुई सामग्री से देवी की पूजा की और बिना जाने विष्णु को भोग लगी सामग्री से फिर देवी को भोग लगाया। देवी प्रसाद-नैवेद्य को ग्रहण कर बड़ी प्रसन्न हुईं।

उसी दिन मध्याह्न के समय गोविन्द कविराज शयन कर रहे थे। एकाएक उनकी नींद खुली और वह उठकर बैठ गए। उन्होंने सुना कि काली माता कह रही हैं—'गोविन्द, तुमने आज हमको भोग नहीं लगाया। आज हमने विष्णु का प्रसाद ग्रहण किया है।' गोविन्द ने पूछा, 'देवी, विष्णु का प्रसाद आपको कहाँ मिला?' देवी ने कहा, 'तुम्हारे अतिथि ने सब नैवेद्य विष्णु भगवान् को भोग लगा दिया था। तुम्हारे पुजारी ने बिना जाने वही प्रसाद-भोग हमको निवेदन किया। भगवान् का प्रसाद ग्रहण कर हम आज बहुत प्रसन्न हैं। तुमसे यही कहने आई हैं।' गोविन्द ने कहा, 'माता, आप तो परमेश्वरी हो। आपके भगवान् कौन?' देवो ने उत्तर दिया, 'गोविन्द कविराज, तुमने तो शास्त्र पढ़ा है। मूलतत्व परमेश्वर श्रीकृष्ण विष्णु नारायण हैं। वही ब्रह्म के भी आश्रय हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् की तीन शक्तियाँ हैं-चिच्छक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति। चिच्छक्ति वा अन्तरंगा शक्ति द्वारा भगवान् निज-धाम, परिकर और अपनी अन्तरंग सेवा के उपकरण की सृष्टि करते हैं। तटस्था जीव शक्ति द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डादि जीवों की सृष्टि कर वे उसी में व्याप्त (छिपे) रहते हैं। बहिरंगा माया शक्ति द्वारा वे त्रिगुणात्मक जगत् प्रकृति, काल, कर्म प्रभृति का नियंत्रण करते हैं। माया शक्ति चिच्छक्तिरूपा योगमाया की दासी है। माया हमारी अंशिनी और हम उसके अंशरूपा हैं। अब तुम विचार कर समझो कि श्रीकृष्ण हमारे प्रभु कैसे हुए? श्रीकृष्ण का महाप्रसाद हमको बड़ा प्रिय है। श्रीकृष्ण का अधरामृत प्रसाद पाने की इच्छा से हम श्री जगन्नाथ क्षेत्र में विरजा देवी के रूप में निवास करती हैं।'

गोविन्द चमत्कृत होकर उठ खड़े हुए और सोचने लगे। देवी के वचन उनके कान में गूँज रहे हैं। पद्मपुराण खोला। महाप्रसाद की महिमा का प्रसंग पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्याः सर्वदेवताः।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते॥

वह सोचने लगे। देवी ने तो यही कहा था। सब देवताओं की विष्णु के नैवेद्य द्वारा पूजा करनी चाहिए। पितरों को भी महाप्रसाद देना चाहिए। इस प्रकार अर्पित सामग्री अनन्त फल देती है। कुछ दिनों तक गोविन्द कविराज के मन में बड़ी अशान्ति रही। एक ओर देवी की भक्ति और समाज का विचार तथा दूसरी ओर देवी का आदेश और शास्त्र का वचन। ये कुछ स्थिर नहीं कर सके। इधर इनकी स्त्री जो बहुत दिनों से रोगग्रस्त थी, उसकी दशा अधिक शोचनीय हो गयी। कविराज बहुत घबराये और देवी का स्मरण करने लगे। आकाशवाणी हुई—'तुम गोविन्द का स्मरण करो, वह तुम्हारा निस्तार करेंगे।' गोविन्द कविराज समीपस्थ गुरुदेव से पूछने लगे—'गुरुदेव हम क्या करें? तभी गुरुदेव ने आदेश दिया—'हरिनारायण का स्मरण करो। तुम्हारा मंगल होगा।'

कविराज जी के मन में बड़ा दुख हुआ। वह सोचने लगे कि हमने देवी जी की आज्ञा नहीं

मानी और ना ही अपने भाई रामचन्द्र कविराज की। इन्होंने पत्र लिखकर श्रीनिवासाचार्य प्रभु को स्मरण किया। श्रीरामचन्द्र कविराज श्रीकृष्ण से यही प्रार्थना करते रहे कि कब उनके भाई का मन श्रीचरणों की ओर आकर्षित होगा। उनकी आशा पूरी हुई और वे पत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए। श्रीनिवासाचार्य प्रभु के पास जाकर कहा—

'प्रभो! आप हमारे कुलदेवता हैं। आपसे बढ़कर हमारा हितैषी बन्धु कोई नहीं है। हमारे छोटे भाई गोविन्द कविराज की दशा शोचनीय है। वह आपके शरणागत है। उसने पत्र लिखा है। एक बार कृपा कर उसे दर्शन देकर उसका उद्धार कीजिए।'

श्रीनिवासाचार्य प्रभु रामचन्द्र कविराज के साथ गोविन्द कविराज के घर पधारे। प्रभु दर्शन करते ही कविराज रुदन करने लगे। दोनों हाथ उठाकर प्रभु को प्रणाम किया और बोले—'प्रभो! हमारा अन्तिम समय निकट है, हमारा उद्धार कीजिए। उन्होंने आश्वस्त किया 'डरो मत। प्रभु की करुणा का तुम अभी अनुभव करोगे। सब विघ्न दूर हो जाएगा। हमारे साथ हरिनाम महामंत्र का जप करो।" यह कहकर उन्होंने एक हाथ कविराज के मस्तक पर रखा दूसरा उनकी छाती पर और महामंत्र जपने लगे।

महामन्त्र का ऐसा प्रभाव हुआ कि कविराज शैया त्यागकर उठ बैठे। आचार्य प्रभु इनके यहाँ ठहर गए। सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ होने पर कविराज ने श्रीनिवासाचार्य से दीक्षा ली। दीक्षा प्राप्त करने पर बड़ा महोत्सव मनाया गया। भजन-कीर्तन तथा साधु-सेवा हुई। गोविन्ददास कविराज नीरोग होकर संसार-व्याधि से भी मुक्त हो गए और अपना शेष जीवन श्री गौरलीला तथा कृष्णलीला का वर्णन करने में अर्पित कर दिया।

इनकी कविता कोमलकान्त और मनोज्ञ होती थी। इसका प्रचार प्रदेशभर में हो गया। संस्कृत के भी ये प्रकाण्ड पंडित थे। इनके रचे संस्कृत के पंद बड़े चारु हैं—'कुवलय कंदल, कुसुम कलेवर, कालिम कांति कलोल।' इन्होंने रामचरितगीत, संगीतमाधव नाटक, अष्टकालीय एकान्नपद गीतावली आदि ग्रंथ रचे हैं। श्रीवृन्दावन धाम की यात्रा से लौटते हुए मार्ग में इन्होंने श्रीविद्यापति के स्थान का दर्शनकर उनके बहुत से पदों का उद्धार और प्रचार किया। इन्होंने श्रीगोपाल का एकविग्रह स्थापित किया जिसकी पूजा इनके वंशधर अभी तक करते चले आ रहे हैं। ७५ वर्ष की अवस्था में वि० सं० १६६९ में ये नित्य-लीला में पधारे। महाप्राण निराला इनकी कविता के बड़े रसिक थे। इनके ब्रजबुलि-पद साहित्य की अक्षयनिधि और इनकी मधुर भक्ति-भावना के सर्वोत्तम अभिलेख हैं। इनकी कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१)

शुनइते कान-मुरली रव माधुरी
श्रवण निवारलु तोर।
हेरइते रूप नयनयुग झापलु
तब मोहे रोखलि भोर।
सुन्दरि, तेखने कहल को तोय।
भरमहिं ता संगे नेहबाढ़ायबि
जनम गवायबि रोय।
बिलुगुणु परखि परक रूपलालसे
काहे सौपलि निज देहा।
दिने दिने खोयसि इह रूपलावणि
जीवइते भेल सन्देहा॥
जौ तुहुं हृदये प्रेम तरु रोपलि
श्यामजलद रस-आशे।
सो अब नयन-नीर देह सींचह
कहतहि 'गोविन्ददासे'।

(२)

बहुल बारिद बरन बंधुर बिजुरि बिलसित बास।
विकच बांधुलि बलित बारिज बदन बिंबु परकास॥

बिहरति वृन्दावने बनमाली ।
वेढल व्रजवधू वृन्द विमोहित बोलति बलि बलिहारी ।।
बकुल बंजुल बल्लि बलइत बिलोल बर्हावतंस ।
विमल भूषण बेस वासित बेकत बाबत बंस ।।
विसद बारण बाहु वैभव बलभ बन्ध निबन्ध ।
विविध वैदगधि बचन बिरचन विवस 'दासगोविन्द ।।
स्यामर अंग अनंग तरंगिम ललित त्रिभंगिम धारी ।
भांग विभंगिम रंगिम चाहनि बंकिम भंगि नेहारी ।।

(३)

रसवति संग रसिकवर राय ।
अपरुप रास विलास कलारसे कतमन मुरछाय ।।
कुसुमित केलि कदम्ब कदम्बक सुरभित सीतल छाय ।
बांधुलि बंधु मधुर अधर धरि मोहन मुरलि बजाय ।।
कामिनि कोटि नयन निल उत्पल परिपूजित मुख चन्द ।
'गोविन्ददास' कह ओ पुनि रूप नह जगमानस सस्फंद।।

इन्होंने मुख्य रूप से 'व्रजबुली' में ही पदों की रचना की है। पदकल्पतरु में इनके ४६० पद संकलित हैं। इन्होंने कुछ पद बंगला में भी रचे हैं। 'पदकल्पतरु' के अतिरिक्त इनके कुछ पद 'पदामृत-समुद्र' तथा 'गौर-पद-तरंगिणी' में भी संकलित हैं। 'पदामृत-समुद्र' में उद्धृत इनके निम्नलिखित पद से इनकी भक्ति-पद्धति का परिचय मिलता है—

ध्वज वज्राकुंश पंचम कलितम् ।
व्रज बनिता कुच कुंकुम ललितम् ।।

वन्दे गिरिवरधर पद कमलम् ।
कमलाकर कमलार्चित अमलम् ।।

मंजुल मणि नूपुर रमणीयम् ।
अचपल कुल रमणी कमनीयम् ।।

अति लोहित अति रोहित भासम् ।
मधु मधुपीकृत गोविन्द दासम् ।।

'मैं गोवर्द्धन गिरिधारी के चरणों की वन्दना करता हूँ, ध्वज-वज्र-अकुंश से सुशोभित चरणों की जो व्रजवनिताओं के कुच-कुमकुम से ललित हैं, गोवर्धनधारी के ऐसे चरण जो अमल हैं और जिनका प्रक्षालन कमला कमलों से करती हैं, ऐसे चरण जो मणि और नूपुरों की ध्वनि से क्वणित हैं, जो अचंचल व्रजबनिताओं के हृदय में चांचल्य और चापल्य उत्पन्न करते हैं, ऐसे चरण जो अरुणिम कमल के समान हैं, जिनसे सुगन्धि वितरित होती है, ऐसे चरण जिन्होंने गोविन्ददास को मधुमक्खी बना दिया है, और वे जिसके मकरन्द का पान करते हैं।'

कृष्ण-गुण-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-वन्दन इत्यादि गोविन्ददास कविराज की भक्ति के विविध पक्ष थे। इस प्रकार इनकी आसक्ति नवधा भक्ति के प्रति थी—

जपह रे मन श्री नन्दन,
शीत, आतप, वात बरिखन,
श्रवन-कीर्तन-स्मरन-वन्दन,
अभय चरनार विन्द रे ।
ए दिन यामिनि जागी रे ।।

इखे कि आछे परतीत रे ।
पद सेवन दासो रे ।।

दूलह मानुष जनम सतसंगे,
विफले से विन्द कृपन दुरजन,
नलिनीदल जल जीवन टलमल,
तरह ए भाव सिन्धु रे ।
चपल सुख लव लागिरे ।।

भजह हरिपद नितरे ।
गोविन्द दास अभिलाषी रे ।।
(श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्य,
'गोविन्दकविराज ओ पदावली')

गोविन्द दास कविराज अपने को 'भगवच्चरणारविन्द' का 'नखमणि निछन' और राधाकृष्ण-लीला के 'एकान्त' या गोपन सखा मानते थे तथा कृष्ण-लीला का प्रत्यक्षदर्शी कहते थे। इन्होंने अपने पदों

में 'उज्ज्वल-नील-मणि' में प्रतिपादित कृष्णभक्ति और वैष्णव-दर्शन के सैद्धान्तिक पक्ष का काव्यात्मक रूपान्तर किया है।

'उज्ज्वल-नील-मणि' के श्रृंगार रस के विविध प्रबन्धों को आधार रूप में ग्रहण करते हुए इन्होंने 'गीतामृत' की रचना की। इनके पद 'वासकसज्जा', 'खण्डिता', 'कलहान्तरिता', 'संकीर्ण-रसोद्गार', 'स्वयंदूती', 'रसोद्गारानुराग', 'रूपानुराग', 'अभिसारानुराग', 'नित्यरास', 'विपरीत शीर्षको रसोद्गार' आदि शीर्षकों में विभक्त हैं। इनके चैतन्य-विषयक पद बंगला में हैं। इनमें से एक पद यहाँ उद्धृत है—

कान्चन कमल-कान्ति कलेवर,
विहरइ सुर धनु तीर।
तरुन-तरुन तरु हेरि तोड़ाये,
कुन्द कुसुम कर वीर॥

समवय सकल सखागन संगहि,
सरस रभस रमे मोर।
गजवर गमन गन्जि गति मन्थर,
गोपिन गदाधर कोर॥

पूरब प्रेम प्रेमानन्द पूरित,
पुलक पटलमय अंग।
निरुपम नदीया नागर परनिति,
नव नव करत विलास।
दीने दयाकर दुरित दुःख हर,
कहतहि गोविन्ददास॥

(श्री गौरपद-तरंगिनी, पृ० ८८)

इनके ब्रजबुली के दो सरस पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

पूर्वराग

चौदिक चकित नयाने घन हेरसि,
झांपलि झांपल अंग।
वचनक भाँति बुझइ नहिं पारिसे,
कहाँ शिखली इह रंग॥
सुन्दरि! कि फल परिजने बांचि।
श्याम सु नागर गोपत प्रेमधन
जानलूं हिया माहा सांचि॥ ध्रु॥

ए तुरा हास भरम प्रकाशइ प्रति,
अंग भंगिम साखि।
गांटिक हेम वदन माहां झलकइ,
एत दिन पेखलूं आंखि॥

गहन मनोरथे पन्थ ना हेरसि
जितलि मनमथ राज।
गोविन्द दास कहइ धनि विरही
नाहि समझनूं काज॥

(२)

अभिसारिका

कण्टक गाड़ि कमल सम पदतल,
मन्जीर चीराहे झांपि।
गागरि-वारि ढारि करि पीछल,
चलतहि अंगुलि चांपि॥

माधव तुया अभिसारक लागि।
दुस्तर पन्थ गमन धनि साधये,
मन्दिरे जामिनि जागि।
कर युगे नयन मूंदि चलि भामिनि,
तिमिर पयानक आगे।
कर कंगण-पण कणि मुख बन्धन,
शिखर भुजंग गुरुपाशे॥

गुरुजन बचन बधिर सम मानइ,
आन सुनइ कह आन।
परिजन बचने मुगधरि सम हासइ,
'गोविन्ददास' परमान।

(पद कल्पतरु १००७)

राजा हरिनारायण के अनुरोध पर इन्होंने 'रामचरित-गीत' नामक काव्य की तथा खेतड़ी के राजा सन्तोषदत्त के आग्रह पर इन्होंने 'संगीत-माधव'

नाटक की रचना की थी। इनके अतिरिक्त ये एक पद-संग्रह 'एकान्तपद' (५१ पद) के भी कर्ता बताये जाते हैं।

द० श्री०

गोविन्ददास चक्रवर्ती

गोविन्ददास चक्रवर्ती बीराकुली ग्राम के रहने वाले और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १५८३ ई० के आस-पास ठहरता है।' 'भक्ति-रत्नाकार' में इन्हें श्रीनिवास आचार्य का प्रिय शिष्य, गीत-वाद्य में निपुण और भक्तिमूर्ति कहा गया है। ये गोविन्ददास कविराज के समकालीन और उनके गुरुभाई थे। इनके गुरु श्रीनिवासाचार्य इन्हें 'भावक-चक्रवर्ती' कहा करते थे। इनकी पत्नी का नाम सुपरिता था। इनके राजवल्लभ, राधाविनोद और किशोरीदास नामक तीन पुत्र थे।

आचार्येर अतिप्रिय शिष्य चक्रवर्ती।
गीत वाद्य-विधाद्यनिपुण भक्ति मूर्ति॥

'पद-कल्पतरु' में इनके ६ पद संकलित हैं। इनमें से दो पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१)

राधाकृष्ण आख्यान पर बंगला पद

पियार फुलेर बने पियासी भ्रमरा।
पिया बिने मधुना खाय उड़े बेड़ाय तारा॥

मों यदि जानिताम पिया जावे रे छाड़िया।
प्राणे-प्राण दिया रखि ताम बांधिया।

कौन निदारुण विधि मोर पिया निम।
छार पराण केने अबहुं रहिल॥

मरम भितर मोर रहिगेल दुःख।
निचय मरिव पियार ना देखिया मुख॥

एइ खाने करित केलि नागर राज।
के वा निल कि वा हइल के पड़िल बाज॥

सेपियार प्रेयसी आमि आदि एकाकिनी।
ए छार शरीरे रहे निलाज पराणी॥

चरणे धरिया कांदे गोविन्द दासिया।
मुई अभागिया आगे बाइव मरिया॥

(पदकल्पतरु, १६५५)

'प्रियतम की पुष्पित बाटिका में उनके बिना पिपासित भ्रमर मधुपान न कर संभ्रमित हैं। यदि मैं जानती कि मुझे छोड़कर चले जावेंगे तो उन्हें मैं प्राण बन्धन में बाँध रखती। भाग्य की किस निर्दय विडम्बना ने मुझे प्रिय से वंचित कर दिया है। मेरा क्षण-भंगुर शरीर अब क्यों जीवित है? मेरे हृदय का दुःख हृदय में ही रह गया। प्रिय के दर्शन बिना निश्चय मेरा प्राणान्त हो जायेगा। इसी स्थान पर नागर (कृष्ण) ने रास-क्रीड़ा की थी। किसने मुझसे मेरे प्रिय को छीन लिया, यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है। मेरे मुख पर किसने इतना प्रबल वज्रपात किया है? मैं एक महान् प्रिय की प्रिया हूँ, मेरे निर्लज्ज प्राण इस क्षारयुक्त शरीर में अब भी जीवित हैं। राधा चरणों का स्पर्श कर उनका अनुचर गोविन्ददास (दासिया) क्रन्दन करता है-'मुझ अभागिनी को पहले ही मर जाना चाहिए।'

(२)

ब्रजबुली पद

उलसित मझु हिया, आज आवोब पिया,
दइवे कइल शुभ बानी।
शुभ सूचक यत प्रति भगै बैकत,
अतए निचय करि मानी॥

सजनी सबहि बिपद दुर गैल।
सुख सम्पद बिहि आनि मिलायब,
अइछन मति गति भेल॥

मंगल कलस पर देह नव पल्लव,
रोपहि ठामहि ठाम।
घरह गणक आनि, करह विभूषित,
तुरिते मिलए जनु श्याम॥

हरिद दाड़िम काजर दरपण,
दधि घृत रतन प्रदीपे।
सुवरण भाजन लाजहि मरि-मरि,
राखह नयन समीपे॥

नव नव रंगिणी देइ हलुआ हुलि,
बसन भूषण करु शोभा।
प्राण प्राण हरि निज घरे आओब
गोविन्ददास मन लोभा॥

(पद कल्पतरु)

कृष्ण वृन्दावन का परित्याग कर सदैव के लिए मथुरा चले गये हैं। विरहक्लान्ता राधा स्वप्न देखती हैं कि प्रातःकाल प्रिय (कृष्ण) मथुरा से वृन्दावन आ रहे हैं। प्रिय मिलन के इस संकेत से उल्लसित राधा अपनी सखी से हृदयोल्लास व्यक्त कर रही हैं—'प्रिय के आगमन संकेत से मेरा मन उल्लसित हैं। दैव (भाग्य) ने यह शुभ संकेत मुझे दिया है। प्रिय के आगमन के सभी शुभ चिन्ह मेरे अंग-अंग में प्रकट हुए हैं। अतः प्रिय आगमन के संकेत के प्रति मेरे मन में प्रगाढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ है। सजनि! मेरी सभी पीड़ायें समापन पर हैं। मन में यह भाव पल्लवित हो रहा है कि विधि मुझे सुख-सम्पत्ति से परिपूर्ण करने की कृपा करेंगे। नव पल्लवों से सुशोभित मंगल कलशों की स्थापना मैं स्थान-स्थान पर करूँगी। घर में गणक (ज्योतिषी) को आमन्त्रित कर मैं उसे दान दक्षिणा दूँगी, जिससे श्याम से तत्क्षण मिलन हो जाए। मैं हरिद्रा, दाड़िम, काजल, दर्पण, रत्न, घृत, दधि से उस प्रिय का अभिनन्दन-अभिषेक करूँगी, स्वर्ण थालों में खील भर कर मेरे (नेत्रों के) निकट रखो। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित नव भंगिमाओं से मेरे सम्मुख उल्लसित भाव से नृत्य करो। प्राणों के प्राण हरि मेरे गृह में प्रवेश कर रहे हैं।'

द० श्री०

गोस्वामीदास

गोस्वामीदास के बारे में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती है। 'प्रेम-विलास' और 'नरोत्तम-विलास' से ज्ञात होता है कि ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। डा० सुकुमार सेन ने अपने 'ब्रजबुली' में इनका एक पद उद्धृत किया है, जो नीचे दिया जा रहा है—

कानाइ गाएर गरब नहे भाल।
अपना भालाइ चाओ, मरमे चलिया याओ,
पाछे नन्द गोसेर गारि टाल॥

केमन वा रूप धर, किसेर गरव कर,
राखाल हइया एत वेश।
मथुरा नगर माझे चल देखि अइ-साजे,
कपाले टालनि आध केश॥

चलिते ना जान पथे, मोहन मुरलि हाथे,
बाजन नुपुर दिया पाय।
आमार परेर नारी, तेजि से मरम करि,
हाथ दिते चाओ पारा गाय॥

आसि हाथ देहि हारे, कि आर बलिब तारे,
मुखे बल कांचली उतार।
गोस्वामी दासेर बानी, हासे प्रिय चुड़ामणि,
बड़ कोप देखिया राधार।

(हि० ब्रज० बु० ४१०)

द० श्री०

गौरकिशोर शिरोमणि

गौरकिशोर वर्धमान की काटोया तहसील के अन्तर्गत चिताघटी ग्राम के धनकृष्ण मुखोपाध्याय के पुत्र थे।

बाल्यावस्था में ये लीला मण्डलियों की लीलाओं का रसास्वादन करते थे। पढ़ने—लिखने के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। बड़े होने पर इनका विवाह प्रसिद्ध सतीमाँ की पुत्री रामदासी से कर दिया गया।

बीस वर्ष की आयु हो चुकी थी—किंतु गौर किशोर की पुस्तकों से भेंट तक नहीं हुई थी। एक दिन एक ग्रामवासी ने कह दिया—'गौर ! तू अपने कुल का कलंक बनकर रह गया।'

गौर को बात लग गयी और इन्होंने तब से पढ़ना-लिखना सीखना आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद ये काटोया में पंचानन तर्करत्न की टोल में भरती हो गये। उसके अनन्तर काटोया के गौरांग-बाड़ा के श्री चरनदास पंडित के निकट अध्ययन कर ये भक्तिशास्त्र के मर्मज्ञ हो गये। इन्होंने फरीदपुर के श्री विनोदीलाल ठाकुर महाराज से श्रीकृष्ण-मंत्र की दीक्षा ली। तत्पश्चात् काटोया के श्री गौरांग महाप्रभु के नाट्य मंदिर में रहकर अध्ययन-अध्यापन करने लगे।

काटोया में रहते समय शिरोमणि महाशय प्रातः काल श्री गौरांग की मंगला आरती के दर्शन कर प्रभाती, स्मरण-कीर्तन, गंगा-स्नान, संध्या, नाम-जप, मंत्रोच्चारण, लीला चिंतनादि करते-करते दिन के दो वजे तक का समय अतिवाहित करते। तत्पश्चात् जिस स्थान पर वैष्णवगण मूत्रत्याग करते, उसका परिष्कार करते और गंगा के पथ पर झाड़ू लगाते। झाड़ू लगाकर गंगा स्नान, महाप्रभु-दर्शन परिक्रमादि कर समागत वैष्णवों और गोस्वामीगण को दण्डवत् प्रणाम करते और मंदिर के वाहर फेंकी हुई वैष्णव प्रसादी की कणिका उठाकर मुख में डालते। तत्पश्चात् चार मुट्ठी चावल उवालकर उसमें सेंधा नमक डाल गिरधारीका भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते। तीसरे पहर छात्रों को लेकर अध्यापन करते। प्रतिदिन जिस विषय का वर्णन करते अंत में उसका श्री गौरांग में—पर्यवसान और समन्वय दिखाते हुए पाठ पूर्ण करते।

काटोया में शिरोमणि महाशय की एक प्रसिद्ध गोष्ठी थी। श्रीविनोदी ठाकुर उसके एक प्रमुख सदस्य थे। ढाका के उषसि ग्राम निवासी अद्वैतवंशी श्री वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी प्रभु और उनके भाई जगद्वंधु प्रभु भी गृह त्यागकर और श्री किशोरदास बाबा जी महाराज से वेश ग्रहण कर इनकी गोष्ठी में सम्मिलित हो गये।

एक ब्राह्मण जमींदार के आग्रह पर एकबार शिरोमणि महाशय को एक मासके भागवत पाठ के लिए वर्धमान के निकट बातो ग्राम में मण्डलीसहित जाना पड़ा। वहाँ जाने पर पता लगा कि उस ग्राम में कोई विष्णु मंदिर या शालग्राम की शिला नहीं है। उसी समय इन्होंने जमींदार को बुलाकर कहा—"जिस ग्राम में विष्णु की अर्चा-पूजा नहीं, वहाँ मैं जल भी ग्रहण नहीं करता।" ये लौटने की तैयारी करने लगे। इतने वैष्णव गाँव से भूखे लौट जायँ, इसे ठीक न समझकर जमींदार ने दूसरे गांव से शालग्राम मँगवाकर उनकी सेवा करवाई और शिरोमणि महाशयको उनका प्रसाद ग्रहणकरने को राजी किया।

कुछ समय बाद शिरोमणि सपरिवार वृन्दावन चले गये। वहाँ केशीघाट में स्थित एक मकान में गिरिराज की सेवा लेकर रहने लगे। वृन्दावन में ये अपराह्न में छात्रों को श्रीमद्भागवत पढ़ाया करते थे।

कुछ दिन वृन्दावन में रहने के पश्चात् शिरोमणि जी भयंकर रूप से व्याधिग्रस्त हुए। इनके जीवित रहने की आशा न रही। जीवन का अन्त होते देख इन्होंने मदन-मोहन ठौर के सिद्ध नित्यानन्द बाबाजी से वेश लिया। अब नाम हुआ श्री गौरकिशोर शिरोमणि। कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद इनका स्वास्थ्य ठीक हो गया। तब सिद्ध श्री बलराम दास की आज्ञा से शिरोमणिजी कुञ्ज छोड़कर मदन मोहन स्थान में गुरुदेव के निकट पृथक् भाव से रहते हुए भजन करने लगे। शिरोमणि जी के वेशाश्रय के कुछ ही दिन बाद पंडित रामकृष्ण दास बाबा ने सिद्ध नित्यानन्द दास बाबा से दीक्षा ली। सिद्ध बाबा ने

उनसे कहा—"शिरोमणि तुम्हारा गुरु भाई है तो भी उसमें गुरु बुद्धि रखना।"

उस समय वृन्दावन में सिद्ध नित्यानन्ददास बाबा और पण्डित राम कृष्णदास के अतिरिक्त सिद्ध श्री बलराम दास बाबाजी, श्री ब्रह्मानन्द गोस्वामी पाद, श्री नृसिंहानन्द प्रभु, अद्वैतवंश के श्री राधिका नाथ गोस्वामी, श्री नीलमणि गोस्वामी, श्री हरचन्द्र गोस्वामी, ताड़ास के श्री गंगा प्रसाद राय, मदनमोहन मंदिर कामादार के प्रसिद्ध कीर्तनिया श्री हाजरा आदि अनेक प्रसिद्ध साधु और वैष्णव भक्त रहते थे। वे छोटे बड़े सभी साधकों के आचार-व्यवहार पर कड़ी दृष्टि रखते थे। यदि कोई साधु-वैष्णवों की मर्यादा का उल्लंघन करता तो उसपर शासन करते थे।

ये सभी शिरोमणिजी को बड़ी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। एक बार हेतमपुर की रानी वृन्दावन आयी थीं। वे शिरोमणि महाशय का भागवत पाठ सुनकर परमानन्दित हुईं। पाठ के पश्चात् उन्होंने इनके पास दक्षिणा के रूप में कुछ द्रव्य के साथ फल-फूल और वस्त्रादि भेज दिये। रानी के हृदय को ठेस न पहुंचे यह सोचकर गौर शिरोमणि ने इसे स्वीकार कर लिया। इसपर वृन्दावन के वैष्णवों ने इनकी भर्त्सना की। शिरोमणि महाशय बहुत दुःखी हुए। इन्होंने दोष को स्वीकार किया और इसके लिए दण्ड देने की प्रार्थना की। वैष्णवों ने आदेश दिया कि वे एक वर्ष के भीतर वृन्दावन के जितने मंदिर हैं, उन सबमें बिना आह्वान के भागवत पाठ करें। वृन्दावन में उस समय तीन हजार मंदिर थे। एक-एक दिन कई मंदिरों में पाठ किये बिना इस आदेश का पालन करना कठिन था। शिरोमणि महाशय ने इस कठोर आदेश का पालन किया।

शिरोमणि महाशय कभी-कभी अपनी कुटिया पर वैष्णवों को आमंत्रित कर उन्हें प्रसाद सेवन कराते थे। एक बार निमंत्रित वैष्णवों ने एक वैष्णव के इनकी पंक्ति में बैठने पर आपत्ति की, क्योंकि उसने कोई घृणित कार्य किया था। शिरोमणिजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—"माना कि इन्होंने कोई प्रतिकूल आचरण किया है, पर इसके लिए इनपर शासन किया जाता है। मैंने अपने जीवन में वैष्णवों के लिए निर्धारित आचरण में प्रतिकूल आचरण किया है, उसके लिए आप मुझसे कुछ नहीं कहते।" तब वैष्णवों ने अपनी आपत्ति उठा ली। जिनके विरुद्ध आपत्ति की गयी थी, वे भी भविष्य के लिए सावधान हो गये।

शिरोमणिजी सदैव भावमग्न रहते थे। थोड़ासा भी उद्दीपन होने पर गहरी डुबकी लगा जाते।

नवद्वीप के श्रीचैतन्यदास बाबा, तथा श्रीराधिका प्रसाद गोस्वामी से शिरोमणिजी का बड़ा प्रेम-सम्बन्ध था। श्री चैतन्यदास का जिस दिन परलोक वास हुआ, उसी दिन शिरोमणि जी ने रात्रि में स्वप्न में सुना कि वे कह रहे हैं--"शिरोमणि मैं आया!" वे समझ गये कि बाबा देह छोड़ चुके हैं।

कुछ दिनों बाद श्रीराधिका प्रसाद गोस्वामी गौर-मण्डल के लिए प्रस्थान किया। उन्हें छोड़ने के लिए शिरोमणिमहाशय मथुरा स्टेशन गये। गाड़ी ने जैसे ही सीटी दी, शिरोमणि महाशय रोते-रोते प्लेटफार्म पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

इन दोनों का वियोग इतना असह्य हुआ कि श्री राधिकानाथ गोस्वामी के वृन्दावन चले जाने के चार-पाँच दिन वाद ही सन् १८९० ई० में इन्होंने प्राण त्याग दिये।

स० गु०

गौरगोविन्ददास

श्री गौरगोविन्ददास बाबाजी का वास्तविक नाम श्री गुरुदास था। इनका जन्म मेदिनीपुर जिले के द्वारिबेड़ा गाँव में सम्वत् १८७९ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री हरिप्रसाद था। बचपन से ही इनमें भक्ति के लक्षण प्रबल थे। दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था

में ही इन्होंने मुग्ध-व्याकरण का अध्ययन किया और श्रीमद्भागवत और चैतन्य-चरितामृत पढ़-पढ़कर लोगों को सुनाने लगे। श्री मधुसूदनदास बाबाजी ने इन्हें श्रीकृष्ण-नाम महामंत्र का जप करने को कहा। अब वे हर समय नाम-जप करते रहते। इन्होंने श्रीपाद अखिलचन्द्र ठाकुर गोस्वामी से मंत्र-दीक्षा ग्रहण की। इसी बीच इनकी माँ की मृत्यु हो गयी। मरते समय इनकी माँ ने इनसे विवाह करने का आग्रह किया। लेकिन सिद्ध श्री गौरकिशोरदास बाबा चाहते थे कि ये रूप-सनातन का मार्ग ग्रहण करें। इसी बीच इनके गुरु श्री मधुसूदनदासजी वृन्दावन चले गये। अब ये अत्यंत दुःखी रहने लगे। इनके पिता ने सोचा कि यदि गुरुदास की शादी कर दें तो शायद इसका मन परिवर्तित हो जाय। इनकी शादी हो गयी। शादी की रात ही ये घर छोड़कर नवद्वीप चले गये। वहाँ एक महात्मा के आश्रम में रहने लगे। एक दिन उस महात्मा ने इनसे कहा 'मेरी इच्छा है कि तुम मुझसे वेश ग्रहण कर इस आश्रम के महन्त हो जाओ।' इन्होंने इनकार कर दिया। इस पर महात्मा ने क्रुद्ध होकर इनको शाप दे दिया और कहा- 'जाओ, तुम्हारा इस जन्म में भजन सिद्ध नहीं होगा।' उसी समय इन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और नवद्वीप के 'बड़े अखाड़े' के महन्त जी से वेश ग्रहण कर लिया। तभी से इनका नाम श्री गौरगोविन्ददास हुआ। किसी प्रकार नाम-जप करते रहने से उस महात्मा ने इन्हें क्षमा कर दिया। अब ये वहाँ से वृन्दावन चले गये और वहाँ विभिन्न श्रीकृष्ण लीला-स्थलियों के दर्शन किए। कुछ दिनों बाद ये श्री श्यामसुन्दरजी के मंदिर की समाजबाड़ी में रहकर भजन करने लगे। वहाँ कालीदह के सिद्ध श्री जगदीशदास बाबा जी का सत्संग भी करते। इसके बाद इन्होंने सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा की गुटिका का अभ्यास किया। इनके यहाँ जब दर्शनार्थियों की भीड़ लगने लगी तब इन्होंने गोवर्द्धन से चार मील दूर 'अरि' नामक स्थान में जाकर आसन लगाया। वहाँ से ये किल्लोल-कुण्ड के पास जाकर रहने लगे। कुछ दिनों तक इन्होंने पूछरी में अप्सरा-कुण्ड के निकट भी रहकर भजन किया। सम्वत् २०१६ की माघ बदी प्रतिपदा को इन्होंने अपना शरीर त्यागा। अप्सरा कुण्ड के निकट ही इनकी समाधि बनी हुई है।

मु० अ०

गौरचरणदास

गौरचरण दास का जन्म बंगाल के यशोहर जिले के तालखाड़ी ग्राम में हुआ था। ये चैतन्य महाप्रभु के परिकर श्री लोकनाथ गोस्वामी के वंशज थे।

अल्पावस्था में ही लोकनाथ गोस्वामी और उनके आराध्य श्री नरोत्तम ठाकुर की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर ये नवद्वीप चले गये। वहाँ सिद्ध श्रीचैतन्य दास बाबा का आश्रय लिया। कुछ समय गुरुदेव की सेवा में रहने के पश्चात् इन्होंने व्रजमंडल के दर्शन की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने कहा, 'जाओ, पर वहाँ जाकर उससे पीछा छुड़ा पाओ, तब न वापस आओगे।'

गौरचरण दास ने कहा, "आप निश्चित रहें। मैं चौरासी कोस व्रजमण्डल की परिक्रमा कर शीघ्र लौट आऊँगा।"

वृन्दावन जाकर गौरचरण दास ने व्रजमण्डल की परिक्रमा की। अंत में महावन में जाकर दाऊजी के दर्शन किये। रात्रि वहीं व्यतीत कर दूसरे दिन प्रातः काल व्रज की सीमा पार कर नवद्वीप जाने का निश्चय किया। रात्रि में जब ये सो रहे थे तो दाऊजी ने इन्हें नाम लेकर पुकारा और कहा--"तू मुझे अच्छा लगता है। यहाँ इस गुफा में रहकर भजन कर। तेरी सर्वार्थसिद्धि होगी।".

गौरचरण दास को अपने गुरु की बात याद आ गयी। इन्होंने कहा, "मैं गुरुदेव की आज्ञानुसार गौड़मण्डल जाऊँगा। यहाँ नहीं रहूँगा।"

"मैं नहीं जाने दूँगा।" दाऊजी ने मुस्कराते हुए कहा।

गौरचरण बड़े धर्म संकट में पड़ गये। दाऊजी की आज्ञा का पालन करें या गुरुदेव की? कुछ देर बाद सोचकर बोले—"नहीं, मैं जाऊँगा और इसी क्षण जाऊँगा" इतना कहकर उठकर चल पड़े। अर्धरात्रि का समय था। ये चले जा रहे थे। साथ ही पीछे मुड़कर देखते भी जा रहे थे। बहुत दूर तक चलने के बाद सोचा कि व्रज की सीमा पार कर चुका हूँ, पर प्रातःकाल होने पर उन्होंने देखा तो भौंचक्के रह गये। उन्होंने देखा कि वे सारी रात देवकुण्ड की ही परिक्रमा करते रहे हैं। गौरचरणदास ने समझ लिया कि दाऊ जी से पीछा छुड़ाना मुश्किल है। यह उनकी बतायी हुई गुफा में रहकर भजन करने लगे।

ये नित्य प्रातःकाल उठते और स्नानादि के बाद पुनः गुफा में चले जाते। वहाँ ये रामकृष्ण नाम का जप करते। अपरान्ह में गुफा से बाहर निकलते। स्नान कर कुछ समय अध्ययन करते। सन्ध्या समय मधुकरी के लिए निकलते। किसी से भी वार्तालाप नहीं करते। वीस वर्ष का समय इसी प्रकार व्यतीत हो गया। निद्रित अवस्था में भी इनके मुख से रामकृष्ण का नाम स्पष्ट सुना जाता।

श्री गौरचरणदास राधारानी का बड़ा भाई होने का अभिमान रखते और इसी भाव से भजन करते थे। दाऊजी और श्रीकृष्ण से इनका सख्य भाव था। प्रसिद्ध है कि दाऊजी प्रत्यक्ष रूप से इन्हें माखन मिसरी खिला जाया करते थे।

कुछ ही दिनों में एक सिद्ध महात्मा के रूप में इनकी ख्याति हो गयी। बंगदेश के साहा जाति के एक सज्जन इनसे दीक्षा प्राप्त करने के लिए आये। बाबा जब मधुकरी को जाते तो वे नित्य इनकी गुफा के बाहर बैठे दिखाई पड़ते। पर बाबा उनसे कोई बातचीत नहीं करते। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया, तब एक दिन इन्होंने पूछा—"तुम कौन हो और क्या चाहते हो?" साहा महाशय ने अपना परिचय देते हुए कहा—"मैं आपका कृपा प्रार्थी हूँ।"

"बगल में क्या लिये हो?"

"यह चैतन्य चरितामृत है।"

बाबा तत्काल उन्हें गुफा में ले गये और 'चैतन्यचरितामृत' सुनाने को कहा। तबसे लगातार एक वर्ष तक साहा महाशय इन्हें नित्य चैतन्य चरितामृत सुनाते रहे। इसी बीच बाबा ने उन्हें दीक्षा दी। वेश देते हुए नाम रखा-दयालदास। दयालदास गौरचरण बाबा के प्रथम शिष्य थे। इसके पश्चात् और भी लोगों ने शिष्यत्व ग्रहण किया। उनमें मुख्य थे—श्रीजगन्नाथदास बाबा।

चैतन्यचरितामृत सुनते समय श्रीगौरचरणदास बाबा इतना प्रेम विभोर हो जाते कि प्रेमाश्रुओं से उनका उत्तरीय और बहिर्वास भींग जाता था।

एक बार की बात है, ये सख्य भाव के आवेश में वृन्दावन में गोविन्द जी के दर्शन के लिए गये। इन्होंने गोविन्द जी के श्री विग्रह के सामने अपना चरण बढ़ाया और कहा—"ले चरण छू ले" तो गोविन्दजी के पुजारियों ने इन्हें पागल समझकर मन्दिर से बाहर निकाल दिया। बाहर जाते समय लोगों ने देखा कि ये मुड़मुड़कर गोविन्दजी की ओर देखते जा रहे हैं और कहते जा रहे हैं—"अच्छा, निकाल दें बाहर। अभी खेलने निकलेगा न। जान ले, मेरा नाम गौरचरण है। जब तक मेरी चरण धूलि न ली, देखूँगा किसके साथ खेलता है?"

श्री गौरचरणदास कुछ दिन बाद कुन्जरा ग्राम में रहने लगे। ये बहुत दिनों तक जीवित रहे। शेष अवस्था में वृन्दावन में अपने शिष्य श्रीकृष्ण चैतन्य दास (राय साहब श्री कैलाश दास) के साथ मनीपुर कुन्ज में रहे। इसी स्थान पर इनका देहावसान हुआ।

स० गु०

गौरदास

गौरदास के जन्मस्थान और जन्म समय के विषय में निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है। एक पद में

इन्होंने अपने को 'यदुनन्दन के दास का दास' कहा है (कहे यदुनन्दन दासक दास) इससे यह संकेत मिलता है कि ये प्रसिद्ध वैष्णव-भक्त और पदकर्ता यदुनन्दन ठाकुर के शिष्य थे। यदुनन्दन आचार्य श्री निवास की पुत्री हेमलता ठकुरानी के शिष्य थे। इन्होंने 'कर्णानन्द' नामक ग्रंथ की रचना की थी और १६०७ ई० तक इनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। इनके मात्र ५ पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। पद संख्या १५२६ बंगला में है। यह पद प्रार्थनापरक है। अन्य पद 'व्रजबुली' में हैं। इनका 'व्रजबुली' का एक पद नीचे उद्धृत हैं। यह पद ज्योत्स्ना-अभिसारिका का है—

एत शुनि दूती (दूति) चलिल अविलम्बने,
आखि मेलि उषनित कानूक पास।
नयन तरंगे सकल समुझावल,
पुन हेरि कुमुद कहै परकाश ।।

कुमुदिनी गुल परिमले जा शीतल,
काहे बिलमायल श्यामल भृंग।
दूतिक वचने चलिल पर नागर,
तुरतहि गौर हृदय परसन्न।

द० श्री०

गौर सुन्दर

गौर सुन्दर गौरदास के समसामयिक और वैष्णवदास के पूर्ववर्ती वैष्णव भक्त थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में विशेष सूचना नहीं मिलती। 'पद-कल्पतरु' में इनके पाँच पद संकलित हैं। 'कीर्तनानन्द' में भी 'श्रीराधाकृष्णेर समुद्र स्वरूप' शीर्षक इनका एक पद मिलता है, जो राधाकृष्ण-जन्म-लीला विषयक है। इनके दो पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१)

शुन शुन वैष्णव ठाकुर।
दोष परिहर, सुनह श्रवण मधुर,
बड़ अभिलाषे राधाकृष्ण लीला
गीतहि संगति करि।

हम नाहि हय बुझते न पारि,
सबे मात्र आशा धरि ।।

तोमरा वैष्णव, सब श्रोतागन,
चरन भरसा करि।
आपन इच्छायै आमि लेखि
सेइ लेखाय गौर हरि ।।

मोर अपराध ठाकुर वैष्णव,
क्षेमिया करह पान।
श्रीराधाकृष्ण लीला-समुद्रहि
कीर्तन आनन्द नाम।
तोमरा वैष्णव परम वान्धव,
पूर मोर अभिलाषा।
गौरांग चरन मधुकरे गौर सुन्दर आशा ।।

(कीर्तनानन्द—पाण्डुलिपि)

(२)

राधानाथ कि तव विचित्र माया।
एकला आइते एकला पाय पड़िया काया।
राधा नाथ सकलि एमनि प्राय।

भाई बन्धु पुत्र कन्या,
कलत्रादि संगे केह नाहि चाय।
राधा नाथ सकलि अमनि देखि
तथापि मने खेद नाहि हय आमार वलिया लेखि।

राधानाथ सकल केलिया यावे।
शरीर लइया जले केलाइया
उलटि फेरि ना चावे ।।

राधानाथ केह कार किछू नहै।
विचारिया देखि सव मिथा
माया एबोध स्थिरना रहै
राधानाथ शुनि शतवर्ष आइ
राधानाथ देखियाउ भ्रम हय।

वहुकाल जीव कतेक करिव क्षमा नाहि मने लय
राधानाथ भुवने भकति साइ
कहये गौर तोमारे ता भजि
के कौथा हो याछै पारा।

—(श्री गौरपद-तरंगिनी, पृ० ३४१, पद ३४८)

द० श्री०

गौरांग (चैतन्य महाप्रभु)

'विश्व सारतंत्र' नामक तन्त्र ग्रन्थ में एक श्लोक आया है—

गंगाया दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे,
कलिपापविनाशाय शची गर्भे सनातनि।
जनिष्यति मिश्र पुरन्दर गृहे स्वयं,
फाल्गुने पौर्नमास्याम् निशायां गौर विग्रहः॥

'अदूर भविष्य में, कलिकाल में, त्रिताप ज्वाला से जर्जरित जीव के पाप-ताप विनाश निमित्त स्वयं भगवान् कृष्ण नवद्वीप में गंगा के दक्षिणी पूर्ववर्ती मायापुर के मिश्र पण्डित पुरन्दर के गृह में फाल्गुन की पूर्णिमा को शचो के गर्भ से अवतार ग्रहण करेंगे।'

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८६ई० की फाल्गुनी पूर्णिमाको संध्या को (चन्द्र ग्रहण के समय) नवद्वीप में शची माता के गर्भ से हुआ था। इनके पिता जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर वैदिक श्रेणी के ब्राह्मण थे। इनके पितामह उपेन्द्र मिश्र सिलहट निवासी थे और नवद्वीप में आकर बस गए थे। यह भी प्रसिद्धि है कि इनके पिता उड़ीसा-निवासी थे। राजा कपिलेन्द्र के समय में ये याजपुर नामक गौल से श्रोहट्ट चले आये थे। जगन्नाथ मिश्र के श्वसुर नीलाम्बर चक्रवर्ती अपने समय के एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। तद्युगीन मुसलमान शासक भी उन्हें विशेप सम्मान देते थे। शची देवी के दो पुत्र हुए-विश्वरूप और विश्वम्भर (चैतन्य)। उस समय नवद्वीप में अद्वैत की ख्याति थी। अद्वैत के निर्देशन में विश्वरूप ने न्याय, व्याकरण, वेदान्त और भक्ति-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। शिक्षा समापन के पश्चात् ही विश्वरूप गृहत्यागी सन्यासी हो गये। 'चैतन्य-चरितामृत' के अनुसार उन्होंने १५१० ई० में सन्यास ग्रहण किया था। चैतन्य, अद्वैत के कृपा भाजनों में से थे। देहकान्ति के कारण वे चैतन्य को 'गौरा' कहते थे। शची देवी इन्हें निमाई कहतीं। व्याकरण और भक्ति-शास्त्र में निष्णात होने के पश्चात् नवद्वीप में इन्होंने एक क्षेत्र की स्थापना की, जिसमें ये व्याकरण और भक्तिशास्त्र का अध्यापन करते थे। १६ वर्ष की आयु में लक्ष्मीप्रिया देवी के साथ इन्होंने दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। परन्तु सर्पदंश के कारण लक्ष्मी प्रिया की मृत्यु हो गई। अपनी माता के आग्रह से इन्होंने पुनः विष्णु प्रिया के साथ विवाह कर लिया। महाप्रभु ने पूर्व वंग की भी यात्रा की। वहाँ इन्होंने भागवत पाठ एवं नाम-संकीर्तन का प्रचार किया। नवद्वीप से लौटकर इन्होंने श्रीराम पण्डित के निवास पर एक भक्त-संकीर्तन गोष्ठी की स्थापना की। चैतन्य के अतिरिक्त मुकुन्द दत्त, हरिदास और नित्यानन्द इस गोष्ठी के सदस्य थे। उनके सहयोग से इन्होंने नाम-संकीर्तन आरम्भ किया। तत्पश्चात् पितृ श्राद्ध के निमित्त इन्होंने गया की यात्रा की। वहां इन्होंने ईश्वर पुरी (माधवेन्द्र पुरी के शिष्य) से 'दशाक्षर-गोपालमंत्र' की दीक्षा ली। इस बीच नवद्वीप में संन्यासी केशव भारती पधारे। चैतन्य ने केशव भारती से सन्यास-दीक्षा लो और २४ वर्ष की आयु में गृह-त्याग कर सन्यासी हो गये। दीक्षा के पश्चात् केशव भारती ने इनका नामकरण 'श्रीकृष्ण चैतन्य' किया। चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी के निकट नीलाचल में निवास करने लगे। २४ वर्षों के नीलाचलवास के बीच ६ वर्षों तक ये दक्षिण की यात्रा करते रहे। इस पर्यटन काल में ही इन्होंने गोपाल भट्ट, राय रामानन्द आदि श्रेष्ठ भक्त जनों को अपना स्नेह-सानिध्य दिया। पुरी लौटने के पश्चात् इन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को दीक्षित किया और उन्हें बहु भुज मूर्ति का दर्शन कराया। राय रामानन्द, स्वरूप दामोदर,

काशी मिश्र पण्डित, राजा वानी नाथ, जगदानन्द, शंकर, शिखि माहिरी इत्यादि नीलाचल में चैतन्य के पार्षद थे। श्री चैतन्य की प्रेरणा से षट्गोस्वामियों ने क्रमशः वृन्दावन को अपनी साधना भूमि बनाया। शास्त्र-ग्रन्थ की मंत्र-साधना, जीवदया प्रचार, कृष्ण-प्रेम-वितरण और नाम-माहात्म्य-प्रकाशन का दायित्व हरिदास ठाकुर पर था। प्रेम-धर्म-प्रचार का दायित्व नित्यानन्द पर और भागवत् नाम-महात्म्य के प्रचार का दायित्व गदाधर एवं रघुनाथ भट्ट पर था।

इन्होंने सन् १५१५ई०में बलदेव भट्टाचार्य के साथ वृन्दावन की यात्रा की। काशी, प्रयाग, मथुरा की यात्रा करते हुए ये वृन्दावन पहुंचे। इस समय तक वृन्दावन की ख्याति तीर्थ स्थल के रूप में नहीं थी। यहां केवल माधवेन्द्र पुरी द्वारा स्थापित गोबर्द्धन गोपाल की मूर्ति थी। चैतन्य की प्रेरणा से ही सनातन एवं रूप गोस्वामी ने लुप्त तीर्थों का उद्धार किया। रूप गोस्वामी ने शास्त्र समर्थित निर्णय से राधा मूर्ति की प्रतिष्ठा की। मदनगोपाल, गोविन्द,तथा गोपीनाथ संज्ञक तीन विग्रहों के साथ राधा मूर्ति को भी युक्त किया गया। वल्लाभाचार्य द्वारा प्रस्तावित सम्प्रदाय में राधा भाव के लिए स्थान नहीं था। वृन्दावन से लौटने के पश्चात् चैतन्य १८ वर्षों तक पुरी में रहे। मात्र ४८ वर्ष ४ मास की आयु में सन् १५३३ में इन्होंने इह लीला संवरण किया। जनश्रुति के अनुसार ये जगन्नाथ मन्दिर में लीन हो गए। कुछ लोगों की धारणा है कि ये गदाधर सेवित गोपीनाथ की लघु मूर्ति में लीन हो गए। इसके पूर्व गंभीरा मन्दिर में इनके सहयोगी राय रामानन्द, स्वरूप दामोदर एवं सेवकगोविन्द का तिरोधान हो चुका था। इस अवसर पर चैतन्य के मुख से निम्नलिखित सन्देश निस्सृत हुआ—

चेतो दर्पन मार्जनं भव महादावाग्नि निर्वापनं,
श्रेयः कैरव चन्द्रिका, वितरणं विद्या वधू जीवनं।
आनन्दाम्बुधि वर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं,
सर्वात्म स्वपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्त्तनम् कीर्तनं॥

इनकी भक्ति का लक्ष्य प्रेम, दया, ममता और करुणा का प्रसार करके जन-कल्याण करना था। इनकी भक्ति का आधार 'अचिन्त्यभेदाभेद भक्ति दर्शन' था, जिसकी व्याख्या जीव गोस्वामी ने 'भगवत्-सन्दर्भ' में और विद्याभूषण ने 'गोविन्द भाष्य' में की है। चैतन्य गौड़ीय भक्ति पद्धति के प्रस्तावक थे। इनके निधन पर कृष्ण दास कविराज ने कहा है—

कृष्णलीलार सार, तार शत शत धार,
दश दिके बहे जाहा हइते।
ये चैतन्य लीला हय, सरोवर नक्षय,
मनोहंस चराइते ताहाते॥

द० श्री०

गौरांगदास (प्रथम)

गौरांगदास प्रथम का बचपन का नाम श्री धीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती था। इनका जन्म पं० बंगाल तथा चौबीस परगना के अन्तर्गत चाँगड़ीपोता गाँव में सन् १८८७ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री भूपेन्द्रनाथ तथा माता का नाम श्रीमती चण्डीदेवी था। इनके पितामह श्री द्वारकानाथ विद्याभूषण 'सोमप्रकाश' नामक अखबार निकालते थे। श्री गौरांगदास बाबा ने दार्जिलिंग से एण्ट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। फिर ये कलकत्ते के संस्कृत कालेज में भरती हुए। श्री स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता का इनपर विशेष अनुराग था। उनके कहने पर ही ये उनके साथ बेलूर गये, लेकिन बेलूर मठ के स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज ने वैष्णव जानकर इन्हें दीक्षा देने से असमर्थता प्रकट की। इन्होंने श्री रामदास बाबाजी से दीक्षा ग्रहण की और वहीं रहने का निश्चय कर लिया। लेकिन माता के दुःखी होने के कारण गुरु की आज्ञा से घर लौट आये। इण्टरमीडिएट की परीक्षा इन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् ये कलकत्ते के स्कॉटिश चर्च कालेज में भरती हुए। इनकी प्रतिभा को देखकर इनके अंग्रेज गुरु इन्हें 'मास्टर प्युरिटन'

कहकर पुकारते थे। अपने विवाह की बात सुनकर ये वैराग्य के कंटकाकीर्ण पथ पर चल निकले। श्री रामदास बाबाजी के परिकरों के साथ ये श्रीधाम पुरी चले गये। वहाँ से लौटने के बाद गुरु की आज्ञा से नवद्वीप चले गये और वहाँ की परमसिद्धा श्री ललितादीदी की सेवा में लग गये। कुछ दिन बाद वहाँ से वृन्दावन चले गये और कालियदह के सिद्ध श्री जगदीश बाबा की सेवा में रहकर भजन करने लगे। कुछ दिनों तक ये गोवर्धन के पंडित रामकृष्णदास बाबा से शास्त्राध्ययन करते रहे फिर ग्वालपोखरा के निकट कुटी बनाकर रहने लगे। यहाँ रहकर इन्होंने श्रीमद्भागवत, षट्संदर्भादि भक्ति-ग्रन्थों तथा ब्रजभाषा के वाणी ग्रन्थों का अध्ययन किया। कुछ ही दिनों में इन्होंने श्री हरिदास जी, श्री हरिव्यासदेवजी, श्री हरिवंशजी, श्री हरिरामव्यासजी और श्री वल्लभरसिकजी जैसे रसिकाचार्यों की सारी वाणियाँ कण्ठस्थ कर लीं। तत्पश्चात् अपने गुरु की आज्ञा से श्री धीरेन्द्रनाथ गुरुदेव से इन्होंने वैराग्य आश्रम की विधिवत् दीक्षा ली। तभी से ये श्री गौरांगदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। धीरे-धीरे इनका वैराग्य इतना तीव्र हो गया कि ये एक स्थान पर टिककर नहीं रह सके। जिन दिनों ये वृन्दाबन में शाहजहाँपुर की बगीची में रहते थे, उन दिनों तरुलताओं को 'राधासुधानिधि' का पाठ सुनाते। ये प्रायः कल्पतरुओं को 'राधारससुधानिधि' और 'वृन्दावनमहिमामृत' का पाठ सुनाया करते थे। कुछ दिनों तक ये दाऊजी की बगीची में भी रहे। वहाँ भी वृन्दावन महिमामृत को कथा सुनाते। इनकी कथा सुनने बाबा हंसदासजी, बाबा माधवदासजी, बाबा राधिकादास जी, बाबा वैष्णवदासजी, श्री अमोलकराम शास्त्रीजी तथा वृन्दावन के सभी प्रसिद्ध महात्मा और भक्तगण आया करते थे। लगभग ३५ वर्ष इनको प्रेमोन्माद में विचरण करते बीते। शेष अवस्था में ये वृन्दावन में रमणरेती-स्थित अपने काकागुरु के आश्रम में रहे। श्री ललितादासी के देहान्तोपरान्त ये दुःखी रहनेलगे। सन् १९५३ ई० में इनके गुरु श्री रामदास बाबा भी नहीं रहे। इन दोनों के वियोग में इन्होंने सन् १९५३ ई० के अगहन मास की शुक्ल एकादशी को प्राण त्याग दिये।

मु० अ०

गौरांगदास (द्वितीय)

गौरांगदास (द्वितीय) नित्यानन्द शाखा के भक्त थे। इन्हें 'गौरांगदास बैरागी प्रवीण' भी कहा गया है। इनका समय सन् १५८३ ई० के आसपास माना जाता है। **'चैतन्य चरितामृत'** में इनका उल्लेख मिलता है।

द० श्री०

गौरांगदास (तृतीय)

तीसरे गौरांगदास श्रीमन् नरहरि सरकार ठाकुर के शिष्य थे। इनके पिता का नाम श्री मधुसूदनदास था। ये 'रसकल्पवल्ली' के प्रणेता **रामगोपालदास** भट्ट के भ्राता थे।

द० श्री०

गौरांगदास (चतुर्थ)

चौथे गौरांगदास श्रीनिवासाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। 'कर्णामृत' में इनके विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

तार पर कृपा केल गौरांग दासे।
ताहार अनन्त गुन के वर्नित पारे॥
गोविन्द बोलितो चिंहों भावविष्ट मने।
निज प्रभु पादपद्म सदाचिते सने॥

(कर्णा १)

द० श्री०

गौरांगदास (पंचम)

पाँचवें गौरांगदास नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। ये मृदंग-वादन में अत्यन्त प्रवीण थे—

जय गौरांगदास वायन ठाकुर।
याहार मृदंग बोध ताप जाय दूर॥

(नरा० १-१२)

विख्यात खेतुरी के वैष्णव उत्सव में विग्रह प्रतिष्ठा के अवसर पर इन्होंने मृदंग-वादन द्वारा भक्तजनों को आनन्दित किया था।

द० श्री०

(नर्तक गोपाल, रामचन्द्र) गौरांगदास

(नर्तकगोपाल रामचन्द्र) गौरांगदास का उल्लेख चैतन्य चरितामृत (आदि० ११।५३) में मिलता है। इनके विषय में अन्य कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। इनका एक पद नीचे दिया जाता है—

(१)

रासलीला

नील नवघन रूप सोहन,
श्रवन कुन्तल दोलनि।
कनक कामिनि थीर दामिनि,
मधुर मधुरिन बोलनि॥

देख सखि मूरत मोहन-मोहनि॥
चारु चित्रित, वेश विरचित,
पोत निल पट शोहनि।
मत्त कुन्जर गमन मन्थर,
राज हंसिनि गामिनि॥

केलितान्तर, ताल पण्डित,
मुदर मन्जिर वाजनि।
पुलिन विपिने कुन्ज भवने,
वेकत मन मथ मांतिया।
सतत रह मति मातिया॥

(४९० अप्रकाशित पद २)

द० श्री०

(नव) गौरांगदास

'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली-लिटरेचर' में नव गौरांगदास नाम के एक गौड़ीय भक्त का उल्लेख मिलता है। 'जय श्रीनव गौरांगदास गुण राथी।' इनके विषय में अन्य कोई सूचना प्राप्त नहीं होती, न कोई पद ही प्राप्त है।

गौरीदास पंडित

गौरीदास 'पण्डित' गौरीदास ठाकुर 'पण्डित' नाम से विख्यात थे। इनका समय १५०९ ई० के आसपास माना जाता है। ये कलना निवासी कंसारि मिश्र के पुत्र एवं सूर्यदास पण्डित के कनिष्ठ भ्राता थे। ये दोनों भ्राता महाप्रभु चैतन्य एवं नित्यानन्द प्रभु के समसामयिक और उनके परम भक्त थे। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार ये वृन्दावन के सुबल सखा थे। गौरीदास की प्रेम भक्ति से चैतन्य महाप्रभु विशेष रूप से प्रभावित थे। उन्होंने इनको स्वहस्तलिखित गीता की प्रति उपहारस्वरूप दी थी। संन्यास-ग्रहण के एक वर्ष पूर्व नित्यानन्द प्रभु के साथ अम्बिका कलना में इनके घर महाप्रभु का शुभागमन हुआ था। इस घटना का उल्लेख पदकर्ता विष्णुदास ने अपने दो पदों में किया है—(पदकल्पतरु पद २३५८ व २३५९)। गौरीदास ने गौरांग और नित्यानन्द प्रभु की युगलमूर्ति-स्थापना की परम्परा चलायी। 'अद्वैत प्रकाश' में इनके विषय में कहा गया है—

महाप्रभुर अन्तरंग भक्त गौरीदास।
यवे गौर संगे करला कीर्तन विलास॥

गौर निताइ संगे बिनु धरै नाहि राय।
तार बन्धुगण महाप्रभुरे कहाय॥

एइ बालकेर आज्ञा कर दारा ग्रहे।
सभार आनन्द यदि थाके निज गृहे॥

(अद्वैत प्रकाश-२०)

गौरीदास महाप्रभु के अन्तरंग भक्त थे। ये चैतन्य के कीर्तन-सहयोगी थे और अपना घर-द्वार छोड़कर निरन्तर गौर-निताई के ही साथ रहते थे। इनके शुभेच्छुओं ने गौर निताई से निवेदन किया, 'महाप्रभु गौरीदास को दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने का आदेश दें। यदि ये गृहस्थ जीवन में लौट आवें तो हमें हर्ष होगा।'

ईशान नागर के अनुसार गौरीदास एक कुशल काष्ठशिल्पी थे। इन्होंने चैतन्य और नित्यानन्द प्रभु

की काष्ठ मूर्ति बनाई थी। अद्वैत प्रकाश में इनका उल्लेख मिलता है—

श्रीमान गौरीदास शिल्प कार्वे पटुतर।
अइछे शिल्प नाहि जाने देव-शिल्पी-वर॥
साक्षाते राखिया तिन गौर नित्यानन्दे।
दारु ब्रह्मे दुइ मूर्ति गढ़िला आनन्दे॥
(अद्वैत प्रकाश २०)

इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है:

धरनी शयने झरये नयने,
सघने काँपये अंग।
चम्पक बरन तापे मलिन,
हृदय दहे अनंग॥

किछु करुना करह कानाई।
तोहारि कटोख झरे जर जर,
अति क्षीन तनु राई॥

ए दिन यामिनी, जागिया कामिनी,
जपिया तोहारि नाम।
न जानिये किये, बेयाधि हइले
श्वास बहे अविराम॥

सब सखागन, करये रोदन,
कारन किछू ना जानि।
गौरीदास बिधि रचे महोषधि,
देवेर आदेश मानि
—३०।१६१ (श्री श्रीपद कल्पतरु पृ० १११)

द० श्री०

ज्ञानदास

ज्ञानदास वर्धमान के कांदड़ा नामक ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सन् १५३० ई० में हुआ था। इनकी स्मृति में इस ग्राम में प्रति वर्ष पौष मास की पूर्णिमा को एक मेला लगता है जिसे 'वैष्णव-मेला' कहा जाता है। इनका उल्लेख चैतन्य चरितामृत में इस प्रकार मिलता है—

राढ़ देशे 'कांदड़ा' नामेते ग्राम हय,
तथाय मंगल ज्ञानदासेर आलम॥

ये द्विजकुल में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने नित्यानन्द प्रभु की पत्नी 'जाह्नवीदेवी' से दीक्षा ली थी। 'चैतन्य-चरितामृत' में इन्हें नित्यानन्द का शिष्य कहा गया है—

पीताम्बर माधवाचार्य दास दामोदर।
शंकर मुकुन्द ज्ञानदास मनोहर॥
(चैतन्य चरितामृत—आदि लीला
परि० ११ पृ० ६२)

'नरोत्तम विलास' से ज्ञात होता है कि ये 'कटवा-उत्सव' और 'खेतुरी-उत्सव' में उपस्थित थे। 'गौर-पदतरंगिणी' में इनका स्मरण इस रूप में किया गया है—

'श्रील रघुपति उपाध्याय महीधर।
मुरारि मुकुन्द, ज्ञानदास, मनोहर॥
—(गौर-पद-तरंगिणी, पृ० ९७)

ये गोविन्ददास तथा बलरामदास के समकालीन थे। इनके भक्ति-विषयक पद 'ब्रजबुली' और 'बंगला' दोनों में मिलते हैं। नीचे इन दोनों के एक-एक पद उद्धृत हैं—

(१) ब्रजबुली पद

लहु लहु मूचक हास चेलि आउलि,
पुनि पुनि हेरसि फेरि।
जनु रतिपति संगे मिलन रंगभूमे,
ऐछन कयल पुछेरि॥

धनि हे, बुझलूं ए सब बात।
एत दिन दुहुँक मनोरथ पूरल,
भेटलि कानुक साथ॥

यँव (जब) तोहिं सखिगन निरजने पूछल,
तब तुहुँ छायल काय।
अब विहि सो सब बेकत कयल सखि,
कैछने गोपवि ताय।।

चोरिक वचन कहत सब गुरुजन,
सो सब पायलूँ साखि।
दश दिन दुरजन एक दिन सुजनक,
आज देखलूँ परतेकि।।

हाम सब निज जन कहनि रात दिन,
तो सब बुझलूँ आज काजै।

ज्ञानदास कह सखि तुहुँ बिरहन,
राई पायल वह राजे।।

—श्री प० क० त० पद २३०। पृ० १५५।

(२) बंगलापद

आलो मुजि (मुईं) जानोनां,
जानलै जाइताउ ना कदम्बेर तले।
चित्त हरिया निले छलिया नागर छले।।

रूपेर पारावारेर आँखि डूबि रे रहेल।
यौवने को मन हराइया गेल।।

घरै जाइते पथ मोर होल आपूरान।
अन्तरे विदरे हिया कि जानि करे परान।।

चान्दन चान्देर माझे मृगमेद धान्दा।
तार माझे हियार पुतलि रइल बान्धा।।

करि पीत वसन, रसना ताहे जड़ा।
विधि निरमित कूल कलंकेर कोड़ा।।

करितहे बसन कसन लाल बेढ़ा।
विधि निरमित धारे कनकेर कोड़ा।।

जाति कुल शील मोर हेन बुझि गेल।
भुवन भरिया मोर घोवना रहिल।।

कुलवती सती होया दुकुलें दिलूं दुख।
ज्ञानदास कहे दृढ़ करि थाक बूक।।

—(वैष्णव गीताञ्जलि, पृ०, १०७ ४७।)

घनश्यामदास कविराज

घनश्यामदास महाकवि गोविन्द कविराज के पौत्र और दिव्यसिंह के पुत्र थे। इनका समय १६५३ ई० माना जाता है। इनके गुरु श्रीनिवास आचार्य के पुत्र गोविन्दगीत थे। संम्भवतः ये गोपालदास के बड़े भाई थे जिन्होंने गोविन्द लीलामृत का बंगला में पद्यानुवाद किया था।

भक्त घनश्यामदास ने 'गोविन्दरतिमंजरी' नामक एक वैष्णव रसालंकार विषयक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की है। इसके अतिरिक्त 'रसमंजरी', 'पदरत्नाकर', 'पदरससार', 'पदरत्नावली', 'पदकल्पतरु', 'क्षणदागीत-चिन्तामणि', 'दास-हस्तलिखित-संग्रह', 'संकीर्त्तनामृत' आदि विभिन्न वैष्णव पद-संग्रह-ग्रन्थों में इनके पद संकलित हैं। इनके कुछ पद उदाहरण-स्वरूप नीचे दिये जा रहे हैं :—

(१)

जावक रचइते सचकित लोचन
पद संये बदन संचार।
अधर-राग संये बुझि अनुभव करु
कौन अधिक उजियार।।

देख देख कानुक रंग।
राइक वेश बनायत अभिमत।
निरखि निरखि प्रति-अंग।।

चरण-विभूषण मणिगण ऊजर
श्याम मुरति परतेक।
निरखब लाख नयने हेन मानये
अतये से भेल अनेक।।

किये प्रतिबिम्ब-दम्भ संये निज तनु
चरण-निछनि परकाश।
सम्बर-वेरी-विजय बेकत भैल
भज घनश्यामर दास।

• • •

बारहमासा (शिशिर)

देख शिशिर-निशि वहि गेल।
मझु पियक दरश ना भेल।
मधुमास पहिलहि साज।
हत मदन संये ऋतुराज।
हत मदन संये ऋतु-राज आवन।
भ्रमर गावत मातिया॥
कुहरे कोकिल सतत कुहु-कुहु।
कुहुलिया उठे छातिया॥

* * *

(वैशाख)

(२)

अब भेल माह वैशाख।
तरु कुसुमे भरु नव शाख॥

बह मलय-मारुत मन्द।
झरु माधवी मकरन्द।
झरु माधवी-मकरन्द गन्धहि।
मत्त मधुकर झंकहि॥

टकारि काम्भुक सान्धि मनसिज,
बिन्धे·मरम निशंकहि॥

(३)

पेखलुं गोकुल बसति बेयाकुल,
गोप रमण जन रोइ।
भीगल-बसन, लागि रहल तनु,
तोहांरि गवन पथ जोइ॥
हरि हे दार नगरे मझु गेह।
यह तुहुँ आओलि संगहि गोप सब,
तब हाम गोकुल थेह॥
तँहि एक रमणी थोरिवयस धनि,
चित्र पुतलिसम ठारि।
यव लोचन पथ दूरहिं गेल रथ,
तव हि पड़ल तनु ढारि॥
घेरल सकल सखी गण चउदिशे,
रोयत सखि अगेयान।
कहि घनश्याम तबहिं चलि आउलुँ,
पुन किये भेल नाहि जान॥

(गोविन्द रतिमञ्जरी, रसमञ्जरी
पृ० ५७, प०क०त० १६३३)

(४)

कोरह पुन पुन करत हुङ्कार।
हरि हाम जानि न कर परचार॥

परिहरि सो गिरि कन्दर माझ।
मन्दिरे काहे आओब मृगराज॥

सो हरि नहिं मधुसूदन नाम।
श्याम मुरति हाम तुहुँ कि जान॥

तारापति भए बुझि अनुमान।
घर माहा रतन दीप उजियार।
कइछने पइठब घन अंधियार॥

राधा रमण हाम कहि परचार।
राका रजनी नह घन अंधियार॥

परिचय पद यव सब भेल आन।
तबहिं पराभव मानल कान॥

तइखने उपजल मनमथ सूर।
अब घनश्याम मनोहर पूर॥

(गोविन्द रतिमञ्जरी प०क०त० ३५०)

यह पद रूपगोस्वामी विरचित 'पद्यावली' के निम्न उद्धृत पद का भाव रूपान्तर है —

अङ्गुल्या कः कपाटं प्रहरति,
कुटिले माधवः किं वसन्तौ।
नो चक्री किं कुलालो नहि,
धरणी धरह किं द्विजिह्वं फणीन्द्रः॥
नाहं घोराहिमर्दी किमसि,
खगपतिर्नो हरिः किं कपीशो।
राधा वाणीभिरित्थं प्रहसतिवदनः,
पातुवश्चक्रपाणिः॥ २८१

द० श्री०
स० गु०

घनश्यामदास चक्रवर्ती

घनश्यामदास चक्रवर्ती वर्द्धमान जिलान्तर्गत कृष्णपुर ग्राम के निवासी थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और अट्ठारहवीं शताब्दी का प्रथम दशक माना जाता है। 'पदकल्पतरु' में इनके १६ पद संकलित हैं, इनमें १५ पद बंगला में हैं और एक पद ब्रजबुली में है (११५२)। इनके पद मुख्य रूप से वात्सल्य रस के हैं, जिनमें कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन है। ये 'धर्ममंगल' नामक काव्य ग्रन्थ के भी प्रणेता थे। इस ग्रन्थ का समापन इन्होंने शक संवत् १६३३ (१७११ ई०) में किया था। इनके दो पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१) (बंगला एवं ब्रजबुली मिश्रित पद)

पन्च वारिख वद साकृति मोहन,
धावमान पर अंगना।
पायस पाणी तले आओर माखन,
खायत मिटायत वयना ॥

दोले दोले मोहन गोपाला।
प्रखर चरण गीत मुखर किंकिनी कटि,
लोटन लोलये वनमाला ॥

सोनाय बन्धिऊ भाल रुरुनख उरे माल,
पिठे गेले पाट कि थोप।
खेने आल गछि देइ, खेने भूमे गड़ियाइ,
खेने परसन्न खेने कोप ॥

नन्द सुनन्द यशोमति रोहिणि,
आनन्द सुत मुख चाय।
अरुण दृग अन्चऴु काजरेर रन्जित,
हासि हासि बदन देखाय ॥

कुन्तले रतन मणि झलमल देखि।
कुण्डले उज्ज्वल गण्ड काजर रेखि ॥
घनश्यामदासे बोले शुन नन्दराणी।
त्रिजगत नाथ नाचाओ करे दिया नानी ॥
(पदकल्पतरु ११५२)

'पाँच वर्ष के मनमोहन प्रांगण में क्रीड़ायमान (धावमान) हैं। वह हाथ में पायस (खीर) और माखन लिए हुए हैं। उन्हें खाते और अपने मुख में लगाते हैं। मनमोहन गोपाल नाच रहे हैं। नृत्य-भंगिमा में उनके चरण प्रखर हैं, कटि में किंकिणि का रव ध्वनित है। उनके गले में सुन्दर वनमाल है। स्वर्ण-मण्डित बघनख वनमाल में बँधा है। वह उनके वक्ष पर दोलायमान है। उनकी चोटी रेशम के फीते से बँधी है, जो उनकी पीठ पर हिल रही है। कभी वे घुटनों के बल रेंगने लगते हैं (आलगछि—घुटनों के बल चलना, रेंगना) और कभी भूमि में लोट जाते हैं। कभी खिल खिलकर हँसते हैं, कभी रुष्ट हो जाते हैं। नन्द, सुनन्द, यशोमति विह्वलता से कृष्ण के रूपसौन्दर्य का पान कर रहे हैं। उनके अरुण दृगांचल काजल-निमज्जित हैं। वे हँस-हँसकर मुख छवि से आकृष्ट कर रहे हैं। उनके कुन्तल रत्न मणियों से झलमल हैं। उनके गण्डस्थल कुण्डलों से जाज्वल्यमान हैं और नेत्र कज्जल-रेखा से शोभायमान हैं। घनश्यामदास कहते हैं, 'नन्दरानी! सुनो, घनश्याम (कृष्ण) को और नवनीत देने की कृपा करो, जिससे त्रिभुवन-पति उल्लसित होकर नाँचे।'

दुवाहु पसारि आगे जाय नन्दरानि।
धरिते धरिते धरा ना देय नील मनि ॥

गृहे पड़ि पड़ि जाय दधि नवनीत।
कोप नयने रानी चाहे चारि गीत ॥

हेदे रे नवनीचोरा बलि पाछे धाय।
ए घर उ घर करि गोपाल लुकाय ॥

नड़ि हाते नन्दरानी जाय खेदाड़िया।
आखिल भुवनपति जाय पलाइया ॥

एतिन भुवने, जारे भय दिते नारे।
से हरि पलाजा चाय जननीर उरे ॥

रानीर कोल हइते गोपाल गेल पलाइया।
आकुल हइला रानी गोपाले ना देखिया ॥

घरे घरे उकटिल सकल गोकुल ।
तोजा ना देखिया प्रान हइल आकुल ॥

कार घरे आछे गोपाल बोले डाक दिया ।
तोमार मायेर प्रान जाय विदरिया ॥

श्रीदाम डाकिया वले कानाइ आमार घरे ।
सभाकार प्रान गोपाल लुकाला मायेर डरे ॥

घनश्यामदासे कहे थिर कर मन ।
प्रेमेर अधीन गोपाल पावे दरशन ॥

(वैष्णव पदावली चयन-बाललीला व कालिया दमन-२ पृ० ३७)

'नन्दरानी दोनों बाहें फैलाकर बालक-कृष्ण को पकड़ने का प्रयास कर रही हैं। परन्तु नीलमणि(कृष्ण) को प्रयास करने पर भी पकड़ नहीं पातीं। अपने गृह में वे दधि और नवनीत गिरा-गिराकर इधर-उधर भाग रहे हैं। नन्दरानी अपने कुपित नयनों से कृष्ण की ओर घूरती हैं । हे नवनीत चोर ! कह कर वह पीछे-पीछे दौड़ रही हैं। परन्तु गोपाल इस कोठरी से दूसरी कोठरी में छिप जा रहे हैं। नन्दरानी हाथ में छड़ी (नड़ि) लेकर कृष्ण को दौड़ा रही हैं, और अखिल भुवनपति कृष्ण भागे जा रहे हैं। यह तीन भुवन जिसके भय से आतंकित रहता है, ऐसे हरि जननी के भय से भाग रहे हैं। रानी की गोद से हरि भाग गये, गोपाल को न देखकर रानी आकुल हो जाती हैं। गोकुल के प्रत्येक गृह में उन्होंने कृष्ण को खोजा, उन्हें न देखकर उनके प्राण व्याकुल हो गये। 'गोपाल किसके गृह में छिपे हैं', ऐसा कहकर वे गोपाल को बुला रही हैं, पुकारती हैं। श्रीदाम ने कहा 'तुम्हारी माता का हृदय (प्राण) विदीर्ण हो रहा है' और माता यशोदा को बुलाकर श्रीदाम कहते हैं, 'गोपाल मेरे घर में है।' सबके प्राण गोपाल माँ के भय से छिपे हैं। घनश्यामदास कहते हैं, मन को स्थिर करो, गोपाल प्रेमाधीन हैं, प्रेम से ही उनके दर्शन होंगे।'

चण्डीदास

बंगाल के वैष्णव धर्म और साधना के सन्दर्भ में कालक्रम से जो मान्यताएँ प्रस्तुत हुई हैं उनके आलोक में एकाधिक चण्डीदास के अस्तित्व की संभावना व्यक्त की गयी है। जो तथ्य सामने आये हैं उनके अनुसार 'चण्डीदास' नाम के निम्नांकित भक्त कवियों का सन्धान मिलता है—

(क) वासुली सेवक (सहजिया) चण्डीदास ।
(ख) बड़ु चण्डीदास (श्रीकृष्ण कीर्तन के रचयिता)
(ग) दीन चण्डीदास ।
(घ) विच्छिन्नपदकर्ता चण्डीदास ।
(ङ) चण्डीदास कविराज ।

विद्वानों की अवधारणा है कि पूर्व-मध्यकालीन बंगीय रचनाकारों में अपने नाम को विशेषणयुक्त करके उसी का 'भणिता' के रूप में प्रयोग करने की परम्परा थी। बंगला में इस पद्धति को 'आखर देना' कहते हैं जैसे दीन गोविन्ददास, पामर माधवदास आदि। इस न्याय से एक ही चण्डीदास की पदावली में वासुली सेवक चण्डीदास, बड़ु चण्डीदास, दीन चण्डीदास आदि विभिन्न भणिताओं का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। इससे उपर्युक्त पाँच चण्डीदासों में प्रथम तीन की एकता असंदिग्ध ठहरती है। इस पर आगे विस्तार से विचार किया जायगा। चतुर्थ तथा पंचम चण्डीदास उनसे भिन्न हैं। उनका परिचय पृथक् रूप से दिया जायगा।

चण्डीदास नाम के जिस रचनाकार को आधार बनाकर बंगीय विद्वानों ने विवेचनाएँ आरभ कीं वे कालान्तर में सहजिया चण्डीदास, बड़ु चंडीदास तथा दीन चंडीदास के व्यक्तित्व में समाहित हो गये थे। ऐसी जनश्रुति है कि महाप्रभु चैतन्य इनके पदों को सुनकर भावविह्वल हो जाते थे। जयानन्द ने प्राचीन बंगला कवियों की चर्चा करते हुए क्रम से चंडीदास को तीसरे स्थान पर रखा है। इनका आविर्भाव काल

१४वीं शती का उत्तरार्द्ध तथा तिरोभाव १५ वीं शती के मध्य में माना जाता है। कुछ लोगों की मान्यता है कि इनका जन्म बाँकुड़ा के अन्तर्गत छातना नामक गाँव में हुआ था। अन्य वीरारम जिलान्तर्गत नान्नूर नामक गाँव को इनकी जन्मभूमि मानते हैं। इन्होंने चैतन्य महाप्रभु के पूर्व बंगला में कृष्णभक्ति-विषयक पदों की रचना करके वैष्णव-पदावली परम्परा का आरम्भ किया था।

ये वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम दुर्गादास बागची था। वे 'वासुली देवी' मन्दिर के पुजारी थे और मन्दिर के स्वामी तथा संरक्षक निकटवर्ती निहार नामक स्थान के राजा थे। यह ध्यातव्य है कि वासुलीदेवी को चण्डीदेवी का प्रतिरूप माना जाता है। चार हस्तों वाली यह देवी पद्मासना हैं। यह मूर्ति अब तक विद्यमान है और काले पाषाण से निर्मित है। इनके दो करों में वीणा है। एक कर में जयमाला है। सम्भवतः सरस्वती की परिकल्पना भी इसकी निर्मिति में विद्यमान रही है। अधोभाग में एक भक्त की मूर्ति है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की रचना में शाक्त और वैष्णव मतों के समन्वय की चेष्टा की गई है। पाषाण का कृष्णवर्ण काली या चण्डी के भाव की प्रतीति कराता है। अतः वासुलीदेवी शाक्त और वैष्णव मतों के समन्वय का प्रतिनिधित्व करती है। नन्दग्राम के निवासी इस मूर्ति की उपासना 'वागीश्वरी देवी' के रूप में करते हैं। उनकी धारणा है कि ये वैष्णव-देवी हैं। यद्यपि चैतन्य-भागवतकार ने स्पष्ट संकेत किया है—"मद्य मांस दिये केह वासुली पूजय"—'मद्य-मांस देकर कोई वासुली की पूजा करता है।' इसके अनुसार 'वासुली' शाक्त देवी हैं।

चण्डीदास के विषय में यह प्रसिद्ध है कि ये बंगाल में सहजिया वैष्णव मत के पुरस्कर्ता थे। सहजियामत के वैष्णव भक्त परकीया भाव के प्रति विशेष रूप से आग्रहशील थे। वैष्णव भक्ति के विविध रूपों में 'रसिक भक्ति' एक विशिष्ट पद्धति रही है। इसमें किशोरी-साधना का विशेष महत्व था। अतः कुछ इतिहासकारों की यह भी धारणा रही है कि बंगाल में वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत राधा-कृष्ण विषयक किशोर (कृष्ण) और किशोरी (राधिका) की माधुर्य भक्ति पर इस चिन्तन प्रक्रिया का आंशिक या परोक्ष प्रभाव रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

उत्तर-पश्चिम बंग में एक विशेष प्रकार के लोकगीत को 'धमाली' कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं—असल धमाली एवं कृष्ण अथवा सुकुल धमाली। असल धमाली अश्लील प्रकार का लोकगीत है और सामाजिक दृष्टि से गाँव के भीतर उसे गाने की अनुमति नहीं थी। कृष्ण धमाली या सुकुल धमाली का विषय होता था–'राधा-कृष्ण' की लीलायें, मुख्यतः मधुर लीलाएँ। लोक-मानस में इसके अन्तर्गत मधुरा भक्ति की अवधारणा कार्य करती हुई प्रतीत होती है। चण्डीदास (जिन्हें आलोच्य चण्डीदास से पृथक् माना गया है) कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' इसी असल धमाली का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करने वाली कृति है। दीन गोविन्ददास, कानूदास, नरहरि चक्रवर्ती, वैष्णवदास ने इन्हीं चण्डीदास को स्मरण करते हुए इनकी बन्दना की है—

द्विज कुल सुत रसमय चित,
जय जय चण्डीदास।
मधुरमधुर शब्दे गाइला,
युगल रसेर भाव ।।

किंवा अपरूप कविता माधुरो,
आखर पिरीति गाथा।
अमिय जानिय दिला चितरिया,
अनूप वचन भाषा ।।

वरज युगल पिरीतिर खनि,
शे मुख शारद शशी।
कविता पठने हेन लय मने,
चितराय जेन खसि ।।

वासुली आदेशे युगल पिरीति,
गाइल जे कवि चन्द ।
रस कवि कुल मत्त मधुकर,
पीये घन मकरन्द ।।

(व० सा० ई० आसे० व० द्वि० चै० मु०)

इस प्रकार सहजिया चण्डीदास रागात्मिका पदावली के रचयिता थे और 'पिरीति तन्त्र साधक' (प्रीति-तन्त्र साधक, थे । प्राचोन पद संकलनों में इनके अनेक पद संकलित हैं । 'पद-कल्पतरु' और 'गौरपद-तरंगिणी' में इन चण्डीदास-विषयक कुछ उक्तियाँ मिलतो हैं, इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१)

नान्नूरेर माठे, ग्राचेर हाठे,
वाशुदले आछवे जथा ।
ताहार आदेशे कहे चण्डीं दाशे,
सुख से पाइबे कोथा ।।

'नान्नू ग्राम के हार के मैदान में जहाँवासुली देवी का मन्दिर है उन्हीं के आदेश से चण्डीदास ने पदों की, रचना की है, इस प्रकार का सुख अन्यत्र कहाँ उपलब्ध होगा ।'

(२)

चण्डीदास मन वासुली चरन,
आदेशे रजक नारी ।

(३)

'गौर पद तरांगिणी' में चण्डीदास और रामी (राम तारा) की लोक-प्रचलित कथा का उल्लेख मिलता है—

राम तारा धनी राधा स्वरूपिनी,
इष्ट वस्तु जाय होय ।
ताहार दरशे चण्डी रसे भासे ।
कवितार श्रोत वर ।।

कानूदास

'राधा-स्वरूपिणी' रामतारा जिसकी इष्ट हो, उसके दर्शन से चण्डीदास की रसयुक्त वाग्धारा प्रवाहित होती है ।' इसके अतिरिक्त वैष्णव सहजिया मत से सम्बद्ध ग्रन्थों में चण्डीदास एवं रामी, रामतारा, तारा धोबिन (रजकिनी) की 'पिरीति' (प्रीति) सम्बन्धी अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ वर्णित हैं । इस प्रेमप्रसंग को सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय की मान्यताओं के सन्दर्भ में साधना के रूपक के पर्याय रूप में भी ग्रहण किया गया है। इस प्रकार की वाममार्गी साधना के रूपक बौद्ध सिद्धों के चर्या गीतों में मिलते हैं। नाथ योगियों ने भी रजकिनी का रूपक बाधा है । चण्डीदास और रामी (रजकिनी) की प्रणय कथा को इसी आलोक में देखना अधिक श्रेयस्कर होगा। चण्डीदास और रामी के प्रसंग को लेकर जो विविध कहानियाँ विकसित हुई, उनके आदिम या मूल रूप का संकेत एक पद में मिलता है। जिस पद की ओर यहाँ संकेत किया गया है उसमें वासुली का वर्णन चण्डी की परिचारिका के रूप में हुआ है।

'नित्यार आदेशे वासुली चलित सहजजानवार तरे' अर्थात् नित्या (चामुण्डा या चण्डी) के आदेश से सहज ज्ञान की ओर वासुली अग्रगतिक हुईं ।' नित्या चण्डी की सहचारी रूप में भी वर्णित है अन्यत्र यह नित्या शब्द नेता धोविनि अर्थात चण्डी-दास की प्रकृति (सहज साधना की संगिनी) रूप में निर्दिष्ट है ।

कुछ भी हो सहजिया चण्डीदास के नाम से रागात्मक पद, और प्रच्छन्न तात्पर्यपूर्ण पद मिलते हैं । इनमें रूपक तत्व की प्रधानता मिलती है । यहाँ उनके पदों के कुछ अंश उद्धृत हैं—

तुमि रजकिनी आमार रमनी,
तुमि हउ पितृ मातृ ।
त्रिसंध्या याजन तुमारि भजन,
तुमि वेदमता गायत्री ।।

मेरी रमणी रजकिनी तुम सुनो, तुम्हीं पितृ और मातृ हो। त्रिसंध्या साधना ही तुम्हारा भजन है और वेदमान्यतानुसार तुम गायत्री हो।

मृत्तिका उपरे जलेर बसति,
ताहार उपरे ढेउ।
ताहार उपरे पीरित बसति,
ताहा कि जानये केउ॥

'मृत्तिका के ऊपर जल की बस्ती है, उसके ऊपर ढेउ (तरग) का निवास है, उसके ऊपर पिरीति (प्रीति) का निवास है, क्या इसे (इस रहस्य को) कोई जानता है।'

अथवा

गोपन पिरीति गोपन राखिबि,
साधिवि मनेर काज।
सापेर मुख ते भेकेर नाचाबि,
तवे त रसिक काज॥

सहजिया साधना के अभिप्रायों और प्रतीकों से परिचित व्यक्ति ही उपर्युक्त पदों का रहस्य समझ सकता है।

बडु चंडीदास शुद्ध राधाकृष्ण भक्तिपरंपरा के भक्त हैं। इनका भी आविर्भाव चैतन्य महाप्रभु के पूर्व हुआ था और इनके जन्म के पहले ही वे दिवंगत हो चुके थे। इन्होंने राधा-कृष्ण-लीला विषयक 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में विद्वानों की यह धारणा सर्वथा उचित प्रतित होती है कि इसमें प्रतिपादित भक्ति परम्परा जहाँ समाप्त होती है वहीं से चैतन्ययुगीन भक्ति का आरम्भ होता है। उपर्युक्त कृति में श्रीकृष्ण की ब्रजलीला को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण तथा बलराम के अवतार-ग्रहण संदर्भ से लेकर मथुरागमन तक की कथा वर्णित है, किन्तु कवि ने राधा के प्रति कृष्ण के आकर्षण, दोनों के मिलन तथा माधुर्य केलि के गीतात्मक वर्णन में ही अधिक रुचि दिखाई है।

डा० सुकुमार सेन की यह मान्यता है कि इसकी भाषा द्वारा चर्यागीत-पदावली के परवर्ती काल की भाषा का प्रतिनिधित्व होता है। इस रचना में छन्द के प्रयोग के अन्तर्गत जोड़ातालि की योजना से यह संकेत मिलता है कि सम्भवतः इसकी रचना 'पाला-गान' के रूप की गई थी और जोड़ातालि से यह संकेत मिलता है कि रचनाकार ने इसकी रचना कठपुतली के नृत्य (पुतुलबालिकरेर) के अवसर पर गायन के रूप में की थी और इसकी एकाधिक पोथियाँ थीं जिन्हें युक्तकर उपलब्ध 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' की रचना हुई थी। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के रचयिता ने आदि से अन्त तक भणिता के स्थान पर बडु चण्डीदास का प्रयोग किया है और जहाँ छन्दानुरोध में व्यतिक्रम पड़ा है वहाँ केवल 'चंडीदास' का प्रयोग किया है। सभी भणिताओं के साथ, 'वासुली' 'वासुली बन्दी' 'वासुली वरे' 'वासुली गान' आदि प्रयुक्त हैं। 'बडु' और 'बासुली' शब्दों के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के कवि वासुली के भक्त थे तथा वासुली मन्दिर में पुजारी के पद पर नियुक्त थे। इस संदर्भ में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि शाक्त-भक्त और शाक्त मन्दिर के पुजारी बड़ु चण्डीदास का सम्बन्ध स्थापन वैष्णव भक्ति और साधनान्तर्गत राधा कृष्ण की उपासना-पद्धति से किस तर्कणा के आधार पर किया जाय। इसका स्पष्टीकरण करते हुए प्रो० सेन ने एक सम्भावना की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार बड़े चण्डीदास मूलतः वैष्णव थे। 'वासुली देवी' उनकी कुलदेवी रही होंगी। लोक-जीवन में यह जनश्रुति है कि वासुली देवी ने स्वप्न में इन्हें 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' की रचना का आदेश दिया था और उनकी प्रेरणा से ही इन्होंने इस भक्ति-ग्रन्थ का निर्माण किया था।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वासुली देवी के उपासक सहजिया चंडीदास कृष्ण कीर्तनकार के रचयिता और अपने को 'वासुलिनंदन' कहने वाले 'बड़ु चण्डीदास' एक ही व्यक्ति थे। 'वासुली देवी' की शाक्त देवता 'चण्डी' के साथ ही वैष्णवी देवी के रूप में मान्यता इस उपपत्ति को बल देती है।

इनकी रचनाशैली के नमूने के रूप में यहाँ 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं।

विरह-विदग्धा राधिका कहीं दूर से आती हुई कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनती हैं, उनका हृदय विकल हो जाता है और वे अपनी सखी बड़ाई से कौतूहल मिश्रित भाव से जिज्ञासा करती हैं—

(१)

केना बांशी-ए बाजाय कालिनदि कूले।
केना बांशी बजाए बड़ाई ए गोकुले॥

केना बांशी ताए बड़ाई रोना कौन जबे।
दाशी आंह तार पात्र निशि वो आपना॥

केना बांशीए पात्र बड़ाइ चितेर हारिए।
तार पात्र बड़ायि गों केलो कोन दोबे।

आझर झरए मोर नयनेर पानी।
बाँशीर शब्दे बड़ायि हरसिया परानी॥

पाखि नहीं तार हाई उड़ी जड़ जाऊँ।
वने पोड़े आग बड़ाइ जग जने जानी॥

मोरे मने पोड़े जेन कुन्दारेर पानी।
आन्तर सुखाए मोर कान्ह अभिलाषे॥

'बड़ाई! कालिन्दी नदी के तट पर वह कौन वंशी बजा रहा है? वह कौन है जो गोकुल गाँव में वंशी बजा रहा है, बड़ाई! बोलो, वह कौन वंशी बजा रहा है? वह कौन (व्यक्ति) है? मैं तुम्हारी दासी बनकर अपने को तुम्हारे चरणों में अर्पित कर दूँगी। बोलो-बोलो।'

(२)

गाई तुमि जे आमार गति।
तोमार कारने रस तत्वलागि गोकुले आमार स्थिति॥
निशि-दिशि सदा वंशि आलाफ्ने मुरली काहया करे।
बमुना-सिनाने तोमार कारने वसि थाकि तार तीरे।
तोमार रूपेर माधुरो देखिने कदम्ब तला ते थाकि।
शुनह किशोरो चारि दिग हेरि जे मन चातक पाखी॥
तव रूप गुन मधुर माधुरी सदाइ भावना मोर।
करि अनुमान सदा करि गान तव प्रेमे होए भोर॥
चण्डीदासे कर मेढव पिरीत जगते आर कि होय।
एमन पिरिति ना देखि कखन इहा ना करिले होय॥

द० श्री०

चण्डीदास कविराज

चण्डीदास नामक एक कविराज का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः ये वे ही कविराज चण्डीदास थे जिन्होंने लक्ष्मण भट्ट के आग्रह पर 'काव्य-प्रकाश' के ध्वनि प्रकरण पर 'दीपिका' लिखी थी। 'दीपिका' की निम्नलिखित पुष्पिका से यह स्पष्ट होता है कि ये भक्ति-पथ के पथिक थे—

सायं सूर्यात्मजायाः पुलिन
परिसरे बालकेनावृता सन्,
धावन् धावन् (वयः श्रेष्ठः) कृत
विविधरवोः गो समूहः विचिन्वन्,
स्वैरं गोपांगनाभिः
कृत विविध वन क्रीडयो,
दैत्यघ्न वंशी विलाशी व्रजकुल,
तिलकः पातु वो गोपवेशः।

'संध्या समय यमुना के विपुल पुलिन पर गोप बालकों के साथ समावेष्ठित होकर, दौड़ते दौड़ते गायों को खोजते हुए जिन्होंने विविध रव से मुखरित किया है जिन्होंने गोपांगनाओं के साथ स्वेच्छानुकूल विविध लीलायें की हैं, जिन्होंने राक्षस वंश का ध्वंस किया है, जो वंशी विलासी, व्रज कुल तिलक हैं, वे ही गोप वेषधारी (हरि) तुम्हारी रक्षा करें।'

कवीन्द्र चण्डीदास के एक वंशधर नृसिंह तर्कपचानन ने 'जनमार्तण्ड' शीर्षक संक्षिप्त सार व्याकरण और 'गवपाठ वृत्ति' की रचना की थी। इनका पैतृक निवास वर्द्धमान के अन्तर्गत कटवा के उत्तर केतुग्राम था। पुस्तक के आरंभ में नृसिंह ने अपने वंश के आदिपुरुष चण्डीदास का उल्लेख किया है।

धीर शील नृसिंह जे मुखकुले
जातः खें कवीनां रविः
विद्यानामनुकम्पया वितरणौ
महि ये सुपर्णद्रुमः,
नाना शास्त्र विचार
चारु चतुरालंकार टीकाकृतः
भट्टाचार्य शिरोमणिर्विजयते
श्री चण्डीदासाभिधः ।

'श्री नृसिंह कुल के आदि में उत्पन्न, कवियों के मध्य सूर्य रूप, अनुकम्पा व विद्या वितरण में पृथ्वी पर जो कल्पतरु के समान हैं, जो नाना शास्त्र में उत्कृष्ट और पण्डित हैं जिन्होंने अलंकार शास्त्र पर टीका ग्रन्थ की रचना की है, उन्हीं श्री चण्डीदास नामक भट्टाचार्य शिरोमणि की जय हो ।'

उन्होंने जो अपनी वंशावली दी है, वह इस प्रकार है—चण्डीदास-गोपीनाथ-माधव-नयनकुमुद-श्रीहरि-श्यामदास-विद्यावागीश-गोपालसार्वभौम-कुशलतर्कभूषणसिंह, तर्कपंचानन। इस प्रकार चण्डीदास से नृसिंह दास दशम पुरुष थे। नृसिंह दास का समय अठारवीं शताब्दी था। अतः चण्डीदास के सोलहवीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान रहने की सम्भावना को अस्वीकर नहीं किया जा सकता।

द० श्री०

चंडीदास (विच्छिन्न पदकर्त्ता वैष्णव कवि)

सोलहवीं शताब्दी-प्रथमार्ध के अर्थात् चैतन्य के समसामयिक एक वैष्णव कवि चण्डीदास का उल्लेख मिलता है। इनके द्वारा विरचित स्फुट पदों का संकलन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में राजमार्ग अर्थात् भक्ति तत्व की माधुर्यलीला का उत्कृष्ट वर्णन है। इस काव्य का आरम्भ निम्नलिखित पंक्तियों से हुआ है—

वन्दे वृन्दावनासीमिन्दिरानन्द मन्दिरम् ।
उपेन्द्रं सान्द्रकरुणां सानन्दनन्दनन्दनम् ॥

'वृन्दावन अधिष्ठित आनन्द मन्दिर स्वरूप, करुणायन, सानन्द, नन्दनन्दन उपेन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।)

द० श्री०

चन्द्रशेखर आचार्य

चन्द्रशेखर 'आचार्यरत्न' नाम से विख्यात चैतन्य शाखा के भक्त थे (आचार्यरत्नेर नाम चन्द्रशेखर (चै० च० आदि०)। इनका जन्म श्रीहट्ट में हुआ था। ये श्रीहट्ट से आकर शान्तिपुर (चैतन्य देव के पड़ोस) में बस गये थे।

श्रीबाग पण्डित आर श्रीराम पण्डित ।
श्रीचन्द्रशेखर देव त्रैलोक्य पूजित ॥

गण रौग वैद्य श्री मुरारिनाथर जार ।
श्रीहट्टे ये सब वैष्णवे अवतार ॥

चैतन्यदेव की मौसी के साथ इनका विवाह हुआ था। चैतन्य देव के घर में ये संकीर्तन और श्रीराम के घर में लक्ष्मीवेश में अभिनय किया करते थे। नगर में ये संकीर्तन के आचार्य थे। चैतन्य के सन्यास लेने के उपरान्त ये प्रति वर्ष रथयात्रा के समय पुरी जाकर चैतन्य देव के दर्शन करते रहे। इस प्रकार ये चैतन्य-लीला के प्रत्यक्षदर्शी थे। इनके अधिकांश पद चैतन्य-लीला-विषयक हैं। इनके दो पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

श्रीकृष्ण के निकट दूती गमन

धनि परिवोधि चललि वर रंगिनि,
धरलिहि विपिनक पन्थ ।
गोठ गोबर्द्धन यमुना कानन,
ए सब फिरए एकान्त ॥
सहचरि कतिहु ना पेखलि नाह ।
निरजने गोठ गोवर्द्धन परिहरि,
पड़ि रह पातर माह ॥

हेम वदन एक अम्बुज करे धरि
घन घन हेरत ताहय।
राइ राइ करि शिरे कर हानइ,
धूलि धूसर सव गात।
चूड़ांहि चारु शिखन्ड विखण्डइ,
मुरली पड़ रह दूर।
एछन समये, ताहां पेखल,
चन्द्रशेखर सु चतूर।

(अप्रकाशित पदरत्नावली, पद २४६,
पृ० ७८—पदरस रास)

(२)

राइ प्रबोध चलिल वर रंगिनि,
करइते कानुक उपदेश।
चञ्चल नयने, चोदिगे नेहारइ,
विपिनहि करल प्रवेश॥

• • •

सहचरि ढूंड़त वरज-किशोर।
एक नीप-मूले पड़ि रह माधव,
राइ विरह जरे भोर॥

दूरहि कानुक हेरि रसिक वर,
थमकि थमकि चलि जाय।
जनु आन काजे, चलिल वर चातुरि,
डाहिन वामे ना चाय॥

डाकि कहत हरि, हम राइ किंकर,
करुना करि अब चाह।
चन्द्रशेखर कहे एक निवेदन तोहे
शुनि तुहुँ आन काजे जाह (याह)

(३)

(अप्रकाशित पद रत्नावली पृ० ७८, पद-२५०)

कपट चातुरी चिते जन गन भुलाइते,
लेइये तोमार नाम खानि।
दांड़ाइया सत्य पथे, असत्य राखिये (वजिये) ताखे
परिनामे कि हवे न जानि॥

उहे नाथ, गोबड़ अधम दुराचार।
साधु-शास्त्र-गुरु वाक्य ना मानिनु मुजि धिक,
अतये से ना देखि उद्धार॥

लोके करे-सत्य-बुद्धि मोर नाहि निज शुद्धि,
उदार हइया लोके भांड़ि।
प्रेम-भाव मोरे करे निज गुन तारा तरे,
आपनि हइनु छोंच हांड़ि॥

चन्द्रशेखर दास, एइ मने अभिलाष,
आर कि एमन दशा हव।
गौरा-परिषद् संगे, संकीर्तन रस रङ्गे,
आनन्दे दिवस गोड़ाइव॥

(पद-कल्पतरु, पृ० २३८। ३२३, चतुर्थ खण्ड)

द० श्री०

(ख) चन्द्रशेखरदास

चन्द्रशेखर दास महाप्रभु के कृपापात्र वैष्णव भक्त थे। ये कांदरा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम गोविन्द ठाकुर था। इन्हें नरहरि सरकार का शिष्य कहा गया है। ये जाति के वैद्य थे। वृन्दावन से बंगाल लौटते समय काशी में महाप्रभु ने इनके घर विश्राम किया था। इनका देहावसान किसी मुगल द्वारा शिर काट लिये जाने से हुआ था।

चन्द्रशेखर नाम वेद्य आशिया खण्डेते।
जात बसत वाटी खण्ड क्षेत्र तलाते॥

रसिक राय विग्रह तार सेवा अतिराम।
स्वर्ण ठाकुर बलि भोगल वेटिला आलथ॥

बकसे राखिला ठाकुर तनु ना घड़िया।
चन्द्रशेखर मुण्ड मोगल काटिला॥

अप्रकाशित पद रत्नावली में इनके अनेक पद संकलित हैं। पीताम्बर दास कृत 'रसमञ्जरी' के अनुकरण पर इन्होंने 'नायिका-रत्नमाला' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी।

द० श्री०

चँम्पति राय

चम्पति राय का समय सन् १४७९-१५३२ ई० माना जाता है। "पदामृत" के सम्पादक ने इनका परिचय निम्नांकित शब्दों में दिया है—

"श्रीगौर चन्द्र: श्री प्रताप रूद्र महाराजस्य महापात्रः चम्पति राय नाम भागवत् आसीत्"। इसी क्रम में वे कहते हैं—"चम्पति राय नाम दाक्षिणात्य : श्री चैतन्य भक्त राजः कश्चिदासीत्।" इससे यह ज्ञात होता है कि चम्पति राय दाक्षिणात्य थे तथा महाराज प्रताप रुद्र के महामात्य थे। बहुत सम्भव है, ये महाराज प्रताप रुद्र के चमूपति (सेनापति) रहे हों। रूप गोस्वामी की 'पद्यावली' (८, ५, ७७, ११५, १८५) में चम्पति का उल्लेख 'दाक्षिणात्य' के लिए हुआ है।

अतोन्द्रिय चमूपति प्रहित हस्तमस्वीकृत,
प्रणीत मणिपादुकं किमति विस्तृतान्त पुरम्।
अवाहन परिच्छदं पतगराजमारोहतः
कवि प्रकर वृंहिते भगवतस्त्वरायै नमः दाक्षिणातस्य।

कल्पतरु में इनके रचित ९ पद संकलित हैं जिनमें ४८०, २१५, २२६, २३८, १६७३, १६७२, १६८०, २५४१ संख्यक पद बंगला में और शेष ब्रजबुली में हैं।

इनके कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१)

दुर्ज्जय मान

सखि हे काहे कहसि कटु भाषा ?
ऐछन बहुगुन एक दोषे नाराइ,
एक गुन बहु दोष नाशा। ध्रु० ।।

(२)

कि करब जप तप दान व्रत नैष्ठिक,
यदि करुना नहि दीने।
सुन्दर कुल शिल, धन, जन, यौवन,
कि करव लोचन हीने ।।

गरल सहोदर गुरुपत्नी-हर,
राहु वमन तनु कारा।
विरह हुताशन, वारिज नाशन,
एक गुन शशि उजियारा ।।

पर सुत-होत यतन नाहि निज सुते,
काल उच्छिष्ट रस पानी।
सो सब अवगुण सगुन एक पिक,
बोलत मधुरिम बानी ।।

कानुक पीरिति कि कहब रे सखि,
सब गुण भूल अमूले।
वशी परशि, परशि करे शत-शत,
तबहिं प्रतित नहीं बोले ।।

वर परिरम्भन, चुम्बन आलिंगन,
संकेत करि विशो याने।
आनि रमणि सजे सो वच्चल,
मोहे करल नेराशे।
सुन्दर सिन्दूर नयनक अञ्जन,
संज्ञक दश नख रेखा।
कुक्कुम चन्दन, अंगे विलेपन,
प्रात समय दिल देखा ।।

दशगुन अधिक, अनले तनु दाहिल,
रति चिह्न देखि प्रति भंगे।
पेड़ कपूर यव ना मिल,
तब हरि मीलक हरि संगे ।।
(५।४८१, पृ० ३७१ प०क०)

(२)

ब्रजबुली (मानिनी राधिका के प्रति दूती की उक्ति)

सुन्दर बुझल तुया प्रति भाति।
गुण-गण तेजि दोष एक घोषसि,
अनो अहिरिणी जाति ।।
सकल जीवन गण जीव समीरण,
मन्द सुगन्ध सुशीते।
दीपक ज्योति परशे यदि नाशइ,
इथे लागि निन्दह मारुते ।।

स्थावर जंगम कीट पतंगम,
सुख देइ सकल शरीरे।
कागज पत्र परशे यदि नाशइ,
इथे लागि निन्दह नीरे॥

खने खने सकल कुसुम मन तोषय,
निशि रहु कमलिनी संगे।
चम्पक एरु पइआं नहि चुम्बय,
इथे लागि निन्दह भृंगे॥

पांच पंच गुण चौगुण ?
आठ द्विगुण सखि माझे।
चम्पति पति कह कान आकुल तो बिनु,
विषादिन पावसि लागे॥

(पद-रत्नमाला, ३९४)

(३)

बंगला-राग कामोद

सोवर शठ गुण गुरुवर गुरुतर,
अछु शुन जलनिधि सार।
हाम अबला अति ताहे दुखित मति,
केछने पाइयापार॥

सजनी आर कत कर परलाप।
सो मुझे योछन, कयलहिं अपमान,
सो बड़ हृदयक ताप॥ ध्रु॥

यो बर नारि सार करि लेउल,
सो पद सेवउ आनन्दे।
ताकर लागि जागि निशि रोयउ,
पीवउ सो मकरन्दे॥

ताहे लागि अन्न पानि सव तेजउ,
जप कर ताकर नाम।
चम्पति पतिकर सोइ युवती वर,
गाउत युग तछु गाम॥

(पद० क० त० गान प्रकारान्तर १८।५३२)
द० श्री०

जगदानन्द ठाकुर

जगदानन्द ठाकुर जाति के वैद्य थे। ये महाप्रभु के अन्तरंग भक्त खण्डवामा मुकुन्द के वंशज थे। परमानन्द इनके पितामह थे। इनके पिता का नाम नित्यानन्द था। जगदानन्द के पिता श्रीखण्ड त्याग कर आगरडीह के दक्षिण में निवास करने लगे। अपने परिवार से विरक्त होकर ये वीरभूमि के अन्तर्गत जोफलाई नामक ग्राम में रहते थे। इस ग्राम में ही इन्होंने महाप्रभु के विग्रह की स्थापना की थी। मुरारीलाल अधिकारी ने वैष्णव दिग्दर्शिनी में इनका जन्म सं० १६२४ और मृत्यु शकाब्द १७०४ (५ आश्विन, बावन द्वादशी) माना है। किन्तु सामान्यतः इनका जन्म शक् संवत् १६२०-१६३० के मध्य माना जाता है। इनकी स्मृति में जोफलाई ग्राम में प्रति वर्ष वैष्णव मेला लगता है। किशोर मोहन गोस्वामी ने निम्नलिखित पंक्तियों में इनकी संवर्द्धना की है—

'श्री जगदानन्दो जगदानन्ददायकः।
गीतपद्यकरः ख्यातो भक्तिविशारदः॥

'पद-कल्पतरु' में जगदानन्द के आठ पद संकलित हैं, जिनमें पद-संख्या २१८६ बँगला में है। शेष सभी पद ब्रजबुली में हैं। इसके अतिरिक्त इनके दो पद गौरतरंगिनी (पद सं० २०३-२०४) कीर्तनानन्द तथा पद तरंगिनी (अप्रकाशित) में भी संकलित हैं। इनकी ख्याति चित्र-पदकर्त्ता (चित्र गीतकार) के रूप में है। नीचे इनके दो पद दिए जा रहे हैं। प्रथम पद ब्रजबुली और द्वितीय पद बंगला में है।

(१)

(राधा अभिसार)

मञ्जु विकच कुसुम पुंज,
मधुप शब्द कुसुम सुंज,
कुंजर गति गाज्जिमम,
मंजुल कुल नारी।
घन-गंजन चिकुर पुंज,

मालती फुल माले रंज,
मंजन-युत कंज नयनी,
खंजन गति हारी ।।
कंचन-रुचि रुचिर अंग,
अंगे-अंगे भरु अनंग,
किंकिणि कटि कउकण मृदु,
झंकत मनोहारी,
जाचत युग गुरु भुजंग,
कालि दमन दमन रंग,
संगिनि सब रंगिनी पहिरे,
रंगिल नील सारी ।।
दशन कुन्द कुसुम निन्दु,
वदन जीतल शरद इन्दु,
विन्दु विन्दु छरम धरमे,
प्रेम सिन्धु प्यारी,
ललिताधरे मिलित हास,
देह दीपिति तिमिर नाश,
निरखि रूप रसिक भूप,
भूलल गिरिधारी ।।
अमरावती युवति वृन्द,
हेरि हेरि रूप पड़ल धन्द,
मन्द मन्द हसन नन्द,
नन्दन सुखकारी,
मणि-माणिक नख विराज,
कनक नूपुर मधुर बाज,
जगदानन्द थल जलरुह
चरणक बलिहारी ।।

(हि० ब्रज० २३०, के० पी० एस० २०९)

'विकसित पुष्पमाल से श्रृंगारित गजगामिनि (राधा) गज के अभिमान का मर्दन कर रही है। मालती की माला से सज्जित उसके मेघिल केश गुच्छ (नीलेवर्ण के) मेघों को लज्जित कर रहे हैं, कमल से चन्चल नेत्र खंजन को लज्जित कर रहे हैं। उनके कंचन वर्ण शरीर में अनंग दीपित हैं। उनकी कटि-किंकिणी के रणन और हाथों के कंगन के क्वणन से वातावरण झंकृत है। उनके दशन कुन्द पुष्प को एवं मुख शीतल शरद चन्द्रमा को लज्जित कर रहे हैं। उस प्रेम आकांक्षिता का प्रत्येक विन्दु प्रेम-समुद्र स्नाता है। ललिता भी इस प्रेम-स्वरूप से आनंदित है। उस (राधा) के शरीर की दीप्ति तिमिर-नाशक है। राधिका के इस रूपलावण्य पर रसिक-शिरोमणि गिरधारी विमुग्ध हैं।

अमरावती की रूपवती युवतियों का रूप-लावण्य राधा के रूप-लावण्य के सम्मुख मन्द पड़ गया है। राधा मन्द हास से कृष्णसुख का आस्वादन कर रही हैं। राधा के नखों में मणि-माणिक शोभायमान हैं। पैरों में स्वर्ण-मयूर बज रहे हैं। जगदानन्द राधा-कृष्ण के चरणकमल पर न्यौछावर होते हैं।'

(२)

बंगला पद

सजनी गो केन गेलाम यमुनार जले ।
नन्देर दुलाल चांद पातिया रूपेर-फांद,
व्याध छले कदम्बेर तले ।।

दिया हास्य-सुधाचार, अंग छटा आटा तार,
मन मृगी सेइ काले, पड़ल रूपेर जाले ।
शुधु देह पिंजर रहिल,
गर्व शाले मत्त हाति, बांधा छिल दिवा राति,
क्षिप्त हइल कटाक्ष-अंकुशे ।
दम्भेर शिकल काटि, चारि दिगे गेल छुटि,
पलाइये गेल कोन देशे ।।

लज्जाशील हेना गार, गुरु गौरव सिंह द्वार,
धरम कपाट छिल ताय ।
वंशीरव वज्राघाते, पड़ि गेल अकस्माते,
सम भूमि करिल आमाय ।।

कालिया त्रिभंग वाणे, कुलमान कइल खाने,
मुछिल उछिल ब्रज ब:स ।
प्राण शेषे आछे बाकी ताहा बुझियाय देखि,
भने जगदानन्द दास ।

(अप्रकाशित पद रत्ना० ४६३१०)

'ऐ सजनी ! मैं यमुना जल लाने क्यों गई ? नन्द-पुत्र चाँद (कृष्णचन्द्र) ने मुझे अपने रूप-जाल में फँसा लिया। कदम्ब वृक्ष के तले उनका आचरण व्याध के समान था। उनकी रूप-माधुरी तथा मुग्धकारी ह्लास उनके इस जाल के उपकरण थे। मेरा हृदय मृगी के समान इस रूप-जाल में फँस गया। अब केवल शरीर पंजर ही रह गया है। अब तक मेरा गर्वीला मन हाथी के समान गर्व-शाला में दिन-रात अभिमान-रज्जु से बंधा रहता था। परन्तु अब उनके कटाक्ष-अंकुश से गर्व-बन्ध टूट गया, दम्भ-शृंखला काट कर जाने किस देश चला गया है ? गुरुजनों की मर्यादा का धर्म-कपाट खुल गया और मैं मर्यादा और लज्जा-मुक्त हो गई। वंशी-ध्वनि के आघात से मेरा मन आहत हो गया। कृष्ण की त्रिभंगी छवि के वाण ने मेरी कुल-मर्यादा खण्डित कर दी और मेरा ब्रज-वास कठिन हो गया। उसकें (राधा के) प्राणों के अवशेष को देखकर जगदानन्द कहता है (यह वर्णन करता है)।,

एक अन्य पद

यामिनि दिन पति गगने उदय करु,
कुमुद कमल खिति माझ।
अपरथे दुहुंक परश कौतुक,
निसि निति जगते विराज ।।
वर रानाहे,
बुझवि तुहुँ सुचतरु,
आपन पराण एक करे सौंपिए,
सो पुन कभु नहे दूर।
जीवन हरम आपन वे चलुं,
तन मन एक कर तःए,
किए तुया वलवत
प्रेम पदादि पदातिक
तिल-माधव ना देह मोर।
कन्चन वदन कमल लागि लोचन
मधुकर मरत पियासे ।। द० श्री०

जगदानन्द पण्डित

जगदानन्द पण्डित महाप्रभु के समकालीन थे। महाप्रभु के संन्यास-ग्रहण करने के पश्चात् उनके साथ नीलाचल जानेवाले भक्तों में ये प्रमुख थे। इन्हें कांचड़ापाड़ा में शिवानन्द सेन के सान्निध्य में रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। ये प्रभु की बाल्य-मूर्ति की सेवा सत्यभामा रूप से करते थे। यथा—

पण्डित जगदानन्द प्रभूर प्रान रूप।
लोके ख्यात जाहाँ सत्यभामार-स्वरूप ।।
प्रीत्य करिते चाहे प्रभूरलालन पालन।
वैराग्य लोक भए प्रभुना मोन कथन ।।

इनका उपस्थिति काल १६३० ई० के लगभग बताया जाता है।

(चै० चरित आदि० दशम्)

द० श्री०

जगदीश पण्डित

जगदीश चैतन्य शाखा के भक्त थे और श्रीधाम नवद्वीप के निवासी राढ़ीय ब्राह्मण थे। इनके भ्राता का नाम हिरण्य पण्डित था। चैतन्य महाप्रभु की इन पर विशेष कृपा थी,

जगदीश पण्डित आर हिरण्य महाशय।
जारे कृपा कैल बाल्ये प्रभु दयामय ।।
दुइ भ्रातार घरे प्रभु एकादशीर दिने।
विष्णुर नैवेद्य भोग खाइला आपने ।।

(चै० चरि० आदि १०-७०-७१)

'जगदीश पण्डित और हिरण्य महाशय पर दयालु प्रभु ने कृपा की और विष्णु के नैवेद्य को स्वयं माँगकर एकादशी के दिन उसका सेवन किया।'

ये चैतन्य मत स्वीकार करने के पूर्व यज्ञमार्गी थे।

श्री नित्यानन्द शाखा राढ़ीय ब्राह्मन।
जगदीश पण्डित हय पतितपावन ।।
कृष्णप्रेमामृत वर्षे येन (जेन) वर्षागम।

(चै० च० आदि ११-३०)

इनका श्रीपाट चाकदह के निकट यशोड़ा ग्राम में था—"यशोड़ाते जगदीश नृत्य विनोदी" (पा० पा०)

द० श्री०

जगन्नाथदास (प्रथम)

जगन्नाथदास नाम के कई भक्तों का उल्लेख मिलता है। किन्तु प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर उनमें से कम-से-कम दो का अस्तित्व अलग-अलग सिद्ध होता है।

(क) प्रथम जगन्नाथदास काष्ठकाटा ग्राम के निवासी थे। चैतन्य चरितामृत के अनुसार ये गदाधर पण्डित के शिष्य थे—

श्रीनाथ चक्रवर्ती आर उद्धारण दास।
जितमिश्र काष्ठकाटा जगन्नाथ दास॥
(चैतन्य चरितामृत, परि० १२, पृ० ६६)

इनके पदों में चैतन्य देव की दैनिक चर्या का वर्णन है, जिससे यह संकेत मिलता है कि ये महाप्रभु के समकालीन थे। 'पदकल्पतरु' में इनके चार पद संकलित हैं। इन पदों से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। इनके कुछ पदों में चैतन्य के पारिवारिक जीवन का वर्णन मिलता है। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

गौर किशोर पुरब रसे गर गर,
मने भेल गोठ बिहार।
दाम श्रीदाम सुबल बलि डाकेइ,
नयने गलय जल धार॥

वेत्र विवरण वेनु लेइ साजह,
यादव भाण्डी समीप।
गौरिदास साज कइ तइ खने,
गौर निकट उपनीत॥

माइया अभिराम वदन घन वाअइ
नूपुर चारण हि देल।
नित्यानन्द चन्द्र पहुँ अगुसारि,
धवलि धवलि ध्वनि केल॥

नदिया नगर लोक सब धावत,
हेरइते गौर-क-रंग।
दास जगन्नाथ छान्द दाहनि लेइ,
यादव सब अनुसंग।
(प० क० त० १२१६)

(२)

वृन्दावन विहार यात्रा
यमुना क तीरे, धीरे चलु माधव,
मन्द मधुर वेनू वाअइ रे।
इन्दीवर नयनी, वरज वधु कामिनी,
सदन तेजिआ वने धावइ रे॥

असित कुसुम अहि मकरसुता नीर,
इन्द्रनीलमणि उदार मरकत,
श्री निन्दित वपु आभा रे।
शिरे शिखण्ड दल नव गुंजाफल,
निरमल मुकुता-लम्बि नामातल,
नव किशलय अवतंश गोरोचन,
अलक तिलक मुख शोभा रे॥

श्रोनि पीताम्बर वेत्र वाम कर,
कम्बुकण्ठे वनमाल मनोहर,
धातु राग वैचित्र्य कलेवर,
चरने चरन परि शोभा रे।
गोधूलि धूसर विशाल वक्षस्थल,
रंग भूमि जिनि विलास नटवर,
गो-छांदन रजु विनिहित कन्धर,
रूप भुवन मन लोभा रे॥

ब्रह्म पुरन्दर दिनमनि शंकर,
यो चरणाम्बुज सेवे निरन्तर,
सो हरि कौतुक ब्रज बालक साथे,
गोपनागरी अभिलाषा रे।
सोपहुँ पदतल पराग धूसर,
मानस गम करु आश निरन्तर,
अभिनव सतकवि 'दास जगन्नाथ',
जननी जहर भर नाणा रे।
(प० क० त० १३२३)

जगन्नाथदास (द्वितीय)

दूसरे जगन्नाथदास उड़ीसा के निवासी प्रसिद्ध भक्त और उच्चकोटि के संगीताचार्य थे। 'गौसद तरंगिनी' से यह स्पष्ट होता है कि देवकीनन्दनदास ने इनकी स्तुति परम वैष्णव के रूप में की है—

जगन्नाथ बंदौं संगीते पंडित ।
जार गीत शुनिया श्री जगन्नाथ मोहित ॥

इनकी जन्म-तिथि आदि के विषय में कुछ निश्चित सूचना नहीं मिलती, परन्तु चैतन्यदेव के नीलाचल वास के समय ये उपस्थित थे। इस साक्ष्य के आधार पर ये चैतन्यदेव के समकालीन प्रतीत होते हैं। ये भागवत के व्याख्याकार और कवि थे। 'पद-कल्पतरु' में इनके १० पद संकलित हैं, जिनमें से दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

शुन विनोदिनि धनि, आमार काण्डारी तुमि,
तोमार काण्डारी कह कारे ।
तूया अनुरागे प्रेम समुद्रे छुत्याछि आमि,
आमारे तूलिया कर पारे ॥

योगी योगी नापि तानि तोमार लागिया दानो,
ओझा इलाम तोमार कारने ।
तूया अनुरागे, मोरे, लेया फिरे घरे घरे,
तूया लागिन करिलूं दोकाने ॥

राखाल हइया वने सदा फिरि धेनू सने,
तुया लागि गने सदा फिरि धेनू साने,
तुया लागिन बने वनचारी ।
तोमार पिरिति पाइया, ए भांगा तरनी लेया,
तूया लागि हइलूं काण्डारी ॥

ना बोल कुबोल धनि, रमनीर शिरोमणि,
तूया प्रेमे किमा करि आमि ।
दास जगन्नाथ कय, ना डेलिह रांगा पाय,
जाति जीवन धन तूमि ॥

—(प० क० त० १४१५, ३७७)

(२)

देख सखि झूलत विनोद विनोदिनी,
नील मनि जड़ायल कांचन जोर ।
ललिता विशाखा सखी झुलायत सुखे,
आनन्दे मगन हेरि दोहें दोहाँ मुखे,
गरजत गगने मेघ घन घोर ॥

विविध कुसुमे सभे रचिया हिन्दोला,
दोलाय युगल सखी आनन्दे विभोला ॥

झुलाउत सखीगन करताली दिया ।
सुवदनी कहे पाछे फिरये बन्धुया ॥

विगलित दुकूल, उदित स्वेद विन्दु ।
अमिया झरुरये येन, दुहुँ मुख इन्दु ॥

हेरि सब सखीगन दोहाँ कार श्रम ।
चामर वीजन लेइ करये सेवन ॥

भ्रमर कोकिला सब बसि वरु-डाले ।
रति जय राधा कृष्ण राधाकृष्ण बोले ॥

कहे जगन्नाथ कवे हवे शुभ दिन ।
सखी सह दोहाँ करि हेरिय विपिने ॥

—(पद क० त० १५५४, ४७३)

द० श्री

जयकृष्णदास

जयकृष्णदास बंगाली महात्मा थे। इनके जन्म, स्थान आदि के विषय में ठीक-ठीक कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके परवर्ती जीवन के विषय में यही जानकारी है कि ये १६५३ ई० में विद्यमान थे और श्री गंगामाता गोस्वामिनी के परिकर थे। काम्यवन में वृन्दादेवी के आदेश से विमलाकुण्ड के तीर पर रहकर ये भजन किया करते थे। जब यहाँ गोप बालकों ने उन्हें परेशान किया तो अन्यत्र जाने की सोचने लगे। यह देखकर ग्रामीणों ने इनके लिए एक कुटिया बनवा दी। उसमें रहकर बाबाजी भजन करने लगे। ये केवल एक बार मधुकरी के लिए बाहर जाते, शेष समय भजन में लीन रहते थे। बाबा रातभर प्रिया-प्रियतम की स्मृति में रोते रहते थे।

बाबा जयकृष्णदास के पास कुछ सिद्धियाँ थीं। एक बार भरतपुर के राजा ने सिद्ध बाबा का दर्शन करना चाहा। पर वे सफल नहीं हुए। एक दिन वेष बदल कर वे दीन-हीन भाव से उनकी कुटिया के सामने जा बैठे। उस समय बाबा मधुकरी के लिए गाँव में गये हुए थे। गाँव से लौटते समय आधे रास्ते तक आकर वे फिर गाँव की ओर लौट गये। गाँव में चीख-चीख कर कहने लगे, 'बन्धुओं! मेरी कुटिया में आग लगी है, जाकर बुझा दो, तब मैं जाऊँगा।"

गाँव के लोग कुटिया में गये तो कहीं आग नहीं दिखाई दी, पर वहाँ छद्म वेष में राजा बैठे दिखाई पड़े। गाँव वालों ने राजा से निवेदन किया और राजा बिना दर्शन के लौट गये। बाबा आये और गोबर से लीपकर स्थान को पवित्र किया, तब अन्दर गये। इस घटना ने राजा के मन में निर्वेद और दैन्य का संचार किया और उन्होंने आगे चलकर परोक्ष रूप से बाबा की कृपा प्राप्त की।

एक दिन मध्याह्न में बाबा की अंतरंग सेवा में ऐसी घटना घटी कि वे श्रीकृष्ण-विरह में व्याकुल होने लगे। उस समय विमला कुण्ड के चारों ओर असंख्य गायें और गोप बालक आये। गोप बालक बाहर से चीखकर कहने लगे, "बाबा प्यास लगी है, जल प्याय दे।" बाबा पहले तो बालकों के उत्पात से विरक्त थे। अतएव चुपचाप कुटिया में बैठे रहे। पर बालक जब तरह-तरह से उत्पात करने लगे तब क्रुद्ध हो लकड़ी हाथ में ले बाहर निकल पड़े। सामने असंख्य गोप बालक और गायें—सब एक-से-एक सुन्दर! एक-से-एक अद्‌भुत। देखते ही बाबाजी का क्रोध ठंडा पड़ गया।

उन्होंने पूछा, "लाला! तुम किस गाँव से आये हो?"

"नन्द गाँव तें।" बालकों ने उत्तर दिया।

"तेरा नाम क्या है?" साँवले-से एक बालक से उन्होंने पूछा।

"कन्हैया!" उत्तर मिला।

"और तेरा?"

गौरवर्ण बालक ने कहा—"बलदाऊ!"

बालकों ने कहा, "देख बाबाजी, पहले जल पियाय दे, पाछे बात करियो।"

बाबा ने स्नेहवश जल पिला दिया।

बाबा कुटिया के अन्दर चले गये और सोचने लगे, "ऐसे अद्‌भुत गोप बालक और गायें तो कभी देखी नहीं।" यह सोचते हुए उन्हें एक बार फिर देखने बाहर निकले तो वहाँ न गायें थीं और न ही गोप बालक। अब बाबाजी को रहस्य का पता लगा। वे बहुत दुःखी हुए। गोप बालकों के बारे में सोचते-सोचते आविष्ट हो गये। उस अवस्था में श्रीकृष्ण उनके सामने उपस्थित हुए और सान्त्वना देते हुए बोले, "बाबा! दुखी मत होओ। कल मैं तेरे पास आऊँगा।"

दूसरे दिन एक वृद्धा आई और एक गोपाल-मूर्ति देकर बोली, "बाबा, मोते अब गोपाल की सेवा नाय होय। तू सेवा किया कर।"

"मैं कैसे इनकी सेवा करूँगा। सेवा की सामग्री कहाँ से लाऊँगा।"

"सेवा की सामग्री मैं रौज दे जाऊँगी।"

गोपालजी की माधुरी मूर्ति देख बाबा मुग्ध हो गये। उसी रात स्वप्न में वृद्धा ने वृन्दाजी के रूप में उन्हें दर्शन दिये।

कुछ दिन प्रेम से गोपालजी की सेवा कर सिद्ध बाबा ने चैत्र शु० १२ को पार्थिव शरीर छोड़कर नित्य लीला में प्रवेश किया।

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में इनके कुल ११ पद उपलब्ध हुए हैं, जो बंगला और ब्रजबुली में रचित हैं। इनमें से नौ पद 'सुवल-संवाद' पर हैं। इनके ये पद 'कृष्ण-पदामृत-सिन्धु (पृ० ४३, पद ६५,

९६) और 'पद-कल्पलतिका' में भी संकलित हैं। उदाहरण के लिए इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

धेनु चरावत वेनु बजावत,
यमुना तीरे पुलिन वने।
प्रिय श्रीदाम सुबल महाबल,
ए सब गोप सखा संगे॥

नटवेश सुकेश चूड़ा शिखि साजनि,
मालति माल प्रसन्न गले।
श्रुति पाश विलास मणि मकराकृति
कुण्डल मण्डित गण्डे डोले॥

कटि पट पीत वलायनि काछनि,
किंकिणी कांचन दाम घने॥

चरण कमल दले शशि मण्डित,
खण्डित ताप भजन्त जने॥

'जय-कृष्ण-दास' पहु गोवर्धन,
धारण धीर देवेन्द्र मणे।
अखिल ब्रह्माण्ड भाण्ड करि मण्डित,
ताकर आगे काहा को गावे॥

–(कृष्ण पदामृत सिन्धु, पृ० ४३ पद कल्पतरु-२९)।

स० गु०

जानकीदास (जानकीरमनदास)

जानकीदास या जानकीरमनदास का उल्लेख 'प्रेम-विलास' और 'नरोत्तम-विलास' में आया है। उनके अनुसार ये श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थों से इनके विषय में कुछ और ज्ञात नहीं होता।

जानकीदास और जानकीरमनदास एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

द० श्री०

जानकीवल्लभ चौधरी

'प्रेम-विलास' से ज्ञात होता है कि जानकीवल्लभ चौधरी नरोत्तमदास के शिष्य थे। नरहरिदास ने अपने 'नरोत्तम-विलास' में 'जानकीवल्लभ ठाकुर' के रूप में इनका उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। 'ब्रजबुली साहित्य का इतिहास' में डॉ० सुकुमार सेन ने 'द्विज जानकी' और 'जानकीदास' छाप वाले तीन हस्तलिखित पदों का उल्लेख किया है किन्तु यह बता पाना कठिन है कि ये तीनों एक ही व्यक्ति के हैं या भिन्न व्यक्तियों के। 'कर्णानन्द' और 'प्रेम-विलास' दोनों में जानकीदास को श्रीनिवास का शिष्य बताया गया है। इससे लगता है कि जानकीवल्लभ इनसे भिन्न व्यक्ति थे। 'जानकीवल्लभ' नाम से एक पद 'पदरत्नावली' में संगृहीत है जो नीचे दिया जा रहा है—

कि कहब निठुर मुरारि।
अब कि जीवइ वर नारि॥

तुअ तनु नेह भुजंगे।
दंशल कोमल अंगे॥

अउखद गद नहि माने।
ताजा तुहार धेयाने॥
श्याम तुं आखर मंत।
ते धनि धेरज अन्त॥

एक आछए प्रतिकारे।
तुहारि पाणि पाणि-सारे॥
तुअ दिष्टि सारक आशे।
अबहि बहइ मृदु श्वासे॥
सुनइते मुरछित कान।
जानकीवल्लभ अगेयान॥

(अप्र० प० र० ४९५)

[ओ निठुर मुरारि ! मैं कैसे कहूँ, वह सुन्दरी रमणी क्या अभी तक जीवित है। उसका कोमल अंग तुम्हारे प्रेम-भुजंग द्वारा दंशित है। औषध-उपचार से विष शमित नहीं होता। तुम्हारे ध्यान का बन्धन ही भुजंग दंशित अंग पर पट्टी के समान है। श्याम

के द्विआक्षरिक मंत्र से उसका धैर्य समाप्त हो जाता है। तुम्हारे कर-कमलों का स्पर्श ही उसके लिए एक मात्र औषध है। तुम्हारे दर्शन की आशा में श्वास चल रही है। सुनते ही कान्ह मूर्च्छित हो गये और जानकीवल्लभ भी अचेत हो गये।]

द० श्री०

जाह्नवीदेवी

जाह्नवीदेवी महाप्रभु नित्यानन्द की कनिष्ठ पत्नी थीं। खड़दह में वैष्णव धर्म के केन्द्रस्थापन में इनकी भूमिका ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। वैष्णव समाज में इनका स्मरण 'ईश्वरी' अथवा 'गोस्वामिनि' के रूप में किया जाता है। आधुनिक वैष्णव समाज में गोसाइं शब्द का प्रयोग आदर के साथ लिया जाता है। कलकत्ता के वैष्णव समाज में खड़दह की 'मां गोसाइं' का विशेष सम्मान है। इसका सूत्रपात् जाह्नवीदेवी से ही माना जाता है।

जाह्नवीदेवी सरखेल निवासी श्री सूर्यदास पण्डित की कन्या थीं। वैष्णवों का यह विश्वास है कि पूर्व लीला में इनका नाम रेवती था। इनकी ख्याति 'अंनेण मंजरी' नाम से भी थी। जाह्नवीदेवी 'स्वप्रतिमा' की प्रमुख संचालिका थीं और अपने शिष्य-प्रशिष्यों के साथ इन्होंने इस महोत्सव में प्रमुख भूमिका निभाई थी। खेतुरी से ही इन्होंने वृन्दावन की यात्रा की और वहाँ गोस्वामीजनों से शास्त्रादि का श्रवण कर ये पुनः खड़दह लौट आईं। भक्तों की प्रीति और श्रद्धा को प्राप्त करके ये वैष्णव समाज में 'ईश्वरी' नाम से पूज्या हुईं।

द० श्री०

जीवगोस्वामी

श्री जीव गोस्वामी सनातन गोस्वामी एवं रूप गोस्वामी के भ्रातृ-पुत्र थे। इनके पिता का नाम अनुपम या बल्लभ था। इनके शैशवकाल में ही पिता का निधन हो गया था। इनकी शिक्षा अपने गाँव में ही हुई। शिक्षा समाप्त होने पर इन्होंने अपने चाचा रूप गोस्वामी से दीक्षा ली और नित्यानन्द के आदेश से वृन्दावन चले गये। वहाँ पर वैष्णव-तत्व और दर्शन को व्याख्यायित करने के लिए इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अपने अगाध शास्त्रीयज्ञान का उपयोग करके इन्होंने गौड़ीय भक्ति-दर्शन को भारतीय दर्शन की एक विशिष्ट शाखा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके निमित्त इन्होंने 'तत्व-संदर्भ', 'भगवत्संदर्भ', 'परमार्थ-संदर्भ', 'भक्ति-संदर्भ' 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' व 'उज्जवल-नील-मणि' की व्याख्यात्मक टीका 'गोपाल-चम्पू नाटक' (दो खण्डों में) तथा वैष्णव बालकों के लिए 'हरिनामामृत' नामक व्याकरण ग्रंथ की रचना की। जीव गोस्वामी की मुख्य देन यह है कि इन्होंने कृष्ण की ब्रजलीला और गोलोक-लीला को एकरूपात्मकता प्रदान की और कृष्ण के समान ही राधा को भी गौड़ीय चिन्तन-धारा में महत्व दिया। कृष्णमूर्ति के वामपार्श्व में राधामूर्ति की प्रतिष्ठा एवं युगलमूर्ति की उपासना की विधि की प्रतिस्थापना जीव गोस्वामी ने ही की थी। इस प्रथा का प्रचलन पहले ब्रजभूमि में हुआ, उसके बाद बंगाल में व्यापक प्रसार हुआ। इनका निधन १६१० ई० हुआ। 'गोपाल-चम्पू' में २६ गीत हैं, जिनमें से एक यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

राधा-राका शशधर-मुरलीकर जो गोकुल
पतिकुल पाल जय जय कृष्ण हरे।
राधा-बाधा-मोचन सुख-रोचन तिलकित
गोकुल भाल जय जय कृष्ण हरे।
राधा परिकर पुण्य नइपुण्यद गोकुल
रुचिवु विशाल जय जय कृष्ण हरे।
राधा सुकृत-वशीकृत-मंगल मृत तिलकित
गोकुल भाल जय जय कृष्ण हरे॥

राधा-निज-गति धर्मद-पुस शर्मद हत
गोकुल रिपु जाल जय जय कृष्ण हरे।
राधा जीवन-जीवन गो ब्रज-धन
गोकुल सरसि मराल जय जय कृष्ण हरे।
राधा मोद रसाकर सरसिज वर
गोकुल-मण्डल-नाल जय जय कृष्ण हरे।

राधा भूषग-भूषण गत दूषण गोकुल
हृदिल भूपाल जय जय कृष्ण हरे।

द० श्री०

तुलसीदास

तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी तथ्य सर्वथा अज्ञात हैं।

'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि' में तुलसी दास के नाम से निम्नलिखित पद संकलित है—

राधाकानु निकुन्ज मन्दिर माझ।
चउदिक ब्रज-वधू मंगल गाओत,
तेजि कुल-भय लाज॥

शरद यामिनी, ओं कुल कामिनी,
तेरछ नयने चाय।
मदन भुजंगमे राइ रे दंशल,
हेलि पड़ये श्याम-गाय॥

कानु धनवन्तरि राइ कोले करि,
अउषधि चुम्बन दान।
नागर नागरी ओ रसे आगरी,
राइ कानु एकइ परान॥

सार शुक पिक मंगल गाओत,
अतिसे सुललित तान।
वृन्दावन भरि रसेर बादर,
तुलसीदास रस गान।

क्षणदा० ३०५।

'प्रेमविलास' और 'कर्णानन्द' में 'तुलसीरामदास' नाम के एक भक्त का उल्लेख मिलता है। प्रमाणाभाव में यह नहीं स्पष्ट किया जा सकता कि यह उपर्युक्त 'तुलसीदास' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है या अन्य किसी व्यक्ति के लिए। संभव है दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हों। ये श्री निवास आचार्य के शिष्य थे और तंतुवाय (कोइरी या जुलाहा) जाति के थे।

द० श्री०

दीन दास (दीनहीन दास)

दीनदास या दीनहीन दास नरोत्तम दास के शिष्य थे। 'गौरगनोद्देश-दीपिका' का इन्होंने 'किरन-दीपिका' नाम से पद्यानुवाद किया था। इन्होंने 'बंगला' और 'ब्रजबुली' उभय भाषाओं में पद्य रचे हैं। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

राधा कृष्ण का प्रथम मिलन

(१)

तुहुं विदगध वर तनी पराण।
आजु सुनल हम मनसिज नाम॥
अन्चल परशिते अन्तर काँप।
रमणी सहये किये एतये आलाप॥
ए हरि! ए हरि! अतए हामार।
हाम किछु ना बुझिए ओ रस विचार॥
आरति अधिक नाहि कछु लाव।
दारिद घर याचक नाहि पाव॥
जल बिनु जलचर ना करये केलि।
कालिका-कमले भ्रमर नहे मेलि॥
देखइते सुनइते पाओ तरास।
आजु पूछव मुनि प्रिय सखि याश॥
सो यव जानये-ए सव शुधी।
दीन दास कह भाल कह बुधी॥

(कीर्तनानन्द, पृ० १७९)।

बंगला पद—चैतन्यवर्णन

(२)

भरि भरि ना लो नदीपार माझेर ओना रूप।
केवल मूरतिमय, पिरीतिर कूप॥

वदन मण्डल चान्द झलमल,
कनक दरपण निन्दिते।

कपाल रंगिम भुसर भंगिम,
अतनु सारंग खण्डिते॥

नयन-युगल प्रेमे छल-छल,
नासा खग-पति निन्दिते।
चांद मुखे हरि बोले कान्दिते-कान्दिते ॥

तेजि सुखमय शयन आसन,
नाम डोर गले शोभिते।
सुगन्धि चन्दन अंगे लेपन,
संकीर्तन-धूलि भूषिते ॥

भाव गर गर ना चिने निज पर,
पुलक आवली शोभिते।
रा बलिया, धा बोल ना पारे बलिते ॥

बाजये मादल करहि करताल,
कलि कुलिश भय नाशिते ॥

भकत-गण मेलि, देइ कर तालि,
गिर ये चउदिक नाचिते ॥

चरण-पल्लव भकत-बल्लभ,
कलप-तरु परकाशिते।
'दीन-हीन दासेर' मन रहिल ताहाते ॥

(पदकल्पतरु, २८८)

द० श्री०

देवकी नन्दन दास

देवकी नंदन दास का मूल नाम चापाल गोपाल था। साधना-क्षेत्र में आने पर इनका नाम देवकी नन्दन दास पड़ा। इन्होंने स्वरचित 'वैष्णव-वन्दना' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इनके मंत्रदाता गुरु पुरुषोत्तम दास नित्यानन्द के पार्षद् भक्त थे। (कहीं-कहीं श्रीनाथ पण्डित का उल्लेख भी इनके मंत्रदाता गुरु के रूप में हुआ है)। पुरुषोत्तम दास सदाशिव कविराज के पुत्र थे। मनोहर दास कृत 'अनुराग-वल्ली' में भी पुरुषोतम दास को इनका मंत्र-गुरु कहा गया है—'श्रीनित्यानन्देर प्रिय श्री पुरुषोत्तम महाशय। देवकीनन्दन तार शिष्य हे'। ये ब्राह्मण थे, इनका निवास स्थान कुमारहट्ट या हालि शहर था। आरम्भ में ये शाक्तमत में दीक्षित हुए थे। शाक्त मत के आधार पर इन्होंने 'वैष्णव-विधान' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें इन्होंने वैष्णवों की निन्दा की थी। ऐसी जनश्रुति है कि इस अपराध के कारण इन्हें भीषण दैवी प्रकोप का भागी होना पड़ा था (सम्भवतः उन्हें कुष्ट रोग हो गया था)। महाप्रभु ने इसे 'वैष्णव-अपराध' कहा। 'गौर पद तरंगिनी' में महाप्रभु की इस प्रतिक्रिया का उल्लेख इस रूप में हुआ है—

वैष्णव निन्दने तोमार एतेक दुर्गति।
वैष्णव वन्दना करि शुद्ध करि मति ॥

'वैष्णवों की निन्दा करने से तुम्हारी यह दुर्गति हुई है, वैष्णव वन्दना से अपनी मति को शुद्ध करो' (गौरपद-तरंगिगी-उपक्रमणिका-९९ एवं श्रीपदकल्पतरु-परिशिष्ट पृ० १२३)।

इनकी विशेष ख्याति 'वैष्णव-वन्दना' के कारण है। यह रचना तीन सौ अड़सठ पंक्तियों की है, जो पयार छन्द में रचित है। इसमें महाप्रभु के समकालीन एवं उनके परवर्ती अनेक वैष्णव भक्तों का परिचय दिया गया है। इनके अधिकांश पद चैतन्य विषयक हैं, किन्तु कुछ पद (१५३१, २०११, २०८६, २२०९, २२१६) राधा-कृष्ण लीलागान सम्बन्धी भी हैं।

इनके दो पद नीचे उद्धृत हैं—

(१)

विपरीत रति अवसाने कमल मुखो,
घामहि भोगल चीर।
सहचरी दासी चामर करे बीजइ,
कोइ जोगायत नीर।
बैठल राधानागर कान,
दुहुं जन चिर अभिलाषा परिपूरन,
परिजन मंगल गान ॥

कालिन्दी तीर निकुन्ज मनोहर,
बहतहि मलय समीर।
कत परिहास रभस रस कौतुक,
दुहुं पर दुहुं जन गीर ॥

वृन्दा देवी समय बुझि कुन्जहिं,
सेवइ कत परकार।
ओ रस सायरे ओना पाओल,
देवकी नन्दन आर।

(प० क० त० २०११)

गौरांग रूप-वर्णन

(२)

राजेन्द्र गमने निताई चले मन्थरे।
जारे देखे तारे भासाय प्रेमेर पाखारे॥

पतिति दुर्गति पापीर घरे घरे गिया।
ब्रह्मार दुर्ल्लभ प्रेम दिछेन वाचिया॥

येनो लय तारे कय दन्ते तृन धरि।
आमारे किनिया लउ बल गोर हरि॥

तो सामार लागिया कृष्णेर अवतार।
शुन भाइ गोरांग सुन्दर नदीयार॥

जे पहुं गोकुलपुरे नन्देर कुमार।
तो समार लागि एवे केल अवतार॥

शुनिया कांदेर पापी चरने धरिया।
पुलके पुरल अंग गर गर हिया॥

तारे कोले करि निताई जाइ आन हाम।
हेन मते प्रेमे भासाउल पुरग्राम॥

देवकीनन्दने बोले मूर अभागिया।
डुविलुं विषय-कूपे निताइना भजिया॥

(गौ० प० त० पद २१ पृ० २११)

द० श्री०

धरणो

धरणी, श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे। अपने एक ब्रजबुली पद में इन्होंने आचार्य श्रीनिवास की वन्दना की है।

इनके चार पद कल्पतरु में संकलित हैं, जिनमें तीन (संख्या ८५८, २३८, २४५४) ब्रजबुली में हैं। इनका एक बंगला पद 'कीर्तनानन्द' (पृ० २६१) में संकलित है।

एक पद नीचे दिया जा रहा है—

आरे मनमथ नाहि तुअ धरम विचार।
को तरु दोख शेख करु का सजे,
बड़ तुहुँ मुरख गोंआर॥

सुनइते रूप कला गुण माधुरी,
तेजि दिठि हेरल कान।
सोइ योधपति ताहे नाहि पारलि,
हृदये हानलि पांचवाण॥

किए गुण रति तोहे, पति करि मानल,
नाम का राखल काम।
नाशसि काम कुलटा पद देओसि,
अब तोहे चिनलुं हाम॥

देवी पति शिव जीव तुअ राखल,
छिये छिये ए बड़े दुखे।
ता सजे वाद साध यइके धाओलि,
तइछे अनल दिल मुखे॥

अव हाम शम्भु आराधन तुआ लागि,
पुन तुअ करब विनाश।
विरहिणि-गण येन, किये धर किए वने,
याहं-ताहं सुखे करु वास॥

धरणी क वाणी मान तुहुँ सुन्दरि,
शम्भु आराधवि काय।
मनमथ कोटि मथन करु यो जन,
सो तुअ चरण धेयाय।

(पद कल्पतरु-८५८)

राधाका स्वगतकथन—'ओ मन्मथ! तुम्हें धर्म-अधर्म (न्याय-अन्याय) का बोध नहीं है! दोषी कोई और है, किन्तु (तुम्हारे) दण्ड का भोक्ता कोई दूसरा है। तुम बड़े मूर्ख और गंवार हो, अज्ञानी हो। किसी (अन्या) के रूप, कला, गुण व माधुर्य की ख्याति सुनकर कान्ह (मुझे वंचित कर) दूसरी रमणी के प्रति आकृष्ट हुए। तुम असफल योधापति

(सेनापति) के समान उन्हें पराजित न कर सके, अपनी पराजय-लज्जा-निवारण हेतु तुमने मुझे अपने पंच बाणों का लक्ष्य बनाया। न जाने तुम्हारे किस गुण पर मुग्ध हो रति ने तुम्हारा वरण किया, तुम्हें काम की उपाधि किसने दी है? मैंने तुम्हें भली-भाँति पहचान लिया है। मेरी धवल कीर्ति को कलंकित कर तुम मुझे कुलटा की कोटि प्रदान कराने में सहायक बने हो। देवी के पति शिव ने तुम्हें 'मनोज' के रूप में जीवित रहने का वरदान दिया, छिः छिः यह कितना लज्जाजनक है कि तुमने उनके साथ भी छल किया, इसलिए उन्होंने तुम्हें जलाकर क्षार कर दिया (तुम्हारे मुख में आग लगा दी)। अब मै पुनः शम्भु की आराधना करूँगी कि तुम्हें जलाकर पुनः क्षार कर दें, जिससे वियोगिनियाँ गृह और वन सभी स्थानों में चिन्ता मुक्त होकर विचरण कर सकें। धरणी कहते हैं, "अरी राधा, तुम शम्भु की प्रार्थना क्यों करती हो, जो व्यक्ति कोटि-कोटि मन्मथ का संहारक है, वह तुम्हारे चरणों की आराधना करता है।' द० श्री०

नटवर

नटवर, नरहरि के समकालीन वैष्णव भक्त थे। इनके विषय में इसके अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है। 'पदकल्पतरु' में इनके दो पद संकलित हैं। इनमें से एक (१३६६) 'बंगला' में और दूसरा (२०५०) 'ब्रजबुली' में है। इनके कुछ पद 'कीर्तनानन्द' (पृ० ४, १८) में भी संकलित हैं। अप्रकाशित 'पद रत्नावली' में भी इनका एक पद उपलब्ध है (४५०)। इन्होंने केवल राधा-कृष्ण-लीला विषयक पद ही रचे हैं। परम वैष्णव कमलाकान्त ने अप्रकाशित 'पद रत्नावली' में इनका उल्लेख किया है। (अ० प० सं० ४६८ पूर्व पदकर्ताओं का विवरण) इनके कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

गोपी-गण कुच कुंकुमे रंजित,
अरुण वसन शोभे अंगे।
कन्चन निन्दित कान्ति कलेवर,
राइ परस रस संगे॥

देख देख अपरुप गौर विलास।
लाख युवति रति यो गुरु लम्पट,
सो अब करल सन्यास।
यो व्रज-वधु-गण दृढ़-भुज-बन्धन,
अविरत रहत अगोर।
सोतनु पुलके पुरित अत्र घड़ घड़,
नयने गलये प्रेम लोर॥

यो नटवर घनश्याम कलेवर,
वृन्दा विपिन विहारी।
कहये नटवर सो अब अकिन्चन,
घरे घरे प्रेम भिखारी॥

(हि० व्र० २८२, प० क० २२५२)

(२)

तोमार वदन आमार जीवन,
सरवस धन तुमि।
तोमा धरि चिते, खूंजिते खूंजिते,
आशिया पाइलाम आमि॥

राइ है, कि मोर करम भागि।
व्रजेर जीवन, सभाकार धन,
आसिया पाइलाम लागि॥

दारिद्रेर मत फिरिए जगत्,
चनक मूठेर आशे।
तार माझे येन, हेम वरिषन,
विधि मिलायल पाशे॥

एत क्षने मोर आस पुरल,
भागल मनेर धन्द।
कहे नटवर एहेन दुर्लभ,
राइ श्यामर चन्द॥

(प० क० त० १३६६)

(३)

राधा-कृष्णेर माहात्य
कामोदर मल्लार।

राधाकृष्ण प्रेम-रस-जलनिधि
दुर्गम अतिशय गभिर विचार।
अज भव व्यास शेष शुक नारद,
मुनि गन ना पाउल पार ॥

हरि हरि इह रस को अवगाह।
वो रस निगमन सघने वृन्दावन,
आपने ना बूझल नाह ॥

श्रीजयदेव विद्यापति कवि कुल,
रसिक भकत जत भेलि।
पद पंकज मकरन्दे मताउल,
भगत भ्रमर माति गेलि ॥

रूप सरूप सनातन ब्रज जन,
चरन शरन करु आशा।
नटवर दास कहे क्षुद्र पक्ष चाहे,
करइते सिन्धु पिपासा ॥
(अप्रकाशित पदावली, २४५०)

नयनानन्द

नयनानन्द चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक और उनके परम प्रिय भक्त थे। ये गदाधर पण्डित के भ्रातृ-पुत्र व उनके प्रिय शिष्य थे। गदाधर पण्डित के कनिष्ठ भ्राता काशीनाथ मिश्र थे। नयनानन्द इन्हीं के पुत्र थे। ये मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत कादिर ग्राम के निवासी थे। इनका आदि नाम ध्रुवानन्द था। 'चैतन्यचरितामृत' में इनका उल्लेख, 'मिश्र नयन' के नाम से हुआ है। इनका सांकेतिक परिचय निम्न उद्धृत पंक्तियों में मिलता है—

पण्डित गोसाईर भ्रातृ पुत्र श्रीनयनानन्द।
पुष्प गोपाल, गोपाल दास आर ध्रुवानन्द ॥

'पद-समुद्र' में इनका एक पद संकलित है जिससे इनके जीवन पर अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से प्रकाश पड़ता है। वह पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

पण्डितेर स्नेह पात्र श्री नयानमिश्र।
बालकाले प्रभु जारे करिलेन शिष्य ॥
पण्डितेर पाछे नयन थाके सर्व खन।
प्रभू लीला देखि पद करये बर्नन ॥

एछे चेष्टो देखि प्रभु हरषित होला।
नयनानन्द बलि नाम पश्चात् खुइला ॥

नीलाचल जाइते प्रभु जबे इच्छा केला।
श्री नयनानन्दे भरतपुर नियोजिला ॥

भरतपुर ग्राम में गदाधर पण्डित ने गोपीनाथ विग्रह की स्थापना की थी। जब वे नीलाचल गमन करते तो नयनानन्द को इस विग्रह की सेवा का दायित्व दे जाते थे।

खेतुरी-उत्सव के समय श्री नयनानन्द उपस्थित थे। महाप्रभु चैतन्य देव को वे साक्षात् कृष्ण का और गदाधर पण्डित को साक्षात् श्रीराधा का अवतार मानते थे। इनका प्रत्येक पद चैतन्य और गदाधर पण्डित को एकात्म मानकर रचा गया है। गौरांग की नवद्वीप-लीला को ये कृष्ण की ब्रजलीला के पर्याय रूप में स्वीकार करते थे। इस प्रसंग का एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

नाचेर गौरांग गदाधर मुख चाइया।
अन्तरे परश रस उखलिल हिया ॥

दुहुं मुख निरखिते दुहूं भेल भोर।
दुहूं भेल रस-निधि अमिया चकोर ॥

वुके वुके मिलि दुहे कयलहि कोर।
कांपि पुलक दुहुं झांपइ लोर ॥

तनु मन बानी दुहुँ एकइ परान।
प्रति अंगे पिरित-अमिया निरमान ॥
(पद कल्पतरु-२१७९ सं० पद)

परवर्ती काल में गौड़ीय वैष्णव समाज में 'श्री राधाकृष्ण की अभिन्न-भाव-मूला-भक्ति' को महत्व देने वाले 'गदाई-गौरांग-भजनकारी सम्प्रदाय'-विशेष के उद्भव और विकास का श्रेय श्री नयनानन्द को ही है। इनके पद मूलतः गौरांग विषयक हैं, जो बंगला में है। कृष्ण लीला सम्बन्धी पद इसलिए

उपलब्ध नहीं होते कि इन्होंने गौरांग को ही कृष्णावतार रूप में स्वीकार कर लिया था। इनके दो 'ब्रजबुली' के पद नीचे उद्धृत हैं—

(१)

गौरांग के नयनाभिराम रूप का चित्रण

ओ रूप सुन्दर गौर किशोर।
हेरइते नयने आरति नाहि ओर॥

कर पद सुन्दर अधर सुराग।
नव अनुरागिनि नव अनुराग॥

लोल विलोचन लोलित लोर।
रसवती हृदये बांधल प्रेम डोर॥

परतेक प्रेम किए मनमथ राज।
कान्चन गुरु किए कुसुम समाज॥

अछु प्रेम लम्पट श्री गौरांग राय।
शिव शुक अनन्त धेयाने नाहि पाय॥

पुलक पटल वलयित सब अंग।
प्रेमवती आलिंगने लहरी तरंग॥

तछु पद पंकज अलि सहकार बिहार।
कह नयनानन्द चरित अपार॥

(गो० प० त० १७७-१७८)

(२)

वासन्ती रास लीला

मधु ऋतु यामिनि, सुरधनु तीर।
उजर सुधाकर मलय समीर॥

सहचरे संगे गौर नटराज।
फीरये निरुपम कीर्तन माझ॥

खोल करताल ध्वनि नटन-हिलोल।
भुज तुलि घन घन हरि हरि बोल॥

नरहरि गदाधर बिहरइ संग।
नाचत गाओत कतहुँ विभंग॥

कोकिल-मधुकर पन्चम भास।
नयनानन्दक पहुँ करये विलास।

वंगला वैष्णव भक्ति साहित्य के इतिहास में एकाधिक नयनानन्द का उल्लेख मिलता है। ऊपर जिन नयनानन्द का परिचय दिया गया है, उनके अतिरिक्त अन्यों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

नयनानंद कविराज

नयनानन्द कविराज श्रीखण्ड निवासी थे, वैद्य वंश में इनका जन्म हुआ था। ये प्रसिद्ध भक्त तथा पदकर्ता रघुनन्दन ठाकुर के शिष्य थे। इन्होंने 'अकिञ्चन-सर्वस्व' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इनके विषय में कोई अन्य सूचना नहीं मिलती।

द० श्री०

नयनानंद ठाकुर

नयनानन्द ठाकुर वीरभूम जिलान्तर्गत 'मंगल डिही' ग्राम के निवासी थे। इनका जन्मकाल शक संवत् १७३१ माना जाता है। श्रीरूपगोस्वामी रचित 'श्री भक्ति-रसामृत-सिन्धु' के आधार पर इन्होंने एक अन्य ग्रन्थ 'प्रेम-भक्ति-रसछवि' की रचना शक संवत् १६५२ में की थी। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कोई जानकारी नहीं मिलती।

द० श्री०

नयनानंद देव

नयनानन्द देव का जन्म शक सं० १६०७ में हुआ था। ये रसिकानन्द के शिष्य थे। इनके १५ संकीर्तन पद बंग, उलाल और मैथिली भाषाओं में उपलब्ध हुए हैं। इनकी समाधि-श्रीपाट मयनागढ़ में विद्यमान है। इनके कृष्ण की ब्रज लीला विषयक ब्रजबुली में रचित पदों की पाण्डुलिपि कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

इनके रचित दो पद नीचे उद्धृत हैं—

(१)

निशि मुखे सुखे हरि छान्दत गाइ।
गावी दोहन केलिकरत आभाइ॥

दोहत गावी सखा गण संग।
धर धर गागरी बोल तरंग॥
गो दोहन केलि करु अवसान।
सहचर आसि पुन भेंटल कान॥
ए नयनानन्द कहइ जुड़ि हात।
एके एके मिलल सकल सांगात॥

(कलकत्ता वि० वि० पाण्डुलिपि सं० २१३५
पद संख्या-७१)

(२)

उठ गोपाल प्रातकाल मुख नेहारि तेर।
रजनी अवसान भेइ काम भइ मेट॥
उठ भानु देखत कानु रजनी गइ दूर।
बालक संगे मेलत रंगे रउहिणेय बलवीर॥
एइ श्रीदाम दाम सुदाम, संगि गण तेर।
पूरत वेणु दोहत धेनु आंगिना भरल मेट॥
नन्दराणी पसारि पाणि बालक लेइ कोर।
मुख नेहारि दुख विसारि किये सुख जानि ओर।
श्यामचन्द्र चन्द्र उदित नाशल हृदि घोर।
हेरिय वचन कइछें नयन उठ कानाइ मोर॥

(वीरभूमि विवरण खण्ड १ पृ० ३१३)

नरहरि ठाकुर

नरहरि ठाकुर वर्धमान जिलान्तर्गत श्रीखण्ड के निवासी थे। इस ग्राम के निवासी गोरन्तनानन्द ने 'श्री खण्ड के प्राचीन वैष्णव' नामक ग्रन्थ का संकलन सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ में नरहरि के विषय में इन्होंने लिखा है—'हम लोग गुरु-परम्परा से सुनते आ रहे है कि ठाकुर नरहरि का जन्म महाप्रभु के अवतीर्ण होने के चार या पाँच वर्ष पूर्व हुआ था।' चैतन्य महाप्रभु का अवतार ई० सन् १४८५ में हुआ था। इस सूचना के आधार को प्रमाण मानते हुए नरहरि ठाकुर का जन्म समय सन् १४८०–८१ स्वीकार किया गया है। इनके पिता का नाम श्रीनरनारायण अथवा नारायण दास था। इनके ज्येष्ठ भ्राता मुकुन्ददास सुल्तान मुहम्मद शाह के चिकित्सक थे। इनके पिता नरनारायण भी राजवैद्य थे। नरहरि ठाकुर चैतन्य के स्नेह भाजन थे। पिता नरनारायण ने अपनी दोनों सन्तानों को शैशव काल से ही भक्ति की ओर आकृष्ट किया था। फलस्वरूप इनका परवर्ती जीवन चैतन्य भक्ति से पूर्णरूपेण परिप्लावित रहा। काल-क्रम से नरहरि और मुकुन्ददास के सम्मिलित प्रभाव से एक प्रकार की 'पारिवारिक वैष्णव गोष्ठी' गठित हो गई थी। इस गोष्ठी के माध्यम से इनके अनेक शिष्य-प्रशिष्य हो गए थे और एक पुष्ट तथा प्रौढ़ गुरु परम्परा भी स्थापित हो गई थी। इस गुरु परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय नरहरि को ही था, अतः ये 'ठाकुर' उपाधि से विभूषित हुए।

बंगाल की वैष्णव-भक्ति धारा के अन्तर्गत नरहरि ने मधुर भाव संकीर्तन पद्धति का प्रवर्तन किया। गौरांग लीला को सर्व-जन-प्रिय बनाने की बलवती प्रेरणा से इन्होंने सरल, किन्तु चित्ताकर्षक भाषा में लीला-पदों की रचना की थी। इस प्रसंग में इन्होंने अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा है—

किछु-किछु पद लिखि जदि इहा केहि देखि,
प्रकाश करे एह लीला।
नरहरि पावे सुख, घुचिवे मनेर दुख,
ग्रन्थ गाने दरविवे शिला॥

'कुछ पदों की रचना मैंने इस उद्देश्य से की है कि इससे प्रेरित होकर कुछ अन्य भक्त गण भी कृष्ण (चैतन्य) लीला का गान करें, जिससे नरहरि को सुख प्राप्त हो, मन का दुख शमित हो और ग्रन्थ-गान से कठोर शिला (के समान हृदय) भी द्रवित हो जाय।'

श्रीखण्ड समुदाय के वैष्णव भक्तगण पदावली-रचना एवं कीर्तन गान के लिए विख्यात हैं। जगन्नाथ की रथ-यात्रा के समय इस सम्प्रदाय के भक्तगण रथयात्रा में विशेष रुचि लेते थे। रथ-यात्रा के निमित्त चैतन्य महाप्रभु ने विख्यात 'परिभ्रन्ता

नृत्य' का आयोजन किया था। यहं सात सम्प्रदायों में विभक्त था। रथ के चार पार्श्वों में चार सम्प्रदाय के लोग रहते थे, दो अग्र पार्श्व के आगे और दो पृष्ठ पार्श्व के पीछे। प्रत्येक सम्प्रदाय में दो मृदंग वादक, एक नृत्यकारी (नर्तक), एक प्रधान गायक (गायन) और पांच व्यक्ति पालि (गान की पंक्ति दुहराने वाले) रहते थे। इनमें नरहरि दास भी थे।

नरहरि ने श्री गौरांग सुन्दर की मूर्ति के निर्माण की परम्परा चलाई। इन्होंने 'नादिया-नागर-मूर्ति' नाम से श्री गौरांग की तीन मूर्तियां निर्मित करवाई। एक मूर्ति की स्थापना श्रीखण्ड में, दूसरे की स्थापना गंगानगर में एवं तीसरी सर्व सुन्दर मूर्ति की स्थापना गदाधर के शिष्य विद्यानन्द पण्डित द्वारा कटवा ग्राम में करवाई।

मधुर अथवा नागर-भाव विषयक इनका एक पद यहाँ उद्धृत है—

बेला अवसाने ननदिनी संगे जल अनिते गेलूं।
गोरा चाँदरे रूप निरखिए कलसी भासा ये एनू॥

सुरधुन तीरे दांड़ाये रयेछे, दुकूल करिए आला।
श्री अंग सकल करे झलमल शरद चांदेर माला॥

कांपे कलेवर गाये आरो ज्वर चलिते ना चले पा।
गोरांग चांदेर रूपेर पारापारे सांतोरना पेमूखा॥

दीघल दीघल नयन युगल, विषम कुशल शरे।
रमनी रेमने धेरज धरिए मदन शंकाए उरे॥

शपने गौर सपने गौर गौर नयनेर तारा।
जोवने गौर मरने गौर, गौर गलार हारा॥

हियार माझे गौरांग रासिक रिलेवसिया रव।
मनेर साधेते, से रूप चांदेर, नयने-नयने रसेर॥

'सन्ध्याबेला (अवसान बेला) में ननदिनी के संग मैं जल लाने गई। गोरा चांद की रूप छवि में मैं इतनी निमग्न हो गई, कि कलसी, हाथ से छूटकर जल में डूब गई। दुकूल का आवरण कर गोरा चांद सरिता तट पर वंशी-ध्वनि प्रतिध्वनित कर रहे थे। उनका सम्पूर्ण शरीर शरद् चन्द्रमा के समान झलमल कर रहा था, उनके सौन्दर्य में आप्लावित होकर मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया। ज्वर (विरह जनित ताप) से मेरा शरीर अनुतप्त हो गया, पद स्तब्ध हो गये (पद अचंचल हो उठे)। गोरा चांद के रूप सौन्दर्य का पारावार मैं, संवरण नहीं कर पा रही हूँ। उनके दीर्घ नेत्र युगल कौशल के साथ शर संधान कर रहे हैं। रमणी मदन शंका के डर से किस प्रकार धैर्य धारण करे। शयन में गौर, स्वप्न में गौर नेत्रों के तारों में गौर, मरण में गौर, गौर गले का हार है। हृदय में रसिक गौरांग (कृष्ण) के शब्द बस गये हैं।'

इस प्रकार के पद को 'नदीया नागरी पद' कहा जाता है। 'गौर-पद-तरंगिनी' में नरहरि के ३८५ पद संकलित है। इनकी एक अन्य रचना 'श्रीकृष्ण भजनामृत' का भी उल्लेख मिलता है। यह गद्य-पद्य-मिश्रित रचना है। इन्होंने शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में 'गौरांगाष्टक लीला' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। नरहरि संस्कृत के कुशल पण्डित थे। 'भक्ति चन्द्रिका पटल' एवं 'मूलामृताष्टक' नामक इनकी दो अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ है। इन्होंने कुछ पद ब्रजबुली में भी रचे हैं। नीचे जो पद उद्धृत किया जा रहा है उसमें दीर्घकालीन विरह के पश्चात् राधा-कृष्ण के मिलन-सुख का रसमय वर्णन है—

राइक विपत्ति शुनि विदगध शिरोमणि,
पुछइ गद गद भाषा।
निज मन्दिर स्यजि चलु नव-नागर,
पुन पुन परगइ ताशा॥

विछुड़ल चरण-रणित मणि मन्जरि,
विछुड़ल मुरलिक रंधे।
विछुड़ल वेश वसन भेल विगलित,
विगलित शिखि पुच्छ-चन्द्रे॥

मलयज परिमले दशदिशि आमोदित,
यामिनी बहे अति पुन्जे।

लालस दरश-परसे दुहूँ आकुल ,
चिर दिने मिलल कुन्जे ।
दुहु मुख हेरइ अथिर भेल दुहुँ तनु,
परशित भुजे भुजे कांप ।
नरहरि हृदि-माझे अपरुप जागल,
जलधर विधुवर झांप ॥

'राधा की विपत्ति (पीड़ा) सुनकर विदग्ध शिरोमणि (कृष्ण) गद्‌गद् भाव (भाषा) में जिज्ञासु हो उठते हैं। कृष्ण से मिलने की आतुरता में राधा अभिसारिका का वेश धारण कर लेती हैं—वे कृष्ण का वेश धारण कर गोपन अभिसार के लिए जाती हैं। राधिका मिलन औत्सुक्य से प्रेरित होकर नागर (कृष्ण) का रूप धारण कर लेती हैं। अपने मन्दिर (गृह) का परित्याग कर उत्सुकता था भाव लिए कृष्ण से मिलने के निमित्त अभिसार करती है। वे उत्सुकता से अपनी नासिका का स्पर्श करती है, परन्तु उनकी आकुलता इतनी प्रबल हो उठती है कि अपने अवधारित रूप की रक्षा नहीं कर पाती हैं, वे मुरली को भूल जाती हैं, उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। उनका छद्मवेश गोपन नहीं रह पाता, मयूरपक्ष भी टूट कर अलग हो जाता है। मिलन-रात्रि में मलयज के मन्द प्रवाह में उड़ते हुए परिमल से दश-दिशायें अनुरंजित हो रही हैं। दोनों (राधिका व कृष्ण) एक दूसरे के दर्शन और स्पर्श के लिए आकुल हैं। चिर दिनों के पश्चात् कुञ्ज में मिलने की सुख-कल्पना से दोनों ही आनंदित हैं,। दोनों के शरीरों का सामीप्य हुआ और दोनों एक दूसरे को अनुराग भरी उत्सुकता से देखते हैं। दोनों ही कम्पित-गात, एक दूसरे को प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लेते हैं। यह देखकर नरहरि के हृदय में एक दिव्य रूप उदित हुआ है मानो काले बादलों ने पूर्णचन्द्र को ढक लिया हो।'

द० श्री०

नरहरि सरकार

नरहरि सरकार प्रथम वैष्णव भक्त हैं जिन्होंने 'चैतन्यलीला-दर्शन' शीर्षक से चैतन्य की जीवनी और भक्ति विषयक सामग्री प्रस्तुत की है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि चैतन्य के अधिकांश भक्त, 'राधाभाव' की भक्ति में आस्था रखते थे। परन्तु नरहरि सरकार की आस्था महाप्रभु के रसराज रूप पर ही थी। इसी भाव से प्रेरित होकर चैतन्य को ये कृष्ण का प्रतिरूप मानते थे। अतः उपासना की दृष्टि से चैतन्य के भक्तों की दो श्रेणियाँ थी—(क) चैतन्य के राधा-भाव के उपासक-भक्त, (ख) चैतन्य को रसराज कृष्ण का प्रतिरूप मामकर उनकी उपासना करने वाले भक्त। नरहरि सरकार के वंशज आज भी चैतन्य की उपासना रसराज के रूप में ही करते हैं। नरहरि सरकार रचित 'चैतन्य-लीला-दर्शन' शीर्षक ग्रन्थ से एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

गौर लीला दरशने इच्छा बड़ हय मने,
भाषायऽलेखिया सब राखि ।
मुञितो अति अधम लिखिते ना जानि क्रम,
केमन करिया ताहा लिखि ॥
ए ग्रन्थ लिखिवे ये एक जन्में कहिं से,
जन्मिते विलम्ब आछे बहु ।
भाषाय रचना होले बुझिवे लोक सकले,
कबे वाञ्छा पुराषेन पहु ।
गौर गदाधर लीला आद्रव करये शिला,
कार साध्य करिवे वर्णन ।
शारदा लिखेन जदि निरन्तर निरवधि
आर सदाशिव पञ्चानन ॥
किछु-किछु पद लिखि जदि इहा केइ देखि
प्रकाश करये प्रभु लीला ।
नरहरि पाबे सुख घुचिबे गनेर दुख,
ग्रन्थ गाने दरविवे शिला ॥

(मेरे) मन में गौर (श्रीचैतन्य महाप्रभु) की लीला-दर्शन की तीव्र अभिलाषा है जिसे मैं भाषा

में लिपिबद्ध करके सुरक्षित करूँगा। मैं अति अधम, लिखने की क्रिया से अनभिज्ञ (अज्ञानी) हूँ। मैं (प्रभु के गुणों का) कैसे वर्णन करूँ ? इस ग्रन्थ (चैतन्य-लीला-दर्शन) की सम्पूर्ति के लिए यह (मेरा वर्तमान) जन्म (जीवन, अपर्याप्त है और दूसरे जन्म में (दूसरा जीवन-इस शरीर के त्यागने के पश्चात् अभी विलम्ब है, भाषा में रचना करने से बहु संख्यक जनों तक प्रभु की लीला का गान पहुँच सकेगा (इस हेतु ही भाषा में रचना करने का अभिलाषी हूँ)। प्रभु मेरी इस अभिलाषा को कब पूरी करोगे, गौर और गदाधर की लीला गान से शिला द्रवित हो जाती है। (अथवा गौर गदाधर की लीला शिला को द्रवित कर देती है)। मैं किस साधन से वर्णन करूँ। शारदा, शिव और गजानन प्रभु की नर-लीला के वर्णन करने में सक्षम नहीं हैं (तो मुझ में कहाँ से क्षमता होगी ?) मेरे इन कुछ पदों का केवल इतना ही उद्देश्य है कि इनके प्रकाश में (अथवा इनसे प्रेरणा ग्रहण कर) कोई अन्य भक्त और पदकर्त्ता प्रभुलीला का सविस्तर वर्णन कर सके। अस्तु ! कवि का दृढ़ विश्वास है कि इस ग्रन्थ-गान (चैतन्य लीला दर्शन) से कठोर शिला (अर्थात् कठोर शिलावत् हृदय) द्रवित हो जावेगी, तो नरहरि का दुःख इसमें विस्मृत हो जावेगा, और उसे सुख (आत्मसुख अथवा लीला-सुख) की प्रतीति होगी।

द० श्री०

नरोत्तमदास (ठाकुर)

नरोत्तम दास (ठाकुर) श्रीनिवास के गुरुभाई थे। इनका जन्म सन् १५८३ ई० हुआ था। इन्होंने उत्तरबंग में विशेष रूप से वैष्णव धर्म का प्रचार किया। ये जाति के कायस्थ थे। तद्युगीन समाज के सभी वर्गों में इनका विशेष सम्मान था। इनका जन्म स्थान राजशाही जिलान्तर्गत रामपुर वोयालिया से बारह मील दूर अवस्थित गडेरहाटी अथवा गरान हाटी परगनान्तर्गत पद्मातटवर्ती खेतुरी ग्राम के निकट अवस्थित गोपालपुर था। इनके पिता का नाम श्रीकृष्णानन्द दत्त और माता का नारायणी था। कृष्णानन्द के कनिष्ठ भ्राता पुरुषोत्तम के एकमात्र पुत्र थे—सन्तोष। इनके पिता कृष्णानन्द दत्त एक सम्पन्न भू-स्वामी थे। सम्पन्न भू-स्वामी की एकमात्र सन्तान होने पर भी ये सांसारिक आकर्षण से विरत थे। चैतन्य परवर्ती युग में वैष्णव धर्म के नवोत्थान में नरोत्तम स्वामी की भूमिका का ऐतिहासिक महत्व है। अल्पावस्था में ही आचार्यों के निकट बैठकर श्रीकृष्ण गुण-श्रवण इन्हें प्रीतिकर लगता था। नरोत्तम के विषय में अनेक अनुश्रुतियाँ मिलती हैं। एक सन्दर्भ में इस प्रकार का कथन मिलता है—'प्रभु भाविते हेन, ताहार अवर्तमाने संसारे प्रेम शून्य होइवे, तबे प्रेम रक्खाय जन्ये दुटि मूर्ति प्रकाश करिलेन, एक गडेर हाटे नरोत्तम आर राड़े श्री निवास'—अर्थात् 'प्रभु चिन्ता करते हैं, अपने अवर्तमान होने पर (परलोकगामी होने पर) संसार प्रेमशून्य हो जायेगा। तत्पश्चात् प्रेम को रक्षित करने के लिए इन्होंने दो मूर्तियों को प्रकाशवन्त किया—प्रथम थे गड़ेरहाट में नरोत्तम, द्वितीय थे राड़ में श्रीनिवास।' नरोत्तम ने पिता के ऐश्वर्य का परित्याग कर तरुण अवस्था में ही सन्यास ग्रहण कर लिया था और वृन्दावन चले गए थे। इन्हें श्रीनिवास और श्यामानन्द का साहचर्य प्राप्त हुआ। वृन्दावन से अपने ग्राम लौटकर इन्होंने पूर्ण सन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीनिवास और नरोत्तम की दृष्टियों में पार्थक्य था। श्रीनिवास दारिद्रय में पलकर भी राजसी भाव से जीवन-यापन करते थे। अलंकरण और श्रृंगार उन्हें विशेष प्रिय था। नरोत्तम वैभवशाली पिता की सन्तान होते हुए भी वीतरागी थे। बंगाल में मध्ययुगीन वैष्णव समाज में इनका चरित्र अनुकरणीय माना जाता था।

नरोत्तम दास ने वृन्दावन में अद्वैत आचार्य के शिष्य लोक नाथ चक्रवर्ती गोस्वामी के निकट दीक्षा ग्रहण की थी एवं जीव गोस्वामी के संरक्षण में भक्ति शास्त्र का अध्ययन किया था। 'साधनभक्ति-

चन्द्रिका' अथवा 'भक्ति-उद्दीपनी' शीर्षक ग्रन्थ में इन्होंने अपना परिचय दिया है।

वृन्दावन से लौटकर नरोत्तम स्वगृह में ही भजन, आराधना में निमग्न रहने लगे। इन्होंने छः विग्रह स्थापित किए—श्री गौरांग, वल्लभी कान्त, श्रीकृष्ण, ब्रज मोहन, राधाकान्त, तथा राधा रमन। देव-विग्रह कीस्थापना के उपलक्ष में इन्होंने खेतुरी ग्राम में उत्सव का आयोजन किया था। यह आयोजन 'खेतुरी-उत्सव' के नाम से विख्यात है। इस उत्सव में देनूउछु से वृन्दावन दास, बूचरी (भूधरी) से रामचन्द्र कविराज एवं गोविन्द कविराज, याजिग्राम से श्रीनिवास आचार्य एवं गोकुल दास, श्रीखण्ड से ज्ञानदास व नरहरि सरकार, चक्रा से परमेश्वरी दास तथा अनेक पद-कर्त्ता, कीर्तनियाँ एवं सम्मान्य वैष्णव जन सम्मिलित हुए थे।

नरोत्तम ने संकीर्तन गान की एक उत्कृष्ट शैली का प्रचलन किया, जिसे 'गड़ेरहाटी-कीर्तन-शैली' कहते हैं। खेतुरी उत्सव के पश्चात् इन्होंने बंगाल के समस्त वैष्णव-स्थलों की यात्रायें की। नरोत्तमदास का भक्त-हृदय अत्यन्त संवेदनशील और सदाशयता से परिपूर्ण था। इन्होंने सर्वजन-हित की निरन्तर कामना की। ये प्रत्येक आत्मा में कृष्ण-चैतन्य के दर्शन करते और सबके प्रति श्रद्धावनत रहते थे। चैतन्य लीला गामियों के दर्शनार्थ यात्रा करते हुए जब ये नवद्वीप पहुँचे तो कुछ दिन पूर्व विष्णुप्रिया का तिरोधान हो चुका था और महाप्रभु के सेवकों में केवल शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी जीवित थे। यहीं इनका मिलन दामोदर पण्डित और ईशान नागर से हुआ जिनके सानिध्य और प्रेरणा से 'महामानव' की भावना में इनकी आस्था दृढ़ हुई। इस दृढ़ भावना से अनुप्रेरित होकर ये अपने ग्राम खेतुरी लौट आए। इस समय इनके गुरु लोक नाथ, श्रीनिवास और उनके प्रिय सखा रामचन्द्र गोलोकवासी हो चुके थे। इन घटनाओं ने इन्हें भीतर से तोड़ दिया। यद्यपि इनका व्यक्तित्व पारावार के समान था, फिर भी सुहृद और प्रिय व्यथा को इन्होंने एक शोक-स्तवक में व्यक्त किया है—

पति विने सती कांदे, शिरे दिए हात।
एउ दशा करिगेल स्वामी लोक नाथ॥

पड़िव अगाध जले कूल रते दूर।
केशे धरि तुल लेह आचार्य ठाकुर॥

दास रात्रि संगे करि बहु कृपा केल।
रामचन्द्र कविराजे साथे संवि देल॥

आमार आगे रामचन्द्र पुनः पुनः कर।
एइफेल जेन किछु नरोत्तमे……… ॥

छार रे दारुन विवि किकर्म करिला।
रामचन्द्र कविराज हरियालइला॥

एकुई काले दृष्टि वेल ठाकुर श्रीनिवास।
ते पान्तरे पाड़ि कांदे नरोत्तम दास॥

'पति के निधन पर जैसे सती नारी क्रन्दन करती है, लोकनाथ के तिरोधान के कारण मेरी भी वैसी ही क्रन्दनमयी अवस्था हो गयी है। मैं भवसागर के अगाध जल में डूब रहा हूँ, तट मुझसे बहुत दूर है, आचार्य ठाकुर मेरे केश पकड़ कर मुझे इस अगाध जल से ऊपर उठा लो। आपने मुझे केवल दस रात्रियों (दिवस) का सानिध्य प्रदान किया और कृपाकर रामचन्द्र कविराज के कर कमलों में मुझे समर्पित कर दिया। मेरे जीवन उद्धार के निमित्त रामचन्द्र कविराज को पुनः पुनः भेजने की कृपा करें। मेरे किस दुष्कर्म के दण्ड स्वरूप आपने रामचन्द्र कविराज के सामीप्य से मुझे वंचित कर दिया? ऐसे प्रतिकूल समयमें ठाकुर श्रीनिवास भी मुझे त्याग कर चले गये। फलतः भव सागर में पड़ा नरोत्तम दास क्रन्दन करता है।'

नरोत्तम की रचनाओं में प्रमुख है राधा कृष्ण-विषयक पदावली। कुछ रचनायें उपदेश प्रधान है, कुछ में साधना-निर्देश निबद्ध हैं। 'गौरपदतरंगिन' के निम्नांकित पद में इनकी रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

चन्द्रिका पंचम सार।
तिन मनि सारात् सार।।
गुरु शिष्य संवाद पटल।
त्रिभुवने अनुपम ग्रन्थेर नाम।।
हाट-पत्तम मधुर केवल,
रचिला असंख्य पद हेय भावे गद्गद्।।
कवित्तेर सम्पद से सब ..।

इससे प्रमाणित है कि पाँच चन्द्रिकायें—प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका, साधन-भक्ति-चन्द्रिका, साध्य-भक्ति-चन्द्रिका, रसभक्ति-चन्द्रिका और चमत्कार-चन्द्रिका तथा 'गुरु-शिष्य-संवाद-पटल' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

नरोत्तम राग-मार्ग के साधक थे। कुछ विचारकों की मान्यता है कि इनकी साधना-रीति तांत्रिक थी। अपने अंचल में ये तांत्रिक वैष्णव साधक के रूप में विख्यात थे। परन्तु बंगला साहित्य के प्रमुख इतिहासकार इस मान्यता से सहमत नहीं है। उनकी दृष्टि में ये मूलतः वैष्णव साधक थे। नरोत्तम की एक रचना 'देह-कडचा' नाम से विख्यात है, जो संवाद या प्रश्नोत्तरी शैली में रचित है। यथा—

प्र०-तुमि के (तुम कौन हो) ?
उ०-आमि जीव (मैं जीव हूँ)।

प्र०-तुमि कौन जीव (तुम कौन जीव हो) ?
उ०-आमि तटस्थ जीव (मैं तटस्थ जीव हूँ)।

प्र०-थाकेन कोथाय (रहते कहाँ हो)।
उ०-भाण्डे-(पात्र में)।

प्र०-कौन रस (कौन रस) ?
उ०-प्रेम रस (प्रेम रस)।

प्र०-कौन प्रेम (कौन प्रेम) ?
उ०-नव प्रेम (नव प्रेम)।

प्र०-कौन गन (कौन गण) ?
उ०-प्रहरार गन (प्रहरा-गन)

प्र०-कौन प्रहरा (कौन प्रहरा) ?
उ०-नवरस प्रहरा (नवरस प्रहरा)।

नरोत्तम दास की कुछ अन्य रचनाओं के नाम हैं—'स्वरूप है-कल्पतरु', 'हृदयतत्व-मंजरी', 'राधा-तत्व', 'रागमाला', 'भक्ति-रत्नावली', 'प्रेम-विलास व प्रेमरस-चन्द्रिका' 'प्रेम-रस-चन्द्रिका' इनका सर्वाधिक समादृत ग्रन्थ हैं। 'स्वरूप-कल्पतरु' में वैष्णव साधना के निगूढ़ तत्वों की व्याख्या की गई है। सैद्धान्तिक व्याख्या के निमित्त इन्होंने स्वरचित पदों को उद्धृत किया है—

नीचे नरोत्तमदास का एक पद उद्धृत है, इसमें अनुरागिनो राधिका के रागपूर्ण हृदय की अभिव्यंजना हुई है।

किवा से तोमार प्रेम, कत लक्ख कोटि हेम,
सर्वदाइ जागिछे अन्तरे।
पुरुवे आछिन् मागी, तेइं से पाइयाछि लागि,
प्रान कांदे विच्छेदेर डरे।।

कनलिया वरन खानि, आमार माथार वेनी,
आंचरे टाकिया राखि वुके।
दिया चांद मुखे मूख पूरार———सुख,
जे कह से कह छार।।

मनि नह, मुकता नह गलाय गांथिया लहो,
फूल नइ के ही करि वेश।
नारो ना करति विधि, तोमा हेन गुन विधि,
लइया फिरिते देशे देश।।

नरोत्तमदास कय, तो चार चरित्र नय,
तुमि मोरे ना छाडिअ दया।
जे दिन तोमार भावे, आमार परान जावे,
सेइ दिन विह पद छाया।।

'लक्ष कोटि से भी अधिक मूल्यवान तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में निरन्तर जागृत रहता है। तुम्हारे इस प्रेम की मैं पूर्व जन्म की अधिकारिणी हूँ। इस पुण्य के फलस्वरूप इस जीवन में मुझे यह प्रेम प्राप्त हुआ है, परन्तु वियोग की आशंका व भय से मेरा हृदय क्रन्दन करता रहता है।

मेरी वेणी काले वर्ण की है, मैं अपने वक्ष को अंचल से आवृत किए रहती हूँ। मेरे मुख-चन्द्र से सौन्दर्य सुख प्रसृत हो रहा है। मेरे पास मणि नहीं है, मुक्ता नहीं है, जिनसे मैं अपना श्रृंगार कर सकूं, मेरे पास पुष्पमाल नहीं जिससे मैं सुसज्जित होऊँ। तुम्हारे गुणों का बखान करती हुई मैं प्रेम-योगिनी होकर देश-देशान्तर घूम रही हूँ, तुम्हें खोजती फिर रही हूँ, तुम मुझे अपनी कृपा दृष्टि से वंचित न करना। तुम्हारे स्मरण में जिस दिन मेरे प्राण निकल जाएँ, उस दिन अपनी पद-छाया में मुझे आश्रय देना।'

इनके कुछ अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है—इनमें 'हाट पत्तन' पैंतालीस श्लोकों का संग्रह ग्रंथ है। इसमें रूपक शैली में महाप्रभु के भक्ति-सिद्धान्त और चर्या का वर्णन मिलता है। रूप गोस्वामी ने भक्ति-प्रसंग में ब्रजरसभूमि व विशुद्ध अलंकार का निर्देश किया है। इसका गौड़ीय-वैष्णव-धर्म में विशेष महत्व है। 'हाट-पत्तन' में इस प्रविधि के संग्रह और संरक्षण की दृष्टि मिलती है। 'गोपाल-चम्पू' रसात्मक काव्य नाटक है। 'अलंकार कौस्तुभ' तथा 'आनन्द वृन्दावन चम्पू', मुख्य रूप से चैतन्य-चन्द्रोदय परम्परा की रचनायें हैं। इनकी निर्वाण तिथि अज्ञात है।

नरोत्तम दास ने ब्रजबुली में भी पदों की रचना की है। इनके रचित 'ब्रजबुली' के बारह पद उपलब्ध हुए हैं। नीचे जो पद उद्धृत है उसमें मान भंग के अन्तर्गत राधाकृष्ण के मनोरम विलास का वर्णन किया गया है—

दुहुँ मुख दरसने दुहुँ भेल भोर।
दुहुँक नयन बहे आनन्द लोर॥

दुहुँ तन पुलकित गद गद भास।
दुहुँ बढ़ जलोकने लहु लहु हास॥

अपरूप राधा माधव अंग।
मान विराने भेल एक संग॥

आनन्द मगन भेल देखि दुहुँ जन।
ललिता विसाखा अहि जति सखिगन॥

निकुंजो माझे दुहुँ केले विलास।
दूरहिं दूर रहु नरोत्तम दास॥

द० श्री०

नासिर मामूद (महमूद)

नासिर मामूद पश्चिमी बंगाल के निवासी थे। इनका केवल एक पद (१३२९ संख्यक) 'पदकल्पतरु' में संकलित है। इस मुसलमान वैष्णव भक्त पद-कर्ता के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनका उक्त पद ब्रज-बुली में हैं जिसका प्रसंग गोचारण है। (बंगला साहित्य के प्रख्यात विद्वान् अब्दुल करीम साहित्य-विशारद महाशय ने कतिपय प्राचीन मुसलमान वैष्णव भक्त पदकर्त्ताओं के ब्रज लीला विषयक पदों का संग्रह किया है।)

इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

खेलत धेनु संगे गोठे रंगे, राम सुन्दर श्याम॥
पांचनि काचनि वेत्र वेनु,
मुरलि खुरली गानरी।

प्रिय श्रीदाम सुदाम मेलि,
तरनि तनया तीरे केलि,
धवलि शाउलि आउरी, आउ री।
फुकरि चलत कान री।

वयेश किशोर मोहन भाति,
वदन-इन्दु जलद काँति,
चारुचन्द्र गुञ्जा हार,
वदने मदन-भान री।

आगम-निगम वेदसार,
लिलाय करत गोठ बिहार।
नासिर मामूद करत आश,
चरने शरन दान री।

(पद कल्पतरु १३२९)

'हाथ में दण्ड और वेत्र लिए मुरली बजाते, मधुर गान गाते, गोठ में धेनु चराते, बलराम और श्याम चले जा रहे हैं। 'प्रिय श्रीदाम, प्रिय सुदामा आओ, यमुना के तट पर खेलें। धवली आओ,

साँवरी धेनु, आओ'—बुलाते हुए श्याम चले जा रहे हैं। श्याम किशोर वय के हैं, रूप मनमोहक है, मुख चन्द्र की कान्ति जलद-समान है। उनकी चूड़ा मयूर पंख और गुन्जा से सुशोभित है। उनका मुख-मण्डल अनंग के समान कान्तिमय है। आगम-निगम वेद में वर्णित विश्वरूप कृष्ण गोठ-विहार के द्वारा नर-लीला कर रहे हैं। नासिर मामूद आश्रयप्राप्त करने की आशा से उनके चरणों में समर्पित हैं।

द० श्री०

नित्यानन्ददास

नित्यानन्ददास का मूल नाम बलरामदास था। ये नित्यानन्दास प्रभु के सख्य रसाश्रित भक्ति-भाव में आस्था रखते थे। ये बलराम और उनके अनुचर भक्तगण गोप बालकों का रूप धारण कर उनके साथ कृष्ण-लीला का अभिनय करते थे। (देखिये—नित्यानन्द गन जत सब व्रजेर सखा, शृंग वेत्र शिरे शिखि पाखा।) इनकी गणना द्वादश गोपालों में होने लगी। वात्सल्य भाव से भक्ति करनेवाले भक्तों में नित्यानन्द प्रभु एवं वासुदेव घोष के पश्चात् बलरामदास अग्रगण्य थे। वत्सल भाव विषयक इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है--

श्री सुदाम दाम, शुन उरो (अरे) बलराम,
मिनति करिये तो सभारे।
वन कत अति दूर, नव तृन कुशांकुर,
गोपाल लेया ना याइव दूरे॥

सखागन आगे पाछे, गोपाल करिया संगे,
धीरे-धीरे करिह गमन।
नव तृणांकुर आगे, रागां पाये जनि लागे,
प्रवोध न माने मोर मन॥

निकटे गोधन राख्या, बोल्या शिङ्गाय डाख्या,
घरे थाकि शुनि जेन रव।
विधि एकला गोपजाति, गोधन पालन वृत्ति,
तेजि वने पाठार जादव॥

बलरामदासेर बानी, शुन नन्दरानी,
मने किछु ना भाविये भय॥
चरनेर बांध लइया, दिव गोरा जो गाइया,
तोमार आगे कहिल निश्चय॥

'हे सुदाम! हे बलराम! मैं तुम सबकी विनती करती हूँ। मधुवन बहुत दूर है, नवीन अंकुरित कुश से भरा है, इसलिये गोपाल को बहुत दूर न ले जाना, गोपाल के आगे-पीछे गोप-बालकों को कर देना, (किन्तु) गोपाल को दूर न ले जाना, धीरे-धीरे (गोचारण हेतु) जाना, नहीं तो उनके कोमल अरुणिम चरणों में नव तृणांकुर गड़ जायेंगे। मेरा मन आश्वस्त नहीं हो पा रहा है (दूर चले जाने पर) शृंगी बजाकर (गोपाल को) गायों के निकट कर लेना, जिससे उनकी क्रीड़ा ध्वनि मैं घर में बैठे ही सुन सकूं। ईश्वर ने मुझे गोप-जाति की बनाया, गोधन-पालन ही मेरी जीविका है। जीविका-निमित्त ही बाध्य होकर मैं गोपाल को वन में गाय चराने भेजती हूँ। बलरामदास कहते हैं, हे नन्दरानी सुनो! तुम मन में भय मत पालो। मैं गोपाल के लिए पनही ला दूँगा। मैं तुमसे सत्य वचन कह रहा हूँ।'

द० श्री०

नित्यानन्द प्रभु

श्री चैतन्य, अद्वैत व नित्यानन्द, गौड़ीय वैष्णव समाज में शीर्षस्थ हैं। नित्यानन्द प्रभु की वंशलता इस प्रकार है—

सुन्दरमल्ल→मुकुन्द→ब्रह्मानन्द—नित्यानन्द पत्नी जाह्नवी देवी→वीरभद्र→वीरचन्द्र।

आयु में ये अद्वैताचार्य से बहुत छोटे थे, परन्तु चैतन्य से बड़े थे। नित्यानन्द जाति प्रथा के विरोधी थे। खड़दा के अढ़ाई हजार भिक्षु-भिक्षुणिओं को इन्होंने वैष्णव धर्म (कृष्ण भक्ति) में दीक्षित किया था। वे नेड़ा-नेड़ी नाम से प्रसिद्ध बौद्ध-जन हुए। नित्यानन्द की प्रेरणा से ही बंगाल के वणिक् समाज ने कृष्ण

भक्ति सम्प्रदाय ग्रहण कर लिया। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है—

अक्रोध परमानन्द नित्यानन्द राय।
अभिमान शून्य निताइ नगरे वेड़ाय ॥

नदिया में संकीर्तन के समय इन्हें जगाइ व मधाइ (जगन्नाथ व माधव) कष्ट देते थे। वे दोनों भ्राता धनवान् परन्तु मद्यम थे। संकीर्तन के समय इन दुष्टों ने उनपर मधवी तल (मृतकलसी) से आक्रमण कर उनका कपाल फोड़ दिया, जिससे नित्यानन्द रक्त रंजित हो गये थे।

इस पर नित्यानन्द क्षुब्ध नहीं हुए अपितु इन भ्राताओं को उन्होंने कृष्ण-महात्म्य सुनाया, फल स्वरूप उनका हृदय परिवर्तित हो गया। वे अपने इस अशोभन कार्य के लिए अनुतप्त व लज्जित हुए। उन्होंने १५०९ ई० में वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया। जगाइ-मधाइ की कथा 'प्रेम-विलास' में वर्णित है। गौड़देश के सुल्तान ने शुभानन्द राय नामक एक कुलीन ब्राह्मण को राजा की उपाधि (१४५० ई०) दी। उनके दो पुत्र रघुनाथ व जनार्दन हुए। रघुनाथ के पुत्र जगन्नाथ (जगाइ) और जनार्दन के पुत्र माधव (मधाइ) थे। वे अत्यन्त शक्ति शाली थे। वहाँ के कोतवाल भी उनका दमन करने में असमर्थ थे। चैतन्य भागवत में उनके विषय में कहा गया है कि ब्राह्मण होकर भी वे मद्य व गोमांस भक्षी थे। वे डाका चोरी करते, दूसरों के घरों में अग्नि लगा देते इत्यादि। 'ब्राह्मन होइया मद्य गोमांस भक्खन डाका चुरि परगृह दाह अनुक्खन (अनुक्षण)।'

'नित्यानन्द-वंश-विस्तार' नामक ग्रन्थ में नित्यानन्द प्रभु के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

चैतन्य विच्छेदे सदाइ विलाप।
कदाचित वाह्य होले चैतन्य आलाप ॥

कायंमनो वाक्य सदा चैतन्य धिराय।
उच्चशब्द करिया सदा गोरांग गुन गाय ॥

आपनि गोरांग गाइ गाइयार जगते।
गोरांग गुन गाय (गाउ) पाये नन्द सुते ॥
(बृन्दावन दास कृत-नित्यानन्द वंश विस्तार)

जगाई और मधाई के हृदय परिवर्तन की घटना रोचक और प्रभु के प्रति आस्थाभाव जागृत करने वाली है। मधाई जब दूसरी बार नित्यानन्द पर आक्रमण करने को तत्पर हुआ, उस समय तक जगाइ में हृदय परिवर्तन का लक्षण प्रकट होने लगा था। उन्होंने अपने भाई का हाथ पकड़ते हुए कहा--

केनो हेन करिले निर्द्दय तुमि दृढ़।
देशान्तरी मारिवा कि होइवे तुमि बड़ ॥

एत बड़ अवधूत ना मारिह आर।
सन्नाशी मारिया कोन लाभ ना तोमार, ॥
(चैतन्य भागवत्)

'निर्दयी तूने सन्यासी पर आघात क्यों किया, देशान्तरी को मारने से तू क्या बड़ा हो जावेगा? इन्होंने ईश्वर-सुख की खोज में संसार के वैभव का परित्याग कर दिया है। इस पवित्र व्यक्ति पर आघात करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा!'

मधाई के इस आचरण से क्षुब्ध होकर चैतन्य देव उसकी ओर कुछ क्षण तक देखते रहे। फिर उन्होंने कहा---

"मधाइ जदि मारबो वले छिल तोर मने।
तबे माधाइ आमार तुइ ना मारीले केनो ॥"
(चैतन्य मंगल)

'मधाई, यदि तुम्हें मारने की अभिलाषा ही थी तो मुझे आघातित करते।' जगाई चैतन्य की वाणी से द्रवित हो गया। उसके कंठ से सहज ही निम्नलिखित पंक्तियाँ निकली--

निताइ के आर मेरो ना मधाइ,
निताइएर चाँदवदन देखले,

शीतल होय जीवन,
आमार इच्छा हय जुगल चरन,
हृदे धरे प्रान जुड़ाइ।
निताइ एर माथाय शिखा उर्द्ध रेखा,
अंगे हारेर नाम टालेखा,
कि अपरूप भंगी बाँका,
रूपेर सीमा नाइ॥
भार खेये दया करे,
एमन दयाल देखि नाइ।
निताइए सर्व अंगे रुधिर धारा,
ताहे वहे प्रेम धारा,
त्रिजगते एमन दयाल,
कभू देखि नाइ॥

(प्रचलित लोक गीत)

पश्चाताप की अग्नि और नित्यानन्द की क्षमादृष्टि ने उन्हें अपराध-मुक्त कर दिया! वे नित्यानन्द के शिष्य हो गए। चैतन्य की प्रेरणा और अनुमति से नित्यानन्द ने सूर्यदास सरखेल (कालना निवासी) की बसुधा व जाह्नवी नामक कन्याओं से विवाह किया। नित्यानन्द के पुत्र वीरचन्द्र (बीरभद्र) चैतन्य उत्तरवर्ती वैष्णव-चिन्तन धारा के महत्त्वपूर्ण साधकों में विख्यात हुए।

नित्यानन्द माता पिता की एक मात्र सन्तान थे। किशोर अवस्था में इन्होंने एक अतिथि योगी का साथ हो जाने के कारण गृह-त्याग दिया तथा योगी तान्त्रिक साधुओं के संग स्थान-स्थान का भ्रमण और पर्यटन करते रहे। किसी-किसी ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि इन्हें माधवेन्द्रपुरी के दर्शन का लाभ भी मिला था। नित्यानन्द अवधूत वेश में रहते, आकृति में 'महामल्ल' लगते और 'भोजन-पान' में 'विराचाई' थे। परन्तु कृष्णलीला श्रवण और हरिनाम-गान के प्रति इनमें प्रबल आकर्षण था। भ्रमण करते हुए इनका आगमन नवद्वीप में हुआ और यहाँ इनका साक्षात्कार चैतन्य से हुआ। आकृति में ये चैतन्य के बड़े भाई विश्वरूप के समान थे, अतः चैतन्य की मातृश्री शचीदेवी ने इन्हें अपने संरक्षण में ले लिया। इस प्रकार नित्यानन्द के 'वैरागी-जीवन' का अन्त हुआ।

दक्षिण भ्रमण से लौटने के पश्चात् चैतन्य ने अद्वैत और नित्यानन्द को वैष्णव धर्म प्रचार का भार सौंपा।

आचार्येर आज्ञा दिला करिया सम्मान,
नित्यानन्द आज्ञा दिल जाह गोड़ देशे।
आचण्डाल-जेन कर कृष्ण भक्ति दान,
अनर्गल प्रेम भक्ति करह प्रकाशे।

(चैतन्य चरितामृत १.१५)

अवधूत नित्यानन्द के साथ थे—रामदास, गदाधर दास, परमेश्वर दास आदि भावोद्दाभ भक्तजन नित्यानन्द को चैतन्य के बड़े भाई का सम्मान देते और उन्हें बलराम का अवतार मानने थे। नित्यानन्द का आचरण और स्वभाव भी आरम्भ में 'पौराणिक बलराम' के समान ही था। बांगला (पूर्वी बंग) देश में आते ही इन्होंने अपने अवधूत रूप का परित्याग कर दिया। इन्होंने देवोचित अभिषेक स्वीकार करते हुए राजोचित वस्त्र-अलंकार धारण कर लिया।

ए विषये चैतन्येर काछे अनुयोगउ आशियाछिल,
धातुद्रव्य वरशिते नाहि नाहि सज्जा सीरे,
सोना रूपा मुक्ता से सकल कलेवरे,
धरे चन्दन माला सदाई विलास।

(चैतन्य भागवत)

चैतन्य के तिरोभाव के कुछ समय पूर्व ही बंगाल में कृष्ण-बलराम के अवतार के रूप में चैतन्य-और नित्यानन्द की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। चैतन्य-नित्यायनन्द की काष्ठ-युगल मूर्ति की पूजा की प्रथा भी आरम्भ हो गई थी। द० श्री०

नीलाम्बर

वैष्णव भक्तों का जो परिचय उपलब्ध है, उसमें नीलाम्बर का केवल नामोल्लेख मिलता है। अन्य

स्रोतों से भी इनके जीवन सम्बन्धी कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। इनके दो ब्रजबुली-पद, अप्रकाशित 'पद-रत्नावली' में संकलित हैं। वे नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

रजनि उजागर, लोचन काजर,
अधर भेल तव शङ्‌रा।
नील सरोरूह सिन्दूर मिलायल,
भानिके बैठल बेछे भ्रमरा ॥

माधव चलह कपट अनुरागि।
सो पुनवति तुहे पतने अराधल,
यो रह तूया मने लागि ॥

यो मुख हेरइते मेष खिनि भेल शशहर,
यो मुख काजरे मलिन।
अरुननयान, कपट अब राखह,
प्रति-अंगे रति रन चिन ॥

यत यत भुवने आछये वरनागरे,
ता सम पुनवति कोइ।
पीताम्बर तूया नाम मिटोरल,
नीलाम्वर करु तोइ ॥

(अप्रकाशित पद-रत्नावली, ५५)

(२)

ना शुनिये आपनाक दुख।
कथि रह नाह कुशले यदि थाकाइ,
तवहं हृदयेर मूझ सुख ॥

ऐछन आदर वादर नागर,
पाछे ना पायह आन।
कि जानि कोमल तनु दुखल होइय,
इखे लागि बिदरे पराण ॥

भवने यशोमति आदरे शिक्षइ,
रङ्गि सखागन संगे।
कुन्जे सखोगन कतहुं समादरे,
शिक्षइ श्याम सुअंगे ॥

एके मधुपुर कूर सव जन मन,
कि रसे रिझायव श्याम।
'नीलाम्बर' कथि रहु नागर
जपइ तुहारि गुन-गाम ॥

(अप्रकाशित पद-रत्नावली बाकुड़ा की पोथी, ५५१)

नीलाम्बर चक्रवर्ती

नीलाम्बर चक्रवर्ती महाप्रभु की माता शची देवी के मातामह थे। ये श्रीहट्ट से आकर नवद्वीप में बेलपुखुरिया में वास करने लगे थे। ऐसी जनश्रुति है कि पूर्वजन्म में ये गोप थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ नहीं ज्ञात होता। महाप्रभु के उपस्थिति काल को दृष्टि में रखते हुए इनका समय १६ वीं शती ई० का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

द० श्री०

परमानन्द दास (कवि कर्णपूर)

परमानन्द दास (सेन) चैतन्य के भक्त शिवानन्द सेन के तीन पुत्रों में सबसे छोटे थे। 'गौरपद-तरंगिणी' की उपक्रमणिका में इनके विषय में निम्नोद्धृत उल्लेख मिलता है—

चैतन्य दास, रामदास आर कर्णपूर।
तीन पुत्र शिवानन्देर प्रभूर भक्त शूर ॥

इनकी ख्याति 'कवि कर्णपूर' नाम से भी थी। चैतन्य देव इन्हें 'पुरीदास' (चैतन्य के एक प्रिय भक्त परमानन्द पुरी थे, इन्हीं के नाम पर पुरी दास नाम रखा) भी कहते थे, अतः भक्तों के मध्य ये 'पुरीदास' नाम से विख्यात थे। इनका जन्म सन् १५२६ ई० में 'कान्चन पल्ली' अर्थात् 'कांचड़ा पाड़ा' नामक ग्राम में हुआ था। चैतन्य देव ने इन्हें 'कवि कर्णपूर' की उपाधि दी थी। 'वैष्णव आचार्य दर्पण' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है—

गुनचूड़ा सखी हन कवि कर्नपूर।
कांचड़ा पाड़ाय वास चैतन्य शाखा शूर ॥
वृद्ध पदांगुष्ठ प्रभु जार मुखे दिला।
पुरी दास नाम बलि शक्ति संचारिला ॥

ये 'खेतुरी-उत्सव' में सम्मिलित हुए थे। डाक्टर सुकुमार सेन की धारणा है कि भ्रम के कारण परमानन्द भट्टाचार्य को परमानन्द दास मान लिया गया है, कारण यह है कि जिन पदों के रचयिता परमानन्द भट्टाचार्य थे, इसका संकेत कवि कर्णपूर ने 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में किया है। (परमानन्द गुप्त योत कृता कृष्णस्तावली--गौर गणोद्देश दीपिका, १९९।) परमानन्द भट्टाचार्य वृन्दावन में स्थायी रूप में रहने लगे थे।

परमानन्द दास ने अपने एक पद में लिखा है--

श्री रूप मंजरि चरण हृदय धारि,
कहे परमानन्द दास।

उल्लेखनीय है कि रूप गोस्वामी 'रूप मंजरी' नाम से विख्यात थे। इससे यह संकेत मिलता है कि ये रूप गोस्वामी के समकालीन थे। इनका देहावसान कब हुआ ? इस विषय में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती, किन्तु इतना प्रमाणित है कि ये १५८३ ई० तक जीवित थे।

इनके निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

१. आनन्द वृन्दावन चम्पू, २. चैतन्य चरितामृत ३. चैतन्य शतक, ४. स्तवावली, ५ चैतन्य चन्द्रोदय नाटक, ६. कृष्ण-गनोद्देश-दीपिका, ७. अलंकार-कौस्तुभ।

'पदकल्पतरु' में इनके नाम से १२ पद संकलित हैं। इनमें से दो पद ब्रजभाषा में हैं, बाकी 'ब्रजबुलि और 'बंगला' में हैं। यहाँ तीनों भाषाओं के एक-एक पद दिये जा रहे हैं—

(१)

बंगला पद

परश मनिर मने कि दिब तुलना रे,
परश छोयाइल हय सोना।
आमार गौरांगेर शुने नाचिया गाइया रे,
रतन हइल जना॥
शचीर नन्दन वनमालि,
ए तिन भुवेन यार तुलना दिबार नाइ,
गोरा मोर परान-पुतलि।
गौरांग चांदेर छांदे ओ चांद कलंकी रे,
एमन करिते नारे आलो।
अकलंक पूर्ण चांद उदय नदिया पुरे,
मनेर अन्धकार दूरे गेलो॥

ए गुणे सुरभि सुर-तरु सम नेहे रे,
मागिले से पाय कौन जन।
ना मागिते अखिल भुवन भरि जने जने,
याचिया देओल प्रेमधन॥

गौरा चांदेर तुलना, गोरा चांद गोसांइ रे,
विचार करिया देख समे।
परमानन्देर मने ए बड़ आकुति रे,
गौरांगेर दया करे हने॥

(पद कल्पतरु-पद ६७२)

(२)

ब्रजबुली पद

श्री शची नन्दन नदीया-अवतारी।
उज्ज्वल वरण गौररूप धारी॥

आगे नाम जनत परचारि।
सकरुण ऐछे पतित जन तारि॥

संकीर्त्तन रस नृत्य बिहारी।
अविरल पुलक भक्त हितकारी॥

नाचत गाओत त्रिभुवन भरि।
त्रि जगत जन बोलत बलि हारी॥

वामे गदाधर राजत रंगी।
चौदिशे उपनीत शोभित संगी॥

अविरल नयने बहत प्रेम।
मोहन भागत कलि अंधियारा॥

करइ आलिंगन नाहि विचार।
निरुपम गुण-गण भाव अपार॥

नीलाचले वसत शची नन्दन।
दरशन करु निति देव यदुनन्दन॥

अंगे विलेपित सुगन्धि चन्दन।
रूपक सबहि करत अभिनन्दन॥

करुणामय प्रभु प्रेमहि चावत।
परमानन्द भय दूरहि भागत।

(गौरपद तरंगिणी, २६३)

(३)

ब्रजभाषा

आरति युगल किशोर कि कीजै।
तनु मनु धनहु निछावर कीजै॥

पहिरन नील पीताम्बर सारी।
कुन्ज बिहारी, कुन्ज बिहारी॥

रवि शशि कोटि वदन अछु शोभा।
यो निरखत मन भयो नवि लोभा॥

रतने जड़ित मणि मानिक मोती।
जगमग दुहुं तन, झलकत जोती॥

नन्द नन्दन वृष भानु किशोरी।
परमानन्द पहुं यांव बलिहारो।

(प० क० त० २८५८)

(४)

ब्रजभाषा

आरति जय वृषभानु कुमारी।
झलकत मुख-शोभा उजियारी॥

कपूरक वाती रतनके थारी।
करे लइ ललिता प्रान-पियारी॥

वदन कमल ससे करु निछयारि।
सहचरि गन करु जय-जय कारि॥

मंगल गाउत देइ करतारि।
बरिखे कुसुम सब नविन कुमारि॥

चरण कमल नख चान्द नेहारि।
परमानन्द जिवन बलिहारि॥

(पद कल्पतरु २८७१।१७८)

द० श्री०

परमेश्वरदास

परमेश्वरदास नित्यानन्द प्रभु के शिष्य और उनकी कनिष्ठ पत्नी जाह्नवी देवी के सेवक थे। इनके जीवन की कुछ विशिष्ट घटनायें 'भक्ति रत्नाकर' (पृ० ५४१, ६६४, १०१५) में वर्णित हैं। इन्होंने ब्रजबुली व बंगला दोनों भाषाओं में पदों की रचना की है। इनका एक पद नीचे दिये जा रहा है—

आज श्यामेर वांशि धरम खोबे॥
नाम धरि डाके वांशि सदाकरे ध्वनि।
बाहिर दूरे कान पाते ननदिनी॥

ननदी उज्जाल बड़ अन्तर विशाल।
आसिजा घरेर माझे पतिबे जंजाल॥

से देशेर वांशिया वटे से देशे मानुष नाइं।
राधारे बधिते वांशि एनेच्छे कानाइ॥

श्री 'परमेश्वरदासे' कय शुन रसवती।
वांशिर कोनो दोष नाजी कालियार युकती॥

(वी० एस० पी० पाण्डु० ११ पृ० ११६ हि० ब्र० लि० ९ पर उद्धृत)

'अब श्याम की बंशी हमारा धर्म नष्ट कर डालेगी? बंशी मेरा नाम ले लेकर पुकारती है "तुम कब आओगी।' बंशी किसी प्रकार का निषेध (मर्यादा) का अनुपालन नहीं करती और निरन्तर ध्वनित है (मुझे बुलाती है)। बाहर दूर मेरी ननद कान लगाकर बंशी के आमंत्रण को सुन रही है ननद बाधक है और विशाल (मुझसे और कृष्ण से बड़ी) है गृह में प्रवेश करते ही ननद अशान्ति उत्पन्न करेगी। इस देश में रसवती बंशी तो है परन्तु वैसे रसमर्मज्ञ लोग नहीं है। राधा को प्रेम बन्धन में बाँधने के लिए कन्हाई बंशी लेकर

आये हैं। श्री परमेश्वरदास कहते हैं, 'सुनो रमणी ! बंशी का कोई दोष नहीं। यह श्याम की युक्ति है।'

द० श्री०

परशुराम

परशुराम का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनका 'श्रीकृष्ण-मंगल' नामक काव्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इन्होंने कृष्ण-कथा पर आधारित 'माधव-संगीत' नाम से एक गीत-काव्य की रचना किसी कुमार श्याम शेखर क्षत्री के अनुरोध पर की थी। 'श्रीकृष्ण-मंगल' का आरम्भ इन्होंने चैतन्यदेव, नित्यानन्द प्रभु, द्वैत प्रभु, सनातन गोस्वामी, दामोदर, हरिदास तथा नरहरि सरकार की वन्दना के साथ किया है। सत्रशवीं शताब्दी के वैष्णव भक्तों का उल्लेख न होने से प्रो० सुकुमार सेन इसे सोलहवीं शताब्दी के मध्य में रचित ग्रन्थ मानते हैं। इनके गुरु मनोहरदास थे (परशुरामेर रहु गुरु पद आश, देह पदतल छाया मनोहरदास)। इनका एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

कालिन्दी किनारे गो नागर कालिया ॥
जलेर याइते एका, से अंगे लागिले ठेका,
मने छिल तमाल बलिया ॥

कानाई करिजा आगे, आवेश आछिल गो,
धाघ से बान्धिल दुइ पाय।
रूपेर बातासे तनु के जाने कि हइल गो,
कथा कहिते पुलक पड़े गाय ॥

नव कुवलय दल तनु निरमल गो,
रतन मुकुर वर हिया।
केमन विधाता ताय, रसाल करिल गो,
सुथुइ सुधार सार दिया ॥
रूपेर माधुरी कत भवन भुलाय गो।

परशे अमिय सुख राशि।
'परशुरामेर' मने समोरिसमोरि रूप।
बसिया कान्दिये दिवा-निशि।

द० श्री०

पागल हरनाथ

पागल हरनाथ का जन्म बाँकुड़ा जिलान्तर्गत सोनामुखी ग्राम में बंगला सन् १२७२ आषाढ़ शु० ८, को हुआ था। इनके पिता का नाम जयराम बंघोपाध्याय और माता का नाम भगवती देवी था।

१८८५ ई० में इन्होंने कुचिया कोस इन्स्टीट्यूट से इन्ट्रेंस परीक्षा पास कर के राज कॉलेज, वर्धमान से १८८७ ई० में एफ० ए० किया। तत्पश्चात् मेट्रोपालिटन इन्स्टीट्यूशन (वर्तमान विद्यासागर कॉलेज) में बी० ए० करने हेतु प्रवेश लिया।

बचपन से ही धर्मानुराग होने के कारण इन्हें धीरे-धीरे सांसारिक कार्यों से वैराग्य होने लगा। जहाँ नाम संकीर्तन होता वहीं ये जाकर भावविभोर हो जाते थे। अधिकांश समय आध्यात्मिक चिंतन में बीतने लगा। परिणामस्वरूप बी० ए० में अनुत्तीर्ण रहे। आत्मीयजन शंकित हुए। जब इनसे दुबारा अध्ययन के लिए कहा गया तो अनिच्छा पूर्वक तैयार हुए परंतु तीन बार परीक्षा देने पर भी ये उत्तीर्ण नहीं हुए तो माता ने आग्रह छोड़ दिया।

हरनाथ को सांसारिक कार्यों से विरक्त देखकर इनके भाई शिवनाथ ने इन्हें निकम्मा समझ कर घर से निकाल दिया। वहाँ से जिला विष्णुपुर के अयोध्या ग्राम में जाकर स्थानीय स्कूल में शिक्षक का पद ग्रहण कर लिया और छः ही मास के पश्चात् काश्मीर धर्मार्थ कार्यालय में नियुक्त होकर काश्मीर चले गये।

काश्मीर में रहते समय इन्हें कई बार रावलपिण्डी आना पड़ता था। उस समय रावलपिण्डी के बंगाली कर्मचारी हरनाथ के मुख से धर्म का उपदेश सुनकर और इनकी कई एक अलौकिक घटनाएँ देखकर, इनके प्रति विशेष आकृष्ट हो गये। जब रावलपिण्डी के बंगालियों द्वारा 'अमृत-बाजार-पत्रिका' के सम्पादक बाबू शिशिर कुमार घोष ने हरनाथ का

सुयश सुना तो वे उनके दर्शनार्थं काश्मीर गए। वहाँ से आकर उन्होंने अपने पत्र 'हिन्दू स्पिरिचुअल मैगजीन' में सम्पूर्ण विवरण प्रकाशित किया जिसे पढ़कर चुँपुड़ा निवासी बाबू नन्दलाल घोष काश्मीर जाकर बड़ी श्रद्धा से श्री हरिनाथ को अपने गाँव ले गये और इनकी सेवा करने लगे। तब सर्वसाधारण में इनकी ख्याति हुई।

स० गु०

पुण्डरीक विद्यानिधि

पुण्डरीक विद्यानिधि गदाधर पण्डित के पिता तथा माधव मिश्र के सखा थे। इनका जन्म चट्टग्राम अन्तर्गत चक्रशाला ग्राम के वारेन्द्र ब्राह्मण वंशीय जमींदार के घर में हुआ था। ये माधवेन्द्रपुरी के मंत्र-शिष्य थे। आरम्भ में ये विषय-वासना में लिप्त रहते थे। इनका आचरण वैष्णव-धर्म के प्रतिकूल था। इस कारण गदाधर पण्डित इनसे विरक्त रहते थे। एक बार नवद्वीप में लीला करते हुए चैतन्य ने 'बाप पुण्डरीक, बाप पुण्डरीक!' चिल्लाकर क्रन्दन किया, उनका उद्देश्य था पुण्डरीक को अपनी ओर आकृष्ट कर इनकी चित्तवृत्तियों का शोधन करना। चैतन्य की प्रेरणा से ये उनकी ओर अभिमुख हुए। इनमें कृष्ण-भक्ति-भावना का अभ्युदय हुआ। तत्पश्चात् चैतन्य महाप्रभु के आदेश से ही इन्होंने गदाधर पण्डित को दीक्षित किया। 'चैतन्य-चरितामृत' में इनकी महिमा का वर्णन इस रूप में हुआ है—

चट्टग्रामेर चक्रशाला ग्रामे जमींदार।
अतिधनी, ह्य अति शुद्धाचार ॥

वरेन्द्र ब्राह्मण ह्य, कुलांशे उत्तम।
तखन चट्ट ग्रामे, करने वसति ॥

नवद्वीप अशि तखन करेन स्थिति।
माधवेन्द्र पुरी शिष्य एइ महाशय ॥

इनकी जन्मभूमि में मिट्टी के घड़े पर इनके हस्तलिखित श्लोक आज भी सुरक्षित हैं। ये रूपगोस्वामी के प्रिय सखा थे। वे इन्हें 'प्रेमनिधि' कहते थे। उनके साथ ये जगन्नाथ के दर्शन हेतु जाया करते थे—

कृष्ण रे परान मोर कृष्ण मोर बाप।
मुञि अपराधी कतक देश ताप ॥

सर्वं जगतेर बाप उद्धार करिले।
सर्वमात्र तुमि एकेला वाञ्छिले ॥

द० श्री०

पुरुषोत्तमदास कविराज

इनकी जन्मतिथि और जन्म-स्थान आदि का पता नहीं चलता। 'चैतन्य-चरितामृत' से ज्ञात होता है कि ये कुमार हट्ट निवासी सदाशिव कविराज के पुत्र और नित्यानंद के शिष्य थे—

सदाशिव कविराज बड़ महाशय।
श्री पुरुषोत्तमदास ताहार तनय ॥

आजन्म निमग्न नित्यानंदेर चरणे।
निरंतरे बाल्यलीला करे कृष्ण सने ॥
(चैतन्य-चरितामृत, परि० ११, पृ० ६२)

श्री देवकी नंदन विरचित 'वैष्णव वन्दना' में इनका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

सदाशिव कविराज महाभाग्यवान।
जार पुत्र पुरुषोत्तम दास नाम ॥

बाहम नाहि पुरुषोत्तम दासेर शरीर।
नित्यानंद-चन्द्र जार हृदये विहार ॥

इनके १२ पद 'पद-कल्पतरु' में संकलित है। उन्हीं में से दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

कृष्ण के मथुरागमन के कारण शोकातुर ब्रजवासियों के मनोभाव।

(१)

गोकुल छाड़ि यवहु तुहुं आचलि,
तब बिहि प्रतिकूल भेल।

वरजवासी किए थावर जंगम,
विरह दहने दुहि गेल ॥

तुया प्रिय चतहुं सुरभि कुल आकुल,
तृण कवल करि मुखे ।
हेरि मथुरा पुल लोचन झर झर,
पाणि ना पिवत दुखे ॥

कोकिल भ्रमर सारी शुकवर,
रोबत तरुपर वेठि ।
तोहारि गपूर-मृणीकुल लूटये,
शकत कुल पल्लव सबहुँ सुखायल,
तेजता कुसुम विकास ।
एतहुँ विपदे तोहे कतहुं निवेदन
दुखी पुरु केतन दास ।

(पदकल्पतरु, १७५४)

(२)

गोकुल नगरे भ्रमये जनु वाउरि,
उदसल कुन्तल भार ।
काहां मझु प्राण-तनय-ब्रजनन्दन,
कहरते बहे जलधार ॥

माधव सो जननी नन्दराणी ।
तुया विरहनले उमती पागल जनु,
काहारे कि पुछये राणी ॥

अव काहे वेणु शबद नाहि शुनिये,
कौन कानन माहा गेल ।
बुझि वलराम तडागे नाहि गेयल,
की परमाद आजु भेल ॥

एछे विलाप शुनइ पुरसहचरी,
रोइ आओत तछु पाश ।
बहु परबोध-बचने गृह आनत,
कह पुरुषोत्तम-दास ॥

(प० क० त० १७५६)

द० श्री०

प्रसाददास

प्रसाददास विष्णुपुर निवासी करुणामय दास के पुत्र थे। 'मजूमदार' इनकी वंशगत उपाधि थी। इनके अग्रज जानकीरामदास भी अच्छे कवि थे। दोनों भाई श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

प्रसाददास के केवल छः पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हुए हैं। उनमें तीन वात्सल्य तथा दो नित्यानन्द प्रभु की स्तुति विषयक हैं। गोष्ठ-विहार सम्बन्धी ब्रजबुली का एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

सबहुँ मिलित जमुना-तीर ।
अंजुलि भरि पियत नीर ॥

बैठल तहिं तअर छाय,
बीच नन्दनन्दना ।
नबिन-बिरद-फल वरण जोति,
नासाये ललके झलके मोति,
उरे विलम्बित कदम्ब माल,
भाले तिलक-चन्दना ॥
कुन्द-कलिक-कतित-चड़े,
मन्द पवने वरिहा उड़े,
कटि-तटे किये पीत वसन,
वाहे शोभित कंकरण ।
हसित-ललित वदन-द्वन्दु,
अलपे उपजे धरम-विन्दु,
लोल नयन-कमल-जुगल,
ताढे ललित अंजना ॥

नसर उजर जैछन चन्द,
चकोर निकर लागल छन्द,
लुबुध हेरि चरणे घेरि,
सघने करत चुम्बना ॥
अरुण अधरे पुरत वेणु,
घनारया घेरत सबहुँ धेनु,
सहजे सुन्दरि विरहे भोर,
द्वरे बरज-अंगना ॥

शुनि शुनि गोपि हरल बोल,
भावे अवश चित विभोर,
वहि रहि रहि चमकि उठत,
थरहि थरहि कम्पना ।

अनेक जतने चेतन पाइ,
चललि जाहां सुन्दरि राइ,
फेरि हेरत बेरि बेरि,
ऐछन मन-रंजना ॥

दास प्रसाद करत आश,
अमिया अधिक मधुर भाव,
शुनि तिरपित श्रवण-सुख,
ताप-निकर-भंजना ॥

स० गु०

प्रेमानन्द दास (प्रेमदास)

प्रेमानन्ददास या प्रेमदास ने 'चैतन्य-चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने अपना परिचय दिया है। उक्त परिचय के अनुसार इनका वास्तविक नाम पुरुषोत्तम मिश्र था और ये 'सिद्धान्त-वागीश' उपाधि से विभूषित हुए थे। इनके पिता का नाम गंगादास था जो मुकुन्दानन्द के पितामह और जगन्नाथ मिश्र के प्रपितामह थे (जगन्नाथ मिश्र चैतन्य देव के समकालीन थे)। ये नवद्वीप के अपर तटवर्ती (हुगली) स्थित कुलनगर या कुलिया ग्राम के निवासी थे। सोलह वर्ष की अवस्था में ही ये ब्रज चले गये थे। उस समय के श्री गोविन्द-मन्दिर के व्यवस्थापक श्री कृष्णचरन गोस्वामी ने इन्हें मन्दिर में रसोइया नियुक्त कर लिया। कुछ समय पश्चात् ज्येष्ठ भ्राता गोविन्द राम के साथ ये अपने ग्राम लौट आए। इन्होंने 'चैतन्य-चन्द्रोदय' का समापन शक सं० १६३४ (१७१२ ई०) एवं 'वंशी-शिक्षा' का समापन शक सं० १६३८ (१७१६ ई०) में किया था।

वोल श (त) चौतिरिश शके लौकिक भाषते सुखे।
प्रेमदास करिल लिखन।

(चैतन्य चन्द्रोदय कौमुदी, पृ० ४८३)

प्रेमकल्पतरु में इनके ३१ पद संकलित हैं, उनमें ६ पद (२०७, ४७५, ५०१, ५५०, ५९२ तथा ५९६) ब्रजबुली में हैं। इनके कुछ पद 'गौरपद-तरंगिनी', 'पद रत्नावली' (अप्रकाशित) तथा 'कीर्तन गीत रत्नावली' में भी संकलित हैं। इन्होंने कवि कर्णपूर-रचित 'चैतन्य-चन्द्रोदय' नामक नाटक की टीका 'चैतन्य-चन्द्रोदय-कौमुदी' शीर्षक से की हैं। भक्त कवि वंशीवदन द्वारा काव्य में लिखित चैतन्य की जीवनी की भी इन्होंने टीका लिखी है। वंशी वदन के पौत्र रामचन्द्र गोस्वामी इनके दीक्षा गुरु थे।

श्री गुरु चरण पटन-विषय आश्रय सद्म,
ताहा गति जीवने मरणे।
प्रभु श्रील रामचन्द्र जाह्नवा-चरण द्वन्द्व,
स-गण चैतन्य थाक मने ॥

(चै० च० ना० कौ०, पृ० ४०४)

प्रेमानन्द या प्रेमदास गुरु प्रदत्त नाम था। इनके कुछ पद उदाहरण-स्वरूप यहाँ दिए जा रहे हैं—

(१)

(ब्रजबुली पदनिधुवने मिलन)

यमुना क तीर विहरि यदुनन्दन,
कलिय हृदे पुन रोल।
निभृत निकुंजे बैठि खने आकुल,
सुन्दरि मन माहा भेल ॥

अपरुप प्रेमक रीत।
सब जन तेजि गहन माहा विहरइ,
रहि रहि उनमन चीत।
धीर समीर जाइ पुनि नागर,
आउल निधुवन कुन्जे।
सखिगन संगे ताहि देखि सुन्दर,
पाउल आनन्द पुन्जे ॥

दुहुं दोहां दरशने अचिर भेल दुहुँ,
मनमथे मातल अंग।
समुझि गुणत करि प्रेमदास सखि,
सखिगन देउल भंग ॥

(अप्र० प० र० पद ४३, पृ० १२६)

(२)

बंगला पद

सइ काहेरे करिव रोष ।
ना जानि ना देखि सरल हइलुं,
से पुनि आपन दोष ॥

बतास बुझिया पेलाइथु पा,
बारहाइ बुझिया थेह ।
मानुष बुझिया कथा से कहिये,
रसिक बुझिया नेह ॥

मड़क बुझिया थरिये डाल,
छायाय बुझिया गाथा ।
गाहाक बुझिया गुण प्रकाशिये,
वेथित बुझिया वेथा ॥

अविचारे सइ करिलुं पिरीति,
केन कइलुं हेम काजे ।
'प्रेमदास' कहे धीर न सुन्दरि,
कहिले पाइवा लाजे ॥

(प० क० त० ९५४)

राधा अपनी सखी से कहती हैं–'सखि ! मैं किस कारण रोष प्रकट करूं ? अज्ञान में (विना जाने सुने ही) सरल (बालिका के समान) भाव से मैंने प्रीति की। यह मेरा ही अपराध था। वायु की दिशा देखकर ही उधर पीठ करनी चाहिए और जल का थाह लेकर ही उसमें पाँव बढ़ाना चाहिए। व्यक्ति के परीक्षण के पश्चात् ही उससे मित्रता करनी चाहिए। डाल का आधार लेने के पूर्व परीक्षण कर लेना चाहिए कि डाल टूटी तो नहीं है। छाया में विश्राम लेने के पूर्व छाया की प्रकृति जान लेनी चाहिए। गुण ग्राहक को समझकर उसके सम्मुख गुण प्रकाशित करना चाहिए। व्यथा का प्रकाशन उससे करना चाहिए जो व्यथा को समझता हो। ऐ सखि ! बिना परीक्षण के मैंने कृष्ण से प्रेम किया, ऐसा कार्य मैंने क्यों किया ? प्रेमदास कहते हैं, हे सजनी ! धैर्य धारण करो, इस भाव के प्रकाशन से लज्जा का बोध होगा ?'

'पद कल्पतरु' में प्रेमदास के बंगला भाषा के अधिकांश पद चैतन्य-वन्दना-विषयक हैं। दो पद नित्यानन्द प्रभु सम्बन्धी हैं (२२९३.२२९७), एक श्रीनिवास विषयक (२३५३) और एक प्रार्थना परक (३०५५) है। प्रेमदास रचित 'मनःशिक्षा' एक सौ आठ (१०८) बंगला पदों की रचना है। ये पद आत्म-सम्बोधन परक हैं—

एमन, बल रे गोविन्द-नाम ।
आजि कालिकरि कि आर भा विछ,
कवे तोर घुचिवे काम ॥

कालि से करिबा, तुमि ये बलि छ,
आजि ता करना भाइ ।
आजि करिवा ता कर एखनि,
कि जानि करवन याइ ॥

एहेने कलिते-मानुष जनम,
एमन आर वा काते ।
हरिनाम दिया, जगत तारिला,
श्री कृष्ण चैतन्य याते ॥

शे तिन युगेर, आचार-विचार,
एखन से सब राख ।
वदन भरिया गौरहरि बल,
युगेर धरम देख ॥

रसना वदन बहेर भीतरे,
केवल वालेले हय ।
आलिस करिया नरक याइते,
कार वा ए अपचय ॥

शमन किंकर अंगुलि गणिछे,
जान ना कखन पाड़े ।
कहे 'प्रेमानन्द' तखन कहिवे,
आसिया चड़िले घाड़े ॥

(पदकल्पतरु ७०)

द० श्री०

बलदेवदास

बलदेव दास बंगला वैष्णव भक्ति के व्याख्याकर थे। ये मध्य वय में ही वृन्दावन वासी हो गये थे। इनकी ख्याति 'बलदेव-विद्या-भूषण' रूप में थी। ये विश्वनाथ चक्रवर्ती के समकालीन थे। कुछ लोगों की धारणा है कि ये विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। ये बलाईदास नाम से भी जाने जाते थे और इस नाम से भी इनका एक पद 'पदकाव्यतरु' में से गृहीत है। इन्होंने वेदान्त सूत्रों पर भाष्य लिखा है। अद्वैत वेदान्त-वादियों के मत का तर्क-युक्त खण्डन करके इन्होंने अचिन्त्यभेदा-भेद दर्शन को पुष्ट आधार-प्रदान किया है। इन्होंने जीव गोस्वामी कृत 'तत्व-सन्दर्भ' रूप गोस्वामी कृत 'स्तवभाला' तथा 'भागवत् पुराण' की भी टीका लिखी है। इस प्रकार ये वैष्णव काव्य एवं दर्शन के एक मान्य प्रतिपादक हैं। इनके दो पद उदाहरण के लिए दिये जा रहे हैं। इन्होंने पदों में 'बलदेवदास' तथा 'बलाइ-दास'-छाप रखी है।

(१)

ब्रजबुली पद

जय जय मंगल आरति दुहुँकी ॥
श्याम गोरि छवि उठत झलक की।

नवधन जनु चिर बिजुरी चमक की।
ताहे मनि अभरन अंगनि साजे।
करे लेइ दीपावलि हेम थाली।
आरति करतहि ललिता आलि ॥

भजहुं सखी गन मंगल गाओए।
कोइ करताल देइ कोइ बाजाओए ॥

कोइ कोइ सहचरी मनहहि हरीसे।
दुहुंक अंग पेर कुसुम बरीसे ॥

इह रह कहतहिं बलदेव दासे।
दुहुँ रूप माधुरी हेरइते आशे ॥

(पद कल्पतरु २८४२)

(२)

कौन बने गिया छिला अरे राम कानू।
आजि केन चान्द मुखेर शुनि नाइवेनू ॥

क्षीर सरमनी दिलाम आंचले बन्धिया।
बुझि किछु खाउ नाइ शुख आछे हिया ॥

मलिन हे याछे मुख रविर किरने।
ना जानि फिरिला कौन गहन कानने ॥

नव तृनांकुर कत भूलिब चरने।
एक दिहि हेया सनी चाहे चरन पले ॥

न सुझि थाइयाछे कत धेनुर पाछे।
ए 'दास-बलाइ' केने ए दुःख देखा छे ॥

(पद कल्पतरु ११२)

द० श्री०

बलरामदास

बलराम दास नित्यानंद प्रभु की पत्नी जाह्नवी देवी के शिष्य थे। ये श्रीखंड के निवासी थे और नित्यानंद दास नाम से विख्यात थे। इन्होंने 'प्रेम-विलास' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसके प्रतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

द० श्री०

बलरामदास कविराज

बलराम दास कविराज का नाम सांप्रदायिक परंपराओं में आया है। ये परम वैष्णव और ब्रजबुली के पदकर्ता थे। ये रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे। वैष्णव दास ने इनके विषय में एक पद में लिखा है—

कवि नृप बंशज, भुवन विदित यश,
जय घनश्याम बलराम।

एछन, दुहुँजम निरुपम गुण-गन,
गोर प्रेम गय धाम।

—'पद कल्पतरु'

'जिसका यश भुवन विख्यात है, ऐसे कविनृप वंशज घनश्याम और बलराम की जय हो, दोनों जन

गुणों में निरुपम है। वे गौरांग प्रेम के धाम हैं।'

ये गोविन्द राज कविराज के पौत्र थे। कर्णानन्द ग्रन्थ में इनका परिचय श्रीनिवास शाखा के अन्तर्गत दिया गया है। इसके अनुसार बलराम दास कविराज रामचन्द्र उपशाखा के थे। यही कारण है कि वैष्णवदास ने 'कवि नृपवंशज' अर्थात् कविराज रामचन्द्र की शाखा के अन्तर्गत इनका परिचय दिया है। इनकी माता का नाम सौदामिनी देवी और पिता का नाम आत्माराम था। इनके पद गौर चन्द्रिका, बाललीला, गोष्ठ (यशोदा के प्रति अभिमान) आदि शीर्षकों में विभक्त किए गये हैं। इनके अतिरिक्त राधा के मानवैचित्र्य, खण्डिता, और अभिसारिका रूपों के वर्णन करने वाले पद भी हैं—

गोठे आमि जाब मागो गोठ आमि जाब।
श्रीदाम सूदाम संगे बाछूरी चराव ॥

चूड़ा बाधिदेगो मा मुरली दे मोर हाते।
आमार लागिया श्रीदाम दड़ाइ आछे पथे ॥

पीत घड़ा देगो मा गलाय देह माला।
मने पड़ि गेल मोर कदम्देर तला ॥

सुनिया गोपालेर कथा माता यशोमती।
सजाय विविध वेशे मनेर आरती।

अंगे विभूषित केला रतन-भूषन।
कटिते किंकिनी घटि पीत बसन ॥

किंवा सजाइल रूप त्रिभुवन जिनि।
पुष्प गुच्छ, शिखि पुच्छ चूड़ार टोलनि ॥

चरने नूपूर दिला तिलक कपाले।
चन्दने चर्चित अंग रत्न हार गले ॥

बलराम दासे कय सजाइया रानी।
नेहारे गोपाल मुख कातर परानी ॥

'माँ, मैं गोठ जाऊँगा, मैं अवश्य गोठ जाऊँगा, श्रीदाम और सुदामा के संग गोवत्स चारण करूँगा। मेरी चोटी बाँध कर मइया मेरी बंशी मेरे हाथ में दे दे। श्रीदाम पथ पर मेरी प्रतीक्षा कर रहा है, शरीर पर पीत वस्त्र और गले में माला देदे, मेरा मन कदम्ब वृक्ष के नीचे जाने के लिए आतुर हो गया है। गोपाल की वाणी सुनकर अपने मन की आरती सजाकर माता यशोदा ने बालक कृष्ण को रत्न आभूषणों से सुसज्जित किया कटि को किंकिणि एवं शरीर को पीत आवरण से सजाया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उन्होंने त्रिभुवन का शृंगार कर दिया है, चूड़ा को पुष्प गुच्छ और मयूर पंख से सजा दिया है, चरणों में नूपूर पहना दिया है और ललाट पर तिलक लगा दिया है। अंगों में चन्दन लगाया, रत्नहार गल में पहनाया। इस प्रकार माता गोपाल को सज्जित कर उनका मुख मुग्ध-भाव से देखने लगी।'

एक दूसरे पद में राधा-मान का वर्णन है—

अन्तरे जामिया निज अपराध।
कर जोड़े माधव मांगे परसाद ॥
नयने गलए लोर गदगद बानी।
राइक युग चरने परशित पानि ॥
चरन युगल धरि करूँ परिहार।
रोइ रोइ चरन कहत नाहि पार ॥
मानिनि ना होइब नाह बयान।
पदतले लुटेये नागर कान ॥
चरन ठेलि चलि जाउत राई।
बलरामदास कानू मुख चाइ ॥

'अपने अपराध को हृदय में समझकर माधव कर जोड़कर क्षमा याचना करते हैं, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित है, वाणी अवरुद्ध हो गई है, माधव अपने कर-पल्लव से राधिका के चरणों का स्पर्श करते हैं। चरणों को स्पर्श कर अपनी त्रुटि का परिमार्जन करते हैं, माधव रो-रो कर अपनी व्यथा कहते हैं नागर कान्ह राधा के पदों के निकट लोट रहे हैं। राधा उन्हें अपने चरणों से दूर हटाकर (मान-पूर्वक) चली जाती हैं। बलरामदास कृष्ण-दर्शन के अभिलाषी हैं।,

बलरामदास ठाकुर

बलरामदास का प्रादुर्भाव ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम सत्यभानु उपाध्याय था। इनका जन्मस्थान सिलहट जिलान्तर्गत 'पंचग्राम' था, परन्तु इनके पिता सिलहट का परित्याग कर कृष्ण नगर के निकटवर्ती दोगछिया ग्राम में आ बसे थे। इनका प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कुछ समय पूर्व माना जाता है। नित्यानन्द के शिष्य होने के कारण समाज में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और इनकी ख्याति परम वैष्णव के रूप में भी थी। दोगछिया ग्रामवासी अगहन मास में इनकी मृत्यु-तिथि मनाते है। साम्प्रदायिक ग्रंथों में इनका स्मरण अत्यन्त सम्मान-सहित किया गया है। देवकीनंदन-दास की 'वैष्णव वंदना' तथा 'चैतन्य-चरितामृत' में इनका उल्लेख इन शब्दों में मिलता है :

(१) बलरामदास कृष्ण प्रेम रसवादी।
नित्यानंद नामे हय परम उन्मादी।।
(चैतन्य चरितामृत परि० ११, पृ० ३२)

(२) संगीत कारक बन्दो श्रीबलरामदास।
नित्यानन्द चरणे जार अकथ्य विश्वास ।।
(वैणभव वंदना)

बलरामदास मुख्य रूप से वत्सल भाव की भक्ति के प्रति आस्थावान् थे एवं बालगोपाल की मूर्ति के उपासक थे। इन्होंने 'बालगोपाल' की मूर्ति की स्थापना भी की थी और इनकी प्रेरणा से प्रतिस्थापित विग्रह और मन्दिर इस समय भी वर्तमान है। इस प्रकार की जनश्रुति है कि एक बार नित्यानन्द संकीर्तन और वैष्णव भक्ति प्रचार हेतु 'दोगछिया' आए और भक्त बलराम दास को बालगोपाल की मूर्ति की उपासना करते देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने बलरामदास को आशीर्वाद स्वरूप अपनी पगड़ी भेंट कर दी (यह पगड़ी उनके बंशजों के पास आज भी सुरक्षित है।)

महाप्रभु चैतन्य के समय ये अल्पायु के थे। इसलिए चैतन्य-लीला के प्रत्यक्ष दर्शी होने का सौभाग्य इन्हें नहीं उपलब्ध हो सका था। इस सुख से वंचित रह जाने से इन्हें आन्तरिक पीड़ा थी। 'ए सुख वंचित बलरामदास'-अर्थात् इस सुख से बलरामदास वंचित रहे। इस दुख का प्रकाशन इन्होंने अपने अनेक पदों में किया है। नित्यानन्द के आदेश से इन्होंने विवाह भी किया। इनके पाँच पुत्र हुए। कुछ समय पश्चात् इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। इनके तिरोधान होने की तिथि अज्ञात है किन्तु लोकविश्वास के आधार पर आज भी दोगाछिया में इनके तिरोधान होने के उपलक्ष में अगहन मास की कृष्ण चतुर्थी को मेला लगता है।

इन्होंने बंगला और ब्रजबुली दोनों भाषाओं में पदों की रचना की है। इनके पद-चैतन्य, नित्यानन्द और राधाकृष्ण विषयक हैं। इनके वात्सल्य रस के पद भक्ति और काव्य, इन दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट हैं। इनकी ख्याति विशेष रूप से वात्सल्य भाव के वैष्णव भक्त और पद कर्त्ता रूप में ही है। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में हुए खेतुरी के वैष्णव सम्मेलन में बलरामदास उपस्थित थे। 'पद-कल्पतरु' में इनके १३५ पद संगृहीत है। इनके पद मुख्य रूप से दो भागों में संकलित हैं—

(क) गौर चन्द्रिका—इसमें चैतन्य वन्दना के अतिरिक्त नित्यानन्द-बन्दना विषयक पद भी हैं, (ख) राधा-कृष्ण लीला विषयक पद, जिनमें कृष्ण की बाललीला वर्णित करने वाले पद भी है।

इनका एक बहु प्रसिद्ध पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

हरि हरि,
ये एवे गोरांग भेल केने,
शिखि पुच्छ गुञ्ज, वेड़ा मनोहर जार चूड़ा।
ये मस्तक केश शून्य देखि।
जार बांका चाहनिते, मोहे राधिकार चिते,
एवे प्रेम छल-छल आँख ।।

सदा गोप गोपी संगे विस्मेय रस रंगे,
एजे नारी नाम ना शुनए।
भुज युगे वंशी धारी, आकर्षी ये ब्रजनारी,
सेउ भुजे कोने दत्त लय ।।

'हे हरि मुझे! सोचकर विस्मय होता है कि–जिनका पूर्व कलेवर नव जलधर के समान (कृष्णवर्ण) था, वह (इस जन्म में) गौर वर्ण क्यों हुआ। जो शिखा के केश शशि का शृंगार मयूर पुच्छ से करते थे, अब उनका वह केश हीन क्यों है। जो वक्र कटाक्ष से राधिका के चित्त को मुग्ध कर लेते थे और राधिका के नेत्र प्रेम से छलछला जाते थे और जो गोपियों के संग निरन्तर रास-केलि में रंजित रहते थे, अब वे नारी नाम से ही विरक्त रहते हैं जो अपने हाथों में वंशी धारण कर ब्रजनारियों के आकर्षण थे वे अपनी भुजाओं में दत्त-धारी क्यों है ?'

बलरामदास के वंशधर हरिदास गोस्वामी ने 'बलरामदास ठाकुरेर जीवनी अते पदावली' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जिससे उनकी जीवनी पर मूल्यवान प्रकाश पड़ता है। इन गोस्वामी महाशय ने ब्रजधाम की यात्रा कर बलरामदास के पदों को संकलित कर एक पाण्डुलिपि तैयार की थी। 'पदकल्पतरु' एवं 'गौर-पद-तरंगिनी' में संकलित पद इसी पाण्डु लिपि से लिए गए हैं। नीचे उद्धृत पद में गौरांग के नृत्य का भावपूर्ण वर्णन है।

ठाकुर गौरांग नाचे नदिया नगरे।
सुनिया त्रिविध लोक ना रहिल घरे।।

नाचत नाचत गोरा जोने दिगे जाए।
लाखे लाखे दीप जले, केह हरि गाय।।

कुल बधू सकल छाटिया हरि बोले।
प्रेम नदी बहे सागर तयने जले।।

'नदिया नगर में गौरांग-ठाकुर लीला-नृत्य में तल्लीन हैं, इसकी सूचना से आकृष्ट तीनों लोक के जन अपने-अपने गृहों से आकर्षित हो उस स्थान पर लीला-दर्शनार्थ एकत्र हो गए। लीला-नृत्य करते हुए गौरांग जिस दिशा में जाते, उस दिशा में लाख-लाख प्रदीप जल जाते, कुल वधुएँ सकल लोक लज्जा का परित्याग कर हरिनाम-स्मरण करने लगतीं। उनके नेत्रों से सागर में नदी की तरह प्रेमाश्रु बहने लगे।'

ये संगीत के जानकार और रसावेशी महात्मा थे। यह भी ज्ञात होता है कि ये प्रसिद्ध 'खेतुरी-उत्सव' के आयोजकों में भी थे। राधा की विरह वेदना तथा कृष्ण के रूपलावण्य विषयक इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

विरह वेयाधि वेयाकुल सो पहुँ।
बरजल धैरज लाज।
वासर-यामिनी विलपि गोआयइ।
बसि बसि विपिनक माझ।।

विधुमुखी वेदन कि कहब आज।
विषय विशेष शर वरिखने जर जर।
बिकल वरस युवराज।
बहु वेदगधि विविध गुण चातुरि।
बिछुरल सबहिं मुरारि।
बरिखक ठामे बोलतोहे पावइ।
बाउर भल बनमालि।।

वेश-विलास बिशेखहि बिरमल।
बिरमल भोजन पान।
बोलइते वदने बचन नहिं निकसइ।
'बलराम' कि कहब जान।।

(पद मंजरी, ४६)

(२)

बंगला पद

किशोर रमन कत बेदगधि हाम।
मुरति मरकत अभिनव काम।।

प्रति अंग कोन निरमल किसे ।
देखिते देखिते कत अमिया बरिसे ।।

मलूं मलूं किवा रूप देखिलूं स्वपने ।
खाइते शुइते मोर लगियाछे मने ।।

अरुन अधर मृदु मन्द मन्द हासे ।
चपल नयन काने जातिकुल नाशे ।।

देखिया विदरे बुक दुहि भूरु भंगि ।
आइ आइ कोथा छिल से नागर रंगि ।

मन्थर चलन खानि आध आध जाय ।
पशन बमन वारे कि कहिब काय ।।

पाषान मिलाये जाय गायेर बातसि ।
बलराम दासे कय अवश परसे ।।

(पद-कल्पतरु, १६६)

द० श्री०

बलरामदास दीन

बलरामदास दीन अथवा दीन बलरामदास का इतिवृत्त सर्वथा अज्ञात है। साम्प्रदायिक साहित्य में इनके द्वारा-विरचित 'कृष्ण-लीलामृत' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 'दीन-बलरामदास' भनिता से इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं।

द० श्री०

बलराम वसु

बलरामवसु के जीवनवृत विषयक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। बंगाल की वैष्णव भक्ति धारा की परंपरा में इनका उल्लेख मिलता है और उनके द्वारा विरचित राधा विषयक पदों की चर्चा यत्र-तत्र पाई जाती है।

द० श्री०

बल्लभदास (भक्तिमूर्ति)

'पद-कल्पतरु' के पदों के आधार पर विद्वानों ने इस नाम के तीन व्यक्तियों की कल्पना की है। १-बल्लभ, २-बल्लभदास, ३-श्रीबल्लभ।

डा० सुकुमार सेन ने बल्लभदास नामक दो वैष्णव भक्तों का उल्लेख किया है—एक बल्लभदास श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे और दूसरे रामचन्द्र कविराज के। इनके पदों में नरोत्तमदास ठाकुर की स्तुति मिलती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये श्रीनिवासाचार्य, रामचन्द्र कविराज और नरोत्तम ठाकुर के समसामयिक थे। श्रीनिवास आचार्य के शिष्य बल्लभदास कुलीन ग्राम निवासी तथा वैद्य जाति के थे। इनकी ख्याति 'भक्तिमूर्ति, और 'भक्ति-अधिकारी' नाम से भी थी। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

राधा कृष्ण-युगल मूर्ति

ओ मुख सरद-सुधाकर सुन्दर
इहि नलिनी दले गंजे ।
ओ तनु नव-घन सुन्दर रंजित
इह चिर दामिनि पुञ्जे ।।

देख राधा माधव जोरि ।
दुहुक परशेर दुहुं पुलकायित,
दुहुँ दोहां रहल गोरि ।।

ओ नव नागर सब गुणे आगर,
इह से कलावति सीम ।
ओ अति चतुर शिरोमणि विदगध,
ए सब गुणहि गरीम ।।

मधुर वृन्दावने श्याम गोरी तनु,
दुहुँ नव किशोरी किशोर ।
नरोत्तमदास आश चरणे रहु,
श्री बल्लभमनमोर ।।

(पद-कल्पतरु, १०२२)

(२)

सुन्दरि, तुहुँ बड़ि हृदय पाषाण ।
कानुक नवमी दशा हेरि सहचरि,
धरइ ना पार पराण ।।

कतये क्षीण तनु कहइ न पारिये,
तेजत लाहे घन दुवासे ।
तेजत पराण ऐछे अनुमानिये,
रहत तोहारि आस-पासे ।।

कि जानिए कि खने नेहारल तुया रूप,
तब धरि आकुल भेलि ।
खने चमाके चमकि अब मुरुछये,
हेरि रोअत सखि मेलि ।।

कोई यब तोहारि नाम कहे स्रवणहिं,
तबहि नयन परकाश ।
एतहुं निदेश कहल तोहे सुन्दरि,
पामर बल्लभदास ।।

(पद-कल्पतरु)

द० श्री०

बल्लभदास मजुमदार

बल्लभदास मजूमदार राजबल्लभ के पुत्र थे और 'कवि बल्लभ' नाम से कविताएँ लिखते थे। इनकी एक रचना 'ईसकबन्ध' नाम से प्राप्त होती है। इसका रचनाकाल १५९८ ई० है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये १६वीं शताब्दी के अन्त में विद्यमान थे। इनके दो पद यहाँ उद्धृत हैं—

(१)

सुन्दरि केछन आरति तोर ।
विघटित घटित साज नहि जानल,
भूलल माधव मोर ।।

विपरीत चीर, पहिरि हरि साजल,
दुहुं अंगद दुहुं काने ।
मौखि कलश करि बाहे सजाउल,
कुन्डल मुदरिक माने ।।

किंकिनि जाल माल करि पहिरल,
हार सजाउल हाते ।
चूड़क साज, चरनहि पहिरल,
मंजीर पहिरल माथे ।।

पूरब उत्तर, नाहि दिग् दिगन्तर,
नव अनुरागे लागि ।
बल्लभदास कह, चढ़ल मनोरथे,
संकट दूरहि भाग ।।

(वैष्णव-पद-लहरी, पृ० ५०२)

बिन्दुदास

द० श्री०

गौरांग-परवर्ती वैष्णव भक्तों की सूची में बिन्दुदास का उल्लेख परम वैष्णव के रूप में आया है। ये ब्रजबुली और बंगला दोनों भाषाओं के पदकर्ता थे। इनके रचित पांच पद (७१,१११,१६६७,२२५३, २३३२) पद-कल्पतरु' में संकलित हैं। इनके दो पद यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं।

(१)

ब्रजबुली

कलधौत कलेवर गौर तनु ।
तछु संग तरंग निताइ जनु ।।

कोटि काम जिनि किए अनंग छटो ।
अवधौत विराजत चन्द्र घटो ।।

शचीनन्दन कण्ठे सुरंग भाला ।
तहि रोहिणि नन्दन दिग आला ।।

गजराज जिनि दोन भाइ चले ।
मकराकृत कुण्डल गण्डे दोलं ।।
मुनि ध्यान भुले, सती धये टले ।
जय तारण कारण बिन्दु बले ।।

(पद-कल्पतरु १११, पृ० १२२)

(श्री गौर-पद-तरंगिनी, पृ० ३३ पद ७०)

(२)

बंगला

बन्धुर संकेतेर आजू, नारिलूं गो,
पाप ननदिनी होइ बाधा ।
दुःखेते आपन घरे, शुतिया रहलूं गो,
बिहि पुराइल मन-साधा ।।
सजनि से सुख कि कहिव अनेक ।
पिया आसि येन भोरे, निकुन्ज कानन घरे,
स्वप्ने दइल परतेक ।।

बुके बुके मुखे मुखे निबिड़ मदन सुखे।
कतना आरति से ना कथा।
ननदी जनित दुख, जागरने जत छिल,
घुमाइले गेल सब बेथा॥

कतन ना यतन करि,
बेश बनाइल गो।
ए राम बिलास केललत,
एक मुखे तोहे हाम, ताहाकि करिब गो।
रभस कौतुक यत यत॥

हेन काले निंद दुरि, जागिया बसिलूं,
स्वप्न नारिलूं बुझिवारे।
आनकानी करना बिन्दु परबोधे बारे बारे।

(पदकल्पतरुपद, ६७९)

द० श्री०

बिहारीदास

बिहारीदास के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्त नहीं है। 'प्रेमविलास' और 'नरोत्तम विलास' से केवल इतना ज्ञात होता है कि ये नरोत्तम-ठाकुर के शिष्य थे। 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली लिटरेचर' (पृ० ४१३) में प्रो० सुकुमार सेन ने इनका निम्नलिखित पद उद्धृत किया है—

मुरली तरल करल पराण,
रहिते ना दिल घरे।
अबला पराणे ना पाये सहने,
निति निति आंखि भरे॥

यथा तथा पाई बाज़े सब ठाई,
नाम से केमने जाने।
श्रावणे प्रवेशि, हृदये लागे सि,
बाजिल ये खाने प्राणे॥

श्यामेर मुरली, ठडाके राधा बल,
ना माने निषेध बोल।
गृहे कर्म-धर्म-आचार,
सबहज गेल भोल॥

रमणी गठोर मनेर गरिमा,
सकलि मांगिल वांसी।
भुलाइया मन ब्रज नारी गण,
चरणे करिला दासी॥

हे दे सहचारी रहिते जा पारि,
वांसि चुरि कइल मन।
वेश बनाइते जा पाइलांग तुरिते,
चल थावा वृन्दावन॥

साजाइछे गोपी ही मन नि (राखे),
चोखाने येमन साजे।
अमख गण उलसित मन,
भालिन हरले लाजे॥

सोनार नुपुर किंकिणि कंकण कंउठा,
न चलिते बाजे तारा।
दास बिहारी सेक अंगोकारी,
नयने बहिछे धारा।

द० श्री०

बीरहाम्बीर (चैतन्यदास)

बीरहाम्बीर का उल्लेख 'प्रेम विलास,' 'कर्णानन्द', 'भक्तिरत्नाकार' आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इनके अनुसार ये मल्लभूमि (देखिए पद-कल्पतरु पंचम खण्ड, पृ० ४१४-७५) की राजधानी 'विष्णुपुर' के या 'बन-विष्णुपुर' के राजा थे। १५८० ई० में इन्होंने वैष्णव धर्म स्वीकार किया था। इनके वैष्णव धर्म स्वीकार करने की कथा बड़ी रोचक है। श्रीनिवासाचार्य इनके मंत्र-गुरु थे। इसी के बाद ये 'चैतन्यदास' नाम से विख्यात हुए। जीव गोस्वामी ने इनका नामकरण 'चैतन्यदास' किया था (भक्तिरत्नाकर, पृ० १९)। इनके दो ही पद अब तक उपलब्ध हैं। एक पद में इन्होंने अपने गुरु श्रीनिवासाचार्य की वन्दना की है; दूसरे में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। इन्होंने श्री चैतन्यदास नाम से भी पदों की रचना की है—

श्री चैतन्य-दास नामे ये गीत वर्णित ।
विस्तारे डरे ताहा नाहि जानाइला ।।
(भक्ति-रत्नाकर, पृ० ५८२)

इससे स्पष्ट है कि इनके द्वारा रचित अन्य पद भी रहे होंगे जो अनुसंधान की अपेक्षा में अभी उपलब्ध नहीं हैं। इनका राधा कृष्ण-प्रेम वर्णन वाला प्रसिद्ध पद नीचे दिया जा रहा है :

शुनगो मरम सखी कालिया कमल कांखि,
किवा कइल किछुइ ना जानी ।
केमन करये मन सब लागे उचाटन,
प्रेम करि खोयानू पराणी ।।

शुनिया देखिनु काला, देखिया पाइनु ज्वाला,
निभाइते नाही पाइ पानि ।
अगुरु चन्दन आनी देहते लेपिनु छानी,
ना निभाय हियार, आगुनो ।।

बसिया थाकिये यवे, आसिया उढाय तबे,
लइया च्याय यमुनार तीरे ।
कि करिते कि ना करि, सदाइ झुरिया भरी,
तिलेक नाहिक रहि थरे ।।

शाशुड़ी ननदी मोर, सदाइ बसाये चोर,
गृहपति फिरिया ना चाय ।
ए 'वीर-हाम्बीर' चित, श्रीनिवास अनुगत,
भजिगेला कालाचांदेर पाय ।।
(भक्ति-रत्नाकर, पृ० ३८२, कर्णानन्द, पृ० १९)

(२)

दूसरे पद में आचार्य श्रीनिवास का महात्म्य वर्णित है—

प्रभु मोर श्रीनिवास पुराइलामनेर आस,
तूया बिनु गति नाहि आर ।
आछिनू विषयकीरे, बड़इ लागित मिठ,
घूटाइल राज अहंकार ।।
करितूं गरल पान, से भेल डाहिन बाम,
देखाइला अमियार धार ।
पीव पीव करे मन, सब भेल उचाटन,
ए सब तोमार व्यवहार ।।

राधापद सुधाशशी, से पदे करिला दासी,
गोरा पदे बांधि दिला चित ।
श्री राधिका-गनन सह, देखाइला कुञ्जगेह,
जानाइला दुहुं प्रेमरीत ।।

यमुनार कुले याइ, तीरे सखी धाउया धाइ,
राधा कानू विलासये सुखे ।
ए 'वीर-हाम्बीर' हिया, ब्रजपुर समाधिया,
याहा अलि उड़े लाखे लाखे ।।
(श्री गौरपद-तरंगिनी, पृ० ३१७, पद ५९)
(पदकल्पतरु, पद सं २८७८)
द० श्री०

भक्ति वेदान्त स्वामी

भक्ति वेदान्त प्रभुपाद का आविर्भाव सन् १८९६ ई० में कलकत्ता के एक वैष्णवकुल में हुआ था। कृष्ण भक्ति की दीक्षा इन्हें अपने पिता श्री गौर मोहन दे (१८४९-१९३०) से प्राप्त हुई थी। पिता ने इन्हें कृष्ण भावना से भावित किया। इन्होंने अपने पिता का स्मरण करते हुए लिखा है, 'वाल्य-काल में उन्होंने मुझे मृदंग बजाना सिखाया, अर्चना के लिए राधाकृष्ण का विग्रह तथा जगन्नाथ का रथ दिया।' श्रीकृष्ण के नाम पर इनका नाम अभयचरण रखा गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होंने दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र और अंग्रेजी आदि विषयों में स्नातकोत्तर की उपाधियाँ अर्जित कीं।

जीविकोपार्जन के निमित्त इन्होंने व्यापार का क्षेत्र चुना। पुनः राजनीति में प्रवेश किया। सन् १९२२ ई० में इनका साक्षात्कार उस समय के मान्य परम वैष्णव विद्वान् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर से हुआ, जिनकी प्रेरणा से इनकी अभिरुचि वेदाध्ययन और कृष्णभावना के प्रति जागृत हुई। भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती गौड़ीय मठ के प्रधान आचार्य थे। उन्होंने भक्ति वेदान्त को सन् १९१३ ई० में प्रयाग में दीक्षा दी। गोलोकगमन के पूर्व भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इन्हें पाश्चात्य देशों में कृष्णभावना के प्रचार-प्रसार का आदेश दिया। इस आदेश का पालन करते हुए इन्होंने सन् १९४४ ई० में 'श्री भगवत्-दर्शन' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया।

इनके गुरु श्रीभक्ति सिद्धान्त शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'मायावाद' में विश्वास नहीं रखते थे। उनका विश्वास था कि श्रीकृष्ण और आत्मा का शाश्वत सम्बन्ध है। श्री भक्ति वेदान्त ने भी इसी भक्ति भावना का प्रसार किया। सन् १९५० ई० में इन्होंने वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश किया। सन् १९५९ ई० में इन्होंने श्री वृन्दावन की यात्रा की और वहीं सन्यास ग्रहण किया।

ये बड़े ही सात्विक भाव से राधा-दामोदर मन्दिर में रहने लगे। यह वही स्थान है, जहाँ से रूप, सनातन तथा अन्य गोस्वामियों ने ब्रज में कृष्णभक्ति व दर्शन का प्रचार किया था। राधा-दामोदर के मन्दिर में ही इन्होंने श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी अनुवाद किया और उस पर भाष्य भी लिखा। इसी समय इन्होंने 'सार्वभौम-भक्त-समाज' की स्थापना की। इन्होंने अपनी भक्ति-विषयक व्याख्याओं में स्पष्ट कहा है, 'यह नितान्त सत्य है कि परम् तत्व भगवान् कृष्ण को लौकिक तर्क से जानना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त को भी भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य विधि से नहीं जाना जा सकता (भक्त्या मामाभिजानाति)।'

यांर जिते कृष्णा प्रेम करये उदय।
तार वाक्य क्रिया, मुद्रा विसेह न बुझय॥

'परम विद्वान् मनुष्य भी श्री कृष्ण प्रेमी महापुरुष के वाक्यों, क्रियाओं और लक्षणों को नहीं समझ सकते' (चैतन्य-चरितामृत, मध्य लीला २३-२९)। सन् १९६७ ई० से 'सार्वभौम-भक्त-समाज' का ही विस्तार इन्होंने कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) रूप में किया।

न्यूयार्क में प्रभुपाद का आगमन सन् १९६५ ई० में हुआ। उस समय न्यूयार्क और व्यापक रूप में सम्पूर्ण अमरीका में नवयुवकों में हिप्पी आन्दोलन उठ रहा था। ऐसे अशान्त और उद्वेगपूर्ण वातावरण को इन्होंने 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृप्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' महामंत्र और संकीर्तन से स्नात कराया। इन्होंने संकीर्तन तथा भावविभोर संकीर्तन-नृत्य के माध्यम से कृष्ण-भावना का प्रसार किया। 'इस्कॉन' की भक्ति पद्धति 'भगवद्गीता' के दर्शन पर आधारित है। आज इस संघ में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, आदि विविध धर्मों तथा एशियाई, योरोपीय, अफरीकी आदि विभिन्न देशों के भक्त सम्मिलित हैं।

सन् १९२२ ई० में जब श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से श्रील-प्रभुपाद की भेंट हुई थी तब उन्होंने इनसे वैदिक ज्ञान का अंग्रेजी भाषा में प्रचार करने का आग्रह किया था। उसके पश्चात् प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर गौड़ीय मठ की सहायता से एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका निकाली जिसमें ये भगवद्गीता-भाष्य लिखते थे तथा स्वयं उसका सम्पादन करते थे। सन् १९४४ ई० तक यह पत्रिका गौड़ीय मठ की सहायता से प्रकाशित की जाती रही, बाद में प्रभुपाद ने इसका स्वतंत्र रूप से प्रकाशन आरम्भ किया। श्री प्रभुपाद इस पत्रिका के प्रकाशन से लेकर वितरण तक का सारा कार्य स्वयं करते थे। सन् १९६९ ई० में जब प्रभुपाद अमेरिका के न्यूयार्क नगर में पहुँचे वे खाली जेब थे। किन्तु इन्होंने अथक प्रयत्न करके जुलाई १९६६ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण संचेतना समाज (International Society for Kirshna Conciousness) की स्थापना की। पश्चिमी वर्जीनिया के पर्वतों में सन् १९६८ ई० में इन्होंने अपने वैदिक समाज के प्रयोग हेतु नव-वृन्दावन की स्थापना की। अब

यह एक समृद्ध एवं आदर्श वैदिक समाज का केन्द्र बन गया है, जिसका क्षेत्रफल एक हजार एकड़ से भी अधिक है। इस प्रकार के अनेक केन्द्रों की स्थापना इनके शिष्यों ने संयुक्तराज्य अमेरिका तथा विश्व के अन्य भागों में की है।

प्रभुपाद ने सन् १९७२ ई० में दालास टेक्साज में प्राथमिक एवं माध्यमिक वैदिक-शिक्षा-प्रणाली पर गुरुकुल की स्थापना की। तब से आपके निर्देशन में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा विश्व के अन्य भागों में शिष्यों ने अनेक वैदिक पाठशालाओं की स्थापना की है। वृन्दावन की मुख्य शिक्षा-संस्था गुरुकुल इन्हीं में से एक है। उसके अतिरिक्त भी संसार में अनेक स्थानों पर गुरुकुलों की स्थापना की गयी है।

स्वामी भक्तिवेदान्त ने भारत के अनेक स्थानों पर कृष्ण-संचेतना के सांस्कृतिक केन्द्रों की भी स्थापना की। पश्चिमी बंगाल के मायापुर में एक आध्यात्मिक नगर की स्थापना की महान् योजना है जिसके पूरे होने में एक दशक लगेगा। वृन्दावन में श्रीकृष्ण-बलराम मन्दिर तथा अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-गृह की स्थापना हो चुकी है। बम्बई में भी एक महान् शैक्षिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित हुआ है।

इस प्रकार शैक्षिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना में प्रभुपाद का महान् योगदान रहा है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ सारे संसार में आधिकारिक एवं प्रामाणिक माने जाते हैं। सारस्वत क्षेत्र में गम्भीरता एवं स्पष्टता के कारण इनका बहुत सम्मान है। इनकी कृतियों का संसार की २८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। भक्ति वेदान्त पुस्तक न्यास (Bhakti Vedant Book Trust) जिसकी स्थापना सन् १९७२ ई० में की गयी, आपकी पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति समर्पित है। यह पुस्तक-न्यास भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक है।

वृद्धावस्था के उपरान्त भी प्रभुपाद सारे संसार की १४ बार भाषण-यात्राओं पर गये। जीवन की व्यस्तता के बावजूद आप अनवरत लिखते रहे। इनकी कृतियाँ वैदिक-दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। १४ नव० १९७७ को गोलोकवासी होने से पूर्व तक आपने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण-संचेतना समाज का पथ-प्रदर्शन किया। आपने ही इस समाज की स्थापना की थी और उसे सारे संसार में फैलते देखा। आपके जीवनकाल में ही शताधिक आश्रम, पाठशालाएँ, संस्थाएँ तथा वैदिक गाँवों की स्थापना हो गयी थी। प्रभुपाद की भक्ति और निष्ठा के परिणामस्वरूप श्री राधा-कृष्ण-भक्ति संसार के कोने-कोने में प्रसारित हो रही है। आज सारे संसार में हरे राम, हरे कृष्ण! का घोष सुनाई दे रहा है। पश्चिमी देशों में गेरुआवस्त्रधारी भक्त-जन वहाँ की सड़कों पर संकीर्तन करते हुए देखे जाते हैं। आधुनिक काल में भारतीय दर्शन, वैदिक धर्म तथा वैष्णव-भक्ति के पुनरुत्थान तथा पश्चिम में उसके प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय इसी महापुरुष को है।

ज० सिं०
न० चं० बं०

भवानन्द

भवानन्द 'हरिवंश' (राधा-कृष्ण-विषयक-प्रेमाख्यानक काव्य) के रचनाकार थे। इनमें १२४ गेय पद हैं, जो बंगला भाषा में हैं। इनके पिता का नाम शिवानन्द था। ये पूर्वी बंगाल के निवासी थे। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इनका समय सोलहवीं शताब्दी का मध्य निर्धारित किया गया है। इससे अधिक इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

इनका एक पद उद्धृत किया जा रहा है—

तोरा लाग बेड़ाइ नाथ तोरा लागि बेड़ाइ।
तुमि विषे अन्य जानी तोमार दोहाइ॥

देखिले से रहे प्राण, ना देखि मरिमु।
तुमि बिने ना लय मने कि बुद्धि करिमु॥

तुमि बहि प्राण नाथ नाहि केह आर ।
तोमाके तोमार दिते कि याबे आमार ॥
तोर वाणे मन हाले विरले कहिछि ।
तोमार तोमारे दिया तोमार हइछि ॥
सकल तेजिया हइलु तोमार आधीन ।
ओगा पद छाया मागे 'भवानन्द' दीन ॥
(हरिवंश-पृ० ९७)

राधा की उक्ति कृष्ण के प्रति—'हे नाथ ! मैं केवल तुम्हें पाने के लिए घूम रही हूँ, मैं तुम्हारी दोहाई देकर कह रही हूँ कि तुम्हें छोड़कर मेरा काम्य कोई दूसरा नहीं है। तुम्हारे दर्शन से ही मेरे प्राण रहेंगे, अदर्शन से मैं स्मृति-शेष रह जाऊंगी। तुम्हारी स्मृति ही मुझे काम्य है, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य अवलम्ब नहीं है। तुम्हारा संचित प्रेम तुम्हें लौटा देने से मेरी क्या हानि है, मैं शपथपूर्वक कहती हूँ-तुम्हारे प्रेमवाण से आहत मेरे विदग्ध मन की दशा अकथनीय है। तुम्हारी दी हुई वस्तु तुम्हें अर्पित कर मैं तुममें पूर्ण समर्पिता हूँ। सब कुछ तुम्हें अर्पित कर मैं तुम्हारी शरण में हूँ। दीन 'भवानन्द' तुम्हारे चरणों की छाया के आश्रय की कामना करता है।

द० श्री०

भागवताचार्य

भागवताचार्य का मूल नाम रघुनाथ था। ये गदाधर पण्डित के शिष्य थे और 'रघु पण्डित' नाम से विख्यात थे। ये कलकत्ता के उतर बाराह नगर (वर्तमान वारानगर) के निवासी थे। ये भागवत-कथावाचक थे। लोकश्रुति है कि गौड़ से नीलाचल जाते समय चैतन्यदेव इनके यहाँ ठहरे थे। इन्होंने उन्हें भागवत सुनाया था। उसी समय चैतन्यदेव ने इन्हें भागवताचार्य को उपाधि दी थी। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ये चैतन्यदेव के समकालीन ठहरते हैं। इन्होंने 'कृष्णप्रेम-तरंगिणी' एवं 'गौरांग-विजय' शीर्षक ग्रन्थों की रचना की है।

ये भागवताचार्य के नाम से कविता करते थे। इनका कहना था कि कृष्ण का नाम ही श्रेष्ठ है—

कहे रघु पण्डित गोविन्द गुन गान ।
कृष्ण गुन सबे शुन हया सावधान ॥

'कृष्णप्रेम-तरंगिनी' से इनका एक पद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

केश पाश विनिहत फुल्ल मल्ली माला ।
पृथू श्रेनी कुच भर जमन मन्टश ॥

क्षीन कटि तट अर्द्धं वास परिधाना ।
कुण्डल मण्डित गण्ड अदित रचना ॥

झुनउ विलसितम नि ज्ञनोहरा ।
विलोल अलकावली कुन्चित कुन्तला ॥

अलस विलस गति कमल चूलाय ।
चलित चपल छिहि नन्द घरे जाय ।

(पूतना-प्रसंग)

द० श्री०

भुवनदास

भुवनदास का जन्म मुर्शीदाबाद के माणिक्यहाट नामक ग्राम में हुआ था। ये श्रीनिवासाचार्य के प्रपौत्र व राधामोहन ठाकुर के सहोदर थे। इनके पिता का नाम जगदानन्द था। ये अपने प्रपितामह के समान ही परम वैष्णव थे। इनके विषय में इससे अधिक सूचना नहीं मिलती। 'पदकल्पतरु' और 'गौर-पद-तरंगिनी' में भुवनदास रचित एक 'बारहमासा' काव्य संकलित है (यह माघ मास से आरम्भ होता है)। इसमें गौरांग-प्रिया के विरह-विदग्ध हृदय की मर्मवेदना वर्णित है। यह 'ब्रजबुली' काव्य है। 'ब्रज बुली' के अतिरिक्त बंगला-भाषा में भी इन्होंने पद रचे हैं। यहाँ इनके दो पद उद्धृत हैं।

(१)

ब्रजबुली

घन घन मेघ गरजे दिन यामिनि,
आओल माह आषाढ़ ।
नव जलधर पर दामिनि झलकये,
दाह द्विगुण ताहि बाढ़ ॥

सहचरि देव दारुण मोहे लागि ।
शरद सुधाकर सम मुख सुन्दर,
सोपहुं काहँ गेओ भागि ॥

अन्तर गर गर पाँजर जर-जर,
झर-झर लोचन बारि ।
दुख कुल जलधि, गगन चछु अन्तर,
ताकर दुःख कि निवारि ॥

यदि पुन गौर-चाँद नदियापुर,
गगन उजोरये नीत ।
तव दुख बिपुल सफल करि भानिये,
होयत तब थिर चीत ॥

(पद कल्पतरु, पद १७९४)

(२)

बंगला पद

उहे गोरा बसिया धाकह निज घरे ।
देखिथा उ रूप ठाम मोहे कत शत काम,
युवति चेरज किसे धरे ॥

हेरिया बदन चांद उदय ना करे चान्द,
लाजे जाय मेघेर मितेर ।
सौदामिनी चमकिल चम्पल सुखाजा गेल,
लाजे कोह सोना नाहि परे ॥

भाङ्कु धनु भंगिमाय, इन्द्र धनु लाज पाय,
दशने मुकुता नहिं गने ।
देखिआ चाँचर केश, चामरी छाड़िल,
चन्चल जलद आन माने ॥

मृणाल सुरनाथ लाजे, देखिआ युगल भुजे,
रंगभूमि जिनिल हियाय ।
हरि हेरि मध्य देशे, कन्दराय परवेशे,
उतते कि शम-रम्भा भाव ॥

स्थल पद्म आदियत, तरुते सुखाय कत,
ना तोलये हेरि पद पानि,
सुन गोर सुन्दर, एइ तोमार कलेवर,
भुवन-बिजइ अनुमानि ॥

भूपति

भूपति, भूपति नाथ और भूपति सिंह चम्पति, वस्तुतः एक ही व्यक्ति हैं। भ्रमवश भूपतिसिंह चम्पति को विद्यापति से अभिन्न मान लिया गया है, परन्तु ये दोनों दो भिन्न व्यक्ति थे। दो-एक पदों में भणिता के रूप में 'विद्यापति' और 'भूपति' दोनों के नाम मिलते हैं। फलस्वरूप कुछ लोगों की धारणा है कि चम्पति विद्यापति का कविनाम है। परन्तु इस मत की पुष्टि नहीं होती। संभव है कि लोक-कंठ में प्रचलित होने के कारण विद्यापति के पद इनके पदों में मिल गए हों और इस प्रकार यह भ्रम उत्पन्न हुआ हो। इनकी रचनायें ब्रजबुली में हैं। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

माधव दूबरि पेखलु ताइ ।
चौदशी चाँद जनु अनुखन खीयत
ऐछन जीवय राइ ॥

नियरे सखीगण बचन जो पूछति
उतर न देइय राधा ।
हा हरि ! हा हरि ! करतहि अनुखन
तुया मुख हेरइते राधा ॥

सरसहि मलयज पउकहि पंकज
परशे गानये जनु आगि ।
करहे धरणी-शयने तनु चमकति
हृदि माहा मनमथ जागि ॥

मन्द मलयानिल, विष सम मानइ
मुरछइ पिक कुल रावे ।
मालतो गाल परशे तनु कम्पित
भूपति इह कह भाषे ।

(प० क० त०)

(२)

गौरे देह सु-ढार सुबदनि
श्याम सुन्दर नाह ।

जनि जलद उपर तडित सन्चर
सरूप ऐसन आह ॥

पीठ परु धन श्यासबेनी
देखि ऐछन मान ।
जनि अजर हाट कपाट करें गति
लिखिन लिखु पचवान ॥

सघन सन्चर खनन घिर रह ।
मनिक मेखल राव ।
जनि गदन राए दो हाए दए
जघन तसु जसु गाव ॥

रगनि नहिं अवसाद गानए
रमनि बरु अवसान ।
ओजे रमनि राधा रसिक यदुपति
सिंह भूपति भाव ॥

(रागतरंगिणी)

द० श्री०

भूपेन्द्रनाथ सान्याल

श्री भूपेन्द्र नाथ का जन्म नदिया जिलान्तर्गत साधनपाड़ा गाँव के एक बंगाली ब्राह्मण परिवार में माघ शुक्ल पक्ष, बुधवार सन् १८७७ ई० में हुआ था।

इनके पिता का नाम कैलाशचन्द्र सान्याल तथा माता का भुवनेश्वरी देवी था। तीन वर्ष की अवस्था में ही ये पिता के साथ भागलपुर आ गये थे। इन्होंने आरंभिक शिक्षा साहेब गंज (संथाल-परगना) में तथा उच्च शिक्षा टी० एन० बी० कालेज, भागलपुर में प्राप्त की ।

सान्याल महाशय की जीविका का आरंभ शिक्षक के रूप में हुआ। पीछे भागलपुर में कपड़े की दुकान चलाने लगे। अपने भतीजे को शान्ति-निकेतन में प्रवेश दिलाने के क्रम में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ से इनका साक्षात्कार हुआ और बातों ही बातों में उनसे घनिष्टता स्थापित हो गई। योग के क्षेत्र में आपकी अन्तरंग साधना उसी समय से आरंभ हो चुकी थी। संक्षिप्त साक्षात्कार में ही गुरुदेव की मर्मभेदी दृष्टि ने इन्हें परख लिया और शान्ति-निकेतन में योग विभाग का अध्यक्ष बनने का आग्रह किया। इसे सान्याल जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और पाँच वर्षों तक इस पद पर ये वहाँ कार्यरत रहे।

ये उच्च कोटि के साधक थे। इनकी साधना प्रणाली गीतोपदिष्ट राजयोग की थी। इसी कारण योगेश्वर कृष्ण इनके आराध्य थे। दैवयोग से ये काशी के सिद्ध योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के निकट सम्पर्क में आये और उन्हीं से शिक्षा ली। लाहिड़ी महाशय से इनके काशी जाकर दीक्षा ग्रहण करने का काल आषाढ़ सन् १८९३ ई० है।

इनकी साधना का आधार ग्रंथ भगवान् कृष्ण के श्रीमुख से निर्गत श्रीमद्भगवद्गीता थी। यह ग्रंथ इन्हें कितना प्रिय था, यह इसी से सिद्ध है कि योग-दीक्षा देने के पूर्व ये शिष्यों से संकल्प करा लेते थे कि आज से जीवन पर्यन्त गीता का पाठ प्रतिदिन करेंगे। इन्होंने गीता की व्याख्या की है जिसमें योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की टिप्पणी भी संलग्न है।

गीता-भाष्य के अतिरिक्त इनका साधना और प्रवचन सम्बन्धी साहित्य भी है। कुछ स्फुट भजन और कीर्तन भी मिलते हैं।

सन् १९२४ ई० में इन्होंने भागलपुर जिलान्तर्गत बौंसी (पौराणिक मन्दर-पर्वत के निकट) में एक योगाश्रम की स्थापना की। यहाँ ये भक्ति ध्यान, भजन-दीक्षादि का अनुष्ठान शिष्य-मण्डली के द्वारा आजीवन चलाते रहे। जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) से भी इनका बराबर सम्पर्क बना रहा। वहाँ भी उन्होंने योगाश्रम खोला और भागलपुर नगर के तिलका-माँझी मुहल्ले में उसकी एक शाखा 'गुरुधाम' के नाम से स्थापित की। इस प्रकार अपने तपोनिष्ठ जीवन से पूर्वी बिहार की जनता को प्रबुद्ध और जाग्रत करने

में सान्याल महोदय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपनी जीवनव्यापी योग साधना तथा अंतस्थ भक्ति-भावना द्वारा लोकोद्धार करते हुए सान्याल महाशय का देहावसान १७ जनवरी, १९६२ ई० में हुआ। इनकी स्फुट रचनाओं से एक छंद नीचे दिया जारहा है :

मूल बंगला

मोहन
मोर मोहन रे।
नील आकाश तले,
नील कमल ए फूटे घेरे,
दिवा निशि बांसी गाने,
डाके मोरे प्राणे-प्राणे,
के आमार ध्यान ज्ञाने मासि घेरे॥

सुन्दर नील तनु,
करे ते मोहन वेणु,
नयने ते फूल धनु शोभिछे रे।
ओई मधु मृदु हासि,
हरिछे तिमिर राशि,
भाल बासि काछे आसि परशरे (मोरे)॥

हिन्दी रूपान्तर

मोहन
मेरा मोहन रे।
नीले नीले नभ के नीचे
नील कमल के रूप वहां मन भावन रे।
निशि-वासर वंशी सुतान में
मुझे पुकारे प्राण प्राण में
मेरे ध्यान ज्ञान का करता कौन प्रकाशन रे॥
सुन्दर नील सुकोमल देह,
कर वशी, नयनों में नेह,
कामदेव की सुन्दर छवि से शोभन रे।
मधुर मृदुल वह हास्य समूह,
मिटा रहा है तम प्रत्यूह,
पास पहुँच प्रीती से करता परशन रे॥

त० ना०

मथुरादास

मथुरादास की जीवनी के सम्बन्ध में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। इनका केवल एक बंगला भाषा का पद 'पदकल्पतरु' में (पद ७८९) संकलित है। इसकी शब्दावली संस्कृत अनुवर्तिनी है। पद नीचे दिया जा रहा है—

मरि मरि ना लो श्याम रूपेर बलाइ लेया।
कौन विधि निरमिल कत सुधा दिया॥

शरद बिधुबर, फुल्ल पुष्कर,
सुन्दरानन मण्डले,
रत्न मणिमय रवि समोदित,
गण्डे नृत्यति कुन्डले॥

चारु-चन्द्रिम चूड़ा चिक्कण,
चमकित हिया, मोर रूप देखिते।
सजल जलधर तिमिर पुन्जर,
इन्द्र-नील मनोरथे॥

बन्धुराधर रंग सिन्दुर,
निन्दि बिम्बुक विद्रुमे।
लोचनाञ्चल विमल चञ्चल,
विषम-वान सहोदरे॥

प्रबल भुजवर निन्दि करि कर,
कङ्कनाड द शोभने।
नरवर तोखन रुचि विलक्षन,
गोपि चित्त प्रलोभने॥

हेम विरचित मुद्रिकायुत,
पानि शाख मनोहरे।
विपुल बह श्रीवत्स लान्चन,
तार हार विलम्बिते।
कुशिम मध्यम उरग विक्रम,
पोत अम्बर शोभिते॥

मन्जु मन्जिर रञ्जिते।
मथुरादासेर चिते रह अविरते॥

(प० क० पद ७८९।११२)

'मैं श्याम के रूप की वलैया लेता हूँ। किस कला चातुरी, किस सुधा (जल) से विधि ने उनकी सृष्टि की है। उनका सुन्दर मुख-मण्डल रूप के सरोवर में शरद-चन्द्र ज्योत्स्ना के स्पर्श से प्रफुल्लित कमल-समान है। ग्रीवा पर रत्न-मणिमय कुण्डल दोलायमान है, मानों वहाँ रवि निवसित है। सुन्दर-शृंगारित जूड़ा उनके मुख-कमल को आवृत किये हुए भ्रमर-पुञ्ज के समान प्रतीत होता है। इस सौंदर्य को देखकर मेरा हृदय आश्चर्य चकित है। सजल जलधर के समान कृष्णवर्ण नील मणि के समान आलोक-निमज्जित है। सिन्दूर चूर्ण उनके अधर प्रवाल और विम्बुक कुंदरू) की लालिमा को लज्जित कर रहे हैं। उनके विमल चञ्चल लोचन अनंग के बाण के सहोदर हैं। श्याम की इस रूप छटा को देखकर (मेरा) हृदय विदीर्ण हो रहा है। करिकर (शुण्ड) को लज्जित करने वाली उनकी शक्तिशालिनी भुजायें कंगन से शोभायमान हैं।

पुरुषोत्तम अपने विलक्षण सौंदर्य से गोपियों के चित्त को प्रलुब्ध करते हैं। उनकी कर अंगुलियाँ सोने की अँगूठियों से शोभायान है। उनकी त्रिभंगी छवि विलम्बित हार से अलंकृत है। उनकी कृशकटि तथा विशाल हृदय पीताम्बर से शोभित है और वह मन्जु मन्जीर पुष्प से अनुराग रंजित दृश्यमान है। मथुरादास के हृदय में यह छवि अविराम विद्यमान रहे।'

द० श्री०

मदनदास (प्रथम)

मदनदास नामक तीन वैष्णव भक्तों का उल्लेख मिलता है। प्रथम मदन का उल्लेख 'क्षणदा-गीत-भंगक' (५७, १८०) में आया है। ये नरहरि के ज्येष्ठ भ्राता व मुकुन्द के प्रपौत्र थे। प्रोफेसर सुकुमार सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के बंगला विभाग में सुरक्षित वैष्णव भक्तों के पदों के संकलन की एक पाण्डु लिपि (संख्या-२५२४) के आधार पर इनका एक पद 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली' में उद्धृत किया है। वह नीचे उद्धृत किया जा रहा है। वह पद नरहरि दास के सम्बोधन के रूप में रचित है—

हा हा प्रभु नरहरि दया कर मोरे।
दग्ध हइनु पड़ि दारुण संसारे॥

अधम अयोग्य हिताहित नाहि जानि।
(शमन) दमन भए कांपये पराणी॥

ये सब (?) आज्ञा योबने मत हइमु।
इबे जरा (मरण) सेवने गोआइनु॥

जननिये माया-मोहे, सब पासरिनु।
तोमार अनुगत हये तोमा ना अजिनु॥

लोक परतारण करि उदर पूरिजु।
साधु मुखे सिद्धान्त शुनि त्रास उपाजेल॥

अनिया तेजिये किये गरल भाखिल।
नामा भास दास मुई ना देखिये गति॥
मदन तराये प्रभु राखन खियाति॥

—(क० वि० पा० २५२४)

द० श्री०

मदनदास (द्वितीय, तृतीय)

मदनदास (द्वितीय) के विषय में कुछ स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। द्वितीय मदनदास नरोत्तम ठाकुर (देखिए-प्रेम-विलास, नरोत्तम विलास ११) और तृतीय मदनदास गोपाल, रस कल्पवल्ली के रचयिता रामगोपाल दास के ज्येष्ठ भ्राता थे। प्रोफेसर सुकुमार सेन द्वितीय मदनदास के ही पक्ष में अपना मत देते हैं। यहाँ जो पद दिया गया हैं, उसमें वैष्णव भक्ति में क्रमशः आयी हुई विकृतियों का उल्लेख है—

साधन भजन बहु दोष गुण,
बुझिते विषम मार।
महाजन मत हय अनुगत,
भक्ति करिबे सार॥

वचन ना माने ये जन,
निज मत करे सार।

ताहार वचने ना पातिरवे काने,
बहु कि कहिब आर ॥

राधा कृष्ण ध्यान,
महाजने इहा कय।
इहा ना मानिया अन्य आराधिया,
रागानुगा नाहि हय ॥

रागानुगा हय कि,
काम गन्ध होन।
प्रेमेते अधीन,
सुनह राधार श्री ॥

रागानुगा सार,
ना करे बिचार।
आपना के गुरु-बुद्धि,
निज देह रति, करये पिरीति।

ताहाते ना हए सिद्धि,
राधा-कृष्ण रति।
चित्तेर आरती,
श्री रूप चरण आश ॥

किन्तु बहुदेशे,
दूषित इदानि।
हइल मदनदास ॥

(बंगीय परिशिष्ट, पांडुलिपि सं० २४१६)
द० श्री०

मधुसूदन

मधुसूदन मधुपण्डित व मधुशील नाम से विख्यात थे। 'वैष्णव-वन्दना' में मधु पण्डित का उल्लेख मात्र मिलता है। ये कण्टक नगर निवासी थे और गौरांग के परम भक्त थे। गौरांग के शिष्यों का मुण्डन कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न होता था। इनके पाँच पद 'पद-कल्पतरु' में संकलित हैं। उनमें बंगला और ब्रजबुली, उभय भाषाओं के १८७३,२७८५, १७८६,२८५५,२८५६ संख्यक पद हैं। इनके दो पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

बंगला पद

राइ कानू निकुञ्ज मन्दिरे।
बसिलेन वेदीलू उपरे ॥

हेम मनिखचित ताहाते।
विविध कुसुम चारि भिते ॥

सखीगन चौदिश बेड़िया।
रसियारे दुहुँ मुख चाइया ॥

कुण्डेर पूरबे सेइ कुञ्ज।
जाहा बेड़ि मधुकर पुञ्ज ॥

मलय पवन बहे ताय।
तरुवर शारी शुक गाय ॥

राइ कानू से शोभा देखये।
हेरि मधुसूदन भूलये ॥

(प० क० त० २७८६)

'निकुञ्ज मन्दिर में, वेदी पर राधा-कृष्ण बैठे हैं। वेदी का उपरि भाग स्वर्ण-मणि-जटित है। चारों भित्तियों पर पुष्प खचित हैं। सखियाँ राधा-कृष्ण की ओर एकटक देखते हुए उनकी परिक्रमा कर रही हैं। वह कुञ्ज कुण्ड के पूरब में है जो मधुकर की गूंज से गुंजरित है, जहाँ मलय पवन रहता है, तरु पर सारिका-शुक गा रहे हैं। राधा-कृष्ण की उस शोभा को देखकर मधुसूदन भाव-विस्मृत हो गये हैं।'

(२)

ब्रजबुली पद

करहि मुरलि ना देखिया।
कहे कानु गर गर हिया ॥
के लिल मुरलि-प्रिय मोर।
तुहुँ सब सखीगन चोर ॥
कहे सते के लिल मुरली।
किवा लेया करिया खुरली ॥
कानने पेलिया होया मोर।
आमा साभाकारे कहे चोर ॥

इंगिते नयान चालिला ॥
बुझि श्याम राइके धरिला ॥

कहत वक्ष सब उट्ठिल ।
तम् से मुरलि ना पाइल ॥

तबहुँ मिनति करु कान ।
तुहुँ से मुरली मुरलि देह दान ॥

तब सखीगन आनि दिल ।
नागर मुरलि करे निल ॥

कत कत एइ छन विलास ।
कह मधुसूदन दास ॥

(प० क० त० २७८५)
द० श्री०

मनोहरदास (प्रथम)

मनोहरदास नाम के तीन कृष्ण भक्तों का उल्लेख मिलता है। तीनों ही नित्यानन्द के शिष्य थे। यहाँ तीनों का परिचय दिया जा रहा है।

मनोहरदास (प्रथम) की चर्चा 'चैतन्य चरितामृत' के आदिलीला-पर्व में हैं। मनोहरदास रचित ६ पद 'पद-कल्पतरु' में संकलित है। इनमें दो पद बंगला में और चार ब्रजबुली में हैं। इनके दो पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

बंगला पद

श्यामेर मुरली, हुदय खुरली,
करिलि सकल नाश ।
मोर मिनती ना शुनि आरति,
करह बाजिते आश ॥

शुन शुन रे धरम नाशा ।
देव आराधिया, उमुख बान्धिव,
दुचार तोमार आशा ॥

आमरा अबला सहजे अखला,
देखिया तोमार लोभ ।
अलपे अलपे सकल खाइया,
जीवन करह क्षोभ ॥

एखने आमरा एतह हइलुं,
तेजह ए सब आश ।
याहार येमन ना छाडे करन,
कहे 'मनोहर-दास' ॥

(पदकल्पतरु ८२५)

'श्याम की मुरली हृदय में गूंज रही है, उसने सर्वनाश कर दिया। मेरी विनती और मेरी निरुपाय अवस्था पर वह दया से विगलित नहीं होती, वह बजती ही जाती है। देव की आराधना कर मैं तुम्हारे दाहक ताप को बाँध कर तुम्हारी अभिलाषा को निष्फल कर दूंगी। हम अबलायें सहज ही तुम्हारे प्रलोभन में पड़ जाने वाली हैं।'

(२)

ब्रजबुली पद

जय जय राधे जि शरण तिहारि ।
ऐ छन आरति याऊ (जाऊं) बलिहारि ॥

पाट पटाम्बर उढ़े (ओढ़े) निल शाड़ि ।
सीखक सिन्दुर याउं बलिहारि ॥

वेश बनायल प्रिय सहचरि ।
रतन सिंहासने बेठिल गोरि ॥

चौदिखे सखिगन देइ करतारी ।
आरति करतहि ललिता पियारी ॥

रतन-जड़ित मनि आनिक मोती ।
झलमल अभरन प्रति अंगे जोती ॥

चौदिशे सहचरि मंगल गाउये (गावे) ।
प्रिय नर्म सखीगन चागर दुटनाये ॥

उ पद पंकजि सेवनलि आशा ।
'दासमनोहर' करत भरोसा ॥

(पद कल्पतरु २९७०)
द० श्री०

मनोहरदास (द्वितीय)

दूसरे मनोहरदास 'बाबा आउल मनोहरदास' नाम से विख्यात थे। इनका एक अन्य नाम चैतन्यदास भी था—

आदि नाम मनोहर चैतन्य नाम शेष ।
आउलिया होइया बोले स्वदेश व विदेश ॥
(गौरपद-तरंगिणी)

'प्रेम-विलास' में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

विष्णुपुर मोर घर हय बार क्रोश ।
राजार देशे वास करि हइया संतोष ॥

इनके जन्म स्थान व जन्म-समय के सम्बन्ध में निश्चित सूचना नहीं मिलती । परन्तु उपलब्ध सूचना के आधार पर इनका जन्म शक् संवत् १५०० में हुगली के निकट बदनगंज में हुआ था । ये वैष्णव मतानुयायी राजा वीर हम्बीर के भक्ति-ग्रन्थागार के पुस्तकालयाध्यक्ष थे । वीर हम्बीर के निधन के पश्चात् इनमें सन्यास-भाव जागृत हुआ । शक् संवत् १५५६ में इन्होंने देशभ्रमण करते हुए वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । किन्तु मार्ग में जयपुर में ही इनका देहावसान हो गया । ये जाह्नवी देवी के मंत्र-शिष्य थे और विष्णुपुर राजबाड़ी के निकट रहते थे ।

मोर ठकुरानी शिष्य चैतन्य दास ।
आउलिया बाले, डाके सर्वत्र प्रकाश ॥

ये 'पद-समुद्र' एवं 'निर्यामतत्व' नामक ग्रन्थों के संग्रहकर्त्ता थे ।

द० श्री०

मनोहरदास (तृतीय)

प्रोफेसर सुकुमार सेन ने 'अनुरागवल्ली' नामक ग्रन्थ के प्रणेता एक तीसरे मनोहरदास की चर्चा अपने 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली' नामक ग्रन्थ में की है । 'भक्ति-रत्नाकर' के आधार पर उनका निष्कर्ष है कि इनका नाम मनोहर राय था और इन्होंने 'अनुरागवल्ली' की रचना १६९० ई० में की थी । ये श्रीनिवास आचार्य की परम्परा में आते हैं । इनके पितामह वाणीनाथ पट्टनायक चैतन्य के आदरास्पद एवं समकालीन रामानन्द राय के छोटे भाई थे । वृद्धावस्था में ये वृन्दावनवासी हो गए थे । इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

नवीन किसलय फुटल फुल चय,
पाति विविध विधान ।
यइछे खीर सर-तइछे सेजकर,
कुसुम कुल उपधान ॥

सखि हे. स्वरूप पेखल मो तोय ॥
अइछे साञ्ज-वास-गृह जनु,
निरखि हरि सुख होय ॥

चारु चम्पक कुसुम हारक ।
गन्ध मालति-गाल ।
खपुर, कर्पुर, पान सुमधुर,
पुरिजा कंचन थाल ॥

करह सब वुहुँ जागि रखलहुँ,
पिया क पन्थ निहार ।
कहे मनोहर कुञ्ज कानने,
मिलब नन्द कुमार ॥
(न्यायिक रत्नमाला 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुली' से उद्धृत)

'नव किसलय और खिले हुए पुष्पों का चयन कर क्षीर सागर के समान धवल शैय्या कुसुम उपधान-युक्त शैय्या सज्जित करो । हे सखि ! मैं तुमसे वास-गृह सज्जित करने का निवेदन करती हूँ, जिससे हरि आनन्दित हों । मोहक (सुन्दर) चम्पक, मालतीमाल सुपाड़ी, कर्पूर, पान से स्वर्णथाल सजाओ । प्रिय का पन्थ निहारती मैं समस्त रात्रि जागरण करूँगी । मनोहरदास कहते हैं, 'कृष्ण तुम्हें कानन-कुञ्ज में मिलेंगे ।'

द० श्री०

मनोहरदास (चतुर्थ)

श्री मनोहरदास (चतुर्थ) का जन्म बंगाल के नदिया जिलान्तर्गत माधवपुर ग्राम में सन् १८४७ की कार्तिक शुक्ल पंचमी को हुआ था । इनके पिता का नाम श्री भोलानाथ अधिकारी तथा माता का नाम

सुन्दरी था। इनका बचपन का नाम महेन्द्र था। बचपन में ही ये मातृहीन हो गये थे।

जब ये छः वर्ष के थे तो एक दिन रात में इन्होंने स्वप्न में देखा कि एक साधु उन्हें घर से बाहर निकालकर वन में ले गये और वन के चारों ओर आग लगा दी। स्वप्न से इन्हें संसार के प्रति विरक्ति हो गयी। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्हें पितृशोक हुआ। पितृ वियोग के पश्चात् इन्होंने श्रीपाद् नन्दकिशोर गोस्वामी से दीक्षा ली और बाद में नवद्वीप के बड़े अखाड़े के श्रीरूपदास से वेश ग्रहण किया। वेश-ग्रहण के पश्चात् इनका नाम मनोहरदास हुआ।

वेश ग्रहण के बाद कुछ दिन नवद्वीप में रहकर सिद्ध श्री चैतन्यदास बाबा और बड़े अखाड़े के पंडित श्री नरोत्तमदास बाबाजी का संग किया। कालना के सिद्ध श्री भगवानदास के भी दर्शन किये। इसके बाद सन् १८८१ में वृन्दावन की यात्रा की। पाँच वर्ष वृन्दावन में रहकर श्रीपाद गोपीलाल गोस्वामी प्रभु से भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया। झाड़ू मंडल के सिद्ध श्री बलरामदास, कालीदह के सिद्ध श्री जगदीश बाबा तथा मदनमोहन ठौर के सिद्ध श्री नित्यानन्ददास का संग किया। तत्पश्चात् कुसुम सरोवर, काम्यवन और नन्दग्राम में रहकर भजन किया। अंत में सन् १८९३ ई० के लगभग स्वप्नादेश प्राप्तकर गिरिराज-तटवर्त्ती गोविन्द-कुंड में जाकर भजन करने लगे। ६ दिनों बाद वहीं एक गुफा का निर्माण कर उसमें रहने लगे।

श्री मनोहरदास की नाम में बड़ी निष्ठा थी। ये निरन्तर हरिनाम का जप करते रहते। ये सोते बहुत कम और बिस्तर भी नहीं के बराबर रखते थे। आहार में आटे की रोटी और नाम का रस-यही ग्रहण करते। लोक-संग त्यागकर ये एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। वाह्य जगत् से बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। इन्होंने एक मंदिर का निर्माण कर मदनमोहन की सेवा चलायी, पर मंदिर की सेवा-परिचालनादि से उदासीन रहे। ये शिष्यों से भी बहुत कम बात करते थे, जिसको सामने देखते उसे दण्डवत् करते तथा सदैव आत्मनिन्दा करते।

देहासक्ति न रहे, इसलिए शरीर की ओर ध्यान ही नहीं देते थे। मच्छरों से परेशान होकर दूसरे साधु मसहरी का व्यवहार करने को बाध्य होते, किंतु बाबा से मसहरी लगाने के लिए कहने पर कहते—"मच्छर हमारा क्या बिगाड़ता है? वह तो अधिक निद्रा आने में बाधा डालकर भजन में सहायता करता है।"

एक बार ब्रज में भयंकर शीत पड़ी, ललिता-कुण्ड में बर्फ तैरने लगी। बाबा के पास ओढ़ने के लिए फटी पिछौरी के सिवा और कुछ नहीं था। रात्रि में भजन करते समय उनका शरीर काँपने लगा। भजन में विघ्न पड़ते देख उन्हें शरीर पर क्रोध आया। उसी समय कुण्ड के बर्फीले पानी में जाकर खूब स्नान किया। निकट में नवद्वीपदास बाबा रहते थे। उन्होंने अर्ध रात्रि में कुण्ड में स्नान करने का कारण पूछा तो ये बोले—'देह बड़ा पौजाकी हो गया है अर्थात् लिहाफ और रजाई माँगने लग गया है।'

सन् १९४० ई० की श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को बाबा ने नित्यलीला में प्रवेश किया।

बाबा मनोहरदास ने दो ग्रंथों की रचना की है—'वैदग्ध विलास' और 'नाम रत्नमाला'।

स० गु०

माधव घोष

माधव घोष चैतन्यदेव के समकालीन और उनके अनन्य भक्त थे। ये वासुदेव घोष और गोविन्द घोष के सहोदर थे। इनकी जन्म-मृत्यु तिथि का पता नहीं चलता। 'चैतन्य चरितामृत' और 'चैतन्य-भागवत' में इनका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

(१)

श्री माधव घोष मुख्य कीर्तनीया गणे ।
नित्यानंद प्रभु नृत्य करे जार गाने ॥

—चै० च० आदि लीला परि० ११, पृ० ६२

(२)

सुकृति माधव घोष कीर्तने तत्पर ।
हेन कीर्तनिया नाहि पृथ्वी भित्तर ॥
मांजम्हारे कहेन वृन्दावनेर गायन ।
नित्यानन्द स्वरूपेर महाप्रियतम ॥

—चैतन्य भागवत (वृन्दावन दास)

इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

निज निज मन्दिर चाइते पुन पुन,
दुहुँ दोहा बदन निहारि ।
अन्तरे कयल प्रेम पयोनिधि,
नयने गलये धन वारि ॥
माधव, हामारि विदाय पाये तोय ।
तोहारि प्रेम सजे पुनि चलि आयव
अब दरशन नहि मोय ॥
कातर नयने नेहारिते दुहुँ दोहां,
उच्छल प्रेम तरंग ।
मुरछल राइ मुरुछ पोड़ माधव,
कब हव ताकर संग ॥
ललिता सुमुखि सुमुखि करि फुरकत,
राइक कोरे अगोर ।
सहचरि कानु कानु करि फुरकत
ढरकत लोचन लोर ॥
कथि गेओ अरुण-किरण-भय दारुण
कथि गेओ लोकक भीत ।
माधव घोष अबहु नहिं समुझल
उदभट मुगध-चरीत ॥

(२)

गिरिष समय गृह माह ।
यशोमति हरिष बाढ़ाह ॥
कहि सब गोकुल लोके ।
निज सुत करु अभिषेके ॥
गिरिष तपोवन लागि ।
वासइ कुसुम परागि ॥
सूशितल वारि मधूर ।
कलश कलश भरि पूर ॥
मलयज कपूर मिशाइ ।
हिमकर शीकर लाइ ॥
रतन वेदि निरमान ।
तहिं अनाउल कान ॥
बासित तेल लागाइ ।
दास दासिगने आइ ॥
शिर पर चालत बारि ।
माधव घोष बलिहारि ॥

(प० क० त० १५३९)

इनके अतिरिक्त एक अन्य माधव नामक वैष्णव का भी उल्लेख मिलता है ।

द० श्री०

माधवदास द्विज

माधवदास द्विज भागवतमिश्र पराशर के आत्मज थे । आरम्भ में ये चण्डी के उपासक थे । इन्होंने 'चण्डी-मंगल' ग्रन्थ की रचना की थी । तत्पश्चात् इन्होंने वैष्णवमत अंगीकार कर लिया और इनकी ख्याति द्विज माधवदास के नाम से हुई ।

द० श्री०

माधवदास (माधवाचार्य)

माधवदास, माधवाचार्य नाम से विख्यात थे । इनके पिता का नाम कालिदास मिश्र था । ये नवद्वीप के वैदिक ब्राह्मण थे । कालिदास मिश्र, महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया के पिता सनातन मिश्र के छोटे भाई थे । इनकी माता का नाम विधुमुखी था । अल्प वय में ही माधव दास के पिता का निधन हो गया । अद्वैताचार्य इनके मंत्रगुरु थे । इन्होंने भागवत् के दशम व ग्यारहवें अध्यायों का बंगला पदानुवाद किया था, जो 'श्रीकृष्ण-मंगल' नाम से विख्यात है । 'खेतुरी-

उत्सव' में इनके उपस्थित रहने का प्रमाण मिलता है। अतः १५८३ ई० तक इनका जीवित रहना असंदिग्ध है। 'गौरपद-तरंगिणी' में इनका परिचय इस रूप में दिया गया है—

श्रीमद भागवतेर श्री दशम स्कंध।
गीत वर्णना ते तिहाँ करि नाना छंद ॥

राखिला ग्रंथेर नाम श्रीकृष्ण-मंगल।
श्री कृष्ण चैतन्य पदे समर्पण कैल ॥
(गौरपद-तरंगिणी-पद-१४५।)

इन्होंने 'बंगला' और 'ब्रजबुली' दोनों में रचनाएँ की हैं। यहाँ दोनों भाषाओं के तीन पद उद्धृत हैं—

(१)

(बंगला पद)

गौर गरवे हाम, जनसु गोयायलूं
अव काहे निरदय भेल।
परिजन चरनहि गरले गरासल
गेह दहन सम केल ॥

स्वजनि अवरिजन विकलहि भेल।
सोभरिते सो मुख, हृदय विदारत,
पांजरे बजरक शेल ॥
उठ बोस करिकत क्षिति माहा लूटत,
पवन आनल दह अंग।
कि करव का देह, समवाद पठाउब,
मिलव किये तछु संग ॥

व्यथित वेदनि जन बोधारत अनुखन,
धेरज धरु हिया माझ।
निरवधि सो सुन, करु अवलम्बन
माधव शिरे हाने राज ॥
(गौ० प० त० २५४ पद-२४)

(२)

(ब्रजबुली पद)

जय नागर वर मानस हंसी।
अखिल रमणी-हृदि मद विध्वंसी ॥
जय जय जय वृषभानु कुमारी।
मदन मोहन मन पन्जरगारी ॥
जय युवराज हृदय वन हारिणी।
श्री वृन्दावन कुन्जर कारिणी ॥
कुन्ज-भवण सिंहासण राणी।
रचयिता माधव कातर वाणी ॥
(पद-कल्पतरु, २६६५)

(३)

(राधा-सौंदर्य-निरूपण)

शारद शशधर किए मुख शोभा।
कुंकुम कांचन बिजुरी गौरोचन,
चम्पक वरण हरण मन लोभा ॥

देख देख राधा रूप अपारा।
मदन मोहन वाहिते अनुखन,
लावगि प्रेम-अमिआरस धारा ॥

शिर पर कुसुम खचित वर वेणी,
लम्बित हृदि पर मोति माल वर,
सुमेरु भेदिआ जनु बहत त्रिवेणी ॥

कनक करभकर भुजवर साजे।
केशरिखिनकटि मणि किंकिणी तटी,
गति गजराज मनोहर राजे ॥

थल पंकज पद शोभा।
नखरमुकुरमणि-मंजीर रण रणि,
माधव नयन भ्रमर चित क्षोभा ॥

द० श्री०
स० गु०

माधवीदास

उड़िया कृष्णभक्तों के परिचय प्रसंग में इनका विवरण 'माधवीदासी' रूप में आ चुका है। बंगला के भक्तवृत्त-संग्रहों में 'माधवीदास' के नाम से भी इनकी चर्चा मिलती है।

कुछ वैष्णव ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि माधवी दासी राधा की प्रतिमूर्ति थीं। ये जगन्नाथपुरी के परम वैष्णव शिखि मइति व मुरारी मइति की

सहोदरा के रूप में अवतरित हुई थीं। शिखि व मुरारी के साथ युक्त कर इन्हें 'तिन-भ्राता' भी कहते थे। अतः इनकी चर्चा 'दासी' की अपेक्षा 'दास' रूप में ही होती थी। 'चैतन्य-चरितामृत' में यह उल्लेख मिलता है कि चैतन्य ने जिन-जिन जनों को 'व्रजरस' का गूढ़ अर्थ समझाया था, उसे केवल साढ़े तीन जन ही ग्रहण कर सके थे—

प्रभुलेखा करे जारे राधिकार गन।
जगतेर मध्ये पात्र साढ़े तीन जन ॥
स्वरूप दामोदर आर राय रामानन्द।
शिखि माइती और तार भगिनी अर्द्ध ॥

इस प्रकार महाप्रभु की प्रेरणा से ये 'माधवीदास' के नाम से भी विख्यात हुईं। श्री गौरांग-लीला सम्बन्धी इनके दो पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

आनन्दे नाचत सडे भकत, गौर किशोर राज।
फागु उझालि, करे केला फेलि नीलाचल पुरः माझ ॥
शुनिया नागरी प्रेमेत आगुरी, धाइया चलिल वाटे।
हेरिया गोरे पांइला कांपरे, वदन चाहिया थ.के ॥
दुवाह तूलिया, बेड़ाय नाचिया भकतगनेर संग।
नीलाचलवासी मने अभिलाषी कांतुके देखाय रंग ॥
राजे करताल, बोले भालि भाल आर बाजे ताहे खोल।
माधवी दास भने ते उल्लास सदा बले हरि बोल ॥
(गौ० प० त० पद-३८ पृ० १५४, वसन्त)

(२)

नीला हइते शचीरे देखिते,
आईसे जगदानन्द।
रहिकत दूरे, देखे नदीयारे।
गोकुल पुरेर छन्द ॥

भावये पण्डित राय।
पाइ किना पाइ, शचीरे देखिते,
एइ अनुमाने जाय ॥

लतातरु जत, देखे शत शत,
अकाले खासेइदे पाता।
रविर किरन ना होय फुटन,
मेघ गन देखे राता ॥

शाखे बसि पाखि, भुद दुटो आंखि,
फल जल तेयागिया।
कांदये फुकरि, फुकरि, फुकरि,
गोरा चांद नाम लेया ॥

धेनु युथे युथे दंडाइया पथे,
कार मुखे नाहिरा।
माधवी दासेर ठाकुर पण्डित,
पड़िल यछाड़ि गा ॥
(पद १७ धनाश्री, पृ० २६७)

माधवेन्द्रपुरी

माधवेन्द्रपुरी चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव से पूर्व प्रवाहित कृष्ण भक्ति धारा के प्रस्तावक थे। ये अद्वैत मत में दीक्षित सन्यासी थे, फिर भी कृष्ण में इनकी अगाध आस्था थी। इनके जन्मस्थान आदि का पता नहीं चलता। इतना ज्ञात होता है कि ये दो एक वर्षों के अन्तराल से गोवर्द्धन से द्रविड़ देश की यात्रा करते थे। पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कई कृष्ण भक्तों को इन्होंने दीक्षित किया था। इनमें अद्वैताचार्य का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। ये चैतन्य देव की माता के भी गुरु थे। विद्वानों की धारणा है कि इन्हीं की प्रेरणा से बंगाल में भागवत-पुराण का प्रचार हुआ। डा० सुकुमार सेन ने व्रज साहित्य के इतिहास के परिशिष्ट में 'गीतमंजरी' के अन्तर्गत इनके एक पद का संकलन किया है। पद यहाँ उद्धृत है—

साजलधनी चन्द्र वदनी,
श्याम दरशन आशे।
संगिनीगन रंगिनी सब,
घेरिल चारि पाशे ॥

तरुनारुन चरन युगल,
मञ्जीर तहिं शोभे ।
भृंगावली पुंज पुंज,
गुन्जरे मधु-लोभे ।।

कुन्ति कुन्त जिन नितम्ब,
केशरि क्षीण माझे ।
परि नीलाम्बर पट्टो अम्बर,
किंकिनी तहिं बाजे ।।

बाहयुगल पीर बिजुरी,
करि शावक शुण्डे ।
हेमांगद मनिकंकन,
नखरे शशि शशि खण्डे ।।

हेमाचल कुचमण्डल,
कांचली तहिं शोभे ।
जाम्बूनद हेम-युक्त,
मुकुताफल पांति ।
फनि मनियुत दाम सहित
दामिनीभय भाति ।।

बिम्बफल निन्दि अधर,
दाड़िम बीज दशना ।
बेशर तहिं नलके झलके,
मन्द मन्द हसना ।।

नासातिल फूल तूल,
कवरी करवीछांदे ।
मदन मोहन मोहिनी धनी,
सांजली तहि राधे ।।

नवयौवनो चन्द्रवदनी,
वृन्दावन बाटे ।
माधवेन्द्र पूरी रचित भाव
वर्नि पूर्नि पाटे ।।

(गीतमंजरी, २४५।२६२)।

द० श्री०

मुरारी गुप्त

मुरारी गुप्त नवद्वीप निवासी थे। इनका जन्म सं० १५२४ (१४६४ ई०) में हुआ था। ये आयु में चैतन्यदेव से कुछ बड़े थे। गंगादास की पाठशाला में ये चैतन्य देव के सहपाठी थे। इन्हें हनुमान जी का अवतार माना जाता है।

मुरारी गुप्त का परिवार सिलहट-निवासी था। इनके पूर्वज सिलहट से आकर नवद्वीप में बस गये थे। इनका परिवार चैतन्य देव के पिता जगन्नाथ मिश्र का प्रतिवेशी था। मुरारी गुप्त जाति के वैद्य थे। आरम्भ में ये राम के उपासक थे। इनके विषय में कृष्णदास कविराज़ की नीचे उद्धृत उक्ति ज्ञातव्य है--

श्रीमुरारी गुप्त शारबार प्रेमेर भाण्डार ।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि दैन्य चार ।।
प्रतिगृह ना करे न लेय कार धन ।
आत्मवृति करि करे कुटुम्ब भरण ।।
चिकित्सा करेण या रे हया सदय ।
देह रोग भव रोग दुश्तार क्षय ।।

(चै० चरितामृत, पृ० १०)

मुरारी गुप्त चैतन्य की बाल और तरुण लीला के प्रत्यक्षदर्शी थे। इन लीलाओं को सूत्रवद्ध करते हुए इन्होंने ई० सन् १५१३ में 'श्रीकृष्ण चैतन्य-चरितामृत' नामक ग्रन्थ की रचना थी, जो वैष्णवों में 'कड़चा' (करचा) नाम से विख्यात हुआ। यह ग्रंथ ४५ प्रकरणों में विभक्त है। इसमें १९१९ छन्द हैं। इस ग्रन्थ के सम्पादन के समय चैतन्य केवल २८ वर्षों के थे। अतः इस कालावधि तक की रचनाएँ ही 'पदकल्पतरु' तथा गौरपद तरंगिणी' में संकलित हैं, ऐसे पद संख्या में नौ हैं। इनके कुछ पद नीचे उद्धृत हैं-

(१)

(कृष्ण का राधा के प्रति निवेदन---राधा से मान त्यागने का आग्रह)

तपत किरन यदि अंग ना दगधल
कि करब जल अभिषेके ।
दुःख भरे प्रान बहिरे यव निकसव,
कि करव अउषध विषेखे ।

मानिनि, अतएव समावह माने ।
मृदु मृदु भाषे सम्भाषह बरतनु,
एक बार देह जिउ दाने ।।

सुन्दर वदने बिहसि बरभामिनी,
रचह मनोहर बाणी ।
कुच कनकागिरि मधि गहि राखह,
निज भुजे आपन जानी ।।

अधर सुधारस पान देख सखि,
हृदय जुड़ायत मोर ।
तुया मुख-इन्दु-उदय हेरि बिलसत,
तिरपित मयन चकोर ।।

निज गुण हेरि परक दोष परिहर,
तेजह हृदयक रोष ।
भणइ मुरारि प्रणपति संगिनि,
पुरुष-बध बहु दोष ।।

(क्षणदा०-२५२)

(२)

कृष्ण के प्रति अनुरक्ता राधिका–बंगला पद

सखि हे, फिरिया आपन घर याओ ।
जीवन्ते मारिया, ये आपना खाइया छे,
तारे तुमि कि आर बुझाओ ।।

नयन पुतलिकरि लाइलों मोहन रूप,
हियार मझारे करि प्राण ।
पिरीति आगुनि ज्वालिसकलि पोड़ाइया छि,
जाति कुल शील अभिमान ।।

जा जानिया मूढ़ लोके, कि जानि कि बले मोके,
न करिय श्रवण गोचरे ।
स्त्रोत विचार जले, ए तनु भासाइया छि,
कि करिबे कुले कुकुर ।।

खाइते शुइते रइते, आन नाहि चिते,
बन्धु बिने भान नाहि भाय ।
'मुरारीगुप्ते' कहे प्रीति एमति हइले
तार यश तीन लोके गाय ।।

(पदकल्पतरु, ५१)

मोहन दास

मोहनदास का जन्म वैद्यकुल में हुआ था। ये प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य के शिष्य और गोविन्द कविराज के सखा थे। 'कर्णानन्द' में इनके विषय में निम्नलिखित विवरण मिलता है—

> श्री मोहनदास नाम जन्म वैद्य कुले ।
> नैतिक भजन आर अति निरमले ।।

इनके पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं, जिनकी संख्या ३० है। इनमें बंगला और ब्रजबुली, दोनों भाषाओं के पद हैं। कुछ पद 'कीर्तनानन्द' में भी संकलित हैं। नीचे इनके कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

गोचारण प्रसंग

बन सञे आओत नन्द दुलाल ।
गोधूलि-धूसर श्याम कलेवर,
आजानु लम्बित बनमाल ।।

घन घनशृंग, वेणु रव शुनइते,
बरजबासी गण धाय ।।

मंगल थारि दीप करे बधूगन,
मन्दिरे द्वारे दाँड़ाय ।।

पीताम्बर धर मुख जिनि बिधुवर,
नव मंजरि अवतंस ।
चूड़ा मयूर, शिखण्डल मण्डित,
वायइ मोहन वंश ।।

ब्रजबासीगण बाल-बृद्ध जन,
अनिमिखे मुखशशि हेरि ।
अखिल चकोर चांदु जनु पाओल,
मन्दिरे ना चलये फेरि ।
गो गण सबहु गोठे परवेशल,
मन्दिरे ना चलये नन्द लाल ।

आपक पन्थे यशोमति आओल,
मोहन भणित रसाल ।।

(पद कल्पतरु-प० १२०६)

(२)

राधा और सखियाँ मथुरा में दधि वेचने जा रही हैं—

दधि घृत गोरस सजाइया पसार ।
चीरहि झांपन देओल तार ।।

किंकिरीगण सब सिर पर लेल ।
मुखरा संगे धनि तहीं चलिगेल ।।

सहचरि संगहि बिनोदिनी राइ ।
दूरहि कानु क दरशन पाइ ।।

पुलके पुरल तनु गद्‌गद् बोल ।
घामहि भीगल नील निचोल ।।

को इह केलि कदम्ब क मूल ।
नव मेचे बिजुरी जड़ित सम तूल ।।

बाहु तुलिया उह डाकये काय ।
मुखरा कहथे इह जब रसराय ।।

पथहि मागये गोरस दान ।
मोहन कहे मोहे अइछन भान ।।

(पद कल्पतरु-१३८४)

(३)

समय बसन्त, सबहि मन तोषइ,
कानने कुसुम बिकाश ।
मलयाचलहि, भुजग भए मारुत,
चलत हिमाचल पाश ।।

सखि अइछन सुखदय माह ।
का सने कान्त काम परिपूरये,
मझु उदवेग बढ़ाह ।।

अतिशय चपल चरित अति लम्पट,
हामरि भरम नाहि जान ।
इह सुख समये आव सजें बिलसये,
एतहुं कि सहये पराण ।।
कहइते राइक गर गर अन्तर ।
लोचन झर झर बारि ।
सब सहचरि गन कातर अन्तर,
मोहन सहइ न पार ।।

(पद कल्पतरु-२०२६)

द० श्री०

यदुनन्दनदास

यदुनन्दनदास का जन्म कटवा के पास मालिहाटि ग्राम में हुआ था। ये जाति के वैद्य थे। ये श्रीनिवास आचार्य के अनुचर थे और आचार्य कन्या हेमलता देवी से इन्होंने दीक्षा ली थी।

यदुनन्दनदास ने 'रस-कदम्ब' या 'राधाकृष्ण-लीलारस-कदम्ब', 'दानलीला-चन्द्रामृत' 'गोविन्द-विलास' तथा 'कृष्ण-कर्णामृत' की रचना की है। 'रसकदम्ब' रूपगोस्वामी कै 'विदग्ध-माधव', 'गोविन्द-विलास' कृष्णदास कविराज के 'गोविन्द-लीलामृत' तथा 'कृष्ण-कर्णामृत' विश्व मंगल के 'कृष्ण-कर्णामृत' काव्य का बंगला अनुवाद है। किन्तु ये सभी काव्य इतने साहित्यपूर्ण हैं कि केवल अनुवाद से नहीं लगते। इनके नाम से एक जीवनी-काव्य 'कर्णानन्दरस' भी मिलता है। इसकी रचना १६०८ ई० में हुई थी। अतः यही इनका उपस्थिति काल माना जाता है। इन्होंने वैष्णव-तत्त्व सम्बन्धी ग्रंथ 'हरिभक्ति-चन्द्रामृत' की भी रचना की थी। इनकी रचनाओं के कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं--

(१)

कृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन

सो बर बर-नागर राज ।
तपतनयातटे नीप-तरु-निकटे,
मिलन नटवरसाज ।।

मरकतरतन मुकुर जिनि लावणि,
प्रति तनु पिरीति पसार ।
शारद चांद-फांद मुखमण्डल,
कुण्डल श्रवणे बिहार ।।

नाचत भांग-मदन धनु भंगिम,
दिठि खंजन नट जोर ।
बान्धुलि-अधरे मुरली रव माधुरी,
ऊमतायल मन मोर ।।
ऊड़त चूड़े चारु शिखि चन्द्रक,
मन्द पवन सयें मेल ।
कहे जदुनन्दन श्रवण रसायन,
तनु मन सब हरि गेल ।।

(२)

इन्दीवर वर-उदरसहोदर-मेदुर मदहरदेह ।
जाम्बुनदमद-वृन्दविमोहित अम्बरवरपरिधेय ।।

सजनी के नव-नागर राज ।
मोहन मुरली-खुरलि-रुचिरानन दाहन-कुलवहोलाज ।।

मोतिम-सार हार उर अम्बर मखतर-दामक भान ।
करिकर-गरब-कवलकर सुन्दर सुबलन बाहु सुठाम ।।

मदगजराज-लाज गति मन्थर जग भरि भरइ अनंग ।
यदुनन्दन भन सो नन्दनन्दन चन्दन शीतल-अंग ।।

(३)

कृष्ण के मथुरा गमन की सूचना से आसन्न-विधुरा-राधिका की मनोव्यथा--

किये सखि चम्पक दाम बनायसि,
करइते रभस-बिहार ।
सो बर नागर याओब मधुपुर,
ब्रजपुर करि अन्धियार ।।
प्रियतम दाम आर हलधर,
ए सब सहचर साथ ।
शुनइते मूरछि पड़ल सोइ कामिनि,
कुलिश पड़ल जनु माथ ।।
क्षणे क्षणे उठत क्षणे क्षणे बइठत,
अवश कलेवर काँपि ।
मन यदुनन्दन शुनइते ऐछन,
कोरे नयन युग झांपि ।।

(पद-कल्पतरु, १६१२)

द० श्री०

यदुनन्दनदास (चक्रवर्ती)

यदुनन्दनदास चक्रवर्ती गदाधरदास (चैतन्य महाप्रभु के भक्त व शिष्य) के शिष्य थे। इन्हें नित्यानंद प्रभु का भी नैकट्य प्राप्त था। ये कटवा ग्राम के निवासी थे। इनकी जन्म-तिथि के विषय में निश्चित सूचना नहीं मिलती। उपलब्ध तथ्यों से इतना ही ज्ञात होता है कि इन्होंने सन् १५८३-८४ में एक वैष्णव-सम्मेलन किया था। 'गौर-पद-तरंगिणी' में इनके कृतित्त्व की प्रशंसा इस रूप में की गई है—

जे रचिल गौरांगेर अद्भुत चरित ।
द्रवे दारु पाषाण शुनिया जारगीत ।।

(गौर-पद तरंगिणी-उपक्रमणिका पृ० १५६ ।)

'इन्होंने गौरांग चरित का जिस निष्ठा के साथ वर्णन किया है, उसका श्रवण कर मनुष्य क्या, पाषाण तक द्रवित हो जाते हैं।' इनके अधिकांश पद चैतन्य विषयक हैं। प्रसंगवश इन्होंने अपने गुरु गदाधर का नामोल्लेख भी कहीं-कहीं किया है। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

(१)

गौर गदाधर दुहुँ तनु सुन्दर,
अपरुप प्रेम विचार ।
दुहुँ दुहुँ हरषे परसे यव विलसये,
अमिया बरसे अनिवार ।।
देख देख अपरुप दुहुँ जन नेह ।
के अछु भाव प्रेममय चातुरी ये,
निमजिया पाओब मेह ।।
करे करे नयने नयने जोइ माधुर,
सो सब बुझव की हाम ।
रूप हेरि तनु चमकित,
अखिल भुवने अनुपाम ।।
अमिया पुतली किये रसमय मूरति,
किए दुहुं प्रेम-आकार ।
हेरइते जग जन-तनु-मन भूलये,
यदु किये पाओब पार ।।

(पदकल्पतरु, २१८२)

यशोराज खान

यशोराज खान की गणना चैतन्य देव से पूर्व के कृष्ण-भक्तों में होती है। ये व्रजबुली के प्रथम कवि माने गए हैं। पीताम्बर दास कृत 'रसमंजरी' में एक पद इनके नाम से उद्धृत किया गया है जिससे पता चलता है कि ये गौड़ेश्वर हुसेन शाह के राज्यकाल (१४९३-१५१९ ई०) में मौजूद थे। 'रसमंजरी' से ही यह भी ज्ञात होता है कि इनका जन्म श्रीखण्ड के एक प्रतिष्ठित वैद्य परिवार में हुआ था। 'रसमंजरी' का वह पद जिसमें हुसेनशाह का उल्लेख है, इस प्रकार है।

श्रीयुत हसन जगत भूषन,
सोरह रस जान।
पंच गौड़ेश्वर भोग पुरन्दर,
भने यशोराज खान॥

गौड़ सुलतान हुसेन शाह का शासनकाल १४९३ से १५१९ ई० तक माना जाता है। इनके शासन-काल में वैष्णव भक्ति आन्दोलन पूर्ण विकास पर था और इन्होंने वैष्णव साहित्य के विकास में भी योगदान दिया था। यशोराज खान हुसेन शाह के उच्चपदस्थ कर्मचारियों में महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। गुणराज खान, सत्यराज खान के समान इनकी राज-सेवा से तुष्ट होकर इन्हें भी हुसेन शाह ने खां उपाधि से सम्मानित किया था। कुछ लोगों की धारणा है कि इनका मूल नाम पुरन्दर वसु था। यह भी पता चलता है कि इन्होंने 'कृष्ण-मंगल' अथवा 'कृष्ण-चरित' नामक काव्य की रचना की थी, किन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इनका भक्ति विषयक निम्नलिखित पद प्राप्त होता है—

एक पयोधरे चन्दन लेपित,
आरे सहजइ गोर।
द्विज धराधर कनक भूधर,
कोरे मिलता जोर।
माधव तुअ दरसन काजे।
आधर परचारि करत सुन्दरी,
बाहिर देहलि माझे॥

दहिन लोचन काजरे रंजित,
धवल रहल वाम।
नील धवल कमल जुगल,
चान्द पूजल काम॥

यशोराज खान का एक खण्डित पद 'रस-मंजरी' में संकलित है—

शुनि वेणु अपरुप-ध्वनी।
छुटल कुंजर गति बरज-रमनी॥
पदे हार परे केह करेते नपुर।
केह आध सीमन्ते लेइन सिन्दुर।

द० श्री०

रघुनाथदास (प्रथम)

रघुनाथदास वृन्दावन के षट्गोस्वामियों में परिगणित होते है। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय चैतन्य के पुरी लौटने के पश्चात् उनके संपर्क में व्यतीत किया था। ये कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता गोवर्द्धन हुगली जिलान्तर्गत सप्तग्राम के जमींदार थे। शान्तिपुर से रामकेलि की यात्रा में रघुनाथ दास ने चैतन्य देव के दर्शन किये थे। कलकत्ता के निकट पानीहाटी नामक स्थान पर इनकी भेंट नित्यानंद प्रभु से हुई थी। उनके संपर्क से इनकी आध्यात्मिक भावना और दृढ़ हो गई। कृष्णदास के अनुसार इन्होंने इन्द्र समान ऐश्वर्य और अप्सरा जैसी पत्नी का परित्याग करके सन्यास ग्रहण किया था। इन्होंने 'गौरांग-सत्व-कल्पतरु' में स्वयं स्वीकार किया है कि 'चैतन्यदेव ने मुझे सम्पत्ति-भोग और स्त्री-मोह से मुक्ति दिलाई।'

चैतन्य के आदेश से स्वरूप दामोदर ने इन्हें अध्यात्मवाद में दीक्षित किया। धर्म के प्रति इनकी आस्था और दृढ़ता को देखकर चैतन्य देव ने कहा था—'रघुनाथेर वैराग्य हय पाषाणेर रेखा' (अर्थात् रघुनाथ का वैराग्य पाषाण की रेखा है)। कवि

कर्णपूर कृत 'चैतन्य-चन्द्रोदय' के अनुसार रघुनाथ के दीक्षागुरु यदुनंद आचार्य थे। अपने कुछ पदों में इन्होंने रूप गोस्वामी के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया है।

चैतन्य महाप्रभु की मृत्यु के पश्चात् ये पुरी छोड़कर वृन्दावन चले गये। वहाँ इन्होंने रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी के सानिध्य में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। वृन्दावन में इन्होंने 'राधाकुण्ड' को अपना निवास-स्थान बनाया। चैतन्यदेव ने इन्हें गोवर्द्धनशील (कृष्ण का प्रतीक काला पत्थर) दिया था। इनके 'ब्रजनिवास' से ज्ञात होता है कि जीवन के उत्तरार्द्ध में ये अन्धे हो गये थे। इसी अवस्था में इन्होंने 'दानकेलि' की रचना की थी।

रघुनाथदास के बारे में यह उल्लेखनीय है कि जब इन्होंने किशोरावस्था में ही संसार त्यागने और सन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया तो चैतन्यदेव ने इन्हें रोका और कुछ दिन तक विषय-भोग करने का आदेश दिया—

स्थिर होया (होउया) घटे जाउ न हउ (होउ) बातुल।
क्रमे-क्रमे पार लोके भव-सिन्धु-कूल॥

मर्कटे वैराग्य ना कर लोके देखाइया।
यथा भोगे विषय पुंज अनासक्त होइया॥

अन्तरे निष्ठा कर बाह्य लोक व्यवहार।
अचिताते कृष्ण तोमार करिबेन उद्धार॥

(चैतन्य-चरितामृत)

महाप्रभु ने यह अनुभव किया था कि रघुनाथदास के हृदय में प्रबलवेग के साथ ईश्वर प्रेम का आविर्भाव हुआ है, किन्तु अभी वे अपरिपक्व हैं। महाप्रभु के आदेश से रघुनाथ जी गृहस्थ जीवन से अनुराग तो करने लगे किन्तु उनका मन नित्यानंद आदि वैष्णव भक्तों के सत्संग में ही रमता था। एक दिन प्रहेलिका की भाषा में नित्यानंद ने उनसे कहा—

चोरा दिली दरशन।
आर आउ आज तोरा करिब दंशन॥

रघुनाथ बाल आचरण से विषयी प्रतीत होते थे, किन्तु उनके अन्तर में शुद्ध वैष्णव भाव भरा हुआ था। इसी कारण नित्यानंद की भाषा में वे 'चोरा' थे। नित्यानंद ने कहा—'इस हेतु तुम्हें मैं दण्ड देता हूँ कि तुम सभी श्रेणियों के भक्तों को 'दहीचूड़ा' खिलाओ।' गंगातट पर इन्होंने ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर भक्तों को दही चूड़ा खिलाया। पानीहाटी में आज भी यह महोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है।

रघुनाथदास वैष्णव-शास्त्र में निष्णात होने के साथ-साथ रचनात्मक प्रतिभा के भी धनी थे। इनके स्तोत्र (संस्कृत) और कविताएँ वैष्णव समाज में प्रचलित हैं। 'विलाप-कुसुमांजलि,' 'प्रेमपरावधिस्तोत्र', 'मुक्ताचरित' इनकी विशिष्ट काव्य-कृतियाँ हैं। इनकी अधिकांश रचनाएं संस्कृत में हैं। इनके 'चैतन्य-शतक' में ९ पद और 'गौरांग शतक' में १२ पद संकलित हैं। दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

हात सकल संताप जनमको
मिटत तलप यम कालकी।
आरति किए मदन गोपाल की॥ ध्रु।

गो घृत रचित कपूरकि वाति,
झलकत कान्चन थार की।
घण्टा ताल मृदंग झांझरि,
राजत बेनु बिधान की॥

चन्द्रकोटि ज्योति भानु-कोटि छबि,
मुख शोभा नन्दलाल की।
मयूर मुकुट पिताम्बर शोहे,
उरे वैजन्ती माल की॥

चरन कमल बर नूपुर बाजे,
आज रि कुसुम गुलाब की।

सुन्दर लोल कपोलक छवि को,
निरखत मदन गोपाल की ॥
सुर नर मुनि गन करतहि आरति,
भक्त वत्सल प्रतिपाल की ।
हूँ बलि बलि 'रघुनाथदास' प्रभु,
मोहन गोकुल-बाल की ।

(२६६६ प० क० च० ख०, पृ० १७७)

(२)

राधावन्दना (बंगला)

चन्द्रवदनि धनि मृगनयनी ।
रूपे गुने अनुपमा रमनि मनी ॥
मधुरिम हासिनो कमल विकाशिनि,
मोतिन हारिनि कम्बु कण्ठिनी ॥
थिर सौदामिनि, मालति कान्चन जिनि,
तनु रुचि धारिनि, बचनी ।
उरज लम्बि बेनि मेरु पर येन फनि,
अभरन बहु मनि गजगमनी ॥
विना परिवादिनि चरने नूपुर ध्वनि,
रति रसे पुलकिनि जग मोहिनी ।
सिंह जिमि माझ खिनि ताहे मन किंकिनि,
झांपि उड़नि तनु पद अवनी ॥
वृषभानु-नन्दिनो, जगवन्दिनि,
दास रघुनाथ चहुं मन हारिनी ॥

(पदकल्पतरु, २४६७, च० ख०, ३०)
द० श्री०

रघुनाथदास (द्वितीय)

रघुनाथ दास (द्वितीय) के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। इनका एक पद 'बृहत् भक्ति-तत्व-सार' में संकलित है, जो इस प्रकार है—

भावेर भूषण रूप ।
वृन्दावन गुण नाम विलास ।
वर्ण गौर षड अभिलाष ।
वैयासकी सम श्री श्रीनिवास ।
विरचित लीला गुण विलास ॥

बाहु विशाल कहि देहअ फोरा ।
बालक केलि करत चहुं ओरा ॥

बाउल सब जन रोदन हास ।
बंचित भेला तहि रघुनाथ दास ॥

द० श्री०

रघुनाथदास भट्ट

रघुनाथदास भट्ट की गणना वृन्दावन के षट् गोस्वामियों में होती है। इनका जन्म शक संवत् १४२८ में एवं मृत्यु सं. १५०६ में हुई थी। इनके पिता तपन मित्र चैतन्य देव के शिष्य थे। जीवन के उत्तरार्द्ध में तपन मित्र अपनी स्त्री और पुत्र के साथ काशीवास करने लगे थे। वृन्दावन की यात्रा के क्रम में वहाँ जाते हुए और वहाँ से लौटते हुए चैतन्यदेव ने इनके गृह में भिक्षा ग्रहण की थी। कुशल सूपकार के रूप में ख्यात रघुनाथ भट्ट को बाल्यकाल से ही चैतन्यदेव का सम्पर्क प्राप्त हो गया था। युवा होने पर गृहत्याग करके ये नीलाचल पर्वत पर चैतन्य के संरक्षण में रहने लगे। किन्तु आठ मास के बाद महाप्रभु ने इन्हें माता-पिता की सेवा का आदेश देकर काशी भेज दिया। महाप्रभु का आदेश मानकर ये माता-पिता की सेवा करने लगे। उससे जो समय बचता उसे ये वैष्णवों की सभा में बैठकर भागवत पाठ में व्यतीत करते थे। चार वर्षों के बाद इनके माता-पिता का देहान्त हो गया। इस समय तक ये भागवत में निष्णात हो गये थे। अतः नीलाचल पर जाकर ये पुनः महाप्रभु की सेवा में तल्लीन हो गये। आठ मास की सेवा के बाद महाप्रभु ने इन्हें वृन्दावन जाने का आदेश दिया। वृन्दावन में ये 'दास-गोस्वामी' के नाम से विख्यात थे। पदावली के के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत में 'स्तवावली', 'विलास-कुसुमाञ्जलि', 'दानचरित' व 'मुक्ताचरित' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया था—

आमार आज्ञाय रघुनाथ जाय वृन्दावन ।
ताँहाँ जाहू जाहां रह रूप सनातन ।।

भागवत पड़ (पड़) सदा रमइ कृष्ण नाम ।
अचिरे करिबे कृपा कृष्ण भगवान ।।

(चैतन्य चरितामृत)

प्राचीन पदकर्त्ता राधावल्लभ ने अपने एक पद में 'दास-गोस्वामी' के चरित का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें इनके 'वृन्दावन-वास' की कहानी भी वर्णित है ।

(पद कल्पतरु २२७० संख्यक पद)

द० श्री०

रसिक दास (रसिकानंददास)

रसिकदास दलभूमि के शयमी ग्राम के निवासी थे। 'पद-कल्पतरु' में इनका एक पद 'रसिकानंद' नाम से और एक (ब्रजबुली में रचित) 'रसिक दास' नाम से संकलित है। 'गौरपद-तरंगिणी' में रसिकदास तथा रसिकानंद नाम से तीन पद संकलित हैं। ऐसा लगता है कि ये सभी पद एक ही व्यक्ति रसिकानंद या रसिकदास के हैं। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कोई जानकारी नहीं मिलती। रसिकानन्द श्रीनिवासाचार्य के भक्त-मित्र श्यामानन्द के शिष्य थे। इनके पिता का नाम अच्युतानन्द और पत्नी का नाम मालती था (प्रेम विलास–२०)। दक्षिण-पश्चिमी बंगाल में वैष्णवधर्म के प्रचार में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने 'खेतुरी-उत्सव' में भी भाग लिया था। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं।

(१)

ब्रजबुली

ना कह रे सखि उहार कथा ।
द्विगुण हृदय ना देह व्यथा ।।

यइछन चतुर शयेर पहूँ ।
तइछन ताहार दूती से तुहूँ ।।

निकुन्जे हृदये धरल ये ।
ताहारे ना कह सेवक से ।।

सोइ कलावती निवसे याहां ।
तुरिते गमन करह तहां ।।

एमति ताहारे साधह याइ ।
ये सुख पा ओवि अवधि नाइ ।।

पुन ना आसिह आमार पाश ।
शुनिया चलह रसिक दास ।।

(पदकल्पतरु, ५४)

(२)

कहे मधुशील, आमि कि दुःशील कि कर्म करिनू आमि ।
मस्तक धरिनू, पदना सेवितू, पाइया गोलोक स्वामी ।।
जे पदे उद्घव, पतित पावनी, ताहा ना परश होल ।
माथे दिनु हात, केन वज्राघात, मोर पाप माथे नेल ।।
ये चांचर चूल, हेरिया आकूल, हरत रवनी मन ।
हेनू अपराधो, पाषाने प्रान बांधि केम वा केनु मुण्डन ।
नापित व्यवसाय, आर नाकरिव, फेलिनू ए क्षुर जाने ।
प्रभु सञ्जे जाब, खाईब, रसिक आनन्द बाने ।।

(पदकल्पतरु, २४०)

द० श्री०

राघवेन्द्रराय

वैष्णव भक्तों की तालिका में राघवेन्द्र राय का उल्लेख मिलता है। प्रेमविलास (२०) के अनुसार ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। ये १५८३ ई० में विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। वैष्णव भक्तों के अप्रकाशित पदों की पाण्डुलिपि में राघवेन्द्र राय नाम से एक पद मिला है। वह नीचे दिया जा रहा है—

तोमा ना छाड़िब बन्धु तोमा ना छाड़िब ।
बिरले पाजाछि हिया माझेर राखिब ।।
राति गइ लांग दीन बन्धु, दिन काइलांग राति ।
भुवन भरिया रहिल तोमार खेआति ।।
घर कइलांग वन बन्धु ! वन कइलांग घर ।
पर कइलांग आपुसि हइलांग पर ।।

सकल तेजिआ, दूरे ताएँ शरन।
राय राघवेन्द कहे, कहे मे रंगाचरन॥

(हि० व्र० लि० पृ० १०८ पाण्डु सं० २४१६)

'हे प्रिय सखा! मैं तुझे छोड़ूंगी नहीं, नहीं छोड़ूंगी, एकान्त क्षण में मैंने तुम्हें प्राप्त किया है, तुम्हें अपने हृदय में छिपाकर रखूंगी (तुम्हें प्राप्त करने के लिए) मैंने रात्रि को दिन और दिन को रात्रिवत् मान लिया था। घर को अरण्य कर दिया था (गृह मेरे लिए निर्जन समान हो गया था) और अरण्य को घर मान लिया था (बन में वास करने लगी थी गृह वास त्यागकर वनवासिनी हो गई थी।) पराये अपने हो गये थे और अपने पराये हो गये थे। मैंने सब का परित्याग कर दिया था। मैंने तुम्हारे अरुण चरणों की शरण ग्रहण कर ली है। ऐसी उक्ति राय राघवेन्द्र की है।'

द० श्री०

राधादास

राधादास का उल्लेख केवल 'रस मन्जरी' (पीताम्बर दास रचित) में मिलता है। ये १६५० ई० में विद्यमान थे। जगन्नाथ दास संकिलित 'रास पंचाध्यायी' नामक संग्रह में इनके अधिकांश पद (लगभग १८ पद) संकलित हैं। इन पदों में राधा-कृष्ण की रास-लीला का वर्णन है। इसे 'अष्टादश पदावली' कहते हैं। इस काव्य में भक्त कवि ने भागवत की कथा का अनुसरण किया है। इनके अधिकांश पद बंगला भाषा में रचित हैं, 'व्रजबुली' में केवल दो-एक पद ही उपलब्ध हैं। यहाँ इनके दो पद दिये जा रहे हैं—

(१)

बंगला पद

शुनिया कानुर कटु कातर कामिनि।
हैंट मुख हइया सब लेवैन घरणी॥

पुन पुन नयाने बचन धरि धरि।
प्राण हरिल आगे भो-रूप माधुरी॥

पुन मुरलीर स्वरे आनिल टानिया
ए बेसे धरम पथ देह बुझाइया॥

पति कुल सती जती जीवने।
ब्रजवधू संपियाछे औ रंगा चरणे॥

स्त्रो बध पातके हैतोमार नाहि भय।
पूतना-आबला कले बध महाशय॥

गोपिका बधिले एवै पुरिवेक साध।
विष मिशाइया पुर मुरलीर नाद॥

ये होक से होक गोपी तोमार चरणे।
राधादास कहे निलुं अभय शरणे॥

(२)

ब्रजबुली पद

सुख वृन्दा विपिने
बिहरे माधव।
चारु ·· ········ ॥
बन्ध निबिड़
कूजित कण्डतोषि रति पति,
वेश भूषण प्रवीण कामिनी,
अधिक गौरव गुप्त कानने,
सुखमश्र मधुर यामिनी।
गण चुम्बन, मुन्चत अन्चल,
निनाद सुमधुर।
अंगेर बसति,
केश विवलित,
कानु निज करे,
गर्वें गर्वें गर्वंति गर्वंती।
कानु गोपिनी।
रास रभस रंगिया।
वृन्दा रोहिनी संगिया॥
उरज महिया भातिया।
माल तोड़ल छातिया॥
बलया नूपुर,
वृन्दा निशि रस रंजिया॥

द० श्री०

राधा मोहनठाकुर

राधा मोहन श्रीनिवासाचार्य के प्रपौत्र थे। इनका जन्म कटवा के निकटवर्ती मालीहाटी नामक ग्राम में सन् १६९९ ई० तथा निधन १७७८ ई० में हुआ था। राधामोहन ठाकुर अपने समकालीन वैष्णव आचार्यों में सर्वोपरि थे। इनकी युवावस्था में ही वैष्णव समाज दो शाखाओं में विभक्त हो गया था। एक वर्ग राधा की उपासना स्वकीया भाव से करने का पक्षधर था, दूसरा परकीया भाव से। इस समस्या के समाधान तथा वैष्णव-भक्तों में एकता के संरक्षण की भावना से तद्‌युगीन प्रमुख आचार्यों की संगोष्ठी आयोजित हुई। राधा मोहन ठाकुर 'परकीया' भाव के पक्षधर थे और इस संगोष्ठी में अपनी मान्यताओं को इन्होंने तर्क-संगत रूप में प्रस्तुत किया था। सम्पूर्ण वैष्णव समाज ने इनके निष्कर्ष को मान्यता दी। इसकी पुष्टि प्रमाणपत्र द्वारा की गई और मुर्शिद कुली खाँ के न्यायालय में १७ फाल्गुन (बं० सं० ११२५) मार्च १७३८ को इस पत्र की रजिस्ट्री हुई।

राधा मोहन ने 'पदामृत-समुद्र' शीर्षक वैष्णव-पदों का संकलन किया है, जिसमें ७३० वैष्णव पद संकलित हैं। इनमें १८५ पद स्वयं राधा मोहन दास के हैं। इनमें २३ पद बंगला के और ५ छन्द संस्कृत के हैं। इस संग्रह की 'महाभावानुसारिणी' शीर्षक से इन्होंने एक संस्कृत टीका भी लिखी है। (पद कल्पतरु ६८) इनके कुछ पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

अभिनव जलधर रुचिर सुदेह।
पीताम्बर बर तड़ित-थिर रेह॥
जय जय गोविन्द गोकुल भागि।
ब्रज-नव रमणि याक मन लागि॥
कत-कोटि चांद जिनय बर मुख।
याकर दरशे निरप सब दुख॥
निरुपम रूप जलधि अवतार।
राधा मोहन-पहु मूरति सिंगार॥

(पद-कल्पतरु, २४१९)

(२)

आजु हाम कि पैखूलं नवद्वीप चन्द।
करतल करइ वयन अवलम्ब॥

पुन पुन गतागति करु घर पन्थ।
खेने खेने फूलवने चलइ एकान्त॥

छल छल नयन-कमल सुविलास।
नव नव भाव करत परकाश॥

पुलक मुकुलवर भरु सब देह।
राधा मोहन कछु ना पायल खेह॥

(पद-कल्पतरु, ६८)

(३)

जय जय सुन्दर श्याम।
जलधर रुचिर रुचिरानन शोहन,
मोहन कत कोटि काम॥ धु।

पुनमिक चान्द कान्द मुख मण्डल,
कुण्डल श्रवन बिलास।
ब्रज-जन भाव विभावित अन्तर,
मन्थर मन्थर हास॥

केलि-कला गुरु अन्तर-अन्तरु,
गति अनि वारन-वार॥

राधा सोहन रमनि जन मोहन,
यौवन प्रेम विखार (विचार)।
राधा रास रसिक वर शेखर,
शेखर जन मन जान।
राधा मोहन, मोहन बन्धुक,
निन्दुक पद-तल मान॥

(पदकल्पतरु-श्रीकृष्णेर रूप, २४३८)

द० श्री०

राधारमण घोष

श्रीराधारमण घोष ढाका के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीकृष्ण गोविन्द घोष था।

बी० ए० पास करने के बाद ये महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के स्टेट के प्रधान कार्याध्यक्ष के पद पर नियुक्त

हुए। कुछ दिन बाद ये त्रिपुराधिपति श्री वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये। महाराज वीरचन्द्र गौर भक्त थे। राजकार्य में व्यस्त रहते हुए भी यथासम्भव वे भजन किया करते थे। राधारमण घोष वैष्णव विचारधारा के नहीं थे। किन्तु एक घटना ने उन्हें परम वैष्णव बना दिया।

महाराज वीरचन्द्र प्रायः वृन्दावन जाया करते थे। वहाँ अपने कुञ्ज में रहकर वैष्णव संग किया करते थे। एक दिन कुञ्ज की दूसरी मंजिल के एक कमरे में मित्रों के साथ बैठे थे। बाहर बरामदे में बहुत-सा सामान बिखरा पड़ा था। उसमें एक बहुमूल्य शाल भी था। सामने पेड़ पर बैठे एक बन्दर की दृष्टि शाल पर पड़ी। वह कूद कर आया और शाल लेकर पेड़ पर चढ़ गया। लोगों ने शाल छुड़ा लेने की बहुत चेष्टा की, पर वे सफल नहीं हुए। शोर गुल सुनकर महाराज वीरचन्द्र बाहर चले आये। वे चुपचाप खड़े बन्दर की ओर देखते रहे। बन्दर एक बार वीरचन्द्र की ओर देखता और फिर शाल को अपने पैने दाँतों से चीरता जाता। राजा शान्त, निस्तब्ध और निरुद्विग्न भाव से उसे देख रहे थे। उनका प्रशान्त वदन प्रेमाश्रुओं से सिक्त हो रहा था।

घोष महोदय के मन में इस घटना ने अपूर्व हलचल पैदा कर दी। संध्या समय जब महाराज अकेले थे तो उनके कमरे में गये और शाल नष्ट होने की घटना के लिए महाराज से क्षमा माँगी। पर साथ ही उनसे निरुद्विग्न, शांत तथा प्रसन्न मन रहने का कारण पूछा।

महाराज हँसते हुए बोले—"राधारमण! यह बन्दर नहीं, बन्दर के रूप में एक महापुरुष थे, जो कृपा करके आये और मुझे शिक्षा दे गये। वृन्दावन में निष्किंचन भाव से आना ही लाभप्रद है। मैं आया राजसी ठाट-बाट से, विषय भोग की सामग्री का ढेर साथ लेकर। शाल के टुकड़े कर बन्दर ने मुझे सावधान कर दिया।

घोष महोदय यह सुनकर अवाक् रह गये! उनके हृदय में एक भाव तरंग-उमड़ पड़ी। सारा शरीर पुलकित हो गया। महाराज ने उपयुक्त अवसर जानकर कहा—'राधारमण! प्रकृत वैष्णव होना बहुत कठिन है। वैष्णव धर्म का प्राण हैं दीनता। गौरांग की कृपा भी दीनों पर ही होती है।" घोष महोदय कुछ न बोले। वे चुपचाप उठकर चले गये और एकांत स्थान में जा बैठे। घोष महोदय अब पहले के नहीं रहे। ये जितने दिन वृन्दावन रहे वहाँ के निर्जन प्रान्तों में भ्रमण करने में या साधु वैष्णवों का संग करने में समय व्यतीत करते रहे।

एक दिन जब ये किसी निर्जन स्थान में भ्रमण कर रहे थे, उन्हें एक अकिंचन वैष्णव के दर्शन हुए। वे वैष्णव एक तमाल वृक्ष के नीचे आसन लगाकर वृक्ष की ओर मुंह करके श्रीमद्भागवत का पाठ कर रहे थे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल रहे थे। घोष महाशय उन महापुरुष के पीछे बैठकर चुपचाप पाठ सुनने लगे। पाठ समाप्त होते ही महापुरुष के बिना जाने वे चुपचाप उठकर चले गये। उन्होंने अनेक बार भागवत पाठ सुना था, पर टीका के साथ ऐसा सर्वांग सुन्दर और भावपूर्ण पाठ उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था।

दूसरे दिन भी उसी समय वे उस स्थान पर गये और उसी प्रकार पाठ सुनकर चले आये। यह क्रम कुछ दिन तक ऐसे ही चलता रहा। एक दिन किसी प्रकार महापुरुष की दृष्टि उन पर पड़ गयी। उन्होंने आदरपूर्वक इन्हें अपने निकट बैठाया और ग्रंथ की समाप्ति तक प्रतिदिन पाठ सुनने को कहा। घोष महोदय उस दिन से उनके निकट बैठकर पाठ सुनने लगे। पाठ के अंतिम दिन एक अपूर्व घटना घटी। तमाल वृक्ष का तना फट गया। उसके भीतर एक अपूर्व इन्द्र नीलमणि द्युति के बीच द्विभुज मुरलीधर श्री श्यामसुन्दर के दर्शन हुए। दर्शन करते ही घोष महोदय मूर्छित हो गये। मूर्छा भंग होने पर उन्होंने देखा कि वे उस तमाल के नीचे महापुरुष की गोद में

सिर रखे लेटे हैं। बाह्य ज्ञान होते ही वे उठ बैठे और प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक महापुरुष को प्रणाम किया। महापुरुष ने स्नेह से सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'राधारमण! तुम्हें मेरे राधारमण ने कृपाकर साक्षात् दर्शन दिये हैं। मेरा आदेश है, तुम नित्य भागवत पाठ किया करना। पाठ सुनाना भागवत रूपी श्रीकृष्ण को ही।'

उस दिन से घोष महाशय अपने घर या एकान्त में किसी वृक्ष के नीचे बैठकर भागवत पाठ द्वारा भागवत रूपी कृष्ण की सेवा करते। कभी अकेले होते, कभी पाँच-सात अंतरंग भक्त उनके समीप होते। उनके पाठ में अमृत की वर्षा होती। उनके भक्त डॉक्टर श्रीसत्यनारायण दास कहा करते थे कि पाठ के समय उनमें जीव गोस्वामी का आवेश होता था।

बाद में घोष महोदय के प्रयत्न से तथा वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर के आर्थिक सहयोग से श्री रामनारायण विद्यारत्न द्वारा श्रीमद्भागवत की चार टीका और अनुवाद सहित बरहमपुर वाला संस्करण और अन्यान्य बहुत से वैष्णव ग्रंथ प्रकाशित हुए।

स० गु०

राधा वल्लभ चक्रवर्ती

राधा वल्लभ चक्रवर्ती श्रीनिवासाचार्य के शिष्य थे। इनके विषय में अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। 'रसकल्पवल्ली' में इनके नाम से जो पद संकलित हैं, वे 'ब्रजबुली' में हैं। उन्हीं में से इनके दो पद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

प्रेमासक्त श्रीकृष्ण

सजनि, अपरुप पेखलूं बाला।
हिमकर मदन मिलित मुख मण्डल,
तापर जलधर माला॥
चञ्चल नयने हेरि मुझे सुन्दरी,
मुचकाइय फिरि गेल।
तेखने मरमें मदन ज्वर उपजल,
जीवइते संशय भेल॥

अहनिशि शयने सपने आन ना हेरिये,
अनुखन सोइ धेयान।
ताकार पिरीति कि रीति नाहि समुझिये,
आकुल अथिर परान॥

मरमक वेदन तोहे परकाशल,
तुहुं अति चतुरी सुजान।
सोपुन मधुर मूरति दरशायबि,
राधावल्लभ गान॥

(पदकल्पतरु, ११६)

(२)

कृष्ण की दूती का राधा के पास गमन

सुन्दरि सुबदनि, तुहुं अगेयान।
गिरिधर पुरुख तरुण नव केशोर,
अनुखनि तोहारि धेयान॥

यछु मुख कोटि शरद शशि लावणि,
सो तुया दरशन आशे।
यछु गुण अखिल भुवन करु कीर्त्तन,
तुया गुणे तछु मन भोर।
को बिहि अपरुप तोहे निरमायल,
श्याम हृदय मणि चोर॥

सुपुरुख पिरीति-अमिया सुख सागर,
अतये करणि अवगाह।
ताकर बचने जीउ निरभन्जह,
लाज धरम गेह नाह॥

सो सुकुमार-हृदय भेल आकुल,
मीलत ताहे अधि साधे।
कह राधावल्लभ यवहुं ना मीलहु,
प्रेम करब परमोद॥

(पदमंजरी-१२४)

द० श्री०

राधाबल्लभ दास (मंडल)

राधाबल्लभ दास मंडल कान्चन गढ़िया के निवासी थे। इनके पिता सुधाकर मण्डल परम वैष्णव थे और इनकी माता श्याम-प्रिया-दासी प्रकृति से परमसाध्वी थीं। यह दम्पती श्री निवासदास का शिष्य था। 'कर्णानन्द' में इस दम्पती और राधाबल्लभ दास का उल्लेख आया है—

सुधाकर मण्डल भ्रभर भृत्य एक जन।
तार स्त्री श्याम प्रिया कृपार भाजन॥

तार पुत्र राधाबल्लभ मण्डल सुचरित्र।
हरि नाम बिना जार नाहि आर कृत्य॥

माता-पिता की प्रेरणा से राधाबल्लभ दास ने श्रीनिवास आचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। 'प्रेम-विलास' में इन्हें आचार्य श्रीनिवास दास की शाखा का परम वैष्णव कहा गया है—

सुधाकर मण्डल श्याम प्रिया पत्नी मह।
श्रीनिवास आचार्य ताहें केला अनुग्रह॥

तार पुत्र राधा बल्लभ, कामदेव गोपाल।
आचार्येर शाखा हय परम दयाल॥

राधाबल्लभ दास उच्च कोटि के वैष्णव और तत्त्वदर्शी थे। इन्होंने रघुनाथ गोस्वामी कृत संस्कृत ग्रन्थ 'विलास-कुसुमान्जलि' का बंगला में अनुवाद किया था और 'सहजतत्व' नामक एक ग्रन्थ की रचना भी की थी। इन्होंने 'बंगला' और 'ब्रजबुली' दोनों भाषाओं में पद रचे हैं। लोचनदास कृत 'धमाली-पद' के अनुकरण पर इन्होंने कुछ पद लिखे हैं जिनसे इन्हें विशेष ख्याति मिली है। इनके कुछ पद यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं—

मन मोहनिया गोरा भुवन मोहनिया।
हसिया छटो चांदेर घटो वरिखे अमिया॥

रूपेर छटो युवती घटो बुक भरिते जाय।
मन गरबेरमान-घर भांगिले मदन राय॥

रंगिल पाटेर डोर दुइ दिगे सोनार नुपुर पाय।
झुनुर झुनुर बाजि पाछे ठमके ताय॥

मालती फूले, भ्रमर बुले, नव लौटनेर दाये।
कुल कामिनीर कूल मंजिल गीम दोलनीय डामे॥

आखिर हारे प्रोनेते मारे कहिते सहिते नारि।
राधाबल्लभ दासे कय मन करिले चूरि॥
(पदकल्पतरु, सं० २१४२)

गंगार घाटे, जाइते वाटे भेटिनू नागर गोरा।
शून्य गेहे आइनू गेहि, परान हेया हारा॥

तेरछ दिठि, बचन मिठि ईषत बासिर घटो।
ता देवरिया परान निया, घरे फिरुरे केटो॥

मन छन् छन्, प्रान छन छन परान दिया परे।
आध कपाले माथार विषे रेतो नारि घरे॥

एमन बेदनि, थाके सजनि, गोर वैद्य डाके।
पाइले एथा, माथार व्यथा, कारकत क्षण थाके॥

सुनिते ब्रजे, गोपी समाजे डाकाति करित काला।
सेई नाकिलो नद्याय एलो हेया शचीर बाला॥

दिन दुपुरे, डाकाति करे, भूचके हासि हेमे।
नयान बाने, बधे प्राने, कूल मान जाय भेसे॥

राधाबल्लभ कय आर छाड़ा नय युक्ति शुन दिदि।
मदन राजाय, जानाउ राय कूल राखिबे जदि॥
(पद गो० प० त०, पृ० ११५)

द० श्री०

राधाबल्लभ दास ठाकुर

'कर्णानन्द' ग्रन्थ में राधाबल्लभ दास ठाकुर का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

श्री राधाबल्लभ दास प्रभूर सेवक।
महा भागवत तिहों भजन अनेक॥

राधाबल्लभ दास ठाकुर उदार।
प्रभुर चरन धन्य अन्तरे यां हार॥

इससे पता चलता है कि ये महाप्रभु के सेवक और अपने समय के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे।

द० श्री०

राधाबल्लभ दास मथुरादास

'राधाबल्लभ दास मथुरादास का उल्लेख 'कर्णानंद' में अत्यंत संक्षिप्तरूप में मिलता है जिससे इनके जीवन तथा कृतित्त्व पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

द० श्री०

रामकृष्णदास

श्री रामकृष्णदास का जन्म पूर्वी बंगाल के यशोहर जिले के पास सन् १९११ ई० में हुआ था। इनके माता-पिता निताई गौर के उपासक थे। बाल्यावस्था से ही इन पर घर के वातावरण का प्रभाव पड़ा। इण्टर की परीक्षा पास करने के बाद ही इन्होंने घर छोड़ दिया और कलकत्ते चले गये। वहाँ पाटबाड़ी के प्रसिद्ध सन्त श्रीरामदास से इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। कुछ दिनों तक उनकी सेवा करते रहे फिर उन्हीं की आज्ञा से काशी चले गये। काशी में इन्होंने 'श्री हरिनामामृत व्याकरण', 'व्याकरण कौमुदी', 'श्रीमद्भागवत-भक्ति' 'रसामृत' 'सिन्धु-उज्ज्वल नीलमणि' 'षट्सन्दर्भ' जैसे अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वहाँ से ये वृन्दावन गये और गोविन्द कुण्ड के बाबा श्री रजनीदास से संन्यास वेश ले लिया फिर मथेरा चले गये। वहाँ पं० खुबीराम जी की बगीची में रहकर भजन करने लगे। ये राधा-कृष्ण की याद में रोते-रोते अपनी दृष्टिशक्ति खो बैठे थे। इसीलिए ये सूरदास बाबा के नाम से भी जाने जाते थे। अपने अन्धेपन को ये प्रभु की विशेष कृपा मानते थे। जिन चक्षुओं से प्रभु को देखा जाता है, वे तो इनके पास थे ही, बाह्य चक्षुओं की इन्हें आवश्यकता ही क्या थी? अन्धे होने के बाद ये वृन्दावन में गोविन्ददेव के मन्दिर में उनका दर्शन करने गये। मन्दिर के प्रांगण में पहुँचते ही गोविन्द देव को देख 'हा गोविन्द!' कहकर मूर्च्छित हो गिर पड़े। कहते हैं, वहीं इन्हें निताई-गौर और राधा-गोविन्द के दर्शन हुए। मार्च सन् १९८२ ई० में बाबा अस्वस्थ हुए। इस स्थिति में इनकी सेवा श्री शिव-चरण वार्ष्णेय, बाबा विश्वरूपदास जी तथा श्री मदन बाबा ने की। ये कुछ ठीक हुए. लेकिन अस्वस्थ बने ही रहे। १३ मई १९८४ को त्रयोदशी के दिन वार्ष्णेय जी से बाबा ने वृन्दावन पहुँचाने को कहा। वृन्दावन में गुरुस्थान जाकर बाबा ने चल रहे अखण्ड हरिनाम कीर्तन में पद्मासन लगाया। नृसिंह चतुर्दशी की पुण्यतिथि के लगते ही इन्होंने 'जय-निताई', 'जय राधे' का उद्घोष किया और उसी के साथ अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

मु० अ०

रामचन्द्र कविराज

श्रीरामचन्द्र कविराज की गणना अष्ट कवि राजाओं के अन्तर्गत की जाती है। इनके पिता का नाम चिरंजीव सेन और माता का नाम सुनन्दा था। ये पद्मा नदी के तट पर स्थित कुमार नगर अथवा तिलिया बुधरी के निवासी थे। माता सुनन्दा अपने समय की बंगाल की सर्वोत्तम संस्कृत कवयित्री थीं। वे वर्द्धमान के श्रीखण्ड अंचल के दामोदर की पुत्री थीं। उनका समय १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध (१५३७ ई० के लगभग) स्वीकार किया गया है।

ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य, गोविन्द कविराज के ज्येष्ठ भ्राता और नरोत्तमदास के अभिन्न सखा थे। इनका जन्म १५३७-१६१३ ई० के मध्य अनुमानित किया जाता है। इन्होंने अपने 'प्रेमविलास' ग्रन्थ में निम्नलिखित शब्दों में आत्म-परिचय दिया है—

रामचन्द्र नाम मोर अम्वष्ट कुले जन्म।
केवल लालसा प्रभुर चरणे दर्शन॥
तिलिया-बुधरी ग्रामेर मोर जन्म छेय।
पितार नाम चिरंजीव सेन महाशय॥
कनिष्ठ भ्रातार नाम हय श्री गोविन्द।
एकोदरे दुह भाइ परम स्वच्छन्द॥

रामचन्द्र कविराज नरोत्तम के परम सुहृद सखा थे। इनके विषय में अनेक कथायें प्रचलित हैं। इनका

व्यक्तित्व उदात्त और गौरव मण्डित था। ये लोक विख्यात संस्कृत के आचार्य, कुशल चिकित्सक और परम वैष्णव थे। ये कृष्ण के आराधक और श्री चैतन्य के प्रति आस्थावान थे। वैष्णव धर्म में इनकी अटूट आस्था थी। इस धर्म के प्रति इनमें प्रगाढ़ श्रद्धा और आस्था किस प्रकार अंकुरित हुई, इस विषय में एक रुचिकर घटना का विवरण 'प्रेम-विलास' नामक ग्रन्थ में मिलता है। कथा इस प्रकार वर्णित है—

रामचन्द्र कविराज वरयात्रियों के साथ उल्लासपूर्ण मुद्रा में पालकी में बैठे वधू ग्राम की यात्रा कर रहे थे। दैव योग से उस समय वर्द्धमान के निकट याजिग्राम में ही श्री निवासदास उपस्थित थे। उनके साथउनके शिष्य विष्णुपुर के राजा भी थे। श्रीनिवास दास की दृष्टि पालकी में वैठे श्रीरामचन्द्र कविराज पर पड़ी। विवाह के दो दिवसों के उपरान्त रामचन्द्र कविराज और श्री निवास दास का मिलन हुआ। इन लोगों के बीच काव्य शास्त्र और व्याकरण-विषयक चर्चा आरम्भ हुई। परस्पर तर्क-वितर्क हुआ। प्रातः से सन्ध्या तक उसका क्रम चलता रहा, दूसरे दिन भी यही क्रम चला। श्रीनिवासदास ने इस नवयुवक की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए कहा, 'भक्ति-भाव और उसके स्वरूप से अपरिचित रहने पर समस्त ज्ञान-विज्ञान महत्वहीन हैं।' इस कथन का आशय और उसकी सत्यता का इनमें जब स्फुरण हुआ तब इन्हें अपने ज्ञान की लघुता और उसकी सीमा का वोध हुआ। तत्पश्चात् श्रीनिवास आचार्य के निकट रहकर इन्होंने रूप सनातन और अन्य गोस्वामियों की वैष्णव धर्म एवं दर्शन विषयक रचनाओं का अध्ययन किया। इससे ये चैतन्य व्याख्यायित वैष्णव भक्ति और दर्शन में निष्णात हो गए। (सन्दर्भ-कर्णानन्द १६वीं शताब्दी)।

रामचन्द्र ने श्रीनिवास को अपना गुरु स्वीकार किया है। कालांतर संसार त्यागकर ये श्री नरोत्तम के साथ खेतुरी के मन्दिर में पूजन-आराधन में संलग्न रहने लगे। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

पहूँ मोर गोरांग राय।
शिव शुक विरन्चि यार महिमा गुन गाय॥ ध्रु०

कमला याहार भावे सदाइ आकुलि।
सेइ पहुँ वाह तुलि कांदे हरि बलि॥

जे अंगनेहारि अनङ भेल काम।
सो भव कीर्तन धूलि धूसर अविराम॥

खेने राधा राधा वलि उठे चमकिया।
गदाधर नरहरि उठे मुख चाइंआ॥

पुरुष निबिड़ प्रेम पुलकित अंग।
रामचन्द्र कहे ना बुझेउ नारंग॥

(गौ० प० त० १७३)

द० श्री०

रामचन्द्र गोस्वामी (रामाइ)

रामचन्द्र गोस्वामी चैतन्य दास के पुत्र तथा वंशीवदन ठाकुर के पौत्र थे। इनका जन्म शाके १४५६ में और तिरोधाम शाके १५०६ में हुआ था। ये वाघनाड़ा ग्राम के निवासी थे। अपने ग्राम में ही इन्होंने श्रीपाट की स्थापना की थी। इनके तिरोधान की स्मृति में आज भी प्रत्येक वर्ष बाघनाड़ा में एक वैष्णव मेला लगता है। जाह्नवी ठाकुरानी ने इन्हें स्वपुत्र के रूप में ग्रहण करके वैष्णव मत में दीक्षित किया था। इनके विषय में देवकीनन्दन की निम्नलिखित उक्ति उल्लेखनीय है—

जाह्नवीर प्रिय बन्दों रामाइ गोसाइ।
जे आनिले गौड़ देशे कनाइ बलाइ॥
येच्छेर वीरभद्र जनि तेछे श्रीरमाइ।
जाह्नवीर मातार आज्ञा इथे आन नाइ॥

(वैष्णव वन्दना)

इन्होंने निम्नांकित ग्रन्थों की रचना की है—

(क) 'अनंग-मञ्जरी-सम्पुटिका' (ख) 'पाखण्ड-दलन' (ग) कड़चा

इन्होंने पदों की भी रचना की है, परन्तु 'पदकल्पतरु' में जो पद (२०६४, २१८६) संकलित हैं उनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि ये रामचन्द्र कविराज-रचित हैं अथवा रामचन्द्र गोस्वामी रचित। यहाँ इनके दो पद दिये जा रहे हैं—

(१)

आक्षेप अनुराग

काहारे कहिव मनेर कथा,
केवा जाय परतीत।
हियार माझेर मरमवेदन,
सदाइ चमके चीत॥

गुरु जन आगे बसिते ना पाइ,
सदा छल-छल आँखि।
पुलके आकुल दिगनिहारिते,
सब श्याममय देखि।
सखीर संगे, यदि जलेरे जाइ
से कथा कहिल नय।
यमुनार जल, मुकुत कबरी,
इखेर कि परान रय॥

कूलेर धरम, राखिते धारिलूँ ना,
कहिल सबार आगे।
रामचन्द्र कहे, श्याम नागर,
सदाइ भरमे जागे।

(अ० प० र० पद–४१० । पृ० १२६)

(२)

श्रीराधार अभिसार

बिनोद बन्धनी धनी ताहे नव यौवनी,
साजनि दरशने श्याम।
गुरुया नितम्ब भवे, पद आध-आध चले,
हेरइते मुरछल काम॥
भाले जे अरुन इन्दु, मलपग बिन्दु-बिन्दु।
कस्तुरी तिलक तार माझे।
पिहे दोले हेम झांपा,
रंगिया पाटेर खोपान,
नासिकाय मुकुता विराजे॥
पद अति मन्थर, नव यौवन भट,
सखी अंगे हेलि निज अंग।
चोदिके रमनी सागे, डम्फ खान बाजे,
चले राइ मदन तरंग।
पद उत्पल राता तो होते तरल पाता,
कनक नुपूर तार भने।
दरशने इहा भोर, आनन्दे नाहि उर
रामचन्द्र दास गुनगाने॥

(अप्रकाशित पद-रत्नावली)

द० श्री०

रामानन्द बसु

बंगाल की वैष्णव भक्ति-परम्परा की यशस्विनी धारा में रामानन्द वसु की गणना बहुमूल्य रत्न के रूप में होती है। इनके जन्म और मृत्यु का समय अज्ञात है, परन्तु 'चैतन्य-चरितामृत' में 'शाखा-निर्णय' के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रसंग आया है, जिससे रामानन्द बसु का क्षीण परिचय मिलता है—

कुलीन ग्रामेर सत्यराज रामानन्द।
यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शंकर, विद्यानन्द॥

काशो नाथ बसू आदि जत ग्राम बासी जन।
सबे श्री चैतन्य भृत्य चैतन्य प्राणधन॥

'कुलीन ग्राम निवासी सत्यराज, रामानन्द, यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शंकर, विद्यानन्द एवं काशीनाथ बसु आदि जितने ग्रामवासी थे, सभो श्री चैतन्यके भृत्य थे, सभी श्री चैतन्य के प्राणधन थे।'

लोक जीवन और विद्वत् मण्डली में इस प्रकार की धारणा प्रचलित है कि रामानन्द बसु श्री चैतन्य के समवयस्क और उनकी लीला क प्रत्यक्षदर्शी थे। बसु महाशय कुलीन ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम वर्द्धमान के अन्तर्गत मैमारी स्टेशन के निकट स्थित है। ये बहु विख्यात मालाधारबसु के पुत्र थे। मालाधार वसु गुमराज खान के नाम से विख्यात थे। इन्हांने

'श्रीकृष्ण-विजय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। मालाधर वसु रचित 'श्रीकृष्ण-विजय' चैतन्य का प्रिय ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ का पाठ वे भावविह्वल होकर करते थे। इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना में भागवत के दशम, एकादश और द्वादश स्कन्धों का आधार ग्रहण कर कृष्ण-लीला का पद्यमय वर्णन किया है। एक स्थल पर प्रभु ने कहा है—

गुनराज खान केल श्रीकृष्ण विजय।
ताहे एक वाक्य तार आछे प्रेममय॥
नन्दनन्दन कृष्ण मोर प्रान नाथ।
एइ वाक्य विकाइनूं तार वंशेर हात॥

'गुनराज खान (माला धार वसु की उपाधि थी) ने 'श्रीकृष्ण विजय' की रचना की। इसमें प्रेममय वाक्य है, जिसमें मेरे प्राणनाथ नन्दनन्दन कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। इस एक प्रेममय वाक्य के कारण इनके वंश (गुनराज खान के वंशजों) के हाथ मैं बिक गया हूँ।'

कुलीन ग्राम में एक कीर्तन-सम्प्रदाय का संगठन किया गया था। रामानन्द बसु इस कीर्तन-समाज के गण्यमान्य व्यक्ति थे। महाप्रभु के संकीर्तन माधुर्य का इन्होंने पान किया था। उनके संकीर्तन-नृत्य के ये प्रत्यक्षदर्शी थे। फलस्वरूप इनकी संकीर्तन-पद्धति चैतन्य की संकीर्तन-पद्धति की अनुकृति थी। इन्होंने अपने पदों में चैतन्य के भावोच्छवास का अत्यन्त रसमय वर्णन किया है। चैतन्य के प्रति रामानन्द बसु की अटूट श्रद्धा थी। ये उन्हें भगवान् का अवतार मानते थे। अपने अनेक पदों में इन्होंने इस आस्था को वाणी दी है। ये पद 'गौर-पद-तरंगिनी' में संकलित है। ये रागानुगा और दास्य भाव की भक्ति-पद्धति के अनुयायी थे। राधा-विरह-विलाप व्यंजित करने वाले इनके पदों में वस्तुतः गौरांग-विरह में व्याकुल विष्णुप्रिया देवी का ही विलाप चित्रित है। इन्होंने गौरांग विषयक पदों के अतिरिक्त राधा-कृष्ण की ब्रजलीला विषयक पदों की भी रचना की है। एक पद द्रष्टव्य है—

(१)

राधिका की भावाभिव्यक्ति

तोमारे कहिए सखि स्वपन काहिनी।
पाछे लोक माझे मोर हय जाना जाशो॥

सामन मासेर दे रिमझिम बरिसे,
निन्दे तनू नाहिक बसन।
श्याम बरन एक पुरुष आशिया मोर,
मुख धरि करये चुम्बन॥
बलि सुमधुर बोल, पून पून देइ कोल,
लाजे मुख रहिल मं ड़ाई।
आपना करये पन, सबे मांगे प्रेमधन,
वले किन जाचिया बिकाई॥

चमकि उठिलूं जागि,
जे देखिलूं सेइ नहे मति।
आकुल परान मोर, दुनयने बहे लोर,
कहिले के नाय परतीति॥

किवा से मधूर बानी, अभिसार तरंगिनी,
कत रंग भंगिया चालाय।
कहे 'वसू-रामानन्दे' आनन्दे आछिल निन्दे,
केन विधि चिमाइल तार॥

"हे सखि! मैं तुमसे स्वप्न की कहानी कहती हूँ। वह कहानी जो पीछे लोक विश्रुत हो गई, जिसके कारण लोक में मेरी प्रतिष्ठा धूमिल हुई। श्रावण मास में दैव रिमझिम बरसता है। निद्रा में तन का आवरण (वस्त्र) अस्त-व्यस्त हो जाता है। श्याम वर्ण का एक पुरुष आकर मेरे मुख का चुम्बन करता है। वह प्रेममयी सुमधुर वाणी में प्रेम-भावों को व्यक्त करता है, बार-बार आलिंगन देता है, लज्जा से मेरा मुख अरुणिम हो जाता है। स्वयं प्रण करता है, मेरे प्रेम-धन की भिक्षा माँगता है, मेरे प्रेम में बिक जाने की आकांक्षा व्यक्त करता है। मैं चौंक कर जाग उठी, जिसे स्वप्न में देखा, वही (वह व्यक्ति) मेरे प्रेम का आधार है। प्रेम-विह्वल मेरे प्राण आकुल हो उठे, पुलक से मेरे नेत्र सजल हो

उठे। इसके दर्शन से क्या प्रतीति हो सकती है ? (उसकी प्रतीति स्वानुभूति से हो सकती है, अन्य व्यक्ति द्वारा दिए गए विवरण से नहीं)। उस प्रिय की मधुर वाणी अमृत-तरंगिनी के समान थी, जो असंख्य तरंगों से तरंगायित थी। (रामानन्द के माध्यम से राधिका की शक्ति) बसु रामानन्द की अभिव्यक्ति है—निद्रा में ही मैं आनन्दित थी (स्वप्न में प्रिय सानिध्य से लाभान्वित थी), किन्तु निद्रा के भंग होने से वह स्वप्न-सुख विखण्डित हो गया।"

इस पद में निहित आध्यात्मिक पक्ष की व्याख्या करते हुए व्याख्याताओं का यह निष्कर्ष है कि इस स्वप्न-दर्शन-कहानी में श्री चैतन्य के जन्म का कारण इंगित है। श्रीकृष्ण के प्रति श्री राधिका के प्रेम को उपलक्ष बनाकर इस मान्यता की स्थापना की गई है कि श्रीकृष्ण चैतन्य रूप में ही अवतरित हुए थे। महाप्रभु श्रीचैतन्य द्वितीय कृष्ण थे।

(२)

(ब्रजबुली)

मलयज-मिलित यमुना जल-शीतल,
वंशीवट निर्मान।
निकटहि नीप कदम्ब तरु कुसुमित,
कोकिल भ्रमर करि गान॥

तार लते तिरिभंग तरुण तमाल तनु,
बामे रसवति राइ।
एक नव जलधर कोरे बिजुरी थिर,
कान्चन रतन मिशाइ॥

दुहुं तन एक मन निबिड़ आलिगन,
दुहुं जन एकइ परान।
बसु रामानन्द भने, तुलना न हय मने,
रूपेर निछलि पंचबाण॥

(३)

हां दमिक द्रिमि, मादल बाजत कतह ताल सुतालुया।
अखिल भुवनक नाच नाचत, श्रीदाम आदि सबे गानुया॥
जानू लम्बित, वाह युगल, कलित कलधौत धानुया।
अरुन अमवरे, भुवन डगमगि वेछे पातर भानुया॥

क्षनहि कम्पित, क्षनहि पुलकित, क्षनहि कर युग चालना।
क्षनहि उचकरि बलइ हरि हरि, पुरुष प्रेम बरपालना॥

चाँद अवधूत ठाकुर अद्वैत संगे सशकचर मेलिया।
कहे रामानन्द कुलिश सरमये दारु दरवित केलिया।

(पदकल्पतरु, ४५ १२७७)

द० श्रो०

राय रामानन्द

उड़ीसा के कृष्ण भक्तों के साथ इनका परिचय दिया जा चुका है। (देखिए, प्रथम खंड, पृ० २०१-२०३)। बंगाल के गौड़ीय-भक्ति साहित्य में भी इनका उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया गया है। ये चैतन्य महाप्रभु के समकालीन एवं आदरास्पद थे। वे कहते थे 'रामानन्द राय मार देह भेद-भाव अर्थात् रामानन्द और मुझमें केवल शरीर का अन्तर है। यहाँ इनके चार पद दिये जा रहे हैं—

(१)

विदलित सरसिज दल चय शयने।
वारित सकल सखी जन नयने॥

वलत मनो मन सत्वर रचने।
पूर्यं काममम इम शशि बदने॥

अभिनव—विस—किसलय चपवलये।
मलयज रस परिसेवित निलये॥

सुखयतु रुद्र—गजाधिय चित्तम्।
रामानन्द राय कवि भणितम॥

(जगन्नाथ-ब्रल्लभ-नाटक, अंक ११)

'पदकल्पतरु' में रामानन्द राय का एक हिन्दी पद संकलित है। वह यहाँ उद्धृत किया जाता है—

(२)

ए दुहुँ मंगल आरति कीजे।
मंगल नयने निरखि मुख लीजे॥

मंगल आरति मंगल चाल ।
मंगल राधा मदन गोपाल ॥

श्याम गोरि दुहुँ मंगल शशि ।
मंगल जोति मंगल परकाशि ॥

मंगल शङयहि मंगल निशान ।

सहचरिगन करु मंगलगान ॥

मंगल चामर मंगल उद्गार ।
मंगल शबदे करये जय ॥

मंगल मुखे केह कान्ह बखान ।
कह राम राय तँहि भगवान् ॥

(पदकल्पतरु-२८४४)

(३)

नटराज

मृदुल मलयज तरलित चिकुर परिगत कलापकम् ।
साचि तरलित नयन मन्मथ-शंकुलम् ॥

चित सुन्दरी जन जनित कौतुकम् ।
मनसिज केलि नन्दित मानसम् ॥

भजत मधु रिपुरिन्दु सुन्दर बल्लवी मुखलाल सम् ॥
लघु तरलित कन्धरं हसितलव मति सुन्दरम् ॥

राजपति प्रतापरुद्र हृदयानुगत मनुदिनं ।
सरसं रचयित रामानन्द राय इति चारु संगीतम् ।

(अप० पद० रत ५५)

(४)

केदारा

मृदु तर मारुत वेल्लित पल्लव,
वल्ली–वलित शिखण्डम् ।
तिलक विडम्बित मरकत मनि तल,
बिम्बित शशधर-खण्डम् ॥

काम दन्त किए मनोहर,
हरि जिनि कटि तरे कनक किंकिनी रटे,
रक्त प्रान्त वसने वेष्ठित ।
हेम रम्भा जिनि उरु चरन नादेर गुरु,
ताहि मनि मन्जीर शोभित ॥

सूक्ष्म रक्त पद्म–दल, अर्घं मनोहर,
ताहे जिनि को चार बलनी ।
चरन उपरे दोले हेरि मुनि मन भूले,
आध गति गजवर जिनि ॥

किवा ताहे पदांगुलि, कनक चम्पक कलि,
अपरुप मुख-चन्द्र भाति ।
तार तले कोकनद, भुवन मोहन पद,
तद्रुचित अलि रह माति ॥

(अ० प० र० पृ० ५५१)

द० श्री०

राय वसंत

राय बसन्त के जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती । गोविन्ददास कविराज के एक पद से ज्ञात होता है कि ये ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे—

गोविन्द दास कहये मतिमंत ।
भूलल जहि द्विज राय बसंत ॥

(पद कल्पतरु २४३४)

इनका जन्म भुरगुट परगना में हुआ था । इनके पिता का नाम मतानंद राय (मजूमदार) था । ये नरोत्तमदास के शिष्य थे । जीवन के अन्तिम दिनों में ये स्थायी रूप से वृन्दावन में निवास करने लगे थे । वहाँ इनको जीवगोस्वामी का सानिध्य प्राप्त हुआ था । इनके ५१ पद 'पद-कल्पतरु' में संकलित हैं ।

वसन्तराय के पदों का विषय है-श्रीकृष्ण का रूप-वर्णन, नित्य रास और राधा कृष्ण-भक्ति । इसी के आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि ये गोविन्द दास कविराज के समकालीन थे

इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

श्री कृष्ण-रूप सौन्दर्य

कि हेरलूँ नागर नवीन किशोर ।
शारद शशधर नयन मनोहर,
रङ्गिणी नयनहिं लुबध चकोर ॥

नीलेन्दीवर-सुन्दर लोचन,
अन्जन अरुण तरुण चित चोर।
माणिक अधर मनोहर वंशी,
रसेर तरंगिन मोहित भोर॥

अमिया वचन श्रवण अनुरञ्जन,
गञ्जन नीरद भास।
एक आर अनुपम जग मन मोहन,
हासियेन बिजुरी प्रकाश॥

नासा तिल कुल रङ्गिम मुकुता,
झलकह कुन्तल गण्डति लोल।
चाँचर केश-पाश नव मालती,
तहिँ पर शिखिवर चाँद उजोर॥

कुङ्कुम विरचित तिलक विराजित,
राचित जनु द्विजराज कि राज।
ओ तनु अभरण तड़िदिव नवघन,
उर पर बनि बनमाल बिराज॥

लीला लावनि अवनि भरल रूप,
नख मणि दरपणि तिमिर विनाशे।
'राय-वसन्त' भनु सेवइ अनुखन,
ऐछन चरण कमल मधु-आशे॥

(पद कल्पतरु, २४४६)

(२)

ए सखि! ए सखि! कर अवधान॥
पुन कि अनंक भेल निरमान।
अलका आवृत मुख मुरली सुतान॥

रमणी मोहन चूड़ा आनहि बन्धान।
सुन्दर नासिक पुट भांग कामान॥

अपंग इंगित कत परिखये वान।
अधर सुरंग फूल वाँधुली समान॥

हासिते हरये कुल कानि निभान।
'राय वसन्त' इछे निछिते परान॥

(वैष्णव पदावली-पृ० ४८७)

रायशेखर

रायशेखर के विषय में इतना ज्ञात होता है कि ये रघुनंदन गोस्वामी (श्रीखण्ड निवासी) के शिष्य थे। इस तथ्य का उल्लेख 'पदकल्पतरु' में संकलित २१८९, २३७२, २३६३ संख्यक पदों में हुआ है। इनका उल्लेख कविशेखर के रूप में भी मिलता है। इन्होंने अपने पदों में कविशेखर, चन्द्रशेखर राय शेखर, दुखिया, पापिया शेखर आदि नामों का प्रयोग किया है। इनका जन्म शक संवत् १४५५ के आसपास वर्द्धमान जिलान्तर्गत पड़ान ग्राम में हुआ था। ये नित्यानन्द के वंशज थे। इनकी एक रचना 'दंडमालिका' के नाम से प्राप्त हुयी है जो श्रीकृष्ण की अष्टयाम-लीला सम्बन्धी इनके पदों का संकलन है। ये गोविन्द कविराज के उत्तर समकालीन थे।

इनका वास्तविक नाम शशिशेखर था। डा० सुकुमार सेन के मतानुसार इनका मूल नाम देवकी नन्दन सिंह था। 'गोपाल-विजय' नामक अपने पांचाली-काव्य में इन्होंने इसी नाम का प्रयोग किया है। हरे कृष्ण ने 'वीर भूमि काहिनी' नामक ग्रन्थ में इनके द्वारा रचित, 'संग्रहतोषिनी' नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख करते हुए आरम्भ में इनके 'सहजिया साधक' होने की सम्भावना की ओर संकेत किया है। 'गोपाल-चरित' (महाकाव्य), 'गोपाल-कीर्तनामृत', 'गोपीनाथ-विजय' (नाटक) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

इनके कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

राधिका की अभिसार यात्रा का वर्णन

तपनक ताप तपत भेल महीतल,
तातल बालुक दहन समान।
बड़ मनोरथे भाविनु चलु पथे,
तपन ताप नहिँ जान॥

प्रेमक गति अनिवार।
नव यौवन धनी चरण कमल जिनि,
तबहि कचल अभिसार॥

कुल गुणे गौरव, सती यश अपयश,
तृण करि ना मानये।

मन माहा मदन महोदधि उछलल,
छोड़ल कुल मरियादे॥

कतहुं विघनी जगत अनुरागिनी,
साधल मनमथ तन्त्र।

गुरुजन नयान निवारिते सुवदनी,
पाठ करये भणि मंत्र॥

केति कलावती कुसुम सरसी कुले,
कौशल करल पयान।

यत छिन्न मनोरथ पूरल मनमथ,
इ कवि शेखर गान॥

(पदकल्पतरु, ३२३)

(२)

मानिनी राधा

धनि भेलि मानिनी सखीगण माझ।
अनुनय करइते उपजय लाज॥

पिरीतक आरति पिरति न सहइ।
इंगित भंगिए दुहुं सब कहइ।

राइ सुचेतनी कानु कि सियानु।
मनहि समाधल मन-अभिमान॥

हरि शिर छाय धरलि धनि पाय।
सम्भ्रमे बैठलि धनि कर लाय॥

निज नूपुर यव धरु वनमालि।
सखी संगे अनत चलत वरनारि॥

अधरे मुरली यव धरि बनमालि।
फोइ कवरी धनि बान्धि सङारि॥
कह कवि शेखर बुझये सियान।
रङगिते रस बरखल पाँचवान॥

(वैष्णव-पदावली, ६१)

(३)

चैतन्य रूप वर्णन

निरुपम कन्चन रुचिर कलेवर,
लावणी वरणी ना होइ।
निरमल वदन वचन अमिया-सार,
लाजे सुधाकर रोइ॥
हेरुलउं रे सखि रसमय गौर।
वेश विलासे मदन भेल भोर॥
लोल अलक बुल तिलक सुरन्जित,
नासा खगपति इन अचन्चल॥
भांग कामान वाण दृग,
चन्दन रेख तहे गुण,
कम्बु कण्ठ मणि विराजत,
काम कलंकित शोभा।
चरण अलंकृत गाङ्गेर अंजित,
राय शेखर मन झंकृत लोभा॥

(पदकल्पतरु. २१५८)

द० श्री०

रूप गोस्वामी

रूप गोस्वामी की गणना गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में की जाती है। इनका जन्म १४७० ई० में हुआ था। ये सनातन गोस्वामी के सगे भाई थे और उन्हीं के साथ इन्होंने 'नीलाचल' में चैतन्य महाप्रभु का प्रथम दर्शन किया था। रूप गोस्वामी ने भी अपने भाई की तरह इस सत्संग से पूर्व ही वैष्णव-दर्शन को भली भाँति आत्मसात् कर लिया था जिसको देखकर चैतन्यदेव ने इन्हें बृन्दावन के तीर्थों के उद्धार और वैष्णव-रस-शास्त्र की रचना का आदेश दिया था। उस समय बंगाल का शासक हुसेन शाह भी चैतन्य से मिलना चाहता था, किन्तु उसकी उनमें पूर्ण आस्था उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिए राजकर्मचारी केशव छत्री ने चैतन्यदेव से जल्दी ही बंगाल से चले जाने का अनुरोध किया था। चैतन्य के चले जाने पर रूप गोस्वामी चुपके से उनसे मिलने के लिए प्रयाग गये और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

रूप गोस्वामी वैष्णव-दर्शन के निष्णात विद्वान् और काव्य-मर्मज्ञ थे। दीक्षोपरान्त जब ये ब्रज में आकर रहने लगे तो कृष्ण लीला के आधार पर एक नाटक लिखा जो दो भागों में विभक्त है—१, विदग्ध माधव (ब्रजलीला), २. ललित माधव (द्वारका लीला)। इन्होंने काव्य, नाटक, रस, अलंकार आदि से संबंधित कई ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनकी सूची इस प्रकार है—

काव्य—हंसदूत, उद्धव-संदेश, स्तवमाला।

नाटक—विदग्धमाधव, ललितमाधव, दानकेलि-कौमुदी।

रसतत्व व अलंकार शास्त्र—भक्ति-रसामृत-सिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि।

काव्य संकलन - पद्यावली

नाट्यतत्व—नाटक-चंद्रिका।

धर्मतत्व—संक्षिप्त-भागवतामृत।

इनमें 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' और 'उज्ज्वल-नीलमणि' ग्रंथों की ख्याति सर्वाधिक है। ये उच्च-कोटि के भक्ति-शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं और वैष्णव-भक्ति के तत्वों को समझने के लिए परम उपयोगी हैं।

रूप गोस्वामी के निधन के बारे में कई मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये अपने अग्रज (सनातन गोस्वामी) से तीन वर्ष पूर्व दिवंगत हुए। किंतु जनश्रुति के अनुसार दोनों का देहान्त एक ही समय में हुआ। वृन्दावन में आषाढ़ की पूर्णिमा को सनातन गोस्वामी की पुण्यतिथि मनायी जाती है और इसके २७ दिन बाद श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को रूप गोस्वामी के तिरोधान का उत्सव मनाया जाता है। ऐसी स्थिति में साम्प्रदायिक मान्यता को ही अधिक प्रामाणिक मानकर यह कहा जा सकता है कि ये १५५४ ई० में सनातन गोस्वामी की मृत्यु के २७ दिन बाद दिवंगत हुए।

वैष्णव भक्तों की रचनाओं का एक अपूर्व संग्रह 'पद्यावली' शीर्षक से तैयार करके इन्होंने अपने समकालीन तथा पूर्ववर्ती राधाकृष्ण भक्तों के कृतित्व के आकलन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत प्रस्तुत कर प्राचीन गौड़ीय भक्ति साहित्य के अध्येताओं का महान् उपकार किया है।

(इनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ—उज्ज्वल नीलमणि तथा भक्ति रसामृत सिन्धु संस्कृत भाषा में विरचित हैं। अतः गौड़ीय वैष्णव भक्ति साहित्य में इनके विशेष अवदान का निरूपण संस्कृत भाषा के कृष्ण भक्त रचनाकारों के साथ किया गया है। संपा०)

द० श्री०

लक्ष्मीकान्त दास

भक्त लक्ष्मीकान्त दास चैतन्य देव के सम-सामयिक थे। ये १५०९ ई० के आस-पास विद्यमान थे। इनका उल्लेख 'शाखा-निर्णय' में मिलता है—

लक्ष्मीकान्त नाम शाखा ठाकुर पुजारी।
ताहार विख्यात कथा आछे चारि।
(पृ० ७)

नरहरि सरकार की शाखा के एक पण्डित भक्त लक्ष्मीकान्त थे, जो निरन्तर भगवान् कृष्ण की आराधना में संलग्न रहते और उनके भक्ति-विषयक पदों का गायन करते थे। हरिचरन दास कृत 'अद्वैत-मंगल' में अद्वैताचार्य के छः ज्येष्ठ सहोदरों का उल्लेख मिलता है, इनमें लक्ष्मीकान्त दास का भी नाम आता है। इन्हें चैतन्यदेव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 'गौर-पद-तरंगिनी' में इनके दो पद संकलित हैं। ये पद 'नदिया-नागरी' विषयक हैं। 'नदिया-नागरी' विषयक पदों की रचना की परम्परा 'श्रीखण्ड-शाखा' के वैष्णव भक्तों में ही प्रचलित थी। इससे यह विदित होता है कि इनका सम्बन्ध श्रीखण्ड शाखा से था। इनके उक्त दोनों पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

कि खने देखिलुं गोरा, नवीन कामेर कोड़ा,
सेइ हइते रइते नाहि घरे ।
कत ना करिब छल, कत ना भरिब जल,
कत याब सुरधुनी तीरे ॥

विधि तो बिनु बलिते केह नाइ ।
यत गुरु गरबित, गन्जन बचन कत,
फुकरि कांदिते नाहि ठांइ ॥

अरुण नयनेर कोने, चाइं आ छिलो,
पराने बाड़शी दिया टाने ।
कुलेर धरम मोर छारे था।रे जाउक गो,
कि जानि कि होने परिणामे ॥

आपना आपनी कहिलुं घरेर बाहर हइलुं,
शुनि खोल करतालेर नाद ।
लक्ष्मीकान्त दास कय, मरमे घाय (जार) लागय
कि करिबे कुल परिवाद ॥

(पदकल्पतरु ११७, गौ० प० त०, १७३)

'कामदेवकी प्रतिछवि तरुण गौरांग का दर्शन किस क्षण हुआ ? मैं अब घर में नहीं रह सकती। मैं परिजनों से कितना छल करूँ ? कितनी बार पनघट पर जाकर जल भरने का बहाना करूँ ? कितनी बार (छलकरके) गंगा तट पर जाऊं ? हे परमेश्वर ! मैं केवल तुमसे ही अपनी व्यथा कह सकती हूँ । (मेरे) गुरुजन कटु शब्दों में मेरी निन्दा करते हैं । अब संसार में मेरे लिए कोई अन्य स्थान नहीं है। अरुण नयनों की कोर से (कोई) मुझे देख रहा था, मेरे प्राण को वंशी से खींच रहा था (नयन कोर अवलोकन रूपी वंशी से) मैं अपने कुलधर्म की मर्यादा की रक्षा न कर सकी। न जाने (इसका) क्या परिणाम होगा ? गोरा की ढोल व उनके करताल की ध्वनि सुनकर मैंने आत्म विस्मृति की अवस्था में घर त्याग दिया। अपनी मर्यादा का खण्डन स्वयं कर लिया। लक्ष्मीकान्तदास कहते हैं, जिसके हृदय में गोरा की प्रीति लग गई, उसका कुल परिवार से क्या सम्बन्ध, उसका कुल परिवार क्या कर लेगा ?'

(२)

कामोद

अभिन्न मदन जनु गौराङ्गे गौर तनु,
अतनु अतनु होल लाजे ।
सुवर्ण रे सुवर्ण सेउ मेल बिबर्न,
खेदे दग्ध अनलेर माझे ॥

गौर रूपे तुलना कि देब ।
गिरजने बसि बिधि गड़िल गौरांग निधि,
निरवधि, बासना हेरिब ॥

गौरांग तुलना-स्थल, अतसी कुसुम छिल,
कीहे तारे करिल विरूप ।
दामिनि चन्चल भेल, मेघ आड़े लुकाउल,
यव सो हेरल गोरा रूप ॥

लक्ष्मी दास कय, शेखर तुलना नय,
त्रिभुवने जे किछु बखानी ।
येन मोर लय मने कालि दिया कुल माने
जाइ लेइजा रूप निछनि ॥

(गौरपद तंरगिनी, पृ० १००, पद १७३)

द० श्री०

लाउड़िया कृष्णदास

लाउड़िया कृष्णदास श्रीहट्ट के अन्तर्गत लाउड़िया के राजा थे। इनका वास्तविक नाम दिव्यसिंह था। ये पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। अद्वैत के पिता इनके प्रधान कार्यवाहक थे। वृद्धावस्था में शान्तिपुर आकर इन्होंने अद्वैताचार्य से दीक्षा ली एवं शान्तिपुर में स्थायी रूप से रहने लगे। कृष्णदास इनका गुरुदत्त नाम था। इनके विषय में निम्नलिखित प्रसिद्धि मिलती है—

शक्तिमंत्र छाड़ि गोपाल मंत्रे दोक्षा निल ।
कृष्णदास नाम तार अद्वैत राखिल ॥

वृन्दावन चलिलेन हइया भिखारि ।
कृष्णदास ब्रह्मचारी वृन्दावने ख्याति ॥

(दिव्यसिंह देव, प्रेम० २४)

इन्होंने विष्णुपुरी रचित 'विष्णु-भक्ति-रत्नावली' का पयार छन्द में अनुवाद किया था। इस मूलग्रन्थ और उसके अनुवाद के विषय में कृष्णदास का निम्नोद्धृत कथन ध्यातव्य है—

श्री विष्णुपुरी ठाकुर भाकत सन्यासी।
जीव निस्तारिला-कृष्ण भकति प्रकाशि॥

बिचारि बिचारि भागवत पयोनिधि।
विष्णुभक्ति रत्नावली प्रकाशिला निधि॥

प्रति अध्यायं विचारिया द्वादश स्कन्ध।
सार श्लोक उद्धारिया करिला प्रबन्ध॥

नाना बिधि श्लोक व्याख्या करि साधू।
तापित जीवेर तरै मिश्रिलेक मधू॥

अष्टोदश सहस्त्र श्लोक भागवत।
ता हते उद्धार करिला श्लोक चारिशत॥

विष्णुपुरी ठाकुर रचिला रत्नावली।
कृष्णदास गाइलक अद्युत पांचाली॥

इन्होंने 'बाललीला-सूत्र' शीर्षक से अद्वैत महाप्रभु की जीवनी संस्कृत में लिखी है। इसका रचना काल १४८७ ई० है। यह रचना आठ सर्गों में विभक्त है, परन्तु इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

महाप्रभु के दक्षिण भ्रमण के समय कुलीन ब्राह्मण कृष्णदास उनके सहचर रूप में साथ थे।

कृष्णदास नाम शुद्ध कुलीन ब्राह्मण कृष्णदास।
यारे संगे लेया केल दक्खिन गमन॥

(चै० च० आदि० १० म० प्र०)

ये अति सरल स्वभाव के थे। ये नित्यानन्द के श्वसुर सूर्यदास सरखेल के भ्राता थे।

सूर्यदास सरखेल तार भाइ कृष्णदास।
नित्यानन्दे दृढ़ विश्वास प्रेमेर निवास।

(चै० च० आद्रि ११ प)

इनके विषय में कोई अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है। द० श्री०

लोकनाथ गोस्वामी

बंगाल के जैसोर जिले (अब यह बंगला देश में चला गया है) के तालखड़ो नामक गाँव में लोकनाथ का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम सीता देवी तथा पिता का नाम पद्मनाथ चक्रवर्ती था। बाल्यावस्था से ही लोकनाथ में अच्छे संस्कार थे। हृदय बड़ा ही प्रेमी तथा भक्ति-परायण था। श्रीकृष्ण नाम इन्हें प्राणों से भी प्यारा था।

उस समय पूरे बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का यश फैला था। महाप्रभु की महिमा और प्रेमाकर्षण से आकृष्ट लोकनाथ का मन महाप्रभु को देखने के लिए तड़प उठा। माँ-बाप को भय था कि महाप्रभु के संग में पड़ जाने पर यह लड़का बेहाथ हो जायगा। उन्होंने लोकनाथ का विवाह कर देने की बात सोची। इनके कानों में विवाह के प्रस्ताव की भनक पड़ी। इनका मन व्याकुल हो उठा। इन्हें लगा जैसे कोई पुकार रहा है—"उठो 'वह' कब से, किस अनादि काल से तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा है। चलो, उस ललित संकेत वट के नीचे 'वह' खड़ा है, झुरमुट में छिपा हुआ तुम्हारी बाट जोह रहा है। कबसे, कितने जन्मों से तुम भरम रहे हो! 'उसके' हृदय में तुमसे मिलने के लिए कितनी व्यथा है? काश! तुम समझते! कबतक भटकोगे, ओ भरमने वाले भोले प्राणी! आँख खोलकर देखो। मैं 'उसी' का अमृत सन्देश तुम्हें सुना रहा हूँ।" लोकनाथ ने ऊपर आकाश की ओर देखा और फिर घर से निकल पड़े। अगहन का महीना था, ये रातभर चलते रहे। दूसरे दिन संध्या समय ये नवद्वीप पहुँचे। 'क्या मेरे ऐसे भाग्य हैं कि मैं महाप्रभु का दर्शन कर सकूँगा? क्या वे अपने श्रीचरणों में मुझे शरण देंगे, मेरी बाँह पकड़कर मुझे अपनी गोद में छिपा लेंगे?' महाप्रभु के पास पहुँचने पर देखते हैं कि महाप्रभु एक उच्च आसन पर विराजमान हैं और श्रीवास, मुकुन्द, मुरारि आदि भक्तों की टोली उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है। लोकनाथ एकटक महाप्रभु को देखता ही

रह गया। आँगन में प्रतिमा की तरह खड़े इस सुकुमार बालक पर महाप्रभु की दृष्टि गयी। वे दौड़े, दोनों बाँहें फैलाये दौड़े और लोकनाथ को अपनी भुजाओं के पाश में बाँध लिया। महाप्रभु का आलिंगन पाकर लोकनाथ की सारी सुध-बुध खो गयी।

पाँच दिन स्वप्न की तरह निकल गये। महाप्रभु के पावन स्पर्श से इनका रोम-रोम पुलकित-आह्लादित था। कण-कण से कृष्ण की मधुर ध्वनि आ रही थी। पाँच दिन अलौकिक उन्माद में बीते, छठें दिन महाप्रभु ने लोकनाथ को बुलाकर आदेश दिया— "शेष जीवन के दिन वृन्दावन में व्यतीत करो।" लोकनाथ को जैसे काठ मार गया। इन्होंने कहा— "प्रभु! मुझे श्रीचरणों से निर्वासित न करें।" महाप्रभु ने समझाया—'तुम ऐसी बातें क्यों करते हो? मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ? निराश मत हो। यह अगहन का महीना है। पूस का महीना बीच में है। माघ में मैं भी घर-द्वार छोड़कर सन्यास लूँगा। तुम वृन्दावन के लिए हमारे पहले अगुआ बनो। तुम्हारे पीछे-पीछे और वैष्णव भी वृन्दावन जायेंगे। मैं भी तुम्हारे जाने के कुछ ही दिन बाद वृन्दावन आ रहा हूँ।"

इस प्रकार सारी बातें समझाकर महाप्रभु ने लोकनाथ को वृन्दावन के लिए भेज दिया। ये वृन्दावन धाम पधारने वाले महाप्रभु के सर्वप्रथम शिष्य थे। महाप्रभु ने संन्यास की बात सबसे पहले श्रीमुख से लोकनाथ को ही सुनायी थी। श्रीनित्यानन्द प्रभु जो महाप्रभु के इतने निकट थे, संन्यास की बात महाप्रभु के संन्यास लेने के एक ही दिन पहले जान पाये।

दूसरे दिन प्रातः काल लोकनाथ महाप्रभु से विदा लेने आये। गदाधर पंडित तथा उनके शिष्य भूगर्भ वहीं थे। महाप्रभु ने गदाधर की ओर भेद भरी दृष्टि में देखा! गदाधर पंडित ने अपने शिष्य को वृन्दावन जाने की सहर्ष आज्ञा दे दी। वहाँ से राजमहल, ताजपुर, पूर्णिया, अयोध्या लखनऊ, आगरा, होते हुए ये गोकुल पहुंचे। गोकुल से वृन्दावन आये।

वृन्दावन की दशा उन दिनों विचित्र थी। घने जंगलों और भूमिशायी अस्तव्यस्त खंडहरों और पुण्य सलिला यमुना तथा गोवर्धन के अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं था। लोकनाथ को कुछ समझ में नहीं आया। एक दिन सहसा इन्हें चीरघाट का पता लग गया। जहाँ रहकर शेष जीवन व्यतीत करने की आज्ञा महाप्रभु ने दी थी।

अगहन के महीने में लोकनाथ को वृन्दावन भेजकर महाप्रभु ने माघ के महीने में संन्यास लिया। उसके अनन्तर वे दक्षिण में दो वर्ष तक तीर्थयात्रा करते रहे। दक्षिण से लौटकर वे बंगाल आये, किंतु गौड़ देश तक ही जाकर फिर वहाँ से नीलाचल लौट आये। वहाँ से वे वृन्दावन के लिए रवाना हुए और छोटा नागपुर के झारखंड होते हुए वृन्दावन पहुंचे। वहाँ वे दो महीने ठहरे, किंतु लोकनाथ और भूगर्भ से भेंट नहीं हो सकी।

महाप्रभु के संन्यास की बात लोकनाथ को ज्ञात हुई। उन्होंने यह भी जाना कि महाप्रभु दक्षिण भारत तीर्थ यात्रा के लिए गये हैं। लोकनाथ महाप्रभु से मिलने के लिए बेचैन हुए, पर भेंट नहीं हो पायी। एक दिन स्वप्न में महाप्रभु ने अपने नवद्वीप वाले रूप के स्मरण की बात कही। महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर लोकनाथ और भूगर्भ ने चीरघाट पर ही अपना डेरा लगाया और अंतकाल तक वहीं बने रहे। रात दिन कृष्ण की रट लगाये रहते, रात को एक-दो घंटा सो लेते। न किसी से मिलते और न ही बात करते। यदृच्छा से जो कुछ प्राप्त हो जाता, उसी को भगवान् का प्रसाद समझकर ग्रहण करते।

'श्री चैतन्य-चरितामृत' के रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज अपने ग्रंथ के प्रणयन के पूर्व लोकनाथ गोस्वामी का आशीर्वाद लेने आये थे। उन दिनों

वृन्दावन में महाप्रभु के सबसे वृद्ध शिष्य लोकनाथ ही थे। जब श्री कृष्णदास ने श्री चैतन्य चरितामृत का प्रस्ताव रखकर आशीर्वाद माँगा तो लोकनाथ ने उसके लिए सहर्ष अनुमति देते हुए कहा—'लिखो, अवश्य लिखो, परंतु इस ग्रंथ में मेरी कहीं भी चर्चा नहीं होगी और नहीं मेरे तथा महाप्रभु के सम्बन्ध की।' इतनी मूक और निरीह उपासना थी लोकनाथ गोस्वामी की। महाप्रभु के प्रयास से वृन्दावन उत्तर भारत में पुनः कृष्णभक्ति का केन्द्र बन गया। समय बीतता गया। महाप्रभु का तिरोधान हो गया। सनातन तथा रूप का गोलोकवास हो गया। लोकनाथ भी बहुत वृद्ध हो गए। वृद्धावस्था में ही इन्होंने नरोत्तम को वैष्णव भक्ति की दीक्षा दी। इनके दीर्घ काल तक जीवित रहने के प्रमाण मिलते हैं, परन्तु इनकी मृत्यु तिथि अज्ञात है।

स० गु०

लोकनाथ दास

लोकनाथ दास गौरांग के समकालीन थे और कुलियाके निकटवर्ती विष्णुपुर ग्राम के निवासी थे। ये माधवाचार्य के शिष्य थे। इन्होंने 'सीतागुण-कदम्ब' (या सीता-चरित अद्वैत-गृहिणी यश गान) नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस की रचना इन्होंने सन् १५२१-२२ ई० के आसपास आरम्भ की थी)। सीता देवी का यश-गान दस अध्यायों में किया गया है। इस ग्रन्थ का उल्लेख 'चैतन्य-मंगल' और 'चैतन्य-चरित' में भी मिलता है। सीता देवी के अलौकिक गुण-वर्णन के अतिरिक्त इसमें गौरांग-जन्म-कथा, गौरांग का नीलाचल-गमन एवम् उनके तिरोधान होने तक की कथा वर्णित है। नीचे उद्धृत पद में चैतन्य के तिरोधान पर अद्वैत और सीता देवी के मर्मस्पर्शी उद्गारों का वर्णन है—

हरि हरि कि हेल मरनेर काज।
छाड़ यही मण्डल गौरांग से गोएल,
आचार्येर माथे पोल काज साज।
नीलाचले छिलो गौर भरसा आछिल मोर,
अनायासे होत दरशन।
कि बुझिया, किना केनू केनो पत्र पठाइव,
जेहे कृष्ण गेला वृन्दावन॥

मने छिल बड़ साख, धरि प्रभूर श्रीपाद,
नीलाचले छाड़िव जीवन।
इहाते विधाक होल, आगे लीला सम्बरिल,
एइ सब विविध घटन॥

द० श्री०

लोचन वास

लोचन दास का जन्म-समय सोलहवीं शताब्दी का प्रथमार्ध है। सामान्यतः यह माना जाता है कि इनका जन्म १५२३ ई० के लगभग और निधन १५८९ ई० के आस पास हुआ था। 'चैतन्यमंगल' में इन्होंने अपना व्यवस्थित परिचय स्वयं दिया है। वह इस प्रकार है :

चारि खण्ड कथा सार करिल प्रकाश।
वैद्य कुल जन्म मोर केग्राम निवास॥

माता मोर पुण्यवती सदानन्दी नाम।
जाकर उदरे जान्मि करि कृष्ण-काम॥

कमलाकर नाम मोर पिता जन्म दाता।
जेहार प्रसादे करि गोरा गुन गाथा॥

मातृ कुल, पितृ कुल बसे एक ग्रामे।
धन्य माता जे अभय दासी नामे॥

मातामेहेर नामे, श्रीपुरुषोत्तम गुप्त।
नाना तीर्थ पूणतोइ तपस्याय तृप्त॥

मातृकुले, पितृकुले अमि मात्र पुत्र।
सहोदर नाहिं, नाहिं मातामहेर सूत॥

मातृकुले, पितृकुलेर कहिलाम कथा।
श्री नरहरि दास मोर प्रेम भक्ति दाता॥

'मैंने चार खण्डों में चैतन्य की कथा का सारांश प्रस्तुत किया है। मेरा जन्म के ग्राम में वैद्य कुल में हुआ है। मेरी पुण्यमती जननी का नाम सदानन्दी

है, जिसके उदर से जन्म ग्रहण कर मैं कृष्ण-अनुरागी हुआ। मेरे जनक श्रीकमलाकर हैं, जिनके आशीर्वाद-प्रसाद से मैं चैतन्य गुण-गान की ओर आकृष्ट हुआ। मेरा मातृकुल और पितृकुल एक ही ग्राम में निवास करता है। मेरी मातामही धन्य हैं, उनका नाम अभयदासी है। मातामह का नाम श्रीपुरुषोतम गुप्त है। उनकी तपश्चर्या धन्य है, वे नाना तीर्थों के पुण्य के भागी है। मातृ और पितृ इन दोनों ही कुलों में मैं एकमात्र पुत्र हूँ। मेरा कोई सहोदर नहीं है और नहीं मातृकुल में कोई वंशज है। इस प्रकार मातृ-कुल और पितृ दोनों ही कुलों की कथा मैंने कही। नरहरि दास मेरी प्रेम-भक्ति के दाता हैं।

'गौरपद-तरंगिनी' में लोचन, लोचन दास, त्रिलोचन आदि नामों से कुछ पद संकलित हैं, जो एक ही व्यक्ति के प्रतीत होते हैं। लोचन बाल्यावस्था से ही नरहरि सरकार के शरणापन्न थे। उनके आदेश से ही इन्होंने मुरारी के 'कड़चा' शैली का अवलम्ब ग्रहण कर 'चैतन्य-मंगल' की आदि-लीला का वर्णन किया। इनसे पूर्व वृन्दावनदास ने 'चैतन्य-मंगल' के नाम से चैतन्य-विषयक ग्रन्थ की रचना की थी, परन्तु अपनी माता के आदेशानुसार उन्होंने 'चैतन्य-मंगल' का नामान्तरण 'चैतन्य-भागवत' कर दिया था। लोचन दास ने 'भागवत' में वृन्दावनदास की वन्दना की है—

वृन्दावन दास वन्दिव एक चित्त।
जगत मोहित जार भागवत गीत॥

'वृन्दावन दास की वन्दना एकचित्त से करूँगा, जिनके रचित 'भागवत-गीत' पर सम्पूर्ण जग विमुग्ध है।' राम गोपाल दास रचित 'नरहरि-रघुनन्दन-शाखानिर्णय' नामक ग्रन्थ में लोचनदास विषयक एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है—

आर एक शाखा वैद्य लोचन दास नाम।
पूर्वे लोचना सखी जार अभिमान॥
श्रीकृष्ण लीला जेह करिला वर्णन।
गुरु अर्थे विकाइल फिरंगी सदन॥

'और एक अन्य (वैष्णव) शाखा में लोचन दास वैद्य हुए, जिन्होंने श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन किया है और गुरु के निमित्त वे फिरंगियों (पुर्तगीजों) के हाथ बिक गये'—इससे यह संकेत मिलता है कि किसी अज्ञातकारण से इन्हें फिरंगियों की चाकरी करनी पड़ी थी।

लोचन के पदों का प्रतिपाद्य है—आदि रसात्मक गौर लीला-वर्णन। इनकी वर्णन-विधा 'धमाली-शैली' के नाम से विख्यात है। इन पदों के कारण ही बंगाल के वैष्णव-सम्प्रदाय में लोचनदास 'ब्रजेर-बड़ाई' (ब्रज की दूती या चैतन्य की दूती) के नाम से विख्यात हैं। इनके पदों का संकलन, 'लोचनदास कृत धमाली' शीर्षक से हुआ है। लोचन दास ने गौर-नागर (शृंगार) भाव की भक्ति और भजन की दीक्षा प्राप्त की थी। इसी आदर्शानुसार इन्होंने धमाली पदों की रचना की है। धमाली शैली का प्रभाव इनके 'चैतन्य-मंगल' में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'चैतन्य-मंगल' में इन्होंने संकेत किया है कि सन्यास-ग्रहण के पूर्व की रात्रि महाप्रभु ने विष्णु-प्रिया देवी के संग दाम्पत्य लीला की थी। इस घटना का उल्लेख लोचनदास ने नागर भाव भक्ति के समर्थन में ही किया है। श्रीखण्ड के प्राचीन वैष्णव ग्रन्थ 'गौर-गुणानन्द' के अनुसार वृन्दावन दास इस घटना से अपरिचित थे। परन्तु नारायणी ठाकुरानी ने इस घटना को प्रामाणिक कहते हुए कहा, 'मुझे इस घटना की सूचना विष्णुप्रिया से ही प्राप्त हुई है।'

लोचन गौर-नागर-भाव के भक्त थे, परन्तु वृन्दावन दास इस प्रकार की शृंगार-मूला-भक्ति के विरोधी थे। अतः सैद्धान्तिक दृष्टि से लोचन व वृन्दावन दास में पारस्परिक मतभेद था। सतीशचन्द्रराय के अनुसार लोचन दास ने 'चैतन्य मंगल,' की रचना सन् १५३७ ई० में की थी, परन्तु ऊपर के प्रमाणों से यह निश्चित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना सन् १५५०-१५६० ई० के मध्य हुई थी। यह ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है—(क) सूत्र खण्ड,

(ख) आदि खण्ड, (ग) मध्य खण्ड, (घ) अन्त्य खण्ड। ग्यारह हजार छन्दों (श्लोकों) में रचित यह ग्रन्थ संकीर्तन-गान के रूप में लिखित है। प्रत्येक छन्द के पूर्व उसकी राग रागिनी का भी उल्लेख है। यह ग्रन्थ सर्ग या अध्यायों में विभक्त नहीं है। रचना धारा-प्रवाह रूप में है। इस प्रकार इसकी रचना-प्रविधि बंगला के 'मंगल' काव्यों की रचना-शैली के अनुरूप है। काव्य के आरम्भ में गणेश, हर, पार्वती, सरस्वती की वन्दना है, तत्पश्चात् निज गुरु 'ठाकुर श्रीनरहरि-दास प्रान अधिकारी' की बन्दना के पश्चात् ग्रन्थ का आरम्भ है।

इस ग्रन्थ के आरम्भ में क्रमशः कृष्ण-रुक्मिणी संवाद, राधा-कृष्ण-प्रेम की व्याख्या तथा नारद द्वारा हरिहीन पृथ्वी की दीन दशा का वर्णन है। पृथ्वी की दीन अवस्था का वर्णन सुनकर ही कृष्ण नारद को आश्वासन देते हैं कि वे राधाभाव से नव-द्वीप में शची देवी के गर्भ से अवतार ग्रहण करेंगे। उन्होंने कहा, 'भोञ्जिव प्रेमेर सुख, भुञ्जाइव लोके' अर्थात्, प्रेम-सुख का भोग करूँगा और इस प्रेम-सुख का भोग सर्वलोक को कराऊँगा। कुछ समय व्यतीत होने पर नारद पृथ्वी का भ्रमण करते हुए, वैकुण्ठ में प्रभु से साक्षात्कार करते हैं। नारद उनके अवतार ग्रहण करने के वचन का स्मरण दिलाते हैं—

पापमय कलियुगे, ना देखि निस्तार लोके,
दया उपजलि प्रभु चित्ते।
पालिव भक्तजन आर धर्म,
संस्थापन जनम लभिउ पृथ्वी ते ॥

'पापमय कलियुग में पृथ्वी का निस्तार न देखकर प्रभु के चित्त में दया उपजो। उन्होंने वचन दिया—भक्त-जन-पालन व धर्म-संस्थापन हेतु पृथ्वी पर जन्म धारण करूँगा। प्रेममूला-भक्ति का भी विस्तार तथा राधाभाव की भक्ति की मर्यादा का संस्थापन मेरे अवतार ग्रहण के अन्य उद्देश्य होंगे—

राधा भाव अन्तरे, राधा बर्न वाहिरे।
अन्तर्वाह्य राधामय होव।
संगे सखा-सखी-वृन्द आर भक्त अनन्त,
ब्रदज भावे अखिल मातार ॥

'अन्तर्वाह्य राधा भाव एवं राधा वर्ण होकर रहूँगा, संग में सखा एवं अनन्त भक्त जनों को लेकर लीला करूँगा, ब्रजभाव से आपूरित राधा को अखिल विश्व का मातृ रूप प्रदान करूँगा।'

कृष्ण के अवतार ग्रहण करने के पूर्व ही उनकी आज्ञा से उनके अनुचर गण पृथ्वी पर जन्म धारण कर चुके थे—अद्वैत-महेश्वर-कमलाक्ष के रूप में प्रकट हुए थे, कात्यायनी ने दुर्गा रूप धारण किया था, अद्वैत पत्नी ने सीता के रूप में, बलराम ने नित्यानन्द रूप में जन्म-ग्रहण किया था। कविगुरु नरहरि सरकार वृन्दावन की सखी मघुमती रूप में अवतरित हुए। यह ग्रन्थ का भूमिका-अंश है।

इसका परवर्ती अंश आदि खण्ड है, जिसका वर्ण्य विषय है चैतन्य जन्म, उनकी वयःसन्धि का वर्णन, चैतन्य का गया-गमन तथा गया से प्रत्ययावर्तन। इन समस्त प्रसंगों में गौरांग के नागर-रूप के वर्णन का ही प्राधान्य है। नागर भाव का एक पद यहाँ उद्धृत है—

वसिला सुन्दरी सब प्रभूर समीपे।
रो अंग वाताशे रंशीबीर अंग कांपे ॥

वसन-वचन सब स्खलित होइल,
केहो रंग रुये अनंग रंग करे।
टूलिया पडिला विश्वन्तरे उपरे ॥

'चैतन्य-मंगल' के मध्य खण्ड का वर्ण्य विषय है—चैतन्य की नादिया-लीला व उत्कल-लीला। मध्यखण्ड के पूर्वार्ध में नवदीप-महिमा, भक्तों का नवद्वीप आगमन तथा चैतन्य से उनके मिलन का वर्णन है। कई स्थलों पर भागवत-वर्णित श्रीकृष्ण लीला और श्री चैतन्य-लीला में साम्य है। अनेक

स्थलों पर असमानतायें भी है। वस्त्र-हरण-लीला-प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि चैतन्य नादिया नागरियों का वस्त्र-हरण नहीं करते, अपितु अपने निजगणों का या परिकरों का चीर हरण करते हैं—

अचिन्त्य एक दिन धन्य रमा खेले।
निज जन संगे क्रीड़ा करे संध्याकाले ॥

सबार अंगेर वस्त्र मिलाप कारिया।
आनन्दे हासियार हासेर सब बिबस्त्र कारिया ॥

सब जन लज्जाय अवश मेल तब।
करे आच्छादये अंग चाटकेर पुनू ॥

वस्त्र देह, वस्त्र देह, त्रिजगत राय।
एमन करे प्रभु तोरे ना लजाय ॥

एकेल सुनिया प्रभुर अधिक उल्लास।
खनेर अन्तरे सब जन दिले वास ॥

'एक दिवस संध्या काल अचिन्त्य चैतन्य निज जनों के साथ जल-क्रीड़ा में संलग्न थे, सहसा इन्होंने क्रीड़ा सहचरों के आवरणों का हरण कर उन्हें अवस्त्र कर दिया, आनन्द और उत्लास से वे (चैतन्य) क्रीड़ा-मग्न हुए। लज्जा के वशीभुत क्रीड़ा-सहचर अपने-अपने करों से अपने अंगों को आच्छादित करने लगे 'वस्त्र दे दें, वस्त्र दे दे', इस प्रकार के अनुनय करने लगे। लज्जा के वशीभूत होकर वे कहने लगे—'इस प्रकार के आचरण से प्रभु तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है।' इन वचनों से प्रभु अत्यधिक उल्लसित हुए, और उन्होंने तत्क्षण क्रीड़ा सहचरों के वस्त्र लौटा दिये।

मध्य खण्ड में महा प्रभु की 'नीलाचल-लीला वर्णित है। अन्तिम खण्ड में महाप्रभु की दक्षिण यात्रा, राय रामानन्द से मिलन, सेतुबन्ध व पुरी भ्रमण नीलांचल पर प्रत्यावर्तन आदि घटनायें वर्णित हैं। परिशेष में चैतन्य के अलौकिक तिरोधान का वर्णन है।

'चैतन्य मंगल' की कथा मुरारी गुप्त के 'श्रीकृष्ण-चैतन्य-चरितामृत' पर आधृत हैं। इसके अतिरिक्त 'भागवत', 'बृहद् संहिता', 'भविष्य पुराण', 'जैमिनी भारत' 'नारद-पांचरात्र' के अनेक श्लोकों की छाया इसमें विद्यमान हैं।

'पदकल्पतरु', व 'गौर-पद-तरंगिणी' में लोचन दास कृत धमाली संगृहीत है। इसमें ब्रजलीला विषयक धमाली नहीं है, अन्यत्र ब्रज लीला विषयक धमाली संगृहीत है। यहाँ जो धमाली उद्धृत है, उसमें नादिया-नागरी के भावों का वर्णन है—

आर रतन्याछ आलोसई,
गोरा भावेर कथा।
कोनेर भीतर कुलबधू,
कान्द्य आकुल तथा ॥
हलदि वाँरिते गोरी,
वासेल जतने (यतने)।
हलादि बरन गोरा चांद, पड़ा गेले मने ॥
किसेर रान्धन, किसेर बाउन,
किसे हलादि वांदल।

'कोई प्रेम विह्वला गोपिका गोरा चांद (चैतन्य) का गुणगान कर रही है, कृष्ण चैतन्य की कथा का स्मरण कर किसी प्रेमाकुला कुलबधू के नेत्र द्रवित हो गये हैं। अन्य एक गोरी हल्दी पीसने बैठी। तत्क्षण हल्दी-वर्ण गोरा चांद का रूप उसके नेत्रों और हृदय में उत्तर आया और उस आत्म-विस्मृता के लिये रींधना कैसा, परोसना और हल्दी पींसना कैसा ?'

'चैतन्य-मंगल' के अतिरिक्त, इनके दो अन्य ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं—'दुर्लभसार' एवं राय रामानन्द कृत 'जगन्नाथ-बल्लभ' का छन्दबद्ध अनुवाद। इन्होंने ब्रजबुली में भी भावपूर्ण पदों की रचना की है—एक पद्य यहाँ उद्धृत है—

गुञ्ज अलि पुञ्ज बहु कुञ्जे रहु मातिया।
मत्त पिकदत्त रवे फाटे मञ्जु छातिया ॥

बल्लीयुत मल्लो फुल गन्ध सह मातिया ।
कुन्द कलि भृंग अलिवृन्द काँन्हु नृत्तिया ॥

सखि मन्द मञ्जु भंगिया ।
कान्त विनु भ्रान्त प्रान काहे रहु बाँचिया ॥

भष्मतनु पुष्पधनु संगे रस पूरिआ ।
अंग मञ्जु भङ्गकर प्राण याकु फाटिया ॥

पश्च मञ्जु दुःख हेरि रोय पशु पाखीरे ।
बल्ली नव कुञ्ज भेल तुंग मय भाजी रे ॥

गच्छ सखि पुच्छ किंवा आनिदेह नाहरे ।
स्पर्श सुख दर्श लागि लोचनक आशरे ॥

[पद मंजरी ३५]

द० श्री०

लोचनदास

भक्त लोचनदास चैतन्य सम्प्रदाय में दीक्षित भक्त थे। इनका जन्म बंगाल के वर्दवान जिले के के ग्राम नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम कमलाकर तथा माता का नाम सर्वानन्दी देवी था। लोचनदास अपने माता-पिता की एक मात्र संतान थे। घर सम्पन्न था। ननिहाल भी धनी था। घर सम्पन्न होने के बाद भी लोचनदास का मन विषयों में नहीं लगा।

लोचनदास के माता-पिता को पौत्र का मुख देखने की लालसा हुई। इसलिए ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही विवाह कर देना चाहते थे। लोचनदास ने विवाह करना नहीं चाहा, किंतु माता-पिता के दबाव के समक्ष झुक गये। इनका विवाह एक सुशीला कन्या से हो गया। किंतु विवाह के बाद भी उनका मन ईश्वर भक्ति में ही लगा रहा।

श्रीखण्ड नामक स्थान में चैतन्य महाप्रभु के भक्त पंडित नरहरि महाराज निवास करते थे। लोचनदास ने उनसे जाकर दीक्षा ली और वहाँ भक्तवर श्रीनरहरि के सत्संग से लाभ उठाने लगे। उनका वैराग्य श्रीकृष्णानुराग में बदल गया।

इधर माता-पिता को जब ज्ञात हुआ कि उनका पुत्र श्री नरहरि महाराज का शिष्य हो गया तो वे प्रसन्न हुए। वे इन्हें घर ले आना चाहते थे, क्योंकि इनकी पत्नी विवाह के आठ वर्ष पश्चात् द्विरागमन के बाद ससुराल आ गयी थी और वहाँ पति को न पाकर व्यथित हुई। वह उदास रहती और एकांत में आँसू बहाया करती। लोचनदास के माता-पिता बहू की स्थिति से चिंतित हुए। उन्होंने समझा-बुझाकर उसको मैंके भेज दिया। कमलाकर जी ने श्रीनरहरि जी से सारी स्थिति बतायी। नरहरिजी ने लोचनदास को समझा-बुझाकर ससुराल आमोदपुर भेज दिया।

लोचनदास को ससुराल का घर याद नहीं था तथा अपनी पत्नी को भी नहीं पहचानते थे। अतः आमोदपुर पहुँचने पर गाँव में घुसते ही इन्हें एक युवती मिली। उन्होंने बड़े ही विनीत भाव से पूछा—"माताजी ! अमुक का घर कहाँ है ?" युवती एक बार उनकी ओर देखकर और उन्हें एक तंग गली का रास्ता दिखाकर सिर नीचा किये अपने रास्ते चली गयी।

लोचनदास ससुराल पहुँचे। बहुत दिनों बाद जामाता को आया देखकर लोचनदास के सास-ससुर बड़े प्रसन्न हुए। स्नान-भोजन के पश्चात् रात में सास की आज्ञा से एक कमरे में गये तो वहाँ देखते हैं, वही युवती खड़ी है, जिससे रास्ता पूछा था और माता कहकर संबोधित किया था। पत्नी ने देखा तो उसे 'माता' संबोधन याद आ गया और वह काँप गयी। भय-विषाद नेत्र मार्ग से अश्रु रूप में निकलने लगे। लोचनदास भी पत्नी की स्थिति से दुःखी हुए। काफी देर तक दोनों चुप रहे। अंत में लोचन दास ने पत्नी को विधाता का विधान बतलाकर समझाया। पत्नी ने कहा, 'स्वामिन् ! मेरे तो आप ही आराध्य देव हैं। आपको छोड़कर मैं दूसरे किसी ईश्वर को नहीं जानती। मैंने तो सोते-जागते सदा-सर्वदा आपका ही चिंतन किया है। मुझे आपका

शरीर नहीं, हृदय चाहिये। मैं नहीं चाहती कि आपने जिसको 'माँ' कह दिया उसके साथ पत्नी का-सा बर्ताव करके धर्मपथ से च्युत हों। मेरी तो बस यह एक ही प्रार्थना है कि मुझे सदा अपने साथ रक्खे। ईश्वर आपके और मेरे पवित्र व्रत को निबाहेंगे।"

लोचनदास ने पत्नी की प्रार्थना को स्वीकार किया। पति-पत्नी दूसरे दिन वहाँ से चल पड़े।

माता-पिता की मृत्यु के बाद लोचनदास अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों को बाँटकर गाँव के बाहर एक पर्णकुटी बनाकर सती पत्नी के साथ रहकर वहीं भगवद् भजन करने लगे। लोचनदास का श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में प्रगाढ़ प्रेम था। इसी से इन्होंने 'चैतन्य-मंगल' नामक बंगला महाकाव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त 'दुर्लभसार', 'वस्तुतत्त्व-सार' 'आनन्द-लतिका' 'प्रार्थना', 'श्रीचैतन्य-प्रेम-विलास', 'देहनिरूपण' और 'रागलहरी' नामक सात ग्रन्थों की रचना की।

इनका सारा जीवन भजन कीर्तन तथा ग्रंथ निर्माण में व्यतीत हुआ। ६६ वर्ष की अवस्था में संवत् १६४५ वि० में पौष मास में इनका भगवत् स्मरण करते-करते ही देहावसान हुआ। के ग्राम में कुनुई नदी के तीर पर इनकी समाधि बनी है।

स० गु०

वंशीदास

वंशीदास श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे (कर्णानन्द, भक्ति-रत्नाकर-८३)। इन्होंने रूप गोस्वामी कृत 'निकुंज-रहस्य' का बंगला में रूपान्तर किया था। इनके ३३ पद 'ब्रजबुली' में प्राप्त होते हैं। इनका एक पद उद्धृत किया जा रहा है—

धातु प्रवाल दल नव गुञ्जा फल,
ब्रज बालक सने साजे।
कुटिल कुन्तल बेड़ि, मणि मुक्ता झुरि,
कटि तटे घुघुर बाजे॥

नाचत मोहन बाल गोपाल।
व्रज बधू मेलि, देअइ करताल॥

नन्द सुनन्द यशोमति रोहिनी,
आनन्दे सुत मुख चाय।
अरुण दृगाञ्चल, काजरे रंजित,
हासि हासि दशन देखाय॥

वंशी कहइ सब ब्रजरमनीगण,
आनन्द सायरे-भास।
हेरइते परशिते लालन करइते,
स्तन खीरे भीजल बास॥

(पदकल्पतरु, ११५४)

वंशीवदन दास

वंशीवदन दास का जन्म १४९४ ई० में हुआ था। 'वंशी-शिक्षाविलास' में इनका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

श्री छकड़ि चट्ट नाम विख्यात भुवने।
ताहार आलज बंशी जावे सर्वजन॥
पाटुलिर वास छाड़ि तेल कुलिपाय।
वास करिलेन आसि आपन इच्छाय॥

(वंशी शिक्षाविलास उपक्रमणिका, पृ० १२२)

इससे यह स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम छकड़ि चट्टोपाध्याय था। वे पाटुलि ग्राम को छोड़कर कुलियाग्राम में आ बसे थे। इनका जन्म नवद्वीप के निकटवर्ती इसी 'कुलिया' ग्राम में हुआ था। इसी प्रसंग में इनके विषय में एक अन्य उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

श्री वंशीवदन, वंशी, आर वंशीदास।
श्रीवदन, ब्रह्मानन्द, पंचम प्रकाश॥
प्रचुर पंडित नाम गाय कविगण।
मुख्य नाम हय किन्तु श्री वंशीवदन॥

—गौरपद तरंगिणी।

ये चैतन्य के अनन्य भक्त थे। उन्होंने इन्हें 'रसराज-उपासना' सिखायी थी। इनके दो ग्रन्थों का

पता चलता है–'दीपकोज्ज्वल', तथा 'दीपान्विता'। इनके पद श्री कृष्ण बाललीला, श्री राधा का पूर्वराग, रूपोल्लास, आक्षेप-अनुराग, खंडिता, भावान्ते-मिलन, रमलास-दान, लीला, नौका-विलास, आदि शीर्षकों में विभक्त हैं। यहाँ इनके दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

पाटम्बर पारि अभिनव नागरि,
ऐछन कयल परान।
शिर पर शिखिरि-काम-सिन्दुर परि,
लखइ न पारइ आन ॥

देख सखि अद्भुत रङ्ग,
रसिक शिरोमनि रमनिवेश धरि,
आउत दौतिक संग ॥

आरत पद वाम राम गति धावइ,
मोहिनि चाहनि वामा।
भानु सुता पाशे, उपनित भेलहिं,
श्यामा पेखल रामा ॥

मनिमय कंकन दुइ भुजे शोभइ,
शङ्ख, शोहर तछु माझ।
एहेन चातुरि कबहुँ ना पेखलूं,
ए महि-मण्डल माझ ॥

अरुन किरन श्यामा पदतले पेखलूं,
तेजि करिये अनुमान।
वंशीवदन कहे राइक निकटतिह,
ऐछन करल परान ॥

(पदकल्पतरु, ५४४)

(२)

आलो सइ, कि हइल मोरे प्रेम ज्वाला (जाला)।
मो मेन आपना खाइलूं, केने वा यमुना गेलूं,
शयने स्वप्ने देखो काला ॥

सात पाँच सखी संगे, नाना आभरन अंगे,
माथे गेलाम जल भरि वारे।
ते माथा पथेर धारे, से खाने भूलिलूं वाहे ॥

यमुना याइते पथे दो सारि कदम्ब आछे,
ताते चरे से कोन देवता।
तार गलार माला दिले, आचम्विते मोर गले,
सेइ होते भरने होल वेथा ॥

से काला कालिया श्याम, कालिया ताहार नाम,
कलिन्दी कदम्बतले खाना।
वंशीवदने कय जुवती जीवार नय,
देखिले मरमे देय हाना ॥

(पदकल्पतरु, १२१)

द० श्री०

वल्लभदास

वल्लभदास नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। ये जाति के वैद्य और कविराज उपाधि से भूषित थे।

इनके पद 'पदकल्पतरु' में संगृहीत हैं। उदाहरण स्वरूप उनमें से एक पद नीचे दिया जा रहा है—

(१)

ओ मुख शरद-सुधाकर-सुन्दर,
इह नलिनि-दल गंजे।
ओ तनु नवघन-सुन्दर रंजित,
इह थिर दामिनि पुंजे ॥
देख राधामाघव जोरी।
दुहुंक परश-रसे दुहु पुलकाइत,
दुहुँ दोहां रहल आगोरी ॥
ओ नव नागर सब गुणे आगर,
इह से कलावति-सीम।
ओ अति चतुर शिरोमणि विदग्ध,
ए सब गुणहि गरीम ॥
मधुर वृन्दावने श्याम-गोरि-तनु,
दुहुँ नव किशोरि किशोर।
नरोत्तमदास आश चरणें रहु.
श्रीवल्लभ-मन मोर ॥

स० गु०

वासुदेव घोष

वासुदेव घोष का जन्म बुड़ना या बुरंगीसिलहट में हुआ था। ये तीन भाई थे। इनके पिता कुमारहट्ट में जा बसे थे। परन्तु वासुदेव घोष अपने भाइयों सहित नवद्वीप में आकर बसे। ये तीनों श्रीचैतन्य महाप्रभु के सहचर तथा अनुयायी थे। गायन विद्या में पारंगत होने के कारण नवदीप में गौरांग गठित तीन संकीर्तन दलों के ये तीनों ही प्रधान गायक थे।

वासुदेव घोष के ९५ पद 'पदकल्पतरु' में संगृहीत हैं। इनमें १२ पद ब्रजबुलि के हैं। इनके सभी पद गौरांग विषयक हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वासुदेव घोष ने गौरांगलीला के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का वर्णन ही नहीं किया। नवद्वीप लीलाओं में ब्रज गोपियों का अभाव था। अतः नरहरि सरकार के अनुकरण द्वारा वासुदेव ने अपने को तथा अन्यान्य गौर भक्तों को नदीया-नागरी कल्पना करके 'नागरी-भाव' के पदों की एक स्वतन्त्र धारा चलाई। श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ की गयी दान-लीला, नौका-लीला के समान अन्य लीलाओं की भी इन्होंने उद्भावना की।

जीवन के अन्तिम दिनों में ये तामुलक में आकर बस गये थे। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

निरमल गोरा तनु क्रषिल कान्चन जनु,
हेरहते भे गेलूं भोर।
भाउ भुजंगमे दंशक मझुमन,
अन्तर कांपइ मोर॥

सजनि धव हाम पेखलूं गोरा।
आकुल दिग-विदिग ना पाइये,
मदन लालसे मन भोरा।
अरुनित नयने तेरछ अवलोकने,
पारिखे कुसुमशर साधे।
जीवइते जीवने, खेह नाहि पाचलूं,
डुबलूं गंग अगाधे॥

मन्त्र महोदधि तुहूँ तुहूँ जानसि यदि,
मझु लागि करबि उपाय।
वासुदेव घोष कहे, शुन शुन ए सखि,
गोरालगि प्रान मोर जाय।

(पद मंजरी-हि० ब्र० बु०, पृ० ५०५८ (३६)

(२)

शचीर अंगिनाय नाचे विश्वम्भर राय।
हासि हासि फिरि भाएरे लुकाय॥
वयने बसन दिया बलें लुकाइनू,
शची वले विश्वम्भर आमि ना देखिनू॥
मायेर अञ्चल धरि चञ्चल चरने।
नाचिया नाचिया जाय खञ्जन गमने॥
वासुदेव घोष कहे अपरुप शोभा।
शिशु रूप देखि हय जगमन मोहा।

(३६ हि० ब्रज० ५०५९)

स० गु०
द० श्री०

विजयानन्द दास

विजयानन्ददास के जन्मादि के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती, केवल इतना ज्ञात होता है कि ये हस्तलिखित पोथियों के लिपिकर्ता थे और सन् १५०९ ई० के आस-पास विद्यमान थे। इनका निम्नलिखित पद 'पद-कल्पतरु' में संकलित है। इस पद से यह स्पष्ट होता है कि ये चैतन्य देव के समकालीन थे (पद कल्पतरु पद २२४२)। यह पद चैतन्य देव विषयक है—

(१)

प्रफुल्लित कनक-कमल मुख मण्डल,
नयन खञ्जन ताहे साजे।
दीघल ललाट माझे श्री हरिमन्दिर साजे,
करउ कोपन कटि माझे॥

जय जय गौरांग चांदे कलुषविनाश।
पतितपावन जग तारन-कारन,
संकीर्तन परकाश॥ ध्रु०।

आजानुलम्बित भुज, दन्त विराजित,
गले दोले मालती दाम।
भुवन मनोहर दीर्घ कलेवर,
पुलक कदम्ब अनुपाम ।।
प्रातर अरुनरुचि श्रीपदपल्लव,
अभेद अद्वैत नित्यानन्द।
विजयानन्द दासे आनन्द सायरे भावो,
चरन-कमल मकरन्द ।।

(पदकल्पतरु, २२४२; गौरपद-तरंगिणी, पद २४)

द० श्री०

विनोदसिंह

राँची जिले का एक क्षेत्र है—पाँचपरगना। यहाँ पाँचपरगनिया नामक क्षेत्रीय भाषा बोली जाती है जो नागपुरी की एक विभाषा है। बंगला भाषा के प्रभाव के कारण पाँचपरगनिया का उच्चारण वर्तुलाकार होता है। इस बोली के दो प्रसिद्ध कवि हुए हैं—विनंदिया और गौरांगिया। विनोद सिंह को विनंदिया कहते हैं। कुछ लोग इन्हें विनन्द सिंह भी कहते हैं। विनोद सिंह सिल्ली (राँची) के राजवंश के थे। इनके पिता का नाम पृथ्वीनाथ सिंह था। ये परमार वंशी क्षत्रिय थे। विनोद सिंह आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुए थे। इसी राजवंश के राजाबहादुर उपेन्द्रनाथ सिंह ने सन् १९५६ में "आदि झूमर संगीत" नामक एक गीत-संग्रह का प्रकाशन किया था, जिसमें विनोद सिंह तथा गौरांग सिंह के गीत संकलित हैं। ये वैष्णव-परंपरा के भक्त रहे हैं।

विनोद सिंह का कृष्ण भक्ति सम्बन्धी एक गीत नीचे दिया जा रहा है। इसे पढ़ते समय वर्तुलाकार उच्चारण पर ध्यान दिया जाना उचित होगा—

दूति बले पुन पुन, मोर निवेदन सुन,

स्थायी

नागर चलु राधार राखो कुल लाज।
नागर चलु राधार राखो कुल लाज ।।

२

विरहे तुमार तरे, ब्रजेते राधिका मरे,

स्थायी

नागर विलम्बेते आर किबा काज।
नागर विलम्बेते आर किबा काज ।।

३

यदि ना जाइबे हरि नैले आमरा जाब फिरि

स्थायी

नागर सत्य बल मोर ब्रजराज।
नागर सत्य बल मोर ब्रजराज ।।

४

पुराब मनेर आशा, जाहबे राधा दशा,

स्थायी

नागर नादिय नादिय विनन्दे प्रेमे बाज ।।

श्र० कु० गो०

विष्णुविचित्र

विष्णु और विष्णुदास नाम के कई भक्तों का नामोल्लेख नाभादास के प्रसिद्ध चरित्र-ग्रन्थ 'भक्तमाल' में मिलता है, किन्तु उन नामों के साथ 'विचित्र' अभिधान का प्रयोग अनुपलब्ध है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त हितध्रुवदास कृत भक्त नामावली में एक दोहा मिलता है—

गोविन्दस्वामी गंग अरु, विष्णुविचित्र बनाइ।
पिय प्यारी को जस कह्यो, राग रंग सों गाइ ।।

इसकी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए श्री राधाकृष्ण दास ने इनकी कुछ कविताओं के देखने का भी उल्लेख किया है। वृन्दावन शोध-संस्थान, वृन्दावन में सुरक्षित जीवगोस्वामी के संकल्प पत्र (वि० सं० १६६५) में पृष्ठ भाग पर जिन साक्ष्यों के हस्ताक्षर दिए हुए हैं, उनमें गदाधरभट्ट, राघवदास, मनोहरदास, कृष्णदास कविराज, राघव पुरोहित, गोपीनाथ, वृन्दावन

दास, गोपीनाथदास, हरिदास (अधिकारी) और राधारमणदास के हस्ताक्षरों के साथ जीवगोस्वामी के भी हस्ताक्षर हैं और ये हस्ताक्षर यह प्रमाणित करते हैं कि कृष्णदास कविराज और विष्णुदास (उपनाम विष्णु-विचित्र) दोनों समकालीन हैं। बंगला भक्तों की नामावलियों का संधान करते समय 'चैतन्य-चरितामृत' में एक नाम विष्णुदास का भी मिलता है। बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता के संग्रह में राधाकृष्णं सम्बन्धी कुछ बंगला कविताएँ उपलब्ध होती हैं। हितध्रुवदास ने विष्णु विचित्र का नाम जिन रसोपासकों के साथ लिया है, वे सभी राधाकृष्ण के अनन्यभक्त ओर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के हैं। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत को वि० १६३८ में लिखा था। उनका समय वि० सं० १५८५ से वि० सं० १६७२ तक माना जा सकता है। अतः विष्णुदास अर्थात् विष्णुविचित्र का उपस्थितिकाल वि० सं० १५५० से १६७७ के मध्य मानना संगत होगा। जीवगोस्वामी के संकल्प पत्र के साक्ष्य पर भी इनका कृष्णदास कविराज आदि चैतन्य-भक्तों का समकालीन होना प्रमाणित होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि 'विष्णुविचित्र' अपने समय के एक मान्य और अतिशय महत्वपूर्ण व्यक्ति रहे होंगे। संकल्प पत्र में उपरिकथित सभी हस्ताक्षरकर्ता विशिष्ट महत्व के व्यक्ति हैं। डा० तारापदमुखर्जी ने अपने एक महत्वपूर्ण लेख में किसी पाण्डुलिपि से 'साक्षी विष्णु-विचित्रे' करके वि० सं० १६५१ का एक छाया चित्र दिया है। इससे ज्ञात होता है कि विष्णु-विचित्र चैतन्य सम्प्रदाय के ख्याति प्राप्त महानुभाव थे।

न० च० बं०

वीरचन्द्र

वीरचन्द्र का आविर्भाव काल सं० १५२५ ई० माना जाता है। इनका एक अन्य नाम वीरभद्र भी था। नित्यानन्द के तिरोधान के पश्चात् बंगला-वैष्णव-भक्त समाज ने अद्वैत को अपना नेता चुना। किन्तु जाह्नवी देवी उनकी प्रतिद्वन्द्विनी बन गई। जाह्नवी के पश्चात् वीरभद्र ने उनका स्थान ग्रहण किया। वीरभद्र के पश्चात् उनकी सन्तति ने खड़दह में 'श्रीपाट' गुरुवंश स्थापित किया। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है। इसमें कृष्ण ने राधा से अपने गौरांग रूप में अवतरित होने का मर्म प्रकट किया है—

राइ त्यजि काल वरण करिब धारण,
तोमार अंगेर कान्ति ।
तुया नाम लइया वेड़ाइव कांदिया,
अश्रुजले हइब शान्ति ।।

मिलि भक्तगण करिब कीर्तन,
राधा राधा ध्वनि करि ।
क्षणे क्षणे मूर्च्छा हइब यखन,
अचेतन रइब पड़ि ।।

भावी तव भाव हइब प्रेम भाव,
स्वभाव छाड़िया देह ।
त्यजि वंशीधर हइब दण्ड धर,
राखिते नारिबे केह ।।

अमूल्य रतन तव प्रेम धन,
अयाचके दिव आनि ।
वीरचन्द्र कहे तबो खलास,
पाइबे प्रेमेर ऋणि ।।

(के० जी० आर० २८६)

'राधा, मैं (अगले जन्म में) अपने कृष्ण वर्ण को त्याग कर तुम्हारे अंग की कान्ति (गौरवर्ण) धारण करूँगा। तुम्हारा नाम स्मरण करते हुए मैं घूमूंगा और प्रेम-सिंचित अश्रुजल से शान्ति पाऊँगा। भक्तों के साथ 'राधा-राधा' कह कर तुम्हारा संकीर्त्तन करूँगा। संकीर्त्तन करते-करते क्षण-क्षण मूर्च्छित होकर अचेतन (प्रेम मूर्च्छना में) पड़ा रहूँगा। तुम्हारे भाव से भावित मैं प्रेम-विह्वल हो जाऊँगा। अपने स्वभाव (प्रकृति) का परित्याग कर, वंशी को त्यागकर मैं दण्डधारी बनूंगा। इसमें कोई भी व्याघात नहीं दे सकेगा। तुम्हारी प्रेम-रत्न सम्पत्ति

को अयाचित ही सर्वजनों में वितरित कर दूँगा। तभी तुम्हारे प्रेम-ऋण से मुक्ति मिल सकेगी।'

द० श्री०

वृन्दावनदास

'प्रेमविलास' में वृन्दावनदास का सांकेतिक परिचय ही मिलता है।

> कुमारहट्ट बासी विप्र बैकुण्ठ जेहां,
> तार सहित नारायनीर हइल विवाह।
> वृन्दावन दास जबे आछिलेन गर्भे,
> तार पिता वैकुण्ठ नाथ चलि गेले स्वर्गे॥

इन पंक्तियों के अनुसार वृन्दावन दास कुमार हट्टवासी वैकुण्ठ ब्राह्मण के पुत्र थे। वृन्दावन दास की माता का नाम नारायणी था। वृन्दावन दास अभी गर्भ में ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके अतिरिक्त इनकी जीवनी विषयक सामग्री संदिग्ध है। इनके विषय में अनेक जनश्रुतियाँ और किंवदन्तियां प्रचलित हैं। नवद्वीप में श्रीराम का प्रांगण वैष्णव समाज का तीर्थ स्थल था। यहाँ गौरांग अपने पार्षदों के साथ नित्य संकीर्तन करते। थे उक्त श्रीराम चार भाई थे, वे सभी चैतन्य के परम भक्त थे। 'प्रेमविलास' नामक ग्रन्थ में श्रीवाम, श्रीराम, श्रीपति व श्रीकान्त, इन चार भाइयों का उल्लेख मिलता है। 'श्री चैतन्य-चरितेर-उपादान' शीर्षक ग्रन्थ (ले० डा० मजुमदार) में श्रीराम के एक अन्य ज्येष्ठ भ्राता का परिचय मिलता है। उनका नाम नलिनी पण्डित था। उनका गोलोकवास हो चुका था। उनकी एक कन्या का नाम नारायनी था। वृन्दावन दास इन्हीं नारायनी के पुत्र थे—

> सर्व शेष भृत्य तान वृन्दावनदास,
> अवशेष पात्र नारायनी गर्भ जात।
> (अन्त खण्ड-पृष्ठ अध्याय)

कुछ लोगों के अनुसार नारायनी श्रीराम की कन्या थी। इनका जन्म इनके पिता की मृत्यु के बाद हुआ था। इसका उल्लेख उद्धवदास ने 'गौरपद-तरंगिनी' में किया है—

> प्रभूर चर्वितपान, स्नेह वशे केला दान,
> नारायनी ठाकुरानी हाते,
> शैशव विधवा घनी, माधवी संतो शिरोमणि
>
> प्रभू शक्ति संचारिला, बालिका गर्भिनी होला
> लोक माझे कलंक नहिल
> दश मास पूर्न जबे, मातृ गर्भ होले तबे
> सुन्दर तनय एक होलो
> सेइ वृन्दावन दास, त्रिभुवन सुप्रकाश
> चैतन्य-लीला व्यास जेइ
> उद्धव दासेर दया, करिदिए पद छाया
> प्रभुर मानस पुत्र सेइ।

'स्नेहाधीन होकर प्रभु ने स्वचर्वित पान का दान नारायनी को दिया। नारायनी शैशव में ही विधवा हो गई थी। प्रभु की शक्ति के प्रभाव से बालिका नारायनी गर्भवती हुई। इस निमित्त उन्हें लोक में कलंकित नहीं होना पड़ा। दस मास के व्यतीत हो जाने पर, गर्भ के पूर्ण हो जाने पर, एक सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया। वह बालक ही वृन्दावन दास के नाम से विख्यात हुआ। अपनी भक्ति से उसने त्रिभुवन को प्रकाशित किया। वृन्दावन दास की ख्याति चैतन्य-लीला गान के व्यास के रूप में हुई। वृन्दावन दास चैतन्य महाप्रभु के मानस पुत्र थे।'

उद्धवदास अट्ठारहवीं शताब्दी के भक्त-कवि थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि वृन्दावन दास की जन्म-कथा इस काल तक जनश्रुति के रूप में विख्यात थी। वृन्दावनदास के जन्मोपरान्त नारायनी देवी अपने पितृ गृह का परित्याग कर मानगाछि ग्राम में निवास करने लगी थीं। मानगाछि में नारायनी देवी का 'पाट' है। इस पाट की स्थापना वासुदेव दत्त ने की थी। समाज परित्यक्ता नारायनी देवी के भरण-पोषण की व्यवस्था वासुदेव दत्त ने हीं की थी।

नारायनी और वृन्दावन दास वासुदेव दत्त की इस सहृदयता के आभारी थे। 'चैतन्य-भागवत' के अन्त्य-खण्ड में इस आभार को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा है—

जगतेर हितकारी वासुदेव दत्त,
सर्व भूते कृपालु चैतन्य रसेर मत,
गुनग्राही अदोश दर्शी-सभाप्रति।

प्रोफेसर सुकुमार सेन ने वृन्दावनदास की इस जन्म कथा को अस्वीकार करते हुए—इसे पूर्ण रूपेण कल्पित कहा है। उनके अनुसार कृष्णदास कविराज ने वृन्दावनदास के जन्म की जो कल्पना की है, वह गुणार्थक है। वृन्दावन दास चैतन्य लीला के व्यास थे। अतः व्यास के समान ही ये कानीन पुत्र थे।

वृन्दावन दास के जन्म-समय के विषय में मत-मतान्तर है। जगत्बन्धु भद्र, अम्बिका चरन ब्रह्मचारी तथा हरिमोहन मुखोपाध्याय के अनुसार इनका जन्मकाल शक संवत् १४२९ (सन् १५०१ ई०) वैशाख कृष्ण द्वादशी है। दिनेशचन्द्र सेन के अनुसार इनका जन्म शक संवत् १४५१ (१५३५ ई०) और प्रोफेसर सुकुमार सेन के अनुसार सन् १५०१ से १५१५ ई० के मध्य है। परन्तु प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से यह निश्चय होता है कि इनका जन्म सन् १५१८ के लगभग हुआ था। वृन्दावन दास दीर्घजीवी थे और 'खेतुरी-उत्सव' में उपस्थित थे। वृन्दावनदास का बाल्यकाल नवद्वीप के निकट मानगाछि ग्राम में व्यतीत हुआ। मान गाछि ग्राम के निकट ही बड़-गाछि ग्राम था। नित्यानन्द दास बड़गाछि ग्राम में ही निवास करते थे। वृन्दावन दास को नित्यानन्द का सम्पर्क-लाभ हुआ था। वृन्दावन दास का शेष जीवन वर्द्धमान के निकट देनूड़ ग्राम में व्यतीत हुआ। वैष्णव भक्तों में वृन्दावन दास विशेष सम्मानित व्यक्ति थे। वृन्दावन दास की ख्याति 'चैतन्यलीला के व्यास' के रूप में थी। कृष्ण दास कविराज ने इनकी वन्दना 'चैतन्यलीला के व्यास'—रूप में की है। वृन्दावन दास नित्यानन्द के घनिष्ठ अनुचर तथा अनन्य सेवक थे। उनके आदेश से ही इन्होंने 'चैतन्य-भागवत' का प्रणयन किया था। वृन्दावन दास को चैतन्य की कथा नित्यानन्द प्रभु से ही प्राप्त हुई थी। उक्त ग्रन्थ की रचना इन्होंने 'चैतन्य-मंगल' शीर्षक से की थी। बाद को यह 'चैतन्य-भागवत' के नाम से विख्यात हुआ।

'नित्यानन्द प्रभु मुखे वैष्णवेर तत्व, किछु किछु सुनिलाम सबार महात्म्य' नित्यानन्द प्रभु के मुख से मैंने वैष्णव तत्व और उसके समस्त महात्म्य को समझ सका। चैतन्य भागवत के अनुसार—

'वृन्दावन दास नारायनी-नन्दन, 'चैतन्यमंगल' जेहा करिला वचन।' नारायनी नन्दन वृन्दावन दास ने 'चैतन्य मंगल' की रचना की। तत्पश्चात् इसका नामकरण 'चैतन्य-भागवत' हुआ। इन्होंने देवड़ ग्राम में श्रीगौर-निताई के विग्रह की स्थापना की थी। 'चैतन्य-भागवत' के आदि पर्व में वृन्दावन दास के विषय में निम्नलिखित उक्ति मिलती है—

चैतन्य लीलार ब्यास, वृन्दावन दास।
वृन्दावन दास कैल चैतन्य मंगल।
जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल॥

चैतन्य निताई जाते जानिय महिमा।
जाते जानि कृष्ण-भक्ति सिद्धान्तेर सीमा॥

भागवते जत भक्ति सिद्धान्तेर सार।
लिखिमाछेन इहाँ जान करिया उद्धार॥

चैतन्य मंगल सुने जदि पाखण्डी जवन।
सेह महावैष्णव होय ततक्षण॥

मनुष्ये रचित नारे-ग्रन्थ धन्य
वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्री चैतन्य॥

वृन्दावन दास बदे कोटि नमस्कार।
त्रदे ग्रन्थ करिला तेहो काटिला संसार।
नारायनी-चैतन्येर उच्छिष्ट भाजन।
तार गर्भे जन्मेला श्री दास वृन्दावन॥

'चैतन्य-भागवत्' की रचना के समय इनके ज्येष्ठ मातामह श्रीराम जीवित थे। गदाधर नित्यानन्द व व अद्वैत भी जीवित थे। वृन्दावन दास के जीवनी लेखकों ने यह स्पष्ट दिया है कि ये दीर्घजीवी थे। इनकी मृत्यु १५८० ई० के आस पास हुई थी। नरोत्तम दास ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि 'खेतुरी' उत्सव में वृन्दावन दास उपस्थित थे। यह उत्सव १५८० ई० के पश्चात् आयोजित हुआ था। इस आधार को स्वीकार करते हुए वृन्दावन दास का तिरोधान काल १५८० ई० के बाद किसी समय निर्धारित किया जा सकता है। नित्यानन्द के तिरोधान के पश्चात् वृन्दादास देनूड़ ग्राम में निवास करने लगे। अपने जीवन का शेष समय इन्होंने वृन्दावन में व्यतीत किया। चैतन्य-भागवत् एक वृहत् ग्रन्थ है। यह तीन खण्डों में विभक्त है। इसकी छन्द-संख्या प्रायः पच्चीस हजार है। आदि खण्ड में पन्द्रह अध्याय हैं। इस अंश का प्रतिपाद्य है—चैतन्य महाप्रभु की गया धाम की यात्रा और वहाँ से पुनः आगमन। मध्य खण्ड में गौड़ीय भक्तों से मिलन की विविध घटनाओं के अतिरिक्त चैतन्य की उड़ीसा-यात्रा भी वर्णित है।

वृन्दावन दास मर्यादा मार्गी थे। वे शृंगार-मूला भक्ति के विरोधी थे। ऐसा अनुमान है कि १६वीं शताब्दी के अंतिमचरण में १५८८ ई० के आस-पास इनका परलोक गमन हुआ।

इनकी पाँच कृतियाँ बताई जाती है:-तत्त्व-निवास, दधिखंड, वैष्णव-वंदना, भक्तिचिंतामणि तथा चैतन्य-भागवत।

इनमें से 'चैतन्य-भागवत' वृन्दावनदास की सर्व प्रमुख रचना मानी जाती है। इसके रचनाकाल के विषय में ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

वृन्दावनदास में उच्चकोटि की कवि-प्रतिभा थी। ये ब्रजबुलि के श्रेष्ठ कवियों में से थे। उदाहरण स्वरूप इनका एक पद उद्धृत किया जा रहा है:—

(१)

केछै चरणे कर-पल्लव ठेललि।
मीललि मान भुजंगे।
कवले-कवले जीउ जरियव यायव।
तबहि देखब इह रंगे॥

माधो किए इह (जिद्द ?) अपार
को कहु वीर-वीर महाबल,
पाङरि उतारब पार॥

श्यामर झामर मलिन नलिन मुख
झर-झर नयनक नीर॥

पीताम्बर गले पदहि लोटायल,
हिया केछे बांधलि धीर॥

राधि साधि छले घरचे महा विकल,
धन धन दीघ निरास।
मनमथ दाह-वहने मन घसि गेलो,
रोखे चलल निज बास॥

अविरोधि प्रेम-पन्थ तुहुं रोधलि,
दोष लेश नाहि नाह।
वृन्दावन कह निषेध ना मानलि,
हामारि ओरे नाहि चाह।

(पद कल्पतरु, ४६८)

द० श्री०

ब्रजकिशोर

वैष्णव भक्तों की सूची में ब्रजकिशोर का केवल उल्लेख मिलता है। ये सन् १६५३ ई० के आस-पास विद्यमान थे। इनके कुछ अप्रकाशित पद विभिन्न पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हैं। जो पद यहाँ उद्धृत किया गया है वह बंगीय साहित्य परिषद्-पाण्डुलिपि संख्या २०० (समय १२२२ बंगीय संवत्) से लिया गया है—

राइ साजे वंशी साजे ना पड़िल ओर।
कि करिते, कि करे ओवेशे मन मोर॥

आंचड़े-चिकुर केश भार।
पाय बांधे फुलेर माला ना करे बिचार॥

काजर चरण तले नायने आलता ।
श्रवण कुहरे लजा गुञ्जे नाग लता ॥

गले परे किंकिनी कटिते परे हार ।
करे परे नुपुर जंघेर आगे टार ॥

गद् गद् हजा राइ झांट चलि याय ।
केने रे दारुण पथ झांट ना पुराय ॥
ब्रज किशोर कर्म पथ पुराइला ।
निधुवने याजा राइ जय ध्वनि दिल ॥
(व० स० प० पाण्डु०)

'राधा अपना शृंगार कर रही थी कि कृष्ण की वंशी बजी, उसकी ध्वनि राधा के कानों में पड़ी, वंशी बजती ही रही, राधा का मन प्रेम विभोर हो गया, विह्वलता से वह आत्मविस्मृत हो गई। संवारे हुए केश (कंघी किए केश) को पुनः संवारने लगीं। विभ्रमित होकर पैरों में फूलों की माला बांधने लगी, चरणों में काजल और नेत्रों में आलता लगाने लगी, गले में किंकिणी और कटि में हार पहनने लगी। करों में नूपुर और एड़ी में कर्णाभूषण धारण करने लगी। गद्गद भाव विह्वला राधा आतुरता से गमन करती है। परन्तु इस लम्बे पथ का न जाने अन्त क्यों नहीं होता? ब्रजकिशोर कहते हैं, पथ समाप्त हुआ और निधुवन में प्रवेश कर राधा आनन्दातिरेक से विह्वल हो गई।'

द० श्री०

ब्रजानन्द

ब्रजानंद की जीवनी विषयक अपेक्षित सूचनाएँ उपलब्ध नहीं है। 'कर्णानन्द' से केवल इतना ज्ञात होता है कि ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे और वृन्दावन में रहते थे। इनका निम्नलिखित पद 'पदकल्पतरु' में संकलित है—

नागर निकट सजे दूति आउल,
राइ गुनागरि ठाम ।
श्यामल कत दुःख देखि ना पारिये,
कहइते आइल हाम ॥
की जाने कखन देखल तोहे श्यामर,
तूया रूप करत धेयान ।
राधानामे द्विगुन तनु मोड़इ,
धेरज ना धरे परान ॥

शुन कहि सुन्दरि तोय ।
सो हेन गुन सागर,
तोहे से पुरुख बध-होय ॥

तुहुं रमनो धनि, मुकुट शिरोमणि,
मोहे ना करु आन छन्द ।
कह ब्रजानन्द विलम्ब न करि धनि,
हेरह श्यामर चन्द ॥

'सुनागरि (राधा) के निकट नागर (कृष्ण) के निकट से दूती आई। उसने कहा, 'श्याम की वियोग जनित पीड़ा को मैं देख नहीं सकती। अतः श्याम की असह्य पीड़ा को तुमसे कहने आई हूँ। तुम्हारे दर्शन किए हुए कितने दिन बीत गए, श्याम को इसका स्मरण नहीं, तुम्हारी स्मृति में वे निरन्तर डूबे हुए हैं। राधा-नाम-श्रवण से ही उनकी वेदना द्विगुणित हो जाती है। प्राण नहीं रख पाते। ऐ सुन्दरि! मेरा कहना सुनो। तुम्हें ऐसे सुनागर, सर्व गुणसागर, पौरुष-निलय के वध का दोष लगेगा। तुम रमणियों की मुकुट शिरोमणि हो। मेरे कथन का निरादर न करो। व्रजानन्द कहते हैं, ऐ धन्या, विलम्ब न कर, श्याम के मुख-चन्द्र का दर्शन करो।'

द० श्री०

शंकरदास पण्डित

शंकरदास पण्डित दामोदर दास पण्डित के अनुज और महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। 'चैतन्य-चरितामृत' में महाप्रभु शाखा-वर्णन के अन्तर्गत इनका उल्लेख मिलता है—'ताहार अनुज-शाखा शंकर पण्डित, प्रभु पदोपधान जार नाम विदित'। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

द० श्री०

शंकरदास वसु

शंकरदास बसु कुलीन ग्रामवासी और महाप्रभु के सेवक थे। यथा—कुलीन ग्रामवासी सत्यराज, रामानन्द, यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शंकर, विद्यानन्द काशीनाथ वसु आदि यत ग्राम वासीम, सबेइ चैतन्य-भृत्य, चैतन्य-प्राण-धन।' इनके विषय में कोई अन्य सूचना नहीं मिलती।

मु० अ०

शंकरदास विश्वास

शंकरदास विश्वास नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। नरोत्तम विलास में इनके विषय में निम्नांकित पद उद्धृत हैं—

जय वैष्णवेर प्रिय शंकर विश्वास।
गौर गुण गाने जेहों परम उल्लास ॥

द० श्री०

शंकरदास घोष

शंकरदास घोष का जोवनवृत्त अज्ञात है। 'गौर-पद-तरंगिनी' में इनके पद संकलित हैं। उनसे विदित होता है कि ये चैतन्य महाप्रभु के रूपासक्त भक्त थे। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

देखरे ! देखरे ! सुन्दर शची नंदना।
आजानुलम्बित भुज्जा बाहु सुबल ना ॥

मयमत हाती भाति चलना।
किए मालतीर माला गोरा अङ्गे दोलना ॥

शरदचन्द्र जिनि सुन्दर वदना।
प्रेमे आनन्द वारि पुरित नयना ॥

सहचर लेइ संगे अनुखन खेलना।
नवद्वीपे माझे गोरा हरि हरि बोलना ॥

अभय चरनारविन्दे मकरन्द लोलना।
कहये शंकर घोष आखिल लोक तारना ॥

(श्री गौ० प० त० पद–१०० पृ० ६९)

(२)

रोये मोर गोर किशोर।
मुरछि मुरछि पड़े भक्तेर कोर ॥
सोभार तरन तनु हइल मलिन।
देखिया भगत गमेर प्रान हय क्षीन ॥

वचन ना निकसेय चांद बदने।
अविरल धारा बहे चिर नयने ॥
कांदे सहचर गन गौरांग बेड़िया।
पाषाण शंकरदास ना जाय मिलिया ॥

(गौ० प० तरंगिनी–२०।२०४)

द० श्री०

शचीनन्ददास

शचीनन्द दास का जन्म १५३४ ई० में हुआ था। ये वंशीवदन के पौत्र एवं चैतन्यदास के द्वितीय पुत्र थे। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। इन्होंने गौरांगलीला और विष्णु प्रिया के विरह-वर्णन पर आधारित एक 'बारहमासा' की रचना की थी। पदों के अतिरिक्त इन्होंने 'गौरांग-विजय' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। हि० ब्र० वु० लिटरेचर' में प्रोफेसर सुकुमार सेन ने इन्हें रामचन्द्र गोस्वामी का कनिष्ठ भ्राता कहा है (पृ० २०२) इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

(१)

ब्रजबुली–बारहमासा–पौष

जब देखि पोषहि मास।
तब तेजलू जी यन क आश ॥

अब धन्य सो बर-नारि।
वदिशे पहुँ परचारि ॥

भेलह गेल ता सव दुख रे।
मझु प्रान पामर जाय जाय विरहे ॥

देहे तनु तनु शुद्ध रे।
दसमी दशा परवेश रे ॥

ए शचीनन्दनदास निवेदन,
केन वा छाडिल देश रे ।

(गौरपद तरंगिणी, पद ३०, पृ० २५६-२५८)

(२)

इन्ह माधवी परवेश ।
पिया गेल किये दुरदेश ।।

इह बसन तनु सुख छोड़ ।
अब धरल कउपीन डोर ।।

अवधरल कउपीन डोर,
अरुण हि वास छोड़ल चन्दने ।
तेजि सुखमय शयन आसन,
धूलाय पड़ि करु क्रन्दने ।।

यो बुक परिसर हेरि कामिनी,
परश रस लागि मोहर ।
सो किए पामर पतित कोले करि,
अवनि मुरछित रोइया ।।

(पदकल्पतरु, १७६)

(३)

बंगलापद

चैतन्य-सन्यास के अवसर पर शान्तिपुर निवासियों की पीड़ा का वर्णन—

पहुं भोर अद्वैत मन्दिर छाड़ि चले ।
शिरे दिया दुटि हात कांदे शान्तिपुर नाथ,
किवा छेल किवा हेल बोले ।।

कृपा करि मोर घरे अवधूत विश्वन्तरे,
कत रूप करिला बिहार ।
एवे सेइ दुइ भाइ कि दोष छाड़िया थाइ,
शान्तिपुर करिया आंधार ।।

अद्वैत घरनी कांदे, कोशपाश नाहि बांधे,
प्रभू वलि डाके उच्चस्वरे ।
नित्यानन्द कवि संगे, प्रेम कीर्तन रंगे,
के आर नाचिरे मोर घरे ।।

शान्तिपुर बासी यत, ताराकांदे अविरत,
लोटाइंजा भूमि तले ।
ए शचीनन्दन भन शान्तिपुर हेल ये,
पुरुषे सुनिल से ये गोकुले ।।

(गौरपद तर०, पृ० ८६)

द० श्री०

शाह अकबर

शाह अकबर एक मुसलमान फकीर थे, परन्तु चैतन्यदेव के प्रति इनकी विशेष निष्ठा थी। चैतन्य देव विषयक इनका एक पद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

जिउ जिउ मेरे मन चोरा गोरा ।
आपहि नाचत आपन रसे भोरा ।।

खोल करताल बाजे झिकि झिकिया ।
भक्त आनन्दे नाचे लिकि लिकिया ।।

पद दुइ चारि चलू नट नट नटिया ।
थिर नाहि होयत आनन्दे भातुलिया ।।

ऐछन पहुँ जाह बलिहारि ।
शाह आकबर तेरे प्रेम भिकारि ।।

(गौर पद तरंगिनी, पृ० १६३)

द० श्री०

शिवानन्द आचार्य

'शिवानंद आचार्य—'चैतन्य चरितामृत' से ज्ञात होता कि गदाधर पंडित के शिष्य थे। ये 'खेतरी-उत्सव' में सम्मिलित हुए थे। इससे इनका ई० सन् १५८३-८४ में उपस्थित होना निश्चित होता है। इनके तीन पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। ६ पद ऐसे भी मिलते हैं जिनमें 'शिवाई' नाम का प्रयोग हुआ है। गदाधर पण्डित के शिष्यों की यह धारणा थी कि गदाधर राधिका के अवतार थे, अतः उनके शिष्यों ने अपने पदों में चैतन्यदेव (कृष्ण), गदाधर पण्डित (राधिका) की केलि का ही वर्णन विशेष रूप में किया है। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

(१)

होरि खेलत गौर किशोर ।
रसवती नारि गदाधर कोर ॥

भाव भरे गलत हि लोचन नीर ।
ब्रज रस गायत नरहरि सँगे ।
मुकुन्द, मुरारि वासु नाचत रंगे ॥

खेने खेने मुरछहि पण्डित कोर ।
तेराइते सहचर सुखे भेल भोर ॥

निकुञ्ज मन्दिर प्रभु कयल विथार ।
भूमे पड़ि कहे कहां मुरली हमार ॥

कहाँ गोवर्द्धन यमुनार कूल ।
कहाँ मालती युथी चम्पक फूल ॥

शिवानन्द कहे पहुं सुनिरस वाणो ।
याहाँ पहु गदाधर तहाँ रस खानी ॥

(भक्ति-रत्नाकर—१२)

द० श्री०

शिवराम दास

'भक्ति-रत्नाकर' एवं 'नरोत्तम-विलास' के अनुसार, शिवराम दास नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। 'भक्ति-रत्नाकर' में इनके विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

जय शिवराम दास, परम उदार ।
गौर नित्यानन्द द्वैत सर्वञ्च जाँहार ।

इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। 'पद-कल्पतरु' में इनके २४ पद संकलित हैं। इनमें ८२५, ८६६, ९३८, १११८, २००९ संख्यक पद 'ब्रजबुली' में और शेष 'बंगला' में हैं। इनके कुछ पद 'पदरत्नाकर' में भी उपलब्ध हैं। इन्होंने रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वल-नील-मणि' के कुछ पदों का अनुवाद भी किया है—

खेने धनि रोइ रोइ खिति लुंठत,
खेने गिरत रथ आगे ।
खेने धनि सजल नयने हेरि हेरि मुख,
मानइ करम अभागे ॥

(पदकल्प० पद, १५५७)

इसकी भाषा 'ब्रजबुली' की अपेक्षा ब्रज भाषा है। यह पद रूपगोस्वामी कृत 'उज्ज्वल-नील-मणि' के पद (१६२६) 'क्षणं विक्रोशन्ती विलुंठति शतांगरथ पूरतः, क्षणं वाष्पग्रस्तां करति किल दृष्टिं हरिमुखे' का रूपान्तर है। अतः शिवरामदास रूपगोस्वामी के परवर्ती वैष्णव भक्त प्रतीत होते हैं। बंगाल के वैष्णव समाज में इन्होंने ही 'उज्ज्वल-नील-मणि' के महत्त्व को व्याख्यायित किया था। ये अच्छे संगीतज्ञ और मृदंगवादक थे। इनके कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

हिन्दी मिश्रित पद

श्यामल रास रस रंगिया ।
नव युवराज युवति संगिया ॥

चंचल गति चरणे चलत,
संगीत सुरंगिया ।
वीणा अधिक विविध यंत्र,
बाओर उपांगिया ॥

मधुरे ताल थइ थइ थइ,
बोलत मृदंगिया ।
कानु लपट सुर मोहन,
लाल मन्जीर मान री ।
रुचिर ताता थिया थिया थिया,
गाओत सुर तान री ॥

वृषभानु नन्दिनी किशोरी गौरी,
गाओत अनुपाम री ।
शिवराम आनन्दे नाहिक और,
हैरत रस धाम री ।

(ख) अइछन सुनइते मुगधिनी रमणी ।
सखिगण इंगिते अवनत बयनी ॥

लाजे वचन नाहि करे परकाश ।
सखिगण करतहिप्रियतर भास ॥

कहइते ना कहसि रजनी क काज ।
हमारि शपति तोहे यदि कर लाज ॥

पहिल समागम लागत अति दुःख ।
पुन मिलते कत पाओब सुख ॥

अइछे बचन शुनि करे मृदु हासि ।
शिवराम दास इह रस परकाशि ॥

(प० क० त० पद २००)

द० श्री०

शिवानन्द सेन

शिवानन्द सेनकी जन्म-मृत्यु तिथि के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। 'वैष्णव-वन्दना' तथा 'चैतन्य-चरितामृत' से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार इनका उपस्थिति काल १५१२ ई० के आस-पास निर्धारित किया जा सकता है। ये चैतन्यदेव के निकटवर्ती भक्तों में थे और नीलाचल में रहते थे। इन्होंने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

प्रेममय तनुनन्द सेन शिवानन्द ।
जाति प्राण धन जार गौर पद-द्वन्द्व ॥

—गौर पद तरंगिणी।

ये वैद्यकुल उद्भूत एक सम्पन्न गृहस्थ थे। चैतन्य चरितामृत में अनेक स्थलों पर शिवानन्द का उल्लेख आया है। प्रसिद्ध वैष्णव कवि कर्णपूर इनके कनिष्ठ पुत्र थे।

इनके तीन पद 'पदकल्पतरु' में संकलित है। दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

दयामय गौर-हरि नदिया लीला संग करि,
हाय हाय कि कपाल मन्द ।
गेला नाथ नीलाचले एदासरे एका केले,
ना घुचिला मोर भवबन्ध ॥

आदेश करिला याहा निश्चय पालिब ताहा,
किन्तु एकाकि रूपे रहिब ।
पुत्र परिवार यत लागिबे विशेर मत,
तोमा बिना कि मते गोङ आव ॥

गौड़ीय यात्रिक सने वत्सरान्ते दरशने,
कहिल याइते नीलाचले ।
कि रूपे सहिया रब संवत्सर काटाइव,
युग सत ज्ञान करि तिलें ॥

हओ प्रभु कृपावान कर अनुमति दान,
निति निति हेरि पद द्वन्द्व ।
यदि ना आदेश कर ओह प्रभु विश्वम्भर,
आत्मघातो हवे शिवानन्द ॥

(गौर पद तरंगिनी, ३८२)

(२)

राधा राधा बलि प्रभु पड़े मूरछिया ।
शिवानन्द काँदे प्रभुर भावना बुझिया ॥

द० श्री०

शिशिरकुमार घोष

शिशिर कुमार घोष का जन्म जेसोर (यशोहर) जिले के अन्तर्गत मागुरा ग्राम में वि० स० १८९७ में हुआ था। एक दूसरे मत के अनुसार यह समय वि० सं० १८९९ है। इनके पिता का नाम हरिचरण घोष तथा माता का नाम अमृतमयी देवी था। ये नौ भाई थे पर चार अल्प आयु में ही दिवंगत हो गए थे। इनके अन्य चार भाइयों के नाम वसंतकुमार, हेमंतकुमार, मोतीलाल तथा गोपाल थे। अपने ग्राम में इन्होंने एक बाजार अपनी स्वर्गीया माता के नाम पर बसाया और उसका नाम अमृत बाजार रखा। पीछे इस ग्राम का नाम भी अमृत बाजार हो गया। इनके जन्मकाल के समय बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य था। कम्पनी के शासन में जनसाधारण की आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक दशा अत्यंत दयनीय थी। ऐसी ही परिस्थितियों में श्री घोष का जन्म हुआ। यह बड़े विद्याव्यसनी थे। अंग्रेजी और बंगला भाषा

पर इनका पूरा अधिकार था। इतिहास, गणित आदि विषयों में भी इनकी अच्छी गति थी। यह सरल प्रकृति के तथा देशप्रेम की भावना से पूर्ण थे।

सर्व प्रथम जनसाधारण में शिक्षा का अभाव देखकर इन्होंने अपने ग्राम में हिन्दू हाई स्कूल खोला और बालिकाओं को भी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। इसी के अनन्तर जब नीलवाले अंग्रेजों के विरुद्ध पीड़ित प्रजा ने विद्रोह किया तब इन्होंने 'हिन्दू-पैट्रिअट' तथा 'मिरर' नामक अंग्रेजी पत्रों में प्रजा का पक्ष लेकर अनेक लेख लिखे जिसका तत्कालीन शासक वर्ग पर गंभीर प्रभाव पड़ा। समाचार पत्रों की शक्ति और प्रभाव का अनुभव करके इन्होंने पत्र निकालने का निश्चय किया। पहले एक पाक्षिक पत्र 'अमृत-प्रभात' नाम से बंगला भाषा में निकाला। यही आगे चलकर 'अमृत-बाजार-पत्रिका' के नाम से निकलने लगा। यह पहले साप्ताहिक था फिर अर्द्ध-साप्ताहिक और बाद में दैनिक हो गया। एक छोटे ग्राम से उस समय पत्र निकालना अत्यन्त कठिन कार्य था। परन्तु साहसी तथा दृढ़प्रतिज्ञ घोष बाबू अनेक असुविधाओं को झेलते हुए पत्र चलाते रहे। यह पत्र शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

इसे ये कलकत्ते ले आए और यहाँ से यह सफलता पूर्वक निकलने लगा। इस कार्य में इनके छोटे भाई मोतीलाल घोष निरन्तर सहायक रहे।

शिशिर बाबू अत्यन्त निर्भीक आलोचक थे। इनकी आलोचनाएँ इतनी स्पष्ट तथा खरी होती थीं कि उनका प्रभाब पड़ता ही था। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट बंगला कम जानता था और अपने एक रिश्तेतार के विश्वास तथा राय पर निर्णय करता था। उसके सम्बन्ध में इन्होंने अनेक लेख लिखे, जिसका फल यह हुआ कि उसे त्यागपत्र देकर स्वदेश लौट जाना पड़ा। उसी समय कश्मीर को लेकर कुछ झगड़ा चल रहा था। तत्संबन्धी एच० एम० डूरंड के मेमोरैंडम की प्रतिलिपि किसी प्रकार प्राप्त कर इन्होंने प्रकाशित कर दी थी।

जब वि० सं० १९३६ में नए प्रेस ऐक्ट द्वारा भाषा के पत्रों का मुख बन्द कर दिया गया तब इनके पत्र पर घोर आपत्ति आ पड़ी; पर धीरबुद्धि तथा कर्मठ शिशिर बाबू ने रात्रि भर में अपने पत्र की भाषा बंगला से अंग्रेजी कर दी, जिसे देखकर सभी चकित हो गए। अब 'अमृतबाजार-पत्रिका' अंग्रेजी में निकलने लगी। बंगाल के तत्कालीन छोटे लाट इस पत्रिका को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्हें भेंट करने के लिए बुलाया था। वि० सं० १९४७ से यह पत्र साप्ताहिक से दैनिक हो गया। इन्होंने बंगला भाषा में 'श्री विष्णुप्रिया' तथा अंग्रेजी में 'स्परिचुअल-मैगजिन' नामक प्रसिद्ध पत्रिकाएँ भी निकाली थीं।

आरम्भ में तत्कालीन नव-शिक्षित युवकों के अनुसार ये भी नास्तिकता की ओर झुके थे पर इनका परिवार वैष्णव था और इनके बड़े भाई हेमन्तकुमार घोष परम भक्त थे। उनके सत्संग से इनकी मति शीघ्र बदली और श्री गौरांग के चरित्र को पढ़कर यह शुद्ध वैष्णव भक्त हो गये जैसा कि इनकी अनेक रचनाओं से ज्ञात होता है। इन्होंने 'अमिय-निमाई-चरित्र' नाम से दो सहस्त्र पृष्ठों में श्री गौरांग की एक विशद जीवनी लिखी, जिसका अच्छा प्रचार हुआ। इन्होंने अंग्रेजी जाननेवालों के लिए भी 'लार्ड-गौरांग' नाम से छः सौ पृष्ठों में एक पुस्तक प्रस्तुत की। उसी समय इनके संबन्ध में 'द एम्पायर' के सम्पादक मि० ब्लेयर ने लिखा था कि इस ग्रन्थ के पढ़ने से ही उन्हें हिन्दू मस्तिष्क की कुछ आध्यात्मिक झलक मिली थी। इन्होंने अन्य कई पुस्तकें लिखी तथा बहुत से भजन भी बनाए। यह अच्छे गायक भी थे। कीर्तन के समय इन्हें गाते तथा नृत्य करते हुए देखकर उच्चपदस्थ अंग्रेज तथा सभ्य बाबूगण आश्चर्य चकित हो जाते थे। इनका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा पवित्र था और यह पूरे कृष्ण-भक्त थे। इसके साथ ही यह स्वदेश के सच्चे हितैषी भी थे। इस प्रकार ७५ वर्षों तक देश की सेवा कर हरि-कीर्तन सुनते हुए यह परमधाम सिधारे।

'निमाई-संन्यास' नाटक इन्हीं की कृति है, जिसका हिन्दी अनुवाद 'श्रीगौरांग पत्रिका' में प्रकाशित किया गया था। उसके एक-एक शब्द से इनका श्रीगौरांग के प्रतिप्रेम, श्रद्धा तथा विश्वास प्रकट होता है।

न० च० बं०

श्यामदास

श्यामदास के विषय में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती। इनके नाम से 'पदकल्पतरु' में छः पद' 'गौर-पद-तरंगिणी' में एक पद, 'संकीर्तन' में ३ पद तथा 'पद-रत्नावली' में ११ पद संकलित हैं परन्तु ये एक ही व्यक्ति के पद हैं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 'कर्णानन्द' से यह सूचना मिलती है कि श्यामदास नाम के एक बंगीय भक्त ने कुछ समय वृन्दावन में व्यतीत किया था। इस ग्रन्थ से इनके विषय में जो अन्य सूचना मिलती हैं, उसके अनुसार ये व्यास-आचार्य के पुत्र थे। इनके दो पद यहां दिए जा रहे हैं—

(१)

ब्रजबुली पद

राधा प्यारी आए वाओए रबाब।
एकहि लोचन यंत्र तंत्र-हि,
अउर कान मुख माझ॥

इष्ट नाचनी गोम दोलनी,
अलक तिलक साज।
हेरि मुरछित श्याम सुन्दर,
अधरे मुरली बाज॥

द्रुम अविशित पुलक चरचित,
मउर नाचे दुहुं पाश।
राय रंगिनी चउ दिशे वेढ़ल,
श्यामदास तछु आश।

(अप्रकाशित-'पदरत्नावली')

(२)

बंगलापद

अरुन नयानेर प्रेम जले ढर ढर,
धारा वहत विथार।
पद भरे भुवन चतुर्दश दोलनि,
धरनी सहइ ना पार॥

गौरांग नाचे कोटि मदन जिनि ठाम।
चोदिक झलमल हेरि सकल लोक,
धाउये सुमेरु गिरि भान॥
ओ चाँद नयाने रोदन शुनिया,
पशु पाखी मृग रोये।
मुकुन्द, दामोदर संगे गदाधर,
हरि हरि सघने बोलये॥

अवनीते विजय पतित जन पावन,
दान उद्धारिते आय।
चैतन्य नित्यानन्द ठाकुर अद्वैत चन्द्र,
श्यामदास गुन गाय॥

(गौ० प० त०, २८
सिधूड़ा-१६२)।

श्यामदास आचार्य

श्यामदास आचार्य अच्युतानन्द के शिष्य तथा अद्वैताचार्य के भक्त व अनुयायी थे। नीचे दिए गए उद्धरण से इनके विषय में कुछ अतिरिक्त सूचना मिलती है—

श्यामदास अद्वैतेर शाखार प्रधान।
सीता माता घरे कराइल स्तन पान॥
पूर्वे कार्तिकेय महाबल सेनापति।
सेव श्यामादासाचार्य, सेइ महा मति॥
अच्युतानंदेर मत अवलम्ब करि।
यार वास भइए शिगार-कोण आदिपुरी॥

श्यामदास अद्वैत शाखा के प्रधान थे, इन्हें सीता माता ने (वात्सल्य भाव से आपूरित होकर) स्तन-

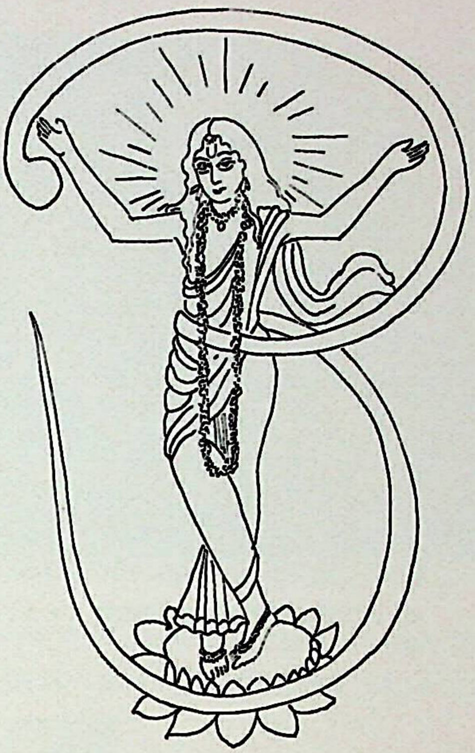

चैतन्य महाप्रभु (राधावेश में), पृ० ५१६

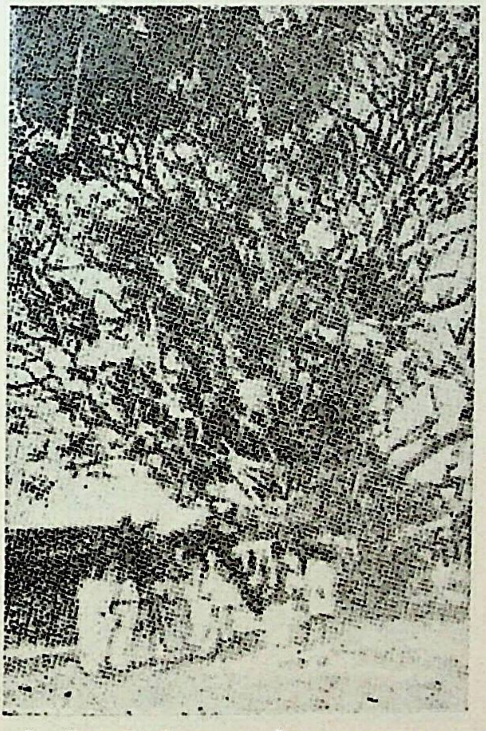

श्री चाँदकाजी की कब्र पर चैतन्य महाप्रभु द्वारा
मायापुर (नवद्वीप) में आरोपित साढ़े चार सौ
पुराना बरगद, पृ० ७१७

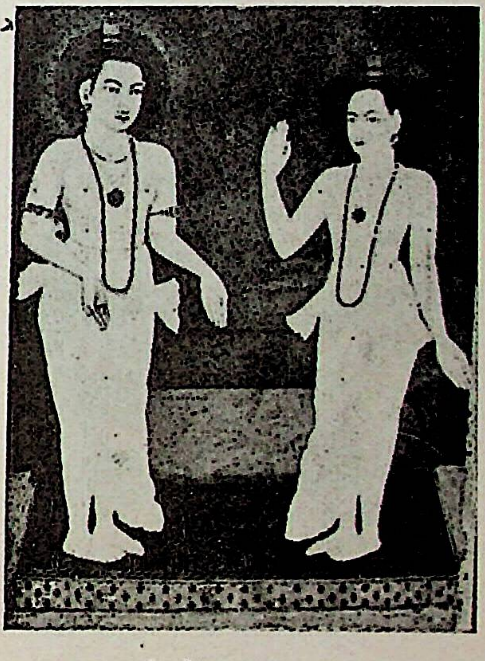

श्री गौर-गदाधर
श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीगदाधर पंडित
पृ० ५५३

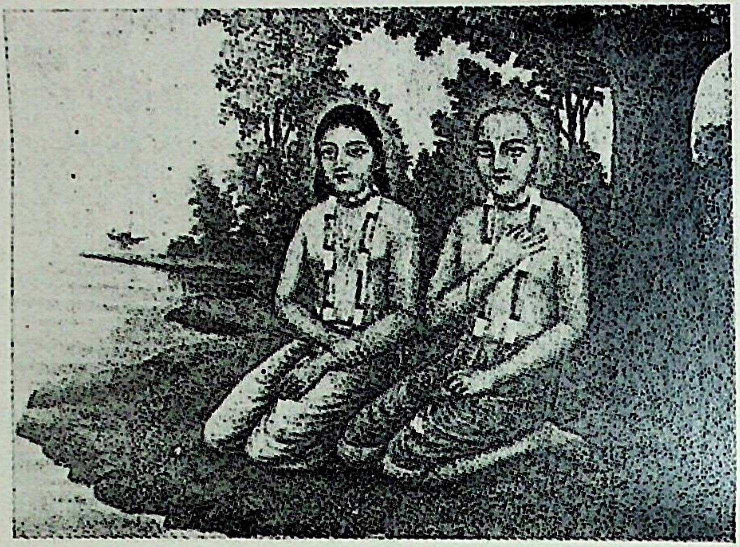

श्री नित्यानंद तथा गौरांग महाप्रभु, पृ० ६२१

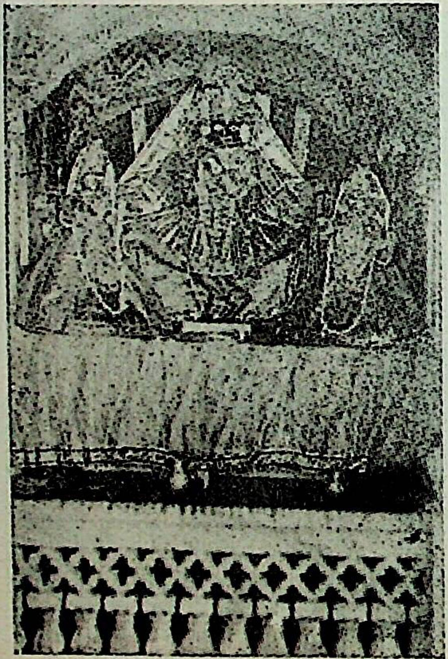

ठाकुर श्री मदन मोहनजी : वृन्दावन

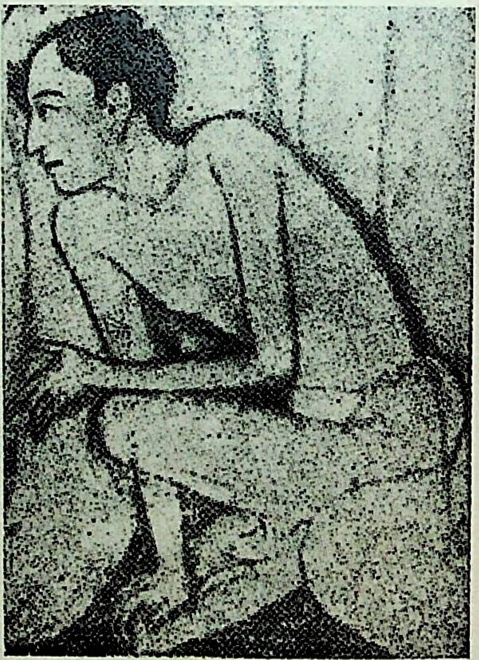

श्री रूपगोस्वामीपाद : भावविह्वल दशा में, पृ० ६७२

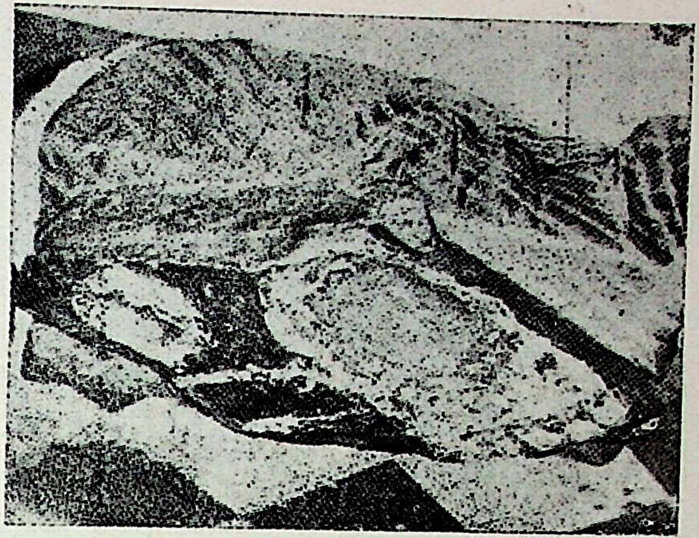

श्री राधादामोदर मन्दिर (वृन्दावन) में स्थित चरणशिला गिरिराज जी,
(श्री सनातन गोस्वामी वृद्धावस्था में इसकी परिक्रमा किया करते थे), पृ० ७०७

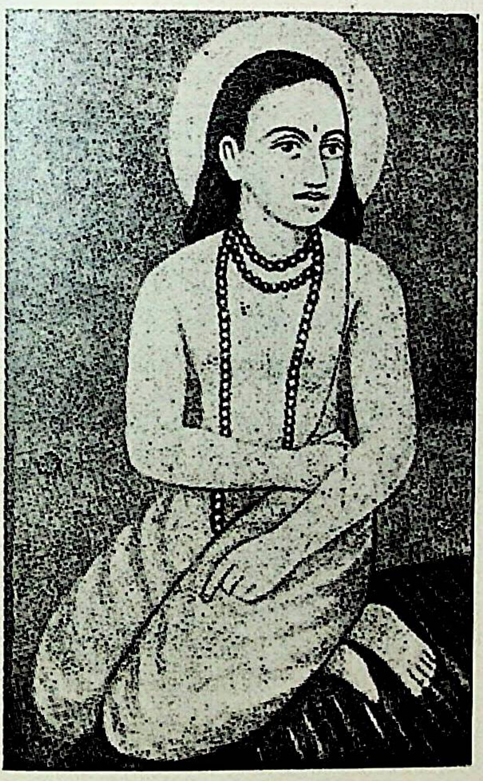

श्री नित्यानन्द प्रभु (निताई) गलदश्रु मुद्रा में
पृ० ६२०

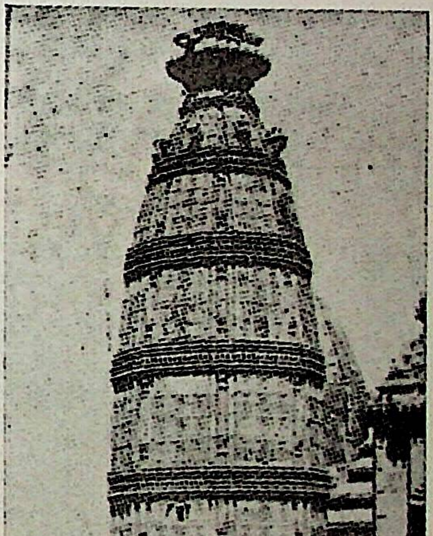

श्री मदनमोहन जी का मन्दिर : वृन्दावन
श्री सनातन गोस्वामी द्वारा वि० सं० १५९०
में सेवा का प्रवर्तन, पृ० ७०८

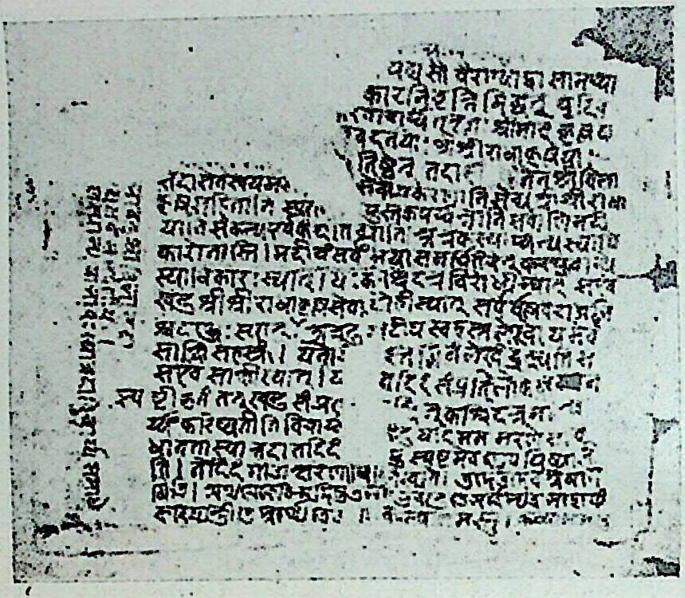

श्री जीवगोस्वामी का हस्तलेख, पृ० ६०५

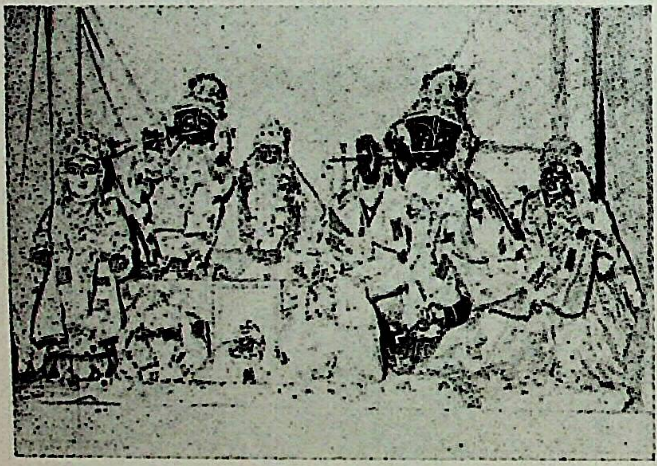

श्री गोकुलानन्दजी : वृन्दावन
(श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय हरिवल्लभ के सेव्य ठाकुर)
पृ० ७१९

श्री रूपगोस्वामी के सेव्य ठाकुर श्री गोविन्द देवजी :
जयपुर (नटवरवेश का एकादशी श्रृंगार)
पृ० ६७३

पान कराया था। पूर्वजन्म में ये महाबली सेनापति कार्तिकेय थे, अच्युतानन्द इनके दीक्षा-गुरु थे और ये आदिपुरी शृङ्गारकोण के निवासी थे।

इनके पद श्यामदास (चक्रवर्ती) और श्यामदास (दुःखी) के पदों के साथ मिश्रित हो गए हैं। अतः इनके पदों के निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न होती है। 'पदकल्पतरु' के २३५० व २३५२ संख्यक पद इन्हीं के रचित कहे जाते हैं। नीचे इनके दो पद उद्धृत हैं :—

(१)

बाल-लीला

या खानि नाचाय्या, नुपुर बाजाय्या,
बसिया मायेर कोले।
इषद हासिया, माखन तूलिया,
आध-आध बानी बोले॥

कांचा मरकत नवमी जड़ित,
मनोहर तनू-खानि।
हासिया हासिया अमिया सिंचिया (सिंकिया)?
बोले आध-आध बानी॥

हाहा लागि शिव छाड़िया बैभव,
विरिन्चि धाने ना पाय।
'श्यामदासे' बोले से ये कुतूहले,
नन्द गृहे धूलाय लोटाय॥

(अप्रकाशित 'पदरत्नावली', पद, २९९ पृ० ९३)

(२)

कि बरनेर कत रूपेर कानू।
किये दलितान्जन किए नव घन येन,
अतसी कुसुम जिनितनु (ध्रु०)॥

कदम्ब हेलना दिया, अधरे मुरलि लेथा,
तछु पर दश चान्द झूले।
कि मोहन संगी तार गले गजमोतिहार,
तिमिरे रतन हेन जले॥

पीत बसन घटी, परिधान परिपाटी,
ताहे कत दामिनी सञ्चेर।
विनोद छुड़ार पाशे, कत सौदामिनी भासे,
अबला के मन प्रान धरे॥

खञ्जन भञ्जन आंखि, सन्धान करये साखि,
विन्धि जर जर केलहिया।
'श्यामदास' बोले बानी से मधुर तनुखानि,
मोर मने रहिल पाशिया॥

(अप्रकाशित 'पदरत्नावली', पद ३००, पृ० ९३)
द० श्री०

श्यामदास (चक्रवर्ती)

श्यामदास (चक्रवर्ती) का मूल नाम श्यामाचरण या श्यामानन्द था। ये श्रीनिवासाचार्य के श्वसुर गोपाल चक्रवर्ती के पुत्र थे। श्यामानन्द और रामचन्द्र सगे भाई थे—

श्यामदास रामचन्द्र गोपाल तनय।
श्यामानन्द रामचरन आख्या कय॥

दोहे आचार्येर शिष्य, अद्‌भुत चरित।
एथा अल्पे कहिल ए सर्वत्र विदित॥

(गौर-पद-तरंगिणी)

श्यामदास श्रीनिवास आचार्य के मंत्र-शिष्य थे। इनके रचित ६ पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। उनमें से दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

शरद कालीन महारास

दुहुं जन नटन परिश्रम अतिशय,
प्रिय सहचरि गन मेलि।
देख राधा माधव रंगे।
हेम कमलिनी संगे नील कमल जनु,
भासइ यमुना तरंगे॥

चौदिग सखिगन करे कर बन्धन,
माझहि राधा कान।
जलण्डूक-धनि, करे जल उछलनि,
आनन्दे कमल सिनान॥

अपरुप श्याम, चरित कोइ समुझब,
सखि संगे केलि विलास ।
सब जन भरमे निकटे मझु विहरत,
कहतहि इह श्यामदास ।।

('पदकल्पतरु' पृ० ३२३-पद १२८९) ।

(२)

दान लीला

मरकत रजत मिशाल ।
श्याम रामरूप माल ।।

अंसहि भुज अवलम्बि ।
दुहुँ दुहुँ ललित त्रिभंगि ।।
हैलन केलि कदम्ब ।
बनि बनमाल विलम्ब ।।

दुहुँ मुख चान्द उजोर ।
श्यामदास चित मोर ।।

('पदकल्पतरु' दानलीला पृ० ३४१, पद ३३०)

द० श्री०

श्यामदास (दुःखी)

दुःखी श्यामदास मिदनापुर के पार्श्ववर्ती हरिहर-पुर के निवासी थे । ये भरद्वाज गोत्रीय दे कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे । इन्होंने माधवाचार्य कृत 'श्रीकृष्ण-मंगल' (श्रीकृष्ण कीर्तन) के आधार पर 'गोविन्द मंगल' शीर्षक कृष्ण-भक्ति विषयक काव्य की रचना की थी । इस ग्रन्थ के अनुसार इनके पिता का नाम श्रीमुख व माता का नाम भवानी था, यथा 'श्रीमुख जन्मदाता, समति माता भवानी' । 'महाभारत-पांचाली' के रचयिता काशीराम के पितामह का नाम श्रीमुख था । इन्होंने अपना निवास हरिहर पुर बताया है । वे भी दे वंशीय कायस्थ थे । अतः श्याम दास के पिता ही काशीराम के पितामह प्रतीत होते हैं । इनके जन्म तथा निधन की तिथि अज्ञात है, परन्तु उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्ध से सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में १६८० ई० तक इनके ज़ीवित रहने के प्रमाण मिलते हैं । 'गोविन्द-मंगल' की कथा भागवत पर आधारित है । यह काव्य 'काला-कानू' 'आयान-खुरेर-धार' तथा 'हिया-मेलेचिर' इन तीन शीर्षकों में विभक्त है । काव्य वर्णनात्मक शैली में रचित है । बीच-बीच में पद भी हैं । कुछ पद ब्रजबुली में भी हैं । नीचे 'राधा-विरह' विषयक एक पद उद्धृत है—

चैत्रते चातक पक्षी डाके मन्द मयूर ।
सचेतन नहे संग ना देखिया बंधू ।।

चित निबारिब कत विरह व्यथाय ।
चितायेन देह वसन्तेर बाय ।।

उद्धव चित छलछल करे ।
चन्चल चउर जेन पड़ियापिञ्जरे ।।

अषाढ़े आंगिना आछिनु शुतिया ।
आमार शिजरे आसि श्याम बिनोदिया ।।

आलिंगन देइ मुझे बुलाइया हाथ ।
उठिया आकुल हेनू कोथा प्राणनाथ ।।

उद्धव अनेक मन्त्रणा ।
अधिक आशेर दोषे एत विडम्बना ।।

द० श्री०

श्याम मल्लिक

श्याम मल्लिक के सम्बंध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है । वैष्णव भक्तों एवं पदकर्त्ताओं के जीवनी विषयक ग्रन्थों से इतना पता चलता है कि इनका सम्बन्ध रामचन्द्र मल्लिक से था और ये सन् १६५३ ई० के आस-पास विद्यमान थे । इनके द्वारा रचित पदों की संख्या भी अधिक नहीं है । इनका एक प्रख्यात 'बंगला' का पद नीचे दिया जा रहा है—

ओ बंशी बाजे बाजे ।
नव नव मधुर श्रीवृन्दावन माझे ।।

बिसरिलां बन-बन गुरु गरबिते ।
प्राण हरिया निल मुरलीर गीते ।।

कि करिते कि ना करि एह ना ग्रह काज।
आर कि राखिते हाय कुल भय लाज॥

दूरे कर गौरव मान-अभिमान।
चल भेठिव श्री वृन्दावने रसमय कान॥

कि करिब लास-वेश अंग अभरण।
पूलके पूरत तनु कावे धने धन॥

नयाने गलये नीर गद गद बोल।
उठले प्रेमेर सिन्धु आनन्द-हिलोल॥

श्याम मल्लिक कहे अनुभव सार।
एत दिने मनोरथ पूरिल सभार॥

(पाण्डुलिपि–हि० ब्र० लि०, पृ० २७१६)

'सुनो ! श्याम की वंशी बजती है-बजती है। यह वंशी प्रतिक्षण नव-नव मधुर ध्वनि में वृन्दावन में बजती है। वंशी की ध्वनि के प्रभाव से मैं अपनी सम्पत्ति-मित्र सभी को भूल गई हूँ। अपने मधुर गीत से मुरली ने मेरे हृदय को चुरा लिया, अपने गृह कार्य तथा करणीय एवं अकरणीय सब काम में भूल गई और अब क्या मैं अपने कुल की लज्जा और मर्यादा को रक्षा कर सकूंगी ? आज मेरा मान-अभिमान और अहंकार प्रेरित गौरव नष्ट हो गया। चलें, अब हम वृन्दावन चलें और वहाँ 'रसमय-कान्ह' से मिलें। मैं अंगों में आभरण और वस्त्रालंकारों को अब क्यों धारण करूँ ? पुलक-प्रेरित मेरा तन स्नेह-भाव से काँप रहा हैं, नेत्रों से स्नेहाश्रु प्रेम-समुद्र हिलोलें ले रहा है। श्याम मलिक अपना अनुभव कहते हैं 'इतने दिनों की सबकी अतृप्त अभिलाषा अब पूरी होगी।'

द० श्री०

श्यामानन्द दास

श्यामानंददास मूलतः बंगभूमिवासी थे। इनके पिता का नाम गोपाल चक्रवर्ती था। उड़ीसा के कृष्ण भक्तों के साथ श्यामानन्ददास का परिचय दिया जा चुका है (देखिए, प्रथम खण्ड, पृ० २१७)। ये 'खेतुरी-उत्सव' में उपस्थित थे। वृन्दावन में दीर्घकाल तक जीवगोस्वामी के निर्देशन में इन्होंने वैष्णव धर्मग्रन्थों एवं शास्त्रों का अनुशीलन किया था। ये नरोत्तम एवं श्रीनिवास-आचार्य के सहयोगी और परम स्नेही थे। नरहरिदास ने अपने एक दीर्घ पद में इनकी विस्तृत जीवनी प्रस्तुत की है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं—

श्री गौर परान बन्धु।
श्यामानन्द सुख सिन्धु।
सदार विह्वल गौरा गुने।

(पदकल्पतरु, पंचम भाग, पृ० २२१-२२२)

उड़ीसा में वैष्णव धर्म-प्रचार करना श्यामानन्द का विशेष दायित्व था। इस कार्य में इनके उड़ीसावासी शिष्य रसिकानन्द ने इन्हें विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया। इन्होंने 'दुःखी-कृष्ण दास' 'दीन-दुःखी कृष्ण-दास' भणिता से पदों की रचना की है। इनके कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं—

(१)

युगल किशोर की आरती का पद

भड़गल आरति युगल किशोर।
जय जय करितहि सखिगण भोर॥

रतन प्रदीप करे टलमल मोर।
निरखत मुख विधु श्याम भुगोर॥

ललिता विशाखा सखि प्रेम आगोर।
करत निरमञ्जन दाहे दुहू भोर॥

वृन्दावन कुन्ज भवन उजोर।
निरुपम युगल मुरति बनि जोर॥

गाऔत शुक पिक नाचत मोर।
चांद उपेरिव मुख निरखय चकोर॥

बजत त्रिविध यंत्र घन घोर।
श्यामानन्द आनन्दे बाजाये जय तोर।

(प० र० मा०-६७)

(२)

अभिसार

विनोदिनो कनक मुकुर कांति ।
श्याम विलासे सुन्दर तनु,
सजाजिआ कतेक भांति ॥

रसेर आवेशे, गमन मन्थर,
दुलि दुलि टाले चाय ।
आध उद्गनि इषत हासनि,
वंकिम नयने चाय ॥

शिखेर सिन्दूर मदन मूगध,
ताहे चन्दनेर रेखा ।
नव जलेर अरुनेर कोरे,
नबीन चांदेर देखा ॥

नील बसन रतन भूषण,
जलदे दामिनी साज ।
चांदेर केशे बिचित्र बेनी,
दुलिते पिठेर माझ ॥

श्यामानन्द पहुं आनन्द मन्दिरे,
कलप तरुव भूले ।
रसे टलमल बसित नागरी,
'श्याम' नागरेर कोरे ॥

(अप्रकाशित 'पदरत्नावली' पृ० ९२४, २९७)

'पदकल्पतरु' में इनके तीन पद 'दुःखी कृष्ण-दास' भणिता से संकलित हैं। नीचे उद्धृत पद में श्रीराधा की नृत्य-भंगिमा वर्णित है—

(३)

प्रथमे तुरित गति नाचिते लागिला ।
पद कथि हृदि ग्रोवा घन चलाइला ॥

तबे कबूतर गति नतंन आरम्भ ।
तुमिते लूटिया बूले उलटिया छन्द ॥

निज शिरे दुइ पद उलटिया दिआ ।
मउर अंग ते जेन पृच्छ पसारियां ॥

तुमि परिचितु धरि हस्तेर चालन ।
खने-खने द्रुत गति, खने मन्थर गमन ॥

एइ मते नाना नृत्य करिकत खन ।
तुमेरे नाचेन प्रिय रमनी गन ॥

जाहा भाई कि माधुरि भावे तरंग ।
'दुःखी' भावे अनुभवे बिनु राइ रंग ॥

इन्होंने 'दुखिनी' नाम से भी पदों की रचना की है—

(४)

महारास

चांद बदनी नाचत देखि ताक ताक थाइ थाइ,
तिन किटि, तिन किटि झां ।
दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् कोइ,
हमि हमि हमि हमि हमि हमि हमि कि हमि,
ताक् ताक् ताक् ताक् गिड़ गिड़ गिड़ गिड़,
गिड् गिड् गिड् गिड् तन्ता दविता ताता,
थाइ तिन किटि भां ।
द्रुत गति चरने ना बाजिबे मंजीर ना नाउवे चीर,
बिनय संकटे ताले बजाइब बांशी ।
धनु अंकेर माझे बुझिब प्रेयसी ॥

हारिले तोमार लव बेशर कांचलि ।
जिनिले तोमार दिव मोहन मुरली ॥

जेमन बोलेन श्याम-नागर ते गनि नाचे रई ।
मुरली लुकाय श्याम चारि दिगे चाई ॥

सबई बोलेन राई पेर जय नार हारिले ।
दुखिनी कहि छै गोपी मण्डली हासालो ॥

श्याम तोमारे नाचते हवे, दिमिदा घेना काटो
चोर लागजिल झां ।
उड़ तड़ा कोई झुनूर झुनूर झूनू भुनू झुनू झुनू,
धोइ धोइ धोइ गिड़ गिड़ गिड़ गिड़,
गिड़ गिड़ गिड़ गिड़ तिन्ता दिमिता ताता,
थोटित नाचे झा ॥

श्रीकृष्णदास बाबा (रनवारी वाले)

श्रीकृष्णदास बाबा का पूर्व नाम श्रीकृष्ण प्रसाद चट्टोपाध्याय था। इनका जन्म बंगाल के जशोहर जिलान्तर्गत मुहम्मदपुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम गोकुलचन्द्र चट्टोपाध्याय था। बाल्यावस्था से ही वैराग्य की भावना मन में रहने के कारण संसार में इनकी वृत्ति नहीं रमी। घरवालों ने इनके विवाह की बात चलायी। इन्हें पता चला तो एक दिन रात्रि में घर से निकल गये और वृन्दावन चले गये। वृन्दावन में कुछ दिनों तक श्रीमदनमोहन की सेवा में रहे, तत्पश्चात् रनवारी चले आए। रनवारी उस समय भीषण जंगल था। वहाँ एक छोटी कुटियाँ बनाकर भजन करने लगे। संध्या समय मधुकरी माँग लाते थे।

बाल्यावस्था में ही घर छोड़ देने के कारण इन्होंने तीर्थों के दर्शन नहीं किये थे। अतएव इसकी वासना इनके मन में रह गयी थी। लगभग पचास वर्ष बाद वासना जगी, चारों धामों के दर्शन करने की। इनको रात्रि में स्वप्न हुआ, लगा राधारानी कह रही हैं—"तुमने वृन्दावन में मेरी शरण लेली है। अतः कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है। यहीं रहकर भजन करो।" जगने पर इस स्वप्न को इन्होंने गम्भीरता से नहीं लिया और तीर्थयात्रापर निकल गये। भ्रमण करते हुए ये द्वारका पहुंचे। द्वारका में चारों सम्प्रदाय के वैष्णव तप्तमुद्रा धारण करते हैं। किंतु रागानुगी वैष्णवों के लिए यह आवश्यक नहीं है और ब्रज के भक्तों में इसे धारण करने की परम्परा भी नहीं है। बाबा कृष्णदास ने तप्तमुद्रा धारण कर ली। बाद में तीर्थ भ्रमण में अरुचि हो गयी और ये लौट आये।

जिस दिन बाबा लौटे उसी दिन रात्रि में फिर राधारानी ने स्वप्न में कहा—"तुम द्वारका में तप्तमुद्रा धारण कर सत्यभामा के गणों में शामिल हो गये हो। ब्रजधाम के उपयुक्त नहीं रहे। अतः द्वारका चले जाओ।"

यह सुनकर ये मार्गदर्शन हेतु गोवर्द्धन के सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के पास गये। इन्हें देखते ही बाबा ने आलिंगन में ले लिया और पूछा—"आप इतने दिन कहाँ थे ?" "मैं द्वारका गया था। यह देखिये तप्तमुद्रा लगवा आया हूँ।" "ओहो ! तब आज से आपको स्पर्श करने की मेरी योग्यता नहीं रही। कहाँ आप महाराजराजेश्वरी की सेविका और कहाँ मैं ग्वालिनी की दासी।"

ब्रज के कई महात्माओं से कृष्णदास बाबा ने पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिये। सबने उत्तर दिया 'प्रियाजी के आदेशानुरूप ही आपको चलना है।" हताश होकर वे रनवारी लौट आये, अन्न-जल त्यागकर कुटिया में जा पड़े। अनुताप और विरहाग्नि से इनका शरीर जलने लगा। इस अवस्था में तीन माह बीत गये। तब भीतर की अग्नि बाहर फूट पड़ी। तीन दिन में अग्नि चरणों से लेकर कण्ठ तक फैल गयी। सिद्ध श्री जगन्नाथ दास बाबा और उनके शिष्य रनवारी में श्री कृष्णदास बाबा के निकट ही एक कुटिया में ठहरे हुए थे। रात्रि में श्री जगन्नाथदास बाबा ने बिहारीदास बाबा को पुकारते हुए कहा—"बिहारी ! देखतो श्री कृष्णदास बाबा की कुटिया में क्या हो रहा है ?" बिहारीदास भागकर गये, तो देखा कुटिया का दरवाजा भीतर से बन्द है। किसी तरह से झाँका तो देखा कृष्णदास बाबा सिद्धासन की मुद्रा में बैठे हैं, उनका शरीर जल रहा है और मुख से हरिनाम का उच्चारण हो रहा है। वे दौड़कर बाबा के पास गये और सारी बातें बतायीं। बाबा बोल उठे—'विरहानल ! विरहानल।' उसी समय पड़ोसी ब्रजवासी भी आ गये।

कृष्णदास बाबा की कुटिया का दरवाजा तोड़ा गया। भीतर जाकर देखा कि अग्नि कण्ठ तक आ गयी है, फिर भी नाम का उच्चारण हो रहा है। जगन्नाथ दास बाबा ने रुई की तीन बत्तियाँ बनाकर बाबा के माथे पर रख दी। बत्तियाँ जलने लगीं और उनके साथ ही इनका सारा शरीर भस्मी भूत हो

गया। भस्मराशि शीतल होने के कई दिन बाद कृष्णदास बाबा के गुरु भाई—श्री प्रेमदास बाबा आये। भस्म के निकट जाकर दण्डवत् कर बोले—"दादा! आपने मेरे हाथ की लकड़ी तो ली नहीं, यह लकड़ी मैं दे रहा हूँ।" भस्मराशि से स्पर्श होते ही लकड़ी जलने लगी और भस्म होकर उसमें मिल गयी।

स० गु०

श्रीनिवास आचार्य

श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तम एवं श्यामानन्द गुरु भाई थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा वृन्दावन के गोस्वामियों के निर्देशन में हुई थी। चैतन्य परवर्ती काल में बंगाल में वैष्णव दर्शन और भक्ति के पुनर्जागरण में श्री निवास आचार्य का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है। इनके आविर्भाव के पूर्व गौड़ देश में नवद्वीप, खड़दह व शान्तिपुर वैष्णव धर्म के प्रधान केन्द्र थे। चैतन्य के नवद्वीप परित्याग, मुख्यतः उनके तिरोधान के पश्चात् शान्तिपुर का महत्व भी कम होने लगा था, परन्तु श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द की प्रेरणा से इन स्थानों ने अपनी गरिमा पुनः प्राप्त कर ली। साथ ही साथ वन-विष्णुपुर (आधुनिक विष्णुपुर पश्चिम वंग) तथा खेतुरी (उत्तर-बंग) में नए वैष्णव-केन्द्र भी स्थापित हुए। उन्होंने बंगाल की वैष्णव-भक्ति में वृन्दावनी मतवाद और आदर्श का समावेश किया।

इनका जन्म नदिया जिलान्तर्गत अग्रद्वीप के उत्तर में कारण क्षेत्रस्थ चाखन्दी (चाखण्डी) ग्राम में शक संवत् १४३८ अथवा १४४५ में वैशाख पूर्णिमा के दिन रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार इनका जन्म १५१६ ई० में हुआ था। इनके पिता चाखण्डी ग्राम निवासी गंगाधर भट्टाचार्य (अन्यनाम) चैतन्य दास थे। ये राढ़ी ब्राह्मण थे। इनकी जननी लक्ष्मीप्रिया याजिग्राम निवासी बलराम आचार्य की कन्या थीं। गंगाधर भट्टाचार्य संतान की आकांक्षा से प्रेरित होकर समलीक नीलाचल पर महाप्रभु चैतन्य की सेवा में उपस्थित हुए। भाव-समाधि में ही 'प्रभु' को इनकी आकांक्षा का बोध हो गया। उन्होंने गोविन्द से कहा—

पुत्रेर कामना कर आइल,
श्रीनिवास नावे तार होइबे नन्दन।
श्री रूपादि द्वारे भक्ति शास्त्र प्रकाशित,
श्रीनिवास द्वारे तार ग्रन्थ वितरित ॥

मोर उद्धत प्रेमेर स्वरूप श्रीनिवास,
तार दर्शने सर्वचित बढ़िवे उल्लास ॥

'पुत्र कामना से प्रेरित होकर ब्राह्मण यहाँ आए हैं, इन्हें श्रीनिवास नामक पुत्र होगा। रूप और सनातान आदि द्वारा जो वैष्णव दर्शन व शास्त्र-विषयक ग्रन्थ प्रकाशमान हुआ, उसका प्रचार-प्रसार श्रीनिवास द्वारा होगा। श्रीनिवास मेरे प्रेम के शुद्ध स्वरूप होंगे। उनके दर्शन से सभी का चित्त उल्लसित होगा।'

'भक्तिरत्नाकर' और 'प्रेमविलास' शीर्षक ग्रन्थों में श्रीनिवास की व्यवस्थित जीवनी वर्णित है। परन्तु दोनों ग्रन्थों की सूचना में पार्थक्य है। 'प्रेमविलास' के रचयिता श्रीनिवास के समकालीन थे और उन्हें श्रीनिवास का नैकट्य भी प्राप्त था। 'भक्तिरत्नाकर' (रचयिता नरहरि चक्रवर्ती) श्री निवास के परवर्ती काल की रचना है। अतः प्रेम विलास अपेक्षाकृत प्रामाणिक रचना है।

एक अन्य सन्दर्भ के अनुसार नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु को यह सूचना मिली कि अद्वैत प्रभु पुनः ज्ञान भक्ति के प्रति आकृष्ट हुए हैं और वे ज्ञानमूलाभक्ति का प्रचार करने लगे हैं। फलस्वरूप वैष्णवभक्ति धारा क्रमशः मन्द पड़ने लगी है। इसी अवसर पर जगन्नाथ ने उन्हें स्वप्न दिया कि चिन्ता का कोई कारण नहीं है, चैतन्यदास के पुत्र-रत्न द्वारा गौड़ देश में वैष्णव भक्ति का संरक्षण ही नहीं अपितु व्यापक रूप में प्रसार व प्रचार होगा। श्रीनिवास के जन्मकाल

तक चैतन्य व अद्वैत जीवित नहीं थे। 'प्रेमविलास' में इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है—

भक्तगन सहित ना सुनिल संकीर्तन।
हइल पपिष्ट जन ना होइल तखन॥

'भक्तजनों सहित चैतन्य-संकीर्तन श्रवण का सौभाग्य मुझे नहीं मिला, उस समय इस जन का जन्म नहीं हुआ था।'

मनोहरदास कृत 'अनुरागबल्लरी' नामक ग्रन्थ से यह सूचना मिलती हैं कि किशोरावस्था में श्रीनिवास महाप्रभु के दर्शनार्थ पुरीधाम की यात्रा कर रहे थे, उसी समय उन्हें चैतन्य के अप्रकट (तिरोधान) होने की सूचना मिली—

पथे जाइते सुनि महाप्रभु अन्तर्धान।
मूर्च्छित पड़िल भूने गड़ा गड़ि जान।
ताहार कहिल एइ अति सुनिक।
श्री नित्यानन्द श्री अद्वैत दुइ प्रभुअप्रकट॥

'प्रेमविलास' से सूचना मिलती है कि रघुनन्दन और सुलोचन के विशेष आग्रह एवं जाह्नवी ठाकुरानी के आदेश पर इन्होंने दो विवाह किए—इनका प्रथम विवाह गोपाल चक्रवर्ती की कन्या द्रौपदी से हुआ। इन्होंने इनका नामान्तर 'ईश्वरी' किया। इनका दूसरा विवाह विष्णुपुर निवासी राघव चक्रवर्ती की कन्या पद्मावती से हुआ, जिनका नामान्तर विष्णुप्रिया हुआ। विष्णुप्रिया के पुत्र गोविन्द गति परवर्ती वैष्णव समाज के पथ-प्रदर्शक हुए।

श्रीनिवास ने बहु संख्यक भक्तों को वैष्णव समाज में दीक्षित किया, इसमें छः चक्रवर्ती-श्री दास चक्रवर्ती, श्री गोविन्द चक्रवर्ती, श्री गोकुलानन्द चक्रवर्ती, श्री श्यामानन्द चक्रवर्ती, श्री गोविन्द चक्रवर्ती, श्री नारायण चक्रवर्ती और अष्ट कविराज—श्री रामचन्द्र कविराज, श्रीगोविन्द कविराज, श्री कर्णपूर कविराज, श्री नृसिंह कविराज, श्री भगवान् कविराज श्री गोपी रमन कविराज, श्री गोकुल कविराज—श्रीनिवास-शाखा के 'भक्त-परिवार' की संज्ञा से विख्यात हैं। महाप्रभु की भक्ति-पद्धति के एक पक्ष का उद्घाटन या प्रकटीकरण रूप-सनातन ने किया। इसके अपर पक्ष की व्याख्या श्रीनिवास आचार्य ने की। श्री निवास आचार्य ने ऐश्वर्य मूलक भक्ति को महत्व नहीं दिया।

इनके जीवनकाल में ही कुछ वैष्णव भक्त ऐश्वर्य पूर्वक रहने लगे थे। इनके पूर्ववर्ती नित्यानन्द अलंकार धारण करते थे और उनके पुत्र वीरचन्द्र राजसी भाव से रहते थे। इसका यह प्रभाव पड़ा कि समाज का ऐश्वर्यशाली वर्ग (सामन्त, राजन्यवर्ण, जमींदार और धनी वणिक् समाज) क्रमशः वैष्णव धर्म स्वीकार करने लगा। श्रीनिवासदास इस प्रवृत्ति को पसंद नहीं करते थे। इन्होंने भक्तों के निमित्त आचरण की शुचिता पर विशेष बल दिया। उत्तर-चैतन्य-युग में वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार और उसकी व्याख्या में श्रीनिवास का अवदान एक युग-पुरुष के रूप में रहा। इनके तिरोधान होने की तिथि अज्ञात है। 'श्री नरहरि ठाकुराष्टक' तथा षड्गोस्वामी गुजलेश इनकी दो अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ है।

गौड़ीय वैष्णव अभिधान (पृ० १३९२) के अनुसार आचार्य महाप्रभु ने केवल पाँच पदों की रचना की थी। उनमें से एक पद इस प्रकार है—

अनुदाने कोने थाकि, वसने आपनि ढाकि,
दुयार बाहिरे पर वास,
आपना बोलिया बोले, हैन नाहिं क्षिति तले,
हेन क्षारे हेय अभिभाष॥

सजनि तुया पाये,
कि बोलिब आर।
से हेम दुलह जने, अनुकूल जाइ मने,
केवल मरम प्रतिकार॥

कि करिते किवा करि आपना दड़ाइते नारि,
राति दिवस नाहि जाय।

गृहे जग बन्धू जन शब मोर बैरी गन,
कि करब कि ह्वे उपाय ॥

श्रीनिवास ने भागवत् वर्णित 'भ्रमरगीत' की व्याख्या की है। अपने वैष्णव भक्त पिता के संरक्षण में ही इन्होंने वैष्णव धर्म व दर्शन के सामान्य सिद्धान्तों व विधियों का अध्ययन कर लिया था, फलस्वरूप इनका मन सुनिश्चित रूप से भक्ति-पथ पर अग्रसर हुआ। इन्हें अपने अंचल के प्रख्यात वैष्णव आचार्यों का स्नेह प्राप्त था। अपनी माता के आदेश से श्री निवास ने नीलाचल की यात्रा की। नीलाचल में ही इन्हें गदाधर आदि भक्तों का नैकट्य प्राप्त हुआ। श्रीखण्ड में इनका परिचय नरहरि से हुआ। नरहरि ने इन्हें वृन्दावन जाकर रूप-सनातन से वैष्णव धर्मतत्व दर्शन में पूर्ण रूप से शिक्षित होने का आदेश दिया। परन्तु वृन्दावन जाने के पूर्व पुरी जाकर वृद्ध गदाधर से श्रीमद् भागवत के विधिवत अध्ययन की इन्होंने इच्छा प्रकट की। भागवत की उत्कृष्ट पाण्डुलिपि प्राप्त करने हेतु गदाधर ने इन्हें गौड़ भेजा। ये अभी यात्रा में ही थे कि इन्हें सूचना मिली कि वृद्ध गदाधर ने देह रक्षा कर ली है। इस घटना से ये इतने मर्माहत हुए कि अद्वैत की विधवा सीता देवी, नित्यानन्द की कनिष्ठ पत्नी जाह्नवी देवी और नवद्वीप में विष्णु-प्रिया के चरण-दर्शन कर वृन्दावन की ओर चल पड़े। अभी ये वृन्दावन के मार्ग में ही थे कि इन्हें रूपसनातन के तिरोधान की सूचना मिली। उस समय वृन्दावन में गोपालभट्ट, लोकनाथ गोस्वामी और जीव गोस्वामी जीवित थे। जीव गोस्वामी के आग्रह पर गोपाल भट्ट ने इस तरुण वैष्णव को अपना शिष्यत्व प्रदान किया। उस समय गोपाल भट्ट के संरक्षण में दो अन्य वैष्णव अध्ययन कर रहे थे। प्रथम थे खेतुरी के भूस्वामी के वैरागी पुत्र नरोत्तम और दूसरे थे उत्कलवासी तरुण वैष्णव श्यामानन्द। इस प्रकार भारत के तद्युगीन विख्यात लोक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्यों के संरक्षण में श्री निवास और उनके सहपाठियों ने वैष्णव धर्म, स्मृति, संहिता, दर्शन और रस-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया।

चैतन्योत्तर गौड़ीय वैष्णव भक्ति के इतिहास में श्रीनिवास का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है। चैतन्य, अद्वैत और नित्यानन्द के शरीर त्याग के पश्चात् बंगाल के वैष्णव धर्म के अनुचिंतन में एक रिक्तता आ गयी थी। वैष्णव धर्म का चिन्तन-अनुचिंतन गोष्ठी में परिसीमित हो गया था। सामान्य जनजीवन से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न होता जा रहा था, विभिन्न वैष्णव धर्म-केन्द्रों में पारस्परिकता नहीं रह गई थी। इसकी सूचना वृन्दावन के बंगाली वैष्णव आचार्यों के पास पहुंचने लगी थी। इन्होंने बंगाल के वैष्णव धर्म के संगठन का भार वृन्दावन दास और उनके सहपाठियों को दिया और सनातन व जीव गोस्वामी रचित स्मृति, दर्शन, रस-शास्त्र आदि ग्रन्थों के प्रसार-प्रचार का आदेश दिया।

गौड़ीय-वैष्णव-भक्ति सम्बन्धीं मूल्यवान ग्रन्थों को एक बन्दपेटिका में लेकर अपने सहपाठियों के साथ ये गौड़ देश की यात्रा पर निकले। विष्णुपुर पहुंचने पर एक दुर्घटना घट गयी। इसका विस्तृत वर्णन 'भक्तिरत्नाकर' और 'प्रेमविलास' नामक ग्रन्थों में मिलता है। उस समय विष्णुपुर का मल्लवंशीय राजा वीर हम्बीर डाकुओं को संरक्षण प्रदान कर धन संचय करता था। 'ग्रन्थपेटिका' को रत्न पेटिका समझकर डाकुओं ने चुरा लिया। पेटिका की खोज करते हुए श्रीनिवास हम्बीर के दरबार में पहुंचे। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तथा पेटिका को समर्पित करते हुए उसने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया।

इनकी प्रेरणा से विष्णुपुर वैष्णव धर्म का केन्द्र बन गया। वीर हम्बीर के दरबार में 'भागवत-पाठ' की परम्परा का आरम्भ यहीं से होता है। इस प्रकार मल्लराज की सभा में वैष्णव धर्म का प्रचार एक महत्व-

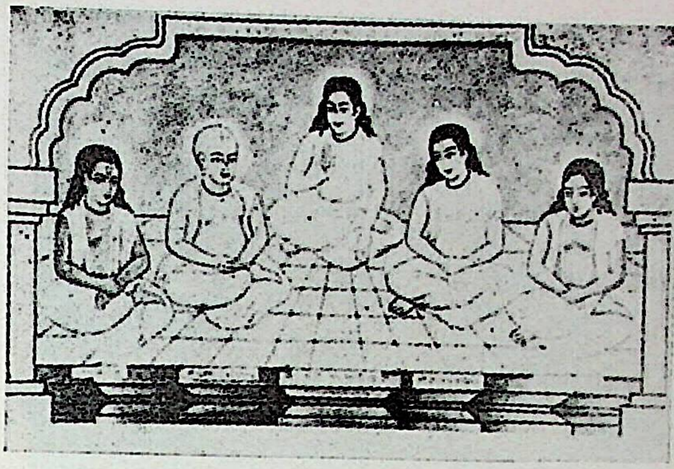

श्री श्यामानन्द, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्री श्रीनिवास आचार्य
श्री रामचन्द्र कविराज तथा श्री रसिकानन्द,
पृ० ६१५,६१६

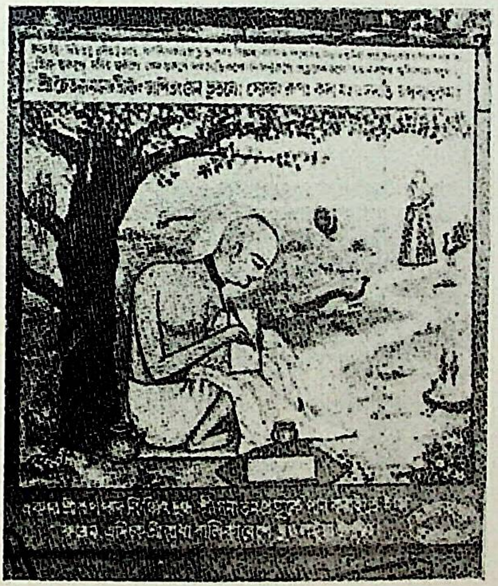

श्री रूपगोस्वामी : लेखन-मुद्रा में, पृ० ६७३

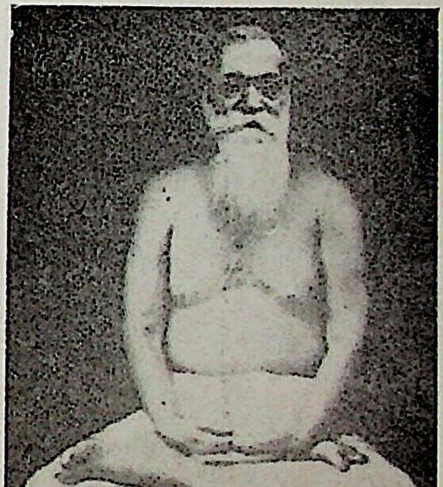

श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल, पृ० ५४२

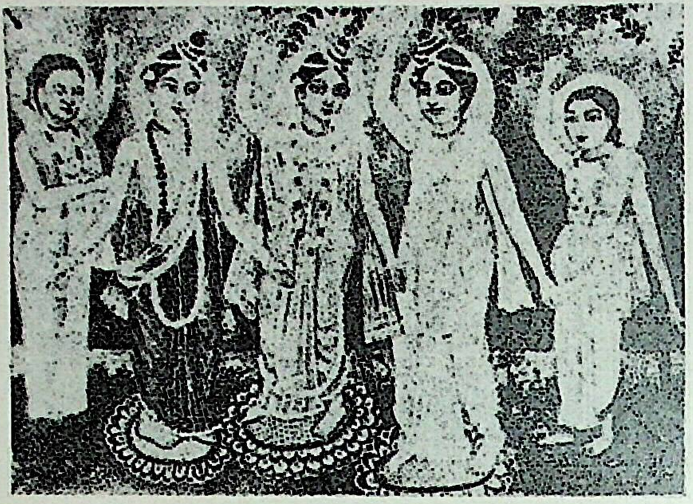

श्रीवास पण्डित, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु,
श्री अद्वैताचार्य तथा श्री गदाधर पण्डित : मदनगोपाल
मन्दिर, वृन्दावन, पृ० ६८७,६८८

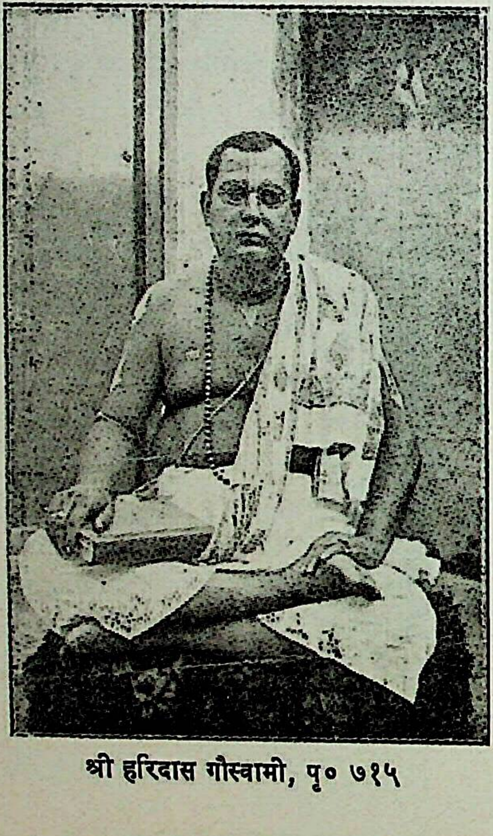

श्री हरिदास गोस्वामी, पृ० ७१५

भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद : श्रीकृष्ण-संचेतना-
आन्दोलन के प्रवर्तक, पृ० ६३७

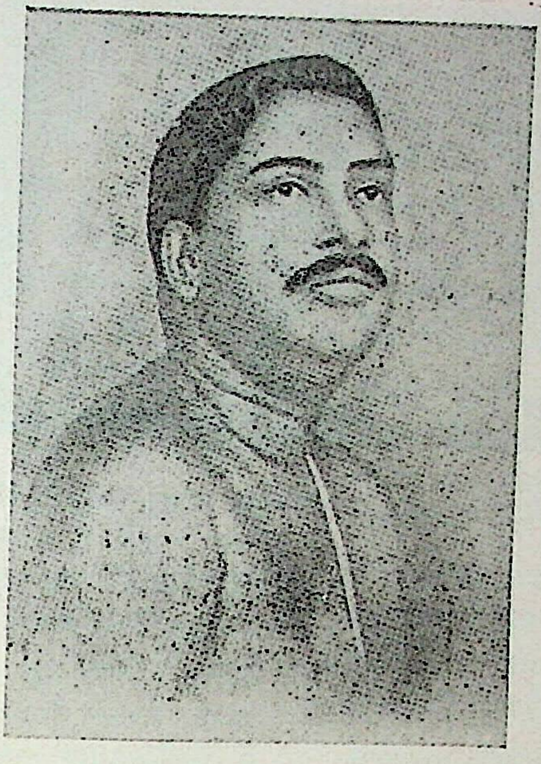

श्री अनुकूलचन्द्र चक्रवर्ती, पृ० ५२९

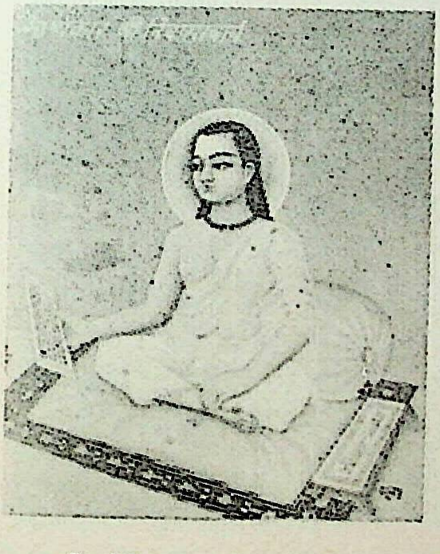

श्री श्रीनिवासाचार्य, पृ० ७०२

श्री भक्तिविनोदठाकुर
(चैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थान के पुनरुद्धारक)

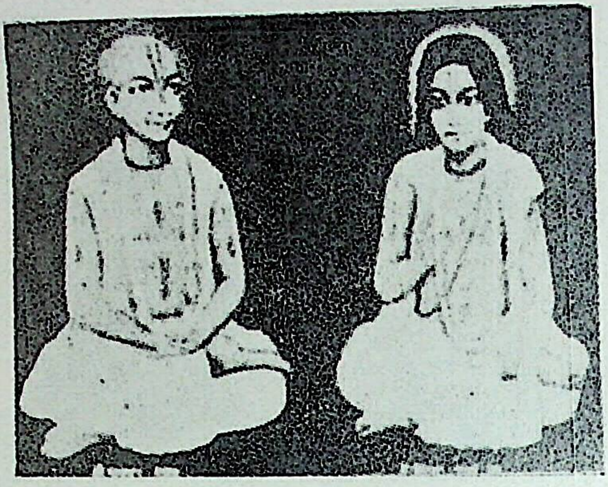

श्री नरोत्तम ठाकुर और श्रीनिवासाचार्य प्रभु, पृ० ६१५,७००

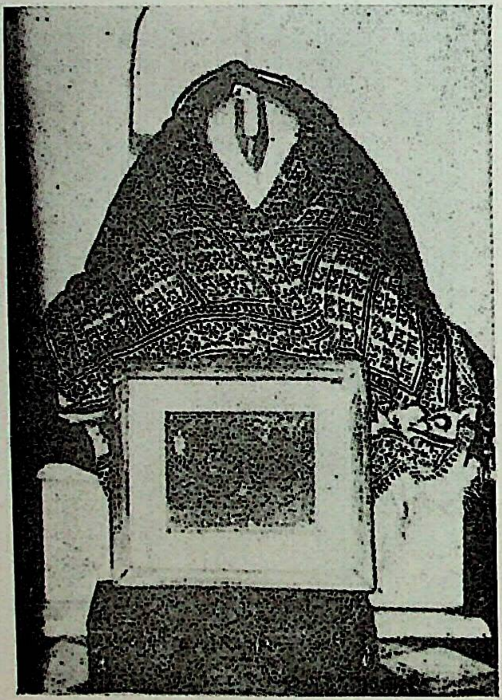

श्री रघुनाथ गोस्वामी की समाधि : राधाकुंड
पृ० ६५६

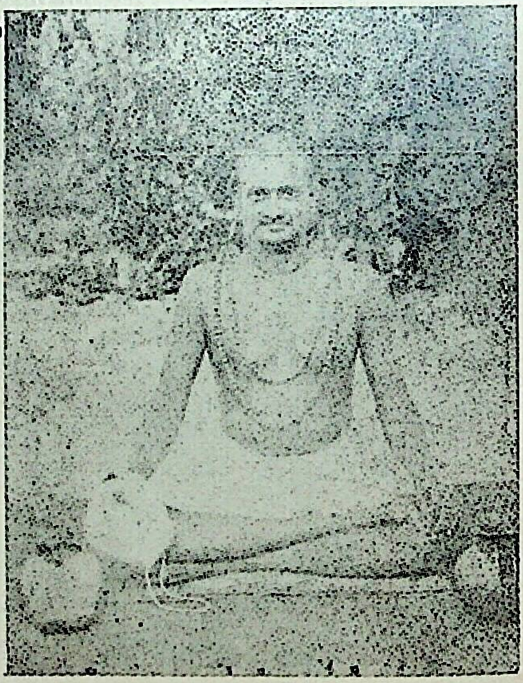

बावा किशोरीदास
पुराना कालीदह, वृन्दावन, पृ० ५४८

पूर्ण घटना है। इसका व्यापक प्रभाव बंगाल की संस्कृति पर पड़ा।

वृन्दावन के छः गोस्वामियों में गोपाल भट्ट एवं जीव गोस्वामी वैष्णव विधि मार्ग के सर्वश्रेष्ठ पोषक थे और उनके शिष्य श्रीनिवास आचार्य इस मार्ग के सर्वोत्तम प्रचारक। श्रीनिवास के जीवन काल में ही पदावली संकीर्तन-शैली में लिपिबद्ध हुई। साथ ही 'सत्य-पदावली' साधन, भजन व उपाय रूप में गृहीत हुई। इन्होंने 'मनोहर-शाही' कीर्तन प्रणाली का आविष्कार किया। आचार्य श्रीनिवास का अधिकांश समय संगठन कार्य में ही व्यतीत हुआ। अतः इन्हें रचना करने का पर्याप्त समय नहीं मिला। इनके रचित केवल तीन पद 'पदकलपद्रुम' में संकलित हैं। (क) बदन चांद कोन ....कुन्दरे कुन्दरे (ख) प्रेमक मंजरि युग ....। (ग) तुंह शुन भ्रमरी।' इन्होंने भागवत का चतुःश्लोकीय भाष्य भी किया है। इसका उल्लेख राधाकृष्ण गोस्वामी कृत 'साधन-दीपिका' में मिलता है। 'पदकल्पतरु' में जो तीन पद संकलित किए गए हैं, उनमें दो पद प्रार्थना परक है और तीसरे में कृष्ण के रूपसौन्दर्य या रूपानुराग का वर्णन है—

रूपानुराग

वदन चान्द कोन कुन्दारे कुन्दिलके सो,
केना कुन्दिल दुटि आंखि।
देखिते देखिते मोर पगन केमन करे,
सेइ से परान तार साखि।।

रतन काड़िया अति यतन कारिया गो,
केम ना गड़िया दिल काने।
मनेर सहिते मोर ए पांच परान गो,
योगी से उहारि धेयाने।।

अमिय मधुर बोल, सुधा खानि खानियो,
हातेर उपर लागि पाउँ।
एमति करिया जदि, विधाता गड़ित गो,
भांगिया भांगिया उहा खाउँ।।

मदन फान्दुया उना चूड़ार टोलिानि गो,
उहा ना शिखिया आइल कोथा।
एबुक भरिया मुञ्जि उहा ना देखिलूं गो,
एवड़ि भरमें मोर व्यथा।
नासिकार आगे दोले ए गजमुक्ता गो,
सोनाय मूढ़ित तार पाशे।
बिजूरी जड़ित येन चान्देर कनिका गो,
मेघेर आड़ाले थाकि हासे।।

कविवर कर जिनि बाकुर बलिन गो,
हिंगुन मण्डित तार आगे।
योवन बनेर पाखि पियासे मरये गो,
उहारि परस रस मांगे।।

नाटूया ठमक जाय, रहिया रहिया चाय,
चले जेन गजराज माता।
श्रीनिवास दासे कय लाखिले लखिल नय,
रस सिन्धु गढ़ल बिधाता।।

श्रीनिवास रचित पदों में दो पद व्रजबुली के हैं, एक पद नीचे दिया जा रहा है—

प्रेमक पञ्जरि शुन गुणमञ्जरी,
तहुं से सकल सुखदायी।
तोहारि गुनागुन चिन्तइ अनुखन,
मझु मन रहल बिकाई।।

हरि हरि कने मोर शुभ दिन होय।
किशोर-किशोरी पद सेवकेर सम्पद,
तुया गुणे मिलन्त कि मोय।।
तेरइ कातर जन कर कृपा निरिखन,
निज गुणे पूरबि आशे।
तुया नव घन विन्दु विन्दु वखिवन,
को पूरब पिया पियासे।।
तुया सेवि धन, गति निश्चय-अति,
मझु मने इह परमाणे।
कहइ कातर भावे, पुनः पुनः श्रीनिवासे,
करणामय करु अवधानें।।

(गौरपदतरंगिनी, पृ० ३६०)

द० श्री०

श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी / लोचनानन्द गोस्वामी

श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी और श्रीपाद लोचनानन्द गोस्वामी का जन्म ढाका में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीपाद लक्ष्मीकांत गोस्वामी था। श्री नवकिशोर गोस्वामी ने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री श्रीकृष्णकिशोर गोस्वामी से दीक्षा ली थी और श्री लोचनानन्द गोस्वामी ने श्री नवकिशोर गोस्वामी से। ये दोनों अल्पावस्था में ही संसार से विरक्त होकर वृन्दावन चले गये। वहाँ सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के शरणागत हुए। श्रीकृष्णदास बाबा से इन लोगों ने अपना यथार्थ परिचय न देकर शिष्यत्व ग्रहण किया था। जब इनके तीसरे भाई से वास्तविकता ज्ञात हुई तो बाबा अत्यन्त क्रोधित हुए, लेकिन उन्होंने इनके अत्यंत दीन होने पर क्षमा कर दिया। तीनों भाई अब काम्यवन के पश्चिम पशुप नामक निर्जन गाँव में रहकर भजन करने लगे। कुछ दिनों बाद इनके तीसरे भाई का देहांत हो गया। कुछ दिनों तक ये लोग ढाका में रहे, फिर स्वप्नादेश के अनुसार चटगाँव जिले के हाटाजारी थाना के अन्तर्गत फरदावाज ग्राम में चले गए। वहाँ ये प्रसिद्ध कविराज कार्त्तिक अधिकारी के यहाँ ठहरे तथा वहाँ के जमींदार की सारी सम्पत्ति ठाकुर के नाम लिखा दी और ठाकुर सेवा की व्यवस्था कर दी क्योंकि स्वप्न में उन्हें ऐसा ही आदेश मिला था। फरदावाज में विसूचिका रोग भयानक रूप से फैला हुआ था। कहते हैं, श्रीपाद लोचनान्द की कृपा से सदैव के लिए वह गाँव इस रोग से मुक्त हो गया। आज भी उस गाँव में विसूचिका रोग नहीं होता।

कुछ दिनों बाद ये लोग जगन्नाथपुरी रथयात्रा देखने गये। यहीं, दर्शन करते-करते श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी का प्राणांत हुआ। वहीं पर श्रीपाद लोचनानन्द गोस्वामी ने भी प्राण त्याग दिया।

मु० अ०

संतदास

श्री संतदासजी महाराज का जन्म हट्ट जिलान्तर्गत हविगंज सब डिवीजन के वामाई नामक ग्राम में हुआ था। आप चौधरी-विप्रवंशावतंस थे। आपका जन्म का नाम ताराकिशोर था। बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि रामायण, महाभारत, गीता, भागवत आदि धार्मिक ग्रन्थों में थी। आपकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि सुने हुए उपदेशों को कण्ठस्थ कर लेते थे, किन्तु जब तक उनके तात्पर्य को भली प्रकार से जान न लेते थे, उच्चारण नहीं करते थे। आप अत्यन्त प्रखर बुद्धि के थे। हाई स्कूल और इण्टर की कक्षाओं में आपको छात्र वृत्ति मिलने लगी थी। एम० ए० परीक्षा आपने अच्छी श्रेणी में पास की। ब्रह्मसमाज की तरफ आपका अधिक झुकाव था। वि० सं० १९३६ में आपने दर्शनशास्त्र में भी एम० ए० पास किया। तदुपरान्त वकालत पास करके कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत भी की।

वि०सं० १९६३ में प्रयाग-कुम्भ पर श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ने आपका परिचय श्रीकाठियाबाबाजी से कराया। आपके ऊपर काठियाबाबा का इतना प्रभाव पड़ा कि एक वर्ष बाद ही आपने वृन्दावन आकर उन से विधिवत् वैष्णवी दीक्षा ले लीं और वृन्दावन में एक निम्बार्काश्रम की स्थापना की।

श्री काठियाबावा का नित्यधाम में प्रवेश होने के उपरान्त आपने गुरुदेव का एक बृहद् भण्डारा किया एवं ढाई वर्ष के उपरान्त ही गृह त्याग कर वानप्रस्थ रूप से विरक्त साधु वेष धारण कर लिया। इसी समय से आपका नाम सन्तदास प्रसिद्ध हुआ।

उज्जैन कुम्भ पर्व पर समस्त चतुस्सम्प्रदायी महन्त-सन्तों ने आपको चतुःसम्प्रदाय खालसे की महन्ताई प्रदान की एवं ब्रजमण्डल के महन्तों ने आपको व्रज-विदेही पद पर प्रतिष्ठित किया। आप सभी साधु सन्तों की सेवा बड़े ही प्रेम से करते थे। साधु-सेवा में आपके लिए कोई ऊँचा-नीचा या बड़ा-छोटा नहीं होता था। बीसवीं शताब्दी में श्रीनिम्बार्क-

सम्प्रदाय का बंगाल में सबसे अधिक प्रचार-प्रसार आपके ही द्वारा हुआ। आपके आदर्श आचरण, त्याग-तितिक्षा आदि का समकालीन समाज पर गहरा प्रभाव था। इस महान विभूति ने वि० सं० १९९२ के कार्त्तिक मास में अपने पद पर अपने शिष्य तथा कृपापात्र श्रीधनञ्जयदासजी को, नियुक्त कर इस नश्वर शरीर का परित्यागकर दिव्य धाम में प्रवेश किया।

आपने कई ग्रन्थों का निर्माण किया, जिनके नाम हैं—

१. दार्शनिक ब्रह्मविद्या (प्रथमखण्ड) २. दार्शनिक ब्रह्म विद्या (द्वितीय खण्ड) ३. ब्रह्मवादी ऋषि व ब्रह्मविद्या ४. वेदांतदर्शन ५. भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सिद्धांत एवं श्रीमच्छंकराचार्य प्रभृति भाष्यकार ६. श्रीस्वामी रामदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र ७. श्रीमद्भगवदगीताभाष्य ८. गुरु-शिष्य-संवाद (ब्रह्मविद्या) ९. पत्रावली (प्रथम खण्ड १०. पत्रावली (द्वितीय खण्ड)।

प्रे० ना० श्री०

सनातन गोस्वामी

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास में सनातन गोस्वामी विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। ये मूलतः दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। 'भागवतामृत' नाम से इन्होंने भागवत की जो टीका लिखी है उसमें अपना वंश परिचय दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि 'सर्वत्र जगत् गुरु जो कर्णाटक देश के राजा थे, इनके पूर्वज थे। उनके पुत्र अनिरुद्ध हुए। पिता और पुत्र दोनों वैदिक शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। अनिरुद्ध के दो पुत्र हुए रूपेश्वर और हरिहर। रूपेश्वर के पुत्र पद्मनाभ और पद्मनाभ के पुत्र मुकुन्द हुए। मुकुन्द जी पारिवारिक कलह के कारण दक्षिण से बंगाल चले आये। इनके पुत्र कुमार देव के तीन लड़के हुए—सनातन, रूप तथा अनुपम। सनातन ही आगे चलकर सनातन गोस्वामी के रूप में विख्यात हुए। इन्हें सनातन नाम चैतन्य महाप्रभु से प्राप्त हुआ था। इनका वास्तविक नाम साकर मलिक था। 'चैतन्य-भागवत' से ज्ञात होता है कि साकर मल्लिक और रूप दो भाई थे। रामकेलि नामक स्थान में १५१३-१४ ई० में चैतन्य से इनकी भेंट हुई थी। साकर मल्लिक को चैतन्य देव ने सनातन नाम प्रदान किया था। कुछ लोगों का कहना है कि ये बाद में मुसलमान हो गये थे जिसकी वजह से ब्राह्मण समाज इन्हें हेय दृष्टि से देखता था किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। हुआ यह था, कि हुसेन शाह ने (१४९५-१५ ई०) जिस समय उड़ीसा पर आक्रमण किया था उस समय इन्होंने उसका विरोध किया जिसकी वजह से उसने इन्हें कैद करके एक मुसलमान के अधीन कर दिया। बाद में सनातन ने पहरेदार को घूस देकर अपने को मुक्त करा लिया और उड़ीसा से बाहर चले गये। इससे स्पष्ट है कि ये मुसलमान नहीं हुए थे बल्कि कुछ दिन तक मुसलमान की कैद में रहे थे।

सनातन गोस्वामी परम विद्वान् संत थे। इन्होंने नवद्वीप के नैयायिक पंडित विद्यावाचस्पति के संरक्षण में शास्त्रों का नियमित अध्ययन किया था। इन्होंने अपने 'वैष्णवतापनीय' नामक ग्रन्थ में ६ व्यक्तियों को बड़े आदर के साथ स्मरण किया है—महाचार्य सार्वभौम, विद्यावाचस्पति, विद्याभूषण, परमानन्द भट्टाचार्य तथा रामचन्द्र वाणीविलास। उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि विद्यावाचस्पति से इन्होंने विशेष रूप से शिक्षा प्राप्त की थी। ये रामकेलि ग्राम में निवास करते थे। वृन्दावन की यात्रा करते समय चैतन्यदेव यहां आये थे और यहीं पर सनातन से उनकी भेंट हुई थी। उल्लेखनीय यह है कि चैतन्यदेव के सम्पर्क से पूर्व ही ये वैष्णवदर्शन में निष्णात हो गये थे और 'दानकेलि', 'उद्धवदूत', 'हंसदूत' नामक रचनाओं का प्रणयन कर लिया था। चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें दीक्षित करने के बाद आदेश दिया—

तुमिह करिह भक्ति शास्त्रेर प्रचार।
मधुरार लुप्त तीर्थेर करिहि उद्धार॥

वृन्दावन कृष्ण सेवा वैष्णव आचार ।
भक्ति स्मृति शास्त्रे करि करिहि प्रचार ॥

इस आदेश का अनुपालन करके ये व्रजधाम चले गये, किन्तु शीघ्र ही महाप्रभु के पास नीलाचल लौट आये। एक वर्ष तक उनके पास रहकर ये पुनः वृन्दावन चले गये। यहीं पर १५५४ ई० में इनका गोलोकवास हुआ।

जीव गोस्वामी के अनुसार इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की थी—

१. वृहद भागवतामृत, २. हरिभक्ति विलास, ३. लीलास्तव या दशम् चरित, ४. वैष्णव तोषिणी।

इन्होंने पद-रचना भी की है। शास्त्रज्ञ होने के कारण इनके पदों की भाषा संस्कृत निष्ठ है। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

अभिनव कुण्डल गुच्छ समुन्जल कुञ्चित कुन्तल भार।
प्रनतजने चित बन्धन सह कृत मिलित युगल रूप सार॥
जय जय सुन्दर नन्द कुमार।
सौरभ संकटे वृंदावन-तट निहित बसन्त बिहार॥
चटूले मनोहर घन कटाक्ष शर राधा मदन विकार।
भुवन विमोहन गन्जल नर्तन शति विगलित नभिसार॥
अधर बिराजित मदन्तरस्वित अवलोकइ निजपरिवार।
निज बल्लभ जन, सुहृद सनातन बिमोहित चित्तउदार।

(पदावली-सनातन गोस्वामी)

द० श्री०

सालवेग

सालबेग की गणना विशिष्ट मुसलमान कृष्ण भक्तों में की जाती है। ये उड़ीसा के निवासी थे। अतः इनका विस्तृत परिचय उड़िया कृष्ण भक्तों के साथ प्रथम खण्ड (पृ० २२५-२२७) में दिया जा चुका है। इनके हृदय में कृष्ण के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उड़िया सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि ये पठान पिता और हिन्दू माता की सन्तति थे। 'पदकल्पतरु' में इनके तीन पद संकलित हैं। उनमें से एक 'उड़िया' में है (१५४२) दूसरा (२४७२) बंगला में, तीसरा (२९७२) 'ब्रज भाषा' से प्रभावित है। 'पदरत्नावली' (अप्रकाशित) में इनका एक पद 'ब्रजबुली' में भी है। अपने परवर्ती जीवन में सन्यास लेकर ये स्थायी रूप से वृन्दावन में रहने लगे थे।

उपर्युक्त तीनों भाषाओं में इनके द्वारा विरचित तीन पद प्रस्तुत है। इनसे विदित होता है कि अपनी मातृभाषा की भाँति ही ब्रजभाषा तथा बंगला पर भी इनका असाधारण अधिकार था।

(१)

झूलन लीला

बाये सखिगन विविध वाजन,
बाये अति अनुपाम रे।
मृदंग चउ उपाउ सुमधुर,
सप्त सुर तिन शाम रे॥

कोई नाचत ताल बजावत,
नाचत श्यामा-श्याम रे॥

आनन्दे तरङ्गित बहइ यमुना,
ए रूप सखि सुरधाम रे॥

नव नागर कानू राधा तरुनी,
नव जलधरे किये शोभित दामिनी,
मोहित ब्रह्मा शंकरे।
चांद किरनहि विकसि कुमुदिनी,
शोभित सुभग सरोवरे॥

हंस सारस तबकि ताण्डव,
डहकि-शबद मनोहरे।
सालबेग-पिय निरखि लावनि,
बरनि नहि कछु जात रे॥

(अप्रकाशित 'पदरत्नावली', पृ० १३९, पदरससगर, पृ० ४४३)

(२)

नागरि नागरि नागरि।
कत प्रेमेर आगरि नव नागरि॥

कंनक-केतकि चम्पा-तड़ित-वरनी ।
इन्दिवर निलमनि जलद-रमनी ।।

मृगज-पंकज-मिन खन्जन-नयनो ।
काम धनू भ्रमर पंक्ति भीरु भुजङ्गिनी ।।

नासा तिल-फूल खग चम्पक कालि जिता ।
जाःमि जल बहन्ति वेलि भांपि झलकिता ।।

भाले सिन्दूर-बिन्दु शोभे केश शोभा ।
जिनि इन्दिवर बाहु तमालेर आभा ।।

भाले विराजित उरे, मौतिम हारा ।
हंस-बक श्रेनी गंगा जल दुग्ध-धारा ।।

कह सालबेग हीन जगत पामरा ।
रसेर कलिका राइ कानू से भ्रमरा ।।

(३)

जय जय राधे गोपाल गोपांगना रे ।
शीश मोर मुकुट नट शोहे कटि पीत पट,
किंकिन अधिक शोहाउना रे ।।
भाल केशर तिलक काने कुण्डल झलक,
अधर पर मूरलि सुख पाउना रे ।
यमुना तटे रङ्गिनो सकल रमनो-मनि,
रूप नव दामिनि गन्जना रे ।।
धन्नन ननध रव-रव उधर भेद यंत्र वर
सात स्वर तान विंश मूर्च्छंना रे ।
थिगिनि गिनि धिद्धिकट तगधेनांधिन्तिमर,
सालबेग पूरल मन कामना रे ।

(पदकल्पतरु, २९७२)

द० श्री०

सुन्दरदास

सुन्दरदास का समय सन् १६०७ के लगभग माना गया है। 'पदकल्पतरु' में इनके दो पद संकलित हैं जिनमें एक पद ब्रजबुलि तथा दूसरा पद बंगला का है। ये दोनों ही पद बलराम की गोष्ठ-लीला विषयक हैं। उदाहरणस्वरूप एक पद नीचे दिया जाता है—

गलित-रज-गिरि जिनि तनु सुन्दर,
जानु-लम्बित बनमाल ।

नील बसन बनि अपरुप-शोभनि,
मरकते हीर मिशाल ।।

धावत धवली-पाछे बलराम ।
चंचल नयन ढुलए जनु पंकज,
हेरि मुगध भेल काम ।।

उभ करे धवली-शांवली बलि डाःकइ,
कोमल-वत्स लेइ कान्धे ।

सघने खसये शिखि-पिंज मनोहर,
छान्ननडुरि देइ बान्धे ।।

वयान चाँद अधर जनु बान्धुली,
ताहे मधुर मृदु हास ।

परिखए अमिया श्रवण भरि पीवइ,
सहचर सुन्दरदास ।।

स० गु०

सुबलचन्द्र ठाकुर

सुबलचन्द्र ठाकुर वृन्दावन चन्द्र अथवा श्री निवासाचार्य के पौत्र (ज्येष्ठ पुत्र राधाकृष्ण के पुत्र) और (अपनी बुआ की कन्या) हेमलता देवी के शिष्य थे। 'कर्णानन्द' के अनुसार इनका समय १६०७ ई० के आप-पास ठहरता है। इनके पद 'कीर्तनानन्द' एवं 'पदामृतसमुद्र' में संकलित हैं। 'पदामृतसमुद्र' से इनका एक पद दिया जा रहा है—

देख नटवर नाचे शचीर कोंवर हे ।।
हेमवर गोरा तनु प्रेम भरे मोरा जनु,
मधुर हसन-कण जन मनोहर हे ।।

अरुण-चरण धर नयनहि नीरधर,
तरुण-करुण मनु मति लर झर हे ।।

देखि प्रिय गदाधर, विपुल पुलक भर,
एछो टेढ़े भाव धर काम धनुभर हे ।।

हेरि फेरि नित्यानन्द लागे हेर नयन चन्द,
इन्ह रसगन्ध पाओए, सुबल सुघड़ हे ॥

'शची के कुंवर (पुत्र) को नृत्य करते हुए देख कर कंचन-वर्ण गौरांग का तन (कृष्ण) प्रेम पूरित और आह्लादित है, जो हास के मधुर कण से जन-मन को आकर्षित कर रहा है। उनके अश्रुकण उनके चरणों पर गिर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है उनके हृदय की करुणा विगलित होकर मुक्ताहार रूप में गिर रही है। इसे देखकर गदाधर पुलक से गद्गद हो गए। उनकी छोटी तिर्यक भौंहें काम-धनु के समान हैं, इसे देखकर नित्यानन्द अपने नेत्र पीड़ा से नीचे कर लेते हैं, पर इस अलौकिक लीला सुख के रसगन्ध की प्रतीति सुबलचन्द करते हैं।'

द० श्री०

सैयद मुर्तंजा

सैयद मुर्तंजा के पिता सैय्यद हुसेन कादरी बरेली के निवासी थे। ये बंगाल में आकर बस गये थे। मुर्तंजा का जन्म मुर्शिदाबाद जिला के अन्तर्गत जंगीपुर के निकटवर्ती बलियाघाटा नामक स्थान में हुआ था। इनके कृष्णभक्ति-भावित २८ पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। ये पद मुर्तंजा भणिता से रचे गये हैं। सुन्दर सान्याल संकलित 'मुसलमान वैष्णव कवि' (खण्ड ३) में भी इनके कुछ पद मुद्रित हुए हैं। 'मुर्शिदाबाद' के इतिहास के लेखक निखिल नाथ चक्रवर्ती ने १७वीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान सैय्यद मुर्तंजा नामक एक उदासीन भक्त का उल्लेख किया है। संभव है ये उदासीन भक्त राधाकृष्ण भक्त सैयद मुर्तंजा ही हों। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

श्याम बन्धु चिंतनिवारण तुमि,
कोन शुभ दिने देखा तोमा मने ।
पाशरिते नावि आमि,
जखन देखिए ए चांद बदने ॥
धेरज धरिते नाहि ।
अभागीर प्रान करे आंन चांनं,
दण्डे दश बार मारि ॥
मोरे कर दया, देह पद छाया,
शुनह परान-कानु ।
कुलशील सब नाभाइलूं जले,
प्रान ना रहे तोमा बिनु ॥
सैयद मुरतजा भने कानूर चरने,
निवेदन शुन हरि ।
सकल छाड़िया रेलुं तुमा पाये,
जीवन मरण भरि ॥

(पदकल्पतरु, २९५७, पृ० २०८)

द० श्री०

स्वरूप दामोदर

स्वरूप दामोदर चैतन्य के लीला सहयोगी, अंतरंग एवं प्रतिवेशी थे। गौराङ्ग के सन्यास लेने के पश्चात् ये वाराणसी चले गये। वहाँ इन्होंने चैतन्यानन्द के निकट सन्यास ग्रहण कर लिया। इनका सन्यास अवस्था का नाम स्वरूप-दामोदर पड़ा (इनका मूल नाम पुरुषोत्तम आचार्य था)। बाद में ये इसी नाम से विख्यात हुए। सन्यास लेने पर भी इन्हें शान्ति नहीं मिली और पुरी लौटकर इन्होंने चैतन्य-चरणों का अभिषेक किया। स्वरूप दामोदर शास्त्र-निष्णात उच्च कोटि के संगीतज्ञ तथा सुकंठ गायक थे। इनका रस-बोध विलक्षण था। ये चैतन्य को गीत गोविन्द, चण्डीदास व विद्यापति के पदों को भाव-विह्वल होकर सुनाया करते थे।

स्वरूप गोसाइँर भाग्य न जाय बर्नन।
प्रभूते आविष्टे जार काय-वाक-मन ॥

स्वरूप इन्द्रिये प्रभूर निजेन्द्रिय बन ।
आविष्टहोइया करे गान आस्वादन ॥

मुरारि गुप्त ने महाप्रभु की आदिलीला और स्वरूप दामोर ने शेष-लीला का वर्णन किया है—

आदिलीला मध्ये प्रभूर यतेक चरित ।
सूत्र रूपे मुरारि गुप्त करिला ग्रथित ॥

प्रभूर मध्ये शेष लीला स्वरूप दामोदर।
सूत्र करि ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर॥
एक दुइ जनेर सूत्र देखिया सुनिया।
बर्नना करेन वैष्णव क्रम जे परिया॥

'स्वरूपदास' भणिता से दो पद 'पदकल्पतरु' में और एक अन्य पद 'गौरपद-तरंगिणी' में संकलित हैं। परन्तु ये पदकर्त्ता थे अथवा नहीं, इसका निर्णय नहीं हो सका है। जिन पदों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे दामोदर दास के हैं, जो स्वरूप दामोदर से भिन्न भक्त थे।

द० श्री०

स्वरूपदास

स्वरूपदास 'स्वरूपाचार्य' नाम से विख्यात थे। ये श्रीनिवास आचार्य की (चतुर्थ शिष्य) परम्परा में आते हैं। श्रीविलास आचार्य इनके दीक्षागुरु थे। इनकी जन्म और मृत्यु तिथियाँ अज्ञात हैं। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है। यह नित्यानंद के जन्मोत्सव का पद है—

ऊलू पड़े बारे-बारे, हाड़ाइ पण्डितेर बाड़ि।
पद्मावतीर धरे निताई आइल गोलोक छाड़ि॥

एकचाकार नारी एकल जे जे भावे छिल।
छाउयाल देखिते, आते पिते तखनि छूटिल॥

कोलेर छाइला गेल फाइला, माइ न दिया माय।
चूलाय दुग्ध, राखि के ह, काटि हाते जाय॥

शुष्क वसन परिते केह भिजा बसन तेजे।
मनेर भुले न्याग्हो गेल परिहरि लागे॥

चिनर लेया चूल वांछिते छिलेक कोन धनी।
छूटिल अमनि पोठे बोले आध बेनि॥

स्वरूपदासे वले दिदि देखिते पागल छेले।
केने पागल हलि तोरा काज फेले॥

'हाड़ाइ पण्डित के घर निरंतर मंगलोत्सव (ऊलूध्वनि) होता है, गोलोक को छोड़कर निमाई पद्मावती के घर आए हैं। नगर (एकचाका-एक नगरी विशेष) की समस्त नारियाँ जिस अवस्था में थीं, शिशु (छाउयाल-छावाल संस्कृत शावक प्रा० छाअल) शिशु को देखने के लिए (आतालि-पातालि) सभी स्थानों से रमणियां तत्क्षण आईं। गोद का शिशु (वहीं) गिर गया। माता शिशु को स्तनपान कराना भूल गई। कोई चूल्हे पर रखे हुए दूध को छोड़कर, हाथ में काटी (जलावन) लिए चली जाती है। कोई (स्नान करने के पश्चात्) भींगे वस्त्र को त्याग कर, सूखे वस्त्र को पहनना भूलकर लोक लज्जा का परित्याग कर नग्न अवस्था में ही चली आती हैं। कंघी लेकर केश संवारती कोई रमणी आये केश को बांधकर ही दौड़ी, अर्धवेणी उसकी पीठ पर हिल रही है। स्वरूपदास कहते हैं, दीदी उस पागल लड़के को देखने हेतु सारा कामकाज छोड़कर तुम भी पागल हो गई हो?'

द० श्री०

स्वर्णलली

स्वर्णलली का सर्वप्रथम उल्लेख 'ब्रजबुली साहित्य के इतिहास' में उपलब्ध होता है। ये कवि यादवेन्द्र की पत्नी थीं। इनकी जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, रचना-काल, मृत्यु-तिथि आदि सभी अज्ञात है।

इनके कुछ पद तथा एक कविता का अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। कवयित्री की भक्ति-भावना एवं काव्य-प्रतिभा का अनुमान लगाने के लिए कविता के अनुवाद को आधार बनाना अनुपयुक्त न होगा।

डॉ० सावित्री सिनहा ने उस अंग्रेजी कविता का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार किया है—

"सान्ध्यवेला में यमुना तट पर नीम तरु के तले मैंने प्रिय के दर्शन किए। उनके रूप की दीप्ति तथा माधुर्य की गरिमा के आकर्षण से मेरे नेत्र तथा हृदय-पक्षी उन्हीं की ओर उड़ चले। उस सौन्दर्य-निधि के प्रभाव से उत्पन्न अचेतन मूर्च्छना में मैं खो गई। राकाशशि को लज्जित करने वाले उनके मुख की शोभा तथा उनकी त्रिभंगी मुद्रा मेरे हृदय में

बिंध गई है, और मस्तिष्क तन्मय-विभोर हो जड़ बन गया है, उस विभोरता में कटि के कलश यहाँ गिर गए। गृह लौटने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी। अतः वहीं अन्धकारपूर्ण मार्ग में मैं भटकती रही। किंकर्त्तव्यविमूढ़ किसी प्रकार घर लौटी तो कलश न देखकर गृह के सदस्यों ने मेरी भर्त्सना की। गृह मेरे लिए वन बन गया है, मेरे हृदय में अशांति है। घोर वन में भयानक जन्तुओं का वास रहता है पर इस गृह-वन में गुरुजन ही मेरे लिए भयावह बन गये हैं। कृष्ण के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है तथा स्पष्टोक्ति की मुझमें सामर्थ्य नहीं है।"

उपर्युक्त गद्य रूपान्तर से यह स्पष्ट है कि स्वर्णलली की भक्ति-भावना माधुर्य भाव की थी, जिस पर चैतन्य मत का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है। इसमें प्रेमजन्य सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों, भावनाओं तथा अनुभावों का मार्मिक चित्रण मिलता है। तन्मयता, विह्वलता से आत्मविभोर भावनाएँ चित्र बनकर नेत्रों के माध्यम से मानस में घर कर गई हैं।

इसके अतिरिक्त एक पद में कवयित्री की विवशता की अभिव्यञ्जना में व्यक्त करुणा की सजीवता दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः यह पद उसके घर की स्थिति तथा वातावरण का परिचायक है। कृष्ण के प्रति उसका आकर्षण स्वाभाविक है। प्रिय के प्रेम में पगी कवियित्री अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है। घर की परिस्थिति ने उनके श्रीकृष्ण-प्रेम को नैरन्तर्य प्रदान किया है।

कवयित्री के आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं। वे ही उसके प्रेमालम्बन भी हैं। सहज-प्रेम ही उसकी प्राप्ति का उपाय है। प्रेम के अभाव में उसे प्राप्त करना दुष्कर है। स्वर्णलली का भक्ति मार्ग ऋजुमार्ग है, उसे आधार बनाकर वह अपनी विरह-व्यथा को उनके समक्ष रखती हैं।

उनके प्राप्त पदों के रूपान्तर शृंगार प्रधान हैं, जिसका स्थायी भाव रति अर्थात् प्रेम है। इस रति के 'आलम्बन' नायक श्रीकृष्ण हैं और नायिका (आश्रय) स्वयं कवयित्री। रतिभाव में सान्निध्य लाभ की अभिलाषा तीव्रतम होती है। श्रीकृष्ण के सहज प्रेम में रतिभाव का समावेश स्वयमेव हो जाता है। यही रतिभाव माधुर्य-भक्ति की आधारशिला है जहाँ भाव की विद्यमानता प्रेम के कारण होती है।

श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी ही ऐसी है कि कवयित्री पूर्णरूपेण उनके प्रेम में लीन हो जाती है। प्रेम के तीव्र आवेग में कुल की मर्यादा का उसे ध्यान नहीं रह पाता। वस्तुतः अपने को प्रिय के चरणों में सर्वात्मना समर्पित करने के पश्चात् आश्रय की यही अवस्था होती है।

काव्य का अपरिहार्य गुण प्रेषणीयता है। सर्वप्रथम काव्यकार की चेतना में कोई वस्तु भाव रूप में परिणत होकर उसे आस्वाद प्रदान करती है। पुनः उस अनुभूति को दूसरों तक प्रेषित करने के लिए वह भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, संगीत आदि का आश्रय ग्रहण करता है। स्वर्णलली की भाषा मैथिली से मिलती-जुलती है, जो माधुर्य गुण से युक्त है। पदों की सरसता तथा सरलता के कारण उसके गीतों में प्रसाद गुण भी आ गया है। अलंकारों का प्रयोग नहीं के बराबर है। भाषा अनलंकृत होने पर भी भावों को वहन करने में सक्षम है। वह अवसरानुकूल और प्रसंगानुकूल होने के साथ-साथ प्रवाहपूर्ण है। कवयित्री के भावातिरेक के साथ ही उसकी भाषा स्वयं भावमयी बन गई है। अपनी भावप्रवणता तथा अभिव्यंजना शक्ति के कारण ही स्वर्णलली का कृष्ण-भक्ति-शाखा की कवयित्रियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। नमूने के रूप में यहाँ उनके दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

आशा काले गेलाम यमुना रे कूले,
बधु रे हेरिलम नीम तरु मूले।
गेह हैला मोरा दुर्गम मन,
काकरी सखो घरे न रहे मन॥

(२)

दुर्गम वन ते सब जन्तु रये,
गेह वन मोर गुरु जन भये।
से कृष्ण बिन मोरा प्राण ना रये,
फुकूर कहित अन्दर रहे ॥

हौं० प्र० सिं०

हरिचरण दास

हरिचरण दास अद्वैत आचार्य के शिष्य और कवि कर्णपूर के समकालीन थे। कृष्णदास कविराज ने अद्वैत शाखान्तर्गत हरिचरण का उल्लेख किया है। अद्वैत के ज्येष्ठ पुत्र अच्युतानन्द एवं भाइयों बलराम, कृष्ण, गोपाल तथा जगदीश के अनुरोध पर इन्होंने 'अद्वैत-मंगल' काव्य की रचना की थी।

अच्युतानन्द, बलराम, कृष्ण मिश्र।
गोपाल, जगदीश, रूप सहजे सहस्र ॥

तोमा सभा कृपा बले अद्वैत चरित।
द्वितीय अवस्था किछु करिब विदित ॥

अद्वैत की बाल-लीला की कथा इन्होंने विजयपुरी सन्यासी एवं श्यामदास से सुनी थी। विजयपुरी अद्वैत के समसामयिक और उनके पार्श्वर्ती ग्राम के निवासी थे—

श्री चैतन्य लीला वर्णिला कविकर्णपूर।
ताहे नित्यानन्द लीला रसेर प्रचुर ॥

अद्वैत प्रभुर आदि ग्रन्थ अन्त्य लीला किन्तु।
वर्णन करिल सर्व करि भागि-पिछु ॥

(बंगला-साहित्येर इतिहास, पृ० २७५)

इनका एक छंद नीचे दिया जा रहा है—

रसिक नागरी रसेर पराग।
रसिक भमरा, प्रेम प्रियाग ॥
अबला मूरति रसेर बाण।
रसे डुबउ करैव प्राण ॥
रसवती सदा हृदये जागे,
दरशे परशे रस प्रकाश।
आशा करे हरिचरण दास ॥

(हि० ब्र० पु० लि० पृ० ४५६ से उद्धृत)

'प्रेम मुग्ध नागरी (राधा) पवित्र नागर (कृष्ण) (दोनो ही) रस पिपासित हैं। अबला (राधा) के हृदय में निरन्तर रस-वर्षण हो रहा है। रसवती के हृदय में निरन्तर प्रेम जागृत है। दर्शन के पश्चात् वह स्पर्श-अभिलाषा व्यक्त करता है। (दर्शन के पश्चात् स्पर्श की अभिलाषा व्यक्त करता है)। दरश परश से वह प्रेम की अभिलाषा व्यक्त करती है। (प्रेम प्रवाहित करती है)। हरिचरण दास भी यही अभिलाषा करते हैं।'

द० श्री०

हरिदास (बड़े-छोटे)

हरिदास नामक एकाधिक वैष्णव भक्तों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

(क) छोटे व बड़े हरिदास—ये दोनों व्यक्ति गौरांग भक्त और उनके अनुचर थे। ये नीलाचल में महाप्रभु के निकट रहते थे और उन्हें कीर्तन से आनन्दित कर सुख देते थे। 'चैतन्य-चरितामृत' में इनका उल्लेख निम्नलिखित रूप में मिलता है—

(१) बड़ हरिदास व छोट हरिदास।
दुइ कीर्तनिया रहे महाप्रभु पास ॥
(२) छोट बड़ कीर्तनिया दुइ हरिदास।
रमाई नन्दाई रहे गोविन्देर पास ॥
गोविन्देर संगे करे प्रभूर सेवन।
गोविन्देर भाग्य सीमा न जाय वर्नन ॥

बड़े हरिदास के विषय में इससे अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। सम्भवतः ये गृहत्यागी वैष्णव थे। छोटे हरिदास भी गृह त्यागी वैष्णव थे। ये नवद्वीप के निवासी थे। द० श्री०

हरिदास ठाकुर

हरिदास ठाकुर यवन हरिदास नाम से विख्यात हैं। कृष्णदास कविराज ने इनके विषय में कहा है—

हरिदास ठाकुर शाखार अद्‌भुत चरित।
तिन लक्ख नाम तें हो लयेन अपतित॥

ताहार अनन्त गुन कहि खिश्मात्र ?।
आचार्य गोसाई जारे भुन्जय धद्ध पात्र॥

पहलाद समान तार तरंग।
यवन ताड़ने यार (जार) नहिल भ्रूभंग॥

तेहो सिद्धि पाइले तार देह लजा कोले।
नाचिला चैतन्य प्रभु महा कुतुहछे।

(पदकल्पतरु २५१)

इनकी जन्म-कथा विवादास्पद है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि ये यवन-कुल में जन्मे थे। किन्तु, जयानन्द कृत 'चैतन्यमंगल' के अनुसार ये द्विजवंश में जन्मे थे। इनके पिता का नाम मनोहर व माता का नाम उज्जला था। अल्पवय में ही इनके माता-पिता का निधन हो गया था और किसी यवन दम्पत्ति ने इनका पालन पोषण किया था। युवा अवस्था में ये वैष्णव सन्यासी हो गए। कहीं-कहीं ऐसा उल्लेख मिलता है कि इनके पिता का नाम सुमत्ति ठाकुर व माता का नाम गौरी देवी था। इनका जन्म सुर नदी तटवर्ती भाटकला गद्दी ग्राम में हुआ था। परन्तु सामान्य धारणा यही है कि ये यवन कुल उद्‌भूत थे।

बूढ़ने हइले जन्म ब्राह्मने वंशे।
यवनत्व प्राप्ति तार यवन्नाम दोषे॥
शैशवेर ताहार माता पितार मृत्यु होल।
यवन आशिया तारे निज गृह निले॥
अम्बुयार अधिकारी भलया काजिनाम।
ताहार पलित होया, ताहार अन्न खाय॥

इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

नितार चाँदेर गुन कि कहब आर।
एमन दयार निधि कूम नहि होयल,
कभ नहि होयव आर॥ धु।
मूढ़ पाखण्डी छिल, जागाइ दुहुँ,
कांधा केरि सारिल कपाले।
रुधिर बहिल नदी, दुवाह पसारि तमू,
पहुँ दोहे कय लहि कोले॥

गोलोक दुहल धन, आ चण्डाले वितरन,
जाति कुल ना करत विचार।
मुखे हरि हरि बोलि, नाचिया नाचिया चलि,
दुनयने बहे जलधार॥

आपहि मातल जगत मताउल,
खेने काँदे खेने मृदु हास।
आपन प्रेमे भौरा, नितार मातोधारा,
कि बुझाइ पामर दीन हरिदास॥

(गौ० प० त० ४८ २८३)

द० श्री०

हरिदास द्विज

हरिदास (द्विज) महाप्रभु के अनुयायी राढ़ीय वंशीय कुलीन ब्राह्मण थे। कुसलया के भूस्वामी नृसिंह देव इनके पिता थे। मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत वैद्यपुर के निकटवर्ती कांचन गढ़िया ग्राम में इनका मूल निवास था। वय में ये श्रीनिवास से ज्येष्ठ थे। चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के पश्चात् ये वृन्दावन चले गए और भजन-पूजन में अपना समय व्यतीत करने लगे। वहीं इनका साक्षात्कार श्रीनिवासाचार्य से हुआ। 'चैतन्य-चरितामृत' में इनके विषय में निम्नोद्धृत उल्लेख मिलता है—

सुशील सहिष्णु शान्त वदान्य गम्भीर।
मधुर वचन मधुर चेष्टा अति धीर॥

सबार सम्मान कर्ता, करे सबार हित।
कौटिल्य मात्सर्यो हिंसा न जाने तारचित॥

कृष्णेर जे साधारन सदगुन पंचास।
सेइ सब इहार शरीरे परकाश॥

('उज्ज्वलमील मणि' में श्रीकृष्ण के पचास गुणों

का वर्णन मिलता है—सुधी तत्वं, प्रतिभा, विदग्धता, वाग्मिता इत्यादि 'सदगुन-पंचास' से इन्हीं गुणों की ओर संकेत हैं)।

द्विज हरिदास रचित ६ पद उपलब्ध हैं, जिनमें से चार पद 'ब्रजबुली' में और दो पद 'बंगला' में है। उनमें से दो पद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

दूति मुखे शुनइते ऐछन रीत।
सब अंग पुलकित चमकत चित ॥
कहइते गदगद कन्ठेइ अन्तर दोल।

इंगित जानि बनायल वेश।
सिन्दुर देयल बान्धल केश ॥

सब सखिगन मेलि कयल पशान।
निशरेद चललिहं कोइ न जान ॥

चलइते पद दुइ धरहरि कांप।
हेरइते पन्थ नयन युग झांप ॥

ऐछने मिलन नागर पाश।
पहिल मिलन कहे द्विज हरिदास ॥

(पद कल्पतरु, १३।१२९।९४)

(२)

ए धनि मानिनि मानि निवार।
आबीरे अरुन श्याम अंग मुकुर पर,
नित प्रतिबिम्ब निहार ॥

तुहं एक रमनी शिरोमनि रसवती,
कोउ न ऐछे जग माह।

तोहरि समुखे श्याम सङ्गे (संगे) विलसव,
कैछन रस निरवाह ॥

ऐछन सहचरी बचन श्रवने धरि,
शरमे भरने मुख फेरि ॥

इषत हासि मने मान तेयागल,
उलसित दोहे दोहां हेरि ॥

पुन सब जन मेलि करये विनोद केलि,
पिचकारी करि निज हाते।
द्विज हरिदास अबीर जौगायत,
सकल सखा गन माथे ॥

(पदमंजरी–हि० ब्र० बु० ३३।५०।५१२)

द० श्री०

हरिदास गोस्वामी (हरि बाबा)

हरिदास जी का जन्म २ अक्टूबर १८६७ ई० (शकाब्द १७८९, बंगाब्द १२७४) के कार्तिक मास मंगलवार, भ्रातृ द्वितीया को नदिया जिले में कृष्णनगर के अन्तर्गत दोगाछिया गांव में हुआ था।

आपके पिता का नाम श्रीसीताराम गोस्वामी प्रपितामह का नाम श्री भारतचन्द्र गोस्वामी तथा उनके पुत्र और आपके पितामह का नाम गौरहरि था। गौरहरि के पुत्र सीतानाथ आपके पिता थे। ये उनके द्वितीय पुत्र थे। आरम्भ में जीवकोपार्जन हेतु ये डाक विभाग के कर्मचारी के रूप में बिहार प्रान्त के मुंगेर और भागलपुर जिले के विभिन्न अंचलों—खडगपुर, तारापुर, जमालपुर, साहेबगंज, भागलपुर, लालगंज, दरभंगा, गया, बक्सर, देहरी-आनसोन, सोनपुर आदि स्थानों में कई वर्षों तक कार्यरत रहे। इस बीच इनका अन्तर्मन सदैव भगवद्भक्ति में लीन रहा करता था और शेष समय में ये सत्संग भजन, कीर्तन आदि में संलग्न रहते थे।

श्रीकृष्ण भक्ति और चैतन्य-चरित में आरम्भ से ही इनकी गहरी निष्ठा रही। बताया जाता है कि इनको महात्मा शिशिर कुमार घोष ने स्वप्न में श्रीकृष्ण नाम का मन्त्र दिया था। उसके बाद ये इसी नाम-जप में अनवरत विभोर रहने लगे।

इनके रचित कई भक्तिपरक काव्य, नाटक तथा चरित मिलते हैं। इनकी प्रकाशित रचनाओं में 'श्री विष्णुप्रिया नाटक', 'श्री लक्ष्मीप्रिया चरित', श्री गौरांग महाप्रभु की दो भागों में (नव द्वीप और नीलाचल लीला) में जीवनी, 'श्री श्री वैष्णव संगिनी', 'श्री श्री वैष्णव सेतिका' आदि हैं। इनके अतिरिक्त

'श्री विष्णुप्रिया' और 'श्री श्री गौरांग' नामक दो पत्रिकाएँ भी इन्होंने सम्पादित की थीं।

रचनाओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी कृष्ण भक्ति की साधना चैतन्य सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण माधुर्य भाव की थी। आपका नित्य लीला प्रवेश पौष शुक्ला १ बंगला सं० १३५५ (१९४८ ई०) में हुआ।

विष्णुप्रिया नाटक से इनकी रचना का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :

मूल बंगला

आमि कृष्ण अन्वेषणे जाब
दाओ मा ! बिदाय।
ए कदम्ब तलाते बंसि,
आड़े चेये हासि हासि,
आमार कृष्ण आमार तरे,
वेणु बजाय ॥

सेजे बामे हेले वेणु करे,
डाक छे मोरे मधुर स्वरे,
आय रे नदिया चाँद,
आय आय आय।

काल शरीर वंशो शुनि,
रइते नारि घटे आमि,
आमाय कृष्ण आमाय आमाय डाके,
दाओ मां विदाय ॥

हिन्दी रूपान्तर

कृष्ण-खोज में मैं जाऊँगा
मां ! दे दान विदा का रे।
छिप कर बैठ कदम्ब सहारे
हंस-हँस मेरी ओर निहारे ॥
मेरे लिये कन्हैया मेरा,
बंशी मधुर बजाता रे।
टेढ़े होकर मुरली धारे,
मीठे स्वर में मुझे पुकारे ॥
आजा रे नदिया का चंदा,
आजा आजा आजा रे।
कृष्ण चंद्र की बंशी सुनकर,
मुझसे रहा न जाता घर पर,
मेरा कृष्ण पुकारे मुझको,
मां ! दे दान बिदा का रे ॥

(विष्णुप्रिया नाटक से)

त० ना०

हरिदास

श्रीहरिदासजी का जन्म वर्तमान जैसोर जिले के बूढ़न नामक ग्राम में एक सम्भ्रांत मुसलमान के घर हुआ था। किसी पूर्वसंस्कार के कारण बाल्य काल से ही हरिदास को हरिनाम बड़ा प्यारा लगता था। श्रीकृष्ण की लीलाओं को ये बड़े चाव से सुना करते। इन्होंने अपना जीवन श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया था। ये दिन रात उच्च स्वर से हरिनाम कीर्तन करते रहते। हरिनाम अधिक लेने के कारण इनका नाम हरिदास पड़ गया था। ये प्रतिदिन तीन लाख नाम-जप किया करते थे।

हरिदासजी कालान्तर में चाँदपुर में रहने लगे। वहाँ के लोगों को अपनी नामनिष्ठा से प्रभावित कर फिर कुलिया नामक ग्राम में आकर रहने लगे। यहाँ के मुसलमान काजी को ज्ञात हुआ कि हरिदास मुसलमान होकर भी काफिरों जैसा आचरण करता है। उसने हरिदासजी को हरिनाम छोड़ने को कहा। नहीं छोड़ने पर खड़ा करके बाजार में उसने इन्हें बेंत लगवाने का दण्ड दिया। बेंतों की मार से हरिदासजी ज़रा भी विचलित नहीं हुए। जब ये मार खाकर गिर पड़े तो लोगों ने समझा कि इनकी मृत्यु हो गयी। इसलिए उसी अवस्था में इन्हें उठाकर गंगाजी में बहा दिया। गंगा में बहते-बहते हरिदासजी को चेत हो गया और ये किनारे निकल आये। काजी ने जब इनके जीने की बात सुनी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह दौड़कर आया और संत हरिदासजी के चरणों में गिर पड़ा। उसने क्षमा प्रार्थना की और अंत में परम भक्त बन गया।

इसके बाद हरिदासजी नवद्वीप में आये और वहाँ अद्वैताचार्य जी से मिले। इसी समय चैतन्य महाप्रभु पूरे बंगाल में हरिभक्ति सुधा धारा प्रवाहित कर रहे थे। इनका शेष जीवन उन्हीं के संग में बीता।

द० श्री०

हरिमोहन शिरोमणि

इनका जन्म वि० सं० १९०३ में काष्ठकाटा ग्राम में हुआ था। ये ठाकुर जगन्नाथ के वंशज थे और उनके उत्तराधिकारी-क्रमानुसार आठवीं गद्दी पर विराजमान हुए थे। श्री शिरोमणि बचपन से निर्धनता में पले थे। पुरापाड़ा में श्रीजगद्बन्धु तर्कवागीश्वर से इन्होंने व्याकरण काव्यादि का अध्ययन किया और अपनी विशिष्ट योग्यता से 'शिरोमणि' उपाधि प्राप्त की। कहा जाता है कि इनके वक्षस्थल के बायीं ओर रोम युक्त तिल था जिसे लक्षित कर ज्योतिषियों ने इन्हें कवि एवं पण्डित होने की भविष्यवाणी की थी। वस्तुतः इनमें अतुलनीय कवित्व शक्ति प्रकट हुई। 'कौतुकालंकार प्रहसन काव्य', एवं 'शृंगार हारावली,' गौड़ीय-वैष्णव साहित्य को इनकी अपूर्व देन हैं। वि० सं० १८३५ से ही ये श्लोकों की रचना करने लगे थे। ये श्लोक अत्यंत सरल होते थे किन्तु उनका भावगाम्भीर्य उच्चकोटि का था। 'श्रीकृष्ण-चैतन्य-सन्दर्भ', 'श्रीगदाधर-सन्दर्भ' एवं 'वैष्णव व्रत-निर्णय' इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

गौरतत्व की जिज्ञासा निवृत्ति हेतु १५ वर्ष की अवस्था में ही पिता के शरीरान्त के बाद ये वृन्दावन चले आए। श्रीराधारमण जी के ख्यातिनामा गोस्वामी गण श्री सखालाल और गोपीलाल से इन्होंने तत्व जानने जिज्ञासा की। ये दोनों गोस्वामी बंगला भाषा समझ तो लेते थे, किंतु अच्छी प्रकार बोल नहीं सकते थे और शिरोमणि जी ब्रजभाषा बिलकुल नहीं समझ पाते थे। इस असुविधा को ध्यान में रखकर उन्होंने इन्हें गौरशिरोमणि के पास जाने की प्रेरणा दी। गौर-शिरोमणि जी इन्हें बिन्दु-परम्परा में जानकर इनको यथोचित सम्मान देकर गौरतत्व समझाते थे। श्री राधिकानाथ गोस्वामी प्रभु जैसे महामनस्वी लोगों के साथ भी ये इष्टगोष्ठी करते थे। कुछ समय के अनन्तर ये वृन्दावन से नवद्वीप चले गये।

फरीदपुर जिले के छयगांव निवासी एवं नोआखाली प्रवासी ज्ञानमुखर्जी उच्चशिक्षा प्राप्त एक संभ्रांत व्यक्ति थे। यद्यपि उनके पिता परमवैष्णव थे, पर ज्ञानबाबू संगति-दोष से मद्यप हो गए और वेश्यावृत्ति करने लगे। दैवयोग से शिरोमणि प्रभु के नोआखाली पधारने पर ज्ञानबाबू के माता-पिता ने उनके समक्ष सबकुछ प्रकट कर दिया। 'महाप्रभु सब ठीक करेंगे' ऐसा भरोसा लेकर दूसरे दिन ये उनके घर पधारे। ज्ञानबाबू के कान में श्री गौरमन्त्र फूंकते ही उनकी दशा बदल गई। ज्ञानबाबू एक क्षण में ही परमज्ञानी हो गये और आजीवन उन्होंने वैष्णवधर्म का निर्वाह किया।

वि० सं० १९६३ में ये नवद्वीप आये और प्रातःकाल ही पूर्वदिशा में स्थित एक मन्दिर के सामने खड़े होकर श्री गौरतत्व सूचक ग्रन्थों की सूची जानने की अभिलाषा से देह-त्याग का प्रण किया। उसी शाम श्री प्रभू ने उन्हें दर्शन दिए और अनेकानेक ग्रन्थों का नामोल्लेख करते हुए अर्चनमार्गीय ग्रन्थों के रचने का आदेश देकर अन्तर्ध्यान हो गये। घर आकर शिरोमणि जी ने अपनी स्मृति के अनुसार जल्दी-जल्दी ग्रन्थों को लिख लिया और उनके आदेशानुसार ग्रन्थों की रचना के लिए सामग्री संकलित करने लगे। वि० सं० १९७१ में इनकी माता का निधन हो गया और इनकी द्वितीय पत्नी का भी। इनकी करुणा से ढाका की हरि मति नामक वेश्या एवं बारबरगंज की वेश्या का उद्धार हो गया। इनके घर पर जो श्रीयशोमाधव विग्रह था इन्होंने उसके ही पार्श्व में श्रीगौरगदाधर की प्रतिष्ठा की। वृद्धावस्था होने पर भी ये अपने हाथों से मन्दिर की बुहारी लगाते, उसे धोते और रात्रि में

मन्दिर के बरामदे में बैठकर पहरा देते थे। आपने कुम्भिला में श्रीराजर्षि मनीन्द्रचन्द्र नन्दीबहादुर द्वारा आयोजित हरिसभा में भाग लिया था। सभा की समाप्ति पर आप बिना किसी परिचय के मुन्सिफ श्री विपिनबिहारी चट्टोपाध्याय के विष्णुपुर स्थित मकान में जा पहुंचे। दोनों चिरपरिचित जैसे हो गये। इनके प्रभाव से मुन्सिफ का सारा परिवार इनका शिष्य हो गया। एकबार ये कलकत्ता अस्पताल में नेत्र-चिकित्सा के बहाने कुछ दिन रहे। वहाँ इन्होंने किसी बालिका के कण्ठ से एक विलक्षण संगीत सुना। सबेरे उठते ही रोगियों से पूछताछ की। वे बोले 'हमने तो यहाँ कोई गाना नहीं गया।' वह संगीत इस प्रकार था—

आर जेनोआ राधार कुंजे आमार मन,
धन्य करिल आगमन।

राईयेर कुंजे कलंक अछे,
पति फिरेन पाछे पाछे।
धरते पारले धरे केशे,
नाक करबेन अपारेशन ॥

राधा कृष्ण दुइ एक पुरुषरूपे,
गौर गदाधर स्वरूपे,
उदय हलेन नवद्वीपे,
दुयेर रस दुये करे आस्वादन ॥

सत्य त्रेता द्वापर युगे,
ये रस दिते नारेन कोन योगे,
से रसआज संकीर्त्तनेरस समायोगे,
स्वभक्ते करलेन समर्पण ॥

इन पंक्तियों के अतिरिक्त कुछ पंक्तियाँ और भी थीं जो स्मरण नहीं रहीं।

वि० सं० १९८५ से १९८७ के मध्य इन्होंने 'श्रीकृष्ण-चैतन्य सन्दर्भ', 'श्रीगदाधर सन्दर्भ' तथा 'वैष्णव-व्रतदिन' निर्णय-नामक ग्रन्थों का प्रकाशन कराया और वि० सं० १९८८ में 'गदाधर के प्राण गौर' नाम बोलते-बोलते एवं सुनते-सुनते अपने अभीष्ट श्रीगौर-गदाधर के चरणों में लीन हो गये।

न० च० बं०

हरिराम दास

हरिराम दास रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे। ये राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम शिवाई आचार्य था। वे पण्डित थे।

श्री रामचन्द्रेर शिष्य हरिरामाचार्य।
सर्वत्र विदित अलौकिक सर्व कार्य ॥
(भक्ति रत्नाकर)

ये गंगा और पद्मा के संगम पर स्थित गोयास ग्राम के निवासी थे।

हरिदास आचार्य शाखा परम पंडित।
राढ़ी श्रेणी विप्र इहा जगत् विदित ॥
गंगा पद्माकर जेवा स्थान तय।
तथाय गोयास ग्राम ताहार भावय ॥

ये श्रीमद्भागवत की सुन्दर आवृत्ति और सुबोध व्याख्या करते हुए गौरांग की प्रेम-भक्ति का प्रचार करते थे। शेष काल में इन्होंने कृष्ण राय नामक विग्रह का सेवा-भार ग्रहण किया। इनके दो पद नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

अनरुप गौरांगेर लीला।
सुरधुनी सिमाने चलिला ॥
राधिकार भाव होले मने।
धन चाहे काल जल पाने ॥
निज प्रतिबिम्ब देखि जले।
कुपित अन्तरे किछु बोले ॥
ढीठ नागर श्याम राय आन।
जन सहित खेलाय ॥
कोप करि चले निज वासे।
कहे किछु कहे हरिराम दासे ॥
(गौ० प० त०, १६ राढ़ी, पृ० २००)

(२)

ऋतुपति राधा माधव संग।
विविध विलास होरि रस रंगित,
आविरे अरुन दुहु अंग ॥

अरुनित श्याम कलेवर दरपने,
राइक प्रतिबिम्ब लागि।
मरमहि आन रमनी मने मानिया,
माननि भेल विरागि ॥

रसिक सुनागर करत कर जोड़ि।
पीतवसन गले साधइ पदतले,
राइ रहल मुख मोड़ि ॥

प्रिय सहचरि यत, कतये बुझायत,
मुख सजे काहे विपरीत।
द्विज हरिदास, कहत काहे राखिलि,
प्रेमक ऐछे चीत ॥

(वैष्णव पद लहरी, पृ० ५८४)

द० श्री०

हरिवल्लभ

सुप्रासंद्ध विश्वनाथ चक्रवर्ती का नामान्तरण हरिवल्लभ था। इनका जन्म काल शकाब्द १५८९ है। नदिया जिलान्तर्गत देव ग्राम इनकी जन्म भूमि थी। ये राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मण थे। कृष्ण चरण चक्रवर्ती इनके मंत्र-गुरु थे। इन्होंने कविकर्ण कृत 'अलंकार कौस्तुभ' ग्रन्थ की टीका को है। ये अल्प आयु में ही गृहत्यागी होकर वृन्दावन में स्थायी रूप से निवास करने लगे थे। इनके निम्न-उद्धृत ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—

(क) सारार्थ बोधिनी—भागवत की टीका
(ख) सारार्थ वार्धिनी-गीता की टीका
(ग) सुबोधिनी—अलंकार कौस्तुभ की टीका
(घ) सुवर्धिनी—आनन्द वृन्दावन-चप्पू की टीका
(ङ) आनन्द चन्द्रिका—उज्जल नील मणि की टीका
(च) श्रीकृष्ण भावनामृत—श्री राधा कृष्ण की व्रज लीला (महाकाव्य)
(छ) स्वप्न विलासामृत—काव्य ग्रन्थ
(ज) प्रेम सम्पुट-खण्ड काव्य
(झ) संकल्प कल्पद्रुम-स्तोत्र काव्य
(ञ) क्षणदा गीत चिन्तामणि—पद संग्रह (संकलित)

इस संकलन ग्रन्थ में इनके पद भी 'हरिवल्लभ' और 'वल्लभ' भणिता से संकलित हैं। अल्प आयु में ही ये गोलोकवासी हो गए। इनके गोलोकवास का संभावित समय शाके १६२६ है।

इनके रचित दो पद यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं—

ए सखि बिहि कि पुरायल साधा।
हेरव पुन किये रूप निधि राधा ॥
यदि मोहे ना मिलब सो वर रामा।
तब जिउ छार करब कौना कामा ॥
दुहुं भेलि दौती पारा मेल आशा।
जीउ बान्धव किए करब उदासा ॥
शुनि हरिबचन दोती अवलम्बे।
आउलि चलि याहां रमनी कदम्बे ॥

कहे हरिवल्लभ शुन ब्रजबाला।
हरि जपये तथा शुन मनिमाला ॥

(पदकल्पतरु-२१४)

कह कह ए सखि सरम कि बात।
मो तोहे कि करल श्यामर गात ॥
मनमथ कोरि मथन तनु रेह।
केछे उबरि तुहुं आउलि गेह ॥
कुलवती काटि होये यहि अन्ध।
पाउलि कछु किये सो मुख गन्ध ॥
जाकर मुरली श्रवणे पहि लागे।
थमतहि बसन शशिपति आगे ॥
अब निरधारसि कौन विचार।
बल्लभ सो रस सागर पार ॥

(पदकल्पतरु)

हरिसुन्दर भौमिक

हरिसुन्दर भौमिक नरोत्तम ठाकुर के परिवार में गिने जाते हैं। इनका जन्म श्रीकृष्ण मोहन भौमिक के

घर पावना जिले के कचड़ा ग्राम में हुआ था। कुछ ही दिन गृहस्थाश्रम में रहने के बाद अचानक आप में भक्ति का उन्मेष हुआ और भक्तों के संग श्रवण कीर्तनादि में गेह-देह, दिन-रात, खाना-पीना-सोना, सब विस्मृत कर बैठे। भक्ति की तीव्रतम उत्कण्ठा से इनका शरीर अस्वस्थ रहने लगा। वि० सं० १९४७ में जब राजर्षि बहादुर श्रीवृन्दावन के लिए रवाना हुए, तो यह भी उनके साथ सपरिवार श्री वृन्दावन को चले आए। राजर्षि बहादुर शिक्षा गुरु की भाँति इनका आदर करते थे। कुछ दिन परस्पर राधा कृष्ण-चर्चा में व्यतीत कर दोनों महाशय अपने स्थानों को प्रत्यावर्तित हुए। पुनः आप दोनों का वृन्दावन में सपरिवार मिलन हुआ, उस समय श्री भौमिक हरिसुन्दरजी की अवस्था परिवर्तित हो चुकी थी। वे प्रतिपल राधा-भाव में आविष्ट रहते थे। गोपी भाव के आनुगत्यमय भजन की ही शिक्षा आप अपने शिष्य वर्ग को दिया करते थे।

अनेक बार शारीरिक कष्ट उग्र हो उठता, किन्तु ऐसी कष्टपूर्ण अवस्था में भी ये अपना चित्त सुस्थिर रखते। एकबार कामिनीकुमार राजर्षि बहादुर के बड़े पुत्र के साथ बंगाल जाने को तैयार हुए तो इनसे आज्ञा लेने आये। इन्होंने कहा–'जा तो रहे हो किन्तु शीघ्र लौटना, मेरा शेष जीवन थोड़ा ही है। एकबार तुम्हें फिर मिलना है।' कामिनी बाबू आज्ञानुसार कुछ दिन बाद लौट आए। उसके ४-५ दिन बाद ही इन्हें सामान्य ज्वर हुआ। कार्तिक कृष्ण एकादशी के दिन ६५ वर्ष की आयु में ये वृन्दावन की चिन्मय रज में सदा सर्वदा के लिए लीन हो गये।

न० च० बं०

क. बंगाल के कृष्ण-तीर्थ

अग्रद्वीप—कटवा से चार किलो मीटर की दूरी पर अग्रद्वीप नामक रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन से लगभग २ किलो मीटर की दूरी पर अग्रद्वीप नामक ग्राम बसा है। इसकी गणना प्रमुख वैष्णव तीर्थस्थानों में होती है। यहाँ विख्यात वैष्णव गोविन्द घोष की समाधि है। अग्रद्वीप में ही गोविन्द घोष ने श्री गोपीनाथ विग्रह की स्थापना की थी।

आउसेग्राम—आउसे ग्राम वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा से दक्षिण लगभग १२ किलो मीटर की दूरी पर अवस्थित है। यहाँ श्रीगोपाल का विग्रह है। कमलाकान्त पाठक रचित 'साधक-रंजन' नामक ग्रंथ में इसका विस्तृत विवरण मिलता है।

आकाई हाट—वर्द्धमान जिलान्तर्गत दाइहाट से दो किलोमीटर पूर्व दिशा में मधाईतला श्रीपाट है। आकाई हाट, मधाईतला श्रीपाट से एक किमी० दक्षिण में बसा है। यहाँ द्वादश गोपाल में अन्यतम श्री कालिकृष्णदास का श्रीपाट है। इससे यह स्थान पाटबाड़ी नाम से विख्यात है। कालिकृष्णदास की समाधि भी यहीं है। यहाँ एक छोटी पुष्करिणी है, जो 'नूपुर-कुण्ड' नाम से विख्यात है।

आटि शेउड़ा ग्राम—आटि शेउड़ा हुगली जिलान्तर्गत भागीरथी तीरस्थ ग्राम है। यह स्थान बालागढ़-श्रीपुर नाम से विख्यात है। अपनी पुरी यात्रा में श्री चैतन्य ने यहाँ विश्राम किया था। इस कारण वैष्णव भक्तजन इस स्थान को एक वैष्णव-तीर्थ-स्थल का सम्मान देते हैं।

आई टोटो—आई टोटो का वर्णन 'चैतन्य-चरितामृत' (मध्य लीला, १४।६५) में मिलता है। रथयात्रा के समय यह श्री चैतन्य का विश्राम स्थल था।

आटि सारा—आटि सारा कलकत्ता के निकट बरईपुर के पास स्थित है। यहाँ अनन्त आचार्य का श्रीपाट है। पुरी की यात्रा करते हुए यहाँ श्री चैतन्य का शुभागमन हुआ था। यहाँ जाटकी पुष्करिणी के तटवर्ती मन्दिर में श्री निताईगौर का विग्रह है।

आड़ांगाइल—आड़ांगाइल पाबना जिलान्तर्गत चार-मोहर थाना से तीन किलोमीटर दूर है। यहाँ श्री अद्वैत महाप्रभु के शिष्य शुभानन्द का श्रीपाट है।

आनन्द बाजार—यह तीर्थ स्थान श्रीक्षेत्र में है। श्री क्षेत्र में एक 'बड़दउल' (बड़ा देवालय) है। इस स्थान पर श्री जगन्नाथ का भोग-महाप्रसाद बिकता है। यहाँ महाप्रसाद के स्पर्शदोष या उसके उच्छिष्ट का विचार नहीं होता। पहले पूर्व दिशा के सिंहद्वार पर ही महाप्रसाद बिकता था।

आन्दूल—आन्दूल हावड़ा जिलान्तर्गत है। यह सरस्वती नदी के तट पर बसा एक प्राचीन ग्राम है। सन् १५०९ ई० में श्री चैतन्यदेव ने इसी स्थान से होकर पुरी धाम की यात्रा की थी।

आलालनाथ—आलालनाथ, नीलाचल पर्वत से लगभग ९ किलोमीटर दूर पश्चिम में स्थित है। यहाँ चतुर्भुज-जनार्दन का विग्रह स्थापित है। इस स्थान पर मण्ड नामक कृष्ण-राधिका का एक मन्दिर है। यहाँ एक बृहत् प्रस्तर खण्ड पर श्रीमन् महाप्रभु के साष्टांग दण्डवत-

प्रणाम का चिह्न आज भ विद्यमान है। आलालनाथ वस्तुतः नारायण-मूर्ति है। मन्दिर प्रायः पचास फीट ऊँचा है। इसमें लक्ष्मी, सरस्वती, रुक्मिणी, सत्यभामा, ललिता एवं विशाखा देवी विराजमान हैं। आलालनाथ के पदतल पर अंजलिवद्ध गरुड़ जी बैठे हैं। अक्षय तृतीया से लेकर २१ दिनों तक चन्दन पुष्कर तट पर श्री मदन मोहन का बहिर्जगत-उत्सव मनाया जाता है। परन्तु यहाँ रथ-यात्रा उत्सव नहीं मनाया जाता है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन उन्मुक्त स्थान पर 'शिविकारोहणा-पर्व' मनाया जाता है। श्रावणी अमावस्या को आलालनाथ का 'राजश्रृंगार' होता है। कार्तिक मास में २५ दिनों तक उनका श्रृङ्गार दामोदर वेश में, ४ दिन लक्ष्मीनारायण वेश में और एक दिन राजवेश में होता है।

इन्द्रेश्वर घाट—इन्द्रेश्वर घाट वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा के अन्तर्गत भागीरथी तट पर है। सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् श्री चैतन्य देव ने यहाँ कुछ समय के लिए विश्राम किया था।

इसलामपुर—इसलामपुर मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक प्रमुख वैष्णव तीर्थ-स्थल है। यहाँ श्री राधारमण के विग्रह और शालिग्राम की उपासना होती है।

उद्धारनपुर—उद्धारनपुर वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा से तीन किलोमीटर की दूरी पर उत्तर-गंगा के तट पर स्थित है। यह श्रीदत्त ठाकुर का जन्म स्थान है। यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन देवमन्दिर है, जो इस समय भग्नावस्था में है। इस मन्दिर में श्रीदेव ठाकुर का विग्रह था। मन्दिर के पश्चिमी पार्श्व में श्रीदत्त ठाकुर की समाधि और पूर्व पार्श्व में एक पुराना नीमवृक्ष है। यहाँ गौनो पौषी कृष्ण त्रयोदशी के दिन दत्त ठाकुर का तिरोधानोत्सव मनाया जाता है।

ऋतुद्वीप (रातूपुर)—रातूपुर नवद्वीपान्तर्गत एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह श्री गौरांगलीला-स्थल था। गौरांग-लीला अभिनवोत्सव के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है।

एकचक्राधाम—एकचक्राधाम, वीर-चन्द्रपुर तथा गर्भवास नामों से भी विख्यात है और बीर भूमि जिलान्तर्गत पूर्वी रेलवे के मल्लारपुर स्टेशन से १० किलोमीटर पूर्व दिशा में स्थित है। यह द्वारका नदी के अपर तट पर है। इसके पूर्ववर्ती पार्श्व में 'वशिष्ठ-आश्रम' तथा तारा माँ का विख्यात मन्दिर है। ऊपर तट पर भावुकेश्वर-महादेव का मन्दिर है। इस स्थान से एकचक्राधाम लगभग ३ किलो मीटर की दूरी पर है। जनश्रुति के अनुसार यह पंच-पाण्डवों का अज्ञातवास स्थान था। यहीं श्री नित्यानन्द प्रभु की समाधि है।

बाग बाजार—बागबाजार कलकत्ते का एक भाग है। यहाँ श्री मदनमोहन जी का मन्दिर है।

काँचड़ा पाड़ा (कांचन पल्ली)—काँचड़ापाड़ा चौबीस परगना की अन्तिम (उत्तरी) सीमा पर है। यहाँ श्री बासुदेव ठाकुर का श्रीपाट है। काँचड़ा पाड़ा के कृष्णपुर नामक स्थान पर कवि कर्णपूर द्वारा स्थापित श्रीकृष्णराय का विग्रह है। यहाँ एक वृहत् मन्दिर (निर्माण काल १७०५ शक०) है। रथयात्रा यहाँ का प्रधान पर्व है।

काँचनगढ़िया—काँचनगढ़िया मुर्शिदाबाद जिला के अन्तर्गत बाजार साहु रेलवे स्टेशन से तेरह किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ श्री हरिदास जी का श्रीपाट है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्री राधारासमण्डल तथा वृन्दावनदास, फुलन रानी का भी श्रीपाट है।

काँचन ग्राम—यह स्थान चट्टग्राम के सातकनिया थानान्तर्गत है। यह वैष्णव भक्त वासुदेव दत्त व श्री मुकुन्द दत्त की जन्म भूमि है।

कादुनिया राजवाटी—यह स्थान चगोहर जिलान्तर्गत है। यहाँ प्राचीन कालीन एक सुप्रसिद्ध कृष्ण-मंदिर है, जिसमें राजा प्रतापादित्य ने श्रीगोविन्द-

देव के विग्रह तथा इनके पितृदेव राजा विक्रमादित्य ने अपने कुल देवता श्री राधाकान्त की मूर्ति को स्थापना की थी। विक्रमादित्य राधाकान्त विग्रह के सेवक थे। इसके निकट अमराइल मथुरेशपुर में कालिन्दी तटपर एक भग्न मन्दिर है। इस मन्दिर के गर्भ के पार्श्व के बाहरी प्राचीर पर बंगाक्षर में अंकित एक फलक है। इस मन्दिर का निर्माण प्रतापादित्य के पिता विक्रमादित्य ने करवाया था—'शाके वेद समायुक्त विन्दुमानेन्दु सहिते। मयेदं-स्वर्ग सोपानं, श्रीकृष्णाय कृतं स्वयम्॥' मन्दिर के द्वार के किंचित् ऊपर के गरुड़-स्कन्ध पर श्री राधाकृष्ण की युगल मूर्ति है।

कटोया का नगर—यह स्थान वर्द्धमान जिलान्तर्गत है। यहाँ श्री दासगदाधर द्वारा प्रतिष्ठित श्री मन्मथप्रभु का मन्दिर है। इसके अन्य दर्शनीय स्थानों में महाप्रभु का मन्दिर, श्री केशव तथा श्री गदाधर दास की समाधि हैं।

काँदरा--यह स्थान वर्द्धमान जिले के सुग्राम थानान्तर्गत अमिदपुर-कटवा रेलवे मार्ग के रामजीवनपुर स्टेशन के निकट है। यहाँ श्री ज्ञानदेव व श्री यदुनन्दन दास का श्रीपाट है। पौषी पूर्णिमा से तीन दिनों तक यहाँ वैष्णव-मेला लगता है। यह कवि चन्द्रशेखर, शशिशेखर, मंगल ठाकुर व आउल मनोहर दास आदि महापुरुषों का निवास स्थान था। यहाँ ज्ञान दास ने श्री राधा गोविन्द की प्रतिष्ठा की थी। यह स्थान ज्ञानदास के मठ के नाम से भी विख्यात है। कांदरा में "दास-ठाकुर" उपाधिधारी, एक कायस्थ वंश प्रसिद्ध हुआ था। उसके आदि पुरुष बलरामदास, स्वकुल देवता श्रीकृष्णराय के साथ इस स्थान में प्रतिष्ठित हुए थे। बलरामदास के पिता जयगोपाल "श्रीकृष्ण-विलास" व "ज्ञान-प्रदीपादि" ग्रन्थों के रचयिता थे। कांदरा "मनोहरशाही कीर्तन पद्धति" के लिए विख्यात है। खेतुरी उत्सव के पश्चात् श्रीखण्ड और कटवा उत्सव में मनोहरशाही कीर्तन में कांदरा के मंगल ठाकुर वंशीवादन में अग्रणी थे।

काँदि खालि—यह भागीरथी तटवर्ती स्थान है। यहाँ श्री अद्वैत के शिष्य श्री विष्णुदास आचार्य का पाट था।

कानाई नाटशाला (या कानाइया-स्थान)—यह स्थान सन्थाल परगना, दुमका जिलान्तर्गत पूर्वी रेलवे के तिनपहाड़ी जंकशन से मात्र तीन किमी० की दूरी पर स्थित है। यहाँ श्रीराधा-माधव का विग्रह स्थापित है। गया से प्रत्यावर्तन करते समय और वृन्दावन की यात्रा में इस स्थान पर आकर चैतन्य देव ने श्री कृष्ण-दर्शन किया था।

कान्त नगर—यह स्थान दिनाजपुर के अन्तर्गत है। यहाँ के राजा प्राणनाथ राय ने श्रीकान्त जी के रमणीक मन्दिर का निर्माण किया था। इस मन्दिर की भित्तियों पर ग्राम के मंगल के निमित्त रामायण और महाभारत के विविध दृश्य और महत्त्वपूर्ण घटनायें उत्कीर्ण हैं।

कालना—यह श्री अम्बिका कालना नाम से विख्यात है और पूर्वी रेलवे पर हावड़ा स्टेशन से ५१ मील की दूरी पर अवस्थित है। महाप्रभु की एक प्राचीन पोथी यहाँ सुरक्षित है।

कासिम बाजार—यहाँ के महाराज मनीन्द्रचन्द्र नन्दी ने गौड़ीय-धर्म की उन्नति के लिए श्रीमद्भागवद् का प्रवचन और उसकी टीका करवाई थी। उन्होंने इस स्थान पर 'हरिगया' की स्थापना की थी। गौड़ीय-वैष्णव-धर्म के प्रचार-सार के लिए उनका प्रयत्न वैष्णव धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"प्रसारताय गौड़ी-वैष्णव-धर्म क्षुद्र होइतो उत्कर्णताय उहा जगतेर सर्वो स्थान अधिकार करिया आछे।"

कुंजघाट (राजबाड़ी, मुर्शिदाबाद)—यह स्थान वैष्णव चूड़ामणि महाराज नन्दकुमार का निवास स्थान

था। इस स्थान में महाराज द्वारा संगृहीत एक लाख वैष्णव पद मिले हैं। महाराज ने मुर्शिदाबाद अंचल के निकटवर्ती स्थान पर भद्र काली की मूर्ति की स्थापना की थी। इसी स्थान के अन्तर्गत भद्रपुर के नवरत्न उन्होंने मन्दिर में श्री वृन्दावनचन्द्र एवं श्री लक्ष्मीनारायण जी की प्रतिष्ठा की थी। इस समय ये सभी विग्रह कुंजघाट में सुरक्षित हैं। कुंजघाट के राजा नन्द कुमार के दौहित्र राजा मुकुन्द परम वैष्णव थे। उन्होंने कुंजघाट में श्री गौरांग एवं श्री राधा-मोहन के विग्रह की स्थापना की थी।

कुड़ई ग्राम—यह स्थान कटवा-वर्द्धमान के मध्य अवस्थित है। जनश्रुति है कि इस स्थान पर श्री रघुनाथ ठाकुर का नूपुर गिर गया था। वह आज भी वहाँ सुरक्षित है। यहाँ पर श्री गोपीनाथ व श्री राधा-गोविन्द जी का विग्रह स्थापित है।

कुण्डली-तला—(कुंतलीदला) यह स्थान वीरभूमि जिले अन्तर्गत साईंथिया स्टेशन से तीन किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। श्री नित्यानन्द प्रभु का कर्ण-कुण्डल इस मन्दिर में सुरक्षित है। प्रसिद्धि है कि भीमसेन और बकासुर के मध्य इसी स्थान पर युद्ध हुआ था। ग्राम के दक्षिण में कुण्डली तला में श्री गौरीदास के ज्ञातिपुत्र माधव निवास करते थे। जाह्नवी माता को इन्होंने अन्न-भोजन कराया था।

कुमार पाड़ा—(कांधारपाड़ा) यह स्थान मुर्शिदाबाद नगर की पूर्व दिशा में आधे कोस की दूरी पर स्थित है। श्री जीवगोस्वामी की शिष्या श्रीमती हरिप्रिया देवी ने, वृन्दावन से लौटते समय कुमारपाड़ा में श्री राधाकृष्ण-विग्रह की स्थापना की थी। पुरातन मन्दिर के भग्न हो जाने पर उस विग्रह की पुनः स्थापना नूतन मन्दिर में हुई। यहाँ राधा-माधव की स्नानयात्रा का उत्सव आज भी मनाया जाता है।

कुमार हट्ट—यह स्थान चौबीस परगना जिला में है। यहाँ श्री ईश्वरपुरी तथा श्री श्रीनिवास का श्रीपाट है।

कुलाई—यह स्थान वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा से १६ कि० मि० उत्तर-पश्चिम अजय नदी के तट पर स्थित है। कुलाई ग्राम परम वैष्णव श्री गोविन्द, माधव व वासुदेव घोष की जन्मभूमि है।

कुलिया या सात कुलिया (कुलिया पाहाड़पुर)—यह स्थान माधवदास का निवास स्थान था। उन्हीं के निवास-गृह में महाप्रभु ने अवस्थान किया था। ऐसी जनश्रुति है कि माधवदास ने ही कुलीन ग्राम के श्री गुनराज खान कृत 'श्रीकृष्ण-विजय'-ग्रन्थ का 'श्रीकृष्ण-मंगला' नाम से स्वयं प्रचार किया था। यहाँ कवि दत्त सारंग ठाकुर का श्रीपाट है। वंशीवदन ठाकुर ने इस स्थान पर श्री केशव भारती और पुरुषोत्तम दास का श्रीपाट स्थापित किया था। सन्यास ग्रहण के पश्चाद् श्रीमन् महाप्रभु कुलिया में आकर शची देवी से मिले थे।

कुलीनग्राम-यह वर्द्धमान जिलान्तर्गत जोग्राम स्टेशन से ३ मील पूर्व की दूरी पर स्थित एक प्राचीन स्थान है। यहाँ राधा-कृष्ण के अनेक मंदिर है, जिनमें मुख्य हैं—

(क) श्री जगन्नाथ मन्दिर तथा श्री राधा-गोविन्द का मन्दिर। यहाँ श्री श्री जगन्नाथ देव की रथ यात्रा का उत्सव मनाया जाता है।

(ख) श्री रघुनाथ मन्दिर इसका अभ्यन्तर भाग भग्न हो गया है। बाह्य भाग में श्री राम-सीता व श्री हनुमान जी का विग्रह है।

(ग) श्री मदन गोपाल मन्दिर–इसके अन्दर एक नाट्य मन्दिर भी है। सम्मुख पूर्व दिशा में गोपाल-दीर्घ नामक वृहत् पुष्करिणी है। सिंहासन पर श्री मदन गोपाल विराजते हैं, वाम पार्श्व में श्री राधिका तथा दक्षिण में श्री ललिता देवी हैं।

यहाँ नाडू गोपाल, चण्डी देवी, जगधाली तथा शालिग्राम स्थापित हैं। इनमें एक श्रीधर की मूर्ति भी है। इस स्थान पर पौषी पूर्णिमा को वैष्णव-उत्सव मनाया जाता है। कुलीनग्राम में श्री हरिदास ठाकुर, श्री सत्यराज वसु, श्री रामानंद वसु, शंकर, विद्यानंद एवं कमीनाथ के श्रीपाट हैं।

(घ) श्री गौरांगेश्वर शिवमन्दिर इस स्थान पर श्री सत्यराज खाँ सेवित एक लघु शिवलिंग है। उसका नाम गोपेश्वर शिव है। मन्दिर में एक शिलालेख उत्कीर्ण है—"शाके विंशति .... शिवसन्निधौ। खान श्री सत्य राजेन्द्र स्थापिता.... ....।' यह श्रीहरिदास ठाकुर का भजन-स्थान है। यहाँ सत्यराज खान ने रामानन्द वसु तथा हरिदास ठाकुर के विग्रह की स्थापना की थी। इस स्थान पर श्री गौरांग व श्याम सुन्दर का भी विग्रह है। यहाँ भी अष्टमी-उत्सव मनाया जाता है और वैष्णव-मेला लगता है—जो माघ शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होता है।

कुलीन पाड़ा (खड़दह)—यह चौबीस परगना का एक प्रसिद्ध वैष्णव-तीर्थ है। प्रसिद्ध कामदेव पण्डित इसी स्थान पर निवास करते थे। उनकी स्त्री का नाम राधारानी देवी था। उनकी ही प्रेरणा से नित्यानन्द प्रभु ने खड़दह को कुछ काल के लिए अपना निवास स्थान बनाया था। कामदेव के प्रपौत्र चाँद शर्मा ने खड़दह के कुलीनपाड़ा में श्री राधाकान्त के विग्रह और मन्दिर की स्थापना की थी। कुलीनपाड़ा के विग्रह यशोहर के राजा प्रतापादित्य द्वारा सेवित थे। उनके मानसिंह द्वारा बन्दी किये जाने पर इस विग्रह की सेवा चाँद शर्मा ने स्वगृह में प्रतिष्ठित कर के आरम्भ की थी।

कृष्ण नगर—यह हुगली जिले के अन्तर्गत द्वारकेश्वर नदी का तटवर्ती स्थान है। यहाँ श्री अभिराम गोपाल का श्रीपाट है। वे द्वादश गोपालों में हैं। यहाँ चैत्र कृष्ण अष्टमी को वैष्णवोत्सव मनाया जाता है। श्री अभिराम गोपाल द्वारा स्थापित श्री गोपीनाथ जी का अति भव्य विग्रह यहाँ स्थापित है। यहाँ अभिराम कुण्ड, लगभग पाँच सौ वर्ष पुराना एक प्राचीन वृक्ष, उद्भिन्न रासमंच, दोलमंच प्रभृति अनेक दर्शनीय स्थान हैं। दोल, स्नानयात्रा, रथयात्रा, रास एवं गोपीनाथ की प्राकट्य-तिथि आदि उत्सव चैत्र कृष्ण सप्तमी से अनुष्ठित होते हैं। यहाँ मेदनीपुर जिला के धीवर गणों ने नाट्यशाला का निर्माण किया था। परवर्ती काल में उसके भग्न हो जाने पर धीवर गणों ने पुनः १३२० (बंगाब्द) में उसका नव संस्कार किया। नाट्य मन्दिर के प्रस्तर फलक पर धीवर भक्तगणों के नाम उत्कीर्ण हैं। वर्तमान मन्दिर के दक्षिण में प्राचीन नवरत्न मन्दिर है। यहाँ श्री राधाबल्लभ का भी एक भव्य मन्दिर है। इस तीर्थ स्थल का पूर्ण विवरण श्री अमूल्यधनराय भट्टाचार्य प्रणीत 'द्वादश-गोपाल' नामक ग्रन्थ में मिलता है। कृष्णनगर के देव मन्दिर से ३ कि० मी० की दूरी पर श्री अभिराम दास के शिष्य कृष्णदास का श्रीपाट था। इस समय यह लुप्त प्राय है।

कृष्णपुर—हुगली जिले में सप्तग्राम पारवाडी से दक्षिण दिशा में प्राचीन सरस्वती नदी के पूर्वी तट पर स्थित कृष्णपुर रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभु का जन्मस्थान है। आदि सप्तग्राम रेलवे स्टेशन से तीन किलोमीटर दूर पारवाड़ी नामक स्थान इसी के अन्तर्गत है। देव मन्दिर में एक जोड़ी काष्ठ-पादुका एवं एक प्राचीनकालीन प्रस्तर है। ऐसी जनश्रुति है कि उसी पर बैठकर श्री रघुनाथ प्रभु आराधना करते थे।

के ग्राम—यह स्थान वर्द्धमान जिलान्तर्गत मंगल काट के निकट है। यहाँ 'चैतन्य-मंगल' काव्य के रचयिता श्री लोचनदास ठाकुर का श्रीपाट

है। इसके निकट ही निताई-गौर का मृण्मय विग्रह है।

खड़दह—यह स्थान चौबीस परगना जिले में है। पूर्वी रेलवे के खड़दह स्टेशन से ३ किलो मीटर की दूरी पर श्री मन्दिर है जो गंगातट पर अवस्थित है। श्री मन्दिर के शिखर पर एक भग्न इष्टक लिपि है, उसका खण्डित पाठ इस प्रकार है—'श्री कृष्णाय नमः शुभमस्तु १५७३ शकाब्द, शिल्पकार श्री रामभद्रदास।' श्रीमन्दिर के मध्यस्थल में एक सिहासन है। इस पर श्रीमती व श्री श्याम सुन्दर प्रभु, श्री जगन्नाथ, वड़ु शालग्राम, श्रीनित्यानन्द प्रभु के वक्ष स्थित १८ चक्रविशिष्ट अनन्त शिला तथा मरकतमय नीलकण्ठ शिव स्थापित जिनके मस्तक पर त्रिपुर सुन्दरी और हाथ में एक यष्टिखण्ड है। यहाँ श्रीमद्भागवत की एक प्राचीन पोथी सुरक्षित है। कुछ लोगों का कहना है कि यह श्री वीरभद्र प्रभु द्वारा लिखित है। अन्य लोगों के अनुसार यह श्री नित्यानन्द लिखित है। सिंहासन के उत्तर भाग में शिव का स्थान है। इसके मध्य चतुर्भुज विष्णुमूर्ति है। इस मन्दिर के पूर्व में निताई-गौर का विग्रह है। अष्टधातुक श्री राधाकृष्ण का विग्रह युक्त प्राचीन मन्दिर अब नहीं है। जिसे अब प्राचीन मन्दिर कहते हैं, वह नित्यानंद प्रभु का वास भवन था। श्रील श्री निवासाचार्य और नरोत्तम प्रभु के आगमन से यह स्थान पवित्र हुआ था। वर्तमान मन्दिर के उत्तर पूर्व में एक पुष्करिणी है, जिसका नाम 'श्वेतगंगा' है। इस श्वेतगंगा के पूर्व में एक और पुष्करिणी है, जिसे 'यमुना' कहते हैं। श्रील वीरभद्र ने एक प्रस्तरखण्ड मँगाया था, उससे तीन विग्रह बनाये गये—श्री श्यामसुन्दर का विग्रह, श्री राधावल्लभ का विग्रह और श्रील नन्ददुलाल का विग्रह। अवशिष्ट प्रस्तरखण्ड एक अश्वत्थवृक्ष के नीचे आज भी पड़ा है। वह लोक जीवन में 'उहर-कुमारी' नाम से विख्यात है।

खेचरी—यह स्थान वर्तमान बंगला देश के राजशाही जिलान्तर्गत रामपुर वेयालिचार से छः किलोमीटर दूर है। यहाँ श्रील नरोत्तम ठाकुर का श्रीपाट है। १८९७ ई० के भूकम्प में श्रीमूर्ति खण्डित हो गई थी। इस मन्दिर के पश्चिम गोपालपुर के राजा सन्तोषदत्त ने एक वृहत् कृष्ण-मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके दक्षिण में श्री राधा-कुण्ड और उत्तर में श्री श्याम-कुण्ड है। श्रील श्रीनिवास आचार्य प्रभु व श्रील नरोत्तम ठाकुर जिस शिला खण्ड पर उपवेशन करते थे, वह आज भी विद्यमान है। इस मन्दिर से लगभग तीन किमी० उत्तर श्रील ठाकुर महाशय की भजन टोली थी। यहीं परम भक्त रामदास बाबा की समाधि भी है। यह स्थान चैतन्य द्वारा पवित्र हुआ था। यहाँ ठाकुर महाशय ने छः विग्रहों की स्थापना की थी—श्रीगौरांग, श्रीबल्लवीकान्त, श्रीब्रजमोहन, श्रीकृष्ण, श्री राधाकान्त एवं श्री राधामोहन। श्री गौरांग के वामपक्ष में श्री लक्ष्मीप्रिया, दक्षिण में श्री विष्णुप्रिया देवी, सर्व दक्षिण में श्री वल्लवीकान्त, श्रीकृष्ण, श्री राधामोहन व श्री राधाकान्त हैं।

गंगामाता मठ—गंगामाता मठ श्री पुरुषोत्तमधाम में स्थित है। यह श्री गौड़ीय वैष्णव मठों में अन्यतम है। श्वेतगंगा के तटपर यह श्रील सार्वभौम भट्टाचार्य का श्रीक्षेत्र प्रवासस्थान था। यहाँ श्री गौरांग ने सर्व प्रथम नीलाचल जाते हुए श्री सार्वभौम का आतिथ्य ग्रहण किया था।

गढ़वेता—यह मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक महत्वपूर्ण वैष्णव-तीर्थ है। यह स्थान हावड़ा से ६० किलोमीटर दूर, दक्षिण-उत्तरी रेलवे पर पड़ता है। यहाँ कामेश्वर महाराज व श्री राधावल्लभ जी का मन्दिर है। यहाँ श्रील कानु ठाकुर का एक श्रीपाट है। प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा को श्रीपाट-समाधि-मन्दिर में उत्सव होता है।

गम्भीरा—श्रीधाम नीलाचल पर स्थित इस स्थान पर श्री गौरसुन्दर ने श्री ब्रज-विरहिनी के महाभाव से भावित होकर अपरूप लीला का प्रसारण किया था। इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन 'श्री चैतन्य-चरितामृत' में मिलता है।

गाम्भीला व वालचर—यह मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत पूर्वी रेलवे के जियागंज स्टेशन से २ किमी० दूरस्थ गंगातटवर्ती एक महत्वपूर्ण वैष्णव-स्थान है। प्राचीन श्रीपाट गंगा के गर्भ में समा गया है। इस स्थान पर खेचरी के श्रील नरोत्तम ठाकुर का श्रीपाट है। यहाँ वैष्णवगण दो विग्रहों—श्री गोविन्द व श्रीराधारमण की सेवा करते हैं।

गोरा पाहाड़ (भक्त हाड़ जाति)—यह स्थान मैमनसिंह जिलान्तर्गत शेरपुर परगना में है। यह मूलतः पर्वतीय प्रदेश है। यहाँ गारो, कोच, भानु बलाइ एवं हाड़ प्रभृति पार्वत्य जातियाँ रहती हैं। इस पर्वत प्रदेश की हाड़ जाति अति प्राचीन काल से ही वैष्णव धर्मावलम्बी हैं। इस जाति के लोगों के घर-घर में राधाकृष्ण व गोपाल विग्रह की सेवा की प्रथा है। प्रत्येक घर में राधाकृष्ण विग्रह प्रतिष्ठित है। इस जाति के प्रधान भक्तवर श्रील पाथर हाड़ ने १४४० शक में पुरी की यात्रा की थी। पुरी में उन्होंने श्री मन्महाप्रभु का दर्शन किया था एवं नित्यानन्द महाप्रभु से दीक्षा ली थी। स्वदेश प्रत्यावर्तन के पश्चात् उन्होंने समीपवर्ती वन्य जातियों में वैष्णव भक्ति का प्रचार किया।

गुन्चामन्दिर—यह क्षेत्र श्रीधाम में स्थित है। रथयात्रा के नव दिन श्री जगन्नाथ देव यहाँ विश्राम करते हैं। यह श्री गौर-प्रेम-लीला-निकेतन है।

गुप्तपुरी भाट पाड़ा—यह ग्राम भैरव नदी के तट पर बसा है। इस ग्राम में लगभग चार सौ वर्ष प्राचीन जगन्नाथ का मन्दिर है। यहाँ श्री चैतन्यदेव, श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत का विग्रह है। स्नान यात्रा, रथ यात्रा, झूलन (दोल) तथा होली के अवसर पर यहाँ मेला लगता है।

गुप्ति पाड़ा—यह स्थान वर्द्धमान जिले के अन्तर्गत है। यहाँ श्रील कृष्णदास ब्रह्मचारी ने श्री वृन्दाबन चन्द्र की स्थापना की थी। यहाँ श्री वक्रेश्वर पण्डित तथा कंसारि सेन का श्रीपाट है।

गोपीवल्लभपुर—यह स्थान मेदिनीपुर जिलान्तर्गत उत्तर-पूर्वी रेलवे के सरडिहा स्टेशन के निकट है। गोपीबल्लभपुर में श्री गोपीनाथ का विग्रह है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्री रामानन्द के शिष्य परम वैष्णव श्री रसिकानन्द व मधुसूदन का श्रीपाट है।

गोस्वामी दुर्गापुर—यह नदिया जिलान्तर्गत आलभडांगा स्टेशन से तीन किमी० की दूरी पर उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है। यहाँ श्री राधारमण की सेवा की परम्परा है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहाँ वैष्णव-मेला लगता है।

गौड़देश—'भक्ति-मंगल तंत्र' के अनुसार बंगदेश से लेकर भुवनेश्वर पर्यन्त का भूभाग गौड़ देश के अन्तर्गत आता है। कर्म व लिंग पुराण के अनुसार अयोध्या क्षेत्रस्थ गोंडा जिला का प्राचीन नाम गौड़देश था। योग वाशिष्ठ और रामायण में गौड़ व गौड़ भट्ट गणों के लगुड युद्ध का प्रभावशाली वर्णन मिलता है। गौड़ प्रभृति, राग-रागिनियों का भी नाम है। 'गौड़ी' प्राकृत भाषा का भी एक उपरूप है। कृष्ण पण्डित के 'प्राकृत-चन्द्रिका' में अपभ्रंश के विभिन्न उपभेदों में गौड़ व उड्र का उल्लेख मिलता है। छन्द पुराण में 'पंचगौड़' की चर्चा मिलती है। 'राजतरंगिनी' में भी इसका उल्लेख (४/४६५) मिलता है कि जयादित्य ने पंचगौड़ के राजाओं को पराजित किया था। पंचगौड़ कहने से सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ देशवासियों का

बोध होता था। इनके मध्य मिथिला और बंगाल के मध्यवर्ती अंश सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। सेनवंशीय प्रथम राजा विजयसेन दाक्षिणात्य (कर्नाटकवासी) थे। ये प्रथम गौड़ाधिपति हुए। उनके वंशधर 'गौड़ेश्वर' नाम से विख्यात हुए। विजयसेन के पुत्र बल्लालसेन ने गंगातट पर 'गौड़' नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन ने उसका नाम लक्खनावती रखा। नवद्वीप उनकी द्वितीय राजधानी थी। तत्पश्चात् बंगदेशीय जनों ने स्वयं को गौड़ वासी कहना आरम्भ किया। गौरांग के आविर्भाव के पश्चात् भक्तजन अपने को गौड़ व गौड़ीय भक्त कहने लगे (चै० च० ४ आदि लीला) गौड़राज हुसेन शाह तथा उनके पुत्र नुसरत शाह के राजत्वकाल में बंगसाहित्य की उन्नति हुई। 'श्रीकृष्ण-विजय' के रचयिता मालाधर बसु को हुसेन शाह ने गुनराज खाँ की उपाधि दी थी। नुसरत शाह ने ही 'महाभारत का अनुवाद 'भारत-पांचाली' नाम से कराया था। बंगाली कवियों ने पदावली में इन दोनों शासकों का नामोल्लेख आदर के साथ किया है।

गौरांगपुर—यह स्थान हुगली जिलान्तर्गत कृष्णनगर से एक मील उत्तर दिशा में स्थित है। नदी के तट पर श्री अभिराम दास के शिष्य श्री कमलाकर दास की समाधि है। फाल्गुन पूर्णिमा को यहाँ उत्सव होता है।

चतुरपुर—चतुरपुर मालदह जिलान्तर्गत गौड़ का एक निकटवर्ती ग्राम है। गौरांग और रूप-सनातन के मिलन स्थान के रूप में इसकी प्रसिद्धि है।

चातरा—यह गाँव हुगली जिलान्तर्गत श्रीरामपुर स्टेशन से डेढ़ मील की दूरी पर बसा है। यहाँ श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्री निताई-गौर, श्रीराधाकृष्ण तथा सूर्यदेव का श्रीपाट एवं देवालय है। यहाँ दोल-यात्रा-उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

चाकरो—चाकरो मुर्शिदावाद जिलान्तर्गत सालार स्टेशन से लगभग १५ किलोमीटर दूर है। श्री वृन्दावन ठाकुर के शिष्य श्री प्राचीनन्दन ने इस स्थान पर श्री वृन्दावन चन्द की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।

चांदुड़े—चांदुड़े सिमुराली स्टेशन के निकट बसा हुआ प्रसिद्ध प्राचीन वैष्णवतीर्थ स्थल है। यहाँ श्री श्री जाउवा माता की गद्दी है। द्वादश गोपालों में यह स्थान पुरुषोत्तम ठाकुर का श्रीपाट है। यहां पर श्री राधाकृष्ण सेवित हैं।

चांपाहाटी—चांपाहाटी वर्द्धमान जिलान्तर्गत विख्यात वैष्णव स्थान है। यह नवद्वीप से दो मील पश्चिम समुद्रगढ़ रेलवे स्टेशन के निकट है। यहाँ श्रीबानीनाथ का श्रीपाट है। ब्रजलीला-उत्सव में ये कामलेखा सखी माने जाते हैं। श्रीबानीनाथ ने यहाँ श्रीगौरांग-गदाधर की सेवा की प्रतिष्ठा की थी, जो इस समय भी चल रही है।

छत्रभोग खाड़ी—छत्रभोग खाड़ी २४ परगना जिलान्तर्गत है। पूर्व रेलवे के मगराहाट स्टेशन से जयनगर-मजिलपुर से ६ किलोमीटर की दूरी पर शतमुखी गंगा नदी बहती है। उसके तट पर स्थित यह एक महत्वपूर्ण वैष्णवतीर्थ स्थान है। अपनी पुरीयात्रा में महाप्रभु ने इस स्थान पर विश्राम करके इसे पवित्रता प्रदान की थी। यह भागीरथी के आदिम प्रवाह स्थान पर बसा था। भागीरथी ने अपना मार्ग बदल दिया है और आदिम प्रवाह स्थान पर तीन जलाशय—चक्रकुण्ड, गोपाल कुण्ड और मनिकुण्ड अवशेष रूप में छोड़ दिया है। यात्रीगण इन जलाशयों को गंगा के समान ही महत्व देते हैं और इनकी पूजा करते हैं। प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को इस स्थान परएक 'नन्दा-स्नान' मेला लगता है। श्री चैतन्य

भागवत के अन्त के द्वितीय अध्याय में महाप्रभु के इस स्थान में आगमन की कथा विस्तार से वर्णित है। यहाँ त्रिपुरसुन्दरी तथा अन्धमुनि नामक दो प्राचीन विग्रह हैं। यह अत्यन्त प्राचीन तीर्थ-स्थल है जहाँ प्रतिवर्ष ज्येष्ठ व माघ मास में मेला लगता है। यहाँ त्रिपुर-सुन्दरी को 'त्रिपुर-बाला' कहते हैं। लिलुआ से लेकर कालीघाट तक गंगा के किनारे एक सुगम पथ था। इसी पथ से महाप्रभु चैतन्य छत्रभोग गए थे। यह स्थान मूलतः शक्ति-साधना-पीठ था।

जियागंज—जियागंज बालुचर नाम से भी विख्यात है। यह स्थान जियागंज रेलवे से तीन कि०मि० पर बस हुआ है। यहाँ श्रील नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गंगानारायण चक्रवर्ती का श्रीपाट है। इस समय यहाँ श्री राधाबिनोद व श्री गोकुलानन्द की भक्ति और सेवा प्रचलित है। श्री गोविन्द विग्रह के पादपद्म में श्री गंगाराम दास अंकित है। ऐसी ख्याति है कि इस स्थान पर गंगा स्नान करते हुए परम वैष्णव श्रील नरोत्तम ठाकुर ने जल समाधि ली थी। इस विषय में एक किंवदन्ती भी है

बूधरी होइते चलिला गाम्भीले।
गंगा स्नान करिया बसिला गंगा कूले॥

आज्ञाकेल रामकृष्ण गंगा नारायने।
मोर अंग मार्जन करब दुइ जने॥

दोहे किवा मार्जन कारि व परशिते।
दुग्ध प्राय मिशाइल गंगार जलेते॥

जोकलाइ—यह स्थान वीरभूम जिलान्तर्गत दुबराजपुर (जयदेव से ५ कि०मि० की दूरी पर) अजय नदी के तट पर बसा हुआ है। यहाँ के निवासी श्री जगदानन्द परम वैष्णव और चैतन्य महाप्रभु के एकांत सेवक थे। इन्होंने इस ग्राम में महाप्रभु की सेवा का प्रकाश किया था। यहाँ प्राचीनकालीन कृष्ण का मन्दिर है, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की विभिन्न मुद्रायें उत्कीर्ण हैं साथ ही गोपी नाथ का विग्रह भी है। परन्तु यहाँ राधा की मूर्ति नहीं है।

झामरपुर—झामरपुर वर्द्धमान जिलान्तर्गत बसा है। यहाँ श्रील कृष्णदास कविराज और श्रीमान् केतनरामदास का श्रीपाट है। यहाँ के दर्शनीय स्थल इस प्रकार हैं।

१. श्रीमन्दिर में श्री गौर-निताई का विग्रह।

२. श्री कविराज गोसाइं प्रभु की काष्ट पादुका।

३. श्री नित्यानन्द के चरण युगल। विजयादशमी के बाद द्वादशी को यहाँ मेला लगता है।

तड़ा आँटपुर—तड़ा आंटपुर हुगली जिलान्तर्गत चांपाडांगा के निकट बसा है। यहाँ द्वादश गोपालों में श्री परमेश्वर दास ठाकुर का श्रीपाट, श्यामसुन्दर का मंदिर, श्री राधा गोपीनाथ और श्री गौरांग का विग्रह है। यहाँ वैशाखी पूर्णिमा को श्रील परमेश्वर ठाकुर का तिरोभाव-उत्सव मनाया जाता है।

तमलूक—तमलूक मेंदिनीपुर जिलान्तर्गत रूपनारायण नदी तट पर बसा है। श्री मन्महाप्रभु के समय श्रीमन्तराय तमलूक के राजा थे। ये मयूर-ध्वज वंशीय राजाओं के दौहित्र थे। यहाँ जिष्णुहरि (जिष्णु-अर्जुन, हरि-कृष्ण) का विग्रह है। प्राचीन मन्दिर पाँच-छः सौ वर्ष पुराना था, वह रूपनारायण नदी के गर्भ में विलीन हो गया था। वर्तमान मन्दिर नवनिर्मित है। इस स्थान पर सीमा देवी का विशाल मन्दिर है। इसका प्राचीन नाम ताम्रलिप्त था। जैनधर्म तथा बाद में कालक्रम से बौद्धधर्म का यह क्षेत्र प्रमुख धर्म-स्थान बन गया था। (विस्तृत विवरण

के लिए देखिए—वैष्णव-अभिधान पृ० १६१८) तत्पश्चात् चैतन्य के प्रभाव से यह वैष्णव धर्म प्रधान अंचल हो गया। यहाँ श्रील वासुदेव घोष का श्रीपाट है। एक कृष्णमन्दिर भी है, जिसमें श्री गौरांग का विग्रह है। चैतन्य के सन्यास ग्रहण के बाद श्रील वासुदेव ने भी इस स्थान का परित्याग कर दिया तथा तामलुक आकर श्री मन्महाप्रभु के विग्रह की प्रतिष्ठा की।

दक्षिणेश्वर—दक्षिणेश्वर कलकत्ता के उपकण्ठ में भागीरथी के पूर्व तट पर बसा हुआ है। यहाँ रानी रासमणि द्वारा निर्मित प्रसिद्ध काली मन्दिर है। यह स्वामी रामकृष्ण परमहंस की साधना भूमि थी। यहाँ श्री राधाकान्त, श्री भवतारिनी और श्री महादेव की नित्यपूजा का विधान है।

दत्तरानी ग्राम—दत्तरानी ग्राम श्रीहट्ट निकटवर्ती चाका दक्षिण परगनान्तर्गत बसा है। यहाँ महाप्रभु के पितामह श्री उपेन्द्रनाथ का श्रीपाट है। महाप्रभु के पिता श्री जगन्नाथ मिश्र का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। दत्तरानी ग्राम में श्री चैतन्य विग्रह और श्रीकृष्ण विग्रह की पूजा होती है। उसको 'ठाकुर-बाड़ी' कहते हैं।

दशग्राम—दशग्राम मेदिनीपुर जिले के सवंग थाना के अन्तर्गत स्थित है। यहाँ गोकुलानन्द गोस्वामी की समाधि है। यहाँ माघ कृष्ण प्रतिपदा को एक विराट मेला लगता है। यह उत्सव, 'तुलसी-चौरा' नाम से विख्यात है।

दशधरा—दशधरा हुगली जिलान्तर्गत है। यहाँ श्रील अद्वैत प्रभु के सेवक श्री कमलाकान्त विश्वास का श्रीपाट है। इस स्थान में श्री गोपीनाथ की सेवा का विधान प्रचलित है।

दाइहाट (दण्डीहाट)—दाइ हाट वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा से ७ कि०मी० की दूरी पर स्थित है। यहाँ श्री वासुदेव घोष के बड़े भाई श्री कुन्द घोष का श्रीपाट है। यहाँ इनके द्वारा सेवित रसिकराय का विग्रह भी है। इसके अतिरिक्त श्रीगदाधर भास्कर, नयान भास्कर, गायन मुकुन्द दास तथा वंशीवदन ठाकुर का भी श्रीपाट है।

देउल ग्राम—देउल ग्राम वीरभूम जिलान्तर्गत अयज नदी के तट पर बसा है। यहाँ 'देवलेश्वर' का मन्दिर है। इसके निकट ही एक प्रस्तर खण्ड है। ऐसा प्रवाद है कि इस प्रस्तर खण्ड पर बैठकर लोचन ठाकुर श्री चैतन्य मंगल की रचना करते थे।

देउलि ग्राम—देउलि ग्राम बाँकुड़ा जिलान्तर्गत है। यह श्रीनिवास के शिष्य श्री कृष्णवल्लभ ठाकुर का जन्मस्थान है। यह स्थान वन-विष्णुपुर के अन्तर्गत दारुकेश्वर नदी के दक्षिण तट पर बसा है।

देनूड़—देनूड़ नवद्वीप से १२ कि० मी० की दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित है। यह स्थान श्री केशव भारती (आविर्भाव-१३६० शाके) की जन्म भूमि हैं। यहाँ श्रीकेशव भारती का श्रीपाट है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इसी स्थान पर 'श्री चैतन्य-भागवत' की रचना की थी। देनूड़ में ही उन्होंने श्रीनिताई-गौर-विग्रह की स्थापना की थी।

देवपल्ली—देवपल्ली श्रीधाम नवद्वीप के अन्तर्गत कृष्ण नगर से पाँच किमी० की दूरी पर है। जनश्रुति है कि इसी स्थान में सत्य-युग में नृसिह ने हिरण्यकश्यप का बध किया था। यहाँ श्री नृसिंहदेव का प्राचीन मन्दिर है।

धारोन्दा बहादुर पुर—धारोन्दा बहादुर पुर मेदिनीपुर जिलान्तर्गत खड़गपुर के निकट बसा है। यह श्रील श्यामानन्द प्रभु का श्रीपाट है। धारोन्दा, बहादुर

पुर, रयनी, गोपी वल्लभ पुर तथा नृसिंहपुर, ये पाँच स्थान श्रीलश्यामानन्द प्रभु के भक्तों के पुण्य स्थान हैं।

धोयाघाट—धोयाघाट मुर्शिदावाद जिलान्तर्गत भरतपुर से दो किमी उत्तरपूर्व दिशा में मयूराक्षी नदी की शाखा कूचे नदी के तट पर स्थित है। यहाँ श्री गदाधर प्रभु का श्रीपाट है।

नरघाट—नरघाट तमलुक नगर के दक्षिण में १८ किलोमिटर की दूरी पर बसा है। नीलाचल गमन करते हुए महाप्रभु ने नरघाट से ही नौका यात्रा की थी। इस घटना के स्मरणार्थ स्थानीय भक्तजन फाल्गुनी गौर-पूर्णिमा के अवसर पर तीन दिनों तक संकीर्तन, शोभायात्रा और नगर-संकीर्तन करते हैं।

नवग्राम—नवग्राम (लाउड़, श्रीहट्ट) सुमनगंज के अन्तर्गत स्थित है। यह श्री अद्वैत प्रभु का आविर्भाव क्षेत्र है। एक दूसरा नवग्राम वर्द्धमान जिले के अन्तर्गत बसा है। यह मशाग्राम से तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थान में अद्वैत शाखा के श्री श्यामदास आचार्य का श्रीपाट है। यहाँ श्री राधा-गोविन्द की नित्यसेवा उपासना होती है।

नवद्वीप धाम—'नित्यानन्दाद्वैत चैतन्यमेकं तत्वं नित्यलंकृतं ब्रह्मसूत्रैः।' नवद्वीप गंगा के पूर्व पश्चिम पार में अवस्थित है। यह सर्वोत्तम श्री गौरधाम है। भूमि का परिमाण ८ वर्ग कि० मी० है। पूर्व काल में यह सेन राजवंश तथा वंग-संस्कृत शिक्षा का अद्वितीय केन्द्र था। लक्ष्मणसेन के शासन काल में यहाँ श्री कृष्णलीला विषयक रचनाओं का उत्कर्ष हुआ था। समसामयिक कवि उमापतिधर लक्ष्मणसेन के पितामह विजयसेन के शासनकाल से लेकर इस वंश की तीनपीढ़ियों तक राजमंत्री थे, 'उज्ज्वल-नीलमणि' में समाहृत 'रत्न छायाच्छुरित जलधौ' श्लोक इनकी ही रचना है। 'वैष्णव-पदावली-गोष्ठी' लक्ष्मण सेन द्वारा ही स्थापित हुई थी। क्रमशः नवद्वीप के विद्यागौरव की ख्याति समस्त भारत वर्ष में प्रसारित होती गई। नवद्वीप विद्याचर्चा का प्रधान केन्द्र हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक स्मृति, न्याय, तंत्रशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का यहाँ प्राधान्य रहा। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव की भूमि होने के कारण सर्वोच्च मूर्धन्य तीर्थ रूप में प्राचीन काल से ही इसकी कीर्ति सुरक्षित है।

नवद्वीपों का अवस्थान।

१. अन्तर्दीप—इसके अन्तर्गत प्राचीन मायापुर, भारुई भांगा (देवयान गंगा, गोविन्द देव का प्राचीन मन्दिर इसी स्थान पर था) तथा नदियाघाट (महाप्रभु इसी धारा को पार कर कटवा जाते थे) आता है।

२. श्रीमन्तद्वीप-वामुन पुकुर, सरड़ांगा, बल्लाल दीधि, सिमुलिया और श्रीमन्तिनी देवी।

३. गोद्रुमद्वीप—गादिगद्दा, सुवर्णविहार तथा स्वरूप गंज।

४. मध्यद्वीप—मजिदा, पानशिला, भालुकादि। गंगा के पश्चिम पार व नवद्वीप नगर की ओर स्थित हैं।

५. कोलद्वीप--कुलिया वा कोवला, तेधरी का दक्षिणी भाग, समुद्र गढ़ और चांपाहाटी।

६. धातुद्वीप—रातपुर तथा विद्यानगर।

७. मोदद्रुम द्वीप—भाउगाछी (सामगाछि), महतपुर तथा ब्रन्धानीतला।

८. जन्हुद्वीप—जान्नगर, पारुलिया तथा सुलुण्ठ।

९. रुद्रद्वीप—रादुपुर (रुद्रभांगा), शंकरपुर एवं पूर्व स्थली।

नवला विष्णुपुर— यह स्थान नदिया जिलान्तर्गत गंगा के तट पर बसा हुआ है। यहाँ श्रीविष्णुदास का श्रीपाट है।

निलाम गंगादास आर विष्णुदास।
प्रभुसंगे नीलाचले बास।
इ एई बसेर।
(श्री चैतन्य चरितामृत आदि० १०।१५१)

नवहट्ट (नैहाटी) वानेटी--नैहाटी कटवा से पाँच किलोमीटर उत्तर है। यह श्रील सनातन गोस्वामी के संस्कृत व शास्त्र गुरु श्री सर्वदानन्द सिद्धान्त-वाचस्पति तथा श्रील रूपसनातन के पूर्व पुरुष श्रील पटननाम का निवास स्थान था। उन्होंने यहाँ जगन्नाथ जी की प्रतिष्ठा की थी, और प्रतिवर्ष रथयात्रा-उत्सव का आयोजन करते थे।

नान्नूर—नान्नूर वीरभूम जिलान्तर्गत है। यह श्रील चण्डीदास की आविर्भाव-भूमि है।

नित्यानन्दपुर—नित्यानन्दपुर हुगली जिलान्तर्गत सप्तग्राम के निकट है। यहाँ एक राधाकृष्ण देवालय है। देवालय में नित्यानन्द के शिष्य श्रीधर ने गुरुदेव के विग्रह की स्थापना की थी।

निमाई-तीर्थघाट—निमाई-तीर्थघाट हुगली जिलान्तर्गत वैंधवाटी स्टेशन की पूर्व दिशा में गंगा तट पर बसा है। महाप्रभु ने सन्यास-ग्रहण के पश्चात् इसी घाट पर स्नान किया था। इस कारण ही इसको तीर्थवत् ख्याति है।

नीलाचल, नोलाद्रि—नीलाचल उड़ीसा प्रदेश में पुरी धाम का निकटवर्ती प्रसिद्ध पर्वत है। इसके ऊपर भगवान जगन्नाथ का विशाल मन्दिर है।

नेचाल्लिस पाड़ा—नेचाल्लिसपाड़ा मुर्शिदाबाद में भागीरथी के अपर तट पर अवस्थित है। यहाँ श्री राधा-माधव, श्री वंशीवदन, तथा उनकी कन्या श्रीहेमलता ठाकुरानी के विग्रह स्थापित है।

पंचधाम—नवद्वीप, कटवा, एकचक्रा, खड़दह, शान्तिपुर-ये पांच स्थान गौड़ीय वैष्णवों में पंचधाम के रूप में विख्यात हैं।

पानातीर्थ—पानातीर्थ लाउड़ परगनान्तर्गत है। यहाँ एक सरोवर है जिसे श्री अद्वैत प्रभु ने एक तीर्थ स्थान का रूप दिया था। मधुकृष्णा त्रयोदशी को इस स्थान पर स्नान-यात्रा का मेला लगता है।

पाक मालटि ग्राम—पाक मालटिग्राम मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत जाड़ाग्राम के निकट बसा है। यहां श्रील अभिराम ठाकुर के शिष्य गुप्त नारायण का श्रीपाट है।

पाड़ाल ग्राम—पाड़ाल ग्राम में राय शशिशेखर अथवा चन्द्रशेखर का श्रीपाट है।

पानीहाटि—पानीहाटि चौबीस परगनान्तर्गत सोदपुर स्टेशन के निकट गंगा तट पर बसा है। यहाँ दास गोस्वामी का दण्ड महोत्सव हुआ था। इस स्थान का महत्व वैष्णव तीर्थ के रूप में है। यहाँ श्रील अभिरामगोपाल के शिष्य ठाकुरमोहन का श्रीपाट है।

पाण्डुवा--पाण्डुवा सुवर्ण रेखा के तट पर अवस्थित एक ग्राम है। ऐसी जनुश्रुति है कि यह पाण्डवों का विश्राम स्थल था।

पाण्डवा— पाण्डवा हुगली जिलान्तर्गत पेड़ोर मन्दिर और पाण्डुवा रेलवे स्टेशन से दो किलोमीटर की दूरी पर बसा है। यह स्थान देवमन्दिरों से परिपूर्ण हिन्दू संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था, जिसे मुगल आक्रमणकारियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मुगलों ने एक मन्दिर की पीठिका पर एक १३५ फीट ऊँची मीनार बनवाई थी। परन्तु इसमें हिन्दू कीर्ति का निदर्शन मिलता है। मीनार के सम्मुख एक हिन्दू मन्दिर है। यह 'बाइसद्वार' के नाम से विख्यात है। यह स्थान दीर्घ काल तक गौड़ीय कृष्ण भक्ति के प्रमुख केन्द्रों में रहा।

पाण्डुवी विश्रामतला--पाण्डुवी बिश्रामतला सिउड़ी से ती कि० मी० दक्षिण रामपुर व मल्लिकपुर के मध्य में है। चैतन्यदेव ने संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया था। किन्तु वे मध्य मार्ग से ही लौट आए। प्रत्यावर्तन के समय उन्होंने इसी स्थान पर विश्राम किया था। अतः यह पाण्डुवी विश्राम तथा तीर्थ के रूप में विख्यात है।

पानागढ़ि– पानागढि पानपहाट से ३० किलोमीटर की दूरी पर बसा है। यह वैष्णवों के प्रमुख तीर्थों में है। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर है। वैष्णव इसे रामेश्वर शिव कहते हैं। यहाँ एक प्राचीन विष्णु मन्दिर भी है। श्री मन्महाप्रभु ने इसी मार्ग से कन्याकुमारी की यात्रा की थी।

पालपाड़ा--पालपाड़ा नदिया जिला में पड़ता है। यहाँ द्वादश गोपाल के अन्यतम श्रील महेश पण्डित का श्रीपाट है। इस क्षेत्र में अगहनी कृष्ण त्रयोदशी को वैष्णवों का मेला लगता है।

पुंटशुड़ि--पुंटशुड़ि वर्द्धमान जिलान्तर्गत वण्डेल स्टेशन से १८ किलोमीटर पश्चिम में अवस्थित है। यहाँ श्री गोपालदास का श्रीपाट है। यहाँ वैशाखी एकादशी को गोपालदास का आविर्भावोत्सव और कोजागरी पूर्णिमा को उनका तिरोधानोत्सव मनाया जाता है।

फतहपुर फतहपुर मैदिनीपुर जिलान्तर्गत कन्टोई रोड से १६ किलोमीटर की दूरी पर बसा है। यहाँ श्यामानन्द प्रभु के शिष्य—भन्जन, निरन्जन, परान एवं जीवन के श्रीपाट हैं। यहाँ श्री राधा-गोविन्दजी के प्राचीन विग्रह की उपासना और सेवा होती है।

बलरामपुर—बलरामपुर मैदिनीपुर जिलान्तर्गत बसा है। यह श्री श्यामानन्द प्रभु का लीला स्थान था। यहाँ उनके शिष्य यदुनाथ का श्रीपाट है।

बहड़—यह स्थान कलकत्ता से ३६ किलोमीटर की दूरी पर है। इसका प्राचीन नाम बड़ुक्षेत्र था। यहाँ के वसुवंशीय जमीदारों ने श्री श्यामसुन्दर के मन्दिर का निर्माण कराया था। इस वंश के नन्दकुमार वसु ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में तीन लाख रुपए की राशि देकर वृन्दावन में श्रीमदनमोहन, श्री गोविन्द व गोपीनाथ के मन्दिर का नव-निर्माण कराया था।

भरतपुर—भरतपुर मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत है। यह मलार स्टेशन से १२ किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ पर श्रीध्रुवानन्द का श्रीपाट है। यहाँ श्री श्रीराधा गोपीनाथ जी का मन्दिर है। इसके पार्श्व में 'मेयोकृष्ण' नामक एक लघु विग्रह है। इस कृष्ण मन्दिर में तेरह पृष्ठों में गीता के कुछ श्लोकों की एक पाण्डुलिपि है। इसके लेखक स्वयं श्रील गदाधर पण्डित है।

भवानीपुर--भवानीपुर मार्गवी नदी के तट पर बसा एक प्राचीन वैष्णवग्राम है। पुरी धाम से गौड़ आगमन के समय महाप्रभु चैतन्य देव ने इस ग्राम में एक रात्रि व्यतीत की थी। (चै० चरिता० मध्य लीला)। यहाँ लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन एक देव मन्दिर है। साक्षीगोपाल स्टेशन से भवानीपुर लगभग छः किलोमीटर की दूरी पर बसा है।

भांगा मोड़ा—भांगा मोड़ा हुगली जिले में हरिपाल व तारकेश्वर स्टेशन से लगभग छः किलो मीटर की दूरी पर दामोदर नदी के तट पर बसा है। यहाँ श्री अभिराम के शिष्य रजनी-पण्डित, मुकुन्दराम पण्डित व सुन्दरानन्द पण्डित का श्री पाट और श्री मदनमोहन का मंदिर है।

मधुबन गढ़—मधुबन गढ़ मैमनसिंह जिलान्तर्गत है। इस स्थान को 'गुप्त-वृन्दावन' कहते हैं। यह

वैष्णवों का एक महत्वपूर्ण-तीर्थ स्थान है। यहाँ श्री मदन मोहन, श्री श्यामकुण्ड, श्री राधाकुण्ड, वंशी वट आदि वृन्दावन के ही अनुरूप है। इस क्षेत्र में प्रति वर्ष वैष्णव भक्तों का मेला लगता है।

मनोहर शाही—मनोहरशाही मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत है। श्रीनिवास आचार्य प्रभु की लीलाभूमि होने के कारण उनके द्वारा प्रवर्तित 'मनोहर-शाही-संकीर्तन' पद्धति की उद्भव स्थली के रूप में इसका विशेष महत्व है।

मयनामाल—मयनामाल वीरभूम जिलान्तर्गत पाण्डु-केश्वर स्टेशन से पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ श्री नृसिंह मित्र ठाकुर का श्रीपाट है। श्री नृसिंह ठाकुर विख्यात कीर्तनिया व मृदंग वादक थे। यहाँ श्री गौरांग-विग्रह भी स्थापित है। वर्ष में एक दिन प्रभु को मसूर की दाल और पके हुए चावल (भात) का भोग लगाया जाता है।

मयनापाड़ा—मयनापाड़ा मेदिनीपुर जिलान्तर्गत कपटोर रोड स्टेशन से दक्षिण दिशा में पुरी रोड के निकट बसा है। यहाँ श्री निताई-गौर का विग्रह है।

महेश पुर—महेशपुर अथवा हलदा महेशपुर यशोहर माजदह स्टेशन से पूर्व २० किलोमीटर को दूरी पर स्थित है। यहाँ द्वादश-गोपाल का श्रीपाट तथा श्री राधारमन का मन्दिर है। अग्रहायनी गोनी कृष्णा प्रतिपदा को यहाँ परम वैष्णव सुन्दरानन्द ठाकुर का तिरोभाव उत्सव मनाया जाता है।

माकड़कोल ग्राम—माकड़कोल ग्राम दक्षिण-पूर्वी श्राद्रा स्टेशन से तीन किलो मीटर उत्तर दिशा में स्थित है। यहाँ श्री श्यामसुन्दर का विख्यात मन्दिर है। माघी पूर्णिमा को वैष्णव-उत्सव मनाया जाता है।

माणिक्यबिहि—माणिक्यबिहि नदिया तथा मुर्शिदाबाद जिले के सन्धि-स्थल पर बसा है। यहाँ श्री नवनीगोपाल तथा श्री राधावल्लभ के श्रीपाट हैं।

भातसर ग्राम—भातसर ग्राम वर्द्धमान जिले में स्थित है। यहाँ श्री श्यामदास आचार्य का श्रीपाट है।

माधाइतला—माधाइतला काटोया से दाइहाट जाने वाले पथ पर स्थित है। कटवा में श्रीमहाप्रभु का मन्दिर है। माधाइतला इस स्थान से दो किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ श्री गौरांग-निताई विग्रह है। प्रसिद्ध भक्त जगाइ-मधाइ में से श्री मधाइ की यहाँ समाधि है। उक्त मधाइ तला में ४ मास महाप्रभु के विग्रह की पूजा तथा सेवा, होती है। इसके बाद ४ मास बोलपुर के निकट वाइरी ग्राम में ये सेवित होते हैं। तत्पश्चात् रास के अवसर पर यहाँ उत्सव होता है। शेष चार मास वे मधाइ तला में विश्राम करते हैं। इस समय मनोरम-सेवा नाम कीर्तन का क्रम अहोरात्रि चलता है।

याजिग्राम—याजिग्राम वर्द्धमान जिलान्तर्गत कटवा वर्धमान के मार्ग पर स्थित है। यहाँ श्रीनिवास आचार्य का श्रीपाट तथा श्रीनिवास जी के पुत्र श्री गीतगोविन्द द्वारा अर्चित मदन गोपाल और श्री निवास प्रभु के विग्रह हैं। यहाँ गोष्ठाष्टमी को एक विराट् वैष्णव मेला लगता है।

रघुनाथपुर—रघुनाथपुर वैष्णव तीर्थ स्थान है। काशी की यात्रा करते समय महाप्रभु चैतन्य देव ने इस स्थान पर विश्राम किया था। इस कारण परवर्ती काल में इसकी गणना प्रमुख वैष्णव तीर्थों के अन्तर्गत होने लगी। आज भी वैशाखी संक्रान्ति के दिन प्रभु के सम्मानार्थ यहाँ ग्रामवासी भक्तजन एक रुपया प्रणामी देते हैं। उस दिन यहाँ भोग और संकीर्तन के आयोजन की परम्परा है।

रघुनाथ बाड़ी—रघुनाथ बाड़ी मैदिनीपुर जिलान्तर्गत, पाँचकुड़ा स्टेशन के निकट तामलुक के पथ पर स्थित है। यहाँ पर रघुनाथ जी का मन्दिर है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्री गोपाल आश्रम तथा श्री मन्महाप्रभु का विग्रह स्थापित है। आश्विन विजयादशमी के दिन यहाँ श्री रघुनाथ-रथोत्सव होता है।

रामकेलि—रामकेलि मालदह जिलान्तर्गत गौड़ के निकट स्थित है। रूप-सनातन का इस स्थान से घनिष्ठ सम्बन्ध व सम्पर्क रहा है। इस कारण इस स्थान की गणना एक महत्वपूर्ण वैष्णवतीर्थ के रूप में की जाती है। यहाँ श्री निताई गौर और श्री अद्वैत प्रभु के मन्दिर हैं। (विस्तृत सूचनार्थ देखिए—श्री श्री गौड़ीय वैष्णव अभिधान, खण्ड २, पृ० १६३६)।

रुकुनपुर—रुकुनपुर नदीया जिलान्तर्गत पाटुली स्टेशन से १० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। गर्ग संहिता में इस स्थान को 'रामतीर्थ' कहा गया है। यहाँ जाह्नवी माता का श्रीपाट है।

बगड़ी—बगड़ी मैदिनीपुर जिलान्र्गत शीतावती नदी के तट पर स्थित है। यहाँ श्री कृष्णरायजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा राजा गजपति सिंह के मंत्री राज्यधरराय ने की थी। तत्पश्चात् श्री रघुनाथ सिंह ने श्री राधिका मूर्ति व मन्दिर की स्थापना की।

बड़ बेलून—बड़ बेलून वर्धमान जिलान्तर्गत भातार स्टेशन के निकट स्थित है। यहाँ श्री अनन्तपुरी का श्रीपाट है। इसके निकट ही श्रील वृन्दावन ठाकुर का श्रीपाट है। यहाँ श्री राधा-गोविन्द की सेवा का विधान है।

बनविष्णुपुर—बनविष्णुपुर बाँकुड़ा जिलान्तर्गत राजा वीर हाथीश्वर की राजधानी और श्रीनिवास आचार्य प्रभु की लीलास्थली है। यह प्राचीन काल से ही बंगाल में वैष्णव धर्म प्रचार का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ निम्नलिखित महत्वपूर्ण मन्दिर है—

१. श्यामराय का पंचरत्नमन्दिर (१६४६ ई०)।
२. जोर-बांगला-मन्दिर (१६५५ ई०)।
३. काला चाँद का मन्दिर।
४. लालजीउ का मन्दिर (१६५८ ई०)।
५. मुरलीमनोहर का मन्दिर।
६. मदन-मोहन गोपाल का मन्दिर।
७. मन-मोहन मन्दिर।

बलागढ़—बलागढ़ बण्डेल स्टेशन से २५ किलो मीटर की दूरीपर बसा है। यहाँ श्री राधागोविन्द का मन्दिर है।

बल्लभपुर—बल्लभपुर श्रीरामपुर स्टेशन से दो किलो मीटर दूर है। यहाँ श्रील काशीश्वर व रुद्रपण्डित के श्रीपाट हैं।

वागना पाड़ा—बागना पाड़ा वर्द्धमान जिला में स्थित है। यहाँ श्री वंशीबदन और श्री रमाई ठाकुर के श्रीपाट है। सन् १५१३ ई० में निर्मित श्री कृष्ण-बलदेव विग्रह और मन्दिर अति मनोहर हैं।

श्रीखण्ड—श्रीखण्ड वर्द्धमान जिलान्तर्गत प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ है। यहाँ श्री नरहरि ठाकुर का श्रीपाट है। श्री मुकुन्दठाकुर, श्री रघुनन्दन, चिरंजीव, सुलोचना, दामोदर कविराज, रामचन्द्र कविराज, गोविन्द कविराज, बलरामदास, रतिकान्त, रामगोपाल दास, पीताम्बरदास, शचीनन्दन, जगदानन्द प्रभृति श्री खण्ड के प्राचीन वैष्णव आचार्य थे। यहाँ अग्रहायण कृष्ण द्वादशी को श्री नरहरि ठाकुर के विरहोत्सव के अवसर पर तीन दिवस व्यापी विराट्

मेला लगता है। यहाँ के दर्शनीय स्थान हैं—मधुपुष्करिणी, भजनस्थली, श्रीगोपीनाथ, श्री गौरांग, श्रीविष्णु प्रिया के विग्रह।

सप्तग्राम—सप्तग्राम में श्री उद्धारन दत्त ठाकुर का श्रीपाट है। यह कुमार हट्ट (चौबीस परनान्तर्गत) तथा हाली शहर स्टेशन से तीन किलो मीटर की दूरी पर है। श्रील ईश्वरपुरी गोस्वामी का आविर्भाव स्थान होने से गौड़ीय वैंष्णवों का यह मुख्य तीर्थ माना जाता है।

हिलोरा—हिलोरा मुर्शिदाबाद जिले में स्थित है। यह स्थान श्री श्यामसुन्दर के विशाल मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। इनके वाम पार्श्व में राधिका नहीं है, हाथ में वंशी नहीं है, त्रिभंगी रूप भी नहीं है। श्रीमूर्ति पद्मासन में है।

हेतम पुर—हेतमपुर बीरभूम जिला में स्थित है। यहाँ के दर्शनीय स्थान श्री गौर-निताई मन्दिर तथा भी गौरांग-भवन है। यहाँ प्रतिवर्ष गौरांग की स्मृति में दोलोत्सव मनाया जाता है।

ख. बंगाल के प्रमुख वैष्णव केन्द्र एवं मन्दिर

प्रसिद्ध वैष्णवकेन्द्र

प्रमुख वैष्णव केंद्रों के नाम, जिला तथा संस्थापक का विवरण :

आरंगाइल (पबना, द्विजप्रशुभानन्द)। बाब्ला (नदिया, अद्वैत के वंशधर)। मइता (वर्द्धमान, श्यामदास आचार्य)। भुइखालि (पाब्ना, बलराम ठाकुर)। चांदपुर (हुगली, यदुनन्दन आचार्य)। दमघरा (हुगली, कमलाकान्त विश्वास)। गोपीनाथपुर (बोगरा, नन्दिनी — सीता देवी की शिष्या)। गोस्वामी रामपुर (पाब्ना)। अरेपुर (नदिया, हरिप्रिया)। होशियारपुर (सिलहट, नरहरि सरकार)। जंगली टोला (मालदा)। झाकपाल (ढाका, इबान नागर)। कान्दिखाली (नदिया, विष्णुदास आचार्य)। केशवपुर (वर्द्धमान, विष्णुदास आचार्य)। कुलिया (नदिया, अच्युतानन्द गोस्वामी)। माणिक्य डिही (नदिया)। नवग्राम लाउड़ (— —)। नवग्राम (वर्द्धमान, श्यामदास आचार्य)। पानातीर्थ (सिलहट, अद्वैत के शिष्यों ने इसका विकास तीर्थ स्थान के रूप में किया।)। राणापारा (वर्द्धमान, श्यामदास आचार्य)। (यहाँसन् १६९२ ई० में एक वैष्णव मन्दिर का निर्माण हुआ।)। शान्तिपुर (नदिया, --)। शिलादि (ढाका —)। सिंगार-कोन (वर्द्धमान, महानन्द आचार्य)। लेओता (ढाका, गदानन्द, सीता देवी के शिष्य)।

अल्पख्यात वैष्णव केन्द्र

आत्मगंज, बलरामपुर, बागड़ी, बड़गोला, बड़ग्राम, बसन्तपुर, बाणपुर, भंजभूमि, राजगढ़, मोग्राइ, चाकुलिया, धारेन्दा – बहादुरपुर, फतेपुर, गोपीवल्लभपुर, घाटशिला, हरिहरपुर, हिजली, झाटिभाड़ा, काशीपुर, काशीनाथ दास, केशियाड़ी (काशी आड़ी), ओनझर, मयना, मयूरभंज, मुक्तापुर, नृसिंहपुर, रायणी, रघुनाथ बाती, राणी हाटी, रेमुना (बालासोर) श्यामसुन्दरपुर।

प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर

मन्दिरों के नाम, स्थापनाकाल तथा संस्थापक का विवरण :

श्यामसुन्दर—१६०० ई०, वृन्दावन चन्द्र—१६३८ ई०, वीर सिंह। श्यामराय—१६४३ ई०, रघुनाथ सिंह। गोकुलचन्द्र—१६४३ ई०, गोकुल नागर। जाँदवराय—१६५० ई०, जाँदव नागर। गोपाल—१६५३ ई०, विक्रम वीर। कृष्णराय—१६५६ ई०, रघुनाथ सिंह। कालाचांद—१६५६ ई०, वीरसिंह। राधा-विनोद—१६५८ ई०, रघुनाथ सिंह। राधा-कृष्ण—१६६२ ई०, तेजपाल। मदन गोपाल—१६६५ ई०, चूड़ामणि। राधारमण—१६६५ ई०, श्री निवास आचार्य। मदन मोहन—१६७० ई०, सनीड़ा। राधाकांत—१६७८ ई०, मणिनागर। मदन मोहन—१६८७ ई०, दुर्जन सिंह। जोर मन्दिर—१६९४ ई०, गोपाल सिंह। रासमंच—१७०० ई०, वीरहम्बीर। राधा-गोविन्द—१७२६ ई०, कृष्ण सिंह। महाप्रभु—१७२९ ई०, गोपाल सिंह। राधामाधव—१७३४ ई०, चूड़ामणि। राधाश्याम—१७३७ ई०, चैतन्य सिंह। राधाकृष्ण—१७५८ ई०, चैतन्य सिंह। कृष्णबलराम—१८०० ई०, चैतन्य सिंह। रासमंच—१८०० ई०, विष्णुनागर।

अल्पख्यात वैष्णव मन्दिर

मंदिरों के नाम तथा स्थान का विवरण :

श्याम सुन्दर—मदनपुर । लक्ष्मीनारायण—मेत्याला । बलराम—सिमलापाल । श्याम सुन्दर—इल्याति । राधा मोहन—घुरधुरिया । वैष्णवमठ (रायनगर)—घुरधुंरिया । कृष्ण मन्दिर—मुहम्मद पुर । लक्ष्मीनारायण का मन्दिर—मुल्धरा ग्राम। कृष्ण मन्दिर—चलाग्राम । जोरंबागला—दौलतपुर (खुलना)। अष्ट कोण लक्ष्मी नारायण मन्दिर—मुहम्मदपुर ।

वैष्णव मेले

(क) होली और दोलोत्सव के अवसर पर आयोजित मेले—

ब्रजराजपुर, बड़कोला, रुद्र, आलमगंज, सिमलापाल, नइहाटी, मालाइदह, नृसिंहपुर, नन्दरवणी, गोपीवल्लभ पुर, चन्द्रकोना, श्यामसुन्दरपुर ।

(ख) रासोत्सव के अवसर पर आयोजित मेले—

विष्णुपुर, धारेन्दा, तिलझाटका, भावसकोन ।

(ग) रथयात्रा के अवसर पर आयोजित मेले—

विष्णुपुर नगर ।

ग. बंगाल के वैष्णव साहित्य

(क) प्रकरण तथा सिद्धांत ग्रंथ

श्री वृहत् भागवतामृत-सनातन गोस्वामी, श्री कृष्णभक्तिरत्नप्रकाश — राघव पण्डित गोस्वामी, उज्ज्वलनोलमणि—रूप गोस्वामी, भक्ति-रसामृत सिन्धु—रूप गोस्वामी, श्री भागवतामृत्त कण—विश्वनाथ चक्रवर्ती, सिद्धान्त भाष्य—वलदेव विद्याभूषण, उपासना पटल, उपासना सार संग्रह, कृष्ण-लीलामृत-बलराम दास, गोलोक-वर्णन—गोपाल भट्ट, चैतन्य-प्रेम-विलास—लोचन दास, द्वय-तत्व-मंजरो—नरोत्तम दास, द्वय-तत्व-विलास वृन्दावनदास, तत्व-निरूपण-नरोत्तम दास, तत्वविकास-वृन्दावनदास, दुर्लभसार-लोचन दास, दण्डात्मिका-प्रणाली—कवि शेखर, देह-निरूपण—लोचन दास, भक्तिलतिका—नरोत्तम दास, भक्तिलतावली-नरोत्तम दास, भक्तिचिन्तामणि, भक्ति-माहात्म्य--वृन्दावन दास, भक्तिप्रदीप-शंकरदेव, भक्ति-रत्नाकर—शंकरदेव, भक्ति-रत्नावलो—माधवदेव, भक्तिलक्षण—वृन्दावन दास, रागानुगालहरी—लोचन दास, सिद्धिभक्ति चन्द्रिका—नरोत्तम दास, सिद्धान्त चन्द्रिका—रामचन्द्र, स्वरूप-कल्पतरु—नरोत्तम दास, हारपतन--नरहरिदास, अमृतरसचन्द्रिका—नरोत्तम, गोविन्दरति-मंजरी—घनश्याम दास, रसभक्तिचन्द्रिका — नरोत्तम, रसभक्तिलहरी — नरोतभ, रसपुष्पकलिका—किशोर दास, रसोज्ज्वल —जगन्नाथ दास भक्तिरसामृतसिन्धु -रूप गोस्वामी, भक्तिरसामृत विन्दु—श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, उज्ज्वल नीलमणिकिरणम्, रागवर्त्मचन्द्रिका—माधुर्य कादम्बिनो, कृष्ण कर्णामृत—विल्वमंगल, उद्धवसन्देश—रूप गोस्वामी, चैतन्य-चरितामृत —स्वरूप दामोदर, श्रीकृष्णसन्दर्भ — जीव गोस्वामी, गोविन्दलीलामृतम्—कृष्णदास कविराज, गौरचरित्रचिन्तामणि—नरहरि चक्रवर्ती, श्री राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका—रूप गोस्वामी, संकल्पकल्पद्रुम—विश्वनाथ चक्रवर्ती, कृष्णलीलास्तव—सनातन गोस्वामी, चैतन्यचन्द्रामतम्—प्रवोधानन्द सरस्वती, चैतन्य चन्द्रोदयम्—कवि कर्णपूर, प्रमेयरत्नावली—बलदेव विद्याभूषण, प्रेमो पुमर्थो महान्—विश्वनाथ चक्रवर्ती, प्रीतिसंदर्भ—जीव गोस्वामो, प्रेम सम्पुट—विश्वनाथ चक्रवर्ती, भक्ति ग्रन्थमाला—विश्वनाथ चक्रवर्ती, भागवतसंदर्भ—जीव गोस्वामी, संगीत-माधव—गोविन्ददास कविराज, गौरगणोद्देशदीपिका—कवि कर्णपूर, भागवतामृत-कणिका—विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीमद् भागवत-भावार्थ - दीपिका टीका—श्रीधर गोस्वामो, हंसदूत—रूपगोस्वामी, पद्यावली—रूपगोस्वामी, दानकेलि कौमुदी—रूप गोस्वामी, हरि भक्ति विलास—गोपाल भट्ट, चैतन्याष्टक—रघुनाथ दास, गौरांगस्तव कल्पवृक्ष—जीव गोस्वामी, तत्व सन्दर्भ, भगवत्सन्दर्भ, परमार्थ सन्दर्भ, श्रीकृष्ण सन्दर्भ, भक्ति सन्दर्भ, परामात्म सन्दर्भ, हरिनामामृत--जीव गोस्वामी, शिक्षाष्टक—श्री चैतन्य।

(ख) भक्त-चरित

अद्वैत तत्व—श्यामदास, अद्वैतसूत्र—कृष्णदास, अद्वैतमंगल—नरहरिदास, कड़चा—मुरारी गुप्त, कड़चा—गोविन्द कर्मकार, कड़चा—स्वरूपदामोदर, कड़चामंजरी—रामचन्द्रदास, कर्णामृत या कर्णानन्द-यदुनन्दनदास, गौरपद तरंगिनी—कृष्णदास कविराज,

गौरांगविजय—शचीनन्दन, गौरांग-अष्टक—बलराम-दास, गौरांग-अष्टक-मालिका—नरहरिदास, चैतन्य चरितामृत—लोचनदास, चैतन्याष्टक, नित्यानन्द वंश विस्तार-वृन्दावनदास, बंगला भक्तमाल—लालदास, प्रेमविलास—नित्यानन्ददास, भक्ति रत्नाकर—नरहरि चक्रवर्ती, भुवन-मंगल—चड़ा मानदास, वीरचन्द्रचरित्र—बलराम दास, वैष्णव महात्मगनाख्यान, वैष्णव-वन्दना—माधवदास, वैष्णव-वन्दना—देवकीनन्दनदास, वैष्णवाभिधान—देवकीनन्दनदास, सीतागुणकदम्ब—विष्णुदास, सीताचरित्र—लोकनाथदास।

चैतन्य भागवत (वृन्दावन दास)—संम्पादक अतुल कृष्ण गोस्वामी, महाप्रभु मन्दिर, कलकत्ता १९०१ ई०।

चैतन्य चरितामृत (कृष्णदास कविराज)—सम्पादक शशिभूषण वन्द्योपाध्याय, अम्बिका कालना द्वारा प्रकाशित व मुद्रित।

—गोविन्दभूषण वन्द्योपाध्याय (१९२३ ई०)।

—प्रो० सुकुमार सेन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९६३ ई०।

चैतन्य मंगल—(लोचन दास), प्रकाशक—अरुणोदय घोष, मुद्रक—विद्यारत्न प्रेस २४६ चितपुर रोड, कलकत्ता।

मृणाल कान्ति घोष-पत्रिका हाउस, कलकत्ता—तीसरा संस्करण १९४७ ई०।

चैतन्य मंगल (जयानन्द)—सम्पादक—विमान बिहारी मजुमदार एवं सुखमय मुखोपाध्याय, बिबलियोथिका इण्डिका; दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९७१ ई०।

चैतन्य संगीता—भागीरथी बन्धु—कवित रत्नाकर प्रेस, कलकत्ता, १८६७ ई० में मुद्रित।

गोविन्द दासेर कड़चा—सम्पादक दिनेश चन्द्र सेन तथा बनवारीलाल गोस्वामी-कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२६ ई०।

गौरांग विजय (चूड़ामणिदास)—सम्पादक—प्रोफेसर सुकुमार सेन, बिबलियोथिका इण्डिका २८३, दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९५७ ई०।

अद्वैत मंगल (हरिचरन दास)—सम्पादक ब्रजसुन्दरदास तथा रवीन्द्रनाथ मइती-बर्द्धमान वि० वि०।

अद्वैतप्रकाश (ईशान नागर)—सम्पादक : मृणाल कान्ति घोष, अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, (१९३२-३३ ई०)।

नित्यानन्द चरितामृत।

(ग) भाष्य, टीका, अनुवाद ग्रंथ

श्रीमद्भागवतटीका—श्रीधरस्वामी, कृष्ण कर्णामृत—यदुनन्दनदास, गोविन्द भाष्य—बलदेव-विद्याभूषण, गोविन्दलीलामृत—यदुनन्दनदास, गीता—गोविन्दमिश्र, अश्वमेधपर्व—(जैमिनी संहिता का बंगला अनुवाद)—रामचन्द्रखान। अश्वमेध पांचाली—द्विज रघुनाथ।

चन्द्रहास—घनश्यामदास, जगन्नाथवल्लभ—लोचनदास, दशमस्कन्ध—रमाकांत, दशश्लोकी-भाष्य—राधाकृष्णदास, दानलीला-चन्द्रामृत—यदुनन्दनदास, निकुंजरहस्य-स्तव—वंशीदास, वृहन्नारदीय पुराण—देवइ, भागवतपुराण—रमाकांत, भागवत पुराण—शंकरदेव, भागवततत्त्व-लीला—ज्ञानदास, भागवत पुराण—जगन्नाथदास, रसकदंब—कवि वल्लभ, रसिक रंगदा—वीर चन्द्र, राधाकृष्ण-लीला-

रसकंदब—यदु, श्रीभगवन्नाम कौमुदी—लक्ष्मीधर, वृहद्भागवतामृत—सनातन गोस्वामी, श्रीकृष्णलीलामृत—श्री ईश्वरपुरी, श्रीकृष्णविजय—गुनराज खां, श्री गोविन्द मंगल—मालाधर वसु, वैष्णवतोषिणी (भागवत के दशमस्कन्ध की टिप्पणी)—सनातन गोस्वामी (श्री कृष्ण चरितावली में सर्वाधिक प्राचीन, १३९५-१४०२ शक में समाप्त)।

चैतन्य-चरितामृत के अनुसार महाप्रभु लिखित ग्रन्थ—

श्री शिक्षाष्टक
श्री प्रेमामृत रसायनम्
श्री राधाकृष्ण युगल परिहार-स्तोत्र
श्री श्री जगन्नाथाष्टक

(घ) महाकाव्य

श्री गोविन्दलीलामृत—कृष्णदासकविराज गोस्वामी, श्रीकृष्ण भावनामृत—विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्री चैतन्य चरित महाकाव्य—कवि कर्णपूर, श्री माधव महोत्सव महाकाव्य, श्री गौरकृष्णोदय महाकाव्य—गोविन्ददेव।

(ङ) खण्डकाव्य

आश्चर्यरास प्रबन्ध—प्रबोधानंद सरस्वती, श्रीकृष्ण तरंगिनी—भागवताचार्य, कृष्णमंगल—गोविन्द, श्रीकृष्णमंगल—भागवताचार्य, कुञ्जवर्णन—नरोत्तम, गोविन्द मंगल—दुःखीश्यामदास, कृष्ण मंगल—कृष्णदास, कृष्णविजय, गोविन्द विजय, गोविन्द मंगल—मालाधर बसु, कृष्णमंगल—यशोराज खान, श्रीकृष्ण-कीर्तन—चंडीदास, श्रीकृष्णलीलामृत—कवि शेखर, गोपाल विजय—दुःखी श्यामदास, दधिखण्ड—वृन्दावनदास, दानकेलिकौमुदी—यदुनंदनदास, प्रीति बोध—जगन्नाथ दास, यशोदार वात्सल्य लीला—ज्ञानदास, राधाकृष्णलीला कदम्ब—यदुनंदनदास, राधारससुधानिधि—प्रबोधानंद सरस्वती, श्रीकृष्णमंगल—माधवाचार्य, श्रीकेशवमंगल—नरहरिदास।

(च) शतक काव्य

श्री श्री वृन्दावन महिमामृत—प्रबोधानंद सरस्वती, श्री नवद्वीपशतकम्—प्रबोधानंद सरस्वती, श्री श्री श्यामानंद शतक—रसिकानंद प्रभुपाद।

(छ) चम्पूकाव्य

श्री गोपाल चम्पू—जीवगोस्वामी आनन्द वृन्दावन चम्पू—कवि कर्णपूर, श्री गौरांग चम्पू—श्रील रघुनंदन गोस्वामी।

(ज) नाटक

जगन्नाथ वल्लभ—अी रामानंद राय (१४२६-१४३२ई०), विदग्ध माधव—रूप गोस्वामी (१४५५ शक में रचना), ललित माधव, दान केलिकौमुदी, नाटक—चन्द्रिका—रूप गोस्वामी, दान केलि चिन्तामणि—रघुनाथ गोस्वामी, श्री चैतन्यचंद्रोदय नाटक—कवि कर्णपूर, कंसवध यात्रा—रामचरण, संगीत माधव नाटक—गोविंद कविराज, गोपीनाथ विजय—कविशेखर।

(झ) पदावली साहित्य

बंगला में राधा कृष्ण-विषयक पदावली साहित्य का प्रथम विकास राज सभाओं में हुआ। लक्ष्मण सेन तथा मिथिला के राज दरबारों के पारस्परिक सम्पर्क ने इस शैली के विकास-प्रसार में विशेष रूप से योगदान दिया। पठानों के शासन काल में गौड़ राजदरबार में व्रजबुली में चैतन्य के बाल्यकाल तक की कथायें प्रचललित थीं। तत्पश्चात् पदावली में कीर्तन, गीति-कविता व संगीत तत्व के समावेश से एक नवीन प्रकार के भक्ति-काव्यरूप की प्रतिष्ठा हुई। श्रीखण्ड में रघुनन्दन तथा खेतुरी मे नरोत्तम दास के प्रयत्न से नूतन राग ताल से समन्वित होकर

पदावली का वैष्णव सभाओं में प्रयोग संकीर्तन रूप में होने लगा। बंगाल की वैष्णवभक्ति परम्परा में पदावली में वर्णित कृष्णलीलागानविधा का विकास दो धाराओं में हुआ—(क) कृष्ण की व्रजलीला विषयक पद (ख) राधाकृष्ण की नित्य लीला-विषयक पद।

नित्यलीला विषयक पद सम्प्रदाय विशेष यथा श्री निवास सम्प्रदाय, नरोत्तम सम्प्रदाय तथा श्री खण्ड सम्प्रदाय से प्रभावित रहे हैं। रामचन्द्र कविराज श्रीनिवास सम्प्रदाय के विशिष्ट पदकर्ता थे। रघुनन्दन ने विग्रह उपासना में कीर्तन को अनिवार्य भक्ति साधन रूप में स्वीकार किया था। नरोत्तम ने वैष्णव-महोत्सवों पर कीर्तन गान को विशेष महत्व दिया था। बंगाल की वैष्णव भक्ति में श्रीनिवास आचार्य और वीरचन्द्र ने अष्ट प्रहर संकीर्तन परम्परा की स्थापना की।

तुर्कों के आक्रमण के आरम्भिक दिनों में बिहार व बंगाल के बौद्ध व ब्राह्मण पण्डितों ने मुख्य रूप से नेपाल की तराई में आश्रय ग्रहण किया। चौदहवीं शताब्दी में मिथिला के राज्यच्युत राजा हरिसिंह (या हरिहर सिंह) ने भी नेपाल की तराई में ही शरण ली थी। यहां मैथिली व बंगाली ब्राह्मण पण्डितों का समागम हुआ। बंगाली ब्राह्मणजनों को यहाँ राजगुरु पद प्राप्त था। नेपाल राजसभा में संस्कृत प्राकृत तथा लौकिक तीन भाषाओं की मिश्रित नाट्य रचनाओं का विशेष समादर था। लौकिक भाषा नेवारी (नेपाली) बंगला व मैथिली मिश्रित थी। नेपाल में रचित सर्वापेक्षया प्राचीन नाटक धर्म गुप्त कृत 'रामाङ्क-नाटिका' है। यह कृति संस्कृत, प्राकृत तथा लोक भाषा में रचित है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नेपाल के राजा यज्ञदेव मल्ल की मृत्यु पर उनके दोनों राजपुत्रों ने राज्य को दो भागों में बाँट लिया—उत्तर नेपाल व दक्षिण नेपाल। उत्तर नेपाल की राजधानी काठमाण्डू (काठमांडो) तथा दक्षिण नेपाल की राजधानी भातगाउँ (भक्त ग्राम, या भक्त पुर) हुई। कालांतर में एक और राज्य केन्द्र ललितपुर (पाटन) में स्थापित हुआ।

भातगाँव में त्रैलोक मल्ल के राज्यकाल (सोलहवीं शताब्दी के अन्त व सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ) में रचित-एक 'कृष्ण-लीलानाटक' मिलता है। इसके पद गेय हैं और उनकी भाषा बंगला-मिश्रित मैथिली है। ये पद रामचन्द्र और वीर नारायण द्वारा रचित हैं। कुछ पदों की भाषा शुद्ध बंगला है। त्रैलोक्य मल्ल के पुत्र जगज्ज्योति मल्ल के संरक्षण में 'हरगौरी' नाटक लिखा गया था। इनके प्रपौत्र जितमित्र मल्ल ने 'मदालसा-हरण' और 'गोपीचन्द्र' नाटक की रचना की थी।

श्री निवासाचार्य तथा रामचन्द्र कविराज के प्रभाव से मल्लभूमि और उससे सम्बद्ध विस्तृत भूखण्ड के अधिपति वीरहम्बीर सपरिवार श्री निवास के शिष्य हो गए थे। वीर हम्बीर की राज सभा में वैष्णव शास्त्र, साधना और कीर्तन-गान समाहृत हुआ। वे स्वयं पदकर्त्ता थे। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में जो पद रचे गये हैं, उनमें लौकिक श्रृंगार का समावेश मिलता है। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में वैष्णव कवियों में अनुवादक रूप में यदुनन्दन दास सर्वाधिक दक्ष थे। उनके द्वारा अनुवादित अनेक पद कीर्तनगान रूप में समाहृत हुए। उन्होंने स्वतंत्र पदों की भी रचना की। श्रीनिवास आचार्य के शिष्य राधावल्लभ चक्रवर्ती ने धारावाहिक कृष्ण-लीला-पदावली की रचना की। भक्त तथा विदग्ध पण्डित विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा संकलित 'क्षणदा-गीत-मंगल' प्रथम विशुद्ध पदावली चयनिका है। गौड़ीय वैष्णव भक्ति में नाम संकीर्तन और लीला का ही महत्त्व है, यही उसकी पहचान भी है।

प्रकाशित-अप्रकाशित पदावली ग्रंथ

पदावली—चंडीदास, गीतावली—राय रामानन्द, संगीत माधव—प्रबोधानन्द सरस्वती, पदावली—मुरारी गुप्त, पदावली—श्रीमद् वृन्दावन दास, पदावली—श्री कृष्णदास कविराज, पदावली—नरहरि सरकार ठाकुर, धमाली—लोचनदास ठाकुर, पदावली—श्री रामानन्द वसु, पदावली—वासुदेव-घोष, पदावली—वंशीवदन ठाकुर, पदावली—नयनानन्द, पदावली—देवकीनन्दन दास, पदावली—यदुनन्दन व यदुनाथ दास, पदावली—श्री गोपाल भट्ट, पदावली—कवि कर्णपूर, पदावली—श्री ज्ञानदास, पदावली—बलराम दास, पदावली—श्रीनिवासाचार्य, पदावली—श्री नरोत्तमदास ठाकुर, पदावली—दुःखी कृष्णदास, पदावली—गोविन्द कविराज, पदावली—गोविन्द चक्रवर्ती, पदावली—राजा वीर हम्बीर, पदावली—राय बसन्त, पदावली—कवि शेखर, पदावली—चमूपति, पदावली—श्रीवल्लभ दास, क्षणदा गीतचिन्तामणि—हरिवल्लभ, गीतावली—घनश्यामदास कविराज, पदावली—जगदानन्द, पदामृत-समुद्र—राधामोहन ठाकुर, पदकल्पतरु—वैष्णवदास, गीतचन्द्रोदय—घनश्याम दास व नरहरि चक्रवर्ती, रसकल्पवल्ली—रामगोपालदास, रसमंजरी—पीताम्बरदास, नायिकारत्नमाला-चन्द्रशेखर व शशिशेखर, कीर्तनानन्द—श्री गौर सुन्दर दास, संकीर्तनामृत—श्री दीनबन्धुदास, पदरससार—श्री निमानन्द दास।

पद रत्नावली-सतीशचन्द्र राय, कीर्तनानन्द-गौरसुन्दर, गीतचन्द्रोदय-नरहरि चक्रवर्ती, गौरपद-तरंगिणी-जगद्बन्धु भद्र, गौरांग-पदावली-दीनबंधुदास, पदकल्पलतिका-गौरी मोहन दास, पदचिन्तामणिमाला-प्रसाददास, पदरत्नाकर-कमलाकान्तदास, पदसमुद्र-बाउल मनोहरदास, गीतामृत-गोविन्ददास, दण्डात्मिकाप्रणाली-कवि शेखर, गोपालकीर्तनामृत-कवि शेखर, श्रीकृष्ण कीर्तन-बड़ुचण्डी दास,

रागतरंगिनी (पद संकलन) तथा चण्डीदास पदावली—सम्पादक-विमानबिहारी मजुमदार, बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।

गोविन्ददासेर पदावली—प्रकाशक-वसुमती साहित्य मन्दिर, कलिकाता।

पदकल्पतरु (१-५ खण्ड)—सम्पादक-श्री सतीशचन्द्रराय, बंगीय साहित्य परिषद, २४३।१, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

पदकल्पतरु—विक्रम पुरान्तर्गत संशोधन—सं० कालीमोहन विद्यारत्न, भारतपुस्तकालय, ११७, चितपुर रोड, (सन् १३२१ साल) कलकत्ता।

श्री श्री गौड़ीय वैष्णव साहित्य—प्रकाशक हरिदास-हरिलाल कुटीर, श्रीधाम, नवद्वीप।

वैष्णव-महाजन-पदावली—सम्पादक-सतीश चन्द्र मुखोपाध्याय, प्रकाशक-वसुमति साहित्य मन्दिर, कलिकाता।

विद्यापति-चण्डीदास ओ अन्यान्य वैष्णव महाजन गीतिका — तृतीय मुद्रण, देव साहित्य कुटीर।

गौर-पद-तरंगिणी—सम्पादक-मृणाल कान्ति घोष, भक्ति भूषण, प्रकाशक बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, १३७१ साल।

वैष्णव-पद-लहरी—प्रकाशक-बंगवासी कार्यालय, १३१२ साल।

गौरांग विजय (भुवन-मंगल)—मालाधर बसु रसमञ्जरी—यशोराज खान के पद।

गौर चन्द्रिका (चैतन्यविषयक पदावली) गौरांग विषयक पदावली वैष्णव साहित्य में 'गौर-चन्द्रिका' नाम से प्रसिद्ध है। कवियों ने चैतन्यचरित के आधार पर जिस प्रकार चैतन्य-जीवनी-काव्य की रचना की, उसी प्रकार पदकर्ताओं ने अपने पदों का उपजीव्य चैतन्य--जीवनी को बनाया। इसमें रागानुगा भक्ति तत्व तथा वैष्णव साधना का संयोजन है।

चैतन्य-समसामयिक वैष्णव पदावली

(क) चैतन्य विषयक पदावली।

(ख) राधाकृष्ण विषयक पदावली।

चैतन्य विषयक पद--

(क) चैतन्य वन्दना विषयक पद, जो गौरचंद्रिका में अंतर्भुक्त हैं।

(ख) चैतन्य की बाललीला, यौवन लीला व संन्यास-ग्रहण विषयक पद। वासुदेव घोष व मुरारी गुप्त इस धारा के प्रमुख भक्त कवि हैं, नरहरि शिवानन्द ने नागरी-भाव सम्बन्धी पदों की रचना की है।

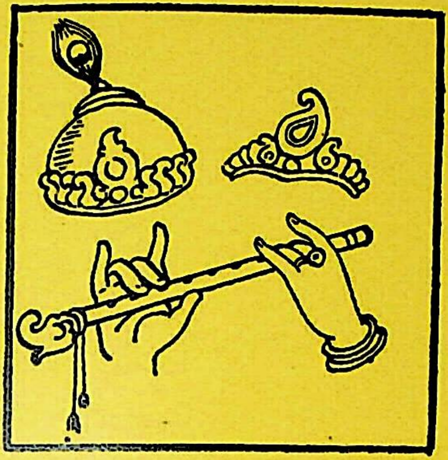

नामानुक्रमणिका

ग्रन्थानुक्रमणिका

नामानुक्रमणिका

अंकन्ना कवि ३२४
अंकलंकन १०९
अंकिनीडु १७१
अंगम्माल ७२
अंबावाडल २
अकबर ३५९,५२८
अक्कम्मा २४४
अक्कयामात्य २८७
अक्कलम्म २११
अक्कलाम्ब २१६
अखिलचन्द्र ठाकुर ५७९
अग्रद्वीप ७०२
अच्चमाम्बा १७४
अच्युत ६८,५२५
अच्युतप्प नायकुडु २८२
अच्युतपुरी २७५
अच्युत रामय्या ३०१
अच्युतानन्द ६५९,६९६,६९७,७१३
अणिवरंगत्तु ५१
अण्णादुरै ३६
अण्णामलै चेट्टियार १०३
अत्तुक्काडु वेंकटकृष्ण अय्यर १९
अत्तुषाय् ९१
अथर्वणाचार्य १५३,२१८,२३८
अद्वैत ४७४,७०४
अद्वैताचार्य ५२५,५४८,६१९,६४९,६७४
अधिवीरराम पांडियन १०,२१
अनंतदास ३४७
अनन्तनाथ राय ५३०
अनन्त पण्डित ५२८
अनन्तपुर १३२
अनन्तपुरी ५२८, ५२९
अनन्तराजु २०४,२५६
अनन्तराम दीक्षित ११
अनन्तराय ५२६,५२९
अनन्तवर्मन ५२९
अनन्तसूरि ११५
अनन्ताचार्य ५२५,५२६
अनन्तामात्युडु १५४
अनन्ताष्वान् १०८
अनवेमा रेड्डी ३०५,३१५
अनिरुद्ध ४७२,५२९,७०७
अनुकूलचन्द्र चक्रवर्ती ५२९;५३०
अनुपम ७०७
अनुपम वल्लभ ५३२
अनुतुषाय १११
अन्नदा प्रसाद ५५५
अन्नमय्या २३९
अन्नय्या कन्दाल भावनाचार्य २२२
अन्बिल ७०
अपूर्वचरण (अद्वैतदास बाबाजी) ५३४
अप्पय्यामात्य १६६,१८७
अप्पलराज १७१
अबुल हसन २४५
अब्जनाथ ओझा ३३२
अब्दुल करीम ५५,६१
अभयचरण ६३७
अभयदासी ६७८
अभिराम गोपाल ५३५,५६०
अभिराम दास ५२८,५३५,५३६
अमरनाथ सेन ५३५
अमरनामात्य २४८
अमरसिंह १८६,४२९
अमरावती १३७

अमरीका ६३८
अमरेन्द्र, डॉ० २८६
अमीनख्याल ३५५
अमीरदास ३५२,३५५,४२४,४४२
अमृतमयी देवी ६९४
अमृतसर ३६२,३७२,३९०,३९५,३९९,४०८,४१५,
 ४१६,४२२
अमोघपण्डित ५३६,५३७
अमोलकराम शास्त्री ५८४
अम्बरगीर योगी ३४०
अम्बिकाचरन ब्रह्मचारी ६८८
अम्बिकापति ३२
अम्मणि अम्माल ७२
अम्मलाम्बा २७३
अम्माल ६२
अयोध्या ११७,६७६
अयोध्यादास पण्डित ५५
अय्यन्न मंत्रि १६६,२७१
अय्यल राजु तिप्पय्य १५५
अय्यल राजु नारायणमात्युडु १५६
अय्यावाल १२३
अरंगनाथ ११८
अरणा ११५
अरविन्द गजुर्यालि ३३४
अरविन्द घोष ७३,१२७
अर्रि ५७९
अरियप्प पुल्वार १०,१८
अरुणाचल भट्टर १८
अरुलमारि ४७
अरुलालदासर ९,२२
अर्काट ७२
अर्जित ८३
अर्जुनदेव ३९४,४५९
अलमस्त ३५५
अलिमेलक्का ३२१
अलिय रामराजु १८२,३२५
अलियराम रायलु २८७
अलीरजा ५४६
अल्लमराजु रामकृष्ण कवि १५६
अल्लसानि पेद्दन्न १५६,१७६,२५१
अल्लाडवेमा रेड्डी ३१४
अल्लि अरसाणि मालै ८३
अवचि तिप्पय्य ३१५
अवतार सिंह 'अरपन' ३५७
अविराम ५६०
अव्वारि सुब्रह्मण्यम् शास्त्री २८५
अशोक १३३३,४८१
अश्वघोष ४७४
अश्वमेधयाग अम्मानै १०,१८
अषगन् पेरुमाल् २१
अषगरकिल्लै-विडु-तूदु १०
अषगर कोविल ११७
अषगरन्दादि ९५
अषगरमलै २६
अषगियमणवालजीयर १०,२३
अषगिय मणवाल नायनार् ११५
अष० सा० मुत्तैया ३५
अषुगिय मगवालन ५९
अहनानूरु ९९
अहाता अखाड़ा ब्रह्मबूटाजी ४०८
अहोबल नरसिंह स्वामी २५८
आकुवीटि पेद वेंकटाद्रि २४८
आक्कियाष्वान् २८
आगरडीह ५९८
आगरा ६७६
आचन्ट सांख्यायन ३०१
आचार्य नंबी ५
आचार्य नागार्जुन १३७
आण्डान् ४३
आण्डाल २,६,७,८,१३,१६,२४,९०,१४४,२७७
आत्माराम ६३१

आदित्तन् ३१
आदिलक्ष्मम्मा २६७
आदेम्मा २८५
आनंदघन ३४७
आनन्दगोत्रज १४२
आनन्दचन्द्र ५५२
आनन्ददास ५३७
आनन्दपुर ३८१
आनन्दराम ३५४,३५८
आनन्दवर्धन ४७६
आनन्द सागर ५६०
आन्ध्र विष्णु १७९
आबादी भगतसिंह पुरा ४१६
आमातपुर ३८९
आमुक्त-माल्यदा १६८, १८०,१९७
आमोदपुर ६८१
आरुद्र,डा० १४०,१६२,१६६,१६८,१७०,१७४,१७६,
१८१,१८२,१८७,१९५,२२२,२३३,२४९,
३०६,३२५
आर्काट ४८
आलम कवि ३४४,३५९
आलवंदार पे॰माल पिल्लान् १०
आलवन्दार ४,२८,२९,४४,१०८
आलवार-तिरुनगरी ६४,९६
आलि नाडर ४६
आष प्रभु १२७
इन्दिरस ३३०,३३३,३३६
इब्राहीम फ़ादुबा १६८
इमाखेल ३३४
इलंगोवडिगल २,४,१५
इलादेवीय २७७
इलियट ७३
इलियासशाह ४८५
इवटूरि सोमनाथ २६०
इस्कन ३३१
ईदुल पल्लि भवानीश ३०२
ईशान (प्रथम) ५३८
ईशान (द्वितीय) ५३९
ईशान नागर ५२५,५३९,५८५,६११
ईश्वर दीक्षित १५७
ईश्वरपुरी ४९०,५०३,५२९,५४०,५४७,५८२
ईश्वरफणिभट्टु १५८
ईश्वर भट्टर ७०
ईश्वर भट्टु १५८
ईश्वरमुनि ४०
ईसरदास उदासी ३६२
उज्जलसिंह ४२१
उज्जला ७१४
उड़ीसा ६८९,६९९,७०८
उड़ैयनंगै ६८
उत्तमगढ़ ३६२
उत्तमसिंह 'तेज' ३६२,३६४,३६५
उदयादित्य ५४१
उद्धवदास (प्रथम) ५४१
उद्धवदास (द्वितीय) ५४३
उद्धारन दत्त ५४३
उद्धारनपुर ५४३
उद्योतन १३१
उन्नवपुरम् १५९
उन्नव पोगानन्दुडु १५९
उपकेशी ३
उपेन्द्रनाथ सिंह ६८५
उपेन्द्र मिश्र ५८२
उमर खय्याम २३०
उमादास ३४४
उमादास (भवानीदास) ३६५
उमापति ४८३
उमापति उपाध्याय ४८२,४८६,४८८
उमापतिधर ४७१
उमेश लाहिड़ी ५३०
उय्यक्कोण्डार ३०
उरंगाविल्लि १०९,११०,११२

उरैयूर ८४,१०९
उ० वे० स्वामीनाथय्यर १०२
उशाईन ग्राम ५४६
उषसि ग्राम ५७७
ऋषिकेश ११७
एच० एम० डूरंड ६९५
एट्टयपुरम् १२५
एट्टुत्तोगै १४
एन० वेंकटराव ३०६
एनुगु लक्ष्मण ३०२
एम० जी० रामचन्द्रन ३६
एमिली ३६
एम्पेरुमान् १०८
एम्बान् १०८
एम्बार ३१
एरपोत सूरि १६१,१६३
एरिन्न १९२
एर्चुरि सिन्गन्न १६०
एर्रन्न १४४,१४७,१५९,२०८
एर्राप्रगड १४७
एल्लन्न कामनार्य १९५
एल्लन्ना १६६
एल्लमन्त्रि १९०
एस० आर० रंगनाथन ३१५
एस० निवासाचार्य १२६
ऐतमाम्बा २४४
ओंगोलु १६०
ओमहरी ४२१
ओट्टक्कूत्तर ८४
ओड्डेपूडि पेद्दय १६४
ओरंगल ३३
ओरुगंटि सोमशेखर कवि १६५
ओरुगल्ल २६०,२६३
ओलेटि पार्वतीश्वर ३००
ओलेटि वेंकटराम शास्त्री ३२८
औरंगजेब २९४,३५९,३७८,३८६
औरियार ५२८
कंकंटि नरसिंह राजु १६५
कंकंटि पापराजु १६६,२०६
कंचलि वेन्कट हनुमन्तय्या १६७
कंठन् ८८
कंदराज १७४
कंदराड १७४
कंदालम दोड्डयाचार्य १९२
कंदुकूरि रुद्र कवि, १४९,१६७
कंबन ९,१८,३१,१२२
कंबनाडु ३३
कंबम् ३१
कंबम् मेट्टु ३२७
कंभम् पाटि नारपामात्युडु १६९
कंसनारायन ४८७
कंसारि मिश्र ५८५
कंसारिसेन ५४३
कज़िन्स २३०
कटक ४९०,५५२
कटवा ५२५,६१३,६५४
कट्टमन्त्रि रामलिंगा रेड्डी २४९
कट्टा वरदराजु १७०
कड़नमल्लै ९३
कडप्पा १३५,२०७
कडियम् २२०
कणिकण्णन ५०
कण्टक नगर ५४९
कण्डियूर १२१
कण्णदासन ११,१९,३५,३६
कण्णन पाट्टु १८,१२७
कदिरेशन चेट्टियार १०२,१०३
कद्रय्या ३२४
कनाई खुटिया ५४४
कन्दनामात्य २७३
कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु १५७,२२४,३२७

कन्दुकूरि वीरेश लिंगम् १६२,१७४,२०८,२२४,२३९,२४९
कन्नमाम्बा २५६
कन्नीरु २३२
कपिलर् २
कबीर २,९८,१३०,२०३,३०५
कबीरवाला ४०४
कमलनाभामात्य ३१४
कमलाकर ६७८,६८१
कमलाकर भट्टाचार्य ५२५
कमलाकान्त ६०९
कमलाक्ष ५२५
कमलाक्ष भट्टाचार्य ४७४
कमलाम्बिका ५६
कमाल ३४७,३५०
कमालदास ३६६
कम्पन्नगोपन ८२
कम्ममु मेट्टा ३२८
करतार ४०४
करतोया ५४४
करमनदास ३४७
करापर्ति १६१,१६२
करीमनगर ३०८
करीमुद्दीन ५४६
करुणाकरप्पेरुमाल १०६
करुणानिधि ३६
करुणामयदास ६२७
करुप्पकोनार १०५
करुश देश १३१
कर्णानन्द ५८१,६०४,६०६,६३१,६३६,६५३,६६४,६६५, ६९६,७०९
कर्नाटक १३१
कर्नूल ३१,१८७
कर्मसिंह ४१३
कलकत्ता ६३७
कलना ५८५
कलिंग १३२
कलुवे वीरराजु २२१
कल्याणरामस्वामी ८६
कल्याणसुन्दर मुदलियार् ५६
कल्लक्कुड़ि ३६
कवि कर्णपूर ४७३,४९३,५०१,६२२,६२८,६९४,७०३
कवि कर्पूर ५७०
कवि गजांकुश २६८
कवि जनाश्रय ३०६
कविजीवितमुलु १७६
कवि निहाल ३४४
कवियरसु कण्णदासन १३
कविरंजन ४१९,४९९
कवि राक्षस २०५
कविराज गोस्वामी ५१२
कविवल्लभ ५४४
कवि शेखर राय ५४४
कवि सोंधा ३४७
कवीन्द्र ५६०
कश्मीर ४१३,६९५
कसुवनामात्य १६०
कहलगाँव ४८६
कांचड़ापाड़ा ६००
कांचीपुरम् ४०,४९,९३,१०५,११५
कांदड़ा ५८६
कांदरा ग्राम ५९६
काकतीय प्रतापरुद्र १३२
काकर्ल २२८
काकिनाडा २३१
काकुनूरि यप्प १६८
काकुलम् १३४
काञ्चन-गढ़िया ६६४,७१४
काटोया ५७६
काठमाण्डू ३३,३३५,३३७,३३८
काठियाबाबा ७०६
कादिर ग्राम ६१०
कानुदास ५४५,५९१

कानु पण्डित ५४७
कानु फक़ीर ५४६
काञ्चनपल्ली ६२२
कान्तिमती देवी १०५
कान्हसिंह 'नाभा' ४१५
कान्हसिंह बंगा ३६७,३६९
काप्पियन ६०
कामकवि २६९
कामदेव नागर ५२५
कामय्या २२०
कामाक्षम्मा २०३
कामाक्ष्याम्बा १९२
कामिनी कुमार ७२०
कामिनी क़ुमार घोष ५५७
काम्यवन ७०६
कारियार ६८
कारैक्कुडि ३५
कार्तिक अधिकारी ७०६
कार्तिकेय ६३७
कालिदास १०,२५१,४७४
कालिदास गुजरांवालिया ३७०
कालिदास मिश्र ६४९
कालियम्माल १०५
कालेश्वर १३२
कावलप्पन् ४०
कावूरि येल्लय कवि १७१
कावेरियम्माल ३२
काशी ७३,५८३
काशीनाथ बसु ६६७
काशीनाथ मिश्र ६१०
काशीपुर ५३०
काशी मिश्र पण्डित ५८३
काशीराम ४५०,६९८
काशीश्वर ब्रह्मचारी ५४७
काष्ठकाटा ६०१
कासुल पुरुषोत्तम १७१
किडंबि अप्पुल्ला र११५
किडांबि आच्चान १०९
किशोरचन्द्र तिवारी ३५२
किशोरदास ३५४
किशोरदास (प्रथम) ५४७
किशोरदास (द्वितीय) ५४७
किशोरमोहन गोस्वामी ५९८
किशोरीदास ३७३,५४८,५७५
किशोरी मोहन ५३०
कीरत सिंह ३५४
कीरनत्थम् १०४
कीर्तिवर्मा १३६
कुंभकोणम् ६५
कुड्डिर देवी ४१५
कुड्डिरां ४१५
कुञ्जबिहारी ३९९,५३५
कुट्रालम् १
कुण्ड्रवर्द्धनकोट्टम् ४८
कुतुबन ४८६
कुन्जरा ग्राम ५८०
कुन्तलसातकर्णि १३५
कुन्दन मिश्र ३४४
कुपिल पाट्टु १२७
कुप्पम्माल १२६
कुबेर ५२५
कुबेर पण्डित ५४८
कुमार कुलोत्तुग ८३
कुमार डिन्डिम १५७
कुमारदेव ५३३,७०७
कुमार नगर ६६५
कुमार हट्ट ५३९,६०७,६८४
कुमुदवल्ली ४७
कुमुदानन्द चक्रवर्ती ५४८
कुमुदानन्द ठाकुर ५४८

कुम्भक ३
कुम्भकोणम ५१
कुम्भिला ७१८
कुरगन्टि सीतारामय्य १८६
कुर्रिजि १४
कुरुकूर ७०
कुरुक्षेत्र ३९६
कुलनगर ६२८
कुलशेखरालवार ६,८,१६,३६
कुलियाग्राम ६८२
कुलीन ६९१
कुलीन ग्राम ४९०
कुलैक्कादर १८
कुवलवाय मोष २१
कुशलंतर्क ५९५
कुष्टिया ५३१
कुसल्या ७१४
कूचा आचारजां ३९१
कूचि नरसिंहम् २३१
कूचिपूडि १८३
कूचिपूडि सिद्धेन्द्र योगी १७२
कूचिमंचि जग्ग कवि १७४
कूचिमंचि तिम्मकवि १७४,३०३
कूरत्ताषवान् ४०,७७,७८,१११,११२
कूरत्ताषवार् ५२,१०७
कूरम् ४०
कूरेशर दम्पति १०७
कृतिपति थेल्लमाम्बा २४४
कृतिपति विरुरि वेदाद्रि २२६
कृत्तिवास ओझा ४७२
कृपानन्दवारी ११
कृष्ण ७१३
कृष्णकान्त ५३९
कृष्णकान्त मजुमदार ५४३
कृष्णचरण चक्रवर्ती ७१९
कृष्णचरण गोस्वामी ५२८
कृष्णदास ३५४,३७०,४९३,५०१
कृष्णदास (सुवर्णं चित्रधारी) ५५२
कृष्णदास कवि १७६
कृष्णदास कविराज ४९०,५००,५०१,५०२,५०७,५१३,
५१४,५४८,५४९,५६८५,७१३
कृष्णदास दुःखी ५५१
कृष्णदासन ११
कृष्णदास बाबा ७०१
कृष्णदेवराय ४८,४९,१३६,१३९,१४४,१४५,१४९,१५६,
१६७,१७६,१७७,२२५,२२६,३२१
कृष्ण द्वैपायन व्यास ३२९
कृष्णध्वरि १८०
कृष्णन ४८
कृष्णनगर ५३५, ७१५
कृष्णनाथ सिग्देल ३३२
कृष्णप्रसाद ऐमी ३३२
कृष्णप्रेमी ११
कृष्ण भट्टारक १९५
कृष्णमंजरी देवी ३३१
कृष्णमाचार्युलु १८१
कृष्ण मिश्र ५२५
कृष्णमूर्ति शास्त्री ३१८
कृष्णम्बा १४५
कृष्णय्यंगार १०२
कृष्णय्यर १०९
कृष्णलाल ३७४
कृष्णशास्त्री २३१
कृष्णा २९५
कृष्णाजी २०१
कृष्णानन्द ५५२
कृष्णानन्द दास ६१५
कृष्णानन्द वागीश ४७३
कृष्णाम्बा १७८,२३९
केदारनाथ ३४१
केदारनाथ उपाध्याय ३४१
केदारनाथ भक्तिविनोद ठाकुर ५५२

केवलराम ३४७
के० वी० आर० नरसिंहमु २२९
केश २५६
केशव ३५५
केशव छत्री ४८५,६७२
केशवदास १८१
केशव भट्टाचार्य ४८५
केशव-भारती ५०३,५८२
केशवस्वामी २५६
केशीघाट ५७७
केसना २६०
केसरनाथ उपाध्याय ३३२
केसो ३४७
केसोदास (केशो-गुणी) ३७५
कैलाशचन्द्र सान्याल ६४२
कोकट १५७
कोटीश्वर ३१९
कोण्डपल्ली ३२६
कोण्डमम्बा १५६,१५८
कोदंडराम २८८
कोदण्ड रामय्य १८१
कोदण्डरामस्वामी ८६
कौदै २५
कोनमाम्बा ३२६
कोनम्मा २८४
कोनोटि रामराजु २२२
कोन्डयामात्य २४५
कोन्डवीडु २२३,३०५
कोन्डूरि यक्काध्वरि २४४
कोमन्टि गिरि ३०१
कोमलनाथ अधिकारी ३३२
कोक्कँ १०
कोलनपाल २८८
कोलाचलमु श्रीनिवास राव १८२
कोलिपाक एरंय्या ३२७
कोलिपाक येरंय ३२८
कोहमरी ४२३
क्रिशनदास ३४४
क्षेत्रय्या १७२,१८२,१८३,३२१
खड्गपुर ७१५
खड़दह ५०१,५३९,६८६,७०२
खण्डवल्लि २००
खण्डवामा मुकुन्द ५९८
खुबीराम ६६५
खुशहालराय ४४५
खुशालचन्द (खुशालराय) ३७८
खुशीराम 'आरफ़' (लाला) ३७९
खेतुरी ६१५,७०२
खेमकरन ३४७,३५०
गंगन २६४
गंगना १७४,२६१
गंगनाथ शर्मा ३३२
गंगनामात्य १७४,२५५
गंगनार्युडु १८६
गंगन्न १६०
गंगय्या २७०
गंगादास ६५२
गंगादास पंडित ५५३
गंगाधर ७४
गंगाधर भट्टाचार्य ७०२
गंगानारायण ५५३
गंगानारायण चक्रवर्ती ५४३,५५३
गंगाप्रसाद राय ५७८
गंगामाता गोस्वामिनी ६०२
गंगाराम ३४४,३७९
गंगैकोंड राजेन्द्र चोल १४१
गंजाम ३२७
गंडासिंह ४००
गजपति १७७
गजपति कपिलेन्द्र देव ४८८
गडेरहाटी ६१५
गणपवरपु वेन्कट कवि १८६,३१७

गणपवरम् १८७
गणेशसिंह बेदी ३८०
गण्डासिंह याचक ४५०
गदाधर ५२५,५२६,६१३
गदाधरदास ६२१,६५५
गदाधर पण्डित ५४२,५५३,६०१,६१०,६२६,६४०,६७६
गदाधर भट्ट ६८५
गद्वाल २१९
गमला ५५३
गया ५८२,६८९,७१५
गयासुद्दीन महमूदशाह ४८८
गरुड़ पण्डित ५५४
गली ऊठांवाली ४०८
गली तेलियां-वच्छोंवाली ३९९
गांधी बाजार ३९९
ग़ाजी ज़फ़र ख़ाँ ४७१
गाण्ड्लसंग १७८
गदयामात्य २५१
गिआनचंद ३४७
गिडुगु सीतापति १८४
गिरधरदास (प्रथम) ५५४
गिरि कवि ३१४
गिरिधारी दास ५५५
गिरिधारी प्रसाद ११
गिरिराज कवि २२८
गिरीन्द्रनाथ ५५५
गिलवाली ३९९
गुंटूर १३२,१३७,१८७,२१७,२५४,२६७
गुआखाड़ा ५२९
गुआलदास ३४७,३५०
गुजरात ४०८
गुजरानवाला ३७०
गुणराज उपाध्याय ३३३
गुणराज खान ४८,६१,४९०,६५६,६६७
गुणाढ्य ३१८
गुन्ट तिम्मन्न ३०७
गुन्टुपल्लि भास्कर १६८
गुत्तिदुर्ग २३९
गुनकारी ३४७
गुपालसिंह अरोड़ा ४०८
गुरजाड राममूर्ति १७६
गुरम्मा ३०३
गुरव कवीन्द्र २८८
गुरु अर्जुनदेव ३७५,३८१,३८६,४६५
गुरु आलवन्दार ४४
गुरुकै कावलप्पन् ४०
गुरु अमरदास ४२३,४५९
गुरुकेशर ९१
गुरु गोविन्दसिंह ३५९,३५४,३७४,३८१,४२८,४५८
गुरुजाड अप्पाराव ३२७
गुरुजाड श्रीराममूर्ति २४९
गुरु तेगबहादुर ३८१,३८६
गुरुदास ५७८,३८१
गुरुदासपुर ४४३
गुरु देवरिन् कुरल १२२
गुरु नानक ३४३,३७५,३७८,३६८,४४३
गुरुबख्श सिंह ४५४
गुरु रामदास ३८१
गुरु सन्तदास ३९३
गुरुसहाय कुंदरा ४६१
गुरु हरगोविन्द सिंह ३८६
गुरंम् जाषुवा १८८
गुलाब ३८६
गुलाबमल्ल ४३७
गुलाबराय ३७५
गुलाबसिंह ३८६,४४२
गुलाब हुसैन ३८८,३८९
गोइंदवाल नगर ४२३
गोकनामात्य २४८
गोकुल ११७
गोकुल कविराज ७०३

गोकुलचन्द्र (गोकुलानन्द) ५६२
गोकुलचन्द्र चट्टोपाध्याय ६०१
गोकुलदास ५६०,६१६
गोकुलानन्द ५६०,५६१
गोकुलानन्द चक्रवर्ती ७०३
गोकुलानन्द सेन ५६२
गोट्टुमुक्कलग्राम २३०
गोदादेवी १७९
गोपाल ५२५,६९४,७१३
गोपाल अय्यर १८
गोपालकृष्ण भागवतर् ४१
गोपालकृष्ण शास्त्री १२३
गोपाल चक्रवर्ती ६९७,६९९,७०३
गोपालदास ५८७
गोपालदास (प्रथम) ५६३
गोपालदास (द्वितीय) ५६४
गोपालदास (तृतीय) ५६४
गोपालदास (चतुर्थ) ५६५
गोपालपुर ६१५
गोपालपुरम् ३२७
गोपाल भट्ट ४९२,५००,५०४,५६५,५८२,७०४,७०५
गोपाल भागवतर् ४१,४२
गोपाल भागवतर् नारायण ४१
गोपाल भागवतर (गणंचेरि) ४२
गोपाल भागवतर (वरहूर) ४२
गोपालसार्वभौम ५९५
गोपालसिंह 'नवीन' ३५२
गोपीकान्त ५६६
गोपीकान्त वसु ५६७
गोपीनाथ ५९५,६८५
गोपीनाथ आचार्य ५३६,५३७
गोपीनाथदास ६८६
गोपीनाथमु वेंकट कवि १९०
गोपीनाथ सिंह ५६८
गोपीरमन कविराज ७०३
गोपीलाल ६४८,७१७
गोयास ७१८
गोरखनाथ ३३०
गोरन्तनानन्द ६१२
गोवर्धनदास ५६८
गोविन्द १०८,५५०
गोविन्द आचार्य ५७०
गोविन्द कविराज ५७०,५८७,६१६,६५३,७०३
गोविन्द गति ७०३
गोविन्दघोष ४९८,६४८,६६१
गोविन्द चक्रवर्ती ५७०,७०३
गोविन्द ठाकुर ५९६
गोविन्ददास ३५४,३८९,४९८,५४१,५५५,५७६,५८६,५९०
गोविन्ददास कर्मकार ४९४
गोविन्ददास कविराज ४७८,४९५,५७०
गोविन्ददास चक्रवर्ती ५४८,५७५
गोविन्दपुरम् ४२
गोविन्दप् पेरुमाल ३१
गोविन्द बहादुर ३३२
गोविन्द भट्ट ४८५
गोविन्दराज ६३१
गोविन्दराम ५६५,६२८
गोविन्द वर्मा १३६
गौड़ेश्वर (हुसेन शाह) ५३४
गौरकिशोर शिरोमणि ५७६
गौरगोविन्ददास ५७८
गौरन्चरणदास ५७९,५८०
गौरदास ५८०
गौरनमन्त्रि १५३,१९०
गौरमोहन दे ६३७
गौरसुन्दर ५८१
गौरहरि ७१५
गौरांगदास (प्रथम) ५८३
गौरांगदास (द्वितीय) ५८४
गौरांगदास (तृतीय) ५८४
गौरांगदास (चतुर्थ) ५८४

गौरांगदास (पंचम) ५८४
गौरांगदास (नर्तक गोपाल रामचन्द्र) ५८५
गौरांगदास(नव) ५८५
गौरांगप्रिया ५५७
गौरांगिया ६८५
गौरी ३८६
गौरीदास पंडित ५८५
गौरी देवी ७१४
गौरीशंकर शर्मा ३३९
ग्रीवाल ४११
घंटन २०४
घंटसाला १३७
घटिकाद्रि नरहरि १९२
घनकृष्ण मुखोपाध्याय ५७६
घनविष्णुवु २११
घनश्यामदास कविराज ५८७
घनश्यामदास चक्रवर्ती ५८९
घनुपुर-काले ४६१
घनैयालाल मौजी ३९०
चंद ३४७
चंदरहरी ४२३
चंदसखी ३४७
चक्रधर 'बेज़र' ३९१
चक्रपाणि ५६३
चक्रपाणि चालिसे ३३२
चक्रपाणि चौधुरी ५६४
चक्रपुरि राघवाचार्य १९१
चक्रवर्ती तिरुमहन १९
चक्रशाला ६२६
चक्रा ६१६
चटगाँव ४८५,६२६
चण्डवर्मा १३६
चण्डीदास ४९१,५९०,५९५,७१०
चण्डीदास (विच्छिन्न पदकर्ता वैष्णव कवि) ५९५
चण्डीदास कविराज ५९०,५९४
चतरदास ३९३
चतुर्घन १९४
चतुर्भुज ४८३,५४४
चदलवाड मल्लन्न १५१,१९२,२१४,२१५,३२४
चनाब ३८८
चन्द्रगिरि ३०५
चन्द्रनामांक राम ३२७
चन्द्रन् स्वर्गी ८४
चन्द्रम्मा २२०
चन्द्रवर्मन ४७१,४७२
चन्द्रशेखर आचार्य ५९५
चन्द्रशेखरदास ५९६
चन्द्रशेखरप् पुलवर् १०५
चन्द्रश्री १३५
चम्पक् कोनार् १०४
चम्पति राय ५९७
चरनदास ३४७
चरिगोण्ड १९३
चरिगोण्ड धर्मन्न १९३
चल्लपल्लि ७४
चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री १९४
चाँदपुर ७१६
चाँद-बीबी १८२
चाँपा ठाकुर ५३४
चाकदह ६००
चाखन्दी ७०२
चागन्टि शेषय्या २०३,२२२,२२४,२३३,२३४,२४९,३०६, ३२५
चाटूगड्डवाडु १८८
चातनार २,१५
चापाल गोपाल ६०७
चारुदेवी १३९
चिंतलपूडि एल्लन्ना १४९,१६५
चिंतलपूडि येल्लनार्य १४५
चिट्टी-शेख ४६६
चिताघटी ५७६
चित्तूर १८३

चिदम्बरम् १८३
चिदानन्द २६०
चिन ओड्डे पूडि १६४
चिन्तपुरनी ४३२
चिन्तलपूडि १९५
चिन्तलपूडि एल्लनामात्य २७०
चिन्तलपूडि एल्लनार्युडु १९५
चिन्तल पूडि येल्लन्न १४९
चिन्नपल्लै ३२८
चिन्नम्माल ५४
चिन्नस्वामि अय्यर १२५
चिन्नादेवी १७७,१७८
चिरंजीव सेन ५७०,६६५
चिर्रावूरु कामेश्वर राव १९९
चिलकपाटि रामानुज शर्मा १९९
चिलुकूटि नारायण राव १९२
चुंपुंड़ा ६२६
चूड़ामणिदास ४९३
चेंगलपट ४८
चेंगलपट्टु ३०९
चेंडविल्लि ११०
चेडपुर ३६७
चेन्मल्व काल कवि १४५
चेन्गल्व काल्य्या २०१
चेन्जि २२१
चेन्तामरै कण्णन ६८
चेन्नकेशनार्य ३२५
चेन्न केशव स्वामी १५७
चेन्नपट्टनम् २१९
चेन्नमल्लु ३१४
चेन्नमाम्वा १६८
चेमकूर वेन्कट १८०,२०२,२१६,३०५,३२३
चेमकूरि वेंकट कवि १४५
चेम्पात्ताल् १०४
चेर ३८
चेल्लपिल्ल वेन्कटेश शास्त्री २२०
चेल्लम्मा १२५
चेव्वप्प नायकुडु २८२
चेव्वै चूडुवार ३,१८,४३
चैतन्यदास ६३६,६६६,६९१
चैतन्यदास बाबा ५७८,५७९,६४८
चैतन्य महाप्रभु, गौरांग २७६,४७३,४७९,४९०,४९१,
    ४९२,५२५,५३७,५६०,५८२,६२५,६७७
चैतन्यानन्द ७१०
चोक्कनाथप् पुलवर् १०५
चोक्कनाथर ८१
चोक्कराजु १५७
चोल प्रदेश ५१
चोलराज कुलोत्तुंगन् ३२
चोलर्लिंगपुरम् २८७
चोषनाडु ५७
चौक परागदास ४०८
चौक पासियाँ ३९१
चौडप्प २०४
चौधरी आतमाराम मिगलानी ४०४
चौसा ५६२
छकड़ि चट्टोपाध्याय ६८२
छज्जू भगत ३९४
छबीलदास ३४७
छयगाँव ७१७
छविलाल पालपाली ३३२
छातना ५९१
छोटा नागपुर ६७६
जंगीपुर ७१०
जक्कन्न २०५
जगत्बन्धु भद्र ६८८
जगदानन्द ५८३,६४०
जगदानन्द ठाकुर ५९८
जगदानन्ददास ५३४
जगदानन्द पण्डित ६००
जगदानन्द राय ४७६,४८५
जगदीशदास ५७९

जगदीश पण्डित ६००
जगदीश बाबा ६४८
जगद्‌वंधु ५७७
जगद्‌बन्धु तर्कवागीश्वर ७१७
जगद्‌भट्टाचार्य ५५२
जगन्नाथ ७१७
जगन्नाथदास (प्रथम) ६०१
जगन्नाथदास (द्वितीय) ६०२
जगन्नाथदास बाबा ५८०,७०१
जगन्नाथपुरी ७३,६४२,७०६
जगन्नाथ मिश्र ४७४,५८२,६५२
जगन्नाथ-वल्लभ ४७८,६८०
जगन्नाथ सेन ४८५
जगमाल ४५५
जगराय ३८६
जग्गन १७४
जग्गय्यपेटा १३७
जनक २४
जनकदुलारी ३९५
जनार्दन ६२०
जनार्दन मन्त्रि ३२०
जन्नमन्त्रि २०५
जन्नमन्त्रि शेषाद्रि शर्मा २०६,२४२
जन्नाड ३२०
जमालपुर ७१५
जयकृष्णदास ६०२
जयदेव ३४०,४७१
जयन्तिःरामय्या २१४,३२४
जयभगवान गोयल ३५२
जयभूपतीन्द्र मल्ल ३३२
जयरणजीतमल्लदेव (राजा) ३३२
जयराम वंद्योपाध्याय ६२५
जयवर्मा १३५
जयसिंह १३६
जयानन्द ४९०,४९३,५९०,७१४
जयेन्द्रसरस्वती, स्वामी ८६
जशोहर ७०१
जस्सासिंह ४६४
जहाँगीर ३८६,३९४,४६५,४६९
जातिदास ३४४
जातिदास (जातिराम) ३९६
जानको ५२५
जानकी अम्माल १०२
जानकीदास (जानकीरमनदास) ६०४
जानकीरामदास ६२७
जानकीवल्लभ चौधरी ६०४
जानम्मा २५५
जालंधर ३६७,३७८
जालना २७०
जाह्नवी ठाकुरानी ६६६,७०३
जाह्नवी देवी ४८०,५०१,५८६,६०५,६१९,६२१,६२४,६३०,६४७,६८६,७०४
जींद ४५५
जीतराम ३५५
जी० नागय्या २४२
जी० मोहन फुर्ता ३९९
जीयर स्वामी ६५
जीयर स्वामी पेरियनंबी १२२
जीव (विलास-मंजरी) ५००
जीवगोस्वामी ४७३,४८०,४९२,५०५,५०७,५११,५२२,५२३,५४९,५६४,६०५,७०४,७०५
जीवन ३४७
जीवनदास ३७८
जे० पार्थसारथी १००
जेसोर ६९४
जैं गुपाल गोसुआमी ३४७
जैदिआल ३७०
जैसोर ६७५,७१६
जोगम्मा २६९
जोगिन्द्रपाल ३९१
जोगी बालक्रिशन ३४७
जोदड़ी ४०९

जोघ ३५९
जोफलाई ५९८
जौगड़ ४८१
ज्ञानचन्द घवन ३९९
ज्ञानचन्द सचदेवा ३९९
ज्ञानदास ३५४,५८६,६१६
ज्ञान मुखर्जी ७१७
ज्योतिप्रसाद गौतम ३३२
झामपुर ५४९
झारखंड ६७६
झेलम ४११,४४६
टंगुटूरु २१२
टहकन ३४७
टहिर्लसिंह (बाबा) ४२३
टालमी १३२
टि० के० चिदम्बरनाथ मुदलियार १२२
टेकुमल्ल रंगशायी २०६
टेला वैद्यपुर ५४३
ठाकुर ४०४
डलवाल ४४६
डालमियापुरम् ३६
डेरा बाबा नानक ४४३
ढाका ६६१,७१७
तंजनगरमु तेवप्पेरुमाल्लय्या २०७
तंजम्माल १०५
तंजाऊर ३१,४३,४८,५४,६५,७४,९८,१२१,१४५,१८०,
२२१,२७६,२८१,३२३
तंवूकान ३२
तपन मिश्र ६५८
तपेविघायना ५३२
तमिलनाडु ८३
तम्मन्न शास्त्री २३१
तरिगोण्ड बेंकमाम्बा २०७
तरिगोण्डा २०७
तर्कपंचानन ५९५
तलवण्डी ३६२
ताजपुर ६७६
ताडेपल्लि पानकाल राय कवि २०७
ताण्डवराय ९९
ताताचार्यं २२५
तामरपल्लि तिम्मय्य २०८
तामलुक ६८४
ताराकिशोर ७०६
तारापद मुखर्जी ६८६
तारापुर ७१५
तालखाड़ी ५७९,६७५
ताल्लपाक २०९
ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु १५७,२०९
ताल्लपाक चिन तिरुमलय्या २१३
ताल्लपाक चिन तिरुवेन्गल नायुडु २१४
ताल्लपाक चिन्नन्न १५१,२१४,३२६
ताल्लपाक चिन्नन्न द्विपद २१४
ताल्लपाक तिम्मक्क १४९,२१५
ताल्लपाक नरसिंगन्न १५७
ताल्लपाक पेद तिरुमलय्या २१३,२१४,२१६
ताहिरपुर ४८७
तिंगलूर १०४
तिक्कन्ना १४४,१४६,१५३,१५९,१६९,२१७
तिप्पय्य १५५
तिप्पाम्बा १७६,१७७
तिम्मक्क २११,२३९
तिम्मचार्यं १७४
तिम्मनामात्याग्रणि १९३
तिम्मन्न २३९
तिम्मम्मा ३२७
तिम्मय्य २०८
तिम्मय्य नायकुडु १७६
तिम्मय्यामात्य २३५
तिम्मरसु १७७
तिम्मराजु १५१,२८४
तिम्मा नायकुडु १७६

तिम्मापुरम् २७०
तिम्माम्बा २३६
तिम्मावज्झल कोदण्ड रामय्या १८१,२१०,२१५
तिरमलराज्य ५२९
तिरुय्यूरु २२८
तिरवाट्रियूर ३२
तिरहुत ४८६, ४८८
तिरुकुरुगूर २७
तिरुकोष्टियूर नंबी ४,४४
तिरुक्कच्चि नंबी १०५
तिरुक्कणमंगै ४४
तिरुक्कणमंगैयाण्डान् ४३
तिरुक्कालूर ९६
तिरुक्कुरुंगुडि ६९
तिरुक्कुरुकूरि ६८
तिरुक्कुरैयलूर ४६
तिरुक्कोविलूर ५,८५
तिरुक्कोष्ठियूर ४४,९९
तिरुच्चि ३५,३६
तिरुच्चिराप्पल्ली ४१,४८,१२१,१२९
तिरुज्ञान सम्बन्धरजी ४७
तिरुत्तक्कदेवर १५
तिरुत्तणि १९२
तिरुत्तुरैप्पूंडि तालुका ९८
तिरुनलवेली २४५
तिरुनल्लिक्केणी १
तिरुनांगूर ४७
तिरुनेलवेल्लिप्पेरुमाल् २१
तिरुनेलवेली ९६,१०२,११७,१२५,२४५
तिरुपति कवुलु २१९
तिरुपति शास्त्री २१९,२२०
तिरुपुट्कुषि १०२,१०५
तिरुप्पति ६५,८२,११७
तिरुप्पति-तिरुमलै ९१
तिरुप्परंकुन्ड्रम् ६३
तिरुप्पल्लियेषुच्चि ५९
तिरुप्पाणालवार ८,४४,४६
तिरुप्पावै ६,२६,२७
तिरुप्पून्दूर्ति ७७
तिरुमंगै ४७,११५
तिरुमंगैआलवार ६,८,४६
तिरुमल तिरुवेंगलाचार्यं १७१
तिरुमलदेव रायलु २८७
तिरुमल नल्लाम् गोविन्द चक्रवर्ती १५४
तिरुमलरायलु १७८
तिरुमल श्रीनिवासाचार्यलु २८५
तिरुमलाम्बिक १७८
तिरुमलिशै आलवार पालारु १५
तिरुमलै ४८
तिरुमलै नंबी ३१
तिरुमलै नायक ९५
तिरुमलैप्पाड़लगल १२९
तिरुमलैयप्पर ४८
तिरुमलै हरिदास ४८
तिरुमषिशैआलवार ७,४९
तिरुमषिसै ४९
तिरुमषिसैपिरान ५०
तिरुमाल् इरुञ्चोलै मलै ३०
तिरुमुनैप्पाडि ११३
तिरुवडिमालै ११,१०३
तिरुवयिन्दिपुरम् ११५
तिरुवरंगततमुदनार् ९,५१,५२,१०७
तिरुवल्लिक्केणी ११५
तिरुवल्लुवर ५२,९७,१३०
तिरुवषुन्दूर ३१
तिरुवाय्मोलिप्पिल्लै ८२
तिरुवारुर ५४
तिरुवालन ४९
तिरुवालित्तिरु १११
तिरुवालिनाड्डु ४६
तिरु० वि० कल्याणसुन्दरम् ५४
तिरुविड़मरुदूर ४१

तिरुविडैमरुदूर १२०
तिरुविरुत्तम् ८
तिरुविलक्कुप्पिच्चन ६६
तिरुविशैनल्लूर १२३
तिरुविसनल्लूर ११९,१२०
तिरुवीचिप्पिल्लै १०
तिरुवोथिप्पिल्लै ६७
तिरुवेंकटत्तन्दादि ९'१
तिरु वेंकटमायोन् मालै १०३
तिरु वेंकटमाला ९५
तिरुवेंकडमुडैयार ४८
तिरुवेंगल ३०९
तिरुवेन्गलाचार्य १९२
तिरुवेल्ल्रै ३०
तिरु वेषुकूट्रिरुक्कै ६
तिलकर्मति लक्ष्मीनरसिंहमु २००
तिलमाधव देवकोटा ३३५
तिलिया बुधरी ६६५
तीर्थमाधव ३३५
तुख्खादेवी १७७
तुपाकुल अनन्त भूपालुडु २२१
तुरैतेवर १०१
तुलसीदास ३८७,६०६
तुलसीरामदास ६०६
तूतिकोरिन १२२,१२६
तूप्पिल पिल्लै ८७
तूप्पुल ११५
तेक्काष्विान ४४
तेजभान ४००
तेजभान महासिंघ ३४७
तेजासिह 'साबर' ४०२,४२९
तेनालि अन्नय्य कवि २२२
तेनालि रामकृष्ण कवि १४९,१५०,२२३
तेनालि रामकृष्णुडु २२२
तेनालि रामलिंग २४०
तेन्ड्रल् विडुतूदु १०
तेन्नवरायन् १०२
तेलंगाणा १८६
तोंडिरनाडु ४८
तोंडैमान ४८
तोण्डनूर १११
तोण्डरडिप्पोडिआलवार ६,२७,५७
तोताद्रि अम्मैयार ११५
तोरुदत्त १२२
तोलकाप्पियम् ९९
तोलकाप्पियर् १,११,१३,५९,६०
त्यागय्या १८२
त्यागराज २२८
त्रिचिरपुरम गोविन्द पिल्लै ९४
त्रिपुरा ४८९
त्रिलिंगलदेशम् १३२
त्रैलोक्यमल्ल १४५
त्रिलोचन वल्लभ १३५
थव्वमाम्ब २४८
थमलन २४८
थोली ग्राम २५६
थेन्डगन्डि २२०
थेर्रन २४८
थेल्लन्ना १५०
दग्गुपल्लि दुग्गन २८४,३१४
दण्डक ४८
दण्डकेश्वर ५५१
दव्वे भांबड़ ३६३
दयालदास ५८०
दरभंगा ७१५
दलबहादुर कार्की ३३२
द़लभूमि ६५९
दलेर कौर ४२३
दादाभाई नौरोजी १२६
दाना कवि ३४७,४०३
दामोदर ६२५,६६५
दामोदर कविराज ५७०

दामोदरदास ७११
दामोदर दास पण्डित ६९०
दामोदर पण्डित ६१६
दारु जगन्नायका ३२४
दालास टेक्साज ६३९
दालूर १३९
दाशरथि अण्णल २३
दास चक्रवर्ती ७०३
दासमल्ल ४५०
दिआलसिंह ३६७,४०४
दिट्ट कवि नारायण २२९
दिट्ठ कवि रामचन्द्र २२९
दिनेशचन्द्र सेन ६८८
दियालचन्द मिगलानी ४०४
दिलाराम ४१३
दिल्ली ३९९,४१३
दिव्यसिंह ५४८,५८७,६७४
दीन गोविन्ददास ५९१
दीन चण्डीदास ५९०
दीन दास (दीनहीन दास) ६०६
दीन शरणदास ५३५
दीपकर्णि १३४
दीर्घमान ३३२
दीवानचन्द ४४६
दीवानसिंह ४५५
दुनीचन्द नमकमण्डी ४५०
दुमका ५३२
दुरैस्वामी अय्यँगार ११५
दुर्गादास बागची ५९१
दुव्वूरि रामिरेड्डी २३०
दूरिका ५५१
दृढ़व्रत ३८
देकुलपल्लि कृष्णशास्त्री १६२
देचनामात्य ३१०
देनूउछु ६१६
देनूड़ ६८८,६८९
देन्दुलूरि लिंगनाराध्य १७५
देव ३५५
देवकीनन्दन ५४४,५७०,६२६,६६६
देवकीनन्दनदास ६०२,६०७,६३२
देवकी नन्दन सिंह ६७१
देवकी पिटाट्टियार ४४
देवघर ५३२
देवड़ ग्राम ६८८
देवदेवी ५८,१५०,३२३
देवपेरुमाल ४८,९३
देवमाम्बा २५८
देवरकोटा १७१
देवरकोण्डा २७३
देवरपल्लि ३१८
देवराज पिल्लै १८
देववर्मा १३६
देवा ४०६
देवुल पल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री २३१
देवेन्द्रनाथ ठाकुर ६६१
देवेन्द्रसिंह विद्यार्थी ४५१
देशबन्धु चित्तरंजनदास ५३१
देशिकन ११६
देशिक विनायकम् पिल्लै ११,१२
देसराज 'सादक' ४५०
देहरापुरी ४४३
देहरी-आन-सोन ७१५
दैवज्ञ केसरी अर्याल ३३७
दोगछिया ६३२,७१५
दोड्डयाचार्य १९२
दोनूरि कोनेरुकवि २३३
दोमकोण्डा २८३
दोराल १५६
द्राक्षाराम ३०२
द्रौपदी ७०३
द्वारका ११७,५११,७०१
द्वारकानाथ विद्याभूषण ५८३

द्वारिबेड़ा ५७८
द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ५५२
द्वैत प्रभु ६२५
धनञ्जयदास ७०७
धनीराम चात्रिक ४०६
धनुर्दास २३२
धन्नासिंह 'रंगीला' ४०८,४१०
धन्यमानिक ४८९
धरणि देवुल रामय्या १६६,२०६,२३४,३२३
धरणी ६०८
धर्मपाल मैनी ३५२
धर्मवीर सिंह 'जौली' ४५१
धारा रामनाथ शास्त्री १४८,१६०
धारोन्दा बहादुरपुर ५५१
धीरेन्द्रनाथ गुरुदेव ५८४
धीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ५८३
धूर्जटि १५७
धोयी ४७१,४७२,४८४
ध्रुवानन्द ६१०
नंजिक्कुलम् ३८
नंजीयर १०,४४,६१,६६
नंबि एम्पेरुमान ६८
नंबूरी केशवार्यं १८१
नइहाटी ५४९
नच्चिनाक्'किनियर् ९९
नटनगोपाल ६४
नटनगोपाल नायकी स्वामी ६२
नटवर ६०९
नडकुदरि वीरराजु २४२
नडकुदुटि वीरराजु १९६
न० तिरुमलाचार्यं १२६
नदिया ५६८,६४२,६४७,७०२,७१५
नन्दकौर ४५१
नन्दमपूडि २३७
नन्दमूरु २९५
नन्दलाल घोष ६२६
नन्दि तिम्मन्न १४९,१५७,२३६
नन्दिवर्मा १३५
नन्दीग्राम २३०
नन्दूयाला १५७
नन्नय १४०,१४४,१४६,१५३,१५९,१६४,२३७
नप्पिन्ना देवी ३
नबीपुर ४४१
नम्पिल्लै १०,६६,८७
नयनानन्द ५६२,६१०
नयनानंद कविराज ६११
नम्मालवार ६,१५,६२,६८,७१,१२२
नयनकुमुद ५९५
नयनमिश्र ६१०
नयनानंद ठाकुर ६११
नयनानंद देव ६११
नयान भास्कर ४८०
नरन सूरन २४४
नरस नायकुडु १७६
नरसन्न २५८
नरसम्मा १६६
नरसिंगन्न ताल्लपाक २३९
नरसिंह नाड़ियाल ५२५
नरसिंह शास्त्री २६७
नरसिंह स्वामी १८१
नरहरि १५७,५०५,६०९,६४४
नरहरि घटिकाद्रिनाथ १९२
नरहरि चक्रवर्ती ५९१
नरहरि ठाकुर ६१२
नरहरिदास ४९३,४९८,६०४,६१३
नरहरि महाराज ६८१
नरहरि-रघुनन्दन ४९९
नरहरि सरकार ४९२,४९९,५०५,५५४,५८४,६१४,६१६, ६२५
नरिन्द्रसिंह ४४८
नरेन्द्र ३२३,३६५,३९६,४१३,४१८,४२४,४३९,४५५
नरेन्द्रनाथ रिगाल ३३२

नरोत्तम ६१५,७०२,७०४
नरोत्तम ठाकुर ५५३,५६८,५८४,६३४,६४४,६५९
नरोत्तम दास ३५९,६०४,६७०
नरोत्तमदास (ठाकुर) ६१५,६३४
नलगोंडा १६१
नलवेणपा ८३
नलिनी पण्डित ६८७
नल्लतंब्री १००
नल्ल तिम्मराजु २३३
नल्लापिल्लै १०,१८
नवकिशोर गोस्वामी ७०६
नवग्राम ५३९,५४८
नवद्वीप ५५२,५७९,६५२,७०२
नवद्वीपदास बाबा ६४८
नसीरशाह ४८७
नसीरुद्दीन नसरतशाह ४८६
नागन्ना २९०
नागपट्टिनम् ४७
नागम्मा २१७
नागयामात्य २३५
नागय्य मंत्रि २३३
नागय्या, डा० १६२
नागरीदास ३४७
नागलादेवी ४९
नागलापुरम् ४९
नागलाम्ब १७६
नागाम्ब २५१
नागार्जुन १३२,१९१
नागार्जुनकोंडा १३७,१४२
नागि १७७
नाचन सोमना २००
नाट्टरसन् कोट्टै १००
नाथमुनि ५,९,२८,२९,३०,४०,४३,४४,१३९
नाथमुनिगळ् ७०
नादेन्ड्ल अप्पन्न २७४
नादेन्ड्ल गोपमन्त्रि २३९
नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि २४१
नानकचन्द ३६७
नानकपुरा ४०२
नानकसिंह ४०२
नान्नूर ५९१
नाभादास ४५५,६८५
नाभा देवी ५२५
नामक्कल कवि ११
नामक्कल कवि रामलिंगम् पिल्लै १२,७२
नामदेव ४३४
नामा देवी ५४८
नायन मन्त्रि २५८
नायन सुब्बाराव २४१
नायन सोमन्न १४५,२४२
नायन सोमुडु १४४
नारंगाबाद ५३४
नारकविप्पेरुमाल ४७
नारद ४९४
नारन सूरन २४४
नारया २६१,२६४
नाराइण सिंह ४११
नारायण चक्रवर्ती ७०३
नारायण तीर्थ १७२,१८२
नारायणतीर्थ स्वामी ७४
नारायणदास ६१२
नारायण भट्ट १४५,२३८,२४६
नारायण शास्त्री ४३
नारायण सूरि २१०
नारायण स्वामी १०५,४१२
नारायणस्वामी अय्यर ५५
नारायणी ६१५,६७७
नारायणी ठाकुरानी ६७८
नारायनी ६८७
नारायनी देवी ५५३
नालूरान १११,११२
नासिर मामूद (महमूद) ६१८

निखिलनाथ चक्रवर्ती ७१०
निजामाबाद २८३
निडदवोलु वेन्कटराव २०३;३२६
नित्यानन्द ४८०,४९०,४९२,५३६,५३९,५४५,५६०,५८२,
 ५९८,६१९,६२३,६४६,६७६,७०४
नित्यानन्द गोस्वामी ५४९
नित्यानन्ददास ६१९,६३०,६४८
नित्यानन्ददास बाबा ५७८
नित्यानन्द सेन ४९३
निमाई पण्डित ५४०,५८२
निराला, महाप्राण ३३६,५७२
निर्मल बम्बईवाले ४५०
निवासाचार्य ५४३,५६६
निवेदिता १२६
निशुम्भ १३४
निहाल ३५४,४१३
निहालसिंह 'कवीन्द्र' ४१५,३४७,४१४,४१५,४६४
नीलकण्ठ ५३४
नीलगिरि १११
नीलन ४७
नीलमणि गोस्वामी ५७८
नीलाचल ४५,५४३,५५२,६००
नीलाम्बर ६२१
नीलाम्बर चक्रवर्ती ५८२,६२२
नुवाकोट ३३७
नृसिंह कवि २४५,५२९,७०३
नृसिंह तर्कपंचानन ५९४
नृसिंह देव ७१४
नृसिंहानन्द प्रभु ५७८
नेड़ा-नेड़ी ६१९
नेडुंचेषियन् ९८
नेडुमारन १००
नेपाल ३२९,४८९
नेपाली होमर ३४१
नेबति कृष्णमाचार्युलु २७३
नेमिनाथ ३
नेमदल १४
नेरुर १२४
नेलटूरि वेन्कट रमणय्या पंतुलु २२१,२२२
नेल्लीनगर अरुलालदासर ३
नेल्लूर १९०,१९५,२५१
नेल्लूरि वीर राघवय्या २४५
नेल्लूरि वेन्कटपति २४५
नैमिषारण्य १९३,४९३
नोआखाली ७१७
नोरि नरसिंह शास्त्री २४६
न्यूनिजु १७८
न्यूयार्क ६३८
पंकजसेल्वी ४९
पंचग्राम ६३२
पंजाब ४०६,४१३
पंडित गोस्वामी ५२६
पन्त ३३६
पन्दड़ी ६२
पटना ३८१
पटियाला ३५५,४१८,४२१,४२४
पड़ान ग्राम ६७१
पण्डित हरिदास ५४९
पतञ्जलि ३१५
पतञ्जलि गजुर्याल ३३१,३३४
पत्तमल ३४८
पद्मगिरिनायर् १०
पद्मनाभ अय्यंगार १२६
पद्मनाभ चक्रवर्ती ६७५
पद्मनाभम् ११७,७०७
पद्मनायक मायानायक १९०
पद्मप्रसाद उपाध्याय ३३८
पद्मराजु २५६
पद्मवल्लि ८९
पद्मावती ७०३
पद्मासनी १०२
परत्तैवयल् ९९

परमशिवेन्द्र स्वामी १२४
परमानन्द ५९८
परमानन्ददास ४९३
परमानन्ददास (कवि कर्णपूर) ६२२
परमानन्द भट्टाचार्य ६२३
परमूर ७२
परमेश्वरदास ६२१,६२४
परमेश्वरीदास ६१६
परशुराम ६२५
परांकुश दास ७१
परांकुशदासर १८
पराशर भट्ट ६१,७७,१०८
पर्लाकिमिडि २७०
पर्वतीश्वर कवुलु १९९
पलनाडु १३७
पलपट्टड़ै चोक्कनालर् १०,८१
पल्ले १८३
पवषक्कोडि मालै ८३
पशुप ७०६
पशुपतिनाथ ३३०
पसुपुलेटि वेन्काटाद्रि २८०
पाँचपरगना ६८५
पांडिमादेवी ३२
पांडियनाडु २२
पांबन कुमर गुरुदास स्वामी ५५
पाऊँटा ३८१
पाकाल राजमन्नारु १८५
पाकिस्तान ३७९
पाण्डिचेरी १२७
पानीहाटी ६५६
पानुगन्टि लक्ष्मी नरसिंह राव २४७
पाप-आरोड़ा ५४४
पापराजु १६५
पामर माधवदास ५९०
पारनड़वेलुन ५२८
पार्वतम्मा २९६
पार्वती ७४
पालै १४
पाल्कुरिकि १५३
पाबना ५२९
पिंगलि लक्ष्मीकान्तम् २५०
पिंगलि सूरन १४५,१८०,२४७
पिंगलि सूरनार्य १९६
पिआरासिंह 'निरछल' ४१६
पिआरासिंह 'पद्म' ४६६
पिक्कैप्पेरुमाल आयंगार ९४
पिठापुरम् २३१,२७०,३०१
पिन्न कोन्ड्राजु २८४
पिल्लमर्रि पिनवीर भद्रुडु २५१
पिल्लमरि हनुमन्तराव २५३
पिल्लल मर्टिपिन वीरभद्र ३२३
पिल्लै पेरुमाल अय्यंगार ९,१८
पिल्लै लोकाचार जीयर ९
पिल्लै लोकाचार्य ९,८२
पी० एस० कृष्णस्वामी १२९
पीणपुर १७४
पीताम्बर दास ४८९,५९६,६५६
पीपा ४३४
पी० साम्बमूर्ति १८३
पुगषेन्दिप्पुल्वर् ८३
पुण्डरीक विद्यानिधि ५२६,६२६
पुण्डरीकाक्ष १०८
पुत्तूर ८८
पुदुक्कोट २२१
पुदुक्कोटै ४१,१०२
पुन्नय्या २००
पुरन्दरदास १८५,२१३
पुरन्दर वसु ६५६
पुरापाड़ा ७१७
पुरी ५२९
पुरीदास ६२२
पुरुलूरि सोमराजु २५४

पुरुषोत्तम ४९५,६६७
पुरुषोत्तम आचार्य ७१०
पुरुषोत्तम कवि २५५
पुरुषोत्तम गुप्त ६७८
पुरुषोत्तम दास ५४५
पुरुषोत्तमदास कविराज ६२६
पुरुषोत्तमदास नित्यानन्द ६०७
पुरुषोत्तम मिश्र ६२८
पुर्तगाल १७८
पुलजाल सोमनामात्य २२२
पुलिकेशि प्रथम १३६
पुष्करण ४७
पुष्पगिरि तिम्मन्न १६५,२०६,२३४
पुष्पगुरि २३६
पुसुलूरु २५४
पूछरी ५७९
पूरन भगत ३७०
पूर्णसिंह २३०
पूर्णिया ६७६
पृथीचन्द ३७५
पृथ्वीचन्द ४५९
पृथ्वीधर पोल्ल्याल ३३५
पृथ्वीनाथ सिंह ६८५
पृथ्वीनारायणशाह ३२९
पेदपाटि जगन्न २५५,२८४
पेदपाडु २५५
पेद्दलिंगनार्य १६८
पेद्दन्न १७८
पेद्दपोलु १७१
पेद्दमाम्बा २८८
पेनुगोण्डा २१२
पेनुमत्स गोपराजु २५६
पेनुमत्स वेन्कटाद्रि २५६
पेन्ड्याल वेंकट सुब्रह्मण्य ३०३
पेयालवार ७,१५,५०,८५
पेयाषवार् ५
पेरमाम्बा १६४,३२०
पेरय सूरि २६९
पेरिन्देवी १८३,१८४
पेरिय कुषन्दै स्वामी ८६
पेरियनंबी ५१,९२,१११,११२
पेरियवाच्यान् पिल्लै १०,८७
पेरियालवार ८,९,११,१५,२०,२७,५८,८८,११३
पेरियाषवार ६
पेरुमपुलियूर स्वामी ५१
पेरुमाल् जीयर् ६६,९१,९२
पैड्स १७८
पैदिपाटिवाले २५६
पैदिपाटि वेन्कटनृसिंह २५६
पोडूरु भोगराजु २५७
पोतन १४७,१८६
पोतन और श्रीनाथ २६३
पोतना १४४,२६१
पोताम्बा १६२
पोतु कुच्चि सुब्बय्या २५८
पोदियपर्वत १
पोन्नाचि १०९
पोन् विलैन्द कलत्तूर ८३
पोयगै आलवार १५,८५,९३
पोयाम्ब १९०
पोय्गैयाषवार् ५
पोरकारियार ६८
प्यारासिंह पद्म ३४६,३७५,४००,४०३
प्रतापरुद्र, ३३,१४१,५३६,५८९
प्रतापसिंह २७६
प्रतापादित्य ५४१
प्रबोधानन्द सरस्वती ५०७
प्रयाग ५८३,६७२
प्रलय कावेरी ३०९
प्रवीण चाणूर १३१
प्रसाद ३३६
प्रसाददास ६२७

प्राणनाथ ३२९
प्रीतमसिंह ४२१, ४२४
प्रेमदास बाबा ७०२
प्रेमानन्ददास (प्रेमदास) ६२८
प्रेमानन्द शास्त्री ५३५
प्रोलय वेमा रेड्डि १६२
प्रोलुगन्टि तिप्पय्या २५८
प्रोलुगन्टि चेन्नय मन्त्रि २५८
प्रोलुगंटि रंगन ३२८
प्रौढदेव रायलु २५८
फगवाड़ा ३९२
फज़्लशाह ३७९
फतमलजी ३४७
फतहचन्द ३४४
फतेसिंह ४६४,४६५
फतेहचन्द ४१८
फतेहसिंह ४१८
फरदावाज ७०६
फरीदपुर ५७७,७१७
फल्टमण्डी ४०८
फर्रुखसियर ४०३
फाणियम्मा २३५
फादर डी सौसा १२१
फ़िगेरिडो १७८
फ़िरोजदीन 'शरफ़' ४१९
फेरू ३४७
फ्रांस २४९
बंगाल ४८६
बकुलाभरणन् ६९
बक्सर ७१५
बग्गासिंह ४२१
बच्चन १५४
बच्चनामात्य १७४
बट्टेपारि तिम्मय्या १५२
बड़्गाछि ६८८
बड़ु चण्डीदास ४७२,५०३,५९०
बदनगंज ६४७
बद्रीदास ३३२
बद्रीनारायणम् ११७
बनमाली रायबहादुर ५५५
बन्नू-क्षेत्र ३७९,४४९
बम्बई ६३९
बम्मेर २६०
बम्मेर पोतन २५९,३०८
बरहमपुर २१९
बरेली ७१०
बर्दवान ५७०
बर्द्धमान ५२८
बलदेवचन्द्र 'बेकल' ४२२
बलदेवदास ६३०
बलदेव भट्टाचार्य ५८३
बलदेव विद्याभूषण ५०७
बलराम ७१३
बलराम आचार्य ७०२
बलरामदास ४९९,५८६,६१९,६३०,६३३,६४८
बलरामदास कविराज ६३०
बलरामदास ठाकुर ६३२
बलरामदास दीन ६३४
बलरामदास बाबाजी ५७८
बलराम वसु ६३४
बलाईदास ६३०
बलिजेपल्लि लक्ष्मीकान्तम् २६७
बलियाघाट ७१०
बल्लभ ६३४
बल्लभदास ६३४
बल्लभदास मजुमदार ६३५
बल्लरी २४२
बल्लारि १५६,२१९
बल्लालसेन ४७२
बल्ला सिंह ३६२
बल्लूआणा ४६५
बसवेश्वर १३८,१४२

बसुधा ६२१
बहलोल लोदी ४८६
बहादुरशाह ३७८
बहादुर सिंह ४५५
बहुजन पल्लि सीताराम चार्युलु १६६,२४२
बांकुड़ा ४७१,५९१,६२५
बाणी रामदास ४२४
बातो ग्राम ५७७
बापट्ला १३९
बाबा बुढ़ाजी ४५४
बाबा रामदास ३४४
बाबा विश्वरूपदास ६६५
बाबूराव पटेल १३४
बाराह नगर ६४०
बालकवि सुब्वन्न २६७
बालकृष्ण पुलवर् १०५
बालकृष्ण शास्त्री ११
बाल्मीक ३४७
बालशास्त्री ३३७
बालांत्रपु रजनीकान्त १८३,१८४,१८५
बालांत्रपु वेंकटराव ३००
बालेश्वर ४९०
बाहुबल शान्तमूल १३७
बिजल पहलवान ३९२
बिजैसखी ३४७
बिज्जल १४२
बिटगुन्टा २५१
बिन्दुदास ६३५
बिल्वमंगल संन्यासी ३३२
बिल्हणीय २७६
बिशनदेई ४०८
बिहार ४८६
बिहारी ३४७,३५५,४२८
बिहारीदास ६३६
बीबी वीरो ४५१
बीरखान ४१९
बीरसिंह ४२१
बीरहाम्बीर (चैतन्यदास) ६३६
बीराकुली ५७५
बुंगा साहेबां ४१५
बुक्क रायलु १४१
बुच्चम्म १७४
बुड़ना ६८४
बुधरि पाड़ा ५६४
बुधसिंह ३६२,३८८,४२३,४२९
बुरंगीसिलहट ६८४
बुलुगु वेंकट रमणय्य २२३
बुल्हेशाह ४३०
बूचरी ६१६
बूड़ा ३४७
बूरुल सुब्बरायडु २२०
बृहत्पालायन १३५
बृहस्पति मिश्र राय ४८३
बेजवाड़ा १४१
बेण्डपूडि अन्नमन्त्रि ३१४
बेलपुखुरिया ६२२
बेलीराम ४४६
बेहरार्थ ३२४
बैजनाथ सेढ़ाई ३३२
बोधिश्री १३७
बोधेन्द्रस्वामी ४२
बौंसी ६४२
ब्रज-किशोर ६८९
ब्रजरानी देवी ५३४
ब्रह्मनायडु २१७
ब्रह्मानन्द ६१९
ब्रह्मानन्द गोस्वामी ५७८
ब्रह्मानन्द महाराज ५८३
भक्त पत्तमल ३४७
भक्त बलराम दास ६३२
भक्ति वेदान्त स्वामी ६३७
भगवन्नाम बोधेन्द्र स्वामी ११

भगवान ४३१
भगवान् कविराज ७०३
भगवानदास ६४८
भगवान नाराइण ३४७
भगवान राइ ३४७
भगवान सिंह ४५५
भगवानामात्य ३२०
भगिनी निवेदिता ५८३
भट्ट नारायण ४७१
भट्टर ९,२८,६१
भट्टरुचिक्काचार्यं २२४
भट्टिप्रोलु १३७
भद्रक ५५२
भद्राचलम् ३२५
भद्राचल रामदास १८२
भय्याराम ३४७
भरतपुर ६०३, ६०१
भरतमुनि ५१७
भवानन्द ६३९
भवानी ६९८
भागमाम्बा २२१
भागलपुर ६४२,७१५
भागवतदास ५३५
भागवत मिश्र ६४९
भागवताचार्य ६४०
भागवतुल रामय्या १७३
भादयगारि मल्लन्न १५७
भानुदत्त १५७
भानुभक्त ३३०
भारत-चन्द्र ७१५
भारती १२,१२२
भारतेन्दु ३५५;४४२
भावनदास ३४७,४३१
भाष्यकाचार्य पिंगलि २४९
भाष्यकाचार्युलु २४७
भिखारीदास ३५५

भीमवरम् ३१४
भीमसेन थापा ३२९,३३४
भीमाम्बा ३१४
भीमुनिपट्टनम् १३२
भीमेश्वर २७४
भुरगुट ६७०
भुवनदास ६४०
भुवनप्रसाद ढुंगेल ३३२
भुवनसुन्दरी १००
भुवनेश्वरी ६४२
भूगर्भ ६७६
भूतत्तालवार ५,७,१५,८५,९३
भूदन ४५३
भूपत ३५४
भूपति ६४१
भूपालक २२१
भूपेन्द्रनाथ सान्याल ६४२
भूषण ३५५
भूषणसिंह ५९५
भैयाराम ४३२
भैरवकवि २६८
भोगराजु २५८
भोलानाथ अधिकारी ६४७
मंगमा २४५
मंगलडिह्ही ६११
मंगाम्बा २५६
मंचंकालि वेन्कट पति २०६
मंडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री २६९
मंत्रिप्रेगड सूर्यप्रकाश कवि २७०
मक्कुवनाडु ८४
मखनलाल खत्री ४३४
मघेरा ६६५
मचिलीपट्टनम् ३१४,३२६
मन्चा वेन्कट कवि २७०
मट्ल अनन्तराजु १५७

मडिकि अनन्तय्य २७०
मडिकि सिंगन १४७;२७१
मणंचेरी ४२
मणक्काल् नंबी २८,४०
मणवालदासर् ९४,९५
मणवाल मा मुनिगल १०,३५
मतानंद राय ६७०
मतिराम ३५५
मथुरा ७३,३२९,४००,५११,५८३
मथुरादास ४७८
मथुरान्तकम् १०६
मदनदास (प्रथम) ६४४
मदनदास (द्वितीय, तृतीय) ६४४
मदन बाबा ६६५
मदनमोहन ठौर ६४८
मदनसिंह मृगेन्द्र ४५५
मदुरै १,४,२६,३०,३५,६२,८४.९५,२२१
मद्रास १,४८,६५
मधुरकवि आलवार ६,१५,७१,९६
मधुरा १४१,३२१
मधुसूदन ६४५
मधुसूदनदास ५७९
मधुसूदनय्य २३८
मध्वाचार्य ५०३
मनमोहन सहगल ३५२
मनमोहन सिंह ३४६,३४७
मनमोहिनी ५२९,५३०
मनहरिदास ३४७,४३४
मनीचन्द्रन्द्र नन्दी बहादुर ७१८
मनीपुर ५८०
मनुमसिद्धि १४६
मनोहर ४७६,७१४
नोहरदास ३७३,५३४,६२५,६४८,६८५,७०३
मनोहरदास (प्रथम) ६४६
मनोहरदास (द्वितीय) ६४६
मनोहरदास (तृतीय) ६४७
मनोहरदास (चतुर्थ) ६४७
मनोहरराय ६४७
मन्त्रि तिम्म कवि (छूचि) २६४
मन्त्रिभास्कर २१७
मन्दाल २८८
मयनागढ़ ६११
मयनाजल ५३४
मरिंगंटि सिंगराचार्युलु २७३
मरुदप्प १०२
मरुदम १४
मरुदवन ९८
मरुदानल्लूर ४२,८६
मरुदानल्लूर सद्गुरु स्वामी ४१,४२
मरुवूर गणेश शास्त्री ५५
मलय मारुत २३६
मलिक काफूर ८२
मलिक मुहम्मद जायसी ३७९,४८६
मल्किभराम २७३
मल्ल २५६
मल्लन १६२
मल्लन्ना २७३
मल्लमु ३०१
मल्लम्पल्लि सोमशेखर शर्मा २६५
मल्लय सिंगन १७६
मल्लसिंह ४१५
मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री २०५,२१४,३२४
मल्ला रेड्डि १६२
मल्लि ८८
मल्लिकार्जुन १४३,१५३
मषलैमंगलम् ३१
मस्तराम ३४४,३४७,४३५
महर्षि व्यास १५३
महात्मा गांधी १२७,१४१,२४१,५३१
महानन्द ५४८
महालक्ष्मम्मा २४६
महीधर ३४७

महेन्द्रगिरि १३२
महेन्द्रसिंह ३६५,४१३
महेशग्राम ५६४
महेश्वर विशारद ५३६
माँगट भाई बन्नोसिंह ४०८
मांगुडि ९८
मांगुडि मरुदनार् ९८
मांटगोमरी ३६७
मागुरा ग्राम ६९४
माचिराजु वेंकट कृष्णमूर्ति १५२,२५७
माठरी देवी १३७
माणिक्क नायक्कर ७३
माणिक्यहाट ६४०
माता सुलखनी ४०८
मादम्मा १९३
मादय्य २७४
मादय्य गारि मल्लन २४४,२७४
माधउदास ३४७,३४८,३४९
माधव ५५७,५९५,६४९
माधव कवि ४७७
माधवघोष ४९८,६४८
माधव चक्रवर्ती ४८५
माधवदास ५८४,६४९
माधवदास द्विज ६४९
माधव नृपति १७४
माधव पण्डित १०,१८,४३
माधवपुर ६४७
माधव भट्ट ४७७
माधव वर्मा १३६
माधवाचार्य ४७७,६७७,६९८
माधवीदास ६५०
माधवेन्द्र ४८३
माधवेन्द्रपुरी ४७४,४९०,४९२,५०३,५०४,५४०,६२१,
६२६,६५१
मानगाछि ६८७
मानवीर मदुरै ४३
मानसिंह ३७०,५२८,५४१
मानाङ्क ३३२
मान्धाता सिंह (राजा) ३३२
मामल्लपुरम् ९३
मामिडि पेद्दन्न ३१५
मामूलनार् ९९
मायापुर ६३९
मारकुल ५२९
मारन ६८
मारय १८६
मारवर्मन् श्रीवल्लभ ३२
मालती ६५९
मालवा ३५५
मालाधर वसु ४७२,४८३,४९९,६६७
मालिनी देवी ५३५
मालिहाटी ६५४
मिठापुरम् १७४
मिथिला ३ ३४०,४९५
मिदनापुर ६९८
मि० ब्लेयर ६९५
मिलखीराम 'मिलखी' ४३६
मिहिरबान ४६५
मीनाक्षय्या ३२१
मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै १०
मीयांवाली ४२३
मीरजुम्ला २२१
मीरन ३४७
मीरा २,१३,११५,३३१,३४७,३५३,४३४
मुंगेर ७१५
मुं० वेंकटपति २७६
मुअज़्ज़म ३५९
मुकुटराय ५४४
मुकुन्द ६१९,६४४,६७५,७०७
मुकुन्ददत्त ४९८,५८२
मुकुन्ददास ४९२,६१२
मुकुन्ददास गोस्वामी ५६४

मुकुन्द भट्ट ८९
मुकुन्द भट्टाचार्य ४७६
मुकुन्दानन्द ६२८
मुक्कुल रामयामात्य १७४
मुडुम्ब नृसिंहाचार्य २७५
मुत्तम्माल ७३
मुत्तियाला ७४
मुत्तुकुट्टि ९९
मुत्तु कु ट्टिप् पुलवर ९९
मुत्तुस्वामि आयंगार १०२
मुत्तुस्वामी दीक्षितुल १८२
मुदलिपांगन १०७
मुदिवेमु अग्रहारम् १३५
मुद्दु अलगिरि २९०
मुद्दुपलनि १४५,२१६,२७६,२८९,३०५,३२२
मुनकुडुमि गोषियर ९६
मुनीलाल 'प्रेम' ३९१,४५०
मुप्पभूपति २७३
मुमुक्षुप्पडि ८२
मुम्मडाम्बा १६०
मु० राघव अय्यंगार ११,१००,१०१
मुरारि गुप्त ४७८,४९३,४९७,५५३,६५२,६८०,७१०
मुरारी ढुंगाना ३३२
मुरारी मइति ६५०
मुरारीलाल अधिकारी ५९८
मुरुगन् अल्लदु अषगु ५६
मुरुजाड श्री राममूर्ति २२४
मुर्शिद कुली खाँ ६६१
मुर्शिदाबाद ५४३,५५३,५६०,६१०,७१०,७१४
मुहम्मद इक़बाल २३०
मुहम्मदपुर ७०१
मुहम्मद शाह ६१२
मुहम्मदशाह रंगीले ३७८
मुर्गचितल पल्लि ३०५
मूर्तिमाम्बा २८२
मूलसिंह ३४७,४३९
मृत्युंजयदास ५३४
मेदिनीपुर ५३४,५५२,५७८
मेहरसिंह कम्बोज ४४१
मैक्समुलर ३२४
मैलवरमु २४०
मैलापुर ८५
मैसूर १८२,२२१
मोगल्लु ३१४
मोचर्ल नन्नय १४९,२७९
मोचर्ल माधवामात्य २८०
मोतीलाल ६९४
मोतीलाल घोष ६९५
मोवपुरम् १८३
मोषिप्पिल्लै २३
मोहन अमुदम १९
मोहनदास ६५३
मोहनसिंह 'दिवाना' ४२९
यज्ञमूर्ति १०८
यज्ञश्री १३५
यटिगोन्ड धर्मन्न १४९
यथोक्तकारी पेरुमाल ९३
यदुनन्दनदास ६५४
यदुनन्दनदास (चक्रवर्ती) ६५५
यदुनाथ ६६७
यदुनाथ पोख्याल ३३५
यमुनैत्तुरैवन् २८,२९,४०
यशोड़ा ग्राम ६००
यशोराज खान ४८६,४८९,४९९,६५६
यशोहर ५५५,५७९,६६५
यस० रामकृष्ण शास्त्री १६२
यस० वी० जोगराव १६६,१९२
यागन्टि शेषय्या १५६,१५९,१६६,१७०,१७६,१७८,१८६,
१९२
याजपुर ५८२

यांजिग्राम ६१६,६६६,७०२
यादवगिरि १११
यादवेन्द्र ७११
यामुनाचार्य २८,१३९,१७९
युवान्च्वांग १३७
रंगनाथन १८
रंगनाथार्य १५६
रंगनार्य २४५
रंगमन्नारु स्वामी १७९
रंगाजम्मा १४५,२८०,२९३,३०५
रगनाकुल ५३५
रघुनन्दन ५४७
रघुनन्दन गोस्वामी ६७१
रघुनन्दन ठाकुर ६११
रघुनन्दनदास ४९२,४९९,५००,५०१,५०४,५४९
रघुनाथ ६२०,६४०
रघुनाथ तोण्डैमान १२४
रघुनाथदास (प्रथम) ६५६
रघुनाथदास (द्वितीय) ६५८
रघुनाथ नायक १४५,२०१,२९४,३२३
रघुनाथ नायकुडु २०२,२८१
रघुनाथ भट्ट ५००,५०१,५०४'५४९,६५८
रघुनाथ वर्मा ३२७
रघुनाथ शौरि १८०
रघुपतिवेंकट रत्नमु नायुडु २३१
रघुवर प्रसाद ४४०
रघुवीर सिंह ४५५
रजनीदास ६६५
रणजीत सिंह ३५५,३११,४२३,४४१,४४६,४४२,४५५
रतिपति ठाकुर ५६३
रत्नहरि ४४२
रत्नाम्बा २४७
रवेल्ले २४९
रमणाम्बा १७१
रवीन्द्रनाथ ठाकुर १९९,२८६,५४१,६४२
रसक राम ३४७
रसक रामगोपाल ४४३
रसकलाल ३४७
रसखान ३५३
रसिकदास ६५९
रसिकबिहारी ३४७
रसिकानन्द ५२६,५२९,६९९
रहरसिंह राई ३३२
राघव अय्यंगार ११,६०,१०२
राघव-चक्रवर्ती ७०३
राघवदास ६८५
राघव पुरोहित ६८५
राघव रेड्डी ३०५
राघवाचार्य १९२
राघवेन्द्रराय ६५९
राजकवि ३७
राजकुमारी ३५५
राजगुरु ३५२
राजगोपालप् पुलवर् १०४
राजन्न चौदरि २८३
राजपण्डित ज्ञान ४८९
राजमण्ड्री १३६,२८५
राजमहल ६७६
राजमहेन्द्रवरम् १३६,१४०,१४१,३२३
राजराजनरेन्द्र १४१
राजर्षि बनमालीजी ५५६
राजर्षि बहादुर ७२०
राजलक्ष्मी देवी ३३५
राजवल्लभ ५४४,५७५,६३५
राजशाही ६१५
राजसिंह ३०१
राजा कपिलेन्द्र ५८२
राजा क्रुष्ण राम राय ५२८
राजा रामचन्द्र ५२८
राजा वानी नाथ ५८३
राजेन्द्र बाबू ५३२
राज्ञां ३७८

राढ़ ४९०
राढ़ी ७१८
राणा प्रताप ३०४
राधा-कृष्ण गोस्वामी ७०५
राधाकृष्णदास ५२६
राधादास ६६०
राधामोहन ४९६,५६०
राधा मोहन ठाकुर ५४३,६४०,६६१
राधारमण घोष ६६१
राधारमणदास ६८६
राधावल्लभ ५२९
राधा वल्लभ चक्रवर्ती ६६३
राधा वल्लभदास ५६८
राधावल्लभ दास ठाकुर ६६४
राधावल्लभदास (मंडल) ६६४
राधावल्लभदास मथुरादास ६६५
राधिकादासजी ५८४
राधिकानाथ गोस्वामी ५७८, ७१७
राधिकाप्रसाद गोस्वामी ५७८
रापाक लक्ष्मीपति २८३
राम ३४४,५३५
रामकेलि ४८३,४८४,७०७
रामकृष्ण ७३
रामकृष्ण आचार्य ५४३
रामकृष्ण डालमिया ३६
रामकृष्ण दास ५७७,५७८,६६५
रामकृष्ण शास्त्री २४२
राम गोपाल ६७८
रामगोपाल दास ४९९,५४१,६४४
रामगोपालदास भट्ट ५८४
रामगोपाल भट्टाचार्य ५३०
रामचन्द्र कविराज ३३२,५७०,६१६,६३४,६६५,६९७,
७०३, ७१८
रामचन्द्र गोलोकवासी ६१६
रामचन्द्र गोस्वामी ६२८,६६६,६९१
रामचन्द्रपुरम् ३२०
रामचन्द्र मल्लिक ६९८
रामचन्द्र राय ५२
रामडुगु नरसम्मा २८६
रामडुगु रामकृष्णाचार्युलु २५८
रामदास ३५५,४२४,४५९,५३५,६२१,६६५
रामदास चौधुरी ५६४
रामदास बाबाजी ५८४
रामदास मिश्र ४४६
रामदासी ५७६
रामनाथपुरम् ११,३५,६४,९९,१०२,११७
रामनारायण विद्यारत्न ६६३
रामपुर वोयालिया ६१५
रामप्रसाद सत्याल ३३२
रामब्रह्म २२८
रामब्रह्मेन्द्र १६९
रामभद्र दीक्षितर् १२३
रामभद्रन् ६३
रामभद्रम्मा १४५,२०१
राममन्त्रि २५५
राममूर्ति २५८,२९६
रामम्मा १५८
रामय्य आन्ध्रकवि २८४
रामय्या २२३
रामराइ ३४७
रामराजु १७०
रामराजु रंगप्पराजु २८४,२८५
रामराय १४१
रामलला ४२४
रामलिंग २२३
रामलिंगम् पिल्लै ११
रामलुभाया 'पद्म' ४५०
राम विद्वन्मणि ३२७
रामसिंह पंजाबी ४४७
रामस्वामी नायक्कर ५६
रामानन्द ६६७
रामानन्द वसु ४९९,६६७;६६८

रामानन्द राय ४९२,६४७
रामानुज आयंगार १०२
रामानुज स्वामी ४,९,१३,२३,२९,५१,९१,१०५
रामानुजाचार्य १३९,१४३,१४४,१९१,३२५,३२७
रामाप्रेगड जगन्नाथ २५५
रामेन्द्र नारायण ५२९
रामेश्वरम् ४३,७३
रायप्पेट्टै ५५
रायप्रोलु सुब्बाराव १६२,२८५,२९६
रायरामसुख ४६४
राय रामानन्द ५२१,५८२,५८३,६६९,६८०
रायलसीमा १४०
राय बसंत ६७०
रायवेटि २७६
रायशेखर ६७१
रायसमु वेन्कटपति २८७
राय साहब श्री कैलाश दास ५८०
रा० राघव आयंगार १००,१०२
राल्लपल्लि अनन्तकृष्ण शर्मा १८५
रावलपिण्डी ४१२
रावसिंग भूपाल ३१६
रावूरि दोरस्वामी शर्मा (पद्मश्री) २८७
रावूरि संजीवराय कवि २८८
रासगौर घोषाल ५३५
राहुल सांकृत्यायन ३३६
रुचिदेवी १७७
रुद्र कवि १६८
रुद्रम देवी २४६
रूपगोस्वामी ४७३,४७६,४७७,४८४,४८५,५००,५०१,
    ५०५,५०७,५१६,५१७,५२२,५३९,५४०,५४९,६३०,
    ६७२,६८२,७०७
रूपेश्वर ७०७
रेड्डेन्न ३०५
रेवत १३७
रेवती ६०५
रोहतक ४०४,४२३
लकुलीश शिलाचार्य १३७
लक्कमाम्बा २११,२२३,२६०
लक्कुमण पेरूमाल पिल्लै १८
लक्ष्मामम्बा २०७
लक्ष्मण अय्यर ७३
लक्ष्मण पण्डित २५६
लक्ष्मण भट्ट ४९१
लक्ष्मणसेन ४७२,४८२
लक्ष्मणामात्य २०३
लक्ष्माम्बिका १६६
लक्ष्मीकान्त गोस्वामी ७०६
लक्ष्मीकान्त दास ६७३
लक्ष्मीकान्त शास्त्री २०१
लक्ष्मीपति २५६
लक्ष्मीपति शास्त्री १५९
लक्ष्मीपुर १९०
लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ३३१,३३५
लक्ष्मीप्रिया देवी ५८२,७०२
लखनऊ ६७६
लखमीचन्द ३४७
लखवीदास ३४७
लच्चमाम्बा १७४
ललितपुर ३३४
ललितादासी ५८४
लहिणासिंह ४२३
लॉर्ड मैकेन्जी १५७
लाउड़ ५३९
लाउड़िया ६७४
लाउड़िया कृष्णदास ६७४
लायलपुर ४०२,४०४,४२३
लायिलपुरी मोरीलाल ४५०
लाल ३५५
लालगंज ७१५
लालचंद ३९६
लालदयाल ४४३
लालदास ३४७

लालबिहारी ४२९
लाला खुशीराम 'आर्फ' ४४९
लाला घनीराम चात्रिक ४२२,४५०
लाहौर ३५५,३६७,३८६,३९४,३९९,४१९,
४२३,४३७,४६९
लाहौरासिंह ४३७
लिंगनमखि कामेश्वर ३१९
लिंगनमखि तिरुकामय्या २८९
लिंगनामात्य १९२
लिंगनार्य २८३
लुधियाना ३६२
लुहारे ३६२
लेखनाथ पौडेल ३३२
लेच्चाम्ब १९५
लेन्दुलूर १३६
लोकजननी ३३३
लोकनाथ ५४,६७,६१६
लोकनाथ गोस्वामी ५७९,६७५,७०४
लोकनाथ चक्रवर्ती ६१५
लोकनाथ दास ६७७
लोकमान्य तिलक १२७
लोक सारंग मुनि ४५
लोचनदास ४९३, ६६४
लोचनानन्द गोस्वामी ७०६
लोचनानन्ददास ४९३
वंगोलु सुब्बाराव ३०७
वंचिमानगर १०३
वंशमणि ३२३
वंशीदास ६८२
वंशीवदन ६२८,६६६,६९१
वंशीवदन दास ६८२
व० उ० चिदम्बरम् पिल्लै १२६
वञ्जकरूर १३२
वटपत्रारियर ६४
वटुदास ४७२
वडक्कुत् तिरुवीथिप्पिल्लै ८२
वड़मलै ४८,४९
वन-विष्णुपुर ६००
वयदाई ५३४
वरंगल २६०
वरगुण पाण्डियन् ८३
वरदन २१
वरदप्पा १८३
वरदराज अय्यंगार ३,१०,१८,२२
वरदराजन १८
वरदराजम्मा १७७
वरदराजर ६६
वरदराज स्वामी १८५
वरन्तरुवार ११४
वरपतियाट्कोंडान ११३
वरहूर ४३,७५
वर्जीनिया ६३८
वर्दवान ६८१
वर्धमान ५८६,६६६
वलभामात्य १६६
वलीराम ३४७
वल्लभदास ६८३
वल्लभ रसिक ३४७,५८४
वल्लभराय १९१
वल्लितिरु ४६
वल्लूर देवराज पिल्लै १०
व० वे० सु० अय्यर ११,१२,१२७
वसंतकुमार ६९४
वसंत शर्मा ३३६
वसन्तसिंह 'ऋतुराज' ४२९
वसवराजु २९१
वसवराजु अप्पाराव २९१
वांशखालि ५४६
वाणीनाथ पट्टनायक ६४७
वात्स्यायन १३५
वामाई ७०६
वारणासि राममूर्ति २५८

वाराणसी ७१०
वाविलि कोलनु सुब्बराय २९२
वासिरेड्डि वेन्कटाद्रि २३०
वासुदेव घोष ४९९,६१९,६४८,६८४
वासुदेवदत्त ४९८,६८७
वासुदेव भट्टाचार्य ५३६
वासुली सेवक ५९०
वाहनापाड़ा ५५२
विक्रमेन्द्र वर्मा १३६
विच्छिन्नपदकर्ता चण्डोदास ५९०
विजयनगरम् ८२,१३९,३२७
विजयनन्दि वर्मा १३६
विजयरंग चोक्कनाथ ३२१
विजयराघव नायक १४५
विजयवाड़ा १३४
विजयश्री १३५
विजयस्कन्द वर्मा १३५
विजयादित्य १३२,१३५,१३८,१४१,२३८
विजयानन्द दास ६८४
विट्टोबा स्वामी ११
विट्ठल देवराय १११
विट्ठलेश्वर ५३९
विद्यानन्द ६६७
विद्यानन्द पण्डित ६१३
विद्यानिधि ४७६
विद्यापति ३४०,४८३,६४१,७१०
विद्या-भूषण ७०७
विद्यारण्य केसरी अर्यलि ३३७
विद्यारण्यर् ११५
विद्याराजीव भव मारय ३१४
विद्यावागीश ५९५
विद्या-वाचस्पति ७०७
विधातासिंह 'तीर' ३६३,४५०
विधुमुखी ७४९
विनुकोण्डा १७७
विनोद सिंह ६८५
विनोदी ठाकुर ५७७
विनोदीलाल ५७७
विपिन चन्द्र पाल ५३२
विपिन विहारी गोस्वामी ५२२
विपिन विहारी चट्टोपाध्याय ५५५,७१८
विप्रनारायण ५७,१५०,३२३
विमलादित्य १४१
विरुद्धाचलम् ५४
विरुरि वेदाद्रि मन्त्रि २२४
विलंचोलैप्पिल्ले ८२
विलैन्द कलत्तूर ८३
विल्लि ८८,११०
विल्लिदासर् ११०
विल्लिपुत्तूर ७,२६,६४,८९,११७
विल्लिपुत्तूरार् १०,१८,११३
विवेकानन्द स्वामी ७३,१२६,५८३
विशाखापट्टनम् १३२,१३९,१६४,१८१,१९५
विश्वनाथ १३२
विश्वनाथ कवि ३०२
विश्वनाथ चक्रवर्ती ४७८,५०७,५१३,५३०,७१९
विश्वनाथ सत्यनारायण १५२,१७८,२१९,२९५
विश्वम्भर (चैतन्य) ५८२
विश्वरूप ५८२,६२१
विष्णुचित्त पेरियालवार २४
विष्णुदास ५८५,६८६
विष्णुदास बाबा ५३४
विष्णुपुर ६२७,६७७
विष्णुपुरी ६७५
विष्णुप्रिया ठाकुरानी ५३८
विष्णु भजनानन्द २५६
विष्णुवर्द्धन १११,१३६,१३८
विस्सा अप्पाराव १८३
वी० कृष्ण स्वामी अय्यर १२६
वीरकूर्च १३५
वीरचन्द्र ५०१,६१९,६२१,६८६,७०३
वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर ६६२

वीर नरसिंहरायलु १७६
वीरनारायणपुरम् ४०,६२
वीरपुरुषदत्त १३७,१४२
वीरप्पपिल्ले ७३
वीरभद्र २६०,४९२,५०१,५३६,६८६
वीरभद्र गोस्वामी ५३६
वीरमम नाथकुडु ३२८
वीरमाम्बा २५५
वीरय्या १८८
वीरराघवय्या २४५
वीरराघवाचार्य ११३,२७५
वीर विनायक दामोदर सावरकर १२७
वीरसिंह ४२९
वीरहम्बीर ६४७,७२४
वीर हाथीश्वर ५६०
वीरारम ५९१
वीरेशलिंगम् १५६,१५९,१६६,१७६,२००,२०३,२२२
वीरेशलिंगम् पन्तुलु २३४,२४७,३२५
वी० वृषागिरिशन २९४
वी० सक्करै चेट्टियार १२१
वुम्करायलु २४२
वृन्दावन ११७,३२९,४२९,४९२,५११,५३९,६७६
वृन्दावनचन्द्र ७०९
वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी ५७७
वृन्दावनदास ४९३,५५१,५६४,५६५,६१६,६७८,
६८५,६८७,६८८
वृन्दावनदास ठाकुर ५३५
वृन्दावन वल्लभ ५५७
वेंकट ५६५
वेंकट कृष्णप्पा २८९
वेंकटदास १७६
वेंकट नरसिंह ३०१
वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु ३००
वेंकटरमण ११५
वेंकटराजलु रेड्डियार ११
वेंकटराम ७२
वेंकटरामस्वामी ८६
वेंकटसुब्रह्मण्यर ४२
वेंकटाचलपति १८
वेंकटाचार्य २७३
वेंकटामात्य दिट्ट कवि ३०२
वेंकटावधानि २२०
वेंकटेश्वर शास्त्री १२३,२१९
वेंकटेश्वर्लु
वेंकनामात्य १७१
वेंकिट्टु ११५
वेंगलार्य १५८
वेंगि १४१
वेंडबिल्लि ११०
वेंगिनाडु १६१
वेटूरि प्रभाकर शास्त्री १६८,१८१,२१३,२३९,२५५,
२६५, ३०२, ३२१
वेणुतुरुपल्लि ३०२
वेणुतुर्लं ३०२
वेणुतुर्लं ओड्डेय्य कवि ३०२
वेदम् वेंकटराय शास्त्री १६२
नेदलि १३७
वेदाद्रि नरसिंहम् ७५
वेदान्त देशिक ९,११५
वेदुल सत्यनारायण शास्त्री ३०३
वेनराजु २९६
वेंकट कृष्णप्पा २२१
वेन्कटपति २४५
वेन्कटपति रायलु २९४
वेन्कटप्पय्या २८५
वेन्कट मन्त्रि १६४
वेन्कटरमणय्या २४७
वेन्कट सुब्ब सोमिदम्मा ३१८
वेन्कट सोमयाजि ३१८
वेन्काद्रि २५६
वेन्कम्मा ३०१
वेन्कय्यामात्य २०७

वेन्काम्बा २५६
वेन्नेलकंटि सूरना १९२,३०५
वेमन १५५,३०५
वेमुलवाड भीमकवि १८०,२३८,२४९,३०६, ३०७
वेम्पराल सूर्यनारायण शास्त्री २४७
वेम्बत्तूर ४३
वेयलि १३२
वेलगपूडि वेंगन्न ३०७
वेलगपूडि वेंगयामात्य १४९
वेलिगन्दल नारय ३०८
वेलिगुण्डि ५६५
वेलिदंडल वेंकटपति ३०८
वेलुन ५२८
वेलूरि शिवराम शास्त्री १६२
वेल्लैप परवै १२२
वे० सु० अय्यर कुट्रालम १२७
वैद्यपुर ५६०,५६२,७१४
वैयापुरिप्पिल्लै ३२
वैरोवाल ४१४
वैष्णवदास ५३५,५६०,५८४,५९१
वैष्णवाचार्य ५२३
वैसाखीमल ३७५
व्यास-आचार्य ६९६
व्यास भट्ट १०८
व्रजा २५
व्रजाचार्य नारायण भट्ट ५०७
व्रजानन्द ६९०
शंकर ३१०,५२५,५८३,६६७
शंकरदास घोष ६९१
शंकरदास पण्डित ६९०
शंकरदास वसु ६९१
शंकरदास विश्वास ६९१
शंकराचार्य ५०४,५०९
शकुन्तला ३०१
शची देवी ५३८,५८२,६२२
शचीनन्ददास ६९१
शठकोप ६४,६८,९७,१३९,१५६,१५८
शठगोपपुरम् १५७
शबरीमलै ११७
शबाजपुरा ४१५
शमशेर सिंह 'अशोक' ३५२
शमीर सिंह ३५२
शम्भुदास १६१
शम्भुप्रसाद उपाध्याय ३३२
शरच्चन्द्र ५३२
शरण ४७१
शरभराजामात्य २७०
शरवण पेरुमाल १०,१८
शशिशेखर ६७१
शान्तमूल १३७
शान्ताचार्य ५२५
शान्तिपुर ४९५,५०१,५२५,५९५,६५६,६७४,७०२
शान्तिमूल १४२
शान्तिश्री १३७
शामदास 'आज्रिज' ४५०
शालंकायन १३६,१४२
शा.लिवाहन १३४
शाह अकबर ६९२
शाहाजी १२०,२६७,३११
शिखरनाथ सुवेदी ३३०,३३१,३३८
शिखामणि ताल्लपाक अनन्तमाचार्युलु १८५
शिखि महति ६५०
शिखि माहिरी ५८३
शिवगंगा ११७
शिवचन्द्र चक्रवर्ती ५२९
शिवचरण वार्ष्णेय ६६५
शिवराम दास ६९३
शिवसिंह ४९५
शिवस्कन्द वर्मा १३५
शिवाई ६९२ ७१८
शिवाचार्य २७४
शिवाजी गणेशन ३६

शिवानन्द ६३९
शिवानन्द आचार्य ६९२
शिवानन्द चक्रवर्ती ५४९
शिवानन्द सेन ६००,६२२,६९४
शिशिर कुमार घोष ६२५,६९४,७१५
शिष्टा लक्ष्मीकान्त शास्त्री २८०
शीरीं-फरहाद ३६८
शुद्धानन्द भारतियार ११७
शुद्धानन्द भारती ११,१२,१५
शुभराज खान ४८६
शुभानन्द राय ६२०
शुशुनिया ४७१,४७२
शूलमंगलम् गोपाल भागवतर् ११९
शेक्सपियर २४९,२५१
शेख ३५९
शेखसादी २३०
शेरगढ़ ५६०
शेरसिंह ३५५,३७०
शेव्वैचूडवार १०
शेषमाम्बा २२०
शेषम् वेंकट ३२१
शेषय्या २८९,३१२
शेषय्या धर्मपुरि ३१३
शेषाचल दास ३१३
शैल मल्लिकार्जुन १३२
शोंठि वेंकट रमरणय्या २२८
शोभनाद्रि २९५
शोलिंगपुरम् १९१
श्याम ३४४
श्यामदास ४७७,५४९,६९६
श्यामदास आचार्य ६९६
श्यामदास चक्रवर्ती ६९७
श्यामदास (दुःखी) ६९७,६९८
श्याम-प्रिया-दासी ६६४
श्याम मल्लिक ६९८
श्याम सुन्दर आचार्य ५३९
श्याम सुन्दरुडु २४६
श्यामाचरण लाहिड़ी ६४२
श्यामानन्द ५४७,५५१,५६८,६१५,६९७,७०२,७०४
श्यामःनन्द चक्रवर्ती ७०३
श्यामानन्द दामोदर २२९
श्यामानन्द दास ६९९
श्यामानन्दपुरी ५२६
श्यामाप्रसाद मुखर्जी २३२
श्यामा शास्त्रुलु १८३
श्रीकान्त ६८७
श्री कुर्मम् १३९
श्रीकृष्णकिशोर गोस्वामी ७
श्रीकृष्णदास ५३४,६७६,७०६
श्रीकृष्णदास बाबा (रनपारीवाले) ७०१
श्रीकृष्णप्रसाद चट्टोपाध्याय ७०१
श्रीकृष्ण मण्डल ५५१
श्रीकृष्णय्या ३०३
श्रीखण्ड ५६३,५७०,६११,६११,६१६
श्रीदाम ५६०
श्रीधर अय्या ११,११९
श्रीधरदास ४७१,४७२
श्रीधर लिंगारियार ११९
श्रीधर वेंकटेश्वर ११९
श्रीधर स्वामी २६२, ५०४
श्रीनरनारायण ६१२
श्रीनाथ १४५,२६०,३०६
श्रीनाथुडु ३१४
श्रीनिवास ५६५,६१५,६१६
श्रीनिवास आचार्य ५४८,५५४, ६०४, ६०८,६१६,
६२४,६४०,६९७,७०२
श्रीनिवासय्यंगार स्वामी १२०
श्रीनिवास राघवन १२१,१२२
श्रीनिवासाचार्युलु ३०२
श्रीपति ६८७
श्रीपुलुमानि १३५
श्रीप्रकाश ७३

श्रीबल्लभ ६३४
श्रीमती वालम् १३०
श्रीमुख ६९८
श्रीरंगम १,६५,७०,२१४
श्रीरंग रायलु २८७
श्रीरंगाचार्युलु २२२
श्रीराम ६८७,६८९
श्रीरामन ३२
श्रीराम पण्डित ५८२
श्रीवत्सचिह्नर् ४०
श्रीवाम ६८७
श्रीविलास आचार्य ७११
श्रीहट्ट ५३९,५८२,५९५,६२२
षाठी ५३६,५३७
संकीर्तनानन्द ५४८
संकुसाल नृसिंह १५७,३१८
संखत्रा ३९१
संगर सव्यसाचि ३१
संजय कविशेखर ४७६,४८५
संतदास ७०६
संतदास तपसी ३४७
संतरेण ४५३
संत सखी ३४७
संतूरु १८१
सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प नायकुडु १४५,३२१
सखालाल ७१७
सड़ैयप्पर ३२
सतीशचन्द्र गोस्वामी ५३१
सतीशचन्द्रराय ६७८
सत्यनारायण २९६
सत्यनारायणदास ६६३
सत्यभानु उपाध्याय ६२२
सत्यभामा ६००,७०१
सत्यराज खान ४९९,६५६,६६७
सत्यबोलु भगवान् कवि ३१९
सदना ४३४
सदानन्द सिद्ध ६४
सदानन्दी ६७७
सदाशिव कविराज ५४५,६२६
सदाशिव ब्रह्मेन्द्रस्वामी ११९,१२३
सनातन ४७१,४८३,४८४,५००,५०१,५०५,५०७,५४९
६२५,७०७
सनातन मिश्र ६४९
सप्तग्राम ६५६
सप्तरी ३३५
समुद्रगुप्त ४७१
सम्मुखम् वेंकट कृष्णप्प ३२१
सरखेल ६०५
सरगोधा ४२३
सरदार शमशेर सिंह ४५१
सरसी बाला ५३०
सर्पबरम् १३९
सर्वानन्द ४८३
सर्वानन्दी देवी ६८१
साँवरी सखी ३४७
साकर मल्लिक ७०७
सातकर्णि १३५
सातवाहन १३४,१३७,१४७
सा० दुरैस्वामी अय्यर १२६
साधुजन/साधुराम ३४४,४५१
सारंगधर २४१,३२३
सारंगु तम्मय्या १५१,२१४,२१५,३२३,३२४
सार्वभौम भट्टाचार्य ५३६,५३७
सालबेग ७०८
सालुव गुन्ड नरसिंह राय २१२
साल्व तिम्मरसु २३९
सावित्री सिनहा ७११
साहब सिंह ४१३
साहिबदास ३४४,४५३
साहिब सिंह 'अरसी' ३४६
साहिब सिंह मृगेन्द्र ३४४,३४७,४२९, ४५५
साहेबगंज ६४२

सिंगन ३२,१७४,१८६,२६४
सिंगना २६१
सिंगमनायक २६०
सिंगम्मा २८०
सिंगयामात्युडु २३६
सिंगरय्य २७६
सिंगराचार्युलु २५८
सिंहाचलम् १३९, १८१
सिंहाद्रि ३२४
सिंहाद्रि अंकना ३२४
सिंहाद्रिनाथ २७५
सिंहाद्रि वेन्कटय्या ३२४
सिआम कवि ३४७
सिकन्दर लोदी ४८६
सिकन्दराबाद २४०
सिद्धराजु तिम्मराजु ३२५,३२६
सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ६३७
सिद्धेन्द्र योगी १७५,१८३
सिन्गन्न पोतना १६१
सिम्सन ७३
सियालकोट ३९१,४५१,४६६
सिलहट ४८५,५२५,५८२,६३२
सिल्ली ६८५
सी० आर० रेड्डी १४०
सी० आर० श्रीनिवास अय्यंगार १८३
सीतम्मा २७०
सीतानगरम् २४७
सीतानाथ ७१५
सीताराम गोस्वामी ७१५
सी० पी० ब्राउन २६२,३१०,३२४
सी० यस० आर० शर्मा १६०
सी० वी० रामन ३२७
सुंकेशुल ३१८
सुकुमारसेन, डा० ५३९,५४८,५५०,५९३,६२३,५७६,६४४
६०४,६३४,६७१
सुख्खासिंह ४१५
सुगुणा २५८
सुदामा ४३४, ४५८
सुनन्दा ५४९,५७०,६६५
सुनाखानी ३३७
सुनाम ३९६
सु० नेल्लैचर १२७
सुन्दरदास ७०९
सुन्दरमल्ल ६१९
सुन्दर राजुलु नायुडु ७२
सुन्दर सान्याल ७१०
सुपरिता ४७५
सुबलचन्द्र ठाकुर ७०९
सुबुद्धि राय ४९२
सुब्बुराय कामत ५५
सुब्बैया १२५
सुब्रमण्यावधानी २०६
सुब्रह्मण्यम् भारती ११,१८,१२५
सुब्रह्मण्य शिवा १२६
सुभद्रै मालैयीडु नाडहम १८
सुभाषचन्द्र बोस ५३२
सुमति ठाकुर ७१४
सुलतान गयासुद्दीन ४८७
सुलतान बिंड रोड ४१६
सुलतान हुसेनसाह ४८६
सुशीला २२०
सूरदास १३,३४५,३५१,३५३,४५८,४६५,४७७
सूरदास (काफी) ३४७
सूरन १७४, २०८
सूरन मोचर्ल २८०
सूरन्न १६२
सूरम्मा ३०१
सूर्यदास ४७६
सूर्यदास पण्डित ५८५,६०५
सूर्यदास सरखेल ६२१,६७५
सूर्यनार्य १५६
संजी ८२

सेखव ३८६
सेट्टि लक्ष्मी नरसिंहम् ३२७
सेतुपति (महाराज) १०२
सेनै मुदलियार ५७
सेल्वनंबी ९०
सैयद मुर्तंजा ७१०
सैयद हुसेन कादरी ७१०
सोढ़ी मिहिरबान ३४४,४५९
सोनपुर ७१५
सोनामुखी ६२५
सोमगिरि ३०७
सोमन २०८
सोमनाथ १५३, ४६०
सोमन्नरायलसीमा २४२
सोमराजु पिल्लै २५१
सोमशेखरम् ३०५
सौंधा ४६१
सौदामिनी देवी ६३१
सौम्य नारायणन १८
स्वरूप दामोदर ४९२,४९३,५८२,५८३,७१०
स्वरूपदास ७११
स्वरूप सिंह ४५५
स्वर्णक्काडु ४१
स्वर्णलली ७११
हंसदासजी ५८४
हंसल दोवि १७१
हकूमतजन (हकूमतदास, हकूमतराय) ४६३
हज़रत अली ३७८
हट्ट ७०६
हनुमच्छास्त्रि २४६
हनुमन्तराव कवि २५३
हम्म सिरिनिक १३७
हरगणा ४२४
हरदत्त शास्त्री ३९१
हरसासिंह चातक ४०८
हरिआणा ४३२
हरिकंडपुरम् ४८
हरिचरण घोष ६९४
हरिचरणदास ४६४, ७१३
हरिचरन ६७३
हरिजी ३७५
हरिदास १४७,५५५,५८२,६२५,७१६
हरिदास (अधिकारी) ६८६
हरिदास (बड़े-छोटे) ७१३
हरिदास गोस्वामी ६३३, ७१५
हरिदास ठाकुर ७१४
हरिदास द्विज ७१४
हरिदास पण्डित ५२६
हरिदासपुरम् ४८
हरिदास राजु १७०
हरिद्वार १४०
हरिनाम ३९७,४६३
हरिपुर ५३०
हरिप्रसाद ५७८
हरिभजनसिंह ३५२
हरिभट्टु २५९,३२७
हरिभट्टु कंबम् मेट्ट ३२८
हरिमति ७१७
हरिमोहन मुखोपाध्याय ६८८
हरिमोहन शिरोमणि ७१७
हरिया जी ४६५
हरिराम ४६५
हरिराम गुप्त ४४६
हरिरामदास ७१८
हरिराम निरंजनी ४६५
हरिरामव्यासजो ५८४
हरिवल्लभ ७१९
हरिव्यासदेव ५८४
हरिश्चन्द्र १८२, २४१
हरि श्यामदास ५९५
हरिषेण ४७४
हरिसिंहदेव ४८२

हरिसुन्दर भौमिक ७१९
हरिहर १४१,७०७
हरिहरपुर ६९८
हरिहर रायलु २४२
हरिहर लभिछाने ३३२
हरीचन्दजी ४२२
हरीराइज्ञी ३४७
हरीसिंह ३७०
हरिसिंह नलवा ३६८
हर्षनाथ उपाध्याय खनाल ३३३
हलायुध भट्ट ४७२
हविगंज ७०६
हस्तिवर्मा १३६
हा० कि० वालम् अमैयार ११,१२,१९,१२९
हाजरा ५७८
हाटपत्तन ६१८
हाफ़िज़ बरखुरदार ३४७,४६६
हाल १३७
हालास्यम् १२
हालिशहर ६०७
हितध्रुवदास ६८५
हिमायतपुर ५२९
हिम्मतसिंह सागर ४६८
हिरण्य पण्डित ६००
हिरदेराम ३५९
हिसार ४२३
हीनव्याकरणी विद्यापति ३४०
हीर हुसैन ३८८
हीरालाल (लखनऊवाले) ४५०
हीरावती ५४४
हीरासिंह ४५०
हुगली ६४७
हुसेनशाह ४८३,४८४,४८९,६५६,६७२,७०७
हेडी ४५३
हेतमपुर ५७८
हेमन्तकुमार घोष ६९४,६९५
हेमन्तकुमारी ४२४
हेमलता ठकुरानी ५८१
हेमलता देवी ६४४,७०९
हेमा ११०
हेमाम्बाल १०९
होमनाथ उपाध्याय खतिवड़ा ३३०,३४०,३४१,३४२
होशियारपुर ४३२,४५५
हृदयराम भल्ला ३४४,४६९

●

ग्रन्थानुक्रमणिका

अंगश्रृङ्गारम् २७५
अंनेण-मंजरी ६०५
अकिञ्चन-सर्वस्व ६११
अगत्तियम १
अग्निकानन ५२९
अग्निपुराण ४७५
अच्च तेलुगु भागवतमु १५६
अच्युताभ्युदयमु २८२
अठिसारा ५२५
अथर्वण-छन्द १५४
अद्भुत नाटक ४३०
अद्भुतोत्तर रामायण २४१
अद्वैतप्रकाश ५२५,५३९
अद्वैत-मंगल ६७३,७१३
अध्यात्म-रामायण १५६,३८७
अध्यात्म-श्रृंगार-कीर्तनलु २१४
अनंग-मञ्जरी-सम्पुटिका ६६६
अनन्द भारती १८
अनुराग-वल्लरी ७०३
अनुरागवल्ली ६४७
अन्तर्वेदी महात्म्यम् २५६
अन्नमाचार्य-चरित्र २१४,२३९
अपराधिनि ३०४
अप्पकवीय-भावप्रकाशिका २८७
अप्पकवीयमु १६८
अभिज्ञान-शाकुन्तलम् १०३,२५१
अमर कहानियाँ ४०८
अमरकाव्य ४८३
अमरकोश १८६
अमीरप्रकाश ३५६
अमृत-शर्मिष्टम् २९६
अम्बरीष-चरित्र २५६
अम्बरीषोपाख्यानमु २७०
अरण्यपर्व २४२
अरशी-दरसन ४२२
अरुलिच्चेयल रहस्यम् २३
अर्जुन-नाडहम १८
अल्लि-अरशाणि-नाडहम १८
अवतारदर्पणम् २५३
अश्वमेघपुराणम् १०,१८
अश्वसंहिताप्रकाश ३५५,३५६
अष्टकालीय एकान्नपद गीतावली ५७२
अष्टदिग्गजाल सीसालु २४६
अष्टप्रबन्धम् १८,९४,९६
अष्टभाषा-दण्डकम् २१४
अष्टमहिषी-कल्याणम् २१४
अष्टश्लोकी-व्याख्यान ७०७
असपनामा ४४८
अहम् गीत २
अहल्या-संक्रन्दनम् ३२१,३२२,३२३
आईन-ए-अकबरी ४१३
आचार्य विजयम् २८३
आचार्यं हृदयम् २४
आत्ममृति २४६
आदि झूमर संगीत ६८५
आदित्य-पुराणम् २४३
आदिनारायण-चरित्र २०५
आदिपर्व,उद्योगपर्व,वनपर्व (नेपाली) ३३२
आदिरामायण ४५९
आनन्दचन्द्रिका टीका ५२०
आनन्द-रंगराट्-छन्दे २४८,३१७
आनन्दलतिका ६८२
आनन्दवृन्दावन-चम्पू ४९३,५०३
आन्ध्रकवि-तरंगिणी १६६,२१५,२८९

आन्ध्र-कवित्व-चरित्र २९१
आन्ध्र-कवुल-चरित्रमु १५७,२२४,२३४,२३९
आन्ध्र-नायक-शतक १७१
आन्ध्र-पौरुष २९७
आन्ध्र-प्रतिभा २५३
आन्ध्र-प्रशस्ति २९६,२९७
आन्ध्र-भगवद्गीता १६९
आन्ध्र-भाषा-भूषणम् २७३
आन्ध्र-महाभागवत २६२,२६६
आन्ध्र-वाङ्मयमु कृष्णकथा १४८
आन्ध्रविष्णु १३४
आन्ध्र-शब्दचिन्तामणि २३८,३०७
आरण्यक ३०१
आरती ४३८
आरती स्री क्रिशन दी ४३७
आराधना ३०३
आरायिरप्पडि ९२
आर्यराज बृहदन्नन् २
आर्यासप्तशती ४७२
आर्वेटि बुक्करायलु २३३
आलमकेलि ३५९
आलवारगल् कालनिलै १००
इखलाके-मुहसनी ४१३
इन्दिरा ३०१
इन्दुमती कल्याणम् २५६,२६९
इन्दुशतकम् २५४
इन्द्रविजयमु २३८
इरुसमय-विलक्कम् ४९
इलक्कियमलरगल् १२२
इलम्-पेरु-वषुदियार् ३०
इश्कलता ३४७
इनसान बोलिआ ४२२
उज्ज्वल-नीलमणि ४७३,४८५,४९२,५१३,५२०,५४०,
    ५७४,६०५,६७३
उत्तरबंग ६१५
उत्तर भक्तमाल ३५५,४४२
उत्तर रामायणम् १६६,२०६
उत्तर हरिवंशम् २००,२४२,२४३
उत्सवमाला ३४७
उदयनोदयम् २४४
उद्दण्ड रामशतकम् २२९
उद्धवदूत ७०७
उद्धव-गोपी-संवाद ३६६
उद्धव-संवाद ५४७
उद्धव-सन्देश ४८४,६७३
उद्भटाराध्य-चरित्र २२३,२२८,३१०
उर्वशी २३२
उषा-परिणयम् १७८,२१४,२८०,२८१
ऊषा अनरिध ३९२
ऋतुसंहार २९६
एकवीरा २९६
एकादश ३२८
एकादश-द्वादश स्कन्ध २८८
एकादशी माहात्म्य २७४
एकान्तपद ५७५
एकान्तसेवा १९९,३०१
एलाय महात्म्यमु २२०
ऐश्वर्यामृत-काव्य ५३५
कंस-वध ४७४
कंसवध नाटकम् ३३२
कंस-विजयम् २५५,२९५
कड़चा ६६६
कडप ३१८
कडुपुतीपु ३०२
कडुवन् इल वेयिननार् ३४
कण्टक ६४५
कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु ६
कण्णिन् नुण् चिरुत्ताम्बु ७१
कथा कान्ह-गुजरी दी ३४७
कथा क्रिशनचन्द्रजी की ३४४,४५९
कथा नृपकन्या की ४१३
कथा राजा फूल की ४१३

कथा राजा हरिचन्द की ४१३
कथासरित्सागर ३१८
कन्दर्पकेतु-विलासम् २२४,२२८
कपोत-कथा ३०२
करिशन-उपदेश ३६३
कर्णचरित्रमु २०७
कर्णानन्दरस ६५४
कर्णामृत ५८४
कलगीधर चमतकार ४२९
कलापूर्णोदयम् १५१,२४७,२४९,२५१,२८०
कलित्तोगै २
कल्पतरु ६१७
कल्पलता ३०१
कल्पवल्ली ६४४
कवि अरसर् कण्ड कवितै १२२
कविकर्णरसायन २३९,३१८
कविचकोरचन्द्रोदय १५६
कवितत्वविचारमु १४०
कविवल्लभवचनिका ४६४
कवीन्द्रप्रकाश ४१५
कवीन्द्रभेदावली ४१५
कवुल-चरित्रम् ३०२
कवुलु-शतक ३१३
कष्ट कमला २८६
कसूर ४३०
कहि-कुमरनीआं ३६२
काकुलम् १३९
काटमराजु कथा ३१६
कान्ह गुजरी का झगड़ा ३४४,४०३
काफ़ियाँ ३६२
काफ़ी ४३०
कामशास्त्रमु ३१६
कामसूत्र १३५
कामिनी दृष्टि शृङ्गारम् २७५
कालपट्टनम् ३१४
कालाप्रतापमाला (नेपाली) ३३२
कालीदह ६४८
कालीय-मर्दनम् २९५
काविय अरंगिल् १२२
काव्य-कुसुमावलि ३०१
काव्य-कौतूहल ३६५
काव्यसार-वर्णनम् २५५
काशीखण्डम् १८४,२७९,२८०,३१५,३१६
काह्नकथा ४६१
किंकिणि ६३१
किन्नेर-सानि पाटलु २९६
किरण ५१३
किरनदीपिका ६०६
किरातविलासमु ३१२
किरातार्जुनीयम् २१६
किसानदा जीवन ३६३
किस्सा इशक-माशूक ३६२
किस्सा रेलगड्डी ३६२
कीचक-वध १८२,३२७
कीर्तनगीत-रत्नावली ६२८
कुंडलिया-संग्रह ४१८
कुक्कुटेश्वर-शतकम् १७५
कुचेलोपाख्यान १०,१८
कुमाराभ्युदय २९२,२९६
कुम्भराणा २३०
कुरिंजि-गीतो २
कुरुक्षेत्र-माहात्म्य ३६५
कुलजम ३२९
कुलिआत-मिलखीराम ४३७
कुवलयमाला १३१
कुवलयाश्वचरित्र १६१
कुशलव १८२
कूर्मपुराण २१
कूलीआं छमकां ३६३
कृषीवलुडु २३०
कृष्णकर्णामृत ५४९,६५४

कृष्णकौतूहल ३४४,३४७,४५६
कृष्णक्रीडा-निकुञ्ज (नेपाली) ३३२
कृष्णचन्दिर-पारिजात-लीलै १८
कृष्णचरित्र ३३०,३३५,३४१,६५६
कृष्णचरित्रकाव्यम् ३३२
कृष्णचरित्र नाटक ३३२
कृष्ण-तुलाभारम् २७३
कृष्णदण्डकम् १७५
कृष्ण-द्वादशमञ्जरी १२०
कृष्णनतिरुक्कोइलकविदै १८
कृष्णन दूदु नाडह्म १८
कृष्णपक्षम् २३२
कृष्णपदामृतसिन्धु ५६७,६०३
कृष्णप्रेमतरंगिणी ६४०
कृष्णबंसरी ३९९
कृष्णभुजंगम् २४६
कृष्णमल्ल-कथा १८७
कृष्णलीलातरंगिणी ४२,७५
कृष्णलीलामृतम् २४६,२९२,६३४
कृष्णलीलाविलासमु ३१२
कृष्णविलासम् १८,२९५
कृष्णशतकम् २१८,२४५
कृष्ण-सुदामा ३९०
कृष्णानदी-माहात्म्य २४१
कृष्णापदामृत ५४७
कृष्णार्जुन-चरित्र २७०
कृष्णार्जुन-दर्शन १२५
कृष्णार्जुन-संवाद २४०
कृष्णावतार ३८२,३८४,३८५
कृष्णाश्रय ३०७
कोइल कू ४२३
कोक्कोक २७६
कोमलगीता ३३२
कौतुकालंकार प्रहसन काव्य ७१७
कौमुदी-कन्दर्प १८०
कौशल्या-परिणय २९२
क्रिशन-कथा ४२१
क्रिशनजीदा ४४३
क्रिशन-लीला ३६२,३७०
क्रिसनखण्ड ४५५
क्रीडाभिरामम् ३०२,३१६
क्षणदा-गीत-चिन्तामणि ४९८,५५४,५८७,६०६
क्षणदा-गीत-मगल ५५४,६४४
क्षमाषोड़सी ८८
क्षेत्रय्या पदालु १८४
खगमंजरी ३४४,३८०
खुशीराम दा क्रिशन सुदामा ३७९,४४९
खुशीराम दी गऊ माता ३७९,४४९
खूनदा पिआला ४३७
खेमारक्कुनि २४६
गंगा-पार्वती-सवादम् ३१२
गंगास्तोत्र ५३६
गजेन्द्रमोक्षम् १८,२०५,२६३,२६६,२८२
गणपतिवर्णन १५९
गणिकागुणप्रवतन-तारावली २७६
गद्यत्रय १०७
गयोपाख्यानम् १९४,२००,२४०
गरीबदा-जीवन ३६३
गरुड-पुराणम् २४८,२४९
गर्गसंहिता ४६४
गवपाठवृत्ति ५९४
गांगेयोपाख्यानम् ३०७
गाथासप्तशती १३७,१४४,४७२,४७६
गानभंगमु २४६
गिरधरलीला ३४४
गिरिजा कल्याणम् २४९
गीतकेशव ३३२
गीतगोविन्द १७६,३२९,३४०,३४४,४१८,४६४,४७१,
४७३,४९४,५०३,५५४,५५७,७१०
गीतमंगल ५५७
गीतमंजरी ६५१
गीतवाणी ३४०

गीता ३३०,३३१,५०७,७०६
गीता का अनुवाद (नेपाली) ३३२
गीताञ्जलि १९९
गीता-भाष्य १०७
गीतामृत ५७४
गीतावली ४८४,४९४
गीतासार ३३२
गीरतमु २२०
गुदुड्ड २३२
गुरबिलास ३६८
गुरुग्रन्थसाहिब ३८१,४२४
गुरु नानक दे गीत ४०८
गुरुप्रणाली ४६१
गुरु-बंसावली ४६१
गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ ३५२
गुरुरत्नावली ४३०
गुरु-शिष्य-संवाद-पटल ६१७
गुलाबिपुव्वु २४६
गुलाबी तोटा २३०
गुलिस्ताँ २३०
गोपालकीर्तनामृत ६७१
गोपालक्कृष्णशतकमु २६९
गोपालचम्पू ४७७,४९२,६०५
गोपालचरित ४७७,६७१
गोपालशतक १७१
गोपालस्वरूपाङ्ग काव्य ३३२
गोपिकागीत ३००
गोपिका-स्तुति (नेपाली) ३३२,३३३
गोपिनीको श्लोक (नेपाली) ३३२
गोपीआं का ३४७
गोपी-उद्धव-संवाद ३४४,४०६
गोपीगीत ३३२
गोपीचन्द ३७०
गोपीनाथरामायणमु १९०
गोपीनाथ-विजय ६७१
गोल्ल-कलापमु १७३
गोवर्द्धनोद्धरण २९५
गोविन्दगीत ३३३,३७४
गोविन्दगीता ११९,३७५,४१८
गोविन्ददास का कड़चा ४९४
गोविन्द-भाष्य ५०७,५०९
गोविन्द-मंगल ४७७,४७८,६९८
गोविन्दरतिमंजरी ५८७
गोविन्द लीलामृत ४७८,४९३,५४९,५५०,६५४
गोविन्द-विलास ६५४
गोष्ठियाँ ४५९
गौतमी-माहात्म्य १५६
गौरगणोद्देश्यदीपिका ५०१,५७०,६०६,६२३
गौरगुणानन्द ६७८
गौरतरंगिनी ५९८
गौरपदतरंगिनी ५११,५७३,५८६,६२२,६२८,६४०,६५०,
६७८
गौरपदावली ४९८
गौरांगचन्द्रिका ४९७
गौरांगविजय ४९३,६४०,६९१
गौरांगनत्त्वकल्पतरु ६५६
गौरांगाष्टकलिका ४९३
गौरामंगल ४१३
गौरुद-तरंगिनी ६०२
ग्रन्थ हरियाजी का ४६५
ग्रीष्मविलास ३५६
घटिकाचल-महात्म्यमु २२८
चंदामामा ३०१
चक्रमञ्जरी २१६
चक्रलाञ्छनविधि २७३
चण्डोकाहानी ४८१
चण्डीमंगल ६४९
चन्द्रकिरण ४१३
चन्द्रदूतशतकम् २५४
चन्द्रप्रभाचरित्रमु २२०
चन्द्रमुखीगर्वभंगमु १६७
चन्द्ररेखाविलाप १७४

चन्द्रहास १८२
चमत्कारचन्द्रिका ४७८,६१७
चमत्कारमंजरी ३२५
चम्पकारण्य-महात्म्यमु २०१
चाँगड़ोपोता ५८३
चाटुप्रबन्ध १७४
चाटुवुल २४६
चामुण्डिकाविलासमु २३८
चारिबागि-पंजाब ४०४
चिग्योत्सव-प्रबन्ध ४३
चित्तबोधशतकम् २०७
चित्रकेतोपाख्यानम् २५५
चित्रभारतम् १९३
चित्रहरिश्चन्द्रीयम् ३२७
चित्रा २५३
चिरविभव-शतकम् १७५
चेलियलिकट्ट २९६
चेसुकुन्न वारिकि चेसु कोन्नन्त २४६
चैतन्यचन्द्रामृत ५३६
चैतन्यचन्द्रोदय ४७३,४९३,६२८,६५७
चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी ६२८
चैतन्यचरित ६७७
चैतन्यचरितामृत ४७८,४९३,५०१,५०२,५०८,५११,
५१४,५१५,५३७,५४३,५४५,५४९,५६०,५८०,५८४,
५८६,६१०,६२६,६३२,६४६,६४८,६५१,६७६,६८६,
६९०,६९४,७१३,७१४
चैतन्यभागवत ४९३,५३८,६४८,६७८,६८८,६८९,७०७
चैतन्यमंगल ४९०,४९३,६७७,६७८,६८२,७१४
चैतन्यलीलादर्शन ६१४
चैतन्यशतक ५३६
चैतन्यसन्दर्भ ७१७
चौडप्पकृत शतक २७६
चौबोले क्रिशनजी दे ४४४
छटकार ४०२
छन्दरत्नावली ४६५
छन्दोदर्पण १५४
छप्पयभेदावली ४१५
जंगनामा ३६८
जथ्येदार-साडा ३६३
जनमार्तण्ड ५९४
जनार्दन-शतकमु २६९
जन्मभूमि १२७,२४१
जन्मसाखी गुरुनानकदेव ४५९
जन्माष्टमि २८६
जन्माष्टमी-तत्त्व ४७२
जलक्रीडलु ३१२
जानकी-परिणयम् १७४,२०६,२८२
जाम्बवती-कल्याणमु १७८
जीवकचिन्तामणि ३,१५
जीवनलहिरां ४२२
जैमिनीभारतम् २५१,२५३,३२१,३२२,३२३,६८०
ज्ञानप्रकाश ३७४
ज्योतिषप्रकाश ४१३
झगड़ा जट्टी ते खत्राणी दा ४६१
झगड़ा मुंदरी दा ४२७
झाँसी की रानी २९६
झूमदा पंजाब ३६३
टीका-सर्वस्व ४८३
तंजाऊर-आन्ध्र-राजुल चरित्रमु ३२१
तंजाऊरु-तेलुगु-कवुलु २८०
तत्त्वत्रयम् ८२
तत्त्वनिवास ६८९
तत्त्वसन्दर्भ ६०५
तन्त्रसार ४७३
तमिल-कोश १०१
ताण्डव-कृष्ण-भागवतमु २०६
तारकब्रह्म-राजीयमु १९७
तारक ब्रह्मराम-शतकम् २७३
तारावलि १८७
तालचिन्तामणि १८०
तियां ४१५
तिरक्कुरल ४२

तिरुकुरुन्ताण्डकम् ६
तिरुच्छंद विरुत्तम् ७
तिरुनेडुन्ताण्डकम् ६
तिरुमालै ५९
तिरुवन्दादी ६२
तिरुवाय्मोलि ७१
तिरुवाय्मोषि ६
तेज़ तरंगा ३६३
तेज़ तराने ३६३
तेरीआं तांघां ४२२
तेरीआं प्रेम कहानीआं ४२२
तेलुगुभाषलो छन्दोरीतुलु २८७
तेलुगु-मेरुगुलु ३०२
तेलुगु लोटिट्टु-कवित्वमु २८७
तेलुगु-वाङ्मय-कृष्ण-कथा १६०
तेलुगु संकीर्तन-लक्षणम् २१४
तेलुगु-माहित्यमु २८७
तेलुगुनीडलु २५३
तोलिकाप्पियम् १४,६०
त्याग-विनोद-चित्र-प्रबन्धम् ३१२
त्यागेशपदालु ३१२
त्रिपुरारिदण्डकम् २४६
त्रिलिंग-शब्द-शासन १५४
त्रिविक्रम-विलासमु २८८
त्रिशती-अन्दादि ८६
त्रिशूल २९६
थरगोत्र-प्रवरावली ३३८
दंडमालिका ६७१
दण्डात्मिकालीला ५४५
दधिखंड ६८९
दरोपदी दी फरियाद ४०९
दरोपदी-लीला ३९२
दरोपदी सयंवर ३९२
दशमस्कन्ध ३४४,३८२
दशमस्कन्ध भागवत ३७४
दशरथराजनन्दन-चरित्र २७३
दशावतार-कथा-संग्रह १५५
दशावतारचरित्र २३४,३२३
दशावतारप्पदिकम १८
दस-गुरु उसतति ४६१
दानकेलि ७०७
दानकेलिकौमुदी ४९२,६७३
दानचरित ६५८
दानलीला ४७७
दानलीला-चन्द्रामृत ६५४
दामनी नाटक ४२३
दासग्रंथावली ५४७
दास-पाण्डुलिपि ५६१
दास-हस्तलिखित-संग्रह ५८७
दिल दे छाले ४०८
दिव्यप्रबन्धम् ५,३०,६५,९१
दीप-कलिका २५३
दीपकोज्ज्वल ६८३
दीपान्विता ६८३
दीपावलि ३०३
दुरद-दरपण ४४८
दुर्गाकवच ३३१,३३८
दुर्लभसार ६८०,६८२
दूतीआं-कान्हगूजरीकीआं ३६८
देवकीनन्दनशतक २०५
देवीत्रिशति २९६
देवीभागवतमु २२०
देह-कडचा ६१७
देहनिरूपण ६८२
दैविकता और आध्यात्मिकता ७५
दोहाभेदावली ४१५
द्राक्षारामम् १३२
द्राक्षासम २७४
द्रोपती दी फरियाद ४१०
द्रोपदीचरित्र ३४४,४२४,४२५
द्रौपदीकल्याणम् ३१२

द्रौपदीपरिणयमु १५६
द्रौपदीवस्त्रापहरणमु १८२,२७०
द्रौपदी-स्तुति (हिन्दी) ३३७
द्विपदभागवतकाव्य २०७
द्विपदभारतकाव्य १५२
द्विपदरामायणम् १७०,२१३
द्विपदहरिवंश २१६
धनञ्जय-विजयमु ३१६
धनाभिरामम् २७३,३०१
धमालीपद ६६४
धर्मचक्र २९६
धर्मपालुडु ३०४
धर्मपुरि नृकेसरी ३१३
धर्ममंगल ५८९
धार्मिक गीत ४०४
धुखदे-धूंएं ३६३
ध्रुवचरित्र ४५२
ध्रुवागीति ४९४
ध्वन्यालोक ४७६
नक्षत्रमालिका २८८
नचदा-पंजाब ३६३
नटनगोपाल संकीर्तनम् ६५
नट्रिणै २ .
नन्दक-स्तवम् २४८
नन्दनन्दन चरित्रमु ३१६,३१७
नम्मालवार-चरित्र ९७
नरसिंह-शतकम् २८८
नरहरिठाकुराष्टक ७०३
नरहरि-रघुनन्दन-शाखानिर्णय ६७८
नरहरिशतकम् ३१३
नरिन्द्र-विलास ४३९
नरोत्तम-विलास ५७६,५८६,६०४,६३६,६९३
नर्तनशाला २९६
नलचरित्र १८१,१९१,२८२
नल-यादव-राघव-पाण्डवीयम् २७३
नवनाथ-चरित्र १९१,३१४
नवीन-साहित्य ४०२
नव्यान्ध्र-साहित्य-वीथुलु २५३
नाच्चियार-तिरुमोलि २७
नाटकचंद्रिका ६७३
नाटकशास्त्रं २७३
नाट्यशास्त्र ५१७
नानाराज संदर्शनमु २२०
नाममाला ३६५
नामरत्नमाला ६४८
नायिकारत्नमाला ५९६
नारदपाञ्चरात्र ४७३,६८०
नारदीय पुराण २५३
नारनवेली ४२३
नारसिंह पुराणम् २५९,३२७,३२८
नारायणशतकमु २६१
नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम् ११,१६,१७,१०३
नासिकेतोपाख्यान ३१४
ना० हालास्यम १२९
निकुंजरहस्य ६८२
नित्यानन्द-वंश-विस्तार ६२०
निमाई-संन्यास ६९६
निरंकुशोपाख्यानम् १६८
निरपखवाक ४१५
निरमल-पन्थ-प्रकाश ४१५
निरोष्ठ्य-शुद्धान्ध्र-सीताकल्याणम् २७३
निर्यामितत्त्व ६४७
निर्वचनोत्तर रामायण २१८
निषल १२२
निष्ठाविधायना ५३२
निहालसिंह-प्रताप-पंचाशिका ४६४
नीतिरत्नाकर ३६५
नीतीसूतर ४२३
नीरद ३०१
नीलाम्बरि ३०१
नीलाविवाहम् २८३
नीलासुन्दरी-परिणयम् १७५,३०३

नूरीजोतां ३६३
नृसिंह-चरित्र ३४१
नृसिंह-पुराण १६१,१६३,३०६
नैड़दम् २१
नैषध पारिजातीयमु १८०
नौकाविजय २२९
पंचदशी संग्रह ४१८
पंचरत्न ३६५
पंचरत्न-प्रबन्धम् ३१२
पंजाब ऑन दि ईव आफ फर्स्ट सिक्ख वार ४४६
पंजाबी वारां ४००
पञ्चकन्यापरिणयम् २६७
पञ्चवटी पर्यालोकन २५३
पण्डिताराध्य-चरित्र ३१६
पतंगयात्र षण्णवति २४६
पद-कल्पतरु ४९८,५३७,५४३,५४९,५५४,५५७,५६५,
  ५८१,५८७,५८९,६०२,६०९,६१८,६२६,६२७,
  ६३२,६४०,६४५
पदकल्पलतिका ६०४
पदतरंगिनी ५९८
पदरत्नाकर ५८७,६९३
पदरत्नावली ५५४,५८७,६०९,६२२,६२८,७०८
पदरससार ५८७
पदसमुद्र ६४७
पदामृत ५९७
पदामृत-समुद्र ४९६,५७३,६६१,७०९
पदावली ३४७,४५२
पदिनेणकील्कणक्कु १४
पद्मगिरिनाथर तेन्डूल्-विडु-तूदु ८१
पद्मपुराण २२६,२७१,४७६,५०७,५७१
पद्मावत ३७९,४८६
पद्मावती परिणयम् १५९
पद्मावली ४८५,६७३
पन्ड्ला तोटा २३०
परकीयारसस्थापन-सिद्धान्त-संग्रहम ५५४
परछावें ४०२
परतत्त्व-रसायन १५८,१५९
परमभागवत-चरित्र १७०
परमयोगि-विलासमु १५०,२१४,२१५,२८५,३२६
परमानन्दप्रबोध ३५८
परमार्थसंदर्भ ६०५
परशुरामविजय ४८८
परिपाड़ल् २
पल्नाटि-वीर-चरित्र ३१६
पवनदूतम् ४७२
पांचालीशपदम् १२,१८,१२५,१२७
पाखण्डदलन ६६६
पाञ्चालीप्रबन्ध ४९३
पाण्डवजननम् २२०
पाण्डव-प्रवासमु २२०
पाण्डवराजसूयमु २२०
पाण्डवर-शूदाट्टम १८
पाण्डव-विजयमु २२०,२२८
पाण्डवाज्ञातवासमु २०६
पाण्डवाश्वमेधमु २२०
पाण्डुरंग-महात्म्यमु २२८
पाण्डुरंग-महात्म्यम् १५०,२२३,२२६
पादुका-पट्टाभिषेकमु १८२
पानशाला २३०
पारिकादै १०३
पारिजात-कथा १८०
पारिजात-परिणयम् १८
पारिजातहरण ४८२
पारिजातापहरणम् ७५,१७३,१८१,२३६,२४१,२८२,२९५
पार्थसारथिशतकम् २०७
पार्वतीकल्याणम् ३१२
पासुरम् ४६
पिनासको कथा ३३८
पिल्लैत् तमिल ९
पिल्लैप्पाट्टु ९
पीताम्बरदासचरित ६६०
पुण्यपुथी ५३१

पुरम् गीत २
पुराणम् २१
पूतनाहरणम् २९५
पूरब दा चानण ४०२
पूर्णप्रकाश ४१३
पूर्वकर्मशतक २४१
पूर्वहरिश्चन्द्रीयमु २२०
पेण्णिन पेरुमै ५६
पेरियतिमड़ल ६
पेरिय-तिरुमोषि ६
पेरियालवार-तिरुमोलि ९०
पेरुमाल-तिरुमोषि ६
पोथी बियोग लील्हा स्री राधाकिशन ४११
पौण्डरीकविभव २२६
प्रकरणकलानिधि ४१८
प्रणयकोपमु ३०१
प्रतापचरित्र १८१
प्रतापाक्बरीय १८२
प्रतिज्ञापालनमु ३०१
प्रबन्धम् ९
प्रबन्धरत्नाकरम् २८४
प्रबोधचन्द्रोदय २४०,३८७
प्रभावति ३०१
प्रभावती-प्रद्युम्नमु २२०,२४८,२५०,२५१
प्रयोगरत्नाकर ३१७
प्रह्लाद-चरित्रम् २९५,४५९
प्रह्लादभक्तविजय २२९
प्राकृतपैंगलम् ४७६
प्रातः-स्तवम् १५२
प्रार्थना ६८२
प्रीतमछुह ४२३
प्रेमकहानी ४२३
प्रेमदी वार ४६१,४६२
प्रेमपचीसी ४६०
प्रेमपयोदधि ४५५
प्रेमपरावधिस्तोत्र ६५७
प्रेमभक्ति-चन्द्रिका ६१७
प्रेमभक्ति-रसछवि ६११
प्रेममयि-राधा १९९
प्रेमरत्नावली ५४९
प्रेमरस-चन्द्रिका ६१७
प्रेमविजयमु ३०४
प्रेमविलास ४८०,५२५,५३९,५४७,५७६,६०४,६०६,६१७,
  ६२०,६३०,६३६,६४७,६५९,६६४,६९५,६६६,
  ६८७,७०२,७०३,७०४
प्रेमसागर १०८
प्रेमाभिरामम् २७३
प्रेमामृत ४७७
प्रेमीभागवत ११
प्रौढ़ाश्रृङ्गारम् २७५
फागपचीसी ३५६
फुटकर गज़लें ३६२
फुटकल पड़े ३४७
बंगला-रामायण ४७२
बंगला-साहित्येर-इतिहास ५३९
बंसी दी तान ३९९
बधीचले ४०२
बबीहाबोल ४२३
बभ्रुवाहनचरित्र २४१
बलरामदास ठाकुरेर जीवनी अते पदावली ६३३
बल वे दीवड़िआ ४०४
बहूठाकुरानी ५४१
बारहमासा ६४०,६९१
बारहमाहा ३६५
बारांमाह क्रिशनजी दा ३४७
बारांमाह बैंत ४४४
बारांमाह बैंत चबोले क्रिशनजी दे ३४७
बारांमाहां-वियोगी ४२४
बारांमाहां-संयोगी ४२४
बारांमाहा ३४७,३६२,३६८,३७५,३८८,४०४,४१४,४१५,
  ४२४,४३९,४४३,४५६,४६३,४६६
बारांमाहा केसो का ३४७

बारांमाहा क्रिशनवियोग ४४१
बारांमाहा नथो भय्ये दा ४३२
बारांमाहा बंसीवाले दा ४४९
बारांमाहा श्रीकिशुनजी का ३४४,३४७,४३७
बारामासा श्रीकृष्णजी ४५६
बारामाहें ४११
बालकृष्णशतकमु २६९
बालगोपालवाणी ३३४
बालगोपालविलासमु ३०३
बालगोपालशतकम् २५४
बालभागवतम् २३३
बालभारतम् २५९
बालरामायणमु २२०
बाललीला-सूत्र ६७५
बिहारीसतसई ३७४
बुद्धचरित ४७४
बुद्धचरित्रमु २२०
बुद्धबोधसुध २४७
बृहत् कृष्णचरित्र ३३८
बृहत् भक्तितत्त्वसार ६५८
वृहद्भागवतामृत ५०७
वृहद्संहिता ६८०
बेकल दीआं गलीआं वे ४२२
बेकल दे गीत ४२२
बेज़र दे भजन ३९२
बैंत कांन-गुजरी दे ३४७
ब्रजबुली साहित्य का इतिहास ६०४,७११
ब्रह्मवैवर्त-पुराण १९४,१९७,४६५,४७२,४७३,४७६,५०३
ब्रह्मवैवर्त-पुराण-सटीक ४६४
ब्रह्मसूत्र १७
ब्रह्मसूत्र-भाष्य १०७
ब्रह्माण्डपुराण १६३
ब्रह्माण्ड-पुराणमु १७१
ब्राह्मण-सर्वस्वम् ४७२
ब्रिटिश एम्पायर एडिशन आफ इंगलिश पोइट्री २३०
भँवराकली ३७०
भक्तकल्पद्रुमशतक १७१
भक्तदिग्दर्शिनीतालिका ५४९
भक्तनामावली ६८५
भक्तमाल ६८५
भक्तवत्सल-लीलाविलासम् ३१२
भक्ति-उद्दीपनी ६१६
भक्ति-चिन्तामणि ६८९
भक्ति-रत्नाकर ४८०,५२६,५३४,५३९,५४७,५५२,५६०,५७५,६२४,६३६,६४७,७०२,७०४
भक्ति-रत्नावली ६१७
भक्ति-रसामृत-सिन्धु ४७८,४८५,४९२,५१७,५२१,६०५,६७३
भक्ति-सन्दर्भ ६०५
भगतमाला सटीक ४४८
भगत-सुदामा ३६४
भगति-भाव-प्रभाकर ४५६
भगवद्गीताशास्त्र १९०
भगवत्-प्रभाव ३८९
भगवत्-रत्नाकर ३५६
भगवत्संदर्भ ६०५
भगवद्गीता १७,३७,१०३,१९०,२२१,२२२,५०४,६३८
भगवद्गीता भाषा ३९४
भगवद्-विषय ९२
भजनामृत ३९२
भद्रायुराम्युदयं २८३
भरतनाट्यम् १७२
भर्गशतकम् १७५
भवसागरसेतु ४१५
भविष्यत्तु-वधूसरा २४६
भविष्यपुराण ६८०
भागवत ३,९,१५,१४४,१६३,२०६,२०७,३०८,३२८,३३०,६०२,६८०,७०६
भागवत का अनुवाद (नेपाली) ३३२
भागवत-तत्त्वमञ्जरी ४७२
भागवत-दशमस्कन्ध ४१४

भागवत-पुराण १५,१८,४७५,४८३,५०४,६३०
भागवतसन्दर्भ ५११
भागवतामृत ७०७
भागवद-अस्माने १८
भानुमद्विजयम् ३०७
भामाकलापमु १७३
भारतकथासंग्रहम् २८२
भारतभागवतादि २८०
भारतम् १०,१८
भारतवीरुडु १८८
भावरत्नमाला ४१८
भावरसामृत ३८७
भीमखण्डम् १९६
भीमलिंगशतकम् २७०
भीमेश्वर-पुराण ३१४,३१६
भीष्मुडु १८८
भुवि एषुपदु १०३
भूषणभारती ४६५
भोगिनीदण्डकमु २६१
भोजराजीयमु १५४
मंगलाद्रि-नरसिंह-शतकम् २०७
मगिष-मरम् १२२
मजदूर ३६३
मणिमेखलै २,१५
मण्ड शासन-शिलाओं २३७
मत्स्यपुराण ३२७,३२८
मत्स्येन्द्रनाथको कथा ३३१,३३४
मदनचन्द्रोदय ४३०
मदालसाचरित्र १७८
मदालसापरिणय १५६,१८२
मदुरैक्कांचि २
मधुकण २५१,२५३
मधुरवाणी ३२३
मधुरशतकम् २५४
मध्याक्करलु २९६
मनःशिक्षा ६२९
मनमंदर ४०२
मनसा-काहनी ४८१
मनुमानसप्रवाह ४५५
मन्नारु-कृष्णशतकम् २५६
मन्नारुदासविलासमु २८०,२८१,२९३
मरुत्तराट-चरित्र ३१५,३१६
मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य २१७
मल्लिकार्जुनशतक २४१
मसिआ दा मेला ४०८
महाभागवत २३
महाभारत १०,१८,११४,१३१,१४०,१४१,१४४,१५३,
२०७,२१८,२३८,३२९,३३०,३३१,३३७,३४३,
३७४,४७२,५५५,७०६
महाभारत का अनुवाद (नेपाली) ३३२
महाभारत टीका (नेपाली) ३३२
महाभारत-दानपर्व ४१४
महाभारत-पाञ्चाली ६९८
महाभावानुसारिणी ६६१
महाभाष्य ३१५
महिम्नभाषाप्रबन्ध ३८९
महिषासुरमर्दनिशतकम् २२९
महेन्दर-अशटक ४३९
मांझ ४०२,४२९
माघमहात्म्यम् १६५,२५३
माझें ३७५
मातल्लि ३०३
मातृगीतालु २४१
माधवनिदान-भाषा ४१३
माधवविजयम् २३०
माधवसंगीत ६२५
माधवानलकामकन्दला ३५९,४२९
माधवानल भाषा ४२९
मानमंजरी ३७९
मानसबोधशतक १७१
मानसबोधशतकम् २०७

मानसोल्लासमु ३१६
मानसोल्लास सारम् २५३
मान्धातृचरित्रमु २३९
मार्कण्डेयपुराण १५८
मालदासरीकथा १७९
माला दे तलवार ४०८
माहेन्द्रपुराण २४१
मिट्ठे मिहणे ४२२
मिठड़े ४४०,४४८,४६१
मिठड़े क्रिशन-राधा-प्रेम के ३४७
मित्रमणि-भूषणम् २८८
मित्रवृन्दा परिणयमु १७१
मिरज़ा-साहिबाँ ३६८
मिलखी दा गंजा बटेरा ४३७
मिलखी दी सलीमो गंजी ४३७
मिश्रबन्धु-विनोद ४२९
मीगडतरगलु ३०२
मुंदरीछल ४२३
मुकुन्दमाला ६
मुक्ताचरित ६५७,६५८
मुक्तावलि ३०३
मुग्धा-श्रृंगारम् २७५
मुद्राराक्षसमु २२०
मुन्नाल्लमुच्चट ३०२
मुरुगाट्रुप्पडै २
मुल्लैप्पाट्टु २
मुसलमान वैष्णव कवि ७१०
मृगावती ४८६
मृच्छकटिकमु २२०,३२७
मृत्युशय्याबाट ३३६
मेघदूत १०,४७४
मेरी दुनिआँ ४०२
मेरी प्रसिद्ध कविता ४०२
मेलकाट्र १२२
मैं मालण मतवाली वे ४२२
मोक्षपन्थ ३८७
मोतीचूर-भजन ३९२
मोहनपत्रिका ३७०
मोहिनीविलासम् २९५
यंग-इण्डिया ५३१
यक्षगान २८२
यमकशतकम् १८७
यादगार ४०२
यादव-पाण्डव-राघवीयम् २४१
यादवाद्रीशोपाख्यान २४१
यामिनी-विनोदमु २४१
युगलगीत ३३७
योगवासिष्ठ भाषा ३९४
रंगदासीयमु २४१
रंगमहलु ३०४
रंगरंगीले गीत ३६३
रंगरेगलु २५४
रंगीले दे गीत ४०८
रंगीले प्रसंग ४०८
रंगेश-शतकम् २७५
रघुकुलतिलक शतकम् २२९
रघुनाथ-भूपालीयम् १८०
रतिमन्मथाभ्युदमम् २७३
रतिरहस्यम् ३२७
रत्नपरीक्षा २६८
रमानायकशतकमु २६९
रसकदम्ब ५४४,६५४
रसकल्पतरुवल्लीकार ५७०
रसकल्पवल्ली ५४१,५५४,५६३,५६४,५८४,६६३
रसचन्द्रिका ४८३
रसतरंगिणी-भाषा ४६४
रसनिधि ३४७
रसभक्ति-चन्द्रिका ६१७
रसभरे-भजन ३९२
रसमंजरि २४६
रसमञ्जरी १७८,४६४,४८९,५८७,५९६,६५६,६६०
रसाभरणमु १५४

रसामृत ६६५
रसामृतसिन्धु ५१६
रसिकजन-मनोभिरामम् १७५
रसिकमंगल ५२६,५६८
रहस्यत्रयविवरण ६१
रागतरंगिणी ४९५
रागमाला ५४९,६१७
रागमेलविवेकम् ३१२
रागलहरी ६८२
राघवपाण्डवीयम् २३८,२४७,२४८,३०६,३०७
राघवीयम् १९०
राज करेगा खालसा ४०२
राजगोपालविलासमु २०१,२९५
राजगोपालशतकम् २२९
राजनीतिरत्नाकरम् २७३
राजभक्ति ३०१
राजमहेन्द्रवरम् २१५,३१८
राजयोगसार २०७
राजशेखरचरित्र २७४
राजशेखर विलासमु १७५
राजुराजु १८८
राधाकृष्णकण्ठाभरणमु २४७
राधाकृष्ण-चरित्र १७४
राधाकृष्ण-लीलारस-कदम्ब ६५४
राधाकृष्णविलास १७६
राधागंगावतरणम् ३२७
राधागोविन्द-संगीतसार ३५२
राधातत्त्व ६१७
राधापुष्पाञ्जलि ४४६
राधामाधव ४६४,४६५
राधामाधवम् १४५,१९५,१९७
राधामाधव-विवादम् २९५
राधामाधवसंवाद ३०९
राधामान ४२९
राधाविनोदकाव्यम् (संस्कृत) ३३२
राधासुधानिधि ५८४
राधासुधापुराणम् २७३
राधिकापरिणयमु १९९
राधिकासान्त्वनम् २१६;२७६,२८९,३२१,३२२,३२३
रामाईण ३७०
रामकथा २८७,४२१
रामकृष्णविजयम् २७३
रामकृष्णार्जुनरूपनारायणीयमु १६५
रामकृष्णीयमु १५६
रामचन्द्रचन्द्रिका-सटीक ४६४
रामचन्द्रवाणीविलास ७०७
रामचन्द्रविजयमु २००
रामचन्द्र-ह्री-शतकम् २५६
रामचन्द्रोपाख्यानम् २१३
रामचरितगीत ५७२
राम-चरित्र ३७५
रामपट्टाभिषेकम् ३१२
रामराजुचरित्र १८२
रामशतकम् २०७
रामसमुद्रम् ३२८
रामाभ्युदयम् १५५,२७३
रामायण १०,१३१,१४४,१९०,२०७,२९२,४५२,
५५५,७०६
रामायणकथासारम् २८२
रामायण-बारांमाहा ४६१
रामायणमुलु २०६
रामायणम् १८,२८२
रामायण-रामचन्द्रोदय ४१३
रामायणसंग्रह २८०
रामायण-सुन्दरकाण्ड २२१
रामावतारतत्त्वमु २०६
रामाश्वमेध काण्ड ३४१
रामाश्वमेध-भाषा ४६४
रासपंचाध्यायी ६६०
रासविलास ३४४,३४६
रासमण्डल-पंचाध्यायी ४२५
रासमण्डललीला ३४४,३४७,४५६

रासलीला १५२,१६०
रुक्मांगदचरित्र १९३,२७३
रुक्मिणीकल्याणम् १५०,१७४,१८९,१९७,२७०,२९५, ३१९,३२७
रुक्मिणीपतिशतकम् २०७
रुक्मिणीपरिणयम् १७४,२८८
रुक्मिणीमंगल ३४४,३८६,३९७,३९८,४१३,४२४,४६९
रुक्मिणी-सत्यभामा संवादमु ३१२
रुक्मिणीस्वयंवर ५४०
रुक्मिणीहरण लीला (नेपाली) ३३२
रुग्मागदे १८२
रूपनवनीतम् २८६
रूपमंजरी ६२३
लंकादहनमु १८२
लक्षणदीपिका १९०,२६८
लक्षणसारमु २३८
लक्षणापरिणयमु २२०,३२५
लक्ष्मी-नरसिंह-मूर्ति-स्तुति २६९
लक्ष्मी-नृसिंह-विलासमु २५६
लक्ष्मीप्रिया चरित ७१५
लक्ष्मीविलासमु २८७
लक्ष्मीशतकम् २०७
लघुजातक भाषा ४१३
लघुभागवतामृत ५०७,५१९
ललितमाधव ४८५,६७३
लहूचूस ४०२
लावनी-मनमोहिनी ४४०
लीलागृह ५३५
लीलामृत ५८७
लीला-रासमण्डल ४२५,४२६,४२७
लीलावती शाह राजीयमु २६७
लुब्धा ग्रेसर चक्रवर्ति प्रहसनम् ३२७
लैला-मजनूं ३६८
वंशीचरित्र ३३७
वंशीशिक्षा ६२८
वंशी-शिक्षाविलास ६८२
वचन भगवद् गीता २१६
वत्सला २५३
वनमाली-विलासमु २४४
वरदराज स्तुति २७३
वर-लक्ष्मीत्रिंशति २९६
वरागमनमु २४६
वराहनरसिंहशतकमु २६९
वराह-पुराणम् ३२७,३२८
वलवदरी १६९
वल्लभाभ्युदयमु ३१६
वल्लीकल्याणम् ३१२
वसन्तविलासम् २४३
वसवपुराणम् १५३
वसवराजु अप्पाराव गीतालु २९१
वसिष्ठ-रामायण २७२
वसुदेवनन्दन-शतकम् २८८
वसु-धरा-परिणयम् २४५,२४६
वसुमतीवसन्तमु ३०१
वस्तुतत्त्व-सार ६८२
वाणीविलास-वनमालिका २०६,२०७
वायस आफ दि रोड २३०
वायुपुराण १६५
वार-कान्ह-कंस को ४००
वार पूतना दी ४५२
वारां दे बादशाह ४०८
वाराहपुराण १७६
वाल्मीकि-चरित्र २८२
वाल्मीकि रामायण ४६४
विकृत-विवेक १५४
विक्रमविलास ३८१
विक्रमांक-चरित्र २०५,३१४
विक्रमांकदेव चरित्रमु २२०
विक्रमोर्वशी ४८२
विघ्नेश्वर-कल्याणम् ३१२
विजयविलासमु २०३,२१६
विजयसेनमु २१८

विज्ञानसर्वस्वमु १७८,२५०
विदग्धमाधव ४८५,६५४,६७३
विधिविन्यास ५३२
विप्रनारायण-चरित्र १४५,१५०,१६२,१९२,१९३,२१४, २४७,३२६
विमुक्ति ३०३
विरजोपाख्यानम् १९४
विराटपर्व ३४१
विलाप-कुसुमांजलि ६५७,६५८,६६४
विल्लिभारतम् १०,१८,११३
विवेक-चिन्तामणि ४१८
विश्वसारतंत्र ५८२
विश्वासमु ३०२
विष्णुकाञ्ची माहात्म्यम् २८४
विष्णुगीतम् १२,११७
विष्णुचित्तीयमु १८०
विष्णुपदे खुशहालराय ४४५
विष्णुपल्लिक सेवाप्रबन्धम् ३१२
विष्णुपुराणम् १९१,१९२,२२१,२२२,३०५,४७५,४७९, ४८३,५०४,५०६,५०७
विष्णुप्रिया ५३९,५५३,५८२,६४९,६७८,७०४
विष्णुप्रिया-नाटक ७१५
विष्णुभक्ति-रत्नावली ६७५
विष्णुमायानाटक काव्य २०६
विष्णुमाया नाटकम् १६५,१९७,२७०
विष्णुमाया-नाटकम्-द्विपद-काव्य २०६
विष्णुमायाविलासमु १६६
विष्णुविचित्र ६८५
विष्णुसहस्रनाम ३८९
विष्णुस्कन्द १३५
वीथिनाटक २७६
वीरनारायण-शतकम् २८८
वीरपूज ३०१
वीरभद्रविजयमु २६१
वीरभद्राष्टक ५३६
वीर मेरा घोड़ी चढ़िआ ४०८
वीररत्नावली ५५७
वीर राघवस्वामि-शतकम् २०६
वृत्तचन्द्रोदय ३५६
वृन्दावनकथा ४९३
वृन्दावनकाव्यम् ३३२
वृन्दावनमहिमामृत ५८४
वृषभानुजा-नाटिका ४७८
वृहद्-भागवतामृत ४९२
वेंकटगिरि-वंशावली २६०
वेंकटरमणशतकमु २६९
वेंकटाचल-महात्म्य २०७
वेंकटेश्वरशतक २१३
वेंकटेश्वरोदाहरणमु २१६
वेंकटाचल-महात्स्यम् २१३
वेट्रिवेर्कै २१
वेणी-प्रबन्ध १७३
वेणीसंहार ४७१
वेदनावासुदेवम् २४१
वेदान्तदीप १०७
वेदान्तसंग्रह १०७
वेदान्तसार १०७
वेदान्ती-बारांमाहा ४१५
वेन्कटेशान्ध्र-कोश १८६,१८८
वेयिपडगलु २९६
वैकुण्ठ-ब्राह्मण ६८७
वैजयन्तीविलासम् १५०,२१४,३२३
वैदग्धविलास ६४८
वैद्यकल्पतरु ३५६
वैद्यशास्त्रार्थसंग्रहम् २०७
वैनतेयविजय १५६
वैरागसूतर ४२३
वैष्णव-आचार्य-दर्पण ६२२
वैष्णवतापनीय ७०७
वैष्णवतोषिणी ४९२
वैष्णवदिग्दर्शिनी ५९८
वैष्णववन्दना ५७०,६०७,६२६,६३२,६४५,६८९,६९४

वैष्णवविधान ६०७
वैष्णवव्रतदिन ७१८
वैष्णव-व्रतनिर्णय ७१७
वैष्णवाष्टक ५४९
व्यंग्यार्थबतीसी ४६४
व्याकरणकौमुदी ६६५
व्यासर विरुन्दु १९
व्रजराजविलास-सतसई ३५२,३५६
शंकरसेवापल्लकिप्रबन्धम् ३१२
शचीपुरन्दरम् ३१२
शतक-कवुल-चरित्र १५९
शतकण्ठरामायण ३१६
शतसंहित २७३
शनिग्रहम् २२०
शरफ दे गीत ४१९
शल्य सारथ्यम् १८८
शशांकविजय २७६
शाखानिर्णय ५२६,६७३
शाखानिर्णय-निबन्ध ४९९
शान्तनुविलास १५६
शान्ताकल्याणम् ३१२
शालिवाहन-सप्तशति ३१६
शाहमहाराज-कल्याणम् २६७
शिखरनाथ-भाष्य ३३८
शिरिय तिरु मडल कण्णि ६
शिलप्पदिकारम् २,३,४,१५
शिलादित्य १८२
शिवक्षेत्रयात्रा २३२
शिवरात्रि-महात्म्यम् २५५,३१६
शिवलीललु २२०
शिवलीला-महात्म्यम १७५
शीघ्रपद्यशतकमु २१६
शृंगारदण्डकमु २१६
शृंगारदर्पण ३३८
शृंगारमञ्जरी १८७,२१३
शृंगार-रसालवमु ३०२
शृंगारवीथि २९६
शृंगारवृत्त-पद्य-शतकमु २१६
शृंगारशाकुन्तलम् २५३
शृंगारसंजीवनी १८०
शृंगार-हारावली ७१७
शृगारकोण ६९७
शृङ्गार-नैषधम् ३१६
शृङ्गार शतक ३८१
शेरसिह-प्रकाश ३५६
शेषधर्म २०९,३०२
शोभाशृंगार ३७९
श्यामला ३०१
श्यामसनेही ३४४
श्रवणानन्दमु २२०
श्रीकृष्ण-कर्णामृतम् ३०७,४९३
श्रीकृष्णकवचम् ३७
श्रीकृष्णकीर्तन ४७२,४७३,४७७,४७८,४९०,५९१,५९४
श्रीकृष्णचरित-चरितामृत ६८०
श्रीकृष्णचरित्र ३३७,३४१
श्रीकृष्ण-चाटु लु-सत्यशतकम् २७५
श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामृत ६५२
श्रीकृष्णचैतन्य-सन्दर्भ ७१८
श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड १९०
श्रीकृष्ण तुलाभारमु २५८
श्रीकृष्णदेवचरित्रचन्द्रोदय ३८१
श्रीकृष्ण-परमात्मा १५२,२७४
श्रीकृष्णभक्तकीर्तन ४७७
श्रीकृष्णभजनामृत ४९३,६१३
श्रीकृष्णभागवतम् ३१८
श्रीकृष्णमंगल ४७७,४७८,६२५,६४९,६९८
श्रीकृष्ण महाभारतमु ३१८
श्रीकृष्ण रामायणमु ३१८
श्रीकृष्ण-लीला-तरंगिणी ७७
श्रीकृष्णलीलामृत ५४०
श्रीकृष्णविजय ४७२,४७८,४९०,४९९,६६८
श्रीकृष्णविलासम् २८३

श्रीकृष्ण शतानन्दीयम् २७३
श्रीकृष्णसंगीतमु १५२
श्रीकृष्णसन्देश ३३३
श्रीकृष्ण-साहित्य-सिन्धु ३५२,३५६
श्रीकृष्णावतार तत्त्वमु २०६
श्रीखण्ड के प्राचीन वैष्णव ६१२
श्री गदाधर-सन्दर्भ ६१७,७१८
श्रीगिरधरलीला ३७४
श्री गुरुनानक सूर्योदय ३८१
श्रीचैतन्यचरितेर-उपादान ६८७
श्रीचैतन्यप्रेमविलास ६८२
श्री जस्सासिंहविनोद ४६४
श्रीनिवासविलासमु २२०
श्री निहालसिंह-प्रताप-पंचाशिका ४६४
श्री निहालसिंह-प्रेमेन्दुचन्द्रिका ४६४
श्रीपाण्डुरंग महात्म्यम् २२४
श्री फतेसिंह-प्रताप-प्रभाकर ४६४
श्रीमदुपाख्यानम् २८३
श्रीमद्भगवद्गीता ३५२,३५३,३५४,३८९,६४२
श्रीमद्भागवत २,१०,२६१,३३१,३३७,३४४,४७३,५०३,
५०४,५०५,५०७,५३४,५७७,६३८,६६३,
७०४,७१८
श्रीमद्भागवत-कथासार ३३२
श्रीमद्भागवत-कृष्णचरित्र ३४१
श्रीमद्भागवत-भक्ति ६६५
श्रीरंग-महात्म्यम् २६८,३१४
श्रीरंगमहात्म्यम्बु १७०
श्रीरंगशतकम् २७३
श्रीराधाकृष्णरसकल्पलता ५६४
श्री रामगीता ३८९
श्रीरामजननमु १८२
श्रीरामनाम गीत १०३
श्रीरामहृदय-भाषा ३८९
श्रीवचनभूषण ८२,८७
श्रीविष्णुपुराणम् ३०२
श्री शंकराचार्यं चरितमु २०६
श्री श्री वैष्णवसंगिनी ७१५
श्री श्री वैष्णव-सेतिका ७१५
श्री संगीतकृष्ण-लीला २५८
षट्शास्त्र को सार ४१५
षट्सन्दर्भ ५०७,६६५
षड्गोस्वामी गुजलेश ७०३
संकीर्ण शृङ्गारम् २७५
संकीर्तन ५५४
संकीर्तन-लक्षण २१३
संकीर्तन-लक्षण-व्याख्या २१६
संकीर्त्तनामृत ५८७
संक्षिप्त-भागवतामृत ६७३
संक्षिप्त महाभारत ३३२
संगरकिरीटि ३२१
संगीतमाधव ४९५
संगीतमाधव-नाटक ५७२
संगीतसुधा २८२
संग्रहतोषिनी ६७१
संग्रहभागवत २०६
संवादि-ऊधो ३४७
संवाद-ऊधो-गोपीआँ ३४४,४३५
सकलकथा-सार-संग्रहमु १७८
सकलनी-तिसम्मतम् २७२,३१४
सकल-लक्षणसार संग्रहमूल १७५
सकलालंकार-संग्रह २७३
सतमाहां ४११
सतरंगी-पींघ ४२२
सतिगुरां दे नूरी गीत ४०८
सती-दानशूरम् ३१२
सती-पतिदान-विलासम् ३१२
सत्तवार ४१५
सत्यभामा-विलास १५६
सत्यभामा-विवाहम् २९५
सत्यभामा-सान्त्वनम् २८९,३२२,३२३
सत्यवधु प्रीणनमु १७८
सत्य-शतकम् २७५

सत्यहरिश्चन्द्रीयमु २६७
सत्यानुसरण ५३२
सदुक्तिकर्णामृत ४७१,४७२,४८३
सद्विधायना ५,३२
सप्तपदी २७६,२७७
सभापर्वं ३४१
सभाभिरामम् २०८
सभामण्डन ३५६,४१३,४१८
समग्र-आन्ध्र-साहित्यम् १७४,२३४
समुद्रगुप्त-प्रशस्ति ४७४
समुद्रलहरी ३३७
सरफ सुनहेहे ४१९
सर्पपुर-महात्म्यम् १७५
सर्वदर्शन-संग्रह २०७
सर्वलक्षण-शिरोमणि १८७
सर्वलक्षण-सार-संग्रह १६२
सर्वलहरी ३३२
सर्वलोकेश-शतकम् २४६
सस्सी ३६८
सहजतत्त्व ६६४
सहस्रनाम-भाष्यम् ७७
साखीआं-गिआन-उपदेश ४६१
सागरसंगम-महात्म्यम् १७५
साडा-शाम-रूस्सिआ ४२२
सातनायिका ३४०
सातराग ३४०
सात्राजितीयमु २६७
साधन-दीपिका ७०५
साधन-भक्ति-चन्द्रिका ६१७
सानन्द-चरित्र २४६
साम्बोपाख्यानम् २७९,२८०,२८५
सयुज्यमु-२३२
सारंगधर-चरित्र १७५,२०३,२४७,३२१,३२२
सारंग-रंगदा ४९३
सार-संक्षेप-सूर-सागर ४५८
सार्वभौम-छन्दस्सु २१८
साहित्य-बोध ४६४
साहित्य-शिरोमणि ४१३
साहित्यसमालोचनमु २५३
साहित्य-समीक्षा २५३
साहित्य-सम्पदा २५३
सिंगार-सूतर ४२३
सिघां दा बारामांहा ४४८
सिंघां दी वार ४०४
सिंहगिरि-वचनालु १८१
सिंहाचल-महात्म्यम् १७५
सिद्धित्रय २९
सिन्धु-उज्ज्वल-नीलमणि ६६५
सीतांकल्याणम् ३१२
सीतागुणकदम्ब ६७७
सीतादेवि-वनवासमु ३०१
सीताराम-चरित्र २७०
सीता-राममु ३०१
सीताराम-विजय २२९
सीताराम-शतक २४१
सीतावनवासम् २३०
सींहरफी ३४७,४४३
सीहरफियाँ ४१९
सीहरफी-दम्भविडम्बन ४४८
सीहरफी-बलभाविरतंत ४४८
सोहरफी सोभा महाराजे नरिन्द्रसिंहजी की ४४८
सुकविजन-मनोरंजन १५६
सुग्रीवविजयम् १६८
सुदक्षिणा-परिणयम् २२२
सुदर्शन-रगड २१६
सुदामा-चरित्र ३३२,३४४,३५९,३६५,४१३,४५३,४६९
सुदामा-चलितर ३४४,४५२
सुदामा-द्विज-दारिद्रय-दमन ४४६
सुदामाभाषाश्लोक ३३२
सुदामा-मंगल ३४४,३९७,३९८
सुदामे दी शरधा ४०९,४१०
सुधासर ३५२

सुनन्दिनी-परिणय १८२
सुनीतिपन्थप्रकाश ४१३
सुनीति-प्रकाश ४४८
सुन्दर-रामायण ३९२
सुप्रभातस्तव २१६
सुमद्रा-कल्याणम् २१३,२१५
सुभद्रा-परिणय १७४
सुभन्तोदयम् ३०७
सुरस ३०१
सुलक्षण-सारम् ३०७
सुशोभा-विवाह १५६
सूक्ति-मुक्तावली १८१
सेरन् सेंगुटटुवन् १०३
सेल्येटि-गानमु २९१
सेवाविधायना ५३२
सोढीआं दी वार ४४८
सोढ़ी मिह्रिबान ३७५
सोमदेव-राजीय १७४
सोमनाथविजयमु २४६
सौभद्रुनि-प्रणययात्रा २४१
सौभरि-चरित्र २५९
स्कन्द-पुराण २२६
स्तम्भोद्भव गद्य २४६
स्तवमाला ६३०,६७३
स्तवावली ६५८
स्त्री-कल्याणम् ३१२
स्याम-सनेही ३५९,३६०
स्नीदोहाभेदावली ४१५
स्नी महावाक्यग्रन्थ ४१५
स्नी मोहारनी की दोहा भेदावली ४१५
स्नी वरणी सवैये भेदावली ४१५
स्नी सुधासरी थित्त भेदावली ४१५
स्वदेशी गीत १२६
स्वप्नाध्यायी ३८७
स्वस्थानीव्रतकथा ३३८
हंसचोग ४२३
हंसदूत ४८४,६७३,७०७
हंस-विंशति १५६,२७६
हनुमदाख्यान १५६
हनुमन्नाटक ४६९
हरविलासमु ३१५,३१६
हरिकथासारम् १५८
हरिचरित ४८३
हरिनामामृत ६०५
हरिनामामृत व्याकरण ६६५
हरिभक्तनिवास ५६५
हरिभक्तमाला ३३१,३३४
हरिभक्तिचन्द्रामृत ६५४
हरिभक्तिविलास ४९२,५३७
हरिलीलाविलासमु २२८
हरिवंश-काव्य २०८
हरिवंश-पुराण १६१,१६३,४७५,४७९,४८३,६३९
हरिवंशम् २००,२८१
हरिविलास ३०२
हरिश्चन्द्रोपाख्यान ३१०
हरिश्चन्द्रोपाख्यानमु १९०
हर्षचरित्रमु २२०
हातमनामा ४६१
हिस्ट्री आफ ब्रजबुली-लिटरेचर ५८५,६३६,६४४,६४७
हीर-सोहणी ३६८
हृदयतत्त्वमंजरी ६१७
हे रघुवीरा ! जानकी-नायका १५५

●